* ओ३म् *

कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमाला का चतुर्थ रत्न

चिकित्सातत्त्वप्रदीप

द्वितीय-खण्ड

प्रकाशक

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय

पो० कालेड़ा-कृष्णगोपाल (ज़िला अजमेर)

द्वितीय संस्करण २५०० | सन् १९५२ ई० | मू० अजिल्द ८) रु०
मू० सजिल्द ९।।)रु०

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः ।
अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥

सु० सं० सू० स्था० अ० ३५–१६ ॥

हिताहितीयं यच्चोक्तं नित्यमेव समाचरेत ।
ततः प्राप्स्यति सिद्धिं च यशश्च विपुलं भिषक् ॥

॥ सु० सं० उ० अ० ६०–५२ ॥

ये तु शास्त्रविदो दक्षाः शुचयः कर्मकोविदाः ।
जितहस्ता जितात्मनस्तेभ्यो नित्यं कृत नमः ॥

॥ च० सं० सू० स्था० अ० २९–१२ ॥

ज्ञानबुद्धिप्रदीपेन यो नाविशति तत्त्ववित् ।
आतुरस्यान्तरात्मानं न स रोगांश्चिकित्सति ॥

॥ च० सं० वि० स्था० अ० ४–१५ ॥

मुद्रक—

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

प्राक् कथन

यस्मिन् सर्वे यतः सर्वे यः सर्वः सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो देवस्तस्मै सर्वात्मने नमः॥

(१) महाप्रभु कल्याणरायकी असीम कृपासे चिकित्सातत्त्वप्रदीप द्वितीय-खण्ड का द्वितीय संस्करण आज जनता जनार्दनकी सेवामें सादर समर्पित करनेमें हमे परम प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इस ग्रन्थका प्रथम संस्करण १९४२ ई० में प्रकाशित हुआ था, जो १९४६ ई० में ही समाप्त हो गया था। फिर वैद्य और विद्यार्थी वृन्द से इसकी मांग निरन्तर बनी रही थी। इस हेतुसे प्रातः स्मरणीय पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज ने इसका संशोधन (नया लेख लिखनेका) आरम्भ १९४७ ई० में ही किया। डॉक्टरी निदान, लक्षण आदि १९३० ई० की प्रकाशित पुस्तकोंके आधारसे लिखा था। जिसमें बहुत विचार पलट गये थे इस हेतुसे डॉक्टरी नये प्रकाशित ग्रन्थोंके आधारसे पुनः लिखना पड़ा। यह लेखन कार्य १९४८ में ही समाप्त हो चुका था। इसे प्रकाशित करानेकी इच्छा होते हुये भी आर्थिक प्रतिकूलताके हेतुसे ४ वर्ष निकल गये हैं। आशा है हमारे स्नेही पाठक हमें क्षमा प्रदान करेंगे।

(२) वर्तमानमें नव्य वनस्पति शास्त्र और कतिपय एलोपैथिक ग्रन्थोंमें वाक्य छोटे-छोटे बनानेका नियम बना है। वे ग्रन्थकार अन्तमें क्रियापद नहीं लगाते। इस प्रकारके लेखनमें समझनेवालोंको अधिक सुविधा रहती है और पृष्ठ संख्या कम होती है। आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें यह नियम अपनाया जाय तो सरलता अधिक होगी। ऐसा मानकर एलोपैथिक लक्षण आदि विवेचनके कतिपय स्थानोंमें उस मार्गका अनुसरण किया गया है। सर्वांशमें इस नियमका पालन नहीं हुआ है। यह नूतन क्रम सुविधाप्रद है या नहीं? विद्वानवर्ग इसका जैसा निर्णय करेंगे, वैसा आगे पालन किया जायगा।

(३) एलोपैथिक विभागको अपनानेसे ग्रन्थमें पारिभाषिक शब्दोंका सर्वसम्मत निर्णय नहीं हो सका है। अनेक ग्रन्थलेखकोंमें से स्व० महामहोपाध्याय गणनाथ-सेनके बनाये हुये पारिभाषिक शब्द हमें विशेष प्रामाणिक प्रतीत हुये हैं। इसलिये उनके अनेक शब्द ग्रहण किये हैं। एवं अन्य ग्रन्थकारोंके भी शब्द जो भावग्राही प्रतीत हुये हैं, उनको भी आवश्यकता अनुसार ले लिया है। इनके अतिरिक्त जो शब्द नहीं मिल सके, वे नये बना लिये हैं।

(४) अंग्रेजी भाषासे अपरिचित वैद्योंको विशेषतः लेटिनके पारिभाषिक शब्दोंको जाननेकी आवश्यकता नहीं है; किन्तु अंग्रेजीके जाननेवाले सुबोध वैद्य और नये

छात्रोंको लेटिनके पारिभाषिक शब्द विशेष उपयोगी होते हैं। इसलिये ग्रन्थमें स्थान-स्थानपर दो कपालोंके बीच डॉक्टरी पारिभाषिक शब्द भी दिये गये हैं।

(५) प्राचीन आयुर्वैदिक साहित्यके अनुवाद और टीकाका प्रकाशन अनेक-स्थानोंसे हुआ है, नव्य टीकाकारोंमें से अनेकोंने नव्य शैलीसे समझानेका प्रयत्न भी किया है। जो विद्यार्थियोंके लिये अति उपकारक है। इसी तरह एलोपैथिक विशाल साहित्यमेंसे आयुर्वेदके लिये उपयोगी विचारोंका संग्रह कर नूतन-नूतन ग्रन्थोंकी रचना की जाय तो आयुर्वैदिक साहित्य उन्नत होगा और नूतन होनहार चिकित्सकोंके ज्ञानकी वृद्धि हो सकेगी। ऐसा मानकर स्वामीजी महाराजने नूतन ग्रन्थोंकी रचना की है और करते रहेंगे।

(६) आयुर्वेद और एलोपैथी, दोनोंका ध्येय रोगीको रोगसे मुक्त करना है; तथापि दोनों शैलियाँ परस्पर अति भेदवती हैं। प्राचीन आचार्योंने आयुर्वेदक समझने समझाने और व्यवहारमें लानेकी सरल पद्धतिका आविष्कार किया है। इस हेतुसे आयुर्वैदक रोगपरीक्षा और चिकित्सापद्धतिका प्रयोग जिस तरह शहरोंमें हो सकता है उसी तरह ग्रामोंमें और जंगलोंमें भी इसे व्यवहारमें ला सकते हैं। इसका लाभ धनिक और गरीब सब कोई ले सकते हैं। यह बहुत कम झंझट वाली और कम खर्चवाली है। इसमें चिकित्सकोंको चिकित्सामें हानि होनेका भय अपेक्षाकृत बहुत कम है। एवं मूल्यवान यन्त्रादि उपकरणोंकी सहायता बिना ही सम्यक् चिकित्सा हो सकती है।

(७) अनेक रोगीके मिश्रित लक्षण प्रतीत होने, प्रथमावस्थाके कारण रोगका पूरा-पूरा परिचय न मिलने, अन्य किसी हेतु वश रोगके स्पष्ट लक्षणोंकी अप्रतीति होने और विदेशोंकी विषाक्त वायु आदिसे नूतन भयंकर रोगकी उत्पत्ति होनेपर रोगनिर्देश नहीं हो सकता। जैसे १९१८ ई० में इन्फ्लूएन्झाने जनपद-व्यापीरूप धारण किया था उस समय एलोपैथिक चिकित्सा बिलकुल असफल हुई थी। ऐसी अवस्थामें आयुर्वेद ने वात, पित्त, कफ इन मूल धातुओंकी विकृतिका निर्णय करके कारणानुरोधसे चिकित्सा करके सफलता प्राप्त की थी।

(८) एलोपैथीकी योजना निम्न प्रकारसे हुई है। निर्धन ग्रामवासियों और जंगलमें रहनेवालों के लिये यह नितान्त असफल है। इस विद्याके जाननेवाले डॉक्टरोंकी संख्या बहुत कम रहती है। वे डॉक्टर भी यन्त्रादि उपकरण न मिलनेपर रोग परीक्षा नहीं कर सकते। इनके यन्त्रादि साधन अति मूल्यवान हैं। सब जगह नहीं मिल सकते; साथ ही इन साधनोंका उपयोग सामान्य बुद्धिवाले कर भी नहीं सकते। इन साधनोंका उपयोग करनेपर भी रोग विनिर्णय पूर्णतया संदेह रहित हो, ऐसा नहीं कह सकते; एवं रोगके कारणोंका परिचयभी नहीं मिल सकता। रोग विनिर्णयमें भ्रम, भूल

या प्रमाद होनेपर रोगीको सर्वाधिक हानि पहुँचती है। इनके अतिरिक्त एलोपैथिक चिकित्सा अति मंहगी पड़ती है और जीवनीय शक्तिको शनैः-शनैः पराधीन भी बनाती है। इन कारणोंसे यह शैली भारतके लिये अधिक हितावह नहीं है। फिर भी सारग्राही दृष्टिसे नव्य विद्यार्थी समूहको इसका कुछ परिचय दिया जाय, तो रोगीके हितके लिये जहाँ आवश्यकता होगी वहाँपर वे इसका सदुपयोग कर सकेंगे।

सारग्राही दृष्टिसे आयुर्वेदके साथ एलोपैथीके निदान, लक्षण, सम्प्राप्ति, चिकित्सा पद्धति आदिका परिचय प्राप्त करनेपर वैद्य और आयुर्वेद प्रेमी डॉक्टर दोनों एक दूसरेका विचार भली-भांति समझ सकेंगे और परस्पर मिलकर रोगियोंकी विशेष सेवा कर सकेंगे। ऐसा होनेपर (सोनेमें सुगन्धवाली) कहावत चरितार्थ हो जायगी।

समस्त संसार या समाजके संरक्षणार्थ कोई नियम या मार्ग समानरूपसे समाधानकारक नहीं हो सकता। एक पद्धतिमें एक प्रकारसे बाधा आती है; तो दूसरी में दूसरे प्रकारसे। अपवादरहित सार्वभौम विधान कोई भी नहीं बन सकता।

भूगोलका अध्ययन करनेवाले जानते हैं कि, विद्वानोंने भिन्न-भिन्न विचार लेकर देशान्तररेखाओंके जाल (Projection) भेदसे लगभग ३० प्रकारके भौगोलिक रेखाचित्र बनाये हैं। परन्तु इन सबमें दूसरी दृष्टिसे विचार करनेपर कुछ-न-कुछ दोष दृष्टिगोचर होता ही है।

"अहिंसा परमो धर्मः" इस सूत्रको वेदानुयायी और जैन मतावलम्बी आदि सबने त्रिकालाबाधित माना है। परन्तु इसे भी अपवाद रहित नहीं कह सकते। राजपुरुषोंके लिये धर्मयुद्ध, पागल कुत्ते आदि जीवोंसे मनुष्यका संरक्षण, डाकुओंसे असहायोंका बचाव और अपराधियोंको उचित दण्ड देने आदि कर्तव्योंका पालन करनेमें हिंसा होती ही है। माता-पिता बालकोंको ताड़ना करते हैं, यह भी हिंसा है। किसान खेती करता है, उसमें भी हिंसा होती है अतः यह सर्वसम्मत नियम सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा निरपवाद नहीं है।

भीष्म पितामहने महाभारतके शान्तिपर्वमें धर्मराज युधिष्ठिरको उपदेश देते हुये ठीक ही कहा है कि—

> न हि सर्वहितः कश्चिदाचारः संप्रवर्तते।
> तेनैवान्यः प्रभवति सोऽपरं बाधते पुनः॥

अभिप्राय यह है कि इस ग्रन्थको भी विवेचक दृष्टिसे देखनेपर उसमें दोष दिखाई देना अस्वाभाविक नहीं है।

छपाईमें शीघ्रता होनेके कारण ग्रन्थमें अनेक अशुद्धियाँ रहजानेकी संभावना होसकती है। अतः सहृदय पाठकोंसे निवेदन है कि उन्हें जहाँ कोई न्यूनता अथवा त्रुटि प्रतीत हो, उसकी सूचना करने की कृपा करें। उन

त्रुटियोंको साभार स्वीकार किया जायगा और तृतीय संस्करणमें परिमार्जन कर दिया जायगा । इस ग्रन्थ को अत्यधिक उपयोगी बनानेके लिये हमारी ओरसे भरसक प्रयत्न किया गया है । अब यह कैसा बना है, इसका निर्णय करनेका भार आयुर्वेदके विद्वानोंपर रहता है । जितनी विशेष सूचना मिलेगी, उसके अनुरूप आगे नूतन ग्रन्थ तैयार कराया जायगा । इस ग्रन्थमें शेष रहे हुये पचन संस्थान, रक्त संस्थान और श्वसन संस्थानके रोगों का समावेश हो चुका है । हृद्रोग, वातरोग, मूत्ररोग, ऊर्ध्व जत्रुगत रोग, व्रण--विद्रधि -अर्बुद, विषरोग, स्त्रीरोग, बालरोग आदि अनेक शेष हैं । श्री हरिकी कृपा होगी तो आगे तृतीय-खण्डमें इनमेंसे अनेक रोगोंको दे सकेंगे ।

इस ग्रन्थके लेखनमें एलोपैथिक विवेचन विशेषतः निम्न ग्रन्थोंके आधारसे लिखा गया है । इनके लेखक और प्रकाशकोंका हम आभार मानते हैं ।

1. Synopsis of Medicine-Sir Henry L. Tidy.
2. Medical Essentials G. E. Beaument.
3. Savill's System of Clinical Medicine-E. C. Warnar.
4. Differential Diagnosis-Herbert French
5. Medical Diagnosis-Roscoe L. Pullen,
6. Index of Treatment-Robert Hutchinson.

इस ग्रन्थके प्रकाशनमें वैदिक-यन्त्रालयसे पूरा सहयोग मिला है । अच्छा कागज़, नया टाइप, सुन्दर छपाई और प्रूफ रीडिंग भी सन्तोषप्रद करा देना आदि सुविधा मिली है । इस सम्बन्धमें यन्त्रालयके संचालक और व्यवस्थापक आदिके हम आभारी हैं ।

विनीत
कुंवर यशवन्तसिंह
मन्त्री
कृष्ण-गोपाल आयुर्वैदिक धर्मार्थ औषधालय

पो० कालेड़ा--कृष्णगोपाल
(अजमेर)
सं० २००६ आश्विन शुक्ल १०.

॥ श्रीधन्वन्तरये नमः ॥

भूमिका

—:॰:—

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥"

इस पद्यमें यह स्पष्ट निर्देश झलक रहा है कि, उदारचरित सज्जन विद्वानोंके विचार कैसे रहते हैं । उदारचरित भूमण्डलवर्त्ती समस्त गुणीजनोंको अपना कुटुम्ब समझते हुए, यह कदापि नहीं सोचते कि गुणगणके आगार केवल हम ही हैं । उनकी यह नीति रहती है कि "अमेध्यादपि काञ्चनं ग्राह्यम्" सुवर्ण यदि मैलेमें भी पड़ा हुआ हो तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए ।

हमारा आयुर्वेद सर्वोपरि है । यह ठीक है किन्तु यह बात भी तो भुलाई नहीं जा सकती कि, किसी ज़मानेमें यूनानके तथा वर्त्तमानमें इंगिलस्तान आदिके प्राणाचार्यों ने भी शारीरिक चिकित्सा आदिके विषयमें कम उन्नति नहीं की है । यदि सच कहा जाय तो वे कई वैज्ञानिक विषयोंमें हमसे बहुत आगे बढ़ गए हैं । चिकित्सामें सहायता पहुँचानेवाले कई ऐसे यन्त्रों, तन्त्रों एवं प्रयोगोंका उन्होंने आविष्कार किया है कि जिन्हें देखकर हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं । यदि इन सबका साकल्येन वर्णन किया जाय तो एक बड़ा भारी महाभारत सा ग्रन्थ बन सकता है । अस्तु,

उपर्युक्त कथनानुसार यह किसीसे छिपा नहीं है कि, आयुर्वेदकी तरह अन्य पैथियोंने भी बड़ी उन्नति की है । केवल आयुर्वेदका वर्णन करनेवाले बहुतसे ग्रन्थ हैं, और बनते जाते हैं, परन्तु ऐसे ग्रन्थोंकी भी बड़ी आवश्यकता वर्त्तमान समयमें लोग अनुभव करते थे कि आयुर्वेदीय चिकित्साके साथ-साथ तुलनात्मक दृष्ट्या ग्रन्थ बनें, जिनमें एलोपैथीका भी वर्णन साथमें रहे । ऐसा होनेसे वैद्य एवं डॉक्टर दोनों परस्पर लाभ उठा सकते हैं और पारस्परिक प्रेम भी बढ़ सकता है । इसी उद्देश्यको सामने रखकर चिकित्सातत्त्वप्रदीप ग्रन्थ लिखा गया है । लेखक को इसके लिखनेमें बड़ी सफलता मिली है । अनुमान है कि यह ग्रन्थ तीन खण्डोंमें जाकर पूरा होगा । इसका प्रथम-खण्ड सन् १९४० में प्रकाशित हो चुका है । इसमें उपोद्घात प्रकरण, शरीरशुद्धि प्रकरण, चिकित्सासहायक प्रकरण और ज्वर प्रकरण, पूरे आए हैं और अन्तिम पंचनेन्द्रिय संस्थान व्याधिप्रकरणका कुछ भाग आया है । ये सब प्रकरण बड़ी छानबीनके साथ लिखे गए हैं ।

अन्तिम पचनेन्द्रिय संस्थानव्याधि प्रकरण है, जो कि बहुत बड़ा होनेसे प्रथम-खण्डमें समाप्त नहीं हुआ है। केवल अतिसार, प्रवाहिका, ज्वरातिसार, ग्रहणी, आन्त्रिक क्षय, कोष्ठबद्धता, अर्श, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विसूचिका, अलसक, विलम्बिका और कृमि-रोगके निदान तथा चिकित्साविषयमें यावच्छक्य भली-भाँति वर्णन किया गया है।

चिकित्सातत्त्वप्रदीपिका यह द्वितीय-खण्ड आपके सामने है। इसमें प्रथम-खण्डका शेष रहा हुआ पचनेन्द्रिय संस्थान व्याधि प्रकरण पूरा किया गया है। इसमें अरोचक, छर्दि, तृष्णा, दाह, शूल, नागविषजशूल, पित्ताश्मरी, अम्लपित्त, गुल्म, उदर, अन्त्रपुच्छदाह, उदावर्त, कामला, यकृत्प्रदाह, यकृदपक्रान्ति, पित्ताशयप्रदाह, अग्न्याशयविकार और उदर्याकलाप्रदाह, इन रोगोंकी निदान चिकित्सा सांगोपाङ्ग दी गई है। इसके अनन्तर रक्तरचनाविकृति, श्वसनसंस्थान आदिके अनेक रोगोंका और अन्तमें हिक्काका वर्णन किया है।

इस खण्डकी पृष्ठ संख्या प्रथम-खण्डके समान है और इस खण्डमें भी अनेक चित्र आर्ट पेपर पर तथा लेखके साथ दिये गए हैं। ग्रन्थको उपादेय बनानेका भरसक प्रयत्न किया गया है।

लेखकके कथनानुसार शेष रोगोंका विषय तृतीय-खण्डमें सांगोपाङ्ग लिखकर इस ग्रन्थको समाप्त किया जायगा। लेखक महोदयके इस अदम्य उत्साह तथा अथक परिश्रमको देखते हुए मैं आयुर्वेद-संसारकी ओरसे उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और वैद्यविद्याविलासियोंसे विशेष विनम्र विनय करता हूँ कि वे ग्रन्थको अपनाकर जनता—जनार्दनकी सेवाके ही अर्थ चलनेवाले कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालयकी सहायता करें। परम पिता परमात्मा लेखकको उत्तरोत्तर अधिक बुद्धि और बल दे, ताकि वह ऐसे अन्य ग्रन्थोंकी रचना कर वैद्य-संसारकी सेवामें भेंट कर सके।

सीताबर्डी नागपुर,
१२ जून १९४२ ई.

श्रीगोवर्धन शर्मा छांगाणी।

प्रकरण-सूची

रोगानुसार-सूची

पाण्डु रोग चिकित्सा ४४०

—:*:—

प्रयोग सूची

शारीरिक अवयव परिचय

—:*:—

चित्र-सूची

—:o:—

ग्रन्थ-प्रकाशन और औषध-विक्रय

इस धर्मार्थ औषधालय से सब प्रकारकी औषधियाँ मूल्यसे बाहर भेजी जाती हैं। "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह" में लिखे हुए और "चिकित्सातत्वप्रदीप" में आये हुए प्रयोग—भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, खरलीय रसायन, गुटिका, चूर्ण, कषाय, आसव, अरिष्ट, अर्क, शर्बत, पाक, अवलेह, घृत, तैल, अञ्जन, क्षार, लेप, मलहम आदि तथा शोधित द्रव्य सब उचित मूल्य से बाहर ग्रामके ग्राहकों को भेजे जाते हैं। मूल्य सूची-पत्र में देखें।

हमने औषध प्रयोगोंमें से अभी तक एक भी प्रयोग गुप्त नहीं रक्खा, और भविष्य में भी प्रयोग छिपाये नहीं जायेंगे। प्रयोग विधि गुप्त रखनेसे उनका इच्छानुसार दस-बीस गुना या अधिक मूल्य मिल सकता है, परन्तु ऐसा करनेमें आयुर्वेद साहित्य और देशको हानि पहुँचती है। अतः इस नियमके सम्बन्धमें हमने अन्य फार्मेसियोंका अनुकरण नहीं किया और न भविष्यमें करेंगे। यह धर्मार्थ संस्था महाप्रभु कल्याणरायकी है। वे यदि इसे निभाना चाहते हैं, तो इसके संरक्षकवर्ग (ट्रस्टियों) के हृदयमें विशाल और सत्य पालनकी दृढ़ता प्रदान करेंगे, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

यह औषधालय गरीबोंकी सेवार्थ है; किसी व्यक्ति विशेषकी संपत्ति नहीं है। औषधालय ट्रस्टबोर्ड रजिस्टर्ड हो गया है। जिसके ११ ट्रस्टी बनालिये हैं। औषधालयमें किसीका स्वार्थ न होनेसे पूर्ण सत्यतापूर्वक व्यवहार किया जाता है। सब औषधियाँ शास्त्रोक्त विधि अनुसार ही तैयार की जाती हैं। इस हेतुसे शास्त्रमें लिखे अनुसार पूरा लाभ मिलता है। औषधि और पुस्तक विक्रीमें जो नफा रहता है उसका उपयोग दीन-दुःखी जनोंकी सेवामें ही होता है। अतः इस औषधालयसे औषध खरीदनेमें चिकित्सक और ग्राहकोंको शास्त्रोक्त विधिसे बनी हुई सच्ची औषधि मिल जाती है; साथ-साथ गरीबोंकी सेवामें सहायता भी होती रहती है।

कुं० जसवन्तसिंह,

सैक्रेटरी।
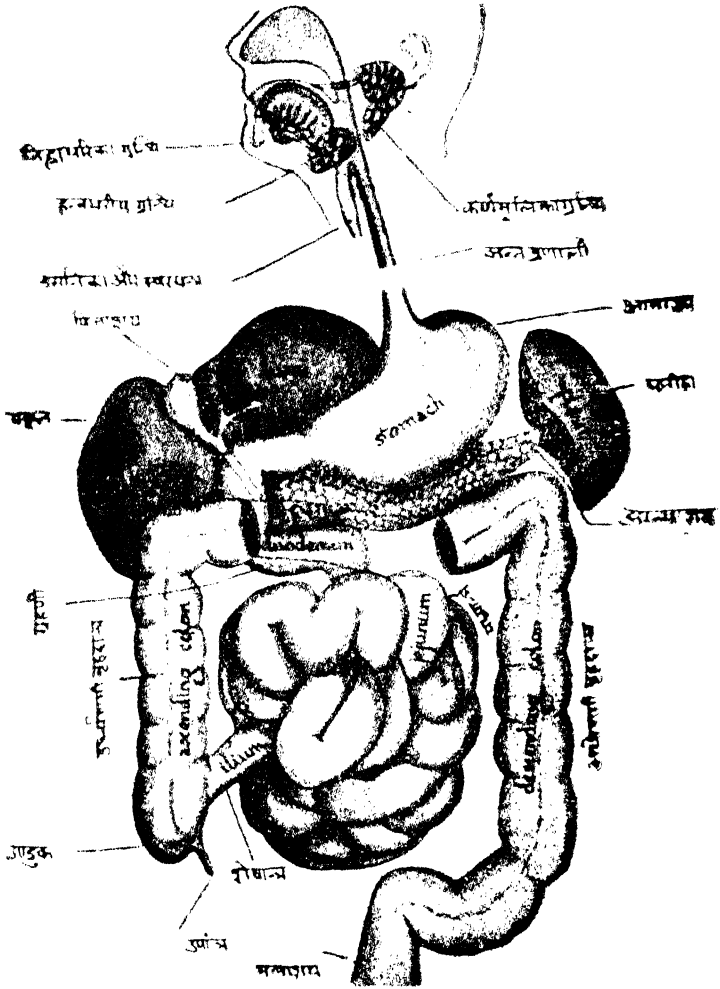
पचनेन्द्रिय संस्थान (महास्रोत)

* श्री धन्वन्तरये नमः *

चिकित्सातत्त्वप्रदीप

द्वितीय खण्ड

पचनेन्द्रिय संस्थान व्याधि प्रकरण

Diseases of the Digestive System.

इस पचनेन्द्रिय संस्थान (Digestive System) में मुख, दांत, जिह्वा, लाला ग्रन्थियाँ (Salivary Glands), प्रसनिका (Pharynx), अन्ननलिका (Oesophagus), आमाशय, पक्वाशय (लघु अन्त्र), मलाशय (बृहदन्त्र), यकृत्, अग्न्याशय (Pancreas) और उदर्य्याकला (Peritoneum) इतने अवयव हैं। इन सबको कार्यक्षम बनानेके लिये वातवहा नाड़ियाँ (Nerves) सबके साथ हैं।

प्राचीन शारीरविदोंने मुख, प्रसनिका, अन्ननलिका, आमाशय, लघु अन्त्र और बृहदन्त्र इन ६ के मिलकर बने हुए एक मुख्य मार्ग को 'महास्रोत' ऐसी योग्य और अर्थगर्भ संज्ञा दी है। कारण गर्भावस्थामें ये सब इन्द्रियाँ महास्रोतके विभाग रूप ही होती हैं, और अनेक जातिके प्राणियोंमें यह महास्रोत एक सलग (Continuous) नली रूपसे आजीवन प्रतीत होता है।

यह महास्रोत जो शारीरविदोंके अभिप्राय अनुसार मुख द्वारसे गुदा द्वार तक रहा है; वह लगभग ३० फीट (२० हाथ) लम्बा है। यह किसी-किसी स्थान पर मन्थन आदि क्रियाओंके लिये अधिक चौड़ा है, तो किसी-किसी स्थान पर कम चौड़ा (संकुचित) बना है।

प्रारम्भके मुखकुहरमें भोजनके बारीक टुकड़े बन, उसमें लाला (Saliva) मिश्रित हो जाता है। फिर वह ग्रसनिकामें जाता है। वह आगे लगी हुई अन्नन-लिकामें धकेल देता है। वहाँसे भोजन आमाशय रूप विस्तृत मुख्य आमाशयमें पहुँच जाता है। मनुष्य जो अन्न-जल लेता है, वे सब इस आमाशय (मैदे) में संगृहीत होते हैं; और उस पर पहली पचन क्रिया आमाशयमें ही प्रारम्भ होती है।

फिर आगे महास्रोत एक पतली सकड़ी (संकुचित) नलीके रूपमें बन जाता है; उसे लघु अन्त्र कहते हैं। इस स्थानमें आमाशयकी पचन क्रिया होनेके पश्चात् शेष रहे हुए भोजनका प्रवेश होता है। इसमें अन्त्रगत रसका मिश्रण होकर पुनः पचन क्रिया होने लगती है और वह पचन होता हुआ धीरे-धीरे आगे गति करता रहता है; और पचन हुए भोजनके सत्त्व (रस) का सिरा और रसायनियों द्वारा शोषण होने लगता है। इस तरह आहारके परिपाककी क्रिया लघु अन्त्रमें होनेसे प्राचीन आचार्योंने उसे पक्वाशय नाम दिया है।

पुनः मार्गकी आकृति बदल जाती है, महास्रोत मोटी चौड़ी नलीकी तरह बनता है। जिसे बृहदन्त्र कहते हैं। उस स्थानमें पचन क्रियाके अन्तमें मलरूपसे रहे हुए त्याज्य अंशके प्रवाही भागका शोषण होता है। इस हेतुसे उसे मलाशय संज्ञा भी दी है। उस मलाशयमें प्रवाही रसका शोषण होता है,' और मल शनैः-शनैः आगे गति करता है। फिर उसे महास्रोतके अन्तिम गुदाद्वार नामक संकुचित स्थानमेंसे बाहर निकाल दिया जाता है।

इस महास्रोतके मुख्य अवयव आमाशय और आंत हैं। कारण, इनमें आहारकी पचन क्रिया होती है। शेष अवयव पचन क्रियामें उपकारक (Helper) होनेसे पचनेन्द्रिय संस्थानके गौण भाग हैं।

प्राचीन आचार्योंके प्रश्नोत्तर रूपसे अनियमित कहे हुए समस्त रोगोंको माधवाचार्यने नियमबद्ध क्रमशः लिखा है। उनका, हो सके उतने अंशमें अनुसरण किया जाय, तो आयुर्वेदीय चिकित्सकोंको अधिक सुविधा रहेगी। इस हेतुसे चिकित्सातत्त्व-प्रदीप प्रथम खण्डमें ज्वर प्रकरण पहले लिखा, और फिर पचनेन्द्रिय संस्थान व्याधि प्रकरणका प्रारम्भ किया।

इस संस्थानमें अनेक इन्द्रियाँ रही हैं, और एक-एक इन्द्रियके भी अनेक रोग हैं। इन सबका समावेश प्रथम खण्डमें नहीं हो सका। अतः शेष रहे हुए रोगोंको इस (द्वितीय) खण्डमें स्थान दिया है।

महास्रोत (पचनेन्द्रिय संस्थान)
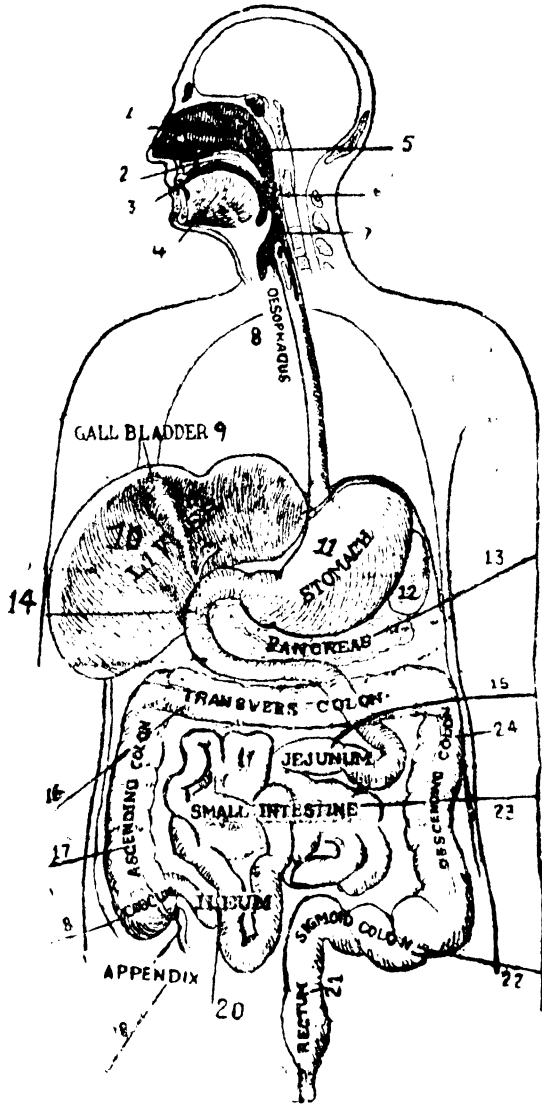
चित्र नं० १

महास्रोत (पचनेन्द्रिय संस्थान)

१ नासागुहा Nasal Cavity.
२ तालु Palate.
३ मुख Mouth Cavity.
४ जिह्वाका निम्न प्रदेश Inferior surface of Tongue.
५ नासागुहा पश्चिम Nasal part of Pharynx.
६ गल बिल Oral part of Pharynx.
७ स्वरयन्त्र पश्चिम Laryngeal part of Pharynx.
८ अन्ननलिका Oesophagus.
९ पित्ताशय Gall bladder.
१० यकृत् Liver.
११ आमाशय Stomach.
१२ प्लीहा Spleen.
१३ अग्न्याशय Pancreas.
१४ ग्रहणी Duodenum.
१५ मध्यान्त्रक Jejunum.
१६ अनुप्रस्थ अन्त्र Transvers Colon.
१७ आरोही अन्त्र Ascending Colon.
१८ उण्डुक Coecum.
१९ अन्त्रपुच्छ Appendix.
२० शेषान्त्रक Ileum.
२१ गुद नलिका Rectum.
२२ कुण्डलिका प्रदेश Sigmoid Colon.
२३ लघु अन्त्र Small Intestine.
२४ अवरोही अन्त्र Descending Colon.

प्रथम खण्डमें आई हुई व्याधियाँ ।

इस (द्वितीय) खण्डमें आई हुई पचनसंस्थानकी व्याधियाँ।

१ अरोचक—Anorexia.
२ वातनाड़ी विकारज अरुचि—Anorexia Nervosa.
३ छर्दि—Vomiting.
४ तृष्णा—Polydipsia & Dipsosis.
५ दाह—Cardialgia.
६ शूल—Colic.
आन्त्रिक व्रण परिणाम शूल—Duodenal Ulcer
आमाशयिक व्रण अन्नद्रव शूल—Gastric Ulcer
७ नागविषज शूल—Lead Colic.
८ पित्ताशयाश्मरी—Biliary Calculus.
६ अम्लपित्त—Acid Dyspepsia.
१० गुल्म—Abdominal Tumours.

१—त्रिदोषज गुल्म—
अ. आमाशयिक कर्कस्फोट—Cancer of the Stomach.
आ. आन्त्रिक कर्कस्फोट—Cancer of the Intestine.
इ. यकृत्का कर्कस्फोट—Cancer of the Liver.
ई. कृमिज रसार्बुद—Hydatid Tumours.

२—रक्तगुल्म—
अ. गर्भाशयके अर्बुद—Uterine Fibrous Tumours.
आ. बीजाशयके अर्बुद—Ovarion Tumours.

११. उदररोग—
१. यकृद्दाल्युदर—Cirrhosis of the Liver.
२. बाल-पैत्तिक यकृद्दाली—Infantile Biliary Cirrhosis.
३. यकृत्में रक्ताधिक्य—Congestion of the Liver.
४. प्लीहावृद्धि—Splenic enlargement.
५. प्लीहोदर—Splenic Anaemia.
६. जलोदर—Ascites.
७. बद्धोदर—Impaction of foreign bodies.
८. पित्ताश्मरीज बद्धोदर—Intestinal Obstruction due to Gall-stone.
९. परिस्राव्युदर—Carcinoma of the Colon.
१०. क्षतोदर—Ulceration of the intestine.
११. शेषान्त्रकप्रदाह—Regional Ileitis.

१२. अन्त्रपुच्छप्रदाह—Appendicitis.

१३. उदावर्त्त—
१. मलनिग्रहज—Intestinal Obstruction.
२. अन्त्रव्यावर्त्तन—Volvulus of intestine.
३. पाशित अन्त्रविकार—Strangulation.
४. अन्त्रान्त्रप्रवेश—Intussusception.

१४. कामला—Jaundice.
१५. यकृच्छोष—Yellow Atrophy of the Liver.
१६. यकृत् प्रदाह—Hepatitis.
१७. यकृत्की सिक्थापक्रान्ति—Waxy Liver.
१८. यकृत्में मेदोभरण—Fatty Liver.
१९. पित्ताशय प्रदाह—Cholecystitis.

२०. **पूयात्मक पित्तप्रणालिका प्रदाह**—Suppurative Cholangitis.
२१. **यकृतार्बुद**—New Growths in the Liver.
२२. **यकृतावरण प्रदाह**—Perihepatitis.
२३. **अग्न्याशय विकार**—Diseases of the Pancreas.
  अ. **अग्न्याशय प्रदाह**—Pancreatitis.
  आ. **अग्न्याशयमें रसार्बुद**—Pancreatic Cysts.
  इ. **अग्न्याशयमें अर्बुद**—Tumours of the Pancreas.
  ई. **अग्न्याशयशीर्षपर कर्कस्फोट**—Carcinoma of Head of Pancreas.
  उ. **अग्न्याशयमें अश्मरी**—Pancreatic Calculi.
२४. **उदर्य्याकला प्रदाह**—Peritonitis.
२५. **उदर्य्याकलामें ग्रन्थियां**—New growths in the Peritoneum.

मुखगत (ओष्ठ, दाँत, जिह्वा, तालु और कण्ठ आदि प्रदेशके) रोगोंका विवेचन तृतीय खण्डमें शीर्ष स्थानीय रोगोंके भीतर किया जायगा। मुख, कर्ण, और नासा इन इन्द्रियोंके विकारोंको एक साथ दिया जायगा। नेत्ररोगकी पुस्तक अलग प्रकाशित हो गई है। अन्त्रवृद्धि (Hernia), विद्रधि आदि विकारोंको इस खण्डमें नहीं लिया है, वे भी यथा स्थान दिये जायंगे।

आयुर्वेदमें इस संस्थानकी कतिपय व्याधियाँ माधवाचार्यजीके क्रमसे अन्य संस्थानोंकी व्याधियोंके पश्चात् कही हैं, और इस ग्रन्थके क्रमसे एक साथ देनेमें नवीन अभ्यासियोंके लिए विशेष सुविधा रहेगी, ऐसा मानकर एक साथ दी हैं। माधवाचार्यजीके क्रमका पूर्ण अंशमें अनुसरण नहीं हो सका। एवं पाश्चात्य क्रमको भी बदलना ही पड़ा है। डॉक्टरीमें पचनेन्द्रिय संस्थान व्याधियोंके प्रारम्भमें मुखगत रोगोंका वर्णन मिलता है। फिर गल ग्रन्थि, ग्रसनिका, अन्ननलिका आदि अवयव जैसे-जैसे आते हैं, उस क्रमसे लिखा है। यह क्रम डॉक्टरी मर्यादाके अनुसार बिल्कुल सही है। किन्तु ऐसा करनेमें प्राचीन क्रमका सर्वांशमें त्याग हो जाता है।

पाश्चात्य वैद्यकमें रोगोंके चिकित्सा भेदसे दो वर्ग बनाये हैं। शस्त्रक्रिया साध्य और औषधसाध्य। इनमेंसे शस्त्रक्रिया साध्य कतिपय रोग काय चिकित्सा (औषधि चिकित्सा) विभागमें आ जाते हैं। अतः इनका विचार भी औषध चिकित्साके साथ करना चाहिये। जो केवल शस्त्रक्रिया साध्य हैं, उनका सम्यक् बोध अनुभवसे मिलता है। केवल ग्रंथोंके लेखों द्वारा प्राप्त नहीं होता। अतः शस्त्र-चिकित्साका वर्णन काय चिकित्साके साथ विशेष रूपसे नहीं किया जायगा।

आयुर्वेदमें सब इन्द्रियोंके व्रण, विद्रधि, कर्कस्फोट आदिके निदान, चिकित्सा एक साथ लिखे हैं। कारण, अनेक स्थानोंके व्रण-विद्रधि आदि रोगोंकी चिकित्सा

बहुधा समान ही होती है। बारबार पृथक्-पृथक् लिखनेसे अनावश्यक विस्तार होता है। किन्तु जब प्राचीन आयुर्वेदके किसी रोग विशेषके साथ व्रण-विद्रधि आदिका सम्बन्ध आता है, तब उसे वहाँ पर लेना पड़ता है। जैसे परिणाम-शूल और अन्नद्रव शूलका सम्बन्ध आन्त्रिक व्रण (Duodenal Ulcer) और आमाशयिक व्रण (Gastric Ulcer) के साथ रहा है। अतः इन दोनोंका डाक्टरी वर्णन शूल रोगके अन्तर्गत किया गया है।

कतिपय रोगोंकी चिकित्सा परस्पर सहायक होनेसे ऐसे रोगोंको शास्त्रकारोंने साथमें लिखा है। जैसे पाण्डु और कामला, ये रोग डाक्टरी मर्यादानुसार पृथक्-पृथक् स्थानोंके हैं। पाण्डु रोग रक्तसंस्थानका और कामला यकृत् विकार होनेसे पचनेन्द्रिय संस्थानका है।

क्वचित् आयुर्वेदके एक रोगमें डाक्टरीके अनेक रोग आ जाते हैं। जैसे उदररोगमें यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर, क्षतोदर और जलोदर, ये ४ स्थानोंके रोग हैं। डाक्टरी मर्यादा अनुसार यकृद्दाल्युदरको पचनेन्द्रिय संस्थानमें यकृत्के रोगोंके भीतर प्लीहोदरको अंतःस्रावी ग्रन्थियों (Ductless Glands) के विकारमें, क्षतोदरको अन्त्ररोगोंके भीतर तथा उदर्य्याकलाके भीतर जल संचयसे उत्पन्न जलोदरको उदर्य्याकलाके रोगोंमें स्थान देना चाहिये; किन्तु आयुर्वेदकथित एक मुख्य रोगके टुकड़े करना अनुचित माना। इसलिये सबको एक स्थान पर ही लिखा जायगा।

शूलरोगके भीतर सब स्थानोंके शूलोंका अन्तर्भाव हो सकता है। प्राचीन आचार्योंने—सुश्रुतसंहिताकारने पार्श्वशूल, हृच्छूल, बस्तिशूल, मूत्रशूल और विट्शूलको शूलरोगके साथ लिखा है। किन्तु माधवाचार्यजीने केवल पचनेन्द्रिय संस्थानके शूल ही लिखे हैं। पार्श्वशूल आदि व्याधियोंको शूलरोगके साथ स्थान नहीं दिया तथा वृक्कशूलका उल्लेख अश्मरी और शर्कराजन्य मूत्रकृच्छ्रमें मिलता है। अतः इस खण्डमें पचनेन्द्रिय संस्थानके शूलोंको स्थान दिया है। शेष शूलोंका विवेचन तृतीय खण्डमें यथा स्थान किया जायगा।

यकृच्छूल बहुधा पित्ताशयकी अश्मरीजन्य होता है। पित्ताशयकी अश्मरी और यकृच्छूल, दोमेंसे एकका स्पष्ट रूपसे विवेचन प्राचीन ग्रन्थोंमें अश्मरी या शूल रोगके अन्तर्गत नहीं मिलता। अतः इस रोगको पचनेन्द्रिय संस्थानके रोगोंमें पित्ताशयाश्मरी नामसे लिखा है।

प्राचीन आचार्योंने महास्रोतकी व्याधिके साथ ही रक्तगुल्मको प्रजनन संस्थानकी व्याधि होनेपर भी गुल्मरोगके भीतर लिखा है। संस्थान विभाग अनुसार दोनों रोग पृथक्-पृथक् स्थानपर होने चाहियें। किन्तु किसी रोगके टुकड़े न करनेके हेतुसे इस ग्रन्थमें रक्तगुल्मको गुल्मरोगके साथ ही लिखा है।

अनुमान है कि, त्रिदोषज गुल्म, यह आमाशयिक कर्कस्फोट(Cancer of the

Stomach), आन्त्रिक कर्कस्फोट (Cancer of the Intestine) और यकृत्में उत्पन्न कर्कस्फोट (Cancer of the Liver) होना चाहिये। अतः इन रोगोंका वर्णन गुल्मरोगके अन्तर्गत किया है। इनमेंसे यकृत्के कर्कस्फोटसे २० प्रतिशतको कामला रोगकी सम्प्राप्ति होजाती है। अतः इसका सम्बन्ध कामलाके साथ भी किया है।

उदावर्त्त रोगके अन्तर्गत प्राचीन आचार्योंने अनेक संस्थानोंके रोग लिखे हैं। स्थानमर्यादा अनुसार मस्तिष्कगत (Cerebral) विकृतिवाले उदावर्त्तोंको शालाक्यतन्त्रमें और मूत्रनिरोधज बस्तिगत विकारयुक्त उदावर्त्तको मूत्रेन्द्रिय संस्थानके रोगोंमें लिखना चाहिये; किन्तु अनेक प्रकारके उदावर्त्तोंमें महास्रोतविकृतिकारक मलनिग्रहज उदावर्त्त ही प्रधान होनेसे उदावर्त्त व्याधिको पचनेन्द्रिय संस्थानमें ही लिखा है। इस तरह अन्यान्य स्थानोंमें भी आवश्यक परिवर्तन किये हैं।

डाक्टरी ग्रन्थोंमें अनेक गौण रोगोंका भी विस्तारसे विवेचन मिलता है, परन्तु उतने विस्तारकी आयुर्वेदिक चिकित्सकोंकेलिये आवश्यकता नहीं मानी। अतः कतिपय गौण व्याधियोंके वर्णनका त्याग किया है।

(१) अरुचि रोग।

अरोचक—एनोरेक्सिया (Anorexia) वातादि दोषप्रकोप, शोक, भय, अति-लोभ, क्रोध, ग्लानि उत्पन्न करे ऐसे भोजन, अरुचिकर रूप या गन्ध, उच्छिष्ट या कृमियुक्त भोजनकी प्राप्ति होनेपर अथवा अन्य किसी कारणसे भोजन करनेकी इच्छा निवृत्तहो जाय, वह अरोचक कहलाता है।

इस अरुचिको भक्तोपघात, भक्तद्वेष और अभक्तच्छन्द भी कहते हैं। भोज संहिताके मतसे मुँहमें डाला हुआ अन्न बेस्वादु लगे उसे अरुचि रोग; और देखने, स्पर्श करने या चिन्तन करनेपर घृणा उत्पन्न हो उसे भक्तद्वेष कहा है। इस मतके विरुद्ध दूसरे ग्रन्थकारोंने अन्नपर रुचि न हो उसे अरुचि; और मुँहमें डालनेपर बेस्वादु लगे उसे भक्तद्वेष माना है।

वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज अरुचिका आश्रयस्थान जिह्वा और हृदय माना है; तथा आगन्तुक अरुचिका आश्रय स्थान मन कहा है।

डॉक्टरीमें इस रोगको स्वतंत्र रोग नहीं माना; अनेक व्याधियोंका सामान्य लक्षण कहा है। इस हेतुसे पाश्चात्य ग्रन्थोंमें इसके निदान संप्राप्ति, चिकित्सा आदि का विवेचन स्वतंत्र रूपसे नहीं मिलता।

डाक्टरी मतानुसार सार्वाङ्गिक व्याधियों तथा आमाशय और अन्त्रके विकारोंके हेतुसे क्षुधानाश होकर अनियमित रूपसे अरुचिकी प्राप्ति होती है। एवं सब प्रकारके आशुकारी ज्वर, शारीरिक और मानसिक थकावट, शोक, भय, क्रोध, अपमान आदि जनित मानसिक सन्ताप, अफीम और शराबका अति सेवन, कोष्ठबद्धता, आमाशयिक व्रण, उदरकृमि(Ankylostomiasis) हिस्टीरिया, क्षय, आमाशय प्रसारण,

फक्करोग (Coeliac disease), रसक्षय, काला-आज़ार, आमाशयके मुद्रिकाद्वारमें अवरोध, पाण्डु, घातकपाण्डु, आमाशय और अन्त्रका कर्कस्फोट, वृद्धावस्थाजन्य निर्बलता, नष्टार्तव, मलावरोध, क्षयात्मक व्याधियाँ, अन्त्रबन्धनीकी ग्रन्थियोंका क्षय (Tabes Mesenterica), अफीमका व्यसन, अति मद्यपान, शुक्रक्षय आदि रोगोंमें क्षुधाका लोप होकर अरुचिकी प्राप्ति होती है।

अरुचिप्रकारः—

(१) वातप्रधान अरुचि लक्षण—दांत खट्टे हो जाना, हृदयशूल, कसैला मुँह, मलावरोध और मैले रंगके शुष्क दस्त आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

(२) पित्तप्रधान अरुचि लक्षण—दुर्गन्धयुक्त, कड़वा, खट्टा, बेस्वादु-मुँह, तृषा, दाह, चूसने समान पीड़ा, मुँहसे भाफ निकलना, बेचैनी आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

(३) कफ प्रधान अरुचि लक्षण—खारा, चिकना और मीठा मुँह, शरीर भारी होना, आलस्य, ठंडी, बद्धकोष्ठ, खुजली, मुँहमें कफ आना और ज़ुकाम आदि लक्षण होते हैं।

(४) त्रिदोषज अरुचि लक्षण—हृदयशूल, काटने समान पीड़ादि वातसे, तृषा, दाह, हड़फूटनादि पित्तसे; कफ गिरना, शरीरमें भारीपन आदि कफसे; तथा मनकी व्याकुलता, जड़ता, बेचैनी आदि मिश्रित लक्षण प्रतीत होते हैं।

(५) आगन्तुक लक्षण—शोक, भय, अति-लोभ, क्रोध, अपवित्र या ग्लानि उत्पन्न करनेवाले अप्रिय भोजन, अप्रिय दर्शन, अप्रिय गन्ध आदि कारणोंसे उत्पन्न अरुचिमें मानसिक व्याकुलता, मोह, जड़ता, बेचैनी, उबाक आदि उपद्रव होते हैं।

भय लगनेपर पाँचों प्रकारके वायुमें क्षोभ उत्पन्न होता है। फिर पित्त और कफका हीनयोग होता है। हृदयस्थ प्राणवायुके अतियोग होनेपर साधक पित्तका हीन-योग होकर मेधा और ओजका ह्रास होता है, तथा ग्लानि उत्पन्न होती है। व्यान वायुके अतियोगसे चर्मसे सम्बन्धवाले भ्राजक पित्तका हीनयोग होकर मुखमण्डल आदि स्थानोंकी त्वचा निस्तेज बन जाती है। कोष्ठस्थ समान वायुमें अतियोग होनेसे पाचक पित्तका हीनयोग होता है, जिससे अग्निमन्द होजाती है। अपानवायुका अतियोग होनेपर मलाशयमें रहे हुए संश्लेष्मक कफका मिथ्यायोग होकर बद्धकोष्ठता या अति-सारकी उत्पत्ति होजाती है। उदान वायुके अतियोगसे बोधक (रसन) कफका हीन-योग होकर जिह्वाकी शुष्कता और भोजनमें अरुचि होती है।

नैसर्गिक नियम, राज्यके कानून या समाज मर्यादाके विरुद्ध बर्ताव होनेपर भयकी उत्पत्ति होती है। जिससे वायुमें क्षोभ उत्पन्न होता है। फिर समान वायु प्राणवायुमें मिल जाती है। साधक-पित्तका ह्रास और अवलम्बक कफका मिथ्यायोग होजाता है। परिणाम-में उदान और प्राणवायुके प्रकोपसे हृदयमें आघात पहुँचता है, हृत्स्पंद बढ़ जाता है;

श्वासकी दीर्घता कमहोती है और घबराहट होने लगती है। साधक पित्तके निर्बल बननेसे ओज-रसका ह्रास होता है और पूज्य या सत्तावाले मनुष्यको देखकर लज्जाकी प्राप्ति होती है। उदानवायुके अति योगसे तर्पक कफका शोषण होता है। जिससे मुखसे शब्दका स्पष्ट उच्चारण भी नहीं निकल सकता। व्यानवायुके अतियोगसे भ्राजक पित्तका हीनयोग और क्लेदक कफका मिथ्यायोग होकर देह काँपने लगती है और त्वचा निस्तेज हो जाती है। एवं उदानवायुके अतियोग होनेसे आलोचक पित्तका भी हीनयोग और स्नेहन (तर्पक) कफका मिथ्यायोग होजाता है। जिससे नेत्रेन्द्रियसे कार्य सम्यक् नहीं होता, चक्कर आता है और कभी मूर्च्छा भी आ जाती है। कोष्ठस्थ समान वायुका अतियोग होनेसे क्षुधा-मन्द होजाती है। एवं बोधक कफका हीनयोग हो जानेसे जिह्वा शुष्क बन जाती है और रुचि नष्ट होजाती है।

भयका आघात, हृदय, मस्तिष्क, आमाशय, अन्त्र, मूत्राशय आदि अनेक यन्त्रोंपर पहुँच जाता है। हृदयपर आघात पहुँचनेसे रक्तकी गति-मन्द होजाती है, और कम्प होने लगता है मस्तिष्कको हानि पहुँचनेसे स्मरण शक्तिका लोप और भ्रम उत्पन्न होजाते हैं, आमाशयपर असर हो जानेसे पचन क्रियामन्द होजाती है। आँतोंपर आघात होनेसे तुरन्त दस्त निकल जाता है। पतले गरम दस्त लगते रहते हैं। मूत्राशयपर आघात होनेसे तुरन्त मूत्र निकल जाता है। फिर थोड़ा-थोड़ा मूत्र उतरता है; या बूँद-बूँद मूत्र टपकता रहता है। इस तरह भयके हेतुसे देह जब निस्तेज होजाती है।

शोककी संप्राप्ति होनेपर पाँचों प्रकारके कफमें अतियोग होता है। मस्तिष्कमें अवस्थित तर्पक कफ, हृदयस्थ अवलम्बक कफ और कण्ठस्थ बोधक कफ, तीनोंका अतियोग होनेसे उन स्थानोंकी वायुका हीनयोग और पित्तमें मिथ्यायोगकी प्राप्ति होती है। परिणाममें नेत्रसे अश्रुस्राव, नासिकासे श्लेष्मस्राव और मुखमेंसे लालास्राव होने लगते हैं। हृदयमें रहे हुए अधिक पित्त और प्राणवायुका मिथ्यायोग होनेसे हृदय शिथिल बन जाता है। एवं क्लेदक कफकी वृद्धि होनेपर आमाशयमें स्थित पाचक-पित्त और समान वायुमें हीनयोग होता है। परिणाममें क्षुधाका लोप होता है; और मुख स्वादहीन होजाता है। फिर अरुचिकी उत्पत्ति होती है।

लोभकी अत्यन्त वृद्धि होनेपर आहार, विहार, विश्रान्ति, व्यावहारिक कार्य, ईश्वर और पूज्योंकी सेवा तथा नीति-अनीति आदि बातोंका सम्यक् बोध नहीं रहता। भोजन और पेय पदार्थ यथा समय योग्य मात्रामें न मिलनेपर पाचक-पित्त देहस्थ रस-रक्त आदि सब धातुओंका शोषण करने लगता है। फिर शरीर कृश होता जाता है। इस तरह जब पाचक-पित्त सातों धातुओंको जलाने लगता है, तब समानवायु प्रकुपित होकर पित्त और कफका शोषण करती है। फिर पित्त और कफकी क्रियामें शिथिलता आने लगती है। परिणाममें समान वायुसे आहार रसका सम्यक् विभाग नहीं होता। रंजक पित्त रसको यथोचित रंजित नहीं कर सकता। साधक-पित्त मेधा और ओजका पोषण नहीं कर सकता। भ्राजक-पित्त त्वचामें तेजको स्थिर नहीं रख

सकता। इस तरह वात, पित्त, कफ तीनोंके कार्यमें अव्यवस्था होजानेसे क्षुधा-मन्द हो जाती है; और अरुचिकी उत्पत्ति होजाती है।

इच्छित वस्तु अप्राप्त होने और आज्ञा पालन न होनेपर मानसिक क्षोभ होकर क्रोधकी उत्पत्ति होती है। फिर तत्काल पित्तमें अतियोग, कफमें मिथ्यायोग और वायुमें हीनयोग होजाता है। पाचक-पित्त साधक-पित्तमें और साधक-पित्त आलोचक और भ्राजक-पित्तमें मिल जाता है। इसी हेतुसे समानवायु, प्राणवायु और उदानवायुमें हीनयोग होजाता है। पश्चात् भ्राजक-पित्तकी वृद्धि और उदानवायुके हीनयोगके हेतुसे मुख और नेत्रपर रक्त वृद्धि होजाती है, जिससे मुखमण्डल रक्तवर्णका बन जाता है। संश्लेष्मक कफमें हीनयोग होनेसे संधियोंमें शिथिलता आजाती है; और कम्प होने लगता है। अवलम्बक कफ और प्राणवायुका मिथ्यायोग होजानेसे हृदयमें घबराहट होता है, तर्पक-कफके मिथ्यायोगसे मस्तिष्कमें तमोगुणकी वृद्धि होती है; जिससे नेत्रके समक्षमें अंधकार आकर चक्करकी उत्पत्ति होजाती है। बोधक कफका हीनयोग होकर मुखमें थूककी वृद्धि होती है, लाला टपकने लगती है; और कोष्ठमें क्लेदक कफका अतियोग हो जाता है। परिणाममें अग्नि-मन्द होकर अरुचिकी उत्पत्ति होजाती है। साथ-साथ त्रिदोष विकृतिके हेतुसे कान्ति, बुद्धि, मेधा और प्रज्ञाका भी विनाश होजाता है।

इस तरह मानसिक विकार-जन्य चार प्रकारके दोषयुक्त अरुचिकी प्राप्ति होती है। अप्रिय वस्तुके दर्शन या प्राप्ति-जन्य जो तिरस्कार उत्पन्न होता है; उसका अन्तर्भाव क्रोधमें होता है।

इनके अतिरिक्त हस्तमैथुन या अतिविषय जनित शुक्रक्षय होनेपर क्षुधाकी निवृत्ति होकर भोजनपर अरुचि आजाती है।

आगन्तुकके स्थानपर कितनेक आचार्योंने इस मानस-दोष जनित चारों प्रकारकी अरुचिको पृथक् कहकर अरुचिके ८ प्रकार कहे हैं। मानस दोषज का वर्णन वातनाड़ी विकारज अरुचि रूपसे डाक्टरीमें मिलता है।

वातनाड़ी विकारज अरुचि

एनोरेक्सिया नर्वोसा—Anorexia Nervosa. गंभीर शोष-देह क्षय होनेपर क्षुधाका पूर्णलोप होकर भोजनपर अरुचि आजाती है। इस प्रकारके अरोचकमें किसी अवयव विशेषकी विकृति नहीं होती।

संप्राप्ति-विशेषतः १५ से २५ वर्षकी आयुवाली युवतियोंको होती है। यह रोग स्त्री-पुरुष, सबको कोई भी आयुमें प्राप्त होसकता है। अतः यह वृद्धावस्थामें भी उपस्थित होसकता है।

निदान—मानसिक-विकृति, दुराग्रह या शोक आदि कारणों से प्रायः आवश्यक भोजनका कई दिनोंतक या लम्बे समयतक त्याग करनेपर क्षुधा नष्ट होजाती है, फिर इससे अरुचि उत्पन्न होती है। एक समय वैसी स्थिति होजानेपर यह रोग दौरे

के समान बारम्बार उपस्थित होता रहता है। इनमें २ कारण मुख्य हैं—१. मानस-विकार जनित; २. संयम।

१. मानस-विकार जनित (Psychopathic Origin)—अकस्मात् मनको धक्का लगकर या शनैः-शनैः-आघात पहुँचकर मन अस्वस्थ होजाने से रुचि नष्ट होजाती है। आघात के अनेक कारण होते हैं। प्रियजनकी मृत्यु, धनका नाश, अपमान, अपकीर्त्ति, कर कार्य, कानून द्वारा आपत्ति आदि-आदि। यह आघात सर्वको समान रूपसे नहीं होता, किन्तु जिनका मन-निर्बल, अधिक चिन्ताप्रद हो, मस्तिष्क रचनामें मनके स्थानका संकोच हो, काम, क्रोध आदिका अस्वाभाविक विकास हो तथा गम्भीर रोगमें शस्त्रचिकित्सा, अन्तःस्रावमें अपूर्णता आदि स्थिति हो, उनको अधिक आघात होता है।

लड़की युवा होनेपर मासिकधर्म न आवे, तबतक उसके मनपर आघात पहुँचता रहता है। फिर शनैः-शनैः आहार घट जाता है और रुचि नष्ट होजाती है। किसी-किसी लड़की को मूछ-दाढ़ी के सदृश कुछ बाल आने से पुरुषोंके अवयव सदृश देखाव होनेपर भी मनपर आघात पहुँचता है।

२. आहार संयम (Primary abstinence from food)—दीर्घकाल तक संयम (लंघन) करनेपर भोजनकी इच्छा ही कम होजाती है।

लक्षण—सब प्रकारके आहारोंपर विरक्ति, थोड़ा सा भोजन करनेमें तृप्तिकी भावना होना, देहके वज़नका ह्रास, अति कृशता, मानस-भावनामें विकृति, मलावरोध, गात्रमें नीलता, हाथ-पैर शीतल रहना, नष्टार्त्तव, वेदनाका अभाव, क्वचित् स्वयमेव वान्ति होना, जीवनसत्वकी न्यूनता होनेसे कभी रक्त शर्करा न्यूनाधिक होजाना, चयापचय क्रिया-मंद होजाना, आमाशयिक रसस्राव सामान्य रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। कितनेक रोगी इस तरह संयम द्वारा निर्बल होजाने परभी अपने को स्वस्थ मानते हैं।

रोगविनिर्णय—सरल है। किन्तु शारीरिक अवयवोंमेंसे किसीमें क्षय-कारक रोग (Wasting diseases) हो तो उसे अलग करना चाहिये। इस विकार-का बाह्यरूप पोषणिका-ग्रन्थिके शोष सिमोण्डसके रोग* के समान भासता है।

साध्यासाध्यता—बहुत रोग शमन होजाता है। यदि हृदयावरोध, क्षय या रक्तमें शर्कराकी न्यूनता जनित संन्यास उपस्थित हो, तो मृत्युभी होसकती है।

*पोषणिका ग्रन्थिकी विशीर्णता (Pituitary Cachexia-Simmonds's disease) यह युवा स्त्री-पुरुषोंको होता है। इस विकारमें भोजन करनेकी बिल्कुल रुचि नहीं होती, वान्ति होती है, क्षीणता आती है और कामोत्तेजना नष्ट होती है, स्त्रियोंका बहुधा मासिकधर्म नष्ट होजाता है, तथा शारीरिक उत्तापभी घट जाता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना

वातप्रकोपमें बस्ति, पित्तप्रकोपमें विरेचन, कफजमें वमन और मानसिक-विकारमें मनको प्रसन्न करनेका उपाय करना चाहिये।

यदि कुत्सित पदार्थोंके दर्शन, गंध या स्वादसे अरुचि हुई हो, तो ऐसे रोगियोंको अम्ल, मधुर और कटु (चरपरा) रस के मिश्रण वाला आहार देनेसे रुचिकी उत्पत्ति होजाती है।

साधक-पित्तके अतियोगसे अरुचि हुई हो, तो इमलीका पानक या आमखोरा देनेसे अरुचि शमन हो जाती है; अथवा अनारके रसमें कालीमिर्चका थोड़ा चूर्ण और शहद मिला, गरमकर चटाने या पिलानेसे अरुचि दूर होती है।

यदि कोष्ठस्थ समान वायु और हृदयस्थ प्राणवायु और कण्ठस्थ उदानवायुका अतियोग और पाचक-पित्तका हीनयोग हुआ हो, तो बिजौरेकी केशर, सैंधानमक और शहद मिलाकर देवें; अथवा अनन्नास (Pineapple) या सन्तरेको काली-मिर्च, सैंधानमक और शक्करका चूर्ण लगाकर खिलानेसे अरुचि नष्ट होजाती है।

यदि कफका अतियोग, पित्तका हीनयोग और वायुका मिथ्यायोग होकर अरुचि उत्पन्न हुई हो, तो अदरक, कालीमिर्च, नींबूका रस, ज़ीरा, सैंधानमक और किशमिश मिलाकर चटनी करें। इसको बार-बार जिह्वापर लगाते रहनेसे जिह्वा साफ होती है, लालारसकी उत्पत्ति होती है; और रुचिकी प्राप्ति होती है।

इस तरह कफके अतियोग, पित्तके हीनयोग और वायुके मिथ्यायोग जनित अरुचिमें कालीमिर्चकी चाय भी पिलाई जाती है; अर्थात् कालीमिर्चके चूर्णको जलमें उबालें। फिर सैंधानमक और नींबूका रस मिलाकर निवाया-निवाया पिलाने से रुचि उत्पन्न होजाती है।

शोकातुर मनुष्यकी अरुचिमें मनको प्रसन्न करने वाला वार्त्तालाप, भयभीतको धैर्य्य धारणके उदाहरण और उपदेश, लोभ पीड़ितको वस्तुकी प्राप्ति रूप आशा देना तथा क्रोधातुरको शान्ति, सहनशीलता और वैराग्यकी शिक्षा देकर मूल हेतुको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

वातप्रधान अरुचिमें बचका क्वाथ पिलाकर वमन करावें। फिर पेयआदिका पान करावें। तत्पश्चात् बस्ति और कृष्णादि चूर्ण का सेवन करावें।

पित्तज अरुचिमें मैनफल, मुलहठी और मिश्रीको मिला क्वाथकर वमन करावें। फिर मिश्री और सैंधानमक शहदमें मिलाकर चटावें।

कफज अरुचिपर नीमकी अंतर छालके क्वाथमें शहद मिलाकर वमनार्थ देवें। फिर अमलतासकी फलीके गूदाका क्वाथ, शहद और अजवायनका चूर्ण मिलाकर दें।

त्रिदोषजपर तीनों दोषोंको शान्त करनेवाली चिकित्सा करें।

मानसिक विकृतिसे उत्पन्न आगन्तुक अरुचिमें मनकी प्रसन्नता हो, ऐसे कथा,

वार्तालाप, खेल आदि करें। मानसिक अरुचि में शोक, भय, लोभ या क्रोध जो निमित्त कारण हो, उसे दूर करना चाहिये; अन्यथा लाभ नहीं होता।

जीर्णज्वर, नष्टार्तव, हिस्टीरिया आदि रोगों में अरुचि होनेपर मूलरोग नाशक चिकित्सा करनी चाहिये।

वातनाड़ी विकारज अरुचिमें डाक्टरी मतअनुसार रोगीको बिछौने पर आराम करावें। गृह से दूर रखें। योग्य परिचारिकाकी योजना करें। भोजन इच्छा अनुरूप देवें। प्रारंभमें भोजन थोड़ा देवें और धीरे धीरे बढ़ावें, किन्तु सतत निरीक्षण करते रहना चाहिये। आवश्यकतापर आमाशय नलिका द्वारा भोजन देवें। पोषणक ग्रन्थिका स्राव कम होनेपर थाइरोडियम (Thyrodeum) $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ ग्रेन रोज़ देते रहनेसे क्षुधा प्रदीप्त होनेमें सहायता मिलती है।

(च्यवनप्राश के साथ बङ्ग भस्म देते रहने परभी लाभ पहुँचता है)

अरुचि चिकित्सा।

(१) कृष्णादि चूर्ण—पीपल बायविडङ्ग, जवाखार, सम्हालुके बीज, भारंगी, रास्ना, छोटी इलायचीके दाने, भुनी हींग, सैंधानमक और सोंठ इन १० औषधियोंको समभाग मिला, कूटकर कपड़-छान चूर्ण बनालेवें। फिर ३-३ माशे चूर्ण निवाये जलसे दिनमें २ बार देते रहनेसे वातज और कफज अरुचि दूर होजाती है।

(२) कूठ, काला नमक, सफेद ज़ीरा, शक्कर, कालीमिर्च और बिड़नमकको पीस शहदमें (या तैल और शहदमें) मिलाकर मुँहमें कवल* धारण करानेसे वातज विकृति शमन होजाती है।

(३) आंवला, छोटी इलायची के दाने पद्माख, खस, छोटी पीपल, सफेद चंदन और नीलोफर इन ७ औषधियोंको मिला, चंदन कीतरह पीस शहद या अनारका रस मिलाकर मुंहमें कवल धारण करें। फिर रस निगलते रहे। इस उपचार से त्रिदोषज अरुचि दूर होजाती है।

(४) दालचीनी, दारुहल्दी और अजवायन या दालचीनी, नागरमोथा, छोटी इलायचीके दाने और धनिया इनका कवल धारण करनेसे सब प्रकारकी अरुचि दूर होती है।

(५) पक्की इमली, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने और कालीमिर्च सबको गुड़के जलके साथ मिला कवल धारण करनेसे भोजनमें रुचिकी उत्पत्ति होजाती है।

(६) काला ज़ीरा, सफेद ज़ीरा (भुना हुआ), कालीमिर्च, मुनक्का, अनारदाना, आमचूर, कालानमक, गुड़ और शहद मिलाकर कवल धारण करनेसे सब प्रकारकी अरुचि दूर होती है।

---

*कवलके लिये औषधि १ तोला लें। कुछ समय तक मुंहमें रखकर चबावें। आधी चबानेपर थूक दें और रस उत्पन्न हुआ हो, उसे निगल लें।

(७) अनार रसमें शहद और बिड़नमक मिलाकर कवल धारण करनेसे असाध्य अरुचि दूर होती है।

(८) भोजनके समय अदरकके छोटे-छोटे टुकड़ेकर ऊपर नींबूका रस निचोड़ नमक मिलाकर सेवन करनेसे रुचिकी उत्पत्ति होती है।

(९) नींबूके टुकड़े पर शक्कर (या सैंधानमक) लगा जीभपर रगड़कर भोजन करें तथा भोजनके बीचमें भी ४-६ बार इस रीतिसे जीभ पर रगड़ें, तो अरुचि दूर होजाती है।

वातिक अरुचिनाशक चिकित्सा

(१) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें आई हुई औषधियाँ—शिवाक्षारपाचन चूर्ण, स्वादिष्ट शर्बत, धनंजय वटी, यवानीखाण्डव चूर्ण, क्षुद्बोधक रस, द्राक्षासव और कण्ठसुधारक वटी ये सब औषधियाँ वातिक अरुचिको दूर करनेमें हितावह हैं।

(२) एलादि चूर्ण—छोटी इलायचीके दाने, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, तालीसपत्र, वंशलोचन, मुनक्का, अनारदाने, धनियाँ, जीरा, कालाजीरा ये ११ औषधियाँ २-२ तोले; पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च, अजवायन, आमचूर, (कोकम आमचूर), अम्लबेंत, अजमोद, असगन्ध और कौंच ये १२ औषधियाँ १—१ तोला तथा मिश्री १६ तोला लें। सबको कूट चूर्ण बनाकर ४—४ माशे जलके साथ दिनमें २ समय सेवन करें।

यह चूर्ण रुचिकर, हृद्य, वातपित्तशामक तथा कण्ठ और जिह्वाका विशोधक है। इसके प्रभावसे युवावस्थाकी प्राप्ति और रुचिकी वृद्धि होती है प्लीहा, अर्श, श्वास, शूल और ज्वर दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है तथा बल-वर्णकी प्राप्ति होती है।

(३) इमलीका पानक—बीज निकाली हुई नई पकी इमलीको गुड़ शक्कर या खजूरके साथ जल मिला मिट्टी के बर्त्तनमें भिगो एक घण्टे बाद मसलकर छान लें। फिर दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने और कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर कवल धारण करें, अथवा कुल्ले करें या भोजनके साथ सेवन करें, तो भोजनमें स्वाद आने लगता है। पानाके लिये प्रायः खजूर और गुड़ तीन गुने और शक्कर चार गुनी लेनेका रिवाज है। स्वाद की दृष्टिसे न्यूनाधिक करसकते हैं। और जल १६ गुना या न्यूनाधिक मिला लें।

(४) नींबूका पानक—पके नींबूका रस १ भाग, ६ भाग शक्कर और आवश्यकतानुसार जल मिलालें। फिर निवायाकर लौंग और कालीमिर्चका चूर्ण डालकर सेवन करनेसे वातप्रकोप दूर होता है, अग्नि प्रदीप्त होकर रुचिकी उत्पत्ति होती है; तथा समस्त आहार पाचन होजाता है।

मलशुद्धि अर्थ—मलावरोध रहता हो, तो रसतन्त्रसारमें लिखी हुई औषधियाँ स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण, विरेचन चूर्ण, पंचसकार चूर्ण या अन्य सारक औषधि देना चाहिये।

पैत्तिक अरुचि चिकित्सा

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें कही हुई पित्तप्रधान अरुचि शामक औषधियाँ—शौक्तिक भस्म, सितोपलादि चूर्ण, स्वादिष्ट पाचन चूर्ण, अदरकका शर्बत, नींबूका शर्बत, यवानीखाण्डव चूर्ण, एलादि वटी, कंठसुधारक वटी, गंधकवटी, लवंगादि चूर्ण, आरग्वधादि कल्क और द्राक्षावलेह ये सब पित्त वृद्धिका शमन कर रुचिको उत्पन्न कराती हैं।

श्लैष्मिक अरुचि चिकित्सा

रसतन्त्रसारमें लिखे हुए कफप्रधान अरुचिनाशक प्रयोग—धनंजयवटी, यवानीखाण्डव चूर्ण, स्वादिष्टपाचन चूर्ण, अदरकका शर्बत और आर्द्रकावलेह ये सब औषधियाँ कफवृद्धिसे होने वाली अरुचिमें अति हितकारक हैं।

आंतमें आमवृद्धिके हेतुसे अरुचि होनेपर अग्निकुमाररस, लघुक्रव्याद् रस या रामबाण रसमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन कराना चाहिये।

अन्त्रपुच्छ विद्रधिसे अरुचि होनेपर अग्नितुण्डी वटी दिनमें २ से ३ समय जलके साथ एक मास तक देते रहना चाहिये।

त्रिदोष अरुचि चिकित्सा

(१) रसतन्त्रसारमें लिखी हुई त्रिदोषज अरुचिहर औषधियाँ—यवानीखाण्डव चूर्ण, धनंजय वटी या क्षुद्बोधक रस दिनमें दो समय देते रहें।

(२) कारव्यादि गुटिका—कालाज़ीरा, भुना ज़ीरा, कालीमिर्च, मुनक्का, आमचूर, अनारदाने, काला नमक और गुड़को समभाग मिलाकर शहदके साथ १-१ माशेकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १-१ गोली प्रातः-सायं सेवन करनेसे सब प्रकार की अरुचि दूर होती है।

आगन्तुक अरुचि चिकित्सा

मानसिक विकृति जन्य अरुचि होनेपर—द्राक्षासव या अनार का शर्बत या नींबूका शर्बत पिलावें अथवा धनंजय वटी या कण्ठसुधारक वटी मुँहमें रखकर रस चूसने केलिये देवें। विशेषतः मानसिक चिन्ता, शोक आदिको दूर करने केलिये सान्त्वना देना तथा मनोनुकूल वर्त्ताव करना चाहिये।

उपद्रव रूप अरुचि चिकित्सा

क्षयरोगमें अरुचि होनेपर—रसतन्त्रसार कथित अभ्रक भस्म, एलादि वटी, द्राक्षासव, कर्पूराद्य चूर्ण, च्यवनप्राशावलेह, सुवर्णमालिनी वसंत सितोपलादि चूर्ण या महामृगाङ्क रस देना चाहिये। विशेष चिकित्सा क्षयरोगमें लिखी जायगी।

कामला रोगमें अरुचि होनेपर—ताप्यादि लोह दिनमें २ या ३ बार मूलीके रस और मिश्रीके साथ देवें।

जीर्ण ज्वरके बाद अरुचि होनेपर—रसतन्त्रसार कथित सुवर्णमालिनी-वसन्त, सितोपलादि चूर्ण (अनार शर्बतके साथ), सुदर्शन चूर्ण, अमृतारिष्ट, द्राक्षारिष्ट या अभ्रक भस्म (शहद-पीपलके साथ) दिनमें २ या ३ समय कुछ दिनों तक देते रहना चाहिये।

शुक्रक्षयज अग्निमान्द्य होकर अरुचि होनेपर शुक्रवर्द्धक औषधियाँ वंग भस्म आदि देनी चाहिये।

सूचना—इस रोगमें भोजनके प्रारम्भमें अदरकको नींबूके रस और नमकके साथ मिलाकर खाना लाभदायक है। जिनके मूत्रकी प्रतिक्रिया क्षारीय हो (अम्ल न हो), ऐसे अरुचि वालोंको भोजनके अन्तमें कालीमिर्च, ज़ीरा और नमक मिली हुई तक्र पीना हितकर है किन्तु कफकी वृद्धि हुई हो तो तक्र नहीं देना चाहिये।

पथ्यापथ्य विचार

पथ्य—आस्थापन बस्ति, विरेचन, मृदु शिरो विरेचन, वमन, धूम्रपान, निम्बादि कड़ुवे वृक्षकी दतौन, कवल धारण, कांजीमें नमक मिलाकर कुल्ले करना ज्वर आदि उपद्रव न हों तो तालाब आदि जलाशयोंमें स्नान, चन्दन आदि का लेप, मन प्रसन्न हो ऐसे विविध अन्नपान, आनन्ददायक वर्त्ताव, संगीतश्रवण, खुली वायुमें भ्रमण, पवित्र वस्त्र धारण, आश्वासन, नाना प्रकारके रस, शोरवा, लघु भोजन, जौ, गेहूँ, मूँग, अरहर की दाल, पुराने शालि और सांठी चावल, लहशुन-पोदीनेकी चटनी, ककोड़ा, बेंतके अंकुर, कोमल मूली, परवल, जिमीकंद, सुहिंजनेकी फली, बेंगन, कच्चे केलेका शाक, पक्का केला, सूअर, बकरे, खरगोश और मृग आदि पशुओं का मांस, मछली, मछलो के अण्डे, दूध, घी, दही, मट्ठा, कांजी, पणा, शर्बत, रायते, अचार, पुरानी शराब, नागरबेलका पान, खट्टे और चरपरे पदार्थ, अदरक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, छोटी इलायची, बांसके अंकुर, रसाला (ताज़े मीठे दहीकी शिखरिणी), अनार, कमरख, अंगूर, मुनक्का, संत्रा, मीठा नींबू, मोसम्मी, कागज़ी पक्के नींबू, पक्का कैथ, बेर, खसका जल, नारियलका जल, मिश्री, हरड़, अजवायन, मिर्च, हींग, शीतल मिर्च, कपूर, चिरौंजी, आँवलेका मुरब्बा, आमका मुरब्बा, गुलकन्द और धानका लावा आदि पथ्य हैं।

कलहंस—सुहिंजनेके बीज १८ नग, कालीमिर्च १० नग, छोटी पीपल २० नग, अदरक ४ तोले, गुड़ ४ तोले, कांजी १२८ तोले, आवश्यकतानुसार बिड़-नमक (लगभग ४ तोले) और सुगन्धि केलिये इलायची, दालचीनी, तेजपात और नागकेशर (चारों १-१ तोला) लें। इन सबको मिला मथनीसे मथकर पिलानेसे भोजनमें रुचि उत्पन्न होजाती है।

राग (रायता)--आमचूर, फालसा, मिश्री, सैंधानमक और कालानमक इन सब वस्तुओंको योग्य (स्वादिष्ट हो उतने) परिमाणमें जामुनके रसमें मिलावें

फिर राईको पीसकर मिलानेसे रायता तैयार होजाता है। इसमेंसे थोड़ा-थोड़ा भोजनके साथ लेनेसे भोजन रुचिकर लगता है।

अपथ्य—तृषा, डकार, छिक्का, क्षुधा और नेत्राश्रु आदिके वेगका धारण, मन या हृदयको हानि पहुँचावें ऐसा व्यवहार, इच्छा विरुद्ध भोजन, खून निकलवाना, क्रोध, लोभ, भय, शोक, चिन्ता, दुर्गन्ध, प्रतिकूल दर्शन, श्रवण, देरसे पचन होनेवाला भोजन, ज्यादा भोजन, बार-बार भोजन और आग्रहपूर्वक भोजन ये सब अपथ्य हैं।

२. छर्दि रोग।

वमन—वान्ति-क़ै—वॉमिटिंग—Vomiting.

रोग परिचय—खाया पीया हुआ अन्न-जल मुँहसे निकल जाता है, उसे छर्दि, वमन, क़ै, उल्टी, रद्द और वान्ति कहते हैं।

निदान—अति पतले, अति स्निग्ध, अप्रिय, अति नमकीन, असमयपर भोजन, अत्यन्त भोजन, प्रकृतिसे प्रतिकूल भोजन, अपक्व अन्न रस शेष रहजाना, भोजन करके, तुरन्त परिश्रम करना, भय, उद्वेग, अजीर्ण, कृमि, गर्भ रहनेसे वात धातुमें विकृति होना, बहुत जल्दी-जल्दी भोजन करना, ग्लानि आना, उदरमें जगह न रहनेपर भी खाते रहना, दांतोंमें से पीप निकलकर आमाशयमें जाना, आमाशयमें व्रण होजाना, भोजनमें मक्खी आजाना और क्षय रोग, पित्ताशय शूल, वृक्क शूल आदि कारणोंसे वमन रोगकी प्राप्ति होती है।

पूर्व रूप—उबाक आना (जी मिचलाना), डकारका रुकना, मुँहमें जल आते रहना, मुँहमें नमकीन स्वाद, अरुचि और बेचैनी आदि लक्षण होते हैं।

संप्राप्ति—अति पतले प्रवाही पदार्थ आदिके सेवनसे आमाशयमें रहे हुए वात, पित्त, कफ तीनों पृथक्-पृथक् या मिलकर प्रकुपित होते हैं। फिर प्राणवायु सह ये दोष उछल कण्ठमें स्थित उदानवायुके साथ मिल आमाशयमें रहे हुए अन्न, जल, रस, पित्त और कफ सबको मुँहमें-ला अति संतापपूर्वक तथा अङ्गभेद सह बाहर निकाल देते हैं।

छर्दि प्रकार—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, आगन्तुज और कृमि भेदसे ६ प्रकार हैं।

१—वातज छर्दि लक्षण—हृदय और पसलियोंमें पीड़ा, मुख शोष, शिर और नाभिमें शूल, शुष्क कास, स्वर भेद, तोड़ने समान पीड़ा, बड़ी आवाज़के साथ डकार आना और अत्यन्त कष्टसे झागयुक्त, टूटीसी, मैले काले रंगकी कसैली थोड़ी क़ै होना इत्यादि लक्षण होते हैं।

२—पित्तज छर्दि लक्षण—मूर्च्छा, प्यास, मुख शोष, मस्तक, तालु और नेत्रमें संताप, चक्कर आना, अति पीड़ा होना तथा हरी, पीली, कड़वी, दुर्गन्ध युक्त बहुत गरम, धुएँ और दाह सहित वमन होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

३—**कफज छर्दि लक्षण**—तन्द्रा, मुँहमें मीठापन और चिपचिपापन, मुँहमें कफ आना, भोजन खूब कर लिया है ऐसा भास होना, निद्रा, अरुचि, देहमें भारीपन रोमांच खड़े होना और थोड़ी तकलीफसे गाढ़ी, मीठी कफयुक्त सफेद वमन होना ये लक्षण प्रतीत होते हैं।

४—**त्रिदोषज छर्दि लक्षण**—हृदय और उदरमें शूल, अन्न का परिपाक न होना, अरुचि, दाह, तृषा, श्वास, बेहोशी तथा खारी. खट्टी, नीले रंगकी गाढ़ी, गरम और रक्त मिली हुई वमन होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

५—**आगन्तुज छर्दि**—ग्लानि, गर्भ रहना, अपचन आदिसे आम प्रकोप होना, अहितकर भोजन, विषप्रकोप और उदरमें कृमि होना इन कारणों से होनेवाली वमनको आगन्तुज छर्दि कहा है। भोजनमें मक्षिका आजानेसे वमन होती है, उसका अहितकर भोजनमें समावेश किया गया है।

६—**कृमिज वमनके लक्षण**—उदरशूल, अति हृल्लास (उबाक) तथा अन्य कृमिज हृद् रोगके समान लक्षण प्रतीत होते हैं।

वमनके उपद्रव—कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, तृषा, बेचैनी, हृदय पीड़ा और चक्कर आना आदि उपद्रव प्रकाशित होते हैं।

असाध्य वमनके लक्षण—जब वायु, प्रस्वेद, मल, मूत्र और रसवाहिनियोंके मार्गको निरुद्धकर ऊर्ध्वगामी होती है और पित्त, कफ, प्रस्वेद या अन्य दुष्ट धातु (मलों) को भीतरसे उठाकर मुँहसे बाहर निकालती है, तब रोग असाध्य माना जाता है। वान्तद्रव्यमें मलमूत्रकी-सी दुर्गन्ध, रंगभी प्रायः मलमूत्रआदि जैसा होना, तृषा, श्वास, हिक्का, अति पीड़ा और अति वेगपूर्वक वमन आदि लक्षण होते हैं। वह रोगीको बड़ी जल्दी ही मार देती है।

जो वमन क्षीण मनुष्यको अधिक उपद्रवों सह, रुधिर और पूय मिली हुई तथा मयूरचन्द्रिका समान वर्ण वाली हो, वह भी असाध्य मानी जाती है।

डाक्टरी मतानुसार वमन निदान-लक्षण

डाक्टरी मतमें वमनको महत्वका लक्षण माना है। आमाशयमें रहे हुए पदार्थ मुखसे बाहर निकल जानेको वमन कहते हैं।

आमाशय गत प्राणदा नाड़ी शाखा और नवमीं कण्ठरासनी नाड़ी (Glossopharyngeal nerve) में उत्तेजना आकर जब कण्ठ मार्ग (Fauces) और ग्रसनिकापर असर पहुँचता है, तब आमाशय और उदरकी मांसपेशियोंका बलपूर्वक संकोच होकर प्रतिफलित क्रियाद्वारा आमाशयस्थ द्रव्य मुख द्वारा बाहर निकल जाता है। इनके अतिरिक्त विविध प्रकारके विषप्रकोपसे वमनकेन्द्र, जो सुषुम्णाके भीतर श्वसन केन्द्रसे सम्बन्ध वाला है, वह उत्तेजित होनेपर साक्षात् वमन कराता है।

३. **अवस्थाएँ**-पहली अवस्थामें मुहँ में थूककी वृद्धि होती है, तथा उबाक और शीतल

स्वेद आते हैं। दूसरी अवस्थामें एक या अधिक गहरा श्वास चलकर स्वरयंत्र द्वार बन्द होता है। फिर महाप्राचीरा पेशी और उदरकी दीवारका संकोच होकर आमाशय पर दबाव आता है। तीसरी अवस्थामें आमाशय द्रव्य बाहर निकल जाता है। कभी-कभी पहली अवस्थाका अभाव रहता है एवं बिना विशेष असर पहुँचे ही सरलतासे तुरन्त वमन होजाती है।

आमाशयविकारज वमन—इस प्रकारके हेतु माधवनिदानमें जो कहे हैं, इनके अतिरिक्त कितनेक दाहक पदार्थोंके सेवन होनेपर जिह्वासे आमाशय तक श्लैष्मिक कलामें दाह होने, कितनेक प्रकारके विषभक्षण और व्रण या कर्कस्फोटकी उत्पत्ति होने से भी वमन होने लगती है। कितनेक प्रकारके अपचनमें वमन होजाती है। कचित् अजीर्ण रोगमें वान्ति कष्टसाध्य लक्षण रूपसे उपस्थित होती है।

आमाशय विस्तार होनेपर आहार सड़कर वमन द्वारा बाहर आजाता है। यह वमन किसी दिन होती है, किसी दिन नहीं होती। साथमें दीर्घकालस्थायी अजीर्ण, खट्टी डकार आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोगमें वमन बहुधा प्रातःकाल या रात्रिको होती है। कभी-कभी रक्त-वमन होती है। वान्तपदार्थ लाल-काले रंगका और अत्यन्त अम्ल गुण विशिष्ट होता है। पड़ा रहनेपर ऊपरमें श्लेष्मा आ जाता है और घन पिङ्गल वर्णका पदार्थ नीचे बैठ जाता है।

चिरकारी आमाशयदाह-शोथमें बहुधा वमन प्रातःकाल होती है और केवल कफ निकलता है।

आमाशय व्रण (Ulcer) होनेपर भोजन करनेपर तुरन्त या १-१॥ घण्टा बाद वमन होती है। यदि आमाशयके अधोमुख द्वारके पास व्रण होता है, तो भोजनके २—३ घण्टे पश्चात् वमन होती है, वमन हो जानेपर व्रण दुःख कम होजाता है। इस व्रणजनित वमनमें बार-बार हाइड्रोक्लोरिक एसिड निकलता है।

यदि कर्कस्फोट (Cancer) हुआ हो, तो वमन कम समय होती है। परन्तु वमन होनेपर भी वेदना शमन नहीं होती। वमनमें लेक्टिक एसिड, स्फोटकी त्वचा और रक्त आता है, तथा क्षुधानाश, कृशता, अफारा, सतत वेदना आदि लक्षण भी होते हैं।

अग्निमान्द्य और अपचन (Indigestion) विकारजनित वमन होनेके पहले प्रायः उबाक होती है; परन्तु किसी-किसी समय बिना उबाक वमन होती है। ऐसे रोगियोंको शिरःशूल, बार-बार मूर्च्छा आना, शरीर शीतल, मुखमण्डल और ओष्ठ निस्तेज तथा नाड़ी क्षुद्र और क्षीण आदि लक्षण होते हैं। फिर अधिक लाला-स्राव होकर वमन होनेका प्रयत्न होता है। पश्चात् आमाशयस्थ पदार्थ बाहर निकल जाता है।

कितनेक बच्चे और स्त्रियोंको बिना कष्ट वान्ति होती रहती है। यह वेदना रहित वमन प्रातःकाल या रात्रिको होती है। अत्यन्त शराब पीने वालोंको वमन अपचन होकर प्रातःकाल होती है।

तीव्र अजीर्ण (आमाशयकी श्लैष्मिक कलाका प्रसेक Acute Gastric Catarrh) होनेपर अत्यन्त उबाक आती है। साथमें क्षुधालोप, निःश्वासमें दुर्गन्ध, अतिशय तृषा, आमाशयमें वेदना और मन्दज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। फिर किसी-किसीको वमन होती है। प्रारम्भमें भुक्त द्रव्य जो न पचा हो वह निकलता है। फिर चिपचिपा कफ, कडुवा और खट्टा पदार्थ तथा अन्तमें पित्त युक्त तीक्ष्ण द्रवमय वमन होती है। उष्ण डकार, आमाशयमें भारीपन, आमाशयपर दबानेसे पीड़ा होना, बद्धकोष्ठ, आध्मान, छातीमें दाह आदि उत्पन्न होते हैं। यदि अन्त्रप्रदाह है, तो बद्धकोष्ठके बदले अतिसार होजाता है।

पूयमय आमाशय प्रदाह (Suppurative Gastritis) होनेपर अत्यन्त उबाक और वमन उपस्थित होती है। साथ-साथ शीत लगना, कम्प, बीच-बीचमें अनियमित शीत लगकर काँटे आना, ज्वर, अत्यन्त प्यास, शिरदर्द, क्षुधानाश, मूत्रमें न्यूनता उदरमें पीड़ा आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। वान्तपदार्थकी परीक्षा करनेपर कफ, आमाशयरस या पित्त और पूयकी प्राप्ति होती है।

वातवहा नाड़ी प्रकोपज वमन—इस प्रकारमें २ विभाग हैं। सहस्रार चक्र और सुषुम्णा काण्डमें रही हुई वातवहा नाड़ियोंकी उत्तेजना (सेरिब्रोस्पाइनल इरीटेशन—Cerebrospinal Irritation) और उदरस्थ इडा पिङ्गलाके नाड़ी संस्थान उत्तेजना (सिम्पेथेटिक इरीटेशन—Sympathetic Irritation), इन दोनों प्रकारमें वान्ति होती रहती है।

मस्तिष्कगत वातकेन्द्र विकृति जन्य वमन—(१) हिस्टीरियामें क्वचित् दूध देनेपर वमन होजाती है और कठोर भोजनसे नहीं होती, ऐसा विरुद्ध परिणाम भी प्रतीत होता है। +

(२) अर्धावभेदक (मिग्रेन-Migraine) से पित्तप्रकोप होकर खट्टी वमन होजाती है।

+ किसी-किसी रोगीको कभी-कभी आमाशयमें पीड़ा या अपचन आदि कोई भी लक्षण वर्तमान न होनेपर भी प्रतिदिन स्वभाविक अत्यन्त वमन होजाती है। ऐसे रोगियोंके जीवनका संदेह होजाता है। ऐसी वमन बहुधा युवा स्त्रियोंपर आक्रमण करती है। बहुधा यह वमन हिस्टीरिया की प्राप्ति होनेपर होती है। इस वमनके साथ मासिकधर्मका सम्बन्ध रहता है। कभी-कभी भोजन करनेके पहले यह प्रकाशित होजाती है। इस वमन विकारमें आश्चर्य यह है कि, दीर्घकाल पर्यन्त प्रतिदिन वमन होती रहती है, तथापि रोगिणी अधिक कृश नहीं भासती। इस परसे विदित होता है कि, वान्ति होजानेपर भी भुक्त पदार्थ यथेष्ट परिमाणमें आमाशयके भीतर रह जाता है।

(३) मस्तिष्कस्थ अर्बुद, मस्तिष्कगत विद्रधि, मस्तिष्क प्रदाह, प्रबल आघात (Concussion), कर्णेन्द्रिय विकारजन्य शिरःशूल (Meniere's Disease), शीर्षावरण प्रदाह (Meningitis), काली खांसी या अन्य प्रबल कास जनित श्वासोच्छ्‌वास केन्द्रमें अत्यन्त उत्तेजना, संन्यास, विकृत ज्वर आदि कारणोंसे वमन उपस्थित होजाती है। इस वमनका भोजनसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उबाक नहीं आती। केवल ज़रा-सा चलने उठनेपर वमन होजाती है। इस प्रकारकी वमनके साथ चक्कर आना आदि मस्तिष्क विकारके लक्षण प्रतीत होते हैं।

(४) शकुन्तगति रोग (कलायखञ्ज Locomotor Ataxia) में तीव्र उदर शूल होनेपर वमन होजाती है।

(५) अनेक मनुष्योंको हिंडोलेपर झूलना, जहाज़, रेल, मोटर आदिसे प्रवास करना, लम्बी सीधी सीढ़ी या पर्वत पर चढ़ना, चक्कर खाना इत्यादि कारणोंसे सुषुम्णास्थ वमन केन्द्रमें उत्तेजना होकर वमन होजाती है।

(६) अप्रिय दुर्गन्ध, दर्शन या विचार आकर मनपर घृणाजनक असर होनेपर उबाक आकर वान्ति होजाती है।

इड़ापिंगला नाड़ियोंकी उत्तेजनाजन्य वमन—उरोगुहा और उदरगुहामें स्थिति वातनाड़ियोंकी उत्तेजनासे उत्पन्न अनेक रोगोंमें वमन होती है। उदर्याकलाका प्रदाह, अग्न्याशयका प्रदाह, उदरशूल, वृक्कशूल, पित्ताशयशूल, आमाशयगत वायुकी ऊर्ध्वगति, उदरकृमि, बालकोंकी काली खांसी, बालकोंके दांत आना, अलसक, अन्त्रावरोध, अन्त्रान्त्रप्रवेश, अन्त्रवृद्धि, उदरमें अर्बुद या गुल्म, तीव्र ज्वर, गर्भावस्था और गर्भाशय या स्त्रीबीजोंमें विकृति इत्यादि कारणोंसे उबाक होकर क़ै हो जाती है। इनके अतिरिक्त उदरपर शस्त्रक्रिया करनेके पश्चात् टाँके लगाने, वृषणपर चोट लगना, वृषणपर तमाखू आदिका पान बांधना, वमनकारक औषध या शराबका सेवन अथवा धूम्रपानसे वातवहानाड़ियोंमें उत्तेजना आकर वमन होजाती है।

उन्माद, हिस्टीरिया, वातशूल आदि रोगोंमें आमाशयगत वातवहा नाड़ियोंकी क्रिया विकृति (Neurosis) होनेपर उदरमें गुड़गुड़ाहट होकर बिना उबाक वमन होजाती है। यह विकृति स्त्रियोंको अधिक होती है।

अनेक स्थलोंमें राजयक्ष्मा रोगके प्रारम्भमें अन्य लक्षणोंके उत्पन्न होनेके पहले वमन उपस्थित होती है। स्वभावगत वान्ति आमाशयिक वातवहा नाड़ियोंके विकार जनित मान लेनेके पहले फुफ्फुसमें राजयक्ष्माके कीटाणुओंकी कोई ग्रन्थि उत्पन्न हुई है या नहीं? एवं अन्य कोई चिह्न वर्त्तमान है या नहीं? इस बातके निर्णयार्थ विशेष परीक्षा करनी चाहिये तथा रोगीको पूर्व इतिहास अवश्य पूछना चाहिये।

अनेक स्त्रियोंको गर्भावस्थामें कितनेक सप्ताह तक नियमपूर्वक वमन होती है, यह इसका प्रधान लक्षण माना जाता है। साथ-साथ बद्धकोष्ठ भी होता है। यदि

उबाक और वमन सामान्य अवस्थामें हो, तो चिकित्साकी आवश्यकता नहीं है। यदि चिरकारी वमनके साथ अतिसार भी वर्त्तमान हो, तो वृक्कविकार (Bright's disease) होनेका संदेह होता है।

विविध विषज (Toxic) मल्ल, एण्टिमनी (सुरमा), तमाखू, नमक, बच, जमालगोटा आदि द्वारा वमन या वमन और अतिसार उपस्थित होते हैं।

अंतर्विषज (Tomaemic) वमन—रक्तमें मूत्रविषका प्रवेश, चिरकारी वृक्कप्रदाह, अपचन आदिसे अन्त्रमें विषोत्पत्ति, क्षय, कामला, यकृतका आशुकारी शोष, घातक पाण्डु रोग, अम्लपित्त, संक्रामक ज्वरमें विषवृद्धि, बेशुद्धि लानेवाली औषधि बहुमूत्र आदि रोगोंमें क्षारको अधिक परिमाणमें निकालना (Acidosis) या रक्तमें क्षारवृद्धि इन कारणोंसे अंतर्विषकी वृद्धि होकर वमन होजाती है।

दोनों मूत्रपिण्डोंके ऊपरके सिरेपर स्थित—अधिवृक्कके कोष (Suprarenal Capsule) की यक्ष्मा कीटाणुजनित व्याधि (एडिसन्स डिज़ीज़-Addison's Disease) होनेपर बहुधा वमन मुख्य लक्षण रूपसे प्रकाशित होती है।

इसके अतिरिक्त शिरःशूल भी वान्तिका एक कारण है। मस्तिष्कमें विद्रधि होनेपर किसी-किसी स्थानपर केवल दुर्दमन वमन ही उपस्थित होती है। महत्त्वके अन्य लक्षण नहीं जाने जाते। इन सब स्थानोंमें प्रारम्भमें बेचैनी या उबाक नहीं होती। मस्तिष्कको थोड़ा-सा फिरानेपर या थोड़ा-सा उठनेपर अकस्मात् वमन होजाती है। रोगी लेटा रहनेपर वमन कम और बैठा या खड़ा होनेपर अधिक होती है।

वान्तिकर औषधियोंके सेवनसे वमन होने लगती है। इसमें दो प्रकार हैं। स्थानिक और सार्वाङ्गिक, इनका विस्तारपूर्वक विवेचन वैज्ञानिक विचारणामें किया है।

परिवर्त्तित वमन—(Cyclical Vomiting) यह बालकोंका वमन रोग है। इसके प्रकोपसे श्वासमें मधुर वास आती है। यह प्रकार अन्तर्विषजनित होगा, ऐसी कितनेक पाश्चात्य विद्यावालोंकी समझ है। इसका वर्णन अलग किया है।

रक्त वमन—अनेक हेतुओंसे थूकके साथ रक्त आता है, वमनमें कुछ रक्त जाता है; और कभी-कभी केवल रक्तकी वान्ति होती है, इसका विचार माधवनिदानकार ने रक्तपित्तमें किया है। अतः हमने भी इसका विवेचन रक्तपित्त व्याधिमें किया है।

स्वस्थ शिशुओंको क्वचित् दूध विशेष मात्रामें या शीघ्रातिशीघ्र चूसनेपर वमन होजाती है। जब चूसते समय दूधके साथ वायु नीचे चली जाती है, और पुनः डकार रूपमें बाहर आती है, तब वायुके साथ कुछ दूध निकल जाता है। इसकेलिये चिकित्साकी आवश्यकता नहीं है। यदि दूध दूषित होनेसे वमन होती है, तो तुरन्त सम्हालना चाहिये।

किसी हेतुसे अन्ननलिकाकी मांसपेशियाँ शिथिल होजानेपर भोजन निगलने

में त्रास होता है। फिर अनेक बार भोजन करते-करते बाहर आ जाता है। इस तरह अन्ननलिकाके ऊपर ग्रन्थि आदिसे दबाव आता है, तो भी भोजनकी गतिमें अवरोध होनेसे वह बाहर आ जाता है।

क्वचित् गलेमें मांसकी एक छोटी-सी थैली बन जाती है। फिर भोजन करते समय थोड़ा-थोड़ा भोजन उसमें एकत्रित होता रहता है। जब वह बहुत भर जाती है, तब क्षोभ उत्पन्न होकर भोजन बाहर आ जाता है और वह थैली रिक्त होजाती है। कुछ दिनोंके अनन्तर यह थैली पुनः भर जाती है। तब फिर क्षोभ होकर खाली होजाती है। इस तरह मांसवृतिके हेतुसे वमन होनेपर वान्तद्रव्यमें अम्ल रसका सर्वथा अभाव रहता है (जो नीले लिटमिस पेपरको डुबोनेसे सहज निर्णय होजाता है)।

विशेष स्वभाव

१. अकस्मात् आक्रमण—इनमें मुख्य प्रकार—१. उदरके आशुकारी रोग, उपान्त्र प्रदाह, पित्ताशय शूल, वृक्कशूल आदि, २. आशुकारी विशेषज्वर, ३. विशेष प्रकारके उग्र विष आदि हैं।

२ बालकोंकी वान्तिके हेतु—तीक्ष्ण आशुकारी विशेषज्वर, आशुकारी आमाशयप्रदाह या आमाशय-अन्त्रप्रदाह, उदरके आशुकारी रोग, रक्तको अम्लताकी प्राप्ति (Acidosis) या परिवर्त्तित वमन आदि।

३. वमनकाल अनुसार हेतु—

अ. प्रातःकाल-१. शराब, २. गर्भधारण तथा ३. वृक्क व्याधि में।

आ. भोजनके बाद—अपचन, आमाशय विद्रधि, पचन होनेमें वेदना तथा वात-नाड़ी क्रिया विकृति (जलपान या भोजन निगलनेपर तुरंत)

इ. आहार सम्बन्ध रहित—आमाशय प्रसारण, मस्तिष्क-गत व्याधि, आमाशयका आकस्मिक शक्तिपात।

४. हल्लास रहित—मस्तिष्क-गत विकृति, आमाशयका शक्तिपात और वातनाड़ी क्रिया विकृति।

५. रक्त-गत हेतु—आमाशय विद्रधि, कर्कस्फोट आदिका विष।

६. मलसे सम्बन्धयुक्त—अन्त्रावरोध (पहले आहार द्रव्य फिर पित्तकी वमन, अन्तमें मलका पतला द्रव बनकर निकलते रहना) इस प्रकारमें अत्यधिक वमन होती है और मलयुक्त होती है। उदर्य्याकला प्रदाह हो, तो वमन कम होती है और मलका कोई चिह्न नहीं मिलता।

पुनरावर्त्तक वमन

साइक्लिकल वॉमिटिंग, पिरियडिक वॉमिटिंग
(Cyclical vomiting-Periodic vomiting)

यह बालकोंकी व्याधि है। यह बार-बार होती रहती है। इसके साथ सामान्यतः

शिरदर्द होता है तथा वार निःसरण क्रिया बढ़जाती है । इसका आक्रमण सामान्यतः इसे १० वर्षकी आयुमें होता है। अनेक बार दुग्धसेवी शिशुओंको भी होता है । इस वमनका समय ३-४ सप्ताह तक है। बीचमें कुछ दिन तक शमन होजाती है । क्वचित् चालू रह जाती है और कभी दीर्घकाल ले लेती है । इसका आक्रमण अकस्मात् होता है ।

पूर्वरूप—एक दिन पहलेसे सामान्यतः शिरदर्द, व्याकुलता और उग्रता लक्षण उपस्थित होते हैं ।

चयकाल—१ से ४ या ६ दिन ।

वमन—प्रबल और बार-बार होती है। सामान्यतः उबाक नहीं होती । एवं आमाशयमें निर्दिष्ट लक्षण या वेदना भी नहीं होती। पहले भोजन द्रव्य और फिर यकृत् पित्त (Bile) निकलता है ।

शिरदर्द—प्रायः गम्भीर होता है । विशेषतः वमनके पूर्ववर्त्ती होता है। सामान्यतः कपालमें और दोनों कनपटीके ऊपर। कभी अभाव ।

चयापचय—पेशाबमें एसिटोन और एसिटो-एसेटिक-एसिड (Aceto-acetic acid) प्रतीत होते हैं । रक्तमें शक्करकी न्यूनता (Hypoglycaemia) होती है ।

लक्षण—आक्रमण-कालमें दुष्ट मलावरोध, जिह्वा मलमय, श्वासोच्छ्वास भारी, श्वासोच्छ्वासमें कष्ट, मंदज्वर, तृषावृद्धि, आहार और कभी जलपान भी न होना, मलनिस्तेज बनना, श्वासमें एसिटोनके हेतुसे वास आना, निस्तेजता, हाथ-पैरकी नाड़ियें खिंचना, गलेपर गांठे होजाना, मस्तिष्कमें उग्रता और तन्द्रा आना आदि ।

आक्रमणके बीचमें रोग उपशम युक्त समयमें स्वास्थ्य प्रायः सत्वर सुधर जाता है, किन्तु आक्रमण पुनः-पुनः होता है। जिससे रोगी निस्तेज, कृश और अग्नि-मान्द्य होजाता है ।

रोगवृद्धि और उपद्रव—आक्रमण सामान्यतः शमन होजाता है या युवावस्थामें बन्द होजाता है । फिर कभी वृद्धावस्थामें कम गम्भीर रूपमें उपस्थित होता है। इसके पश्चात् अर्धावभेदक होता है या बहुधा अर्धावभेदकका आक्रमण होता रहता है । कभी यह गंभीररूप धारण करता है ।

संप्राप्ति—संदेहात्मक । यह रोग अर्धावभेदक रूपसे वंशागत होसकता है, जिन बालकोंको कब्ज़ रहता है और जो कम स्फूर्तिशील हों, उनको प्रायः यह होजाता है; किन्तु यह नियम दृढ नहीं है । इसका आक्रमण होनेके पहले उग्रता उपस्थित होती है। संभवतः वसाके चयापचयमें विकृति, क्षार अधिक नष्ट होना और फिर रक्तमें शर्करा कम होजाना, ये लक्षण उपस्थित होते हैं । प्रथित

(Protein) और चेतनाधिक्यके साथ इस रोगका स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है, किञ्चित् अंशमें होना चाहिये ।

रोगविनिर्णय—पहले आक्रमणमें अन्य प्रकारकी वमनसे भेद करना दुष्कर है । एवं पुनः आक्रमण भी चिरकारी ग्रहणी प्रसारणमें प्रतीत होता है, इस हेतुसे इसके निर्णयमें भी कठिनता होती है ।

चिकित्सोपयोगी सूचना

वमनकी चिकित्सा करनेके पहले मूल कारणको जानकर दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये । रोगीको पूर्ण आराम देवें । सिगरेट, गांजा आदिका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये । जब अफीमका व्यसन अति बढ़ जाता है, तब आमाशय रस-स्राव बहुत कम होता है और भोजनकर लेनेपर तुरन्त वमन होजाती है । उस वमनको दूर करने केलिये अफीमका व्यसन छुड़ा देना चाहिये ।

यदि वमन अजीर्णसे या दूषित आहार आमाशयमें रहनेसे होती हो, तो उसे नहीं रोकनी चाहिये । ऐसी वमन होनेमें ही रोगीका हित होता है । वमनको बन्द करनेमें नाना प्रकारके उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

तीव्रप्रकोप कालमें लङ्घन करावें और थोड़ा-थोड़ा शीतल जल पिलाते रहें, या इलायची, सौंफ और पोदीनेका अर्क या अजवायनका अर्क मिलाकर जल पिलाते रहें । अथवा अजीर्ण न हो, तो जलमें शर्बत मिला देवें । अधिक आवश्यकता होनेपर रोगी थोड़ा दूध (गरम करके शीतल किया हुआ) एक-एक घूँट (Sip) ले लेकर शान्तिसे पीवें ।

तीव्रप्रकोप दीर्घकाल व्यतीत होजाने परभी शमन न होता हो, तो आमाशयपर राईका प्लास्टर लगाना चाहिये ।

छर्दिकी चिकित्सा करनेके पहले वातज छर्दिको छोड़कर अन्य प्रकारकी छर्दिमें प्रथम लङ्घन कराना चाहिये । अथवा कफज छर्दिमें वमन और पित्तजमें विरेचन देकर कोष्ठका संशोधन करना चाहिये । कभी-कभी वमन रोगमें वमन कराने वाली औषधि देनी पड़ती है । इसे व्याधि विपरीत अर्थकारी कहा है ।

यदि वातज छर्दिमें विरेचन औषधि देनी हो, तो एरंड तैल मिलाये नमकीन जलके साथ देना चाहिये ।

जो बहुत दोष वाली वमन अति बलपूर्वक हो रही हो, तो उसे रोकना नहीं चाहिये । वमन करा देना ही हितावह है । फिर औषधिसे क्षोभको शमन करना चाहिये । ज्वरघ्नकषाय (वातज छर्दिमें वातघ्न, पित्तज छर्दिमें पित्तघ्न और कफजमें कफघ्न) का भी क्षोभ नाशार्थ उपयोग होसकता है ।

छर्दिरोग जीर्ण होनेपर वातघ्न चिकित्सा करें, और पौष्टिक लघु भोजन देवें ।

पित्तज छर्दिमें मुनक्का, विदारीकन्द और ईखके रसके साथ निशोथका चूर्ण

या गुलकन्द देवें । यदि पित्त बहुत बढ़ा हो, तो मधुर-द्रव्य मुलहठी आदि मिलाकर वमन करावें ।

कफात्मक वमनमें कफ और आमाशयकी शुद्धि अर्थ वमन कराने केलिये पीपल, सरसों और नीमकी अन्तरछालका क्वाथ, मैनफल और सैंधानमक मिलाकर पिलावें ।

ग्लानिसे उत्पन्न वमनमें हृदयके प्रिय पदार्थोंसे चिकित्सा करनी चाहिये ।

सगर्भाके वमनको सन्तरा, मीठा नींबू आदि फलोंके सेवनसे शमन करनी चाहिये । भोजन लघु और अतिकम मात्रामें दिनमें ३-४ बार देना चाहिये । उत्तेजक पदार्थ बिल्कुल नहीं देना चाहिये ।

असात्म्य भोजन जनित वमनको लंघन, वमन और सात्म्य (पथ्य) भोजनसे और कृमि दोषज छर्दिको कृमिनाशक औषधियोंसे दूर करनी चाहिये ।

किसी विषाक्त वस्तुके प्रयुक्त होनेपर वमन होती हो, तो उसकी प्रतिशोधक औषधि देकर वमनका निवारण करना चाहिये ।

मस्तिष्क-गत वातवहानाड़ियोंकी विकृतिजन्य व्याधियाँ, कण्ठनलीमें अर्बुद, अन्ननलिकाके मांसपेशियोंकी शिथिलता, क्षय, शूल, गलेमें मांसकी थैली बन जाना, तालुविकार और आमाशयगत कर्कस्फोट, इन व्याधियोंमें पाचक, रुचिकर, या वान्तिशामक औषधिके प्रयोगसे लाभ नहीं होता; मूल व्याधियोंकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

अन्ननलिकाकी मांसपेशियाँ विस्तृत होकर मार्ग रोक देती हैं, तब कण्ठमें बार-बार नाड़ीयन्त्र (बूजी Bougie) चला लेना चाहिये । एवं दोनों समय भोजनके पहले या आवश्यकतापर आमाशय नलिका (Stomach tube) का प्रयोगकर आमाशयको धो लेना चाहिये । इस नलिकाकी उपयोगविधि अजीर्ण-चिकित्सामें पहले कही है । यह प्रयोग सर्वथा सरल होनेसे प्रत्येक मनुष्य सहजमें कर सकता है ।

अन्ननलिकामें मांसथैली बन जानेपर शल्यकर्म द्वारा निकलवा देना चाहिये । जब शल्य क्रियासे हानिका भय हो, तब भोजनके अंतमें, तथा रात्रिके समय मांसथैलीको रबरकी नली, या अन्य साधन द्वारा शुद्ध जलसे धोकर रिक्तकर देना चाहिये; जिससे वहाँ अन्न रुककर सड़ने न पाये ।

किसी-किसीको समुद्र-यात्रा-जनित वमन अतिशय कष्टदायक होती है, जिसका सरलतासे निवारण नहीं होता । यदि वेदना सहन होसके तो, बिना औषध चिकित्सा आरोग्यकी प्राप्ति होजाती है । परन्तु जब त्रास अधिक पहुँचता है तथा उबाक, अति बेचैनी, बार-बार दुःखपूर्वक वमन, शिरमें भारीपन, चक्कर आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तब सन्तरा, अंगूर, अनन्नास, नींबूका शर्बत

आदि देना चाहिये। किसी-किसीको अफीम-क्षार मिश्रित औषधि विशेष लाभ पहुँचाती है। इस तरह कामदूधारस, वान्तिहृद्रस, सूतशेखर आदि हितावह होती हैं।

शराबीको अपचन होकर वमन हो, तो कुचिला प्रधान औषधि लाभदायक होती है।

यदि मलमिश्रित वमन होती है, तो अफीम, या कुचिला वाली औषधि नहीं देनी चाहिये। आरोग्यवर्द्धिनी हितकारक होती है। एवं शराबसे आमाशयमें विकृति होकर प्रतिदिन वमन होती रहती हो, तो सुवर्णमाक्षिकभस्म या राजावर्त्त-भस्मका सेवन कराना हितावह है।

राजयक्ष्माकी वमनके सम्बन्धमें राजयक्ष्माकी चिकित्सामें आगे विस्तारपूर्वक लिखा जायगा।

जब मस्तिष्ककी वातवहानाडियोंकी विकृति-जनित वमन होती हो तथा बिना उबाक अकस्मात् अधिक वान्ति होती हो, तब जातिफलादि वटी (अपचन), या अफीमके क्षार मिश्रित औषधि सत्वर लाभ पहुँचाती है।

यदि वमनके साथ बद्धकोष्ट हो, तो बस्तिद्वारा कोष्ठ शुद्धि कर लेनी चाहिये। कोष्ठ शुद्ध होनेपर अनेकोंकी वमन सरलतापूर्वक शमन होजाती है।

किसी-किसी समय वमन इतना भयंकररूप धारण कर लेती है कि, किसी औषधिसे शमन नहीं होती। शीतल जल, बर्फ, चावलका माण्ड आदिसे लाभ पहुँच जाता है। औषधिका अधिक उपयोग हो जानेसे आमाशयमें ऐसी उत्तेजना आ जाती है कि, कोई भी औषधि लेनेके साथ क़ै होजाती है।

आमाशयकी वातवाहिनियोंकी उग्रताका निग्रह करानेकेलिये अफीम सत्वर लाभ पहुँचाती है। एवं अफीमसे अनेक प्रकारकी वमनका निवारण होजाता है। इस तरह कितनेक समय मल्लप्रधान औषध, मल्लभस्म, सितोपलादि मल्लमिश्रण, मल्लादि-वटी आदि कमपरिमाणमें देनेपर आश्चर्यकारक लाभ पहुँच जानेके उदाहरण मिले हैं।

सूचना—अफीमके व्यसनीको अफीमसे लाभ नहीं मिल सकेगा।

जब भोजन लेनेपर तत्काल वमन होजाती है, आहार द्रव्य आमाशयमें नहीं रह सकता, तब बस्तिद्वारा दूध या सिद्ध घृत चढ़ाया जाता है। यह बस्ति बार-बार थोड़े-थोड़े दुग्ध आदिकी देनी चाहिये। परन्तु अन्त्र और गुदनलिकामें संचित मलको पहले उष्ण जल, एरंड तैल, या ग्लिसरीनकी पिचकारी देकर निकाल देना चाहिये। अन्यथा उचित लाभ नहीं पहुँचता।

वान्त पदार्थमें भुक्त भोजन दूषित होकर निकल रहा हो, तब उसे रोकना नहीं चाहिये। फिर दोष निकल जानेपर रसतन्त्रसारमें लिखी हुई जातिफलादि वटी, विसूचिकाहर वटी, कर्पूर अर्क, जीवनरसायन अर्क, संजीवनी वटी, शिवाक्षार पाचन

चूर्ण, स्वादिष्ठ पाचन वटी, धनञ्जय वटी आदि औषधियोंमें से प्रकृति अनुरूप औषधि देनेसे सत्वर लाभ पहुँच जाता है।

जब वान्त पदार्थमें रक्त हो, तब वासास्वरस, वासावलेह, कुटजावलेह, कामदूधा रस आदि औषधियाँ देनी चाहियें। यदि आमाशय क्षत या आमाशयिक कर्कस्फोट-जनित रक्त वमन हो, तो मूल रोगकी शामक चिकित्सा करनी चाहिये।

यदि उदरकृमिके हेतुसे वान्ति होती हो, तो कृमि-नाशक चिकित्सा—मुस्तादि क्वाथ, कृमिघ्न चूर्ण, कृमिकुठार रस आदि देना चाहिये। एवं एरण्ड तैल आदिका विरेचन देना चाहिये।

बालकोंको दांत आनेके समय वमन होती हो, तो पिप्पल्यादि चूर्ण, प्रवाल पिष्टी या दन्तोद्भेदगदान्तक रस देना चाहिये। काली खांसी जनित वमनमें प्रवालपिष्टी और कामदूधा रस दिया जाता है।

इनके अतिरिक्त वमननिवारक (Anti Emetics) का विवेचन औषध गुण-धर्म विवेचनमें देखें।

पुनरावर्त्तक वान्ति—आक्रमणकालमें चिकित्सातत्त्व प्रदीप प्रथम-खण्ड पृष्ठ ६०५ फक्क रोग (Coeliac disease) में लिखे अनुसार चिकित्सा करें। एवं रक्तमें शर्करा बढ़ानेका प्रयत्न करें। वसा नष्ट होती है, इस हेतुसे विशेषतः दूध देते रहना चाहिये, किन्तु मलाई नहीं, मक्खन कम देना चाहिये। बीचके कालमें लघु आहार देते रहें। शक्कर कम होजाती है। इस हेतुसे भोजनकर लेनेपर २–३ चम्मच शक्करको जलमें मिलाकर पिला देवें। रक्तमें क्षार कम होजाता है, इसलिये सोडा बाई-कार्ब १० से ३० ग्रेन दिनमें ३ बार देते रहना चाहिये। मलावरोध न रहे, नियमित शौच शुद्धि होती रहे, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। कभी-कभी यह उपचार कितनेक वर्षों तक करना पड़ता है। आक्रमणको रोकने केलिये कोई विशेष उपाय नहीं है।

आक्रमणकालमें अंधकार वाले कमरेमें अकेला रक्खें। डाक्टरीमें आक्रमण नाशक कोई चिकित्सा नहीं है। आयुर्वेदके मतानुसार कामदूधा उत्तम औषधि है। बस्ति देकर उदर शुद्धि करें। आवश्यकतापर कौड़ी प्रदेशपर राईका लेप करें। आक्रमणके समय अन्न न दें; किन्तु शर्बत मिला हुआ शीतल जल थोड़ा-थोड़ा देते रहें। या बर्फ चूसने केलिये देवें। अतिनिर्बलता आ जाय तो बस्तिद्वारा ग्लूकोज़ मिला हुआ नमक जल चढ़ावें। अन्यथा रक्तमें द्रवकी न्यूनता होकर परिणाम आपत्तिकर आवेगा। वृक्क द्रोणीका प्रदाह (Pyelitis) होनेसे रक्तमें कृत्रिम एसिटोन आदि विष बढ़ गया हो, तो उसका सत्वर उपचार करना चाहिये। स्वेद और मूत्र द्वारा विषको बाहर निकालना चाहिये। शिलाजीत, प्रवालपिष्टी, उसीरासव, सौंफका अर्क अथवा लोहबान पुष्पमेंसे जो अनुकूल रहे उसका सेवन कराना चाहिये।

२४ से ४८ घण्टेमें आक्रमण शान्त होजानेपर कर्बोदक (Carbohydrate) प्रधान भोजन देना चाहिये।

रात्रिको जल्दी सोना और सुबह जल्दी उठना, गरम-गरम और उत्तेजक पदार्थोंका परित्याग, नासामार्गमें कफ रहता हो, तो गोघृत या षड्बिन्दु तैलका नस्य करना, पचन-शक्ति अनुसार धारोष्ण गो दुग्धका सेवन तथा भोजनमें मक्खन, घी, दूध, शक्करका पचन हो उतना सेवन, ये सब भावी आक्रमणके विरोधमें सहायक हैं। कामदुधा, सितोपलादि, चन्द्रामृत रस ये सब अति हितकर औषधियाँ हैं।

वातज छर्दि चिकित्सा

(१) घी २—४ तोले गरमकर थोड़ा सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे वातज वमन दूर होती है।

(२) दूध और जल मिला उबाल शीतलकर पिलानेसे वातज वमन रुक जाती है।

(३) मुर्गेका मांस रस, घी और सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे वमन दूर होजाती है।

(४) दही और अनारदाना मिलाकर भोजनके साथ देनेसे वातज वमन शमन होती है।

(५) छुहारेकी गुठलीको जलमें घिस मिश्री मिलाकर पिलानेसे वान्ति निवृत्त होती है।

(६) इन्द्रजौ, भुनी हींग, अतीस, बच, कालानमक और हरड़को मिला चूर्णकर १॥-१॥ माशा चूर्ण निवाये जलके साथ देनेसे वमन, हृद्रोग और उदरशूल दूर होते हैं।

(७) जीवन-रसायन अर्क, या वान्ति हृद्रस देनेसे वातज छर्दिकी निवृत्ति होजाती है।

(८) गरम दूधमें थोड़ा दही डाल दूधको फाड़-छानकर जल पिलानेसे वातज वमन दूर होती है।

(९) पीपल (अश्वत्थ) की राख शहदमें चटानेसे वातज छर्दि निवृत्त होती है।

(१०) मूंगका यूष, आंवलेका चूर्ण, घी और सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे वातज वमनका निवारण होता है।

(११) हरड़ ३ माशेको शहदके साथ चटानेसे वमन रुक जाती है।

(१२) छर्दिरिपु वटी जलके साथ १-१ गोली ४-६ समय आध-आध घण्टेपर देनेसे वमन बन्द होजाती है।

पित्तज छर्दि चिकित्सा

(१) सफेद चन्दनका चूर्ण ४ माशे, आँवलोंका रस २ तोले और शहद

१ माशे मिलाकर पिलानेसे, या पित्तपापड़ेका क्वाथ शहद मिलाकर पिलानेसे पित्तज वमन शमन होजाती है।

(२) पित्तज वमनमें मुनक्का, विदारीकन्द और ईखके रसके साथ १ से २ माशे निसोतका चूर्ण देनेसे अनुलोमन क्रिया होकर वमन शमन होजाती है।

(३) हरड़का चूर्ण शहदके साथ चटानेसे वमन दूर होजाती है।

(४) त्रिफला, नीमकी छाल, गिलोय और पटोलपत्रका क्वाथ (शहद और मिश्री मिलाकर) पिलानेसे पित्तज वमन दूर होती है।

(५) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—वान्तिहृत रस, कर्पूरासव, छर्दिरिपु वटी, सूतशेखर रस, लघुसूतशेखर, प्रवालपिष्टी, (गिलोय सत्व और अनार शर्बतके साथ) वराटिका भस्म, ज़हर-मोहरा भस्म, तृष्णाग्नि गुटिका, कुमुदेश्वर रस, तृषासह वमन हो, तो सुवर्णमाक्षिक भस्म ये सब औषधियाँ वमन शमन करानेमें अतिहितकारक हैं। इनमेंसे अनुकूल औषधिका उपयोग करना चाहिये।

(६) पित्तकी तीव्रता होवे, तो—वराटिका भस्म, मौक्तिक पिष्टी, एलादि चूर्ण, एलादिवटी, प्रवालपिष्टी या पुष्पराग पिष्टमेंसे अनुकूल औषधि देनेसे पित्तकी उष्णता और तीक्ष्णता कम होकर छर्दि निवृत्त होजाती है।

वातपित्तानुबन्ध होवे, तो—सूतशेखर रस देनेसे क़ै जल्दी बन्द होजाती है।

कफज छर्दि चिकित्सा

(१) बायबिडंग, त्रिफला और सोंठका चूर्ण या बायबिडंग, नागरमोथा और सोंठका चूर्ण, अथवा जामुनकी गुठलीकी गिरी और बेरकी गुठलीकी गिरीका चूर्ण, या नागरमोथा और काकड़ासिंगीका चूर्ण शहदके साथ चटानेसे कफज वमन शान्त होजाती है।

(२) धमासेका चूर्ण शहदके साथ देने, या धमासेका क्वाथ पिलानेसे वमन दूर होजाती है।

(३) आरोग्यवर्द्धिनी जलके साथ, या रससिन्दूर १ रत्ती धनियाँ, भूना ज़ीरा, त्रिकुट और शहद मिलाकर देनेसे श्लेष्म-विकार और वमन दूर होजाती है।

(४) छर्दिरिपु वटी, आध-आध घण्टेपर एक-एक गोली देते रहनेसे २–३ घण्टेमें क़ै बन्द होजाती है।

त्रिदोषज छर्दि चिकित्सा

(१) गिलोय या बेलका शीत कषाय पिलानेसे त्रिदोषज वमन दूर होती है।

(२) कैथका रस, छोटी पीपल और कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे सब प्रकारकी वमन शमन होती है।

(३) वान्तिहृत् रस या एलादि चूर्ण देनेसे त्रिदोषज वान्तिकी शान्ति होजाती है।

आगन्तुक छर्दि चिकित्सा

भोजनमें मक्षिका या अन्य दूषित पदार्थ आ जानेसे वमन होती हो, तो नमक मिला निवाया जल पिला आमाशयगत दूषित आहार-रसको बाहर निकालकर औषधि देना चाहिये।

(१) स्वादिष्ठ शर्बत, पोदीनेका फूल या जीवन रसायन अर्क देनेसे मक्खीके हेतुसे या अजीर्णसे वमन होती हो, तो दूर होजाती है। किन्तु अजीर्णजन्य छर्दिमें पहले लंघन करा फिर पोदीनेका फूल या अन्य औषधि देना चाहिये।

(२) अग्निकुमार रस, जीवन रसायन अर्क, शङ्ख वटी और स्वादिष्ठ शर्बत इनमें से अनुकूल औषधि देने या आमाजीर्णमें कहे अनुसार चिकित्सा करनेसे अजीर्णजन्य वमन दूर होती है।

(३) कृमिजन्य वमन होनेपर--कृमि मुद्गर रस या अन्य कृमिघ्न चिकित्सा करनी चाहिये।

(४) सगर्भा स्त्रियोंके कष्टप्रद वमन और उबाकपर—प्रवालपिष्टी, गर्भ चिन्तामणि रस, गर्भपाल रस, कामदुधा रस या अभ्रक भस्म (सितोपलादि चूर्ण अथवा एलादि चूर्णके साथ) दिनमें २ या ३ समय कुछ दिनों तक देते रहना चाहिये।

(५) खरैटीके मूलका क्वाथकर पिलानेसे सगर्भाकी वमन दूर होजाती है।

(६) नागरमोथा, धनियाँ, सोंठ और मिश्रीका क्वाथ पिलानेसे सगर्भाकी वमन दूर होजाती है।

(७) अन्त्र पुच्छ विद्रधिजन्य वमन हो तो—अग्नितुण्डीवटी सेवन कराना हितकारक है।

(८) आमाशय व्रणसे वमन होनेपर—वंग भस्म, नाग भस्म या गन्धक रसायनका सेवन कराना चाहिये।

(९) दुष्टार्बुद (कर्कस्फोट) से वमन होती हो तो—ताम्र भस्म या वंग भस्मका सेवन कराते रहें या कर्पूरासव प्रथम-विधि विषघ्न होनेसे अथवा अहिफेनासव पीड़ाहर और संज्ञानाशक होनेसे—सेवन करानेसे पीड़ाका भान कम होता है।

(१०) कण्ठस्थ मांसपेशियोंकी विकृतिजन्य वमनमें सुवर्णभूपति रस, बृहद् योगराजगूगल, वंगभस्म या महावातविध्वंसन रस देना चाहिये; तथा सोवा, सौंफ, सोहागाका फूला और अजवायनका चूर्ण शहदके साथ दिनमें ३ समय देते रहनेसे और रात्रिको सोनेके समय थोड़ा निवाया जल पिलाते रहनेसे उत्तम प्रस्वेदन होकर वमनका त्रास कम होता है।

यदि पहले उपदंश होजानेसे कण्ठस्थ मांसपेशियोंमें विकृति हुई हो, तो अष्टमूर्ति रसायन या धात्रीभल्लातक वटी देना चाहिये।

(११) मस्तिष्कगत विकारमें मूल हेतुको दूर करनेपर ही वमन दूर होती है।

(१२) आमाशय गत वातवहानाड़ियोंके संकोचमें बादामरोग़न या नारायण तैलका पान करावें अथवा बृहद् योगराजगूगल या अभ्रकभस्म और रससिंदूरका मिश्रण (च्यवनप्राशावलेहके साथ) दिनमें दो समय देते रहना चाहिये। भोजन लघु, पौष्टिक और वातशामक देना चाहिये।

(१३) अन्ननलिकासे बाहर ग्रन्थिजन्य वमन होनेपर—लोकनाथ रस या कांचनार गूगल मूल दोषको दूर करने केलिये देवें। साथमें एलादि चूर्ण या सूतशेखर आदि औषधि छर्दिनिग्रह केलिये देते रहें।

रक्तज छर्दि चिकित्सा

रक्तसह वमन होनेपर विशेष चिकित्सा रक्तपित्तमें लिखे अनुसार करनी चाहिये।

(१) तृणकान्तमणि पिष्टी, ह्रीबेरादि क्वाथ, कामदुधा रस, बोलबद्ध रस या चन्द्रकला रस इनमेंसे अनुकूल औषधि देनेसे रक्तसह वमनकी निवृत्ति होजाती है।

(२) सुवर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती और प्रवालपिष्टी २ रत्ती को गुलकन्द २ तोलेके साथ मिलाकर देनेसे रक्तवमन, विषप्रकोप, रक्तमें लीन दोष और दाह आदि उपद्रवोंकी निवृत्ति होजाती है।

(३) मुलहठी और रक्त चन्दनका चूर्ण दूधके साथ देनेसे रक्त वमन दूर होजाती है।

छर्दिनाशक सरल प्रयोग

(१) पीपल (अश्वत्थ) की छालकी राखको १६ गुने जलमें ३ घण्टे भिगो ऊपरसे नितरा हुआ जल निकाल, उसमेंसे ४–४ तोले जल बार-बार पिलाते रहनेसे प्यास और वमन बन्द होजाती है। जिसमें आमाशयरस अम्ल और उष्ण निकलता हो, उसपर यह लाभ पहुँचा देता है।

(२) कृष्ण अनंत मूल (सारिवा) की छाल ६ माशेको जलमें पीस छान, मिश्री मिलाकर पिलानेसे अपचनजनित वमन बन्द होजाती है।

(३) केलेके कन्दका स्वरस २ तोले और शक्कर ६ माशे मिलाकर पिलानेसे आमाशय रसके अम्ल या उष्ण होजानेसे उत्पन्न वमन शान्त होजाती है।

(४) बेलगिरी अथवा बेलकी छालके क्वाथमें शहद मिलाकर पिलानेसे अपचनजनित छर्दिका नाश होता है।

(५) आमकी गुठली और बेलगिरीके क्वाथमें शक्कर मिलाकर पिलानेसे आमाशय प्रदाह और क़ै दोनों नष्ट होते हैं।

(६) जामुनके पत्ते और आमके पत्तेके क्वाथमें धानकी खीलोंका आटा

और शहद मिलाकर पिलानेसे वमन, अतिसार और घोर तृषा, सब नष्ट होजाते हैं।

(७) गिलोय या बेलगिरीका शीत कषाय पिलानेसे सब प्रकारकी वमन दूर होती है।

[औषधिके चूर्णको गरम जलमें रात्रिको भिगो दें, सुबह मलकर छानलेनेको शीत कषाय कहते हैं।] यहाँपर गिलोयका चूर्ण २ तोले लेना चाहिये। बेलका चूर्ण लेना हो, तो ४ तोले लें।

(८) मूर्वाके चूर्णको चावलोंके धोवनमें मिलाकर पिलानेसे त्रिदोषज छर्दि दूर होती है।

(९) कच्चे नारियलका जल या बर्फका जल पिलानेसे शीतलता पहुँचकर वमन रुक जाती है।

(१०) हरड़ और जहरी नारियल १—१ तोला, अतीस ६ माशे, चोपचीनी ६ माशे और कतीठ ४ तोले सबको मिला कूट चूर्णकर ४—४ माशे दिनमें ३ समय सेवन करानेसे सुबह होनेवाली उबाक और वमन निवृत्ति होती है।

(११) बड़ी इलायचीको भून थोड़े-थोड़े दाने खानेसे प्यास और वमन शमन होती हैं।

(१२) भयंकर वान्ति जब बन्द न होती हो, तब राई २ तोले और कपूर ६ माशेको जलमें पीसकर काग़ज़ या कपड़ेपर लगावें। बादमें आमाशयपर घी चिपड़कर प्लास्टर लगा देवें। जलन होनेपर (१५ मिनिट बाद) उतारकर वहाँपर पुनः घी लगा लेवें। इस प्लास्टर से हैज़ेकी वमन भी बन्द होती है।

(१३) कृमिजन्य वमनपर हींग और बचको मट्ठेमें घिसकर पिलावें, अथवा घोड़ेकी लीदको जलमें मसल-छान, हींग मिलाकर पिलानेसे कृमिज वमन दूर होती है।

(१४) ज़ीरा, कालीमिर्च, मिश्री और कालानमकका चूर्ण शहदके साथ चटानेसे वमन दूर होजाती है।

(१५) बड़की जटाके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पिलानेसे रक्त मिश्रित वमन बन्द होजाती है।

(१६) पोदीना, इमली, कालीमिर्च, ज़ीरा और नमक मिला चटनी बनाकर थोड़ी-थोड़ी ३-४ समय चटानेसे वमन बन्द होजाती है।

(१७) बचको जला राखकर शहदके साथ १-१ रत्ती, एक-एक घण्टेपर चटानेसे असाध्य वमन भी शमन होजाती है।

(१८) भिगोया हुआ चूना और शोरा, दोनोंको समभाग मिला नींबूके रसमें खरलकर मटर समान गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १-२ गोली आँवलेके

रस या मुनक्काके जलके साथ देनेसे यकृद् वृद्धि और अम्लपित्त जनित वान्ति दूर होती है। ये गोलियाँ दिनमें दो या तीन बार देनी चाहियें।

(१६) मक्काके दाने निकाले हुए भुट्टेको जला राखकर १-१ माशा शहदके साथ देनेसे कै बन्द होजाती है।

(२०) बेंतकी लाठीको चन्दनकी तरह जलके साथ घिस लगभग १-१ तोलाको जलके साथ मिलाकर पिलानेसे सब प्रकारकी वमन शान्त होजाती है।

(२१) घीमें भुने हुए कुचले का चूर्ण १-२ रत्ती दिनमें २-३ बार देनेसे सगर्भाकी छर्दिका निवारण होता है।

(२२) संजीवनीवटी १ रत्ती और इलायची छिलका सहित दो नगको मिला जलके साथ पीसकर पिला देनेसे सूर्यके तापमें भ्रमण-जनित वमन और घबराहटकी निवृत्ति होती है।

(२३) इमलीका पानक या आमझोरा पिलानेसे अंशुघातज ज्वर, बेचैनी और वमन दूर होते हैं। विशेष वर्णन चि० त० प्र० प्रथम-खण्डके भीतर अंशुघात चिकित्सामें पृ० ४२६ पर लिखा है।

(२४) लोबानके फूल, ज़ीरा, हरड़, नागकेशर, कालीमिर्च और सौंफ, इन ६ औषधियोंको समभाग मिला १-१ माशा शहदके साथ चटानेसे वमन बन्द होजाती है।

पथ्यापथ्य विचार

पथ्य—विरेचन, वमन, लङ्घन, स्नान, आमाशयका मार्जन, खीलोंका माण्ड, मटर, जौ, गेहूँ, मूंग, मसूरका सत्तू, पुराना चावल, लाल चावल, खरगोश, मोर, तीत्तर, लावा और मृग आदि जङ्गली पशुओंका मांस रस, मुर्गेका मांस रस, मनको प्रिय हों ऐसे नाना प्रकारके मांस रस, आमका मुरब्बा, काँजी, राग रायता), शहद, मिश्री, शराब, बाँसके अंकुर, बेरकी गुठलीकी गिरी, मुनक्का, नारियलका जल, आँवला, आम, हरड़, अनार, जायफल, सौंफ, चन्दन, सुगन्धित पदार्थ, नीम, अडूसा, नागकेशर, बर्फ, शर्बत, वमन करानेपर खीलोंका मन्थ, शहद मिश्री मिला हुआ, परवल, कच्चा केला, गूलर, बैंगन, नींबू, पका कैथ, साबूदाना, यवागू, खट्टे-मीठे पदार्थ, सुगन्ध युक्त भोजन, लघु, रुचिकर और वात अनुलोमक भोजन, चन्दन आदि का लेप, आँवलेका मुरब्बा, गुलकन्द, जामुनका शर्बत, पोदीना, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, लौंग, इलायची, धनियाँ, ज़ीरा, संतरा, मीठा नींबू, अंगूर, किशमिश, फालसा, मीठे बेर, अनार, जामुन आदि।

अपथ्य—नस्य, बस्ति, स्वेदन, स्नेहन, रक्तस्राव, अञ्जन, दतौन करना, नया अन्न, घृणित पदार्थोंका देखना, भय, उद्वेग, गरम भोजन, गरम चाय, गरम दूध, दुष्ट अन्नपान, सेम, लौकी साँपकी छतरीका शाक, महुआ, कन्दूरी, घिया तोरई,

सरसों, देवदाली, इन्द्रायन चित्रक, व्यायाम, प्रकृतिके विरुद्ध भोजन और सूर्यके तापका सेवन आदि हानिकारक हैं।

(३) तृषारोग

पिपासा-पोलीडिप्सिया-डिप्सोसिस
(Polydipsia & Dipsosis.)

रोगपरिचय-बार-बार जल पीनेपर भी प्यासका शमन न हो, उसे तृषा रोग कहते हैं। डाक्टरीमें बढ़ी हुई तृषाको पोलीडिप्सिया, अन्यरोगजनित तृषाको डिप्सोसिस और मिथ्या तृषाको False thirst फॉल्स थर्स्ट कहते हैं।

निदान पूर्वक सम्प्राप्ति—भय, परिश्रम, बलक्षय, शुष्क या रूक्ष पदार्थ सेवन या उपवास आदिसे वातप्रकोप होता है तथा मदिरापान या चरपरे, खट्टे और गरम पदार्थके सेवन और क्रोध आदिसे पित्तप्रकोप होता है। पश्चात् दूषित वात और दूषित पित्त सौम्य धातुओंका शोषणकर रसवाहिनियाँ रक्तवाहिनियाँ, जिह्वा, कण्ठ, तालु, क्लोम इन सबका शोषणकर अत्यन्त तृषाकी उत्पत्ति कर देते हैं। फिर बार-बार जल पीते रहनेपर भी तृषा शमन नहीं होती। पिये हुए जलका आमाशय मेंसे बार-बार शोषण होजाता है यह तृषा अनेक रोगोंमें देह निर्बल हो जानेपर घोर उपद्रव रूपसे भी उत्पन्न होती है।

सूर्यके तापमें भ्रमण, अग्नि सेवन, मद्यपान, आमवृद्धि, तमाखू सेवनसे रस क्षय और शस्त्रका घाव लगकर रक्तस्राव होजाना, इन हेतुओंसे भी दोष प्रकोप होकर तृषा रोगकी उत्पत्ति होजाती है।

क्लोम किसको कहना, इस विषयमें विद्वानोंके ४ मत हैं। (१) अग्न्याशय (Pancreas), (२) टेंटुआ अर्थात् श्वासनलिका (Trachea), (३) गलद्वार पश्चिम (Oral Part of The Pharynx-ग्रसनिका एक भाग) और (४) पित्ताशय(Gall Bladder), इन ४ स्थानोंको क्लोम कहा है। इन चारोंमेंसे प्राचीन आयुर्वेदाचार्योंने किसे क्लोम माना है, यह अभीतक निर्णीत नहीं हुआ।

अनेक विद्वानोंने अग्न्याशयकी विकृति होनेपर मधुमेहमें तृषा बढ़ती है, इसलिए अग्न्याशयको क्लोम कहा है। इनके विरुद्ध श्री० महामहोपाध्याय गणनाथसेन सरस्वती महोदयने प्रत्यक्ष शरीरमें श्वासनलिकाको क्लोम लिखा है और अपने वैदिक साहित्यके अनेक वचन प्रमाण रूपसे दर्शाये हैं, किन्तु आप आयुर्वैदिक साहित्यमें श्वासपथको क्लोम मानने केलिये प्रबल प्रमाण नहीं दे सके।

अनेक विद्वानोंकी मान्यतानुसार स्थूल दृष्टिसे तृषा लगनेपर कण्ठस्थानमें शुष्कताका अनुभव होता है। उनके मतमें गलद्वार ही क्लोम है। स्व० श्री० पं० हरिप्रपन्नजीने पित्ताशयको क्लोम लिखा है। आपने अपने मतकी सिद्धि केलिये आयुर्वेद साहित्यके अनेक प्रमाण उद्धृत किये हैं। यदि और बातोंको छोड़कर पिपासा-

स्थानको क्लोम कहा जाय, तो शास्त्रदृष्टि अनुसार आपका मत विचारणीय है। फिर भी मण्डल सन्धिका स्पष्टीकरण इस मतसे नहीं होसकता।

तृषाके पूर्व रूप—तालु, ओष्ठ, कण्ठ और मुखमें शोष अर्थात् जल पीनेकी चाह बनी रहना, ये लक्षण पूर्व रूपमें प्रतीत होते हैं।

सामान्य लक्षण—सन्ताप, मोह, प्रलाप, तालु, ओष्ठ, कण्ठ, जिह्वा आदि कर्कश होजाना, मुखशोष, स्वरभेद, भ्रम, जिह्वा बाहर निकल जाना, अरुचि, बधिरता, मर्मस्थानोंमें वेदना और हृदयकी क्षीणता आदि सामान्य लक्षण उपस्थित होते हैं।

इस तृषा रोगके वातज, पित्तज, कफज, क्षतज, रस क्षयज, आमज और भक्तज (चरपरे या तैल मिश्रित या शुष्क भोजन जनित), ये ७ प्रकार हैं।

वातज लक्षण—निस्तेज चेहरा, कनपटी और मस्तिष्कमें पीड़ा, रसवाहिनी और जलवाहिनी नाड़ियोंमें रुकावट, मुँहका स्वाद चला जाना, कण्ठ और तालुमें शुष्कता, शीतल जलपानसे तृषाकी वृद्धि होना तथा निद्रानाश ये लक्षण प्रतीत होते हैं।

पित्तज तृषाके लक्षण—मूर्च्छा, अरुचि, प्रलाप, दाह, नेत्रमें लाली, अत्यन्त शोष, शीतल जल वायुकी इच्छा, मुँहका स्वाद कडुवा रहना, अत्यन्त सन्ताप होना, मुख और मल-मूत्रमें पीलापन आदि लक्षण होते हैं।

कफज तृषाके लक्षण—मधुर, अम्ल, लवण आदि रसोंका अति सेवन और अजीर्णके हेतुसे जठराग्नि कफसे आच्छादित होनेपर होने वाले पित्त कफात्मक तृषा रोगमें, निद्रावृद्धि, तन्द्रा, मस्तिष्क या सारे शरीरमें भारीपन, मीठा मुँह, मुँहमें कफ आते रहना, अरुचि, अपचन और अति कण्ठशोष होनेपर भी जल पीनेकी इच्छा न होना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं।

क्षतज तृषाके लक्षण—रक्त निकल जानेपर अति तृषा लगती है। इसमें वातप्रकोप और वातज तृषाके लक्षण प्रतीत होते हैं।

क्षयज तृषाके लक्षण—रस धातुके क्षय होनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है, उसे क्षयज तृषा कहते हैं। उस रोगमें हृदयमें पीड़ा, कम्प, शोष और शून्यता आदि लक्षण होते हैं, बार-बार जल पीते रहनेपर भी तृषाकी सम्यक् शान्ति नहीं होती।

आमज तृषाके लक्षण—यह तृषा अजीर्णजनित आम-वृद्धिसे होती है। इस रोगमें हृदयशूल, ग्लानि, मुँहमें बार-बार थूक और कफ आते रहना, जठराग्नि अति मन्द होजाना, और अति अफारा आदि लक्षण होते हैं। इस आमज तृषाको किन्हीं-किन्हीं आचार्योंने त्रिदोषज तृषाभी कहा है।

भक्तज तृषाके लक्षण—विशेष स्निग्ध, पक्के, खट्टे, चरपरे, उष्ण और नमकीन भोजन करनेसे भी अधिक जलपान करना पड़ता है, किन्तु इसे तृषारोग नहीं माना। इसको सामान्य प्राकृतिक तृषा और भक्तज तृषा कहा है।

असाध्यलक्षण—यदि तृषा रोगमें दीन स्वर, मोह, दीनता, कण्ठ, तालु

और मुँह सूखना, ज्वर, क्षय, कास, श्वास और अतिसार आदि उपद्रव हो जायँ तो रोग कष्टसाध्य होता है।

तृषारोग बहुत बढ़गया हो, शरीर अत्यन्त कृश हो, और वमन आदि घोर उपद्रव हों, तो रोग असाध्य माना जाता है।

डॉक्टरी निदान—डॉक्टरीमें तृषा रोगको स्वतन्त्र व्याधिरूप या महत्वके लक्षण रूप नहीं माना।

तृषाप्रकार—स्थानिक और शारीरिक मुख, तालु, कण्ठबिल आदिकी शुष्कता होनेपर जो प्यासका बोध होता है, उसे स्थानिक तृषा कहते हैं। अधिक परिश्रम, मार्गगमन, सूर्यके ताप या अग्निका सेवन, भोजन केलिये जितना चाहिये उतना जल न पीना, बीड़ी, सिगरेट, शराब आदिका सेवन इत्यादि कारणोंसे कण्ठमें शुष्कता आकर तृषाका बोध होता है। यह शारीरिक तृषा कहलाती है।

रक्तमें द्रवणीय पदार्थ, वसा, शक्कर, क्षार आदिमेंसे किसीके परिमाणकी वृद्धि होने या रक्तमें जलका परिमाण न्यून होनेपर शारीरिक रक्ताभिसरण व्यापारमें क्षति पहुँचती है, परिणाममें तृषा उत्पन्न होती है।

तृषावृद्धि—(Extreme thirst) वर्णनकी सुविधा केलिये इसके २ विभाग किये हैं। अ. मूत्राधिक्य (Polyuria)* से; आ. मूत्राधिक्य रहित।

(अ) मूत्राधिक्यज—यह निम्न व्याधियोंमें होती है।

१. मधुमेह (Diabetes Mellitus)
२. उदकमेह (Diabetes Insipidus)
३. घातकवृक्कान्तर आकुंचन (Malignant Nephrosclerosis)
४. चिरकारी वृक्क-अजुकाप्रदाह (Chronic Glomerulonephritis)
५. वृक्कोंकी वसापक्रान्ति (Lardaceous Kidneys)
६. रसार्बुदमय वृक्क (Cystic Kidneys)
७. धमनीकोष काठिन्य (Arteriosclerosis)
८. सदोष शराबका सेवन।
९. स्फुरप्रधान उदकमेह (Phosphatic diabetes)
१०. नत्रप्रधान उदकमेह (Azotic diabetes)
११. अस्थिवक्र (Acromegaly) और सार्वाङ्गिक घनशोथ (Myxoedema) के कतिपय रोगी।
१२. हिस्टीरिया—

आ. मूत्राधिक्य रहित तृषावृद्धि—निम्न रोगों और स्थितियोंमें

---

*(जिस विकारमें मूत्रकी उत्पत्ति और घनद्रव्योंसह मूत्र त्याग, दोनोंका परिमाण बढ़ गया हो, उसे मूत्राधिक्य कहते हैं।)

१ विविध ज्वर और ज्वरप्रधान व्याधियाँ ।

२. अत्यधिक द्रवस्राव—स्वेदाधिक्य स्वाभाविक या रोगसंप्राप्त्यात्मक, वमनाधिक्य, तीव्र अतिसार, विषूचिका, आशुकारी उदर्य्याकलाप्रदाह ।

३. अत्यधिक रक्तस्राव—

A. बाह्य—रक्तवमन, रक्तमयकफ, प्रसव आदि तथा अभिघातज रक्तस्राव और अस्त्रचिकित्सा आदि ।

B. आन्तर—ग्रहणीव्रण (Duodenal Ulcer), बीजवाहिनीमें गर्भधारण होनेके बाद विदारण (Ruptured tubal gestation), रक्तपूर्ण प्रसारित धमनीमेंसे विगलना (Leaking aneurysm) आदि ।

४. मुद्रिकाद्वारके आकुंचनसे आमाशय प्रसारण (Gastrectasis due to pyloric stenosis) इस प्रकारमें कुछ अधिक जलका शोषण होता है ।

५. विष, जो मुखके रसको सुखाते हैं सोमल, बेलाडोना आदि तथा ग्राही औषधियोंमें फिटकरी, कषायाम्ल (Tannic acid) आदि ।

६. भोजनमें अति लवण, अधिक तले हुए पदार्थ, घृत, तेल, मिर्च और शुष्क पदार्थ आदि ।

७. अन्तस्त्वचाके तन्तुओंमें शोथद्रवका तेज़ीसे संग्रह, यह हृदयविकृतिजन्य पादशोथके प्रारम्भमें ।

८. सूर्य्यके तापमें अथवा अग्निके पास रहना । इनके अतिरिक्त सुषुम्णाकाण्डकी चेतनाका नाश और किसीभी कारणसे मस्तिष्कगत तृषोत्पादक केन्द्रकी उग्रता होनेपर मिथ्या तृषा उत्पन्न होती है ।

पोषणिकाग्रन्थिकी अस्वाभाविक वृद्धि होनेपर पोषणिका वृद्धिज महाकाय (Hyperpituitary Gigantism) की संप्राप्ति होती है । इस रोगमें पिपासाधिक्य, मूत्राधिक्य, इक्षुमेह (Glycosuria), दृष्टि क्षेत्रमें परिवर्त्तन, दृष्टिविकृति, नेत्रगण्ड (Exophthalmos) आदि लक्षण-चिह्न प्रतीत होते हैं ।

पोषणिकाग्रन्थिमें अर्बुद होनेपर शिरदर्द, दृष्टिविकृति, तृषावृद्धि, मूत्राधिक्य, इक्षुमेह आदि लक्षण उपस्थित होते हैं ।

चिकित्सोपयोगी सूचना

केवल कण्ठशोषज तृषा होनेपर जलसे मुँह धोने और कुल्ले करनेसे लाला-निःसरणमें वृद्धि होकर उसका दमन होता है ।

पान, सुपारी, लौंग, सौंफ आदि मुखमें धारण करने या चाबनेपर लालास्राव बढ़ता है और कण्ठशोषका निवारण होता है ।

नींबूका रस या सिरका-मिश्रित जल पीनेसे तृषा दूर होती है ।

मुँहके भीतर शहद, ग्लिसरीन, शर्बत आदि लगानेपर शुष्कता दूर होकर स्थानिक तृषाका ह्रास होता है।

सार्वाङ्गिक पिपासाके निवारणार्थ शरीरमें जलका प्रवेश कराना चाहिये। यदि क्षार या शक्कर आदि की मात्रा रक्तमें बढ़ गई है, तो उसका ह्रास करना चाहिये। यदि वातनाड़ी केन्द्रकी उत्तेजनाके हेतुसे तृषाका अनुभव होता है तो उग्रताको शमन करना चाहिये। अन्यथा पिपासा-निवारणकी चेष्टा निष्फल होती है। अहिफेन तृषा केन्द्रपर शामक असर पहुँचाता है। इसी हेतुसे मधुमेहमें अहिफेनप्रधान औषधि दी जाती है।

तृषानिवारक (Refrigerants) औषधियोंके गुणधर्मका विचार वैज्ञानिक विचारणामें किया है।

तृषारोगकी चिकित्सार्थ वाग्भट्टाचार्य लिखते हैं कि—

तृष्णासु वातपित्तघ्नो विधिः प्रायेण युज्यते।
सर्वासु शीतो बाह्यान्तस्तथा शमनशोधनम्॥

सब प्रकारके तृषा रोगोंमें बहुधा सब प्रकारकी वातपित्तहर चिकित्साकी जाती है। बाहर और भीतर, दोनों प्रकारके शीतल उपचार तथा शमन और शोधन-विधि करनी चाहिये।

दाहज्वरमें कहे हुए लेपोंको भी तृषा-शमनार्थ प्रयोगमें लाना चाहिये, तथा मूलकारणको जानकर दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

सब जातिके तृषा रोगमें पित्तको शमन करने वाली क्रिया करनी चाहिये। कारण, पित्त शमन हुए विना तृषा दूर नहीं होती।

किसीभी अवस्थामें जल पिलानेका निषेध न करें। इस विषयमें शास्त्रकारोंने कहा है किः—

तृष्यन्पूर्वामयक्षीणो न लभेत जलं यदि।
मरणं दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्त्वरितं ततः॥

जो मनुष्य रोगाक्रान्त होनेसे क्षीण होगया है, उसे तृषा लगनेपर यदि जल न दिया जाय, तो उसकी तुरन्त मृत्यु होजाती है; या उसे किसी चिरकारी रोगकी प्राप्ति होजाती है।

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान् विमुञ्चति।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वार्यते॥

तृषासे पीड़ित मनुष्यको यदि जल नहीं पिलाया जाय, तो वह व्याकुल होकर मोहित (मूर्छित) हो जाता है। फिर प्राणका त्याग होजाता है। इसलिये किसीभी अवस्थामें तृषातुर केलिए जलपानका निषेध नहीं करना चाहिये।

मूर्च्छा, वमन, तृषा, अफारा, स्त्री-सेवन और मद्यपानसे पीड़ितोंको शीतल जल

पिलाना चाहिये। मद्यपीकी तृषामें रक्तपित्त और मदात्यय रोगोंमें कहे हुए अन्नपान और हितावह औषधियोंसे चिकित्सा करनी चाहिये या शराबमें २-३ गुना जल मिलाकर पिलाना चाहिये।

तालुमें प्रदाह होनेसे शोष उत्पन्न हुआ हो, तो शीतल औषधिके गण्डूष धारण करना चाहिये। मुँहमें शोष-शामक औषधि रखना चाहिये। जल एक साथ अधिक मात्रामें नहीं पिलाना चाहिये। बार-बार थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहना चाहिये।

प्राचीन आचार्योंने कहा है, कि—

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्मान्नरो वह्नि विवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेद्भूरि॥

एक साथ अति जलपान करनेसे अथवा तृषा लगनेपर जल न पीनेसे नाना प्रकारके विकारोंकी उत्पत्ति होजाती है। इसलिये बुद्धिमानको चाहिये कि, प्राणके संरक्षणार्थ बार-बार थोड़ा-थोड़ा जलपान कराते रहें।

वातज तृषामें वातपित्त-शामक (विदारीगन्धादि गणकी औषधियों द्वारा), मृदु, लघु और शीतल औषधि तथा अन्नपानका उपयोग करना चाहिये। विदारीगन्ध (शालपर्णी आदि गणकी औषधियाँ वैज्ञानिक विचारणामें लिखी हैं।

पित्तज तृषामें सारिवादि गणकी औषधियों (अनन्त मूल, मुलहठी, सफेद चन्दन, पद्माख, महुआ, गंभारीफल, नेत्रवाला, खस) से या अन्य पित्त-शामक औषधियोंसे सिद्ध दूध या शीतकषाय पिलाना चाहिये।

कफज तृषामें नीमके क्वाथसे वमन करानेके पश्चात् औषधि देनी चाहिये।

रस आदि धातुक्षय जनित तृषापर धारोष्ण दूध या दूधजल, या मांस रस, या शहदमिश्रित जल पिलाना चाहिये। क्षयजनित तृषामें कदापि वमन नहीं कराना चाहिये।

क्षतोत्थित तृषामें मांस रस पिलाना लाभदायक है। जब तक घावकी वेदना दूर न हो, तब तक तृषा-शमनार्थ विशेष प्रयत्न नहीं करना चाहिये। इच्छानुसार जल पिलाते ही रहें।

निर्बल, कृश और अति रूक्ष मनुष्योंको धारोष्ण दूध पिलावें, या बकरेके मांस रसको घीमें भून शीतलकर मधुर द्रव्य (अनाररस आदि) मिलाकर पिलाने चाहियें।

आमज (अजीर्ण जनित) तृषामें निवाया जल पिलाना चाहिये और दीपन-पाचन औषधियोंका क्वाथ देना चाहिये।

उदरमें जल अधिक भर जानेपर भी शोष (False thirst) होता हो, तो शहद और शीतल जल ($\frac{1}{16}$ हिस्सा) मिला कण्ठ-पर्यन्त पिलाकर वमन करा देनेसे तृषा शमन होजाती है।

गुरु अन्न भोजन करनेपर जल पीनेसे यदि तृषा शमन न होती हो, तो गरम जल पिलाकर वमन करा देना चाहिये।

तृषा रोग होनेपर अधिक मिर्च, अधिक तैल, वातवहानाड़ियोंको उत्तेजित करने वाले पदार्थ तथा शराब, सिगरेट, गांजा आदि के धूम्रपानका व्यसन (यदि हो, तो) छुड़ा देना चाहिये। एवं अग्नि और सूर्यके तापका सेवनभी कमकर देना चाहिये।

यदि तृषावृद्धि किसी रोग विशेषके लक्षणरूप उत्पन्न हुई है, तो मूल रोगको दूर करनेकी चिकित्सा करनी चाहिये।

तृषाशामक सरल उपचार

(१) सुवर्ण, रौप्य, लोह, बालू, पत्थर या ईंटको तपा लालकर जलमें बुझावें। फिर उस जलको छानकर निवाया थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहनेसे तृषाका शमन होजाता है।

(२) सुवर्णका वर्क आध रत्ती शहदमें मिलाकर चटानेसे तृषाका निवारण होता है।

(३) शीतल जलमें शहद या शक्कर मिलाकर पिलानेसे तृषा शान्त होती है।

(४) शीतल जल या नारियलके जलमें धनियाँ, ज़ीरा और सौंफ भिगो छान मिश्री मिलाकर पिलानेसे प्रबल प्यासभी दूर होजाती है।

(५) नीलोफर, जामुन, गुलाब, चन्दन, नींबू, अनार, संतरा या सेमलके फूल या अन्य शीतल फलोंके रसका शर्बत जल मिलाकर पिलानेसे पिपासाकी निवृत्ति होती है।

(६) षडंगपानीय थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहनेसे ज्वर, दाह और तृषा तीनों दूर होते हैं।

(७) दूध, ईखका रस, शहद मिश्रित जल, शाली या आमचूर मिलाया हुआ गुड़का जल, आमचूर मिली हुई कांजी या नींबूके रस मिश्रित जलके गण्डूष धारण करनेसे (मुँहमें रखकर फिर कुल्ले करनेसे) प्यास-शमन होजाती है।

(८) छोटी इलायचीके दानोंको इमलीके रसमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। इनमेंसे १–१ गोली मुँहमें रखकर रस चूसते रहनेसे पिपासा निवृत्त होती है।

(९) छुहारेकी गुठलीको मुँहमें रखकर रस चूसते रहनेसे प्यास दूर होजाती है।

(१०) केवल शहदका गण्डूष मुखमें धारण करनेसे मुँह स्वच्छ होता है, दाह और तृषाकी निवृत्ति होती है तथा मुँहमें उत्पन्न व्रणका घाव भर जाता है।

(११) कांजीमें थोड़ा नमक मिलाकर कुल्ले करनेसे मुखशोष दूर होता है। यदि मुँहमें दुर्गन्ध और खराब स्वाद हो, तो कांजीको निवायीकर कुल्ले कराये जाते हैं।

(१२) खट्टे बेर, खट्टे अनारदाने, कोकम आमचूर और चूका, इनको पकी इमलीके रस (जल) में मिला मुखके भीतर लेप करने और जिह्वापर रगड़नेसे तृषा तत्काल दूर होती है।

(१३) बिजौरेके फूलोंकी केशरका चूर्ण, अनारदानोंका रस, शहद और सैंधानमक, सबको मिला मुखमें लेप करने और जिह्वापर रगड़नेसे जिह्वा, कण्ठ,

तालु और गलबिल आदि स्थानोंका शोष शमन होता है। इस औषधिको मस्तिष्क पर लगानेसे भी तृषाकी शान्ति होती है।

(१४) गीले वस्त्रपर सोने या गीला वस्त्र पहननेसे तृषा और दाह दोनों दूर होते हैं।

(१५) लाल शाली (चावलों) का भात पका, शीतल होनेपर शहद मिलाकर खिलाते रहनेसे जीर्ण तृषा रोग और छर्दि दूर होजाते हैं।

तृषाशामक शास्त्रीय औषधियाँ

(१) रसतन्त्रसारमें लिखे हुए योग—कुमुदेश्वर रस, रसादि चूर्ण, तृष्णाघ्नि गुटिका और पन्नापिष्टी तृषाशमनार्थ लाभदायक है।

रसादिचूर्ण—में रक्तकी उष्णता, या विष विकारको शमनकर तृषाको नष्ट करनेका गुण अधिकांशमें रहा है। अतः यह रसायन मदात्यय, विषप्रकोप, ज्वर-जनित उष्णता, अग्नि या सूर्य्यके तापके सेवनसे आई हुई शुष्कता, दाह, विसूचिका, अतिसार आदि व्याधियोंमें उत्पन्न हुई तृषाको शान्त करता है।

कुमुदेश्वर रस—में विशेषतः पित्ताशयके पित्तको नियमित बनाकर तृषाको शमन करनेका गुण रहा है। कुमुदेश्वर आमप्रकोप, पित्तप्रकोप और मधुमेह आदि रोगोंसे उत्पन्न तृषाका निवारण करता है।

पन्ना पिष्टी—विशेषतः आमाशयकी उष्णताको शमनकर तृषाको नष्ट करती है।

तृषाघ्नी गुटिका—सामान्य औषधि होनेपर भी आमाशयस्थ रस और रक्तपर अच्छा प्रभाव पहुँचाती है तथा वमनसह तृषाको तत्काल दूर करती है।

(२) ताम्रभस्म और वंगभस्म १-१ रत्ती मिला चन्दनके शर्बतके साथ देनेसे, या सितोपलादि चूर्ण दिनमें तीन समय अनार-शर्बतके साथ देनेसे तृषा निवृत्त होजाती है।

(३) यदि रक्तपित्त-प्रकोपजन्य तृषा हो, तो—कुष्माण्डावलेह, या चन्द्रकला रसका सेवन करानेसे दाह और रक्तस्रावसह तृषा दूर होजाती है।

(४) **चन्दनादि क्वाथ**—सफेद चन्दन, अनन्तमूल, नागरमोथा, छोटी इलायची और नाग केशर इन ५ औषधियोंको मिलाकर २ तोले और २ तोले धानकी खील लेकर १६ गुना जल मिलाकर अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर छानकर थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहनेसे तृषा रोग शमन होजाता है।

(५) **वटप्ररोहादि गुटिका**—बड़के अंकुर, आंवले, मीठी कूठ, नीलोफर और धानकी खीलोंको समभाग मिलाकर शहदके साथ छोटे बेरके समान गोलियाँ बना लेवें। एक-एक गोली मुँहमें रखकर रस चूसते रहनेसे वढ़ी हुई तृषा तत्काल दूर होजाती है।

वातज तृषा चिकित्सा

(१) २-२ तोले गिलोयका स्वरस २-२ घण्टेपर ३-४ बार पिलानेसे वातज तृषा शमन होजाती है।

(२) दहीमें गुड़ मिलाकर पिलानेसे वातज तृषा दूर होती है।

(३) मांस रस पिलानेसे वातवहानाड़ियोंकी विकृति दूर होकर तृषा शमन होजाती है।

(४) कुश, कास, शर, दर्भ और ईख इन पञ्चतृण-मूलका क्वाथकर मिवाया पिलानेसे वातज तृष्णा नष्ट होती है।

(५) घीको थोड़ा तपाकर या घृतमण्ड (गायके घीमें ऊपर रहा हुआ प्रवाही भाग) पिलानेसे वातज तृषामें उत्पन्न हुआ तालुशोष दूर होता है। किन्तु मूर्छा-पीड़ित और सगर्भाके तालुशोषमें घृत पान नहीं कराना चाहिये।

पित्तज तृषा चिकित्सा

(१) नीम, परवल और अडूसेके पत्तेका चूर्ण शीतल जलके साथ देकर वमन करावें। फिर नीमकी अन्तरछाल, धनियाँ, सोंठ और मिश्रीका क्वाथ पिलानेसे दाहसह तृषा निवृत्त होजाती है।

(२) ईखका रस पिलानेसे पित्तप्रकोपज तृषा और दाह दूर होते हैं।

(३) गूलरका रस पिलानेसे बढ़ी हुई प्यास मिट जाती है।

(४) गंभारीका फल, पद्माख, खस, मुनक्का, मुलहठी, सफेद चन्दन और नेत्रबालाका क्वाथ (शीत कषाय) कर शक्कर मिलाकर पिलानेसे पित्तज तृषा दूर होती है।

(५) सारिवा, मुलहठी, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, गंभारीके फल, महुएका फूल और नेत्रबालाका शीत कषाय पिलानेसे बढ़ी हुई पित्तज तृष्णा नष्ट होती है।

(६) तृण पञ्चमूलका शीत कषाय पिलानेसे पित्तज तृषाका निवारण होता है।

(७) सब प्रकारके कमलके फूल ३ तोले और मुलहठी ६ माशे मिला शीत कषायकर पिलानेसे पित्तज तृषा शमन होजाती है।

(८) रात्रिको धनियाँ जलमें भिगो, सुबह छान मिश्री मिलाकर पिलानेसे तत्काल तृषा शान्त होती है।

(९) गूलरके पके हुए फलोंका रस या गूलरके मूलका रस मिश्री मिलाकर पिलानेसे पित्तज और अन्य सब प्रकारकी तृषा शमन होजाती है।

(१०) रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रहमें लिखे हुए प्रयोगोंमें से चन्दनका शर्बत, नींबूका शर्बत, पन्ना भस्म, पपंटादि क्वाथ या तृष्णाघ्नि गुटिका, इनमेंसे किसी एकका सेवन करानेसे पित्तज तृषा दूर होजाती है।

(११) तृषान्त वटी—नीमकी सींक ४ तोले और कालीमिर्च १ तोला मिला जलके साथ पीस २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे २-२ गोली १५-१५ मिनटपर ३-४ बार एक-एक घूँट जलके साथ देनेसे सब प्रकारके तृषा रोग निवृत्त होजाते हैं।

कफज तृषा चिकित्सा

(१) ज़ीरा, अदरक और कालानमकका क्वाथ बनाकर आधा जल शेष रहनेपर पिलानेसे कफ पित्तात्मक प्यास दूर होती है।

(२) शीतल दूधमें कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे कफज तृषा दूर होती है।

(३) बेलकी छाल, अरहर, धायके फूल, पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ), तथा दर्भ इन ६ औषधियोंका क्वाथकर पिलानेसे कफज तृषाका नाश होता है।

(४) हृदयके प्रिय शराबमें अदरक, ज़ीरा, कालानमक और समान शीतल जल मिलाकर पिलानेसे कफज तृषा शमन होती है।

आवश्यकतापर औषधि रूपसे शराब, तमाखू आदिका उपयोग करना हितकारक है। किन्तु व्यसन रूपसे हानिकर है। व्यसन होनेपर ये चीज़ें औषधि रूपसे लाभ नहीं पहुँचा सकतीं।

क्षतज तृषा चिकित्सा

(१) किसी अन्य निरोगी मनुष्यके रक्तका शिरा द्वारा प्रवेश करानेसे तृषाकी उत्पत्ति नहीं होती।

(२) मांस रस या धारोष्ण दूध पिलानेसे क्षतज तृषाका शमन होता है।

(३) शिराद्वारा नमक मिश्रित जलका प्रवेश करानेसे पिपासा निवृत्त होती है।

त्रिदोषज तृषा चिकित्सा

(१) बेलगिरी और बच या सोंठ, मिर्च, पीपल आदि दीपन औषधियों का क्वाथ पिलानेसे त्रिदोषज (आमवृद्धि जन्य) तृषा निवृत्त होती है।

(२) आम और जामुनकी गुठलीकी गिरी या दोनोंके पत्तोंको उबाल थोड़ा-थोड़ा जल और शहद मिलाकर देते रहनेसे आमजन्य प्यास, वमन और दस्त बन्द होते हैं।

(३) अंगूरका रस या मुनक्काका अर्धावशेष क्वाथ नाक द्वारा (या मुखसे) पिलानेसे दारुण तृषा रोगकी भी निवृत्ति होजाती है। इसीतरह ईखका रस, दूध, मुलहठीका अर्धावशेष क्वाथ, शहद मिश्रित जल और नीलोफरका अर्धावशेष क्वाथ इनमेंसे कोईभी पिलाया जाता है।

(४) बड़के अंकुर, मिश्री, लोध, खट्टे अनारदाने और मुलहठीको मिला कल्क करें। फिर कल्क और शहदको चावलके धोवनमें मिलाकर पिलानेसे दूषित आमसे उत्पन्न तृषा और वमन दूर होती है।

(५) तले हुए स्निग्ध भोजन अधिक करनेसे तृषा लगी हो, तो गुड़ मिश्रित जल पिलानेसे शमन होती है।

(६) स्निग्ध भोजनसे अजीर्ण होनेपर मिवाया जल पिलानेसे अजीर्ण और तृषा, दोनों दूर होते हैं।

(७) द्राक्षादि अवलेह—किशमिश १२ तोले तथा कालीमिर्च, पीपर और छोटी इलायचीके दाने १-१ तोला मिलाकर पीस लेवें। फिर शहद २० तोले और अदरकका रस १५ तोले मिलाकर चाशनी करें। इसमें किशमिशकी चटनी मिलाकर अवलेह बना लेवें। इस अवलेहमेंसे ३ से ६ माशे तक दिनमें ३-४ समय सेवन करानेसे आम और कच्चे मलका पचन होता है, मुखमें रसकी वृद्धि होती है तथा कण्ठशोषकी निवृत्ति होती है।

(८) धनंजय वटी या गन्धक वटी देनेसे अरुचि, अजीर्ण, आमप्रकोप और तृषा सब शमन होजाते हैं।

(९) अनार, आंवला और बिजौराको पीस चटनी बनाकर जिह्वापर रगड़नेसे कण्ठशोष दूर होकर तृषाकी निवृत्ति होती है। तृषा शमनार्थ शीतल रस और शीतवीर्य औषधिसे चिकित्सा करनी चाहिये।

(१०) यदि मुँह बेस्वादु हो, तो खट्टे पदार्थोंके कुल्ले करें या आलूबुखारा, अथवा आंवलाको मुँहमें रखकर रस चूसनेसे रुचि उत्पन्न होती है तथा तृषा दूर होती है।

(११) सूर्यके तापसे तृषा बढ़नेपर जौके सत्तूमें बेर, मिश्री और जल मिला मन्थ बनाकर पिलावें, तथा कांजमें तिलका कल्क मिला सारे शरीरपर लेप करनेसे दाह, व्याकुलता और कण्ठशोषका निवारण होता है।

बाह्यक्रिया—(१) अनार, बेर, लोध, कैथ और बिजौराको अनारके रसमें पीस शिरपर लेप करनेसे भीतरकी दाह और तृषा शमन होजाती है।

(२) एक कांसीके कटोरेमें गोबरीकी थोड़ी राख डाल नाभिपर रख ऊपरसे शीतल जलकी धारा डालनेसे दाह और प्यासका शमन होता है।

पथ्यापथ्य विचार

पथ्य—शोधन, शमन, निद्रा स्नान, कवलधारण, कोदों, पुराना चावल, लाल शालि चावल, पेया, लपसी, धानके खीलोंका सत्तू, चावलोंका मांड, विलेपी, शक्कर, मिले हुए खट्टे मीठे जलपान, भुने मूंग या भुने मसूर अथवा भुने चनेका यूष, केलेके फूलका शाक, परवल, काशीफल, पोदीना, खजूर, अनार, आंवले, बिजौरा, इमली, पक्के करौंदे, ज्वर न हो, तो शीतल लेप, स्नान, धनियाँ ज़ीरा, मिश्री शर्बत, मुनक्का, संतरा, मीठा नींबू, अनन्नास, ईखका रस, शहद, आलू-बुखारा, महुएका फूल, छोटी इलायची, आंवलेका मुरब्बा, आमका मुरब्बा, बतासा, नारियलका जल, गोदुग्ध, बकरीका दुग्ध, मांस रस, श्रीखण्ड, पोईका शाक, नेत्रबाला, शतावरी, ताड़के कच्चे फलका रस, जायफल, हरड़, कपूर, सोहागाका फूला, शीतलवायु, पन्ना आदि रत्न-आभूषणोंका धारण और स्त्रियोंके मधुर वार्त्तालाप आदि।

इनके अतिरिक्त जिह्वाके नीचेकी जो दो बड़ी नीली शिरा प्रतीत होती हैं,

उसपर हल्दीको दीपकाग्निसे तपा कर दाग देनेसे तृषा शमन होजाती है, ऐसा प्राचीन आचार्योंका लेख है।

अपथ्य - स्नेहन, अंजन, स्वेदन, धूम्रपान, व्यायाम, नस्य, सूर्यके ताप या अग्निका सेवन, दतौन, स्त्री-समागम, तैलाभ्यङ्ग, गुरुअन्न, अति खट्टे अति नमकीन, कसैले, चरपरे और तीक्ष्ण पदार्थ, दुष्ट जल, सोंठ, पीपल, लालमिर्च, राई, तैल, चाय, कॉफी, दिनमें शयन, उग्रवीर्य या तीक्ष्ण पदार्थ, जवाक्ष और मनको उद्वेग कराने वाला भोजन इत्यादि अपथ्य हैं।

बर्फ, आइसक्रीम आदि शीतल पदार्थोंका अति सेवनभी हानि पहुँचाता है।

४ दाहरोग

कार्डियाल्जिया-पायरोसिज़-वॉटरब्रश
(Cardialgia-Pyrosis-Waterbrash)

रोगपरिचय—पित्तप्रकोप होनेपर हृदय, नेत्र, हाथ, पेरोंके तल और सारे शरीरमें जलन उत्पन्न होता है, उसे दाहरोग कहते हैं। डॉक्टरीमें हार्ट-बर्न और कार्डियाल्जिया हृद्याधरिक प्रदेशके (आमाशयके) दाहको तथा पायरोसिज़ और वॉटरब्रश ये संज्ञा आमाशय रसमें लवणाम्लतीव्र होकर अन्ननलिकामें उछलता रहने से आमाशय, अन्ननलिका और कण्ठमें दाह होने लगती है।

दाह प्रकार–(१) मद्यज, (२) रक्तज, (३) पित्तज, (४)तृषा-निरोधज, (५) शस्त्र-घातज, (६) धातु-क्षयज और (७) अभिघातज।

(१) मद्यज दाह लक्षण—जब मद्यपानजनित ऊष्मा पित्त और रक्तसे मूर्च्छित (प्रेरित) होकर त्वचामें प्राप्त होती है, तब भयंकर दाह उत्पन्न होता है। इसकी चिकित्सा पित्तज मदात्ययके समान करें। इसका विशेष विचार उसी रोगमें किया जायगा।

(२) रक्तज दाह लक्षण—जब सारे शरीरके रक्तमें उफान आने लगता है (किसी अङ्गमें रक्त आवश्यकतासे अधिक बढ़ जाता है), तब अत्यन्त दाह होने लगता है। जिससे मनुष्यको चूसने (अत्यंत नाड़ियाँ खिंचने) और जलनेके सदृश वेदना होती है। शरीर और नेत्र लाल-लाल ताम्बेके समान होजाते हैं। देह, मुँह और श्वासोच्छ्वासमें रक्त-सी गन्ध आती और देह अग्निसे जल रही हो, ऐसा भास होता है।

(३) पित्तज दाह लक्षण—पित्तप्रकोप जनित दाह होनेपर पित्तज्वरके सदृश दाह होता है। पित्तज्वरमें आमाशय दुष्टि आदि लक्षण अधिक होते हैं; वे लक्षण तो इस दाह रोगमें नहीं होते। तथापि पित्तशमनार्थ चिकित्सा दोनोंमें एकसी की जाती है।

(४) तृषा निरोधज दाह लक्षण—तृषाका अधिक निरोध होनेसे अब धातु (रस) का क्षय होकर और अग्नि (शारीरिक उष्णता) बढ़ जाती है। जो सारे शरीरको भीतर और बाहर जलाती है। इस प्रकारमें कण्ठ, तालु और ओष्ठ सूखते हैं। रोगी जिह्वाको बाहर निकाल देता है और काँपने लगता है।

(५) शस्त्रघातज दाह लक्षण—तीर, तलवार, भाले, छुरी आदि शस्त्रका गहरा प्रहार होजानेसे कोष्ठमें रुधिर भर जाता है। फिर उससे दाह होने लगता है। यह दाह दुःसह माना गया है।

कोष्ठ स्थान—आयुर्वेदने कोष्ठके ८ स्थान कहे हैं। आमाशय, अग्न्याशय, पक्वाशय (अन्त्र), मूत्राशय (बस्ति), रुधिराशय (यकृत्), हृदय, उण्डुक (बृहदन्त्र का एक भाग) और फुफ्फुस।

(६) धातु क्षयज दाह लक्षण—रस, रक्त आदि धातुओंके क्षयसे दाह होता है। वह शनैः-शनैः बढ़ता है उस दाहमें मूर्च्छा, तृषा, आवाज़ बैठ जाना, अत्यन्त अशक्ति और भयंकर पीड़ा आदि लक्षण होते हैं। उसकी चिकित्सा यथा समय न होनेपर रोगी दुःख भोग-भोगकर मृत्यु-मुखमें चला जाता है।

(७) अभिघातज दाह लक्षण—मर्मस्थानपर चोट लगनेसे दाह होता है। इसे असाध्य माना है।

मर्मस्थान—(Vital parts) जिस स्थानपर चोट लगनेपर मृत्यु हो जाती है, उसे मर्मस्थान कहते हैं। भगवान् धन्वन्तरिजीने सुश्रुत संहितामें मांसमर्म, शिरामर्म, स्नायुमर्म, अस्थिमर्म और संधिमर्म ये पाँच प्रकारके मर्मस्थान मिलाकर मानव शरीरके भीतर १०७ मर्म कहे हैं। इनमें ११ मांसमर्म, ४१ शिरामर्म, २७ स्नायुमर्म, ८ अस्थिमर्म और २० संधिमर्म हैं। इनमेंसे ११-११ दोनों पैरों और दोनों हाथोंमें मिलकर ४४ हैं। उदर और छातीमें १२, पीठमें १४ और ग्रीवासे ऊपर ३७ मर्मस्थान हैं। इन सब मर्मोंके परिणाम भेदसे ५ प्रकार हैं—

१—सद्यः प्राणहर १९ हैं।

२—कालान्तरमें प्राणहर ३३ हैं।

३—विशल्यघ्न अर्थात् शल्य निकालनेपर प्राण हरने वाले ३ हैं।

४—वैकल्यकर अर्थात् विकलताकारी ४४ हैं।

५—रुजाकर अर्थात् अति व्यथा उत्पादक ८ हैं।

इनमेंसे पहले प्रकारके मर्मस्थानपर अधिक चोट लगनेपर ७ दिनके भीतर मृत्यु होजाती है। प्रथम प्रकारके सद्यः प्राणहर मर्मोंमें ४ शृंगाटक, १ अधिपति, २ शङ्ख, ८ कण्ठ शिरा, १ गुदा, १ हृदय, १ बस्ति और १ नाभि मिलकर १९ मर्मस्थान हैं।

सुश्रुत संहिता और जेज्जट आचार्यके मतानुसार रक्तजदाहका मद्यज दाहमें अन्तर्भाव होता है और क्षतज तथा शोकज दाह सातवाँ कहा है, इन क्षतज और शोकज दाहोंके लक्षण निम्नानुसार हैं—

क्षतज और शोकज दाह लक्षण—जहरी बाणोंसे मारे हुए पशुओंके मांसका सेवन और अपने देह या आप्तवर्ग या धन आदिका नाश होनेपर शोक करनेसे अत्यन्त अन्तर्दाह उत्पन्न होजाता है। इसमें तृषा, मूर्च्छा प्रलाप आदि लक्षण होते हैं।

इसतरह कभी-कभी उपवाससे भी पित्त प्रकुपित होकर दाहकी उत्पत्ति होजाती है।

साध्यासाध्यता—जिस रोगीका शरीर बाहरसे शीतल होगया हो, और भीतरमें भयंकर दाह होरहा हो, उस रोगीका रोग असाध्य माना गया है।

दाहका डॉक्टरी विवेचन

छातीमें जलन (Cardialgia) यह साधारण लक्षण है, फिरभी उसका स्पष्टीकरण करना कठिन है। मिर्च, राई, शराब, तमाखू आदि दाहक पदार्थोंके अति सेवन और उन द्रव्यके आमाशयमेंसे उछलकर अन्न नलिकाके निम्न सिरेमें लगते रहनेपर दाहकी उत्पत्ति होती है। इन द्रव्योंके साथ सामान्यतः आमाशयका अम्लरसभी मिला होता है, तथापि वह लवणाम्ल रहित होता है। बारम्बार उत्क्लेश +(Regurgitation) होता रहनेसे अन्ननलिकामें स्थानिक प्रदाह (Localized Oesophagitis) होजाता है। ऐसी स्थितिमें आमाशयमें अधिक गैसभी होती है। वहभी बार-बार दाहक उद्‌गार आकर बाहर निकलती है। इस गैसके कारण आमाशयमें व्याकुलताभी रहती है।

प्रसेक अर्थात् मुँहमें थूक बार-बार आते रहना (Waterbrash) इसकी उत्पत्ति ग्रहणीके व्रण और आमाशय रसमें लवणाम्लका अतियोग होनेपर होता है। इस विकृतिमें कौड़ी प्रदेशमें वेदना, खिंचाव या दाह होता है। मुँहमें अति थूक आते रहनेसे अनेक बार लाला उत्पादक कर्णमूलिका ग्रन्थियोंका शोथ हो जाता है। यदि इस थूक (लाला) को निगल लेवें, तो ग्रहणीके व्रणकी वेदनामें सामयिक शान्ति प्रतीत होती है। यदि लक्षण प्रबल हों, तो वे गम्भीर क्षतकी सूचना देते हैं। ग्रहणीव्रण, पित्ताशयाश्मरी, अपचन, उपान्त्र विकृति, शेषान्त्रक उण्डुकावर्त्तन, उदरगुहापतन (Visceroptosis), आमाशय अन्त्रकी वातनाड़ियोंकी क्रिया विकृति, अत्यधिक धूम्रपान आदिमें भी उत्क्लेश और प्रसेक होसकते हैं।

दाह लक्षण—२ प्रकारके होते हैं। १ आमाशयिक तीव्र वेदनासह, २ हृदयाघातज।

(१) आमाशयिक तीव्र वेदनासह दाह—इस प्रकारमें न्यूनाधिक वेदना, और दाह होता है अत्यधिक बार विंधनवत् या भेदनवत् गंभीर पीड़ा मध्य फलक

+ उत्क्लिश्यान्नं न निर्गच्छेत् प्रसेकष्ठीवनेरितम्।
हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत्॥
॥ सु० शा० अ० ४–५२॥

अन्न (आमाशयमें) प्रक्षुब्ध होनेसे आगे ग्रहणीमें न जाय, प्रसेक (मुखमें रस बार-बार भरता रहे) और ष्ठीवन (थूकने केलिये) प्रेरणा करता रहे तथा हृदयमें पीड़ाका भास हो, उसे उत्क्लेश कहते हैं।

(Gladiolus) के निम्न सिरेके मध्यमें, विशेषतः दूसरी और पाँचवीं उपपर्शुकाके बीचमें। भोजनके १ घण्टा या अधिक समयके पश्चात्, जब पचन क्रिया पूर्ण रूपमें पहुँची हो, तब पीड़ाका आरम्भ नियमित या अकस्मात् पीड़ाकी आध या १ घण्टे तक वृद्धि और कभी-कभी कुछ घण्टे तक स्थिर कारण विशेषतः अफारा है। उपचार सज्जीखार (Sodabai Crab) 'शंखवटी' और रेवाचीनी आदिका सेवन है।

(२) हृदयाघातज दाह—इस प्रकारमें मरोड़नेके सदृश तीव्र वेदना हृदय प्रदेश (Precordial region) में, विशेषतः हृदयके शिखरके समीप होती है। वेदना अकस्मात्, क्वचित् ही कुछ मिनटोंसे अधिक समय तक रहती हो। वेदनाकालमें रोगीको प्रायः सामान्य श्वसन क्रिया करनेमें भी कष्टकी कुछ वृद्धि होती है। इसलिये १–२ मिनट तक उथला श्वास लेता है। जब शूल निवृत्त होता है, तब वह सामान्य श्वसनकर सकता है। पुनः शूलकी आवृत्ति कुछ मिनटों या घण्टे बाद होती है। इसमें प्रायः हृदयस्पन्दन नहीं होता, किन्तु कितनेक रोगियोंमें गंभीर स्पन्दन उसी समय या वेदना निवारणके पश्चात् होता है।

जब आक्रमण केवल नैमित्तिक हो और श्वासकी लघुता न हो, तब हृदय पीड़ाकी अपेक्षा आमाशयकी अनियमितताका अधिकतर संभव है। आक्रमण बारम्बार होता हो और रोगी अति अस्वस्थ हो, तब तुरन्त निर्णय करना चाहिये, कि हृदया-प्रदेशमें शूल है या आमाशयिक, वह बहुधा हृदयसे सम्बन्ध वाला नहीं होता—किन्तु वसामय या सौत्रिक तन्तुमय हृदय, शराबके व्यसनी और तमाखूके व्यसनीके हृदयको मुक्त मान लेना, यह भी कठिन है।

रोगीको वारीप और उड्डयनशील, तैलप्रधान आध्मान नाशक, पाचन औषधि–सोडाबाई कार्ब, सौंठ, सोवा, सौंफका तेल, पीपरमेण्ट आदि लाभ पहुँचाती है। फिरभी यह नहीं कहसकते कि, आमाशयकी प्राथमिक विकृतिही थी।

जब हृदय निर्बल बनता है, तब आमाशयमें भी न्यूनाधिक वेदना अपचन, आमाशय प्रदाह, आध्मानसह अपचन आदि उत्पन्न होती हैं। यह वेदना कौड़ी प्रदेशमें उरः फलकके नीचे प्रायः विंधनवत् होती है और उसके किरण छातीमें वाम ओर फैलते हैं। इसका निश्चित सम्बन्ध भोजनसे है, वमन और उद्गार आनेसे शान्ति होती है। इस रोगसे छातीमें उर: फलकके निम्न भागमें दाह होता है। संभव है कि, इसका हेतु आमाशयिक अम्लद्रव्यका अन्ननलिकामें उत्क्लेश और प्रसेक होता हो। यदि वह दाह दीर्घकाल स्थायी हो, तो व्रण अर्बुद आदि कारणोंसे होसकती है।

कभी उपदंश, सुज़ाक आदि रोगोंके विष या शराब, सोमल, ताम्र आदि दाहक विषसे दाह होता है, वह सर्वाङ्गमें होता है। साथमें मूल हेतु या रोगके अन्य लक्षणभी उपस्थित होते हैं। पित्तज्वरमें भी दाह सर्वाङ्गमें होता है किन्तु इस दाहके साथ शारीरिक उत्ताप, स्वेदाधिक्य, व्याकुलता, वमन, शिरदर्द आदि अन्य लक्षणभी प्रतीत होते हैं।

दाह चिकित्सोपयोगी सूचना

सामान्यतः सब प्रकारके दाह रोगमें पित्तकी प्रधानता रहती है, अतः पित्त नाशक उपचार करना चाहिये। दाह रोगमें उदरको शुद्ध रखना चाहिये।

दाह शामक औषधियोंका विवेचन वैज्ञानिक विचारणामें किया है। उस ग्रन्थके भीतर पित्तशामक औषधियोंके भीतर काकोल्यादि गण, न्यग्रोधादि गण, पञ्चतृण मूल लिखे हैं। वे सब दाहको नष्ट करते हैं। एवं पित्तपापड़ा और श्वेतचन्दन तथा आँवला दाहशमनार्थ उपयोगमें अधिक लिये जाते हैं।

मद्यज दाहमें लंघन कराकर संतर्पण भोजन कराना चाहिये। (इस संतर्पण की विधि चि० त० प्र० प्रथम-खण्ड पृष्ठ ४६२ में दी है।) एवं जंगलके जीवोंके मांसका रस देवें। फिरभी दाह शमन न हो, तो शिरामें से रक्त निकालना चाहिये। इसका वर्णन चि० त० प्र० प्रथम-खण्डके शिरावेध विचारमें पृष्ठ १०६ में किया गया है।

दाह रोगीके शरीरमें, घीको सौ बार धोकर मालिश करें। अथवा जौके सत्तू, बेरके पत्ते तथा आँवले सहित धान्याम्ल नामक काँजीका लेप करें अथवा रोगीको काँजीमें भीगे हुए वस्त्रसे ढकें या शरीरपर चन्दनका लेप करें। मद्यज दाहमें उपद्रव शमन हो गये हों; तो उसकी विरेचन आदि क्रियासे संशुद्धि कराके चिकित्सा करनी चाहिये।

रोगीको कमलके पत्र और केलेके पत्तोंकी शय्यापर सुलावें। चन्दन मिले हुए जलके कण जिनमेंसे गिरते हों, ऐसे पंखोंसे पवन करें। दाह और तृषाको शमन करने केलिये जलका सिंचन करना, जलमें घुसकर स्नान करना और शीतल जलका ही उपयोग करना चाहिये। थोड़ा-थोड़ा मिश्री मिला जल, दूध, ईखका रस, फालसे, सन्तरे या मोसम्मीका रस या मन्थ पिलाना चाहिये।

मन्थके अनेक प्रकार हैं। मन्थ फाँटका भेद है—४ पल शीतल जलमें १ पल औषधि द्रव्य मिला मिट्टीके बर्तनमें भिगो फिर मथकर उसमेंसे दो पल पिलाया जाता है।

खजूर, दाड़िम, द्राक्षा, पकी इमली आदिका इसीतरह मन्थ बनाकर पिलाया जाता है। या सत्तूका मन्थ पिलाया जाता है। सत्तूके मन्थको 'तृष्णा-दाहास्र पित्तहा' अर्थात् तृषा, दाह और रक्तपित्तका नाशक कहा है।

फूल प्रियंगू, लोध, सुगन्धबाला, खस, नागकेशरके पत्ते, केवटी, मोथा और पीत चन्दन, इनका रस निकालकर प्रलेप करनेसे दाह रोगमें लाभ पहुँच जाता है।

जिस सरोवरमें रंगबिरंगे मनोहर कमल खिल रहे हों, उसमें स्नान करना, और जिस मकानमें फुहारे छूट रहे हैं, ऐसे भवनमें बैठना, तथा सर्वाङ्गमें चन्दनका लेप लग रहा हो, ऐसी स्त्रीसे वार्तालाप करना आदि उपचारोंसे दाहकी निवृत्ति होती है।

सुगन्ध बाला, पद्माख, खस, चन्दन और कमलसे सुवासित किया हुआ जल एक टबमें भर देवें और उसमें दाह-पीड़ित मनुष्यको बैठानेसे तत्काल दाहकी निवृत्ति होती है।

रक्तसंचयजनित दाहमें सद्योव्रण चिकित्साका आश्रय लेना चाहिये। आमाशयमें रक्तसंचय होनेपर वमन करावें। पक्वाशयमें रक्तसंचय होनेपर विरेचन करावें।

धातुक्षयज दाहमें रक्तपित्तके समान स्निग्ध और वातशामक उपचार करना चाहिये।

आमाशयद्रव उग्र होगया हो, तो आगे अम्लपित्तमें लिखे अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

वातनाड़ी क्रिया विकृति जनित दाहमें कौनसा भोजन अनुकूल रहता है, या कौनसा प्रतिकूल, यह निर्णय रोगीको पूछकर करना चाहिये। सामान्यत: उत्तेजक पेय-शराब, चाय, कॉफी, गरम-गरम दूध आदि सब हानिकर होते हैं। प्रातःकाल उठनेपर जलपानका अभ्यास करलें, तो यह अधिकहितकर रहता है। भोजन करनेके १५-२० मिनिट पहले नींबूका रस मिला हुआ जल लाभदायक है। इसतरह भोजनके २ घण्टे बाद गन्धक वटी, सोडा बाईकार्ब, धनंजयवटी, शंख वटी आदि हितकारक हैं। औषध रूपसे प्रवाल, मुक्ता, कामदूधा, शुक्ति, शंख, वराटिका आदि अनुकूल रहती हैं।

दाह चिकित्सा

(१) चन्दनादि कषाय—सफेद चन्दन, पित्तपापड़ा, सुगंधबाला, खस, नागरमोथा, कमलगट्टा, कमलकी नाल, सौंफ, धनियाँ, पद्माख और आँवले इन ११ औषधियोंको समभाग मिला अर्धावशेष क्वाथ बनावें। इस क्वाथको दिनमें ३ समय मिश्री और (शीतल होनेपर) शहद मिलाकर पिलानेसे उग्र दाहकाभी शमन होजाता है।

(२) प्रवालपिष्टी २ रत्ती, गिलोयसत्व ४ रत्ती और सितोपलादि चूर्ण २ माशे मिलाकर शर्बत अनारके साथ देनेसे दाह सत्वर शमन होता है।

(३) धनियाँ, सौंफ और ज़ीरा, तीनों मिलाकर २ तोलेको रात्रिके समय मिट्टीके पात्रमें भिगो सुबह मसल-छान मिश्री मिलाकर पिलानेसे दाहका नाश होता है।

(४) बेरकी गुठलीका मगज़ और आँवलोंके रसको जौके सत्तूमें मिलाकर खिलानेसे दाहका नाश होता है।

(५) काँटे वाली चौलाईका मूल, धनियाँ और सौंफको दूधमें पीस-छान मिश्री मिलाकर पिलानेसे दाह निवृत्त होता है।

(६) गिलोय या पित्तपापड़ेका स्वरस या हिम पिलानेसे दाह दूर होजाता है।

(७) मद्यज दाहपर—रसतन्त्रसारमें लिखे हुए प्रयोग राजावर्त्त भस्म या राजावर्त्त रसका सेवन कराना विशेष हितकारक है।

(८) पित्तप्रकोपज दाहपर—रसतन्त्रसारमें लिखा हुआ पर्पटादिक्वाथ, रसादि चूर्ण अथवा मौक्तिक पिष्टीका (अमृतासत्व और शर्बत गुलाबके साथ) सेवन कराना चाहिये।

(९) रक्तपित्तज दाहपर—रसतन्त्रसारोक्त चन्द्रकला रस, कुष्माण्डावलेह, वासावलेह, एलादिवटी या भृङ्गराजासवका सेवन हितकारक है।

(१०) क्विनाइन-जनित दाह पर—सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल पिष्टी और अमृतासत्व मिलाकर शहद या शर्बत अनारके साथ या मौक्तिक पिष्टी और गिलोयसत्व दूधके साथ देवें।

(११) अम्लदाह पर—जसद भस्म और मिश्री मिलाकर दूधके साथ सेवन करावें। या रौप्यभस्म च्यवनप्राशावलेहके साथ देवें।

(१२) जीर्णज्वर-जनित दाह पर—रसतन्त्रसारमें लिखी हुई औषधियाँ—संशमनीवटी, सुवर्णमालिनी वसंत, लघुमालिनी वसंत, चन्दनादि लोह या अमृतारिष्टका सेवन कराना चाहिये।

(१३) उपदंशज दाह पर—अष्टमूर्त्ति रसायन या गंधक रसायन और प्रवालपिष्टी देवें।

(१४) सुज़ाक-जनित दाह पर—चन्द्रप्रभावटी, गोक्षुरादि गूगल या प्रमेहान्तक वटीका सेवन कराना चाहिये।

(१५) मलावरोधको दूर करने केलिये—रसतन्त्रसारोक्त स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण, गुलकंद, त्रिवृदष्टक मोदक या आरग्वधादि क्वाथका (उदरमें कच्चा मल या विष हो, तो) सेवन कराना चाहिये।

(१६) बाह्यलेप—(अ) खसको दहीमें पीसकर लेप करें या चन्दनको जलमें घिसकर पतला-पतला लेप करें। सूखनेपर बार-बार कपड़ेसे पोंछ कर हटा दें और नया लेप करें।

(आ) दहीको कपड़ेमें बाँध जल निकाल देवें। फिर उसकी मालिश करनेसे दाहकी निवृत्ति होजाती है।

(इ) नीमके पत्तोंको पानीमें पीसकर कल्क करें। फिर जलमें घोल मन्थन करें। उसमें झाग आवें उनकी मालिश करनेसे दाह शमन होता है। मद्यज दाह आदि में शरीरका वर्ण काला होजाता है, वहभी इस मालिशसे सुधर जाता है।

(ई) शतधौतघृतमें जौका सत्तू मिलाकर मालिश करें।

काँजिक तैल—६८ तोले तिल-तैलको १०२४ तोले काँजीमें मिला मन्दाग्नि पर पकावें। पाक होनेपर कड़ाहीको उतार तुरन्त तैलको छान लेवें। इस तैल की मालिशसे दाह और व्याकुलता दूर होती है। यह सार्वाङ्गिक दाहमें हितकर है।

पथ्यापथ्य

पथ्य—पित्तशामक और कड़वी (किन्तु शीतल गुणवाली) वस्तुका सेवन अत्यन्त हितकारक है। ज्वर न हो, तो शीतल जलसे स्नान, चंदनादिका लेप, शतधौत घृतकी मालिश, शर्बत, शीतलवायु और चंद्र किरणोंका सेवन, ईखका रस, ताज़ा गोदुग्ध, दूधमेंसे निकाला हुआ मक्खन, दहीमें से निकाला हुआ मक्खन, घृत, सिरकामें भिगोया हुआ कपड़ा कपालपर रखना, बालिकाओंकी तोतली भाषा, कुमारिकाओंका गान सुनना, सन्तरा, मीठा नींबू, मोसम्मी, सेव, मीठा अनार, फालसा, अंगूर, मुनक्का, किशमिश, खजूर, शालि चावल, साठी चावल, मूंग, मसूर, चना, जौ, जंगलीपशुओंके मांसका रस, धानका लावा, मावा, पेठा,

ककड़ी, केला, पनस, परवल, मीठी तुम्बी, कड़वी तुम्बी, कंदुरी, कसेरू, साबूदाना, कच्चे नारियलका जल, चौलाई, पपीता इत्यादि पथ्य हैं।

अपथ्य—व्यायाम, सूर्यके तापका सेवन, मट्ठा, ताम्बूल, शहद, हींग, सरसों, राई, विदाही पदार्थ, पित्तवर्धक पदार्थ, लालमिर्च, तेज़ खटाई, मैथुन, चरपरी, कड़वी (किन्तु उष्ण गुण वाली) और उष्ण वस्तु, क्षुधा-तृषा आदिके वेग धारण, शराब, धूम्रपान, गरम चाय आदि उत्तेजक पदार्थोंका सेवन, तैल, नारियलकी गिरी इत्यादि अपथ्य हैं।

५. शूलरोग

वजअ-उल-मेअ्दा, कॉलिक-Colic.

रोग-परिचय—शूल (कांटे) चुभकर टूट जाने समान पीड़ा होनेपर शूलरोग कहलाता है। यह शूल आमाशय, अन्त्र, फुफ्फुस, वृक्क, पित्ताशय, हृदय, मस्तिष्क आदि अनेक स्थानोंमें निकलता है। यह शूल जब अन्त्रमें चलता है, तब अन्त्रकी मांसपेशियोंकी दीवारोंमें साक्षेप संकोच होता है। बहुधा यह नाभि प्रदेशके पास प्रबल वेगपूर्वक उत्पन्न होता है। उदर दबानेपर शूल शमन होजाता है। उस अन्त्रके शूलके समय हृदयकी क्रिया क्षीण होजाती है। इस अन्त्रके अतिरिक्त आमाशय, यकृत्, वृक्क आदि स्थानोंमें भी शूल उत्पन्न होजाता है। इन सब स्थानोंके शूलोंमें से अन्त्र, आमाशय और पित्ताशय शूलका यहाँ प्रधानतासे विवेचन किया जायगा। शेष शूलोंका वर्णन यथा स्थान करेंगे।

डॉक्टरीमें पृथक्-पृथक् स्थानोंके शूलोंके नाम निम्नानुसार पृथक् पृथक् रक्खे हैं।

(१) उदरगुहाके किसीभी प्रदेशका शूल—कॉलिक-Colic.
(२) अन्त्रशूल-एन्टराल्जिया—Enteralgia.
(३) आमाशय शूल-गेस्ट्राल्जिया—Gastralgia.
(४) यकृत्शूल-हेपटिक कॉलिक--Hepatic Colic.
(५) पित्ताशयमें शूल Biliary Colic.
(६) अन्त्रपुच्छमें शूल-Appendiculer Colic.
(७) लाला ग्रन्थियोंमें पीड़ा-Salivary Colic.
(८) आध्मानज शूल-Colic Flatulent.
(९) मलवृद्धिजन्य शूल-Colic Stercoraceous.
(१०) अपचनजन्य अन्त्रशूल-Scybalous.
(११) मासिकधर्ममें शूल-Menstrual Colic.
(१२) स्त्रियोंके बीजकोषमें शूल—Ovarian Colic.
(१३) वृक्क स्थानमें शूल-रेनल कॉलिक—Renal Colic.
(१४) वातनाड़ियोंकी क्रिया विकृतिशूल-Neuralgia.
(१५) नाग (सीसा) विषज शूल-Lead Colic.

इसतरह हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस, वृक्क, गर्भाशय आदि प्रदेशोंके शूल और कृमि, अपानवायु, ताम्रविष, औषधविष आदिसे उत्पन्न शूलोंको भी पृथक्-पृथक् संज्ञा दी है। हूर्ष हे फ्रेंचने १०० से अधिक रोगोंमें शूल लक्षण दर्शाया है।

जब वातकी वृद्धि करने, पित्तका ह्रास करने और कफका मिथ्या-योग कराने वाले आहार-विहार, अथवा पित्तका अतियोग, वायुका हीनयोग और कफका मिथ्या योग कराने वाले आहार-विहार अथवा कफका अतियोग, पित्तका हीनयोग और वायु का मिथ्या-योग कराने वाले आहार-विहारका सेवन करनेपर इस शूल रोगकी उत्पत्ति होती है अर्थात् वात, पित्त, कफ इन तीनों धातुओंमें अति-हीन या मिथ्या-योग होनेपर शूल प्रकाशित होता है। उदरशूलोंमें विशेषतः प्राण, अपान और समान वायुका अतियोग होता है। पित्तका मिथ्या-योग हो, तो दाहसह तथा कफका मिथ्या-योग होनेपर आध्मानसह शूल चलता है।

यह रोग वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, आमज, वातपित्तज, वातकफज और पित्तकफज, इन भेदोंसे ८ प्रकारका है। इन सब प्रकारके शूलोंमें वायुकी प्रधानता रहती है। इन शूलोंके अतिरिक्त परिणाम शूल और अन्नद्रवशूलको आचार्योंने पृथक् माना है। अलावा पित्ताशयशूल, हृदयशूल, कृमिजशूल, शिरःशूल, पार्श्वशूल (उरस्तोय-कुक्ष्युदर), कर्णशूल, दन्तशूल, वृक्कशूल, बस्तिशूल आदि भिन्न-भिन्न स्थानोंमें शूल चलते हैं। इनका वर्णन मूल रोगोंके साथ यथा स्थान किया जायगा।

वातज शूल निदान—व्यायाम, रथ, घोड़ा आदि पर सवारी, अति मैथुन, रात्रिमें जागरण, अधिक शीतल जलपान, मटर, मूँग, अरहर या कोदों आदि रूक्ष, वात प्रकोपकर अन्नका अति सेवन, भोजनपर भोजन, चोट लगना, कसैली और कड़वी वस्तुओंका अधिक सेवन, अंकुर निकले हुए (मूँग, चना, मोठ आदि) अन्नका अधिक सेवन, दूध-मछली आदि विरुद्ध पदार्थोंका सेवन, शुष्क मांस, भिण्डी, गुंवार आदि सूखे शाक, मल-मूत्र, अधोवायु या वीर्य आदिके वेगका अवरोध, शोक, उपवास, अति हँसना, अति बोलना इत्यादि कारणोंसे वायु प्रकुपित होकर हृदय, पार्श्वपृष्ठ; त्रिक स्थान और मूत्राशय आदि स्थानोंमें (और अन्न पचन संस्थानमें) शूल उत्पन्न करता है।

वात प्रकोप काल—भोजन पचन होजानेपर प्रातः सायं दोनों सन्ध्याओंमें, वर्षाऋतु और शीतकालमें वायु अधिक प्रकुपित होता है। अतः इन समयोंपर बहुधा वातिक शूलकी उत्पत्ति होती है।

वातिक शूल लक्षण—बार-बार शूलकी उत्पत्ति और शमन, मल-मूत्रावरोध, तोड़ने और भेदन करने समान पीड़ा, स्वेदन, सेक, तैलमर्दन, स्निग्ध और उष्ण भोजन करनेसे शान्त होजाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं।

निराहार अवस्था (आहार करनेके पहले और पच जानेके पश्चात्) में तीव्र शूल चले, शरीर स्तब्ध होजाय, श्वासोच्छ्वास कष्टपूर्वक चले, अधोवायु और मल-मूत्र त्याग कष्टपूर्वक हो, ये वातिक शूलके लक्षण सुश्रुत संहितामें लिखे हैं।

पित्तज शूल निदान—क्षार, अति तीक्ष्ण (राई आदि), उष्ण (मिर्च आदि), विदाही (बांसके अंकुर, करीर, केर आदि), तैल, निष्पाव (सेम), तिलकी खल, कुलथीका यूष, चरपरी और खट्टी वस्तु मिलाकर जौके आटेमेंसे बनाई हुई कांजी, सिरका, क्रोध, अग्निका सेवन, परिश्रम, सूर्यके तेज तापमें ज़्यादा फिरना, अधिक मैथुन और पित्तप्रकोपक अन्य वस्तुओंके सेवनसे पित्त दूषित होकर नाभिमें शूल उत्पन्न करता है।

पित्तज शूल लक्षण—तृषा, मोह, दाह, नाभिमें पीड़ा, प्रस्वेद, मूर्च्छा, भ्रम और तोड़ने समान पीड़ा आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। यह शूल प्रायः मध्याह्न कालमें, अर्धरात्रि, ग्रीष्मऋतु, शरद्ऋतु और भोजन पाक होना, इन समयोंमें अधिक होता है। शीतकाल, शीतवीर्य भोजन, शीतल भोजन और मधुर रससे शमन होजाता है।

कफज शूल निदान—अनूप देशके और जल-चर जीवोंके मांस, किलाट (दूधमें मट्ठा डाल फाड़कर मावा आदि मिठाई बनाना), खीर, दही, ग्राम्य पशुओंके मांस, ईखका रस, उड़द आदिके बड़े, दहीबड़े, खिचड़ी, तिल, कचौरी और कफ प्रकोपक वस्तुओंके अति सेवनसे श्लेष्म प्रकुपित होकर शूल चलता है।

कफज शूल लक्षण—उबाक, खांसी, अंग टूटना, अरुचि, मुँहमें बार-बार कफ आना, आमाशयमें भारीपन और पीड़ा, बद्धकोष्ठ, शिरमें भारीपन, सर्वदा भोजनकर लेनेपर शूल चलना, सूर्योदयके समय एवं शिशिर और वसन्त ऋतुमें अधिक शूल चलना आदि लक्षण होते हैं। कफज शूलका भोजन करनेपर तुरन्त प्रारम्भ होजाता है।

वातजशूल भोजन पचन हो जानेके पश्चात्, पित्तजशूल भोजनके पचनकालमें और कफज शूल भोजन करनेपर तुरन्त होता है। इस दृष्टिसे तीनोंके समयमें अन्तर रहा है।

त्रिदोषज शूल लक्षण—जो शूल, हृदय, पार्श्व, पीठ, त्रिक्, मूत्राशय, नाभि और आमाशय आदि सब स्थानोंमें चलता है; जिसमें अति कष्ट हो और वात, पित्त कफ तीनोंके लक्षण प्रतीत होते हों, उसे त्रिदोषज शूल कहते हैं। यह रोगीको अति कष्ट देता है। इसे शस्त्रसाध्य या असाध्य माना है।

कुक्षि शूल लक्षण—वायु प्रकुपित होकर जब जठराग्निपर आक्रमण करती है, तब खाया हुआ भोजन स्तब्ध होजाता है; पचन नहीं होता। श्वास भर जाना, कच्चे अन्न (आम) के दस्त, बार-बार उदरमें शूल चलना और बैठने-लेटने, या खड़े रहनेमें चैन न पड़ना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

आम शूल निदान—बार-बार अधिक भोजन करनेसे जठराग्निमन्द होकर उदरमें वात-वृद्धि होती है। फिर वायु अन्नके चारों ओर रह बीचमें अन्नका पचन नहीं होने देता और उसमेंसे आम बनाकर शूल उत्पन्न कर देता है। उसे सुश्रुत संहितामें कुक्षि शूल संज्ञा दी है।

आम शूल लक्षण—अफारा, उबाक, वमन, देहमें भारीपन, मन्दता, उदरमें आम और मलका अवरोध, मुँहसे लार गिरना तथा कफ शूलके समान लक्षण होते हैं।

अन्य ग्रन्थोक्त आम शूल लक्षण—मूर्च्छा, आध्मान, अपचन, दाह, हृदयमें पीड़ा, विलम्बिका रोगके लक्षण उपस्थित होना, कम्प, वमन, थोड़ा-थोड़ा दस्त आना और प्रमेह आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

यद्यपि इस आमशूलमें कफशूलके समान लक्षण प्रतीत होते हैं, तथापि यह शूल पहले आमाशयमें चलता है, फिर दोषसम्बन्ध होकर अन्त्र, मूत्राशय, नाभि, हृदय, पार्श्व और उदर देशमें होने लगता है।

पूर्वाचार्योंने दोष भेदसे शूलके स्थान-सम्बन्धमें कहा है कि:—

वातात्मकं बस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम्।
हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देहेषु च सन्निपातात्॥

वातात्मक शूल बस्ति स्थानमें, पित्तात्मक नाभि स्थान (अर्थात् आमाशय और पित्ताशयमें) कफात्मक हृदय, पार्श्व और उदरमें तथा त्रिदोषज सारे शरीरमें चलता रहता है।

द्विदोषज शूल—कफवातज शूल, मूत्राशय, हृदय, पसलियों और पीठमें चलता है। कफपैत्तिक शूल उदर, हृदय और नाभिमें तथा वातपैत्तिक शूल सारे शरीरमें घोर पीड़ा, दाह और ज्वरसह चलता रहता है।

साध्यासाध्यता—एक दोषज शूल साध्य, द्विदोषज शूल कष्टसाध्य और वेदना, तृषा, मूर्च्छा, आनाह, भारीपन, अरुचि, कास, श्वास, हिक्का, ज्वर, भ्रम, वमथु आदि घोर उपद्रवोंसह त्रिदोषज शूलको असाध्य माना है।

जिस शूलमें वात, पित्त, कफ तीनों दोषोंके मिश्रित लक्षण मिलते हों तथा रोगी क्षीण मांसवाला, निर्बल और मन्दाग्निवाला हो, उसके रोगको असाध्य माना है।

पार्श्व शूल लक्षण—जब कोख और पसलियोंमें स्थित कफ वायुका अवरोध करता है। तब निरुद्ध वायु तुरन्त आध्मान और उदरमें गड़गड़ाहट उत्पन्न करता है। फिर सुई चुभनेके समान पीड़ा, कष्टपूर्वक श्वासोच्छ्वास चलना, अन्नकी इच्छा न होना और निद्रा न आना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

हृच्छूल—जब वायुका कफ और पित्तसे अवरोध होजाता है, तब वायु रसवाहिनियोंमें प्रवेशकर रसके साथ मिलकर हृदयमें या हृदयके समीप देशमें शूल उत्पन्न करती है। जिससे श्वासोच्छ्वासका प्रति अवरोध होता है। इस रोगको हृद्रोग मानकर प्रयत्न करना चाहिये।

बस्ति शूल—जब मल, मूत्र और अधोवायुके वेगका निग्रह किया जाता है, तब वायु प्रकुपित होकर बस्ति स्थानमें आवर्त (चक्कर) रूपसे घूमने लगती है। फिर बस्ति, वंक्षण स्थान और नाभिमें शूल चलता है तथा मल, मूत्र और अधोवायुका अवरोध होजाता है।

मूत्रशूल—जब प्रकुपित वायु मूत्रप्रसेक नलिकामें प्रवेशकर अवरोध करती है, तब नाभि, वंक्षण, पार्श्व भाग और उदर स्थानमें शूल चलता है, उसे मूत्रशूल कहते हैं।

विट्शूल—रूक्ष आहार करने पर वायु प्रकुपित होकर मलको कोष्ठमें रोक

देती है, अग्निको मन्द कर देती है तथा मार्गको रोककर तीव्र शूल उत्पन्न करती हुई दाहिनी या बाँयी कोखमें पहुँचती है। पश्चात् तुरन्त सारे उदरमें गुड़-गुड़ाहटके साथ तीव्र शूल चलने लगता है। इसमें तीव्र तृषा, भ्रम, मूर्च्छा, मल मूत्रके त्याग होनेपर भी शान्ति न होना आदि लक्षण होते हैं।

परिणामशूल (पक्तिशूल)

परिणाम शूल निदान—जब अपने कारणोंसे कुपित हुई बलवान वायु, कफ और पित्तके साथ मिल जाती है। तब परिणाम शूलको उत्पन्न करती है। यह शूल भोजन पचनेके समयमें चलने लगता है। यह रसवाहिनियोंके मार्गमें विकृति होनेसे होता है और थोड़ा-सा खा लेनेपर या वमन होजानेपर या अन्नपचन होजानेपर शमन होजाता है। पित्त और कफके अनुबन्धसे नाभि, मूत्राशय, स्तनोंके बीच (कौड़ी प्रदेश), पीठ, स्कन्ध, और पार्श्वभागोंमें भी शूल निकलता रहता है।

यह शूल नियत परिणाम कालयुक्त होनेसे पित्तोल्वण माना गया है। अम्ल विपाक वाले आहारसे शूल बढ़ता है और मधुर विपाकवाले आहारसे शमन होता है। इसी हेतुसे चावल और कुलथीके सेवनसे (अम्ल विपाक होनेसे) शूल बढ़ता है; और सोंठ, धनियाँ आदि मधुर विपाकी द्रव्योंसे शमन होता है।

वातिक परिणाम शूल लक्षण—अफारा, गड़गड़ाहट, मलमूत्रावरोध, बेचैनी, कम्प, स्निग्ध और उष्ण पदार्थके सेवनसे शमन होना इत्यादि लक्षण होनेपर परिणामशूल वातप्रधान कहलाता है।

पैत्तिक परिणाम शूल लक्षण—तृषा, दाह, बेचैनी, पसीना, चरपरे, खट्टे और नमकीन पदार्थोंके सेवनसे शूल-वृद्धि होना और शीतल पदार्थ सेवनसे शान्त होना इत्यादि चिन्ह होनेपर परिणामशूल पैत्तिक कहलाता है।

कफजपरिणाम शूल लक्षण—वमन, उबाक, मोह, दीर्घकालतक मन्द-मन्द पीड़ा बनी रहना तथा चरपरे और कड़वे पदार्थके सेवनसे शमन होजाना इत्यादि लक्षणवाले शूलको कफज परिणाम शूल कहते हैं।

यदि दो दोषोंके लक्षण प्रतीत हों तो द्विदोषज और तीनों दोषोंके लक्षण होनेपर त्रिदोषज माना जाता है। बल, मांस और अग्निका क्षय हुआ हो ऐसे त्रिदोषज शूलको असाध्य कहा है।

त्रिदोषज परिणाम शूलका आन्त्रिक व्रणके हेतुसे उत्पन्न होनेका अनुमान है। इस आन्त्रिक व्रण रोगमें निम्न शास्त्रीय लक्षणोंकी पूर्ण रूपसे प्रतीति होती है।

> भुक्तमात्रेऽथवा वान्ते जीर्णे चान्ने प्रशाम्यति।
> षष्टिकव्रीहिशालीनामोदनेन च वर्धते॥

अर्थात् कुछ खा लेनेपर या वमन होजाने पर, अथवा अन्न पचन होजानेके पश्चात् शूल शमन होजाता है; शालि या साठी चावल खानेपर (आमाशयगत लवणाम्ल द्रवमें

तीक्ष्णता आ जानेसे) बढ़ जाता है। इस वचनमें कहे हुए परिणामशूलके लक्षण अन्वय और व्यतिरेक, दोनों दृष्टिसे आन्त्रिक व्रणमें प्रतीत होते हैं। डॉक्टरी ग्रन्थोंके अनुसार इस आन्त्रिक व्रणका निदान आगे लिखा जायगा।

अन्नद्रव शूल

यह अन्नविदाहज शूल पित्तमें भयंकर अम्लता और उष्णताकी वृद्धि होनेपर उत्पन्न होता है। यह शूल भोजन पचनके समयमें और भोजन पच जानेपर भी चलता रहता है। पथ्य भोजनसे, अपथ्य भोजनसे तथा भोजनका त्यागकर देनेपर भी नियम-पूर्वक शमन नहीं होता। इस हेतुसे इसको आचार्योंने असाध्य माना है।

लक्षण—इस शूलमें आनाह (अधोवायु और मलका अवरोध), भारीपन, वमन, भ्रम, तृषा, ज्वर, अरुचि, कृशता, बलक्षय और अति वेदना, अर्थात् शूल रोग कथित दसों उपद्रव मिलते हैं। इस हेतुसे इसे त्रिदोषज और घातक माना है। इसे डॉक्टरीमें आमाशयिक व्रण-जनित माना है। उसमें निम्न शास्त्रीय लक्षण स्पष्ट प्रतीत होते हैं।

अन्नद्रवाख्य शूलेषु न तावत्स्वास्थ्यमश्नुते।
वान्तमात्रे जरत्पित्तं शूलमाशु व्यपोहति॥

इस अन्न द्रव शूलमें जब तक वमन नहीं होती, तब तक शान्ति नहीं होती। वमन होजानेपर जला हुआ पित्त निकल जानेसे तत्काल शूल शमन होजाता है (इस रोगका वर्णन डॉक्टरी आमाशयिक व्रणमें देखें)।

शूल रोगका डॉक्टरी विवेचन

आयुर्वेदिक उदरशूलका सम्बन्ध डॉक्टरीके निम्न ४ रोगोंके साथ रहा है।

१. आमाशयिक शूल (Gastric pain)
२. आन्त्रिक शूल (Intestinal colic)
३. आमाशयिक व्रण (Gastric Ulcer)
४. ग्रहणीमें व्रण (Duodenal Ulcer)

(१) आमाशयिक शूल

आमाशयमें वेदना और शूल निम्न कारणोंसे निम्न रोगोंमें उपस्थित होते हैं।

१. पचन न हो सके ऐसे आहारका सेवन।
२. आशुकारी अपचन (Acute Indigestion)
३. आमाशयमें लवणाम्लका अति योग।
४. आमाशयका संयोजन।
५. शस्त्र चिकित्साके पश्चात्।
६. अभिघात।
७. आमाशयमें व्रण।
८. आमाशयमें कर्कस्फोट।

९. ग्रहणीमें व्रण।
१०. मज्जज आमाशय प्रदाह।
११. पित्ताश्मरी।
१२. पित्ताशय प्रदाह।
१३. उदरगुहापतन (Visceroptosis)
१४. श्लैष्मिक कलामें रक्तस्राव—आशुकारी आक्रमण, श्लैष्मिक पाण्डु, घातक पाण्डु, रक्तपित्त (Purpura)
१५. चिरकारी उद्दीपक विष-सोमल, सुरमा आदि।
१६. नाग (शीशा) विष।
१७. शकुन्तगति रोग (खञ्ज–Tabes Dorsalis)
१८. पूर्णांशमें आमाशयकी रिक्तता।
१९. अपक्रान्तिमय धमनीकोषकाठिन्य (उदरशूलमय)
२०. आमाशयमें वातनाड़ी शूल (Gastralgia)–इसका संक्षिप्त वर्णन चिकित्सा तत्त्वप्रदीप प्रथम-खण्ड पृष्ठ ६१३ में किया है। यहाँपर विस्तारसे विवेचन करते हैं।

आमाशयमें वातनाड़ी शूल

इसमें आमाशयके भीतर आक्षेपात्मक तीव्र वेदना, वमन, क्षुधानाश आदि लक्षण मुख्य होते हैं। साथमें आमाशयके भीतर लवणाम्लका अतियोग विदित होता है।

निदान—अनेक बार आहारकी अनियमितता होनेपर वातवहानाड़ियोंमें उत्तेजना आनेसे इस रोगकी उत्पत्ति होजाती है। एवं शारीरिक परिश्रमका अभाव, मानसिक चिन्ता, क्रोध, भय, मानसिक वेदना, शीत लग जाना आदि सहायक कारण होजाते हैं। शराब, चाय, कॉफी, तमाखू आदिका अति योग, विषमज्वर, वातरक्त, वातनाड़ी प्रधान व्याधियाँ आदि भी रोगोत्पत्तिमें सहायता पहुँचा सकते हैं।

शारीरिक विकृति—प्राणदा नाड़ियोंकी उत्तेजनाजन्य रोगोत्पत्ति होनेपर आमाशयकी आकृतिमें कुछभी अन्तर नहीं पड़ता।

रोगी प्रकार–यह रोग प्राय: स्त्रियोंको युवावस्था और उत्तरावस्थामें होता है।

१ मासिकधर्मकी निवृत्ति (Menopause) के समय अति कष्ट होता हो और स्वास्थ्य गिरा हुआ हो, ऐसी स्त्रियाँ।

२ ओजक्षय (Neurasthenia) सह उद्वेगपूर्ण वातसंस्थान विकृति (Anxiety Neurosis) और अपतन्त्रक। कभी-कभी युवावस्थाके समय।

लक्षण—आक्षेपात्मक प्रकारमें—गम्भीर हृदयाधरिक वेदना, किरण पीठकी ओर। आक्रमण अकस्मात्। इसका आहारके साथ निश्चित सम्बन्ध नहीं है। आक्रमण विशेषतः रात्रिको। आमाशय रिक्त होनेपर भी आहारसे कभी शान्ति और विशेषतः उत्तेजनावृद्धि। सामान्यतः वमन कमी होती है।

वेदनाकी न्यूनाधिकताका आधार आमाशयकी स्थितिपर है। अफारा होने पर वेदना अधिक। ऐसी अवस्थामें दबानेपर अच्छा लगना।

उक्त लक्षणोंके अतिरिक्त दाह, तीव्र क्षुधा, व्याकुलता, क्षीण नाड़ी, शीत लगना और मलावरोध आदि लक्षणभी कभी-कभी हृत्स्पंदन, क्षीणता और मूर्छाभी।

प्रारम्भमें आमाशय खाली है, ऐसा भासता है। फिर वेदनाकी वृद्धि। संज्ञावह या प्राणदा नाड़ियोंके आक्षेप जन्य विकारोंका एक विशेष लक्षण यह है कि उदरको थोड़ा दबानेपर वेदना होती है, और बलपूर्वक दबानेपर वेदना शमन होजाती है या न्यून। कभी वेदना एक स्थानपर और कभी वेदना चारों ओर फैल जाती है। वमन होती है। तो कभी आहार द्रव्य बाहर निकलता है, और कभी-कभी खट्टा गरम पित्त ही निकलता है। वमन हो जानेपर अनेकोंको वेदना शान्त होजाती है। आमाशयमें कभी-कभी वायु संगृहीत होती है, परन्तु डकार आनेपर वायु निकल जाती है। वेदना शमन होनेपर रोगीको निर्बलता आ जाती है। अधिक परिमाणमें पेशाब उतरता है और स्पर्श करनेपर आमाशय कड़ा लगता है।

यह विकार जीर्ण हो जानेपर वेदनाकी तीव्रता घटती जाती है, किन्तु बार-बार आक्रमण होता रहता है और वेदना दीर्घकाल तक रहती है। इस प्रकारके शूल रोगोंकी वेदना शान्त हो जानेपर आमाशय क्रियामें कुछभी अन्तर नहीं पड़ता।

किसी किसी रोगीको इस शूलके साथ श्वास और कासका दौराभी। बाहर शीतल वायुका आघात होनेपर इस शूलका पुन: आक्रमण, किसी-किसी रोगीको विषम ज्वर आ जानेके पश्चात् भी वातवहानाड़ियोंके शूलकी उत्पत्ति। ऐसे रोगीपर आक्रमण निश्चित समयपर होता रहता है।

इस शूलकी उत्पत्ति होनेपर आमाशय प्रदेशमें अत्यधिक वेदना तथा वहाँसे ऊर्ध्व वक्ष प्रदेशतक और निम्न उदर भागमें थोड़ी-थोड़ी वेदना होती रहती है। किसी किसी को पृष्ठ देशमें और स्कन्धपर भी बिंधनेके समान कभी-कभी पीड़ा।

आमाशयस्थ वातवहानाड़ियोंकी विकृति-जनित व्याधिमें आमाशय रसका स्राव अत्यधिक या अति न्यून होता है। अतियोगमें केवल लवणाम्ल द्रव ही अधिक नहीं होता, सब प्रकारके द्रव अधिक होते हैं। ऐसे प्रकारको डॉक्टरीमें अधिक आमाशय रस स्राव अर्थात् गेस्ट्रोसकोर्हिया (Gastro-succorrhea) कहते हैं। यदि आमाशय रसमें केवल लवणाम्ल द्रव ही अधिक हो। तो वह हाइपरक्लोरहाइड्रिया (Hyperchlorhydria); लवणाम्ल द्रवका हीन-योग हो तो वह हाइपोक्लोरहाइड्रिया (Hypochlorhydria) और आमाशय रसके स्रावका अभाव हो, तो एकिलिया गेस्टिका (Achlylia Gastrica) कहलाता है। कभी-कभी पाण्डुपीड़ित युवतियोंको संभवतः आमाशयकी श्लैष्मिक कलाका नया सूक्ष्म-सूक्ष्म आशुकारी व्रण होकर उसमेंसे रक्त रस चूता है, ऐसे शूलको रक्तस्रावीआमाशयशूल (Gastrostaxis and Haemorrhagic Gastralgia) संज्ञादी है। इस प्रकारमें प्रायः थूकके साथ रक्त आता है।

अधिक आमाशय रसस्राव जन्यशूल—अत्यधिक आमाशय रसस्राव (गेस्ट्रोसकोहिया) जन्य विकार बीच-बीचमें होनेवाला या सततभी होता है। बीच-बीचमें आक्रमण होनेपर यह आमाशय रसकी अस्वाभाविक अम्लता गेस्ट्रोक्सिया (Gastroxia or Gastroxynsis) कहलाती है। यह आक्रमण बहुधा रात्रिको खाली पेट होनेपर होता है। इसमें शूलके अतिरिक्त खट्टी वमन होती है। यह विकार क्वचित् ही होता है। इस प्रकारके विकारमें आमाशय मुद्रिकाद्वार (Pyloric Orifice) का संकोच होता है। इस हेतुसे आमाशयकी वृद्धि होजाती है।

न्यून आमाशय रसस्राव जन्य वेदना—आमाशयका चिरकारी प्रदाह, व्रण और कर्कस्फोट आदि रोगोंमें आमाशय रसके अम्लस्रावका हीन-योग होता है। यह विकार बैठे रहनेवाले मनुष्यों, मासिकधर्म बन्द होनेवाली स्त्रियों तथा हिस्टीरिया और ओजक्षय (Neurasthenia) रोगीको होता है। इस विकारमें माधवनिदानकारके कहे हुए रसशेषाजीर्णके लक्षण उपस्थित होते हैं।

कितनेक हिस्टीरिया आदि वातवहानाड़ियोंके रोगी और कितनेक जातमूर्खों(Idiots)को आमाशयमेंसे आहारको फिर ऊपर चढ़ाने और चलानेका अभ्यास (मेरिसिज़्म Merycism) भी हो जाता है। इस प्रकारके स्रावके हीन-योगमें अति-योगके सदृश तीव्र वेदना नहीं होती, परन्तु अजीर्ण बना रहता है, जिससे अजीर्णके लक्षण प्रतीत होते हैं।

आमाशय रसस्रावके अभावजन्य पीड़ा—यह विकार आमाशय गत वातवहानाड़ियोंकी विकृतिसे एवं आमाशय गत श्लैष्मिक कला नष्ट होनेपर भी होता है। इस प्रकारके रोगीको भोजनके पश्चात् वमन करा देनेसे लगभग भोजन जैसाका तैसा ही निकलता है। ऐसे रोगीकी प्रारम्भिक अवस्थामें पित्ताशय, अग्न्याशय और अन्त्रके रससे पचन क्रिया होती है, परन्तु शनैः-शनैः अजीर्णके लक्षण तीव्र होते जाते हैं।

कितनेक नाज़ुक प्रकृतिवालोंको आहार विहारका सामान्य परिवर्त्तन होनेपर (थोड़ा समय अधिक होनेपर) अकस्मात् सामान्य उदरपीड़ाकी उत्पत्ति होती है। उसे आक्षेपात्मक आमाशयिक वेदना (Gastralgokenosis Hunger-pain) कहते हैं। यह पीड़ा थोड़ा-सा खा लेनेपर शमन होजाती है।

वातनाड़ीशूल निर्णय—गंभीर आक्षेपात्मक वेदना, मूल आमाशयका विकार, इनपरसे होजाता है। पित्ताशयाश्मरीशूल, हृदयाधरिक आक्षेपजशूल, (Epigastric-angina) और शकुन्तगति रोगज आक्षेपात्मक उदरवेदना (Gastric crisis) से इसे पृथक् करना चाहिये।

शकुन्तगति रोगज आक्षेपात्मक वेदनामें त्वचाके विस्तृतभागमें चेतनाधिक्य होता है, जानु आघातज प्रतिफलित क्रिया (Knee-jerks) और आर्जिल रोबर्टसन कनीनिका (Argyel Robertson pupil) अर्थात् दोनों कनीनिकाओंकी समीकरण क्रिया दृढ़ रहती है किन्तु प्रकाशकी प्रतिफलित क्रियाका असर नहीं होता, ये दो चिह्न इस वातनाड़ी आक्षेपजशूलमें नहीं होते।

(२) आन्त्रिक शूल

(एण्टराल्जिया—Enteralgia)

यह शूल नाभिके समीप स्त्री-पुरुष, सबको होता है। बाल्यावस्थामें अधिकतर और उत्तरावस्थामें कम होता है। इस आन्त्रिक शूलकी उत्पत्ति निम्न रोगोंमें प्रतीत होती है।

१. आशुकारी अन्त्रस्थ अपचन।
२. नाग (शीशा) विष।
३. शकुन्तगति रोग।
४. कर्कस्फोट।
५. उपाशुकारी उपशेषान्त्रक प्रदाह (Subacute Diverticulitis)
६. अज्ञातहेतुजन्य बृहदन्त्रप्रसारण (Hirsckspruug's disease)
७. अवरोधात्मक अन्त्रावतरण।
८. आंशिक अन्त्रव्यावर्तन (Partial Volvulus)
९. अन्त्रान्त्रप्रवेश (Intussusception) तीव्र और मंद।
१०. बृहदन्त्रप्रदाह, सामान्य और व्रणमय।
११. प्रवाहिका।
१२. विसूचिका।
१३. क्षुद्रान्त्रप्रदाह (Enteritis)
१४. शेषान्त्रकके अन्त भागका प्रदाह (Crohn's disease)
१५. क्षयात्मक क्षत।
१६. अन्त्रकी दीवारमें रक्तस्राव (हेनोकका त्रिदोषज रक्तपित्त, अभिघात, घातक पाण्डु, श्लैष्मिक पाण्डु, रक्तपित्त (Scurvy), त्रिदोषज रक्तपित्त।
१७ उदरगुहापतन (Visceroptosis)
१८. शेषान्त्रक-उण्डुकका आवर्तन (Ileocaecal kinking)
१९. अतिपूरित उण्डुक (Overloaded caecum)
२०. बृहदन्त्रमें अति मलादिका संग्रह।
२१. मलका आघात होना।
२२. श्लेष्मजशूल (आमजशूल)
२३. क्षुधासे रिक्तता।
२४. वातनाड़ी क्रिया विकृति (Neurosis)

अन्त्रमें मल संगृहीत होनेपर उसे दूर करने और कठोर मलको मुलायम बनानेकेलिये अन्त्रकी परिचालन क्रियाकी वृद्धि होती है और रसस्राव होता है, तब शूल चलता है। यदि परिचालन क्रिया अति तीव्र होजाय, तो अन्त्रमें काटने सदृश तीव्र वेदना होती है।

लक्षण—शूलकी न्यूनाधिकता और स्वभाव भेदसे विविध। पचन क्रियाके विकृतिजन्य शूलमें सामान्यतः उदासीन मुखमण्डल, शीतल, प्रस्वेद, क्षीण नाड़ी, क्षुधानाश, आमाशयमें भारीपन, गर्म-गर्म बाष्पयुक्त डकार आना, अन्त्रमें वायुकी गड़गड़ आवाज़, उबाक और वमन आदि लक्षण प्रारम्भमें प्रकाशित होते हैं। इस शूलमें नाभिके चारों ओर फैली हुई प्रबल ऐंठन सदृश वेदना होती है। यह वेदना कुछ सैकण्डोंसे कुछ मिनटों तक रहती है, फिर कुछ मिनटों या कुछ घण्टोंतक वेदना शमन होजाती है, या बिल्कुल दूर होजाती है। यदि रोग आरोही या अवरोही बृहदन्त्रमें हो, तो वेदना अनुपार्श्विक (Hypochondrium) प्रदेशमें होती है, और उदर दबानेपर वह कम होजाती है।

किसी-किसी रोगीको वेदना स्वल्प होनेसे कष्ट नहीं मालूम पड़ता, जिससे वह अपना कार्य-व्यवहार कर सकता है और किसी किसीको इतनी तीव्र काटनेके सदृश व्यथा होजाती है कि वह अति व्याकुल होकर चिल्लाता रहता है, औंधा पड़ा रहता है; हाथों से उदरको दबाता है या उदरके नीचे सिरहाना रखकर हाथ-पैर पटकता रहता है।

किसी-किसीको आध्मान होकर उदर फूल जाता है और किसीका पहले उदर नहीं भी फूलता। सामान्यतः अपचनजनित अन्त्रशूलमें आध्मान होनेपर उदर फूल जाता है और अतिशय व्यथा होनेपर उदरमें गड़गड़ आवाज़ होती रहती है। यदि उदर फूला हुआ न हो, तो उदरकी स्पर्श परीक्षा करनेपर आक्षेप होकर अन्त्रवलय फंसे हुए भासते हैं; तथा अन्त्रकी परिचालन गति मंद प्रतीत होती है। वेदना शमन होनेपर अन्त्रकी कठोरता या अन्त्रमें गांठ अथवा अन्त्रका संचारण कुछभी नहीं रहता, उदर कोमल लगता है।

कभी कभी उदरकी मांसपेशियाँ दृढ़ होजाती हैं और वंक्षणसुरंगमें रही हुई फलकोषकर्षणी पेशी (क्रिमेस्टर मसल-Cremaster Muscle) संकुचित होजाती है।

यदि यह रोग हिस्टीरिया जनित है, तो उदर प्रदेशकी त्वचा स्पर्श सहन नहीं कर सकती। स्पर्श करनेपर विषम वेदना होती है। परन्तु बलपूर्वक उदर दबाया जाय, तो वेदनाका उपशम होजाता है।

सामान्यतः इस व्याधिमें ज्वर नहीं होता। गात्र और शाखाएँ शीतल चिपचिपे प्रस्वेदयुक्त होते हैं। नाड़ी तेज़ गतियुक्त होती है, परन्तु अति वेदना कालमें अनियमित और मंदगतिवाली बन जाती है। रोगी व्यथा कम होनेकी आशामें पैरोंको जानु सन्धिसे मोड़ लेता है। एवं कायाको भी विविध प्रकारसे मोड़ता है।

इनके अतिरिक्त उबाक, वमन, श्वासोच्छ्वासमें कष्ट, वक्ष प्रदेशमें दबाव, मूर्च्छा, कम्प और चक्कर आना आदि लक्षणोंमेंसे कोई न कोई उपस्थित होजाते हैं। बहुधा मल-विसर्जनकी भावना होती है, परन्तु मल त्याग नहीं होता, केवल अधोवायु निर्गत होता है। विशेषतः कोष्ठबद्धता रहती है, मलको बलपूर्वक प्रवाहण करना पड़ता है। कदाचित् अतिसारभी होजाता है। यह शूलरोग निवृत्त होनेपर भी कुछ दिनों तक उदर दबानेपर पीड़ा होती है।

उदरपेशियाँ

(वाम उदरच्छदा चरमा और दक्षिण उदरदण्डिका)
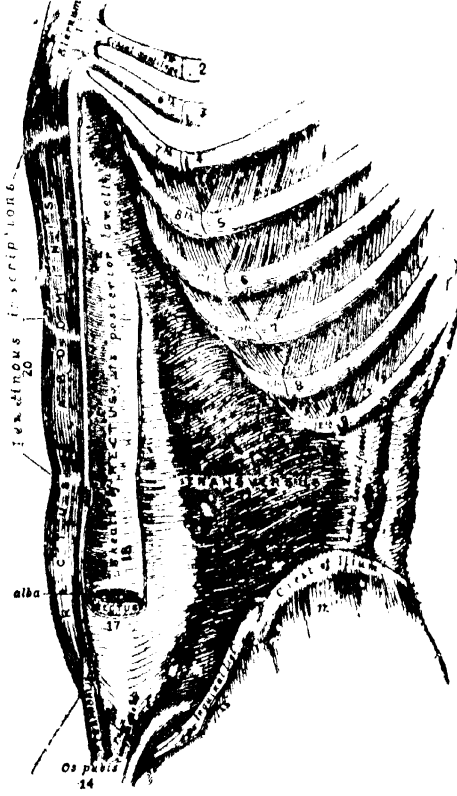
१ उरःफलकास्थित—Sternum.

२ से ९ उपपर्शुकाएँ Costal cartilages.

१० कटिपृष्ठप्रच्छदा प्रावरणी Lumbo dorsal fascia.

११ उदरच्छदा चरमा पेशी Transversus muscle.

१२ जघन चूड़ा Crest of Ilium.

१३ वंक्षणिक स्नायु रज्जु Inguinal ligament.

१४ भगास्थि Os pubis.

१५ अधो पार्श्वसंयोजित स्नायु Falxinguinalis ligament.

१६ बस्तिचूडिका पेशी Pyramidalis muscle.

१७ वाम उदरदण्डिका (सरल उदरच्छदा) Rectus abdominis.

१८ उदरदण्डिका कंचुक (पिछली ओरका) Sheath of Rectus, its posterior lamella.

१९ उदर सीवनी Linea alba.

२० अर्धेन्दु लेखा Tendinous inscriptions.

२१ उदरदण्डिका पेशी Rectus abdominis Muscle.

(वाम उदरच्छदा मध्यमा आदि)
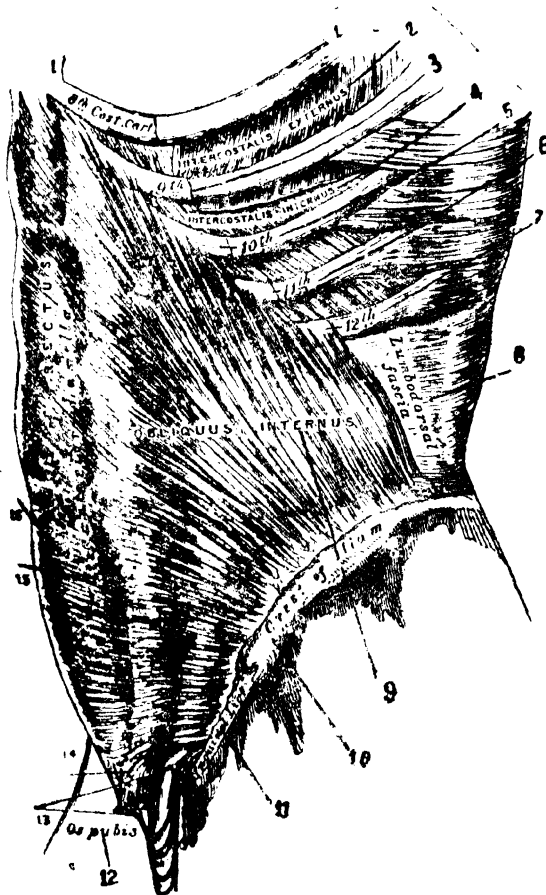
उदरपेशियाँ

(वाम उदरच्छदा मध्यमा आदि)

१, ३, ४, ५, ७—उपपर्शुकाएँ ८ वीं से १२ वीं तक 8th. to 12th. Costal Cartilages.

१, ४–बहिःस्थ पर्शुकान्तरिक पेशी Intercostalise externus.
८—कटिपृष्ठच्छदा प्रावरणी Lumbo dorsal fascia.
९—उदरच्छदा मध्यमा Obliquus internus.
१०–जघन चूडा Crest of Ilium.
११–वंक्षणिक स्नायु रज्जु Inguinal ligament.
१२–भगास्थि Os pubis.
१३–फलकोषकर्षणी Cremaster.
१४–अन्तर्वंक्षणीय दात्रिका कलाकण्डरा Inguinal aponeuroticfalx.
१५, १६–उदरदण्डिका कंचुक और उसके आगेकी पर्त Sheath of Rectus, its anterior Lamella.

उदरमें मध्य रेखाके दोनों ओर ५–५ मांस पेशियाँ रही हैं। ३–३ उदरच्छदा, १–१ उदर दण्डिका तथा १–१ बस्ति चूडिका अवस्थित हैं।

उदरच्छदा आदिमा—(External Oblique) यह बड़ी विशाल पेशी उदरके आगेके हिस्से और पार्श्व भागको ढकती है। तीनों उदरच्छदामें यह बाहर अथवा ऊपर रही हुई हैं। इसके आठ मांसमय मूल, निम्न प्रदेशमें रही हुई आठ पर्शुकाओंपरसे निकलते हैं। इस पेशीके पीछेकी धारा बिल्कुल मुक्त है, वह कटि त्रिकोण नामक खाली स्थानकी एक बाज़ू रूप प्रतीत होती है।

इस मांसपेशीके मांसमय तन्तुओंसे एक कलाकण्डरा (Aponeurosis) की रचना होती है।

इस कला कण्डरामें भगास्थिके मुण्डके समीप एक त्रिकोणाकार बहिर्वंक्षणीय छिद्र (Subcutaneous Inguinal Ring) प्रतीत होता है। पुरुषोंमें कभी वृषण बंधनी (Spermatic Cord) इस छिद्रमेंसे बाहर निकल जाती है। स्त्रियोंमें उसके भीतर गर्भाशयको आधार देनेवाला एक स्नायु (Round Ligament of the uterus) रहा है।

उदरच्छदा मध्यमा—(Internal Oblique) यह मांसपेशी पतली और आदिमाकी अपेक्षा छोटी तथा उसके पीछे रही है। इसकी उत्पत्ति निम्न प्रदेशमें श्रोणिफलककी जघनधाराके बाह्य किनारेपरसे उपर कहे हुए वंक्षणिक स्नायु रज्जुके पीछेकी ओर रहे हुए अर्ध भागपरसे एवं पीछे रही हुई कटिपृष्ठच्छदा (Lumbo dorsal fascia) नामक गम्भीर प्रावरणी अर्थात् मांसधरा कलामेंसे होती है।

उदरच्छदा चरमा—(Transversalis Muscle) यह नीचे वंक्षणिक स्नायु रज्जुके पीछेके एक तृतीयांश भागपरसे; जघनधारा (Iliac Border) की भीतरकी किनारीपरसे, पीछेकी ओर कटिपृष्ठप्रच्छदा प्रावरणीपरसे तथा ऊर्ध्वभागमें निम्नस्थ ६ उपपर्शुकाओंपरसे उत्पन्न होती है।

इस पेशीके मांस तन्तुओंसे एक कलाकण्डरा निर्माण होती है। जो उदर-सीवनी, भगास्थिमुखक और बस्तिकपिठका रेखाको लगी हुई है। इस कलाकण्डरामें भगास्थिके मुखकके समीप अन्तर्वंक्षणीय छिद्र (Abdominal Inguinal Ring) रहा है। जिसमें वक्षण सुरंगसे निकलनेवाली वृषण बंधनी या गर्भाशय बंधनी प्रतीत होती है।

तीनों उदरच्छदाका कार्य—तीनों उदरच्छदा पेशी उदरस्थ आशयोंको आधार देती हैं और इनको बार-बार दबाती हैं। जब ये इनको दबाती हैं, तब इनके दबनेसे महाप्राचीरा पेशी ऊर्ध्व ओर उठती रहती है। इस हेतुसे फुफ्फुसोंमें गई हुई वायु बाहर निकलती रहती है। जैसे महाप्राचीरा पेशी प्राणवायुको भीतर लानेका कार्य करती है, वैसे ये दूषित वायुको बाहर निकालती रहती है।

उदर दण्डिका—(Rectus Abdominis) इस नामकी लम्बी एक-एक मांस पेशी मध्यरेखाकी उभय ओर में रही हैं। इस पेशीका संकोच होनेपर वह उदरसीवनीकी दोनों ओर एक दण्ड-सी भासती है। इस मांसपेशीके भीतर आगेकी ओर अर्धचन्द्राकारकी तीन तिर्यक् अर्धेन्दु लेखा (Tendinous Inscriptions) प्रतीत होती है।

इस उदरदण्डिका पेशीका कार्य संकुचित होकर मध्यकायको आगे नमाती है। अथवा श्रोणिगुहाके अगले हिस्सेको ऊँचा उठाती है।

बस्ति चूड़िका—(Pyramidalis Muscle) यह मांसपेशी उदरदण्डिका के कंचुकमें निम्न प्रदेशके आगेकी ओर रही है, इसका आकार मन्दिरके शिखर सदृश भासता है। यह पेशी उदरसीवनीको तंग करती है।

रोग विनिर्णय—इस रोगके समान अथवा आमाशय शूल, यकृच्छूल, वृक्क-शूल, उदर्य्याकलाप्रदाह, अन्त्रावतरण, धमनीमें रक्तवृद्धि, गर्भाशयशूल और बीजकोष शूल आदि व्याधिमें होते हैं। अतः इन सबका प्रभेद करनेकी आवश्यकता है।

(१) आमाशय शूल (Gastralgia) शूलमें वेदना अन्त्रशूल सदृश होती है, परन्तु वेदना अपेक्षाकृत ऊर्ध्व प्रदेशमें होती है। अतः रोग सरलतापूर्वक निर्णित होजाता है।

(२) यदि यकृत् (पित्ताशय) में पीड़ा हो, तो दबानेपर कोड़ी प्रदेशमें वेदना होती है। वेदना अपेक्षाकृत दीर्घकालस्थायी और सतत बनी रहती है एवं इससे कामलाकी उत्पत्ति होजाती है।

(३) वृक्क विकारमें वेदना एक ओर होती है और अन्त्रशूलकी अपेक्षा दीर्घकालस्थायी होती है। वेदनाका स्थान वृक्कके समीप भगास्थि (Pubis) की ओर होता है। एवं वेदनाकालमें क्वचित् रक्तमिश्रित पेशाब होता है, अन्त्रशूलमें वेदना स्थान पृथक् होता है और मूत्रमें रक्तभी नहीं आता।

(४) उदर्य्याकलाप्रदाहमें ज्वर और तीव्र नाड़ीवेग होते हैं, रोगी स्थिर भावसे पड़ा रहता है; उदरप्रदेशपर दबानेसे पीड़नाक्षमता (पीड़ा अधिक भासना) होती है और वेदनाका विराम नहीं होता। अन्त्रशूलमें सब लक्षण इसके विपरीत होते हैं। अर्थात् ज्वर नहीं होता, तीव्र वेदनाकालमें नाड़ी वेगवती और अनियमित होती है। रोगी छटपटाता है, उदर दबानेपर वेदना शमन होती है और बीच-बीचमें वेदनाका उपशम होता है।

(५) अन्त्रावतरण रोगमें नाभि प्रदेशमें अत्यन्त वेदना सतत बनी रहती है। इस रोगमें अन्त्रावरोध और वमन उपस्थित होते हैं, प्रारम्भमें सामान्य फिर वान्त पदार्थमें मल आने लगता है। इस तरह लक्षण-भेदसे रोग-भेद होजाता है। तथापि इस रोगका भेद करनेके लिये भली भाँति परीक्षा करनी चाहिये। कारण, दोनों रोगोंका स्थान एक ही है।

(६) उदरस्थ धमनीमें रक्त संचय होनेपर वेदना अपेक्षाकृत मन्द और दीर्घकालस्थायी होती है। एवं उबाक, वमन, अतिसार आदि पचनेन्द्रिय विकारके लक्षण नहीं होते। ध्वनिवाहक यन्त्रसे परीक्षा करनेपर धमनी विकृतिका स्पष्ट बोध होता है।

(७) गर्भाशय शूलमें वेदना बस्तिप्रदेशमें होती है एवं मासिकधर्मकी, विकृति साथमें होती है। बीजकोषोंमें शूल होनेपर उस स्थानपर दबानेसे वेदना प्रतीत होती है और हिस्टीरियाके लक्षण प्रतीत होते हैं।

(८) यदि उदरके किसीभी यन्त्रमें प्रदाह होजाता है, तो दबानेपर वेदना शमन होती है और ज्वर नहीं रहता।

इनके अतिरिक्त क्वचित् बालकोंके अन्त्रान्त्र प्रवेश (इन्टससेप्शन Intussusception) अर्थात् लघु अन्त्रवलयका सिरा बृहदन्त्रमें प्रवेश कर जाता है। यह विकार देखनेमें कम आता है। इसमें पीड़ा अत्यन्त होती है और परिणाममें मृत्यु होती है।

आमाशयिक व्रण

गैस्ट्रिक अल्सर—Gastric Ulcer.

रोगपरिचय—आमाशयकी श्लैष्मिक कला और गहराईमें रही हुई कृमिमें-से तन्तुओंका नाश होनेसे हृदयाधरिक प्रदेशमें वेदना, जिसका सम्बन्ध भोजनसे रहता है तथा वमन और रक्तवमन, ये लक्षण उपलब्ध परीक्षासे विदित होते हैं। यह व्रण आशुकारी और चिरकारी हैं। आशुकारी और चिरकारी भेद संप्राप्त्यात्मक स्वभावके हेतुसे दिया गया है। इतिहासकी दृष्टिसे नहीं।

निदान—व्रण कारण अज्ञात। आशुकारी व्रण पुरुषोंमें अधिक, स्त्रियोंमें कम। चिरकारी व्रणका अनुपात २ पुरुष और १ स्त्री। आयु लगभग ४० वर्ष वा अधिक। स्त्रियोंमें कतिपयको वंशागत या कौटुम्बिक स्वभाव रक्तस्राव या विदारणका होता है।

रोगवाहक—१. अभिघात अर्थात् पचनकालमें घर्षण; २. चिरकारी वृद्धिमय आमाशयप्रदाह; ३ गलनविष उदा० मुख, पित्ताशय, उपान्त्र आदिसे; ४. अन्वाधरिक प्रदेश (Hypothalmic region) का क्षत (Lesion) और आमाशयिक व्रणकी कितनी ही शस्त्रक्रिया और परीक्षणके पश्चात् उत्पत्ति करता है; ५ चित्त विक्षोभ और मानस वेदना, इनसे अधिक सम्बन्ध नहीं है। अपथ्य आहार का सेवन और अत्यधिक धूम्रपान, इसका योग्य प्रमाण अभी नहीं मिला। शराब, यह वाहक नहीं है तथापि सौत्रिक तन्तुमय यकृत् (यकृद्दाल्ली) होनेपर सम्भवित, फिरंग, क्षय, ये इस रोगके लिये प्रभावशाली नहीं हैं।

आशुकारी आमाशय व्रण सामान्यतः सत्वर भर जाता है, किन्तु कभी-कभी चिरकारी बन जाता है। परीक्षणार्थ किये हुए व्रण पशुओंमें शीघ्र भर जाता है, अन्यथा आमाशय रसमें अम्लता कृत्रिम रीतिसे बढ़ जाती है।

शारीरिक विकृति—आशुकारी व्रण प्रायः एकसे अधिक नहीं होते। हार्दिक द्वारसे मुद्रिकाद्वार तक किसीभी स्थानपर उपस्थित, सामान्यतः दक्षिण ओर रही हुई आमाशय कोष्ठिका धारा (Lesser Curvature) में। देखाव छोटा वेध किया हुआ भागके सदृश। किनारा स्पष्ट कटा हुआ। तल मुलायम। तल श्लैष्मिक कला या मांसमयी या गहरी वृत्तिके नीचेसे बना हुआ। शोथ या चारों ओर प्रदाह नहीं होता। उदर्य्याकलाका सतह सामान्यतः मोटी नहीं होता। शोथ और रक्तसंग्रह समीपके यन्त्रोंसे। फिर देखाव अधिक गहरा हुआ। बार-बार सौत्रिकतन्तुसंग्रह उदर्य्या-कलाकी सतहपर। रक्तस्राव कभी घातक। सार्वाङ्गिक उदर्य्याकला प्रदाहके परिणाममें बार-बार विदारण। विदारणके अभावमें संलग्नता।

चिरकारी व्रण कभी बहुसंख्य। मुद्रिकाद्वारके पास, आमाशय कोष्ठिका धारा पर। पिछली सतहमें ८० प्रतिशतको, कभी आमाशयतलिका धारा (Greater Curvature) में। परिमाण, कई इञ्चोंका। सौत्रिक तन्तु और खिंचाव युक्त। किनारा उन्नत, झुलता हुआ। दीवार अनियमित और कठिन। तल चिकना या व्रण रोपण कलासे आच्छादित, गहरी वृत्ति या अग्न्याशय आदि अन्य संलग्न अवयवसे बना हुआ। प्रदाहमय परिवर्त्तन समीपके अवयवोंमें। कभी आशुकारी और चिरकारी व्रण सम समयमें उपस्थित।

रोपणक्रिया—किनारे परसे मृदु तन्तु फैलते हैं। आशुकारी व्रण व्रणरोपण कलाके छोटे टुकड़ेसे भर जाता है या अनुगामी विकारोंकी उत्पत्ति कराता है। बड़े व्रणके सौत्रिक तन्तु गम्भीर परिणाम लाते हैं। १. मुद्रिकाद्वारका आकुंचन; २. आमा-शयकी आकृति रेतघड़ी सदृश (Hour-glass stomach), यह आगेकी सतहके पीड़ित होनेपर घर्षणजन्य बृहद् व्रणके हेतुसे होती है।

रोपण हुए व्रण—शव परीक्षासे निर्णीत हुआ है कि, किसीभी परिमाण और गहराईके व्रण पूर्णांशमें भर जाते हैं।

व्रण विकृति—श्लैष्मिक कलापर थोड़ा घर्षण या आघात होनेपर व्रण बहुसंख्य बन जाते हैं। यह चिरकारी तन्तु वृद्धिमय आमाशयके प्रदाहके हेतुसे कभी-कभी गम्भीर रक्तस्राव।

लक्षण—१. हृदयाधरिक प्रदेशमें वेदना, आहारसे सम्बन्धवाली; २. हृदयाधरिक प्रदेशमें पीड़नाक्षमता; ३. मांसपेशियोंका खिंचाव; ४. वमन; ५. रक्तवमन और अज्ञात रक्त।

आक्रमण—गुप्त होनेपर पहला लक्षण रक्तवमन अथवा कभी विदारण। अज्ञात कारण होनेपर पहले अनिश्चित और कभी-कभी अति प्रकृतिदर्शक लक्षणोंसह।

वेदना—कभी अभाव। स्थान कौड़ी प्रदेशमें विशेषतः असिपत्र (Ensiform) से नीचे। सामान्यतः निश्चित स्थानपर। पीठकी ओर १०वीं कशेरुकाके पास भी गति। वेदना शूल सदृश या बांयी ओर फैलनेवाली। संलग्न व्रणोंमें प्रायः कौड़ी प्रदेशमें नीचे और अधिक स्थानव्यापी पीठमें भी। वेदना भोजन करनेपर उत्तेजित। भोजनके बाद १५ मिनटसे २ घण्टेके भीतर नियमित उपस्थित। कठोर भोजनसे अधिक कष्ट, दूध आदिसे कम।

वेदना काल विविध। प्रायः १ घण्टा वमन होनेपर या क्षार लेनेपर शान्ति, किन्तु आहार लेनेपर नहीं। गम्भीर रोगियोंमें दृढ़ व्याकुलता रहती है फिरभी सतत नहीं। प्रारम्भिक अवस्थामें गम्भीर नहीं। जलन, भारीपन या अकस्मात् गम्भीर पीड़ा। कभी रात्रिको जागरण।

कौड़ी प्रदेशमें पीड़ा होती हो, तो गहरा स्पर्श करनेपर गहराईमें पीड़नाक्षमता। पीड़ा क्षेत्र लगभग १ इञ्चका, स्थान स्थिर, वेदनाकालमें विशेष चिह्नित। वह स्थान कभी-कभी वाम अंसफलकके कोनेकी ओर।

उत्तान पीड़नाक्षमता होनेपर त्वचामें चेतनाधिक्य। क्षेत्र आधसे १ इञ्च, धारीदार सीमा, सामान्यतः वाम उपपर्शुकाके किनारेके पास। कभी मेरुदण्डके पास बांयी ओर ७ से ११ वें कशेरुकाके पास।

हार्दिकद्वारपर व्रण होनेसे भोजन करनेपर तुरन्त वेदना। मुद्रिका द्वारपर व्रण होनेपर २ घण्टेके भीतर।

मांसपेशियोंकी कठिनता—उदरदण्डिका पेशियों (Rectimuscles) में खिंचाव। दोनोंमें, एकमें या एकके अमुक भागमें। प्रादाहिक क्षति होनेपर निःसंदेह रहता वेदना शमन होनेके बाद रहता और पीड़नाक्षमता (चिकित्सा कालमें) अदृश्य होना।

वमन—सामान्य, किन्तु अचल नहीं। सामान्यतः वेदना पूर्ण होनेपर शान्ति देनेके लिये। थोड़े परिमाणमें, अम्ल तरल, अर्ध पाचित आहारसह वमन। हार्दिकद्वार पर व्रण होनेपर जल्दी वमन। क्वचित् ही यकृत्पित्त निकलता है।

रक्त वमन—(इसका विचार रक्त वमनमें स्वतन्त्र किया है।)

विविध लक्षण—क्षुधा अच्छी लगना, किन्तु भयके हेतुसे भोजन कम करना। जिह्वा स्वच्छ। दांत बहुधा मलिन, कभी बिल्कुल साफभी। मलावरोधका कभी अभाव।

पाण्डु—सूक्ष्म रक्ताणुमय पाण्डु, रक्तस्राव और भोजनके अनुरूप। पोषण सामान्यतः अच्छा। चिरकारी व्रणमें भोजनकी मर्यादाके हेतुसे कृशता।

भौतिक चिह्न—गहरी और उत्तान पीड़नाक्षमताकी परीक्षा करें। इस तरह मांसपेशियोंकी कठिनताको देखें। आमाशयका मंथन, द्रव ध्वनि (Splash) और अर्बुदका निर्णय करें।

मलमें रक्त-प्रायः उपस्थित।

आमाशय विश्लेषण—बहुत कम सहायता देता है। अम्लताकी वृद्धि। बहुधा लवणाम्ल द्रवका अतियोग, अति चिरकारी रोगियोंमें लवणाद्रवका ह्रास या अभाव, विशेषतः विरामकालके द्रवमें। चिरकारी आमाशय प्रदाहसे सम्बन्ध। चिकित्सा करनेपर लवणाम्लकी वृद्धि। रक्त उपस्थित होता है।

रेडियोग्राफ—सर्वदा चिरकारी रोगियोंमें रोगनिर्णायक।

सूचना-रक्तवमनके पश्चात् तुरन्त और गंभीर वेदना कालमें परीक्षण आहार नहीं देना चाहिये

उपद्रव और अनुगामी विकार—रक्त वमन, विदारण, कर्कस्फोट, रोपण होनेपर अनुगामी विकार, मुद्रिकाद्वारका आकुंचन, रेतघड़ी सदृश आमाशय, आमाशयावरणसे संलग्नता और मध्यान्त्रमें व्रण।

विदारण—लगभग ६० प्रतिशत पुरुषोंमें। इनमें आगेकी दीवारमें ७० प्रतिशतको। फिर संयोजन। उदर्याकलाप्रदाह या स्थानिक विद्रधि आदिकी संप्राप्ति।

महाप्राचीराके निम्नस्थ विद्रधि—गलनात्मक लक्षणोंकी प्रगति।

रोपण होनेपर व्रण—चिरकारी व्रणमें अनुगामी विकार मुद्रिकाद्वारका आकुंचन, रेतघड़ी सदृश आमाशय, आमाशयावरणसे आमाशयकी संलग्नता।

मुद्रिकाद्वारका प्रतिबन्ध—१. रोपण त्वचाके खिंचावसे दृढ़ता; २. आक्षेप या मुद्रिकाद्वारके पास श्लैष्मिक कलाका शोथ, यह प्रतिबन्ध प्रायः कुछ कालके लिये; किन्तु जीर्ण होनेपर दृढ़।

रेतघड़ी सदृश आमाशय—स्त्रियोंमें कभी-कभी। व्रण चिकित्सा करनेपर इसकी उन्नति नहीं होती। इसमें सौत्रिक तन्तुओंके खिंचावसे आमाशयके दो विभाग हो जाते हैं। वमन कम। मंथन क्रिया अनियमित। वेदना मंद। पूर्ववर्ती लक्षण-अनेक वर्षोंतक अनियमित अपचन। चिकित्सा-शस्त्र साध्य। रोग विनिर्णय रेडियोग्राफसे।

संलग्नता—चिरकारी व्रणमें अनेक वार, विशेषतः पिछली सतहपर या मुद्रिकाद्वारके पास आमाशय कलासे संलग्नता। कभी उदरगुहाके अन्य अवयवोंसे संलग्नता।

लक्षण—प्रायः विविध। बैठनेपर वेदना, सोनेपर आराम, दबानेपर चेतनावृद्धि, भोजनसे कम प्रभावित, अग्न्याशयकी संलग्नता होनेपर पीठमें गम्भीर वेदना।

रेडियोग्राफ—अपारदर्शक भोजन लेनेपर रोग निर्णय कराता है।

रोगविनिर्णय—प्रकृति निर्देशक लक्षण-रक्त वमनाधिक्यादि होनेपर सरल। भोजनसे सम्बन्धवाली योजना। वमन और क्षारसे शान्ति। गहरे दबावसे स्थानिक पीड़नाक्षमता। मांसपेशीकी कठिनता। गुप्त रक्तस्राव। रेडियोग्राफ और आमाशयदर्शक यन्त्रद्वारा निर्णयमें सहायता मिल जाती है। चिरकारी व्रण होनेपर निम्न रोगोंसे पृथक् करना चाहिये।

चिरकारी आमाशय प्रदाह—निर्णय कठिन। इसका भोजनसे विशेष सम्बन्ध नहीं है, स्थानिक पीड़नाक्षमता और पेशीकी कठिनता नहीं होती।

कर्कस्फोट—वेदना अधिक समयतक बनी रहना। शीघ्र शीर्णता। अर्बुदका स्पर्श। आमाशय रसके विश्लेषणसे विशेष सहायता।

ग्रहणीमें व्रण—भोजन करनेपर वेदना शमन। वमनसे कम सम्बन्ध।

पित्ताशयका रोग—स्थानिक पीड़नाक्षमता। आमाशय द्रवका विश्लेषण करनेपर मुक्त लवणाम्लका ह्रास या अभाव।

चिरकारी उपान्त्र प्रदाह—आहारसे अनिश्चित सम्बन्ध, उदरदण्डिकाकी कठिनता नहीं होती। क्षारसे लाभ नहीं होता।

आमाशयका आक्षेप—वमन और वेदनाका सम्बन्ध आहारसे नहीं रहता। त्वचाके विस्तृत भागमें चेतनाधिक्य।

यकृद्दाल्मी—शराबीमें निर्णय करना कठिन। कभी दोनों रोग सम समयमें। अतः प्रायः पृथक् नहीं हो सकता।

चिकित्सोपयोगी सूचना

मन, शरीर, आमाशय और व्रणको आराम देवें। बिछौनेमें ४ सप्ताह या लम्बे समयतक लेटे रहें। आहार उत्तेजक न लेवें, किन्तु पूरा लेवें। मुक्त लवणाम्लके निरोधकी आवश्यकता हो, तो प्रति घण्टेपर उसे निकाल लेवें। दिनमें २-२ घण्टे पर अम्ल विरोधी थोड़ा-थोड़ा भोजन लेवें। रात्रिको भी १ या २ बार। भोजनमें दूध हितकर है। आवश्यकता अनुरुपशामक भोजन देवें।

डॉक्टरीमें अम्ल विरोधी औषधि-बिस्मथ, मेग-कार्ब और सोडा बाईकार्ब मिलाकर देते हैं। आयुर्वेदमें शंख, वराटिका, शुक्ति अथवा सूतशेखर+कामदूधा मिश्रण दिया जाता है। यह औषध प्रयोग एकाध वर्ष पर्यन्त चालू रखना चाहिये।

अधिक पीड़ा हो, तो बर्फकी थैलीसे कौड़ी प्रदेशमें सेक करें।

दांत दूषित हों तो निकलवा देवें। शराब, तमाखूका व्यसन हो, तो छुड़ा देना चाहिये।

विदारण, रेतघड़ी सदृश आकृति हो जाना, मुद्रिकाद्वारका अवरोध और कर्कस्फोटका संदेह होनेपर शस्त्र चिकित्सा करनी चाहिये।

विशेष चिकित्सा आगे शूल चिकित्सामें देखें।

(४) आन्त्रिक व्रण

(ड्यूओडिनल अलसर—Duodenal Ulcer).

रोग परिचय—इस रोगके भीतर ग्रहणीकी दीवारकी श्लैष्मिक कला और गहराईमें रही हुई वृत्तिसे तन्तुओंका नाश, कौड़ी प्रदेशमें वेदना, भोजन करने या क्षार सेवन करनेपर वेदना शमन, रक्तमय मल गिरना, आमाशयमें अम्लताकी वृद्धि, ये मुख्य लक्षण प्रतीत होते हैं।

निदान और शारीरिक विकृति।

जाति—पुरुषोंको लगभग ८० प्रतिशत। स्त्रियोंको कम।

आयु—३५ वर्षके भीतर।

स्थान—ग्रहणीके प्रारम्भिक भागमें ८० से ९० प्रतिशतको, सामान्यतः मुद्रिकाद्वारसे १ इन्चके भीतर। पित्तमलिकाके संयोग स्थानसे कभी नीचे नहीं। विशेषतः ऊपरके भागमें भी आगेकी दीवारमें।

कभी-कभी मुद्रिकाद्वारपर व्रण है या ग्रहणीमें, यह निर्णय करना कठिन होजाता है।

व्रणसंख्या—सामान्यतः एक। क्वचित् ही अधिक।

रोगावस्थाकी उन्नति—(Pathogenesis) अनिश्चित।

यह आमाशयिक व्रणकी अपेक्षा सामान्यतर वंशागत। पुनरावृत्तिके पूर्वलक्षण और व्रणभेदनमें थकावट, मानसिक वेदना और चित्तविक्षोभ। विशेष वृत्तान्त न समझा सकना। आमाशय व्रणकी अपेक्षा कम निश्चय।

कभी जल जानेके परिणाममें (गलनात्मक क्षत होनेपर) उपद्रव रूपसे ग्रहणी व्रण होजाता है।

प्रकृति निर्देशक लक्षण— १. क्षुधा लगनेपर वेदना, यह आदर्श लक्षण; २. मलमें रक्तस्राव; ३. आमाशय पित्तमें लवणाम्लका अतियोग।

आक्रमण—सामान्यतः गुप्त। अपचनका चक्र क्रमशः बनना, यह प्रकृति निर्देशक विशेष लक्षण है। यह चक्र लम्बे विराममह २–३ सप्ताहके लिये वर्षोंतक चलता रहता है। फिर बीचका समय कम होजाता है। विशेषतः सम्प्राप्ति वसंत या शरद् ऋतुमें, क्वचित् गुप्तरूपसे अधिक आक्रमण। रक्तस्राव और व्रण भेदन प्रारम्भिक लक्षण।

वेदना— १. उदर रिक्त होनेपर। सामान्यतः भोजनके २–४ घण्टे बाद या रात्रिको। इसे डॉक्टरीमें क्षुधारूप वेदना (Hunger pain) संज्ञा दी है। २. नियमित समयपर वेदना। ३. भोजन या क्षार सेवन करनेपर वेदना शमन, किन्तु वमन होनेपर भी शमन न होना।

वेदना कौड़ी प्रदेशसे दक्षिण ओर नाभिसे ऊपर। किरण कौड़ी प्रदेश, नाभि, दक्षिण प्रदेश और क्वचित् अंसामान्तरिका (Subscapular) प्रदेशमें भी। कभी वेदना कौड़ी प्रदेशके मध्यमें और कभी बांई ओर।

गहराईमें पीड़नाक्षमता—व्रण स्थानपर दबानेपर वेदना वृद्धि। उत्तान पीड़नाक्षमताभी विद्यमान, व्रणस्थान निर्दिष्ट नहीं है।

प्रसेक—(Water-brash) मुँहमें बार-बार रस आते रहना, यह सामान्यतः ग्रहणी क्षतकी सूचना देता है।

मांसपेशियोंकी कठिनता—विशेषतः उदरदण्डिका पेशियों (Rectus Abdominis) की बारम्बार तीव्र व्रणमें स्पष्ट।

अज्ञात रक्त—सामान्यतः उपस्थित। रक्तस्राव—मलमें रक्त जाना, साधारण गम्भीर, बार-बार पुनरावृत्ति, क्वचित् तेज़ीसे घातक अवस्था। फिर क्षणिक बेहोशी, शीतलस्वेद, तेज़नाड़ी। मलमें रक्तस्रावसे शूल सदृश वेदना। अकस्मात् शौचका वेग होना, कोल्टारके सदृश मल त्याग होना। रक्तवमनभी उपस्थित, इसका आधार व्रण स्थानपर रहता है। कभी मलमें रक्त न जाना।

वमन—सामान्यतः नहीं। प्रतिबन्ध होनेपर उपस्थित।

पाण्डु—रक्तस्रावके अनुरूप। कभी मलमें रक्त न जानेपर भी मल पीली प्रभासह निस्तेज।

अन्यलक्षण—अच्छी क्षुधा, प्रायः भोजन करनेमें वेदना वृद्धिका भय लगता है। दांत अच्छी स्थितिमें। कृशता असाधारण, छातीमें बार-बार जलन।

आमाशय विश्लेषण—आमाशय रसमें लवणाम्लका अति योगका स्वभाव हो जाना। विराम कालमें अवशिष्ट आमाशय रस ५० से १५० सी. सी. (१॥ से ५ औंस) अम्लता मध्यम या बढ़ी हुई। परीक्षार्थ आहार देनेपर श्वेतसार १-१॥ घण्टेमें समाप्त; अर्थात् आमाशय रिक्त होनेपर स्वच्छ तरल। प्रतिबन्ध होनेपर विरामकालके आमाशय रसमें अधिक अम्लता।

उपद्रव और अनुगामीविकार—आमाशय व्रणके समान। रक्तस्राव, आमाशय मध्यान्त्रक्षत, पित्ताशय या अग्न्याशयसे संलग्नता, मुद्रिकाद्वारका अवरोध और विदारण। विदारण सामान्यतः ४० वर्षसे अधिक आयु होनेपर कभी युवा स्त्रीमें। ६५ प्रतिशत पुरुषोंमें, आगेकी दीवारमें क्षत होनेपर जिस तरह आमाशय क्षतका विदारण होनेपर उदर्य्याकलाप्रदाह होता है। उसी तरह इसमें भी, किन्तु वेदना दक्षिण हृदयाधरिक प्रदेशमें। यह वेदना उपान्त्रव्रण विदारणके सदृश।

रोगविनिर्णय—प्रकृति निर्देशक आदर्श लक्षण होनेपर सरलतासे, अन्यथा कठिन।

पित्ताशय व्याधि—इसमें वेदना किरण दक्षिण स्कंधकी ओर, पित्ताशयपर दबानेसे वेदना, मलमें रक्त न जाना, इन लक्षणोंसे प्रभेद होजाता है।

आमाशय क्षत—वेदनाकर स्वभाव। बार-बार वमन। इन लक्षणोंसे प्रभेद।

आमाशयकी आक्षेपज वेदना—(Gastric crises) वेदना और वमन, आहारसे स्वतन्त्र। त्वचाके विस्तृत प्रदेशमें चेतनाधिक्य। इन लक्षणोंसे प्रभेद।

उपान्त्र प्रदाह—स्थान भेदसे भेद होजाता है।

चिरकारी विरामसह प्रतिबन्ध—इसमें आमाशयका प्रसारण होनेसे और विराम होते रहनेसे भेद होजाता है।

चिकित्सा—विशेष आमाशयिक व्रणमें देखें। अन्य चिकित्सा सफल नहीं है। स्वच्छ वायुवाले स्थानमें रहना, पथ्य पालन करना, यह औषध चिकित्साकी अपेक्षा भी विशेष हितकारक है। ४ वर्ष पश्चात् पुनराक्रमण होता है।

शूल चिकित्सोपयोगी सूचना

वातिक शूलकी शान्तिके लिये स्निग्ध और उष्ण वस्तुओं, पैत्तिक शूलमें शीतल पदार्थ और श्लैष्मिक शूलमें चरपरे और कड़वे पदार्थोंका सेवन करें। मिले हुए दो दो दोषोंके शमनार्थ दोषानुरूप द्रव्योंको मिलाकर योजना करनी चाहिये।

वमन, लंघन, स्वेदन, पाचन, फलवर्त्ति, क्षारमिश्रित औषधियाँ, ये सब शूल रोगमें हितावह हैं। व्रणपर खीर, खिचड़ी, स्निग्ध पिट्ठी, मांसपिण्ड या शक्करके हलवेसे सेक करना चाहिये।

सब प्रकारके शूलरोगमें पहले वातको जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये। तीव्र शूल होनेपर हींगमिश्रित औषधियोंका उदरपर लेप या सेक करना हितकारक है।

वातज शूलमें स्वेदन क्रिया, पित्तजमें मधुर औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ दूध पिलाना, विरेचन और निरूह बस्ति देना; तथा कफजमें कड़वी और चरपरी औषधियों-का क्वाथ और वमन हितकारक हैं।

मिट्टीको जलमें घोलकर गरम करें। गाढ़ी हो जानेपर पोटली बनाकर या तिलको कूट, गरम कर पोटली बनाकर उदरपर सेक करनेसे वातज शूल शमन होता है।

एक लोटेमें गरम जल भर एक मुट्ठी भर नमक डाल पेटपर एरंड तैल लगा लोटेसे सेक करने या रबरकी थैलीमें गरम जल भरकर सेक करनेसे शूल शमन होता है।

पैत्तिक शूलमें मैनफलके चूर्णको, परवलके पत्ते और नीमकी अन्तरछालके क्वाथ या दूध अथवा ईखके रसमें मिला पिलाकर वमन कराना हितावह है तथा गरम आहार विहार और गरम औषधियोंका त्याग करना चाहिये।

कफप्रधान शूलमें वमन, लंघन, शिरोविरेचन, शहदमेंसे बनी हुई शराब, गेहूँ, यव, अरिष्ट, शुष्क और चरपरे पदार्थ हितकारक हैं।

आमशूलमें कफशूलघ्न, अग्निप्रदीपक और आमपाचक चिकित्सा करनी चाहिये। आमशूल (कुक्षि शूल) में वमन और शक्ति अनुसार लंघन करना लाभदायक है।

आन्त्रिकशूलमें चिकित्सा सावधानतापूर्वक लक्षणोंके अनुसार करनी चाहिये। अन्त्रशूलमें वेदना और आक्षेपका सबसे पहले निवारण करें, तत्पश्चात् शूलोत्पादक कारणको दूर करें। यदि वेदना प्रबल न हो, तो रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई शंखवटी, हिंगुलवटी, जातिफलादि वटी, शंखद्राव, अग्निकुमार रस, क्रव्याद रस आदि औषधियोंमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन कराना चाहिये।

उदर प्रदेशपर एरंड तैल लगा फिर नमक मिलाये हुए गरम जलसे सेक करें या राईका प्लास्टर लगावें यदि असह्य वेदना होती हो, तो तत्काल दबाने केलिये श्वासोच्छ्वासमें क्लोरोफार्म या इथर सुंघावें वा अफीमसत्व (मोर्फिया) का इन्जेक्शन करें।

यदि अपचनके हेतुसे अन्त्रशूल उत्पन्न हुआ हो, तो पचनेन्द्रिय संस्थानमेंसे उग्रता-साधक पदार्थको दूर करनेके लिये मृदुविरेचन (आरग्वधादि क्वाथ, एरंड तैल, मैगनेशिया सल्फास अथवा अन्य औषधि) देना चाहिये।

यदि अपचनके हेतुसे अत्यधिक उदरवातकी उत्पत्ति हुई हो, तो पचनक्रिया बढ़ाने वाली आग्नेय और वातहर औषधि देनी चाहिये। रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—हिंग्वष्टक चूर्ण, शिवाक्षार पाचन चूर्ण, अग्निकुमार रस, क्रव्यादरस, जातिफलादि वटी (अपचन), शंखवटी आदिमेंसे किसी एकका प्रयोग करना चाहिये।

यदि आध्मान अधिक हो और बाह्य सेक आदि प्रयोगसे लाभ न हो, तो हींग और एरंड तैल मिले हुए गुनगुने जलकी बस्ति देनेसे सत्वर अफारा उतर जाता है। डॉक्टरोंमें हींगके अर्क और अफीमके अर्क १—१ ड्रामको गोंदके जलमें मिलाकर पिचकारी देनेका रिवाज है। इससे भी अफारा और वेदनाका निवारण होजाता है। इस तरह गुदापर तैलवाला हाथ लगा वायुनिःसारक नलिका (Flatus tube) या रबरकी मूत्रनलिका (Catheter) वा आमाशयनलिका (Stomach tube) को गुदास्थानमें प्रवेश करानेसे अन्त्रस्थ वायु निकल जाती है।

कदाचित् अन्त्रमें अत्यधिक वायुसंचित हो जानेसे अन्त्र फट जानेका या आसन्न मृत्यु होनेका संशय रहता हो, तो व्रीहिमुख यन्त्रको उदरकी दीवारमें प्रवेशकरा वायुको निकाल देना चाहिये।

परिणाम शूलमें कड़वी और मीठी औषधियोंसे वमन, विरेचन, निरूह बस्ति और शहद मिली तैलकी बस्ति देना चाहिये।

अन्नद्रव शूलमें प्रायः पित्तकी अधिकता रहती है, अतः इसे वमनसे और कफको विरेचनसे दूर करें। (प्राचीन मत)

अन्नद्रव शूलके रोगीको हो सके, तो भोजन थोड़ी-थोड़ी मात्रामें, दिनमें ४ समय देना चाहिये। नित्यप्रति प्रातःकाल अविपत्तिकर चूर्ण अथवा थोड़ा बादाम रोगन वा जैतुनका तैल देते रहनेसे मलावरोध दूर होजाता है और आमाशयमेंसे लवणाम्ल द्रव निकल जानेसे वेदना कम होजाती है। (नव्यमत)

परिणाम शूल (आन्त्रिक व्रण) और अन्नद्रव शूल (आमाशयिक व्रण) दोनों व्याधियोंकी चिकित्सा लगभग समान है। अन्नद्रव शूलमें अनेक बार आमाशयिक रसमें तीव्रता और अम्लता अत्यधिक हो जानेसे कुछ भेद होजाता है। आगे अन्नद्रव शूलकी चिकित्सा-निमित्त सूचना विस्तारसे लिखेंगे। ये सब परिणामशूलकेलिये भी उपयोगी हैं।

असह्य शूल (आमाशयिक व्रण) होनेपर रोगीको पूर्ण विश्रान्ति करनी चाहिये। शारीरिक श्रमका बिल्कुल त्यागकर देना चाहिये। आमाशयको धक्का न पहुँचे, उस तरह पूर्ण सम्हाल रखना चाहिये। आमाशय व्रणके रोगीको चाहिये कि जिस तरह बैठने या लेटनेसे पीड़ा कम होती हो, उस तरह भोजनके कुछ कालतक बैठे या लेटे रहें। व्रण स्थानपर भुक्त पदार्थका जितना दबाव कम पड़ता है, उतना ही कष्ट कम होता है। बाईं करवट, दाहिनी करवट, चित्त और औंधे लेटकर, एवं भिन्न भिन्न रीतिसे बैठकर रोगीको अनुभवकर लेना चाहिये। जिससे दीर्घकाल-तक त्रासमें न्यूनता हो।

भोजनमें-खटाई, अधिक घृत, गरम मसाला, प्याज़, लहसुन, चावल आदि हानिकर पदार्थ, गुरु भोजन, अपक्व भोजन और उग्रपदार्थोंका त्यागकर देना चाहिये। शराब, चाय, कॉफी, तमाखू और अन्य उत्तेजक पदार्थोंका उपयोग न करें।

यदि इस रोगकी उत्पत्ति दन्तपूय या गलग्रन्थिप्रदाहके हेतुसे हुई हो, तो धूम्रपान बिल्कुल छुड़ा देना चाहिये। शराब भोजनके पहले नहीं लेना चाहिये। नारि-यलके तैलकी मालिश करना अति हितकर है। जैसे-जैसे आहार पचन होता जाय, वैसे-वैसे लघुपौष्टिक भोजनको बढ़ाते जाना चाहिये।

दूध और प्रवाही भोजन निर्विघ्नतासे पचन होजाता है। मांसाहारियों केलिये मांसरस या अण्डेका पचन होजाता है। जिन रोगियोंको दूध सहन न हो, उनको दूसरा लघु भोजन दें। हो सके तो २-२ घण्टेपर थोड़ा-थोड़ा भोजन ४ बार देवें। किसी किसी रोगीको कोई भी पदार्थ सहन नहीं होता, उनको बस्ति द्वारा पथ्य आहार, दूध, शक्करका जल, दूधका मक्खन या अण्डेका रस या अन्य द्रव चढ़ाना चाहिये। बस्ति ३-४ घण्टेपर ४-६ औंस प्रवाहीकी दिनमें ३-४ समय देनी चाहिये। परन्तु रोज़ सुबह साबुन मिले जलकी बस्ति देकर बृहदन्त्रको शुद्ध कर लेना चाहिये।

जो बस्तिमें चढ़ाया हुआ द्रव जल्दी निकल आता हो, तो द्रवके साथ कुछ बूँद अफीमके अर्कको मिला देनी चाहिये। एवं कोष्ठबद्धताभी न हो, इस बातकी भी सम्हाल रखना चाहिये।

शक्ति संरक्षणपर खूब ध्यान देना चाहिये। यदि दूध अनुकूल है और मांसा-हारियोंको मांसयूषका पचन होजाता है, तो अधिक चिन्ता नहीं रहती। जिनको अर्धपाचित दुग्ध (पेप्टोनाइज मिल्क) अनुकूल रहता है, उनको वह देना चाहिये। दूधके साथ बादामका तैलभी अति हितकर है।

यदि अत्यधिक दुर्बलता आगई हो, तो द्राक्षासव या लक्ष्मीविलासरस अभ्रक मिश्रित अथवा और कोई हृदय पौष्टिक औषधि देनी चाहिये।

रोग बढ़नेपर औषधि-चिकित्सासे लाभ होनेकी आशा कम रहती है। शल्य-क्रियाका ही आश्रय लिया जाता है। शल्य चिकित्साभी देहबल कायम रहनेपर ही

सफल होती है। अतः समयको व्यर्थ न गुमाना चाहिये। बहुधा शल्य चिकित्सक आमाशय व्रणके कुछ ऊपर छिद्र करके उसका सम्बन्ध ग्रहणीके साथ जोड़ देते हैं, जिससे व्रणको त्रास नहीं पहुँचता। आमाशय-रसमिश्रित भोजन व्रण-स्थानकी ओर नहीं जाता। सीधा ग्रहणीमें चला जाता है। इस तरह व्रणको शान्ति मिलनेसे वह थोड़ेही दिनोंमें भर जाता है।

यदि आमाशयप्रदाह हो, तो शुक्ति, वराटिका या शंखभस्मका सेवन कराना चाहिये। ये भस्म आमाशय रसकी अम्लता और उग्रताको शमन करते हैं तथा व्रणको सुखानेमें सहायता पहुँचाते हैं। अथवा आमाशय रसकी अम्लता नष्ट करनेके लिये सज्जीखार या सोडा बाई कार्ब देना चाहिये। सोडा बाई कार्ब भोजनके पहले २०-२० ग्रेन दिनमें ३-४ समय देवें।

यदि शूल अत्यधिक हो, तो शंखवटी या अफीम मिश्रित जातिफलादि वटी देनी चाहिये। अथवा बस्तिमें अफीमका अर्क २०-२० बूँद मिला देना चाहिये। इनके अतिरिक्त राईका प्लास्टर आमाशयपर लगानेसे भी तुरन्त लाभ होजाता है। अनेकोंको बर्फकी थैलीसे सेक करनेपर पीड़ा शान्त होती है।

अत्यधिक वेदना होनेपर स्टॉमकट्यूबसे आमाशयको धोकर साफ कर लेवें और गरम जलकी बोतलसे आमाशयपर सेक करें। सेक करानेसे रक्त-संचालन-क्रियामें वृद्धि होती है और व्रण-स्थानमें रक्त सचार होने लगता है। जिससे व्रण सत्वर भरने लगता है।

यदि रक्तवमन होती है, तो कासीस भस्म और प्रवालपिष्टी मिलाकर १ तोला बादामावलेह या गुलकंदके साथ या हरड़के मुरब्बाके साथ देते रहना चाहिये। तार्पिनके तैलकी ५-५ बूँद दिनमें २ बार आवश्यकतापर देते रहनेसे रक्तस्रावका रोध होता है। (इस तैलको अधिक मात्रामें नहीं देना चाहिये, अन्यथा रक्तस्राव ज्यादा होने लगता है।)

एलोपैथिक और होमियोपैथिक मत अनुसार मल्ल (Arsenic) प्रधान औषधियाँ आमाशयिक और आन्त्रिक व्रण-व्याधियोंपर अति हितकर मानी जाती हैं। मल्लके अति सूक्ष्म मात्रामें सेवनसे भयानकशूल, व्याकुलता, दाह, अस्थिरता, निद्रानाश और वमन आदि लक्षणोंपर सत्वर लाभ पहुँचता है।

कतिपय औषधियाँ गुण-धर्म-विवेचनसह "औषध गुण-धर्म-विवेचन" में उदरवातघ्न और वातशूलघ्नके साथ लिखी हैं। वहाँपर कुछ सूचनाएँ भी की हैं।

वातज शूल चिकित्सा

(१) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें आई हुई औषधियाँ—हिंगुल रसायन दूसरी विधि, हिंग्वादि चूर्ण, हिंग्वष्टक चूर्ण, शिवाक्षार पाचन, ताम्र भस्म, भुनी हींग, त्रिकटु, मुलहठी, कालानमक और इमलीके क्षारके साथ। अग्नितुण्डी वटी और शूलवज्रिणी वटी ये सब अति लाभदायक हैं।

(२) शूलगजकेसरी रस—कुचिले ८ तोले लेकर १२८ तोले गोदुग्धमें

डाल मंदाग्निसे उबालें। कुचिले नरम होजानेपर धोकर साफ करें। फिर ऊपरके छिलके और बीचमेंसे जिब्भी निकाल बारीक पीसें। पश्चात् पीपल, पीपलामूल, कालीमिर्च, सोंठ, बच, बेलगिरी, हरड़, दोनों प्रकारकी करञ्जकी गिरी, सज्जीखार, जवाखार, सैंधानमक, कालानमक, बिड़नमक और शुद्ध गन्धक १-१ तोला तथा भुनी हींग, सुहागेका फूला और अजवायन २-२ तोले मिला अदरकके रसमें ३ दिन खरलकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेसे १ से ३ गोलीतक गुनगुने जलके साथ देनेसे वातज, कफज, आमज और त्रिदोषज शूल नष्ट होते हैं। इस औषधिके सेवनसे आमाशय और अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया बलवान् बनकर शूल शमन होजाता है। इसके अतिरिक्त इस औषधिसे हृदय और वातवहानाड़ियाँ भी सबल होती हैं।

सूचना—जब पित्त अति तेज़ हो, छातीमें दाह, पसीना, मुँहमें छाले, खट्टी वमन आदि लक्षण हों या मूत्रपिण्ड विकृति हो। अथवा सवेदना तन्तुमें उत्तेजना बढ़ी हो (हिस्टीरिया आदि रोगोंमें), तब यह रस नहीं देना चाहिये।

(३) शूलहर वटी—सुवर्ण वंगके खारको १२ घण्टे अदरकके रसमें खरल करें। फिर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सुवर्ण वंगमें डालते जाँय, जिससे गोलियोंके चारों ओर सुवर्णवंग लगकर गोलियाँ सुवर्णके सदृश हो जायँगी। सुवर्णवंगमें न डालना हो, तो सोंठके चूर्णमें डालना चाहिये। इन गोलियोंमेंसे २-२ गोली निगलवाकर एक-दो घूँट जल पिला देनेसे अपचनसे उत्पन्न उदरशूल तत्काल दूर होजाता है।

(४) वातवाहिनियोंकी विकृतिसे शूल और दाहपर—रौप्य भस्म, च्यवनप्राशावलेह या आँवलोंके मुरब्बाके साथ दें। या महावातविध्वंसन रस देवें। तीव्र शूल जो आमाशय या अन्य स्थानोंमें हों, तब शूलोंपर महावातविध्वंसन रस दिया जाता है। मन्द वेदनामें और जीर्ण रोगपर रौप्य भस्म देवें। शूलवज्रिणी वटी तीक्ष्ण पीड़ा और जीर्ण व्याधि, दोनोंमें हितकर हैं। शूलगजकेसरी वातनाड़ियोंकी उत्तेजना न हो, ऐसी जीर्ण व्याधिमें हितकर है।

(५) खरैंटीकीजड़, पुनर्नवाकीजड़, एरण्डमूल, छोटी कटेली बड़ी कटेली और गोखरूका क्राथकर २रत्ती भुनीहींग और २ माशे कालानमक मिलाकर पिलानेसे वातजशूल नष्ट होता है।

(६) भुनी हींग, अतीस, सोंठ, मिर्च, पीपल, बच, कालानमक और बड़ी हरड़का चूर्ण ३ माशे गुनगुने जलके साथ देनेसे वातजशूल और विबन्ध नष्ट होजाता है।

(७) तुम्बरूके फल, बड़ी हरड़, भुनी हींग, पुष्करमूल, सैंधानमक, कालानमक समुद्रनमक, जवाखारका चूर्णकर ३-३ माशे जौके क्वाथके साथ पिलानेसे वातशूल, गुल्म और अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) शमन होजाते हैं।

(८) अजवायन, भुनी हींग, सैंधानमक, जवाखार, कालानमक और बड़ी हरड़को समभाग मिला चूर्णकर, ३ माशे शराबके साथ देनेसे वातज शूल नष्ट होजाता है।

(९) सागके बीज (नये) का चूर्ण १–१॥ माशे गुनगुने जलके साथ या गुड़में गोली करके देनेसे तत्काल शूलकी निवृत्ति होजाती है। वमन, घबराहट भी दूर होते हैं।

(१०) एरण्डमूल और सोंठका क्वाथकर भुनी हींग और कालानमक मिलाकर पिलानेसे वातज शूल नष्ट होते हैं।

(११) सेके हुए करंजके बीजोंकी गिरी, भुनी हींग, सज्जीखार, अजवायन, कालानमक और आमाहल्दीका चूर्ण गुनगुने जलसे देनेसे वातज, पित्तज, कफज और परिणामज शूल दूर होते हैं।

(१२) बिजौरेकी जड़का ६ माशे चूर्ण खिलाकर ऊपरसे ४ तोले घी पिला देनेसे वातज शूल नष्ट होजाता है।

(१३) मालिशार्थ—नारायण तैल, महाविषगर्भ तैल, वातशूलहर मलहम या शिरःशूलान्तक मलहमकी मालिश करानेसे वेदना दूर होजाती है।

(१४) लेप—मैनफलको कांजीमें मिला पीस गरमकर नाभिके ऊपर लेप करनेसे पक्वाशयमें चलनेवाला शूल तुरन्त शमन होता है।

(१५) देवदारु, बच, कूठ, सोवा, हींग और सैंधानमकको कांजीमें मिला गरमकर उदरपर मोटा-मोटा लेप करनेसे शूलकी निवृत्ति होती है।

(१६) स्वेदन—बेलकी छाल, तिल और एरण्ड मूलको कांजीके साथ पीस गरमकर गोला बनावें। फिर कपड़ेमें लपेटकर उदरपर सेंक करनेसे शूल नष्ट हो जाता है। इस तरह केवल काले तिलसे भी सेक किया जाता है।

(१७) तार्पिनके तैलकी मालिश करके गुनगुने जलसे सेक करनेपर सत्वर शूल शमन होजाता है।

पित्तज शूल चिकित्सा

(१) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—शंख भस्म, शंख वटी, बृहत्यादि क्वाथ दूसरी विधि और गुल्मकुठार रस (शूल गुल्मके हेतुसे है तो), इनमेंसे प्रकृतिके अनुकूल औषधि देनेसे पैत्तिक शूल सत्वर नष्ट होजाता है।

शंख भस्म और शंख वटीमें आमाशय-रसकी अम्लता और उष्णताको दूर करनेका गुण रहा है। अतः जब उदरमें अफारा, मुखपाक, खट्टी डकार, तृषा वृद्धि, दाह आदि लक्षण हों, तब इनसे सत्वर लाभ होता है। इनमें शंख वटी तो विदग्धाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्णसे उत्पन्न शूलको भी तत्काल दूर करती है।

बृहत्यादि क्वाथ—सामान्य होनेपर भी आम प्रकोप, वात प्रकोप तथा पित्त प्रकोपजन्य शूलको त्वरित निवृत्त करता है।

गुल्म कुठार—में ताम्र भस्मका परिमाण अधिक है। अतः यकृत् पित्तका स्राव अब कम होनेसे शूल उत्पन्न हुआ हो, तब उपयोग किया जाता है। गुल्म

कुठारकी मात्रा अति कम देनी चाहिये। अन्यथा उबाक और बेचैनी घण्टोंतक होती रहती है। अनुपान–मट्ठा, नींबूका रस या अनारका रस।

(२) मैनफलका चूर्ण ३ माशे खिला ऊपरसे परवलके पत्ते और नीमकी अन्तर छालका क्वाथ पिलाकर वमन करा देनेसे शूलकी निवृत्ति होती है।

(३) शतावरीका स्वरस शहद मिलाकर पिलानेसे पैत्तिक शूल और दाहकी निवृत्ति होती है।

(४) आँवलेका रस, अंगूरका रस या आँवलेका चूर्ण, इन तीनोंमेंसे किसी एकमें मिश्री मिलाकर जलके साथ देनेसे पैत्तिक शूल नष्ट होजाता है।

(५) शतावरी, मुलहठी, खरेंटी, कुश और गोखरूका क्वाथकर पुराना गुड़, शक्कर और शहद मिलाकर पिलानेसे रक्तपित्त, दाह, शूल और दाहयुक्त ज्वर दूर होजाते हैं।

(६) हरड़, बहेड़ा, आँवला और अमलतासका गूदा मिलाकर पिलानेसे रक्तपित्त और शूल नष्ट होजाते हैं।

(७) हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीमकी अन्तरछाल, मुलहठी, कुटकी और अमलतासके फलका गूदा मिला क्वाथकर पिलानेसे दाहयुक्त पैत्तिक शूल और कोष्ठबद्धताका निवारण होता है।

(८) एरण्ड तैल मुलहठीके क्वाथके साथ पिलानेसे पैत्तिक शूल और पैत्तिक गुल्म दूर होजाते हैं।

(९) आँवलेका चूर्ण ४ माशे शहदके साथ चाटनेसे पित्तजशूल शान्त होजाता है।

(१०) काँसी, रौप्य, ताम्र या पीतलके बर्त्तनमें शीतल जल भरकर शूलके स्थान पर रखनेसे पैत्तिक शूल नष्ट होता है।

कफज शूल चिकित्सा

(१) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—आनन्द भैरवरस, अग्नितुण्डी वटी, जीवनधारा अर्क, संजीवनी वटी, शूलगजकेसरी वटी (वातजशूल चिकित्सामें लिखी हुई), शूलवज्रिणी वटी, हिंगुल रसायन दूसरी विधि, बिल्वादि क्वाथ, ये सब औषधियाँ कफज शूलको नष्ट करनेमें अति लाभदायक हैं। इन सबको अनेक बार प्रयोगमें ला चुके हैं। शूल गजकेसरी और शूलवज्रिणी, ये दोनों तो शूलके लिये मुख्य औषधियाँ हैं। एवं हिंगुल रसायनभी तत्काल गुण दर्शाती है।

अग्नितुण्डी वटी, जीर्ण व्याधि और उपान्त्र विकारमें हितावह है। संजीवनी वटी निर्भय, सौम्य और उत्तम औषधि है।

अपचन जनित शूल, जिसमें आमाशयमें शिथिलता आगई हो या पित्तस्राव पूरे परिमाणमें न होता हो, ऐसे प्रकारके शूलोंपर ये सब औषधियाँ हितकारक हैं।

(२) पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, सैंधानमक, कालानमक,

सांभरनमक और हींगको मिला चूर्णकर ३ माशे गुनगुने जलके साथ देनेसे कफज शूलका विनाश होता है।

(३) दशमूल क्वाथमें २ माशे सैंधानमक और ४ रत्ती जवाखार मिलाकर पिलानेसे हृद्रोग, गुल्म, कास, श्वास और कफजनित शूल शमन होते हैं।

(४) पञ्चकोलके क्वाथमें यवागू सिद्ध करके खिलानेसे कफजशूल नष्ट होता है।

(५) छोटी कटेलीका ताज़ा पञ्चाङ्ग लेकर मोटा-मोटा कूटें। फिर हांडीमें भर पातालयन्त्रकी विधिसे अर्क निकाल लें। यह अर्क ६–६ माशे दिनमें ३ समय देनेसे कफजशूल, हृदयशूल और सांधाओंके शूल निवृत्त होते हैं।

(६) नागरमोथा, बच, कुटकी, हरड़का छिलका और मूर्वाको समभाग मिलाकर ४ माशे चूर्ण गोमूत्रके साथ देनेसे कफजशूल नष्ट होता है और आमका पचन होता है।

पार्श्व शूल चिकित्सा

(१) महावातराज रस, (मलावरोध न हो, तो), लक्ष्मीविलास रस अभ्रक प्रधान (फुफ्फुसावरण विकृति जन्य चिरकारी हो, तो , शृंगभस्म, महावातविध्वंसन रस तीक्ष्ण वातज हो, तो) और शूलवज्रिणी वटी, ये सब औषधियाँ अति हितकर हैं। इनमेंसे रोगानुसार औषधिको प्रयोगमें लावें। फुफ्फुसावरण विकृतिजन्य शूलका विशेष वर्णन उरस्तोयमें आगे किया जायगा।

(२) बिजौरेके रस या सुहिंजनेकी छालके क्वाथमें जवाखार और शहद मिलाकर पिलानेसे हृदय, पार्श्व और मूत्राशयके शूल नष्ट होजाते हैं।

(३) एरण्ड मूलके क्वाथमें जवाखार मिलाकर पिलानेसे हृदयशूल, पार्श्वशूल और कफ जनित शूल नष्ट होते हैं।

(४) हींग, त्रिकटु, कूठ, जवाखार और सैंधानमकका चूर्ण बिजौरेके रसके साथ देनेसे प्लीहा-वृद्धि और शूल नष्ट होते हैं।

(५) जीवन्तीकी जड़का कल्क तैल मिला गरमकर पसलियोंपर लेप करनेसे पार्श्वशूल नष्ट होजाता है।

हृदयशूल चिकित्सा

(१) एरण्ड मूल, बेलछाल, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, बिजौरे नींबूके वृक्षकी छाल, पाषाण भेद और गोखरूकी जड़, इन सबको मिला क्वाथकर भुनी हींग, कालानमक और एरण्ड तैल मिलाकर पिला देनेसे श्रोणिस्थान (कमर), कंधे, मूत्रेन्द्रिय, हृदय और स्तन, इन सब स्थानोंके शूल निवृत्त होते हैं।

(२) शृंगभस्म ४–४ रत्ती गोघृतके साथ दिनमें ३ समय देनेसे हृदयशूल, पार्श्वशूल और वृक्कशूल नष्ट होते हैं।

(३) त्रैलोक्यचिन्तामणि रस, रससिंदूर, पूर्णचन्द्रोदय रस, जवाहर मोहरा,

इनमेंसे कोईभी एक औषधि शहद, पीपल या अदरकके रस और शहदके साथ देनेसे हृदयशूल निवृत्त होजाता है। विशेष उपचार तृतीय-खण्डमें हृदय चिकित्साके भीतर यथास्थान लिखा जायगा।

आमज शूल चिकित्सा

(१) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—शंखवटी, जातिफलादि वटी, हिंगुल-रसायन दूसरी विधि, नींबूद्राव, लघुशंखद्राव, शंखद्राव, जम्भीरीद्राव, स्वादिष्ट शर्बत, अग्निकुमार रस, क्रव्याद रस, जीवन धारा अर्क, शूलगजकेसरी (वातजशूलमें लिखा हुआ), अश्विनीकुमार रस, थोड़ा-थोड़ा ज्वर, बार बार दस्त और कोष्ठ शूल हो, तो आनन्द भैरव रस, शुद्धोधक रस, संजीवनी वटी, वज्रक्षार चूर्ण और गंधकवटी, ये सब औषधियाँ लाभदायक हैं। इनमेंसे रोगकी तीव्रता या मंदता अनुरूप औषधिकी योजना करें। ये सब औषधियाँ आमको पाचनकर शूलको नष्ट करती हैं।

शंखवटी— विदग्धाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण जनित शूल, दोनों प्रकारोंमें लाभदायक है। जातिफलादि आम प्रकोपसे अपचन और पतले दस्त लगते हों तब उपयोगी है।

अग्निकुमार, क्रव्याद रस, शंखद्राव, नींबूद्राव—ये सब अति अग्निप्रदीपक हैं। उदरकी विष्टब्धतामें हितकर हैं।

शुद्धोधक रस आम पाचक है। तथा अग्निमान्द्यको दूर करनेके साथ अपचन जनित शूलको नष्ट करता है। निर्भयता पूर्वक इसे सर्वत्र प्रयोगमें ला सकते हैं।

नींबूका शर्बत, स्वादिष्ट शर्बत, ये सौम्य औषधियाँ हैं।

संजीवनीवटी, आनन्द भैरव रस या अश्विनीकुमार ज्वरावस्थामें दिये जाते हैं। अश्विनीकुमारमें अफीम और जमालगोटा, दोनों होनेसे दूषित मलको फेंकना, अन्त्रका संकोच करना, शूलका शमन करना और ज्वरको नष्ट करना, ये सब कार्य होजाते हैं।

(२) आम विरेचनार्थ—उदरमें आम और मल संचय अधिक हो, तो एरण्ड तैल, पञ्चसम चूर्ण, पञ्चसकार चूर्ण, आरग्वधादि क्वाथ (द्वितीय विधि) या नारायण चूर्ण, इनमेंसे अनुकूल औषधि देकर उदर शोधन करा लेना चाहिये।

(३) चित्रकमूल, पीपरामूल, एरण्डमूल, सोंठ और धनियाँका क्वाथकर भुनी हींग, बिड़नमक और खट्टे अनारका रस मिलाकर पिला देनेसे आमशूल, अफारा और मलावरोध दूर होते हैं।

(४) घोड़ेकी लीदके ६ माशे रसमें १ रत्ती भुनी हींग मिलाकर देनेसे तत्काल शूलकी निवृत्ति होती है।

(५) अजवायन, सैंधानमक, छोटी हरड़ और सोंठको समभाग मिलाकर ४ माशे गुनगुने जलके साथ देनेसे आमशूलको दूर कर अग्नि प्रदीप्त करती है।

(६) घीकुंवारके २ तोले रसमें १ माशा सज्जीखार मिलाकर पिलानेसे शूल तुरन्त बन्द होजाता है।

(७) वायविडंगका चूर्ण अगस्त्यके स्वरसके साथ चाटनेसे शीघ्र ही अपचन जनित शूल शमन होजाता है।

(८) क्षुधावटी (चि० त० प्र० प्रथम-खण्ड) देनेसे सत्वर उदरशूल और अपचनकी निवृत्ति होती है।

द्वन्द्वज शूल चिकित्सा

(१) सब प्रकारके द्वन्द्वज शूलोंपर—शूलवज्रिणी वटी लाभदायक है।

(२) वातपित्तकी प्रधानता हो, तो—सूतशेखर या सुवर्ण भूपति रस देना चाहिये।

(३) अन्त्रकी शिथिलता हो, तो—नागभस्म, अदरकके रस और शहदके साथ या अग्नितुण्ड वटी या माजून कुचिला देते रहनेसे शूल शमन होजाता है।

(४) कफपित्तज कोष्ठ शूल—शंख भस्म या मंडूरमाक्षिक भस्म अथवा इन दोनोंको मिलाकर घृतके साथ देनेसे कफपित्तज उदरशूल निवृत्त होजाता है।

(५) बृहत् पञ्चमूलका क्वाथ शहद मिलाकर पिलानेसे वातपित्तात्मक शूल दूर होता है।

(६) परवलके पत्ते, त्रिफला और नीमकी अंतरछालका क्वाथकर शहद मिलाकर पिलानेसे कफ-पित्त-ज्वर, वमन, दाह और शूल रोग दूर होते हैं।

(७) लहसुनका रस शहद मिलाकर सेवन करानेसे वात कफात्मक शूल नष्ट होता है।

त्रिदोषज शूल चिकित्सा

(१) शंख द्राव, जम्भीरी द्राव, शूलवज्रिणी वटी या शंखवटी देनेसे त्रिदोषज कोष्ठ शूलकी निवृत्ति होती है।

सूचना—यदि तेज़ औषधि सहन होती हो, तो शंखद्राव वा जम्भीरीद्राव देवें। आमाशय-रसमें अम्लता बढ़ गई हो, तो जम्भीरी द्राव नहीं देना चाहिये। शूल-वज्रिणी और शंख वटी, ये दोनों निर्भयतापूर्वक प्रयोगमें लाई जाती हैं। यदि व्रणजन्य शूल है, तो परिणाम शूलचिकित्सामें कहे अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

(२) विश्वादि क्वाथ—सोंठ, एरण्डमूल, दशमूल और जौ, इन १३ औषधियोंको मिलाकर क्वाथ करें। फिर क्वाथमें जवाखार, सज्जीखार, भुनी हींग, सैंधानमक, बिड़नमक और पुष्करमूलका चूर्ण प्रक्षेप रूप डालकर पिलानेसे हृदय, पसलियाँ, कमर जकड़ना, आमाशय, पक्वाशय, कंधे आदि स्थानोंकी तीव्र वेदना, ज्वर, गुल्म, शूल ये सब नष्ट होते हैं।

(३) एरण्डद्वादशक क्वाथ—एरण्ड बीजकी जिल्भी निकाली हुई गिरी, एरण्ड मूल, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, सह-देवी, पृष्ठपर्णी, (दूसरी बार) और ईखकी जड़, इन १२ औषधियोंको मिला क्वाथकर जवाखार डालकर पिलानेसे वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज एवं त्रिदोषज शूलकी निवृत्ति होती है।

(४) मण्डूर भस्म या लोह भस्म त्रिफला, शहद और घृत मिलाकर चाट लेनेसे त्रिदोषज शूल नष्ट होता है। (पहले घृत और फिर शहद मिलावें।)

(५) विदारी कन्द और अनारके रसमें शहद, त्रिकटु और सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे त्रिदोषज शूल तुरन्त नष्ट होजाता है।

(६) शंख भस्म, कालानमक, भुनी हींग और त्रिकटुको मिला गुनगुने जलके साथ देनेसे त्रिदोषज शूल नष्ट होते हैं।

(७) लोह भस्म २ रत्ती, गोमूत्रमें पकाई हुई छोटी हरड़ ३ माशे और गुड़ ६ माशे मिलाकर खिलानेसे समस्त प्रकारके शूल शमन होते हैं।

(८) कांटेदार करंजके बीज ३ तोले, कालानमक, डीकामाली, एलुवा, सज्जीखार और कालानमक १-१ तोला तथा हींग ३ माशेका चूर्णकर गरम जलमें चटनीकी तरह पीसें। फिर गरम-गरम बालकोंके पेटपर लेप करनेसे उदरका भारीपन, उदर शूल, कोष्ठबद्धता, कृमि और अपचन दूर होते हैं।

(९) राई, सुहिंजनेकी छाल, कालानमक, सज्जीखार और हल्दीको कूट बारीक चूर्ण करें। फिर घीकुंवारके रसमें खरलकर पतले दहीके समान प्रवाही बना लेवें। इसे गुनगुनाकर लेप करनेसे उदरशूल, पार्श्वशूल, संधिशूल, कटिशूल आदि नष्ट होते हैं। वमनमें कौड़ी प्रदेशपर लेप करें। यकृद्वृद्धि और प्लीहावृद्धिपर लेप करनेसे वेदना शमन होती है और वृद्धि दूर होती है। इस तरह कफ-वृद्धि होनेपर इसका लेप फुफ्फुसोंपर किया जाता है।

(१०) शुद्ध बच्छनाग, बच, सोंठ, भुनी हींग और सैंधानमक इन सबको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर चूर्णके समान गुड़ मिलाकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवें। इनमेंसे १-१ गोली दिनमें २ या ३ बार देनेसे सब प्रकारके उदरशूल शमन होजाते हैं।

(११) रक्त वाहिनियोंमें अवरोध-जन्य शूल होनेपर—लोह भस्म शक्करके साथ दें या शहद-पीपलके साथ दिनमें ३ समय देते रहें।

(१२) संधिगत और अस्थिगत शूल हो, तो—नाग भस्म, सोंठका चूर्ण और शहदके साथ दिनमें ३ समय देनेसे शूलकी निवृत्ति होती है।

(१३) पित्ताश्मरी जन्य शूलपर—अश्मरी बहुत बड़ी हो गई हो, तो ऑपरेशन करके पित्त कोषमेंसे निकाल डालें। अश्मरीके छोटे-छोटे कण हों, तो अगस्तिसूतराज रस, त्रिकटु और शहदके साथ देनेसे तीव्र वेदना शमन होती है। अथवा अगस्तिसूतराज-जवाखार और घृतके साथ या त्रिकंटकादि क्वाथसे देवें।

(१४) पित्ताशयसे अश्मरी तोड़कर निकालनेके लिये—ताम्र भस्म (कुटकीके चूर्ण या करेलेके रसके साथ) या सूतशेखर रस (२ तोले त्रिफलाके क्वाथके साथ) देनेसे अश्मरी जनित तीव्र वेदना शान्त होती है। विशेष उपचार आगे पित्ताशयाश्मरीके साथ लिखा जायगा।

परिणामशूल और अन्नद्रवशूल चिकित्सा

(१) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—शूलवज्रिणी वटी, ताम्रभस्म (कफपित्तात्मक है, तो), मण्डूरमाक्षिक भस्म, पित्तात्मक है, तो शम्बुकभस्म, शंखभस्म वराटिका भस्म, वातपित्तज या पित्तज हो, तो), ये सब औषधियाँ अति हितकारक हैं। इनमेंसे प्रकृतिका विचार करके योजना करनी चाहिये।

शूलवज्रिणीके सेवनसे आमाशयके रसकी तीव्रता कम होती है। यकृत् पित्तका स्राव अधिक होता है और आमाशयमेंसे अन्त्रमें अन्न जानेके समय त्रास न्यून होता है।

यकृत्के पित्तस्रावको जहाँ बढ़ानेकी आवश्यकता हो, वहाँपर ताम्रभस्मको प्रयोगमें लाना चाहिये। मण्डूरमाक्षिक, शम्बुक, शंख, वराटिका आदि आमाशयकी अम्लता और उग्रताका ह्रास कराते हैं एवं वमनको शमनभी कराते हैं।

(२) सप्तामृत लोह—मुलहठी, त्रिफला और लोहभस्म इन ५ वस्तुओंको घी और शहदके साथ मिलाकर चाट लेवें, ऊपर गौका दूध पीवें, तो वमन, तिमिर, परिणाम शूल, अम्लपित्त, ज्वर, ग्लानि, वायुका निरोध, मूत्रावरोध, और शोथविकार दूर होते हैं।

(३) बृहद् विद्याधराभ्र रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, कालीमिर्च पीपल, वायविडंग, नागरमोथा, निसोत, दन्तीमूल, चित्रकमूल, मूसाकानी और पीपरामूल, ये १५ औषधियाँ १-१ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोले और लोह भस्म १६ तोले लेवें। पहले पारद और गंधककी कज्जली करें। फिर भस्म मिलावें, अंतमें काष्ठादि औषधियोंका चूर्ण मिला ५ तोले गोघृत डालकर खरल करें। फिर आवश्यकता हो उतना शहद डाल ६ घण्टे खरलकर मटर समान गोलियाँ बनालें। छायामें सम्हालपूर्वक पतले वस्त्रसे ढककर रखनेसे ५-६ दिनमें सूख जाती हैं। बादमें चौड़े मुँहकी बोतलमें भर लेवें। अथवा चूर्ण ही रख लें। चूर्णकी मात्रा ४ रत्ती या गोली १ से २ प्रातःकाल गो दुग्ध या नारियलके जलके साथ सेवन करानेसे आमाशय रस बहुत अंशमें आँतमें चला जाता है। जिससे अन्नद्रव शूल और परिणामशूल आदि नष्ट होजाते हैं। यह रसायन वातपित्तज शूल, एक दोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज और परिणामशूल, आमवातज शूल, कृशता, विवर्णता, आलस्य, तन्द्रा और अरुचि आदिको नष्ट करता है। साध्य और असाध्य, नूतन और जीर्ण, सब प्रकारके शूलोंको दूर करता है। आमाशयमें तीव्र रसका संचय होनेपर यह रसायन उसे सत्वर आँतोंमें ढकेला देता है। फिर मलशुद्धिकर बाहर निकाल डालता है। आमाशयको भी सबल बनाता है और शूलको भी शान्त करता है। यह इस रोगके लिये उत्तम औषधि है।

(४) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह द्वितीय-खण्डमें आये हुए प्रयोगोंमेंसे—परिणाम शूलपर धात्री लोह, सामुद्राद्य चूर्ण और नारिकेल लवण हितावह हैं। वातज और कफज शूलपर लवणाद्य चूर्ण दिया जाता है।

(५) शतावरी मण्डूर—मण्डूरभस्म, शतावरी का स्वरस, दही और दूध, प्रत्येक ३२-३२ तोले और गोघृत १६ तोले लेवें। सबको मिला मन्दाग्निपर पिण्ड सदृश हो, तब तक पाक करें। फिर शीतल होनेपर अमृतबान या खुले मुँहकी बोतलमें भर लेवें। इसमेंसे ४-४ रत्ती भोजनके प्रारम्भ, मध्य और अंतमें लेनेसे वातज और पित्तज परिणामशूल निःसन्देह नष्ट होजाते हैं।

इस मण्डूरके साथ नागरमोथा, पीपल, ज़ीरा, धनियाँ, बड़ी हरड़, दालचीनी और छोटी इलायचीका चूर्ण ३-३ माशे अनुपान रूपसे मिला लेनेसे सत्वर लाभ होता है।

(६) लोह गुग्गुलु—हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, वायविडंग, पुष्करमूल, बच, चित्रकमूल और मुलहठी, ये १२ औषधियाँ ४-४ तोले; लोहभस्म और शुद्ध गूगल ३२-३२ तोले लेवें। सबको यथाविधि मिला घृत डाल अच्छी रीतिसे कूट ४८ तोले शहद मिलाकर रखलें। इसमेंसे १-१ माशा गुनगुने जलके साथ सेवन करनेसे परिणाम शूल और अन्य सब प्रकारके उदरशूल शमन होते हैं। एवं यह गूगल पाण्डु, कामला, हलीमक, दुःसाध्य आमवात, शोथ और जीर्ण विषमज्वरको भी नाश करता है तथा वातवहानाड़ियोंकी विकृतिजन्य जीर्ण शूल और मद्यजनित शूलमें भी हितकर है।

लोह भस्म २ रत्ती, त्रिफला चूर्ण ३ माशे) या मुलहठीका चूर्ण ३ माशे) और शहद ६ माशे मिलाकर चाटनेसे अन्नद्रवशूलमें उत्पन्न जरत्पित्त नष्ट होजाता है।

(७) पिप्पली घृत—२ सेर पीपलको ८ गुने जलमें मिला अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर क्वाथ, गोघृत २ सेर और पीपलका कल्क ४० तोले मिलाकर घी सिद्ध करें। इस घृतमेंसे २-२ तोले चतुर्थांश शहदमें मिलाकर सेवन करावें, ऊपर दूध १०-२० तोले पिलावें और पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करें, तो अम्लपित्त, जरत्पित्त और बढ़े हुए परिणामशूलका निवारण होता है।

(८) त्रिफला ३ माशे और पीपल ४ रत्ती, दोनोंको शहदके साथ मिला चाट लेवें। ऊपर दहीमें मिलाया हुआ मटर और जौका सत्तू खिलाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें अन्नद्रव शूल निवृत्त होजाता है।

(९) हरीतकी खण्ड—हरड़ १६ तोले, निसोत १६ तोले, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, नागरमोथा, तालीसपत्र, ज़ीरा, पीपल, जावित्री; लौंग, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, सोहागेका फूला, ये सब १-१ तोला, गोदुग्ध ६४ तोले और शक्कर ४० तोले लेवें। पश्चात् गोदुग्धमें औषधि मिला मन्दाग्निपर लोहेकी कड़ाहीमें रबड़ी जैसा बनालें। करछीको लगनेपर कड़ाहीको नीचे उतारकर शक्कर मिला देवें। इसमेंसे नित्य प्रति प्रातः १-१ तोला देते रहनेसे आठों प्रकारके शूल, दुर्जय अम्लपित्त, अन्नद्रवशूल, कास, श्वास, वमन, ये सब दूर होजाते हैं। यह

रसायन सब शूलनाशक, कान्तिदायक, पुष्टिप्रद, हृदयपौष्टिक तथा बल, बुद्धि और अग्निको बढ़ानेवाली है।

(१०) रसमण्डूर—हरड़ १६ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, मण्डूरभस्म ८ तोले, शुद्ध पारद २ तोले और भांगरेका रस ६४ तोले लेवें। पारद और गन्धककी कज्जली बनाकर मण्डूर और हरड़ मिलावें। पश्चात् भांगरेके रसके साथ लोहेकी खरल या कढ़ाहीमें खरल करें। बिल्कुल सूखा चूर्ण बननेपर ८ तोले घी मिला लेवें। फिर ३२ तोले शहद मिलावें। इसमेंसे १-१ तोला नित्य प्रातः खिलानेसे कफपित्तज व्याधि, अन्नद्रवशूल, अम्लपित्त, ग्रहणी और उग्र कामलारोगका विनाश होता है।

अन्त्रपुच्छ विद्रधिजन्य शूलपर—अग्नितुण्डी वटी, शूलवज्रिणी वटी अथवा शूलगजकेसरी (वातशूल चिकित्सामें कहा हुआ) दिनमें दो समय जलके साथ देते रहनेसे वमन, उबाक और ज्वरसह उपान्त्रशूल निवृत्त होता है। विशेष विवेचन अन्त्रपुच्छप्रदाह रोगकी चिकित्सामें किया जायगा।

कोष्ठबद्धतासे शूल होनेपर—एरण्ड तैल, इच्छाभेदी रस, नारायण चूर्ण या इतर कोष्ठ शुद्धिकर औषधि देनी चाहिये।

जीर्ण मलावरोध जनित शूलपर—क्रव्याद् रस, अग्नितुण्डी वटी या अग्निकुमार रस इनमेंसे किसी एक औषधिका सेवन करें। या परिणामशूलमें कहे हुए सामुद्राद्य चूर्ण या बृहद्विद्याधराभ्र रसका सेवन करानेसे जीर्ण बद्धकोष्ठ दूर होकर शूल शमन होजाता है।

(आमवात संधिवात) शूलपर—आमवातारि वटी, दशमूलादि क्वाथ, रसोनादि कषाय आदि अनेक प्रयोग तथा लेपमालिश सम्बन्धी विवेचन चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम-खण्डमें किया है।

वातरक्तजन्य शूल होनेपर—बृहद् योगराजगूगल दशमूल क्वाथके साथ देवें। अथवा लाङ्गल्यादि लोह दिनमें २ बार नवकार्षिक क्वाथके साथ देते रहें। विशेष उपचार मूल रोगके विवेचनके साथ तृतीय-खण्डमें किया जायगा।

पथ्यापथ्य-विचार

पथ्य—वमन, लङ्घन, स्वेदन, पाचन, विरेचन, फलवर्त्ति, क्षारमिश्रित औषधियाँ, लेप, निद्रा, एरण्ड तैल, गोमूत्र, गुनगुना जल, गुनगुना दूध, गेहूँका दलिया, भुने हुए जौका दलिया, भुने हुए जौकी माण्ड, परवल, करेला, बथुआ, सुहिंजनेकी फली, समुद्र नमक, जङ्गलके पशु-पक्षियोंका मांसरस, लहसुन, पुराना शालि चावल, नींबूका रस, हलका भोजन, जल और दूधमें बनाई हुई बार्ली, मूंगका यूष (पंच कोल मिलाया हुआ), परवलका यूष, सूरण, गूलर, पेठा, कच्चा पपीता, पालक, मेथीके पत्ते, हींग, सैंधानमक, चौलाई, चाँगेरी, बैंगन, केलेका फूल, आँवला, अंगूर, अनार, पके आम, पका पपीता, मोसम्मी, मीठा नींबू, संतरा, नारियलका जल, पके बेलफल,

कसेरू, सोया, लौंग, जवाखार, मीठा कूठ, अदरक, सोंठ और धनियाँ आदि हितकारक हैं। शाक हो सके उतना कम लेना चाहिये।

सूचना—तीव्र पीड़ाके समय भोजन बिल्कुल नहीं देना चाहिये।

वातज शूलमें—विरेचन और निरूहबस्ति, घी मिला हुआ कुलथीका यूष, लावाका मांस, हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, नमक, ये सब हितकर हैं।

पित्तज शूलमें—पित्तनाशक विरेचन, खरगोश और लावा (बटेर) का मांसरस, खील और शहदका सन्तर्पण, शहद मिले हुए शीतल पदार्थ, जौके सत्तूकी पेया, आँवला, अंगूर, विदारीकन्दका स्वरस, शतावरीका स्वरस, मधुर औषधिसे सिद्ध किया हुआ दूध, शीतल वायुका सेवन, शीतल जलमें गोता लगाकर स्नान करना, ये सब पथ्य हैं।

कफज शूलमें—वमन, लङ्घन, शिरोविरेचन, कड़वी और चरपरी औषधियोंका क्वाथ, शहदकी शराब, शहद, गेहूँ, जौ, अरिष्ट, आसव, शुष्क और चरपरे पदार्थ, पञ्चकोल मिलाकर सिद्ध की हुई यवागू, हींग, नमक और सोंठ आदि हितकर हैं।

अन्नद्रव शूलमें—कड़वे और मधुर द्रव्योंसे वमन, विरेचन, निरूहबस्ति, शहद मिश्रित तैलकी बस्ति, घीमें तले हुए छिल्केवाली उड़दकी पिट्ठीके बड़े, घी और गुड़ मिला हुआ गेहूंका माण्ड, ठण्डा दूध और मिश्री मिला हुआ गेहूँका माण्ड, सिक्थ रहित पुराने शालि चावलका गुनगुना माण्ड, दूध, घी और शक्कर मिला हुआ जौके सत्तूका माण्ड, शक्कर खिलाकर ऊपर गुनगुना दूध पिलाना, परवलके पत्तेके यूषके साथ चनेका सत्तू तथा न्यून मात्रामें अन्नपान आदि हितकर होते हैं।

आमाशयिक व्रण जनित शूलमें—विरेचनार्थ नित्य प्रातः त्रिफला, हरड़, जैतुनका तैल या बादाम रोग़नका सेवन कराना हितकर है। नित्य व्रण स्थानपर सेक करते रहना चाहिये।

परिणाम शूलमें—यदि अम्लपित्त न हो, तो मलाईसह दहीके साथ थोड़े प्रमाणमें मटर और जौके सत्तूका सेवन करनेसे थोड़े ही दिनोंमें शूल नष्ट होजाता है। इस शूलमें अन्नद्रवशूल समान पथ्यका पालन करना चाहिये।

आन्त्रिक व्रणजनित पित्तप्रधान शूल, दाह, अति तृषा, वमन, ज्वर आदि विकार हो; तो जौके सत्तूकी १४ गुने जलमें बनाई हुई पेया बना शीतल होनेपर ऊपरसे जल नितार शहद मिलाकर पिलाना चाहिये तथा उदरको शुद्ध रखना चाहिये।

अपथ्य—व्यायाम, मैथुन, शराब, क्रोध, शोक, अति नमक, तेज़ मिर्च, द्विदलधान्य (चना, मटर, उड़द, अरहर, सेम, चौला, मसूर, मोंठ), मूंगके अतिरिक्त सब प्रकारकी दाल, मल, मूत्र और अधोवायु आदिके वेगोंका अवरोध, शोक, क्रोध, शुष्क शाक, कमलकन्द, कटहल, पक्का केला, आलू, विदाही भोजन, विषम भोजन (दूध-मछली, दूध-दही आदि), रात्रिका जागरण, रूक्ष, कड़वा और कसैला पदार्थ, शीतल

भोजन; अति शीतल जल, भारी भोजन और सूर्यके तापमें भ्रमण आदि अपथ्य हैं।

अन्नद्रवशूल और परिणाम शूल (आमाशयिक और आन्त्रिक व्रणजन्य शूल) में संपूर्ण खट्टे पदार्थोंका त्याग करना चाहिये। एवं अजीर्ण हो जाय उतना पथ्य भोजन अथवा थोड़ा भी अपथ्य भोजन न करें। भोजन थोड़ा-थोड़ा ही करें। द्विदल-धान्य, शराब, स्त्री-सेवन, शीतल-वायु, शीतल-जल, सूर्यका ताप, जागरण, क्रोध शोक, काँजी, खट्टे पदार्थ, इन सबका आग्रहपूर्वक त्याग करना चाहिये।

६. नागविषज शूल

लेड कॉलिक-लेड पोइज़निंग-कॉलिका पिक्टोनम् (Lead colic-Lead Poisoning-Colica Pictonum).

निदान—सीसा और कलईमें रोगोत्पादक विष है, ऐसा प्राचीन आयुर्वेदाचार्योंने माना है। इस हेतुसे भावप्रकाशकारने लिखा है कि, अशुद्ध सीसा आक्षेप, कम्प, किलास, कोढ़, गुल्म, कुष्ठ, शूल, वातज शोथ, पाण्डु, प्रमेह, भगन्दर, विषके प्रभाव सदृश अनेक प्रकारके रक्त विकार, क्षय, मूत्रकृच्छ्र, कफ, ज्वर, प्रमेह, अश्मरी, विद्रधि और वृषणविकार आदि रोगोंकी उत्पत्ति करता है। इनमेंसे तीव्र उदरशूल, प्रमेह, पाण्डु, विषप्रकोप वातविकार आदि प्रत्यक्षमें प्रबल लक्षणरूप प्रतीत होते हैं। यह छापाखानाके कर्मचारियों तथा युद्ध सामग्री, खिलौने और रंगके कारखानोंमें काम करनेवालोंपर होनेवाले आक्रमणसे जाननेमें आता है। सीसा या सीसामिश्रित औषधिका उपयोग खाने, श्वास लेने और व्रण या त्वचापर लगानेमें किया जाता है। फिर भीतर शोषित होकर अपना प्रभाव दर्शाता है। एवं सीसेके नलका जल पीना तथा डिब्बेमें आनेवाले भोजन, खिलौने, सीसेके बर्त्तनोंका उपयोग या सिंदूर, सीसा आदि मिश्रित अन्न खिलाना आदि कारणोंसे नागविष खानेमें आ जाता है।

बच्चोंके लिये खेलनेके रबरके जो खिलौने विदेशसे आते हैं उनपर सीसाका क्षार लगाया जाता है। बालक इन खिलौनोंको मुँहमें डालते रहते हैं, जिससे नागविष आमाशयमें चला जाता है।

छापाखाना (Printing Press) के कम्पोज़ीटर, अक्षर ढालनेके कारखाने (Type-foundry) में काम करनेवाले, सीसेके खिलौने, बर्त्तन और ज़ेवर बनानेवाले तथा सीसेकी गोलियाँ बनानेवालोंकी अंगुलियोंकी त्वचा द्वारा नागविष देहमें प्रवेश करता रहता है। एवं रंगके कारखानोंमें रहनेवालोंको श्वास और त्वचाद्वारा नागविषकी संप्राप्ति होजाती है। इसी तरह नाटकशालाके नट नटी और वेश्या आदिको शिरके बाल और मुखपर पाउडर आदि लगानेमें नाग द्रव्यका प्रवेश त्वचा द्वारा होता है। उपरोक्त सब प्रकार चिरकारी हैं।

कभी कोई दुष्ट मनुष्य मूर्खतावश शीशशर्करा (Sugar of lead) बड़ी

मात्रामें दूसरोंका खिंचा देता है। फिर आमुकारो विष लक्षण-वमन, उदरमें वेदना तथा आमाशय अन्त्रकी उग्रता आदि उपस्थित होते हैं। इस प्रकारमें कचित् परिणाम अशुभ आता है।

विषके आक्रमण प्रकार—१. उदरशूलप्रधान; २. मस्तिष्कविकृति प्रधान; ३. पक्षाघात प्रधान इन तीनोंमें कितनेक लक्षण व्यापक होते हैं। जो पूर्वरूपमें दर्शाये हैं। कितनेक दुर्वत्ति लक्षण उपस्थित होते हैं और फिर बढ़ जाते हैं।

सम्प्राप्ति—सीमान्त (Terminal) अथवा परिधि प्रान्तके वातवहा-नाड़ियोंका दाह (Peripheral neuritis) होनेपर विशेषतः हाथकी कलाईका घात (Wrist-drop), चरण लूले होना (Foot-drop) या नेत्रके वातवहानाड़ियों-की विकृति होजाती है। इस तरह विष प्रभावसे मस्तिष्कगत विकृति भी होजाती है।

धमनीकोषकाठिन्ययुक्त अपक्रान्ति (Artereo Sclerosis Atheroma), फिर हृदय कोषवृद्धि पश्चात् विस्तार और रक्तक्षय होकर पाण्डुरोग होना आदि रुधिरा-भिसरण संस्थानमें विष प्रभावसे विकृति होजाती है। एवं वृक्कप्रदाह और पचनेन्द्रिय संस्थानमें भी प्रदाहकी प्राप्ति होजाती है।

पूर्वरूप—रक्तहीनता, क्षुधाका नाश होजाना, उबाक आना, आध्मान, बद्ध-कोष्ठ, अरुचि, शिरःशूल, मुख कान्तिविहीन होजाना, दांत प्रायः मलिन होजाना और निम्न मसूड़ेपर नीली-काली रेखाएँ होना, हाथोंकी नाड़ियाँ खिंचना तथा पैरोंमें ऐंठन आना इत्यादि पूर्वरूप प्रतीत होते हैं।

लक्षण—तीव्र उदरशूल (Lead colic) संतत या खण्डित नाभिके चारों ओर उत्पन्न होता है। इस शूलमें सामान्य रीतिसे प्रारम्भमें वेदना कम होती है, फिर धीरे-धीरे प्रबल होजाती है। शूल ३-४ दिन रहता है, फिर बार-बार चलता रहता है, उदर बैठ जाता है; तथा नाड़ी मन्द, निर्बल और कठोर होजाती है।

मुँहमें सीसा धातुका स्वाद जान पड़ना, निःश्वासमें दुर्गन्ध आना, हाथकी कलाईमें तीव्र वेदना, किसी-किसी रोगीको वमन होना और स्त्रियोंके मासिकधर्म-में अनियमितता आदि लक्षण होते हैं। यह शूल अन्त्रमें आक्षेप आकर प्रचण्ड बन जाता है। हाथसे दबानेपर वेदनाशमन होती है। ज्वर प्रायः नहीं रहता। नाड़ी मंद होती है। नाड़ीका दबाव अधिक (High tension) होता है। आक्षेप दूर होनेपर उदरपेशियाँ मृदु होजाती हैं।

रक्तपरीक्षा करनेपर रक्त रंग और रक्ताणुओंका नाश प्रतीत होता है। रक्ताणुओंकी अपक्रान्ति होकर वे जाल सदृश बन जाते हैं। उनपर बाह्यश्लैष्मिक कला छा जाती है। श्वेताणुओंमें परिवर्तन कम परिमाणमें होता है।

किसी रोगीको मस्तिष्क विकृति (Encephalopathy) का तीव्र आक्रमण होता है। इस प्रकारमें मृत्यु संख्या अधिक होती है। इसमें अपस्मारके सदृश आक्षेप,

तीव्र प्रचण्ड, उन्माद, प्रलाप, मूर्च्छा, नेत्रनाड़ीप्रदाह और शोष उपस्थित होते हैं। क्वचित् उन्मादावस्था स्थिर रह जाती है। सामान्यतः कुछ अंशमें मानसिक विकृति (Dementia Paralytica) होती है, किन्तु वह दूर होजाती है। आक्षेप-प्रकारमें ब्रह्मवारि (Cerebrospinal fluid) पर दबाव आता है और श्वेताणु-ओंका दमन होता है।

इनके अतिरिक्त कितनेक रोगियोंपर कम्पसह सौम्य आशुकारी आक्रमण होता है। अवयव अकड़ जाते हैं और पक्षवध होता है। फिर सत्वर मांसपेशियोंका शोष, चेतना स्वाभाविक और सामान्य कम्प होते हैं। अपक्रान्ति बढ़ती है। सांधोंमें पीड़ा होती है। इस पक्षवध प्रकारमें विशेषतः दोनों हाथोंकी कलाइयोंका वध अथवा पैरोंमें टखनेके पाससे पादतलका वध होजाता है। क्वचित् इतर स्थानकी वातवहा-नाड़ियोंका भी वध होजाता है। नागविषजशूलसह पक्षाघात (Colicoplegia) होजानेपर यह रोग कष्टसाध्य या असाध्य होजाता है। रोग बढ़नेपर हृदयकी वातवहा-नाड़ियाँ शिथिल होजाती हैं। फिर तीव्र शिरःशूल, स्थान-स्थानमें वेदना, आक्षेपक वातप्रकोप और संन्यास होकर रोगीकी २-३ दिनमें मृत्यु होजाती है। किसी-किसीको चाक्षुषी नाड़ीप्रदाह होकर अंधता आजाती है।

यदि नागविषका आक्रमण सगर्भा स्त्रीपर होता है, तो गर्भपात होजाता है या मृत बालकका जन्म होता है। कदाच जीवित शिशुका जन्म हुआ, तो भी वह थोड़े ही दिनोंमें मर जाता है। इस हेतुसे कितनेक दुष्ट लोग गर्भपात करानेके लिये नागविषको उपयोगमें लेते हैं।

यदि नागविषसे वृक्कविकृति होती है, तो प्रदाह बढ़ जानेपर वृक्कसंन्यास (Uraemia) होजाता है।

रोग विनिर्णय—नागविषज विकार बहुधा सीसेकी वस्तुओंका व्यापार करने-वालोंको होजाता है। रोगीके मसूढ़ेपर नीले वर्णकी रेखा, तीव्र शूल, इन्द्रियवध, पाण्डुता, मलावरोध, कलाइका रुकना इन लक्षणों से रोगका निश्चय सरलतासे होजाता है।

साध्यासाध्यता—यदि रोगी पूर्वरूपका बोध होनेपर ही सीसा या रंगके कामको त्याग देता है, तो रोग निवृत्ति होजाती है अन्यथा रोग कष्ट साध्य बन जाता है।

नागविषज शूल चिकित्सा

जिस हेतुसे सीसा विषकी प्राप्ति होती हो, उस कार्यको छोड़ देना चाहिये। विरेचन देकर आमाशय और अन्त्रका शोधन करें। एवं तीव्र लक्षणोंको दूर करनेका सत्वर उपाय करें। इस रोगमें डॉक्टरी—चूना प्रधान औषधि केलशियम क्लोराइड, केलशियम लेक्टेट आदि और आयुर्वेदमें शंख, प्रवाल, शुक्ति आदि (प्रवालपंचामृत+सूत-शेखर या कामदुधा) अति हितकर मानी गई हैं। डॉक्टरीमें जीर्ण विकारवालेको एमोनिया क्लोराइड १५-१५ ग्रेन दिनमें ३ समय ४-४ औंस जलके साथ देते रहें।

तीव्र वेदना और आक्षेप होनेपर अफीम अर्क या अफीमको एरण्ड तैलके साथ देवें। अफीमसे तीव्र वेदना और आक्षेपका निग्रह होता है और एरण्ड तैल आमाशय और अन्त्रमें संगृहीत सीसाविष और मलको बाहर निकालकर भावी वृद्धिको रोक देता है। अथवा लवण जलप्रधान बस्ति देवें और उसमें सूचो बूटी मिला देवें।

विशेष सूचनाएँ शूल रोगमें की हैं। नींबूका रस, नींबूका शर्बत और अमलतासकी फलीका गर्भ इसरोगमें विशेष उपकारक हैं।

विरेचनके लिये रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखा हुआ आरग्वधादि क्वाथ दूसरी विधि (गिरिमाला पञ्चक) तीन दिनतक पिलानेसे आँतोंमें रहा हुआ स्थूल दोष निकलकर शूल शमन होजाता है।

तीव्र शूलमें शुभ्रा भस्म २ माशे तथा अफीम और कपूर आध-आध रत्तीको मिलाकर ४ मात्रा करें। यह तीन-तीन घण्टेके अन्तरपर जलके साथ दें। फिर दूसरे दिन प्रातः आरग्वधादि क्वाथ देकर उदरशुद्धि करनेपर नाग विषकी निवृत्ति होकर शूल शान्त होजाता है।

शुभ्रा भस्मके समान कच्ची फिटकरी ५-५ रत्ती शक्करके साथ देनेसे भी शूलका निवारण होजाता है।

अन्तर्शुद्धि होनेपर—शंखवटी, प्रवालपंचामृत, अग्निकुमार रस, क्रव्याद् रस और स्वादिष्ट शर्बत, इनमेंसे अनुकूल औषधि देवें तथा प्रातः-सायं ताप्यादि लोहका भी सेवन कराते रहें।

जीर्ण रोगपर—शंग क्षार ४-४ रत्ती दिनमें ४ बार जलमें मिलाकर देवें तथा प्रवालपिष्टी २-२ रत्ती दिनमें ३ बार शहदके साथ देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें लीन विष नष्ट होजाता है।

(२) रक्तमें लीन हुए विषके निवारणार्थ सारिवासव दिनमें २ बार देते रहें।

विशेष चिकित्सा शूल रोगमें कहे अनुसार करनी चाहिये। पथ्यापथ्य भी शूलरोग अनुसार पालन करावें।

पथ्यापथ्य विचार—भोजनमें नींबू, अनारदानेकी खटाई, आमचूर, कोकम, मट्ठा आदि अम्ल पदार्थ हितकारक हैं। वातवर्द्धक, बद्धकोष्ठकारक, दुर्जर और अधिक घृत-तैलवाले पदार्थ हानिकर हैं।

विषप्रकोपद्वारा वातनाड़ियोंकी विकृति होनेसे वृक्कोंको हानि पहुँची हो, तो सौम्य मूत्रल पदार्थ पथ्य हैं और मूत्ररोधक पदार्थ हानिकर माने जाते हैं। इस तरह वायु विकारके लक्षण उपस्थित हुए हों, तो वातरोगके अनुसार भी पथ्यका पालन करना चाहिये।

७. पित्ताशयाश्मरी

पित्तशिला-गॉलस्टोन-बिलियरी केलक्युलस- कोले लिथियासिस

Gall-stone–Biliary calculus–Chole Lithiasis.

जैसे मूत्रपिण्ड, मूत्राशय आदि भागमें श्लेष्म आदि प्राधान्य पथरी होती है। इसी तरह पित्ताशयमें पित्तज पथरी होती है। इस अश्मरीसे पित्तकोष और पित्तनलिका आदि स्थानोंमें शूल होता है, जो अत्यधिक यन्त्रणाप्रद होता है। इस रोगसे पीड़ितोंमें ७५ प्रतिशत स्त्रियाँ होती हैं।

निदान—बैठे रहना, अनियमित समयपर भोजन, मलावरोध, गर्भ धारण, सुन्दरताके हेतुसे स्त्रियोंकी कमरपर तंग पट्टा बाँधना या अभिघात आदि कारणोंसे पित्तावरोध होकर पित्तकोष और पित्तकोषनलिकामें प्रदाह होना; वसा, अण्डा आदिके अत्यधिक सेवनसे पित्तमें कोलेस्टेरोल (Cholesterol) की अत्यधिक वृद्धि होना। अथवा मधुराके कीटाणु, फुफ्फुसखण्ड प्रदाहके कीटाणु, अन्त्रकृमि आदि (विशेषतः अन्त्रकृमि या मधुराके कीटाणु) मेंसे किसीका पित्तकोषमें प्रवेश होना इत्यादि कारणोंसे पित्त दूषित होता है।

१. उद्भिद कीटाणुओंके आक्रमणसे पित्ताशय प्रदाह होना (पित्तघन-कोलेस्टेरोलकी अश्मरीमें प्रदाह नहीं होता।)

२. रक्त और पित्तमें कोलेस्टेरोल संगृहीत होना। इनमें पित्तके पतनके कारण प्रतिक्रियामें परिवर्त्तन, पित्त गाढ़ा होना, कोलस्टेरोलकी मात्रा वृद्धि और पित्तलवणका संग्रह ये ४ हैं।

३. पित्तावरोध, यह पित्तका गाढ़ा होना या पित्तकी प्रतिक्रिया अम्ल होनेपर होता है (सामान्यतः यकृत् पित्तकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है।)

अश्मरी प्रकार—

१. पूतिभाव रहित (Aseptic) अश्मरी-यह पित्तमें कोलेस्टेरोल बढ़ने या पित्तावरोधद्वारा पित्तकी प्रतिक्रिया अम्ल होनेपर।

२. प्रदाहज अश्मरी—अरुण पित्तक्षार (Calcium Bilirubin) में केन्द्र-स्थान (Nuclei) बन जाने या उद्भिद कीटाणुओंद्वारा पित्तका अम्ल होनेपर।

जब पित्तमें पित्तघन (Cholesterin) और अरुण पित्त द्रव्य (Bilirubin) अधिक होजाते हैं, तब चूना (Calcium) के साथ सयोग होकर उसका पत्थर बन जाता है। कोलेस्टेरिनकी रक्तमें अधिक उत्पत्ति बहुधा उपवृक्क और बीज-कोषोंके मासिक स्रावके हेतुसे स्त्री शरीरमें पुरुष शरीरकी अपेक्षा दुगुनी अधिक होती है। यह रोग विशेषतः ३० वर्षसे अधिक आयुवाली स्त्रीको गर्भधारणके पश्चात होता है। इससे छोटी आयुवाली स्त्रियोंको प्रायः नहीं होता। कितनेक स्थानोंमें माताकी रोगप्रवणताके हेतुसे यह रोग पुत्रोंको मिल जाता है।

यह अश्मरी एक अथवा असंख्य होती है। कभी यह पित्ताशय जितनी बड़ी, कभी छोटे बेर सदृश और कभी कभी बालुका सदृश असंख्य होता है। एक रोगीके मृतदेहकी परीक्षा करनेपर उसके पित्ताशयमेंसे १४,००० अश्मरी कण निकले थे।

एकही अश्मरी होनेपर अण्डाकृति होती है। अनेक होनेपर एक दूसरेके दबावसे चपटी होजाती हैं।

मृत देहको चीरकर पित्ताशयकी परीक्षा करनेपर छोटी छोटी अनेक अश्मरी प्रतीत होती हैं। फिरभी जीवन कालमें इनके अस्तित्वके कुछ भी लक्षण प्रकाशित नहीं होते। कभी-कभी एकही बड़ी अश्मरी बन जाती है और उसीसे पित्ताशय परिपूरित होजाता है उसकी आकृति और अवयव पित्ताशयके अनुरूप बन जाते हैं। कभी-कभी अश्मरी पित्ताशयकी दीवारका भेदनकर अन्त्रमें चली जाती है, और मलके साथ बाहर निकल जाती है। कभी अन्त्रमें फंस जाती है, जिससे अन्त्रावरोध (बद्धगुदोदर) के लक्षण उपस्थित होजाते हैं। इस तरह क्वचित् अश्मरी पित्ताशयका भेदनकर उदर्य्याकलामें प्रवेश करके घातक उदर्य्याकलाप्रदाहकी उत्पत्ति कर देती है। किसी-किसी समय इस अश्मरीके हेतुसे पित्ताशय उदर्य्याकलाके साथ संलग्न होजाता है, और बाह्यनली निर्मित होकर, उस द्वारा अश्मरी निकल जाती है।

सब अश्मरी पित्ताशयमें अवस्थित होनेपर भी यदि कोई लक्षण प्रतीत न हो, तो रोगी चिकित्साधीन नहीं होता। परन्तु जब एक या अधिक अश्मरी पित्ताशयमेंसे साधारणी पित्तनलिका (Common bile duct) द्वारा लघु अन्त्रमें गमन करनेके लिये उद्यत होती है। तब अत्यंत कष्टदायक लक्षण उपस्थित होते हैं। जब तक पथरी पित्ताशयमें रहती है। तब तक एक भी लक्षण प्रकाशित नहीं होता। अनेक बार अश्मरी छोटी होनेपर सरलतापूर्वक पित्तनलीमेंसे अन्त्रमें जाकर फिर मलके साथ बाहर निकल जाती है; और लेशमात्र कष्ट नहीं होता।

यह पित्ताश्मरी बहुधा पित्ताशयमें निर्मित होती है, परन्तु कभी पित्तनलिका (Hepatic duct) में भी उत्पन्न होजाती है। इसकी आकृतियाँ भिन्न-भिन्न प्रकारकी होजाती हैं।

अश्मरी प्रकार—रचना भेदसे ४ प्रकार हैं।

१. एक अश्मरी—शुद्ध पित्तघन (कोलेस्टेरोल) की अश्मरी होनेपर प्रायः एक अण्डाकार या वर्तुलाकार, अति हल्के रंगकी (पीताभ), चिकनी, बड़ी और कुछ स्वच्छ होती है।

२ वृत्तिमय अश्मरी—इस प्रकारमें शुद्ध कोलेस्टेरोलकी अनेक पर्त्तं बनती हैं।

३. मिश्र पित्ताश्मरी—कोलेस्टेरोल और अरुण पित्तमय चूनेके मिश्रणसे मुलायम होती है। ये बहुधा गीली होनेपर तैलमय (Greasy) और सूखनेपर कठोर होजाती हैं।

४. शुद्ध अरुण पित्तमय चूनेमेंसे अश्मरी—यह छोटी (रेतकणसे मटर जितनी बड़ी) और अनियमित आकारकी, कभी मुलायम और पिंगल, कभी कठोर (प्लीहा वृद्धियुक्त कामलामें) होती है।

५. केलशियम कार्बोनेटकी अश्मरी—यह क्वचित् ही होती है। क्वचित् यह पशुओंको भी होती है।

लक्षण—अश्मरीके स्थान और परिस्थितिके अनुसार लक्षण भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं। जब पित्ताश्मरी पित्ताशयमें स्वस्थ रूपसे रहती है, तब रोगनिर्णायक कुछभी लक्षण प्रतीत नहीं होते। केवल शव परीक्षा करनेपर रोगका परिचय मिलता है। किन्तु कतिपय रोगियोंमें चिरकारी पित्ताशयप्रदाहके लक्षण—आमाशय गत विकृति, अग्निमान्द्य और अपचन के लक्षण—अफारा, उबाक आदि उपस्थित होते हैं।

कभी-कभी पित्ताशयमें मृदु शूल निकलने लगता है। क्वचित् अधिक चलने या खेलनेपर और गरिष्ट भोजन करनेके पश्चात् कुछ समयतक पीड़ा होती रहती है। यह पीड़ा कोई समय त्वरित और कोई समय देरसे होती है। आमाशय-प्रदाहके हेतुसे पित्ताशय-प्रदाहकी उत्पत्ति होती है, और कुछ कांटे आकर ज्वर आजाता है। फिर प्रस्वेद आता है, तथा अपचन और ज्वरके हेतुसे ठेपन परीक्षा करनेपर ध्वनिमंद निकलना, दीर्घ श्वासोच्छ्वासके साथ ठेपन करनेपर उस स्थानपर पीड़ा होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस चिह्न को डॉक्टरीमें मर्फीका चिह्न (Murphy's sign) कहते हैं।

जब यह अश्मरी पित्ताशयमेंसे पित्तवहानलिका और स्रोतोंमें सरकने लगती है, तब आकुञ्चित नलीमेंसे गुज़रनेपर भयंकर शूलकी उत्पत्ति होती है। सम्पूर्ण स्वस्थावस्थामें विना किसी कारण अकस्मात् रोगीको तीक्ष्ण वेदना उपस्थित होजाती है। इस शूलकी उत्पत्ति कौड़ीप्रदेश (Epigastrium) में होती है, और दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेश (Right Hypochondrium) में होकर (उरःफलकके दक्षिण भागकी ९ वीं उपपर्शुकाके नीचेसे) के पीठमें चुभोने सदृश वेदना उत्पन्नकर फिर वह दक्षिण स्कंध प्रदेशमें गति करता है। यह शूल नीचे कभी नहीं जाता यह शूल इतना असह्य होता है कि, रोगीका बल क्षय होकर वमन, शारीरिक उष्णता न्यूनत्व (Subnormal temperature), उदरकी मांसपेशियोंका संकोच, हिक्का तथा क्षीण और वेगवती नाड़ी आदि लक्षणोंकी उत्पत्ति होजाती है।

यकृत् प्रदेशपर दबानेसे पीड़नाक्षमता (Tenderness) और यकृद्वृद्धि प्रतीत होती है। इस विषम वेदनाके साथ अतिशय व्याकुलता और अस्थिरता उत्पन्न होजाती है। इस शूलसे मूर्च्छा, प्रबल उन्मत्तता, अतिव्याकुलता और कभी मृत्युभी होजाती है। दुर्दमनीय वमन, निस्तेज, कुंचित और चिन्तातुर मुखमण्डल, कपालपर शीतल स्वेद आना, क्वचित् अतिशय कम्प, शारीरिक उष्णता बढ़कर १०१ से १०३ डिग्रीतक ज्वर आजाना और नाड़ी क्षुद्र होजाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। कभी-कभी कुछ घण्टोंके पश्चात् इस वेदनाका कुछ उपशम होजाता है। यह उपशम पित्त-कोषनलिका (Cystic duct) मेंसे साधारणी पित्तनलिकामें अश्मरी प्रवेशकर जाने-पर होता है, ऐसा अनुमान है। फिर साधारणी पित्तनलिकामेंसे ग्रहणीमें अश्मरीप्रवेशकर

जानेपर सब लक्षण सहसा तिरोहित होजाते हैं। किसी-किसी स्थलपर वेदना सत्वर स्थगित नहीं होती। प्रसारित नलियोंमें उग्रता कुछ कालपर्यन्त रह जाती है।

कितनेक रोगियोंमें प्रधान लक्षण कामला होता है। कभी-कभी कामला प्रारम्भमें नहीं होता। साधारणी पित्तनलिकामें कुछ कालतक (१०–१२ घण्टेतक) अश्मरी बद्ध रहनेपर सामान्य कामला होता है। यदि दीर्घकालतक अश्मरीसे पित्तनलिकाका मार्गावरोध होजाय या साधारणी पित्तनलिकाके संगम स्थानपर अश्मरी रुक जाय, तो आशुकारी कामला प्रकाशित होता है और पित्ताशय प्रसारित होजाता है।

यदि याकृती पित्तनलिका (Hepatic Duct) में अश्मरी फँस जाती है, तो यकृद्-वृद्धि, शूल और कामला उपस्थित होजाते हैं; परन्तु पित्ताशय विस्तार नहीं होता।

इस अश्मरीजन्य शूलके दौरेका प्रारम्भ बहुधा रात्रिको अकस्मात् होता है। यह शूल संपूर्ण उदरप्रदेशपर भासता है तथा इसके कारण दक्षिण अंसप्रदेश और दक्षिण स्कंधकी ओर गति करते हैं। क्वचित् शूल शनैः-शनैः बढ़ता है। इस शूलमें बारंबार वमन होती है और स्वेद आता है। यह शूल २–४ घण्टेतक चलता रहता है क्वचित् ३–४ दिनतक रह जाता है। फिर उदरकी मांसपेशियाँ दृढ़ और तनी हुई होजाती हैं। परन्तु पित्ताशय विस्तार होजानेसे इसका निर्णय नहीं हो सकता। जब अधिक तीव्र आक्रमण होता है, तब इस रोगमें विषम विषलक्षण (Toxemia) भी उपस्थित होजाते हैं।

यदि पथरी अन्त्रमें चली जाती है, तो मलके साथ बाहर निकल जाती है। कभी-कभी अश्मरी अन्त्रमें नहीं जाती, पीछेकी ओर सरक जाती है तो भी वेदना शान्त होजाती है। यदि पित्ताश्मरी पित्तकोषनलिकामें बद्ध हो जाय, तो चिरकारी कामला उत्पन्न होजाता है; परन्तु पित्ताशयमें पित्त संगृहीत होजानेपर उसका विस्तार होजाता है। इस हेतुके कामला उपस्थित होनेसे शूलशमन होजाता है। परन्तु पित्ताशयका मोटापन रह जाता है, जिससे सामान्य निस्तेजता, क्षुधानाश, उबाक, वमन, शीर्णता, पीला पेशाब और ज्वर आदि लक्षण ४–६ दिन तक रह जाते हैं।

इस रोगका एकबार आक्रमण होनेके पश्चात् अनेकबार यह प्रकाशित हो सकता है। पित्ताशयमें पित्ताश्मरी आजीवन रह सकती है। चाहे उसका घातक एकभी लक्षण प्रकाशित न हो।

पित्तकोषनलिकामें अवरोध—कभी पित्तकोषनलिका (Cystic duct) में अवरोध होता है, तब पित्ताशयशूलके सामान्य लक्षणअश्मरी मार्गमें वेदना, कामलेका अभाव, कुछ अंशमें नलिकाके भीतर प्रदाह फैलना आदि उपस्थित होते हैं। उत्तरकालमें निम्न अनुषंगी विकारों (Sequelae) की प्राप्ति होसकती है।

१. चिरकारी पित्ताशय प्रदाह-Chronic cholecystitis-यह क्वचित् होता है।

२. आशुकारी प्रसेक मयपित्ताशयप्रदाह-Acute catarrhal cholecystitis सामान्य।

३. पित्ताशयका प्रसारण-Dilatation of gall-blader-कभी बड़ा अर्बुद होता है। जिसमें आशुकारी पित्त और कफका अवरोध या चिरकारी कफका अवरोध होता है। फिर पूयोत्पत्ति होकर नाड़ीव्रण होता है या यकृत्का शोष होजाता है।

४ पूयात्मक पित्ताशयप्रदाह—क्वचित्।

साधारणीपित्तनलिकामें अवरोध—कभी साधारणी पित्तनालिका (Common duct) में अवरोध होता है, तब पूर्णावरोधके भेदसे, लक्षणोंमें त्रिविधता प्रतीत होती है।

१. पूर्णविरोध होनेपर कौड़ीप्रदेशमें वेदना या पित्ताशयशूल फिर कामला, पित्ताशयकी अप्रतीति, यकृद् वृद्धि, मिट्टीके रंगका मल उतरना तथा मूत्रमें पित्त आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

२ अपूर्ण अवरोध होनेपर नलिकामेंसे अश्मरीका अतिक्रमण होनेमें पुनः आक्रमण होता है। कामला, पित्ताशयका प्रसारण न होना, यकृद् वृद्धि न होना जलोदर न होना, प्लीहा प्रतीत होना, मूत्रमें पित्त आना, मल चित्र-विचित्र होना, तथा कभी ज्वर आना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

३. कपाटका अवरोध (Ball-Valve obstruction-Hepatic intermittent fever) चल अश्मरीके साथ विशेष लक्षण सम्बन्ध वाले होते हैं। शीत बोध, कम्प, ज्वरके पश्चात् स्वेद आना, कभी कामला होना, आक्रमण-कालमें यकृत्पर वेदना, वमन और आमाशयमें पीड़ा तथा गम्भीर आक्रमण होनेपर विषमज्वरके सदृश १०३° से १०५° तक ज्वर आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। यह विकार पूयोत्पत्ति न होते हुए वर्षोंतक आक्रमण करता है।

डॉक्टरीमें उक्त दोनों प्रकारों (साधारणी पित्तनलिका और पित्तकोष नलिकामें अवरुध) को शस्त्रक्रिया साध्यमाना है।

रोगविनिर्णय—शूल, परवर्ती कामला, बारंबार आक्रमण और मलमें अश्मरी कणकी प्राप्ति, इन लक्षणोंसे निदान सरलतासे होता है।

व्यवच्छेदक रोगविनिर्णय—

पित्ताश्मरीशूल	अन्त्रशूल	वृक्कशूल
दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेशमें कंधेकी ओर गतिवाला सतत वेगयुक्त।	नाभिसमीप भयंकर शूल, दबानेपर कम हो जाने-वाला वेगयुक्त।	पार्श्व भागसे नीचे वृषण या बीजकोष-की ओर गतिवाला।
स्त्रियोंको ३० वर्षसे अधिक आयुमें।	स्त्री और पुरुष, दोनोंको किसी भी आयुमें।	पुरुषोंको युवा या बाल्यावस्थामें।

अनुगामी कामला और यकृद् विकार।	मलावरोध, अतिसार और वमन।	मूत्रशर्करा, रक्तमय मूत्र, बहुमूत्र या मूत्रकृच्छ्र।

पित्ताश्मरी सदृश यकृत्के इतर रोगोंमें भी लक्षण होते हैं। परन्तु इस रोगमें तीव्रता अत्यधिक होती है। इसपरसे इतर यकृद्विकारोंसे भेद होजाता है।

पित्ताश्मरी और यकृत्के कर्कस्फोटका व्यवच्छेदक लक्षण कठिन है। कारण रोगीकी आयु समान होती है। दोनोंमें कामला होजाता है। इनके अतिरिक्त पित्ताश्मरी होनेके बाद ही कर्कस्फोट होता है। कर्कस्फोट होनेपर कामला दिन-प्रति-दिन वृद्धिंगत होता जाता है। फिरभी बार-बार होनेवाले कामला किम्बा मध्य आयुवाली स्त्रीको प्रतीत होना हो, तो पित्ताश्मरी होनेका अनुमान होजाता है। ऐसे संशयवाली रोगिणीके मलकी परीक्षा करनेपर पित्ताश्मरी होनेपर अश्मरी-कण मिल जाता है। एवं संशयित रोगिणीको जलोदर होजाय, तो कर्कस्फोट होनेका निश्चय होजाता है।

उपद्रव—जब पित्तशिला पित्ताशयमेंसे निकलकर पित्तस्रोतसोंमेंसे पित्तके साथ बाहर जानेका प्रयत्न करती है या तीव्र पित्ताशयप्रदाह होता है, तब कितनेक उपद्रवोंकी प्राप्ति होजाती है।

१. यदि पूयात्मक पित्ताशयप्रदाह (Suppuretive Cholecystitis) हो, तो पित्ताशय फूटता है, फिर समीपताके हेतुसे उदर्य्याकलाका प्रदाह होता है।

२. यदि पित्ताशयप्रदाह चिरकारी हो, तो पित्ताशयकोष स्फीत और मोटा होता है, और पित्ताश्मरीके चारों ओर इसका आवरणबनकर (Encapsuled) वह बद्ध होजाती है। फिर सतत पीड़ा (Irritation) होकर पित्ताशयमें कर्कस्फोट होजाता है। इस प्रदाहके हेतुसे पित्ताशय समीपस्थ यन्त्रोंके साथ चिपट जाता है। फिर अन्त्रगति (Movements of Intestines) में प्रतिबन्ध होता है।

३. यदि पित्ताश्मरी पित्तके साथ सरकने लगती है, तो शूल—(Biliary Colic) की उत्पत्ति होती है, और यह अश्मरी जब अन्त्रमें पहुँच जाती है, तब शूल शमन होजाता है।

४. कचित् पित्ताश्मरी बड़ी होनेपर नलीमें रुक जाती है। फिर वहाँ दाह-शोथ होकर समीपके यन्त्रोंकी चिपक जाती है। फिर दोनों आशयमें नाड़ीव्रण होकर अश्मरी आमाशय, ग्रहणी, शेषान्त्रक (Ileum) बृहदन्त्र (Colon) या उदर्य्याकलाके किसीभी स्थानमें निकल जाता है। यदि उदर्य्याकलामें अश्मरी जाती है, तो वहाँपर भी प्रदाहकी उत्पत्ति कराती है।

५. पित्ताश्मरी बड़ी होनेपर कभी अन्त्रमें फंस जाती है। फिर अन्त्रावरोध (Intestinal volvulus) उत्पन्न कराती है।

६. कचित् यकृद् विद्रधि और चिरकारी अग्न्याशयप्रदाहकी प्राप्ति भी होसकती है।

साध्यासाध्यता—रोग साध्य माना गया है, परन्तु पुनरावृत्ति होती है।

यदि नाड़ीव्रण, उदर्य्याकलाप्रदाह, कर्कस्फोट आदि घातक उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं, तो रोगीकी मृत्यु भी होजाती है।

पित्ताशयाश्मरी चिकित्सा

इसकी चिकित्सा निम्नानुसार दो भागोंमें विभक्त कीजाती है।

१. पित्तनलिकामेंसे शिलानिर्गमनकालमें शूल उपस्थित होता है, उसकी उपशम चिकित्सा।

२. पित्ताश्मरीजन्य शूलके विरामावस्थामें रोगहर और उत्पत्तिरोधक चिकित्सा।

प्रथम प्रकारकी अवस्थामें कष्टदायक सब लक्षणोंका निवारण और पित्तनलिका-मेंसे अश्मरीके निर्गमनमें सहायता, इन दो उद्देश्योंकी सिद्धि अर्थ चिकित्साकी जाती है, तथा द्वितीय प्रकारकी अवस्थामें अर्थात् व्यवहृत विरामावस्थामें अश्मरी निर्माणका निवारण, पित्ताशयमें अश्मरी हो, उसका दूरीकरण और हो सके तबतक शिलाको द्रवीभूत करदेना, इन तीन उद्देश्योंके लिये चिकित्सा करनी चाहिये।

पित्ताश्मरीको क्षीन करे या उत्पत्तिको निश्चित रूपसे रोके, ऐसी ओषधि अभी तक नहीं मिली। रक्तमें कोलेस्टेरिन बढ़ानेवाले घृत, चर्बी, अण्डा आदिका अधिक सेवन न करनेसे कुछ अंशमें कारण दूर होता है।

इस रोगपर बस्तिसे उदर शोधन करके आयुर्वेदोक्त अगस्तिसूतराज रसका सेवन आध-आध रत्तीकी मात्रामें १-१ घण्टेपर शूल शमनार्थ ३-४ बार कराया जाता है। अथवा अफीम, ताम्र भस्म और रससिंदूरको त्रिकटु और शहदके साथ थोड़ी-थोड़ी मात्रामें दिया जाता है।

वमनको शमन करनेके लिये आरोग्यवर्द्धनी, कुमुदेश्वर रस या वान्तिहृद् रस, इनमेंसे एक ओषधि देनी चाहिये। तीनोंमें पित्ताशयके पित्तको अन्त्रमें डालनेका गुण रहा है, जिससे पित्तशिलाका अन्त्रमें सत्वर प्रवेश होकर वमन शान्त होजाती है। अथवा अफीमप्रधान जाति फलादि वटी (अपचन) या हिंगुल वटी देनेसे वमन और शूल, दोनोंकी निवृत्ति होजाती है। साथ-साथ वमनके शमनार्थ बर्फके छोटे-छोटे टुकड़े चूसनेको भी देते रहना चाहिये।

तीव्र पीड़ा शमनार्थ अफ़ीम प्रधान औषधि—अगस्तिसूतराज रस दिया जाता है, फिरभी पीड़ा अत्यधिक होकर बलक्षय होजाय, तो डॉक्टरीमत अनुसार $\frac{1}{4}$ ग्रेन अफ़ीम सत्व (Sulphate of Morphine) का इन्जेक्शन देना चाहिये। एट्रोपिन सल्फेट (Atropin Sulphate) का इन्जेक्शन करते हैं, किन्तु इसका प्रभाव इस रोगपर कुछभी नहीं होता।

पित्ताशयप्रदाहको दूर करनेके लिये स्थानिक स्वेद, प्याज़, लहसुन या सरसोंकी पुल्टिस और मृदु विरेचन लाभदायक है। जैतूनका तैल ४-५ तोले नित्य रात्रिको सोनेके समय देते रहनेसे कोष्ठशुद्धि होकर रोग-वृद्धिमें न्यूनता होती है। प्याज़का रस निकाल आध-आध तोला १-१ घण्टेपर पिलाते रहनेसे सत्वर लाभ होता है।

ताम्रभस्म-युक्त कुमार्य्यासवसे इस रोगमें अति लाभ होनेके उदाहरण मिले हैं। सामुद्राद्य चूर्ण (शूल रोगमें लिखा हुआ) गुनगुने जलके साथ देनेसे शूलजनित वेदना कम होजाती है।

इस तरह तीव्र शूलके समय अपामार्गक्षार (घृतके साथ) या ताम्र भस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती निसोतके चूर्ण या कुटकीके चूर्ण अथवा करेलेके रसके साथ देनेसे तीव्र वेदना शमन होती है। तीव्र शूल होनेपर डॉक्टरीमें पित्तको तरल बनानेके लिये सोडाबाई कार्ब (Soda bicarb) १ ड्राम और सोडा सेलिसिलास (Soda Salicylas) २० ग्रेनको ५० तोले गरम जलमें मिलाकर ४-४ तोलेतक बार-बार पिलाते रहते हैं। जितना उष्ण जल सहन होसके उतना उष्ण पिलाना चाहिये। उष्ण जलके योगसे पित्त तरल बनता है और यकृत्पर सेकभी होजाता है।

यदि शूल अनेक घण्टोंसे हो, यकृत्में दबानेपर वेदना होती हो, तो दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेशपर जलौका लगवानेसे सत्वर लाभ प्रतीत होता है।

यदि बलक्षय या मूर्च्छाकी प्राप्ति हुई हो, तो द्राक्षासव या शराब पिलानी चाहिये या हेमगर्भ पोटली रस (सन्निपात) का सेवन कराना चाहिये।

यदि उदरमें आध्मान हो, तो साबुन मिश्रित गुनगुने जलमें थोड़ा तारपीन तैल मिलाकर वस्ति देनी चाहिये। अथवा मेगसल्फ या पञ्चसम चूर्ण या त्रिवृदष्टकमोदक देकर उदरशुद्धिकर लेनी चाहिये। या पित्तस्राव करानेवाली इतर विरेचन औषधि देनी चाहिये।

सूचना—यदि पित्तशिला एक बड़ी होगई है और पित्ताशय या पित्तनलिकामें बृहदाकारकी अश्मरीसे विषम वेदना होती हो, तो शस्त्रचिकित्साद्वारा निकाल देनी चाहिये। एवं साधारणी पित्तनलिकामें अश्मरीसे मार्गावरोध होनेपर शूल, व्याकुलता और प्रगाढ़ तीव्र कामलाकी उत्पत्ति हुई हो; पित्ताशयमें पूयोत्पत्ति (Empyema) हुई हो, सन्निहित स्थानमें पूयोत्पत्तिके लक्षण प्रकाशित हुए हों, अथवा उपद्रवभूत उदर्य्याकलाप्रदाह हुआ हो, तो तत्काल शस्त्रचिकित्साका आश्रय लेना चाहिये।

पथ्यापथ्य—रोगका पुनः आक्रमण न होनेके लिये अपथ्य आहारविहारका आग्रहपूर्वक त्यागकर देना चाहिये। शारीरिक श्रम, व्यायाम और रोज़ सुबह शाम भ्रमण करना हितकारक है। तेज़ खटाई, तमाखू सेवन, तंग वस्त्र परिधान, कमरपर धोती आदि कसकर बांधना, ये सब हानिकर हैं। यकृद् विकारोंपर पथ्यापथ्य कामलारोगमें लिखा है। उनका पालन करना चाहिये। अधिक घृत, अधिक तेल, मैदेके पदार्थ, अधिक गुड़ और शक्कर ये सब अति अपथ्य हैं; तथा फल, फूल, शाकभाजी आदि हितकारक है। उदरशुद्धि, नियमित होनी चाहिये। मलावरोध रहे तो सुबह मेगसल्फ या अन्य औषधि लेकर उदरका शोधनकर लेना चाहिये।

८. अम्लपित्त रोग

हाइपर एसिडिटी, हाइपर क्लोरहाइड्रिया-एसिड, डिस्पेप्सिया।

Hyperacidity, Hyperchlorhydria-Acid, Dyspepsia.

रोग-परिचय—'विदाहाद्यम्लगुणोद्रिक्तं पित्तमम्लपित्तम्' अर्थात् जब विदाही आदि पदार्थोंके सेवनसे पित्तमें अम्ल गुणकी अति-वृद्धि होजाय, तब अम्लपित्तरोग कहलाता है।

चरकसंहिताकारके मतमें पित्त मूलस्थितिमें होनेपर ईषत्स्नेह, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल रस और कटु रस (चरपरापन), आमगन्ध आदि स्वाद और गुण युक्त होता है। जब इसमें विकृति होती है, तब निम्नलिखित ४० विकारोंकी उत्पत्ति होती है।

१. ओष—सर्वाङ्गमें तीव्रदाह, स्वेद और अरति होना।
२. प्लोष—किञ्चित् जलन, किसी एक स्थानमें दाह।
३. दाह—सर्वाङ्गमें तीव्र संताप।
४. दवथु—नेत्र आदि इन्द्रियोंमें जलन या हृदयमें धक-धक।
५. धूमक—शिर, कण्ठ आदिसे धुंआका उठना।
६. अम्लक—अन्तर्दाह और हृदयशूलसह खट्टी डकारें आना।
७. विदाह—हस्त-पाद आदिमें विविध प्रकारका दाह
८. अन्तर्दाह—कोष्ठ आदि स्थानोंमें दाह।
९. अङ्गदाह—किसी अवयव विशेषका दाह।
१०. ऊष्माधिक्य—शारीरिक उत्तापकी वृद्धि होना।
११. अतिस्वेद—प्रस्वेद (पसीना) अधिक आना।
१२. अङ्ग स्वेद—किसी अवयव विशेषमें प्रस्वेदकी वृद्धि।
१३. अङ्ग गन्ध—किसी विशेष प्रकारकी गन्धका आना।
१४. अङ्गावदरण—किसी अवयवमें टूटनेके समान पीड़ा होना।
१५. शोणितक्लेद—रक्तका काला, दुर्गन्धमय और पतला होना।
१६. मांसक्लेद—मांसका काला, शिथिल और दुर्गन्धमय होना।
१७. त्वग्दाह—बाह्यचर्ममें जलन।
१८. मांसदाह—मांसमें जलन।
१९. त्वगवदरण—बाहरकी त्वचाका फटना।
२०. चर्मावदरण—६ या ७ (सब) चर्मोंका फटना।
२१. रक्तकोठ—रक्तके कोठ (चकत्ते) उठना।
२२. रक्तपित्त—रक्तपित्त व्याधि।
२३. रक्तमण्डल—शरीरपर गोल लाल मण्डल बनना।
२४. हरित्वचा—देहका हरा (हरा-पीला) रंग होजाना।
२५. हारिद्रता—देहका हल्दीके सदृश रंग होजाना।
२६. नीलिका—मुँहपर नीले दाग होना।
२७. कक्षा—कक्षस्थानमें मांसका विदारण (कौंखबिलाई)
२८. कामला—कामला (पीलिया)।

२९. तिक्तास्यता—मुँहका कड़वा रहना।
३०. पूतिमुखता—मुँहमेंसे दुर्गन्ध आना।
३१. तृषाधिक्य—प्यासका बढ़ जाना।
३२. अतृप्ति—भोजन अधिक करनेपर भी तृप्ति न होना।
३३. आस्यपाक—मुखपाक (मुँहमें छाले पड़ना)।
३४. गलपाक—गलेका पक जाना।
३५. अक्षिपाक—चक्षुका पाक होना।
३६. गुदपाक—गुदाका पाक।
३७. मेढ्रपाक—मुत्रेन्द्रियका पाक।
३८. जीवादान—जीवनके आधाररूप रक्तका स्राव।
३९. तम प्रवेश—चक्कर आकर, अन्धकार भासना।
४०. हरित-हारिद्रता—नेत्र, मूत्र, मल हरा-पीला होजाना।

ये सब लक्षण असंख्य पित्तविकारोंमें स्पष्टतम होते हैं।

उपर्युक्त लक्षणोंमेंसे दाहके स्थानपर अष्टांगसंग्रहकारने दव लिखा है—अर्थात मुख, ओष्ठ और तालुमें दाह होना। अङ्गदाहके स्थानपर अंसदाह—अर्थात् कन्धोंमें दाह होना लिखा है। अङ्गस्वेदके बदले अवयवसदन अर्थात् अवयवोंकी शिथिलता, मांसदाह और अङ्गावदरणकी जगह रक्त-विस्फोट (रक्तके फोड़े) और लोहित गन्धास्यता (मुँहसे रक्तकी वास आना) कहा है।

सुश्रुत संहिताके मतानुसार पित्तका रस कटु (चरपरा) होता है और उसमें विदग्धावस्थामें अम्लता (खट्टापन) आजाती है।

अम्लपित्त निदान—विरुद्ध अन्न (संयोगविरुद्ध दूध-मछली आदि), दुष्ट अन्न (बिगड़ा हुआ भोजन), खट्टा, दाहकारक और पित्तको प्रकुपित करनेवाले (अम्ल तक्र, सुरा आदि तथा नये उड़द आदि) अन्नपान ग्रहण करनेसे विदग्ध और कुपित हुआ पित्त वर्षा आदि ऋतुओंमें अम्ल-विपाकी जलोंसे तथा ऐसी औषधियोंसे संचित होकर अम्लपित्त रोगकी प्राप्ति करा देता है।

यद्यपि पित्तको प्रकुपित करनेवाले इतना कहनेसे ही खट्टे और दाहकारकका समावेश होजाता है, तथापि अम्ल और विदाही शब्दोंका भी प्रयोग किया है। अतः आचार्य्यका अभिप्राय यह है कि, खट्टे और दाहकारक पदार्थोंसे पित्तका विशेष प्रकोप होता है। मट्ठा तथा मदिरा आदि पेय और उड़द आदि अन्नको भी पित्त-प्रकोपक ही समझना चाहिये।

अम्लपित्तके लक्षण—इस रोगमें अन्न आदि न पचना (भोजन करनेके बाद घण्टोंतक आमाशयमें पड़ा रहना और दूषित होना), ग्लानि, उबाक, कड़वी और खट्टी डकारोंका आना, उदरमें भारीपन, हृदय और गलेमें दाह, अरुचि आदि लक्षण होते हैं।

विकारके गति-भेदसे अम्लपित्तके दो प्रकार होते हैं। ऊर्ध्वगामी और अधोगामी।

ऊर्ध्वगामी अम्लपित्तके लक्षण—इस प्रकार में विविध प्रकारके पित्तकी वमन होती रहती है। यह वमन हरे, पीले, नीले, काले किञ्चित् लाल या लाल रंगकी अत्यन्त खट्टी, कभी मांसके धोवनके समान अर्थात् काला लाल होती है। वान्तिमें अत्यन्त चिपचिपे (पिच्छिल), निर्मल, कफसंयुक्त या खारे, चरपरे और कड़वे स्वादयुक्त पित्त गिरता रहता है।

भोजन करनेपर अन्नका पाक विदग्ध होजाता है, और कोई-कोई समय तो विना ही भोजन किये कड़वी और खट्टी वमन होती है। डकारें भी कड़वी और खट्टी ही आती हैं। कण्ठ, हृदय और कोखमें दाह होता है। शिरमें पीड़ा, हाथ और पांवोंमें जलन तथा उष्णता होती है। भयंकर अरुचि तथा क्वचित् कफ और पित्त-प्रकोप जनित ज्वरकी उत्पत्ति होती है। साथ-ही-साथ देहमें सर्वत्र खुजली, मण्डलाकार चकत्ते और पिड़िकायें होजाती हैं। इस तरह देहमें अन्नका विदग्धपाक ग्लानि आदि विकारोंके समूहको उत्पन्न करता है।

अधोग अम्लपित्तके लक्षण—अधोग अम्लपित्तमें, तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम मोह, उबाक (परन्तु वमनका न होना), मन्दाग्नि, रोमाच होना, पसीना, अंगोंमें पीलापन इत्यादि लक्षण होते हैं। इस पित्तका स्राव कभी-कभी गुदा द्वारसे होता है। इसमें प्रायः खट्टी दुर्गन्धयुक्त हरे, पीले, काले तथा लाल, ऐसे बहुतसे रंग होते हैं। और दुर्गन्धभी होती है। पित्तस्राव सर्वदा नियमित नहीं होता।

इस विकारमें २–३ रोज़पर बहुधा वमन होती है। वमन होनेपर वह खट्टी, कड़वी और गरम होती है। प्रातः काल वेदना अधिक भासती है। भोजनके पश्चात् दाह और वेदनाका शमन होजाता है। इस अधोग रोगसे पीड़ितोंको तक्र बहुधा अनुकूल रहता है। तक्रके सेवनसे हानि नहीं होती, बल्कि रोगीको शान्त प्रतीत होती है। ऊर्ध्वग और अधोग अम्लपित्तमें महत्त्वका अन्तर यह है कि, ऊर्ध्वग अम्ल पत्तमें बार-बार वमन होजाती है, परन्तु अधोग अम्लपित्तमें वमन नहीं होती। वमन न होनेसे दूषित पित्तका शोषण होकर अधिक हानि पहुँचती है। देहमें उष्णता, अन्त्रमें प्रदाह और शिथिलता, निद्रानाश और कृशता आदि लक्षणों की वृद्धि होती है। इस हेतुसे अधोग अम्लपित्त अपेक्षाकृत अधिक हानिप्रद है।

दोष और लक्षण-भेदसे अम्लपित्तके ३ प्रकार हैं। १. वातप्रधान, २. कफ-प्रधान और ३. वात-कफप्रधान।

वात प्रधान अम्लपित्तके लक्षण—कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, सब शरीरमें झनझनाहट, ग्लानि, शूल, अन्धकार-दर्शन (चक्कर आना), विभ्रम, मोह और रोमाञ्च होना आदि प्रतीत होते हैं।

कफज अम्लपित्तके लक्षण—कफका थूकना, शरीरमें भारीपन, जड़ता,

अरुचि, शीत, ग्लानि, वमन, मुखमें और छातीमें कफ लिपटा रहना, जठराग्निके बल-का नाश, खुजली और निद्राकी वृद्धि आदि लक्षण होते हैं।

वातकफज अम्लपित्तके लक्षण—इस प्रकारमें उपर्युक्त दोनों प्रकारके लक्षण मिश्रित होते हैं-अर्थात कड़वी, खट्टी और चरपरी डकारें आना, हृदय, कुक्षि और कण्ठ आदि प्रदेशमें दाह तथा अंधकार-दर्शन, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, मस्तकमें पीड़ा मुखसे लारका गिरना और मुखमें मधुरता भासना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

साध्यासाध्यता—यह रोग नया होनेपर प्रयत्न पूर्वक योग्य चिकित्सा करनेसे साध्य होजाता है। रोग जीर्ण हो जानेपर याप्य अर्थात् औषध आहार-विहारके सम्हालनेपर रोग दबा रहे और औषध आदिका त्याग होनेपर पुनः दिखाई देने लगता है, तथा हितावह आहार-विहार-आचार युक्त न रहनेसे किसी रोगीके लिये कष्टसाध्य भी होजाता है।

अम्लपित्तका डॉक्टरी विवेचन

चिरकारी पित्ताशय प्रदाह, पित्ताश्मरी, जीर्ण उपान्त्र प्रदाह, आमाशयिक प्रदाह या व्रण और ग्रहणीमें अवरोध आदि रोगोंसे आमाशयके भीतर आमाशयिक रसमें (Hydrochloric Acid) की वृद्धि होजाती है।

कितनेक व्यक्तियोंमें अम्ल रसकी कुछ स्वाभाविक अधिकता होती है। फिर भी किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुँचती। परन्तु आमाशयिक रस अधिक तीव्र बननेपर आमाशयमें व्रण होजानेकी भीति रहती है।

यदि आमाशय रसमें लवणाम्लकी (हाइड्रोक्लोरिक-एसिड) की ही वृद्धि होजाय, तो डॉक्टरीमें उसे हाइपरएसिडिटी, हाइपरक्लोर हाइड्रिया और एसिड डिस्पेप्सिया कहते हैं।

आमाशय रसका अधिक स्राव होनेपर आमाशय अधोमुखका संकोच होता है। इस हेतुसे आमाशय विस्तार (Dilatation of the Stomach) होजाता है। फिर अनेक रोगियोंके आमाशयिक रसमें अम्लताकी वृद्धि होती है। खट्टी डकार, अजीर्ण, लाल-काली और अति खट्टी वमन, वान्त पदार्थको रख देनेपर ऊपर श्लेष्मा आ जाना और गाढ़ा पिङ्गलवर्ण तलेमें प्रतीत होना, कोष्ठबद्धता, वमन विशेषतः सुबह और रात्रिको होना, क्वचित् रक्तवमन होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। आमाशय विस्तारका वर्णन प्रथम-खण्डमें किया है।

अनेक बार आमाशयमें विस्तीर्ण व्रण (Gastric Ulcer) होनेपर किसी-किसी रोगीको अम्लपित्तके लक्षण होते हैं। फिर अति खट्टी, पित्त और कफमिश्रित वमन होती रहती है। इस आमाशय व्रणका विवेचन पहले शूल रोगमें किया गया है।

लक्षण—आमाशय रसमें लवणाम्लकी वृद्धि होने पर दाह, व्याकुलता, खट्टी-खट्टी डकार आना, कौड़ी प्रदेशमें वेदना, भोजनकर लेनेके १—२ घण्टेके पश्चात् उदरमें भारीपन आ जाना, भारीपन होने पर सज्जीखार आदि क्षारका सेवन करनेसे कुछ

हलकापन होजाना, मलावरोध, किसी-किसीको अतिसार होना, फिर दस्तमें कच्चा अर्धपक्व आहार निकलना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

साध्यासाध्यता—रोग नया होनेपर साध्य है। आमाशयव्रण या आमाशय विस्तार होनेपर कष्टसाध्य या असाध्य होजाता है।

अम्लपित्त चिकित्सोपयोगी सूचना

अम्लपित्तरोग होनेपर जल्दी चिकित्साका प्रारम्भ करना चाहिये। एक वर्ष व्यतीत होजानेपर रोग कष्टसाध्य या असाध्य-सा होजाता है।

अम्लपित्तके रोगी को प्रथम वमन करावें, फिर, मृदु विरेचन देकर आमाशयका शोधन करें। पुनः स्नेहपान करावें। तत्पश्चात् व्याधिकी विषमतानुसार अनुवासन अथवा आस्थापन बस्ति देवें। आमाशय निर्दोष होजानेपर दोषशामक चिकित्सा करें। ऊर्ध्वगत अम्लपित्तमें वमन द्वारा और अधोगत अम्लपित्तमें विरेचनद्वारा दोषोंका निस्सरण कराना चाहिये तथा तिक्त रसयुक्त (कड़वे) आहारकी योजना करके पित्तकी अम्लताका ह्रास कराना चाहिये। इस रोगमें गेहूँ, जौ अथवा पुराना शालि चावल, जौका सत्तू, मिश्री, शहद आदि पदार्थ रोगशामक और दोषनाशक हैं। इनके साथ मिर्च आदि तीक्ष्ण पदार्थोंका सम्मिश्रण नहीं करना चाहिये।

अम्लपित्तरोगमें कड़वे परवल, नीम, अड़ूसा, मैनफल, शहद और सैंधानमकके क्राथसे वमन करावें। तथा निसोतका चूर्ण, शहद और आँवलोंके रससे विरेचन करावें।

इस रोगकी चिकित्सामें दो कार्य करना चाहिये। संचित विकृत पित्तको निकाल देना और नये उत्पन्न पित्तको विदग्ध न होने देना। आमाशय तक सीमित पित्तको वमनद्वारा निकाल देना चाहिये और पक्वाशयस्थ विकृतिको विरेचनद्वारा नष्ट करना चाहिये।

भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, पित्त (आमाशय रस) की विकृति होनेपर मधुर, तिक्त (कड़वी), कषाय रसयुक्त शीतल औषधि और आहारका सेवन, स्नेहन, विरेचन, प्रदेह (लेप), परिषेक (स्वेद विशेष), अभ्यंग (मालिश) और अवगाह (स्नान) आदि पित्तहर क्रियाओंद्वारा परन्तु ऋतु आदि समयको देखकर चिकित्सा करनी चाहिये।

पित्तको जीतनेके लिये समस्त क्रियाओंमें विरेचनको प्रधानतम कहा है। विरेचन महास्रोतके आदिसे लेकर आमाशय (के अधोभाग ग्रहणी) में प्रवेशकर विकार उत्पादक पित्तमूलको अशेष आकर्षितकर लेता है। इस तरह पित्तके जीते जानेसे शरीरके भीतर उत्पन्न पित्त विकार सब शान्त होजाता है। जिसप्रकार अग्निको बुझा देनेसे सारा अग्निगृह (आगसे गरम किया जानेवाला घर) भी शीतल होजाता है।

भगवान् धन्वन्तरिजी भी विरेचनकी महिमा दर्शाते हैं कि :—

यथौदकानामुदकेऽपनीते चरस्थिराणां भवति प्रणाशः।
पित्ते हृते त्वेवमुपद्रवाणां पित्तात्मकानां भवति प्रणाशः॥

जिस तरह सरोवर आदि जलाशयोंका जल निकाल देनेसे उसके आश्रित चर (जलजीव), स्थिर (वृक्ष आदि) सबका नाश होजाता है, उसी तरह दुष्टपित्तका हरणकर लेनेपर उससे उत्पन्न पित्तात्मक उपद्रवोंका भी नाश होजाता है।

आँवलोंका सेवन भोजनके साथ या औषध रूपसे करना, यह अम्लपित्तरोगीके लिये अति हितकर है। आँवलोंसे अम्लपित्त, वमन, उबाक, अरुचि, दाह, मोह कण्डु, प्रमेह, शिरदर्द और सब प्रकारके शुक्रदोषका निवारण होता है। ऊर्ध्वग और अधोग, दोनों प्रकारके अम्लपित्तोंमें आँवला हितावह है।

सुबह, रात्रिको ४-६ माशे या अधिक आँवलोंका हिम पिलाते रहनेसे रोग वृद्धि नहीं होती और रोग शीघ्र शमन होजाता है। उदरमें वायुवृद्धि न हो, उतनी मात्रामें आँवले लेना चाहिये।

यदि रोगी सशक्त है, तो वमन अवश्य करानी चाहिये। आचार्योंने कहा है कि 'अचिरोत्थे चिरोत्थे वा वमनं तत्र कारयेत्' अर्थात् अम्लपित्त चाहे नया हो, चाहे पुराना, रोगीको वमन करानी चाहिये।

भोजनके ३० मिनट पहले पक्के नींबूको जलमें निचाड़े ३-४ माशे शक्कर मिलाकर पिलानेसे आमाशयरसस्राव कम होता है। एवं भोजनके २-२॥ घण्टे बाद सोडा बाइकार्ब जलमें मिलाकर पिलानेसे अम्लरस, मधुर (क्षारीय) बन जाता है।

रक्तपित्त रोग और पैत्तिक शूलमें जो चिकित्सा लिखी है, वह अम्लपित्त रोगमें हितावह है।

अम्लपित्तमें चूनाकल्प अर्थात् मौक्तिक, प्रवाल, शुक्ति, शङ्ख और वराटिकाकी भस्म, आँवले, गिलोयसत्व, च्यवनप्राशावलेह आदि अति लाभदायक हैं। क्षारप्रधान औषधिके सेवनसे पित्तकी अम्लताका ह्रास होता है।

आमाशय विस्तार होगया हो, तो मौक्तिक, प्रवाल, वराटिका आदि सुधा प्रधान औषधिका सेवन कराना चाहिये। निसोत प्रधान अविपत्तिकर चूर्ण या त्रिवृदष्टक मोदक आदि विरेचन देकर कोष्ठशुद्धि करानी चाहिये। दिन-रातमें मिलकर भोजन केवल दो बार ही देना चाहिये। मैदा-निशास्ताप्रधान भोजन और मिश्रीका बिल्कुल त्याग करा देना चाहिये। पेय पदार्थ जितना कम दिया जाय, उतना ही अधिक लाभ होता है। डॉक्टरी मत अनुसार आमाशय नलिका (Stomach tube) द्वारा रोज़-सुबह आमाशयको धो लेना चाहिये। आवश्यकतापर एरण्ड तैल द्वारा कोष्ठ शुद्धिकर फिर पौष्टिक रस या दुग्धकी बस्ति देनी चाहिये।

जो औषधियाँ पित्तकी अम्लताका ह्रास कराती हैं, वे अम्लपित्त रोगको नष्ट करती है। ऐसी औषधियोंमें अम्लतानाशक (Antacids), पित्तशामक और पित्तविरेचन भेदसे तीन ३ प्रकार है। अम्लतानाशक औषधियोंमें भी साक्षात् फलदायक, और दूरवर्त्ती फलदायक ऐसे दो विभाग हैं। इनका तथा पित्त विरेचन औषधियोंका वर्णन औषधगुणधर्म विवेचन में किया है।

जौ अथवा गेहूँके बनाये हुए यूष आदि पेय और जिनमें मिर्च आदि तीक्ष्ण वस्तु न मिलाई हो, ऐसे भोजन देना चाहिये; तथा खीलोंके सत्तूमें मिश्री और शहद मिलाकर दोषोंका विचारकर पिलाना चाहिये। चावलोंका विपाक खट्टा होजानेसे किसी-किसीको चाँवलोंका सत्तू अनुकूल नहीं रहता। अतः इसका भी विचार करके उपयोग करना चाहिये।

तुष रहित जौ, अडूसा और आँवलेका क्वाथ बना उसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची और शहद मिलाकर पिलानेसे अम्लपित्त जनित वमन तत्काल नष्ट होजाती है।

अम्लपित्त चिकित्सा

(१) गिलोय, नीमके पत्ते और कड़वे परवलके पत्तेको एकत्र पीस शहद मिलाकर दिनमें दो समय पिलानेसे महादारुण अम्लपित्त रोग नष्ट होजाता है।

(२) अडूसा, गिलोय, पित्तपापड़ा, नीमकी छाल, चिरायता, भाँगरा, हरड़, बहेड़े, आँवले और कड़वे परवलका क्वाथ बना शहद मिलाकर पिलानेसे अम्ल-पित्तका नाश होता है।

(३) अदरक और कड़वे परवलके क्वाथका सेवन करानेसे कफपित्तज, अम्ल-पित्त, दाह, वमन, कण्डु, ज्वर, स्फोटक और अग्निमान्द्य नष्ट होते हैं; तथा पचनक्रिया की वृद्धि होती है।

(४) पाठ, पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियाँ, आँवला, अडूसा, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, पीपल, हरड़, मिश्री, कमल और शहद मिला यथाविधि अवलेह बनाकर सेवन करानेसे अम्लपित्त, अरुचि, ज्वर, दाह और शोषरोगका निवारण होता है।

(५) बड़ी हरड़का चूर्ण शहद या द्राक्षाके साथ मिलाकर रात्रिको सेवन करानेसे पचनक्रिया सुधरती है। उदर-शुद्धि होती है, तथा अम्लपित्त शमन होता है।

(६) चूनेका नितरा हुआ जल पिलानेसे आमाशयके पित्तमें मधुरता आजाती है। फिर उबाक और वमनकी निवृत्ति होती है। परन्तु इस उपायको सदाके लिये नहीं करना चाहिये।

(७) नारियलकी गिरीको जलाकर राख करें। फिर ६-६ माशे दिनमें २ बार जलके साथ सेवन करते रहनेसे पचनक्रिया सुधरती है, और अम्लपित्तका निवारण होता है।

(८) रसतन्त्रसारमें लिखे हुए प्रयोग—रौप्य भस्म, लीलाविलास रस, सूत-शेखर, कामधेनु रस, अविपत्तिकर चूर्ण, कुष्माण्डावलेह, द्राक्षावलेह, च्यवनप्राशावलेह और जीरकादि मोदक आदिका सेवन करानेसे अम्लपित्त नष्ट होजाता है।

यदि आमाशय रस कम हो, किन्तु उग्र हो और अपचनसह शूल हो, तो लीलाविलास रसका सेवन कराना चाहिये। वातपित्त प्रकोपजनित लक्षण होनेपर सूत-शेखरका सेवन करावें। मलावरोध रहता हो, तो अविपत्तिकर चूर्ण देना चाहिये। रक्त-

पित्त जैसा असर हो, या पित्तप्रकोपजन्य दाह अधिक हो, तो कुष्माण्डावलेह देना चाहिये। मृदु सारक औषधि देना हो, तो द्राक्षावलेह देना चाहिये। शक्तिवृद्धिके लिये च्यवनप्राशावलेह हितावह माना गया है। आमाशयकी अशक्तिजन्य अम्लपित्त होनेपर कामधेनु रस देना चाहिये, तथा आमाशयकी वृद्धिजनित जीर्ण विकार होनेपर रौप्य भस्मका सेवन च्यवनप्राशावलेहके साथ कराना चाहिये।

(९) अधोग अम्लपित्तपर पानीयभक्तवटी अथवा प्रवाल पञ्चामृत या कामदूधा रसका सेवन कुष्माण्डावलेहके साथ कराना चाहिये। शूलसह विकार हो, तो भी पानीयभक्तवटीसे लाभ होजाता है।

(१०) कुष्माण्डकावलेह—पेठेका रस ४०० तोले, गायका दूध ४०० तोले, आँवलोंका चूर्ण ३२ तोले, मिश्री ३२ तोले और गायका घी ८ तोले लें। सबको मिला यथाविधि पका अवलेह जैसा होजानेपर उतार लेवें। २-२ तोले रोज़ सेवन करते रहनेसे अम्लपित्त रोग शमन होजाता है।

(११) नारिकेल खण्ड--पिसी हुई नारियलकी गिरी १६ तोले लेकर नारियलके जलमें अथवा गायके दूधमें पकावें। पकते-पकते गाढ़ा होजानेपर उसमें धनियाँ, पीपल, नागर मोथा, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायचीके दाने और नागकेसर, इन ७ औषधियोंको ३-३ माशा मिला लेवें।

मात्रा—१ से ४ तोले, यह खण्ड पुरुषत्व, निद्रा और बलकी वृद्धि करता है तथा अम्लपित्त, रक्तपित्त, क्षय और परिणामशूलको नष्ट करता है।

वक्तव्य—पहले नारियलकी गिरीको ४ तोले गो-घृतमें भून लें। फिर नारियलके जलमें पाक करें।

(१२) रसतन्त्रसार द्वितीय-खण्ड में लिखे हुए बृहन्नारिकेल खण्ड नूतन रोगमें, बृहत् पिप्पली खण्ड जीर्ण रोगमें शक्ति देनेके लिये और पानीय भक्तवटी शूलसह जीर्ण अम्लपित्तपर प्रयोजित होते हैं।

दुग्धकल्प कराना इष्ट हो, तो सिता-मण्डूर सेवन करावें। शारीरिक शक्ति क्षीण हो और वातनाड़ियोंको बल देना हो, तो पित्तान्तक रस या सुधानिधि रस दिया जाता है।

डॉक्टरी चिकित्सा

(१) अति वमन होनेपर—

बिस्मथ सब नाइट्रास Bismuth Sub Nit.	२० ग्रेन
एसिड हाइड्रोस्यानिक डिल्यूट Acid Hydrocyanic Dil.	३ बूंद
टिंक्चर कार्डामम कं० Tinct Cardamom Co.	१ ड्राम
एक्वा क्लोरोफार्म Aqua Chloroform ad.	१ औंस

इन सबको मिलाकर पिला देवें। इस तरह ३-३ घण्टेपर आवश्यकतानुसार दो या तीन बार देवें।

(२) अम्लोद्‌गार और दाह अधिक होने पर—

लाइकर स्ट्रिक्निया Liq. Strychnia.	४ बूंद
सोडा बाई कार्ब Soda bicarb.	२० ग्रेन
इन्फ्युजम केलम्बा Inf. Calumba.	१ औंस

इन तीनोंको मिलाकर भोजनके १ घण्टा पहले पिला देनेसे आमाशयकी वात-नाड़ियोंकी उग्रताका शमन होनेसे डकार और अपचन नहीं होते।

पथ्य.पथ्य

पथ्य—अम्लपित्त रोगमें प्रथम रोगकी गतिको जानना चाहिये। दोष अधो-गामी है या ऊर्ध्वगामी? दोष ऊर्ध्वगामी होनेपर वमन और अधोगामी होनेपर विरेचन करावें। फिर दोनों प्रकारके अम्लपित्तमें निरूहण बस्तिका उपयोग करें। पुराने शालि चावल, जौ, गेहूँ, मूँग, जाङ्गल प्राणियोंका मांसरस, गरम करके ठण्डा किया हुआ शीतल जल, शक्कर और शहद मिला हुआ जौका सत्तू, करेला, ककोड़ा, परवल, हुल-हुलका शाक, बेंतकी कोंपल, पका पेठा, केलेका फूल, बथुआ, कैथ, अनार, आँवला तथा पित्तशामक कड़वे रसवाले फल आदि अम्लपित्त रोगीके लिये पथ्य हैं। मैदा (श्वेतसारप्रधान भोजन), रबड़ी, आलू आदि कंद शाकका सेवन कम करना चाहिये।

रोग नया हो या पुराना आमाशयके दोषको निकालनेके लिये वमन हितकारक है। अथवा आमाशयनलिकाद्वारा आमाशयको शुद्ध कर लेना चाहिये। इस रोगमें कफपित्तशामक पदार्थ देना चाहिये। कच्चे नारियलका जल हितावह है।

अपथ्य—नवीन अन्न, स्वाभाविक हानिकारक भोजन, कफ और पित्तको बढ़ानेवाले पदार्थ, वमनके वेगको रोकना, तिल, उड़द, कुलथी, तैल, भेड़का दूध, काँजी, नमकीन, खट्टे चरपरे और देरसे पचनेवाले पदार्थ, राई, दही और मद्य आदि अम्लपित्त रोगमें अपथ्य हैं।

इनके अतिरिक्त धूम्रपान, चाय, गरम-गरम भोजन, सूर्यके तापमें भ्रमण, अग्निका सेवन और अधिक क्रोध आदि हानिकर हैं।

दही और तक्र ऊर्ध्वग अम्लपित्तमें आमाशयस्थ पित्तमें अधिक अम्लता और उष्णता आ जानेपर अपथ्य हैं। परन्तु ये अधोग अम्लपित्तमें अन्त्रके क्षतवालोंके लिये पथ्य है।

कितनेक रोगियोंको दूध अनुकूल नहीं रहता। दूध पिलानेपर वमन होजाती है या पतले दस्त होजाते हैं। अतः उनको दूध नहीं देना चाहिये या कम देना चाहिये।

९. गुल्म

एब्डॉमिनल ट्यूमर्स—Abdominal Tumours.

उदरगुहामें स्थिर या अस्थिर (फिरने वाला), धीरे-धीरे बढ़नेवाला या बढ़ने घटनेवाला आलू आदि कन्दके समान गोला उत्पन्न होता है, उसे गुल्म कहते हैं।

निदान—मिथ्या आहार-विहार आदि भोजन, भोजनपर भोजन, अपथ्य

सेवन, विष-प्रकोप, बलवानोंसे लड़ाई, साहस-कर्म आदि विप्रकृष्ट (दूरके) कारणोंसे वात, पित्त और कफ धातुकी विकृति होती है । अर्थात् सन्निकृष्ट (समीपके) हेतुकी उत्पत्ति होती है। फिर दोनों पार्श्व, हृदय, नाभि, बस्ति स्थान (गर्भाशय) और बीजकोष (Ovaries ओवरीज़) में गुल्मकी संप्राप्ति होती है ।

जब वमन, विरेचन, आस्थापन, बस्ति या ज्वर, अतिसार, ग्रहणी आदि रोगोंके हेतुसे शरीरमें कृशता आकर वातप्रकोप हुआ हो, तब वातवर्धक या शीतल आहारका सेवन या क्षुधा लगनेपर शीतल कच्चे जलका पान करना ❀ स्नेहन और स्वेदन क्रिया किये बिना बार-बार वमन-विरेचन आदि शोधन क्रिया करते रहना, भोजनकर लेनेपर लङ्घन (कूदना, दौड़ना आदि देह संक्षोभि कर्मोंका सेवन) करना या अति क्षोभ उत्पन्न करनेवाली गाड़ीमें प्रवास करना, वमनका वेग उत्पन्न न होनेपर भी बलात्कारसे वमन करना, अधोवायु और मलमूत्र आदिका वेग उत्पन्न होनेपर निरोध करना, नया अन्न या नया जल अति मात्रामें सेवन करना, अति मैथुन, अति व्यायाम, अति मद्यसेवन, अभिघात, विषम भोजन, विषम शयन, विषम स्थानमें प्रवास या इस तरहके अन्य विपरीत कर्म करना अथवा अधिक मात्रामें विष सेवन, इन कारणोंमेंसे किसीका अतियोग होनेपर वातप्रकोप होजाता है । तत्पश्चात् यदि कोई वमन विरेचन आदिका प्रयोग न कर तुरन्त विदाही या कफवर्धक अन्नपानका सेवन करता है, तो प्रकुपित वायु महास्रोत (आमाशय और पक्वाशय) में प्रवेशकर कोष्ठमें फैलजाती है । फिर ऊपर-नीचेके मार्गको निरुद्धकर कफ, पित्त और रक्तका आश्रय लेकर रूक्षताके हेतुसे बार-बार शूलको उत्पन्न करती है । पश्चात् कठिनताको प्राप्त होकर पिण्ड सदृश बन जाती है ।

जो गुल्म हृदय और बस्तिके भीतर होते हैं, वे कभी चल और कभी अचल होते हैं । आकृतिमें गोल और चयापचयवान् (बढ़ने घटने वाले) होते हैं । किन्तु यह विशेषण मात्र वातिक गुल्मके लिये है । शेष गुल्मोंके लिये "चयोपचयवान्" अर्थात् शनैः-शनैः दोष संचय होकर बढ़नेवाला माना है ।

जो गुल्म, अग्न्याशय, उदरगत महाधमनि (एब्डॉमिनल एओर्टा-Abdominal Aorta), वृक्क, उपवृक्क (अधिवृक्क), गर्भाशय आदि अचल अङ्गोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं और चल होनेपर भी दाह होकर स्थिर अवयवोंसे संलग्न होगये हैं, उनको अचल माना है । जो गुल्म उरस्या कला (प्लुरा-Pleura), उदर्य्याकला (पेरिटोनियम-Peritoneum) आदि चल अवयवोंसे सम्बन्धवाले हैं । उनको चल कहा है । श्वासोच्छ्वास क्रिया करनेपर ये गुल्म नीचे-ऊँचे उठते रहते हैं । इस परसे इनका सम्बन्ध उरस्या कला और उदर्य्याकलासे है, ऐसा जाना जाता है ।

❀ अनवस्थित-दोषाग्नेर्व्याधि क्षीणबलस्य च ।
नाल्पमप्यामसुदकं हितं तद्धि त्रिदोषकृत् ॥

अन्त्रसे सम्बन्धवाले गुल्मोंको चलाचल अर्थात् चल और अचल, उभय विशेषणोंसे युक्त कह सकते हैं।

गुल्म प्रकार—इस रोगके वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और स्त्रियोंको होनेवाला रक्तज, ये ५ प्रकार हैं। जैसे ज्वरमें पित्तका प्राधान्य रहता है, इस तरह इन सब प्रकारके गुल्मोंमें अनुबन्ध रूपता (मुख्य कारणता) वायुकी ही रहती है।

पूर्वरूप—अति डकार आना, मलावरोध, तृप्ति (भोजन करनेकी अभिलाषा न होना), सहन न होना, निर्बलता, आँतोंमें गड़गड़ाहट, पेट फूलजाना (थोड़ा वायु भरा ही रहना), आध्मान (अफारा), अपचन और अग्निमान्द्य आदि चिह्न प्रतीत होते हैं।

गुल्मलक्षण—अरुचि, अधोवायु और मल-मूत्र त्यागमें कष्ट-सा होना, आँतोंका बोलना, आनाह (ऊपर-नीचे दोनों ओरका मार्ग आम तथा मलसे रुक जाना), अधोवायुकी उर्ध्व गति (विलोम गति), ये लक्षण सब गुल्मोंमें प्रतीत होते हैं।

वातज गुल्म निदान—रूक्ष अन्नपान, विषम भोजन (कभी ज़्यादा कभी कम, एवं कभी जल्दी, कभी देरीसे भोजन और अनियमित जलपान), अति भोजन, बलवानोंसे लड़ाई या अति बोझा उठाना आदि विरुद्ध चेष्टा, अधोवायु और मल-मूत्र आदि वेगोंका अवरोध, शोक, अभिघात (चोट), मलका अतिक्षय और उपवास आदि कारणोंसे वात प्रकुपित होकर गुल्मकी उत्पत्ति कर देते हैं।

वातज गुल्म संप्राप्ति—धातुओंका कर्षण (क्षीणता) होनेपर अथवा कदाचित् कफ, विष्टा और पित्तसे मार्गमें रुकावट होनेपर प्रकुपित हुई, वायु कोष्ठ (आमाशय और पक्वाशय) में दूसरोंका आश्रय लेकर रूक्षताके हेतुसे कठिनता (पिण्ड भाव) को प्राप्त होजाती है। यह दुष्ट वायु स्वाश्रय (पक्वाशय) में स्वतन्त्र और पराश्रय (कफ स्थान रूप आमाशय) में परतन्त्र होती है। इस हेतुसे पित्तकफकी प्राप्ति हो जानेपर पिण्डरूप बन जाती है। वायु अमूर्त्त होनेपर भी आश्रय प्राप्त होजानेसे मूर्त्त सदृश बन जाती है। फिर वह गुल्म रोग कहलाता है।

वातज गुल्म लक्षण—(अन्नपचन होजानेपर गोलाके आकारकी वायु उठना), शरीरमें स्थान स्थानपर पीड़ा, कभी एक स्थानमें तो कभी दूसरे स्थानमें पीड़ा, कभी गुल्म बड़ा, कभी गुल्म छोटा, क्वचित् वेदना अधिक, क्वचित् कम, क्वचित् तोड़ने समान पीड़ा, क्वचित् शूलसे भेदनकरने समान पीड़ा, चीटियाँ चलती हों ऐसी पीड़ा होना और अङ्ग फड़कना, अधोवायु और मलका रुकना, कण्ठ और मुँहमें शोष, विषमाग्नि, (कभी भोजन पच जाना, कभी न पचना), श्वासोच्छ्वासमें कष्ट होना, देह श्याम या अरुण रङ्गकी हो जाना, शीत ज्वर, हृदय, कुक्षि, पार्श्व और शिर स्थान में पीड़ा, भोजन पचन हो जानेपर पीड़ा अधिक होना, भोजन करनेपर पीड़ा न्यून होना तथा रूक्ष, कसैले, कड़वे और चरपरे पदार्थोंके सेवनसे पीड़ा बढ़ना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं।

पित्तज गुल्म निदान—चरपरे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही (करीर आदि) और रूक्ष भोजन, क्रोध, अति मद्यपान, सूर्यके ताप और अग्निका अति सेवन, आम (विदग्धाजीर्णसे उत्पन्न दुष्ट रस), चोट और रक्तविकार आदि कारणोंसे वातानुबंधसह पित्त प्रकुपित होनेपर पित्तज गुल्मकी उत्पत्ति होती है।

पित्तज गुल्म लक्षण—ज्वर, प्यास, दाह, बेचैनी, देहका रंग लाल-पीला होजाना। भोजन पचन होनेके समय अधिक शूल चलना, स्वेद, खट्टी डकार, अन्नका विदाह होजाना, गुल्मपर हाथ लगानेसे व्रणके समान पीड़ा होना और गुल्म स्थानमें दाह आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

श्लैष्मिक गुल्म निदान—शीतल, भारी और स्निग्ध भोजन, बैठे रहना, खूब खाना (वायुके आवागमनके लिये स्थान नहीं रखना), और दिनमें शयन आदि कारणोंसे वातानुबंधसह कफ प्रकुपित होकर कफज गुल्मकी उत्पत्तिकर देता है।

श्लैष्मिक गुल्म लक्षण—शरीर गीला-सा रहना, शीत-ज्वर, अङ्ग टूटना, उबाक, ज़ुकाम, कास, अरुचि, शरीरमें भारीपन, शरीरमें शीतलता, ग्लानि तथा गुल्म कठिन, बड़ा, ऊँचा उठा हुआ, स्थिर और मन्द वेदनावाला होना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं।

द्विदोषज गुल्म कल्पना—यदि इस गुल्म रोगमें दो दोषोंके निमित्त (कारण) और लक्षणोंकी प्रतीति होती है, तो दोषोंके बलाबल विचारकर औषधि कल्पानार्थ वातपित्त, वातकफ और पित्तकफोत्पन्न गुल्म मानकर चिकित्सा करनी चाहिये।

त्रिदोषज गुल्म निदान—जब तीनों दोषोंके मिश्रित हेतु मिल जानेसे वात, पित्त और कफ, तीनों दोष प्रकुपित होकर गुल्मकी उत्पत्ति कराते हैं, तब त्रिदोषज गुल्म कहलाता है।

त्रिदोषज गुल्म लक्षण—यह गुल्म ऊपर उठा हुआ पत्थर सदृश दीखता है। इस गुल्मके हेतुसे अत्यन्त वेदना, सारे शरीरमें सन्ताप, भोजनकर लेनेपर तुरन्त अन्नका विदाह होना, दारुण वेदना होना, मन, देह और अग्निके बलका हरण हो जाना—अर्थात् व्याकुलता, कृशता, निर्बलता, विवर्णता और अग्निमांद्यकी उत्पत्ति होजाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस त्रिदोषज गुल्मको शास्त्रकारोंने असाध्य कहा है।

यह सान्निपातिक गुल्म आमाशयिक, आन्त्रिक और याकृतिक कर्कस्फोट होना चाहिये।

आमाशयिक कर्कस्फोट (Cancer of the Stomach) होनेपर रक्त वमन, सतत वेदना, दाह, क्षुधानाश, कृशता, ऊपर उठा हुआ गुल्म, दबानेपर पीड़ा होना, मलावरोध और ज्वर आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

आन्त्रिक कर्कस्फोट (Cancer of the Intestine) विशेषत: मलाशयमें होता है। मलत्यागमें पीड़ा, वमन, अपचन, मलावरोध, कभी-कभी अतिसार, पाण्डुता, कृशता और वेदना बनी रहना इत्यादि लक्षण होते हैं।

यकृतपर कर्कस्फोट (Cancer of the Liver) होनेपर रोगीको यकृतपर सुई चुभोने सदृश वेदना, यकृद्वृद्धि, दक्षिण स्कंधपर पीड़ा, कृशता, पाण्डुता, कामला, आमाशयिक और आन्त्रिक क्रिया वैलक्षण्य, उदरकी मांस पेशियोंमें दृढ़ता, कभी-कभी ज्वर आ जाना, पैरोंपर शोथ, रक्तक्षय और जलोदर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। आधुनिक विद्वानोंने भी इस रोगको असाध्य माना है।

यदि त्रिदोषज गुल्म नया हो, ऊपर कहे हुए सब उपद्रव पूर्णांशमें प्रकाशित न हुए हों, बलक्षय न हुआ हो; तो चिकित्सासे लाभ हो सकता है।

जो गुल्म धीरे-धीरे अत्यन्त बढ़ गया हो, उदरके बहुत स्थानको घेर लिया हो, गम्भीर मूलवाला (इतर मांस आदि धातुओंमें जिसका मूल चला गया हो), चारों ओरसे सिराओंसे बद्ध, कछुएकी तरह ऊँचा उठा हुआ, निर्बलता, अरुचि, उबाक, वमन, कास, शूल, बेचैनी, ज्वर, तृषा, तन्द्रा और ज़ुकाम आदि उपद्रवसह हो, वह असाध्य है।

पक्व गुल्मके लक्षण—गुल्म पक जानेसे दबानेपर दबता है और छोड़नेपर ऊँचा आ जाता है। पच्यमान अवस्थाकी अपेक्षा शूल आदि वेदना कम होजाती है। त्वचाका रंग काला हो जाता है। जो गुल्म पानीसे भरी हुई मशकको दबाने समान प्रतीत होता है। उसकी चिकित्सा तत्काल पक्व विद्रधि अनुसार करनी चाहिये। अर्थात् उसमेंसे रक्त और पीपको निकालकर व्रणशोधन-रोपण आदि क्रिया करनी चाहिये।

अपक्व गुल्म लक्षण—कठिन आकार वाला, भारी, मांसके भीतर आश्रय वाला, मूल वर्णवाला और स्थिर हो, उसे अपक्व गुल्म कहते हैं।

विदह्यमान गुल्म लक्षण—दाह, शूल, अग्निसे जलाने समान वेदना, निद्रानाश, बेचैनी और ताप, इन लक्षणोंसे युक्त गुल्मको पच्यमान गुल्म जानकर जल्दी पकानेके लिये सेक आदि उपचार करना चाहिये।

असाध्य लक्षण—जिस गुल्म रोगमें ज्वर, श्वास, वमन और अतिसार हो; तथा हृदय, नाभि, हाथ और पैरपर शोथ हो गये हों, वह रोगीको मार डालता है।

जिस गुल्मके साथ श्वास, शूल, प्यास, अरुचि, अकस्मात् गुल्मका विलय हो जाना तथा अति निर्बलता आदि लक्षण हों, वह रोगीको मारनेके लिये ही तत्पर होता है। (सुश्रुत सू० ११-२०)।

रोगनिर्णय—अंतर्विद्रधि और गुल्म, दोनोंके स्थान एक होनेसे दोनोंके निर्णयार्थ भगवान् धन्वन्तरि सुश्रुत संहितामें लिखते हैं कि—

मांसशोणितबाहुल्यात् पाकं गच्छति विद्रधिः।
मांसशोणितहीनत्वाद् गुल्मः पाकं न गच्छति॥

मांस शोणितकी अधिकतासे विद्रधिका पाक होजाता है, तथा रक्त मांसका हीनयोग होनेसे गुल्मका पाक नहीं होता।

गुल्मस्तिष्ठति दोषे स्वे विद्रधिर्मांसशोणिते ।
विद्रधिः पच्यते तस्माद् गुल्मश्चापि न पच्यते ॥

गुल्म अपने दोषोंमें स्थित होता है (गुल्मके लिये रक्त, मांस आदि धातुओं का आश्रय नहीं होता, बुद्बुदेके समान कोष्ठाकाशमें विचरता है) विद्रधि, मांस और रक्तमें स्थित होता है । इस हेतुसे रक्तमांसका आश्रय मिलनेसे विद्रधि पकता है और निर्बन्धरहित होनेसे गुल्म नहीं पकता ।

यह विचार विशेषतः वायुके गोले Gaseous tumour) को गुल्म मानकर दिया है । पुनः आगे उत्तर तन्त्रमें चरक संहिता कथित् गुल्मको ही लक्ष्यमें रखकर लिखते हैं कि—

सशूले सोन्नतेऽस्पंदे दाहपाकरुगन्विते ।
गुल्मे रक्तं जलौकाभिः शिरामोक्षेण वा हरेत् ॥

जो गल्म शूल सह हो, ऊपरकी ओर उठा हुआ हो; थोड़ा-सा भी न हट सकता हो, दाह पाक होगया हो या होता हो और पीड़ायुक्त हो । ऐसे गुल्ममें जलौका लगा या शिरामोक्ष करा रक्तको निकाल लेना चाहिये । इस वचनसे जाना जाता है। भगवान् धन्वन्तरिजीके मतसे भी गुल्मका पाक हो सकता है ।

चरक संहितामें भगवान् आत्रेयने लिखा है कि—

दाहशूलाग्निसंन्तापस्वप्ननाशारतिज्वरैः ।
विदह्यमानं जानीयाद्गुल्मं समुपनाहयेत् ॥ चि० स्था० ५-३१

दाह, शूल अग्निसे जलाने समान पीड़ा, निद्रानाश, व्याकुलता और ज्वर आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो गुल्मको पकनेवाला जानकर उसपर उपनाह—सेक करना चाहिये। अतः चरकसंहिताकारके मतानुसार भी गुल्मका पाक होजाता है । एवं श्रीअष्टाङ्ग संग्रहके निदानस्थान एकादश अध्यायमें भी लिखा है कि—

"स्वदोषाधिष्ठानश्च सर्वो भवति गुल्मः । तस्माच्चिरेण नैव वा पाकमेति । भूरि-दुष्ट-रक्ताश्रयत्वात्तु विद्रधिः शीघ्रपाको भवतीति ॥"

अर्थात् वातगुल्म, पित्तगुल्म, कफगुल्म आदि सब प्रकारके गुल्म अपने-अपने दोषके आश्रयसे उत्पन्न होते हैं । इस हेतुसे इनका पाक चिरकालमें होता है या कभी नहीं भी होता । किन्तु विद्रधिके आश्रयभूत रक्तधातु है (त्रिदोष नहीं); वह रक्तधातु दूषित होनेपर, इसकी मात्रा अधिक होनेसे विद्रधि शीघ्र पक पाता है । शीघ्र विदाही होनेसे वह विद्रधि कहलाता है ।

गुल्म अंतराश्रित होनेसे बस्ति, कुक्षि, हृदय और प्लीहा आदिमें वेदना बनी रहती है; जठराग्नि, वर्ण और बलका ह्रास होजाता है । तथा अधोवायु, मल-मूत्र त्याग आदि वेगोंकी प्रवृत्ति (सम्यक्) नहीं होती । इसके विपरीत विद्रधिको बाहर (रक्तधातु) का आश्रय होनेसे जठराग्नि, वर्ण और बलका अधिक ह्रास नहीं होता,

वेगोंकी प्रवृत्ति होती है और बस्ति, हृदय, उदर आदिमें अति शूल नहीं होता। इनके अतिरिक्त गुल्मप्रदेशकी विवर्णता (देहका रंग बदल जाना) और देहका बाह्य प्रदेश उन्नत होजाना, ये लक्षण अधिक होते हैं।

यद्यपि गुल्म और विद्रधि, दोनोंके लक्षण अनेक अंशमें विपरीत हैं तथापि पाक होजाना, इस लक्षणका दोनोंमें प्रवेश होनेसे अनेक आचार्योंने अन्तर्विद्रधिको गुल्मसे पृथक् नहीं कहा। उनके मतानुसार गुल्म जब पकने लगता है, तब विरेचन, लेप, विम्लापन आदि और पक जानेपर पाटन शोधन, रोपण आदि चिकित्सा करनी चाहिये।

असाध्य गुल्मके लक्षणोंमें ग्रन्थिमूढ़ता (गुल्मस्याकस्माद्विलयनम् अर्थात् अकस्मात् गुल्मका विलय होजाना), इस लक्षण परसे गुल्म-वायुका गोला (Gaseous tumour), रसपूर्ण थैली (कृमिज कोष Cyst) या महाधमनि विस्तार होकर रक्तपूर्णता (Aneurysm) होना चाहिये। कारण वायु, कृमिज कोष और धमनिके बद्ध रक्तका विलय हो सकता है। जड़ गाँठका नहीं हो सकता।

एकिनोकोकस सिस्ट या हाइडेटिड सिस्ट (Echinococcus Cyst or Hydatid Cyst) अर्थात् कृमिज कोषकी उत्पत्ति कुत्तेके नवजात कीटाणु (The Larva of Taenia Echinococcus of the dog) का आमाशयमें प्रवेश होनेपर होती है। एवं स्त्रियोंके बीजकोषोंपर रसौली अर्बुद होता है। उसमें भी तरल भरा रहता है। अनुमान है कि, इन ग्रंथियोंके फूटनेपर "गुल्मस्य अकस्माद् विलयनम्" कहा होगा।

गुल्मका अकस्मात् विलय होजाना, इस लक्षणके विपरीत कफज गुल्मके लक्षणमें 'कठिनोन्नतत्वं' और सान्निपातिक लक्षणमें 'अश्मवद्घन' अर्थात् पत्थर समान दृढ़, इन विशेषणोंपरसे गुल्मको जड़ कहा है। अलावा वातज गुल्मके लिये 'चयापचयवान्' विशेषण परसे वातज गुल्मके लिये वातनिरोधज ग्रन्थि या धमनीविस्तारज ग्रन्थि (एन्युरिज़्म) मान ली जाय, तो इसका बढ़ना-घटना बार-बार हो सकता है और इतर गुल्मोंका 'चयोपचयवान्' विशेषण मान लिया जाय; तो वे सब क्रमशः बढ़ सकते हैं।

कभी-कभी उदर (अन्त्र) में वायु उत्पन्न होती है, उस समय उदर्य्योकलाका छिद्र चौड़ा हो, तो उसमें अन्त्रका कुछ अंश गाँठ जैसा बाहरसे प्रतीत होता है। वायु शमन होने या दबानेपर बैठ जाता है। यह नियमित नहीं होता। कभी-कभी उत्पन्न होजाता है। इसमें वातप्रकोपके लक्षण उपस्थित होते हैं। इस प्रकारमें कोई भी औषधिसे लाभ नहीं पहुँचता। इस गुल्मकी चिकित्सा शस्त्रद्वारा ही होती है। उदर्य्योकला के छिद्रका आकुंचन करानेपर ही लाभ होता है। शस्त्र चिकित्साके पश्चात् भी १ वर्षतक वातप्रकोपक आहार विहारको जितना कम किया जाय, उतना ही अच्छा माना जायगा।

इन हेतुओंपरसे अनुमान होता है कि, वातजगुल्म केवल वातनिरोधसे बनने बिगड़नेवाली, छोटी बड़ी गाँठ, पित्तज गुल्म, कालान्तरमें पकनेवाला अर्बुद, कफज

गुल्म पाकरहित जड़ गाँठ तथा त्रिदोषज गुल्ममें पाक रहित जड़ गाँठ, पकनेवाली गाँठ और द्रवयुक्त गाँठ (कृमिज कोष), ऐसे अनेक प्रकार होने चाहियें।

रक्तगुल्मनिदान—गर्भाशयमें गुल्म होनेपर डॉक्टरीमें यूटेराइन ट्यूमर (Uterine Tumour) और बीजकोषोंपर गुल्म होनेपर ओवेरियन ट्यूमर (Ovarian Tumour) कहलाता है।

आयुर्वेदके मतानुसार प्रसूतावस्थामें योनिरोग या गर्भस्राव हो जानेपर अथवा मासिकधर्म आनेपर अपथ्य वातप्रकोपक भोजन, उपवास, भय, रूक्षपदार्थका सेवन, मूत्र आदि वेगका धारण, दूषित रक्तके प्रवाहको रोक देना, वमन, योनिविकार या अन्य कारणोंसे वायु प्रकुपित होकर रक्तको संचितकर दाह और पीड़ासहित स्त्रियोंके गर्भाशयमें सौत्रिक तन्तुयुक्त गुल्म या बीजकोषपर गुल्मकी उत्पत्ति करा देती है।

गर्भाशय (Uterus)– यह मोटी मांसपेशियोंकी दीवारसे बनी हुई एक थैली है। इसकी आकृति बाहरसे चिपटी, छोटा तुम्बी सदृश और भीतरसे त्रिकोणाकार है। यह यन्त्र बस्तिगुहाके भीतर, बस्तिके पीछे और गुदनलिकाके आगे स्थित है। गर्भ रहनेके पहले युवावस्थामें इसकी लम्बाई ७.५ C. M. सेन्टिमीटर, चौड़ाई ५ C.M. तथा मोटाई २.५ C.M. होती है। अर्थात् लगभग ३इञ्च लम्बाई, २ इञ्च चौड़ाई और १ इञ्च मोटाई होती है। इसका वज़न लगभग ३० से ४० ग्राम (२। तोलेसे ३ तोले तक) होता है। इस गर्भाशयके दोनों ओर १–१ बीजाशय रहता है।

गर्भाशयकी रचनाको समझानेके लिये आचार्योंने गर्भाशयके ३ भागोंकी कल्पना की है। मुख, ग्रीवा और शरीर।

गर्भाशय-मुख—(ओस यूटेराई-Osuterai) यह भाग योनिमार्गके ऊपरके सिरेको लगा है, और उसमें ही खुलता है। इस भागके शिखरपर एक लगभग गोल छिद्र होता है, जिसे बाह्य गर्भछिद्र (External orifice of the Uterus) कहते हैं। यह छिद्र गर्भाशयकाद्वार रूप है। इस छिद्रद्वारा गर्भाशय और योनिमार्ग, दोनोंका परस्पर सम्बन्ध होता है। यह छिद्र संकुचित रहता है, किन्तु जब रजोदर्शन (Menstruation) होता है; तब रजस्राव करानेके लिये यह छिद्र विकसित होता है; फिर लगभग १६ दिनतक खुला रहता है। यदि यह छिद्र यथोचित विकसित न हो सके तो रजःकृच्छ्र (Dysmenorrhoea) अर्थात् मासिक धर्म कष्टसे आना, इस रोगकी सम्प्राप्ति होती है। यह छिद्र प्रसव कालमें तो अति चौड़ा होकर बालकको बाहर जानेका मार्ग देता है।

स्त्री शरीरमें श्रोणिगुहाके भीतर गर्भाशय
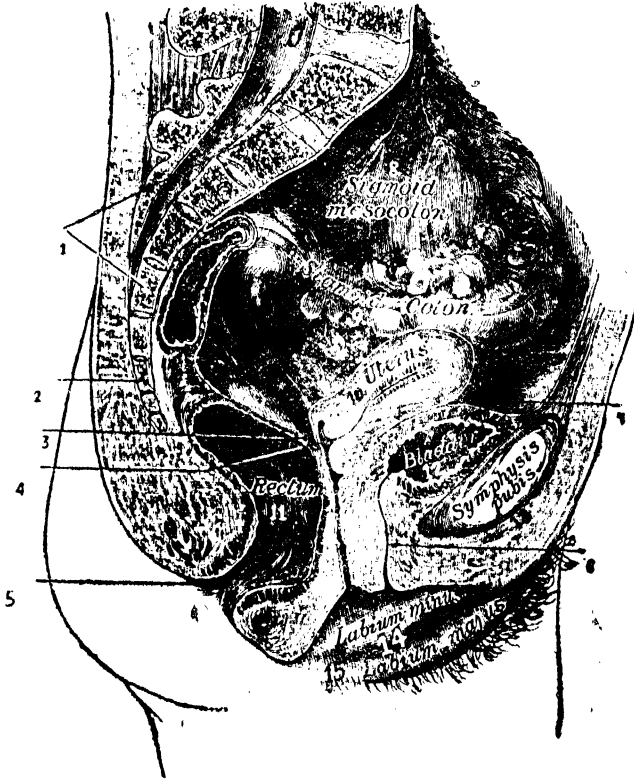
१. त्रिकास्थि—Sacrum.
२. अनुत्रिकास्थि—Coccyx.
३. योनि गुदान्तरीय स्थालीपुट-Recto-uterine excavation.
४. गर्भाशय मुख—External uterine orifice
५. गुदद्वार—Anal Canal.
६. मूत्रप्रसेक—Urethra.
७. बस्तिगर्भाशयान्तरीय स्थालीपुट—Uterovesical excavation.
८. कुण्डलिकान्त्रधारा बन्धनी—Sigmoid mesocolon.
९ कुण्डलिका भाग-Sigmoid Colon.
१०. गर्भाशय—Uterus.
११. गुदनलिका—Rectum.
१२. मूत्राशय—Bladder.
१३. भगास्थिसंधान—Symphysis pubis.
१४. लघु भगोष्ठ—Labium minus.
१५. बृहद् भगोष्ठ—Labium majus.

इन बीजाशयोंमें कठिन गुल्म (Tumours) और रसाबुंद (सीस्ट्स Cysts) उत्पन्न होजाते हैं। गुल्मके समान जब द्रवमय कोष अधिक बढ़ता है, तब उदरभी बढ़ने लगता है। रजोदर्शन अनियमित होजाता है। स्त्रीका शरीर अतिकृश और पीला पड़ जाता है। अनेक बार उदरको देखकर गर्भ, जलोदर या सद्रव कोष है, इस बातका निर्णय करना कठिन होजाता है। क्वचित् रसाबुंदके साथ गर्भभी होता है।

गर्भाशयके अर्बुद और बीजकोषके अर्बुद, दोनोंमें गर्भ धारणका भ्रम होता है। इनमें भी बीजकोषका अर्बुद (गुल्म) अधिक संशय डालता है। बीजकोषके अर्बुदकी वृद्धि गर्भके सदृश ही होती है। दोनोंके लक्षणोंमें प्रभेद सत्वर नहीं हो सकता। गर्भाशय और बीजकोषके इन अर्बुदोंके निदान, लक्षण आदिका वर्णन आगे डॉक्टरी मतके विवेचनमें विस्तार पूर्वक किया जायगा।

पित्तज गुल्मके जो निदान कहे हैं, वे रक्तज गुल्मके भी कारण होते हैं। अलावा गर्भाशय या बीजकोषपर चोट लगनेसे भी क्वचित् अर्बुद (रक्त गुल्म) की उत्पत्ति होजाती है।

चरकसंहिता कथित निदान मासिकधर्मके समय उपवास, भय, शुष्क पदार्थोंका सेवन, अधोवायु, मल-मूत्र आदि वेगोंका धारण, मासिकधर्मको रोकनेकी क्रिया करना, वमन और योनि रोग, इन कारणोंसे स्त्रियोंको रक्तगुल्म होजाता है।

इन हेतुओंसे, या गर्भाशयको अति शीत लगजाना, या शीतल जलसे स्नान, शीतल वायुका सेवन या इतर हेतुसे मासिकधर्ममें बाहर निकलनेवाला रक्त जब रुक जाता है, तब वायु प्रकुपित होकर उसे गुल्माकर बना देती है। पहले छोटे बेर समान फिर सुपारी समान बनता है। पश्चात् शनैः-शनैः बढ़ता जाता है।

यह रक्तगुल्म पुरुषोंको गर्भाशय और बीजकोष न होनेसे नहीं होता। यदि किसी कारणवश प्रारम्भमें कहे हुए पार्श्व, नाभि आदि स्थानोंमें रक्तपित्त आदि रोगका रक्त रुक जाय, तो वह अन्तर्विद्रधि रूप बन जाता है; गुल्मरूप नहीं होता। इस हेतुसे शास्त्रकारोंने पुरुषोंके लिये रक्तगुल्मका निषेध किया है। मतान्तरमें जिन आचार्योंने गुल्म और विद्रधिको पृथक् नहीं माना, वे पुरुषोंको भी रक्तगुल्म होनेका लिख सकते हैं; किन्तु भगवान् धन्वन्तरि और आत्रेयके मतानुसार वह अन्तर्विद्रधि ही कहलाती है।

रक्त गुल्म लक्षण—पैत्तिक गुल्मके सदृश ज्वर, प्यास आदि लक्षणोंकी प्रतीति, मासिकधर्म न आना, स्तनोंके अग्र भाग काले होजाना, उबाक, मुँहका पीलापन आहार आदिमें भाव-अभाव, योनिमेंसे दुर्गन्धयुक्त स्राव होना, तोड़ने समान पीड़ा और गर्भ धारणके समान गुल्मका फड़कना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। परन्तु सगर्भाके शरीरमें बालकके हाथ-पैर आदि अङ्ग जैसे फड़कते हैं, ऐसा नहीं होता। बहुत समयके बाद क्वचित्-क्वचित् सारे गुल्मरूप पिण्डका स्पन्दन होनेका भास होता है, साथमें

शूल समान वेदना भी रहती है। (गर्भ होनेपर ऐसा शूल नहीं चलता)। गर्भ और गुल्ममें यह भेद रहता है।

रक्तगुल्म विनिर्णय—(१) गर्भ धारणके ४-७ मास होनेपर उसके स्थानको हटानेपर गर्भ नहीं हटता और रक्तगुल्म बाईं दाहिनी ओर कुछ हट जाता है। फिर स्त्रीको चित्त लेटा, गुल्मको मूल स्थानसे इतर स्थानपर हटा, फिर दबाकर रक्खें। पश्चात् स्त्रीको सम्हालपूर्वक बैठी करनेसे दबा हुआ गुल्म अपने स्थानपर आजाता है।

(२) आठ-आठ अंगुलके चौकोन सफेद कपड़ेको गेरूके जलमें भिगो समान परिमाणमें निचोड़ एक टुकड़ेको गुल्मपर और दूसरेको उदरपर फैलावें। गर्भ होने पर दोनों कपड़े सम समयमें सूख जाते हैं। गुल्म होनेपर गुल्मपर रखा हुआ कपड़ा देरसे सूखता है।

(३) ध्वनिवाहक यन्त्रसे सुननेसे गर्भ होनेपर उसके हृदयके स्पन्दनकी आवाज़ सुननेमें आती है। गुल्म होनेपर आवाज़ नहीं आती।

(४) गर्भाशय और बीजाशयमें गुल्म (अर्बुद) होनेपर अर्बुद गति और स्थानके अनुसार रोग लक्षणभी कुछ प्रकाशित होते हैं। इन गुल्मोंके प्रकार और लक्षणोंका वर्णन आगे डॉक्टरी निदानमें किया जायगा।

इस रक्त गुल्मकी चिकित्सा दस मास व्यतीत होनेपर करनी चाहिये। कारण, १० मास व्यतीत होनेपर गर्भाशय आदि अङ्गोंमें चिकित्सा सहन करने योग्य बल आजाता है। कच्चा दोष पक जाता है और अन्तर्लीन दोष बाहर आकर संचित होजाता है। इन हेतुओंसे अग्निवेश, धन्वन्तरि आदि आचार्योंने रक्तगुल्मको जीर्ण होनेपर सुखसाध्य माना है, ऐसी कितनेक विद्वानोंकी कल्पना है। इस विषयमें प्राचीन आचार्योंने लिखा है कि:—

ज्वरेतुल्यर्त्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्य दूष्यता।
रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥

ज्वर रोगमें ऋतु और दोषकी समानता, प्रमेहमें प्रकृति और वात आदि दूष्योंकी समानता तथा रक्त गुल्मका पुरानापन (१० मास व्यतीत होना), ये सुखसाध्यके लक्षण हैं।

यदि कोई शङ्का करे कि गर्भ और गुल्मका निर्णय न होने पर १० मास बाद चिकित्सा करनी चाहिये। तो उसके प्रत्युत्तरमें कहते हैं कि, पिण्डित, स्पन्दन और शूल आदि कारणोंसे निर्णय हो जानेपर भी व्याधि महिमाकी दृष्टिसे १० मासके पश्चात् चिकित्सा करनी चाहिये। डॉक्टरी मतानुसार १० मासतक प्रतीक्षा नहीं की जाती। जब रक्त गुल्मका निर्णय होजाय, तब तुरन्त ऑपरेशन कर डालते हैं।

गुल्मोंका डॉक्टरी विवेचन।

(१) आमाशयिक कर्कस्फोट

त्रिदोषज गुल्म—केन्सर ऑफ दी स्टॉमक।
(Cancer of the Stomach)

परिचय—कर्कस्फोट केकड़ेके पञ्जे सदृश प्रतीत होता है, इस हेतुसे इसे आयुर्वेदमें कर्कस्फोट संज्ञा दी है। इसे डॉक्टरीमें कार्सिनोमा या केन्सर (Carcinoma or Cancer) कहा है। इसमें प्रधान अर्बुदके भीतर इतर गौण अर्बुद उत्पन्न होजाते हैं। फिर जिस तरह केकड़ेकी पीठपर नसें फूली हुई भासती हैं, उस तरह इस गुल्मकी पीठपर नसें फूली हुई प्रतीत होती हैं। यह आमाशयिक कर्कस्फोट कौड़ी प्रदेशमें प्रतीत होता है। इस रोगके साथ आमाशयमें तीक्ष्णशूल, वमन, बार-बार काफी सदृश वमन और शीर्णता (Carcinoma) आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

अर्बुदप्रकार—मुख्य २ प्रकार। १. बाह्य पटलीय और अन्तःपटलीय (Epiblastic and Hypoblastic.) २. मध्यपटलीय (संयोजक तन्तुओंसे उत्पन्न) बाह्य और अन्तःपटलीय घातक अर्बुदोंमें अनेक प्रकारके कर्कस्फोट और मध्यपटलीय घातक अर्बुदोंमें नाना प्रकारके दुष्टार्बुद (Sarcoma) हैं।

पुरुषोंको अन्य स्थानोंके कर्कस्फोटकी अपेक्षा आमाशयका कर्कस्फोट अत्यधिक स्त्रियोंको गर्भाशय और छातीकी अपेक्षा कम। अनुपात २ या ३ पुरुष और १ स्त्री। आयु विशेषतः ४० से ६० वर्षके भीतर। क्वचित् ३० वर्षसे भी कम आयुमें।

कर्कस्फोटमें मृत अणुओं (कीटाणुओं) की संख्या तीव्र वेगपूर्वक अमर्यादित बढ़ती रहती है। ये अणु रक्ताणु और लसीकाणुओंपर सवारी करनेवाले, स्वच्छन्दी, इतर-इतर यंत्रोंमें गमन करनेवाले और जहाँ जाँय वहाँपर रोगोत्पत्तिके लिये समर्थ माने गये हैं। देहमें इतना घातक तत्त्व क्यों उत्पन्न होता है? इस बातका निर्णय अभी तक नहीं हुआ।

इस कर्कस्फोटमें आवरण कला (Epithelium) के कोषाणु विकृत स्वरूप धारण करते हैं और इसके साथ संयोजक तन्तु (Connective tissue) के कोषाणुओंमें भी विकृति होने लगती है। कर्कस्फोटमें छोटे-छोटे छिद्र रहते हैं, उनमें आवरणकलाके कोषाणु रहते हैं। इन छिद्रोंका लसीकावाहिनियोंके साथ संगम होता है। फिर इसी मार्गद्वारा कर्कस्फोटके कीटाणु अति वेगपूर्वक इतर-इतर स्थानोंमें गमन करते रहते हैं। यदि स्तन या वृषण स्थानमें इस व्याधिकी उत्पत्ति हुई हो, तो अति शीघ्रतासे इतर अवयवोंको दूषित बना देते हैं।

कर्कस्फोटके कीटाणु जिस स्थानमें उत्पन्न हुए हैं, उस स्थानके कोषाणुओंका अनेकांशमें साम्य होता है। यह साम्य जितना कम हो, उतना ही कर्कस्फोट घातक

माना जाता है। कर्कस्फोटके कीटाणु संक्रामक नहीं हैं, किन्तु जिस देहमें उत्पन्न होते हैं, उसीको तो नष्टकर डालते हैं।

कर्कस्फोट प्रकार—उदरगुहाके कर्कस्फोटोंमें मुख्य ४ प्रकार हैं।

१. दृढ़—(Scirrhous or hard Cancer).
२. मृदु—(Encephaloid, Medullary or Soft Cancer.)
३. पिच्छिल—(Colloid Cancer).
४. स्तंभाकार घटकमय—(Columnar Celled Adenocarcinoma).

दृढ़ कर्कस्फोट—कठिन श्वेताभ छिलकेमें थोड़े रसवाला चारों ओर कोमल सौत्रिकतन्तु निर्माणयुक्त होजाता है। क्षतग्रस्त होनेपर सामान्यतः गम्भीर और असम बन जाता है। क्षतकी धारा नष्ट होजाती है और वह ऊँची, कठिन और स्थूल सीमासे वेष्टित होता है।

(२) मृदु कर्कस्फोट—कोमल, धूसराभश्वेत, निर्माण असम होता है। लसीकाग्रन्थियाँ क्रमशः आक्रान्त। अधिक रसदार रक्तसंचालन अधिक परिमाणमें। शीघ्र वृद्धि होनेसे समीपस्थ अवयव सत्वर प्रभावित। प्रारम्भ होनेपर क्षत जल्दी विस्तृत और उसमेंसे अधिक मात्रामें रक्तस्राव। इसे आशुकारी (Acute carcinoma) कर्कस्फोटभी कहते हैं।

(३) पिच्छिल कर्कस्फोट—कठिन, मृदु कर्कस्फोटका अपक्रान्त स्वरूप। इसकी सम्प्राप्ति होनेपर कर्कस्फोटके भीतर स्वच्छ गोंद या सरेस (Gelatine) के सदृश चिपचिपा पदार्थ रहता है।

(४) स्तम्भाकार घटकमय कर्कस्फोट—बड़े पिण्ड और मध्यम दृढ़तावाला, फूला हुआ। सामान्यतः क्षत नहीं होता। अणुवीक्षणसे किनारेपर क्षतकी प्रतीति कभी-कभी पिच्छिल अपक्रान्ति। गौणवृद्धि करानेका स्वभाव। नूतन अर्बुदग्रन्थियाँ, यकृत्, फुफ्फुस और अस्थियोंपर।

गौण कर्कस्फोट—अति सामान्य। ऐसा होनेपर ८०%की मृत्यु।

शरीर विकृति—कर्कस्फोट विशेषतः मुद्रिका द्वारपर होता है। इसकी दीवार मोटी, मुख आकुंचित, मुद्राकपाटिका ग्रहणीमें मुड़ी हुई। ग्रहणी स्थान कभी पीड़ित नहीं होता। सामान्यतः सौत्रिक तन्तुओंकी उत्पत्ति, मुद्राद्वारका अवरोध, ये लक्षण होते हैं।

आँखोंसे देखनेपर क्षतकी खुरदरी सतह, किनारे कठोर, अनियमित बाहर मुड़े हुए, दीवार संलग्न और मोटी। पिण्ड उभरे हुए, कठोर और मुलायम क्षेत्र युक्त। फैलाव उपश्लेष्म कलामें। सतहपर अर्ध पारदर्शक ग्रन्थकी प्रतीति। मांस-पेशीकी वृद्धि, लगभग आध इञ्च मोटी; लसीका मार्गसे विस्तार।

निदान—कारण अज्ञात। आमाशयरसमें लवणाम्लका अभाव और चिरकारी

शोषमय आमाशयप्रदाह, ये सहायक कारण माने जाते हैं। आमाशयिक व्रण, अम्लपित्त, उपदंशज विषप्रकोप होनेपर भी आहार-विहारमें स्वच्छन्दीपन और अति मद्यपान आदि आमाशय प्रकोपक हेतु हैं। अति चिन्ता, दूषित आहार सेवन दुर्भावना आदि भी इस रोगमें सहायक बन जाते हैं।

आक्रमण—गुप्त किन्तु तेज़ीसे। पूर्वरूपमें आमाशयिक लक्षण कम, कभी विलक्षण अजीर्ण, आमाशयमें प्राथमिक वेदनारूप शिकायत, अपचन, वमन होते रहना, वज़नका ह्रास। लक्षणों की वृद्धि तेज़ीसे बीचमें विराम नहीं होता।

आमाशयके लक्षण—

अरुचि—मांस खानेपर अरुचि, उदरमें वायु रहना।

वेदना—प्रारम्भिक लक्षण, विशेषतः कौड़ीप्रदेशमें। किरण कंधे या पीठकी ओर भोजन करनेपर अधिक, दबानेपर वेदना वृद्धि, वमन होनेपर वेदनामें कुछ ह्रास, आमाशयिकक्षत की अपेक्षा कम खिचाव।

हृल्लास और वमन—आक्रमणके समय, कभी वमन थोड़े-थोड़े समयपर। हार्दिक द्वारपर कर्कस्फोट होनेपर भोजनके थोड़ेही समयके बाद वमन। मुद्रिका द्वार-पर होनेपर वमन कुछ अन्तरपर। आमाशय देहपर कर्कस्फोट हो, तो वमनका अभाव। प्राथमिक अवस्थामें वमन होनेपर शान्ति, जीर्णावस्थामें कम शान्ति हृल्लास बना रहना। वमन प्रायः मलिन, पिसी हुई कॉफी सदृश, रक्तमिश्रित, दुर्गन्धमय डकारसह अफारा।

वज़नका ह्रास—क्रमशः वृद्धि। कारण-रोग वृद्धि, कम आहार, वमन होते रहना, आमाशय रस अयोग्य। साथ-साथ बलका भी ह्रास।

शीर्णता और पाण्डुता—प्रायः रोगनिर्णायक। सत्वर वृद्धि।

रक्तस्राव—वमनमें रक्त आना, मलमें किञ्चित् गुप्तरक्त, कभी अभाव। आमाशयकी शिरा टूटनेपर अति रक्त वमन।

अन्यलक्षण—सामान्यतः मलावरोध, कभी अतिसार। ज्वर विविध प्रकारका। कचित् ज्वर वृद्धि। शोथ गुल्फपर और पाण्डुताके हेतुसे सर्वाङ्ग। मूत्रमें कभी शुभ्रप्रथिनकी उपस्थिति, कभी एसिटोन।

गुप्त कर्कस्फोट—लक्षण रहित कर्कस्फोट कभी-कभी शव परीक्षा करनेपर विदित।

शारीरिक चिन्ह—सब परीक्षायें अभाव सूचक।

दर्शन परीक्षा—कौड़ी प्रदेश उठा हुआ है या नहीं, यह देखें। महाधमनी का ठोका नियमित है? संचालनमें प्रतिबन्ध तो नहीं है? उपत्वचापर नाभि सदृश गाँठि, अर्बुदकी प्रतीति, श्वासोच्छ्वास क्रियासे संचलन।

स्पर्श परीक्षा—विशेषतः अर्बुद स्पर्शनीय, कठोर, गाँठदार। प्रारम्भमें देका द्वारका कर्कस्फोट, प्रायः अति संचलन शील, फिर संलग्न। हार्दिक द्वारका

अर्बुद पर्शुकासे आच्छादित पिछली ओर अर्बुद होनेपर अस्पर्शनीय, जब आमाशय स्फीत हुआ हो।

पीड़ना क्षमता—विविध प्रकारकी जीर्णावस्थामें वेदना स्थान प्रसारित होनेपर गम्भीर पीड़ा और वमन। इस तरह वह स्थान स्पर्शका प्रतिरोध करता है।

लसीकाग्रन्थियाँ—विशेषतः कण्ठ और वाम कक्षादरीमें।

रेडियोग्राफ—अर्बुदके हेतुसे अनियमितता पूरक पदार्थसे विकृतिकी प्रतीति। आमाशय मंथनकी गतिमें प्रतिबन्ध।

आमाशयमें छिद्र करना—संशयप्रद अर्बुदके निर्णयार्थ, किन्तु छेदन भयप्रद।

आमाशय रसका विश्लेषण—आमाशयके स्रावमें परिवर्त्तन, यह प्रारम्भिक चिन्ह है। मुक्तलवणाम्लके निर्णीत अभावसे वर्द्धनशील अवनतिकी अप्रतीति, यह प्रकृति निर्देशक चिन्ह है।

प्रकृति निर्देशक चिह्न

(१) हिस्टेमाइनका अन्तःक्षेपण करनेपर मुक्तलवणाम्लका अभाव। विशेष प्रकारके भोजनसे कुछ लवणाम्ल युक्त।

(२) अम्लताका ह्रास, सेन्द्रिय अम्लके हेतुसे मुक्त अम्ल (Topfer's Test द्वारा सुन्दर लालरंगकी उन्नति होनेसे) विद्यमान्, सेन्द्रिय अम्लमें सब प्रकारकी अधिक अम्लता। (३) प्रायः द्रव्य मज्जिन (४) रक्त विद्यमान्।

वक्तव्य—इस विकारमें दुग्धाम्ल और अन्य सेन्द्रिय अम्लोंकी वृद्धि होती है, किन्तु घातक पाण्डु और आमाशयमें आमाशयस्रावके अभावमें अम्लता योग सामान्यतः अति न्यून होता है।

विशेष स्थान और वृद्धि प्रकारके लक्षण—

१. मुद्रिकाद्वार—निगलनेमें कष्ट, कौड़ीप्रदेशमें वेदना, भोजन करनेपर तुरन्त वमन।

२. हार्दिक द्वार—बहुधा हार्दिक प्रतिबन्ध।

३. पिच्छिल कर्कस्फोट—सीधे फैलाव द्वारा त्वचाकी ओर गमन। बड़े पिण्डोंका निर्माण।

उपद्रव—

१. रक्तवमन—कभी घातक (सामान्यतः लैहिक धमनी आक्रान्त होने पर)

२. हार्दिक द्वारका अवरोध।

३. गौण अर्बुदोत्पत्ति।

४. कामला—पित्तनलिका पर दबाव आनेपर या यकृत्पर नूतन अर्बुद होनेपर।

५. जलोदर—प्रतिहारिणी शिरापर दबाव आनेपर।

६. भेदन—कभी उदर्य्याकलामें। फिर व्यापक उदर्य्याकलाप्रदाह या संयोजन हो, तो स्थानिक विद्रधि। कभी भेदन अन्त्रके भीतर। अति क्वचित् फुफ्फुस या फुफ्फुसावरणामें।

७. कोथ—अति क्वचित्।

८. रक्तजमाव—उत्ताना या और्वी शिरामें।

क्रम और परिणाम—वेदना प्रारम्भ होनेके २-४ मासके भीतर लक्षणोंका प्रकाशन प्रगति तेज़ीसे-शीर्णता, वेदनावृद्धि, वमनमें वृद्धि। रोगकाल—१ से १८ मास कभी-कभी २ वर्षसे भी अधिक। मृत्यु शक्तिक्षयसे, कभी संन्यास (Coma) से।

रोगविनिर्णय—चिरकारी आमाशयप्रदाह और आमाशयिक व्रणमें इस रोगके अनेक लक्षण प्रतीत होते हैं। अतः सम्हालपूर्वक रोग निर्णय करना चाहिये।

(२) ग्रहणीमें कर्कस्फोट

कार्सिनोमा ऑफ दी ड्यूओडिनम

Carcinoma of the Duodenum.

लक्षण—यह कर्कस्फोट यदि ग्रहणीके प्रारम्भिक भागपर हो, तो लक्षण बहुधा आमाशयके हार्दिकद्वारके कर्कस्फोटके सदृश-शीर्णता, पाण्डुता, स्पष्ट मंथन गतिसह आमाशयका वर्द्धनशील प्रसारण, प्रचुर वमनका आक्रमण, रक्तवमन, मलमें पित्तस्राव किन्तु वमनमें यकृत्पित्तका अभाव। द्वार सीतापर गौण अर्बुद न हो जाय, तो कामलेका अभाव।

यदि ग्रहणीके द्वितीय भागपर कर्कस्फोट हो, तो वह पित्तनलिकाके संयोग-स्थानके भीतर होता है या उसे पीड़ित करता है। परिणाममें अवरोधज कामला पित्ताशयका प्रसारण और पित्तनलिकाप्रदाह (Cholangitis)। इस हेतुसे अग्न्याशयके शिरपर या पित्तनलिकापर कर्कस्फोट, कामला, पित्तमार्गमें पूयोत्पत्ति नहीं होती।

यदि ग्रहणीके अन्तिम भागपर या पित्तनलिका संयोगस्थानके नीचे कर्कस्फोट होजाय, तो ग्रहणीके आगे मार्गका आकुंचन तथा ऊपर रही हुई ग्रहणी और आमाशयका प्रसारण। परिणाममें यकृतपित्त और अग्न्याशयके अभिषवमय वमन। यदि मार्गका आकुंचन न हो, तो यकृतपित्तमय वमन कम और हार्दिकद्वारपर सहायक कर्कस्फोटकी संप्राप्ति।

(३) यकृत्में कृमिज रसार्बुद

हाइडेटिड सिस्ट ऑफ दी लिवर—Hydatid cyst of the Liver

यह व्याधि इतर यन्त्रोंकी अपेक्षा यकृतमें अधिकतर होती है। यह बहुधा एकाकी और विशेषतः यकृत्के दक्षिण खण्डमें होती है। अर्बुद तरलसे भरा हुआ रहता है। ऊपरसे चिकना, दबानेपर लचीला। उत्पत्ति–कुत्ते, बिल्ली, भेड़ आदि पशुओंके अन्त्रमें रहनेवाले पृथुवध्न जातिके कृमि (Taenia Echinococcus) का मानवदेहमें प्रवेश होजानेपर कृमिकी लम्बाई $\frac{1}{8}$ इञ्च लगभग। इसका वर्णन प्रथम-खण्ड में किया है। यह विकार अपने देशमें बहुत कम होता है।

निदान—कुत्ता मनुष्य शरीरको कहीं चाट लेता है या कुत्तेका झूठा भोजन खानेमें आ जाता है, तब इस रोगकी उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति—टीनिया एकिनोकोकसके अन्तिम पर्वमें जननेन्द्रिय रहती है। इसमेंसे बड़ी संख्यामें अण्डे (Ova) निकलते रहते हैं। ये सब कुत्तेके मलके साथ बाहर निकलते रहते हैं। वे जल या भोजनके साथ मनुष्योंके आमाशयमें जानेपर उनपर रहे हुए आवरण आमाशय रसकी क्रियासे गल जाते हैं। फिर भ्रूण (Larva) विमुक्त होते हैं। इसमेंसे कोई एक आमाशय और अन्त्रकी दीवारोंका भेदन करके प्रतिहारिणी शिरा (Portal vein) के रक्तप्रवाहद्वारा यकृत्में पहुँच जाता है और किसी सूक्ष्म केशवाहिनीमें रुक जाता है। पश्चात् यकृत्के तन्तुके आधारसे गमन करता है। उस समय इस भ्रूणके शिरपर रहे हुए काँटे (Hooks) सब गल जाते हैं. और वह स्थान क्रमशः एक रसौली (Cyst) में परिवर्त्तित हो जाता है। फिर वह क्रमशः बढ़ता जाता है और वह स्वच्छ तरलपूर्ण बन जाता है। यह कोष श्लैष्मिक कलाके आवरणके अतिरिक्त इतर एक रक्तप्रणालीमय सौत्रिकतन्तुके स्वतन्त्र परिवेष्टक आवरण द्वारा आवृत्त होता है। यह जितना-जितना बढ़ता जाता है, उतना-उतना इसका आवरण भी बढ़ता जाता है। इस आद्य अर्बुदके भीतर इतर क्षुद्रतर रसौली उत्पन्न होती है। व प्रारम्भमें वृन्त (Root) द्वारा संयुक्त रहती हैं, फिर वियुक्त होजाती हैं। एवं इनके भीतर पुनः क्षुद्रतम कोषोंकी उत्पत्ति होजाती है। फलत: मुख्यकोष बहुसंख्यक विभिन्न आकारके कोषोंद्वारा परिपूर्ण होजाता है।

यदि आद्य अर्बुदमें उत्पन्न इतर अर्बुदका वृन्त पृथक् न हो जाय, संलग्न ही रहे और उसका शिर चूषक इन्द्रियाँ युक्त रहे, तो यह अन्त्रके मध्यमें प्रवेश करके अनेक संतति (Dog Taenia) उत्पन्नकर सकता है।

रसौलीमें स्वच्छद्रव रहता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १००४ से १०१० है। इसमें एल्ब्युमिन प्रतीत नहीं होता। क्षार (Carbonate and Chloride of Sodium) तथा क्वचित् शर्कराकी प्राप्ति होती है। इस रसको बाहर निकाल परीक्षा करनेपर उसमेंसे कृमि एकिनोकॉकस मिलते हैं।

लक्षण—यह अर्बुद धीरे-धीरे फुफ्फुसावरणकी ओर या नीचे बढ़ता जाता है। वृद्धि अनियमित और अपम पूयोत्पत्ति न हुई, तो इतर अर्बुदके सदृश बृहदाकार होनेपर भी किसीभी प्रकारकी वेदना नहीं होती। फूट जाय, तब तक प्रायः कुछभी लक्षण प्रकाशित नहीं होते।

कभी-कभी इस अर्बुदद्वारा कौड़ी प्रदेश (Epigastric) में गोलाकार ग्रन्थि होती है। क्वचित् यह दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेशमें पर्शुका और पर्शुकामध्य प्रदेश, सब को दूर हटाकर बढ़ता है। कभी यह रसौली उठी हुई पर्शुका (Costal Arch) के नीचे होती है। एवं किसी-किसी स्थानपर यह यकृत्के दक्षिण खण्डके ऊर्ध्व प्रदेशमें रहकर बढ़ता है। और फुफ्फुस और फुफ्फुसावरण को ऊर्ध्व धकेल देती है।

यदि यह द्रवमय कोष यकृत्के बाह्य प्रदेशमें स्थित है, तो चिकना, गोलाकार और कठिन शोथद्वारा दर्शनसे तथा ठेपन करनेपर तरंग उत्पत्तिसे रोगविनिर्णय होजाता है। यदि यह कोष बृहदाकारका होजाता है, तो यकृत्पर बोझा-सा लगता है; एवं कभी-कभी वेदनाभी होती है। यह अर्बुद बड़ा होनेपर सामान्यतः उदरमें भारीपन मालूम पड़ता है। आमाशय दबनेपर उबाक आती रहती है और अपचन रहता है। यदि ऊपरकी ओर बढ़नेसे फुफ्फुस दबता है, तो श्वास लेनेमें कष्ट होता है। इस तरह जिस यन्त्रपर दबाव आवे, उस यन्त्रपर भार चिन्ह (Pressure Symptoms) प्रकाशित होते हैं। प्रतिहारिणी शिरापर दबाव पड़नेपर जलोदर और अधरा महाशिरापर दबाव पड़नेपर शोथ होजाता है। बहुधा अधरा महाशिरापर दबाव नहीं आता।

यदि इसमें रहा हुआ द्रव नष्ट होजाता है, तो कोषका आकारभी कम हो जाता है। कोषका आवरण (Capsule) स्थूल, कुञ्चित् और चूर्ण सदृश पदार्थमें रूपान्तरित होजाता है। और द्रवांश शुष्कपिण्डाकार होकर रोग स्वतः निवृत्त होजाता है और सामान्यतः शीतपित्तकी प्राप्ति होती है।

यदि अर्बुदमें पूयोत्पत्ति होजाती है, तो १०० से १०५ डिग्रीतक ज्वर, कम्प, शीत, अति प्रस्वेद आना, शीर्णता, मृदु प्रलाप, क्वचित् संन्यास (Coma) और कामला आदि लक्षणयुक्त पूयज ज्वर (Pyaemia) उपस्थित होता है। अर्बुदका स्थान उष्ण रक्तमय होना, उस स्थानमें पूय बने तब तक शूल चुभोने सदृश वेदना होना तथा पीड़नाक्षमता (दबानेपर अधिक पीड़ा होना) युक्त भासता है। रक्त परीक्षा करनेपर रक्तमें श्वेत जीवाणुओंमेंसे वर्णोच्छुओं (इओसिनोफिल) सेल्स-(Eosinophil cells) की वृद्धि होजाती है।

रोग निर्णायक विशेष लक्षण—(१) मेदमय यकृत्, मोमवत् यकृत् और यकृत्के वेदना विहीन रोगोंमें यकृत्के चारों ओर सामान्य वृद्धि होती है; किन्तु कृमिज रसार्बुदमें यकृत् वृद्धि बिना वेदना, एकही दिशामें—ऊर्ध्व, अधो या पार्श्व-भागकी ओर होती है।

(२) रसार्बुद की अधिक वृद्धि होनेपर समीपस्थ यन्त्र, फुफ्फुस, हृदय, निम्न पर्शुका आदिमेंसे जो हो, उसे वह दूर हटा देता है।

(३) ठेपन परीक्षा करनेपर द्रवमय तरंग (Fluctuation) की अनुभूति होती है। एवं रसार्बुद बड़ा होनेपर ठेपनसह ध्वनिवाहक यन्त्रसे सुननेपर विशेष प्रकारकी कम्पन (Hydatid Thrill) सुनी जाती है।

(४) श्वासोच्छ्वाससे यकृत्के साथ रसार्बुद का संचलन होता है।

उपद्रव—क्वचित् यह कृमिज कोष फूट जानेपर द्रव बाहर या समीपस्थ यन्त्रोंमें प्रवेश कर जाता है। यदि द्रव उदर्य्याकलामें चला जाता है, तो सत्वर घातक उदर्य्या-कला प्रदाहकी उत्पत्ति करा देता है। यदि यह द्रव हृदयावरण (Peri-Cardium) अथवा महाशिरा (Vena Cava) में प्रवेशकर जाता है, तो थोड़ेही समयमें

रोगीकी मृत्यु होजाती है। यदि यह द्रव पित्तनलिकामें प्रवेशकर जाता है, तो घातक कामलाकी उत्पत्ति होकर मृत्यु होजाती है। क्वचित् यह द्रव आमाशय, बृहद्दन्त्र, फुफ्फुसावरण या श्वासनलिकाओं (Bronchi) में प्रवेशकर जाता है। श्वासनलिकामें द्रवका प्रवेश होनेपर फुफ्फुसकोथ या कभी श्वासावरोध होकर मृत्यु होजाती है, और कभी रोगी बचभी जाता है। ये सब प्रकारके उपद्रव मारक माने गये हैं। अर्बुद किसीभी स्थानपर फूटनेपर मानसिक आघातके लक्षण प्रतीत होते हैं; और रोगीके जीवनको संदेहमें डाल देते हैं।

साध्यासाध्यता—इस अर्बुदका कृमि जीवनीय शक्तिके बलसे मर जाता है, तो रोगी अच्छा होजाता है। अन्यथा रोग बढ़कर फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण, आमाशय, अन्त्र या अन्त्रावरणमें फूटता है। फिर विषप्रयोग सदृश बल-क्षय और वमन लक्षण उपस्थित होते हैं। उदर्य्याकला या फुफ्फुसावरणमें अर्बुद फूटनेपर प्रदाह होकर मृत्यु होजाती है।

पूयभवन होता है, तो फूटनेपर यकृद्विद्रधि सदृश फुफ्फुस, आमाशय आदि समीप-के स्थानको दूषित कर देता है, और रोग यकृद्विद्रधि सदृश कष्टसाध्य बन जाता है।

अन्यस्थानोंके रसार्बुद—यकृत्के अतिरिक्त फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण, वृक्क, मस्तिष्क और हृदयपर भी रसार्बुदकी उत्पत्ति हो सकती है।

चिकित्सा— इस रोगके लिये औषध चिकित्सा नहीं है। शस्त्र द्वारा स्थली सम्हालपूर्वक निकाल दी जाती है। यदि पूयोत्पत्ति होगई हो, तो विद्रधिके समान उपचार करना चाहिये।

(४) गर्भाशयस्थगुल्म

ट्यूमर्स ऑफ दी युटेरस—Tumours of the uterus)

प्रकार—अ. तन्तुमय (Fibroid), आ. श्लैष्मिक कला सदृश मांसार्बुद (Endometrioma), इ. वृन्तमय अर्बुद (Polypus) और ई. कर्कस्फोट (Cancer)

अ. तान्तव अर्बुद

फ़ाइब्रोइड ट्यूमर्स—(Fibroid Tumours)

इस अर्बुद की रचना दो प्रकारके तन्तुओंसे होती है।

१. मांस तन्तु। २. सौत्रिकतन्तु। निर्धन स्त्रियाँ, जो गंदे अंधकारमय मकानों में रहती हैं, उनमेंसे ४०% को ५० वर्षसे बड़ी आयुमें होजाता है। यह अर्बुद मटर से बड़ा न हो, तो बहुधा किसीभी प्रकारकी वेदनाका अनुभव नहीं होता। यह गर्भाशय-की परीक्षा या शव परीक्षा करनेपर प्रतीत होता है। इसके विपरीत वृद्धि और भीतरके स्थानका परिवर्तन होता है, तो प्रायः रुग्णाकी मृत्यु होजाती है।

इस अर्बुदजन्य पीड़ाका आरम्भ ३० से ४० वर्षकी आयुके भीतर होता है। ये अर्बुद एककी अपेक्षा बहुसंख्य मिले हुए अधिकतर होते हैं।

स्थानभेद से प्रकार—१. उदर्य्याकलाके निम्नस्थ वृन्तमय, २. उदर्य्याकलाके निम्नस्थ, ३. गर्भाशयभित्तिकान्तर, ४. श्लैष्मिक कलानिम्नस्थ, ५ श्लैष्मिककला-निम्नस्थ वृन्तमय उदर्य्याकलाके निम्नस्थवृन्तमय अर्बुदका वृन्तगर्भाशयके ऊपर लगा रहता है; शेषभाग उदरगुहामें रहता है। उदर्य्याकलाके निम्नस्थ अर्बुद गर्भाशयकी सतहमें बढ़ता है और उदर्य्याकलाके नीचे रहता है। गर्भाशयभित्तिकान्तर अर्बुद दीवारके भीतर रहता है, बाहर या भीतर नहीं निकलता। श्लैष्मिककला निम्नस्थ अर्बुद गर्भाशय गुहाके भीतर बढ़ता है। इसकी जीर्णावस्था होनेपर इसीसे वृन्तमय पंचमप्रकारका अर्बुद बन जाता है, वह गर्भाशयमें बाहर निकल आता है।

लक्षण—अत्यार्तव (Menorrhagia), गर्भाशयसे असामयिक रक्तस्राव (Metrorrhagia), श्वेतस्राव (प्रदर-Leucorrhoea), कष्टार्तव (Dysme-norrhoea), वन्ध्यत्व (Sterility) आदि।

यदि अर्बुद गलनात्मक या रसार्बुद या घातक अथवा रक्त अपक्रान्तिमय बनता है, तो असामयिक रक्तस्राव (Metrorrhagia) होता रहता है।

दबावजन्यलक्षण—स्थान भेद और वृद्धिभेदसे लक्षणमें भेद होजाता है। कभी मूत्राशय और कभी मूत्रप्रसेकपर अधिक दबाव। मूत्राशयकण्ठपर दबावआनेपर बहुमूत्र अर्थात् बार-बार लघुशंकाकी इच्छा होती है। मूत्रप्रसेकपर दबाव आनेपर मूत्रावरोध। कभी गवीनीपर और कभी वृक्कके पिछली ओर दबाव। वृक्कपर दबाव पड़नेपर वृक्कसंन्यास (रक्तमें मूत्रविषवृद्धि (Uraemia) होकर मृत्यु होजाती है। अन्त्रपर दबाव आनेसे अन्त्रक्रियामें प्रतिबंध होता है। कभी अन्त्रमें क्षत या अन्त्रकाविदारण होकर घातक उदर्य्याकलाप्रदाहकी प्राप्ति होजाती है। शिरापर दबाव आनेपर अर्श या पैरोंपर शोथ या शिरामें रक्तजमाव होजाता है। वातवाहिनीपर दबाव आनेसे वातशूल (Neuralgia), पीठ और कमरमें पीड़ा या गृध्रसी होजाती है।

अर्बुद (गुल्म) की कभी १०० पौण्डसे भी अधिकवृद्धि होनेके उदाहरणभी मिले हैं। इसके परिमाणमें महाप्राचीरापर दबाव आता है। जो हृदय और फुफ्फु-सकी क्रियामें भी विकृति कराता है। आमाशयपर दबाव आनेपर अपचन बना रहता है।

अर्बुद गलनात्मक बननेपर अतिभयप्रद परिणाम लाता है, अनेकोंकी मृत्यु होजाती है। जब ठोस अर्बुदका परिवर्त्तन होकर रसार्बुद होजाता है, तब गर्भकी भ्रान्ति कराता है।

घातक अर्बुद हो, तो उसकी वृद्धि अति तेज़ीसे होती है। अतिरक्तस्राव, अति पीड़ा और अति कृशता लाता है। रक्त अपक्रान्ति प्रायः सगर्भावस्थामें होती है, जो प्रसवके समय या प्रसवके बाद कष्ट पहुँचाती है। रुग्णाको वेदना, पीडनाक्षमता और ज्वरआदि लक्षणोंकी प्रतीति होती है।

कभी अर्बुदका दबाव सगर्भावस्थामें गर्भाशयपर पड़ता है, तब अतिकष्टकर वमन होती है और किसीके मूत्रमें लसीकास्राव (Albuminuria) होता है। अर्बुदके हेतुसे अकस्मात् रक्तस्राव (गर्भस्राव) भी होजाता है।

(आ.) श्लैष्मिककला सदृश मांसार्बुद

यह नलिकाकार गोल होता है और संयोजकतन्तुसे बनता है। यह गम्भीर कष्टार्तवकी प्राप्ति कराता है। गर्भाशयकी नियमित वृद्धि। यह कभी-कभी गर्भाशयके पासमें बीजाशय, बीजस्रोत, श्रोणिगुहावरण, गुदभगान्तपट (Recto-Vaginal septum), नाभि और उदरकी दीवार आदि स्थानोंपर होजाता है।

लक्षण—सौत्रिक तन्तुमय अर्बुदके समान। मासिक धर्म अति अनियमित समयपर, गंभीर कष्टार्तव। गर्भाशयकी वृद्धि, किन्तु नियमित। सौत्रिक तन्तुओंके गुल्ममें जिस तरह अनियमित वृद्धि होती है, उस तरह इस प्रकारमें नहीं होती।

(इ.) वृन्तमय अर्बुद

वृन्तमयमें ३ प्रकार हैं। तन्तुमय और श्लैष्मिक और जरायुज। इनमेंसे तन्तुमयका वर्णन पहले किया गया है।

श्लैष्मिक वृन्तमय अर्बुद—यह एक या अधिक होते हैं, ये गर्भाशय कण्ठ या गर्भाशयदेहकी श्लैष्मिक कलामेंसे बनता है। गर्भाशय गुहाकी श्लैष्मिक कलाकी मोटाईके अनुरूप वृद्धि होती है। यद्यपि वृन्तका सम्बन्ध थोड़े भागसे होता है, तथापि यह दूसरी जातिकी अपेक्षा अधिक स्थान रोक लेता है।

जरायुज वृन्तार्बुद—जरायुके मुख्यभाग और श्लैष्मिककलाके भागके पश्चात् यदि गर्भाशयके भीतर जरायुका कुछ अंश शेष रह जाता है, तब दो प्रकारका परिणाम आ सकता है। १. कीटाणुओंके विषप्रकोपसे जरायुकी मृत्यु; २. जरायुअंश गर्भाशय दीवारसे संलग्न होजाना, संलग्न, होनेपर उसकी मृत्यु नहीं होती, बल्कि पोषण होता है। उसमें सौत्रिकतन्तु उत्पन्न होते हैं, फिर वृन्तमय अर्बुद बन जाता है।

लक्षण—१. अनियमित आर्तव; २. असामयिक रक्तस्राव; ३. अन्तर्भगसे स्राव (प्रदर), जो कतिपय रुग्णाओंमें अति दुर्गन्धमय होता है; ४. कष्टार्तव। इन लक्षणोंका आरम्भ गर्भपात या प्रसवसे होता है।

(ई.) गर्भाशयका कर्कस्फोट

केन्सर ऑफ दी यूटेरस—Cancer of the uterus.

कर्कस्फोट प्रारम्भमें गर्भाशयदेह या गर्भाशयकी ग्रीवापर उपस्थित होता है। गर्भाशयदेहके कर्कस्फोटवाली रुग्णाओंकी आयु ४० से ६० वर्षके भीतर। इनमेंसे अनेक वंध्या होती हैं। गर्भाशय ग्रीवापरके कर्कस्फोटवाली रुग्णाओंमेंसे अधिकांश एक या अधिक संतानकी माता होती है।

निदान—यह रोग वंशागत नहीं है, तथापि एक ही कुटुम्बकी एकाधिक स्त्रियाँ इस रोगसे पीड़ित होजाती हैं। मुख्य कारण अज्ञात। हुक्का या चिलम आदि धूम्रपान, हाथोंसे कोल्टारका काम करते रहना, ऑयल इञ्जिनोंके पास कार्य करना

या अन्य कारणोंसे गर्भाशयमें उत्तेजना पहुँचना। कभी अति मलावरोधसे अति उत्तेजना पहुँचना, ये सब सहायक कारण माने जाते हैं।

लक्षण और चिह्न—रक्तस्राव, श्वेतप्रदर, वेदना, शीर्णता।

रक्तस्राव—यह प्रारम्भिक लक्षण है। प्रारम्भमें श्वेतप्रदर दुर्गन्धमय नहीं होता। जीर्णावस्थामें क्षत, गलनात्मक वृद्धि और अति दुर्गन्धमयस्राव। बहुधा दुर्भाग्यसे रुग्णा, दुर्गन्धमय स्राव बढ़ जानेपर दूसरोंकी सलाह लेती है, जब किसीभी प्रकारकी चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

वेदना—जीर्णावस्थामें असह्य।

शीर्णता—देह शोष दर्शाती है। क्षुधानाश और थकावट आदि। इस शीर्णता-से ही मृत्यु होजाती है।

इस रोगकी वृद्धि ऊपर, नीचे, पीछे, बाहर जिस ओर सुविधा मिले उस ओर होजाती है।

(५) बीजाशय के अर्बुद

Ovarian Tumours.

प्रकार—अ. रसार्बुद और आ. घनार्बुद। इनमें ९५ प्रतिशत रसार्बुद होते हैं।

अ. रसार्बुद

सिस्टिक ओवेरियन ट्यूमर्स—Cystic Ovarian Tumours.

प्रकार—१. लघुस्फोटमय (Follicular); २. ग्रन्थिमय (Glandular); ३. श्लैष्मिक कलामय (Endometrial); ४. गर्भद्रव्यमय (Embryonal) और ५. पिटिकामय (Papillomatous), ये सब संज्ञा आकृति भेदसे पृथक्-पृथक् दी हैं। ये अर्बुद सौम्य या घातक होते हैं। एवं एक ओर या दोनों ओर होते हैं।

१-लघुस्फोटमय रसार्बुद—इसका उत्पादन ग्राफियन स्फोटों (Graafian follicles) या बीजकिणपुट (Corpora Lutea) मेंसे होता है।

२-ग्रन्थिमय रसार्बुद—यह रचनादृष्टिसे अधिकपूर्ण है। यह एक कोषीय या बहुकोषीय होते हैं। ग्रन्थियोंके बीच दीवार रहती है। सब खण्डोंमें रस रहता है। वह गाढ़ा श्लैष्म जैसा चिपचिपा होता है। उसका रंग यदि रक्तस्राव या प्रदाहके हेतुसे परिवर्त्तन न हो, तो हरिताभ होता है। पूय होजानेपर पीला, रक्त मिलनेपर रक्त या चॉकलेट या काला। अन्तमें अर्बुदोंमें कतिपय घातक होते हैं।

३-श्लैष्मिक कलामय रसार्बुद—यह लघुस्फोटमय प्रकारका स्थानान्तर प्रकार है। यह बड़े नहीं होते। मासिक धर्मके रक्तमेंसे द्रव इसे मिल जाता है। इसमें स्वच्छवर्ण और तृणवत्वर्णका द्रव रहता है।

४-गर्भद्रव्यमय रसार्बुद—इस चर्मविशिष्ट पदार्थमय रसार्बुद (Dermoid Cyst) भी कहते हैं। इस अर्बुदके भीतर गर्भद्रव्य दान्त, केश, वातवाहिनियाँ, कुर्च्चास्थि

(Tarsal bones), श्लैष्मिककला और त्वचा आदिके उत्पादक द्रव्योंका निर्माण होता है। इसपर बाल होते हैं। कभी-कभी बालोंकी लम्बाई प्रायः छोटी होती है। कभी कई फीट लम्बे बालभी प्रतीत होते हैं। बालोंका रंग धूसर होता है। द्रववसामय होता है।

५-पिटिकामय रसार्बुद—यह सामान्यतः युवावस्थामें प्रवेश करनेके समय उपस्थित होता है, किन्तु कितनेक समय ८-१० वर्षकी लड़कियोंमें भी मिल जाता है। ये पिटिकायें पहले त्वचापर होनेवाले मस्से जैसी होती हैं। उसमें प्रदाह होकर रक्तस्राव होने लगता है। यह स्राव उदरगुहामें संगृहीत होता है।

इसमें सामान्य और घातक, ऐसे २ प्रकार हैं। घातक प्रकारको शस्त्र चिकित्सा-द्वारा निकाल देनेपर भी मूलनाश नहीं होता। एक स्थानसे हटानेपर दूसरे स्थानपर उपस्थित होजाता है।

लक्षण और चिह्न—उदरवृद्धि रसार्बुदके परिमाणके अनुरूप नष्टार्तव (Amenorrhoea), जब दोनों बीजाशय रसार्बुदसे नष्ट होजाय तब दबाव (मूत्राशय या गुदनलिकापर), बहुमूत्र, मलावरोध या अर्श। आमाशयपर दबाव आनेपर अपचन, महाप्राचीरा पीड़ित होनेपर हृदय और फुफ्फुस कार्यमें विकृति आदि रोग बढ़ने-पर पूयोत्पत्ति होकर रुग्णाकी मृत्यु।

फूट जानेपर लक्षण—दबाव बढ़ने या आघात होनेपर रसार्बुद फूट जाता है। तब उदरगुहामें अकस्मात् वेदना, उदर स्फीति, भीतरमें रक्तस्राव आदि लक्षण तत्काल उत्पन्न होते हैं। फिर उदर्य्याकलाप्रदाह आदि उपद्रव होते हैं।

सरगोमिन्स बेर्केलीने एक रुग्णाका उदाहरण लिखा है। जिसने १६ वर्षमें बीजाशयमेंसे ८० समय वेधन (Tapping) क्रियाद्वारा रसका आकर्षण कराया। सब मिलकर ६६३१ पिण्ट (१७० पीपे) हुआ। अन्तिम समयमें मृत्युके पहले भी ३॥ पिण्ट प्रतिदिन द्रव निकाला जाता था।

लक्षण-चिह्न—अति उदरपीड़ा, ज्वर, तेजनाड़ी, उदरस्फीति, वृन्तके मुड़जाने-पर विविध लक्षणोंकी उत्पत्ति, पुनः-पुनः तीव्र उदरपीड़ा, वमन आदि। भीतरमें रक्तवाहिनी टूटनेपर रक्तस्राव। अनेकोंको १-२ दिनके भीतर प्रदाह।

आ. बीजाशयका घनार्बुद

सोलिड ओवरियन ट्यूमर्स—Solid Ovarian Tumours.

ये अर्बुद एक पार्श्वमें या उभय पार्श्वोंमें होजाते हैं। इसमें सौम्य और घातक २ प्रकार हैं। विशेषतम सौम्य होते हैं। इन घन अर्बुदोंमें गर्भकी भ्रान्ति नहीं होती।

लक्षण—प्रथमावस्थामें अधिक कष्ट नहीं देता। घातक प्रकार कुछ समयके पश्चात् अकस्मात सार्वाङ्गिक स्वास्थ्यको हानि पहुँचाना प्रारम्भकर देता है।

कभी-कभी गर्भाशयके तन्तुमय अर्बुद होनेकी भ्रान्ति होजाती है। किन्तु जलोदरकी उपस्थितिसे निर्णय होजाता है। गर्भाशयके अर्बुदोंका सम्बन्ध जलोदरसे नहीं है।

गुल्म चिकित्सोपयोगी सूचना

सब प्रकारके नूतन गुल्मोंकी चिकित्साके प्रारम्भमें वायुको ही जीतना चाहिये। वात शमन होनेपर इतर दोष सरलतासे दूर होजाते हैं। गुल्म जीर्ण होगया हो, तो शस्त्रक्रियाका आश्रय लेना चाहिये। रोग अति जीर्ण होजानेपर (शारीरिक शक्तिका ह्रास होजानेपर) शस्त्रक्रियाभी निर्भय नहीं मानी जाती।

लघु अन्न, दीपन, स्निग्ध, उष्ण और वायुको अनुलोमन करानेवाले पौष्टिक पदार्थ सब प्रकारके गुल्म रोगमें हितकारक हैं। उदर रोगमें कहे हुए घृत, लवण, वस्ति क्रिया आदिका उपयोगभी किया जाता है।

नाभिसे ऊर्ध्व (आमाशयस्थ) गुल्मोंमें स्नेहपान कराना, पक्वाशयगत गुल्ममें बस्ति देना तथा जठराश्रित गुल्ममें स्नेहपान और बस्ति कराना, ये लाभदायक हैं।

स्नेहन और स्वेदन गुल्म रोगमें अधिक हितकर हैं। कारण, स्वेदनसे स्रोतोंकी शुद्धि होती है, प्रकुपित वायु शान्त होकर अनुलोम होती है और मलका विबंध दूर होकर गुल्म नष्ट होता है।

कुम्भी स्वेद (घड़ा, बोतल या रबरकी थैलीमें क्वाथ भरके स्वेद देना), पिण्ड स्वेद (तिलमिश्रित भातको कपड़ेमें बाँधकर सेकना या उबाले हुए उड़द आदि अन्न या तिलकी पिण्डी बाँधकर स्वेद देना, इष्टिका स्वेद) ईटोंको गरमकर एरण्ड मूल या इतर वातनाशक क्वाथोंके छींटे देकर या क्वाथोंमें डुबोकर सेक करना), या शाल्वणादि गणकी औषधियोंसे उपनाह सेक करना, ये सब हितकारक हैं।

वातहर औषधियोंको काँजी, मट्ठा आदि अम्लरस, दूध या मांस रसके साथ पीसें। फिर उसके साथ घी, नमक, ग्राम्य पशुओंका मांस, जीवनीय गणकी औषधि, दही, काँजी, दूध और वीरतर्वादिगणकी औषधियाँ मिला गरमकर आध घण्टेतक सहता-सहता सेक करें। पश्चात् लेपकर वस्त्रसे बाँध दें अथवा कुलथी, उड़द, गेहूँ, अलसी, तिल, सरसों, सौंफ, देवदारु, निर्गुण्डीके पत्ते, कलौंजी, ज़ीरा, एरण्डमूल, रास्नामूल, मूली, सुहिंजनेकी छाल, अजमोद, पीपल, वनतुलसी, नमक, खट्टे बेर, प्रसारणी, असगन्ध, खरैंटी, दशमूल, गिलोय और कौंचके बीज, इनमेंसे जो-जो वस्तुएँ मिल जायँ, उनको मिला, पीस औटा वस्त्रपर फैलाकर सहता-सहता बाँध दें या फिर ऊपरभी स्वेद देवें। यह सम्पूर्ण वात व्याधियोंके शमनके लिये हितकर है।

गेहूँका आटा या अलसी आदिकी गुनगुनी पुल्टिस बाँधनेको उपनाह सेक कहते हैं। जब गुल्मका पाक होने लगे, इसका उपयोग किया जाता है।

गुल्म रोगमें उदर अति दुर्विरेच्य होजाता है, अर्थात् कोठा सख्त होजाता है। इसलिये स्नेहन, स्वेदन आदिके पश्चात् एरण्ड तैल आदि औषधियोंकी अधिक मात्रा देकर विरेचन करावें।

वातज गुल्म—इस गुल्ममें स्नेहन और स्वेदनके पश्चात् विरेचन (एरण्ड तैल दूधके साथ) देवें। अलावा निरूहण और अनुवासन बस्तिभी हितावह है।

वातज गुल्ममें यदि कफ वृद्धि हो गई है और शारीरिक बल है, तो सम्हालपूर्वक वमन कराना हितकारक है। यद्यपि शास्त्राचार्योंने गुल्म रोगमें वमन करानेका निषेध किया है, तथापि अवस्था विशेषमें अपवाद रूपसे वमन कराया जाता है।

वातज गुल्ममें यदि पित्त प्रकुपित हो जाय, तो विरेचन देकर दूर करें और दोषनाशक औषधियोंसे गुल्मका शमन न होता हो, तो उस स्थानके रक्तको निकालनेका प्रयत्न करना चाहिये।

पैत्तिक गुल्म—इस गुल्ममें काकोल्यादि गणसे सिद्ध घृत, वासा घृत या कुष्ठचिकित्सा- कथित महातिक्तक घृतका पानकरा फिर विरेचन देना चाहिये। बिना स्नेह-पान विरेचन नहीं कराना चाहिये। विरेचनार्थ निसोतका चूर्ण त्रिफला क्वाथके साथ दें या मधुर द्रव्य युक्त जुलाब या मुनक्काके साथ हरड़ आदिका विरेचन देवें। पश्चात् निरूह और अनुवासन बस्ति करानी चाहिये।

यदि पित्तज गुल्ममें दाह, शूल, वायुका क्षोभ, निद्रानाश, अरुचि और ज्वर आदि लक्षण हों, तो पच्यमान अवस्था मान पुल्टिस बाँधकर पकाना चाहिये। फिर पकनेपर व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये। यदि पित्तज गुल्ममें तीव्र शूल चलता हो, तो शूल-स्थानपर धातु-पात्र रख उसमें बर्फ भरें। १५–२० मिनट तक पात्र रक्खा रहनेसे शूल शमन होजाता है।

यदि गुल्म पककर स्वयमेव ऊपर या नीचेसे दोष निकलकर मूल स्थितिको प्राप्त होजाता है, तो १२ दिनतक इतर उपद्रवोंसे रक्षा करता हुआ उपेक्षा करें। व्रण-शोधक औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ घृत या कुष्ठचिकित्सामें कहा हुआ पञ्चतिक्तक घृत शहदके साथ मिलाकर पिलावें या अन्य औषधिद्वारा उपचार करें।

कफज गुल्म—इस गुल्मके रोगीको स्नेहपान (पिप्पल्यादि घृतका पान), स्वेदन, उपनाह, तीक्ष्ण विरेचन, निरूहण, बस्ति तथा वात गुल्ममें कही हुई चिकित्सा करें। यदि अग्नि मन्द होनेसे मन्द वेदना, उदर भारी और जकड़ा हुआ, अरुचि और उबाक आदि लक्षण (उबाक मुख्य) हों, तो वमनका अधिकारी जानकर वमन कराना चाहिये। यदि रोगी वमन कराने योग्य न हो और जठराग्नि मन्द हो, तो लङ्घन कराना चाहिये।

वमन या लङ्घन करानेके पश्चात् उष्ण उपचार करना चाहिये, और आहार भी चरपरी और कड़वी औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ देना चाहिये।

यदि आनाह और विबंधसह कफज गुल्म कठिन और ऊँचा उठा हुआ हो, तो युक्तिपूर्वक स्वेदन कराना चाहिये। लङ्घन, वमन और स्वेदन आदि क्रिया करनेपर जब अग्नि प्रदीप्त होवे, तब क्षार और चरपरी औषधिसह घृतपान कराना चाहिये।

फिर गुल्म स्थानसे चलित होनेपर विरेचन देवें अथवा दशमूल क्वाथके साथ स्नेह (एरण्ड तैल या इतर सिद्ध घृत तैल) मिलाकर बस्ति देवें ।

यदि अग्निमांद्य, वातका अवरोध और आमाशयमें स्निग्धता हो, तो कफ गुल्मके रोगीको क्षारमिश्रित गुटिका, चूर्ण या क्वाथ देना चाहिये । सिद्ध घृतादिद्वारा चिकित्सा न करें । यह उपचार गुल्मपाक होकर अंतर्विद्रधिका स्वरूप धारण करता हो, तब करना चाहिये; पहले नहीं ।

यदि कफगुल्मका मूल गहरा हो, अधिक प्रदेशमें फैला हो, कठिन जकड़ा-सा और भारी हो, तो क्षार, अरिष्ट और अग्निसे दागना आदि क्रियाद्वारा चिकित्सा करनी चाहिए ।

यदि कफ दोषका प्राधान्य, श्लैष्मिक प्रकृति, स्थिर गुल्म, हेमन्त या शिशिर ऋतु और देह सबल है, तो क्षारका प्रयोग करना चाहिये । यह प्रयोग सम्हालपूर्वक एक, दो या तीन दिनके अन्तरपर करते रहना चाहिये । शरीर-बलकी रक्षाके लिये भोजन मधुर, स्निग्ध, (मांस, दूध और घृत आदि युक्त) दें । अग्नि मंद हो, मार्ग रुद्ध हो और अरुचि हो, तो शराब या आसव-अरिष्टका प्रयोग करें । कदाच लङ्घन, वमन, स्वेदन, घृतपान, विरेचन, बस्ति, गुटिका, चूर्ण, क्षार और अरिष्टसे चिकित्सा करने पर, गुल्म शमन न हो, तो लोहशलाकाको तपाकर गुल्मपर दागदेना चाहिये । यह क्रिया क्षार तन्त्रोंके जाननेवालोंसे शरीर-बलका विचार करके करानी चाहिये (वर्त्तमानमें यह क्रिया नहीं कराई जाती । रोग शस्त्रचिकित्सा योग्य हो, तो तुरन्त शस्त्रचिकित्सा करालेना विशेष हितकर माना जायगा ।)

गुल्मरोगमें ऊर्ध्ववात हो, तो निरूहण बस्ति नहीं देनी चाहिये ।

द्विदोषज गुल्ममें दो दोषोंकी विकृति और त्रिदोषज गुल्ममें तीनों दोषोंकी विकृतिको दूर करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ।

त्रिदोषजगुल्म—कर्कस्फोटके रोगीको लघु आहार देना चाहिये । (Carbohydrate) प्रधान भोजन (शर्करा और श्वेतसारमय भोजन), कम देना चाहिये, शराबका व्यसन हो, तो छुड़ा देना चाहिये । शरीर अति कमज़ोर हो, शराब बिना न चल सके, तो रात्रिको थोड़ी शराब जल मिलाकर देवें । तमाखु भी हानि पहुँचाती है, अतः उसेभी छुड़ा दिया जाय, तो अच्छा है । मलावरोध दूर करनेके लिये तेज़ विरेचन नहीं देना चाहिये ।

कर्कस्फोटके रोगीको अति निर्बलता आगई हो, तो मल्ल, लोह और अभ्रक-मिश्रित औषधि देते रहें । मल्लकी मात्रा अति कम दें । कड़वी औषधि पचनक्रियामें सहायता पहुँचाती है, किन्तु कुचिला (उत्तेजक होनेसे) नहीं देना चाहिये । अन्यथा वेदनामें वृद्धि हो जायगी ।

वर्त्तमानमें डॉक्टरीमें कर्कस्फोटोंके लिये रेडियम (Redium) चिकित्सा कुछ अंशमें, लाभप्रद मानी गई है। रोग बढ़नेके पहले उपचार कराना चाहिये।

वेदना शमनार्थ शामक औषधि बड़ी मात्रामें नहीं देनी चाहिये। अन्यथा वह औषधि थोड़े ही दिनोंमें अपना प्रभाव खो देगी। अन्तिम अवस्थामें शामको कुछ दिन-तक निद्रोदय रस, अफीम या मोर्फियाका उपयोग करना हो, तो करें, किन्तु दीर्घकालतक उपयोग न हो, तो अच्छा है। निद्रा शान्त मिलती रहे, इस बातपर लक्ष्य देना चाहिये।

रक्तमय वान्ति होती रहे, तो प्रवाल पिष्टी, वंशलोचन, गिलोय स्वरस, बकरी का दूध, चन्द्रकला रस, तृणकांतमणिपिष्टी, शुक्ति पिष्टी, उसीरासव, दुर्वाघृत, कामदूधा आदि औषधियोंका उपयोग आवश्यकता अनुसार करते रहें।

मलावरोध होता रहे, तो एरण्ड तैल या ग्लिसरीनकी पिचकारी या बस्ति आवश्यकतानुसार देते रहें या सौम्य सारक औषधिका उपयोग करते रहें।

आमाशयिक कर्कस्फोट—इसपर केवल वेदना उपशम करनेके लिये चिकित्साकी जाती है। हितकर पथ्य भोजन और उपाय आदि द्वारा बलवृद्धि या बलरक्षणके लिये प्रयत्न किया जाता है। इस रोगमें औषधिका सेवन कम मात्रामें दीर्घकालपर्यन्त कराना चाहिये।

आन्त्रिक कर्कस्फोट होनेपर—इतर अवयवोंमें गौण कर्कस्फोटकी उत्पत्ति होनेके पहले ही योग्य मार्ग लेना चाहिये। बहुधा औषधि चिकित्सासे लाभ नहीं होता। हो सके, उतना जल्दी शस्त्र चिकित्साका आश्रय लेना चाहिये।

यकृत्पर कृमिज रसाबुर्द होनेपर रोग बढ़नेके पहले ही योग्य चिकित्सा करानी चाहिये। प्रारम्भमें क्षार प्रधान औषधि लाभ पहुँचा देती है। रोग बढ़नेपर शस्त्र-चिकित्साका आश्रय लेना पड़ता है।

पक्व गुल्म—भगवान् आत्रेय कहते हैं कि:—'तत्र धान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रिया विधौ' अर्थात् पक्व गुल्मकी चिकित्सा धन्वन्तरितन्त्रके जाननेवाले शल्यविदोंसे ऑपरेशनद्वारा करानी चाहिये।

रक्तगुल्म—इसकी चिकित्सा गर्भकाल (६ मास) व्यतीत हो जानेके पश्चात् तुरन्त करानी चाहिये। स्नेहन, स्वेदन देकर स्निग्ध विरेचन देना चाहिये। यदि जल्दी रक्तस्राव न हो सके, तो योनिविरेचन औषधि देनी चाहिये। नीलोफरका क्षार या राख, लहसुन, तेज़ शराब, मछली आदि भोजन तथा गोमूत्र, दूध और क्षारमिश्रित उत्तर-बस्ति देनेसे २-४ दिनमें रक्तस्राव होने लगता है। लाभ न हो, तब तक गुल्मनाशक औषधि और आहार देते रहना चाहिये।

रक्तस्राव प्रवृत्त हो जानेपर मांसरससे मिश्रित भातका भोजन, घृत या तैलकी मालिश और शराबपान करावें। रक्तस्राव अधिक होनेपर शीतल रक्तपित्तनाशक क्रिया और कड़वी औषधियोंके तैलकी अनुवासन बस्ति आदि चिकित्सा करनी चाहिये। यदि आनाह, उदावर्त्त आदि वातप्रकोप हो जाय, तो वातशामक आहार देना चाहिये।

रक्तगुल्ममें पिप्पल्यादि घृतकी उत्तरबस्ति दें या उष्ण पदार्थोंसे रक्तगुल्मका भेदनकर योनिद्वारसे रक्तको निकाल प्रदर-चिकित्सा करें।

रक्तस्राव करानेपर यदि निर्बलता आजाय और शुद्ध रक्त निकलता हो, तो तुरन्त बन्द कर देना चाहिये। कदाच दूषित रक्त निकलनेपर निर्बलता आजाय, तो रक्तप्रवाहके वेगको कम करें और हृदय-पौष्टिक औषधिका सेवन करावें।

रक्तगुल्म—(गर्भाशयकी मांसपेशियोंसे संलग्न वृन्तरहित गुल्म) होनेपर गुल्मको नष्ट करने और वृद्धिका दमन करनेके लिए क्षारप्रधान औषधि देनी चाहिए। पञ्चानन रस, दन्त्यादि गुटिका या स्नुहीक्षीर गुटिका आदि औषधिके प्रयोगसे गुल्म नष्ट हो जाता है। यदि लाभ न हो, तो रोगको प्रबल मानकर शस्त्रचिकित्साका आश्रय लेना चाहिए। ३-४ मासमें बिना कष्ट स्नुहीक्षीर गुटिकासे रक्तगुल्म नष्ट हो जानेके उदाहरण मिले हैं।

वृन्तयुक्त रक्तगुल्म—होनेपर गर्भाशय मुखको प्रसारितकर चिमटे (Forceps) द्वारा गुल्मको बाहर निकाल, गुल्मकी जड़में डोरी या तार (Ligature) को बाँध तारयुक्त आरी (एक्रेज़र Ecraseur) या कैंचद्वारा सम्हालपूर्वक जड़को काट गुल्मको अलगकर देना चाहिए।

यदि केवल जड़ बाँध दी जाय और औषधि-चिकित्साकी जाय, तो पूयोत्पत्ति होकर पूयज ज्वर आजाता है। अतः जड़पर बन्धन बाँधकर तुरन्त काट देना चाहिए।

बीजकोषस्थ अर्बुद—(रक्तगुल्म) प्रथमावस्थामें संचालनविशिष्ट है और क्रमशः बढ़ता जाता है, ऐसा निर्णय होजानेपर उसे औषध या शस्त्रचिकित्साद्वारा सत्वर समूल नष्टकर देना चाहिए।

यदि अर्बुद बढ़ गया हो, स्पर्श-परीक्षा करनेपर हाथको लगता हो, एवं ज्वर, वेदना आदि रोगके पूर्व इतिहासपरसे समीपके स्थानको अर्बुद संलग्न है, ऐसा अनुमान होता हो, तो शस्त्रचिकित्साद्वारा उसे दूर करनेका तुरन्त प्रयत्न करना चाहिए। देर करनेसे रुग्णा अधिकाधिक निर्बल होती जाती है।

यदि बीजाशय रसार्बुद तरलमय है, तो ब्रीहिमुख यन्त्रके प्रवेश द्वारा छिद्र (Paracentesis) कराके जलको निकाल देना चाहिये। एवं रसार्बुदकी दीवारका छेदनकर पिचकारीद्वारा रक्तशोधक रोपण और जन्तुघ्न द्रव (आयोडिन या इत्तर) का प्रवेश कराना चाहिए। यह प्रयोग जिन स्थानोंपर रसार्बुदकी दीवारमें प्रादाहिक विकृति हो, अथवा बीजकोषको तोड़कर अर्बुदको निकाल लेनेकी आवश्यकता न हो, उन स्थानोंके लिये लाभदायक है। बीजकोषके अर्बुदकी वृद्धिको रोकने और रोगिणीके स्वास्थ्यकी उन्नतिके लिये पौष्टिक, उष्ण और रक्तशोधक औषधि कुछ कालतक देते रहना चाहिये।

वातज गुल्म चिकित्सा

(१) बिजौरेका रस, भुनी हींग, खट्टे अनारदाने, बिड़लवण और सैंधानमक-को मिला फिर सुरामण्ड (थोड़े शराब) में डालकर पिलानेसे वातज गुल्म दूर होते हैं।

(२) सज्जीखार और कूठ १०-१० तोले तथा जवाखार या केतकीका खार ५ तोले मिलाकर चूर्ण करें। फिर २–२ माशे चूर्ण घी या तैलके साथ मिश्रितकर देते रहनेसे कफसहित दारुण वातज गुल्म नष्ट होता है।

(३) सोंठ २ तोले, भूसी निकालकर साफ किये हुए काले तिल ८ तोले और गुड़ ४ तोले लेकर सबको मिलालें। इसमेंसे १ से ३ तोले चूर्ण गुनगुने दूधके साथ दिनमें २ समय देते रहनेसे वातज गुल्म, उदावर्त्त और योनिशूल नष्ट होजाते हैं।

(४) एरण्ड तैल देसी शराबके साथ या गुनगुने दूधके साथ पिलाते रहनेसे वातज गुल्म शमन होजाता है।

(५) छिलके उतारकर सुखाये हुये लहसुन १ से २ तोलेको ४ गुने दूध और ८ गुने जलके साथ मिला, दुग्धावशेष क्वाथकर सुबह शक्ति अनुसार ८ या १६ दिनतक पिलाते रहनेसे वातगुल्म, उदावर्त्त, गृध्रसि, विषमज्वर, हृद्रोग, विद्रधि और शोथ, ये सब शमन होजाते हैं। यद्यपि दूध और लहसुनका सेवन एक साथ करनेका निषेध है तथापि व्याधि महिमाके हेतुसे भगवान् आत्रेयने कहा है।

(६) लघुपञ्चमूलके क्वाथमें दूधको सिद्धकर ४ रत्ती शिलाजीत मिलाकर दिनमें २ बार पिलाते रहनेसे वातज गुल्म दूर होता है।

(७) भुने हुए जौके यूष या मूलीके यूषमें घी और पीपलका चूर्ण मिलाकर भोजनके बदले पिलानेसे उदावर्त्त और वातगुल्म दूर होते हैं।

(८) दशमूलके क्वाथमें १–१ माशा जवाखार और सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे गुल्म, शूल, हृद्रोग और श्वासका नाश होता है। (क्षारयुक्त औषधि देनेके पहले ६ माशे घी चाट लेनेसे जिह्वापर घाव नहीं होते।)

(९) सरफोंका क्षार २ माशे और हरड़का चूर्ण ४ माशे मिलाकर घीके साथ चटावें। फिर गुनगुना जल पिलानेसे वातगुल्म, कफगुल्म, यकृत्प्लीहावृद्धि, ज्वर, हृद्रोग, ये सब नष्ट होजाते हैं।

(१०) सुहिंजनेकी पत्तीका रस ४ तोले और १ तोला मिश्री मिलाकर ३ दिनतक पिलानेसे वातजगुल्म शान्त होजाता है।

(११) भुनी हींग, सैंधानमक, आमचूर, राई और सोंठ, इन ५ औषधियोंको समभाग चूर्णकर १।।–१।। माशे घीके साथ दिनमें २ समय देनेसे वातजगुल्मका शमन होता है।

(१२) गोमूत्रमें हलदी मिलाकर २१ दिनतक रोज़ सुबह पिलानेसे वातज-गुल्म दूर होता है।

(१३) आक, थूहर, सरफोंका, केलेका खंभा, मूली, अरणी, तिलपंचांग, इन ७ औषधियोंको जला राखकर क्षारविधि अनुसार क्षार बना लेवें। इस क्षारमेंसे ४-४ रत्ती क्षार मट्ठेमें मिलाकर दिनमें ३ समय पिलाते रहनेसे वातज, पित्तज और कफज गुल्म नष्ट होते हैं।

(१४) हपुषाद्य घृत—हाऊबेर, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हिंगुपत्री, चव्य, चित्रकमूल, सैंधानमक, ज़ीरा, पीपलामूल और अजवायन, इन ११ औषधियोंको समभाग मिलाकर कल्क करें। फिर कल्क १ सेर, गोघृत ४ सेर तथा बिजौरेका रस, बेरका क्वाथ, सूखी कोमल मूलीका क्वाथ, दूध, दही और खट्टे अनारदानोंका रस, ये ६ औषधियाँ ४-४ सेर लेवें। सबको मिलाकर यथाविधि घी सिद्ध करें। इसमेंसे १ से २ तोले घृतका सेवन कराते रहनेसे वातगुल्म, शूल, आनाह, मलावरोध, योनिरोग, अर्श, ग्रहणी, श्वास, कास, अरुचि, ज्वर, पार्श्वशूल, हृदयशूल और बस्तिशूल, ये सब दूर होते हैं। (रक्तगुल्ममें भी यह घृत हितावह माना गया है।)

(१५) चित्रकादि घृत—चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सैंधानमक, हिंगुपत्री, चव्य, खट्टे अनारदाने, अजमोद, पीपलामूल, ज़ीरा, हाऊबेर और धनियाँ, इन १३ औषधियोंको समभाग मिलाकर कल्क करें, फिर कल्क १ सेर, घी ४ सेर, दही, काँजी, बेरका क्वाथ और कोमल मूलीका स्वरस, सबको ४-४ सेर मिलाकर यथाविधि घृत सिद्ध करें। इस घृतमेंसे १ से २ तोले तक दिनमें दो बार पिलाते रहनेसे मन्दाग्नि, अफारा और शूल सहित वातगुल्म शमन होता है।

(१६) रसोनाद्य घृत—गोघृत, लहसुनका रस, पञ्चमूलका क्वाथ, देसी शराब, काँजी और मूलीका रस २-२ सेर लेवें। सोंठ, मिर्च, पीपल, अनारदाना, कोकम, आमचूर (अभावमें इमली), अजवायन, चव्य, सैंधानमक, हींग, अम्लबेंत, ज़ीरा, अजमोद, इन १२ औषधियोंको समभाग मिलाकर ४० तोले कल्क करें। फिर सबको मिला यथाविधि घृत सिद्ध करें। इसमेंसे २-२ तोले तक रोज़ सुबह देनेसे वातगुल्म, ग्रहणी, अर्श, श्वास, उन्माद, क्षय, ज्वर, कास अपस्मार, मन्दाग्नि, प्लीहा, शूल और वातप्रकोप दूर होते हैं।

(१७) कासीस भस्म ६-६ रत्ती और त्रिफला चूर्ण ४-४ माशेको घृत (और शक्कर) के साथ मिलाकर दिनमें २ समय देते रहनेसे वातजगुल्म शमन होजाता है।

(१८) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—कॉकायनवटी, गुल्मकालानलरस (हरड़के क्वाथके साथ), वज्रक्षार, हिंग्वादि चूर्ण और हिंग्वष्टक चूर्ण, ये सब औषधियाँ वातगुल्ममें अति लाभदायक हैं।

पित्तज गुल्म चिकित्सा

(१) ३ से ४ माशे कपिला शहद या मिश्रीके साथ विरेचनार्थ देनेसे वेदना शमन होजाती है।

(२) ५ तोले अंगूरके रसमें थोड़ा गुड़ मिलाकर देनेसे या ६ माशे हरड़के चूर्णके साथ थोड़ा गुड़ मिलाकर देनेसे विबन्ध दूर होजाता है।

(३) घीकुँवारका रस २ तोले, घी ६ माशे, त्रिकुट १ माशा और सैंधानमक १ माशा मिलाकर पिलानेसे पित्तजगुल्मका नाश होजाता है।

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—गुल्मकुठार रस, प्रवालपञ्चामृत (घृत या आँवलोंके रसके साथ), शुक्ति भस्म (अनारके रसके साथ), कुमार्यासव, नागभस्म (शक्ति वृद्धिके लिये), ये सब औषधियाँ इस व्याधिपर अति लाभदायक हैं।

(४) दाधिक घृत—बिजौरेका रस और दही ४-४ सेर मिलाकर घृत २ सेर सिद्ध करें। इस घृतमेंसे १-२ तोलेतक सेवन करानेसे गुल्म, प्लीहा, हृदयरोग और शूल दूर होते हैं।

(५) त्रायमाणादिघृत—त्रायमाण १६ तोलेको २ सेर जलमें उबालकर क्वाथ करें। एक सेर जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवें। कुटकी, नागरमोथा त्रायमाण, जवासा, मुनक्का, भुईआँवला, शतावरी, जीवन्ती, रक्तचन्दन और कमलके फूल, इन १० औषधियोंको १-१ तोले लेकर कल्क करें। फिर उपर्युक्त क्वाथ, कल्क तथा आँवलोंका रस, दूध और घी ३२-३२ तोले मिलाकर यथाविधि घृत पाक करें। इस घृतमेंसे १ से २ तोलेतक सेवन करानेसे पित्तज गुल्म, रक्तगुल्म, विसर्प, पित्त ज्वर, हृद्रोग, कामला और कुष्ठ रोग नष्ट होते हैं।

(६) सोहागेका फूला १-१ माशा दिनमें २ समय मिश्रीके साथ २१ दिन तक देनेसे पित्तजगुल्म नष्ट होजाता है।

कफज गुल्म चिकित्सा

(१) बृहत्पञ्चमूलका क्वाथ या मुनक्काकी शराब पिलानेसे कफज गुल्मकी निवृत्ति होती है।

(२) अजवायन और बिड़लवणका चूर्ण मिलाकर मट्ठा पिलानेसे अधोवायु और मल-मूत्रकी शुद्धि होकर अग्नि प्रदीप्त होती है तथा गुल्मका नाश होता है।

(३) मट्ठेमें अजवायन और बिड़नमक मिलाकर पिलानेसे अग्नि प्रदीप्त होती है तथा अधोवायु और मल मूत्रकी शुद्धि होती है।

(४) अजवायन, भुनी हींग, सैंधानमक और हरड़को समभाग मिलाकर चूर्णकर देसी शराबके मण्डके साथ देनेसे गुल्मरोगमें उत्पन्न शूल शमन होजाता है।

(५) ३ माशे अदरक और १ माशे कलमीशोराको मिलाकर सेवन कराते रहनेसे गुल्म नष्ट होता है।

(६) सज्जीखार २ माशे और गुड़ ६ माशे मिलाकर गुनगुने जलके साथ देते रहनेसे कफगुल्मका नाश होजाता है ।

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—ताम्रभस्म (कुमार्यासवके साथ), शंखद्राव, जम्भीरीद्राव, लघु शंखद्राव, कुमार्यासव, क्रव्याद् रस, अग्निकुमार रस, ये सब उपकारक हैं। इनमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन करानेसे कफज गुल्म नष्ट होजाता है ।

द्वन्द्वज गुल्म चिकित्सा

(१) वातकफज या पित्तकफज गुल्मपर—गुल्मकालानलरस (हरड़के क्वाथके साथ) देते रहने या प्रवाल पञ्चामृतरस (घीके साथ) देते रहनेसे द्वन्द्वज गुल्मकी निवृत्ति होजाती है ।

(२) वातज गुल्मपर लिखा हुआ चित्रकादि घृत वातकफज गुल्मपर लाभदायक है ।

(३) वातज गुल्म चिकित्सामें लिखा हुआ हपुषाद्य घृत वातपित्तज गुल्ममें हितकर है ।

त्रिदोषज गुल्म चिकित्सा

(१) काँकायन वटी (ऊँटनीके दूधके साथ), वज्रक्षार या गुल्मकालानल रस देनेसे त्रिदोषज गुल्म दूर होता है ।

(२) गुल्मकी पच्यमान अवस्थामें—लोकनाथ रस देना हितकारक है ।

(३) अधोवायु और मलका अवरोध रहनेपर—अदरकको दूधमें उबालकर पिलावें या एरण्ड तैल दूधके साथ पिलावें । अथवा नाराचघृत, आरग्वधादि क्वाथ दूसरी विधि या नारायण चूर्णका सेवन करावें । अथवा अधोवायुको सत्वर निकाल देनेके लिये गुदामें घी लगावें या फलवर्त्ति या त्रिकट्वादिवर्त्ति गुदामें चढ़ावें । आवश्यकता हो, तो उदरपर सेक करें ।

(४) गुल्मके दोषपचनार्थ— हरड़, खरैंटीकी जड़, पृष्टपर्णी, अडूसेकी जड़, सोंठ, अतीस और देवदारु, इन ७ औषधियोंका क्वाथ पिलानेसे गुल्मके कच्चे दोषका पचन होजाता है ।

(५) उदरशोधन और दीपनपाचन गुणकी वृद्धिके लिये रसतन्त्रसार द्वितीय-खण्डमें आये हुए अभयादिवटी और दन्तीहरीतकी अति उपयोगी है । एवं वातोल्वण त्रिदोषज गुल्मपर वचादि चूर्ण हितकारक है ।

आमाशयिक कर्कस्फोट होनेपर—रोगशामक मुख्य औषधि त्रिफला गुग्गुलु और प्रवालपञ्चामृत देते रहें। मल्ल भस्म और मल्लादि वटी भी लाभदायक मानी गई है ।

कर्कस्फोटमें वमनका त्रास अधिक होनेपर— मल्ल १ रत्ती और सैंधानमक

३१ रत्ती अथवा मल्ल १ रत्तीको वंशलोचन ३१ रत्तीके साथ मिला अच्छी तरह खरल कर १-१ रत्ती आँवलेके मुरब्बे या आमके मुरब्बेके साथ दिनमें ३ समय देते रहें। वान्तिहृद् रस भी उत्तम औषध है।

कर्कस्फोटमें कृशता आनेपर—डॉक्टरी मिश्रण।

लाइकर आर्सेनिक—Liq. Arsenic. ३ बूँद

फेरीएट एमोनिया साइट्रस—Ferriet Ammon cit. ५ ग्रेन

सोडा बाई कार्ब—Soda bicarb. ५ ग्रेन

स्पिरिट एमोनिया एरोमेटिक—Spt. ammon. arom. १० बूँद

स्पिरिट क्लोरोफार्म—Spt. chloroform. १० बूँद

इन्फ्यूज़म केलम्बा—Inf. calumba. आधा औंस तक

इस तरह दिनमें ३ बार देवें। अथवा मल्ल पुष्प $\frac{१}{३२}$ रत्ती, लोह भस्म और अभ्रक-भस्म $\frac{१}{८}$ रत्ती मिला, प्रातः-सायं च्यवनप्राशके साथ देते रहें।

यदि ज्वर रहता हो अथवा लोह अनुकूल न रहे तो—

एसिड हाइड्रोक्लोरिक डिल—Acid hydroch. dil. १० बूँद

लाइकर आर्सेनिक हाइड्रो—Liqr arsenic hydro. ३ बूँद

टिञ्चर सिंकोना क०—Tinct. Cinchon Co. २० बूँद

जल—Aqua आधा औंस तक

अथवा शिलाजीत २-२ रत्ती, वङ्ग भस्म आध-आध रत्ती मिलाकर दिनमें २ बार देते रहें। आवश्यकतापर मूत्र शुद्धिके लिये सारिवाका फाण्ट या अन्य औषधि देते रहें।

बद्धकोष्ठ शमनार्थ—जिनको मलावरोध रहता हो, उनको आरोग्यवर्द्धनी प्रथम विधि (त्रिफलाके फाँटके साथ) सेवन कराते रहनेसे मलावरोध, वमन और बेचैनी आदि लक्षण सत्वर कम होने लगते हैं।

इस तरह इतर लक्षणोंके शमनार्थ लक्षण अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

यकृतस्थ कृमिज रसार्बुद होनेपर—रसतन्त्रसारमें लिखि हुई औषधियाँ—प्रवालपञ्चामृत रस, लोकनाथ रस (कालीमिर्च और घीसे), लवण-भास्कर चूर्ण, वज्रक्षार चूर्ण, प्लीहान्तकक्षार चूर्ण आदि औषधियाँ हितकर हैं।

अर्बुद यदि बहिर्मुख हो, तो शस्त्रचिकित्साद्वारा उसे तोड़कर प्रवाही द्रवको निकाल देना चाहिये। या सूक्ष्म व्रीहिमुख यन्त्र प्रवेशकरा द्रवको निकाल लेना चाहिये। फिर उसमें पिचकारीद्वारा टिञ्चर आयोडीनको प्रवेशकरा देनेसे व्याधि शमन होजाती है।

वर्त्तमानमें विद्युत्सूचीसे विद्धकर विद्युत्प्रयोगद्वारा चिकित्साकी जाती है। परन्तु सबसे सरल और निर्भय मार्ग प्रारम्भिक अवस्थामें क्षारप्रधान औषधि है। साथ-साथ

रक्तादि धातुओंके लीन विषको जलानेके लिये गुग्गुलुकी या अन्य रक्तशोधक औषधि-की योजना करनी चाहिये ।

रक्तगुल्म चिकित्सा

(१) नित्य प्रातःकाल चित्रकमूल, पीपलामूल, करंजकी छाल, देवदारु, भारंगी और पीपलामूलका चूर्ण ४ माशे खाकर ऊपर ४ तोले काले तिलोंका क्वाथ (गुड़ मिलाकर) सेवन करानेसे रक्तगुल्मका नाश होता है ।

(२) ४ तोले तिलका क्वाथकर पुराना गुड़ २ तोले, त्रिकटु २ माशे, भुनी हींग ४ रत्ती और भारंगीका चूर्ण ३ माशे मिलाकर नित्यप्रति प्रातःकाल सेवन करानेसे रक्तगुल्मका रक्त योनिद्वारसे बहकर निकल जाता है। यदि मासिकधर्म चला गया हो, तो इस क्वाथके सेवमसे पुनः जारी होजाता है । तथा गर्भाशयशूल और कमर जकड़ना आदि उपद्रवभी दूर होजाते हैं ।

(३) गोरखमुण्डीके फूल और वंशलोचनको सममाग मिलाकर चूर्ण करें । फिर चूर्ण, मिश्री और शहद, तीनों ६-६माशे मिलाकर देते रहनेसे रक्तगुल्म, गर्भाशय-विकार और गुदा सम्बन्धी दोष दूर होते हैं ।

(४) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—स्नुहीक्षीर गुटिका, (पपीतेके साथ), गुल्मकुठार रस और कुमार्यासव, ये सब रक्तगुल्मका नाश करनेमें अति हितकारक हैं ।

स्नुहीक्षीर गुटिका २-२ गोली दिनमें ३ समय जलके साथ देते रहें और प्रतिदिन रोगिणीको पका पपीता (एरण्ड ककड़ी) एक फल (वज़न एक सेर या अधिक) १-२ या ३ समयमें खिला देवें । मधुर पदार्थ खानेको बिल्कुल न देवें। प्रातःकाल स्नुहीक्षीर गुटिका देनेके पहले पपीता खिलाना चाहिये । इस तरह चिकित्सा ४-६ मास तक करनेसे अति बढ़ा हुआ गुल्मभी नष्ट होजाता है । स्नेहन, स्वेदन, छेदन, भेदन आदि किसीभी क्रिया किये बिना रक्तगुल्म नष्ट होजाता है ।

इस औषधिसे अधिक रक्तस्राव नहीं होता । वमन विरेचन, व्याकुलता और उदरशूल आदि कुछभी न होते हुए रोग दूर होजाता है । मासिकधर्म अधिक आता हो या गुल्मके हेतुसे बन्द होगया हो अथवा अनियमित होगया हो, ये सब विकार दूर होकर रुग्णा स्वस्थ होजाती है ।

(५) शक्तिका संरक्षण करनेके लिये—नाग भस्म, वंशलोचन और शहदके साथ देते रहें ।

(६) रसतन्त्रसार द्वितीय-खण्डमें आये हुए पञ्चानन रस या दन्त्यादि गुटिकाका सेवन करानेपर रक्तगुल्म गल जाता है । इनमें पञ्चानन रस अधिक उग्र है ।

(७) पलाशघृत—ढाककी राखमें १६ गुना जल मिला ऊपरसे नितरा हुआ ४ सेर जल निकाल लें । फिर १ सेर घृत मिला मंदाग्निपर यथाविधि घृतको

सिद्ध करें। फटे हुए दूध समान होनेपर या झाग आजानेपर घृत सिद्ध हुआ जानकर कड़ाहीको नीचे उतार लेवें। शीतल होनेपर सम्हालकर घी नितार लेवें। इस घृतमें २ से ४ तोले तक रोज़ प्रातःकाल सेवन कराते रहनेसे २ मासमें रक्तगुल्म दूर होजाता है।

बाह्यउपचार—(१) रजःप्रवर्त्तनी-वर्ति योनिमें धारण करनेसे रजस्राव होकर गर्भाशयस्थ गुल्म दूर होजाता है।

(२) भुने हुए तिलको थूहरके दूधमें ३ घण्टे खरलकर वर्ति बनाकर या भुने हुए तिल और पलाशकी राखको गुड़की चाशनीमें मिला वर्ति बनाकर योनि-मुखमें धारण करनेसे गर्भाशयस्थ रक्तगुल्म फूटकर रक्तस्राव होने लगता है। यदि गुल्म बीजाशयमें है, तो बाह्य उपचार नहीं करना चाहिये।

(३) कपड़ेको सूअर या मछलीके पित्तमें भिगोकर योनि-मुखमें धारण करनेसे रक्तस्राव होने लगता है अथवा सुखाई हुई छोटी सफरी मछलीको सूअर या मछलीके पित्तमें भिगोकर धारण करना चाहिये।

(४) शराबके नीचे जमा हुआ गाद (Sediment), गुड़ और पलाशकी राख को मिला वर्ति बनाकर योनि विशोधनके लिये योनि-मुखमें धारण करें।

रक्तस्राव अधिक होजानेपर—(१) कमलकेशर और नागकेशरका चूर्ण ६ माशे, मक्खन २ तोले और मिश्री १ तोला मिलाकर देनेसे रक्तस्राव बन्द होजाता है।

(२) सिंघाड़ेका चूर्ण और मिश्री १-१ तोला मिलाकर बकरी या गौके धारोष्ण दूधके साथ देनेसे रक्तस्राव बन्द होजाता है।

(३) रसतन्त्रसारमें लिखी हुई औषधियाँ—बोलबद्धरस, उशीरासव, दूर्वाद्यघृत, चन्द्रकलारस, ह्रीबेरादि क्वाथ, ये सब रक्तस्राव दूर करते हैं। इनमेंसे कोई भी औषधि देनेसे रक्तस्राव सत्वर बन्द होजाता है।

(४) मौक्तिकभस्म, प्रवालपिष्टी (उशीरासवके साथ), शुक्तिभस्म या शङ्खभस्म-का सेवन करनेसे रक्तस्राव और पित्तप्रकोप, दोनों दूर होते हैं।

(५) सूतशेखर १-१ रत्ती दूध-मिश्रीके साथ या २ माशे अदरकके रस और ६ माशे शहदके साथ दिनमें २ समय देते रहनेसे रक्तस्राव, वातप्रकोप और पित्तप्रकोप-का शमन होजाता है।

सूचना—डॉक्टरी मत अनुसार गर्भाशय और बीजाशयके अर्बुदोंका वर्णन किया है। उनमेंसे अनेकोंके लिये शस्त्रचिकित्साका ही अवलम्बन लेना पड़ता है। रोगस्वरूप समझकर योग्य मार्ग लेना चाहिये।

पथ्यापथ्य-विचार

पथ्य—स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, बस्ति, हाथकी सिराको खोलकर रक्त निकालना, लङ्घन, वातहर औषधियोंसे सिद्ध पेया, वर्त्ति (अधो वायु और मल-शुद्धिके लिये या रक्तस्रावके लिये गुदा या योनिमें बत्ती चढ़ाना), तैलकी मालिश, स्निग्ध सेक, पकने-

पर फोड़ना, १ वर्षकी पुरानी मटर, लाल शालिचावल, कुलथीका यूष, सैंधानमक और त्रिकटु मिला हुआ जाङ्गल पशुओंका गुनगुना मांस रस, बृहत्पञ्चमूल मिलाकर बनाया हुआ खड्यूषादि पेय या अन्य पदार्थ, मूंग, लहसुन, सोंठ, मिर्च, पीपल, गोमूत्र, एरण्ड तैल, तिलका तैल, हींग, कच्चा केला, बैंगन, बथुआ, अगस्तके फूल, सुहिंजनेकी फली, सूरण, ककोड़ा, कचनारके फूल, अदरक, पोदीना, आँवला, लहसुन, आम, नींबू, बिजौरा, गौ और बकरीका दूध, मठा, मक्खन, अनार, अंगूर, सन्तरा, मीठा नींबू, मोसम्मी, पका पपीता, फालसा, खजूर, जवाखार, सज्जीखार, पलाशक्षार, केतकीक्षार, इमलीका क्षार, अजवायन, कालानमक, शराब, अरहरकी दालका यूष, कोमल मूली, अरबीके पत्तेका शाक, हरड़, स्निग्ध, उष्ण, बृंहण, लघु, अग्नि प्रदीपक और वातको अनुलोम करनेवाला भोजन, ये सब पथ्य हैं।

वातगुल्मके रोगीको तीतर, मोर, मुर्गे, क्रौंच, चिड़िया आदि पक्षियोंका मांस, घी, पुराना लाल शालि चावल, उष्ण भोजन, द्रव, स्निग्ध भोजन और शराब, ये सब हितावह हैं।

पित्तज गुल्ममें पुराना शालि चावल, गाय और बकरीका दूध, घी, मक्खन, मिश्री, घीमें बना हुआ परवलका शाक, अनार, अंगूर, फालसे, अदरक, खजूर, खँटी का फाण्ट, गुलकन्द, आँवलेका मुरब्बा, हरड़का मुरब्बा, पीनेके लिये गरम करके शीतल किया हुआ जल, ये सब हितकारक हैं।

रक्तगुल्ममें रक्तस्राव कराना हो, तब वातघ्न गुणवाले लहसुन, शराब, गुड़, तैल, मिर्च, मछली आदि उष्ण अन्नपान देवें। तथा रक्तस्राव बन्द करनेके समय वातपित्त-शामक भोजन देना चाहिये। यदि रक्तगुल्मकी अति वृद्धि होजानेसे अधिक कृशता आगई है, तो शारीरिक बलके संरक्षणार्थ विश्रान्ति, शुद्ध वायुका सेवन, मांस रस, अण्डे, दूध और लघु पौष्टिक भोजन हितावह माने जाते हैं।

कफजगुल्ममें वमनके अधिकारीको वमन कराना, स्नेहन, स्वेदन, गुल्मपर तैल लगाना, सेक करना, विरेचन, पुराना धान्य, जाँगल पशु-पक्षियोंका मांस-रस, कुलथी, और मूंगका यूष, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सूखी मूलीका यूष, अजवायन, बिजौरा, हींग, अनार, पुरानी शराब और मट्ठा, ये सब हितकर हैं।

अपथ्य—वातप्रकोपक समस्त पदार्थ, विरुद्ध भोजन, सूखा मांस, पक्की बड़ी मूली, मछली, केला आदि मधुर फल, सूखे शाक, मटर, सेम आदि द्विदलधान्य (कुलथी और मूंगसे इतर), रूक्ष अन्न, आलू, अरबी, रतालू, पिण्डालू आदि कन्द-शाक, टिण्डे, गंवारफली, तोरई, अधिक जलपान, अधिक शीतल जल, अधोवायु और मल-मूत्रके वेगका धारण, नेत्राश्रुके वेगको रोकना, वमन कराना, सूर्यताप और अग्निका अधिक सेवन, रात्रिका जागरण, अधिक परिश्रम, मैथुन और प्रवास आदि गुल्म रोगमें हानिकारक हैं।

रक्तगुल्मकी रोगिणीको मासिकधर्म आनेपर ३ दिनके भीतर स्नान करना और

तेज़ शीतल वायुका सेवन करना, मलावरोध करनेवाला आहार, मधुर आहारका अधिक सेवन, शुष्क आहार और वातवर्धक आहार, ये सब हानिकर हैं। एवं रोगिणीको अधिक निर्बलता आनेपर अधिक परिश्रम, चिन्ता और शुष्क भोजन, ये सब अपथ्य माने जाते हैं।

१०. उदररोग

उदरके भीतर रहे हुए पोले भागको उदरगुहा (Abdomen) कहते हैं। इस गुहाके भीतर आमाशय, अन्त्र यकृत्, प्लीहा, अग्न्याशय, वृक्क और मूत्र पूर्ण बस्ति आदि अवयव हैं (इन अवयवोंका विशेष वर्णन सिद्ध परीक्षा पद्धति में किया है।)

इस उदरगुहामें ८ छिद्र हैं। इस गुहाके ऊपर छप्परके सदृश रही हुई महाप्राचीरा पेशीमें ३ छिद्र (महाधमनीके लिये १ छिद्र, अधरा, महासिराके लिये १ छिद्र तथा अन्ननलिकाके लिये १ छिद्र), उदरगुहामेंसे बाहर आनेके मार्गरूप वंक्षण सुरंग (Inguinal Canal) में अन्तर्वंक्षणीय और बहिर्वंक्षणीय मिलाकर दो छिद्र (Abdominal Inguinal Rings), वंक्षणदरी (Femoral Canals) नामक दो छिद्र तथा १ नाभिछिद्र मिलाकर ८ छिद्र होते हैं। इनमेंसे अन्तिम ५ छिद्र शिथिल होनेपर उनमेंसे उदरगुहाके भीतर रहे हुए आशय बाहर निकल आते हैं। इस तरह बहिर्वंक्षणीय आदि छिद्रोंसे अन्त्र बाहर निकलनेपर अन्त्रवृद्धि (Hernia) रोग होजाता है। स्वाभाविक स्वस्थावस्थामें इन छिद्रोंसे कुछभी हानि नहीं होती, किन्तु विकृत अवस्थामें प्राणोंका भी घात होजाता है।

इस उदरगुहाके नीचे श्रोणिगुहा (Pelvic Cavity) स्थित है, जिसमें गुदनलिका, बस्ति, पौरुषग्रन्थि (Prostate gland) शुक्रवाहिनियोंकी सिराएँ, शुक्रप्रपिकाएँ आदि अवयव पुरुष देहमें और गुदनलिका, बस्ति, गर्भाशय, बीजवाहिनियाँ और बीजाधार आदि अवयव स्त्रीदेहमें रहे हैं। इस श्रोणिगुहाके साथ उदरगुहाका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। इन दोनों गुहाओंपर आच्छादन है, जिसे उदर्य्याकला (Peritoneum) कहते हैं।

उदर्य्याकला—यह महाकला अत्यंत पतली, कोमल और मोतीके सदृश स्वच्छ श्वेत वर्णकी है। यह कला उरस्याकलाके समान एक थैली रूप है। इस थैलीके भीतर पुरुष देहमें एक भी छिद्र नहीं है, किन्तु स्त्रीदेहमें बीजवाहिनियोंकी शिराएँ इस थैलीमें खुलती हैं, अतः वह छिद्रयुक्त है। इस थैलीके दो स्तर हैं। इनमेंसे एक स्तर उदरकी दीवारके भीतरकी ओरको और दूसरा स्तर उदरस्थ महत्वके यन्त्रों (पचनेन्द्रिय. मूत्रोत्पादकयन्त्र और प्रजननयन्त्र) को ढकता है। यद्यपि यह कला एक सलग थैली है, तथापि उदरके भीतर इस तरह स्थित है कि वह दो थैलीके समान भासती है। समझानेकी सरलताके लिये इन मिथ्या दो विभागोंको दो थैली रूपसे कहा जाता है। इनमेंसे बाहरके भागको महाकोष (बड़ी थैली) और भीतरके भागको लघु कोष (छोटी थैली) संज्ञा दी है।

चित्र नं०
उरोगुहा और उदरगुहा
Clavicle 1
2 Clavicle
Manub Sterni
3
Remains of Thymus
RIGHT LUNG
6 LEFT LUNG
7 Upper Lobe
8 Upper Lobe
Middle Lobe
10 Pericardium
11 Lower Lobe
12 Lower Lobe
Diaphragm
Diaphragm
17 LIVER
Stomach 18
Gall Blad
Transverse Colon
19 Ascend Colon
20 Coils of Small Intestine
Cæcum
22 Bladder
e
e
d
d
c
c
b
a
b
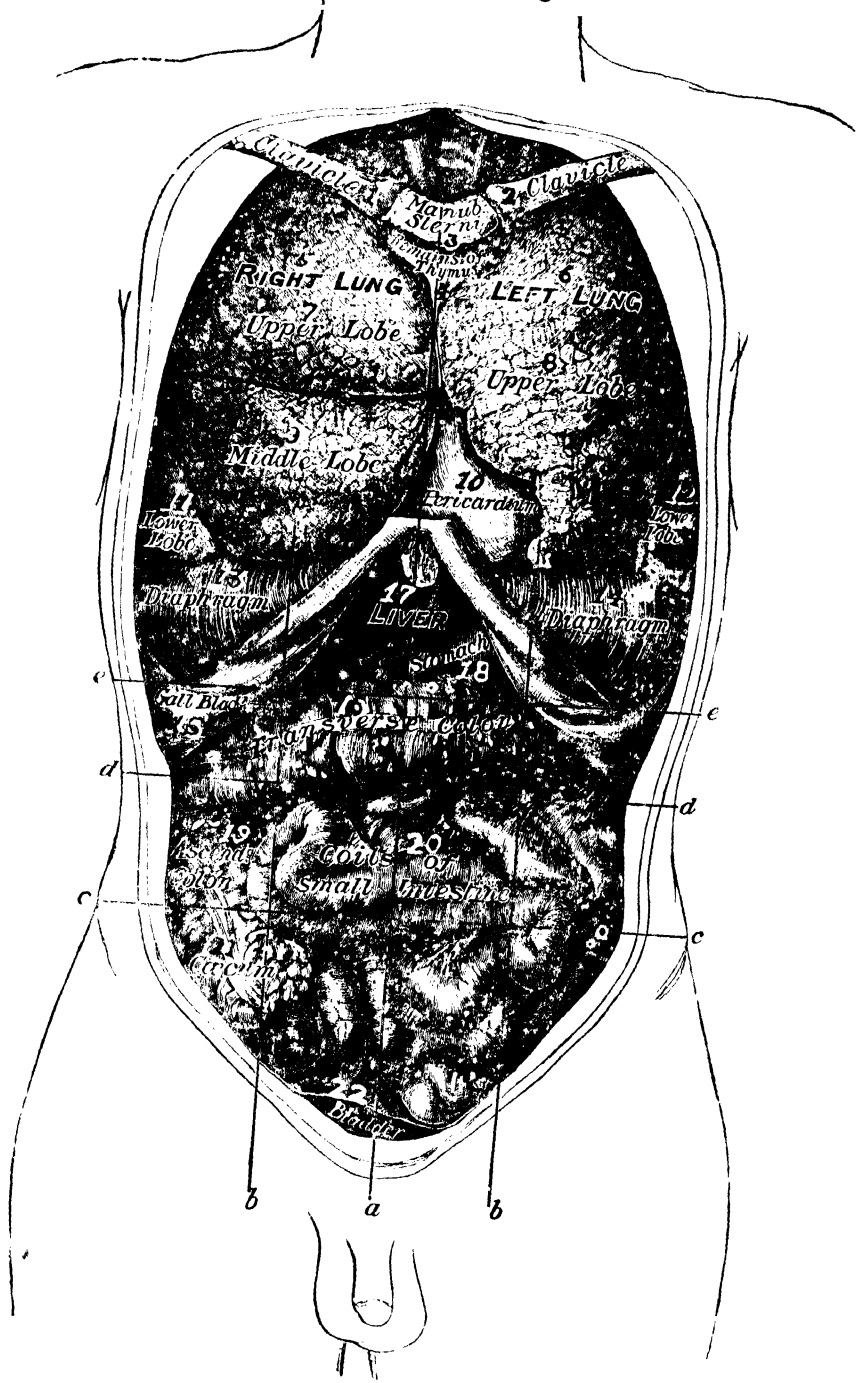
चित्र नं० ६

उरोगुहा और उदरगुहा

१–२ अक्षकास्थि Clavicle

३ ग्रैवेयक (उरःफलकका ऊर्ध्वभाग) Manubrium of the sternum

४ बाल ग्रैवेयक ग्रन्थिका अवशेष भाग Remains of the Thymus Gland

५ दक्षिण फुप्फुस Right Lung

६ वाम फुप्फुस Left Lung

७-८ ऊर्ध्व फुप्फुस पिण्ड Upper Lobe

९ मध्य फुप्फुस पिण्ड Middle Lobe

१० हृदयधरा कलाकोष Pericardium

११-१२ अधः फुप्फुस पिण्ड Lower Lobe

१३-१४ महाप्राचीरापेशी Diaphragm

१५ पित्त कोष Gall Bladder

१६ अनुप्रस्थ अन्त्र Transverse Colon

१७ यकृत् Liver

१८ आमाशय Stomach

१९ आरोही अन्त्र Ascending Colon

२० लघुअन्त्रकी गेंडुली Coils of Small intestines

२१ उण्डुक Coecum

२२ बस्ति Bladder

a मध्य अनुलम्ब रेखा Median plane

b-b स्तनांतरिका रेखा Laternal planes

c-c अधर नाभिका रेखा Intertubercular plane

d-d मध्य नाभिका रेखा Subcostal plane

e-e उत्तर नाभिका रेखा Transpyloric plane

मध्य नाभिका रेखा और मध्य अनुलम्ब रेखा मध्य भागसे अन्तर दर्शानेके लिये खिची हैं। उदर गुहाके ऊपरके प्रदेशोंका आरम्भ उत्तर नाभिका रेखाके ऊपरके प्रदेशों से होता है। इन गुहाओंके शेष अवयव ऊपरके अवयवोंके नीचे ढके रहनेसे आगेकी ओरसे नहीं दीख सकते।

महाकोष—(मेन पोर्शन ऑर ग्रेटर सेक ऑफ पेरिटोनियम—Main Portion or Greater Sac of Peritoneum) इस महाकोषके बाहरका स्तर लगभग संपूर्ण उदरगुहाकी दीवार को ढकता है और भीतरका स्तर यकृत्, प्लीहा, आमाशय, ग्रहणी, बृहदन्त्र, लघु अन्त्र, बस्तिका शिखर भाग, स्त्री-शरीरमें गर्भाशय और उसके समीपके अवयवोंको ढकता है।

लघुकोष—(ओमेन्टल बर्सा ऑफ लेसर सेक—Omental bursa of Lesser Sac) कहते हैं। इस थैलीका निम्न लम्बाभाग वपा नामक कलासे बने हुए स्तरमें मिल जाता है। इस लघुकोष और बृहत्कोषको जोड़नेवाला छिद्र यकृतके मूलके नीचे स्थित है। जिसे उदर्य्यान्तरिक छिद्र (Epiploic foramen) कहते हैं।

वपा—Greater Omentum)—यह भाग उदरगुहाके भीतर मोटे पर्देके सदृश लटकता है और आंतोंको ढकता है। इसका प्रारम्भ आमाशयके नीचेके सिरेसे होता है। वहाँसे निकलकर यह बृहदन्त्रके अनुप्रस्थ भाग और लघु अन्त्रको आच्छादित करता है। इस पर्देका नीचेका किनारा मुक्तरूपसे लटकता रहता है। इस पर्देके भीतर मेदवृद्धियुक्त मनुष्यकी देहमें अत्यधिक मेद संचित होजाता है।

उदर रोग निदान—बहुधा सब रोगोंकी उत्पत्ति अग्नि मंद हो जानेपर होती है, इनमें भी उदर रोगकी उत्पत्ति तो विशेष करके अग्निमान्द्यसे ही होती है। एवं अजीर्ण, मलिन अन्न (अत्यन्त दोषोत्पादक विरुद्ध भोजन आदि) और मलका अति संचय (कोष्ठबद्धता) आदि कारणोंसे भी उदररोगकी सम्प्राप्ति होजाती है।

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि, यदि अत्यन्त मंद अग्निवाला मनुष्य अहित भोजन करे अथवा सूखा, बासी या सड़ा हुआ भोजन करे अथवा स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन, बस्ति आदिका अयोग्य उपयोग करे, तो उसके उदरमें वात आदि दोष बढ़कर गुल्मके आकारके और प्रकट लक्षणवाले घोर उदररोगोंकी उत्पत्ति करा देते हैं। जैसे नये घड़ेमें भरे हुए तैल या घृतमेंसे चिकनाई बाहरकी ओर फिर आती है वैसे ही आमाशयसे निकला हुआ अन्नका सार दुष्ट वायुसे प्रेरित होकर उदरकी त्वचाका भेदनकर शनैः-शनैः चारों ओरसे बाहर संचित होता है। फिर वह उदर-रोगको उत्पन्न करा देता है।

भगवान् पुनर्वसु चरकसंहितामें कहते हैं कि, अति उष्ण, लवण, क्षार, विदाही, अम्ल, गर (संयोगजनित विष) मिश्रित भोजन, स्नेहपान, वमन, विरेचन आदिके पश्चात् संसर्जन क्रमके मिथ्यासेवन (अर्थात् उस समयके लिये जो भोजनविधि हो उसका त्याग करना), रूक्ष, विरुद्ध, अपवित्र (कीटाणु, मल-मूत्र, रोम आदि मिला हुआ) भोजन, प्लीहा, अर्श, ग्रहणी आदि रोगोंसे कृशता आजाना, स्नेहन, स्वेदन तथा वमन आदि पञ्चकर्मको नियमविरुद्ध करनेके पश्चात् उत्पन्न दोषका सत्वर प्रतीकार न करना,

रूक्षता, मल-मूत्र-अधोवायु आदिके वेगका धारण, स्रोतोंकी दुष्टि, आमसंग्रह, शारीरिक और मानसिक अति क्षोभ होकर उदरपर आघात पहुँचना, खूब डटकर भोजन करना, अर्शके अंकुर या भोजनमें आये हुए केश आदिसे मलका रोध होना, भोजनमें अस्थि, कंकड़, काँच आदि आनेसे या विद्रधि होजानेसे आंतोंका फूटना या भेदन होना, देहमें दोषों (विविध मलों) का अति संचय होजाना और पापकर्म करना (मद्यपान, व्यभिचार, अभक्ष्यका सेवन) आदि हेतुसे उदररोगकी उत्पत्ति होती है। इनमें विशेषतः मंदाग्नि-वालोंको उदररोग होजाता है।

संप्राप्ति—संचित दोष प्रस्वेद और जलके वहन करनेवाले स्रोतोंको निरुद्धकर प्राणवायु,अपानवायु और जठराग्नि,तीनोंको दूषित करके उदररोगकी संप्राप्ति करा देते हैं।

पूर्वरूप—भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि, बल और वर्णका नाश, उदर तन जानेसे उदरपर होनेवाली झुर्रियोंका दूर होजाना और सूक्ष्म शिराओंकी पंक्ति उभर आना, भोजनका पाक होगया या नहीं, इस बातका ज्ञान नष्ट होजाना, विदाह होना, बस्तिस्थानमें पीड़ा और पैरोंपर शोथ आजाना इत्यादि लक्षण पूर्व रूपमें भासते हैं।

भगवान् पुनर्वसु कहते हैं कि, क्षुधानाश, मुँह मीठा रहना, मधुर और भारी अन्नका अति देरसे पाक होना, भोजनका विदाह होना, भोजन पच गया या नहीं इसका बोध न होना, भोजन पेटभर कर लेनेपर बेचैनी होना, पैरोंपर कुछ शोथ आजाना, शनैः-शनैः बलका क्षय होते रहना, थोड़ा-सा व्यायाम होनेपर श्वास भरजाना, उदरमें मलका संचय होना, मलकी योग्य प्रवृत्ति न होना तथा उदावर्त्तजन्य वेदना, बस्ति और संधिस्थानोंमें पीड़ा, अफारा, लघु और अल्प भोजन करनेपर भी उदरका बढ़ना–तन जाना, उदरमें भारीपन और फटने सदृश वेदना होना, उदरपर नीली शिराओंका दिखाई देना और उदरकी त्रिवलीका नाश आदि लक्षण उदररोगके पूर्वकालमें प्रकाशित होते हैं।

उदर रोगोंमें सामान्य रूप—अफारा, चलनेमें अशक्ति, दुर्बलता, अग्निमांद्य हाथ-पैरोंपर शोथ, अङ्गोंमें पीड़ा, अपान वायु और मलका निग्रह, दाह और तन्द्रा आदि लक्षण सब प्रकारके उदररोगोंमें उपस्थित होते हैं। इनके अतिरिक्त पेटमें वायु भरा रहना, गालोंका चिकना होजाना, ये दो लक्षण चरकसंहितामें अधिक कहे हैं।

उदररोग संख्या—वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, प्लीहोदर (तथा यकृद्दाल्युदर),बद्धगुदोदर, क्षतोदर और जलोदर, ये ८ प्रकार हैं।

वातोदरके हेतु सम्प्राप्ति—भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, रूक्ष भोजन, अल्प भोजन, परिश्रम, मल-मूत्र आदि वेगोंका धारण, उदावर्त्त और दूसरे कृशता लानेवाले कारणोंसे कुक्षि, हृदय, बस्ति और गुदा मार्गकी वायु प्रकुपित होकर अग्निका नाश करती है; तथा कफको विचलितकर उससे मार्गका निरोध करा देती है। फिर

वह वायु त्वचा और मांसके मध्यमें आश्रित होकर उदररोगकी सम्प्राप्ति करा देती है।

वातोदर लक्षण—हाथ पैर, नाभि और उदरके पार्श्व भागोंपर शोथ, उदरके दोनों पार्श्व, तथा मध्यभाग, कमर और पीठमें वेदना (ये सब भाग जकड़े हुए रहना) सांधे टूटना, सूखी खाँसी, अङ्गोंका टूटना, उदरके नीचेके हिस्सेमें भारीपन, मलका संचय होना और त्वचा काली-लाल होजाना आदि लक्षणोंका अकस्मात् बढ़ना और घटना, उदरमें तोड़ने या काटने समान पीड़ा होना, उदरपर सूक्ष्म-सूक्ष्म काली (नीली) शिराएँ प्रतीत होना, ठेपन करनेपर वायुसे भरी हुई मशकके सदृश आवाज़ होना, उदरमें चारों ओर वायु विचरना तथा पीड़ा. शूल और उग्रशब्द करना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

चरकसंहितामें अण्डकोषोंपर शोथ, मल-मूत्र और अधोवायुका अवरोध, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मलका श्याम-अरुण होजाना तथा वायुका ऊपर नीचे और तिर्यक् भागमें विचरना आदि लक्षण अधिक लिखे हैं।

पित्तोदरके हेतु-सम्प्राप्ति—चरपरे, खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण और तीक्ष्ण द्रव्योंका भोजन, अग्नि और सूर्यके तापका सेवन, विदाही आहार, भोजन पचनेके पहले पुनः खा लेना और अजीर्ण आदि कारणोंसे सत्वर संचित पित्त पहले वायु और कफको प्राप्त होकर, इनको प्रकुपितकर इनसे मार्ग रुकवाकर फिर पथभ्रष्ट होकर आमाशयस्थित अग्निको नष्ट करता है, जिससे उदररोगकी सम्प्राप्ति होती है।

पित्तोदर लक्षण—ज्वर, मूर्च्छा, दाह, तृषा, मुँहका स्वाद चरपरा या कड़वा होजाना, भ्रम, अतिसार, नेत्र और त्वचा आदिमें पीलापन, उदरका वर्ण हरा-सा हो जाना, उदरपर नसें पीली-लाल होजाना, प्रस्वेद आना, देहमें अग्नि जल रही हो और धुआँ निकलता हो ऐसा भास होना, उदर स्पर्शमें मृदु होजाना और तुरन्त पक जाना (जलोदर होजाना) आदि लक्षणोंकी प्रतीति होती है।

भगवान् धन्वन्तरिजी पकजानेके स्थानमें 'पित्तोदरं तत्वचिराभिवृद्धि' इस वचनसे सत्वर रोगवृद्धि होजाना लिखते हैं।

चरकसंहितामें नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मल-मूत्र आदिका हरा-पीला होजाना, उदरपर शिरायें नीली-पीली हरी-लाल उभर आना, प्रस्वेद आकर देह गीली होजाना, ये लक्षण अधिक कहे हैं।

कफोदरके हेतु-सम्प्राप्ति—व्यायाम (श्रम) न करना, दिनमें शयन, मधुर, अति स्निग्ध, पिच्छिल आहार, दही, दूध, मछली आदि जलजीव और अनूप देशके जीवोंके मांसका अत्यधिक सेवन करनेसे कफ धातु प्रकुपित होकर स्रोतोंको आवृत्त कर देती है, जिससे अन्त्रमें रही हुई वायु बद्ध होजाती है। फिर वह कफको पीड़ित करके उदररोगकी सम्प्राप्ति करा देती है।

श्लेष्मोदर लक्षण—अङ्गोंमें ग्लानि, अङ्गोंका शून्य होजाना, हाथ-पैर,

अण्डकोष और उरुपर शोथ, भारीपन, निद्रावृद्धि, उबाक अरुचि, श्वास कास, त्वचा, नेत्र, नख आदि शुक्ल होजाना, उदर जड़ होजाना, उदर स्निग्ध, श्वेत नसोंसे व्याप्त, मोटा, धीरे-धीरे बढ़नेवाला, कठिन, शीतल स्पर्शवाला, भारी और स्थिर (अन्त्रगति या गड़गड़ाहट शब्द रहित) होजाना तथा मल सफेद होजाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस उदररोगकी वृद्धि दीर्घकालमें होती है।

सन्निपातोदरके हेतु-सम्प्राप्ति—दुर्बल अग्निवालेको अपथ्य भोजन, विरुद्ध भोजन गुरु भोजन पचन होनेके पहले पुनः भोजन, दुष्ट स्त्रियोंके (या दुराचारी पुरुषोंके) वशीकरणार्थ भोजनमें रज, रोम, विष्टा, मूत्र, अस्थि, नख आदि खिला देना तथा मन्द विष (गर × या दूषीविषका * सेवन आदि कारणोंसे वात आदि तीनों दोष प्रकुपित होकर कोष्ठमें शनैः-शनैः विकारका करते हुए मनुष्योंको त्रिदोषज उदर रोगकी सम्प्राप्ति करा देते हैं।

सन्निपातोदरके लक्षण—शीतल वायु होने और अधिक बद्दल आ जानेपर यह उदररोग अधिक प्रकुपित होकर दाह और मूर्च्छा उत्पन्न कर देता है। इस व्याधिमें निरन्तर पाण्डुरोग, कृशता, तृषासे व्याकुलता आदि लक्षण होते हैं।

इस रोगमें रक्त (दूष्य) इतर दूष्यों (रस-मांस आदि) को दूषित कर देता है; अथवा परस्पर दूष्य एक दूसरेको दूषितकर देते हैं, जिससे इस रोगकी उत्पत्ति होती है। अतः इस विकारको 'दूष्योदर' संज्ञा भी दी है।

भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, इस त्रिदोषज उदररोगमें तीनों दोषोंके समस्त लक्षण उपस्थित होते हैं। नख आदिमें सब वर्ण पाये जाते हैं। उदरपर सर्वत्र विविध वर्णोंकी राजी और शिराएँ व्याप्त भासती हैं।

प्लीहोदरके हेतु-संप्राप्ति—भोजनकर लेनेपर तुरन्त घोड़े आदिपर सवारी करने या अत्यन्त शारीरिक परिश्रम करनेसे संक्षोभ होना, अति मैथुन, अति भार उठाना, मार्ग गमन (अत्यधिक चलना), वमन और किसी रोगसे देह अति कृश होजाना, इन कारणोंसे उदरके वाम पार्श्वमें रही हुई प्लीहा स्थानसे च्युत होकर बढ़

× नाना प्राण्यंग शमल विरुद्धौषधि भस्मनाम्।
विषाणां चाल्प वीर्याणां योगो गर इति स्मृतः॥
गरका विपाक दीर्घ कालमें होता है।

*जीर्णं विषघ्नोषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा।
स्वभावतो वा गुण विप्रहीनं विषं हि दूषी विषतामुपैति॥
दूषीविष विशेषतः रक्तविकारकी प्राप्ति कराता है।

जाती है। अथवा दुष्ट रक्त या मांस आदिकी वृद्धिके हेतुसे दूषित रक्त बढ़नेपर वह प्लीहाको बढ़ा देता है।*

प्रारम्भमें प्लीहा, अष्ठीला (लोहेके घन) के सदृश कठिन होती है। फिर बढ़कर कछुएके सदृश आकृतिवाली होजाती है। यदि बढ़नेपर भी उसकी सम्यक् चिकित्सा न की जाय, तो वह धीरे-धीरे कुक्षि (उदरके पार्श्व भाग), उदर और अग्निके अधिष्ठान (ग्रहणी) को घेरकर उदररोगको उत्पन्न करा देती है।

प्लीहोदर लक्षण—विदाही और अभिष्यन्दी पदार्थोंके अधिक सेवन करते रहनेसे रक्त और कफ धातु प्रदुष्ट होकर प्लीहाकी वृद्धिकर देते हैं। फिर इससे उदर बढ़ जाता है, उसे प्लीहोदर कहते हैं। प्लीहाका स्थान उदरसे वामपार्श्वमें है। अतः इस रोगमें पहले बांयी ओरका उदर बढ़ता है, रोगी पीड़ित रहता है; तथा मंद ज्वर, मंद जठराग्नि, कफप्रकोप और पित्तप्रकोपके लक्षणोंकी उत्पत्ति, बलक्षय और अति पाण्डुता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

भगवान् पुनर्वसु कहते हैं कि, दुर्बलता, अरुचि, अपचन, मल-मूत्रका अवरोध, चक्कर आना, प्यास, अंगमर्द, वमन, मूर्च्छा, देहमें पीड़ा, श्वास, मृदु ज्वर, आनाह (आम या मलसंचय), अग्निमान्द्य, कृशता, मुखका स्वाद विरस होजाना, साँधोंमें टूटने समान पीड़ा, उदरशूल, उदरका वर्ण अरुण या पाण्डु सा होजाना और उसपर नीली-हरी-पीली शिराएँ दिखाई देना इत्यादि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

श्री वाग्भट्टाचार्य कहते हैं कि, इस प्लीहोदरमें तीनों दोषोंके लक्षण मिश्रित होते हैं। अर्थात् वातके उदावर्त्त आदि पित्तके मोह, तृषा, दाह और ज्वर तथा कफके भारीपन, अरुचि और कठिनता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

यकृद्दाल्युदर लक्षण—प्लीहोदरके समान उदरके दाहिनी ओरमें रहे हुए यकृत्की वृद्धि होनेपर यकृदुदर या यकृद्दाल्युदर कहलाता है। इसके हेतु, लक्षण और औषधि आदि प्लीहोदरके समान ही है। अतः आचार्योंने यकृद्दाल्युदरको प्लीहोदरके साथ ही ग्रहण किया है।

आयुर्वेदमें किसी ग्रन्थकारने यकृद्दाल्युदरको स्वतन्त्र स्थान नहीं दिया। प्लीहोदरका भेद माना है। चिकित्साभी प्लीहोदरकी ही करनेका विधान किया है, इस हेतुसे प्लीहावृद्धिके साथ बढ़े हुए यकृत्को यकृद्दाल्युदर कहा है, ऐसा विद्वान् चिकित्सकोंका मत है।

---

*प्लीहाका कार्य—विनाशको प्राप्त होनेवाले वृद्ध रक्ताणु, दुष्ट रक्ताणु, दुष्ट कीटाणु और कीटाणु विषका नाश करना है। इस हेतुसे रक्तदूषित होनेपर प्लीहाका कार्य बढ़ जाता है, जिससे वह बढ़ती जाती है। वर्तमानमें विषमज्वरके कीटाणुओंका प्लीहापर आक्रमण होनेपर प्लीहा बढ़ जाती है, यह अनुभव सर्वत्र मिलता रहता है।

बद्धगुदोदरके हेतु-संप्राप्ति सह लक्षण--पिच्छिल अन्न-शाक आदि या रेत, कंकड़, पक्षियोंके पर, बाल, मिट्टी, राख आदि मिले अन्नका मल आँतोंमें चिपक जाता है। फिर वहाँपर बुहारीसे बुहारे हुए कूड़ेके समान मल शनैः-शनैः इकट्ठा होकर बढ़ता और सूखता जाता है। पश्चात् गुदाके मार्गमें मल निरुद्ध होजाता है। जिस के कष्टसे थोड़ा-थोड़ा मल उतरता है तथा नाभि और हृदयके मध्यमें उदर बढ़ जाता है, उसे बद्धगुदोदर कहते हैं।‡

भगवान् धन्वन्तरिजीने इन लक्षणोंके साथ उदरमें मल सदृश दुर्गन्ध होजानेसे वमन होनेपर उसमें मलकी दुर्गन्ध आना (मलमय वमन होना), यह लक्षण अधिक कहा है। *

चरकसंहितामें लिखा है कि, भोजनके साथ पक्षियोंके पर या सिरके बाल आदि आ जानेसे (वे मलमें मिश्रित हो जानेसे) गुदाका मार्ग बन्द होजाना अथवा उदावर्त्त, अर्शके मस्से, अन्त्रव्यावर्त्तन या अन्त्रान्त्रप्रवेश (एक आँतमें दूसरी आँतका प्रवेश Intussusception) होजाना आदि कारणोंसे मार्गका अवरोध होता है। फिर वायु प्रकुपित होकर मल, पित्त और कफको रोककर बद्धगुदोदर रोगकी उत्पत्ति करा देती है।†

तृषा, दाह, ज्वर, मुख और तालुका शोष, उरूमें पीड़ा, कास, श्वास, दुर्बलता, अरुचि, अपचन, मल-मूत्रका रोध, अफारा, वमन, छींकें आना, मस्तिष्क, हृदय, नाभि और गुदामें शूल, उदरमें मूढ वायु भरी रहना, उदरपर अरुण या नीली राजियाँ और शिराएँ दिखाई देना, क्वचित् इन राजियोंका न होना और बहुधा नाभिके ऊपरका हिस्सा गौकी पूँछके सदृश ऊँचा उठ जाना आदि लक्षण इस बद्धगुदोदर रोगमें प्रकाशित होजाते हैं।

क्षतोदर हेतु-लक्षण—भोजनके साथ आया हुआ कांटा, पत्थर आदि शल्य रूप बन जानेसे या इतर किसी हेतुसे शल्यका आंतोंमें प्रवेश होजानेसे अन्त्रमें क्षत हो जाता है। फिर उसमेंसे जलके सदृश स्राव होकर गुदासे अधिक रूपसे बार-बार बाहर

‡इस प्रकारके बद्धकोष्ठ (बद्धगुदोदर) का वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम-खण्ड पृ० ६२४ में अन्त्रगत बद्धकोष्ठ और गुदनलिकामें मलसंचय (Dyschezia) नामसे किया है।

*इस प्रकारका बद्धगुदोदर अन्त्रके भीतर वायुकी विपरीत गति (उदावर्त्त) होनेपर होता है। अन्त्र व्यावर्त्तन (Volvulus) में यह स्थिति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। बृहदन्त्रसे वायुकी विपरीत गति होनेपर देरसे मलकी वमन और लघु अन्त्रसे विपरीत गति होनेपर शीघ्र मलकी वमन होती है।

†ऊपर दर्शाये हुए प्रकारके अतिरिक्त गुदनलिकाके मार्गका संकोच होना (सन्निरुद्ध गुद-Stricture of Rectum) होनेपर भी मल संगृहीत होता रहता है, किन्तु उसमें बद्धगुदोदरके इतर लक्षणोंकी प्रतीति नहीं होती।

निकलता रहता है । एवं नाभिके नीचे उदर भागकी भी वृद्धि होना, शूलसे छेदने और तोड़ने सदृश अति पीड़ा होना इत्यादि लक्षण होते हैं । इस व्याधिको छिद्रोदर (परिस्राव्युदर) संज्ञा भी दी है ।*

चरकसंहितामें लिखा है कि, भोजनके साथ कंकड़, घास, लकड़ी, अस्थि, कांटा, काँच आदि उदरमें चले जाना और अत्यधिक भोजन करना, प्रबल जम्भाई आना, इन कारणोंसे आँत फट जाती है । फिर घाव पक जाता है, तब उन छिद्रोंमेंसे रस बाहर स्रवता रहता है, जिससे बड़ी आँत और गुदा भर जाती है और फिर छिद्रोदरकी उत्पत्ति होजाती है ।

यह व्याधि नाभिके नीचे उत्पन्न होकर जलोदरके और अपने अपने बलके अनुसार दोषोंके लक्षणोंको दर्शाती है । इस रोगमें लाल, नीला, पीला, चिकना और मुर्देकी सी दुर्गन्धयुक्त कच्चा मल आता है । रोगी हिक्का, श्वास, कास, तृषा, प्रमेह, अरुचि, अपचन और दुर्बलतासे पीड़ित रहता है ।

जलोदर (दकोदर) निदान—जो मनुष्य स्नेहपान, अनुवासन बस्ति, वमन, विरेचन अथवा निरूह बस्ति लेकर तुरन्त या क्षुधा लगनेपर शीतल जल पीता है, उसके जलवाही स्रोत दूषित होजाते हैं । फिर वे अपने कार्य करनेमें असमर्थ हो जाते हैं । ये उदकवाहिनियाँ चिकनाईसे लिपायमान हो, उस समय शीतल जल पीनेसे दूषित हो जाती हैं । फिर दकोदरकी उत्पत्ति होजाती है ।

चरक संहितामें लिखा है कि, स्नेहपानके पश्चात या मंदाग्नियुक्त क्षीण या अतिकृश मनुष्यके अत्यधिक जल पीनेसे अग्नि नष्ट होजाती है । फिर क्लोममें स्थित वायु, अम्बुवाही स्रोतोंको रुद्धकर कफ और जलकी वृद्धि करा देती है । फिर वह वायु

*मधुकोश व्याख्याकार लिखते हैं कि, अस्थि, कण्टक, सुई या पत्थर आदि शल्य यदि भोजनके साथ सीधा नीचे चला जाय, तो वह अन्त्रमें भेदन नहीं करता, किन्तु जब टेढ़ा होजाता है तब घावकर देता है फिर परिस्राव्युदरकी प्राप्ति होजाती है । इस तरह अन्त्रमें व्रण हो और कभी जोरोंसे उबासी आजाय या अत्यधिक भोजनका बोझा आजाय, तोभी व्रण फटकर छिद्रोदरकी संप्राप्ति होजाती है ।

डॉक्टरी मत अनुसार अल्सेरेशन ऑफ दी बॉवेल, परफोरेशन ऑफ दी बावेल, बृहदन्त्रका कर्कस्फोट, रिजियोनल इलियाटिस (शेषान्त्रक प्रदाह) और पेरिटोनाइटिज़ उदर्य्याकला प्रदाहमें इस छिद्रोदरके लक्षण प्रतीत होते हैं ।

और दूषित कफ उस जलको स्वस्थानसे उदर (उदर्य्याकला) के आश्रित कर जलोदर-की उत्पत्ति करा देते हैं ।*

दकोदर लक्षण— नाभिके चारों ओर उदर फूल जाना, उदरमें चिकनापन, उदरमें जल भर जाना, जिस तरह जलसे भरी हुई मशकको चलानेपर क्षोभ होकर शब्द होता है, उस तरह उदरमें जलका शब्द होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं ।

चरक चिकित्सित स्थानमें लिखा है कि, इस रोगमें भोजनकी इच्छा न होना, प्यास, गुदासे जलस्राव, शूल, श्वास, कास, दुर्बलता, उदरपर विविध वर्णकी राजियाँ और शिरायें व्याप्त होजाना तथा स्पर्श करने और क्षोभ होनेपर जलसे भरी हुई मशकके सदृश भास होना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं ।

साध्यासाध्यता—ये सब प्रकारके उदररोग प्रारम्भ कालसे ही कष्ट साध्य हैं । यदि रोगी बलवान् है, उदरमें जलकी उत्पत्ति नहीं हुई है और रोग होते ही योग्य चिकित्साकी जाती है, तो रोग प्रयत्न साध्य माना जाता है ।

बद्धगुदोदर १५ दिनसे अधिक जीर्ण हो जानेपर, उदरमें जल हो जानेपर सब

*यदि सम्प्राप्ति दृष्टिसे जलोदरके हेतुका विचार किया जाय, तो मुख्य ६ कारण हैं ।

१. यकृद्रोगके हेतुसे प्रतिहारिणी शिरामें प्रतिबन्ध ।

२. हृद रोगके हेतुसे रक्ताभिसरण क्रियाका ह्रास ।

३. वृक्क विकार होनेसे रक्तमेंसे मूत्रविषके आकर्षणमें न्यूनता ।

४. कीटाणु, विष आदिसे रक्त दूषित होजाना ।

५. रस संचालनमें प्रतिबन्ध (आम, कृमि या दबावजन्य)

६. उदर्य्याकला प्रदाह होनेपर रसोत्पत्ति ।

जलोदर प्रकार—उपर्युक्त विकृति प्राप्त जलोदरोंके मुख्य लक्षणोंके भेद—

१. यकृद्विकारजन्य होनेपर कामला, यकृत्-प्लीहावृद्धि और गाँठदार शिरायें, अर्श, मलावरोध, अरुचि, अग्निमान्द्य आदि ।

२. हृद्रोगजमें हृदयमें धड़कन, पैरों (चरणों) पर शोथ और पाण्डुता आदि ।

३. वृक्कविकारज जलोदरमें नेत्रके चारों ओर शोथ, मूत्रमें कंचुक (Casts) और श्वेत प्रथिन निकलना आदि ।

४. रक्त दूषित होनेपर प्लीहोदरके पश्चात् जलोदरकी प्राप्ति ।

५. रस संचालनमें उदरके भीतर प्रतिबन्ध होनेपर उपर्युक्त चारों प्रकारके मुख्य लक्षणोंका अभाव । यह शुद्ध जलोदर है । इसकी तुरन्त चिकित्सा करनेपर प्रायः सत्वर लाभ पहुँच जाता है ।

६. उदर्य्याकलाप्रदाहके लक्षण—पीड़नाक्षमता, तीव्रशूल, बद्धकोष्ठ, अफारा, अति निर्बलता आदि ।

प्रकारके उदररोग, तथा जिन उदररोगोंमें आँतोंमें छिद्र हो गया हो, ये सब बहुधा मनुष्यको मार डालते हैं।

जिस उदररोगीके नेत्रपर शोथ आ गया हो, लिङ्ग टेढ़ा हो गया हो, त्वचा पतली और गीली होगई हो, बल, रक्त, मांस और अग्नि अतिक्षीण होगये हों, उसे छोड़ ही देना चाहिये।

जिस उदररोगीको पार्श्व भंग, अन्नविद्वेष (अरुचि), शोथ और अतिसार हों और अतिसार लगनेपर भी उदर भारी रहता हो, उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये।

सब प्रकारके उदररोग अति बढ़ जानेपर जलभावको प्राप्त होजाते हैं। फिर उस अवस्थामें रोग असाध्य होजाता है।

चरक संहिताकारने लिखा है कि वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, प्लीहोदर, सन्निपातोदर, जलोदर; इनको क्रमशः अपेक्षासे अधिक-अधिक कष्टसाध्य मानना चाहिये।

सब मर्मस्थानोंपर शोथ आजाने तथा श्वास, हिक्का, अरुचि, तृषा, मूर्च्छा, वमन और अतिसार आदि उपद्रवोंकी उत्पत्ति हो जानेपर उदररोग रोगीको मार डालता है।

भगवान् धन्वन्तरिजीने सब प्रकारके उदररोगोंमें बद्धगुदोदर और परिस्रावीको असाध्य माना है। शेष ६ प्रकारके उदररोगको कष्टसाध्य माना है।

छिद्रोदर रोगीको तृषा, कास और ज्वर आदि उपद्रव हो गये हों तथा मांस, अग्नि और आहार क्षीण होगये हों, तो उसे असाध्य मानना चाहिये। इस तरह छिद्रोदरसे श्वास और शूल उपद्रव हों, तथा इन्द्रियाँ दुर्बल हो गई हों, तो भी असाध्य जानकर छोड़ देना चाहिये।

जलोत्पत्तिके पूर्व रूप—भगवान् पुनर्वसु आत्रेय कहते हैं कि, जो उदररोग नया, उपद्रवरहित हो, जिसमें जलकी उत्पत्ति न हुई हो, उसकी तुरन्त चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये। यदि उपेक्षाकी जायगी, तो वात आदि दोष स्वस्थानोंसे दूर जाते हैं, और इनका पाक न होनेसे (अष्टांग संहिताकारके मतमें पाक होनेसे) द्रवीभुत होकर संधियों और स्रोतोंको क्लिन्न (चिपचिपा और गीला) कर देते हैं। एवं प्रस्वेदभी छिद्रों द्वारा (त्वचामेंसे) बाहर न निकल सकनेसे तिर्यक् गतिकरके उदरमें जलभावको प्राप्त होजाता है।

जलकी उत्पत्तिके पहले जब पिच्छा कलासे गाढ़े लसीका स्रावकी उत्पत्ति होती है, तब उदर मण्डलाकार (गोल), भारी, स्थिर, अंगुली बजानेपर शब्दरहित, स्पर्शमें मृदु, राजी रहित, नाभिसे प्रारम्भ होकर ऊपरकी ओर फैला हुआ आदि लक्षणों युक्त प्रतीत होता है। तत्पश्चात् जलका प्रादुर्भाव होता है।

जलोत्पत्ति लक्षण—कुक्षिकी अत्यन्त वृद्धि, शिराओंका न दीखना और जलसे भरी हुई मशक सदृश क्षोभयुक्त स्पर्श होना, (चलानेपर जल तरंगोंका हाथको स्पर्श होना), ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। इसके साथ-साथ वमन, अतिसार,

तमकश्वास, तृषा, श्वास भर जाना, कास, हिक्का, दुर्बलता, पार्श्वशूल, अरुचि, स्वरभेद और मूत्रावरोध आदि उपद्रवभी होजाते हैं। ऐसे रोगीको असाध्य माना है।

डॉक्टरी निदान

इस उदररोगके भीतर निम्नानुसार ११ डॉक्टरी व्याधियोंका अन्तर्भाव होता है। अतः इन सबका विवेचन यहाँ क्रमशः किया जायगा।

१. यकृद्दाल्युदर—Cirrhosis of the Liver.

२. बालपैत्तिक यकृद्दाल्युदर—Infantile Biliary Cirrhosis.

३. यकृतमें रक्ताधिक्य—Congestion of the Liver.

४. प्लीहावृद्धि—Splenic enlargement.

५. प्लीहोदर—Splenic Anaemia.

६. जलोदर—Ascites.

७ बद्धोदर—Impaction of Foreign Bodies.

८. पित्ताश्मरीजन्य बद्धोदर—Intestinal Obstruction due to Gall-stones.

९. बृहदन्त्रका कर्कस्फोट—Carcinoma of the colon.

१०. क्षतोदर—Ulceration of Bowels.

११. शेषान्त्रकप्रदाह Regional Ileitis.

इनके अतिरिक्त उदर्य्याकलाके क्षतकाभी सम्बन्ध इस रोगसे रहता है। उदर्य्याकलाके रोगोंका वर्णन आगे किया जायगा।

(१) यकृद्दाल्युदर

सिरोसिस ऑफ दी लिवर—Cirrhosis of the Liver.

रोगपरिचय—यह आमाशय और अन्त्रका प्रदाह, शीर्णता, कामला और जलोदर आदि लक्षणसह यकृद्विकार है। इस रोगमें यकृत्के मध्यवर्त्ती संयोजक तन्तु (Interveing connective tissues) के चिरकारी प्रदाहके हेतुसे सौत्रिक तन्तु (Fibers) निर्माण होनेपर यकृत्के कोषाणु (Cells) नष्ट हो जाते हैं, तथा यकृत् कठिन और दृढ होजाता है।

रोगप्रकार—शव परीक्षासे विदित, संप्राप्ति और हेतुके अनुरूप।

अ. प्रतिहारिणी शिरावरोधक यकृद्दाल्युदर।

आ. पैत्तिक यकृद्दाल्युदर।

१. संक्रामक पित्ताशयप्रदाह।

२. अवरोधात्मक पित्तनलिका प्रदाह।

ये दोनों मुख्य हैं। कई बार निम्न प्रकारभी प्रतीत होते हैं।

इ० यकृत्प्लीहावृद्धिमय।

ई० यकृत्के आच्छादक कोषका चिरकारी प्रदाह ।

उ० फिरंगज यकृत् प्रदाह ।

क्वचित् ंजित यकृद्दाल्युदर और मिश्र प्रकारभी दृष्टिगोचर होते हैं ।

अ. प्रतिहारिणी शिरावरोधक यकृद्दाल्युदर

बहुखण्डीय यकृद्दाल्युदर, लिनेकका विशीर्णतामय यकृद्दाल्युदर, नखसम दृढ यकृद्दाल्युदर, मद्यज यकृद्दाल्युदर ।

Portal Cirrhosis, Multilobular C., Laennec's atrophic C., Hob-nail liver, Alcoholic c.

परिचय—दीर्घकाल तक शराब पीनेसे यकृत्की चिरकारी अपक्रान्ति होती है । संप्राप्ति दृष्टिसे यकृद्घटकोंकी अपकान्ति और खण्डोंमें सौत्रिक तन्तुओंकी वृद्धि होती है । परीक्षासे प्रतिहारिणी शिराके रक्ताभिसरणका अवरोध विदित होता है । रोग सामान्यतः ४०-५० वर्षकी आयुमें । अनुपात २ पुरुष और १ स्त्री ।

निदान—यह रोग विशेषतः शराबियोंको होता है । क्वचित् शराब न पीनेवालोंको काला आज़ार, विषमज्वर, कामलाजन्य विष, अति धूम्रपान या अति तेज़ मसाले आदि दाहक पदार्थोंके सेवनसे भी रोगकी सम्प्राप्ति हो सकती है । यथार्थमें शराब आदि इस रोगके सच्चे हेतु नहीं हैं । शराब और मसाले आदिसे यकृत्की रोगनिरोधक शक्ति नष्ट होती है । फिर विष या कीटाणुओंका आक्रमण होनेपर इस रोगकी उत्पत्ति होती है ।

संभवतः शराब यकृत्के घटकोंके लिये साक्षात् विष है । यदि जीवन सत्व 'ब' का अभाव हो, तो सत्वर असर होता है । आमाशय-अन्त्रका प्रसेक, यह संभवतः शराबका प्रतिनिधि रूप परिणाम है । यदि इस रोगके साथ मदात्यय होजाय, तो प्रलाप होकर रोगीकी मृत्यु होजाती है ।

शारीरिक विकृति—शराबियोंमें २ प्रकार होते हैं । १. विशीर्णता युक्त (Atrophic); २. मेदमय (Fatty Cirrhotic liver)

(१) **विशीर्णतामययकृद्दाल्युदर**—इसमें यकृत् छोटा और उसका आवरण बड़ा होजाता है । सतह विषम उभार चढ़ावमय, बाहरकी ओर नख जैसी कठोर होजाती है । ऊपरकी सतह निस्तेज प्रतीत होती है । पीताभ प्रदेश सौत्रिक तन्तुओंकी कुछ स्वच्छ धारासे आच्छादित और दबा हुआ होता है । यह प्रतिहारिणी स्रोतसे फैलता है । प्रतिहारिणी शिरा और यकृत्की मुख्य शाखाएँ मोटी होजाती हैं; यकृत्की धमनियाँ प्रसारित होजाती हैं ।

(२) **मेदमय यकृद्दाल्युदर**—इस प्रकारमें यकृत्का आयतन बढ़ जाता है । सतह मुलायम या किञ्चित् दानेदार होजाती है । भिन्न भिन्न अंशोंका सम्बन्ध विच्छेद होता है । मेदमय अपक्रांति और यकृत्के घटकोंमें अन्तरभरण होता है । (इसका वर्णन आगे नं० १७ में किया जायगा ।)

दोनों प्रकारोंमें होनेवाली इतर विकृति—उदर्य्याकलाकी सतह मलिन और मोटी, सामान्यतः जलोदर, आमाशय और लघु अन्त्रका चिरकारी प्रसेक, अन्न-नलिका और आमाशयके ऊर्ध्व प्रदेशकी शिराओंका शोथ (Varicose), प्लीहावृद्धि, राजयक्ष्मा, उरस्तोय वा उदर्य्याकलाके क्षयकी प्राप्ति, धमनीकोषकाठिन्य, हृदयकी मांस-पेशीका प्रदाह (Myocarditis) और वृक्कोंकी सूत्रात्मक अपक्रांति आदि ।

यकृत् संकोचके हेतुसे प्रतिहारिणी शिराकी शाखाओंपर भी दबाव पड़ता है और उनमें रक्तसंचार न्यून होजाता है या बन्द होजाता है। फिर यकृत्का सम्बन्ध इतर स्थानमें रही हुई प्रतिहारिणीकी शाखाओंसे बढ़जाता है, तथा अवरुद्ध रक्त इतर शाखाओं और शिराओंद्वारा निकलने लगता है । अन्यथा जलोदरकी उत्पत्ति होजाती है ।

लक्षण—सामान्यतः अपचन, रक्तमय वमन, मंदकामला और जलोदर, ये ४ मुख्य हैं । प्रतिहारिणी शिरामें रक्तवृद्धि होनेपर विविध अवरोधात्मक तथा यकृत्के घटकोंके नाशसे विषप्रकोपज लक्षण उपस्थित होते हैं ।

प्रकृति निर्देशकलक्षण—

१. आमाशय और अन्त्रके प्रदाहसे अरुचि, हृदयाधारिक प्रदेश और यकृत्में भारीपन, हृल्लास, खट्टी वान्ति विशेषतः सुबहको, खट्टीडकार, अंकुरमय मैली जिह्वा, दुर्गन्धमय निःश्वास, अफारा, मलावरोध और उदरशुद्धिमें अनियमितता आदि ।

२. ऊर्ध्व रक्तपित्त—रक्तवमन बहुधा सत्वर और पुनः-पुनः प्रचुर मात्रामें फिर गम्भीरशक्तिपात, क्वचित् मृत्यु भी ।

३. आमाशयमें संचित रक्तका कभी नाक और गुदासे स्राव । किसी-किसीको अन्त्रमेंसे रक्तस्राव ।

४. मंद कामला । किसी-किसीको स्पष्ट कामलाभी ।

प्राकृतिक चिह्न—

१. रोगनिर्देशक मुखाकृति (Hepatic facies)—मुख, नाक और गालपर शिराजालकी प्रतीति, गाल बैठ जाना, नेत्रश्लेष्मावरण, पीताभ और जलमय, नेत्र गड्ढेमें घुसे हुए शुष्क, पीलीत्वचा और शुष्कदेह आदि ।

२. यकृत्—विविध अवस्थाओंमें विविध आकृति, स्पष्ट स्पर्शग्राह्य, छोटा होने पर कठोर किनारा और खुरदरी सतहयुक्त । (मेदमय बड़ा हो, तो वह चिकित्सासे सत्वर कम होजाता है) आदि ।

३. प्लीहा सामान्यतः स्पर्श ग्राह्य—प्लीहामें रक्तसंग्रह होनेपर वह प्रति-हारिणी शिरामें शल्योत्पत्तिके लिये सहायक ।

४. हृदय—प्रायः प्रसारित होनेसे क्रिया विकृति रोग बढ़नेपर हृदयमें कम्प और क्षणिक मूर्च्छा, रक्तदबावका ह्रास ।

५. परिधि प्रान्तकी सूक्ष्म शिराएँ—जाल सदृश उभरी हुई (Spider Angiomata)

६. अन्तिमावस्थामें जलोदर—क्वचित् शीत ज्वर आदिके आक्रमणसे द्वितीयावस्थामें। सामान्यतः स्वच्छ तरलमय। क्वचित् मिथ्या पयसम (वसारहित दुग्ध सदृश द्रव Pseudo chyle) और अति क्वचित् रक्तस्रावमय। जलोदर बढ़ने पर मूत्रकी मात्राका ह्रास और मूत्रमें शुभ्रप्रथिनकी उपस्थिति।

७. गौण रक्त संवहन—प्रतिहारिणी सहायक संस्था (Accessory Portal System) रज्जुप्रबन्धनीकी शिराएँ नाभिप्रदेशकी शिराओंमें तथा हृदयाधिकारिकप्रदेशगत स्तनकी शिराओंमें मिलजाती है। दन्तशिखरिका बन्धनिकाओं (Suspensory Ligaments), महाप्राचीरासे सम्बन्धवाली शिराएँ और पुरोवंशिका शिरा (Vena Azegos) से निकली हुई शाखा प्रशाखाएँ उत्तरा महाशिरामें मिलजाती हैं। अन्ननलिका और ऊर्ध्व आमाशयकी सूक्ष्म शिराएँ बढ़ी हुई भासती हैं।

उदर्य्याकलाकी पिछली ओरको शिराएँ, ये प्रतिहारिणी और अधरा महाशिराओंको जोड़ती है। अधरान्त्रिका और परिगुदा शिराएँ, ये सम्भवतः कुछ प्रभावित। अर्शनियम रूपसे नहीं होता। गौण रक्तवहन योग्य होनेपर प्रतिहारिणी शिराके रक्तवहनको सहायता मिलजाती है। गौण रक्तवहन अयोग्य होनेपर अर्शकी उत्पत्ति होती है। और यकृत्‌की क्रियाद्वारा शोधन न होनेसे बहुत रक्त विषमय रहजाता है।

शारीरिक उत्ताप—क्वचित्‌ही पूर्ण रूपसे अभाव नियमित अधिक रहता हो, तो क्षय होनेका अनुमान होता है। पाण्डुता सामान्यतः।

रोग बढ़नेपर स्थिति—मुख-मण्डल, कण्ठ और पीठपर मकड़ीके पैरोंके सदृश शिराजाल, पैरोंपर शोथ, क्वचित् जलोदर तथा जलोदरके विविध चिह्न।

विषप्रकोपज लक्षण—रक्तमें मूत्रविषवृद्धि होने तथा क्षीणता आनेपर प्रलाप, संन्यास या रक्तमें पित्त(पित्तरंजक द्रव्य) की मात्रा बढ़ना, किन्तु ये बढ़ी हुई अवस्थामें।

उपद्रव—न्युमोनिया या क्षय, इससे मृत्यु १५ से २५ प्रतिशतकी। रक्तमें पित्तकी उपस्थिति (Cholaemia), चिरकारी वृक्क प्रदाह, क्वचित् कर्कस्फोट और क्वचित् प्रतिहारिणी शिरामें रक्त जमाव (Thrombosis).

रोगविनिर्णय—पहली अवस्थामें शराबका व्यसन, अपचन, (आमाशय प्रदाह) का इतिहास और बढ़ा हुआ यकृत्, इन लक्षणोंसे। निश्चित् निदान—रोगदर्शक मुखाकृति (Hepatic facies), रक्तवमन, यकृत्प्लीहापर शारीरिक चिन्ह और पैत्तिक यकृद्दाल्युदर (Biliary Cirrhosis) से।

जलोदरके अभावमें यकृद्वृद्धिकेहेतु—१. मेदरक्तसंग्रह, २. मेदमय यकृत् ३. विषमज्वर, ४. रक्तमें श्वेताणुवृद्धि (Leukaemia) और प्लीहोदर (Sple-

nic Anaemia) ५. फिरंग, ६. यकृत्की ग्रथिनापक्रान्ति (Amyloid liver), ७. यकृद्दाल्युदर ।

रक्तवमनके हेतु—आमाशयिक व्रण, ग्रहणीमें व्रण अथवा कर्कस्फोट होनेपर ।

जलोदर हेतु—उदर्य्याकलाका क्षय उदरगुहा नूतनग्रन्थि (Neoplasm), चिरकारी उदर्य्याकला प्रदाह अथवा प्रतिहारिणी शिरामें शल्योत्पत्ति (Thrombosis)।

प्रभेदक रोगविनिर्णय

लक्षण	यकृद्दाल्युदर	यकृत्कर्कस्फोट
१. रोगवृद्धि	शनैः शनैः	त्वरित
२. आकृति	यकृत् विकसित या संकुचित, गाँठ नहीं होती, या छोटी गाँठें देरसे आती हैं ।	यकृत बड़ा, विषम तथा बड़ी-बड़ी गाँठें वाला गाँठें भी जल्दी आती हैं ।
३. वेदना	नहीं होती ।	होती है ।
४. जलोदर	हो जाता है ।	अनिश्चित ।
५. कामला	देरसे होता है ।	तीव्र कामला होता है ।

अरिष्ट—यदि रोगी प्रथमावस्थामें ही शराब सेवनसे पूर्ण उपराम होजाता है, तो स्वस्थ होसकता है । यकृद् वृद्धि और इसके पश्चात् जलोदर हो जानेपर रोग कष्ट साध्य होता है । सामान्यतः रोगाक्रमणके पश्चात् २ वर्षमें मृत्यु होजाती है । क्वचित् उदरगत गौण रक्त वहन नियमित रहनेपर रोगी ८-१० वर्ष जीवित रह सकता है । क्वचित् शराब छोड़ देनेसे कुछ स्वस्थ रहता है । जलोदर अति घातक अरिष्ट मात्र है ।

चिकित्सोपयोगी सूचना—नियमित और संयमित जीवन, संयमित पथ्य-भोजन, प्रचुरद्रव, उदर शुद्धिमें नियमितता (आवश्यकतापर सौम्यविरेचन) तथा मद्य त्याग, ये रोगीके लिये हितकारक हैं । विशेष आगे उदररोगकी चिकित्सामें देखें ।

आ. १ पैत्तिक विवर्धनयुक्त यकृद्दाल्युदर

(Hanot's Hypertrophic Biliary Cirrhosis)

यह मूल भूत चिरकारी अवस्थावाली व्याधि है । रोग संप्राप्तिकी दृष्टिसे यकृत्के एक खण्डमें सौत्रिक तन्तुकी उत्पत्ति होती है । कामला, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि और जलोदरके अभावद्वारा रोग निर्णय होता है ।

निदान—यह रोग विशेषतः युवावस्थामें २० से ३० वर्षकी आयुवाले पुरुषों-को तथा अति क्वचित स्त्रियोंको भी होजाता है ।

कभी-कभी एकही कुटुम्बके अनेक मनुष्योंको होजाता है । मूल कारण अज्ञात है । प्लीहासे उत्पन्न विष या इतर किसी अज्ञात चिरकारी रक्तदोषसे इसकी उत्पत्ति होनेकी कल्पना है । यद्यपि शराब इस रोगका उत्पादक नहीं है, तथापि कभी-कभी

अति मद्यपान करनेवालोंको आन्त्रिक कीटाणु जनित विषसे भी इस रोगकी सम्प्राप्ति हो सकती है। ऐसा होनेपर अन्त्र विकारके अन्य लक्षणभी सहवर्त्ती होते हैं।

शारीरिक विकृति

१. यकृत्—अति बढ़ा हुआ, भारी, आकृति सामान्य, किनारा चिकना, बढ़ी हुई अवस्थामें रंग गहरा हरा, अतिकठोर सतहपर हरा-पीला तथा सौत्रिकतन्तुकी धारा देखने-योग्य। सौत्रिक तन्तु बढ़े हुए विशेषतः प्रभावित खण्डमें।

२. पित्ताशय प्रदाह—छोटी पित्तनलिकाओंकी आच्छादक कलामेंसे छिलटे निकलना और पुनः उत्पन्न होना, अश्मरीजन्य पित्तावरोध हो, तो नूतन प्रकारकी पित्तनलिकाओंकी उपस्थिति। यकृत् घटकोंका अभाव अधिक अपक्रान्ति।

३. प्लीहा—बढ़ी हुई। सौत्रिक तन्तुमय और विशीर्ण। वज़न २४ से ३६ औंस। पित्ताशय, पित्तनलिकाएँ प्रतिहारिणी शिरा और उपशाखाएँ स्वाभाविक। आमाशय-अन्त्रमें प्रसेका भाव। जलोदरका अभाव।

लक्षण—शराबका इतिहास नहीं मिलता। रोगकी वृद्धि अति शनैः-शनैः, ४ से १० वर्षमें। आक्रमण गुप्त भावसे। फिर निर्बलता और बेचैनी बढ़ती जाती है और उदरपर शोथ आता है।

द्वितीयाक्रमणके लक्षण—१. यकृतपर वेदना, ज्वर संप्राप्ति, रक्तमें श्वेताणु वृद्धि, प्रायः हृल्लास, वमन और गहरा कामला। आक्रमण काल दिनोंसे सप्ताहोंतक। नाड़ीकी मंदगति, कण्डु और कृशता भी।

प्लीहा यकृत्—अच्छी तरह बढ़े हुए। किनारा दृढ़।

कामला—आक्रमण कालमें कुछ रंजित। बढ़नेपर सुंदर गहरा रंग।

कामला कभी-कभी कुछ कालके लिए घटभी जाता है। मूत्र और मलमें भी पित्त जाता रहता है। सामान्यतः पित्तमार्गावरोधज कामलामें मलके साथ पित्त नहीं जाता, परन्तु इस रोगमें मल पित्त-मिश्रित होता है। इस हेतुसे यह रोग इतर कामलासे पृथक् होजाता है।

यदि रोगके प्रारम्भकालमें वमन, उबाक और आमाशयमें वेदना आदि लक्षण हों, तो कामला रोगकी उत्पत्तिका सन्देह होजाता है। इस तरह यकृत्में पीड़ा होनेपर पित्ताशयशूलकी सम्भावना होती है।

प्रतिहारिणी शिरावरोधज (विशीर्णतायुक्त) यकृद्दाल्युदरकी अपेक्षा इस प्रकारमें अजीर्णके लक्षण—वमन, उत्क्लेश आदि कम होते हैं। शिराओंपर दबाव न पड़नेसे बहुधा रक्तवमन और जलोदर नहीं होते, किन्तु रोगकी अन्तिमावस्थामें कभी-कभी रक्तपित्तके समान, नाक, मुख, दन्तवेष्ट और गुदासे रक्तस्राव होता है। पाण्डुता कुछ आती है। अन्तिमावस्थामें त्वचाका रंग अति गहरा हो जाता है।

यह रोग विशीर्णतायुक्त यकृद्दाल्युदरकी अपेक्षा अधिक काल स्थायी है। अनेक

रोगी ६-१० वर्ष तक दुःख भोगते हैं। रोग बहुधा याप्य है। ज्वराक्रमण होनेपर पित्तमय रक्त या कामलायुक्त, यकृद्विशीर्णता (Icterus Gravis) की संप्राप्ति होती है। फिर रक्तस्राव, अधिक क्षीणता या इतर घातुक उपद्रवका आक्रमण होनेपर रोगीकी मृत्यु होजाती है।

रोग विनिर्णय—इस रोगमें सत्वर कामला होना, यकृत्प्लीहाका अत्यधिक बढ़ना, ये लक्षण रोगको अति स्पष्टकर देते हैं। प्रतिहारिणी शिराका अवरोध न होने से जलोदर और उसके लक्षणोंका अभाव होता है। प्रतिहारिणी शिरावरोधक विशीर्णता-युक्त और इस विवर्धनयुक्त यकृद्दाल्युदरके लक्षणोंमें निम्नानुसार भेद दृष्टिगोचर होता है।

	विशीर्णतायुक्त यकृद्दाल्युदर	विवर्धनयुक्त यकृद्दाल्युदर
१.	पित्तनलिकावरोध देरसे होनेसे कामला सत्वर नहीं होता।	पित्तनलिकावरोध सत्वर होनेसे कामला सत्वर होजाताहै।
२.	सौत्रिक तन्तुकी उत्पत्ति होजानेसे प्रतिहारिणी शिराकी शाखाओंको संकोच परिणाममें जलोदर।	प्रतिहारिणी शिराकी शाखाओंमें प्रतिबन्ध नहीं होता। जलोदर भी नहीं होता जलोदर हुआ तो अति देरसे।
३.	प्रारम्भमें विकास फिर संकोच।	क्रमशः अधिकाधिक वृद्धि।
४.	यकृदावरण मोटा।	यकृदावरण मूल स्थितिमें।
५.	यकृत् दृढ़ और दानेदार।	यकृत् मृदु।
६.	अनेक खण्डीय अवरोध।	एक खण्डीय अवरोध।
७.	यकृत्के कोषाणुओंका नाश।	दीर्घकाल पर्यन्त यकृत्के कोषाणुओं-का नाश नहीं होता।

चिकित्सा—लक्षणानुरूप। विशेष विचार आगे उदररोगकीचिकित्सामें देखें।

आ. २. अवरोधात्मक पित्त नलिका प्रदाह

Obstructive Biliary Cirrhosis, Obstructive Cholan-eitis, Liver small)

निदान—पित्तशिलासे चिरकारी अवरोध, शस्त्रचिकित्साके पश्चात् पित्तनलिका के मार्गका आकुँचन, चिरकारी अग्न्याशय प्रदाह या अग्न्याशयके शिरपर कर्कस्फोट से पित्तनलिकाका अवरोध होनेपर उसे प्रदाहकी प्राप्ति। अति क्वचित् ही यह प्रमाण सिद्ध होता है।

शारीरिक विकृति—यकृत् आकुँचित् और विषम। रंग गहरा हरा। सौत्रिक तन्तुओंकी उत्पत्ति एक या अनेक खण्डोंमें।

रोगपरीक्षा—कारणपर आधार रखती है। बढ़नेपर कामला। कारण दूर हो, तो शस्त्र चिकित्सासे रोग शमन हो सकता है।

इ. वर्द्धनशील यकृत्प्लीहोदर

स्प्लेनोमेगलिक सिर्होसिस इजिप्शनस्प्लेनोमेगली, बेंटीका रोग (Splenomegalic Cirrhosis, Egyption Splenomegaly, Benti's disease.)

परिचय—इस रोगके प्रारम्भमें वर्द्धनशील प्लीहा, गौण, पाण्डु, रक्तमें श्वेताणुह्रास, रक्तस्राव, विशेषतः आमाशयमेंसे, अन्तिमावस्थामें अनेक रोगियोंको यकृद्दाली, कामला और जलोदर होता है।

इसकी सम्प्राप्ति सिस्टोसोमा मेन्सोनी (Schistosoma Mansoni) नामक कृमिद्वारा होती है, ऐसा सर हेनरी लेथेबी टाइडीने दर्शाया है। अन्य ग्रन्थकारोंने कारण अज्ञात कहा है। विशेष वर्णन प्लीहोदरमें देखें।

ई. यकृत्के आच्छादक कोषका चिरकारी प्रदाह

क्रोनिक पेरीहेपेटाइटिज़, गौण नाम, शुगर-आइस्ड लिवर, झुकेरगुसलिविर।
Chronic Perihepatitis, Sugar iced liver, Zuckerguss liver.

शारीरिक विकृति—१. आच्छादक कोष अति मोटा होजाना, २. यकृत्का आकुँचन, किन्तु भीतरमें कुछ अपक्रान्तिकारक सौत्रिक तन्तुओंकी उत्पत्ति या अभाव ३. प्लीहाके आच्छादक कोषका प्रदाह (Perisplenitis). ४. संयोजनसह चिरकारी उदर्य्याकला प्रदाह, ५. चिरकारी अन्तर्भरणसह वृक्कप्रदाह (Chronic interstitial Nephritis), ये मुख्यतः होती हैं।

यकृदावरण प्रदाह आशुकारी भी होता है, वह यकृद् विद्रधि, गमा, रसार्बुद आदि कारणोंसे उत्पन्न होता है।

चिरकारी यकृदावरणप्रदाह स्थानिक और स्थान व्यापी (Diffuse) भेदसे दो प्रकारका होता है।

स्थानिककी संप्राप्ति गम्मा, रसार्बुद, मंद रक्तावेग (हृद्रोगज) अथवा पित्ताशय प्रदाहके हेतुसे होती है।

स्थान व्यापी विकृतिको 'शुगर आइस लिवर' संज्ञा दी है, यह चिरकारी पुनर्जननसह उदर्य्याकलासे सम्बन्धवाली है। इस प्रकारमें यकृत्के चारों ओर मोटे श्वेत सौत्रिक तन्तुओंकी धारियाँ होजाती हैं। वपाका मोटापन, जलोदर, चिरकारी हृदयावरण प्रदाह, धमनीकोषकाठिन्य और चिरकारी वृक्क प्रदाह (पीक का रोग) आदि उपस्थित होते हैं। विषप्रकोपके चिह्न या कामला नहीं होता।

विशेषलक्षण—१. पुनरावर्तक जलोदर; २. कामलेका अभाव; ३. चिरकारी वृक्क प्रदाह सब प्रकारके आदर्श लक्षण चिरकारी संयोजनसह उदर्य्याकला प्रदाहकी उत्पत्ति तक।

वक्तव्य—यह विकार मुख्य नहीं है। गौण होनेसे इसे विशेष महत्त्व नहीं दिया गया।

उ. फिरंगज यकृत्प्रदाह
(Syphilitic Hepatitis)

प्रकार—अ. जन्मसिद्ध (Congenital), आ. संपादित व गौण (Acquired or Secondary).

अ. जन्म सिद्ध यकृत्प्रदाह

१. स्थान व्यापी यकृत्प्रदाह (Diffuse Hepatitis) यह जन्मके साथ ही होता है फिर कुछ सप्ताहोंके भीतर चिह्न बढ़ जाते हैं। घातक प्रकारमें बहुत जल्दी उपस्थित होता है।

A. दृष्टिसे प्रतीत चिह्न—यकृत् बड़ा हुआ, कठिन, पीताभ या चित्र विचित्र रंगका।

B. रचनाविकृति—घटकोंके चारों ओर अपक्रांतिकर मोटापन, उपदंश कीटाणु स्पिरोकेटा (Spirochaeta pallida) अत्यधिक परिमाणमें (प्रथमावस्थामें मलके भीतर)।

C. प्राकृतिकचिह्न—यकृद्वृद्धि नाभिके नीचेतक। प्लीहाभी बढ़ी हुई। क्वचित् जलोदर। इस तरह कामलाभी।

२. जन्म सिद्ध फिरङ्ग लक्षण देरसे प्रकाशित-इस प्रकारमें संपादित फिरङ्गके उपद्रवके समान यकृतका परिवर्त्तन, किन्तु कामला प्रायः नहीं होता।

विशीर्णताग्रस्त यकृद्दाल्युदर रोगमें बालकको शान्त निद्रा नहीं मिलती। अकस्मात् चमककर जाग जाता है। कोष्ठबद्धता, नेत्रके निम्न भागमें काला मण्डल, मांस पेशियोंमें विकृति, मूत्रमें यूरिक एसिड बढ़जाता, मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्लहोना आदि लक्षण मिलते हैं। जन्मसिद्ध अन्य उपदंशज लक्षण भी रोग विनिर्णयमें सहायक होते हैं।

(आ.) संपादित फिरंग—कभी-कभी कामलाकी प्राप्ति, संभवतः क्वचित् पित्तनलिकाका प्रदाह तथा आशुकारी पित्ताशय प्रदाह।

तृतीयावस्थामें—सामान्यत: फिरंग होनेके १०-२० वर्षके पश्चात् क्षत। १. गोंदसदृश छोटी बड़ी चिपचिपी गमाग्रन्थि (Gummata), तथा २. यकृत्के क्षत चिह्न ये युगपत् होते हैं।

लक्षण—इसके मुख्य ३ समूह हैं।

१. यकृत्पर अर्बुद (गमा) होनेपर स्पर्शग्राह्य पिण्ड, सामान्यतः यकृत् बड़ा और मृदु। दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेश या हृदयाधारिकप्रदेशमें वेदना। प्लीहा स्पर्श ग्राह्य। प्रायः इनके अतिरिक्त अन्य उपदंशज चिह्नोंका अभाव। नूतन ग्रन्थि (Neoplasm) से विभेदक निदान कठिन। वॉशरमेनकी प्रतिक्रिया निर्णयात्मक। फिरंग चिकित्सा लाभदायक, कामला क्वचित् ही।

२. विशीर्ण यकृद्दाल्युदर सदृश स्थिति (क्षत चिह्नयुक्त होनेपर—ज्वर और

जलोदर। कामलाकी उत्पत्ति। यकृत् किनारा विषम, यदि स्पर्श ग्राह्य है तो, जलोदर बढ़नेपर शोथ उपस्थित। मलिन त्वचा, मलावृत्त जिह्वा, क्षुधानाश, उदर किसी का कठिन और किसीका नरम, उदरमें अति वेदना, आमाशय, अन्त्र और नासिका से रक्तस्राव, शक्तिका अति क्षय आदि। अधिक अतिसार, सर्वाङ्ग शोथ या रक्तस्राव होनेपर रोग असाध्य।

संभवतः गमा या अनुप्रस्थ द्वार सीतामें ×क्षत चिह्नसे उत्पन्न प्रतिहारिणी शिराका अवरोध।

३. प्लीहा वृद्धिसह होनेपर—प्लीहोदर Splenic Anaemia; बेण्टीका यकृत्प्लीहोदर (Banti's disease), विवर्धन मय यकृद्दाल्युदर (Hanot's Disase) या मदात्ययज कामला तथा प्लीहा वृद्धि (Splenomegalia) की विविध अवस्थाओंके अनुरूप लक्षणोंका प्रकाशन। समय-समयपर विवर्धन युक्त यकृद्दाल्युदर, बेण्टी रोग तथा प्लीहोदरके सदृश स्थिति उपस्थित। क्वचित् पूयोत्पत्तिके लक्षण प्रकाशित।

उपदंशज यकृद्दाल्युदर विनिर्णय—उपदंशके पूर्ववृत्त या कुलवृत्त और उपदंशके विषजन्य इतर लक्षण आदि सहायक होते हैं। कभी-कभी उपदंशज अनेक ग्रन्थियोंके बदले एकही बड़ी ग्रन्थि (Gumma) होजाती है। कितनेक रोगियोंमें ज्वर आदि लक्षण होनेसे यकृद्प्रदाहसह विद्रधि (Amoebic hepatitis and Abscess) की भ्रान्ति होजाती है। किन्तु यकृद्विद्रधिके पूर्वरूपमें प्रवाहिका रहता है, अतः प्रवाहिकारूप पूर्णवृत्त है या नहीं? इस बातका निर्णय होनेपर यकृद्विद्रधिका संशय दूर होजाता है।

चिकित्सा—सामान्यतः उपदंश रोगकी चिकित्सा करने, मल्लप्रधान औषधि देनेसे लाभ पहुँच जाता है।

वक्तव्य—क्वचित् अधिक मात्रामें मल्लप्रधान औषधिका अन्तःक्षेपण करते रहनेपर चिकित्सा बन्द करनेके कुछ सप्ताह या महीनोंके बाद आशुकारी पित्ताशय प्रदाह उपस्थित होता है। यह ३ प्रकारका होता है। १. सौम्य कामला कुछ दिनोंके लिये; २. घातक-वर्द्धनशील आशुकारी तन्तुनाश तक; ३. विरामसह कामला आभ्यन्तरिक पीड़ा और यकृद्वृद्धि।

(२) बालपैत्तिक यकृद्दाल्युदर

इन्फेण्टाइल बिलियरी सिरोसिस, इन्फेण्टाइल लिवर।

Infantile biliary cirrhosis infantile liver.

यह विषम व्याधि विशेषतः नगरनिवासी बच्चोंको होती है। यह रोग ८ से १३

×यकृत्में निम्नतलपर आगेकी ओर चतुरस्र पिण्डिका (Quadrate Lobe) और पीछेके किनारके समीप दीर्घ पिण्डिका (Caudate Lobe) रही हैं। इन दोनोंके बीचमें द्वारसीता (Porta Hepatis or Transverse Fissure) नामक खाई रही है।

मास तककी आयुवाले छोटे बच्चोंको अधिक और बड़ी आयुवाले बच्चोंको कम होता है। यह रोग प्रारम्भावस्थामें सामान्य ज्वरसह होता है। फिर कामला और जलोदर होजाते हैं।

इस रोगका आविर्भाव बहुधा दांत आनेके समय होता है। इसमें घोर पीड़ा होती है। यकृत् खूब बढ़ जाता है। किसी-किसी स्थानपर इस रोगसे एकही माता-पिताके अनेक बच्चे मर जाते हैं किसी-किसी देशके जलवायुकी विचित्रताके हेतुसे इस रोगका आक्रमण अधिक होता है। क्वचित् किसी-किसी माता-पिताके पुत्र सन्तान सब चले जाते हैं। कन्याएँ सब जीवित रह जाती हैं। किसीकी कन्याएँ सब मर जाती हैं और पुत्रोंको कोई बाधा नहीं पहुँचती। इसी तरह किसीको पहली २-४ सन्तान मर जाती हैं फिर नई संतानोंपर आक्रमण नहीं होता।

रोग प्रकार—

अ. बहुखण्डीय या प्रतिहारिणी शिरावरोधज।

आ. पैत्तिक या एक खण्डीय।

इ. फिरंगज यकृतदाल्युदर।

चित्र नं० ७

बहुखण्डीययकृद्दाली पीड़ित ४ वर्षका बालक

चित्र नं० ८

प्रवर्द्धित यकृद्दाली, जलोदर और हाथ-पैरोंके शोथसह (कामला रहित)

अ. बहुखण्डीय यकृद्दाल्योके निदानसह संक्षेपमें लक्षण—इसके मुख्य ३ हेतु हैं।

१. जन्मार्जित—यह कुटुम्बके अनेक बच्चोंपर आक्रमण करता है। मातामहके कुटुम्बसे संप्राप्त विष माताके गर्भाशयमें पहुँचनेपर यह उत्पन्न होता है।

२. उदरवृद्धि या बालकके बढ़नेका अभाव—इस प्रकारमें यकृत् अधिक बड़ा हुआ और कठोर, प्लीहाकी भी वृद्धि, गाल और नाकपर कैशिकाओंका प्रसारण (Telangiectasis), उदरके ऊपर शिराओंकी प्रतीति तथा संभवतः जलोदरकी प्राप्ति कामला हो, तो अन्तिमावस्थामें।

३. बालकोंकी वृद्धिमें प्रतिबन्ध—आयु बढ़नेपर स्पष्ट प्रतीत। मानस शक्ति अविकृत।

बाह्यस्थिति शोचनीय सामान्यतः रक्तमें पित्तरञ्जक वृद्धि (Cholaemia) से १० वर्षकी आयुके पहले मृत्यु।

चिकित्सा—लक्षणानुसार।

आ. पैत्तिक यकृद्दाल्यीका निदान—

१. पित्त नलिकाका जन्मसिद्ध अभाव।

२. यकृत्के घटकोंका मंद आशुकारी नाश।

इ. फिरंगज यकृद्दाल्यी—प्रायः यह स्थिति जन्मार्जित है। क्वचित् बड़े बच्चेको भी यह रोग होजाता है इसका वर्णन फिरंगज यकृद्दाल्युदरमें पहले किया गया है।

बहुखण्डीय प्रकारके लक्षणोंका विशेष विचार—आक्रमण शनैः-शनैः होता है। दीर्घकाल तक बोध ही नहीं होता। प्रारम्भिक अवस्थामें शिशुके हाथ-पैरोंके तल भागमें उष्णता, तृषावृद्धि, कोष्ठबद्धता, कभी-कभी उबाक और वमन होना, यकृत्का सम्मुख प्रदेश गोल, कठिन और बढ़ा हुआ भासना, ज्वर रहना, कभी-कभी ज्वर बढ़ जाना, कभी-कभी प्लीहा-वृद्धि होजाना, ज़मीनपर सोनेमें शान्ति प्रतीत होना, स्वभावसे उग्र बन जाना, अरुचि, शिथिलता और उदासीनता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

बहुखण्डीय प्रकारमें यकृत् शनैः-शनैः बढ़ता ही जाता है। अन्तमें नाभिके नीचे जघन चूड़ा (Crest of Ilium) तक पहुँच जाता है। जैसे-जैसे यकृत् बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अग्निमान्द्य, मलावरोध और ज्वरमें भी वृद्धि होती जाती है। रोगी कृश और बलहीन होजाता है। यकृत्के आगेका किनारा प्रारम्भमें कठिन, गोल, उन्नत और श्लक्ष्ण। फिर धीरे-धीरे पतला और धारयुक्त (Sharped) होजाता है। साथ-साथ ज्वर रहने लगता है, और प्लीहा भी बढ़ जाती है। यकृत्प्लीहा, दोनों बढ़ जानेसे उदर ऊँचा उठ आता है और उदरकी शिराएँ भी बाहरसे प्रतीत होने लगती हैं।

प्रारम्भमें मल पीले रंगका, फिर मैले रंगका और अन्तमें श्वेत वर्णका हो जाता है। नेत्र निस्तेज और शुष्क बन जाते हैं, तथा प्रस्वेद नहीं आता।

हाथ-पैर और उदरपर शोथ आकर जलोदरकी उत्पत्ति, अग्निमान्द्य, उदर कठिन हो जाना, कण्ठ शुष्क होजाना आदि लक्षणोंके पश्चात् कामलाकी उत्पत्ति होती है। फिर नेत्रावरण, नेत्रकी श्लैष्मिककला और त्वचाका रंग पीला होजाता है। पेशाब पित्तमिश्रित पीला होजाता है। पश्चात् यकृत्का ह्रास होने लगता है। अंतमें दुर्बलता और आक्षेपक वातके झटके आने लगते हैं और बालककी मृत्यु होजाती है।

यकृदावरण स्थूल नहीं बनता, नवनिर्मित सौत्रिक तन्तुओंके साथ विशेष रूपमें जीवकेन्द्र (Nucleus) प्रतीत होते हैं और वे रक्तप्रणालियोंमें फैल जाते हैं। प्लीहा बढ़ जाती है, किन्तु रक्त परीक्षा करनेपर विषम ज्वर या इतर किसी रोगके कीटाणुओं-की प्रतीति नहीं होती।

साध्यासाध्यता—यह रोग बहुधा असाध्य है। अनेक बालक ३ से ६ मास-तक दुःख भोगकर मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। बालक बड़ी आयुवाला होनेपर सुधर जानेकी अधिक आशा रहती है।

चिकित्सोपयोगी सूचना—आगे उदर रोग चिकित्साके साथ विस्तार पूर्वक दी जायगी।

३. यकृत्में रक्ताधिक्य

कॉञ्जेशन ऑफ दी लिवर-हाइपरिमिया

Congestion of the Liver Hyperaemia.

रोग परिचय—यकृत्की सब रक्तवाहिनियोंमें अधिक रक्तसंचार होजानेसे यकृत्में रक्तकी वृद्धि होजाती है। फिर यकृतपर दबानेसे वेदना होती है। पचन संस्थानमें विकृति, मन्द ज्वर और सामान्य कामला आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

इस रोगके २ प्रकार हैं। प्रतिरोधी (प्रबल) रक्ताधिक्य (Active Con-gestion) और अप्रतिरोधी (मंद) रक्ताधिक्य (Passive Congestion)। धामनिक रक्तवृद्धिको एक्टिव हाइपरिमिया तथा केशवाहिनियोंमें रक्तवृद्धि होनेपर पैसिव हाइपरिमिया कहते हैं।

अ. यकृत्में प्रतिरोधी रक्ताधिक्य

(Active Hyperaemia)

निदान—संक्रामक ज्वर मलेरिया आदि और प्रवाहिकाके कीटाणुजन्य यकृत्प्रदाह, यकृत्मेंसे जानेवाले रक्तप्रवाहमें प्रतिबन्ध, रक्तस्रावका स्वाभाविक रोध होजाना, अति शराब, अति भोजन, चरपरे और विदाही पदार्थोंका अधिक सेवन, जीर्णमलावरोध तथा आलसी स्वभाव आदि कारणोंसे इस रोगकी उत्पत्ति होती है।

मासिकधर्म और रक्तार्शके रक्तप्रवाहका अवरोध होजानेसे हृदयके दक्षिण अलिन्दमें रक्त लानेवाली अधरा महाशिरा (Inferior Vena Cava) पर दबाव पड़ने या इतर किसीभी हेतुसे दबाव आजानेसे रक्तका संग्रह होजाता है। मके

अतिरिक्त आमाशय और अन्त्रमें प्रदाह होने, या अधिक शीत लगजानेपर भी इस रोगकी उत्पत्ति होजाती है। यह रोग विशेषतः नाज़ुक प्रकृतिवालों, गद्दी तकियेपर बैठे रहनेवाले और गरिष्ठ भोजन करनेवालेको होजाता है।

लक्षण—यकृत्‌में पीड़ा, शिरदर्द, उबाक और मलावरोध, ये मुख्य हैं। तथा यकृत्प्रदेशमें भारीपन, दबानेसे पीड़ा सहन न होना, यकृद्वृद्धि, दक्षिण हृदयाधारिक प्रदेश (Epigastric region) में भारीपन और खिंचाव, अग्निमान्द्य, अजीर्णके लक्षण, मुँहमें कड़वापन, अँकुरमय जिह्वा, अफारा, कभी-कभी वमन, शुष्क कास कभी-कभी पतले दस्त होना, मानसिक व्याकुलता, निस्तेजता, दुर्बलता, किञ्चित् कामला, मन्द ज्वर, रक्तकी हीनावस्था, सामान्य रीतिसे दक्षिणस्कंध प्रदेशमें अंसफलक (Scapula) के ऊपरसे बाहुतक मृदुवेदना होना, हाथ-पैरोंमें ऐंठन, बार-बार जम्भाई आना, चक्कर आना, निद्रानाश और हृदयकी गतिमें वृद्धि (Palpitation) आदि लक्षणभी प्रकाशित होते हैं। कूदने या ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरनेपर यकृत्‌में वेदना होती है। एवं छातीमें तीव्र वेदना और अफाराके हेतुसे भी रोगीको अधिक कष्टका अनुभव होता है।

उपचार करनेपर इस रोगके लक्षण सामान्य रूपसे कम होजाते हैं या शमन होजाते हैं, किन्तु चिरकाल तक रक्तसंचय और यकृद्वृद्धि होनेपर जब थोड़ी-सी भूल होजाती है, तब तीव्र प्रदाह और स्फोटकोंकी उत्पत्ति होजाती है। पेशाबके वर्णमें गूढ़ता, अति पीलापन या लाली और गाढ़ापन आजाता है। यदि मूत्रको कुछ समयतक रहने दें, तो क्षाररूप प्रक्षेप (Lithates) तल भागमें बैठजाता है।

यदि रोग दीर्घकालतक रह जाय, तो रक्तार्शकी उत्पत्ति होजाती है और नेत्रके श्लेष्मावरणका वर्ण पाण्डु होजाता है। यदि यकृत्पर ठेपन किया जाय, तो घनध्वनि स्वाभाविककी अपेक्षा अधिक दूरतक फैल जाती है। आशुकारी रक्तसंचयसह यकृद्-वृद्धिके लक्षण यकृत्प्रदाहके सदृश होजाते हैं। परन्तु लक्षणोंमें कुछ न्यूनता रहती है। यकृत्प्रदाहमें ज्वर रहता है, इसमें नहीं रहता। कदाच ज्वर हो, तोभी मन्द रहता है।

प्रभेदक निदान—सामान्य कामला (Catarrhal Jaundice) और इस यकृद्‌में रक्ताधिक्यके लक्षणोंमें समानता होनेसे अनेक बार भ्रम होजाता है। किन्तु कामलाके रोगारम्भमें आमाशय और अन्त्रविकारके लक्षणसह प्रबलतर कामला उत्पन्न होता है। तब इस रोगमें ये सब लक्षण अपेक्षाकृत अस्पष्ट रहते हैं। इस रोगमें किञ्चित् कामला और थोड़ी-सी यकृद्वृद्धि होती है।

साध्यासाध्यता—आहार-विहार नियमित रखनेपर रोग शमन होजाता है। अपथ्य सेवन करनेपर बार-बार रोगका आक्रमण होकर अंतमें यकृद्दाल्युदरकी प्राप्ति होजाती है।

चिकित्सोपयोगी सूचना—रोगीको कुछ दिनोंतक पूर्ण विश्रान्ति देनी चाहिये। भोजनमें केवल दूध। प्रतिदिन प्रातःकालको पतले दस्त लानेवाला विरेचन

मेग सल्फ (मेग सल्फ और केलोमल) देते रहें। यकृत्पर सेक करना हितकारक है। उत्तरकालमें कमरपर पट्टा बाँधना चाहिये।

आ. यकृत्में अप्रतिरोधी रक्ताधिक्य

Passive Hyperamia, Nutmag, Liver, Cordic Liver.

यकृत् कंदिकाओंके मध्य मण्डलको प्राणवायुकी प्राप्ति कम होने और रक्तसंग्रह होनेसे जायफल सदृश यकृत् (Nutmeg liver) की आकृति होजाती है। हृदय प्रसारण होनेपर यकृत्की बहिर्गामी रक्त वाहिनियोंपर दबाव बढ़ता है। फिर परिणाममें रक्तवृद्धि होजाती है।

निदान—१. हृदयकी क्षति—विशेषतः हृदयके दक्षिण कपाटका द्वार सकड़ा होने (Mitral Stenosis) पर शोषण क्रिया (Suction) यथोचित नहीं होता।

२. फुफ्फुसविकृति—फुफ्फुसके वायुकोषोंका प्रसारण और चिरकारी श्वासनलिका प्रदाह। फुफ्फुसके अन्तः स्थानका सौत्रिक तन्तुओंद्वारा संकोच। अति क्वचित् उरः पंजरके भीतर अर्बुदोत्पत्ति और धमन्यर्बुद (Aneurysm).

लक्षण—निमित्तके अनुरूप।

१. आमाशय प्रसेक-अफारा आदि रोग बढ़नेपर सर्वाङ्ग शोथ, मंदकामला, क्वचित् रक्तवमन।

२. यकृत् बढ़ा हुआ, आयतन बारंबार घटने बढ़नेवाला, रक्तवमन होजानेपर आकृति ह्रास, रोगकी प्रचण्डता होनेपर भी मृदु, स्पन्दित यकृत् (आगेसे पिछली ओर की परीक्षा करनेपर प्रेरित स्पन्दनमें परिवर्त्तन) क्वचित् प्लीहावृद्धि।

सामान्यतः पूर्णभोजन करने या शीत लगनेपर यकृत्वृद्धि तथा विरेचन देनेपर यकृद् ह्रास होता है।

शारीरिक विकृति—रोग जीर्ण होने या बार-बार वृद्धि होती रहनेसे यकृत्के संयोजक तन्तुओं (Connective tissue) की वृद्धि (Hypertrophy) होजाती है अथवा सौत्रिक तन्तुओंकी उत्पत्ति होजाती है। एवं पित्तस्राव करानेवाले कोषाणु आंकुचित होते हैं इन सब स्थानोंमें यकृत्का बाह्यप्रदेश मृदु तथा यकृत्के भीतरका भाग घन और दृढ़ होजाता है। एवं काटनेपर उसमेंसे बहुत रक्तस्राव होता है।

रोगकी जीर्णावस्थामें यकृत्की स्थिति विशीर्णतामय यकृद्दाल्युदरके सदृश होजाती है। रोगकी उत्तरा अवस्थामें यकृत्के आकार और अवयवोंका ह्रास होजाता है अथवा यकृत् मेदापक्रान्ति (Fatty Degeneration) अथवा सिक्थापक्रान्ति (Lardaceous Degeneration) से ग्रसित होता है।

मेदापक्रान्ति होनेपर कोषाणुओंका नाश होकर मेदवृद्धि होती है। और सिक्थापक्रान्ति होनेपर संयोजक तन्तु मोमके सदृश होजाते हैं। इस अपक्रान्तिका प्रारम्भ यकृत्की कण्डिकाओं (Lobules) के भीतर रही हुई सूक्ष्मवाहिनियोंके स्थानमेंसे होता है। इस पदार्थका यकृत्के कोषाणुओंपर दबाव पड़नेसे वे चिपक जाते हैं। फिर यकृत्-कोषाणु मेदग्रसित होकर संकुचित होजाते हैं।

साध्यासाध्यता—हृदय विकारकी स्थिति और रोगके स्वरूपपर साध्यासाध्यता का आधार है। हृदयमें अधिक विकृति न हुई हो, तो रोग साध्य माना जाता है।

चिकित्सा—पतले दस्त लानेवाला विरेचन देते रहें। यकृत्में अधिक वेदना होनेपर पुल्टिस बांधें या ३-४ जौंक लगावें। विशेष उपचार कारण अनुरूप करते रहें।

(४) प्लीहावृद्धि

स्प्लैनिक एन्लार्जमेण्ट स्प्लेनोमेगली।

Splenic enlargement-Spleno megaly.

प्लीहा-(Spleen) देहमें रही हुई स्रोतरहित ग्रंथियों (Ductless Glands) में सबसे बड़ी है। इसका रंग प्रति बैंजनी (Dark purplish) है। यह उदरके भीतर बाँयें अनुपार्श्विक प्रदेशमें महाप्राचीरा पेशीके नीचे ९-१० और ११ वीं पर्शुकाके भीतर रही है। इसके ऊर्ध्व सिरका प्रवेश हृदयाधारिक प्रदेशमें हुआ है।

प्लीहाका आकार और वज़न—प्लीहाकी आकृति और वज़न भिन्न-भिन्न मनुष्योंकी देहमें भिन्न-भिन्न आयुमें भिन्न-भिन्न होते है। एवं पृथक्-पृथक् संयोगोंमें भी आकृतिमें परिवर्त्तन होजाता है। सामान्य रीतिसे एक युवा मनुष्यके देहमें प्लीहा ७-८ अँगुल लम्बी, ४ अँगुल चौड़ी और २ अँगुल मोटी होती है। लगभग यह लम्ब-चतुष्कोण या त्रिकोणाकार (Triangular) की है। इसका महाप्राचीरापेशीकी ओर रहा हुआ भाग बहिर्गोल है। इसकी आकृति टूटे हुए घड़ेके मोटे कपाल जैसी है। वज़न लगभग १५ तोले है। विविध संक्रामक रोग (विषम ज्वर) आदिसे इसकी आकृति और वज़न, दोनोंमें वृद्धि होजाती है। प्लीहोदरमें तो इसकी इतनी वृद्धि हो-जाती है कि, कभी-कभी यह उदरके दक्षिणपार्श्वके भी बहुत भागको रोककर कमरतक पहुँच जाती है।

संपूर्ण प्लीहा उदर्य्याकलासे आच्छादित है। यह प्लीहा तीन कलाबंधनियों (Aponeurosises) द्वारा इतर अवयवोंके साथ सम्बन्धमें आती है और अपने स्थानमें यथोचित रूपसे रहती है। एक कलाबंधनी आमाशयके स्कंध भागके साथ, दूसरी महाप्राचीरा पेशीके साथ और तीसरी बाँयें मूत्रपिण्डके साथ सम्बद्ध कराती है।

प्लीहाकी परीक्षा करनेपर उदर्य्याकलाके एक स्तरके नीचे दूसरा स्तर प्रतीत होता है। जो स्तर स्थितिस्थापक गुणयुक्त स्नायु सूत्रों (Fibro-elastic Capsule) का बना हुआ है। इस स्तरकी शाखाएँ प्लीहाके भीतर प्रवेश करती है और उसमें अनेक खण्ड तैयारकर देती है। ये सब खण्ड प्लीहिक वस्तु (Spleen pulp) नामक गहरे लाल पिंगल (Dark reddish-brown) मावेसे पूर्ण है। अभिप्लीहिक धमनी (Splenic Artary) की सूक्ष्म शाखाओंके अन्तभागमेंसे इस मावेके भीतर रक्त प्रवेश करता रहता है।

प्लीहा कार्य—आयुर्वेदके मतानुसार प्लीहा रञ्जक पित्तकी उत्पत्ति करती है। ×डाक्टरीमत अनुसार—१. रक्तके भीतर लसीकाणु (Lymphocytes) तैयार करना; २. युवा होनेपर रक्ताणु तैयार करना; ३. जीर्ण रक्ताणुओंका ध्वंस करना; ४. प्रथिनोंके चयापचय करने में सहायता पहुँचाना, और मूत्राम्ल तैयार करना; ५. रक्ताणुओंका संचय करना, तथा ६. संक्रामक व्याधियों (विषम ज्वर, मोतीझरा आदि) का प्रतिकार करनेमें सहायता पहुँचाना। इनके अतिरिक्त इस प्लीहाका सम्बन्ध पचन क्रिया के साथ भी रहा है।

प्लीहावर्द्धक व्याधियाँ

१. रक्तरोग—अ. रक्तमें श्वेताणु वृद्धि; आ. प्लीहोदर और बेण्टीका वर्द्धन शील यकृत्प्लीहावृद्धि मय रोग; इ. घातक पाण्डु; ई. जन्मार्जित विशीर्णतामय पाण्डु (Aplastic Anaemia); उ. रक्ताणुओंकी वृद्धि (Erythraemia); ऊ. मूत्रमें पित्ताभाव युक्त कामला (वीलकारोग–Acholuric femily Jaundice-Weil's disease); ए. वॉन जेक्सका पाण्डु (बालकोंका मिथ्या श्वेताणु वृद्धिमय पाण्डु–Von Jaksch's Anaemia); ऐ. होजकिनका वर्धनशील पाण्डु (Hodgkin's disease Lymphedenoma); ओ. रक्तस्रावीय स्थिति (Hoemorrhagic diathesis)

वक्तव्य—किसीभी प्रकारके जीर्ण पाण्डुरोगमें प्लीहा बढ़ जाती है।

२. उद्भिद् कीटाणु (Bacteria) और इतर विशेष संक्रामक कीटाणु जन्म रोग, शोणित विषज सन्निपात (Septicaemia) तथा विशेष ज्वर आदि।
३. पैत्तिक यकृद्दाल्युदरसे सम्बन्धवाली स्थिति।
४. प्राणी कीटाणु (Protozoa) जन्य और ग्रीष्म कटिबन्ध प्रधान देशके संक्रामक रोग–विषम ज्वर, काला आज़ार, निद्रारोग (Trypanosomiasis) तथा वर्धनशील यकृत्प्लीहोदर (Sehistosomiasis) आदि।
५. क्षय कीटाणु जन्य ज्वर (Tuberculosis)।
६. फिरंग रोग (Syphilis)।
७. अस्थिवक्रता (Rickets)।
८. रक्तवाहिनियोंकी क्षति प्रधान रोग—तन्तुके नाशसे रक्तजमाव जन्य पाण्डु

× सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय १४ में कहा है कि:—

स खल्वाप्यो रसो यकृत्प्लीहानौ प्राप्य रागमुपैति ॥
रञ्जितास्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनाम।
अव्यापन्नाः प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते ॥ ६ ॥

(शरीरस्थेन तेजसा=यकृत् प्लीहासे उत्पन्न रञ्जक पित्तसे)

(Anaemic Infaract) प्लीहाकी रक्त वाहिनीमें परिभ्रामक (चल) शल्य (Embolus) या रक्तवाहिनीमें शल्योत्पत्ति (Thrombus) तथा हृदयावरोध आदि ।

९. क्वचित् अर्बुद और रसार्बुद रोगोंमें भी ।

१०. चयापचयमें मेद विकृति (Lipoidosis) और घातक रंजित मधुमेह (Bronze Diabetes or Haemochromatosis)

११. शुभ्रग्रथिन अपक्रान्ति जन्य व्याधि (Amyloid disease) ।

प्लीहाकी अति वृद्धिके सामान्य कारण—१. चिरकारी श्वेताणु वृद्धि, २. प्लीहोदर, ३. फिरंग, ४. विषमज्वर, ५. कालाआज़ार, ६. कुछ अन्यरोग, जिनमें क्वचित् अति वृद्धि होती है । रक्ताणुवृद्धि, हेनोटका यकृद्दाल्युदर, घातक रंजित मधुमेह, वंशागत प्लीहा वृद्धिमय पाण्डु (Gaucher's disease), यकृत् प्लीहोदर (Splenomegalic cirrhosis) ।

लक्षण—प्लीहा वृद्धि, यह स्वतन्त्र रोग नहीं है, लक्षण या उपद्रव रूपसे उपस्थित होता है । स्थानिक

वेदना, पाण्डुता, अशक्ति, बहुधा रक्तमें श्वेत जीवाणुओंकी संख्यावृद्धि, मंद ज्वर और जीर्ण ज्वरके लक्षण आदि कभी-कभी यकृत्भी साथ-साथ बढ़ने लगता है ।

चिकित्सकको स्पर्श परीक्षासे विदित हो सके, ऐसा मुख्य लक्षण प्लीहा-वृद्धि है । प्लीहाकी बाह्य किनारीमें एक खड्डा (Notch) है, इस हेतुसे यह इतर इन्द्रियोंसे पृथक् होजाती है । प्लीहावृद्धि होनेपर यह खड्डा हाथको लगता है । अन्यथा इस खड्डेको स्पर्श नहीं हो सकता । कितनेक रोगियोंमें अस्थिमार्दव, पूयभृत फुफ्फुसावरण या इतर कारणसे (प्लीहापर दबाव आजाने आदिसे) जब प्लीहा स्थान भ्रष्ट होकर नीचे चली जाती है, तब प्लीहावृद्धि न होनेपरभी विदित होजाती है ।

स्वस्थावस्थामें प्लीहाका बोध ठेपनद्वारा होता है । वामपार्श्वके भीतर नवम और एकादश पशुंकाके मध्यमें वाम कूर्चाधस्थ भागमें यह सुरक्षित रही है । इसके ऊपरके हिस्सेमें फुफ्फुस रहा है । इसकी परीक्षा करनेके समय एक कोन रखा (Axillary line) वाम कुक्षिके मध्यभागसे नाभि तक निकालें । उसपर अँगुलीद्वारा ठेपन करते हुए नीचे आनेपर किसी स्थानमेंसे घनध्वनि नहीं होती, परन्तु प्लीहावृद्धि होनेसे इस रेखापर प्रतिघात-ध्वनि घन होजाती है ।

अनुभव करने योग्य बाह्य लक्षण—

१. किनारीमें रहे हुए खड्डेका स्पर्श होना ।

२. श्वासोच्छ्वासके साथ प्लीहा ऊपर-नीचे होना ।

३. ठेपन करनेपर घनध्वनि आना ।

४. वृद्धि होनेपर भी आकारमें परिवर्त्तन न होना ।

५. प्लीहा श्लेष्मा किन्तु दृढ़ होजाना ।

व्यवच्छेदक लक्षण—प्लीहावृद्धि होनेपर निम्न व्याधियोंके लक्षणोंसे व्यवच्छेद करनेकी आवश्यकता रहती है।

१. आमाशयके सिरेपर कर्कस्फोट (Cancer) होनेपर ठेपन ध्वनि घन होती है; परन्तु उस रोगमें इतर लक्षण अधिक स्पष्ट होनेसे निर्णय होजाता है।
२. यकृत्के वामखण्डकी वृद्धि होनेपर ठेपन सम्बन्ध यकृत्के साथ रहनेसे विदित हो सकता है। प्लीहावृद्धिमें ठेपनका यकृत्तक अखण्ड सम्बन्ध नहीं रहता।
३. वृक्क स्थानके अर्बुद (Kidney tumours) और समीपमें अन्त्रपर ठेपन ध्वनि सौषिर (Tympanitic resonance) किन्तु प्लीहापर अन्त्र न होने से घन ध्वनि।
४. बीजकोषपर अर्बुद होनेसे वह नीचेसे ऊपर बढ़ता है, किन्तु प्लीहा ऊपरसे नीचे; इसपरसे दोनोंका भेद होजाता है।
५. आँतोंमें मल संचय होनेपर वह स्थान ऊँचा-नीचा और अनियमित प्लीहा वृद्धि समभावसे।
६. उदर-स्थित धमन्यर्बुद (Aneurysm) होनेपर पीठकी ओर वेदना तथा बढ़ने घटनेवाला स्पन्दन।

प्लीहावृद्धि विशेषतः उपद्रवात्मक है। तीव्र संक्रामक ज्वरमें प्लीहामें दृढ़ रक्तवृद्धि (Active congestion) तथा हृद्रोग और प्रतिहारिणी शिराके अवरोधमें मंद-रक्त वृद्धि (Passive congestion) होती है। क्षयज या उपदंशज चिरकारी पूय भाव (Chronic suppuration) होनेपर प्लीहाकी सिक्थापक्रान्ति (Waxy Degeneration) होती है। कीटाणु-जन्य विषसे भी सिक्थापक्रान्ति होजाती है। त्रिदोषजपाण्डु, हलीमक, रक्तमें श्वेताणु वृद्धि, प्लीहोदर (प्लीहावृद्धिसह पाण्डु) आदि रक्त संस्थानके रोगोंमें प्लीहाकी शनैः-शनैः वृद्धि होजाती है। परन्तु इन सब रोगोंमें मूल रोगोंके लक्षण भी होते हैं। बालकोंके बालग्रह, क्षय आदि रोगोंमें रोगकी तीव्रता या मन्दताके अनुरूप प्लीहावृद्धि त्वरित या शनैः-शनैः।

पूयमय रक्तसे प्लीहावृद्धि—रक्त पूयमय बननेपर प्लीहापर विद्रधि होजाता है। फिर प्लीहा बढ़ने लगती है, परन्तु इतर रोगोंके समान नहीं। इतर रोगोंमें वृद्धि निम्न भागमें क्रमशः होती है; तब विद्रधिमें वृद्धि किस ओर हो, यह अनिश्चित।

तीव्र ज्वरसे प्लीहावृद्धि—विषमज्वर, कालाआज़ार, आन्त्रिक ज्वर, पूयोत्पत्तिसे उत्पन्न ज्वर, क्षय ज्वर, उपदंशज ज्वर, प्रसूति ज्वर आदिमें प्लीहावृद्धि।

तीव्र ज्वर कुछ दिनोंतक रह जानेपर प्लीहा बढ़ जाती है, परन्तु जो रोगी बढ़ते ज्वरमें ताज़ा शीतल जल पीता है और भोजन करता है; वह प्लीहावृद्धिसे विशेष पीड़ित होता है। यदि प्लीहावृद्धि नूतन है, तो ज्वर दूर होनेपर स्वयमेव शान्त हो-जाती है। क्वचित् प्लीहावृद्धि जीर्ण होनेपर उसके साथ बहुधा मंद ज्वर भी रहता है; और अपथ्य (मधुर पदार्थ या तेज़ खटाई आदि) खानेपर ज्वर बढ़ जाता है। अतः

पथ्य पालनकर जीर्ण ज्वर और प्लीहावृद्धि नाशक उपचार करना चाहिये और ज्वर बढ़जाय, तब विषमज्वर नाशक औषधिका सेवन करना चाहिये।

प्लीहाक्षय—प्लीहामें क्षय कीटाणुओं (ट्यूबरक्युलोसिस) कीभी उत्पत्ति या प्रवेश हो सकता है। क्षयकीटाणुओंका प्रवेश होनेपर प्लीहामें रहे हुए विविध आकारके गोल खण्ड और उनमें भरा हुआ पनीरवत् द्रव्य (प्लीहिक वस्तु) सबका रूपान्तर होजाता है, चारों ओर बाजरीके दाने सदृश कण होजाते हैं; तथा इनकी वृद्धि होनेपर मध्य स्थल कोमल होजाता है।

चिकित्सा—मूल रोगके अनुरूप।

(५) प्लीहोदर

स्प्लैनिक एनिमिया-बैन्टीज़ डिज़ीज़

Splenic Anaemia—Banti's Disease.

रोग प्रकार—मुख्य २ प्रकार। अ. वयस्कोंका प्लीहोदर, आ. बालकोंका प्लीहोदर (बेण्टीका रोग)।

अ. वयस्कोंका प्लीहोदर

(Splenic Anaemia of Adults)

यह रोग विशेषतः बड़ी आयुवाले युवकों को पहले दश वर्षमें होता है, कभी छोटे बालकोंको भी होता है। यह रोग क्वचित् वंशागत और स्त्रियोंको भी होजाता है। यह फिरंगजन्य नहीं है।

शारीरिक विकृतिः—

१. प्लीहा—अति बढ़ी हुई, दृढ़ तथा मोटे आवरणमय। तन्तु नाशज जमाव सामान्य, विस्तृत सौत्रिक तन्तु। रिक्तस्थान प्रसारित और रक्तसे पूर्ण।

२. प्लैहिकी शिराएँ—प्रदाहपीड़ित (Phlebitis) और कितनीक सामान्य अवरोध युक्त। प्रतिहारिणी शिरा समान प्रभावित। अवरोधके हेतुसे अन्ननलिका और दूरवर्त्ती कितनीक शिराका प्रसारण।

३. मज्जा—सामान्यतः अपूर्ण विकासयुक्त। यकृद्दाली नहीं होती न लसीका ग्रन्थियोंमें परिवर्त्तन।

लक्षण—आक्रमण कालमें गुप्त (Insidious) पाण्डु अथवा अकस्मात् रक्तस्राव।

१. प्लीहा वृद्धि—नाभि या नीचे तक, मृदु और वेदना रहित, आक्रमणात्मक लक्षणके साथ।

२. पाण्डु—शनैः-शनैः वृद्धि, क्वचित् वेग पूर्वक। अन्तमें अति वृद्धि, बिना रक्तस्राव वृद्धि।

३. रक्तवमन--वर्षोंतक बार-बार अनियमित, बीचमें लम्बे समय तक

निवृत्ति, बारंबार अतिस्राव। घातकभी होसकती है। क्वचित् नासिका, मूत्रमार्ग या गुदासे रक्तस्राव।

रक्तपरिवर्त्तन—

१. रक्ताणु—सूक्ष्म रक्ताणु वृद्धि (Microcythemia), प्रायः ३० से ३५ लाख, १०-५०% रक्त रंजकसह।

२. श्वेताणुओं—की कमी। प्रति मिलीमीटर १००० से ३०००। सम्बन्ध सामान्य लसीकाणुओंकी वृद्धिसे।

३. चक्रिकाएँ—सामान्य या कुछ कमी।

अस्वाभाविक रक्ताणु या श्वेताणुओंकी क्वचित् उपस्थिति। जालदार रक्ताणु वमनकालमें रक्त जमनेके समय तथा आमाशयकी अम्लता सामान्य होनेपर।

आमाशय—अन्त्रके भीतर सामान्य पीड़ा अनिर्णित रूपसे। कामलाका अभाव।

रोगस्थिति—(१० से २० वर्षतक,) समय-समयपर रक्तवमनसह। कभी यकृद्दाल्ली नहीं होती। पाण्डु, रक्तस्राव या उपद्रवात्मक रोगद्वारा मृत्यु।

चिकित्सा—मण्डूर या कासीस भस्म अथवा लोह प्रधान औषधि अधिक मात्रामें दें। रक्तवमनकी पुनरावृत्ति न हो, तो सत्वर लाभ पहुँच सकता है।

बारंबार रक्तवमन होती हो और रोग गम्भीर स्थितिमें पहुँच गया हो, तो शस्त्र क्रिया द्वारा प्लीहाको निकलवा देना चाहिये।

आ. बालकों का प्लीहोदर

(बेण्टीका रोग—Banti's Disease)

इस रोगका आक्रमण बाल्यावस्थाके अन्तमें या यौवनोन्मुख (१५ से २० तककी आयुमें) होता है। यह रोग वंशागत नहीं है। जीव केन्द्रमय मज्जाणुओंकी रक्तमें उपस्थिति (Erythroblastosis) होनेपर गर्भस्थ शिशुको रोग बीजकी प्राप्ति हो सकती है।

निदान—कभी यह रोग सिस्टोसोमा मेन सोनी (Schistosoma Mansoni) से प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त अन्य अज्ञात कारणभी हैं।

शारीरिक विकृति—यकृत् आकुँचित होता है। कंडिकाओंके भीतर यकृद्दाल्लीकी प्राप्ति (सौत्रिक तन्तुओंकी रचना होती है, जो फिर आकुँचन या अपक्रान्ति कराते हैं)। इसके साथ प्लीहामें सूक्ष्म परिवर्त्तन होजाता है।

लक्षण—आक्रमणके साथ पाण्डु और प्लीहा वृद्धि। पाण्डुता मर्यादित। उस समय कामला नहीं होता। लसीका ग्रन्थियोंकी वृद्धि नहीं होती। १ से ३ वर्षके बाद कामला उपस्थित। प्रारम्भमें यकृद्वृद्धि। अन्तिमावस्थामें यकृद्दाल्ली, जलोदर और शीर्णताके लक्षण उपस्थित। पहलेभी यकृद्वृद्धि अधिक नहीं होती। इस रोगका रक्तस्राव करानेका स्वभाव नहीं। ३ से ५ वर्ष तक रोग रहता है।

हर्बर्ट फ्रेंचने डिफरेन्शियल डायग्नोसिज़में लिखा है कि इस प्लीहोदरमें मुख्य लक्षण वर्द्धनशील प्लीहावृद्धि है। गौण लक्षण पाण्डु, श्वेताणुह्रास, रक्तस्राव करानेका स्वभाव, विशेषतः आमाशयमेंसे। अन्तिमावस्थामें अनेक रोगियोंको यकृद्दाली, कामला और जलोदर। ऐसा होनेपर संज्ञा यकृत्प्लीहोदर (Splenomegalic Cirrhosis)। इसी तृतीयावस्थामें ही बेण्टीके रोगके लक्षणोंकी प्रतीति होती है।

इस रोगमें ज्वर अनियमित रहता है। यकृत्प्लीहापर दबानेसे पीड़ा होती है। इस यकृत्प्लीहोदर वृद्धिमय विकारका कारण टाइडीने बिलहार्जिया (सिस्टोसोमा) कृमि कहा है। ये कृमि कारण होनेपर प्रायः रक्तप्रवाहिका और रक्तमेह होजाते हैं और मलमूत्रमें उक्त कृमिकी प्राप्ति होती है।

यह रोग अति मंदगति वाला है। भगवान् धन्वन्तरि कथित आयुर्वेदीय प्लीहोदरके लक्षण "मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽति पाण्डुः" ये सब इस रोगमें प्रतीत होते हैं।

व्यवच्छेद निर्णय—

१. वयस्कोंका प्लीहोदर—यह रक्तस्राव कराता है। कभी यकृद्दालीकी प्राप्ति नहीं कराता। बेण्टीका रोग रक्तस्राव नहीं कराता, यकृद्दालीकी प्राप्ति कराता है।

२. प्लीहा वृद्धिसह यकृद्दाली—

अ. मद्यज यकृद्दालीमें रक्तवमन और जलोदर।

आ. फिरंगज यकृद्दालीमें वॉसरमेन परीक्षासे निर्णय होता है। यकृत् गांठदार।

इ. हेनोट के वर्द्धनशील यकृद्दालीमें यकृत्वृद्धि।

रोगस्थिति—लगभग ५ वर्ष तक।

साध्यासाध्यता—सर्वदा युवावस्थाके पहले ही मार देता है।

चिकित्सा—लोहका प्रभाव कम होता है। शस्त्रक्रिया भी पूरा लाभ नहीं पहुँचा सकती।

(६) जलोदर

एसाइटिस-हाइड्रोपेरिटोनियम-एब्डोमिनल ड्रॉप्सी

(Ascites-Hydroperitoneum- Abdominal Dropsy)

रोगपरिचय—इस रोगमें उदर्य्याकलाके भीतर जलका संचय होजाता है। कचित् उदर्य्याकलामें जलके स्थानपर रक्तद्रव, रक्तरंग या पायस (Chyle) होनेपर इन रोगोंको क्रमशः डॉक्टरीमें रक्तद्रवोदर, रक्तोदर और पायसोदर (Sero-peritoneum Haemoperitoneum, Chyloperitoneum) संज्ञा दी है।

निदान—प्रतिहारिणी शिराका स्थानिक अवरोध या कितनीक सार्वाङ्गिक स्थितिके हेतुसे कितनेक स्थानोंका अयोग्य अभिसरण, जिनमें फुफ्फुसावरणके निःसरण और इतर निःसरणकी स्वाभाविक व्यवस्थाका अभाव।

स्थानिक कारण—

१. प्रतिहारिणी शिराके अवरोधद्वारा यकृद्दाल्युदर, फिरंग, घातकक्षय ग्रन्थि, नूतन अर्बुद, पित्ताशयावरणका प्रदाह, स्थानिक उदर्य्याकला प्रदाह, धमन्यर्बुद आदिसे अवरोध।

२. चिरकारी उदर्य्याकला प्रदाहसे क्षय, नूतन ग्रन्थि, संलग्नता या घटकोंका पुनर्जनन और रसार्बुद आदि द्वारा।

३. प्रतिहारिणी शिरामें दृढ़ चल शल्य।

४. बेघटीकारोग-संभवतः प्रतिहारिणी शिरा संस्थानके रोगसे उत्पन्न।

५. अर्बुद—विशेषतः बीजाशयके कठिन अर्बुद।

सार्वाङ्गिक कारण—

१. हृदयकी शिथिलता—हृदयविकार, फुफ्फुस विकार या धमनी कोष काठिन्यसे उत्पन्न।

२. वृक्कप्रदाह—विशेषतः वृक्क कुण्डलिका स्रोतोंकी अपक्रान्तिजन्य।

सामान्यतः प्रतिहारिणी शिरावरोधक यकृद्रोग तथा हृदयकी शिथिलता, ये दो मुख्य हेतु हैं। वृक्कप्रदाह, उदर्य्याकलाको क्षय, (विशेषतः बालकोंमें) और कर्कस्फोट, ये हेतु कम समयमें होते हैं।

यकृत् या अग्न्याशयका घातक रोग, ये बार-बार जलोदर उत्पन्न कराते हैं एवं फिरंगरोगद्वारा उदर्य्याकलाप्रदाह होनेपर भी जलोदर होजाता है।

संप्राप्ति—किसीभी कारणसे जब यकृत्के भीतर सौत्रिक तन्तुओंकी अत्यधिक वृद्धि होजाती है, तब आमाशय और अन्त्र आदि स्थानोंसे लाया हुआ रक्त यकृत्में घुस नहीं सकता। फिर वह वापस लौटता है। इस स्थितिमें रक्तका कुछ अंश परिनाभिकायोजनी शिराओं (Para-Umbilical veins) द्वारा पुनः अधिश्रोणिका शिराओं (Iliac veins) और इतर संस्थानकी शिराओं (Systemic Veins) के प्रवाहमें मिल जाता है। इस तरह प्रत्यावर्त्तन (Collateral Circulation) होनेमें रक्तके बहुत भागको वापस लौटनेका मार्ग सत्वर न मिलनेसे प्रतिहारिणी शिराके समीप रक्त रुकता है। फिर शिराओंकी दीवारोंमेंसे जलांश टपकने लगता है, जो अन्त्रावरण (Peritoneum) में जाकर और संगृहीत होकर जलोदरकी सम्प्राप्ति करा देता है।

जब प्रतिहारिणी शिराका अवरोध होता है, तब उदर्य्याकलामें रस टपकनेके समान कुछ रस आमाशय और अन्त्रमें प्रविष्ट होकर इनको दूषितकर देता है। जिससे वहाँ प्रसेक (Catarrh) होकर अजीर्ण, अग्निमान्द्य, अरुचि, किञ्चित् रक्तमिश्रित वमन आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। क्वचित् आमाशय और अन्त्रकी रक्तवाहिनियाँ रक्तसे पूर्ण भर जानेपर फूट जाती हैं। फिर आमाशयमें फूटनेसे रक्तवमन (Haematemesis) और अन्त्रमें फूटनेसे काले रंगके रक्तसे मिश्रित मल जाता है। यदि अवरोधके हेतुसे उपगुदाकी शिराओंमें रक्तपूर्ण भर जाय, तो अर्श (Haemorrhoids) की प्राप्ति होजाती है।

यदि प्लीहाकी शिराओंमें रक्तवृद्धि हो गई, तो प्लीहावृद्धि होजाती है। एवं पैरोंकी अधिश्रोणिका शिराओं (Iliac veins) की ऐसी ही स्थिति होनेपर द्रवरस टपककर पैरोंपर शोथ (Oedema of the legs) आ जाता है।

इस तरह प्रतिहारिणी शिराके अवरोधसे आपत्ति होनेपर उसमेंसे मुक्त होनेके लिये अन्तरशक्तिको नया मार्ग निकालना पड़ता है। जिससे उदर परकी शिरायें बड़ी होने लगती हैं। फिर अन्य शिराके साथ बड़ा संगम होकर नूतन मार्गद्वारा संचित रक्त हृदयमें जाने लगता है। इसी हेतुसे उदरपरकी शिराएँ फूल जाती हैं ये शिराएँ दर्शाती हैं कि, प्रतिहारिणीशिराके रुके हुए रक्तमेंसे कुछ भागका इतर शिराओंमें प्रवेश हो रहा है।

फुफ्फुस और हृदयकी क्षीणताके हेतुसे अशुद्ध रक्त पूर्णरूपसे हृदयसे नहीं खींचा जाता। जिसमें निम्न अशुद्ध रक्तवाहिनियाँ पूर्ण रूपसे भरी हुई रहती हैं। फिर उनके कोष विस्तृत होकर उनमेंसे रक्त-रस जब चूने लगता है, तब उदर्य्याकलामें संगृहीत होकर जलोदरकी संप्राप्ति कराता है। इस तरह वृक्ककार्य योग्य न होनेपरभी जलोदरकी उत्पत्ति हो सकती है।

कमरकी आगेकी ओरसे ऊपर चढ़कर छातीमें होकर गलमूलिका शिरामें प्रवेश करनेवाली वाम रसकुल्या (Thoracic Duct) नामक मुख्य रसायनीपर उरोगुहामें अर्बुदादिके हेतुसे दबाव आ जानेपर अवरोध होजाता है। फिर श्वेतलसीकोदर (Chylosus Ascites) होजाता है।

तरल संचय प्रदाहज और अप्रदाहज होता है। यदि प्रदाहसे हुआ हो, तो रसायनीमें बहनेवाला शुद्ध रस (लसीका-Lymph), जो सब धातुओंका पोषक है, और रक्तमेंसे पतला स्वच्छ जलमय पदार्थ रूपसे टपककर बाहर आता है, वह संचित होता है। यदि अप्रदाहिक जलोदर हुआ हो, तो पायस (Chyle) संगृहीत। इस रसकी उत्पत्ति भोजनके साररूप द्रव भागमें यह दूधके सदृश प्रतीत होता है। यह अन्त्रकी दीवारोंमेंसे पयस्विनि (Lacteals) रसायनियोंद्वारा शोषण होकर रसप्रथा (Cisterna chyli) में प्रवेश करता है। फिर यह रस रसकुल्या, गलमूलिका शिरा और उत्तरामहासिराद्वारा हृदयके दक्षिण अलिन्दमें प्रवेश करता है, उसमें प्रतिबन्ध होनेपर शिराओंकी दीवारोंसे रस स्रावित होकर उदर्य्याकलामें संचित होने लगता है।

लक्षण—वर्द्धनशील उदर। महाप्राचीरापर दबाव, उरःस्थान और उदरके अवयवोंपर प्रतिबंधके हेतुसे विविध लक्षणोंकी उत्पत्ति।

जलोदर पीड़ित

६ वर्षका बालक

शारीरिक चिह्न—

१. दर्शन परीक्षा—पार्श्वभागमें विविध प्रकारका प्रसारण। द्रव अधिक होनेपर दृढ़ त्वचा, उदरपर श्वेत पंक्तियों (Linea Albicantes) की प्रतीति, नाभि समुन्नत, उत्तान शिराएँ स्फीत, नीचेसे ऊपरकी ओर प्रवाहगमन (प्रतिहारिणीशिराके अवरोध होनेपर अत्यन्त), नाभिके चारों ओर शिराओंका प्रसारण, नाभिके चारों ओर विचित्र देखाव (विशेषतः यकृद्दाल्युदरसह होनेपर)।

२. स्पर्श परीक्षा—तरल अत्यन्त विचलित, तरलकी उदरमें इधर-ऊधर गति, अंगुलियाँ लगानेपर तरलकी कलामेंसे कठिन अवयव या अर्बुद हो, तो उसका स्पर्श होना आदि।

३. ठेपन—तरंगोत्पत्ति मंद (Dull), आवाज़का उदरमेंसे जलसंचलनकी आवाज़। पहले पीठपर और फिर पार्श्वभागमें ठेपन करें। कम तरल हो, तो गुल्फ-कूर्पर स्थिति (घोड़के समान स्थिति) में रखकर नाभिके पास ठेपन करें। पार्श्व भागमें मंद आवाज़। तरल अधिक होनेपर सर्वत्र मंद आवाज़।

रक्तजल संचय—स्वच्छ मंद पीले रंगका। आपेक्षिक गुरुत्व कलामेंसे टपके हुए द्रवका-वृक्क प्रदाहमें १०१५से कम उदर्य्याकलाके प्रदाहसे उत्पन्न तरलका १०१५ से अधिक (क्वचित् १०१५ तक) शुभ्रग्रथिनमय होनेपर प्रायः बाह्यप्रभाव बिना टुकड़े जम जाना।

रक्त संग्रह—सामान्यतः क्षयमें कर्कस्फोटमें अत्यधिक परिमाण, क्वचित् यकृद्दाल्युदरमें। इनके अतिरिक्त कभी गर्भधारण होकर फटनेपर बीजवाहिनीकी नलिकामें।

पृथक् वर्णमय तरल संचय—

अ. सच्चा पायस—वसाके हेतुसे पीताभ अस्वच्छ तरल। जो सतहपर होता है, ईथरद्वारा साफ होता है। कभी फाइलेरिया कृमि (नारुके कृमि) का रस कुल्यापर असर होनेपर भी पायसोदर होजाता है।

आ. मिथ्या पायस—कृत्रिम वसाके हेतुसे वर्णभेद। मद्यसारमें घुलन शील, ईथरमें अघुलन शील। कुछ अंशमें सच्चीचर्बी। छिद्र भेदसे पृथक्ता। परिणाम खराब।

रोगविनिर्णय—तरंगोत्पत्ति, ठोस आवाज़ तथा उदरप्रदेशमें शिराओंके संयोजनसे निर्णय।

यकृद्विकारमें पहले उदर्य्याकलामें तरलसंग्रह, फिर अधरामहाशिरा (Inferior Vena Cava) द्वारा उन स्थानोंपर शोथ आ जाता है कि, जिस मार्गसे रक्त हृदयमें गमन करता है। इनमें उदरकी त्वचा और मूत्रेन्द्रियपर शोथ नहीं होता। इन लक्षणों द्वारा अधिक तरलमय यकृद् विकारज जलोदरको वृक्कविकारजन्य जलोदरसे पृथक् किया जाता है।

जलोदरसे उदर्य्याकलामें दाह-शोथ होकर उत्पन्न रससंग्रहको पृथक् करना अति दुष्कर है। चिरकारी दाह शोथज रसोत्सृजनमें किसी प्रकारकी वेदना नहीं होती। यह रससंचय क्षय-कीटाणु जन्य होनेपर अधिकांश जगह दुःखका भास नहीं होता। उदर्य्याकलारूप गह्वरमें स्वतः जात (Idiopathic) और सामान्यतः टपककर संचित होनेवाला रससंग्रह दोनों, बहुधा वेदना विहीन होते हैं। इस तरहके जलोदरके रसको २-३ बार यन्त्रद्वारा आकर्षित करलेनेपर रोग शमन होजाता है।

बीजकोषस्थ जलोदर (Ovarian Dropsy), गर्भावस्थामें जलवृद्धि और मूत्राशयका प्रसारण, इन रोगोंसे जलोदरका प्रभेद करनेकी आवश्यकता है।

बीजकोषस्थ रसार्बुद उदर्य्याकलासे बहुत छोटा है, इस हेतुसे जल अधिक स्थानमें नहीं फैल सकता। इस कारणसे भेद होजाता है। फिरभी अधिक स्पष्टीकरणार्थ दोनोंका प्रभेद अन्य कोष्टकमें दिया है।

साधन	जलोदर	बीजकोषस्थ जलसंचय
दर्शन—	दोनों कुक्षि फूली हुई इसके अनुरूप सम उदर,	विकारका आक्रमण एक ओर जल छोटी थैलीमें (उदरके बीच में) कुक्षिमें जलाभाव। कुक्षि सम। उदर फूला हुआ।
ठेपन—	कुक्षियोंमें मंद जड़ ध्वनि, उदर में सौषिर ध्वनि (Tympanitic), करवट लेनेपर आवाज़में भेद। दबानेपर तरंग समूहके समान एक ओर ऊँचा और दूसरी ओर नीचा।	कुक्षिपर सौषिर ध्वनि, उदरपर जड़ ध्वनि, करवटपर सोनेसे अंतर नहीं पड़ता।
मापन—	(१) नाभिसे उरोस्थिके निम्न सिरापर्यन्त। अन्तर नाभि से उपस्थकी किनारी पर्यन्त के अन्तरकी अपेक्षा अधिक।	जलोदरके लक्षणसे विपरीत।
	(२) नाभिके पासकी उदर-परिधि इसके निम्न स्थानकी	जलोदरसे विपरीत।

	परिधिकी अपेक्षा अधिक ।	
	(३) नाभिसे श्रोणिफलक-के और ऊपरके नीचेके सिरे-तक उभय बाज़ूमें समान अन्तर ।	एक ओर अधिक अन्तर ।
संप्राप्ति—	बस्तिप्रदेश निपीड़ित होकर दब जाता है, गर्भाशयभी दब जाता है ।	जलवृद्धि होनेसे बीजकोषकी ऊर्ध्वगामी वृद्धि । साथ-साथ गर्भाशयभी ऊँचा उठता है ।

चिकित्सा—कारणानुरूप । उदर शुद्धिके लिये मृदु विरेचन दें, पेय कम पिलावें । मूत्रल औषधि हितकर है । नमक बन्द करें या कम-से-कम देवें । विशेष चिकित्सा सब उदर रोगोंकी चिकित्साके साथ आगे लिखी जावेगी ।

(७) बद्धगुदोदर

शल्यज अन्त्रावरोध— इम्पेक्शन ऑफ़ फ़ोरिन बॉडीज़ (Impection of foreign bodies)

परिचय—अन्त्रके भीतर (१) पित्ताश्मरी या अन्त्राश्मरी अथवा (२) इतर शल्य चलाजानेसे आहार या मलकी अग्रगति कुछ अंशमें या सर्वथा निरुद्ध हो जाती है, उसे बद्धगुदोदर कहते हैं ।

उक्त २ प्रकारोंमेंसे यहाँपर शल्यज बद्धगुदोदरका वर्णन करते हैं । पित्ताश्मरी जन्य विकारका वर्णन आगे नं० ८ में पृथक् किया है । एवं बद्धगुदोदरमें वायुकी विलोम गति होनेपर उदावर्त्तकी प्राप्ति होती है । इस हेतुसे उदावर्त्तके भीतर भी इस रोगका वर्णन किया जायगा ।

निदान—स्लेट, पेन, पेन्सिल, कंकड़, ठिकड़ा (Potsherd), हड्डीका टुकड़ा, गुठली, चाँदीकी दोअन्नी या काँचकी गोली आदि पदार्थ निगलने या भोजनमें आजानेसे आँतमें प्रवेशकर किसी स्थानमें फंस जाते हैं । फिर बद्ध-गुदोदर रोगकी उत्पत्ति होजाती है ।

सम्प्राप्ति—पेन्सिल आदि निगल जानेपर वह बहुधा शेषान्त्रक (Ileum), उण्डुक (Coecum), बृहदन्त्रका 'S' सदृश कुण्डलिका भाग (Sigmoid flexure), इनमेंसे किसी एक स्थानमें रुक जाता है । पित्ताश्मरी बहुधा उण्डुकके आरम्भमें संदश कपाटिका (Ilieo caecal volve) के पास फंस जाती है । फिर जिस स्थानपर अवरोध होता है, उस स्थानपर दबानेसे तीव्र दर्द होता है । सामान्यतः सतत स्थानिक वेदना, आध्मान और समय-समयपर तीव्र शूल उत्पन्न हो जाते हैं । इस शल्यावरोधसे दक्षिण या वाम वङ्क्षणोत्तरिक प्रदेश (Iliacregion) में कठिन ग्रन्थि प्रतीत होती है, जो चलानेपर किञ्चित् इधर-उधर सरकती है ।

जब अधिक समयतक मल संगृहीत रहता है, वह सड़ने लगता है। फिर द्रवरूप (Liquefaction) होजाता है। जिससे उसमेंसे विष (Indol and Skatol) रक्तमें शोषित होकर विविध विकारोंकी रचना करता है। मलके सड़नेसे उदरमें अफारा आजाता है और मलके दबावसे अन्त्रगत वातवहानाड़ियोंका बध अर्थात् अन्त्रवध (Paralysis of the Intestine) होजाता है। फिर इसी हेतुसे वायु निरंकुश होकर उदरको फुलाती है। यदि क्षुद्रान्त्रके अंतभाग (शेषान्त्रक) में अवरोध हुआ हो, तो बृहदन्त्रकी अपेक्षा आध्मान तीव्ररूपसे आता है और समस्त उदरमें फैल जाता है।

जब पूर्ण कोष्ठबद्धता होती है, तब मल और वायुको आगे मार्ग न मिलनेसे ऊर्ध्वगति करते हैं। जिससे उबाक और वमन आती रहती है। वायु न सरना और उबाक आते रहना, ये पूर्ण कोष्ठबद्धताकी सूचना करते हैं। उस समय अन्त्रावरोधके कारणरूप मलको दूर करनेके लिये अन्त्रकी प्रबल प्रेरक शक्ति (Increased Peristalsis) प्रकाशित होती है। इसी हेतुसे शूल उत्पन्न होता है। यह शूलो-त्पादक पुरःसरणक्रिया क्वचित् इतनी तेज़ होजाती है कि, आँतोंमें काटनेके सदृश पीड़ा होती है और कभी-कभी आँत फटभी जाती है।

अन्त्रकी दीवारमें क्षत होजानेसे भी परंपरागत शारीरिक उष्णताका ह्रास होकर शीतकाय और शक्तिपातकी प्राप्ति होजाती है। उस समय नाड़ीका स्पन्दन १२५-१५० तक होजाता है। एवं रक्तमें प्रविष्ट विष रक्तको दूषितकर बलक्षय करानेमें पूर्ण सहायता देता है।

पूर्वरूप—कुछ दिनोंतक (अन्त्रका पूर्ण अवरोध न होनेतक) थोड़ा-थोड़ा मल बाहर निकलता रहता है। फिर अकस्मात् किसी दिन पूर्ण अन्त्रावरोधके लक्षण उपस्थित होजाते हैं।

रूप—बद्धकोष्ठता, उबाक, सतत और प्रचुर मात्रामें वमन, वमनमें पहले मल गिरना, अफारा, उदर तनजाना, शूल, व्याकुलता और बेहोशी आदि लक्षण। शारीरिक उत्ताप नहीं बढ़ता। उदर्य्याकलाप्रदाह होजाता है। बहुधा चौथे दिन शक्तिपात होकर मृत्यु होजाती है।

चिकित्सा—रोग बढ़नेपर शस्त्रक्रिया कराई जाती है, किन्तु सफलता मिलेगी या नहीं। यह आयु, अन्तर शक्ति और रोग बलपर अवलम्बित है।

यथार्थमें गुदनलिकामेंसे मलको चिमचसे तोड़-तोड़कर बाहर निकालना चाहिये। इसलिये साबुन जलकी बस्ति और निवाये तैलकी बस्ति देवें। फिर मलको निकालें। पुनः बस्ति देवें। उदरपर मालिश करें। ये सब उपाय विशेष सफल माने जाते हैं।

(८) पित्ताश्मरी जन्य बद्धगुदोदर

इन्टेस्टाइनल ऑब्स्ट्रक्शन टु गॉलस्टोन

(Intestinal Obstruction to gall-stone)

इस तरहका बद्धगुदोदर क्वचित् ही होता है, किन्तु इस प्रकारमें मृत्यु संख्या अधिक होती है। यह कभी चिरकारी नहीं होता। इसकी संप्राप्ति विशेषतः बड़ी आयुकाली स्त्रियोंको ही होती है। इसमें शूलसह आक्रमण होता है। वमन और अपचनभी होते हैं। कामला क्वचित् होता है। यह अश्मरी प्रायः १ इञ्च व्यास-की होनी चाहिये। सामान्यतः ग्रहणीमें क्षत करती है। यह संलग्न पित्ताशयमेंसे निकलती हैं, किन्तु कभी-कभी पित्तनलिकामेंसे भी निकल जाती है। यह विशेषतः संदश कपाटिकाके (Ilieo-caecal valve) पास अवरोध करती है।‡

विशेष लक्षण—(१) प्रचुर वमन होते रहना तथा अति अवरोध होने और अफारा होनेपर सत्वर मलमय वमन, (२) मल और अफाराका मार्ग निकलने-पर लक्षण कुछ समयके लिये शान्त, (३) पहले मंद आघात। क्योंकि अन्त्र बन्धनी प्रभावित नहीं होती। शक्तिपात लगभग चौथेदिन। क्वचित् पित्ताश्मरी अत्यन्त बड़ी वमनके साथ ऊपर ग्रहणीमें चली जाती है।

साध्यासाध्यता—रोग निर्णय और शस्त्रचिकित्सा देरसे होने तथा आयु बड़ी होनेके हेतुसे मृत्यु अधिक होती है। प्रायः लक्षणोंके विराम होनेसेभी शस्त्र चिकित्सामें देरकी जाती है।

(९) बृहदन्त्रका कर्कस्फोट

परिस्राव्युदर-छिद्रोदर-कार्सिनोमा ऑफ दी कोलन

(Carscinoma of the Colon)

इस रोगकी संप्राप्ति सामान्यतः ४० वर्षसे बड़ी आयुमें होती है। गुदनलिका-पर नूतन ग्रन्थिके अनेक हेतु हैं। यह रोग स्त्री-पुरुष, दोनोंको समभावसे प्राप्त होता है।

शारीरिक विकृति—स्तम्भ घटकोंकी विकृति। बृहदन्त्रके मध्य भागमें होनेपर बहुधा फूल गोभीके सदृश, दूर भागमें होनेपर अवरोधके हेतुसे मुद्रिका सदृश कर्कस्फोट।

स्थानान्तर क्रिया (Metastases)—यह सामान्यतः गुदनलिकाके अति-रिक्त नहीं होती, अन्तिमावस्थामें हो सकती है।

स्थानानुरूप विभाग—इस रोगसे पीड़ितोंमेंसे बस्तिगुहा और गुदनलिकाके

---

‡ पित्ताश्मरीके समान क्वचित् अन्त्राश्मरि उत्पन्न होकर बद्धगुदोदरकी संप्राप्ति कराती है। अन्त्राश्मरीकी उत्पत्ति एल्युमिनियम, ताम्र, लोह आदि धातुओंसे उत्पन्न अद्रवणशील क्षारका अन्त्ररसके साथ संमिलन होनेपर होती है।

मोड़ और गुदनलिकामें ४४ प्रतिशतको, श्लैष्मिककोणपर १६. अनुप्रस्थ बृहदन्त्रमें ८, याकृत् कोणपर १० तथा उण्डूकमें १२ प्रतिशतको विदित हुआ है।

उत्पत्तिके अनुरूप लक्षण—

१. दीवारमें शल्यसे पीड़ित होनेपर-बढ़ी हुई पुरःसरण क्रिया, फिर अतिसारोत्पत्ति।

२. सत्वर वर्द्धनशील पिण्डसे पीड़ित होनेपर—श्लेष्मा, रक्त और रोगोत्पादक द्रव्य, ये सब क्षतके किनारेमेंसे प्रवाहित होना।

३. आकुंचनसे पीड़ित होनेपर—प्रतिबंध होता है, जिससे तीव्रवेदना, मलावरोध और फिर उस मलमेंसे रसस्राव आदि। अन्तिमावस्थामें पुरःसरण क्रियाकी स्पष्टप्रतीति।

वक्तव्य—वृद्धिके स्थलके अनुरूप लक्षणोंमें भेद।

प्राथमिक और सार्वाङ्गिक लक्षण—बारंबार विविध अस्पष्ट लक्षण कुछ लक्ष आकर्षित करते हैं। निम्न उदरमें बेचैनी, क्वचित् वेदना सुस्पष्ट, देहका भार कम होजाना, सामान्यतः क्षुधानाश, सामान्य पाण्डु तथा कुछ शक्तिपात आदि।

रोगदर्शक लक्षण—अन्त्रके स्वभावमें अन्तर (बद्धकोष्ठ बढ़ना, शिथिलताकी वृद्धि, उदर शुद्धिके लिये विरेचनकी अधिक आवश्यकता नहीं होती), सच्चे या मिथ्या अतिसारकी उन्नति तथा मलावरोध और अतिसार क्रमशः होते रहना।

उण्डूकके कर्कस्फोटके लक्षण—सामान्यतः फूल गोभी सदृश, वृद्धि रूप विकारमें मलावरोध और क्वचित् प्रतिबन्ध होनेपर लक्षण—

१. अर्बुद स्पर्शग्राह्य, ७० प्रतिशत रोगियोंमें।

२. अतिसार सामान्य। सामान्यतः मलावरोधके साथ क्रमशः न होना। मल प्रकृति निर्देशक नहीं।

३. बेचैनी, वज़नका ह्रास और पाण्डु, ये लक्ष्य देने योग्य।

यकृद् कोणका कर्कस्फोट—उण्डूकके समान। मल स्पष्ट रक्तमय।

अनुप्रस्थ कोणका कर्कस्फोट—अर्बुद स्पर्श ग्राह्य। वृद्धि गोभीके फूल या मुद्रिकाके समान। प्रतिबंध होता है, तो दाहिने भागमें पीड़ा और उण्डूककला प्रसारण। मलावरोध या अतिसार।

श्लैष्मिककोणका कर्कस्फोट—सत्वर प्रतिबंध। अर्बुद स्पर्श ग्राह्य नहीं होता। स्थानिक पीड़ा, वहभी दक्षिण पार्श्वमें और उण्डूक प्रसारित हो, तो मलावरोध और अतिसार क्रमशः।

बस्तिगुहा-गुदनलिका कोणपर कर्कस्फोटके लक्षण—

१. सत्वर प्रतिबन्ध—मुद्रिका वृद्धिसे तथा रुके हुए मलसे वेदना तथा बृहदन्त्रका प्रसारण।

२. बृहदन्त्र—मलावरोधकी वृद्धि ६० प्रतिशतमें। यथार्थ या मिथ्या अति-

सार, बहुश्लेष्मा, रक्त, अर्बुदस्राव या संगृहीत मलमय स्राव, उदरमें वात संग्रह, बारंबार प्रातः काल जल्दी शौच होना, मलावरोधसह क्रमशः अतिसार। अस्वाभाविक स्पष्ट रक्तस्राव।

३. अर्बुद—२५ प्रतिशत रोगियोंमें स्पर्श ग्राह्य (बारंबार मलकारोध), प्रथमावस्थामें गुदनलिकामें बारंबार स्पर्श ग्राह्य नहीं होता।

४. बायें पार्श्वभागमें व्याकुलता—(कभी-कभी वृक्कप्रदाह)

५. गुदनलिका—सामान्यतः बलूनके समान फूली हुई।

चिकित्सा—प्रथमावस्थामें सत्वर शस्त्र क्रिया करावें। उपद्रवात्मक कर्कस्फोट पृथक् स्थानों में होजानेपर रोग असाध्य।

(१०) क्षतोदर

अलसरेशन ऑफ दी इन्टेस्टाइन

(Ulceration of the Intestine)

लघु या बृहदन्त्रमें व्रण होनेपर क्षतोदर कहलाता है, यह व्रण अनेक रोगोंमें उपद्रवरूपसे उत्पन्न होजाता है।

निदान—१. मेकेलका उपशेषान्त्रक (Meckel's Diverti culum) में क्षत (सामान्यतः इस क्षतमें पीड़ा या लक्षण नहीं होते।)

२. विशेष कीटाणुओंका संक्रमण आन्त्रिक ज्वर, प्रवाहिका, क्षय और फिरंग रोगके कीटाणु तथा बिल हार्जिया कृमिद्वारा।

३. क्षत प्रधान बृहदन्त्रप्रदाह (Ulcerative colitis)

४. उपशेषान्त्रकप्रदाह (Diverticulitis)

५. पिटिकामय क्षत (Follicular ulceration) बालकोंमें उपद्रवात्मक अतिसार (यथा मूत्रमय रक्तविकार) अन्तभागका अतिसार, इनमें तेज़ किनारे वाले छोटे व्रण होते हैं। जिनमें विशेष लक्षण नहीं होते एवं जो कभी नहीं फूटते।

६. नूतन ग्रन्थि।

७. शल्य-काँच, पत्थर, बेरकीगुठली, हड्डी आदि भोजनमें आजानेसे उत्पन्नक्षत और बाह्य विद्रधि।

प्रवाहिका रोगमें बहुधा व्रण बड़ी आँतके भीतर ऊँचे भागमें होता है। आन्त्रिक ज्वरमें व्रण लघुअन्त्रके अंत भागमें रही हुई लसीका ग्रन्थियोंपर होता है। उपदंश रोगमें अतिसार या ग्रहणी होनेपर क्षत बहुधा गुदनलिकामें होता है। फिर मलमें रक्त और पूय आता है तथा मल विसर्जनमें बलपूर्वक प्रवाहण करना पड़ता है।

क्षय कीटाणुओंका अन्त्रमें प्रवेश होजानेसे बृहदन्त्रके प्रारंभिक भाग-उण्डुक (Coecum) में व्रण पड़ता है। इस व्रणकी दीवार टेढ़ी-मेढ़ी रहती है। इस व्रणसे क्षय विकारके सब लक्षण प्रतीत होते हैं। जब यह व्रण सुधर जाता है, तब ऊपर

व्रणरोपण त्वचा (Scar tissue) आती है। जिससे अन्त्र संकुचित होजाता है। फिर मलसंग्रह होने लगता है।

जब मल शुष्क होजाता है, तब बड़ी आँतमें क्षत होजाता है। यह विकार बहुधा मध्य आयुमें होता है। चिरकारी बद्धकोष्ठ रोग या अन्त्रसंकोच होकर ऊपरके हिस्सेमें तात्कालिक किन्तु अपरिहार्य मलसंचय होजानेसे मल शुष्क बन जाता है। फिर आगे गति करनेके समय अनेक स्थानोंपर खुरचता जाता है, जिससे व्रण (Fecal ulcers) होजाते हैं। अनेक स्थानोंसे श्लैष्मिक कला नष्ट होजाती है और बृहदन्त्रका विस्तारभी होजाता है।

लक्षण—लघु अन्त्रमें व्रण होनेपर अन्त्रदाह-शोथ, कभी-कभी उदरमें पीड़ा, कभी मलावरोध, कभी अतिसार और अन्त्र-संकोच आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। व्रण स्थानपर दबानेसे दर्द मालूम पड़ता है।

स्थूलान्त्रमें क्षत होनेपर जल सदृश पतले दुर्गन्धयुक्त दस्त, क्वचित् रक्त मिश्रित मल निकलना, उदरपीड़ा, कृशता, आध्मान और मन्द ज्वर आदि लक्षण। इस प्रकारके व्रणका वर्णन प्रथम-भागमें त्रिदोषज अतिसार (Ulcerative colitis)में किया है।

बृहदन्त्रके विकारमें बहुधा शूल नहीं होता। यदि शूल हो, तो अतितीव्र। यदि बृहदन्त्रके अंतिम भागमें विकृति होती है, तो वह भाग प्रसारित होजानेपर मल त्यागके समय किणछुना (Tenesmus) पड़ता है। मल मलिन रंगका होता है और उसमें आम अधिक होती है।

अन्त्रव्रणके हेतुसे मलमें रक्त, किञ्चित् पूय और श्लेष्मल त्वचाके टुकड़े जाते हैं। मलपरीक्षापरसे निर्णय होजाता है। यदि अधिक पूय हो, तो अन्तर्विद्रधि फूटनेका निश्चय होता है। तीव्र प्रवाहिकाके मलमें भी श्लेष्मल त्वचाके टुकड़े होते हैं। अतः रक्त मिलना, येही एक अन्त्रव्रणका चिह्न है। एवं व्रणके हेतुसे उदरमें वेदना होती रहती है।

अन्त्रविद्रधि विशेषतः उपान्त्रके समीप स्थानमें तथा स्त्रियोंके गर्भाशय-आवरण और गर्भाशयबन्धनिका (Broad Ligament) में होता है।

जब अन्त्रव्रणका भेदन (Perforation) लघु, मध्य अन्त्र, उण्डुक या बृहदन्त्रके आरोहि, अनुपस्थ और अवरोहि भागमेंसे किसीभी स्थानमें होजाता है, तब उसके सहवर्ती उदर्य्योकला-प्रदाह हो ही जाता है। यदि भेदन पीछेकी ओर होता है, तो विद्रधिका रूप धारण कर लेता है।

(११) शेषान्त्रक प्रदाह

रिजिओनल इलियाटिज़-क्रोहन्स डिज़ीज़

(Regional Ileitis-Crohn's disease)

यह अज्ञात कारणजन्य शेषान्त्रकका स्थानिक चिरकारी प्रदाह है। इसमें

रोग बढ़नेपर सौत्रिक तन्तुओंकी वृद्धि होजाती है। यह रोग सामान्यतः ४ से ४० वर्ष की आयुतक, इनमेंभी विशेषतः युवा वयस्क पुरुषोंको होता है।

शारीरिक विकृति—अत्यन्त सामान्य रूपसे शेषान्त्रकका अन्तभाग (कुछ इञ्च) पीड़ित। यह विकार उण्डूककी ओर संदश कपाटिकाकी ओर अधिक प्रसारित। शेषान्त्रककी दीवारकी सब वृत्ति पीड़ित। फिर मोटी, शोथमय और कठोर (Rigid) बन जाती है। श्लैष्मिक कलाप्रदाह युक्त और क्षतमय। विकार बढ़नेपर सौत्रिक तन्तुओंकी वृद्धि होकर अवरोधकी प्राप्ति। क्षत स्थान चिपककर सतहपर नाड़ीव्रण उपस्थित। अन्त्रबन्धनी मोटी होजाती है। लसीका ग्रन्थियोंकी वृद्धि। यह कभी घातक नहीं होता। अणुवीक्षण यन्त्रसे परीक्षा करनेपर चिरकारी प्रदाह और बृहद् घटक प्रतीत होते हैं। क्षय कीटाणुओंकी अप्रतीति।

लक्षण—क्षत और अवरोधके अनुरूप।

१. सार्वाङ्गिक—वज़नका ह्रास, पाण्डु, हृल्लास, रक्तमें अनेक केन्द्रस्थानवाले श्वेताणुओंकी उपस्थिति।

२. उदर गत—उदरके दक्षिण निम्न चतुर्थ-भागमें शूल सदृश वेदनाकी वृद्धि-सह आक्रमण, अतिसार और वमन, आक्रमणके बीचमें मलावरोध। मुड़े हुए आकार का अर्बुद, दक्षिण शेषान्त्रक खातमें। मध्य उदरका प्रसारण। मल अज्ञात रक्तसह।

सूचना—इस रोगको उपान्त्र प्रदाह, कर्कस्फोट तथा शेषान्त्रक उण्डूक क्षयके लक्षणोंसे पृथक् कर लेना चाहिये।

चिकित्सा—प्रभावित अन्त्रको काटकर पृथक् कर देना चाहिये। परिणाम शुभ।

चिकित्सोपयोगी सूचना

चरकसंहिताकारने लिखा है कि, अधिक शोथ न हो, उदर अरुण वर्णका हो, अंगुलियोंसे ठेपनकरने या ध्वनिवाहक यन्त्रसे सुननेपर आवाज़ आती हो, रोगीको उदर अधिक भारी न लगता हो, उदरमें गड़गड़ाहट होती हो, उदरपर शिराजाल दिखाई देता हो, वायु नाभि और अन्त्रको स्तब्ध करती हो और बाहर निकलनेके लिये वेग करके नष्ट होजाती हो, हृदय, नाभि, वंक्षण (चूतड़), कमर, गुदा, इन सब स्थानोंपर शूल हो, अपानवायु वेगयुक्त और आवाज़युक्त निकलती हो, जठराग्नि अति मन्द न हुई हो, मुँह लालास्रावयुक्त और बेस्वादु रहता हो, मूत्र परिमाणमें अति कम होगया हो और मल बंधा हुआ निकलता हो, ऐसे उदररोगको अजातोदक जाने। इसकी चिकित्सा दोष, बल और कालको तत्त्वतः जाननेवाले चिकित्सक सत्वर प्रारम्भ करें।

वातोदरोपयोगी सूचना

वातोदर—से पीड़ित बलवान् मनुष्यको पहले, स्नेहन, फिरस्वेदन और

तत्पश्चात् स्नेह विरेचन (एरण्ड तैल या इतर विरेचन करानेवाले सिद्ध घृत-तैल) देनी चाहिये ।

जब विरेचनसे दोष निकलकर उदर शुद्ध हो जाय, तब उदरपर चौड़ा वस्त्र लपेट देना चाहिये (या उदरवेष्टन-Abdominal belt बांध देना चाहिये) जिससे अवकाश (रिक्तस्थान) न मिलनेसे फिर वायु उदरको नहीं फुला सकती ।

आवश्यकता और प्रकृतिका विचारकर वातोदर व्याधिवालेके उदरको प्रतिदिन शुद्धकर लेना चाहिये । सम्यक् प्रकारसे उदरशुद्धि हो जानेपर पेया या मांड आदिका सेवन करावें । फिर बलकी प्राप्तिके लिये उत्क्लेश (उबाक) न हो, उतना दुग्धपान करावें । जब रोगी सशक्त होजाय और दूधकी वृद्धि होजानेपर उत्क्लेश होनेका अनुमान हो, तब दूध क्रमशः कम करें और अनार या आँवलेके (सामान्य खट्टे) रस और सैंधा-नमक मिले हुए मूंग आदिके यूष या मांस रससे अग्निको प्रदीप करावें । यदि रोगीको उदावर्त्त विकार रह गया हो, तो पुनः स्नेहन और स्वेदन कराकर आस्थापन बस्ति दें । आस्थापन बस्ति तीक्ष्ण विरेचन द्रव्य मिले हुए दशमूल क्वाथसे प्रस्तुत करनी चाहिये ।

जिस रोगीको स्फुरण (अङ्गोंका फड़कना), आक्षेप, संधि, अस्थि, पार्श्व, पृष्ठ और त्रिकस्थान, सबमें शूल निकलता हो, अग्नि प्रदीप्त हो, मलावरोध, और अपानवायुका निरोध रहता हो तथा रूक्षता हो, उसे अनुवासन बस्तिवातघ्न और अम्ल (काँजी आदि) औषधियोंसे सिद्ध किये हुए एरण्ड तैल या तिल तैलकी देनी चाहिये।

जो रोगी विरेचनके योग्य न हो, दुर्बल, वृद्ध, बालक, सुकुमार देहवाला, अल्प दोषवाला अथवा वातप्रधान प्रकृतिवाला हो, उसकी चिकित्सा संशमन औषधियाँ-घी, यूष, मांसरस और भात आदि पथ्यभोजन, तैलाभ्यंग, अनुवासन बस्ति और दूधके प्रयोगोंसे करनी चाहिये ।

भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं कि, वातोदर रोगीको विदारीगंध (शालपर्णी) आदि गणकी औषधियोंसे सिद्ध किये हुए घृतसे स्नेहन, तिल्वक (लोध सदृश विरेचन करानेवाले वृक्ष, भावमें निशोथ) के सिद्धघृतसे अनुलोमन तथा चित्रफल (इन्द्रायणके फल) के तैलसे युक्त विदारीगंध आदिके क्वाथसे आस्थापन और अनुवासन बस्ति आदि-का प्रयोग कराना चाहिये । एवं शाल्वण स्वेद (वातघ्न औषधि मिश्रित रोटी) से उदरका स्वेदन तथा विदारी गन्ध आदि गणसे सिद्ध किये हुए दूध या जंगली जीवोंके मांसरससे भोजन कराना चाहिये । स्वेदन बार-बार अच्छी तरह कराना चाहिये ।

पित्तोदरोपयोगी सूचना

पित्तोदर—पीड़ित बलवान् रोगीको पहले स्नेहन, स्वेदन कराके विरेचन देना चाहिये और दुर्बल रोगियोंकी अनुवासन बस्ति देकर क्षीरबस्तिसे शोधन कराना चाहिये । जब शरीर-बल बढ़ जाय और अग्नि प्रदीप्त होजाय, तब स्नेहन कराकर फिर निसोतके कल्क, छिल्मी निकाले हुए एरण्ड बीजके क्वाथ, सातला और त्रायमाण

या अमलतास, इन चारमेंसे एकके साथ सिद्ध किये हुए दूधसे विरेचन कराना चाहिये।

यदि पित्तके साथ कफ मिला हो, तो उपर्युक्त ४ प्रकारमेंसे किसी एकसे सिद्ध किये हुए दूधके साथ गोमूत्र मिलाकर देना चाहिये। यदि पित्तके साथ वात मिश्रित हो, तो उक्त दूधके साथ कड़वी औषधियोंसे सिद्ध घृत मिलाकर पिलाना चाहिये।

इस तरह शोधन होनेपर पेया-मण्ड आदि संसर्जन देवें। फिर दुग्धपान करावें। पश्चात् दूधके सेवनसे शक्ति वृद्धि होनेपर अनुवासन आदि बस्ति देवें। इस तरह विरेचन, दुग्धपान और बस्ति पुनः-पुनः क्रमशः देते रहनेसे निःसन्देह पित्तोदर व्याधि शमन होजाती है।

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि, पित्तोदरके रोगीको मधुर (काकोल्यादिगण की) औषधियोंके सिद्ध घृतसे स्नेहन कराना चाहिये। फिर काली निसोत, त्रिफला और सफेद निसोतके सिद्ध घृतसे अनुलोमन करावें और न्यग्रोधादिगणके क्वाथमें शक्कर-मिश्री-घी मिलाकर आस्थापन और अनुवासन बस्ति दें। एवं दूधकी वाष्पसे उदरपर स्वेदन और विदारीगंधादिगणकी औषधिसे सिद्ध किये दूधसे भोजन करावें।

कफोदरोपयोगी सूचना

कफोदर—के रोगीको स्नेहन, स्वेदन और संशोधन (विरेचन) करा, चरपरे और क्षारमिश्रित मण्ड-पेया आदि भोजनसे संसर्जन कराना चाहिये; वमन नहीं कराना चाहिये, ऐसा सिद्धि स्थानके दूसरे अध्यायमें भगवान् आत्रेयने कहा है। एवं भगवान् धन्वन्तरिजीने भी "न वामयेत्तैमिरिकोर्ध्ववात गुल्मोदरप्लीहकृमिश्रमार्त्तान्" इस वचन से वमन करानेका निषेध किया है।

कफोदर रोगीको गोमूत्र, आसव-अरिष्ट, नवायस रस आदि लोहमिश्रित चूर्ण और क्षार युक्त तैलका सेवन करानेसे रोग निवृत्ति होजाती है।

कफोदरकी चिकित्सार्थ भगवान् धन्वन्तरिजीके मत अनुसार स्नेहनार्थ पिप्प-ल्यादि क्वाथसे सिद्ध घृतका सेवन तथा अनुलोमनार्थ थूहरके दूधसे सिद्ध घृतका सेवन कराना चाहिये। एवं मुष्कक आदि गणकी औषधियोंके क्वाथमें त्रिकटु, गोमूत्र, यवक्षार और तैल मिलाकर आस्थापन और अनुवासन बस्ति देनी चाहिये। पिप्पल्यादि गण और मुष्कक गणकी औषधियोंकी यादी और गुण औषधगुणधर्म विवेचनमें लिखा है।

कफोदरके रोगीको उदरपर प्रस्वेद लानेके लिये, सनके बीज, अलसी, धायके फूल, किण्व (शराबके नीचे शेष रही हुई गाद), सरसों और मूलीके बीज, इन सबको पीसकर फिर रोटी जैसी आकृति बनाकर उदरपर बाँध देवें; तथा कुलथीके यूषमें त्रिकटु मिलाकर भोजन करावें या खीरमें त्रिकटु मिलाकर भोजन करावें और बार-बार खूब स्वेदन कराते रहें।

कफदोष, वात या पित्तसे आवृत्त होनेपर और वातदोष पित्त या कफसे निरुद्ध

होनेपर बलवान् रोगीको उस दोषनाशक औषधिके साथ रोज़ सुबह थोड़ा-थोड़ा एरण्ड तैल पिलाते रहना अति हितकर है।

यदि विरेचनसे दस्त लग जानेपरभी उदररोगीको अफारा आजाय, तो उसका अधिक स्नेहनयुक्त अम्ल और लवण द्रव्योंसे युक्त निरूह बस्तिद्वारा उपचार करना चाहिये अथवा विष्टम्भ और अफाराको दूर करनेके लिये तीक्ष्ण औषधि-क्षार और गोमूत्र प्रधान निरूह बस्ति देनी चाहिये।

सन्निपातोदरोपयोगी सूचना

सन्निपातोदर—में तीनों दोषोंमें कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये। यदि इस त्रिदोषज उदर-रोगमें उपद्रवभी उपस्थित हो गये हों, तो उसका परित्यागकर देना चाहिए।

भगवान् धन्वन्तरिजी और आत्रेय, दोनों कहते हैं कि, औषधि चिकित्सा निष्फल होजानेपर दूष्योदर (सन्निपातोदर) रोगीका रोग असाध्य है, ऐसा कहकर चिकित्सा करनी चाहिये। सातला और शंखिनी (थूहर भेद) के स्वरससे सिद्ध किये हुए घृतसे विरेचन करावें। विरेचन औषधि १५ से ३० दिन तक देते रहना चाहिये। या सेहुँडके दूध, सुरा (शराब) और गोमूत्रसे सिद्ध किया हुआ घृत विरेचनार्थ देते रहें। कोष्ठशुद्धि होनेपर शराब, पेया या भोजनके साथ कनेर, गुंजा (सफेद चिरमी) और काकादनी (लाल चिरमी), इन तीनोंकी जड़का कल्क मिलाकर पिलावें या ईखको काले सर्पसे कटवाकर चुसावें और वल्लीफल अथवा मूल या कंदसे उत्पन्न विष (स्थावर विष) सेवन करावें। इन उपायोंसे सन्निपातोदर रोगी स्वस्थ होजाता है या मृत्युको प्राप्त होजाता है।

या सर्पने कुपित होकर जिस फलमें विष डाल दिया हो, वह विचारपूर्वक रोगीको खिला देना चाहिये। विषप्रयोगसे दोष संघात, जो धातुओंमें लीन हो गया हो और उन्मार्गगामी हुआ हो, वह तत्काल बाहर निकल जाता है। फिर शीतल जलसे सिञ्चन करें और बलके अनुसार दूध या यवागूका पान करावें। पश्चात् रोगीको निसोत, मण्डूकपर्णी, पत्रशाक, बथुआ अथवा कालशाक, इनमेंसे किसी एकका रसा बिना नमक, घी और खटाई मिलाया पिलाना चाहिए। इस तरह एक मास तक जब जब तृषा लगे तब-तब शाकको जलमें उबालकर रसा पिलाते रहें; अथवा शाक-भाजीको बिना उबाले स्वरस निकालकर देते रहें। फिर दोष दूर होजानेपर दुर्बल रोगीको प्राण-पोषक ऊँटनीके दूधका सेवन कराना चाहिये।

सब प्रकारके उदर रोगोंकी उत्पत्ति वायुके प्रकोपसे होती है और सबमें मलका संचय होता है। इस हेतुसे उदररोगोंमें बहुधा अनुलोमन (विरेचन) करानेकी ही आज्ञा दी जाती है।

प्लीहोदरोपयोगी सूचना

प्लीहोदर—रोगमें वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज भेदसे ५

प्रकार हैं। उदावर्त्त, आनाह आदि वातज; दाह, मोह, तृषा, ज्वर आदिसे पित्तज; गौरव, अरुचि, कठिनता आदिसे कफज; मिश्रित लक्षणोंसे त्रिदोषज; तथा विदाह, तृषा, विरसता, देहमें भारीपन, मूर्च्छा आदि लक्षणोंसे रक्तज विकार जानना चाहिए। इनमेंसे जिस तरहका विकार हो, उसके अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये।

प्लीहोदरमें स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, आस्थापन बस्ति और अनुवासन बस्ति आदि चिकित्सा करनी चाहिए अथवा शक्तिका विचारकर बाँये हाथमें शिरावेध कराना चाहिए।

भगवान् धन्वन्तरिजीने लिखा है कि, प्लीहोदर रोगीको पहले स्नेहन और स्वेदन करावें। फिर दहीका भोजन करा, बाँये हाथकी कोहनीके बीचकी शिराका वेधन करावें; और रुधिर निकलनेके लिये प्लीहाको हाथसे मलते रहें।

यदि प्लीहोदर रोग वातकफोल्वण हो, तो मणिबंधको थोड़ा नवाकर बाँये अँगूठेको दबानेसे जो शिरा ऊपर उठती है, उसपर गरमकी हुई लोह शलाकासे दाग देनेसे प्लीहा वृद्धि नष्ट होजाती है।

पित्त प्रधान प्लीहोदर रोगमें जीवनीयगणसे सिद्ध किया हुआ घृत, दूधकी बस्ति, रक्तावसेचन, संशोधन (विरेचन) और दुग्धपान आदिसे चिकित्सा करनी चाहिये। भोजनके लिये दीपन औषधियाँ मिले हुए यूष या मांस रसके साथ लघु भोजन शालि या सांठी चावल देना चाहिये। जीवनीयगणकी औषधियाँ वैज्ञानिक विचारणा पृष्ठ १०२ में लिखी हैं।

प्लीहावृद्धि—होनेपर मूल कारणका निर्णयकर, उसे दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। अनेक रोग बाल्यावस्थामें और अनेक बाल्यावस्थाके पश्चात् होते हैं। विषमज्वर आदि रोग आसाम, मालवा, विदर्भ आदि देशोंमें विशेष होते हैं। कितनेक रोग निश्चित ऋतुमें अधिकांशमें फैलते हैं। विषमज्वर शरद् ऋतुके अन्त भागमें (दिवालीके लगभग) विशेष रूपसे फैलता है, अतः आयु, देश और कालको लक्ष्यमें रखकर मूल कारणका निश्चय करके चिकित्सा करनी चाहिये।

विषमज्वरसे प्लीहावृद्धि होनेपर विषमज्वरके विषको नष्ट करनेवाली जीर्ण ज्वर नाशक और प्लीहावृद्धिको न्यून करनेवाली औषधि देनी चाहिये। सुवर्णमालिनी बसंत, लघुमालिनीवसंत, लोहभस्मयुक्त, प्लीहान्तक वटी आदि औषधियाँ लाभदायक हैं।

पाण्डु, हलीमक आदि रक्तके विकारजन्य प्लीहावृद्धि होनेपर पाण्डु रोगमें लिखे अनुसार लोह या मण्डूर प्रधान औषधियाँ देनी चाहिये। उपदंशके उपद्रव रूप प्लीहावृद्धि हो, तो मल्ल प्रधान औषधिको प्रयोगमें लानी चाहिए। इस तरह बालग्रह, क्षय या प्लीहार्बुद आदि कारणोंसे प्लीहावृद्धि होनेपर मूल कारणको दूर करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये।

प्लीहोदर— (Splenic anaemia Splenomegaly Anaemia)

रोगपर प्लीहावृद्धिनाशक औषधियाँ उपकारक हैं। डॉक्टरीमतानुसार शस्त्र चिकित्साद्वारा प्लीहाको निकाल देना हितावह माना गया है।

यकृद्दाल्युदरोपयोगी सूचना

यकृद्दाल्युदर बहुधा उदर कृमिजन्य विषम होता है, इसके आरम्भमें केवल आमाशय प्रसेक और यकृत्‌में रक्त संग्रहके लक्षण उपस्थित हुए हों, उस समय होसके तो रोगीको २-३ सप्ताह तक आराम करावें। केवल दूधपर रक्खें तथा शराब बिलकुल बन्द करा देवें। आमाशयके प्रसेक आदि लक्षण और यकृत्‌के रक्त संग्रहको दूर करनेके लिये रोज़ सुबह मेगसल्फका विरेचन देते रहें। यदि फिरंगका लक्षणभी साथमें हो, तो रक्त शोधक सार्सा परिला, चोपचीनी, मंजिष्ठा या मल्ल प्रधान औषधि देनी चाहिये। निद्रा न आती हो, तो ब्रोमाइड प्रयुजित कर सकते हैं, मोर्फिया या अफीम नहीं देनी चाहिये। एवं रक्तवमनको बन्द करनेके लिये भी अफीम प्रधान दवा नहीं देनी चाहिये।

बालकके मलावरोध, ज्वर और विष प्रकोपको दूर करनेके लिये पहले १-२ मासतक प्रातः-सायं कुलथी ३ से ६ माशेका क्वाथ आककी $\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ चौफुली मिलाकर देते रहें, कदाच प्रारम्भमें वमन होजाय, तो नहीं घबराना चाहिये। आमाशय निर्दोष होनेपर क्वाथ पचन होने लगेगा।

ज्वर और यकृत् दोष निवृत्त होनेपर १ रत्ती एलवा, ३ रत्ती डीकामाली, ३ रत्ती कड़वीज़ीरी, ३ रत्ती किरमाणी अजवायन (जिसमेंसे सेण्टोनीन निकलता है), ४ रत्ती वायविडंग और २ रत्ती सोंठका क्वाथकर दो हिस्सेकर सुबह शाम १-२ मासतक देनेसे उदरस्थ विकृति-कृमि, आम, विष आदि दूर होती है और बालककी पचन क्रिया सबल होजाती है। यह सौम्य और श्रेष्ठ उपचार है।

विवर्धन मय यकृद्दाल्युदर (हेनोटके रोग) में लक्षण अनुसार चिकित्सा करें, मांस शराब बन्द करें। उदर शुद्धि नियमित करावें।

अवरोधज यकृद्दाल्युदर (चारकोटके रोग) में होसके तो शस्त्र द्वारा सत्वर अवरोधको दूर कराना चाहिये।

मूत्र विरेचनकी आवश्यकता होनेपर डॉक्टरजीकी गोलियाँ (Guy's pills) देनी चाहियें। यदि त्रास दायक खुजली होजाय, तो केलोमल १-२ ग्रेन विरेचनके साथ ३-४ दिन तक देना चाहिये।

यकृद्दालीमें २ प्रकार हैं। एक प्रकारमें यकृत् बड़ा होजाता है। दूसरे प्रकारमें यकृत्‌का आकुँचन होता है। यकृत् बड़ा होगया हो, तो ताम्रप्रधान औषधिका प्रयोग हितावह होता है। आकुँचन प्रधान व्याधिपर ताम्र नहीं देना चाहिये। अन्यथा हानि पहुँचती है। उसपर विशेषत: मण्डूर प्रधान औषधियोंका प्रयोग किया जाता है।

यकृद्दाल्युदर—में सब चिकित्सा प्लीहोदरके समान करनी चाहिये। रुधिरका अवसेचन दाहिने हाथकी शिरामेंसे कराना चाहिये। रोगोत्पादक कारण-शराब, उत्तेजक

आहार आदि जो हों, उन सबको छोड़ देना चाहिये। आमाशयका प्रक्षालन करना लाभदायक है। आमाशय क्षीण होगया हो और अम्लरसोत्पत्ति न कर सकता हो, तो भोजनके साथ दोनों समय आमाशयकी रसवर्धक औषधि देनी चाहिये। लवणभास्कर आदि औषधियाँ सौम्य और हितकर हैं। प्रतिहारिणी शिराकी शाखाओंके रक्त-संग्रहमें न्यूनता करानी चाहिये।

रक्तवमन, जलोदर, शोथ आदि प्रबल लक्षण उपस्थित हों, तो उनको दूर करनेके लिये सत्वर लक्ष्य देना चाहिये। रक्त वमनके रोगीको पूर्ण विश्रान्ति देनी चाहिये।

पित्तनलिकापर दबाव और यकृत्कोषोंका नाश होनेसे यकृत्की पित्त निःसारकक्रियामें प्रतिबन्ध होता है। फिर रक्तमें विषवृद्धि होती है, उसका प्रशमन निम्न रीति से करना चाहिये।

शरीर संरक्षण और बलवृद्धिके लिये दुग्ध आदि अनुत्तेजक आहारकी यथोचित व्यवस्थाकर देनी चाहिये। शक्कर और घृत छुड़ा देना चाहिये। यदि रोगी निर्बल हो, तो मांसका शोरबा देना चाहिये।

मृदुविरेचन देते रहनेसे आमाशय और अन्त्रका प्रदाह तथा प्रतिहारिणी शिरामें अवरोधक लक्षण कम होते जाते हैं। मृदुविरेचनसे प्रथमावस्थामें उत्पन्न यकृत्का रक्तसंग्रह न्यून होजाता है। परिणाममें रोगवृद्धि रुक जाती है। रोग बढ़कर रक्तवमन और जलोदरकी उत्पत्तिका निवारण होजाता है। अपचन जनित आम या शेष अहाररस जो अन्त्रमें रह गया हो, वह तथा रक्तविकृति और अफारा आदि लक्षण दूर होजाते हैं। इस मृदु विरेचनके साथ रोगशमनमें उत्तेजक आहार, उत्तेजक औषधि, स्नान और खुली वायुमें भ्रमण, ये सब अति सहायक होते हैं।

प्यास अधिक लगती हो, तो लवणजल (मेगनेशिया सल्फास) की बस्ति देनी चाहिये।

अन्त्रमें शोथ हो, तो पूर्ण विश्रान्ति देवें। दूधमें चूनेका जल मिलाकर पिलावें। या पेप्टोनाइज्ड मिल्क (Peptonized Milk) देना चाहिये।

रोग अत्यन्त बढ़ जानेपर (उदरमें जलोत्पत्ति होनेपर) रोगीको पूर्ण विश्रान्ति करानी चाहिये। स्नान उष्ण जलसे कराकर त्वचाको शुद्ध रक्खें। हो सके तब तक रोगीको केवल दूधपर रक्खें। दूध थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें अथवा फलपर रक्खें। मांसाहारीको मांस रस और अण्डे आदि या अन्य लघु पथ्य भोजन और दूध देवें। नमक बन्द करें या हो सके उतना कम करें।

सूचना—यदि हृदयकी क्षीणता न हुई हो, तो उत्तेजक औषधि नहीं देनी चाहिये। (उत्तेजक औषधिसे यकृत्में विकृति अधिक होती है।)

अत्यन्त वमन होती हो, तो बर्फके टुकड़े चूसनेको देना चाहिये। फिर सोडा या चूनेका जल मिला हुआ दूध १-१ तोला या पेप्टोनाइज्ड दूध पिलाते रहें।

पेप्टोनाइज़िंग पाउडर (एक शीशी) निकाल उसमें ५ औंस जल और २० औंस गोदुग्ध उष्ण अच्छी तरह मिला लेवें; फिर १० मिनटतक उष्ण स्थानमें रखनेके पश्चात् उबाल लेनेसे अर्धपक्व दूध तैयार होजाता है।

अथवा दो भाग गोदुग्ध और १ भाग जल मिलाकर १४० फाइरन हीट डिग्री तक गरम करें। फिर इसमें लाइकर पैन्क्रियाटिक (Liq-Pancreatic) दो ड्राम और सोडाबाई कार्ब (Soda Bicarb) ३० ग्रेन डाल ढककर उष्ण स्थानपर १५-२० मिनटतक रख देवें। पश्चात् उबालकर पिला देनेसे दूध सत्वर पचन होजाता है।

बालपैत्तिक यकृद्दाल्युदर—अर्थात् शिशुओंके यकृद्दाली रोगमें चिकित्सा का पूर्णांशमें सन्तोषजनक फल नहीं मिलता। बालक और माताके पथ्यके प्रति आग्रहपूर्वक लक्ष्य देना चाहिये। यदि माता रोगिणी है, तो माताका स्तनपान छुड़ाकर धात्री स्तन्यका प्रबन्ध करना चाहिये अथवा बकरी या गदहीका दूध, विलायती ग्लेक्सो आदि नया दूध या मांस रस आदिकी व्यवस्था करनी चाहिये। रोग अधिक बढ़नेपर दूधमें नींबूका रस निचोड़कर फाड़ देवें। फिर छानकर जल पिलाते रहें।

यदि ज्वर न हो, तो गाड़ीमें बैठा या सुलाकर रोज़ शामको विशुद्ध वायुका सेवन कराना हितकर है।

कोष्ठबद्धता हो, तो सेकी हुई कुटकी या इतर मृदु पित्तनिःसारक विरेचन देते रहना चाहिये। चन्द्रलोई, एलुवा, मुनक्का, अमलतासकी फली आदि पित्तनिःसारक हैं। कुटकीसे पतले जलसदृश दस्त लगते हैं, बालमित्र चूर्ण तीसरी विधि (रसतन्त्र-सार) अति हितकर औषधि है। पेशाबद्वारा विष (जल) को निकालनेके लिये पुनर्नवासव देवें। बाम (ब्राह्मी मोटे पत्तेकी) को पीसकर लेप करनेसे बढ़े हुए यकृत्का सत्वर ह्रास होता है।

बालकको अतिसार होजाय, तो संतरा या मोसम्मीके रसपर रखना चाहिये या बकरीके दूधकी योजना करनी चाहिये।

यदि कामला या जलोदर होजाय, तो उसके अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये।

बालकोंके यकृद्दालीकी सर्वोत्तम औषधि मण्डूर भस्म और कुमार्यासव हैं। डॉक्टरी किसीभी औषधिसे इस रोगमें अभीतक सफलता नहीं मिली। आवश्यकता-नुसार मण्डूर और लघुवसंतको मिलाकर देनेसे मंद ज्वर दूर होता है और यकृत् सबल बनता आता है।

पित्ताशयप्रदाहज यकृद्दाली—की चिकित्सा कामला रोगके अनुसारकी जाती है। यदि उपदंशके विष जनित यकृद्दाली रोग हुआ है, तो उपदंशनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। इसमें मल्लप्रधान औषधि विशेष हितकर है।

यकृत्में प्रबल रक्ताधिक्य—यदि अति शराब सेवनसे हुआ है, तो मद्यपान का बिल्कुल त्याग करा देना चाहिये। मलावरोध न हो, इस बातका लक्ष्य रखना

चाहिये और चिकित्साके प्रारम्भमें क्षारप्रधान विरेचन, जो पतले दस्त लानेवाला हो, इसके प्रयोगद्वारा रक्त संचापका ह्रास कराना चाहिये।

दूध और लघुपाक भोजन देना चाहिये। दुर्जर आहारका त्याग करा देना चाहिये। यकृत्में वेदना हो, तो कपिंग ग्लास या जलौका लगवाकर रक्त निकाल लेना चाहिये। सामान्य रक्तवृद्धि होनेपर राईके प्लास्टरका प्रयोग करना चाहिये अथवा ऊपर अलसीकी पुल्टिस बांधे या वाष्पपर फलालेनको गरमकर सेक करते रहें अथवा दशांग लेप या तिलको पीसकर लेप करें।

यकृत् अप्रतिरोधी मन्द रक्ताधिक्य—में दो उद्देश्योंपर लक्ष्य रखकर चिकित्साकी जाती है। (१) रोगके कारणको दूर करना अर्थात् हेतुप्रत्यनीक चिकित्सा। (२) रक्तावेगग्रसित यकृत्का अपतर्पण (Depletion)। प्रथम उद्देश्यकी सिद्ध्यर्थं अवस्थाकी ओर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। हृदय विकृतिके हेतुसे शैरिक रक्त संचालनमें जितनी मंदता उपस्थित हो सके, उतनी लानी चाहिये। इस अपतर्पणका विशेष विचार औषध गुण धर्म विवेचनमें किया है।

प्रसारित हृदय जब तक सबल न हो, तब तक हृदयपौष्टिक शामक औषधियों-का सेवन कराना चाहिये। पर्णबीज और अर्जुन प्रधान औषधियाँ हितकर हैं। रसतन्त्रसारोक्त प्रभाकर वटी, त्रिनेत्र रस, कम मात्रामें अभ्रकप्रधान लक्ष्मीविलास आदि लाभदायक हैं।

यकृद्दाल्युदरमें—बाह्य प्रयोग रूपसे नाइट्रोहाइड्रोक्लोरिक एसिड १॥ औंसको ३ सेर उबलते हुए जलमें मिलावें। फिर उसमें ४-८ तह किया हुआ फलालेन डुबो, दबाकर पानी निकाल, यकृत्पर सेक करते रहनेसे रोग शमनमें अच्छी सहायता मिल जाती है। इस तरह प्रतिहारिणीशिरामें रक्त संग्रह होनेपर प्रत्युग्रतारूप सरसों, अदरक, मिर्च या प्याज़की पुल्टिस बाँधना और मृदुविरेचन देना चाहिए।

यदि उदरगुहाके भीतर रहे हुए किसी इतर यन्त्रकी विकृति या धमनी विस्तार या किसी अवयवकी वृद्धि होकर दूसरे अवयवपर दबाव आना आदि कारणोंसे इस रोगकी उत्पत्ति हुई हो; तो उस हेतुको दूर करनेका यथाविधि प्रयत्न करना चाहिए।

द्वितीय उद्देश्यकी सिद्ध्यर्थं जल सदृश पतले दस्त लानेवाली औषध कुटकी या मेगनेशिया सल्फास आदि लावणिक विरेचन देना चाहिए। विरेचनसे प्रतिहारिणी शिराके रक्तसंचालनका प्रतिबन्ध दूर होता है।

शैरिक रक्ताधिक्यकी उत्पत्ति विषमज्वरसे हुई हो, तो विषमज्वरके विषको नष्ट करना चाहिए, जिससे हृदय और पचनेन्द्रिय संस्थानकी क्षीणता शमन हो जाय।

यदि यकृत्में अति भारीपना हो, तो विरुद्ध उत्तेजना (Revulsion) कारक चिकित्सा-ब्लिस्टर आदि अथवा जलौका या कपिंगग्लास लगाकर रक्त निकाल

लेना चाहिए। इसका विशेष विचार औषध गुण धर्म विवेचनमें प्रत्युप्रता साधन विधान किया है।

यकृत्में रक्तावेग होनेपर पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये। शुद्ध वायुमें भ्रमण और व्यायाम इस रोगमें अति हितकर है। भोजन लघु देना चाहिये। शराब बिल्कुल छोड़ देना चाहिये।

बद्धगुदोदर—में स्वेदन करा गोमूत्र, तीक्ष्ण औषधि, तैल और लवणयुक्त निरूहबस्ति और फिर अनुवासन बस्तिका सेवन करना चाहिये। यहाँपर आचार्यने तैल और लवणयुक्त बस्ति लिखा है। सामान्य रीतिसे निरूहबस्तिमें ये दोनों वस्तु मिलानी ही पड़ती हैं, फिरभी दोनों वस्तुओंके नाम लिखे हैं। अतः तैल और लवण, इन दोनोंको अपेक्षाकृत अधिक लेना चाहिये।

यद्यपि आचार्योंने सिद्धिस्थानके दूसरे अध्यायमें बद्धगुदोदर, छिद्रोदर और जालोदर रोगोंको निरूह बस्ति और अनुवासन बस्तिके अनधिकारी कहे हैं, तथापि साध्यावस्थामें जब तक मल अत्यन्त बद्ध न हो, तब तक इस बद्धगुदोदर रोगमें निरूह-बस्ति दी जाती है। इसी हेतुसे अष्टाङ्गसंग्रहकारनेभी स्पष्ट बस्ति देनेकी आज्ञा दी है, तथा अनुलोमक-दस्तको लानेमें सहायक भोजन, तीक्ष्ण विरेचन और उदावर्त्तनाशक वातघ्न चिकित्सा करनी चाहिये।

कदाच स्थूल अन्त्रमें मल कठिन होजानेसे ही अवरोध हुआ हो, तो बस्तिसे लाभ होजाता है। इस तरह मल निकल जानेके पश्चात् उदर मसलने (Massage) और मृदु विरेचन (एरण्ड तैल आदि) द्वारा उदरकी शुद्धि कर लेनी चाहिये।

केवल मलजन्य बद्धगुदोदर बृहदन्त्रमें ही हुआ हो, तो उदर प्रदेशपर बाजरीके आटेकी रोटी या अलसीकी गर्म पुल्टिस बाँधनी चाहिये अथवा गर्म जलसे सेक करना चाहिये।

पित्ताश्मरी आदिसे बद्धगुदोदर होनेपर सत्वर शस्त्र चिकित्साका आश्रय लेना चाहिये। आशुकारीघातक अर्बुद बृहदन्त्र कुण्डलिका आदिमें हुआ हो, वह भाग काट देने योग्य हो, तो देर नहीं करनी चाहिये।

शस्त्र चिकित्सा करानेपर रोगीको बिस्तरपर आराम करावें। वमन न होती हो, तो पीनेके लिये जल देवें। आमाशयको धो देवें और खाली रक्खें। गुदामार्गसे द्राक्ष शर्करा मिश्रित जल चढ़ावें।

पीड़ा होती हो, तब तक मोर्फिया देते रहें। मोर्फियासे अफारा और प्रसारण दूर होते हैं। तीसरे-तीसरे दिन साबुन जलकी बस्ति देते रहें।

वक्तव्य—पूर्ण बद्धकोष्ठ होनेपर अपान वायु नहीं सरता, विरेचनीय औषधिसे दस्त नहीं होता; एवं बस्तिद्वारा जल आदि चढ़ानेपर भी मल बिल्कुल नहीं निकलता, ऐसी परिस्थिति होजानेके पश्चात् यदि दो-तीन दिन बिना चिकित्सा निकल जायगा, तो रोग असाध्य होजाता है।

बद्धगुदोदर—की पूर्ण प्राप्ति होजानेपर या इसके पहले होसके उतना सत्वर शस्त्र चिकित्साद्वारा शल्यको निकाल डालना चाहिये। जितनी देरी होती है, उतनाही विष प्रकुपित होकर अधिक शक्तिपात कराता है। यदि अन्त्र फट जायगी, तो उदर्य्याकलामें प्रदाह होकर रोगीको मृत्यु होजायगी। भगवान् धन्वन्तरिजीने भी इस रोगमें निम्न वचनसे शस्त्रक्रिया करानेकी सूचनाकी है।

"स्निग्धस्विन्नस्याभ्यक्तस्याऽधो नाभेर्वामतश्चतुरंगुलमपहाय रोमराज्या उदरं पाटयित्वा चतुरंगुलप्रमाणान्यन्त्राणि निष्कृष्य निरीक्ष्य बद्धगुदस्यान्त्र-प्रतिरोधकरमश्मानं बालं वापोह्य मलजातं वा।

क्षतोदरोपयोगी सूचना

बृहदन्त्रमें क्षत होनेपर रोगीको आराम देवें। लघु पथ्य भोजन करावें। आमातिसार के अनुरूप चिकित्सा करें।

बृहदन्त्रमें कर्कस्फोट होनेपर उसे असाध्यरोग मानकर सत्वर शस्त्र चिकित्सा करादेनी चाहिये।

शेषान्त्रक प्रदाहज क्षत होनेपर शस्त्र चिकित्साकरानेपर रोग सत्वर शमन हो सकता है।

शस्त्रक्रिया विधि

बद्धगुदोदर और क्षतोदरमें शस्त्रकर्म—चरक संहिताकारने लिखा है कि, पहले नाभिके नीचे बाँई ओर की कुक्षिको ४ अंगुल नाप, उस भाग को छोड़ मात्रा-युक्त शस्त्रसे चीरा देना चाहिये। फिर आंतके कुछ भागको (लगभग ४ अंगुल प्रमाण को) निकाल वहाँपर चीरा देकर अच्छी तरह निरीक्षण करें। बद्ध अन्त्र और क्षत अन्त्रके कारणभूत शल्य (केश, कण्टक, कंकड़ आदि) को निकाल डालें और संशुद्ध-कर घी (घी-शहद) चुपड़ देवें। एवं अन्त्रान्त्रप्रवेश (Intussusception) या अन्त्रपाश (Strangulation) प्रतीत हो, तो उसेभी छुड़ा देवें। पश्चात् आंतके छिद्रपर सम्हाल पूर्वक अनेक बड़ी चीटियोंमकोड़ोंसे दंश करावें। ताकि छिद्र या अन्त्रके दोनों सिरे आपसमें जुड़ जायें। इसके लिये दोनों सिरोंको जोड़कर संधि स्थानपर दंश कराना चाहिये। जब छेद मिल जाय, तब मकोड़ोंके शिरच्छेद कर देना चाहिये, अर्थात् सिरको रख शेष भागको काट डालना चाहिये। परिणाममें वहाँ सिलाई सदृश संधान हो जाता है; अर्थात् दंशके कारण रक्त या रक्तरस निकलकर व्रणको तत्काल भर देता है। इस तरह आंतोंके जोड़नेके पश्चात् जिसतरह अन्त्रको बाहर निकाला था, उसके प्रतियोगरूप आंतोंको पुनः प्रवेश करा यथास्थान स्थापित कर उदरके व्रणकी सुईसे सिलाई कर देनी चाहिये।

भगवान् धन्वन्तरिजीने लिखा है कि, इस तरह चीरा देनेके पहले स्नेहन, स्वेदन और तैलाभ्यंग करा लेना चाहिये। शेष बात वही लिखी है। सीम लेनेके पश्चात्

मुलहठी और काली मिट्टी मिला लेपकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। (वर्तमानमें बोरिक एसिड एक्रीफ्लेबिन या इतर कीटाणुनाशक औषधि प्रयोजित होती है) रोगीको निर्वात स्थानमें योग्य परिचारकके पास रक्खें, तथा आहार रूपसे केवल गोदुग्ध देवें।

यदि सन्निरुद्ध गुदसे बद्धगुदोदरकी प्राप्ति हो, तो गुदनलिकामें शस्त्रक्रिया करके मार्ग चौड़ा कर लेना चाहिये।

छिद्रोदर — में स्वेदन नहीं कराना चाहिये। शेष सब उपचार कफोदरके सदृश करना चाहिये, तथा जो जल उत्पन्न होता रहता है, उसका स्राव बार-बार कराते रहना चाहिये। आवश्यकतापर शस्त्रचिकित्साका आश्रय लेना चाहिये।

जलोदरोपयोगी सूचना

जलोदर—की चिकित्सा करनेके लिये प्रारम्भमें जलके दोषका हरण करनेके लिये गोमूत्र और विविध तीक्ष्ण क्षारयुक्त औषधि तथा दीपनीय और कफनाशक आहारसे उपचार करना चाहिये। रोगीको जल आदि द्रव पदार्थोंके पीनेमें हो सके, उतना नियन्त्रण करनेको कहें।

सब प्रकारके उदर रोग बहुधा त्रिदोष प्रकोपसे उत्पन्न होते हैं। अतः सब प्रकारोंमें त्रिदोषका शमन करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये। कुक्षियोंमें दोष भर जानेपर अग्नि मन्द हो जाती है। इसलिये सब उदररोगोंमें दीपन और लघुभोजन प्रयोग करना चाहिये।

सूचना—सामान्य रीतिसे उदररोगोंमें स्नेहपान और स्वेदनका निषेध निम्न वचनोंसे किया है। अतः स्नेहन, स्वेदन सम्हालपूर्वक आवश्यकतानुसार करना चाहिये।

स्नेहन निषेध—"विवर्जयेत् स्नेहपानमजीर्णी चोदरी ज्वरी।"

॥ सु० सं० चि० अ० ३१ ॥

"अन्नद्विषश्छर्दयन्तो जठराग्निगरार्दिताः।" च० सं० सू० अ० १३।

इन वचनोंसे दोनों आचार्योंने उदर रोगीके लिये स्नेहपानका निषेध किया है। कितनेक विद्वानोंका मत है कि, यह निषेध वचन छिद्रोदर और जलोदर रोगीके लिये है। सबके लिये नहीं।

स्वेदन निषेध—"पाण्डुमेही रक्तपित्ती क्षयार्त्तः क्षामोऽजीर्णी चोदरार्त्तो विषार्त्तः।"

॥ सु० सं० चि० अ० ३२ ॥

"कामलयुदरिणी चैव क्षतानामाढ्यरोगिणाम्।"॥ च० सं० सू० अ० १४ ॥

इन वचनोंसे दोनों आचार्योंने स्वेदनका निषेध किया है। अतः जिन रोगियोंको शोधन कराना है, उनके लिये स्नेहपान और स्वेदनका प्रति नषेध नहीं मानना चाहिए। स्वतन्त्र रूपसे स्नेहन स्वेदनका प्रतिषेध समझना चाहिए।

जलोदर रोगीको यदि औषधि चिकित्सा आदिसे लाभ न हो, तो वातहर तैलका मर्दनकर गरम जलसे स्वेदन करा शान्तिसे पकड़कर बैठावें, और उदरपर कोख तक कपड़ा लपेट लेवें। फिर नाभिके नीचे वामपर्श्वमें ४ अंगुल रोमावलीको छोड़ छेदकर

ब्रीहिमुखयन्त्र (Trocar and Cannula) से जल निकाल लेना चाहिये। जल स्राव हो जानेपर हाथसे मर्दन करें, ताकि अवशिष्ट जल रह गया हो, तो निकल जाय। फिर व्रणचिकित्सा करें, और उदरपर चौड़े वस्त्रको कसकर लपेट देवें।

आधुनिक विधि आगे दी है। भगवान् धन्वन्तरिजीने अंगुष्ठ सदृश मोटा छेद करनेको लिखा है, उसी तरह पहले छेद किया जाता था, अब छेद बहुत छोटा करनेका रिवाज हो गया है, छेद छोटा करनेमें रोपण क्रिया सत्वर होती है, और जल निकलनेके समय रोगीको मूर्च्छाभी नहीं होती।

सूचना—सब प्रकारके उदर रोगोंमें जैसे २ बस्ति, विरेचन या जलस्राव आदिसे उदर सिकुड़ता जाय, वैसे-वैसे वस्त्रको कसकर लपेटते रहना चाहिए, अन्यथा वहाँपर वायु प्रवेशकर जाती है।

भगवान् धन्वन्तरिजी लिखते हैं कि, सब जल एक ही दिनमें नहीं निकाल लेना चाहिए। एक ही समयमें सब जल निकाल देनेपर तृषा, ज्वर, अंगमर्द, अतिसार, श्वास, पैरोंमें दाह और उदर फूलना आदि विकार होते हैं। अतः ३-४-५-६-८-१०-१२ या १६ दिनमें कुछ-कुछ दिनोंका अन्तर करके थोड़ा-थोड़ा निकालना चाहिए।

जलका स्राव हो जानेपर रोगीको घी मिली हुई पेया बिना नमकवाली पिलानी चाहिये। फिर ६ मासतक केवल दूधपर ही रखना चाहिये। पश्चात् ३ मासतक दूधसे सिद्ध पेया पिलानी चाहिये। तदनन्तर ३ मासतक नमक रहित श्यामाक (साँवा) या कौरदूष (कोदों) के चावलोंको दूधके साथ देते रहना चाहिये। इस तरह एक वर्षतक पथ्यका सेवन कराना चाहिये।

भगवान् धन्वन्तरिजीने भी कहा है कि, जलोदर रोगीके शस्त्र कर्मके पश्चात् ६ मासतक दूध या जंगली जीवोंका मांस रस, ३ मासतक आधादूध मिला जल और खट्टे फल (अनार आदि) सह मांस रस तथा शेष ३ मास हलका हितकर भोजन देवें। इस तरह एक वर्षतक पथ्यपालन करनेसे रोगी स्वस्थ होजाता है।

जलोदर और शोथ रोगकी चिकित्सामें हो सके, उतना जल्दी कारणको जानकर दूर करना चाहिये। जलोदर रोगीको नमक बिल्कुल नहीं देना चाहिये। पथ्यमें मानमण्ड देना हितकर है।

जल सदृश पतले दस्त लानेवाला तीव्र विरेचन या तीव्र मूत्रल औषधि देनेसे उदर्य्याकला या संयोजक तन्तुमें संचित जलका रक्तमें आकर्षण हो जाता है।

विरेचन औषधि, जो पतले जल सदृश दस्त लाती है, वह देनेसे, रक्तमेंसे जल प्रचुर परिमाणमें निकल जाता है। परिणाममें रक्तका जलीय अंश निकल जानेपर शेष रस घन बन जाता है, और उसमें क्षारकी अधिकता होजाती है। जिससे क्षति पूरणार्थ रक्तप्रणालियाँ अन्तर्वहन और बहिर्वहन (Fndosmosis and Exosmosis) क्रियाके नियमानुसार संयोजक तन्तुओंमेंसे संगृहीत रसको आकर्षित कर लेती हैं। इस

उद्देश्यसे जलोदर और शोथ रोगोंकी चिकित्सामें प्रातःकाल क्षार प्रधान विरेचन औषधि का प्रयोग करना चाहिये। एवं जलपानका उस समय निषेध करना चाहिये। शोषण क्रिया और अन्तर्वहन, बहिर्वहन नियमका विवेचन औषधगुण धर्म विवेचनमें किया गया है।

इसके अतिरिक्त मूत्रमार्गद्वारा रसको दूर किया जाता है। इस उद्देश्यसे मूत्र-पिण्डकी क्रिया बढ़ानी चाहिये। परन्तु वृक्क यदि विकारग्रस्त हों, तो उससे अधिक कार्य नहीं लेना चाहिये। यदि वृक्क पीड़ित होनेपर भी मूत्रल औषधि दी जायगी, तो शोथमें लाभ नहीं होगा, बल्कि हानि होगी। वृक्क निर्दोष है और क्रिया शिथिल होगई हो, तो मूत्रल औषधि देनेपर मूत्रनिःसारक विधानमें उत्तेजना आती है। फिर रक्त दबावमें उत्तेजना बढ़ जाती है, और मूत्रद्वारा अधिक रस निकलने लगता है। जिससे जलोदर आदि सब प्रकारके शोथ रोगोंमें लाभ पहुँच जाता है।

सूचना—यदि जल मूत्रल या विरेचन औषधिसे कम न हो, तो यन्त्रद्वारा जलको निकाल देना चाहिये, परन्तु कारणको दूर किये बिना संचित जलको निकाल लिया जायगा, तो पुनः कुछ दिनोंमें फिर भरने लगता है। यदि कष्ट असह्य होता है, तो कष्ट शमनार्थ संचित सलिलको यन्त्रद्वारा निकाल देना चाहिये।

तरल निकालनेकी डॉक्टरी विधि—तरल निकालनेके लिये पात्र (बाल्टी या दूसरा), तरल-परिक्षार्थ नलिका (Test-tube) तरल निकालनेका पात्र (Flask) रोगीके उदरपर बाँधनेका कपड़ा, नाभिके नीचे लपेटनेका मोमजामे (Wax-Cloth) का टुकड़ा और शुद्ध किया हुआ ब्रीहिमुखयन्त्र (आरयुक्त नलिका Trocar with Cannula), इन सब साधनोंको तैय्यार कर लेवें। फिर मूत्रनलिका (Catheter) द्वारा मूत्राशयमें से संचित मूत्रको निकालकर तरल निकालनेके लिये व्यवस्था करें।

जो कपड़ा रोगीके उदर प्रदेशपर बाँधना है, वह स्तनसे लेकर नाभिके नीचे ४ इन्चतक समग्र उदर प्रदेश ढक जाय और उदरके दोनों ओर २-२ फीट कपड़ा पकड़नेके लिये भी शेष रहे, उतना लम्बा, चौड़ा, मजबूत, सख्त और मोटा होना चाहिये। ऐसे कपड़ेको धोकर आध घण्टेतक जलमें भिगो देवें। फिर उस कपड़ेके दोनों अन्त भागको चीरकर ५-६ भागमें विभक्त करें; परन्तु उदरपर रहनेवाला भाग न फट जाय इस बातकी सम्हाल रक्खें।

इस प्रकार सब व्यवस्था होनेपर रोगीको दस्ते (Handles) वाली कुर्सी या तख्तेपर बैठाकर उसके पैर नीचे लटका देवें और नाभिसे लगभग ३ इन्च नीचे केश समूह अर्थात् बस्तिकण्ठिका रेखा (Pecten pubis) तकके भागको साबुन, तार्पिन तैल, आयोडिन या शराब आदि किसी जन्तुघ्न औषधिद्वारा भलीभाँति साफ कर लेवें। पश्चात् नाभिके २ इन्च नीचेके प्रदेशसे पैरोंतक मोमजामा (Wax-Cloth) लपेट देवें। ताकि तरलसे वस्त्र गंदे न हों।

पश्चात् उपर्युक्त वस्त्रको उदर प्रदेशपर व्यवस्थित रख, दोनों ओरके सिरोंको रोगीके पीछे खड़े हुए दो परिचारकोंको पकड़ा देवें। ये सिराएँ पकड़नेमें ऊपरकी ओरका एक सिरा हो, उसपर नीचेकी ओरका उसी पंक्तिमें रहा हुआ सिरा रहेगा; इस तरह सब सिराओंको क्रमशः स्थापन करें, जिस तरह एक हाथकी अंगुलियोंको दूसरे हाथकी अंगुलियोंके भीतर प्रवेश कराई जाती हैं; उसी तरह सब सिरे रहेंगे। दाहिनी ओरके सिरोंको बाँई ओर खड़े मनुष्यके हाथमें देवें और बाँई ओरके सिराओंको दाहिनी ओर रहे हुए आदमीको देवें। जिससे उदर प्रदेशपर कपड़ा सुदृढ़ रूपसे चिपका रहे।

वस्त्र सुदृढ़ लगा लेनेपर नाभिके नीचे मध्यरेखासे दूर दाहिनी या बाँई ओर जहाँसे ब्रीहिमुख यंत्र प्रवेश कराना हो, उस स्थान (नाभि और केशसमूहके मध्यमें रहे हुए भाग) परके वस्त्रके थोड़े भागको कैंची या छुरीसे काट देवें। फिर यन्त्रके प्रवेशसे होनेवाली पीड़ाको दूर करनेके लिये नौवोकेन (Novocain) का इन्जेक्शन करें; पश्चात् ब्रीहिमुख यन्त्र (Trocar with Cannula अथवा Aspirator) का उदर्य्याकलामें प्रवेश करावें और यन्त्र-प्रवेश होनेपर नलिका (Cannula) के भीतर रही हुई और (Trocar) को बाहर निकाल लेवें। नलिकाको रहने देवें। जब तरलका विशेष अंश निकल जाय, तब नलिकाको भी निकाल लेवें। फिर उस स्थानपर घाव भरनेवाली औषधि लगा देवें।

यदि त्रिपत्र कपाट अवरोध (Tricuspid Stenosis) आदि कारणोंसे प्रतिहारिणी शिरासमुदायमें रक्तवृद्धि होगई हो, तो रात्रिको रेवाचीनी या निशोत प्रधान मृदु विरेचन देवें तथा प्रातःकाल लावणिक विरेचन (मेगनेशिया सल्फास) देवें।

यदि जलोदरकी उत्पत्ति हुई हो, तो यवक्षार और शिलाजीतको पुनर्नवादि क्वाथके साथ देनेसे वृक्क विधानकी मूत्र निःसारण क्रिया बढ़ जाती है। जिससे जलोदर और शोथका ह्रास होता जाता है।

डॉक्टरीमें जलोदर रोगीका वृक्क निर्दोष हो, तो मूत्रविरेचनार्थ डॉक्टर गी की १-१ गोली (Guy's pill*) दिनमें ३ बार ३ दिन तक देते रहते हैं।

*इसे पिल्युला डिजिटेलिस कम्पाउण्डभी कहते हैं। डिजिटेलिसके पानका चूर्ण जंगली प्याज़ (Urginea Scilla) का चूर्ण, पारद वटी (33% पारदयुक्त ब्ल्यू पिल), तीनों १-१ ग्रेन। शर्बत गोली बन सके उतना। यह १ गोलीकी मात्रा है। किसी २ ग्रन्थकारने खोरासानी अजवायनका सत्वभी मिलाया है।

पारद वटी—शुद्ध पारद २ भाग, गुलाबकी ताज़ी पंखड़ी ३ भाग, मुलहठी १ भाग। गुलाबके साथ पारदका मर्दन करें। पारद निश्चन्द्र होनेपर मुलहठी मिलाकर गोलियाँ बना लेवें। इसकी मात्रा ४ से ८ ग्रेन। विरेचनार्थ ५ से १५ ग्रेन।

वृक्कविकारजन्य जलोदर होनेपर इन्द्रायन फलका चूर्ण देनेसे मलमूत्र वेरेचन होकर लाभ पहुँचता है।

यकृद्दाल्युदरसे उत्पन्न जलोदरको असाध्य माना है। जल निकालनेपर भी बहुधा रोगीकी मृत्यु होजाती है। यकृद्दाल्युदरके साथ यकृतके ऊपर रही हुई उदर्य्याकलाका प्रदाह (Perihepatitis) या उदर्य्याकलाके किसीभी भागपर प्रदाह (Peritonitis), इन दोमेंसे किसीभी प्रकारका प्रदाह होनेपर बार-बार जल निकालते रहनेसे रोगनिवृत्ति हो सकती है।

उदररोग चिकित्सा

(१) सेहुँडके दूधकी भावनावाली पीपल, दूधके साथ सेवन करावें। शनैः-शनैः पीपलकी मात्रा बढ़ाते जायँ। सब मिलाकर १००० पीपल तक रोगीकी शक्तिके अनुरूप प्रयोग कराना चाहिये।

(२) शुद्ध शिलाजीत, मूत्र (गौ, भैंस, ऊँटनी, बकरी, भेड़, गदही और हथिनीमें से किसी एकका—इनमेंसे गौ, भैंस और ऊँटनीके मूत्रका विशेष उपयोग होता है), शुद्ध गूगल, त्रिफला और सेहुँड (या त्रिधारीथूहर) का दूध, इन पाँच औषधियोंमें से किसी एकका प्रयोग करनेसे उदररोग शमन होजाता है।

(३) त्रिफलारसायनका सेवन करानेसे अथवा हरड़कल्प करानेसे सब प्रकारके यकृद्दाली आदि उदररोगोंकी निवृत्ति होजाती है।

(अ) चरक संहितामें त्रिफला रसायनके सेवनार्थ लिखा है कि, रात्रिका भोजन पचन हो जानेपर प्रातःकाल १ हरड़, भोजनके पहले २ बहेड़े और भोजनकर लेनेपर ४ आँवले व शहद और घीके साथ मिलाकर सेवन करें। तीनों द्रव्योंके कपड़छान चूर्ण ऊपर कहे हुए समय पर एक वर्षतक सेवन करनेसे मनुष्य जरारहित और नीरोग रहकर पूरे सौ वर्षतक जीवित रहता है।

(आ) दूसरे प्रकारके त्रिफला रसायनके लिए लिखा है कि, त्रिफलाका कल्ककर नये लोहपात्रमें लेपकर २४ घण्टेतक रहने देवें। फिर कल्कको उतार शहद और जलके साथ मिलाकर पिला देवें। औषधि जीर्ण होनेपर अच्छी तरह घृत मिले हुए भात (खिचड़ी) आदिका भोजन करावें। इस तरह १ वर्ष तक सेवन करानेसे मनुष्य जरा और रोगरहित होकर १०० वर्ष जीवित रहता है।

(४) भैंसके मूत्रमें दूध मिलाकर ७ दिनतक निराहार रहकर सेवन किया जाय तो, उदररोगका शमन हो जाता है।

(५) त्रिधारी थूहरके दूधमें चावलके आटेको मसल, उसमें से पूरी या मालपुए बनाकर खानेसे एक सप्ताहमें अति बढ़ा हुआ उदररोग भी नष्ट होजाता है।

(६) वर्धमान् पिप्पली प्रयोग सब प्रकारके उदररोगोंको नष्ट करनेमें बहुत अच्छा माना गया है।

पहले दिन दूधके साथ ३ पीपलका सेवन करें। फिर १० दिनतक रोज़ ३-३ पीपल बढ़ाते जायँ। पुनः इसी क्रमसे ३-३ घटाते जायँ। इस तरह प्रयोग करके २१ दिनमें २८० पीपलोंका सेवन कराया जाता है। बलवानोंके लिए चरकसंहिताकारने १०-१० पीपल रोज़ बढ़ाकर २० दिनमें १००० पीपल सेवन करनेको लिखा है। परन्तु वर्तमानमें इतनी अधिक मात्रा सहन नहीं हो सकेगी। पीपल बढ़ानेके साथ साथ दूधका परिमाणभी बढ़ाते रहना चाहिये। जब पीपल पचन हो जाय, तब दूध, घी और भात (सांठी चावल) का भोजन कराते रहें।

भगवान् आत्रेयने लिखा है कि, यह वर्धमान् पिप्पली कल्प बृंहण (मांस-वर्धक), स्वर शुद्धिकर, आयुवर्धक, प्लीहोदर नाशक, युवावस्थाको कायम रखनेवाला और मेध्य है।

धन्वन्तरिजी लिखते हैं कि, इस कल्पके सेवनसे, वातरक्त, विषमज्वर, अरुचि, पाण्डु, प्लीहोदर, अर्श, कास, शोष, शोथ, अग्निमान्द्य, हृद्रोग और सब प्रकारके उदर रोग नष्ट होते हैं। दोष और रोगका विचारकर बलवान् पुरुषोंको चूर्णरूपमें, मध्यम बल वालोंको क्वाथरूपमें और निर्बलोंको शीत कषाय बनाकर पीपलोंका सेवन कराना चाहिये।

वक्तव्य—यदि पीपलके सेवनसे शुष्क कास होजाय, तो प्रयोग बन्दकर देना चाहिये। कास शमन होजानेपर कम मात्रामें पुनः प्रारम्भ करें।

(७) आकके पीले पत्तोंको साफ पोंछकर ऊपर पीसा हुआ सैंधानमक थोड़ा-थोड़ा बिछावें। फिर ऊपर पत्ता रखकर नमक डालें। इस तरह सब पत्तोंको जमा हाँडी में रख संपुटकर गजपुटमें फूंक देवें। फिर निकाल पीसकर १ से २ माशेतक दहीके तोड़के साथ देते रहनेसे गुल्म और प्लीहोदर रोग २१ दिनमें नष्ट होजाते हैं।

(८) शिग्रु क्वाथ—सुहिंजनेकी छालका क्वाथकर छोटी पीपल, काली मिर्च, अम्लबेंत और सैंधानमकका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे प्लीहोदररोग नष्ट होजाता है।

(९) रोहितक योग—रुहेड़की छाल और बड़ी हरड़का चूर्णकर गोमूत्र या जलमें मिलाकर पिलानेसे समस्त उदररोग प्लीहारोग, प्रमेह, अर्श, कृमि और गुल्मरोग नष्ट होजाते हैं। जुलाब लानेकी आवश्यकता हो, तो गोमूत्रमें देवें और रोग शमनार्थ जलके साथ देवें।

(१०) दशमूलके क्वाथके साथ एरण्ड तैल या गोमूत्रका सेवन करानेसे वातोदर, शोथ, कोष्ठबद्धता और शूलविकार आदि रोग नष्ट होते हैं।

(११) त्रिफलाके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर पिलाते रहनेसे वातोदर, मलावरोध, शोथ और शूलकी निवृत्ति होती है।

(१२) पुनर्नवागुग्गुल योग—पुनर्नवाकी जड़, देवदारू, हरड़ और गिलोयको मिला क्वाथकर गोमूत्र और गूगल डालकर पिलानेसे त्वचाविकार, शोथ,

उदररोग, पाण्डुरोग, स्थूलता, मुँहसे पानी आना और ऊर्ध्व भागका कफप्रकोप, ये सब रोग दूर होजाते हैं।

(१३) गोमूत्रके साथ भैंसका दूध या गोदुग्धके साथ त्रिफला चूर्णका सेवन करानेसे या केवल गोमूत्र पिलाने और भोजनमें केवल गोदुग्ध पिलाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें शोथसह उदर रोग नष्ट होजाता है।

(१४) भल्लातक मोदक—भिलावा, हरड़ और कालाज़ीरा, तीनोंको समभाग मिला कूट सबके समान गुड़ मिलाकर ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। भिलावेको कूटनेके समय बिना तैल लगाये हाथ नहीं लगाना चाहिये। इन गोलियोंमें से २ से ४ गोलीतक दिनमें २ समय देते रहनेसे दारुण प्लीहोदरभी एक सप्ताहमें नष्ट होजाता है।

(१५) देवदार्वाद्य लेप—देवदारु, पलाशके बीज, आककी जड़, गजपीपल, सुहिंजनेकी छाल, असगन्ध, इन ६ औषधियोंको गोमूत्रके साथ पीस गुनगुनाकर उदर पर एक-एक अंगुल मोटा लेप करनेसे अफारा और मलबद्धता आदि विकार दूर होते हैं।

(१६) पुनर्नवाके मूल—२-२ तोले क्वाथकर दिनमें ३ समय ४-४ रत्ती शिलाजीत और २-२ रत्ती लोहभस्म मिलाकर पिलाते रहनेसे रक्तमें मूत्रविषवृद्धि (Uraemia), हृदयकी निर्बलता; शोथ, अग्निमान्द्य तथा ज्वर आदि विकृतिसह उदररोग दूर होता है।

(१७) बड़े इन्द्रायणके फलका चूर्ण १ से ३ रत्तीतक शक्ति अनुसार प्रातः-काल ७ दिन तक जलके साथ देनेसे पित्त और दूषित जलका मलके साथ स्राव होकर यकृद्विकृतिजन्य और वृक्कविकृतिजन्य जलोदर दूर होते हैं।

(१८) मालकांगनीका तैल १० से २० बूँदतक रोज़ सुबह दूधके साथ देते रहनेसे वृक्कविकारजन्य जलोदरकी निवृत्ति होती है।

(१९) यकृद्दाल्युदरोगपर—रसतन्त्रसारमें लिखी हुई औषधियाँ—मण्डूर भस्म (कुमार्यासव या मूलीके रस और मिश्रीके साथ) ताप्यादिलोह (आमके मुरब्बे या मूलीके रस और मिश्रीके साथ) ताम्र पर्पटी, ताम्रभस्म (शहद और चित्रकमूलके क्वाथके साथ), प्लीहान्तक चूर्ण, कुमार्यासव, लघुशंखद्राव, उदरामृत योग आदि लाभदायक हैं। इस यकृद्दाली रोगकी औषधियोंका विशेष वर्णन आगे कामला रोगमें लिखा जायगा।

(२०) उपदंश विषज यकृद्दालीपर—मूलहेतुरूप विषको नष्ट करनेके लिये मल्लसिन्दूर, अष्टमूर्त्तिरसायन, उपदंशसूर्य आदि औषधियाँ देनी चाहियें।

(२१) यकृत्में रक्ताधिक्य होनेपर—आरोग्यवर्धनी द्वितीयविधि, कुमार्यासव, त्रिफलारिष्ट, नवायसलोह, तक्रमण्डूर, प्लीहान्तकक्षार चूर्ण, प्लीहान्तक चूर्ण

आदि हितावह हैं। आवश्यकता अनुसार यकृत्पर अलसीकी पुल्टिस बाँधे या सेक करें। अथवा जलौका आदि द्वारा रक्तको निकाल लेवें।

पित्तान्तक चूर्ण और प्लीहान्तक चूर्ण सामान्य औषध होनेपर भी तत्काल लाभ पहुँचाते हैं। यदि रोग विषमज्वर जन्य हो, तो डॉक्टरी मतानुसार किनाइन मिश्रित औषधि देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। डॉक्टरी मतमें (प्लीहान्तक चूर्णके स्थानपर) एमोनिया क्लोराइड १०-१० ग्रेनकी मात्रामें २-२-घण्टेपर देते हैं। डॉक्टरोंमें इसे उत्कृष्ट औषधि मानी है।

(२२) यकृत्का मर्द रक्ताधिकता होनेपर—रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रहमें कही हुई औषधियोंमें प्रभाकरवटी त्रिनेत्ररस तथा लक्ष्मीविलासरस आदि अति हितकर हैं।

(२३) यकृद् वृद्धिके शमनार्थ—प्लीहान्तक गुटिका, सुवर्णमालिनीवसन्त, प्लीहान्तक चूर्ण, शीतभंजीरस या सुदर्शन चूर्णका सेवन कराना चाहिये।

बहुधा विषम ज्वरजन्य विकार होनेपर पाण्डुताभी रहती है। अतः प्लीहान्तकवटी या सुवर्णमालिनीवसन्त देना विशेष हितकारक हैं। मल्लप्रधान औषधि विषशमनमें सत्वर लाभ पहुँचाती है। आवश्यकतापर अति कम मात्रामें शीतभञ्जी रस दूसरी विधि, अचिन्त्यशक्ति रस या इतर औषधि देनी चाहिये। मात्रा अधिक होनेपर हानि पहुँचती है।

यदि यकृत्में अति भारीपन हो, तो विरुद्ध उत्तेजना (Revulsion) कारक चिकित्सा ब्लिस्टर आदि अथवा जलौका या कपिंगग्लास लगाकर रक्त निकाल लेना चाहिये। इसका विशेष विचार औषधगुणधर्म विवेचन प्रत्युग्रतासाधक विधान तक किया है।

(२४) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखे हुये प्रयोग—इच्छाभेदी रस, अभ्रकंचुकीरस, नारायण चूर्ण आरोग्यवर्धनी, जलोदरारि रस, नाराचघृत, दशमूलाद्य घृत, अभयारिष्ट, उदरामृत योग, शंखद्राव, वज्रक्षार चूर्ण, प्लीहान्तक गुटिका, प्लीहान्तक क्षार चूर्ण, प्रवालपञ्चामृत रस, तालसिन्दूर, ताम्रभस्म (पुनर्नवादि क्वाथ या कुमार्यासवके साथ) और पञ्चसूत आदि उदर रोग पर बर्ते जाते हैं।

इनमेंसे इच्छाभेदीरस और नारायण चूर्ण विरेचन कराने वाले हैं। तथा उदरामृत योग, नाराचघृत और अभयारिष्ट कोष्ठशुद्धिकर औषध हैं।

अभ्रकंचुकी, आरोग्यवर्धिनी और जलोदरारि रस, तीनों उदर शोधनकर रोगको शमन करनेवाले हैं। इनमें जलोदरारि रस ऊंटनीके दूधके साथ देते रहनेसे जल जैसा पतला दस्त होकर बढ़ा हुआ जलोदर सत्वर नष्ट होजाता है। ताम्रभस्मको मूत्रल और मल शोधक अनुपानके साथ देनेसे यकृद्विकार और प्लीहा विकृतिसह उदर रोग नष्ट होजाता है।

दशमूलाद्यघृत वातोदर रोगीके लिये लाभदायक है।

वज्रक्षार चूर्ण और शंखद्राव जलोत्पत्तिके पहले सब प्रकारके नये उदररोगमें हितकारक हैं।

प्रवालपञ्चामृत रस पित्तोदरमें दिया जाता है।

प्लीहान्तक गुटिका और प्लीहान्तक क्षार चूर्ण प्लीहोदर और यकृतोदरमें लाभदायक हैं। इनमेंसे लोहभस्मयुक्त प्लीहान्तक गुटिका पाण्डुसह प्लीहोदरको नष्ट करनेमें अधिक हितकर मानी गई है।

ताल सिन्दूर तथा उदररोग सामान्यशोथसह हो, तो उसे सत्वर दूर करता है

पञ्चसूत आन्त्रिक कीटाणुजन्य विकृति तथा तीव्र यकृत् संकोच को नष्ट करने और तीव्र उदरवातको दूर करनेके लिये अदरकके रस और शहद या इतर रोगशामक अनुपातके साथ दिया जाता है।

(२५) रसतन्त्रसार द्वितीय-खण्डमें आये हुए प्रयोग—यकृत्प्लीहारि लोह और रोहितक लोह, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि और यकृत्प्लीहावृद्धिपर लाभदायक है। इनके अतिरिक्त प्लीहार्णव रस, यकृच्छूल विनाशिनी वटी, यकृद्विकारहरि वटी, प्लीहारिवटी, कासीसाद्यवटी, अग्निप्रभावटी, प्लीहोदरारि चूर्ण और प्लीहान्तक क्षारका प्रयोगभी सफलतापूर्वक होता रहता है।

विरेचनकी आवश्यकता होनेपर नाराचरस, उदरारिरस और हपुषाद्य चूर्णका उपयोग किया जाता है। अतिसारीको पाशुपतरस (वातोदर, कफोदरके रोगियोंको) हितावह है। वातोदर आदि पीड़ितोंको अग्निप्रदीप्त करने और उदरवायुको नष्ट करनेके लिये सामुद्राद्य चूर्ण या बड़वानल क्षार दिया जाता है।

(२६) पुनर्नवादि चूर्ण—पुनर्नवाकी जड़, देवदारु, गिलोय, पाढल, बेलका गूदा, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी पीपल, चित्रकमूल, अडूसा, इन १३ औषधियोंको समभाग मिला कूट कपड़छान चूर्ण करें। इनमेंसे ४ से ६ माशेतक दिनमें २ बार गोमूत्रके साथ देते रहनेसे सारे शरीरमें फैले हुए शोथ और शूलसह आठों प्रकारके उदर रोग तथा दुष्ट व्रण नष्ट होजाते हैं।

(२७) दशमूलादि क्वाथ—दशमूल, देवदारु, सोंठ, गिलोय, पुनर्नवाकी जड़, हरड़का छिलका, इन १५ औषधियोंको समभाग मिला जौकुटकर २ से ४ तोलेका क्वाथकर पिलाते रहनेसे जलोदर, शोथ, श्लीपद, गलगण्ड और वातरोग आदि नष्ट होजाते हैं।

(२८) हरीतक्यादि क्वाथ—हरड़, सोंठ, देवदारु, पुनर्नवाकी जड़ और गिलोय, इन ५ औषधियोंका क्वाथकर गूगल और गोमूत्र मिलाकर पिलानेसे थोड़े ही दिनोंमें शोथसह उदररोग नष्ट होजाता है।

(२९) पुनर्नवादि क्वाथ—पुनर्नवाकी जड़, नीमकी अंतर छाल, परवलके पत्ते, सोंठ, हरड़, देवदारु और गिलोय, इन ७ औषधियोंका क्वाथकर दिनमें दो

बार पिलाते रहनेसे सर्वांगशोथ, उदर रोग, कास, शूल, श्वास और पाण्डु रोग, ये सब दूर होजाते हैं।

(३०) भेदनीयां वटी—गोखरू और पीपलको कूट कपड़छान चूर्णकर थूहरके दूधमें १२ घण्टे खरलकर २–२ रत्तीकी गोलियाँ बना"। इनमेंसे १ से ४ गोलीतक शक्ति अनुसार सेवन करानेसे अति प्रबल उदर रोग भी नष्ट होजाते हैं।

(३१) महाबिन्दु घृत—थूहरका दूध ८ तोले, गोघृत १२ तोले, कपीला ४ तोले, सैंधानमक २ तोले, निसोत ४ तोले, आँवलोंका रस १६ तोले और घृत पाकार्थ जल ६४ तोले, मिलाकर यथाविधि मंदाग्निपर पाक करें। इसमेंसे १ से २ तोले घृत उदररोग, प्लीहावृद्धि, गुल्म और कोष्ठविकारजन्य सब रोगोंमें दिया जाता है। जैसे वायु मेघोंके समूहोंको सरलतासे उड़ा देता है, वैसे ही यह घृत सब प्रकारके गुल्म आदि रोगोंके लिये इन्द्रके वज्र सदृश सफल साधन है।

(३२) त्रैलोक्योडुम्बर रस—शुद्ध पारद २ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, अभ्रक भस्म, चित्रकमूल, वायबिडंग, गिलोय सत्व, नागभस्म, कालाजीरा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सैंधानमक और जवाखार, ये ११ औषधियाँ १–१ तोला लेवें। पहले पारदगंधककी कज्जली करें। फिर भस्म और काष्ठ आदि औषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिलाकर तुलसी और बिजौरेके रसकी ७–७ भावना देकर २–२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इसमेंसे १–१ गोली दिनमें २ बार गोघृतके साथ देते रहनेसे वातप्रकोप जन्य उदररोग मूलसह नष्ट होजाता है। भोजन स्निग्ध और उष्ण देना चाहिये। दूधकी खीर नहीं देनी चाहिये।

(३३) वैश्वानर वटी—शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, ताम्र-भस्म, लोहभस्म, शुद्ध शिलाजीत, तीनों १–१ तोला शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, कूठ, निर्गुण्डी, काली मूसली, कपीला और अजमोद, ये १० औषधियाँ २–२ तोले लेवें। पहले पारद गन्धककी कज्जली करें। फिर भस्म, बच्छनाग और काष्ठ आदि औषधियोंका कपड़छान चूर्ण क्रमशः मिला शिलाजीतको जलमें घोलकर मिला देवें। पश्चात् नीमकीछाल और एरण्डमूलके क्वाथकी २१ भावना, भाँगरेके रसकी ७ भावना, गोरखमुण्डीके रसकी १२ भावना और नागरबेलके-पानके रसकी ३ भावना देकर सूखा चूर्ण बना देवें। या शहदमें मिला २–२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। इनमेंसे १–१ गोली दिनमें दो बार देवदारु और चित्रकमूलके कल्क मिले दूधके साथ देते रहनेसे श्लेष्मोदरका विनाश होजाता है। भोजन त्रिकटु मिले दूध या त्रिकटु मिले कुलथीके यूषके साथ देना चाहिये।

(३४) पिप्पल्याद्य लोह—पीपलामूल, चित्रकमूल, अभ्रकभस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वायबिडंग, चित्रकमूल, (दूसरी बार पाठमें है), नागर-मोथा, कपूर, सैंधानमक, इन १४ औषधियोंको १-१ तोला और लोहभस्म सबके

समान (१४ तोले) लेवें। काष्ठ आदि औषधियोंका कपड़छान चूर्णकर लोहभस्मके साथ खरलकर लेवें। फिर ४-४ रत्ती दिनमें २ बार शहदके साथ देते रहनेसे समस्त उदर रोग, प्लीहोदर और सब प्रकारके नये उदर रोग नष्ट होजाते हैं।

(३५) यकृदरि लोह—लोहभस्म, अभ्रकभस्म, दोनों २-२ तोले, ताम्रभस्म १ तोले, बिजौरेकी जड़की छाल ४ तोले और मृगचर्मकी भस्म ४ तोले, इन सबको मिला बिजौरेके रसके साथ खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। इनमेंसे २-२ गोली दिनमें २ समय देते रहनेसे यकृदोदर, प्लीहोदर, कामला, हलीमक, कास, श्वास, ज्वर और वातगुल्म आदि रोग नष्ट होजाते हैं, तथा बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होती है।

पथ्यापथ्य विचार

पथ्य—भैषज्यरत्नावलीकारने उदररोगमें विरेचन, लंघन, एक वर्षकी पुरानी कुलथी, पुराना मूंग, पुराने लाल शालिचावल, जौ, जंगलके जीव-मृग और अबढ़ज पक्षी आदिका मांसरस, पेया, शहद, ईख और अंगूरकी शराब, मट्ठा, लहसुन, एरण्ड तैल, अदरक, शालिंच शाक, गूलर, चौलाई, सूरण, परवल, करेला, पुनर्नवा, सुहिंजनेकी फली, हरड़, नागरबेलका पान, इलायची, जवाखार, केलेका खार, लोह-भस्म, बकरी, गौ, ऊँटनी और भैंसका दूध, इन सबका मूत्र, हल्के, कड़वे और अग्नि-प्रदीपक भोजन और औषध, वस्त्रसे उदरको लपेटना, अग्निसे सेक या स्वेदन और असाध्य अवस्थामें विषप्रयोग (औषधि रूपसे ज़हर देना) आदि पथ्य रूपसे लिखे हैं।

सब उदररोगोंमें जठराग्नि मन्द होजाती है। इसलिये भोजन अग्निप्रदीपक, वायु अनुलोमन करानेवाला, वातशामक और हलका देना चाहिये। तीव्र वेदनामें केवल मानमण्ड या दूध देना चाहिये।

चरकसंहिताकारने लिखा है कि—लालशालि, जौ, मूंग, मृग और पक्षियों आदि जांगल जीवोंके मांस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, शहद, शीधु (ईखके रसकी शराब) और सुरा ये सब पथ्य हैं। यवागू या भात (लालशालि) को बृहत् पञ्च-मूल क्वाथसे बना फिर खटाई, घी, कालीमिर्च आदि मसाले मिलाये हुए यूषके साथ या मांसरसके साथ सेवन कराना चाहिये।

उदर रोगीको मधुर तक्र, जो अधिक गाढ़ी या अधिक पतली न हो, पिलानी चाहिये। मट्ठा स्वादु बने उतने परिमाणमें त्रिकटु, सैंधानमक आदि मिलाना चाहिये। वात और कफप्रधान गौरव (भारीपन), अरुचि, मन्दाग्नि और अतिसार आदि दोषोंको दूर करनेके लिये मट्ठा अमृत तुल्य लाभदायक है। निचयोदर (त्रिदोषज उदररोग) में रोगीको तक्रके साथ त्रिकटु, यवक्षार और सैंधानमक (स्वादके अनुकूल) मिलाकर देना चाहिये।

वातोदर रोगीको तक्र, पीपल और सैंधानमक डालकर पिलाते रहें। पित्तोदरीके लिये मट्ठामें शक्कर और कालीमिर्चका चूर्ण मिलाना चाहिये। कफोदरीको मट्ठामें

अजवायन, सैंधानमक, ज़ीरा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और शहद मिलाकर देना चाहिये। तक्र कुछ खट्टी हो और जो अधिक पतली न हो, ऐसी देनी चाहिये। प्लीहोदर रोगीको मट्ठेमें शहद, तैल, बच, (अति कममात्रामें) सोंठ, सोये, कूठ और सैंधानमक चूर्ण मिलाकर देना चाहिये। जलोदरके रोगीको जल उत्पन्न हो जानेपर मट्ठा त्रिकटु मिलाकर देना चाहिये। (या दूधकी लस्सी बना त्रिकटु मिलाकर देना चाहिये वृक्क विकार वालेको मट्ठा हानिकर है।)

सूचना—जलोदर रोगीको नमक बिलकुल न दिया जाय (सैंधानमक भी बन्द कराया जाय, तो लाभ जल्दी पहुँचेगा।

ऊँटनी का दूध उदररोगीके लिये अति हितकर है। शोथ, आनाह, वेदना, तृषा और मूर्च्छाको सत्वर दूर करता है। इस ऊँटनीके दुग्ध प्रयोगके लिये चरकसंहिता-कारने लिखा है कि:—

एवं विनिर्हृते दोषे शाकैर्मासात्परं ततः।
दुर्बलाय प्रयुञ्जीत प्राणभृत् कारभं पयः॥

शाक सेवनके प्रयोगसे एक मासके पश्चात् दोषके निकल जानेपर दुर्बल रोगीको ऊँटनीके दूधका प्रयोग करना चाहिये। यह दूध प्राणपोषक है।

ऊँटनीके दूधसे जलोदरका जल गुदासे बहुत सरलता पूर्वक निकल जाता है। अनेक असाध्य रोगी भी ऊँटनीके दूधके सेवनसे स्वस्थ होगये हैं।

विरेचन आदिसे कोष्ठ शुद्धिकर लेनेपर जो रोगी निर्बल हो गये हैं, उनके लिए (शक्ति बढ़ानेमें) गौ और बकरीका दूधभी लाभदायक है।

सब उदर रोगवालोंके लिए आस्थापन बस्ति और विरेचनमें आहार रूपसे पिलानेके लिए औटाया हुआ दूध या जंगली जीवोंके मांसरसका उपयोग करना चाहिये।

विरेचन औषधि देनेपर दस्तोंको रोकनेके लिये शामको दही-भातका भोजन करावें, या मूंगके यूष और भात अथवा खिचड़ी पथ्य रूपसे देवें।

मानमण्ड—पुराने मानकन्दका चूर्ण १ भाग और चावल ३ भागके साथ दूध और जल मिलाकर खीर बनावे (चावल और मानकन्दको पहले जलमें उबालें। चावल गल जानेपर दूध मिलाकर पाक करें)। इस खीरके सेवनसे वातोदर, शोथ, ग्रहणी, पाण्डु आदि रोग नष्ट होजाते हैं। इस खीरके सेवनकालमें इतर प्रकारके भोजनोंको बिल्कुल त्याग देना चाहिए।

अपथ्य—स्नेहन, धूम्रपान, जलपान, शिरावेध, वमन, घोड़े आदि पर सवारी मार्ग गमन, दिनमें निद्रा, व्यायाम, पिट्ठीके पदार्थ, जलचर और अनूपदेशके जीवोंका मांस, पत्तीशाक, तिल, गरम और विदाही भोजन, शिम्बीधान्य (मटर आदि द्विदल धान्य), विरुद्ध भोजन, दूषित जल, हिमालयसे निकलनेवाली नदियोंका जल, कफ

करनेवाले पदार्थ और विशेषकर छिद्रोदरमें स्वेदन, ये सब आहार विहार उदररोगीके लिए अपथ्य माने गए हैं।

इनके अतिरिक्त भगवान् आत्रेयने कहा है कि, उष्ण, लवण, अम्ल, विदाही और गुरुभोजनको भी त्याग देना चाहिए।

११. अन्त्रपुच्छप्रदाह

उपान्त्रप्रदाह—एपेण्डिसाइटिस—Appendicitis.

प्राचीन आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें इस रोगका अन्तर्भाव उदरशूल और अन्त्रविद्रधिमें किया है। अन्त्रपुच्छप्रदाह (उदरशूल), अन्त्रपुच्छविद्रधिका पूर्वरूप है। भगवान् धन्वन्तरिजीने इसकी संप्राप्तिके हेतु—गरिष्ठ भोजन, असात्म्य भोजन, संयोगविरुद्ध भोजन, शुष्क भोजन, अपथ्यसे मिला हुआ पथ्य भोजन, अति स्त्रीसहवास, अति व्यायाम, मल मूत्रादि वेगोंका रोध और विदाही वस्तुओंका सेवन कहा है।

रोग परिचय—इतर अवयवोंके समान अन्त्रपुच्छमें प्रदाह होनेपर अन्त्रपुच्छ-प्रदाह कहलाता है। इस रोगकी सम्प्राप्ति विशेषतः मध्य वयस्कोंको होती है।

इस रोगसे पीड़ितोंके भीतर ५० प्रतिशत २० वर्षसे कम आयुवाले होते हैं। ५ वर्षसे कम आयुवाले बालक तो क्वचित् ही आक्रमित देखे गये हैं, यह रोग स्त्रियोंकी बजाय पुरुषोंको अधिकतर देखा गया है। यह रोग सभ्य समाजका है।
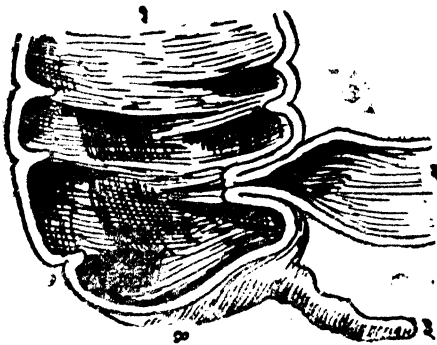
आरोहीअन्त्र और अन्त्रपुच्छ

अन्त्रपुच्छ—बृहदन्त्रके प्रारम्भिक भागको उण्डुक कहते हैं। यह भाग शैशवावस्थामें बृहदाकार रहता है। फिर इसका कुछ ह्रास होता है। इस उण्डुकमेंसे सामान्यतः पेन्सिल सदृश ४ अंगुल लम्बी, पतली नली बाहर निकलती है, उसे उण्डुकपुच्छ, अन्त्रपुच्छ, अन्त्रपरिशिष्ट और उपान्त्र (Appendix or vermiform Process) कहते हैं। प्रकृतिभेदसे यह नली कुछ ऊपर नीचे रहती है, एवं इसकी लम्बाईभी न्यूनाधिक होती है। किसी देहमें ४ अंगुल (३ इञ्च) तक तो दूसरी देहमें १२ अंगुलतक भी होती है। इसका व्यास प्रायः चौथाई इञ्च रहता है।

एक व्यक्तिमें इस पुच्छकी जितनी लम्बाई हो, उतनी ही लम्बाई बहुधा उस कुटुम्बके इतर व्यक्तियोंके उपान्त्रकी होती है। इस नलीका मुख जो उण्डुकमें खुलता है, वह छोटा-सा है। इस नलीका अन्तिम भाग बन्द है, जिससे इसमें प्रवेशित पदार्थ किसी तरह वापस नहीं निकल सकता।

निदान—इस रोगका कारण पूर्णांशमें निश्चित नहीं हुआ। दन्तविकार, भोजन यथोचित चबाये बिना निगलनेकी आदत, दीर्घकालसे कोष्ठबद्धता रहना, एल्युमिन्यमके बर्त्तनोंमें रसोई तैयार करना, विदेशसे डिब्बोंमें बन्द आये हुए मांसका भोजन, दूषित मांस सेवन आदि कारणोंसे यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

जब कोष्ठबद्धता आदि हेतुओंसे इस नलीमें अन्नाश्मरी, अस्थिखण्ड, आहार वस्तु, गुठली, मल अथवा रोगोत्पादक कीटाणुका प्रवेश होजाता है, तब इस नलीका मुख नीचेकी ओर होनेसे वह पुनः वापस नहीं निकल सकता। फिर वहाँ प्रदाहकी उत्पत्ति होती है और कभी-कभी पूयावस्थाकी प्राप्ति होकर संपूर्ण नली सड़ जाती है। पश्चात् यह नली उदरगत अनेक अवयवोंको हानि पहुँचा देती है।

इस अन्त्रपुच्छमें रक्त सचालन क्रिया अति कम होनेसे कीटाणुओंको अपनी आबादी बढ़ानेका अवसर अधिक मिलता है! जिससे किसी पदार्थका प्रवेश होजानेपर दाह-शोथकी प्राप्ति सत्वर होजाती है।

दाह शोथकी प्राप्ति करानेवाले कीटाणु बेसिली कोलाई कोम्युनिस (Bacilli Coli Communis) अन्त्रमें ही रहते हैं। बहुधा ये ही रोगकी उत्पत्ति कराते हैं। कभी-कभी पूयकीटाणुओं (Pus Cocci) मेंसे जंजीर सदृश कीटाणु (Streptococci) आहार द्रव्यके साथ प्रवेशकर बृहदन्त्रमें शोथ उत्पन्न करते हैं, फिर रोग स्थानकी सीमा बढ़नेपर अन्त्रपुच्छमें प्रवेशकर जाते हैं।

गल ग्रन्थि दाह-शोथ एव समीपताके कारण उण्डुक अथवा बृहदन्त्रके दाह-शोथके हेतुसे एवं बाह्य आघातके हेतुसे भी इस रोगकी उत्पत्ति होजाती है। गलग्रन्थि और अन्त्रपुच्छमें लसीका ग्रन्थियोंकी अधिकता रहती है और दोनोंका कार्य समान है। इस हेतुसे गलग्रन्थिप्रदाह (Tonsillitis) के कीटाणुओंका परम्परागत अन्त्रपुच्छमें प्रवेश होनेसे दाह-शोथकी संप्राप्ति होती है।

कतिपय रोगियोंको यह रोग एक समय उत्पन्न होकर शमन हो जानेपर भी गरिष्ट या दुष्पाच्य भोजनके सेवनसे पुनः प्रकाशित होजाता है, एवं किसी-किसी व्यक्ति पर यह बार-बार आक्रमण करता रहता है। अतः इस रोगकी उत्पत्ति हो जानेपर आजीवन पथ्य और मर्यादित भोजन करना चाहिये। इसरोगके आशुकारी और चिरकारी, दो विभाग हैं।

अ. आशुकारी अन्त्रपुच्छप्रदाह

लक्षण—अकस्मात् दक्षिण शेषान्त्रकखातमें (क्वचित् बाँईं ओर) उदरशूल

सह आक्रमण, ज्वर, तेज़नाड़ी, हल्लास, वमन और कोष्ठबद्धता, पीड़ित भागमें दबानेपर अधिक पीड़ा आदि।

१. शूल—उण्डुकके पिछली ओर उपान्त्र रहनेपर शूल बाँए खातमें। बस्ति-गुहामें उपान्त्र होनेपर बस्ति और गुदनलिका प्रभावित और अतिसारकी प्राप्ति।

२. ज्वर—सामान्यतः १०२। क्वचित् अभाव। कभी स्थानिक विद्रधि निर्माण। कभी घातक उदर्य्याकलाप्रदाह। प्रारम्भमें खिचाव नहीं होता।

३. नाड़ी—ज्वरके अनुरूप बढ़ती है। तेज़ीसे बढ़नेपर गम्भीर स्थिति।

४. मूत्र कम और गाढ़ा—रोगारम्भमें प्रायः मूत्राशयमें उग्रता।

५. आमाशय—अन्नमें विकृति, जिह्वा अंकुरमय और आर्द्र, कभी शुष्क। सौम्य आक्रमण होनेपर वमनका अभाव। क्वचित् दूसरे दिन सौम्य रूपसे। मलाव-रोध-सामान्यतः। बालकोंमें कभी-कभी अतिसार। यह अतिसार प्रदाहके गुद नलिका-तक पहुँचनेपर। मूत्राशय अन्त्रपुच्छ बस्ति गुहामें रहनेपर मूत्राशयप्रदाह।

उदरस्थचिह्न—

१. दर्शन—प्राथमिक अवस्थामें परिवर्त्तनका अभाव। दाहिनी ओर विशेषतः निम्न अर्धभागमें संचलनकी क्षीणताकी वृद्धि।

२. स्पर्शन—दक्षिण उरुदण्डिका पेशी (Right Rectus femoris) की निश्चित दृढ़ता या प्रतिरोधशक्तिकी वृद्धि, अत्यन्त निर्णित चिह्न-मेकबर्नीके (Mc. Burney's)+ स्थानपर गंभीर वेदनाक्षमता (नाभि और ऊर्ध्वतन पुरः कूटके मध्य मार्गमें), पीड़ित स्थानपर शोथ।

३. विविध चिह्न—रोगी सोनेके समय दाहिने पैरके घुटनेको मोड़ लेता है तथा रोगकी प्रथमावस्थामें ही बस्तिमें वेदना।

क्वचित् पीड़ा मूलाधार पीठ (Perineum) या वृषण ग्रन्थियों (Testes) की ओर विस्तृत होती जाती है। क्वचित् वेदना अत्यधिक होती है। जिससे कभी-कभी पित्ताश्मरी या मूत्राश्मरीजन्य शूलका भ्रम होजाता है। कभी वेदना मृदु। प्राथमिक अवस्थामें गुदनलिकाकी परीक्षा करनेपर कुछभी विदित नहीं होता, किन्तु उपान्त्रकी श्रोणिगुहामें संस्थिति होनेपर बारम्बार उदरगुहाका मंद चिह्न भासता है। दाहिनी ओर गुदनलिकाकी दीवार शोथमय प्रतीत होती है। सौम्य विकारमें रक्तके भीतर श्वेताणुवृद्धि नहीं होती, किन्तु आशुकारी प्रकारमें अतिशय। श्वेताणु १२,००० से १६,००० तक बहुजीवकेन्द्रमय श्वेताणुओंकी वृद्धिसह उपस्थिति।

+ नाभिसे जघनधाराके ऊर्ध्व पुरः कूट (Anterior Superior Iliac Spine.) तक एक रेखा खींचकर ३ हिस्से करे। उनमेंसे बाह्य और अन्त प्रदेशको छोड़ मध्यमें रहे हुए २ इञ्च जितने प्रदेशको मेकबर्नीका स्थान कहते हैं। इस स्थानपर पीड़ना-क्षमता होना, यह इस व्याधिका अति स्पष्ट लक्षण माना जाता है।

रोग विनिर्णय—अकस्मात् स्थान विशेषमें वेदना, यह दक्षिण अधिश्रोणि-खातमें, उसखातमें तनाव, गंभीर पीड़ना क्षमता, ज्वर तथा सहायक लक्षणों (वमन, अंकुरमय जिह्वा, मलावरोध, तीव्रनाड़ी और अन्य कुछ लक्षण चिह्न) परसे निश्चय।

पार्थक्यप्रद रोग निर्णय—(दाहिनि ओर पीड़ायुक्त विविध रोग)

(१) वृक्कशूल; (२) पित्ताशयशूल; (३) मासिकधर्मका शूल (ज्वर नहीं होता);(४) संधि-प्रदाह और श्रोणि फलक संधिमें वेदना, विशेषतः बालकोंमें; (५) बीजाशयका बलखाया हुआ अर्बुद।

२. बीजवाहिनी (Fallopion Tubes) और बस्तिगुहापर रही हुई उदर्य्याकला का रोग।

३. मधुरा ज्वर-आक्रमणमें उपान्त्र प्रदाहका भ्रम होजाता है। क्वचित् उपान्त्रक्षत तीसरे सप्ताहमें होकर फूटता है।

४. उरोगुहाके रोग—दाहिनी ओर आशुकारी फुफ्फुसप्रदाहके आक्रमणमें अधिश्रोणि खातमें वेदना पहुँचती है, विशेषतः बालकोंमें आशुकारी फुफ्फुसावरणप्रदाह, पर्शुकान्तर प्रदेशमें वातनाड़ी शूल।

५. दक्षिण वृक्कस्थानका व्रण।

६. आक्षेपज कृत्रिम पीड़ा।

७. क्वचित् कक्षा ग्रन्थि (Herpes zoster)

८. उदर्य्याकलाप्रदाह किसी अन्य कारण वश, जैसाकि आमाशय या ग्रहणी व्रण (Peptic ulcer) के विदारण होनेपर।

पाशित अन्त्रविकार (Strangulated) अर्थात् उदर्य्याकला, इतर यन्त्र या तन्त्वात्मक रज्जुसे अन्त्र बद्ध जाना, एवं एक अन्त्रका इतर अन्त्रमें प्रवेश होजाना (Intussusception) आदि कारणोंसे उत्पन्न तीव्र अन्त्रावरोध (Acute Intes. tinal Obstruction) और उदर्य्याकलाप्रदाहसह तीव्र अन्त्रपुच्छप्रदाह, दोनोंके लक्षणोंमें साम्यता होनेसे भ्रम होजाता है। यदि अन्त्रान्त्र प्रवेशसे अन्त्रावरोध होगया है, तो अति किनछने और रक्तमिश्रित मल जानेसे भेद होजाता है। एवं पाशित अन्त्रविकारमें मलकी वमन होती है। इस परसे भी निर्णय होजाता है। फिरभी व्यवच्छेदक लक्षण कोष्ठक रूपसे दर्शाते हैं।

लक्षण	तीव्र अन्त्रपुच्छप्रदाह (उदर्य्याकलाप्रदाहसह)	तीव्र अन्त्रावरोध
आगमन	पहले कभी-कभी उदरमें शूल।	अकस्मात्
शूल	दक्षिणवंक्षणोत्तरिक प्रदेशमें तीव्र।	नाभिके पास तीव्र
पीड़नाक्षमता	प्रारम्भसे ही शनैः-शनैः वृद्धि।	उदर्य्याकलाका प्रदाह हो, तब तक नहीं होती।

	सामान्य।	प्रारम्भसे ही तीव्र, मलयुक्त।
स्नायु	दक्षिण भागमें तन जाना।	उदर्य्याकलाप्रदाह होने पर्य्यन्त शिथिल।
मल	मलावरोध या अतिसार।	अन्त्रान्त्रप्रदेशमें प्रवाहण-पूर्वक मलत्याग और मलमें रक्तमिश्रण।
शीत	विशेषतः होती है।	शीत नहीं होती।
ज्वर	प्रारम्भमें ज्वर, फिर विष प्रभाव या बलक्षयसे वह दूर हो पाता है।	प्रारम्भमें स्वाभाविक उत्तापसे भी कम फिर ज्वर आता है।

आमाशय व्रण और अन्त्र व्रणके लक्षणोंकी साम्यता अन्त्रपुच्छप्रदाहके साथ अत्यधिक है। अनेक बार शस्त्रक्रिया किये बिना रोग विनिर्णय नहीं होता। परन्तु दोनोंमें शस्त्रक्रिया विहित होनेसे निश्चय न होनेपर भी चिकित्सा दृष्टिसे हानि नहीं है। एवं जब अन्त्रक्षय और कर्कस्फोटसे दक्षिण वंक्षणोत्तरिकप्रदेशमें कुछ भाग फूला हुआ प्रतीत होता है, तब चिरकारी अन्त्रपुच्छप्रदाहका भ्रम होता है, इसका निर्णयभी बिना शस्त्रक्रिया नहीं होता।

रोगपर्यवसान प्रकार—इस रोगका अन्त ३ प्रकारसे होता है। (१) क्रमशः आरोग्य, (२) स्थानिक विद्रधि, (३) उदर्य्याकलाका सार्वत्रिक प्रदाह।

(१) क्रमशः आरोग्य—यदि रोग क्रमशः घटता जाता है, तो तीन चार दिनमें वेदनामें न्यूनता, शारीरिक उत्तापका ह्रास, जिह्वाशुद्धि, वमननिवारण, दबानेपर स्थानिक वेदनाका अभाव या न्यूनता और उदरको पूर्वावस्थाकी प्राप्ति आदि लक्षण होने लगते हैं। एक सप्ताह जानेपर सब प्रकारके तीव्र लक्षण शान्त। क्वचित् सामान्य ज्वर २-३ सप्ताहतक। फिर रोगान्त दौर्बल्य उपस्थित। स्थानिक दृढ़ता या क्षुद्राकार अर्बुद कुछ काल स्थायी हो, तो रोगी रोगके पुनराक्रमणके वशवर्ती रहता है। आहार विहारमें नियम पालन हो, तो ही रोगी बच सकता है। यदि कुछ शोथ रह जाता है, तो उसमें पूय रह जाता है।

(२) स्थानिक विद्रधि—क्षत होने या अन्त्रपुच्छका विदारण होनेके हेतुसे किसी-किसी समय कोथ (Necrosis) होनेपर क्वचित् समस्त अन्त्रपुच्छप्रदाहके पश्चात ऊपर कहे हुए सब लक्षण प्रकाशित होते हैं। फिर एक सप्ताहके बाद सब लक्षण समभावसे रहते हैं या बढ़ जाते हैं। यदि रोगका आक्रमण तीव्र हो, तो चौथे या पाँचवें दिन श्रोणिगुहान्तरीय मांसधराकलाकी विस्तृत स्थान व्यापी दृढ़ता और उसको दबानेपर वेदना होती है। इस अवस्थामें शस्त्रक्रिया करनेपर जाना गया है कि भीतर स्फोटक निर्मित हो गया है।

विद्रधि विनिर्णय—तीव्रनाड़ी, रक्तमें श्वेताणु वृद्धि, बहुधा शारीरिक उत्ताप-की कुछ वृद्धि, स्वेद आना, विशेषतः विद्रधि दक्षिण अधिश्रोणि खातमें होनेपर प्रति-रोधक शक्तिकी वृद्धि होना आदि प्रतीत होते हैं। अधिश्रोणिखातमें विद्रधि होनेपर उदरकी दीवार छतके समान भासती है। बस्ति गुहामें होनेपर गुदनलिकामेंसे या योनीमार्गमेंसे स्पर्श हो सकता है।

(३) सार्वत्रिक उदर्य्याकलाप्रदाह—अन्त्रपुच्छका विदारण, क्षत या कोथ और स्थानिक प्रदाह होनेके पहले समग्र उदर्य्याकलापर कीटाणुओंका संक्रमण होजानेसे समस्त उदर्य्याकलाका आशुकारी तीव्र प्रदाह होजाता है। किसी किसी स्थानपर स्थानिक संक्रमणजनित प्रक्रियाका निर्देश नहीं हो सकता और संपूर्ण उदर्य्याकला आक्रान्त होजाती है। किसी-किसी स्थानमें प्रदाहग्रस्त अन्त्रपुच्छके सन्निधानसे स्थानिक पूयोत्पत्ति और इसी हेतुसे नलीका विदारण होता है। यदि अन्त्रपुच्छप्रदाह रोगमें समस्त उदर्य्याकलाका प्रदाह होजाता है, तो बहुधा रोगीकी मृत्यु होजाती है।

इस अन्त्रपुच्छप्रदाह रोगमें विषम विपत्ति यही है कि, उदर्य्याकला रोगके प्रारम्भमें ही संक्रामित होजाती है। फिर प्रारम्भसे ही वेदना, उबाक, वमन, ज्वर, पीड़नात्मता आदि लक्षण होते ही हैं। ये सब लक्षण अन्त्रावरणके प्रभावित होनेकी साक्षी देते हैं। सार्वत्रिक उदर्य्याकलाके प्रदाहका प्रकाशन बहुधा अकस्मात् होजाता है। उसमें वेदना समस्त उदर प्रदेशपर व्याप्त होती है सब समय पीड़ा दक्षिण श्रोणि-गुहामें ही हो, ऐसा नियम नहीं है। एवं इन लक्षणोंपरसे उदर्य्याकलाका व्यापक प्रदाह हुआ है, ऐसा निर्देशभी नहीं हो सकता। यदि ये सब क्रमशः प्रबल होते जायँ, तो व्यापक प्रदाहकी शंका होती है। इस अवस्थामें प्रधान लक्षण उदरका फैल जाना, दबानेपर समस्त उदरपर वेदना वृद्धि और श्वासोच्छ्वासके साथ उदर प्रदेशकी संचालन क्रियाका अभाव आदि है, तथा सार्वाङ्गिक निम्न लक्षण रोगनिर्णयमें सहायक माने जाते हैं।

यदि उबाक और वमन प्रारम्भसे ही हो, तो वे स्थायी होजाते हैं। नाड़ी बहुधा द्रुत गतिवाली होती है। जिह्वा शुष्क और पेशाब स्वल्प परिमाणमें होता है। रोग अत्यंत प्रबल हो, तो २४ घण्टेमें ही प्रसारग्रस्त होजाता है, ये सब सहायक लक्षण हैं। तीसरे या चौथे दिनसे उदर्य्याकलाके व्यापक प्रदाहके प्रकृत लक्षण प्रकाशित होजाते हैं। उदर प्रदेशपर शोथ, श्वासोच्छ्वास क्रिया कालमें उदरकी संचालनविहीनता, तेज़ नाड़ी, शुष्क जिह्वा, जानुसे पैरको मोड़कर सोना, एवं म्लान श्याम मुख-मुद्रा, व्याकुलता, खुले नेत्र, नाक बैठा हुआ, शीतल नाक-कान, शीतल स्वेद युक्त कपाल आदि मरणासन्न व्यक्ति सदृश अरिष्ट लक्षण (Facies Hippocratica) भी समान होते हैं।

यह अवस्था ज्वरकी तारतम्यताके ऊपर निर्भर नहीं है। सामान्यरूपसे प्रथमावस्थामें ज्वर रहता है। ३–४ दिन पश्चात् शारीरिक उत्ताप कम होकर लगभग १००–१०१ डिग्रीतक रहता है। किन्तु इतर वेदनामें न्यूनता नहीं होती। शारीरिक उत्तापकी अपेक्षा नाडीपरसे रोगकी अवस्थाका अधिक निर्णय होता है।

पुनराक्रमित अन्त्रपुच्छप्रदाह—किसी-किसी रोगीको रोगसे मुक्त हो जानेके तीन-चार मास बाद पुनः रोग अक्रमण करता है। उस समय ज्वर, वेदना और स्थानिक लक्षण पहलेके सदृश प्रकाशित होते हैं। इस तरह अनेक वर्षोंतक पुनः-पुनः आक्रमण होता रहता है। जिन स्थानोंमें शोथ और दृढ़ता दीर्घकाल स्थायी होते हैं, उन स्थानोंमें प्रकृति इस रोगके अधिक वशवर्त्ती होती है।

अनेक बार पुनः आक्रमण होनेके पश्चात् रोगी पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर लेता है। यह प्रकार संयोग (Adhesion) सहवर्त्ती या संयोग विहीन प्रकारमें होजाता है। क्वचित् संयोग ग्रस्त और संभवतः विच्छिन्न अन्त्रपुच्छप्रदाह (Obliterative Appendicitis) अर्थात् अन्त्रपुच्छकी वृत्तिका लोप होजाता है, यह सौत्रिक तन्तुओंद्वारा सीमाबद्ध होकर क्षुद्र स्थानिक स्फोटक (व्रण) निर्माण करता है।

उपद्रव और अनुगामी विकार (Complications and Sequelae)

१. प्रतिहारिणी शिराका पूयमय प्रदाह—इसके साथ पूयमय ज्वर, यकृद्वृद्धि, पीड़ित स्थानपर पीड़नाक्षमता आदि उपद्रव। इनके अतिरिक्त रोग बढ़नेपर विविध घातक उपद्रव उपस्थित।

२. महाप्राचीरा पेशीके निम्न भागपर विद्रधि—इसमें अनियमित दीर्घकालतक सामान्यज्वर, तेज़ नाड़ी, दाहिने फुफ्फुस पीठपर विद्रधिकी प्रतीति।

३. बृहदन्त्रप्रदाह—यह उपस्थित होनेपर दीर्घकालतक स्थिति। फिर मलवाही नाड़ी व्रण (Faecel Fistula)।

४. पुनः-पुनः आक्रमण और किसी अवयवके साथ संलग्नता।

५. क्वचित् व्यापक कीटाणु प्रकोपज सन्निपात।

६. कभी रक्तस्राव (अन्तरा अधिश्रोणिका धमनीका विदारण होनेपर)।

७. कर्कस्फोट—यह अन्त्रपुच्छ प्रदाह शमन होनेपर भी हो सकता है।

चिकित्सा—डॉक्टरी मत अनुसार आक्रमण प्रारम्भ होनेपर कुछ घण्टोंके भीतर शस्त्रचिकित्सा करनी चाहिये।

शस्त्रचिकित्सा करनेपर रोगीको फाउलर संस्थिति (Fowler's position) में रखना चाहिये अर्थात् पलंगके मस्तिष्ककी ओरका भाग ऊँचा रखना चाहिये। इस संस्थितिका वर्णन रुग्ण परिचर्यामें देखें।

आ. चिरकारी उपान्त्रप्रदाह

प्रकार—लक्षण भेदसे मुख्य ३ प्रकार।

१. पुनरावर्त्तक Recurrent Appendicitis.

२. मंद आशुकारी अथवा पुनः-पुनः पतनशील-Sub acute or Relapsing Appendicitis-इसके लक्षण वृद्धिसह दृढ़। तीव्र आक्रमणका अभाव। किन्तु व्याकुलता, वेदना, पीड़नाक्षमता आदि लक्षण दक्षिण अधिश्रोणि खातमें अति लक्ष्य देने योग्य।

३. चिरकारी उपान्त्रप्रदाह (उपान्त्रदोषज अजीर्णसह)।

तीसरे प्रकारका उपान्त्रप्रदाह—इसके लक्षण प्रकृति निर्देशक नहीं होते। महीनों या वर्षोंके बाद आक्रमण।

१. उदरमें व्याकुलता— व्याकुलता, कभी कौड़ी प्रदेश या नाभिके चारों ओर वेदना, आक्रमणका समय अनियमित, कभी छातीमें जलन, भोजन या क्षारसे पीड़ा कम न होना, परिश्रमसे पीड़ावृद्धि अथवा थकावट, प्रायः उबाक और अफारा, वमन, कब्ज़ या अतिसार, सामान्यतः दक्षिण अधिश्रोणि खातमें शूलका आक्रमण।

बेस्टेडोका चिह्न—(Bestedo's sign)—गुदनलिकामेंसे बृहदन्त्र स्फीतिका अनुभव होना, यह उपान्त्रप्रदेशके पीड़ाके कारणसे। किन्तु बृहदन्त्र प्रसारणके हेतुसे उत्पन्न बेचैनीसे परिणाम अनिर्णित।

चिकित्सा—डॉक्टरी मतमें रोग निर्णय होनेपर उपान्त्रको निकाल देना (Appendectomy), यही एक उपाय है। आयुर्वेद मत अनुसार औषध चिकित्सा हो सकती है।

अन्त्रपुच्छप्रदाह चिकित्सोपयोगी सूचना

इस रोगमें आक्रमण होनेपर पूर्ण विश्रान्ति देनी चाहिये। तीव्र प्रकोपकालमें केवल जलपर रखना चाहिये।

तीव्रकोपमय अन्त्रपुच्छप्रदाह (Gangrenous Appendicitis) अथवा उदर्य्याकलाके व्यापक प्रदाहके लक्षण-नाड़ी स्पन्दन १०० से अधिक, अविरत वमन, प्रलाप, शीत (Chill), उदरगुहाका विस्फारण, पूयोत्पत्ति होजाना, बेचैनी, क्रमशः शक्तिपात होना आदि उपस्थित हो, तो त्वरित शस्त्रक्रियाका अवलम्बन लेना चाहिये। स्थानिक प्रदाहमें भी पूयोत्पत्ति या आशुकारी उदर्य्याकलाप्रदाहके लक्षण प्रकाशित हों, तो शस्त्रचिकित्सा ही करनी चाहिये।

रोग स्थानिक हो, तो आक्रमणके ३ दिन पर्यन्त बाह्य उपचार करें। पूर्ण विश्राम, रोगीकी प्रकृति अनुरूप लंघन (एक दो दिन केवल जलपर रह जाय तो अच्छा; नहीं तो मोसम्मीका रस या मूंगका यूष देवें, रोग बल कम होनेपर (या वृद्धि होनेपर) मांसरस, दूध या अर्धपाचित (Peptonized) दुग्ध देते रहें (अर्धपाचित

दूधकी कृति यकृद्दाल्युदर चिकित्साकी सूचनाके साथ लिखी है) या इतर यूष देवें। मात्रा बहुत कम देवें। औषधि कुछ भी न दें। विरेचनका तो अति निषेध है।

यदि हृदयक्षीणता या बलक्षयके लक्षण उपस्थित हो जावें, तो ही उत्तेजक औषधि या सुरा देवें। अन्यथा उत्तेजक औषधि नहीं देनी चाहिये। यदि अधिक प्यास लगती है, तो १ सेर गुनगुने जलमें ४ माशे नमक मिलाकर बस्ति देनी चाहिये। अन्त्रपुच्छप्रदेश या वेदनावाले भागपर गरम जलकी बोतल या बर्फकी थैलीसे सेक करें।

यदि वान्ति चालू रहती हो, तो नमक जलकी बस्ति देनेसे अनेकोंको लाभ पहुँच जाता है।

यदि वेदना असह्य हो और बल क्षय होने लगे, तो मोर्फियाका इन्जेक्शन या अहिफेन प्रधान औषधि निद्रोदय रस आदि जलके साथ देनी चाहिये। आवश्यकतापर निद्रोदय रस ३-३ घण्टेपर एक-एक गोली दे सकते हैं या अहिफेन $\frac{1}{8}$ रत्ती अभ्रक-भस्म आधरत्तीके साथ मिलाकर तीन-तीन घण्टेके अन्तरपर देते रहना चाहिये। उदर्याकलाप्रदाहमें अहिफेनकी मात्रा अधिक हो जाय, तो भी बाधा नहीं पहुँचती। वेदनाका उपशम होनेपर अहिफेन मिश्रित औषधि या इतर पीड़ाशामक औषधिको बन्दकर देनी चाहिये।

स्थानिक सौम्य रोगमें यदि तीसरे दिन पूयोत्पत्तिका कोई लक्षण प्रतीत न हो, तो प्रतिदिन प्रातःकाल साबुन और एरण्डतैल मिश्रित जलकी बस्ति देनी चाहिये। फिर जब रोगोपशमनके लक्षण प्रकाशित हों, तब बस्ति देना बन्द करें।

स्थानिक रोग शमन होने लगे, तब दुग्ध, मक्खन, पौष्टिक लघु भोजन, कुक्कुटाण्ड, मांसरस आदि दें। रोग शमन होनेपर प्रकृति अनुसार पथ्य भोजन देवें। पेशाब साफ आना चाहिये, नहीं तो घी मक्खन कम देवें। गन्नेका रस न देवें।

सम्पूर्ण स्वस्थ होनेपर भी रोगीको चाहिये कि, उदरके निम्न प्रदेशपर गरम वस्त्र बाँधते रहें, कोष्ठ शुद्ध रक्खें (कब्ज़ न होने दें); व्यायाम या शारीरिक श्रमवाला कार्य न करें, तथा भोजन देरसे पचन हो, या मूत्रावरोधक या विबन्धकारक हो, उसे एक वर्षतक उपयोगमें न लें।

चिरकारी रोगमें दौरा शमन होनेपर अग्नितुण्डीवटी देते रहना लाभदायक है। इससे अनेक रोगियोंको लाभ हो गया है। पूय न बननेके लिये एवं पूयोत्पादक जीवाणुओंके नाशके लिये १-१ रत्ती गंगभस्म दिनमें दो समय शहदसे देते रहें; अथवा गंगभस्म और शिलाजीत समभाग मिलाकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। फिर दो-दो गोली प्रातः सायं देते रहें। अभ्रकभस्म और चन्द्रप्रभावटीका सेवन करानेसे बार-बार आनेवाले दौरेका शमन होनेका भी अनुभवमें आया है।

बार-बार आक्रमण होता रहता हो, तो अधिक परिश्रम न करें। एवं गरिष्ठ और देरसे पचन होनेवाले भोजनका त्याग करें। इस रोगमें विरेचनका बिल्कुल

निषेध है। आवश्यकतापर बस्तिसे उदर शुद्धि करें। हो सके तब तक शराब, कॉफी आदि उत्तेजक वस्तुओंका सेवन भी न करें।

आक्रमण कालमें डॉक्टरी चिकित्सा

(१) टिंक्चर बेलाडोना Tinct-Belladonna १ ड्राम

एका सिनामोम Aqua Cinnamom ad ६ औंसतक

दोनोंको मिला लेवें। इसमेंसे आध-आध औंस प्रत्येक ३-४ घण्टेपर वेदना शमन हो, तब तक देते रहें या $\frac{1}{100}$ से $\frac{1}{100}$ ग्रेन एट्रोपीनका अन्तः क्षेपण करें।

(२) एक्सट्रेक्ट ओपियाई Ext. Opii ६ ग्रेन

एक्सट्रेक्ट बेलाडना Ext. Belladonna ६ ग्रेन

दोनोंको मिला १-१ ग्रेनकी गोलियाँ करें। फिर प्रत्येक ३-४ घण्टेपर वेदना शमन हो, तब तक १-१ गोली देते रहें।

१२. उदावर्त्त

रोग परिचय—जिस रोगमें वायु चक्रकी तरह घूमता रहता है, उसे उदावर्त्त कहते हैं। इस रोगमें अपानवायु और मलके निरोधजनित प्रकार अर्थात् अपानवायु नाभिसे उठकर चक्रकी तरह फिरकर ऊपर चढ़नेवाला अधिकतर प्रतीत होता है। यह प्रकार विशेषतः लज्जाके हेतुसे अथवा काममें फँसे रहनेके कारण अधोवायु और मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेवाले मनुष्योंको होता है। इसे डॉक्टरीमें गैस उठना कहते हैं।

निदान—अधोवायु, मल, मूत्र, जंभाई, आंसू, छींक, डकार, वमन, वीर्य, क्षुधा, तृषा, श्वास और निद्रा, इन १३ प्रकारके स्वाभाविक वेगोंको रोकनेसे अर्थात् अधोवायु मलमूत्र आदिको बाहर न निकलने देनेसे वायु प्रकुपित होकर (स्थानिक अवयवको शिथिल बनाकर) उदावर्त्तरोगकी उत्पत्ति कर देता है। इनके अलावा अपथ्य भोजनसे भी उदावर्त्त होजाता है।

अपाननिरोधज उदावर्त्तलक्षण—अधोवायु और मलमूत्रका अवरोध, अफारा, थकावट, पीड़ा, शूल, हृदयपर बोझा, शिरदर्द, श्वासके वेगकी वृद्धि, हिक्का, कास, जुकाम, गलग्रह, कफ और पित्तका घोर प्रसर (चारों ओर फैल जाना) तथा कचित् मुँहसे विष्टाका वमन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस प्रकारमें बृहत् और कभी लघु अन्त्रकाभी प्रसारण होजाता है।

मलनिरोधज उदावर्त्तलक्षण—शौचके वेगको रोकनेसे अफारा, उदरशूल, गुदामें कतरनीसे काटनेके समान पीड़ा, शिरदर्द, बद्धकोष्ठ, बार बार डकार आना और कचित मुँहसे विष्टाकी वमन होना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस रोगकी उत्पत्ति होजानेके पश्चात् आँतोंकी वातवहानाड़ियोंकी शक्ति शिथिल होजाती है। जिससे

सम्यक् प्रकारसे मलशुद्धि नहीं होती और अपानवायु ऊर्ध्व गतिकर डकार रूपसे निकलती रहती है।

डॉक्टरीमें इन्टेस्टाइनल ऑबस्ट्रक्शन—Intestinal Obstruction (अन्त्रावरोध) व्याधि है। इसका स्वरूप मलनिरोधज उदावर्त्त और बद्धगुदोदर के साथ मिलता है। इस रोगमें आहार रस या मलकी आगे जानेकी गतिमें अवरोध होता है, अपानवायु ऊर्ध्व गति करती है और मल जैसी वमन होती है। मल, पित्ताश्मरी या इतर शल्यसे मार्ग रुक जानेपर अन्त्रावरोध होकर आयुर्वेदीय बद्धगुदोदरके लक्षण प्रकाशित होते हैं। इतर प्रकारसे भी अन्त्रावरोध होनेपर मलनिरोधज उदावर्त्तके लक्षण उत्पन्न होते हैं। बद्धगुदोदरके अनुकूल मल आदि शल्यजनित अन्त्रावरोधका वर्णन पहले बद्धगुदोदरके साथ किया है। शेष डॉक्टरी प्रकारका विवेचन इस रोगके साथ किया जायगा। सामान्यतः केवल मार्गावरोध होनेपर बद्धगुदोदर और प्रसारणसह होने पर उदावर्त्त कहलाता है।

मूत्रनिरोधज उदावर्त्त लक्षण—मूत्राशय, मूत्रेन्द्रिय, वृषण और नाभिमें शूल, मूत्रकृच्छ्र, शिरदर्द, कमरसे मुड़जाना, वंक्षण (कमर और उरुकी संधि-पेडू) स्थान फूलजाना इत्यादि लक्षण मूत्रके वेगको रोकनेसे उत्पन्न होते हैं। इस प्रकारमें मूत्राशयका प्रसारण होजाता है।

जृम्भानिग्रहज उदावर्त्त लक्षण—मन्या और कण्ठका स्तंभन, शिरोरोग तथा कान, मुँह, नाक और नेत्र आदिमें वातजन्य तीव्र पीड़ा इत्यादि लक्षण जंभाईको रोकनेसे उत्पन्न होते हैं। इस प्रकारमें कण्ठप्रदेशकी वातनाड़ियोंकी शक्तिका क्षय होजाता है।

अश्रुनिरोधज उदावर्त्त लक्षण—आनन्द या शोकसे आनेवाले आंसुओंको रोकनेसे शिरमें भारीपन, तीव्र नेत्ररोग और पीनस रोगकी उत्पत्ति हो जाती है। इस प्रकारमें अश्रुजनक पिण्डआदिकी वातनाड़ियाँ शिथिल होजाती हैं।

क्षवथुनिग्रहज उदावर्त्त लक्षण—आती हुई छींकको रोक देनेसे मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, अर्दित (मुँहका लकवा), आधाशीशी तथा कान, नेत्र और घ्राणेन्द्रियकी निर्बलता आदि विकार प्रकुपित वायुसे होजाते हैं। इस प्रकारमें श्रोत्र, चक्षु और नासासे सम्बन्धवाली कण्ठनाड़ियाँ शिथिल होजाती हैं।

उद्गारनिग्रहज उदावर्त्त लक्षण—उत्पन्न हुए डकारके वेगको रोक देनेसे मुँहसे कण्ठतक भोजन, वायु या इतर पदार्थ पूरा भरा हो ऐसा भासना, हृदय या आमाशयमें तोड़नेके समान तीव्र पीड़ा, पेटमें वायुकी गड़गड़ाहट या निरोध और हिक्का आदि घोर लक्षण होते हैं। इस प्रकारमें उरस्थवातनाड़ियाँ शिथिल होती हैं।

छर्दिनिग्रहज उदावर्त्त लक्षण—आती हुई वमनको रोक देनेसे खुजली, पित्ती (चकत्ते), अरुचि, व्यंग (मुँहपर फुन्सियाँ होना), शोथ, पित्त विदग्ध होना, पाण्डु, ज्वर, कुष्ठ, विसर्प और उबाक आदि लक्षण वातप्रकोपसे होजाते हैं। इस प्रकारमें आमाशयकी वातनाड़ियोंकी विकृति होती है।

शुक्रनिरोधज उदावर्त्त लक्षण—वीर्य बाहर निकलनेका वेग उत्पन्न होनेपर बलात्कारसे रोक देनेपर शुक्राशय, मूत्राशय, गुदा और वृषण आदि स्थानोंमें शोथ और पीड़ा, मूत्रावरोध, मूत्रमें दाह, शुक्राश्मरी, शुक्राशय या शुक्रप्रपिकाओंमें वीर्य जमकर पथरी होजाना, बार-बार वीर्यस्राव और वातकुण्डली आदि मूत्राघात, ये लक्षण प्रकाशित होते हैं।

क्षुधानिरोधज उदावर्त्त लक्षण—भूख लगनेपर भोजन न करनेसे तन्द्रा, अङ्ग टूटना, अरुचि, थकावट और नेत्रदृष्टि कमज़ोर होना आदि लक्षण होते हैं।

तृषानिग्रहज उदावर्त्त लक्षण—प्यास लगनेपर जल न पीनेसे कण्ठ और मुँह सूखना, कानोंसे कम सुनाई देना और हृदयमें व्यथा आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

श्वासोदावर्त्त लक्षण—थकनेपर श्वास वेगपूर्वक चलने लगता है। उसे रोकने या प्राणायाममें श्वासका बलात्कारसे निरोध करनेपर हृद्रोग, मोह और क्वचित् वात-गुल्म आदि लक्षणोंकी उत्पत्ति होजाती है।

निद्रोदावर्त्त लक्षण—निद्रा आनेपर न सोनेसे बार-बार जम्भाई आना, हाथ पैर टूटना, नेत्र और मस्तिष्कमें भारीपन तथा तन्द्रा आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

अपथ्यज उदावर्त्त लक्षण—रूक्ष, कसैला, चरपरा और कड़वा भोजन करनेसे उदरमें रही हुई वायु कुपित होकर उदावर्त्त रोगकी उत्पत्ति कर देती है। फिर कुपितवायु, मूत्र, मल, रक्त, कफ और मेदोवहानाड़ियोंके स्रोतसोंमें प्रवेशकर निरोध कर देती है, और मलको शोषित करके स्तंभित कर देती है। हृदय और मूत्राशयमें शूल, उबाक, अधोवायु और मल-मूत्र कठिनतासे थोड़े-थोड़े निकलना, श्वास, कास, ज़ुकाम, दाह, मोह, तृषा, ज्वर, वमन, हिक्का, शिरदर्द, बेचैनी, भ्रम और अन्य भी अनेक वातप्रकोपजनित लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

उदावर्त्तके असाध्य लक्षण—यदि उदावर्त्त रोगमें भयंकर तृषा अत्यन्त बेचैनी, क्षीणता, तीव्र शूल और विष्ठाका वमन, ये उपद्रव हो जायँ, तो रोगको असाध्य मानें।

यद्यपि आनाह (विबंध-मलावरोध) और मलावरोधज उदावर्त्तके लक्षणोंमें अफारा, मलावरोध आदि अनेक समान हैं, तथापि उत्पत्ति और कितनेक लक्षणोंमें अंतरभी है। आनाह रोगकी उत्पत्ति अग्निमांद्य और अन्त्रकी निर्बलतासे होती है, तब उदावर्त्तकी उत्पत्ति स्थानिक वातनाड़ियोंकी विकृति या अपानवायुकी गति विलोम हो जानेसे होती है। इस हेतुसे उदावर्त्तमें अधोवायु नहीं सरती, उलट चक्राकार होकर ऊर्ध्व गमन करती है, आनाह रोगमें थोड़ी-थोड़ी अधोवायु मलावरण दूर होनेपर सरती रहती है। आनाहमें शूल बहुधा नहीं होता, तब उदावर्त्तमें शूल तीव्र रूपमें होता है। इनके अलावा उदावर्त्त होनेपर मुँहमेंसे विष्ठाकी दुर्गन्ध आती है; और फिर विष्ठायुक्त वमनभी होने लगती है। ये लक्षण आनाहमें नहीं होते। अलावा उदावर्त्त रोगमें मल फूल जानेपर कोई-कोई स्थानमें आँत फटभी जाती है।

अन्त्रनिरोधज उदावर्त्त

इण्टेस्टाइनल ऑब्सट्रक्शन Intestinal Obstruction.

डॉक्टरी निदान—इस रोगकी उत्पत्तिमें अन्त्रस्थ, अन्त्रदीवारस्थ और बाह्य, ऐसे मुख्य ३ प्रकारके हेतु हैं।

(१) अन्त्रस्थ—(इन्टरम्युरल Intermural)—अन्त्रके भीतर कठिन मल, पित्ताश्मरी या इतर बाह्य पदार्थ आजानेसे इसका विवेचन बद्धगुदोदरके साथ पहले किया गया है।

(२) अन्त्रदीवारस्थ—(इन्ट्राम्युरल—Intramural)-अन्त्र दीवारकी श्लैष्मिक कला या मांसमय वृत्तिकी विकृति।

(अ) कर्कस्फोट—(Cancer) या अर्बुद।

(आ) कर्कस्फोटसे इतर क्षत आदि जन्य आकुंचन (Strictures)।

(अ) शुष्क क्षत (सिकाट्रिझेशन—(Cicatrization) जन्य।

(आ) दाह-शोथ, आघात और कर्कस्फोटके अतिरिक्त पदार्थका संग्रह (Deposite) जन्य दीवार संकोच।

(इ) अज्ञान कारणजन्य बृहदन्त्रका प्रसारण।

(ई) अन्त्रान्त्र प्रवेश (Intussusception) अर्थात् बृहदन्त्र या किसी लघु अन्त्रवलयमें अपर अंशका स्थानभ्रष्ट होकर घुस जाना।

(३) बाह्य—(एक्सट्राम्युरल—Extramural)--अन्त्रदीवारके बाह्य अवस्थित हेतु जन्य विकृति अर्थात् बाह्य कारणोंसे रसकला (Serous membrane) आक्रान्त होकर अन्त्रकी कलाको प्रभावित करदेती है।

१. रज्जू बन्धनीसे बंधजानेसे संलग्नता (Adhesion) होने अथवा छिद्रमें फंस जानेसे अवरोध (Strangulation)।

२. स्थानभ्रष्टता—अन्त्रावर्तन (Kinking) अर्थात् आँत उलट जाने अथवा अन्त्रव्यावर्त्तन (Volvulus) अर्थात् अन्तमें डोरीकी तरह बल पड़जानेसे।
अन्त्रव्यावर्त्तन बहुधा प्रौढ़ोंको (३५ वर्षसे बड़ी आयुवालोंको) और विशेषतः वाम कटि प्रदेशमें।

३. क्वचित् अन्त्र परिचालन क्रियावरोध (Paralytic-Ileus)

४. क्वचित् अर्बुद या विद्रधि होनेपर दबाव।

५. क्वचित् महाप्राचीरापेशीस्थ अवतरण (Diathragmatic Hernia)

यदि इस रोगके संप्राप्ति भेदसे विभाग किया जाय, तो निदानके आशुकारी और चिरकारी, ये दो विभाग होते हैं।

आशुकारी अन्त्रावरोध निदान—चिरकारी अन्त्रावरोधका पर्यवसान होकर तथा अन्त्रान्त्र प्रवेश, अन्त्र व्यावर्त्तन, अन्त्र आवर्त्तन, उदर्याकला, नाभिनाल

(अमरा) या इतर अवयवमें प्रदाह होनेपर आँत जकड़ जाना, शल्यज निरोध (Impaction of foreign bodies--बद्ध गुदोदर) और अभिघात आदि कारणोंसे आशुकारी अन्त्रावरोध हो जाता है।

चिरकारी अन्त्रावरोधज निदान—मलावरोध, अन्त्रस्थ वातवहानाड़ियोंकी शक्ति नष्ट हो जाना, अन्त्र संकोच, अन्त्रार्बुद, बड़ी आँतपर कर्कस्फोट होनेसे छोटी आँतपर बोझा आजाना, मल शुष्क होकर शल्य रूप बन जाना, आँतोंकी वलय परस्पर या उदर्य्याकला आदिके साथ जुड़ जाना, इत्यादि कारणोंसे शनैः-शनैः मलसंग्रहकी वृद्धि होकर अन्त्रावरोध हो जाता है।

अन्त्रावरोध सम्प्राप्ति—अन्त्रपुच्छ या उदर्य्याकलामें दाह-शोथ होनेपर सौत्रिक रज्जु उत्पन्न हो जाती है। फिर उसमें आँत जकड़ जाती है। जिससे आँतकी रक्तवाहिनियोंमें अवरोध या अमरा (आँवल) अथवा इतर इन्द्रियोंमें प्रदाह हो जानेपर परस्पर संलग्न हो जाती है। क्वचित् उसमें आँत फँस जाती है। इस तरह क्वचित् आँत फूल जानेपर भी वह अन्त्रावरणके साथ लग जाती है। जिससे अन्त्रा-वरोधकी सम्प्राप्ति होती है।

फिर मलसंचय होनेपर मल सड़ने लगता है। उस समय आन्त्रिक रस मिलकर मल पतला बन जाता है। जिससे चिरकारी रोगमें कुछ दिनोंतक पतले दस्त होते रहते हैं, और विषका रक्तमें शोषण होने लगता है। पश्चात् सड़नेसे दूषित् वायु उत्पन्न होकर अफारा और गड़गड़ाहट होने लगती है। कोई समय आँतकी वातवहा-नाड़ियोंपर वायु और मलका अघात पहुँचनेसे अन्त्रवध (Paralysis of the Intestines) हो जाता है।

अवरुद्ध मलको बाहर ँकनेके लिये शूलकी उत्पत्ति। शूल भयंकर बढ़नेपर अन्त्रमें काटने समान पीड़ा। क्वचित् आँत फटभी जाती है। नीचेका मार्ग बिल्कुल बन्द होजानेसे मलको बाहर फेंकनेके लिये विपरीत गति होने लगती है। पहले आमाशयमें रहा हुआ भोजन और वायु, फिर छोटी आँतमेंसे आहार रस तथा अन्तमें बड़ी आँतमेंसे मल और आम वमन होकर मुँहमेंसे निकलने लगते हैं; अर्थात मलावरोधज उदावर्त्तकी पूर्ण सम्प्राप्ति होजाती है।

आशुकारी अन्त्रावरोधज उदावर्त्त के लक्षण—

१. उदरमें स्थानिक वेदना—बहुधा अकस्मात् तीव्र, प्रारम्भमें शूल सदृश, फिर सतत बनी रहने वाली।

२. वमन—प्रारम्भसे और नियमित, पुनः-पुनः बहुधा अधिक परिमाणमें, पहले आमाशयस्थ द्रव्य, फिर यकृत् पित्त, अन्तमें मलकी वमन।

३. मलावरोध—कुछ घण्टोंमें मल और वायुका पूर्ण अवरोध, यह अवरोध, नीचेके हिस्सेमें हो, तो कभी-कभी आक्रमण के प्रारम्भमें अपने आप रिक्त होजाता है।

प्रायः रोगीको अपानवायुके त्यागकी इच्छा होती है; किन्तु निकालनेमें असमर्थ, स्वल्प मूत्र (कभी अधिक)।

४. शक्तिपात—आक्रमणकालमें आघात पहुँचता है, फिर शक्तिपात होता ही जाता है। निस्तेज और मुर्झाया हुआ मुख-मण्डल, उत्तापका ह्रास, नाड़ी निर्बल किन्तु तेज़, शीतलस्वेद, त्वचाका रंग मलिन, शुष्क जिह्वा और तृषा आदि लक्षणोंकी उत्पत्ति। कभी हिक्काभी।

५. उदर विकृति—प्रथमावस्थामें थोड़ी विकृति, साधारण प्रसारण, दबाने पर कोमलता, विविधप्रकारकी पीड़नाक्षमता प्रायः मंद। अन्त्र परिचालन क्रियाका अभाव। अन्तिमावस्थामें उदर प्रसारण, अफारा, तनाव और पीड़नाक्षमताकी वृद्धि आदि। विशेष अवस्थाके अतिरिक्त कभी अर्बुद।

६. ज्वरावस्था—सामान्यतः अभाव। प्रायः न्यून उत्ताप। पूयमय उदर्य्याकलाप्रदाह होनेपर उत्ताप बढ़ता है, अथवा कम होकर शक्तिपात होता है।

७. मृत्यु—३ से ६ दिनमें यदि सत्वर योग्य शस्त्र चिकित्सा न हुई तो, अन्तिमावस्थामें उदर्य्याकला प्रदाह।

आ. चिरकारी अन्त्रावरोधज उदावर्त्तके लक्षण—आक्रमण आशुकारीके समान, किन्तु सौम्य तथा महीनों या वर्षोंतक प्रसारण होता है। लक्षणोंकी दृढ़ता विविध प्रकारकी। लक्षण बढ़ते ही जाते हैं।

१. वेदना—शूल सदृश सविराम।

२. वमन—किञ्चित् या अभाव, भोजनकर लेनेपर। मलकी वमन नहीं होती।

३. सार्वाङ्गिक निर्बलता—पाण्डु, कृशता और गिरी हुई स्थिति।

४. मलावरोध—कुछ अंशमें, आक्रमण अतिसारसह, अवरोध स्थानके ऊपर मलकी गांठ होनेपर वेदना। कभी-कभी कांछना (Tenesmus), यह प्रायः सुबह अतिसारके समय अफारा, गड़गड़ाहट और वायुका ऊर्ध्वगमन।

५. उदर—(१) प्रसारित (२) परिचालन क्रियाका अनुभव होना। और अन्त्ररज्जुकी गांठे होजाना प्रायः अर्बुद होनेपर स्पर्श होना।

६. गुदनलिकाकी परीक्षा—यदि अवरोध श्लैहिक कोणके निम्न भागमें हो, तो संकोचनी पेशी शिथिल और गुदनलिका विमानके सदृश बन जाती है। पुनः-पुनः आक्रमण घातकतर अवरोधसह। लक्षण लगभग आशुकारीके समान परिचालन क्रिया लक्ष्य देने योग्य। घातकता, स्थिरता और पुनः-पुनः आक्रमण, तीनोंकी वृद्धि।

सूचना—चिरकारी अवस्थामेंसे कभी आशुकारी अवस्था बन जाती है। फिर आशुकारीके लक्षणोंकी प्रतीति।

विशेष लक्षणोंका परिचय

१. वमन—अधिक अवरोध होनेपर अधिक।

२. मलकी वमन—अन्त्रस्थ द्रव्य दूषित होकर आने लगता है, यह अवरोधके ऊपरके हिस्सेसे। यह नीचे नहीं जा सकता। कभी यह मलके आकारके अनुरूप नहीं भासता।

३. आध्मान—रक्त पहुँचानेमें प्रतिबन्ध होनेपर किन्तु अनुप्रस्थ बृहदन्त्रके प्रतिबन्धसे नहीं। पित्ताश्मरीके संचलनके अभाव और आन्त्रिकी धमनीमें शल्य उपस्थित होनेपर अफारा। बृहद् बंधनीके फँस जानेपर सत्वर अफारा, विशेषतः अन्त्र व्यावर्त्तन होनेपर।

४. पीड़नाक्षमता और तनाव—आशुकारी प्रकारकी बहुधा प्रारम्भावस्थामें नहीं होते; किन्तु ये केवल अन्त्र व्यावर्त्तन जन्य (प्रसारणमेंसे) आशुकारी प्रकारमें उदर्य्याकलाप्रदाहके हेतुसे।

५. प्रवाहण—(कांछना Tenesmus) बृहदन्त्रके भीतर अवरोध होनेपर।

६. परिचालन क्रिया—यह चिरकारी अवरोधमें अथवा चिरकारीमेंसे उत्पन्न आशुकारीमें प्रतीत होती है।

विभिन्न स्थानोंमें पीड़ाके सामान्य लक्षण—

१. वातवहा नाड़ीमण्डल—वेदना, उद्वेग, बलक्षय।
२. रक्तसंचालन यन्त्र—प्रदाहरहित अवस्थामें नाड़ी वेगवती और निर्बल। प्रदाहयुक्त अवस्थामें नाड़ी वेगवती और तार सदृश।
३. श्वास यन्त्र—श्वासोच्छ्वास क्रिया द्रुतगामी और ऊपर-ऊपरके भागमें।
४. पचनेन्द्रिय संस्थान—विबंध, वमन और अन्त्र विस्तार।
५. मूत्र यन्त्र—आशुकारी बलक्षययुक्त विकारमें मूत्रका ह्रास। चिरकारी व्याधि होनेपर प्रारम्भिक अवस्थामें मूत्रवृद्धि।
६. प्रजनन यन्त्र—कोईभी प्रकारके लक्षण प्रतीत नहीं होते।
७. ऐच्छिक संचालन—उरु और पादमें संकोच।
८. त्वगीयलक्षण—मलिनता, शीतल और चिकने प्रस्वेद युक्त गात्र तथा उदरपर स्फीत चर्म।

विभिन्न स्थानोंकी वेदनाके हेतु—

१. अन्त्रके भीतर वेदना—मल संचय (अश्मरी या बाह्यपदार्थ आदि हेतु जन्य), यह बड़गुदोदरमें प्रतीत होता है।

२. अन्त्रदीवारमें पीड़ा—

अ. निर्माण विकार—नव प्रसूत बालकके गुदद्वार और गुदनलिकामें अव-रोधक आवरण (Ano Rectal Septum), या अन्त्रके कुछ अंशकी उत्पत्तिमें न्यूनता।

आ. पक्षघात-प्रसारवशतः मांस पेशियोंका पक्षघात या अफीम, शीशा आदि विष पदार्थ जनित पक्षघात।

इ. व्रण शुष्क होजानेपर अन्त्रकी दीवारका संकोच।

ई. अर्बुद आदिकी उत्पत्ति।

उ. अन्त्र व्यावर्त्तन, अन्त्र आवर्तन या अन्त्रान्त्रप्रवेश होनेपर स्थानच्युति।

३. बाह्यहेतु—उदर गुहाके इतर यन्त्रकी वृद्धि, अर्बुद आदिकी उत्पत्ति, उदर्य्या-कला या भ्रमरा आदिमें आँत फँस जाना (Strangulated Hernia)।

(१) अन्त्रावरोध निर्णायक कोष्ठक

प्रकार	हेतु आदि इतिहास	वेदना स्थान और वेदना प्रकार	अर्बुद और उसका स्वभाव
१—मल संग्रहज बद्धोदर	क्रमशः रोगवृद्धि। युवा स्त्री विशेषतः उन्माद ग्रस्त आक्रान्त होती है। मलावरोध, सूतिका रोग या अस्थिभंग आदिसे उत्पन्न होता है। दीर्घकाल तक बलक्षय नहीं होता।	कुण्डली भाग (Sigmoid) उण्डुक (Coecum) और अनुप्रस्थ अन्त्रमें मृदु वेदना, भारीपन, दबानेपर सामान्य पीड़ा बीच-बीचमें अतिशय शूल।	कुण्डलिका भाग, उण्डुक और अनुप्रस्थ अन्त्रमें अर्बुद। स्पर्शमें मैदेके पिण्ड सदृश अर्थात् दबानेपर दबना और स्थान विच्युत होना, संग्रह स्थानके ऊपर आध्मानकी क्रमशः वृद्धि।
२—अन्त्रमें अश्मरी या बाह्य पदार्थ प्रवेशज बद्धोदर	अश्मरी आदिके प्रवेशसे अकस्मात् रोगका आक्रमण। पित्ताश्मरीज शूलका पूर्व इतिहास मिलता है। क्षुधाधिक्यसह उन्माद रोगमें ऐसा होजाता है।	शेषान्त्रकके अन्त, उण्डुक या कुण्डलिका भागमें वेदना। स्पर्श करनेपर वेदना वृद्धि, सतत स्थानिक पीड़ा, आध्मानवशतः बार-बार तीव्र अन्त्रशूल।	दक्षिण या वाम वंक्षणोत्तरिक प्रदेशमें मलसंचय। संचय स्थान कठिन, सीमाविशिष्ट और किञ्चित् संचलनशील।
३—निर्मोच्य वैलक्षण्य	शिशुका जन्म होनेपर मल त्याग न होना। रोगका उपशम न होनेपर सत्वर बलक्षय।	अन्त्रका प्रसारण होनेसे सम्पूर्ण उदरमें वेदना। बलपूर्वक कौंछना।	संग्रह सीमाबद्ध लक्षित नहीं होता। मलका संचय और आध्मान होनेपर समग्र उदरका फूल जाना। गुदनलिकाकी परीक्षा करनेपर अवरोधक आवरण (Septum) भासना।
४—पक्षघात	क्रमशः आक्रमण। मस्तिष्क पीड़ा, अभिघात, रक्तस्राव, अर्बुद आदि	नाभिप्रदेश फूलना, शीशाजन्य विकार होनेपर शूल होता है। अफीम हेतु	कठिन मलसंग्रह होनेपर बृहदन्त्रमें रह जाना, लघुअन्त्रका विस्तार होनेसे

	की उत्पत्ति, मल आदिका अत्यधिक संचय, अफीम या शीशाविष का सेवन ।	होनेपर शूल नहीं होता ।	आध्मान । शीशाजन्य हो, तो उदरसंकोच ।
५—अन्त्रकी दीवारकी अनावश्यक वृद्धि ।	शनैः-शनैः क्रमशः रोग वृद्धि । कर्कस्फोट या इतर घातक अर्बुद (Malignant Tumour) होनेपर शीर्णता (Cachexia) और कोष्ठबद्धता ।	सामान्यतः कुण्डलिका भाग या गुदनलिकामें सीमाबद्ध वेदना । क्रमशः वेदनाका अधिक फैलना ।	बृहदन्त्रमें मल संग्रह जनित कड़ापन और लघु अन्त्रमें आध्मान ।
६—अन्त्रकी दीवारमें स्थान च्युति, अन्त्रव्यावर्त्तन, अन्त्र आवर्त्तन या अन्त्रवलय संलग्नताजन्य ।	प्रौढ़ावस्था, अकस्मात् परिश्रम, व्यायाम आदिसे रोगारम्भ । सत्वर उदर्य्याकलाप्रदाह उपस्थित होता है । रोग का शमन न होनेपर सत्वर बलक्षय ।	कुण्डलिका प्रदेशमें तीव्र अविराम वेदना उदर्य्याकलाप्रदाहके हेतुसे दबानेसे समस्त उदरपर अधिक वेदना ।	कुण्डली स्थानका विस्तार, फिर क्रमशः समस्त उदर प्रसारित होना ।
७—अन्त्रकी दीवारमें स्थान च्युति, (अन्त्रान्त्र प्रवेशज)	बाल्यावस्थामें अकस्मात् आक्रमण, अधिक काँछना, मल त्यागमें श्लेष्मा और रक्तगमन ।	शेषान्त्रक और उण्डुकके मध्यप्रदेशमें तीव्र वेदना । फिर सत्वर समस्त उदरमें वेदना फैल जाना ।	स्थानिक संग्रह नहीं होता । अत्यन्त आध्मान । गुदाद्वारमें बहुधा लघु अन्त्रकी प्रतीति ।
८—उदरगुहाके किसी यन्त्रकी वृद्धि ।	क्रमशः रोगाक्रमण । परीक्षा द्वारा सहज कारण निर्णय ।	सामान्यतः उण्डुक या कुण्डलिनी प्रदेशमें मृदु वेदना, दबानेपर वेदनावृद्धि, बीच-बीचमें शूल चलना ।	विवर्धित यन्त्रके समीपके अन्त्रमें मल संग्रह होनेसे गाँठ भासना, उदरमें आध्मान और शिथिलता ।
९—कर्कस्फोट, अर्बुद, विद्रधि आदि (अन्त्र	चिरकारी रोगवृद्धि, अन्त्रावरोध होनेके पहले मूल व्याधिके विविध	स्थानिक वेदना । आक्रांत वातवहानाड़ियोंके तन्तु जिन-जिन स्थानोंमें	सामान्यतः पश्चात् उदरकी दीवार, यकृत्, वपा (Omentum) और

दीवारके बाहर)	लक्षण तथा घातक विकारमें निस्तेजता आना।	फैलते हैं, उन-उन स्थानोंमें वेदनाका फैलना।	मूत्र संस्थानके सब यन्त्राम विकृत।
१०—स्थान च्युति अन्त्र दीवारके बाहर पायाजन्य	अकस्मात रोगाक्रमण, उदर्य्याकला प्रदाह अथवा उण्डुककी चारों ओरकी उदर्य्याकलाका दाह (Perityphlitis) का पूर्व आक्रमण। बोझको उठाने आदि परिश्रमसे अकस्मात् पेशियोंपर आघात, रोग दमन न होनेपर सत्वर बलक्षय।	वपा या अन्त्रपुच्छमें तीव्र वेदना।	मलकी ग्रन्थि अनुभूत नहीं होती। उदरमें अफारा आ जाता है।
११—स्थान च्युति—अन्त्र दीवारके बाहर आँतका अमरा आदिमें फँस जाना(Hernia)	अकस्मात् रोगाक्रमण, अन्त्रावतरणका पूर्व इतिहास या अन्त्रावतरणके पुनः संस्थापनका इतिहास।	बहिर्वंक्षणीय या अन्तर्वंक्षणीय छिद्र (Abdominal Ring) और परिनामिक प्रदेश (Umbilicus) में सामान्य तनावजन्य वेदना।	दक्षिण या वाम वंक्षणीय छिद्रमें सम्भवतः हस्त संचालनद्वारा स्फीतिका ह्रास होना।

आशुकारी अन्त्रावरोधके सदृश अन्यस्थिति—

१. बाह्य अन्त्रावरण—इसके लिये उदर गुहाके आठों छिद्रों-महाप्राचीरा पेशीगत ३, अन्तर्वंक्षणीय २, वंक्षणदरी २ तथा नाभिमें १, इन सब स्थानोंकी जाँच करें। अन्तिम पाँच छिद्रोंमेंसे विशेषरूपसे अन्त्र बाहर निकल आती है।

२. उदर्य्याकलाप्रदाह—विशेषतः उपान्त्रप्रदाह, आमाशय ग्रहणीके व्रणका विदारण हो, तो वह भी। उदर तना हुआ, नरम और सत्वर प्रसारित; वमन थोड़े परिमाणमें (कभी मलयुक्त नहीं, अन्त्रावरोधमें अत्यधिक परिमाणमें) और ज्वर आदि लक्षण।

३. आमाशयअन्त्रमें उद्दीपनावस्था—आशुकारी लघुअन्त्र प्रदाह। विशेषतः अतिसार द्वारा भेद हो जाता है। अन्त्रान्त्र प्रवेशकी अपेक्षा कम अकस्मात आक्रमण, दस्तमें पित्त जाना और अर्बुदका अभाव।

४. उदरके स्वतन्त्र नाड़ी मण्डलके तन्तुओंकी उत्तेजना और सहयोगी स्थिति—वृक्काश्मरी, पित्ताश्मरी, चलवृक्क, बीजाशयका मुड़ा हुआ अर्बुद (पूर्ववर्त्ती या स्पर्श ग्राह्य अर्बुद), वृषणका मुड़ जाना (एक वृषण मूल स्थितिमें) तथा क्वचित् उत्तरान्त्रिकी धमनीमें चल या अचल शल्य (परिचालन क्रियाके अवरोधवाली स्थिति)।

५. आशुकारी रक्तस्रावी अग्न्याशय प्रदाह—अति शीघ्र शक्तिपात, मंदनाड़ी, उदरमें अतिसार, पूर्ण मलावरोधका अभाव आदि लक्षण।

६. मलावरोध और वमनके साथ सम्बन्धवाली स्थिति—(१) लघु अन्त्र प्रदाह, कभी फुफ्फुसप्रदाह; (२) शकुन्तगति रोगका उपशम (Tabetic Crises); (३) शीशाशूल; (४) रक्तमें मूत्रविष वृद्धि; (५) आमाशयके कर्कस्फोट-में वमन, अर्बुद और मलावरोध; किन्तु मलकी वमन नहीं, पूर्णमलावरोध नहीं, पूर्व आघातभी नहीं। कभी-कभी उक्त रोगोंमें अन्त्रावरोधका भान होजाता है। अतः लक्ष्यपूर्वक प्रभेद करना चाहिये।

अन्त्रावरोध विनिर्णय—(१) पूर्ण अन्त्रावरोध होनेपर अधोवायु बिलकुल नहीं सरती, शूल, वमन, बलक्षय और बेचैनी आदि प्रतीत होते हैं, (तीव्र मलावरोधमें वायु थोड़ी-थोड़ी सरती रहती है) बस्ति देनेपर जलभी वापस नहीं लौटता। इस तरह कदाच विरेचनदिया जाय, तो वेदनाकी और वृद्धि होती है, लाभ नहीं होता।

(२) आशुकारी प्रकारके प्रारम्भमें ही शूल, बलक्षय, अफारा और आँतमें किसी-न-किसी स्थानपर पीड़नाक्षमता (दबानेपर अधिक वेदना) होती है। चिरकारी प्रकारमें धीरे-धीरे रोग बढ़ता रहता है।

(३) छोटी आँतके ऊपरके हिस्सेमें विकृति होनेपर वमन सत्वर और सतत भयंकर तृषा, मूत्रावरोध और अधिक त्रास, वमन मल मिश्रित नहीं होती। अफारा थोड़ी प्रदेशमें।

उदर बिल्कुल दबा-सा (मध्य उदर प्रसारित) भासता है। कारण, अवरोध स्थानसे निम्न रही हुई आँतमेंसे मल और वायु निकल जाती है। लक्षण आशुकारी, सत्वर शक्तिपात।

(४) अन्त्रपुच्छतक अवरोध होनेपर मल और वायु नहीं निकल सकते। वान्तिमें मलकी दुर्गन्ध होती है, किन्तु मल क्वचित् ही आध्मान हृदय और नाभिके मध्यप्रदेशमें और पार्श्व भाग मुक्त।

(५) बड़ी आँतमें अवरोध होनेपर चिरकारी अन्त्रावरोध। क्वचित् आशुकारी प्रकार हो जाय, तो भी बलक्षय स्वल्प इस प्रकारमें वमन देरसे और मलसहित अफारा और गड़गड़ाहट सारे उदरमें।

(६) अवरोही आँतके प्लैहिक कोन (Splenic Flexure) में अवरोध होनेपर वाम पार्श्व भागमें अफारा नहीं आवेगा। काँखना उदरप्रसारण, क्रम और शक्तिपात मन्दतर गतिसे।

इन बातोंका निर्णयकर लेनेके पश्चात् पित्ताश्मरीजन्य शूल, जीर्ण मलावरोध, उदर्य्याकलाका प्रदाह, उपदंश, प्रवाहिका, स्त्री रुग्ण हो, तो गर्भाशय पतन या इतर विकार पहले हो गये हैं या नहीं, यह पूछकर और परीक्षा करके निर्णय करना चाहिये।

उदावर्त्त चिकित्सोपयोगी सूचना

इस रोगकी चिकित्सा करनेके पहले कारण, लक्षण, शरीरबल, रोगबल आदिको नाड़ी, उदरपरीक्षा और प्रश्न आदिसे जान लेना चाहिये। रोग बढ़ गया हो, तो मलसंग्रहके अतिरिक्त प्रकारमें रोगीको सत्वर शल्य चिकित्सकके पास भेज देना चाहिये। केवल चिरकारी प्रारम्भिक अवस्था हो और औषधिसाध्य हो, तो ही औषधचिकित्सा करनी चाहिये।

बहुधा उदावर्त्तरोग वातनाड़ियोंके स्थिति स्थापकता गुण नष्ट होजानेके बाद स्थानिक शिथिलता आकर उत्पन्न होता है। अतः इस रोगमें मुख्य औषधिके साथ स्थानिक बलवर्द्धक और आकुंचन गुणयुक्त औषधि मिला दी जाती है।

उदावर्त्त रोगीकी देहमें मल, मूत्र, आम, स्वेद आदि संगृहीत न हो जाय, इसलिये लक्ष्य देते रहें। मलसंगृहीत होनेपर विरेचन या एरण्ड तैलकी बस्ति देवें। मूत्राशयमें मूत्र संगृहीत होनेपर कैथेटरसे निकाल लेवें। रक्तमें मूत्रविष वृद्धि होनेपर पुनर्नवा आदि औषधिद्वारा वृक्कोंके बलकी वृद्धि करावें तथा स्वेदद्वारा विषको नष्ट करावें। आमवृद्धि होनेपर बाहर निकाल देवें और क्षार प्रधान पाचन औषधि देकर उत्पत्तिको रोक देवें। स्वेदावरोध होनेपर स्वेदन देवें या मूत्रल औषधिद्वारा विषको बाहर निकाल देवें।

वात प्रकोपक आहार-विहारका बिल्कुल त्याग कराना चाहिये। द्विदल धान्य,

अति उष्ण अथवा अति शीतल पेय आदि हो सके उतना कम लेवें। धूम्रपान अति हानिकर है।

रसायन विधिसे त्रिफला सेवन दीर्घकाल पर्यन्त पथ्यपालनसह कराया जाय, तो रोग निवारणमें अच्छी सहायता मिल जाती है।

चिरकारी रोगमें औषधिकी मात्रा अतिकम देनी चाहिये। अधिक मात्रा देनेपर हितकर औषधिकी भी विपरीत प्रतिक्रिया होकर हानि पहुँच जाती है। चिरकारी जीर्ण रोगमें औषधि सेवन १-२ वर्ष या इससे भी अधिक कालतक करानी पड़ती है। यह प्रारम्भमें ही रोगीको कह देना चाहिये। जिससे थोड़े समयमें रोगी चिकित्सासे उपराम न हो।

उदावर्त्तकी सम्प्राप्ति उपदंश, सुज़ाक या किसी रोगविशेषके तीव्र प्रकोपके पश्चात् हुई है, तो उस रोगीके रक्त आदि धातुओंमेंसे लीन विषको नष्ट करनेके लिये भी योग्य लक्ष्य देना चाहिये।

पचनेन्द्रिय संस्थान (आमाशय, अन्त्र आदि) में स्थानिक शिथिलता प्राप्त होने-पर कुचिला प्रधान औषधि अतिकम मात्रामें देते रहनेसे शनैः-शनैः लाभ पहुँचता जाता है।

सब प्रकारके उदावर्त्त रोगोंमें वायुका अनुलोमन (स्व-स्व मार्गसे गमन जैसे अधोवायुका नीचेकी ओर जाना, तथा डकारका ऊपरकी ओर आना) कराना, यही मुख्य कर्तव्य है।

अधोवायु निरोधज उदावर्त्तपर स्वेदन, स्नेहपान, आस्थापन (निरूह) बस्ति, फलवर्त्ति और आनाह (विबन्ध) रोगमें कही विधिसे चिकित्सा करनी चाहिये।

मलावरोधज उदावर्त्तमें अन्त्रविकृति रहित केवल अपथ्य भोजनजनित मल संचयसे उत्पन्न चिरकारी और नूतन रोगमें मलको प्रवृत्त करनेवाले भोजन, मलभेदक और वायुको अनुलोमन करानेवाली एरण्ड तैल और हरीतकी आदि औषधियाँ, फलवर्त्ति, तैलमर्दन, गुनगुने जलमें बैठना, स्वेदन आदि क्रिया तथा बद्धगुदोदर और आनाह रोगको दूर करनेवाली चिकित्सा करें। आस्थापन बस्ति, क्षार बस्ति और वैतरण बस्ति हितकारक हैं।

आशुकारी अन्त्रावरोध होनेपर यदि विरेचन औषधि दी जायगी, तो मलसे आँतें पूर्ण भारी होनेसे अफारा, वमन और शूलकी वृद्धि हो जाती है। कदाच शूल मानकर अफीमवाली औषधि दी जायगी, तो शूल शमन नहीं होगा, किन्तु अन्त्रावरोध और बढ़ जायगा। अतः तीव्र प्रकोप होनेपर ऑपरेशन करा लेना ही हितकर है, अन्यथा अन्त्रवध हो जानेपर शस्त्र क्रियासे भी लाभ नहीं हो सकेगा।

बद्धगुदोदर रोगकी चिकित्सामें जो सूचनाकी है। वह अन्त्रावरोधजउदावर्त्तमें भी हितावह है।

बालकोंके आशुकारी अन्त्रान्त्रप्रवेश होनेपर नितम्ब प्रदेशको उदरकी अपेक्षा ऊर्ध्व रखकर गुनगुने तैलकी पिचकारी देनी चाहिये। इस तरह बार-बार प्रयोग करते रहना चाहिये।

अन्त्रान्त्र प्रवेश होनेपर टबमें ईषद् उष्ण जल भरकर उसमें बालकको बैठावें। उदरपर अफीमका लेपकर ऊपर गरम जलसे सेक करें। आयुके अनुसार अफीम और जायफलको घिसकर बालकको पिलावें।

सूचना—जबतक अफीमकी मादकक्रिया पूर्ण रूपसे प्रकाशित न हो, तबतक अफीमका प्रयोग पूर्ण मात्रामें करते रहें। तब तक विरेचन नहीं देना चाहिये।

उदर प्रदेश मसलनेके समय पैरोंको मोड़ देना चाहिये। जिससे उदर प्रदेशकी सब मांसपेशियाँ शिथिल हो जायँ। फिर धीरे-धीरे अँगुलियोंद्वारा कठिन स्थानपर मसलकर अवरोधको दूर करना चाहिये।

आवश्यकतापर बालकको संज्ञाहर (Anaesthetic) औषधि देकर बेसुध करें। फिर गुदनलिकामें रबरकी नलीको जितनी जा सके उतनी प्रवेश करावें। पश्चात् मलद्वारको अच्छी तरह दबा, पम्पद्वारा वायु प्रवेश करावें। साथ-साथ इतर चिकित्सक या धात्री शिशुके उदर प्रदेशको मसलते रहें। जिससे अन्त्र प्रसारित होकर मुक्त होजाय।

अनेक समय वायु प्रविष्ट करानेकी अपेक्षा डूश या पिचकारी द्वारा निवाया जल प्रवेश करा, अवरोध मोचनकी चेष्टा अधिक फलप्रद होती है। अवरोध जितना लघु-अन्त्रके समीप स्थित हो, उतना ही अधिक उपकार होनेकी आशा रक्खी जाती है।

कितनेक चिकित्सक जलके स्थानपर सोडाबाईकार्ब और इमलीका तेज़ाब (Acid Tartaric) १-१ ड्रामको जलके साथ पृथक-पृथक् गिलासमें मिला फिर दोनोंको मिश्रणकर पिचकारीद्वारा अन्त्रमें प्रवेश कराते हैं। पश्चात् कार्बोलिक एसिडकी वाष्प देते हैं। परन्तु यह प्रयोग अति सावधानतापूर्वक करना चाहिये। कारण, इससे अन्त्र फट जानेका भय है।

यदि अफारा अत्यधिक आगया हो, तो व्रीहिमुखयन्त्र (एस्पिरेटर) द्वारा उदरकी दीवारमें छिद्र करके वायुको निकाल लेना चाहिये। अनेक बार उदरपर धीरे हाथसे मालिश करनेपर वायु निकल जाती है। इस रोगमें स्वल्प लघु पौष्टिक भोजन देकर रोगीके बलका संरक्षण करना चाहिये।

यदि इस रोगमें औषधि चिकित्सासे लाभ होनेकी आशा न हो, बलक्षय हो रहा हो, तो शस्त्रद्वारा उदर या आमाशयमें छिद्र (Gastrotomy), उदरकी दीवारका छेदन (Laparotomy), या अन्त्र छेदन (Enterotomy) आदि क्रियाका आश्रय लेना चाहिये।

मूत्रावरोधज उदावर्त्तमें—दूधकी लस्सी (दूध जल मिलाकर) पिलावें। अथवा जवासा या अर्जुन छालका क्वाथ अथवा ककड़ीके बीजके मगज़को जलके साथ पीसछान,

नमक मिलाकर पिलावें। तथा मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोगमें लिखी हुई औषधियाँ देवें। मूत्रप्रसेक नलिकाद्वारसे बस्तिमें रबरकी नली (Catheter) का प्रवेश करा, मूत्रको निकाल लेना चाहिये।

जृम्भाजन्य उदावर्त्तमें—स्नेहन, स्वेदन और वातशामक चिकित्सा करनी चाहिये। मुख-मण्डलकी मांसपेशियोंकी शिथिलता हुई हो, तो नारायण तैलकी मालिश करें और पौष्टिक औषधि अभ्रक आदिका सेवन करावें।

नेत्राश्रुनिरोधजन्य उदावर्त्तमें—स्नेहन और स्वेदन क्रिया करनेके पश्चात् खूब रोदन करा, नेत्रमेंसे अश्रुस्राव करावें। थोड़ी शराब या द्राक्षासव पिला सुखपूर्वक शयन करावें; अथवा स्नेहन, स्वेदनके पश्चात् तीक्ष्ण अंजनसे अश्रुस्राव करावें। या सफेद मिर्चको पीस अंजन करानेसे भी अश्रुस्राव होकर नेत्रकी व्यथा शमन होजाती है।

क्षवथुविघातज उदावर्त्तमें—छींक लाने वाले तीक्ष्ण नस्य सुंघाकर सूर्यके सामने देखनेको कहें या नाकमें वस्त्र या कागज़की सलाई या अन्य वस्तु डालकर छींक लानेका प्रयत्न करें। कण्ठसे ऊपरके भागमें तैलकी मालिश, स्वेदन, तीक्ष्ण अंजन, तीक्ष्ण गंधवाली औषधिका नस्य और धूम्रपान आदि उपचार करें; तथा घी मिला हुआ भोजन दें।

उद्गारनिग्रहज उदावर्त्तमें--घृत मिला हुआ धूम्रपान करावें।

छर्दिनिग्रहज उदावर्त्तमें—नस्य, स्नेहन, भोजन करके वमन, धूम्रपान, लंघन, रक्तमोक्षण, विरेचन, जवाखार और लवण मिले तैलकी मालिश, रूक्ष अन्नपान, विरेचन और व्यायाम आदि क्रिया हितावह है।

शुक्रज उदावर्त्तमें— बस्ति स्थानको शुद्ध करनेवाली औषधियोंका कल्क और चतुर्गुण जल मिलाकर दूधको सिद्ध करें। फिर मिश्री मिलाकर पिलावें। इस विकारवालेके लिये स्त्री सहवास, तैलाभ्यंग, जलमें बैठना, मद्यपान, मुर्गेके मांस या शालि चावल और दूधका भोजन तथा निरूहण बस्ति आदि हितकारक हैं।

क्षुद्विघातज उदावर्त्तमें—स्निग्ध, उष्ण, रुचिकर और हलका थोड़ा भोजन तथा सुगन्धित पुष्पोंका सेवन हितकारक है।

तृष्णा विघातज उदावर्त्त—शमनार्थ मन्थ (सत्तूको घीके साथ मिला जलमें घोल फिर घी, शक्कर और अनारदानेका रस मिलावें) या शीतल यवागू पिलाना चाहिये। शर्बत या शीतल जलपान बार-बार थोड़े-थोड़े परिमाणमें सेवन कराना चाहिये।

श्रमज उदावर्त्तमें—विश्रान्ति और मांसरस मिले भातका भोजन देना चाहिये।

निद्रा विघातज उदावर्त्तमें—रात्रिको मिश्री मिला भैंसका दूध पिलावें, दिनमें भी सुन्दर शय्यापर शयन करा हाथ-पैर दबावें और प्रीतिकर कथाका श्रवण कराता हुआ इच्छानुसार सुलावें।

अपथ्यज उदावर्त्त—की प्राथमिकावस्थामें नमक मिले तैलका मर्दन, स्नेहन, स्वेदन, निरूहण बस्ति, फटे हुए पतले दस्तपर अनुवासन बस्ति और दारुण रोगमें

एरण्ड तैलका विरेचन, ये सब हितकारक हैं। उदरपर सेक करने और फलवर्त्तिको घी लगाकर गुदामें चढ़ानेसे अफारा दूर होता है, तथा मलशुद्धि होकर उदावर्त्त शमन होता है। विशेष मलावरोधज उदावर्त्तमें कहे अनुसार चिकित्सा करें।

उदावर्त्तमें अफारा और शूल आदि जो लक्षण होते हैं, उनको दूर करनेके लिए सत्वर यथोचित प्रयत्न करना चाहिये।

मलावरोधज उदावर्त्त चिकित्सा

(१) गोदुग्ध या सोंठके क्वाथमें एरण्ड तैल मिलाकर पिलानेसे कोष्ठशुद्धि होकर उदरवात, उदावर्त्त और आनाह रोग दूर होते हैं।

(२) हींग और सेंधानमकको शहदमें मिला गरम करें। फिर बत्ती बना, घी लगा, गुदामें चढ़ानेसे अपानवायु और मलका अवरोध दूर होकर आनाह और उदावर्त्त रोग नष्ट होते हैं। सामान्य रीतिसे हींग और सेंधानमक १--१ तोला और शहद २ तोले मिला मंदाग्निपर पचन करके बत्ती बनानी चाहिये।

(३) रसतन्त्रसारमें लिखी हुई फलवर्त्ति या त्रिकट्वादिवर्त्ति चढ़ानेसे अधो-वायु और मलावरोधज उदावर्त्त तथा आनाह नष्ट होते हैं।

(४) नाराच चूर्णका विरेचन देनेसे आनाह और मलावरोधज उदावर्त्त शमन होते हैं। विरेचन करानेमें यह उत्तम औषधि है।

(५) श्यामादि वटिका—काली निसोतकी छाल और बड़ी हरड़को सम-भाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर थूहरके दूधमें १२ घण्टे खरलकर चने बराबर गोलियाँ बनावें। इसमेंसे १–१ गोली गुनगुने जल या दूधसे प्रातःकाल देनेसे अपथ्य जनित उदावर्त्त और आनाह रोग दूर होते हैं। गोली देनेके एक घण्टे बाद ५ से १० तोले सौंफका अर्क पिलावें।

(६) मूलीका क्षार या जवाखार २ माशेको ६ माशे गोघृतमें मिलाकर सुबह चटा देनेसे वायु अनुलोम होकर उदावर्त्तका शमन हो जाता है।

(७) जवाखार २ माशे, मिश्री ६ माशे और मीठे अंगूरका रस ५ तोले मिलाकर पिला देनेसे वायुकी गति (अनुलोम) होजाती है।

(८) शंख भस्म ६ रत्ती, गुड़ ६ माशेके साथ मिलाकर खिलानेसे उदावर्त्त नष्ट होता है।

(९) हरड़, जवाखार, पीलूके फल और निसोत, सबको समभाग मिला चूर्ण बनाकर ४-४ माशे प्रातः-सायं घीके साथ सेवन करानेसे उदावर्त्त नष्ट होता है।

अधोवायुजन्य उदावर्त्त चिकित्सा

(१) हिंग्वादि चूर्ण—भुनी हींग २ तोले, कूठ ४ तोले, बच ६ तोले, सज्जी-

खार ८ तोले और बिड़नमक १० तोले लें। सबको मिला चूर्णकर १-१ माशा शराबके साथ पिलानेसे उदावर्त्त रोग दूर होता है।

(२) फलवर्त्ति चढ़ानेसे अधोवायुकी शुद्धि होती है।

(३) साफ लहसुनको शराबमें मिलाकर भोजनके साथ सेवन करानेसे गुल्म, उदावर्त्त और शूल नष्ट होकर अग्निप्रदीप्त होती है; तथा बलकी वृद्धि होती है।

(४) काशीफलके टुकड़ेको गरमकर नाभिपर सेक करनेसे अपानवायुकी गति अनुलोम हो जाती है।

(५) लघु पञ्चमूलके क्काथमें दूध मिला सिद्धकर, पिलानेसे वायु अनुलोम होती है।

(६) वचादि चूर्ण—बच, हरड़, चित्रकमूल, जवाखार, पीपल, अतीस और कूठको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर ३-३ माशे चूर्ण गुनगुने जलके साथ देते रहनेसे आनाह और अधोवायु जनित उदावर्त्त दूर होते हैं। दूध-भात, छाछ-भात, या मांस रस और भातका भोजन देवें।

मूत्रज उदावर्त्त चिकित्सा

(१) कुश—कासादि पञ्चतृणमूल ४ तोलेके साथ १६ तोले दूध और १६ तोले (मतांतरमें दूधसे ४ गुना) जल मिला दुग्धावशेष क्काथकर छोटी इलायचीका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे मूत्रावरोधज उदावर्त्त दूर होता है।

(२) पलाशके फूल और कलमीशोराको या मूषक (चूहे) की विष्टाको जलमें पीस बस्ति स्थानपर लेप करनेसे वायु शमन होकर मूत्रावरोध दूर होजाता है।

(३) जवाखार और मिश्रीको सारिवा अथवा मुनक्काके क्काथमें मिलाकर पिलानेसे मूत्रावरोधज उदावर्त्त शमन होता है। इस तरह शतावरी या पेठेके स्वरसमें मिश्री मिलाकर पिलानेसे भी लाभ होजाता है।

(४) छोटी इलायचीके चूर्णके साथ ताड़ी पिलानेसे मूत्रज उदावर्त्त शमन होता है।

(५) अमासाका स्वरस क्काथ अथवा अर्जुन छालका क्काथ या ककड़ीके मगज़की ठण्डाई बना सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे मूत्रावरोधज उदावर्त्त निवृत्त होता है।

(६) घोड़े या गधेकी लीदका रस २ तोले और जल ५ तोले मिलाकर पिलानेसे उदावर्त्तकी निवृत्ति होती है।

(७) आँवलोंका स्वरस २-२ तोले जलमें मिलाकर ३ दिनतक पिलानेसे मूत्रोदावर्त्त नष्ट होता है।

(८) तत्काल निकाला हुआ ईखका रस, दूधकी लस्सी या मुलहठीका क्काथ पिलानेसे मूत्रावरोधज उदावर्त्त दूर होता है।

(९) शुष्क मूलाद्य घृत—सूखी कोमल मूली, अदरक, पुनर्नवा, बृहत् पञ्चमूल और अमलतासके फलका गूदा, इन ५ औषधियोंको समभाग मिलाकर १ सेर लेवें। फिर ८ गुना जल मिलाकर क्काथ करें। चतुर्थांश (८ सेर) रहनेपर छान लें।

फिर गोघृत २ सेर मिलाकर यथाविधि पाक करें। इस घृतमेंसे १-१ तोला सेवन करानेसे उदावर्त्त रोग निःसंदेह दूर होते हैं।

(१०) स्थिराद्य घृत—शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, पुनर्नवा, अमलतासकी फलीका गूदा, दुर्गन्ध करंज और करंज, इन सबको ८-८ तोले ले, ८ गुने जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान ६४ तोले गोघृत मिलाकर घृत सिद्ध करें। इस घृतमेंसे १ से २ तोलेतक दिनमें २ समय देते रहनेसे वायुकी गति अनुलोम होजाती है।

अपथ्यज उदावर्त्त चिकित्सा

(१) इच्छाभेदीरस, अश्वकंचुकीरस, नाराच चूर्ण या नाराच चूर्ण देकर पहले कोष्ठशुद्धि कर लेनी चाहिये।

(२) आमाधिक जीर्णरोग होनेपर—सुवर्णभूपति रस (अदरकके रस और शहदके साथ) या बृहद् योगराज गूगल (एरण्ड तैल या रास्नादि क्वाथके साथ) का सेवन कराना चाहिये। आवश्यकतापर अनुपान रूपसे अभयारिष्ट देते रहें।

(३) वातपित्त प्रकोपसह हो तो सूतशेखर—और वराटिका भस्मका सेवन अदरकके रस और शहदके साथ करावें।

(४) मलावरोधज उदावर्त्त कहे हुए सब उपचार इस प्रकारमें हितकारक हैं।

(५) हिंग्वादि द्विरुत्तर चूर्ण—भुनी हींग २ भाग, बच ४ भाग, कूठ ६ भाग, कालानमक ८ भाग और वायविडंग १० भाग मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें। इस चूर्णमेंसे २ से ३ माशे गुनगुने जलके साथ देते रहनेसे आमोद्भव आनाह, विसूचिका, हृद्रोग, गुल्म और वातकी विलोमगति इत्यादि विकार शमन होते हैं।

(६) पवनक्रिया अति मन्द हो तो—वज्रक्षारचूर्ण, धनंजय वटी या अग्नितुण्डी वटीका सेवन कराना चाहिये।

(७) वैद्यनाथ वटी—हरड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, रससिंदूर, ये सब २-२ तोले तथा शुद्ध जमालगोटा ४ तोले मिलाकर मण्डूकपर्णी और अम्लोनियाके रसमें ३-३ दिन खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। फिर १-१ गोली जल, गोमूत्र या हरड़के क्वाथ अथवा शर्बतके साथ देनेसे कोष्ठ शुद्धि होकर अपथ्यज उदावर्त्त रोग नष्ट हो जाता है; तथा उदररोग गुल्म, पाण्डु, कृमि, कुष्ठ, खुजली, फुन्सियाँ आदि रोगकी भी निवृत्ति होजाती है।

(८) श्यामादि गण—औषध गुणधर्म विवेचनमें लिखी हुई औषधियोंको मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर ३ से ६ माशे तक गुनगुने जलके साथ देते रहने या २ तोलेका क्वाथकर पिलाते रहनेसे उदरशोधन होकर उदावर्त्त, उदररोग, आनाह, विषविकार और गुल्म आदि दूर होते हैं।

यदि इन औषधियोंका कल्क और क्वाथ बना शास्त्रमर्यादानुसार घृत सिद्ध करके सेवन कराया जाय, तो उदावर्त्त रोगमें अधिक फल दर्शाता है।

(६) लेप—बांबीकी मिट्टी, करंजकी छाल, मूल, फल और पत्ते तथा राईको गोमूत्रमें मिला गरमकर उदरपर लेप करनेसे वायु अनुलोम होती है।

पथ्यापथ्य विचार

पथ्य—स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, बस्ति, फलवर्त्ति, तैलाभ्यंग, लंघन, पाचन, औषधि, गुनगुने जलसे स्नान, शुद्ध वायुमें घूमना, मूत्रमल और वायुकी गतिको अनुलोम करने वाले आहार-विहारका सेवन, घी मिला हुआ पुराने चावलोंका भात, भुने गेहूँ या भुने जौका दलिया, एरण्डतैल, अदरक, तिलके पत्ते, दूध, साबूदाना, कच्चे नारियलका जल, पपीता, ईख, बीहदाना, अनार, सन्तरा, मोसम्मी, मीठा नींबू, बिजौरा, मुनक्का, आँवलोंका मुरब्बा, हींग, ग्राम्य पशुका मांसरस, जलजीवोंका मांसरस, गुड़से बनी हुई सीधु नामक शराब, अनूप देशके जीवोंका मांसरस; कच्चा केला, कोमल मूली, बैंगन, बथुआ, परवल, गूलर, पका पेठा, अम्ल-मधुर रसयुक्त सारक पदार्थ, गौमूत्र, निसोत, हरड़, जवाखार, लौंग और सैंधानमक आदि हितावह हैं।

पीपलका चूर्ण मिलाकर भुने हुए जौका यूष या कोमल मूलीका रस घृत मिलाकर पिलानेसे उदावर्त्त और वातगुल्म दूर होते हैं।

भुने हुए जौका सत्तू दूध या मूलीके रसके साथ सेवन करानेसे वायु सत्वर अनुलोम होती है। इस तरह सैंधानमक-आदि लवण मिलाकर वातशामक अन्नका यूष पिलानेसे थोड़ेही दिनोंमें प्रकृति स्वस्थ होजाती है।

मूलीका क्षार या जवाखार २—२ माशे १—३ माशे घीके साथ कुछ दिनों तक सुबह-शाम सेवन करना अति लाभदायक है।

अपथ्य—वमन, अधोवायु और मलमूत्र आदि वेगोंका धारण, सिम्बी आदि द्विदलधान्य, पका भोजन, भोजनपर भोजन, कोदों आदि रूक्ष भोजन, रात्रिका जागरण मैदेके पदार्थ, नाड़ीशाक, मसींडा, तिलकी खली, जामुन, ककड़ी, तरबूज़, आलू, अधिक परिश्रम, अधिक खट्टे पदार्थ, मलावरोध करनेवाले पदार्थ, शोक, चिन्ता, क्रोध, उष्णवीर्य पदार्थ, मैथुन (शुक्र निरोधज उदावर्त्तसे इतरमें) चाय, तेज़ शराब, बीड़ी, सिगरेट आदिका व्यसन, पका भोजन और मांस सेवन आदि अपथ्य है।

१२ अ. अन्त्र व्यावर्त्तन

वॉल्व्युलस ऑफ इण्टेस्टाइन Volvulus of Intestine.

आँतके मोड़पर डोरीकी तरह मुड़जानेको अन्त्रव्यावर्त्तन कहते हैं। लम्बे, सकड़े, अन्त्रबन्धनी वृन्तसह, लम्बे अस्वाभाविक मोड़के हेतुसे ऐसा होता है। यह विकृति विशेषतः लम्बे मोड़पर होती है, अन्यमोड़पर क्वचित्। चिरकारी मलावरोध उसका वाहक है।

(१) बृहदन्त्र कुण्डलिका भागमें ५० प्रतिशत (२) उण्डुकमें और (३) कभी-कभी छोटी आन्तमें और अन्य स्थितिमें भी। ३० वर्षसे छोटी आयुवालोंको क्वचित्। पुरुष रोगी ७० प्रतिशत, स्त्री ३० प्रतिशत। इसरोगका परिणाम आशुकारी अन्त्रावरोध।

विशेष लक्षण—(१) उदर प्रसारण और अफारा सत्वर उपस्थित। उदर्य्योकला प्रदाह और कोथकी प्राप्तिभी थोड़े ही समयमें। (२) वमन प्रायः देर से शक्तिपातका अभाव।

१२ आ. रज्जूबन्धनीका पाश

पाशित अन्त्रविकार-स्ट्रेंग्युलेशन ऑफ ए लूप ऑफ गट।

Strangulation of a Loop of gut

आशुकारी अन्त्रावरणका यह सामान्यतम कारण है। यह ३५ प्रतिशतमें युवावस्थाके समयमें होता है। यह सामान्यतः छोटी आँतमें होता है।

हेतु—१. संलग्नता, रज्जू और छिद्र—सामान्यतः प्रारंभिक उदर्य्योकला प्रदाहसे या शस्त्र चिकित्साके परिणाममें। मेकेल्सका उपशेषान्त्रक (Meckel's Diverticulum) अर्थात् नाभिकस्रोत (Vitelline duct), जो गर्भमें पचनेन्द्रिय संस्थानसे मिल जाती है, उसकी स्थली बनकर नाभिके पास संलग्न होती है। संयोजन अति शीघ्र। कुछ ही दिनोंके भीतर उपान्त्र निकालनेकी क्रिया या सामान्य शस्त्र चिकित्सा करानी पड़ती है।

२. उदर्य्योकलाके स्थालीपुट और अन्त्रावतरण (Peritoneal pouches and Internal Hernia)- ये सब क्वचित् होते हैं। अ. उदर्य्योन्तरिक छिद्र (Foramen of Winslow); या आ. उदर्य्योकलाके स्थाली पुट (गढ्ढे) मेंसे किसीके भीतर आँत फँस जाती है।

१२ इ. महाप्राचीरा पेशीस्थ अन्त्रतरण

उपनाम—ऊर्ध्वाकर्षित आमाशय, डायाफ्रेग्मेटिक हर्निया-थोरेसिक स्टोमक। Diaphragmatic Hernia-Thoracic Stomach. इस प्रकारमें विवर होना चाहिये। यह विवर १. जन्मजात और २. प्राप्त किया हुआ—सूची शलाका-(Stabes) या प्रबल दबाव आदिसे यह विकार अति कम और दहिनी ओर यकृत्प्रदेशमें होता है।

जन्मजात अवतरण—

१. जन्मजात अन्ननलिका छोटी होना, जन्मजात अस्वाभाविक होना, आमाशय कभी महाप्राचीरा पेशीके नीचे न उतरना (सामान्यतः आमाशय अन्त्रावतरणज स्थलीके वेष्टन रूप नहीं होता, अतः यह सच्चा अन्त्रावरण नहीं है), अन्ननलिकाके सम्बन्धवाला आमाशय प्रथा बढ़ता जाता है। अन्न नलिका पार्श्वभागकी अपेक्षा बड़े भागसे अधिक प्रवेश करती है। यदि महाप्राचीराकी प्रतिक्रियाका अभाव

हो, तो आमाशयकी संकोचनी पेशी (संरक्षणार्थ आहारको वापस फेंकनेमें) कुछ नियन्त्रण कर सकती है।

२. अन्ननलिकाकी हीनताजन्य अवतरण (सामान्य लम्बाई युक्त अन्ननलिकामें) यह ६० प्रतिशत ४० वर्षसे अधिक आयुमें। मेदो-वृद्धि सामान्य। प्रायः बृहदन्त्रकी स्थली बनती है।

३. अन्ननलिकाकी हीनता (स्वाभाविक छोटी अन्ननलिका होनेपर) जन्य अवतरण।

आधेय—सामान्यतः आमाशय, इससे कम लघु-अन्त्र, वपा और बृहदन्त्र, इनका महाप्राचीरापेशीमें अवतरण होता है।

मध्य विराम और लक्षण वृद्धि (Intermissions and Exacerbations)-लक्षणोंकी वृद्धिका आधार अवरोधकी स्थिति और अवतरण स्थानपर है। आमाशयका आशुकारी या उपाशुकारी, सामयिक या दृढ सम्बन्ध रखनेके साथ लक्षणोंकी प्रगति। किसी समय लक्षण और चिह्न बिल्कुल अदृश्यभी होजाते हैं।

लक्षण—इसके २ प्रकार।

१. उदर गुहागत—पीड़ा अथवा व्याकुलता, अफारा; उबाक, वमन तथा बारंबार आहारसे नीचेकी ओर झुक जाना आदि।

२. उरोगुहागत—हिक्का, कास, श्वासावरोध, बाँएँ कंधेपर वेदना तथा हृदयके स्पन्दनोंकी वृद्धि आदि।

प्राकृतिक चिह्न—आमाशयमें वायु, द्रव और आहारसे विविध चिह्न।

१. आगेकी ओर—आमाशयपर ठेपन करनेपर ऊपरकी ओर आवाज़की वृद्धि। प्रायः फुफ्फुसान्तराल (Mediastinum) मोटे तौरसे स्थान भ्रष्ट।

२. पिछली ओर—आमाशयकी बाँईं पीठपर सौषिर ध्वनि, श्वासकी आवाज़ और कम्पन ध्वनि, इन सबका अभाव।

संपादित अवतरण—(१) अकस्मात् आक्रमण होनेपर आघात और श्वासावरोध, (२) ऊपर कहे अनुसार नियमित संप्राप्ति।

पार्थक्यप्रद रोग विनिर्णय—वायुभृत फुफ्फुसावरण, महाप्राचीरा पेशीकी स्थान च्युति (Eventration of Diaphragm) कभी-कभी अन्न मार्ग या मुद्रिका द्वारका अवरोध, इनसे पृथकता करनी चाहिये।

चिकित्सा—शस्त्र चिकित्सा।

१२ ई. अन्त्रान्त्र प्रवेश

इण्टससेप्शन Intussusception.

संप्राप्ति—इस विकारमें बहुधा ऊर्ध्व अन्त्र भाग निम्न अन्त्र मार्गमें प्रवेशकर जाता है। इनमें एकको प्रवेशक और दूसरेको ग्राहक कहा जायगा। अन्त्रके प्रवेशक भागको डॉक्टरीमें इण्टससेप्टम (Intussusceptum) और जिसमें अन्त्रका प्रवेश होता है, उस ग्राहक भागको इण्टससिपिन्स (Intussuscipiens) संज्ञा दी है। इस

ग्राहक भागमें प्रवेश करनेवाले, ३. स्तर (Layers) होते हैं। प्रवेशक, नियामक (Returning) और आच्छादक। इनमेंसे प्रवेशक अन्त्र भाग अपने साथ अन्त्रबन्धनी (Mesentery) को लेकर घुसता है। जिससे अन्त्रावरोधके साथ अन्त्रस्थ रक्तवाहिनीका भी अवरोध होजाता है। यह प्रवेशक अन्त्र बाह्य भारके हेतुसे पीड़ित होता है और इसमें अन्य अन्त्रकीटाणुका भी आक्रमण होजाता है, जिससे अन्त्रावरणका प्रदाह होजाता है। परिणाममें ये तीनों स्तर परस्पर चिपक जाते हैं, जिससे रोगीकी मृत्यु होजाती है।

प्रवेश प्रकार—इसके ४ प्रकार प्रतीत होते हैं।

१. शेषान्त्रक—उण्डुक (Ileo-cecal)का—यह अत्यन्त सामान्य है, संदशकपाटिका (Ileocecal valve) सह शेषान्त्रकका बृहदन्त्रमें प्रवेश।

२. लघु अन्त्रके एक भागका दूसरेमें प्रवेश Enteric।

३. बृहदन्त्रके एक भागका दूसरेमें प्रवेश।

४. शेषान्त्रक—बृहदन्त्रका प्रवेश इस प्रकारमें शेषान्त्रक-संदशकपाटिका मेंसे निकल, फिर शेषान्त्रक, संदशकपाटिका और उण्डुक तीनोंका बृहदन्त्रमें प्रवेश।

निदान—इसकी सम्प्राप्ति अन्त्रमें उग्रताकी अतिवृद्धि होने तथा अन्त्रकी दीवारोंकी मांस पेशियोंका समतोलपना दूर होने पर होती है। उग्रताकी उत्पत्ति, कठोरमल, वेदना वर्द्धक, विदाही आहार, वृन्तमय अर्बुद (Polypus) और कृमिके हेतुसे होती है।

अवस्था भेद से २ प्रकार A आशुकारी और B. चिरकारी।

A. आशुकारी अन्त्रान्त्रप्रवेश

लक्षण—रोगी सामान्यतः स्थूल, हृष्टपुष्ट, १ वर्षसे कम आयुवाला, स्वस्थ शिशु, विशेषतः बालक (पुरुष) अकस्मात् पीड़ित होता है। बालक अतिव्याकुल होता है और अकस्मात् शक्तिपात होकर २४ घण्टेमें ही चलाजाता है।

१. उदरपीड़ा—सविराम। अति उदरशूल। बालक पैरोंको ऊपर खेंच लेता है और आक्षेपकालमें रोता है।

२. वमन—आक्रमण कालमें। फिर विराम। क्वचित् मलमय वमन।

३. दस्त—१. प्रवाहण (कौंछना); २. रक्त और आम गिरना, (अन्त्रबंधनीके रक्त संग्रहमेंसे; कुछ दस्तोंके बाद यकृत्पित्तका अभाव,कुछ मल आता है। यदि संदेह हो तो अँगुली डालकर अर्बुद और रक्तकी परीक्षा करनी चाहिये।

प्राकृतिक चिह्न—

१. उदर—प्रथमावस्थामें सामान्य, प्रसारित नहीं भासता। स्पर्श होनेपर प्रायः आक्षेप उपस्थित।

२. अर्बुद—१ इन्च व्यासका, बृहदन्त्रमें लम्बाई अनिश्चित, प्रायः वाम पर्शुकाके किनारेपर। यह विकृति लगभग ७० प्रतिशत रोगियोंको होती है।

३. शारीरिक उत्तापका ह्रास, किन्तु नाड़ीतेज़ तथा दक्षिण कटिपार्श्विक प्रदेशमें एक गड्ढा (Dance's sign)।

पार्थक्यप्रद्रोग विनिर्णय—यह रोग हेनोक के त्रिदोषज रक्त पित्त (Henoch's purpura) के समान भासता है। अतः रक्तपित्तज दाग त्वचापर अन्यत्र है या नहीं, यह देखलेना चाहिये।

आशुकारी बृहदन्त्रप्रदाह (Colitis) में दस्तमें मलकी बास आती है और कोई अर्बुदस्पर्श ग्राह्य नहीं होता, तब इस प्रकारके रोगमें कुछ दस्त होजानेके पश्चात् बासरहित मल निकलने लगते हैं और अर्बुदभी प्रतीत होता है।

साध्यासाध्यता—शक्तिपात होकर मृत्यु। २४ घण्टेमें मृत्यु न होनेपर प्रवेशक और नियामक आँत गलकर रोगमुक्ति होजाती है।

चिकित्सा—शस्त्र चिकित्साका सत्वर आश्रय लेना चाहिये।

चिरकारी अन्त्रान्त्र प्रवेश

इसकी संप्राप्ति प्रौढ़ों और वृद्धोंको होती है। साधारणतः बृहदन्त्रके वृन्तमय अर्बुद या घातक वृद्धि (Growth) से सम्बन्धित। यह सामान्यतः बृहदन्त्र या शेषान्त्रकका प्रवेश प्रकार है।

लक्षण—चिरकारी अन्त्रावरोध, उदरशूल और वमनका अनियमित पुनः-पुनः आक्रमण, रक्तातिसार या मलावरोधसह। अर्बुद बहुधास्पर्शग्राह्य गुदनलिकाकी संकोचनीपेशी शिथिल तथा गुदनलिका विमानसदृश फूली हुई। आक्रमण तीव्र होकर फिर चिरकारी रूपधारण कर लेता है। बेरियम की बस्तिदेकर रेडियोग्राफ परीक्षा करनेपर इसकी प्रतीति।

अंतिम परिणाम—१. आशुकारी अवरोधकी संप्राप्ति; २. विदारण; ३. कभी-कभी फंसा हुआ भाग पृथक् होकर गुदनलिकामें उपस्थित होता है। इसके परिणाममें महीनोंसे वर्ष निकल जाता है। परिणाम विशेषतः अशुभ चिकित्सा शस्त्र-साध्य।

अन्त्रपाश अन्त्रव्यावर्त्तन और अन्त्रान्त्रप्रवेशके निर्णायक लक्षण

लक्षण	अन्त्रपाश	अन्त्रव्यावर्त्तन	अन्त्रान्त्रप्रवेश
आयु	युवावस्था।	४० वर्षसे बड़ी आयुके पुरुष।	बाल्यावस्था।
वेदना	परिनाभिक प्रदेश (Umbilical) से वेदना प्रारम्भ।	अधिवस्ति प्रदेश (Hypogastric) में या पृष्ठ देशमें सहसा मन्द और सविराम वेदनाका प्रारम्भ।	तरंगके समान प्रबल वेदना पुनः-पुनः प्रकाशित होती है।
वमन	सत्वर उपस्थित। पुनः-पुनः प्रचुर परिमाणमें वमन। चौथे या पाँचवें दिन वमनमें मल।	प्रारम्भमें वमन नहीं होता। विलम्ब से उपस्थित। १५ प्रतिशतको वमनमें मल।	अनिश्चित्।
कोष्ठबद्धता	प्रारम्भसे ही पूर्ण कोष्ठबद्धता।	प्रारम्भसे ही कोष्ठबद्धता।	काँछनेसे अन्त्रमेंसे रक्तस्राव।
उदरविस्तार	प्रारम्भमें सामान्य स्फीति। अर्बुदकी प्रतीति नहीं होती।	सत्वर वायु संगृहीत होकर उदरका प्रसारण अर्बुदकी अप्रतीति।	प्रायः उदर प्रसारण नहीं होता। उदरकी दीवार या गुदनलिकामें अर्बुद की प्रतीति।
स्थायित्व	बहुधा पाँचवें दिन मृत्यु।	सामान्य रूपसे ६ दिन।	१ दिनसे अनेक दिनोंतक।

१२ उ. उदर गुहापतन

विसेरोटोसिस-एण्टरोटोसिज़--स्प्लैन्कनोटोसिस-ग्लेनर्डका रोग।

Visceroptosis-Enteroptosis-Splanchnoptosis-Glenard's disease.

उदरगुहाका अवतरण और उदरस्थ अवयवोंकी गतिशीलतावाली स्थिति। इसमें कभी प्रायः अनियमित लक्षण और मानसिक विकृतिभी होती है। इसके २ प्रकार हैं।

(१) दोलित उदरवालोंमें (Pendulous Bellies) गर्भावस्था या जलोदरके पीछे यह स्थिति उपस्थित होती है। इसमें कुछभी लक्षण नहीं होते; मलावरोध नहीं रहता, अनिर्णित अपचन होता है; किन्तु सहायक ओजक्षय (Neurasthenia) नहीं होता। उदरपर पट्टाबाँधने और सामान्य उपचारोंसेही कार्य चलता है।

(२) कुमारीके सदृश उदरवालोंमें—(Verginal type) संप्राप्ति युवावस्थामें, लम्बी छाती और लम्बे उदरवाले पतले व्यक्तियोंको। उरोगुहामें श्वासोच्छ्वास होना, न्यूनरक्त दबाव तथा विशेषतः मंदतनाव आदि लक्षण। अधिकतर स्त्रियोंको; किन्तु कभी-कभी स्पष्ट रूपसे अच्छे शारीरिक गठनवाले पुरुषोंको भी।

उदरकी दीवार और बस्तिगुहाके ऊपरकी मांसपेशियाँ अपने तनावद्वारा सामान्यतः उदरगत दबावका रक्षण करती हैं,जो उदरगुहाको अपनी स्थितिमें रखती हैं। ये मांस पेशियाँ निर्बल होनेपर उदरगत दबावका ह्रास होकर उदरगुहा पतनरूप विकृति होती है।

निदान—यह विकार सामान्यतः २० से ४० वर्षकी आयुमें होता है। पीड़ितोंका अनुपात स्त्रियाँ १० और पुरुष १। कितनेकोंकी देह जन्मजात अयोग्य रचना वाली होती है। चिरकारी उदर्य्योकलाप्रदाह, उदरमें वसावृद्धि और मांस पेशियोंकी शिथिलता आदि कारणभी मानेजाते हैं। प्रसवावस्थामें योग्य सम्हाल न रखनेपर उदरकी मांसपेशियाँ शिथिल होजाती हैं। फिर उदरगुहाका अवतरण होजाता है।

प्राथमिक हेतु—१. महाप्राचीरा पेशीका अस्वाभाविक अवतरण (पूर्णश्वास ग्रहणवाली स्थितिमें; २. पेशीबंधनी (Suspensory Ligaments), ये सामान्यतः उदरगुहाको सहायता नहीं करतीं; किन्तु उनको सम्बन्धवाली स्थितिमें रखती हैं। उदरगुहाका अवतरण होनेपर वे ऊपर खिंचती हैं और व्याकुलता उत्पन्न कराती हैं। ३. वसाका ह्रास कभी कारण होजाता है; किन्तु विशेषतः पतले शरीरवाले आक्रान्त होते हैं। ४. पुरुषोंकी उन्नतावस्था (१५ से २५ वर्षकी आयुके) और स्त्रियोंका आलसी स्वभावभी इसकी संप्राप्ति कराता है।

लक्षण—इसके ३ समूह होते हैं।

१. ओजक्षय और सार्वाङ्गिक निर्बलता—क्लान्ति, पीठ और अन्यत्र-वेदना, केन्द्रीकरणकी हीनतासे आई हुई थकावट।

२. उदरस्थ लक्षण—उदरमें व्याकुलता और भारीपन, तनाव, खोंचेसे

आराम, अफारा और उदरमें वायुभरजाना अरुचि और मलावरोध।

३. रक्तवाहिनियाँ और उनसे सम्बन्धवाली नाड़ियाँ—उत्साहका नाश, मुँहपर तेज़ी, हृदयमें धड़कन, उदरमें धुकधुकी, विशेषतः अवस्थाके परिवर्त्तन होनेपर। श्वासावरोध भी।

उदरके प्राकृतिक लक्षण—पतली दीवार। मांसपेशियोंकी शिथिलता। गुदनलिकाका सामान्यप्रसारण। स्पन्दनलक्षण देनेयोग्य। भोजनके ४ घण्टे बादभी आमाशयमें छलकनकी प्रतीति। विभिन्न उदरगुहाकी अस्वाभाविक गतिशीलता और मंदस्थिति।

रोगी युवा या मध्य आयुकी स्त्री होती है। विशेषतः निर्बलता वृद्धिका इतिहास मिलता है। रक्ताभिसरण हाथ-पैरोंमें अति मंद। देहके कितनेक भागोंमें आमवातिक पीड़ाभी।

विशेष अवयव—

१ आमाशय अवतरण—कभी।

२. बृहदन्त्रपतन—बिना लक्षण प्रायः उपस्थित। विशेषतः अनुप्रस्थभागका, कितनेकोंमें याकृत्कोणका पतन। प्लैहिक कोणका कमपतन। अवरोही अन्त्रमें अतिरिक्त कोनभी होजाते हैं।

३. वृक्कावतरण—यह सामान्यतः उपस्थित।

४. महाप्राचीरा पेशीका पतन—पूर्णश्वास ग्रहणकी स्थितिमें। संचलन मंद।

५. यकृतावतरण—यह उतना सामान्य नहीं। यकृत् आवर्त्तनका प्रयत्न करता है, तब आगेका निम्नहिस्सा पिछली ओर होजाता है। परिणाममें पित्ताशय ४५° के कोणमें खड़ा होजाता है। फिर अवतरित ग्रहणीका पित्तदेनेके मार्गमें प्रतिबंध होता है।

६. अन्य अवयव—(१) मुद्रिकाद्वार मुक्तरूपसे संचलनशील होनेसे सरलतासे अवतरित। ग्रहणीका दूसरा हिस्सा कम चलनशील; किन्तु कुछ प्रसारणके हेतुसे अवतरित; (२) अग्न्याशय और अन्त्रबन्धनीके मूलका १-२ इञ्च पतन; (३) बस्तिगुहाका पतन अति सामान्यतः; (४) प्लीहावतरण कभी अच्छीतरह स्पर्शग्राह्य होनेतक, किन्तु कभी-कभी अत्यन्त; (५) हृदयभी नीचा आजाता है।

उदरगुहापतन चिकित्सा—रोगोत्पत्ति रोधक चिकित्सा शौच नियमित न होता हो, तो उस आदतको ठीक करें। प्रसूताको १०-१२ दिन शय्यापर आराम देवें। निर्बल बालकोंको छाती और उदरकी मांसपेशियोंकी दृढ़ताके लिये आवश्यक व्यायाम करावें।

रोगशामक चिकित्सा—रोगीको १५ दिन शय्यापर पूर्ण आराम करावें। पलंगके पाये पैरोंकी ओरके ६ से ९ इञ्च तक ऊँचे रखावें। उदरके अवयव ऊपरकी ओर हों, उसतरह शक्ति अनुसार धीरे-धीरे हाथसे मालिश करावें।

वातनाड़ियोंको शान्तकरें और निद्रालानेमें सहायक हो, वैसी शामक औषधि देवें। प्रसूताके लिये सूतशेखर + प्रवालपंचामृत या मधुमालिनी दें। दीर्घकालसे

मिश्रित मनुष्योंको सुवर्णयुक्त लक्ष्मीविलास+मधुमालिनी अथवा सुवर्ण वसंत + प्रवालपिष्टी उपकारक हैं। अतिकृश शरीरवालोंको मधुमालिनी अधिक हितकर है। आमाशयमें भारीपन, अफारा आदि रहता हो, तो उसे पहले दूर करें। उसपर अग्नितुण्डी, गंधकवटी और शंखवटी आदि हितावह हैं। अम्लविपाक वाला भोजन बंद करें। मैदा, शक्कर, घी और द्विदल धान्य कम करें। लघुभोजन पचन हो, उतने परिमाणमें देवें। धूम्रपान, शराब आदि व्यसन हो, तो छुड़ावें। मलावरोध रहताहो, तो हरीतकी, त्रिफला या मृदु विरेचन देवें।

ओजक्षय हो, तो जवाहर मोहरा, खमीरेगावजवाँ वा च्यवनप्राशके साथ देते रहें। ओजक्षयके रोगीको दोपहरको भोजनके बाद १ घण्टे तक विश्रान्ति देनी चाहिये। एवं दाहिनी करवट सुलाना चाहिये।

१२ ऊ. उपशेषान्त्रक प्रदाह

(डिवर्टीक्युलाइटिज़—(Diverticulitis)

यह बृहदन्त्र और गुदनलिकाके संप्राप्त कृत्रिमस्थालीपुटका प्रदाह है। मध्यआयुमें या वृद्धावस्थामें। स्त्रियोंकी अपेक्षा विशेषतर पुरुषोंको।

शारीरिक विकृति—स्थली अधिकमें अधिक राजमाषके दाने जितनी बड़ी। मुँह प्रायः सूक्ष्म। सामान्यतः अनेक होते हैं। यह अधिक अवरोही अन्त्रमें और विशेषतः कुण्डलिका भागमें। क्वचित् उण्डुक आदि अन्य भागोंमें भी। स्थाली पुट छोटा होनेपर पेशी वृत्तिसह सब वृत्ति प्रभावित। रोगवृद्धि होनेपर पेशीवृत्तिका नाश और सामान्यतः श्लैष्मिक कलाका शोथ। इस स्थलिमें मल भरजाता है। फिर नीलाभ कृष्ण प्रतीत होती है।

चिरकारी मलावरोध विशेषतम संप्राप्तिकर कारण है; किन्तु सर्वदा नहीं, कभी-कभी इतर कारण भी। ये स्थाली पुट बार-बार उपस्थित। लक्षण नहीं होते। रेडियोग्राफ़से प्रतीति। स्थालीपुटका दाह-शोथ होनेपर लक्षण उपस्थित।

लक्षण—अति भिन्न-भिन्न। मलावरोध बढ़ता जाता है। शौचमें रक्त अति क्वचित् स्थलीमें मलद्रव्य भरजानेपर यह बढ़ने लगती है। फिर विविध गौण उभार उत्पन्नकरने तथा झुकनेके लिये प्रयत्न करती हैं। उस स्थितिपर लक्षणोंका आधार है। गौण उभार विविध अवस्थायुक्त दाह-शोथका परिणाम है। मुख्य परिणाम निम्न है।

आशुकारी स्थालीपुटप्रदाह और प्रदाहज पीड़ा लक्षण

व्रणोत्पत्ति होने और फूटनेके हेतुसे। वेदना, पीडना क्षमता और तनाव, ये निम्न वाम चतुर्थ भागमें। अर्बुद नहीं होता या कभी होता है। कभी-कभी बस्तिके लक्षण। लक्षण उपान्त्रप्रदाह जैसे; किन्तु वामभागमें, वे आशुकारी, उपाशुकारी, विरामसह और चिरकारीके सदृश। स्थानिक विद्रधिकी रचनाका संभव ज्वर और रक्तमें श्वेताणु वृद्धि। स्त्रियोंमें विशेषतः बस्तिगुहाके रोगके लक्षणोंका संकेत करता है :

विदारण संभवित है, किन्तु क्वचित्। बहुधा अन्त्र बन्धनोंसे संलग्न होजाती है। आक्रमण कालमें आशुकारी लक्षण अकस्मात् उत्पन्न होते हैं और फिर बेहोशी आदेते हैं। फिर अनुगामी विकृतिभी उपस्थित होती है।

२. संलग्नता होनेपर लक्षण—१. विविध प्रकारकी पीड़ा और मलावरोध; २. नाड़ीव्रण (संलग्न होकर विदारण होनेपर, इसकी शस्त्र चिकित्सा सफल है; ३. आशुकारी अन्त्रावरोध, मुड़जानेपर बलखाजानेपर; ४. स्थानिक विद्रधि।

३. स्थलिके चारों ओर सौत्रिक तन्तुओंका निर्माण—(चिरकारी स्थानीपुट प्रदाह)-दीवारमेंसे विषके टपकने या कीटाणुओंके निकलनेसे होता है। ये सौत्रिक-तन्तु एक इन्च या इससेभी अधिक मोटे होजाते हैं। दृढ़ अर्बुद उत्पन्न होता है, विशेषतः कर्करफोटके समान सौत्रिक तन्तुओंके तनावसे चिरकारी अवरोध। चिरकारी अस्वाभाविक, रसार्बुदमय उदर्योकलाप्रदाह (Chronic Proliferative Peritonitis) की प्रगति।

अर्बुद १० प्रतिशत रोगियोंमें। अर्बुदके भीतर कर्करफोटकी उत्पत्ति; किन्तु बहुधा अस्वाभाविक संगठन नहीं।

रोगनिर्णय—संभवतः मध्य आयुवाले, जो प्रदाहज पीड़ा भोगते हैं, उन सब रोगियोंको इस रोगकी संप्राप्ति होती है। रोगियोंमें बृहदन्त्रके कर्करफोट और बस्ति-अन्त्रके नाड़ीव्रणकी सूचना मिलती है; किन्तु देहशोष (Wasting) और निस्तेजताका अभाव तथा उदरवाम निम्न चतुर्थभागमें पीड़ा, दीर्घकालसे रहना ज्वर रहना, और रक्तमें श्वेताणुवृद्धि, इन लक्षणोंसे कर्करफोटसे यह पृथक् होजाता है।

चिकित्सा—आशुकारी प्रदाहावस्थामें शय्यापर पूर्ण आराम करावें। बृहदन्त्रको रिक्त रखें। इसलिये रात्रिको ४-६ औंस गुनगुने तिल तैल या जैतुनतैलकी बस्ति देवें। सुबह नमक जलकी बस्ति। अन्त्रावरोध हुआ हो या उपद्रव उत्पन्न हुआ हो या व्रणका विदारण हो, तो शस्त्रचिकित्साका आश्रयलें। भोजन हलका देवें। ज्वरावस्था हो, तो दूध, मोसम्मीका रस या अनुकूल फलोंपर रखना हितकर है। शृंगभस्म+वंगभस्म या महायोगराज गूगल (रास्नादिक्वाथसह) का सेवन करावें, ज्वर अधिक हो, तो त्रिभुवन कीर्ति या सूतराज देना चाहिये।

१३. कामला रोग

यरकान अस्फर--जौण्डिस--इक्टेरस—Jaundice Icterus

रोग परिचय—जब यकृत्‌मेंसे निकलनेवाली पित्तवाहिनीके मार्गमें रुकावट होने अथवा यकृत् और पित्ताशयमेंसे निकलनेवाली पित्तवाहिनियोंके संगम स्थानपर रोध होनेसे पित्त अन्त्रमें जानेके बदले रक्तमें मिल जाता है, तब कामलारोगकी सम्प्राप्ति हो जाती है। मुख्य पित्तवाहिनीमें अवरोध होनेसे कामला होता है, तो सारा शरीर (त्वचा, श्लैष्मिक-कला और तन्तु) १०-१२ घण्टेमें ही या १ दिनके भीतर

पीला होजाता है। साधारणी पित्तनलिकामें अवरोध होनेपर उतनी शीघ्रतासे पीलापन नहीं आता। एवं अधिक पीलापनभी नहीं आता।

निदान—जो पाण्डु रोगी खट्टे, चरपरे आदि पित्तप्रकोपक आहार-विहारका अधिक सेवन करता है, उसका पित्त रक्त और मांसको जलाकर कामला रोगकी उत्पत्ति करा देता है, किन्तु कितनेक रोगियोंको पाण्डु रोग न होनेपर भी पित्तप्रकोप होनेसे कामला होजाता है। इस हेतुसे भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि—

यो ह्यामयांते सहसान्नमम्लमद्यादपथ्यानि च तस्य पित्तम्।
करोति पाण्डुं वदनं विशेषात्तन्द्राबलत्वं प्रथमोदिताश्च॥

जो मनुष्य पाण्डु या इतर रोगके अन्तमें एक दम (शरीर बल या जठराग्नि बल-निर्बल होनेपर भी) अपथ्य खट्टे पदार्थ खाने लग जाते हैं, उसका पित्त अति प्रकुपित होकर मुँहको पाण्डु (पीला-सा) बना देता है। एवं तन्द्रा, निर्बलता, सब पदार्थ पीले दीखना, पीली नसें चमकना तथा नेत्र, मल-मूत्र, नख, मुख आदि पीले हो जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

इस तरह श्री वाग्भट्टाचार्यजी अष्टाङ्ग हृदयमें लिखते हैं कि—

"भवेत्पित्तोल्वणस्यासौ पाण्डुरोगादृतेऽपि च।"

पाण्डुरोग न होनेपर भी पित्तप्रकोप होनेसे इस कामला रोगकी सम्प्राप्ति होजाती है।

महर्षि चरकाचार्यने कामला रोगको २ प्रकारका माना है—कोष्ठाश्रया और शाखाश्रया। कोष्ठश्रया अर्थात् पचनेन्द्रिय संस्थानमें विकृति करनेवाला, शाखाश्रया अर्थात् रक्तादिधातु और त्वचामें विकृति करने वाला।

कोष्ठाश्रया कामलाके लक्षण—पहले नेत्रकी श्लैष्मिक-कलामें पीलापन, फिर त्वचा, नेत्र और मुख-मण्डलमें पीलापन। मल-मूत्र लालपीले। होना देहका वर्ण बरसाती मेंडकके सदृश भासना। इन्द्रियोंकी शक्तिका नाश होना, दाह, अपचन, दुर्बलता, हाथ-पैर टूटना और अरुचिसे कृशता आजाना।

यह कामला कोष्ट और शाखाओंमें आश्रित होकर अति विकृत पित्तसे उत्पन्न होता है।

आधुनिक संप्राप्ति शास्त्रानुसार जब कुछ पित्त अन्त्रमें और शेष रक्तमें जाता है, तब मलमें पीलापन आता है। सब पित्त रक्तमें चलेजानेपर 'मल तिलपिष्ठ निभः' होजाता है।

शाखाश्रया कामला लक्षण—कामलाका जो रोगी तिलके कल्कके सदृश सफेद रंगका मल त्याग करता है, उसकी देहमें कफद्वारा मार्गावरोध समझना चाहिये। रूक्ष, शीतल, गुरु तथा मधुर द्रव्योंका सेवन; अति व्यायाम तथा मल-मूत्र आदि वेगोंका अवरोध आदि कारणोंसे कफ मिश्रित वायु पित्तको अपने स्थान या आशयसे बाहर फेंकती है, तब इस प्रकारके कामलाकी संप्राप्ति होती है। नेत्र, मूत्र और त्वचा हल्दीके सदृश पीले तथा मल सफेद होता है। उदरमें गड़गड़ाहट और मलावरोध होता है।

हृदयमें भारीपन रहता है। पित्त रक्त आदि धातु और त्वचाके आश्रित होजानेके कारण कोष्ठमें प्रवेश कम होजाता है। जिससे दुर्बलता, अग्निमांद्य, पार्श्वपीड़ा, हिक्का, श्वास, अरुचि और ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

कुम्भकामला लक्षण— कामला रोगकी उपेक्षा करनेपर रोग जीर्ण होनेसे जब उदर कुम्भके सदृश बड़ा होजाता है। हाथ-पैर, गाल या सारे शरीरपर शोथ आजाता है तथा शरीर रूक्ष, हाथ-पैरकी चमड़ी फटना, दाह, वमन, अरुचि, उबाक, हाथ-पैर टूटना, काले-पीले रंगके अतिसार होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं; तब कुम्भ-कामला कहलाता है। डॉक्टरीमें इसे यकृत्‌का अप्रतिरोधी रक्तसंग्रह (Passive Congestion of the Liver) संज्ञा दी है।

जब इस कुम्भकामलाके लक्षणोंके साथ ज्वर, अंग टूटना, चक्कर, थकान, तन्द्रा, बलक्षय और थोड़ेसे श्रमसे श्वास भरजाना आदि लक्षण बढ़ जायँ, तब वह भगवान् धन्वन्तरिजीके मतसे यह लाघरक और अलसक कहलाता है।

कामलाके असाध्य लक्षण—पतले काले-पीले दस्त, बार-बार थोड़ा-थोड़ा पेशाब होना, शोथ, भयङ्कर वेदना, दाह, अरुचि, तृषा, आनाह, तन्द्रा, मोह, जठराग्नि नष्ट होजाना, नेत्र और मुँह लाल होजाना. क्वचित् वमन और मल-मूत्रका वर्णभी लाल होजाना तथा संज्ञानाश इत्यादि लक्षण होनेपर कामलारोगी नहीं बच सकता। इन लक्षणोंमेंसे अधिक यकृत्‌के आशुकारी पित शोषमें मिलते हैं।

कुम्भकामलाके असाध्य लक्षण—वमन, अरुचि, उबाक, ज्वर, ग्लानि, श्वास, कास, बार-बार पतले फटे हुए दस्त लगना इत्यादि लक्षणोंसे पीड़ित होनेपर कुम्भकामला रोगी चला जाता है।

कामलाका डॉक्टरी निदान-लक्षण

पित्त निःसरणरोध अथवा पित्तस्रावमें जब प्रतिबन्ध होता है, तब पित्त (अन्त्रमें-न जाकर) रक्तमें प्रवेशकर जाता है, वह कामला कहलाता है। यकृत्‌के दक्षिण पिण्ड और वामपिण्डके पित्तस्रोतोंके संयोगसे उत्पन्न होने वाली याकृती पित्तनलिका (Hepatic duct or bile duct) अथवा साधारणी पित्तनलिका (Common duct), इन दोमेंसे एक या दोनोंके मार्गका निरोध होनेपर कामला रोगकी उत्पत्ति होती है। जब पित्त यकृत्‌में रही हुई रसायनियों (Lymphatics) द्वारा वाम रसकुल्या (Thoracic duct) में होकर फिर वाम गलमूलिका शिरा (Left innominate vein) के रक्तमें मिल जाता है, तब देहका वर्ण पीला होने लगता है।

यदि इन दोनों पित्तनलिकाओंका कृत्रिम रीतिसे अवरोध किया जाय, तोभी कामला हो जाता है। परन्तु इन दोनों नलियोंमें अवरोध होनेपर यदि रसकुल्याको ही स्नायु-बन्धनिका (Ligature) से अवरुद्धकर दी जाय, तो पित्त शिरामें प्रवेश नहीं कर सकेगा और कामलाभी नहीं हो सकेगा। इसतरह यकृत्‌मेंसे निकलने वाली

पित्तनलिका मुक्त हो, और पित्ताशयमेंसे निकलनेवाली पित्तकोष नलिका (Cystic duct) में प्रतिबन्ध आ जाय, तोभी कामला नहीं होता। याकृती पित्तनलिका या साधारणी पित्तनलिकाका अवरोध होनेपर ही कामला होता है।

सामान्य: सम्प्राप्ति—रक्तमें पित्तरूपी मल मिलजानेसे मस्तिष्क और शारीरिक धातुओंपर दुष्परिणाम होता है। एवं पित्त आँतोंमें यथोचित न आनेसे अन्नपचन विशेषतः वसाका पचन और असका सात्म्य नहीं होता। पित्तके अभाव या न्यूनतासे अन्त्रकी पुरःसरण क्रियामें शिथिलता आती है। अन्त्रकी प्रेरणाशक्ति मन्द होजाती है इस हेतुसे आन्त्रिक कीटाणुओंको सुविधा मिल जाती है; और वे फेनीभवन और सड़न क्रिया (Decomposition) करने लग जाते हैं। फिर उत्पन्न विष रक्तमें लीन होजाता है। इस तरह पित्त और आँतमें उत्पन्न विष, दोनों रक्तमें जितने अंशमें मिलते हैं; उतने अंशमें कामलाकी सम्प्राप्ति होती है।

गुप्त कामला—रक्त रसमें पित्तरंजकका अवरोध होनेसे त्वचाके रंगमें अपूर्णता होती है और वह मूत्रमें भी नहीं जाता। यह वानडेन बर्गकी प्रतिक्रियासे विदित होता है। (१) यह यकृद्दाली और यकृत्के कितनेक नूतन ग्रन्थियोंमें होता है। इनमें सत्वर प्रत्यक्ष परिणाम आता है। (२) घातक पाण्डुमें प्रत्यक्ष अथवा विलम्बसे प्रत्यक्ष परिणाम। (३) नये जन्मे हुए शिशुमें सर्वदा।

कामलाके सामान्य लक्षण

परीक्षा द्वारा विदित—अ. रक्तमें पित्तकी उपस्थिति; आ. अन्त्रमें पित्तका अभाव; इ. पैत्तिक विष प्रकोप, क्रियामें अव्यवस्था होनेसे; ई. कारणानुरूप स्थिति।

पीलापन—मध्यस्थ नाड़ीमण्डल छोड़कर शेष सब तन्तु प्रभावित। सबसे पहले नेत्रकी श्लैष्मिक-कला फिर नाखून, मुख, त्वचा, स्वेद, मूत्र आदि सब पीले होजाते हैं। (मूत्रमेंसे पित्तका अभाव होनेके पश्चात् प्रायः एक या अधिक सप्ताह तक यत्नशील) प्रायः रात्रिको प्रतीति। वर्ण मन्द, पीला, चिरकारी प्रकारमें हरा-पीला।

मूत्र और अन्यस्रावमें पित्तरंजक द्रव्य—मूत्र हरी, आभावाला, सामान्यतः शुभ्रग्रथिन, पित्तरंजित, स्वच्छ पारदर्शक निक्षेपसे दूध (स्तन्य), थूक और कफ वर्ण रहित (यदि निमोनिया न हो, तो)।

मलावरोध—पित्तस्राव हो, तो वह अन्त्रकी परिचालन क्रिया बढ़ाता है। अतिसार अधिक फेनीभवन कराता है। कचित् कोष्ठबद्धता और कचित् अतिसार। मलमें पित्त न होनेसे अथवा वसा अधिक होनेसे मलका रंग तिल पिष्ठ निभ (Clay coloured) अर्थात् मैला सफेद। मलमें फेनीभवन और (वसाम्ल अधिक होनेपर) पूतीभवन होनेपर अति दुर्गन्ध आती है। (अवरोधक कामलामें स्पष्ट लक्षण) कभी-कभी रक्तमें पित्त मिश्रित होनेसे रक्तवाहिनियाँ फूटकर स्थान-स्थानपर रक्तस्राव होता है। फिर मलमूत्र रक्त मिश्रित होजाते हैं। इनके अतिरिक्त अरुचि अंकुरवाली जिह्वा और आमाशयमें व्याकुलता (कचित् अभाव) उपस्थित होती है।

कण्डू—जीर्णावस्थामें प्रायः दुःखदायी।

रक्तस्राव—घातक जीर्णरोगमें रक्तस्रावीय प्रकृति बन जाती है। उदा० शस्त्र चिकित्साकालमें कैशिकाओंके प्रसारणमें तथा त्रिदोषज रक्तपित्त (पर्पूरा) में रक्तजमावका समय बढ़ जाता है।

त्वचाकी अन्य स्थिति—स्वेद आना, शीतपित्तके धब्बे होना तथा फोड़े होना आदि।

रोगकी तरुणावस्थामें चर्म उज्ज्वल पीले रंगका तथा जीर्णावस्थामें हरा-पीला।

वातनाड़ी संस्थान—अवसादक और उद्दीपनावस्था प्रतीत होती है। उत्साह क्षय (Depresion of spirit), उदासीनता, आलस्य, व्याकुलता, बलक्षय, दुर्बलता, हाथ-पैर टूटना और मैथुनमें अरुचि आदि। रोग प्रबल बननेपर मोह, तन्द्रा, चक्कर, मूर्च्छा, प्रलाप या चिन्तातुरावस्था (Delirium or melancholia) और तीव्र आक्षेप (Convulsions)।

मन्दनाड़ी—केवल प्रथमावस्थामें। अधिक समय नहीं। कभी अभाव। हृदय, फुफ्फुस और मस्तिष्कको दूषित रक्त मिलता रहता है। इस हेतुसे नाड़ी और श्वासोच्छ्वासकी गतिमें शिथिलता आजाती है।

रक्त—रक्तजल पित्तरंजित।

पीत दृष्टि—(Xanthopsia) क्वचित्।

पीतनेत्रच्छद—(Xanthelasma) क्वचित् पलकपर सामान्यतः मुलायम पीताभ दाग। अतिक्वचित् त्वचामें पीले विस्तृत दाग (Xanthoma)।

इनके अतिरिक्त भोजनका विपाक न होना, उबाक, वमन, अरुचि, अफारा आदि होते हैं। रक्तमें पित्त मिश्रित होजानेसे पाचक रस चाहिये वैसा तैयार नहीं हो सकता। आँतोंमें पित्तस्राव न होनेसे वसा पचन और आहार रसकी यथा समय परिसरण क्रिया नहीं होती। एवं जिह्वा मलयुक्त, मुँहमें कड़वा स्वाद, निःश्वासमें दुर्गन्ध, गात्रमें उष्णता तृषा वृद्धि आदि लक्षणभी प्रकाशित।

लक्ष्य देने योग्य लक्षण—

१. यकृत्, पित्ताशय और प्लीहा—कामलाके कारण अनुसार बढ़े हुए।

२. मलमें चर्बी—विशेषतः वसाम्ल, यदि अग्न्याशय स्राव बिल्कुल बन्द न हो तो।

३. रक्ताणु (Erythrocytes)—ये कामलामें रक्त विनाश होनेमें अस्वाभाविक प्रतिरोधक होते हैं (पित्तरहित मूत्रयुक्त वंशागत कामलाके अतिरिक्त प्रकारोंमें) इसके प्रभावका नाप हाइपोटॉनिकसॉल्ट सोल्युशनसे होता है। सम्भवतः पित्तलवणके लिये क्षतिपूरक जो प्रबलरक्त विनाशक है।

४. पित्तलवण—प्रथमावस्थामें रक्तके भीतर उपस्थित। फिर नाड़ी मन्द।

कामला प्रकार

डॉक्टरीमें इस कामला रोगके अनेक प्रकार कहे हैं। इनमेंसे अत्र निम्न प्रकार दर्शाये हैं।

१. अवरोधात्मक कामला—(Obstrutceive Jaundice).

२. विषज और संक्रामक कामला—Toxic and Infactive Jaundice.

३. रक्तविनाशक कामला—Haemolytic Jaundice.

४. जनपद व्यापी रक्तस्रावी कामला—Epidemic Spirochaetal Jaundice.

५. बाल कामला—Icterus Neonatorum.

६. मूत्रमें पित्तभावसह कामला—Achouluric Jaundice.

७. कुम्भकामला—Passive congestion of the Liver.

इनके अतिरिक्त यकृत्का आशुकारी पीत शोष (Acute yellow atrophy,) यकृत्प्रदाह (Hepatitis) कर्कस्फोट (Cancer) आदिमें भी कामला लक्षण उपस्थित होता है। इनका विचार आगे इसी प्रकरणमें किया जायगा।

(१) अवरोधात्मक कामला

ऑब्स्ट्रक्टिव जौण्डिस—Obstructive Jaundice.

निदान—नलिकाके अनुप्रस्थ विभाग, दीवार या साधारणी पित्तनलिका अथवा याकृती पित्त नलिकामें अवरोध होनेपर कामला उपस्थित होता है। अवरोधक हेतु निम्नानुसार।

१. नलिकामें शल्य—पित्ताश्मरी।

२. पित्तनलिकामें अर्बुद।

३. पित्तनलिकाके भीतरका मार्ग आकुंचित होना—(Stenosis of the ducts) यह जन्मजात और संप्राप्त, इन दो प्रकारका है। पित्ताशयके व्रण और नलिकाका मुद्रिकाकार कर्कस्फोट, इन दो हेतुओंसे अवरोध होता है।

४. पित्तनलिकापर बाहरसे दबाव—विशेषतः (१) यकृत्, अग्न्याशय और आमाशयके अर्बुद, क्वचित् वृक्कार्बुद (२) यकृत्के भीतर सीतामें ग्रन्थियाँ होजाना।

५. पित्तनलिकाकी श्लैष्मिक-कलाका प्रादाहिक शोथ—यह संभवतः कभी पूर्ण अवरोध नहीं करता।

६ यकृद्दाली और यकृत्के स्थानिक रोग—मन्द कामला अस्थिर।

यदि पित्तनलिकाकी श्लैष्मिक-कलाका प्रादाहिक शोथ (उपर्युक्त नं० ५) है, तो उसे प्रसेकज कामला और सामान्य कामला (Catarrhal Jaundice, Icterus Simplex.) कहते हैं। यह प्रकार कभी-कभी नीरोगी मनुष्योंको केवल आहार-विहारका

सामान्य परिवर्त्तन, अपरिमित आहार, अधिक पेयका सेवन, अकस्मात् शीत लगजाना आदि हेतुओंसे भी उत्पन्न होजाता है और २-३ सप्ताह रहकर शमन होजाता है।

इस प्रसेकज प्रकारमें स्थानिक वेदना नहीं होती। किसी रोगविष या अन्तर विकृतिसे ग्रहणीका प्रदाह हो जाय, तो उसका असर पित्तनलिकापर होजाता है। आमाशय और ग्रहणीके प्रदाहके साथ इस रोगका बहुधा साहचर्य्य है। अनेकबार पित्त-प्रणालिकाओंकी श्लैष्मिक-कलामें प्रदाह होनेसे पित्त निर्गमनका रोध होकर थोड़े ही समयमें तीव्र कामला रोगकी सम्प्राप्ति होजाती है। इसमें बहुधा कण्डू उपस्थित होती है।

कभी-कभी ४-६ वर्षकी आयुवाले बालकोंको कामलाकी सम्प्राप्ति पित्तनलिका और ग्रहणीकी श्लैष्मिक-कलाके प्रदाहवश होती है। फिर त्वचा, अक्षि आवरण आदि पीले, सारी देहपर खुजली, मल दुर्गन्ध रहित और मलिन श्वेत वर्णका, मूत्रका रंग अति पीला, मूत्रसे भीगे हुए वस्त्रको सुखानेपर हल्दीके सदृश पीला दाग, जीभ पीले रंगकी, कांटेदार, मैल लगी हुई, शिरमें वेदना, वमन और अपचन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। नाड़ीकी गति मन्द और शारीरिक उत्ताप कम होजाता है।

पूर्वरूप—कामला होनेके कुछ दिन पहले आमाशय और ग्रहणीके दाह-शोथके लक्षण—अपचन, अफारा, उदरपीड़ा, उबाक, वमन, कोष्ठबद्धता और कभी-कभी पतले दस्त होजाना आदि।

लक्षण—अपचन आदि होनेके पश्चात् कामलाके लक्षण—सबके पहले मूत्रमें पित्त जाना, फिर त्वचा आदिमें पीलापन, मंद ज्वर, तिलपिष्टनिभ मल, मंदनाड़ी, बलक्षय और तंद्रा आदि। मृदु अवस्था रही, तो सप्ताहके पश्चात् रोग बल घटने लगता है। मध्यम अवस्थामें २ से ६ सप्ताह और रोग अधिक बलवान होनेपर ३-४ मासतक कायम रहता है।

पित्ताशयमें पीड़ा होती हो, तो पित्ताश्मरीजन्य कामला होनेकी सम्भावना है। इस तरह यकृद्वृद्धि है और दो माससे अधिक कालतक कामला रहजाता है, तो पित्ताश्मरी, कर्कस्फोट या यकृद्दाल्युदरका संशय होता है।

आशुकारी यकृत् शोषज कामला और पित्तनलिका प्रदाहज कामला, दोनोंके लक्षण अधिकांशमें समान दीखते हैं; परंतु यकृत् शोषज असाध्य कामलामें बिल्कुल इतने ही लक्षण क्वचित ही होते हैं। यकृत्में पीड़ा आदि लक्षण कुछ न-कुछ अधिक मिल जाते हैं।

सम्प्राप्ति—१. पित्तरञ्जक साधारण रीतिसे पित्तकैशिकाओं तथा नलिकाओंमेंसे निकलता रहता है; जब उसका अवरोध होता है, तब वह रक्तमें प्रवेश करता है। किन्तु पित्तारुण पित्तकोषोंमेंसे निकलता रहता है।

२. पित्तरंजक विशेषतः पित्तकैशिकाओंद्वारा शोषित होकर रक्तमें पहुँचता है,

कितनीक कैशिकाएँ प्रसारित होकर लसीका वाहिनियोंमें विदारित होजाती है, फिर पिच्छ मुख्यरसकुल्या (Thoresic duct) द्वारा रक्तमें पहुँचता है।

पूर्ण अवरोध होनेपर वानडेनबर्घ की प्रतिक्रिया द्वारा प्रत्यक्ष निर्णय होता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना

मूत्रमें पित्तरंजक अदृश्य न हो, तबतक रोगीको शय्यापर आराम कराना चाहिये। प्रतिदिन सुबह मेगसल्फ १-२ ड्राम गुनगुने जलमें मिलाकर देते रहें। अधिक मलावरोध होनेपर बस्ति भी दें। यदि अन्त्र निर्बल है तो ग्लिसरीनकी पिचकारी लगाकर मलशुद्धि करावें। पित्तनलिका प्रदाहको दूर करनेके लिये सोडा, पापड़खार, अपामार्ग-क्षार आदि (नींबू या संतरेके रसमें) देना चाहिये। (डॉक्टरीमें सोडा सेलीसिलेट और सोडाबाई कार्बको संतरेके शर्बतके साथ देते हैं।) क्षार प्रयोगकरने वाले कितनेही चिकित्सक भोजनमें केवल मात्र दहीभात देते हैं। एवं कितनेक, जो सोंठ आदि उष्ण औषध प्रयोग करते हैं, वे दूध पर रखते हैं।

भोजनमें वसा (घी-तैल) कम-से-कम देना चाहिये। कारण वसाके पचनमें यकृत् पित्तकी आवश्यकता रहती है और पित्त अन्त्रमें नहीं आता।

(२) विषज और संक्रामक कामला

(Toxic and infective Jaundice.

निदान—यकृत्प्रदाह उत्पादक प्रभाव।

१. आशुकारी और जनपद व्यापी संक्रामक—यकृत्प्रदाह—इसका विचार पृथक् संक्रामक प्रसेकी कामला (आशुकारी संक्रामक यकृत्प्रदाह) में किया जायगा।

२. रासायनिक विष—(अ) सेन्द्रिय-क्लोरोफार्म, आर्सेनोबेन्जोल + आदि। (आ) फॉस्फोरस, सोमल, सुवर्ण, पारद, ताम्र, सुरमा आदि।

३. उद्भिद् कीटाणुओंका संक्रमण—पूय, शोषित स्थानिक विष तथा फुफ्फुसप्रदाह और मोतीझरा आदिके कीटाणु।

४. प्राणिज कीटाणुओंका संक्रमण—स्पाइरोकेटल कामला (लेप्टोस्पिरा नामक कीटाणुओंसे इसका विचार पृथक् बीजके रोगमें किया है), फिरंग, पीतज्वर, पुनरावर्त्तक ज्वर, विषम ज्वर आदिके कीटाणुओंका संक्रमण।

५. सेन्द्रियविष प्रकोप—(Toxaemias)—उदा॰ गर्भावस्थामें।

लक्षण—कारणानुरूप। शारीरिक लक्षण प्रायः उत्पन्न गम्भीर स्थितिके अनुरूप।

+ सोमल खनिजद्रव्य होनेसे निरिन्द्रिय है; किन्तु आयुर्वेदने जिस तरह अनेक धातु-उपधातुओं को सेन्द्रिय बनाली है, उसतरह डॉक्टरी में भी सोमलको सेन्द्रिय बनालिया है। सेन्द्रिय सोमलकी कृतियोंमें-मियोआर्सफेन मीन (नियोसलवर सन),एेसटर्सोल आदि अनेक है।

संप्राप्ति — विषज और संक्रामक कामला समूहके सब प्रकारोंमें यकृत्प्रदाह उपस्थित होता है, इस हेतुसे बहुकोणमय पित्तकोषाणुओंकी रचनामें परिवर्त्तन होजाता है; जिससे पित्तारुणको रक्तमेंसे पित्तकैशिकाओंमें जानेमें प्रतिबन्ध होजाता है।

१. सब अवस्थाओंमें पित्ताशयके कोषाणुओंके भीतर परिवर्त्तन प्रतीत होता है; परन्तु सारभाग सब प्रकारोंमें अभिन्न होता है।

२. पित्तनलिकाप्रदाह (Cholangitis) का प्राय: अभाव होता है साधारणी पित्तनलिकाकी श्लैष्मिक-कलामें प्रदाहजन्यशोथ आजाता है। उदा० प्रसेकज अवरोधक कामला (Catarrhal Obstructive Jaundice) कभी-कभी प्रसारित नलिकामें श्लेष्मा मिलजाता है, जो ग्रहणीके प्रदाहसे उत्पन्न हुआ है। यह पित्तकैशिकाओंको भी पीड़ित करता है। यह प्रसेकी कामलाकी सम्प्राप्तिका नूतन निर्णय है। जब पित्तनलिकाप्रदाह हो, तब गौणरूपसे पित्ताशयप्रदाहभी होजाता है।

३. विभक्त कामला (Dissociated Jaundice) उपस्थित होनेपर जब पित्तारुणका त्याग न हो, तब कभी-कभी पित्तलवणका त्याग होजाता है।

सिद्धांत— जब यकृत्कोषाणु निःसंदेह पीड़ित होते हैं। तब यकृत्प्रदाह होता है। पित्तारुण यकृत्कोषाणुओंमेंसे नहीं निकल सकता। संभवत: पित्तनलिका प्रदाह भी उपस्थित होजाता है, फिर दोनों प्रकार प्रतीत होते हैं। दोनों प्रकारोंके अनुरूप रोग भिन्न रूप धारण कर लेता है। रक्ताणुओंके नाशकी वृद्धि सहायक बनजाती है।

• इसका निर्णय वानडेनबर्घ की कसौटीसे परीक्षा करनेपर विदित होजाता है कि कुछ पित्त बहुकोणमय प्रभावित यकृत्कोषाणुओंमेंसे नहीं निकल सकता फिर बिना परिवर्त्तन हुए रक्तमें शोषित होजाता है। वह प्रत्यक्ष प्रतिक्रियामें देर करता है। उस समय कुछ पित्त प्रभावित यकृत्कोषाणुओंमें परिवर्त्तित होकर पित्तकैशिकाओंमें प्रवेशकर जाता है; किन्तु पित्तनलिकाप्रदाह पीड़ित होनेसे पित्त अवरुद्ध होकर वहाँसे रक्तमें शोषित होजाता। यह पित्त प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया तत्काल दर्शाता है।

(३) रक्तविनाशक कामला
(Haemolytic Jaundice)

इसे डॉ० आर्नोल्डरिचने संधारित कामला (Retentin Jaundice) संज्ञा भी दी है। इसप्रकारमें पित्तारुणका धारण अत्यधिक होता है।

कारण—रक्ताणुओंका अत्यधिक विनाश। इसका विशेष विचार रक्तविनाशज पाण्डुमें किया जायगा।

१. रक्ताणुओंकी भंगुरता (Fragility) की वृद्धि होना ऐसा पित्तरहित मूत्रयुक्त कामला (Acholuric Jaundice) में होता है। इसका वर्णन आगे (नं. ६ में किया है।)

२. विनाशक प्रतिनिधिकी वृद्धि—उदा० सर्पविष, कृष्ण जल जनित ज्वर (Black water fever)

विषप्रकोपसे रक्तमें रक्ताणुओंका भयंकर संहार होता है। फिर रक्तरंजक पृथक् होजाता है। इस हेतुसे पित्तमें चिपचिपापन अधिक आजाता है, जिससे नियमित वेगसे स्राव नहीं होता।

सम्प्राप्ति—प्लीहा प्रायः बढ़ जाती है और उससे पाण्डु उपस्थित होता है। इन रोगियोंमें वृक्कक्षमता (पित्तारुणके लिये) प्रायः बढ़जाती है, जिससे मूत्रमें पित्तारुण उपस्थित न होनेपर भी रक्तमें ४ इकाईसे अधिक होजाता है।

रक्तकणोंका अधिक संहार होनेसे रंजकद्रव्य अधिक रूपमें पृथक् होता है। उसमेंसे पित्त बननेके अतिरिक्त द्रव्य पुनः रक्तमें मिलजाता है। इस हेतुसे रक्तविनाशज कामला उपस्थित होता है।

लक्षण—सामान्यतः इसप्रकारमें लक्षणसौम्य होते हैं, किन्तु तीव्र प्रकार होनेपर ज्वर, प्रलाप, मूर्च्छा, आक्षेप, रक्तमिश्रित मूत्र, लाल या काली वमन और श्लैष्मिक कलामेंसे रक्तस्राव आदि। कभी नूतन जन्मे हुए शिशुओंको भी आशुकारी यकृत्‌के पीतशोषकी प्राप्ति होनेसे कुछ घण्टोंमें कामला। यकृत्प्लीहा दोनों अधिक बढ़जाते हैं। विशेष विचार यथास्थान बालरोगमें किया जायगा।

चिकित्सा—कारणानुरूप। ज्वर जन्य हो, तो अमृतारिष्ट, चंद्रकला, जयमंगल आदि। सर्प विषजहो, तो उसके शमनार्थ विषघ्न चिकित्सा (संशोधन वटी-रसतन्त्रसार द्वितीय-खण्ड) करें। विशेषविचार नं० ६ में देखें।

(४) जनपद व्यापी रक्तस्रावी कामला

एपिडेमिक स्पिरोकेटल जौण्डिस—स्पिरोकेटोसिस इक्टेरोहेमोहेर्जिका, वीलकारोग (Epidemic Spiro-chaetal Jaundice; Spiro-chaetosis Ictero haemorrhagica, Weil's Disease) रोग आशुकारी संक्रामक। उत्पत्ति स्पिरोकेटस कीटाणुओंके आक्रमणसे। शहर, ग्राम या मोहल्लामें जनपद व्यापी यह ज्वर, यकृत् वृद्धि, रक्तस्राव और बारम्बार गौण ज्वरसह। इस रोगका वर्णन डॉक्टर वीलने १८८६ ई० में किया है। कीटाणुओंका शोध १९१४ ई० में जापानमें हुआ है। यह रोग १९१४ ई० के महायुद्धके समय आर्द्र प्रदेशोंके भीतर अति विस्तृत भागोंमें फैला था। इस स्पिरोकेटा कीटाणुओंको लेप्टोस्पिरा इक्टेरो हेमोहेर्जिया (Leptospira-icterohaemorrhargiae) संज्ञा दी है। लम्बाई ५ से २५ माइक्रोन।

मानव देहमें संक्रमण-विभाग—संक्रमणके पश्चात् परिभ्रिप्रान्तके रक्तमें पाँचवें दिन पहुँच जाता है। क्वचित् ६ वें दिन। अन्तमें पेशाबमें बाहर निकलता है। पहले यकृत्‌में फिर उपवृक्कोंमें और तत्पश्चात् वृक्कोंमें एवं थोड़े अंशमें तो सब अवयवों में उपस्थित। ग्रहणीके द्रव्यके भीतर जीवितावस्थामें कीटाणुओंका अभाव।

संक्रमणप्रकार—इसके वाहन चूहे हैं। प्रभावित चूहेके मूत्र और मनुष्योंकी

प्रभावित वस्तुओं द्वारा फैलता है। यह कीटाणु आर्द्र और छिली हुई त्वचाद्वारा प्रवेश करता है। ज़मीनके भीतर कीचड़ या धूलमें कार्य करने वाले, मच्छी धोने वाले तथा कीटाणुमय बावड़ी आदिमें स्नान करने वालोंको प्राप्त होजाता है। कभी मनुष्यसे मनुष्य को प्राप्त नहीं होता।

शारीरिक विकृति—

१. यकृत्—बढ़ा हुआ। प्रसेकी कामलामें कुछ परिवर्तन। बारंबार किन्तु कम समय और तन्तुनाश और अपक्रांति, जो रक्तपित्त मिश्रण (Cholaemia) और आशुकारी पीत शोथमें उपस्थित होते हैं।

२. ग्रहणी और पित्तमार्ग—किञ्चित् प्रदाहमय किन्तु अवरोधका प्रमाण नहीं मिला।

३. फुफ्फुस—ध्यान देने योग्य परिमाणमें बार-बार रक्तस्राव।

४. प्लीहा—बढ़ी हुई।

५. वृक्क—प्रायः वृक्कस्थ रज्जुका प्रदाह।

६. रक्त—रक्ताणुओंकी भंगुरता नहीं बढ़ती। रक्त चक्रिकाएँ नष्ट होती हैं।

चयकाल—५ से ७ दिन।

आक्रमण—अकस्मात् कम्प, शिरदर्द, अतिशक्तिनाश, नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह, मांसपेशियोंमें गम्भीरपीड़ा और प्रायः अधिक नरम-मांसपेशियाँ आदि लक्षणोंसह।

प्रारम्भिक लक्षण—ज्वर १०३° से १०५°। नाड़ी क्वचित् १०० से अधिक, अरुचि, मलावरोध, कभी अतिसार, वमन और मलाच्छादित जिह्वा आदि। सामान्य लक्षण—तृषा, हाथ-पैर टूटना, व्याकुलता आदि।

विशेषलक्षण—

१. कामला—चौथे या पाँचवें दिन प्रारंभ, क्वचित् लगभग नवें दिन। वानडेन-बर्घ की द्विविध प्रत्यक्ष प्रतिक्रियाका स्वीकार। सर्वदा तिलपिष्टनिभ मल नहीं। ५० प्रतिशत रोगियोंमें कामलाका अभाव। (कामला होनेपर पीली वसंती रंगकी त्वचा)।

२. रक्तस्राव—गम्भीर रोगियोंमें कभी अभाव। रक्तस्राव फुफ्फुस, आमाशय नासिका और गुदनलिकासे या त्रिदोषज रक्तपित्त, पप्युँराके समान।

३. ओष्ठ कक्षा—(Herpes Labialis)—होठोंपर प्रायः फुन्सियाँ।

४. यकृत्—बढ़ा हुआ और नरम।

५. प्लीहा—क्वचित् स्पर्श ग्राह्य।

६. रक्त—श्वेताणु प्रति मिलीमीटर २०००० से ३०००० । इनमें बहुकेन्द्रमय ८० से ९० प्रतिशत।

७. मूत्र—पित्तमय ३ से ४ सप्ताह तक। शुभ्रप्रथिन और प्रक्षेप सामान्यतः। शर्कराविष- (Acetone) केवल पित्तमय रक्त होनेपर।

प्रगति—१० से १४ दिनमें रोग दर्शक ज्वरका पतन। लक्षण उन्नत।

गौण ज्वर सामान्य। तीसरे सप्ताहमें १०१° तक, लगभग १० दिन तक। लक्षणोंका पुनरागमन नहीं होता।

परवर्त्तीक्रम—सामान्यतः अन्तराय रहित। पुनः स्वास्थ्य लाभ ३ से ४ सप्ताहमें। कभी शक्तिपात या मूत्राघात अर्थात् मूत्रोत्पत्तिका अभाव (Anuria) अथवा वृक्क संन्यास होकर (मूत्रविषमय रक्तसे) मृत्यु।

अनियमित प्रकार—ये असामान्य नहीं। सामान्यतः गम्भीर। ये इन्फ्लूएन्ज़ा, गलग्रन्थिप्रदाह, आमवातिक ज्वर, फुफ्फुसप्रदाह और मस्तिष्कावरणप्रदाह का संकेत करते हैं। प्रायः कामलेका अभाव।

शय्यागतका रोगविनिर्णय—(Clinical diagnosis)—स्पष्ट लक्षणोंकी उपस्थितिसे प्रायः निःसंदेह रोगनिर्णय। मोतीझरामें कामला द्वितीय सप्ताहके पहले अति क्वचित्।

रोगसंप्राप्ति दर्शक निर्णय—

१. रक्त—स्पिरोकेटस कीटाणु पाँचवें दिन या कभी नवें दिन तक, यह प्रायः केवल कामलाकी पूर्वावस्थामें। प्रत्यक्ष अवलोकन कठिन (बुरीकी हिन्दी स्याही अथवा फोण्टेनाकी रौप्य पद्धतिसे विदित (रक्तको स्याहीके साथ मिला फिर काँच पट्टीपर पतला लेपकर सुखावें। सूखनेपर रंजित क्षेत्रमें कीटाणु और रक्ताणु श्वेत प्रतीत होंगे। अथवा सिल्वर नाइट्रेटका सोल्युशन ०.२५ तैयार करें, उससे रंगने पर गहरे काले रंग के कीटाणु बनते हैं, जो साधारण पद्धतिकी अपेक्षा बड़े प्रतीत होते हैं।)

२. पशुदेहमें अन्तःक्षेपण—संदेह रहनेपर गिनीपिग (Guinea pig) के शरीरमें रोगीके रक्त या बढ़ी हुई अवस्थाके मूत्रका अन्तःक्षेपण ३ से ५ सी० सी० का करें। ४ से १३ दिन चयकाल। फिर कामला, शक्तिपात और २४ घण्टेमें मृत्यु। देहपर ददोरे होकर उनमें से रक्तस्राव होने लगता है। कीटाणु रक्त और टोस अवयवों में, विशेषतः यकृत्में तथा वृक्क और उपवृक्कमें भी उपस्थित। फुफ्फुस और अन्त्रकी दीवारमेंसे रक्तस्राव। प्लीहा वृद्धि। आशुकारी वृक्कस्थरज्जुका प्रदाह आदि लक्षण चिह्न।

३. कीटाणु संग्राहक निश्चिति—अग्ल्युटिनेशन टेस्ट-(Agglutination test) द्वारा परीक्षा करनेपर निर्णय हो सकता है, अर्थात् इसके कीटाणुओंको बोने पर लगभग छठवें दिन निर्णय होजाता है।

४. मूत्र—मूत्रमें कीटाणु उपस्थित, किन्तु १० वें दिनके पहले नहीं, प्रायः २० दिनसे स्थायी उपस्थिति, कभी ४० वें दिनके बादमी। मूत्रको परिभ्रामक यन्त्रसे परिभ्रमण करा तलस्थ द्रव्यकी परीक्षा करनेपर निर्णय।

मृत्युप्रमाण—अतिक्रम। मृत्यु आक्षेपसह और पित्तमय रक्तसे।

चिकित्सा—कीटाणु निरोधक रक्तरस (Anti-spirochaetal serum) द्वारा विशेषतः प्रथम सप्ताहमें शिरा या मांसपेशीमें २० सी० सी० का अन्तःक्षेपण। पुनः-पुनः अन्तःक्षेपण

सामान्य चिकित्सा कामला रोगके अनुसार। चन्द्रकलारस (पर्पटाद्यरिष्ट और उशीरासवके साथ) दिनमें २-३ बार देते रहें। एवं ताप्या दिलोह, मण्डूर माणिक माणिक-प्रवाल आदि औषधियाँ हितावह हैं।

(५) बाल कामला

इक्टेरस नियोनेटोरम—Icterus Neonatorum. इसके अनेक प्रकार हैं। कितनेक प्रकारोंको नूतन जन्मे हुए बालकोंके रक्तस्रावमय रोगोंसे पृथक् करना कठिन होता है।

(१) इन्द्रियोंकी क्रियासे सम्बन्धवाला कामला—यह २-४ दिनके शिशुको होजाता है। बहुधा ८० प्रतिशत जन्मके पश्चात् रक्ताणु नष्ट होने लगते हैं। इस हेतुसे रक्तमें पित्तारुणाकी वृद्धि होकर इस विकारकी प्राप्ति होती है।

सौम्य प्रकार होनेपर दो सप्ताहमें बिल्कुल शमन। कामलाका कोईभी लक्षण प्रतीत नहीं होता। नेत्र श्लैष्मिक-कला बच जाती है। यकृत्प्लीहाकी वृद्धि नहीं होती। मूत्रमें पित्त क्वचित् ही आता है। इसके लिये चिकित्साकी आवश्यकता नहीं है। (त्वचाको शुद्ध रक्खें और आवश्यकता हो, तो एरण्ड तैलसे उदरकी शुद्धि करलेवें।)

रोगसम्प्राप्तिसे सम्बन्ध वाले प्रकार—

शिशुओंका जनपद व्यापी कामला—कामला, अतिसार और रक्तमेह (Haematuria)। मंजिष्ठमेह (Haemoglobinuria) भी इसे विकलक रोग भी कहते हैं।

वंशागत कामला—यह रोग कितनेक कुटुम्बोंमें पायहुसह अवतरित होता है

मूत्रमें पित्ताभावसह कामला—यह कितनेकोंमें जन्मसे ही होता है। कारणभेदसे निम्न दो प्रकारका है।

(१) कौटुम्बिक उपदंशज यकृत्प्रदाह—माता-पिताको उपदंश होनेपर उसके विषद्वारा गर्भस्थ शिशुके यकृत्‌का प्रदाह होकर कामलाकी संप्राप्ति, साथमें उपदंशके इतर लक्षण यकृद्वृद्धि, जलोदर आदि भी। रोग निर्णय सरलतासे। यह व्याधि उपदंश पीड़ित रोगीको मृदुभावसे होनेपर आजन्म इसका सहज निर्णय नहीं होता। परन्तु रोग प्रबल होनेपर यकृत्प्लीहा वृद्धि, जलोदर, रक्तके धब्बे (Ecchymosis) शारीरिक उत्तापका ह्रास, नाभि और अन्त्रसे रक्तस्राव तथा क्रमशः देह गलना आदि लक्षणोंसे निर्णय।

(२) गलनात्मक विष (Sepsis) सामान्यतः नाभिस्थ शिराप्रदाह (Phlebitis) में शरीर रचनासे सम्बन्ध वाले गम्भीर लक्षण। नाभिमें पूयोत्पत्ति। रक्तस्राव सामान्य। क्वचित् ही आरोग्य प्राप्ति।

इनके अतिरिक्त किसी बच्चेको पित्तनलिका ही नहीं होती। यह प्रकार असाध्य है।

बाल कामला लक्षण—कामला तीव्र होनेपर मलावरोध तथा नेत्र श्लैष्मिक-कला और मूत्र आदि पीले। मन अस्थिर। त्वचारूक्ष होजानेसे कण्डू भी।

साध्यासाध्यता—इसका आधार रोगीकी शारीरिक शक्ति और रोग बलपर है। अधिक शक्ति क्षय होनेपर रोग असाध्य। नाभिस्थ शिराप्रदाहज विकारको असाध्य माना है। उपदंश विषज प्रकार प्रबल न हो, तो उपदंशकी चिकित्सासे लाभ होनेकी आशा है।

(६) मूत्रमें पित्ताभावसह कामला

अकोल्यूरिक जौण्डिस-हिमोलायटिक जौण्डिस। Acholuric Jaundice-Haemolytic Jaundice.

यह चिरकारी रोग है। इसमें लक्षण दृष्टिसे पाण्डु, कामला और पुनः-पुनः आशुकारी आकस्मिक उपशमसह प्लीहावृद्धि (Splenomegalia) प्रतीत होते हैं। रोग सम्प्राप्तिकी दृष्टिसे गोल रक्ताणुद्वारा रक्ताणुओंकी भंगुरताकी वृद्धि होती है। एवं जालदार-अन्तःकलाके कोषाणुओंमें रक्तवृद्धि तथा मूत्रका अभाव होता है।

इस रोगमें अवरोधात्मक कामलाका एकभी कारण नहीं मिलता। किन्तु रक्तविनाश होता है, मलमें पित्त जाता है; और मूत्रमें नहीं जाता। मूत्रमें पित्त न जाना, यह इस रोगकी विशेषता है। रक्तमें कुछ पित्तरंजक द्रव्य मिश्रित होजाता है; और पाण्डु रोगके समान रक्तके रक्ताणुओंका विनाशभी होता है। यह प्रकार क्वचित् ही देखनेमें आता है।

समूह—(अ.) वंशागत, कौटुम्बिक और जन्म-जात; (आ.) बड़ी आयुमें प्राप्त किया हुआ रोग। (इ.) विषम लक्षणात्मक प्रकार।

(अ.) कौटुम्बिक कामला

(Acholuric Family Jaundice)

इस प्रकारकी सम्प्राप्तिका मुख्यकारण मज्जाकी अपूर्णता है, जो बड़ी संख्यामें रक्ताणुओंको निर्माण करती है। ये रक्ताणु जालदार अन्तःकलाके कोषाणुओंद्वारा विनाश क्षम है। इस न्यूनताके हेतुसे पाण्डु, कामला और प्लीहावृद्धिकी सम्प्राप्ति होती है। ये रक्ताणु वर्त्तुलाकार होते हैं। इसकी भंगुरताका नाप हाइपोटोनिक सेलाइनके प्रति-रोधद्वारा विदित होता है। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकारके रक्ताणु हैं, वे अस्वाभाविक भंगुर नहीं होते। रक्तमें पित्तारुणकी वृद्धि होती है। प्लीहाका छेदन (Splenectomy) करनेपर जालदार अन्तरा-कलाके तन्तुओंके समूह दूर होकर अपूर्ण कोषाणुओंका संरक्षण होता है।

व्यापक लक्षण—बीमारीकी अपेक्षा अधिक कामला भासना। पुनः स्वास्थ्य प्राप्ति लम्बे क्रमके पश्चात् कामला और पाण्डु मन्द, बीचमें आकस्मिक उपशम या अनेक रोगियोंमें उपशमका अभाव।

आकस्मिक उपशम—पुनः-पुनः उपशम। बारंबार रूपान्तरित आक्रमण १ वर्षमें ३ या ४ बार गम्भीरता अत्यधिक। सौम्य प्रकारमें व्याकुलता और कामला; गम्भीर प्रकारमें शारीरिक उत्तापाधिक्य, शक्तिह्रास, वमन, गम्भीर पाण्डुताकी सत्वर सम्प्राप्ति, रक्तमें अधिकांश केन्द्रमय रक्ताणु विशेषतः, सामान्य दाने रहित जीवकेन्द्रमय (Normoblasts) तथा कुछ जीव केन्द्रमय दानेरहित स्थूल (Megaloblasts), जालदार ५० प्रतिशतसे अधिक। श्वेताणु ४०००० तक मज्जाणु दानेदार (Myelocytes) और दानेरहित मज्जाणु (Myeloblasts) सह। प्लीहाकी सत्वर वृद्धि (लेडेररके पाण्डुके सदृश)। रोगकाल कुछ सप्ताहोंका।

इतर लक्षण—

१. प्लीहा—नाभि तक बढ़ी हुई। अस्वाभाविक संलग्नता। प्लीहावरण सामान्यतः मोटा नहीं होता। प्लीहासत्वके भीतर अनेक रक्ताणु विद्यमान; उनको अन्तरा-कलाकोषाणु खाजाते हैं। रक्तमज्जा अति तन्तुमय।

२. यकृत्—स्पर्शग्राह्य। मुक्त लोह विद्यमान्।

३. कामला—विविध प्रकारका। प्रायः विराम कालमें मन्द। कामलाके लक्षणोंका अभाव। वानडेन बर्ग की प्रतिक्रिया अप्रत्यक्षसे ग्राह्य अथवा दो अवस्था दर्शक। पित्ताशयाश्मरीके हेतुसे अवरोधक कामलाभी।

४ रक्ताणु—(अ.) पाण्डुमें लगभग ३५०० ००० रक्ताणु; (आ.) वर्णं सूची सामान्यतः अधिक (इ.) वर्तुलाकार रक्ताणु गहरे छोटे कोषाणु सदृश, व्यास लगभग ६·५ म्यू· किन्तु आयतन सामान्य रक्ताणुओंके आयतनमें विषमता (Anisocytosis), कुछ केन्द्रमय रक्ताणु; (ई.) जालदार रक्ताणु प्रायः १० से १५ या ३० प्रतिशत तक। विराम कालमें ३ से ५ प्रतिशत आकस्मित उपशममें २० से ५० प्रतिशत (उ.) भंगुरताकी वृद्धि।

५. श्वेताणु—आकस्मिक उपशमके अतिरिक्त समयमें विशेष अन्तर नहीं होता।

६. मूत्र—पित्तरंजकका अभाव। पिंगलाभ मूत्रपित्त (यूरोबिलिन) १० से ३० प्रतिशत होनेसे मूत्र गहरे रंगका।

७. मल—पित्तरंजककी वृद्धि युक्त।

८. पित्ताश्मरी—६० प्रतिशतमें। रंजक और पित्तारुण होते हैं, किन्तु पित्त घन (Cholesterol) का अभाव। अश्मरी मृदु। शूलका दौरा और अवरोधज कामला होना सामान्य।

क्रम—रोग स्वस्थावस्थामें भी दृढ़ रहता है, जिससे जीवनमेंसे कार्यदक्षता दूर होजाती है। उद्वेगका मुख्य कारण आकस्मिक उपशम है। रक्तजीव केन्द्र युक्त स्थूल रक्ताणुमय; जो लेडेररका पाण्डु, श्वेताणु वृद्धिमय। पाण्डु तथा घातक पाण्डुका संकेत करता है।

रोग निर्णय—लक्षणों और रक्त परीक्षाद्वारा।

वंशागत कामला चिकित्सा

प्लीहाका छेदन—कम सफल, किन्तु परिणाम बहुत अच्छा। मृत्यु परिमाण ५ प्रतिशत। अनावश्यक कुछ वृद्धि। पित्ताश्मरी है, तो उसे नष्ट करें या निकाल दें।

पित्ताशय छेदन—(Cholecystectomy) न करें। गोल रक्ताणु और भंगुरता सदाके लिये अपरिवर्त्तित। (जालदार रक्ताणुओंका ह्रास)

रक्तका अन्तः सेचन—गम्भीर पाण्डुमें तथा शस्त्र क्रियाके पहले गम्भीर (किन्तु भयप्रद नहीं) प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है।

पाण्डुपर लोहप्रधान औषधि (पर्पटारिष्टके साथ,) यकृत सत्वका असर अनिर्णीत। जालदार रक्ताणुओंपर प्रभाव नहीं पड़ता।

आ. संपादित कामला

Acquired Acholuric Jaundice

जन्मार्जित कौटुम्बिक प्रकारसे भिन्नता—यह व्याधि बड़ी आयुमें धीरे-धीरे होती है। कामला कम, किन्तु अधिक अस्वास्थ्य। पाण्डु अधिक गम्भीर। प्रायः स्थूलजीव केन्द्रमय रक्ताणु विद्यमान्। गोल रक्ताणु और भंगुरता कम। आकस्मिक उपशम भयप्रद।

क्रम—कौटुम्बिक प्रकारकी अपेक्षा गम्भीर और अधिक प्राण घातक।

चिकित्सा—प्लीहा छेदन कम सफल, फिरभी परिणाम अच्छा। रक्तका अन्तः सेचन कभी कभी गम्भीर प्रतिक्रिया दर्शाता है।

इ. विषम लक्षणात्मक कामला प्रकार

A typical Forms

उक्त दोनों प्रकारोंमें कभी-कभी निम्नानुसार विषम लक्षण उपस्थित होते हैं। १. भंगुरता सामान्य; २. कामलाका अभाव; ३. प्लीहावृद्धिका अभाव; ४. रक्तमें विषम परिवर्त्तन, विशेषतः सम्पादित प्रकारमें, जो घातक पाण्डु, रक्तमें रक्ताणुवृद्धि (Erythreamia), लेडेररका पाण्डु, श्वेताणुवृद्धिमय पाण्डु और अपक्व केन्द्रमय रक्ताणु और श्वेताणुकी रक्तमें उपस्थिति (Leukoery throblastosis) का संकेत करता है। रक्तमें मुक्त रक्तरंजक विद्यमान्। जैसा रात्रिचर मांजिष्ठ मेह (Nocturnal Haemoglobinuria) में प्रतीत होता है। इससे फिरंगको पृथक् करना चाहिये।

७. कुम्भकामला

यकृत्में अप्रतिरोधी (मंद) रक्तसंग्रह- पेसिप कन्जेशन ऑफ दी लिवर-नटमेग लिवर-कार्डियाक लिवर-पेसिव हाइपरेमिया ऑफ दी लिवर। Passive Congestion of the Liver—Nutmeg Liver—Cardiac Liver—Passive Hyperaemia of the Liver.

परिचय—हृदयके प्रसारण या अन्य किसी मूल कारणसे पिछली ओर (शिरागत) दबाव बढ़नेपर यकृत्की बहिर्गामी रक्तवाहिनियोंपर दबावकी वृद्धि होती है। परिणाममें यकृतके भीतर रोगसंप्राप्ति कर परिवर्त्तन होजाता है।

निदान—

१. हृदयक्षति—विशेषतः बाईं ओर स्थित द्विपत्र कपाटका आकुंचन।

२. फुफ्फुस स्थिति—वायुकोष प्रसारण और चिरकारी श्वासनलिका प्रदाह। फुफ्फुसके अन्तर्भागमें सौत्रिक तन्तुओंकी उपस्थिति। उरःपंजरमें अर्बुद या धमन्यर्बुद (यह अतिकचित् कारण)।

शारीरिक विकृति—

१. यकृत्—बढ़ा हुआ दृढ़, मुलायम और गहरा लाल। सतह जायफलके सदृश विविध वर्णके दागयुक्त, कण्डिकाओंके भीतर। खण्डोंके भीतरकी शिराएँ प्रसारित। कण्डिकाओंके शेष भागमें कोषाणु पित्तरंजित, शोष पीड़ित या वसापक्रांति युक्त।

२. यकृत्कोषाणु दबे हुए और फिर उनका शोष और विनाश। कोषाणुओंमें पिङ्गल रंजकका संचय। परिधिमण्डल प्रायः वसापक्रांति पीड़ित। कोषाणुओंके भीतर सूक्ष्म रक्तस्राव।

३. अपूर्ण रोगप्राप्ति होनेपर संयोजक तन्तु बढ़े हुए, फिरभी यकृद्दालीका चिह्न नहीं। यकृत्की शिराएँ प्रसारित और दीवार मोटी।

४. अन्तिमावस्थामें गात्र नीलिमाके लक्षण, जब चिरकारी यकृत् आकुंचित और कठोर।

लक्षण—कारणानुरूप। रोगी यकृत्में सतत पीड़ा होना बतलाता है।

१. आमाशय प्रसेक, अफारा आदि—जब रोग बढ़ गया हो, तब जलोदर (सामान्यतः सार्वाङ्गिक शोथसह), मंद कामला, कभी रक्त वमन आदि।

२. यकृत्—बढ़ा हुआ प्रायः कद सत्वर परिवर्त्तित, रक्तवमनके पश्चात् छोटा। अग्रपश्चाद् ठेपन परीक्षाद्वारा प्रेरित स्पन्दनसे स्पन्दित यकृत्को पृथक् करके निर्णय करें। (यदि दाहिनी ओरके त्रिपत्रकपाटसे रक्तका प्रत्यावर्त्तन होता हो, तो स्पन्दन प्रभेद निश्चित होता है।)

३. प्लीहा—क्वचित् बढ़ी हुई।

रोगविनिर्णय—हृदय और फुफ्फुसकी क्षति, यकृत्की मुलायम सतह तथा उदरकी अप्रसारित शिराओंद्वारा यकृद्दालीसे पृथक् करना चाहिये।

कुम्भकामला चिकित्सोपयोगी सूचना—

१. यकृत् स्रावबृद्धि और उदर शुद्धिके लिये—निशोथ, थूहरका दूध या मेगसल्फ देते रहें।

२. गंभीर वेदना शमनार्थ—यकृत्पर पुल्टिस बाँधे या ३-४ जलौका लगावें।

३. चिकित्सा कारण अनुसार करनी चाहिये।

वक्तव्य—क्वचित् यकृत्में प्रतिरोधी (प्रबल) रक्तसंग्रह (Active Hyperaemia) की संप्राप्ति। रोग शीत कम्प (Chill) सह उष्ण कटिबन्ध प्रदेशमें विषम ज्वर या प्रवाहिकासे पीड़ितोंको। विशेषतः अधिक भोजन करनेवाले, आलसी और जीर्ण मलावरोधसे पीड़ितोंको।

शिरदर्द, उबाक, मलावरोध तथा यकृत्में भारीपन या पीड़ा ये मुख्य लक्षण हैं। परीक्षा करनेपर मलसे लिप्त जिह्वा तथा यकृत् स्पर्शग्राह्य और कुछ नरम मालूम होता है।

चिकित्सार्थ रोगीको कुछ दिन शय्यापर पूर्ण विश्राम करावें। भोजनमें केवल दूध यकृत्स्रावी विरेचन नियमित देते रहें। यकृत्पर सेक, गरमलेप, पुल्टिस, गरम वस्त्र लपेटना आदि उपचार करते रहनेसे वेदनाका दमन होता है।

कामला चिकित्सोपयोगी सूचना

रेचनं कामलार्तस्य स्निग्धस्याऽदौ प्रयोजयेत्।
ततः प्रशमनी कार्या क्रिया वैद्येन जानता॥

कामला रोगीको पहले स्नेहन देकर कोष्ठको स्निग्ध करें। फिर विरेचन औषधि देवें, पश्चात् रोगकी गतिको जानकर रोगशामक चिकित्सा करनी चाहिये।

कामला रोगीमें पाण्डुरोगसे अविरोधी हो, ऐसी पित्तशामक चिकित्सा करनी चाहिये। पित्तवर्धक औषधि और आहार-विहारका सेवन नहीं कराना चाहिये।

कामला रोगीको पञ्चगव्यघृत, महातिक्त घृत (कुष्ठरोगमें कहा हुआ) या कल्याण घृत स्नेहनार्थ देना हितकर है। आशुकारी कामला रोगमें अनेक प्रकारके अंजन और नस्यभी लाभ पहुँचाते हैं।

जिस कामलारोगीको तिलपिष्टनिभ (मैला सफेद) रंगका मल उतरता हो और पित्तके मार्गका श्लेष्मसे अवरोध होगया हो, उसके पित्तको कफहर पदार्थोंसे जीतना चाहिये।

कामला रोगमें वातश्लेष्मात्मक लक्षण उपस्थित होनेपर अर्थात् रूक्ष, शीतल, गुरु और मधुर भोजन, व्यायाम और मलमूत्र आदि वेगोंका धारण करनेपर वायु प्रकुपित बन कफसे मिश्रित होकर जब पित्तको अन्त्रमार्गसे बाहर (रक्तमें) फेंकती रहती है, तब नेत्र, मूत्र और त्वचामें पीलापन, आँतोंमें पित्तस्रावके अभावसे सफेद रंगका मल, अफारा, मलावरोध, हृदयमें भारीपन, दुर्बलता, अग्निमान्द्य, पार्श्व भागमें पीड़ा, हिक्का, श्वास, अरुचि और ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। संक्षेपमें वायु जब कुपित होती है, पित्तका बल घट जाता है; और वह शाखासमाश्रित (रक्त आदि धातुओंमें प्रवेशित) होता है, तब ये सब लक्षण एकके पीछे एक खड़े होजाते हैं।

ऐसे रोगीको रूक्ष, चरपरे और खट्टे रसवाले पदार्थ—मोर, तीतर और मुर्गेका मांसरस तथा सूखी मूली या कुलथीके यूषके साथ भोजन आदिका सेवन कराना चाहिये। ऐसी अवस्थामें अधिक खटाई आदिको हितकर माना है। बिजौरेके रसके साथ शहद और त्रिकटुका सेवन लाभदायक है। जब तक वातप्रकोप शमन न हो,

तब तक रक्त पित्तवर्धक खट्टे, चरपरे, रूक्ष, उष्ण और नमकीन रसका सेवन कराते रहें।

इस तरह चिकित्सा करनेपर पित्त अपने आशयमें आजाता है। फिर अन्त्रमें नियमित पित्तस्राव होनेपर मल पीला बन जाता है और वात प्रकोपका शमन होकर अफारा, आँतोंमें गड़गड़ाहट आदि लक्षण शमन होजाते हैं। फिर कामला रोगके लिये विहित चिकित्सा करनी चाहिये।

कामला रोग सत्वर दूर करनेके लिये आचार्योंने कहा है कि—

घृतदुग्धौदनं पथ्यं कुर्याद्दै लवणं विना।
कामलां नाशयत्याशु वायुरभ्रं हरेद्यथा॥

यदि कामला रोगी केवल भात, दूध और घीका सेवन करें तथा लवणका भी त्याग करें, तो जैसे वायु बद्दलोंको उड़ा देती है, वैसेही तुरन्त सदौषधसे कामला नष्ट होजाता है।

इस रोगमें नित्यप्रति मलशुद्धिके लिये मृदुविरेचन देते रहना चाहिये। पित्तक्षयजन्य तीव्र कामलामें ताप्यादि लोह आदि औषधि इतर कामलाके समान ही दीजाती है। ज्वर होनेपर आरोग्यवर्धिनी देनी चाहिये।

अधिक घीयुक्त पदार्थ और मैदा आदि न देवें। बड़े मनुष्यको दूध और बालकोंके लिये दूधको फाड़ छानकर निकाला जल अति हितकर है।

यकृत्में रक्तवृद्धि होनेपर विरेचन देना चाहिये। यकृत्के ऊपर दशांगलेप या इतर लेप लगाना चाहिये, या जलौका लगाकर रक्तनिकाल लेना चाहिये अथवा पुल्टिस बाँधना चाहिये और यकृद्विरेचक चिकित्सा करनी चाहिये।

कण्डू—कामला रोगमें अति कष्टप्रद कण्डू उत्पन्न हो जाती है। इस खुजलीके शमनार्थ सोते समय चर्मरोगनाशक तैलकी मालिश करें तथा सुबह सोडा मिलाये हुए गुनगुने जलसे स्नान करें अथवा कार्बोलिक एसिड २० बूँद १ सेर गरम जलमें मिला उसमें कपड़ा भिगोकर शरीरको पोंछते रहनेसे खुजली नष्ट होजाती है। खुजली आनेपर क्षार एवं प्रस्वेद लानेवाली औषधिद्वारा कुछ अंशमें लाभ पहुँचता है। डॉक्टरीमें लोशन हाइड्रार्जिरी (Lotion Hydrargyri Perchloride) $\frac{1}{1000}$ को जलमें मिला उसमें वस्त्र भिगोकर देहको पोंछते या धोते हैं।

पचनक्रिया मंद होगई हो, तो भोजन नियमित समयपर स्वल्प परिमाणमें और पथ्य ही लेना चाहिये। आध्मान होनेपर मौक्तिक भस्म, प्रवाल पञ्चामृत, शंख भस्म, वराटिका भस्म आदिका उपयोग करना चाहिये। एवं पित्तविकृति दूर करनेके लिये पंचसकार, निशोथ आदिका सेवन कराना चाहिये।

अवरोधात्मक कामला होनेपर जिन-जिन औषधियोंसे पित्त निःसरण क्रिया अधिक उत्तेजित हो, उन सबका प्रयोग नितान्त अनुचित माना जाता है। पारद, ताम्र, नौसादर, रेवाचीनी, निसोत, एलुवा आदि पित्तनिःसारक औषधियाँ हैं।

पित्तनिःसारक और पित्तशामक आदिका विशेष वर्णन हमने औषधगुण धर्मविवेचनमें किया है। विरेचन औषधियोंका प्रयोग पूर्ण अवरोधात्मक कामलामें निषिद्ध होनेपर भी एरण्ड तैल या ग्लिसरीनकी पिचकारीद्वारा उदरशुद्धि करानेमें बाधा नहीं है।

रक्तस्राव—अनेक बार कामला रोगमें नाक, कण्ठ, आमाशय, अन्त्र आदि स्थानोंसे या और किसी स्थानमें क्षत होकर भयंकर रक्तस्राव होने लगता है। उस क्षत आदिको सत्वर शुष्क करनेके लिये योग्य चेष्टा करनी चाहिये। शरीरपर क्षत न हो जाय, इस बातका लक्ष्य रखना चाहिये। एवं अत्यावश्यकता न हो, तो तब तक क्षतपर शस्त्रचिकित्सा नहीं करनी चाहिये। नाक, कण्ठ-नलिका आमाशय और अन्त्रसे रक्तस्राव होता है। इन स्थानोंकी चिकित्साके लिये शीतल जलका सेक, बर्फके जलकी पिचकारी अथवा दूसर शीतल, सौम्य, संकोचक प्रयोग करना चाहिये। विश्रान्ति कराना चाहिये। उशीरासव, पर्पटारिष्ट, चन्द्रकलारस, ये सब हितकारक हैं।

वमन—यकृत्के अनेक विकारोंमें वान्ति उपस्थित होती है। यकृत्के रक्तसंचालनमें व्याघात वशतः प्रतिहारिणी शिराके रक्तसंचालनमें पूर्णता वा रक्ताधिक्य होनेपर वमनकी प्राप्ति होती है। पित्तनलिकाकी उग्रता या पित्ताश्मरीकी गतिकी प्रतिफलित क्रियाद्वारा कै होती है। इस वमनकी निवृत्तिके लिये रोगीको तरल द्रव्य अति अल्प परिमाणमें पथ्यरूपसे बार-बार देना चाहिये। क्वचित् जलीय पदार्थ उदरमें स्थिर नहीं होता। ऐसे समयपर अर्ध तरल या कठिन पदार्थ स्वल्प मात्रामें प्रयुक्त करनेसे वमनका निवारण होता है। दूधके साथ चूनेका जल या सोडा मिश्रित जलका प्रयोग विशेष उपकारक होता है।

अतिसार—यकृद्विकारमें क्वचित् घोर अतिसारकी संप्राप्ति होती है। उसे दूर करनेके लिये सौम्य, शीतल, पित्तशामक और ग्राही औषधिकी योजना करनी चाहिये। पित्तशामक और ग्राही औषधियोंका विवेचन औषधगुण धर्मविवेचनमें किया है। शंख-भस्म, जहरमोहरा, कुटजत्वक्, बिजौरा, अनार, रसौंत आदि औषधियाँ पित्तशामक और ग्राही हैं। नेत्रवाला, सोंठ और पाठा अथवा नागरमोथा, पित्तपापड़ा और पाठा मिलाकर यवागू बनाकर रोगीको खानेके लिये दे सकते हैं।

अर्श—यकृद्के व्याधिग्रस्तोंको अनेक बार अर्श रूप उपद्रवकी प्राप्ति हो जाती है। ऐसे रोगियोंके लिये मांसाहारका निषेध है। एवं उत्तेजक गरम-मसाला, मिर्च आदिका भी परित्याग करा देना चाहिये। अति विरेचक औषधि भी नहीं देनी चाहिये। आवश्यकतापर हरड़ आदि मृदु विरेचन और मृदु व्यायाम हितावह हैं। अर्शमेंसे रक्त-स्राव होता हो, तो तृणकान्तमणिपिष्टी, उशीरासव, बोलबद्ध रस या जातिफलादिवटी (अर्श) का प्रयोग करना चाहिये।

कामला चिकित्सा

(१.) कविवर लोलिम्बराज कहते हैं कि—

अये मनोज्ञकुण्डले स्फुरन्मुखेन्दुमण्डले ।
गवां पयः सनागरं निहन्ति कामलामयान् ॥

गौके दूधमें सोंठका चूर्ण (और जल) मिला उबाल शीतलकर पिलानेसे कामला नष्ट होजाता है। यह औषधि पित्तनलिकाप्रदाह या श्लेष्माके अवरोध होनेसे उत्पन्न कामलापर अति हितकर है।

२. त्रिफलाका क्वाथ, गिलोयका स्वरस, दारुहल्दीका क्वाथ या नीमके पत्ते या छालका रस, इनमेंसे किसी एकके साथ शहद मिलाकर पिलानेसे अवरोधज कामला नष्ट होता है।

३. निसोतका चूर्ण मिश्रीके साथ देनेसे मलशुद्धि होती है और पित्तस्रावमें श्लेष्मजन्य या अश्मरीके अणुजन्य अवरोध होता हो, तो वह दूर होकर कामला नष्ट हो जाता है।

४. इन्द्रायणके मूलका चूर्ण मिश्री (या गुड़) के साथ देनेसे कामला दूर हो जाता है। (सशर्करा कामलिनां त्रिभण्डी हिता गवाक्षी सगुड़ा च शुण्ठी ।)

५. सोंठका चूर्ण गुड़के साथ देनेसे तिलपिष्टनिभ मलयुक्त कामला दूर होजाता है।

६. गिलोयके पत्तोंका कल्क मट्ठेमें मिलाकर पिलानेसे कामला शमन हो जाता है। मलका रंग सफेद हो, वहभी बदल जाता है।

७ पाण्डु रोगपर लिखा हुआ फलत्रिकादि क्वाथ देनेसे पाण्डुसह कामला रोगकी निवृत्ति होती है।

८. वासादिक्वाथ—अडूसा, गिलोय, नीमकी अन्तरछाल, चिरायता और कुटकीका क्वाथकर शहद मिलाकर पिलानेसे जीर्णज्वर और मलावरोध प्रधान जीर्ण कामला, पाण्डु, रक्तपित्त, हलीमक और कफजनित रोग नष्ट होते हैं।

९. गोदन्ती भस्म ४ रत्ती, एरण्डके पत्तोंके स्वरस ३-४ तोलेके साथ या एरण्ड स्वरसको दूध या तक्रके साथ देनेसे ऽऽ की कामलाकी निवृत्ति होती है अथवा एरण्ड पत्रका स्वरस ४ तोलेमें १ तोला गुड़ मिलाकर प्रातःकाल और सायंकालको देनेसे कामला ३ दिनमें दूर हो जाता है।

१०. कच्ची हल्दीका चूर्ण ३ माशे तथा घी और मिश्री ६-६ माशे- मिलाकर प्रातः-सायं सेवन करानेसे नये मंद कामलाका निवारण होता है।

११. हल्दीके ६ माशे चूर्णको ४-८ तोले दहीके ताज़े घोलमें मिलाकर प्रातः- काल पिलानेसे श्लेष्मादि प्रतिबन्धजनित कामला दूर होता है।

१२. लोह भस्म २ रत्तीको ४ माशे हरड़, २ माशे हल्दी, २ माशे घी और ४ माशे शहदके साथ मिलाकर चटानेसे जीर्ण ज्वरजन्य और श्लेष्मावरोधसे उत्पन्न कामला और पाण्डु शमन होते हैं।

१३. आँवला, हरड़, सोंठ, मिर्च और पीपलके चूर्णमें घी, शक्कर और शहद मिलाकर सेवन करानेसे पाण्डु, मंद कामला और हलीमक रोग निवृत्त होते हैं।

१४. आलूबुखारा और इमलीको जलमें भिगो मसल छान, फिर मिश्री मिलाकर पिलानेसे यकृत्प्रदाहज कामला दूर होजाता है।

१५. भुनी हुई कुटकीका चूर्ण ३ से ६ माशे, प्रातःकाल मिश्री ६ माशे मिलाकर गुनगुने जलके साथ देनेसे यकृद्वृद्धि, मलावरोध, ज्वर, उदरविकार, शोथ और अग्निमान्द्यसह कुम्भ कामलाकी निवृत्ति होती है यह चूर्ण बालकोंके लिये भी अति उपकारक होनेसे रसतन्त्रसारमें इसे बालमित्र चूर्ण नं० ३ में लिखा है।

१६. हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला और कुटकीके चूर्णमें, लोहभस्म २ रत्ती मिला घी शहदके साथ चटाते रहनेसे पित्तप्रणालिकाप्रदाह, मलावरोध, श्लेष्मजन्य प्रतिबन्ध और रक्तमें पित्त प्रवेश आदि दूर होकर कामला शमन होजाता है।

१७. शिलाजीत १-१ माशा दिनमें २ बार गोमूत्रके साथ देते रहनेसे जीर्ण-कामला और कुम्भकामला दूर होते हैं।

१८. नीमकी अन्तरछालके रसमें सोंठका चूर्ण और शहद मिलाकर देनेसे कामला शमन होजाता है।

१९. प्लीहान्तक चूर्ण १-१ माशा दिनमें २ बार कुटकीके क्वाथ या जलके साथ देनेसे कामला, यकृत्प्लीहावृद्धि, शोथ, मलावरोध, अग्निमान्द्य, श्लेष्मात्मक प्रकोप, मैला सफेद दस्त आदि विकार दूर होकर पित्तका सम्यक्स्राव होने लगता है। यह सामान्य औषधि होनेपर भी यकृत्के पित्तका अन्त्रमें स्राव करानेके लिये अच्छा काम देती है।

२०. मूत्र थोड़ा-थोड़ा आता हो, तो गोमूत्र या जलके साथ कलमीशोरा या जवाखार मिलाकर देनेसे मूत्रशुद्धि होती है; और शोथ दूर होजाता है। इस औषधिका कुम्भकामलामें आवश्यकतापर उपयोग किया जाता है।

२१. गंधकरसायन ४-४ माशे समान मिश्री मिलाकर प्रातः-सायं देते रहनेसे पाण्डु, रक्तविकार और कामलाकी निवृत्ति होजाती है। कदाच पेचिश जैसा असर होजाय तो, मात्रा कम करें। जीर्ण रोगमें मात्रा २-२ माशे ज्यादा दिनोंतक देनी चाहिये।

२२. फिटकरीका फूला ४ से ६ रत्ती २ माशे मिश्रीके साथ मिलाकर दिनमें ३ बार जलके साथ देनेसे कामला शमन होजाता है।

२३. मैले सफेद रंगका मल हो और कामला नया हो, तो लाल फिटकरी कच्ची २ से ६ रत्तीतक गोमूत्र या मट्ठेमें मिलाकर देनेसे पित्तस्राव नियमित बनकर मलरंजित होजाता है और कामला शमन होजाता है। फिटकरी गोमूत्रमें मिलाने पर झाग आते हैं। झाग उतरें तबतक उसे चम्मचसे चलाते रहें, फिर मिला देवें। २१ दिनतक यह प्रयोग करनेसे कामला और पाण्डु दूर होजाते हैं।

२४. शुद्ध नौसादर ४ से ६ रत्ती और १-२ माशे मिश्री मिलाकर शीतल जलके साथ देनेसे अन्त्रमें पित्तस्राव होकर कामला दूर होजाता है। यह औषधि रोज़ सुबह १ बार देवें। भोजनमें केवल मक्खन निकाली हुई छाछ और भात देवें। रात्रिको धनियाँ और मिश्रीका भिगोया हुआ जल पिलावें; तथा प्रातःकाल नौसादर सेवनसे दो घण्टे पहले बीज निकाली हुई मुनक्काको पीस नींबूका रस मिलाकर सेवन करावें।

२५. सज्जीखार (सोडा बाई कार्ब) १॥-१॥ माशे जलमें मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहनेसे ३ दिनमें कामला शमन होजाता है।

२६. कामलामें नस्य, अंजन और मर्दन—

अ. देवदालीके फलका रस २-४ बूँद नाक में प्रातःकाल टपकानेसे नाकमेंसे पीले पानीका स्राव होकर (इसमें मिश्रित पित्त निकलकर) कामला नष्ट होजाता है। जब फल सूख जाते हैं तब १ रत्ती चूर्ण सुँघाया जाता है। दाह होनेपर गोघृत सुँघाना चाहिये। छोटे बालक और नाज़ुक प्रकृतिवालोंको नस्य नहीं देना चाहिये। आवश्य-कतापर नस्य २-४ दिनतक सुँघाया जाता है।

आ. कड़वी तुम्बीका रस २-४ बूँद नाकमें टपकानेसे कामला चला जाता है। भोजनमें केवल दूधभात। ३ दिनतक यह प्रयोग करें।

इ. प्रातःकालको ककोड़ेकी जड़के रसका नस्य करानेसे कामला शमन होता है।

ई. घीकुँवारकी जड़का रस नाकमें डालनेसे पीलास्राव होकर कामला नष्ट होजाता है।

उ. देव कपासके कच्चे फल (जिसमें रुई न हुई हो) के रसका नस्य करानेसे कामला दूर होजाता है।

ऊ. द्रोणपुष्पीके रसका अंजन करानेसे कामलाकी निवृत्ति होती है।

ए. हल्दी, सोनागेरू और आँवलेके चूर्णका अंजन तथा जलमें मिलाकर उपरोक्त चूर्ण देहपर मालिश करनेसे कामला शमन होजाता है। नेत्रमें अंजन करनेके पहले सलाईपर शहद लगाकर चूर्णमें डुबोना चाहिये।

ऐ. कांसीकी थालीमें जल भरकर रोगीके हाथोंके पंजोंको फैलावें। फिर परि-चारक अपने हाथपर चूना (जल मिला हुआ) लगा रोगीके हाथपर कूर्परसे नीचे मणिबन्ध तक मसलें। मसलनेमें ऊपरसे नीचेको ही हाथ जाना चाहिये। फिर हाथोंको थालीके जलमें डुबोते जाँय। इस तरह प्रयोग करनेसे देहका पीलापन दूर होजाता है, और थालीका जल पीला हो जाता है।

ओ. ज्वारके दाने १ तोलेमें १ रत्ती चूना और २ बूँद जल मिलाकर रोगीको हाथसे मसलनेको कहें। ऐसा करनेपर दाने पीले होजाते हैं और कामला दूर होजाता है।

औ. कण्डू शमनार्थ चर्मरोग नाशक तैलकी मालिश करें अथवा नींबूके रससे मर्दन करनेपर भी खुजली दूर होती है।

२७. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—मण्डूर भस्म (मूलीके रस और मिश्रीके साथ), पुनर्नवा मण्डूर (शोथ हो तो), कुमार्यासव (हरड़ मिश्रित), पर्पटारिष्ट, उशीरासाव, तक्रमण्डूर, ताप्यादिलोह, नवायस लोह, योगराज रस, पञ्चामृतपर्पटी, द्राक्षावलेह, पञ्चगव्यघृत, कल्याणघृत, लोहभस्म नं० २ (हरड़, हल्दी, घृत और शहदके साथ), सुवर्णमाक्षिक भस्म, कुष्माण्डावलेह। सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल पिष्टी और मौक्तिक भस्म तीनोंका मिश्रण (मूलीके रस और मिश्रीके साथ), मण्डूर भस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्ममिश्रण, महासुदर्शन चूर्ण, बालमिर्च चूर्ण तृतीय विधि, ये सब उपयोगी हैं।

मण्डूर, सुवर्णमाक्षिक और लोहभस्म—पाण्डु और कामलाके लिये अति हितकर औषधियाँ हैं। मण्डूर और माक्षिक, दोनों लोहभस्मके ही सौम्य रूप हैं। बालक, नाज़ुक प्रकृतिके स्त्री-पुरुष आदिको सत्वर पचन होते हैं। रक्तपित्त या रक्तस्राव होने या पित्तप्रकोपजन्य दाह अधिक होनेपर मण्डूरके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलाई जाती है। अनुपान रूपसे कुमार्यासव या मूलीका रस और मिश्री देनेसे यकृत्के पित्तका अन्त्रमें सम्यक् स्राव होने लगता है, मलरंजित होता है, और रक्तमें रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है। कुम्भ कामलापर मण्डूर या लोहभस्मके साथ पुनर्नवादि क्वाथ और शिलाजीतका सेवन करना चाहिये।

ताप्यादि लोह, नवायसलोह, योगराज रस—इन तीनोंमें लोहकी प्रधानता है। उपद्रवरहित रोगमें नवायस लोह दिया जाता है। श्वास, कास, शोथ आदि विकारसह कामला होनेपर ताप्यादि लोह और योगराज रस हितकारक है। यकृत्में रक्तवृद्धि को भी दूर करते हैं। इन दोनोंमें भी कफविकृति अधिक होनेपर योगराज रस विशेष लाभ पहुँचाता है। रक्तमें रक्ताणुओंकी वृद्धि करना और वातप्रकोपको दबाना, ये गुण ताप्यादि लोहमें अधिक हैं। ताप्यादि लोहसे रुधिराभिसरण क्रिया सत्वर सबल बनती है और रक्तप्रसादन होता है।

पञ्चामृत पर्पटी—दिनमें ३ बार शहदके साथ देते रहनेसे कामला, पाण्डु, अतिसार और ग्रहणी विकार दूर होते हैं।

द्राक्षावलेह—सौम्य औषधि है। नाज़ुक प्रकृतिवालोंके लिये हितकर है। एवं अनुपान रूपसे भी दिया जाता है। अम्लपित्त और मन्द वेगयुक्त चिरकारी कामलामें केवल इस अवलेहका उपयोग भी हितकर माना गया है।

कुष्माण्डावलेह—अम्लपित्तसह कामलामें विशेष लाभदायक है। जिनको पित्तकी उत्पत्ति अधिक होने लगती है, मस्तिष्कमें उष्णता बनी रहती है; रक्तपित्त या रक्तस्राव होता है; ऐसे रोगियोंको कुष्माण्डावलेह, उशीरासव, चन्द्रकलारस आदि देना हितकारक है।

पञ्चगव्य घृत और कल्याण घृत—स्नेहनार्थ एवं भोजनके लिये प्रयोगमें लानेसे रोग सत्वर शमन होता है।

महासुदर्शन चूर्ण—सौम्य और उत्तम औषधि है, ज्वरसह रक्तविनाशज कामला होनेपर इससे अच्छा लाभ पहुँचता है। अमृतारिष्ट और पर्पटारिष्टभी दिया जाता है।

बालमित्र चूर्ण तीसरी विधि—अति सौम्य, यकृद्विरेचक (यकृत्मेंसे पित्तका अधिक स्राव करानेवाला), शोथ हर और कब्ज़को दूर करनेवाला है। बालक, स्त्री, वृद्ध, युवा सबको निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। यकृत्में रक्तसंग्रह अधिक होनेपर कम कराता है।

२८. कामलाहर रस—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक ४-४ तोले, यवक्षार, सज्जीखार और नौसादरके फूल ८-८ तोले तथा त्रिफला चूर्ण १६ तोले लें। पहले पारद गन्धककी कज्जली करें। फिर शेष औषधियाँ मिलाकर ३ घण्टे खरलकर लेवें।

मात्रा—१-१ माशे दिनमें ३ बार मक्खन निकाली हुई छाछके साथ।

उपयोग—कामलाको दूर करनेके लिये यह उत्तम प्रयोग है। छाछ भातपर रहनेपर ३ दिनके भीतर रोग शमन हो जाता है।

संतरा, मोसम्मी, अंगूर, अनार खा सकते हैं। गन्ना चूस सकतेहैं। एवं रोगी कच्चे नारियलका जलभी पीसकता है।

२९. यकृत्में रक्तवृद्धि होनेपर—ताप्यादिलोह कुमार्यासव या पर्पटारिष्टके साथ देवें। यदि ज्वर हो, तो आरोग्यवर्धिनी या ज्वरकेसरी वटी देवें तथा यकृतपर दशांगलेपका मोटा लेप करें।

(३०) रक्तस्राव होनेपर चंद्रकला या सूतशेखर रस और कुष्माण्डावलेह विशेष हितकारक है। उशीरासव भी देते रहना चाहिये।

पथ्यापथ्य

पथ्य—पाण्डु रोगमें लिखे अनुसार इस रोगमें भी पथ्य पालन करना चाहिये। सामान्य रूपसे प्रकाशवाले पवित्र मकानमें रहना, ब्रह्मचर्य पालन, शीतल स्थानमें घूमना, पुराना शालि चावल, जौ, गेहूँ, मूंग, अरहरकी दाल, मसूर, थोड़ा घी, दूध, कची मूली, तोरई, कच्चे बेंगन, करेला, प्याज़, कच्चा केला, बिहदाना, ककड़ी अंजीर, नारंगी, अंगूर, मुनक्का, आलूबुखारा, लाल ईख, आँवला, पकी इमली, परवल, पालक, चंदलोई, सैंधानमक पीनेके लिये उबालकर शीतल किया हुआ जल, जंगलके पशुओंके मांसका रस, पुनर्नवा, गोमूत्र, हरड़, थोड़ी मिश्री, कुटकी और पेठा आदि पथ्य हैं।

कामला रोगकी चिकित्साके प्रारम्भमें स्नेहपान और विरेचनसे देहको शुद्धकर लेना चाहिये। रोगी यदि केवल दूध, भात और थोड़ी शक्करपर रहे और नमक भी छोड़ दे* तो सत्वर लाभ होता है। अधिक प्रकारका भोजन लेना हो, तो फुलका, खिचड़ी, मूंग या मसूरकी दाल, कची मूली, परवल, चंदलोई और कच्चे

---

* रोगीको क्षार प्रधान औषधि देवें, तो मक्खन निकाली हुई छाछ और भातपर रखना चाहिये। संतरा आदि फल ले सकते हैं।

केलेका शाक, थोड़ा सैंधानमक मिलाकर लेवें। तीक्ष्ण पदार्थ और गरम-मसाला इस रोगमें अति हानि पहुँचाता है।

जिन रोगियोंको भयंकर कण्डू हो, उनके लिये रात्रिको यदि चर्मरोगनाशक तैल, गन्धकका तैल या इतर कण्डुघ्न तैलकी मालिश करें, तो विशेष हितकारक है। यदि ऐसा न हो सके, तो प्रातःकाल स्नानके पहले तैल मर्दन करें। फिर गुनगुने जलमें सोड़ा या सज्जीखार मिलाकर स्नान करें। इस तरह नींबूके रससे मालिश करके भी स्नान कराया जाता है।

सुबह एरण्ड ककड़ी (पपीता) खिलानेसे मल शुद्धि और पित्तशमन दोनों कार्य हो जाते हैं। उदरमें वायु उत्पन्न न हो, तो पपीता देना चाहिये। ईख चूसनेसे भी पित्त नष्ट हो जाता है।

कितनेक देशोंमें रात्रिको कामला रोगियोंको १ मुट्ठी भुना चना और १—२ तोले मिश्री (या गुड़) खिलाने और जल न पिलानेका रिवाज है। इससे लाभ होते देखा गया है।

अपथ्य—पाण्डु रोगमें लिखे अनुसार अपथ्यका त्याग करें। एवं डटकर खाना, उड़द, पित्तवर्धक पदार्थ, लालमिर्च, गरम-मसाला, ज़्यादा नमक, दाहकारक भोजन, हींग, मैदेके पदार्थ, क्षार, धूम्रपान, शराब, मत्स्य, मांस, अधिक घी, राई, सरसों, तैल, नया गुड़, चाय, गरम-गरम भोजन, सूर्यके तापका सेवन, अग्निसेवन, क्रोध, मैथुन, मार्गगमन और अधिक श्रम आदिका त्याग करना चाहिए।

पथ्यापथ्य सम्बन्धी विशेष विचार

यकृद्विकार—कामला, यकृद्दाल्युदर, यकृद्विकारजन्य जलोदर, वमन, अर्श, अतिसार, अजीर्ण, यकृत्में रक्तवृद्धि, पित्ताश्मरी, यकृद्दाह, यकृत्में शूल, यकृद्विद्रधि, यकृत्पर कर्कस्फोट या रसार्बुद, पित्तप्रकोप आदिकी चिकित्सा करनेके लिये पथ्यापथ्य, व्यायाम, जलवायु, स्नान, वस्त्रपरिधान, निवासस्थान, व्यवसाय, व्यसन आदिके सम्बन्धमें यथोचित लक्ष्य देना चाहिए। योग्य पथ्यापथ्यका पालन करनेसे रोग सत्वर शमन हो जाता है।

भोजन धीरे-धीरे चबाकर खाना चाहिए। दूधको भी मुँहमें खूब चला-चलाकर धीरे-धीरे पीना चाहिए। भोजन थोड़े परिमाणमें करना चाहिए और गर्म-गर्म नहीं करना चाहिए। हाथ लगानेपर शीतल मालूम हो, ऐसा भोजन लेना चाहिए। जो आहार द्रव्य यकृत्की क्रियाद्वारा पचन होते हैं, उन सबके परिमाणका ह्रास कर देना चाहिए या बिलकुल बन्दकर देना चाहिये। इस तरह यकृत्को शान्ति देनेके लिए गुड़, मिश्री, शक्कर, आलू, शक्करकन्द आदि शाक, श्वेतसार (मैदा) और चर्बी या घृत संयुक्त पदार्थोंको हो सके, उतना कमकर देना चाहिए। जिन रोगोंमें अन्त्रमें, पित्तस्राव अत्यधिक होता है, उन रोगोंमें शर्करा बिलकुल छोड़ देनी चाहिए। कारण,

शर्करसे यकृत्की क्रिया उद्रिक्त होती है, और अन्त्रमें उत्सेचन क्रिया बढ़ जाती है।

जो आहार यकृत्को उत्तेजना देनेवाले हैं, उन सबका त्याग कर देना चाहिए। लालमिर्च आदि विविध मसाला मिलाकर तैयार किया हुआ मांस और शाकभाजी आदिको हो सके उतना कम कर देवें। एवं खमीर प्राप्त ताज़ी पाव रोटी आदिका सेवन नहीं करना चाहिए। बासी पाव रोटी स्वल्प परिमाणमें ले सकते हैं।

यकृत्के निर्माण विकारकी शेषावस्था और यकृतमें रक्ताधिक्यकी परिणतावस्थामें लोहित वर्णके मांसका बिल्कुल निषेध करना चाहिए। पक्षियोंका मांस या श्वेत मांस लेना हो, तो ले सकते हैं। मछली खानेवालोंको बिना तैलवाली दे सकते हैं। अण्डे और दूधका सेवन लाभदायक है, किन्तु कितनेकोंको ये भी सहन नहीं होते। ऐसे समयपर अर्धपाचित दुग्ध (पेप्टोनाइज़्ड मिल्क) की व्यवस्था कर देनी चाहिए अथवा दूधके साथ समभाग जल मिला उबाल मात्र दूध शेष रहनेपर उतार शीतलकर पिलाना चाहिए। कितनेक रोगियोंको गुनगुने दूधमें थोड़ा सैंधानमक मिलाकर पिलाने से सहन हो जाता है। किसी-किसीको चूनेका जल, सज्जीखार (सोडाबाई कार्ब), क्षार जल आदि मिश्रित करके देनेसे दूध सरलतापूर्वक पचन हो जाता है, एवं किसी-किसीको दूधके स्थानमें मट्ठा विशेष अनुकूल रहता है। पथ्यके लिए सर्वदा रोगीकी पचनशक्ति तथा रोज़ लेनेके सामान्य भोजनके नियम आदिपर लक्ष्य देकर व्यवस्था करनी चाहिए। वर्तमानमें दीर्घकाल तक प्रकृति (स्वभाव) विरुद्ध कठोर पथ्यपालन करानेसे लाभके स्थानमें हानि पहुँच जाती है।

यदि उत्तेजक औषधि-आहार आदिकी आवश्यकता हो, तो आसव आदि दे सकते हैं। परन्तु शराब, काफी आदि नहीं देनी चाहिए।

फलोंमें मोसम्मी, मीठानींबू, मीठा अनार, संतरा आदि दे सकते है। शाकके लिये लौकी, मीठी तुम्बी, तोरई, बैंगन, चंदलोई, बथुआ, पालक, कुष्माण्ड आदि देने चाहिएँ। अन्नमें जौ, गेहूंके मोटे आटेकी रोटी, पुराने चावलोंका मांड निकाला हुआ भात तथा मूँग, मसूर या अरहरकी दालका यूष दिया जाता है।

भोजन दिनमें ३-४ या ५ बार थोड़ा-थोड़ा देना चाहिये। एक साथ अधिक भोजन न दें। यकृत्के कितनेक विकारोंमें तरल द्रव्यका निषेध किया जाता है। अतः इस बातको भी लक्ष्यमें रखकर पथ्य व्यवस्था करनी चाहिए। आहारके पदार्थोंका विभाग और आमाशय आदि स्थानोंमें पचन प्रकार आदिका विवेचन प्रथम-खण्डके भीतर अग्नि मांद्यके वर्णनके साथ किया गया है।

व्यायाम—यकृत्की विविध व्याधियोंसे विमुक्त होनेपर व्यायाम और शुद्ध वायुका सेवन अति हितकारक माना जाता है। जिन क्रियाओंसे उदरमें रक्त-संचालन विधान उत्तेजित हो, वे सब हितकारक हैं। आलसी स्वभाववालोंके लिये तो शुद्ध वायुमें भ्रमण अत्यन्त आवश्यक है। व्यायाम, अश्वारोहण और भ्रमणसे

फुफ्फुस, श्वासवाहिनियाँ, उदरकी मांसपेशियाँ आदि सबल बन जाते हैं। इनमें अश्वारोहण विशेष उपकारक है। इस बातको भी लक्ष्यमें रखना चाहिए कि तीव्र परिश्रम युक्त व्यायाम हानिकर है।

जलवायु—यकृत्के जीर्ण रोगियोंके लिये परिवर्त्तनका प्रबन्ध करना चाहिए। समुद्र भ्रमण या समुद्र किनारे निवास करनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। शिमला, मंसूरी, काश्मीर, महाबलेश्वर, दार्जिलिंग आदि ऊँचे पहाड़ी प्रदेशोंका जलवायु बहुधा सहन नहीं होता। कितनेक नगरनिवासी रोगियोंके छोटे ग्रामोंमें रहनेपर शरीर स्वस्थ हो जानेके उदाहरण मिले हैं। जिस स्थानमें मलेरियाका प्रकोप होता हो, ऐसे स्थानमें यकृत्के रोगीको नहीं रहना चाहिए।

स्नान—यकृत्के रोगीको शीतल जलमें, वस्त्र भिगोकर अंग पोंछ लेना चाहिए या निर्वात स्थानमें शीतल जलसे स्नानकर शरीरको कपड़ेसे दृढ़तापूर्वक रगड़कर पोंछना चाहिए। स्नान करके बलपूर्वक अंग पोंछनेसे त्वचाकी क्रिया प्रबल होती है, बलकी वृद्धि होती है; विष निकल जाता है और मानसिक प्रसन्नता होती है।

यदि यकृत्में रक्ताधिक्य है, तो रोगीको ईषदुष्ण (गुनगुने) जलसे स्नान कराना चाहिए और स्नानकरके सब अंगोंको उत्तम रूपसे रगड़ना चाहिए। स्नान जहाँ तक हो सके सुबह ही कराना चाहिए। परिश्रम मानसिक उद्वेग और भोजनके पश्चात् तो स्नान कदापि नहीं कराना चाहिए।

रोग जीर्ण हो, तो जलके साथ सज्जीखार (सोडाबाई कार्ब) नमक या नमक-शोरेका तेज़ाब (नाइट्रो हाईड्रोक्लोरिक एसिड) मिलाकर स्नान कराना चाहिए। स्नान के लिये टबमें ६६ डिग्री गरम जल भरें। फिर उसके भीतर १ गेलन जलमें १।। औंसके हिसाबसे तेज़ाब मिला लेवें। स्नान सम्बन्धी विशेष नियम प्रथम-खण्डके शरीर शोधन-प्रकरणमें दर्शाये हैं। इसके अतिरिक्त १ फीट चौड़े और दो गज़ लम्बे फलालेनको तेज़ाब मिश्रित जलमें भिगो निचोड़कर यकृत्के ऊपर लपेट देना चाहिए। फिर उसपर दूसरा गरम वस्त्र अथवा रोगनयुक्त रेशम (Oiled silk) लपेट देना चाहिए। इस वस्त्रको रोज़ रात्रिको बदल देना चाहिए।

यदि यकृत्में शूल चलता हो और पित्ताशयमें अश्मरी हो, तो गुनगुने जलसे स्नान कराना चाहिए। अश्मरीकणको निकाल देनेके लिये गुनगुने जलका स्नान हितावह है।

उष्ण जलका स्नान क्षीणता लाता है, इसलिये उष्ण जलसे स्नान-सप्ताहमें २-३ बारसे अधिक नहीं कराना चाहिए। यदि मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य जनित चक्कर, कानमें सूँ सूँ आवाज़ आना, शिरमें भारीपन आदि हो, तो गरम जलसे स्नान नहीं कराना चाहिए। कामला आदि रोगोंमें स्वेदन और बाष्प स्नानसे अनेक बार अच्छा उपकार होता है।

वस्त्र परिधान—यकृत्की पीड़ा होनेपर शीतकाल और शीतल देशमें गरम

वस्त्र धारण करना चाहिए। गरम देश और ग्रीष्म ऋतुमें भी वस्त्रकी सम्हाल योग्य रूपसे रखना चाहिए। शीतसे आग्रहपूर्वक बचना चाहिये। यदि यकृत्‌में रक्ताधिक्य है या रोगी रक्ताधिक्यके वशवर्ती है, तो यकृत्‌के ऊपर सर्वदा सतत फलालेन या गरम वस्त्र बँधा रहना चाहिए।

निवासस्थान—यकृत्‌के पीड़ाग्रस्त रोगीको एवं व्याधिके वशवर्तीको सर्वदा शुष्कस्थानमें रहना चाहिए। जिस स्थानमें सूर्यका ताप अधिक समयतक रहता हो, ऐसा स्थान हितकारक है। शौच आदिके लिये भी निर्वात स्थानका प्रबंध करना चाहिए। तीव्र वायुवाले स्थानमें शौच नहीं जाना चाहिए।

व्यवसाय—यकृत्‌के रोगीको ऐसा उद्योग करना चाहिए कि, जिसमें शरीरको श्रम पहुँचता रहे। बिल्कुल बैठे रहनेवाले व्यापारका त्याग करना चाहिए। एवं जिन उद्योगोंमें क्षणमें उष्णता, क्षणमें शीतलता बार-बार शरीर गीला होजाना आदि होते हों, ऐसे कार्योंको तो छोड़ ही देना चाहिए।

व्यसन—शराब, अफीम, भांग, गांजा, बीड़ी, सिगरेट, तमाखू, चाय, काफी, आदि व्यसनोंका त्याग करदेना चाहिए। रोग निवारणार्थ नियमित समयपर भोजन, मर्यादित पथ्य आहार, नियमित समयपर शयन, यथासमय शय्या त्याग, यथा समय स्नान और यथोचित व्यायाम आदिका सेवन करना चाहिए।

सूचना—यकृत रोगियोंको विलास परायणता, आलस्य, सीलवाले मकानमें रहना, असमयपर सोना, अपथ्य भोजन, तेज़ शीतल वायुका सेवन, क्षणमें शीतल और क्षणमें उष्ण स्थानपर जाना, गरम-मसाला, देरसे पचनेवाला भोजन गरम-गरम भोजन और गरम-गरम दूध आदि हानिकर हैं।

१४. यकृत्‌का आशुकारी पीतशोष

एक्यूट यलो एट्रॉफी ऑफ दी लिवर, एक्यूटनेक्रोसिज़ ऑफ दी लिवर।

(Acute yellow Atrophy of the Liver,

Acute Necrosis of the Liver.)

यह आशुकारी रोग है। इसमें यकृत्‌के क्रियाशील घटक (Parenchymatous) प्रभावित होनेसे यकृत् प्रदाह होता है। फिर रोग वृद्धिके साथ-साथ कोषाणुओं के व्यापक नाशकी वृद्धि। रोग संप्राप्तिकी दृष्टिसे कोषाणुओंके विनाशके साथ यकृत्‌के विस्तारका ह्रास। लक्षण दृष्टिसे कामला, विषप्रकोप, वातनाड़ियोंकी विकृतिके लक्षण, यकृत्‌का ह्रास और कोषाणुओंकी मृत्यु वृद्धि। लक्षणात्मक दृष्टिसे डॉक्टरीमें गम्भीर कामला-इक्टेरस ग्रेविस (Icterus Gravis) संज्ञा दी है।

यह रोग सामान्यतः २० से ४० वर्षकी आयुमें होता है। क्वचित् बालकोंको। स्त्रियाँ सगर्भा होनेपर इस रोगके अधिक वशवर्ती। पीड़ितोंमें लगभग ३० प्रतिशत सगर्भा। अति क्वचित् चौथे मासके पहले। सामान्यतः ६–७ मास होनेपर।

निदान—मुख्य कारण अज्ञात। रासायनिक विष-क्लोरोफार्म, फॉस्फोरस,

शराब आदि हैं। फॉस्फोरसका विषप्रकोप होनेपर। सामान्यतः यकृत् बड़ा हुआ तथा वसा अत्यधिक। किन्तु कम आशुकारी विषप्रकोप होनेपर यकृत वैसाही, किन्तु अन्य आकारका बन जाता है और सम्भवतः वसाका शोषण होजाता है।

शारीरिक विकृति यकृत्—कदमें बहुत छोटा। वज़न २० से ३० औंस या कम (स्वस्थावस्थामें ६४ से ८० औंस), रंग हरिताभ पीत। यकृदावरण शिथिल, झुर्रीदार और सरलतासे पृथक् होने योग्य। नीचे रक्तस्राव। खण्डोंमें पीले और लालप्रदेश तथा चित्र विचित्रदाग।

यकृत्में पीला प्रदेश—पित्तके हेतुसे। वसा और नष्ट कोषाणुओंके बीचमें। नष्ट कोषाणु सब अवस्थाओंके। रक्तस्राव कोषाणुओंके बीचमें। यकृत्कणिकाके मध्य मण्डलमें उस स्थितिका आरम्भ। छोटी पित्तनलिकाओंका प्रदाह और यकृत्कोषाणुओंका पुनर्जनन विद्यमान्।

यकृत्में रक्त प्रदेश—उक्त अवस्थाके पश्चात्। वसा और नष्ट तन्तुओंका शोषण होजाना। सौत्रिक तन्तु और कैशिकाएँ केवल शेष रहना। पीतप्रदेश नीचा होजाना। लम्बे कालमें रक्त प्रदेशकी अधिक वृद्धि होजाना।

वसापरिमाण—साधारणतः कुछ वृद्धि, ५ से १० प्रतिशत फॉस्फोरसके विष प्रकोपमें ५० से ८० प्रतिशत।

ल्यूसिन, टाइरोसिन—और अन्य अमिनोम्ल विशेष रूपसे बढ़ जाते हैं। सतह काटनेपर वहाँ विशेष रूपसे संचित होजाते हैं। ल्यूसिन और टाइरोसिनकी उत्पत्ति संभवतः यकृत्कोषाणुओंकी अपक्रान्तिके हेतुसे।

अन्य अवयव—पित्तरंजित और कितनेक स्थानोंमें रक्तस्राव युक्त। आमाशय-अन्त्र मार्गमें शोथ और गम्भीर प्रदाह, विशेषतः उण्डुकमें वृक्क प्रदाहमय। हृदय वसामय अपक्रांतिसह। प्लीहावृद्धि, अन्तराकला रक्त द्रवसे रंजित।

लक्षण—२ समूहोंमें।

१. प्रथमावस्थामें—आशुकारी यकृत्प्रदाहावस्था (प्रसेकी कामला) के गम्भीर और वर्द्धनशील लक्षण। यकृतवृद्धि ५–६ दिन या ३ से ५ सप्ताह तक।

२. द्वितीयावस्थामें—यकृत्की पतनावस्था। सत्वर प्रगतिशील, गम्भीर और वातनाड़ी विकृतिके लक्षण। शिरदर्द, यकृत्को दबानेपर अधिक वेदना, मांसपेशियोंमें जकड़ाहट। आक्षेप या प्रलापसे मूर्च्छा और मृत्यु। वमन अदम्य। कामला सामान्यतः गम्भीर। सगर्भा हो, तो गर्भपात। रक्तके धब्बे और रक्तस्राव सामान्य, विशेषतः त्वचा, श्लैष्मिक-कला और नेत्र दर्पण (Ratina) में। रक्तमें पित्तकी वृद्धि। प्रलापावस्था (Typhoidal state) सह तेज़नाड़ी, शुष्क जिह्वा आदि। शारीरिक उत्तापविविध

(बहुधा मन्द क्वचित् १०५°) मृत्युके पहले अधिक। स्थितिकाल २ से ७ दिन। *

यकृत्की शिथिलता—वर्द्धनशीलावस्थाका दमन। यदि यकृत् पीछेकी ओर जाता है और प्रसारित अन्त्र आगे निकलते हैं—तो संपूर्ण लोप।

मूत्र—अनिकम मात्रामें। पित्त विद्यमान्। शुभ्र ग्रथिन और निक्षेप सामान्यतः अधिक मात्रामें शर्कराका अभावनत्रके मल त्यागका अम्ल परिवर्त्तन (Acidosis), सब नत्रका नाश। मूत्रीयाकी मात्रा न्यून। अमोनिया नाइट्रोजनका परिमाण अत्यधिक (२० से ५० प्रतिशत) अमिनोऽम्ल अधिक। ल्यूसीन, टाइरोसीन सामान्यतः विद्यमान्, कभी-कभी निक्षेप रूपसे कभी अभाव। इस परीक्षा परसे भी यकृत्का आशुकारी पीत शोषका रोग निर्णायक लक्षणका अभाव।

मलावरोध—गम्भीर। मल रक्तसह गाढ़े रंगका और घृणाजनक।

रक्तमें मूत्रीया—न्यून। क्षार संग्रह कम। रक्तशर्करा कम।

रक्त—रक्तरस पित्तरंजित। थक्का बंधना देरसे। अति पतला।

वानडेन बर्ग्रकी प्रतिक्रिया—सत्वर प्रत्यक्ष प्राह्य।

रोगविनिर्णय—मुख्य सारभूत लक्षण—कामला, वमन होते रहना, वात प्रकोपके लक्षण, यकृत्का ह्रास, मूत्र संस्थानमें परिवर्त्तन।

फॉस्फोरसजन्य विष—लक्षणोंकी दो अवस्थाओंके बीच विभिन्न विराम, यकृद् वृद्धि वसामय और वसापक्रांति विस्तृत होनेपर विषका निर्णय।

साध्यासाध्यता—परीक्षा दर्शक लक्षणोंके होनेपर स्वास्थ्य प्राप्ति असम्भव। क्वचित् सप्ताहोंके लिये सुधार और रोग स्थितिमें वृद्धि। फिर मृत्यु उग्र आशुकारी प्रकारमें कभी स्वास्थ्यकी आशा रख सकते हैं। आशुकारी प्रकारमें सामान्यतः मृत्यु २ साप्ताहके भीतर।

चिकित्सोपयोगी सूचना

रोगीको शय्यापर पूर्ण आराम देवें। अमलत्व वृद्धि (एसीडोसिस) के दमनार्थ क्षारीय

---

* परीक्षा करनेपर दुःसाध्य वमन, गम्भीर सिरदर्द, व्याकुलता, मांस पेशियोंमें खिंचाव, तेज नाड़ी, अरुचि, अग्निमान्द्य, तृषा, शारीरिक उत्ताप सामान्यतः ९९° से १०० , कनीनिका प्रसारित, तिलपिष्टनिभ मल, मलावरोध, स्थान-स्थानसे रक्तस्राव, विशेषतः आमाशय, अन्त्र, वृक्क और त्वचाके नीचेसे, मूत्र गहरा लाल, पित्तरंजक ग्रथिन और प्रक्षेपमय, मूत्रमें ल्यूसिन और टाइरोसिन प्रक्षेपभी विद्यमान् और रक्तकम क्षारसंग्रह-मय आदि लक्षण चिन्ह प्रतीत होते हैं।

रोगकी जीर्णावस्थामें त्वचाका रंग हरा होजाता है। यकृत्प्रदेशमें वेदना, प्रताप, आक्षेप, तन्द्रा बेहोशी, शुष्क और पिङ्गल जिह्वा सामान्यतः ज्वर १०२°, मलमय रक्त जाना आदि लक्षण। आयुर्वेदमें कहे हुए असाध्य कामलाके लक्षण इस रोगमें मिलते हैं।

औषधि (सोडा बाई कार्ब) और द्राक्षशर्करा देवें। उदरको शुद्ध रखना चाहिये। प्रतिदिन शौच शुद्धि होनी चाहिये। व्याकुलता और निद्रा नाशके लिये सूतशेखर (पर्पटारिष्टके साथ) या चन्द्रकलारस। (अफीम वाली औषधि न देवें, अन्यथा विष प्रकोपकी वृद्धि हो जायगी। डॉक्टरीमें निद्रा लानेके लिये ब्रोमाइड १० से ३० ग्रेन दिनमें ३ वार देनेका विधान है।

रोज़ संतरेका शर्बत या द्राक्ष शर्करा नींबूके शर्बतके रूपसे पिलाते रहें या गुदाद्वारा नमक जल ४–८ औंसके साथ ५ प्रतिशत द्राक्षशर्करा ४–६ घण्टेपर देते रहना चाहिये।

रोगीको दूध, शर्करा, मोसम्मीके रस, संतरेके रस, नींबूके रस आदिपर रखना चाहिये। डॉक्टरी मत अनुसार प्रतिदिन कम-से-कम १–२ औंस द्राक्ष शर्करा तो देते ही रहना चाहिये।

सगर्भावस्थामें अपस्मार सदृश (Eclampsia) के अनुसार करनी चाहिये। इस अवस्थामें (सूतशेखर लाभ न होनेपर निरुपायवश अतिसूक्ष्म मात्रामें मोर्फिया और एट्रोपिन का अन्तः क्षेपण किया जाता है। मूत्र शुद्धिके लिये कटि प्रदेशपर दोनों ओर अलसीकी रोटी बाँधते हैं। इस आक्षेपमें वृक्क प्रदाह होता है। अतः आशुकारी वृक्क प्रदाह शामक चिकित्सा हितकर होती है। मूत्र विरेचन नहीं देना चाहिये।

यकृत्का मन्दाशुकारी पीतशोष

(Sub acute Necrosis of the Liver)

इस प्रकारमें यकृत्के कोषाणुओंका नाश मन्द वेगसे होता है। जिससे यकृत्प्रदाह न्यून होता है। और पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्तिकी आशा रख सकते हैं।

यकृद् विकृति— यकृत् छोटा और अतिअनियमित। कतिपय गोल ग्रन्थियों-सह। यकृत् कोषाणुओंका नाश होकर सौत्रिक तन्तु उत्पन्न होते हैं, उनके कोषाणु यकृत्कोषाणु और यकृत्की नलिकाओंके सदृश भासते हैं।

दबा हुआ क्षेत्र—सौत्रिक तन्तुओंकी रचना वाला। विनाशके पश्चात् मूल आकारका अभाव। व्यापक देखाव, आशुकारी पीतशोष और यकृद्दाल्युदरके बीचका।

अतिनया रोगी—आशुकारी यकृत् पुनर्जननके मध्यवर्त्ती प्रदेशसह क्षेत्र अप्रभावित।

वक्तव्य—इस महत्वकी स्थितिके सम्बन्धमें अभीतक परिचय अति अपूर्ण मिला है।

चिकित्सा—आशुकारी प्रकार और कामला रोगके अनुरूप।

१५. आशुकारी संक्रामक यकृत्प्रदाह

Acute infactive Hepatitis–Epidemic Jaundice—
Catarrhal Jaundice.

यह रोग अज्ञात विषकी संप्राप्तिजन्य होता है। इसका सम्बन्ध स्पिरोकेटस

कामला से नहीं है। प्रसेकी और जनपद व्यापी प्रसेकी, ये दोनों कामला सामान्यतः होते रहते हैं। दोनोंमें पित्त नलिकाओंका प्रसेक होता है। फिर यकृत् प्रदाह होजाता है।

विकीर्ण और जनपद व्यापी, दोनों प्रकारके रोगोंमें लक्षणात्मक संप्राप्त्यात्मक दृष्टि से कुछभी भेद नहीं है। जनपद व्यापी प्रकारका कारण अभीतक ज्ञात नहीं हुआ। इसमें मृत्यु संख्या बहुत कम होती है। जनपद व्यापी प्रकारमें कुछ रोगियोंको यकृत्के तन्तुओंका आशुकारी नाशसह पूर्ण स्वास्थ्यकी प्राप्ति होजाती है।

इस रोगकी संप्राप्ति विशेषतम बालकोंको और युवकोंको होती है। बड़ी आयु होनेपर लक्षण गम्भीर और कामला प्रायः दीर्घकाल स्थायी होती है।

संक्रमण शक्तिका स्थितिकाल—अनिश्चित्। सम्भवतः पूर्वरूपमें तथा कामला आक्रमणके पश्चात् ३-५ दिन तक।

सहायक कारण—अति शराब सेवन और अकस्मात् शीत लग जाना आदि।

चयकाल—(१) प्रत्यक्ष संक्रमणमें सामान्यतः २० से ३५ दिन। इससे भी लम्बा हो सकता है। संभवतः कम नहीं। (२) अन्तः क्षेपणसे १० से १२ सप्ताह। निर्दिष्ट मर्यादा ९ से १५ सप्ताह, कभी ६ मास।

पूर्वरूप—अवसन्नता और अरुचि, ये प्रायः पूर्व-कालमें और गम्भीर वमन, अतिसार कुछ सामान्य। स्थिति १ से १० दिन।

लक्षण—१. कामला—तेजस्वी पीतवर्ण। चिरकारी कामलाकी गहरी आभा कभी नहीं होती। इसका देखाव १-१० दिनमें होता है।

२. क्षुधानाश—उबाक और वमन (विशेषतः भोजन अधिक होनेपर), सिर-दर्द, मल लिप्त जिह्वा और बेचैनी, ये सब शनैः-शनैः बढ़ते हैं।

३. शारीरिक उत्ताप—विविध। सामान्यतः १०१° से १०२°।

४. अवरोधक कामलाके सदृश लक्षण—मूत्रमें पित्त जाना, तिलपिष्ट-निभमल, मलावरोध, मस्तिष्कका अवसाद, कण्डु, मन्दनाड़ी और पित्तरंजित रक्तरस। पित्ताशय शूलका अभाव या गम्भीर वेदना। पीठ और हाथ-पैरोंमें एक साथ वेदना।

५. यकृत्—प्रायः किंचित् बढ़ा हुआ और मृदु। प्लीहाभी स्पर्शग्राह्य।

६. रक्त—श्वेताणुओंका ह्रास। लसीकाणुओंकी वृद्धि। रक्ततन्तु वाहक (Prothrombin) की समताका ह्रास। रक्त, जमनेके समयकी वृद्धि।

७. वानडेन बर्धकी प्रतिक्रिया—द्विविध प्रकारकी या विविध।

८. कामला सूची—१५ एकाई से अधिक बढ़ी हुई। १०० अथवा अधिक।

९. यकृत्की कार्यकारिताकी परीक्षा—कुछ दिनोंके लिये दुर्बल यकृत्की क्रिया सुस्पष्ट।

सूचना—(१) कामलाका अभाव। पिंगल मूत्रपित्त (Urobilin) सामान्यतः बढ़ा हुआ, ये पूर्ववर्ती लक्षण मात्र हैं। संक्रामकता जनपद व्यापी प्रकारमें किञ्चित् स्वीकार करने योग्य।

(२) अन्तः क्षेपित समूह—लम्बा चयकाल और कामलाका लम्बा स्थिति काल (४ से ८ सप्ताह) शीतपित्त सामान्य ।

क्रम और सीमा—स्थितिकाल २ से ५ सप्ताह, रंग प्रायः कुछ म्लान । सामान्य गम्भीरता वाले रोगियोंमें रोग शमन होनेके पश्चात् म्लानताका अभाव । आक्षेप अवश्य । मृत्यु संख्या २ प्रति सहस्रसे भी कम । आशुकारी तन्तुनाशसह रोगका क्रम सामान्यतः त्वरित, २ से ६ सप्ताह ।

रोगविनिर्णय—कामला होनेके पहले निर्णय नहीं हो सकता । युवा रोगीमें कचित् उत्तरकालमें कठिनता होती है । बड़ी आयुवालोंमें कर्करस्फोट तो नहीं है, यह निर्णय कर लेना चाहिये । वीलके रोगमें अधिक उत्तापका अभाव, चिपन्निपापन—अधिक केन्द्रमय रक्ताणु और लेप्टोस्पिरा कीटाणुओंका सद्भाव होनेसे इस रोगसे प्रभेद होजाता है ।

चिकित्सोपयोगी सूचना—उष्ण शय्यापर आराम करें ।

भोजन—अधिक कर्बोदक और न्यून वसामय । उत्तम प्रथिनमय (न्यून प्रथिनमय हानिकर) यदि वमन होती है, तो द्राक्ष शर्करा मिलाकर थोड़ा-थोड़ा शीतल जल पिलावें ।

उदर—जुलाब न देवें किन्तु अन्त्रको शुद्ध रक्खें । सौम्य सारक औषधि देते रहें । आक्षेपकालमें—भारीभोजन और शीतल योगका त्याग करें ।

औषधि योजना—इस रोगकी मुख्य औषधि सूतशेखर है । यह यकृत्प्रदाहके अतिरिक्त आमाशय और अन्त्रमें रहे हुए विषको भी दूर करता है । सूतशेखर, अमृतासत्त्व और शहदके साथ दिनमें २ बार देते रहें विशेष चिकित्सा कामला रोगमें लिखे अनुसार ।

इस रोगमें क्षुधा नष्ट हो जाती है, परन्तु जब चिकित्सासे लाभ होनेपर क्षुधाकी वृद्धि होती है, तब भी एक समयमें अधिक भोजन नहीं करना चाहिये । शनैः-शनैः आहार बढ़ाना चाहिये । घृत, तैल, मत्स्य, मांस, गरम-मसाला आदि आहारका उपयोग हो सके, उतना कम करना चाहिये । एवं शराबका तो बिल्कुल त्यागकर देना चाहिये ।

यकृत्प्रदाह होनेपर अधिक मद्यपान करनेसे यकृद्दाल्युदर, मेदोवर्धक आहारका अधिक सेवन करनेसे यकृत्में मेदोभरण, पारद; किनाईन, आदि औषधियोंका अधिक व्यवहार करने या उपदंश अथवा क्षय रोगकी उत्पत्ति हो जाय, तो मोमवत् यकृत्, तथा उपदंश हो जानेसे ग्रन्थिमय यकृत आदि व्याधियाँ उपस्थित होती हैं । अतः पथ्यापथ्यके सम्बन्धमें आग्रहपूर्वक सम्हाल रखना चाहिये ।

पथ्यापथ्य—कामलारोगमें कहे अनुसार ।

यकृत्की सिक्थापक्रांति

मोमवत् यकृत्—अमिलोइड लिवर—वेक्सी लिवर । Amyloid Liver-Waxy Liver.

अपक्रांति—(Degeneration) शरीरके किसी तन्तु (Tissue) के मूलभूत जीवन पदार्थ (Protoplasm) के रासायनिक (Chemical) परिवर्त्तन या सूक्ष्मतम अणुओंके वैधानिक (Molecular) परिवर्त्तन होनेसे तन्तुओंके धर्म और प्रकृतिमें रूपान्तर होकर शनैः-शनैः तन्तु विनाशके वशवर्त्ती हो जाय, उस क्रिया अथवा विकारको अपक्रान्ति और अपकर्ष कहते हैं। इस अपक्रान्तिसे पीड़ित होनेपर संयोजक तन्तु स्वकार्य करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। अपक्रान्तिके अनेक प्रकार हैं। इनमें से सिक्थापक्रान्ति, यह यकृत्‌को अधिक प्रभावित करती है।

रोग परिचय—यह यकृत्‌की चिरकारी वेदना है। इस व्याधिमें यकृत्‌के कोष-समूह या रक्तवाहिनियाँ अथवा दोनोंकी स्थानिक अथवा व्यापक सिक्थापक्रान्ति होती है। कण्ठमाल अपची (Scrofula) के पदार्थके समान इसमें नूतन कोषोंकी उत्पत्ति नहीं होती। इसमें तो संयोजन तन्तुओंमें मोमवत् पदार्थ संचित होता जाता है।

इस अपक्रान्तिसे यकृत्‌का वज़न बढ़ जाता है। कभी-कभी वज़न १॥ सेरसे बढ़कर ८ सेर पर्यन्त, किन्तु मेद की अधिकता न हो, तो इसके अवयवमें कुछभी विलक्षणता नहीं होती। कोई-कोई समय यकृद्‌वृद्धि इतनी होजाती है कि दक्षिण वृक्क और प्लीहा आदि इतर यन्त्र आच्छादित होजाते हैं।

इस अपक्रान्तिमें बहुधा मंडलके बाहर मेदसंचय, मध्यमें मोमवत् द्रव्य संचय और भीतर धातुरंजक द्रव्य (Pigment) संगृहीत होता है।

प्रारम्भिक कारण—

१. क्षय कीटाणु—विशेषतः बहुधा अस्थियों और फुफ्फुसके।

२. फिरंग विष—विशेषतः अस्थि और गुद नलिकामें पूयोत्पत्ति (नियत नहीं) इनके अतिरिक्त कभी-कभी अस्थि वक्रता, गम्भीर ज्वर, कर्कस्फोट आदि भी।

संप्राप्ति—यकृत्‌वृद्ध, ठोस और रक्तहीन। सतहपर उज्ज्वल।

सूक्ष्म रचना विकृति—

यकृत्‌के भीतर अनेक सूक्ष्म कंदिकाएँ (Lobules) हैं। उनके भीतर रही हुई केशवाहिनियोंकी दीवारके उपान्तः स्तर (Sub endothelial layer) से अपक्रान्तिका प्रारम्भ होता है। केशवाहिनियाँ सूज जाती है। फिर इस अपक्रान्तिसे उत्पन्न पदार्थका यकृत्‌के कोषाणुओंपर दबाव पड़नेसे वे सब चिटक जाते हैं; और अपक्रान्तिग्रस्त होकर शीर्ण (Atrophy) होजाते हैं।

यकृत्‌को काटनेपर कटा हुआ भाग तेजस्वी और मोम सदृश पीले वर्णका प्रतीत होता है। यदि इसके ऊपर टिंचर आयोडीन डाला जाय, तो उसका वर्ण गहरा रक्त मिश्रित बन जाता है; फिर वह क्रमशः तिरोहित होकर मूल रंगकी प्राप्ति हो जाती है। यदि आयोडीन प्रयोगके पश्चात् ५ प्रतिशत गन्धकके तेज़ाबका द्रव डालें,

तो वर्ण काला-नीला या बैंगनी-सा हो जाता है। यदि मेथिल वायोलेट (Methyl Violet) का प्रयोग किया जाय, तो वर्ण गुलाबी हो जाता है।

लक्षण—अनिश्चित। यकृत् बढ़ा हुआ। किनारा गोल और मुलायम। प्लीहा प्रायः स्पर्श ग्राह्य। जलोदरका अभाव। यकृत्में व्यापक अपक्रान्ति होनेपर पाण्डुता, शीर्णता, अतिसारभी (यदि अन्त्र प्रभावित होगये हों तो) तथा लसीकामेह (मूत्रमें-शुभ्रप्रथिन जाना) आदि। इनके अतिरिक्त उबाक, वमन और अफारा भी हो सकता है। किसीको प्रारम्भमें कामलाभी। रोगके अन्तमें प्लीहा, वृक्क और अन्त्रभी दूषित होजाते हैं।

रोगविनिर्णय—बढ़ा हुआ यकृत् और रोग वहन करने वाले कारण उपस्थित होनेसे सरलतासे निर्णय।

साध्यासाध्यता—परिणाम अति भयंकर। क्षीणता बढ़ती जाती है। किसी प्रकारकी चिकित्सासे लाभ नहीं होता।

मोमवत् यकृद्व्याधि चिकित्सा

इस रोगकी चिकित्सा प्रारम्भावस्थामें रक्तशोधक और रक्तपौष्टिक औषधियों द्वारा हो सकती है। यदि रोग अति बढ़ गया है, तो परिणामका निर्णय नहीं हो सकता। लघु-पौष्टिक पथ्य भोजन और ऊनी वस्त्र परिधान लाभदायक है।

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रहमें लिखी हुई औषधियोंमेंसे योगराज रस, ताप्यादिलोह, जयमंगल रस, हेमगर्भपोटली रस प्रथम-विधि, लक्ष्मीविलास रस सुवर्णयुक्त, नवायस रस, तक्रमण्डूर, भृंगराजासव, त्रिफलारिष्ट और अष्टमूर्ति रसायन आदि औषधियाँ हितकर हैं।

पूयजन्य विकारमें वङ्ग भस्म, योगराज रस या ताप्यादि लोह, क्षयजनित विकारमें हेमगर्भपटोलीरस और लक्ष्मीविलास, जीर्ण विषमज्वरजन्य व्याधिमें जयमंगल रस और उपदंशज विकारमें अष्टमूर्त्ति रसायन देना हितकर है। इन औषधियोंके सेवन-कालमें शिलाजीत देते ही रहना चाहिये। यदि रक्तमें न्यूनता है और अपचन बना रहता है, तो भोजनकर लेनेपर त्रिफलारिष्ट पिलाते रहना चाहिये।

रोगकी प्रथमावस्थामें यदि रोगीको तक्रकल्प कराया जाय और तक्रमण्डूर दिन में दो या तीन बार थोड़ी-थोड़ी मात्रामें देते रहें, तो रोगी स्वास्थ्य प्राप्तकर लेता है।

पथ्यापथ्य—कामलारोगमें लिखे अनुसार।

१७. मेदमय यकृत्

फेटीलिवर—Fatty Liver.

इसके २ प्रकार हैं। १. मेदोभरण, २. मेदापक्रान्ति। इनमेंसे मेदोभरण (Fatty infiltration) की संप्राप्ति यकृत्के घटकोंमें नूतन वसा द्रव्य भरजाने या मेदापक्रान्ति (यकृत्के घटकोंके जीवद्रव्यका विनाश) होनेपर होती है।

मेदोभरण—यह मेदोवृद्धि (Obesity) होनेपर उत्पन्न होता है। इन्द्रिय क्रिया विज्ञानकी दृष्टिसे सगर्भावस्थामें भी यकृत्‌में मेद २ से ३ प्रतिशत स्वस्थ अवस्था में रहता है। इस परिमाणकी वृद्धि होनेपर यकृत्‌का मेदोभरण कहलाता है। यह मेद तेज़ शराब और इथरमें डालनेपर पिघल जाता है। सिर्कामें नहीं गलता तथा ऑस्मिक एसिडमें काला हो जाता है। इस प्रकारका मेदोभरण होनेपर संयोजक तन्तुओं (Connective Tissues) के चारों ओर मेदकोष (Fat Globules) और मेदाणु (Molecular Fat) अस्वाभाविक रूपसे परिव्याप्त होजाते हैं।

मेदापक्रान्ति – संप्राप्ति विष प्रकोपसे। रासायनिक विष (शराब, क्लोरोफार्म, क्विनाइन, आयडोफार्म, सुवर्ण सोमल, फॉस्फोरस आदि) उद्भिद् कीटाणुविष (मोतीझरा, फुफ्फुसप्रदाह, पूयज्वर आदि) प्राणिज कीटाणु (विषमज्वर, स्पिरोकेटल कामला, फिरंग आदिके), सेन्द्रिय विष सगर्भावस्था, मधुमेह आदिसे उत्पन्न, इनमेंसे किसीभी प्रकारके विषका प्रकोप होनेपर बढ़ी हुई शीर्णावस्थामें मेदापक्रान्ति।

अपक्रान्ति होनेके पहले उस स्थानमें श्यामशोफ (Cloudy Swelling) उपस्थित होता है। जिससे घटक फूल जाते हैं और उनमें रहे हुए मूलभूत जीव द्रव्य (Protoplasm) में नूतन कणोंकी उत्पत्ति हो जाती है और वे सब श्याम बन जाते हैं। उनमें रहे हुए जीवकेन्द्र (Nuclei) प्रायः अदृष्ट होजाते हैं। यदि यह परिवर्त्तन मर्यादाके भीतर हो, तो घटक पुनः पूर्ववत् होजाते हैं। किन्तु शोफ अत्यधिक होनेसे, परिवर्त्तनके पश्चात् मेदाक्रान्ति (Fatty Degeneration) हो जाती है।

मेदापक्रान्ति होनेपर तन्तु कोमलतर होजाते हैं। उनके परिमाणकी वृद्धि हो जाती है और उनके टूट जाने या फट जानेकी विशेष सम्भावना रहती है। इस अपक्रान्तिसे पीड़ित अवयव पीताभ या पिङ्गलवर्णका होजाता है। उस यन्त्रकी स्वाभाविक क्रिया यथोचित नहीं होती। इस अपक्रान्ति युक्तस्थानको काटनेपर छुरीको भी मेद समान दाग लग जाता है। एवं इस अपक्रान्तिसे अत्यधिक रूपान्तर हो जानेपर यदि अवयवको जलमें डाला जाय, तो वह जलपर तैरता है।

मेदोभरण-मेदापक्रान्तिमें प्रभेद—मेदापक्रान्तिमें प्रतीतमेद रोगाक्रान्त घटकोंमें शुभ्रग्रथिनकी अपक्रान्ति (विनाश) से उत्पन्न होता है। मेदोभरणके समान संचित मेद नहीं है। सामान्यतः देहके घटकोंमें मेदोत्पत्ति होना, यह एक स्वाभाविक क्रिया है। जैसे-जैसे यह मेदोत्पत्ति होती जाती है, वैसे-वैसे शरीर विधानमें मेदका खर्च भी होता जाता है। इसमेंसे जो शेष रह जाय, वह संचितमेद कहलाता है। इसके विपरीत जब कोषोंमें शुभ्रग्रथिन तत्त्वकी न्यूनता होजाती है और उत्पन्न मेदका उपयोग होनेमें व्याघात पहुँचता है, तब ये दोनों कारण एकीभूत होकर मेदापक्रान्तिकी उत्पत्ति करा देते हैं। मेदापक्रान्तिमें ग्रथिन नष्ट होजाती है; उसकी पूर्त्ति किसी प्रकारसे नहीं होती। इस हेतुसे अन्तमें आक्रान्त विधानका शोष (Atrophy) हो जाता है।

लक्षण—कारण अनुसार विविध। यकृत् बड़ा हुआ, मुलायम और वेदना-रहित। कामला या जलोदरका अभाव।

मेदमय यकृत् चिकित्सा

इस रोगमें पथ्य पालनकरने और आवश्यक श्रम लेनेकी आवश्यकता है। स्वेदनद्वारा मेदके अणुओंको बाहर निकाल देना अति हितकर है।

कीटाणु, विष या खनिज विषजनित रोग हो, तो कारण अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये। शिलासिंदूर वटीसे मेद कम होकर रोगी स्वस्थ होजाता है। उदरमें दोष हो तो आरोग्यवर्द्धिनीका सेवन करना चाहिये।

राजयक्ष्मा, फुफ्फुसप्रदाह आदि रोगोंके सहवर्त्ती, इसकी उत्पत्ति हुई है, तो मूल रोगको दूर करनेको चिकित्सा प्रधानतासे करनी चाहिये। हृदय और फुफ्फुसके बलकी रक्षाके लिये अभ्रक प्रधान लक्ष्मीविलास रस देते रहना चाहिये।

मेद वृद्धिको दूर करनेके लिये मेदोहर अर्कके साथ शिलाजीत या चन्द्रप्रभावटी अथवा महायोगराज गूगलका सेवन दीर्घकालतक कराना चाहिये। अति जीर्णरोगमें त्र्युषणाद्य लोह हितावह है। इस लोहसे यकृत और रक्त सबल बनते हैं और मेद शनैः-शनैः कम होकर रोगका निवारण होजाता है।

पथ्यापथ्य

पथ्य—भात, घी, शक्कर आदि मेदवर्धक आहारको हो सके, उतना कमकर देना चाहिये। भोजनका परिमाण कम किया जाय, तो सत्वर लाभ होता है। प्रातः-सायं भ्रमण, परिश्रम, स्वेदन क्रिया, शुष्कभोजन आदि हितकर हैं। गेहुँ, चने, मूंग, बाजरी, ज्वारी, मक्का, कोदों, सामो आदि धान्य और लहसुन पथ्य हैं।

चि० त० प्र० प्रथम-खण्ड पृष्ठ ३७ में लिखा हुआ त्योषादि चूर्ण मिश्रित सत्तूके सेवनसे अग्नि प्रदीप्त होती है और मेदोभरणकी निवृत्ति होती है।

अपथ्य—शराब, आलस्य, दिनमें शयन, अधिक भोजन, खट्टे पदार्थोंका सेवन, दही, अधिक घी और अधिक शक्कर आदिका त्याग कर देना चाहिये।

१८. पित्ताशय प्रदाह

कोलेसिस्टाइटिस—Cholecystitis.

निदान—इस रोगकी उत्पत्ति उद्भिद् कीटाणुओंके आक्रमणसे रक्तप्रदाह और नलियोंका प्रसारण होनेपर होती है। सामान्यतः नलियोंमेंसे ग्रहणी कीटाणुओंसे रहित रहती है, किन्तु यह मूत्रमें पित्तरहित कामलामें सत्वर प्रभावित होजाती है।

कीटाणु—सामान्यतः बेसिलस कोलाई आदि अन्त्रस्थ, स्ट्रेप्टोकोकाई और स्टेफिलोकोकाई। इनके अतिरिक्त मोतीझरा, फुफ्फुसज्वर और पूयोत्पादक कीटाणुओंमेंसे भी कोई पित्ताशयमें पहुँच जाती है।

पित्ताशयाश्मरी कथित आयु, जाति और सहायक कारण इस रोगमें भी प्रतीत होते हैं।

वर्गीकरण—सामान्यतः असंभवित है। फिरभी समझानेके लिये निम्न विभाग हो सकते हैं।

(१) आशुकारी, मंद आशुकारी और चिरकारी।

(२) प्रसेकी, पूयात्मक अथवा त्वचा और उपादानभूत तन्तुओंका अकस्मात् गंभीर प्रदाह (Phlegmonus) उक्त दोनों प्रकार पित्ताश्मरी सहित या रहित। प्रसेकीमेंसे तन्तुप्रदाह या चिरकारी प्रकारमेंसे आशुकारी बन जाना।

चिकित्साभेदसे विभाग—

अ. आशुकारी, प्रसेकी पित्ताशयप्रदाह ।

आ. चिरकारी प्रसेकी पित्ताशयप्रदाह ।

इ. चिरकारी पूयात्मक पित्ताशयप्रदाह ।

ई. आशुकारी पूयात्मक पित्ताशयप्रदाह ।

उ. पित्ताशयके उपादान भूत तन्तुओंका प्रदाह ।

अ. आशुकारी प्रसेकी पित्ताशय प्रदाह

Acute Catarrhal Cholecystitis.

निदान—(१) पित्ताश्मरी; (२) कीटाणु आक्रमण (उदा० मोतीझरा आदिके कीटाणु); (३) कारण अविदित ।

कीटाणु संक्रमण—मोतीझराके बाद रहे हुए मोतीझराके कीटाणु, अन्त्र कीटाणु (B. Coli) या अन्य ।

रोग संप्राप्ति—

मंद प्रकार—सामान्य प्रदाहमय परिवर्त्तन या अति लाल पित्ताशय (Strawberry gall-bladder).

गंभीर प्रकार—पित्ताशय प्रसारित और दृढ़। दीवार मोटी। श्लैष्मिक-कला रक्तसंग्रहमय, श्लेष्मसे आच्छादित, प्रायः व्रणमय। द्रव्य-(१) रसमय; (२) कीचड़ सदृश रस और सौत्रिकतन्तुमय; (३) रंजित पित्तमय द्रव। पित्ताशयकी नलिका प्रायः दृढ़ बन्द। निकटवर्त्ती लसीका ग्रन्थियाँ बढ़ी हुईं। बृहदन्त्र आदिसे संलग्नता।

लक्षण—मंद प्रकारके लक्षण प्रायः रोग निर्णायक नहीं होते अथवा उनपर लक्ष्य नहीं दिया जाता। उदा० अपचन आदि। गम्भीर प्रकारके लक्षण—

१. **वेदना**—विविध परिमाणमें। सामान्यतः यकृत्पर शूलके समान गम्भीर और आकस्मिक प्रचण्ड होनेवाली। उसके किरण दक्षिण अंसफलकके कोणमें अथवा कभी कंधेकी ओर। कभी-कभी दाहिने अधिकश्रोणिका खातमें या हृदयाधरिक प्रदेशमें।

२. पीड़ना क्षमता—लक्ष्य देने योग्य। व्यापक और फिर ९ वीं पर्शुकाके पास स्थानिक।

३. कामला—अभाव (प्रदाह फैलता है या पित्ताश्मरी) साधारणी पित्त नलिकामें हो, तो कामलाका सद्भाव।

४. पित्ताशय—सामान्यतः स्पर्शग्राह्य। पेशियोंके तनावसे अस्पष्ट।

५. यकृत्—सामान्यतः नहीं बढ़ता।

उदरदण्डिका पेशी कठोर। ८ वीं और ९ वीं पर्शुकाके बीचमें पीठकी ओर चेतनाधिक्य। कुछ आमाशयिक व्याकुलता। शारीरिक उत्ताप बढ़ना। रक्तमें अनेक जीवकेन्द्रयुक्त रक्ताणु उपस्थित।

क्रम—मंदप्रकार वाले थोड़ेही दिनोंमें स्वस्थ होजाते हैं। सामान्यतः रोगका पुनराक्रमण। फिर बढ़कर चिरकारी पित्ताशयप्रदाह।

अनुगामी विकार—१. चिरकारी पित्ताशयप्रदाह।

२. संलग्नता, आमाशय आदिसे। कारण, आमाशयमें विकृति, प्रायःअनिर्दिष्ट।

३. पित्ताशयका पूयमय चिरकारी प्रकार।

४. गम्भीर प्रकारकी वृद्धि होना। उदा० पित्ताशयकी त्वचा और उपत्वचाके तन्तुओंका प्रदाह अथवा आशुकारी पूयमय पित्ताशयप्रदाह।

रोगविनिर्णय—उपान्त्रप्रदाह और प्रतिहारिणी शिराप्रदाह (Pylephlebitis) से करलेना चाहिये। (पित्ताशयाश्मरीसे विभेद करना बड़ा कठिन) वेदनाकी गम्भीरता, पूयात्मक पित्ताशयप्रदाहमें। उपादानभूत त्वचा आदिमें अतिवेदना। 'क्ष' किरण परीक्षा क्वचित् सहायक।

आ. चिरकारी प्रसेकी पित्ताशयप्रदाह
(Chronic Catarrhal Cholecystitis)

कारण—प्रायः पित्ताश्मरीके उपद्रवरूप। आक्रमणसे ही चिरकारी अथवा आशुकारी प्रदाहके पश्चात् चिरकारी उपान्त्रप्रदाह प्रायः विद्यमान्। कभी-कभी ग्रहणी व्रण उपस्थित।

सम्प्राप्ति—पित्ताशय आकुञ्चित। थोड़ा पित्त। नलिकामें तन्तुदार श्लेष्मा। पित्ताश्मरी प्रायः उपस्थित। संलग्नता सामान्य। सौत्रिक तन्तुओंसे दीवार मोटी होजाना। थोड़ा सामान्य कफ शेष रहना। पित्ताशयके भीतर प्रदाहिक अवस्थासे लेकर गलनावस्थातकके सब प्रकारकी प्रतीति।

लक्षण—रोग मुक्तिके लिये प्रायः लम्बाक्रम। परवर्ती चिरकारी अजीर्ण रोग (१) कौड़ी प्रदेशमें बेचैनी। आक्रमणका समय अनियमित। भोजनसे सम्बन्ध भी अनिश्चित। संस्थिति अनेक प्रकारसे, विशेषतः दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेशमें। वेदना किरण दक्षिण अंसफलक कोणमें। क्षारसेवन, वमन होने या आहार सेवन करनेपर

वेदनाका दमन होना अथवा असर न होना। (२) कौडीप्रदेशमें भारीपन, अफाराके सदृश। (३) उबाक, विशेषतः घृत-तैलमय आहारके पश्चात् और वमन होजाना। (४) कामलेका अभाव। अन्त्रस्थिति अनेक प्रकारकी, कब्ज होजाना फिर अतिसार ज्वरका अभाव।

चिन्ह—(१) पित्ताशयपर पीड़नाक्षमता मर्फीचिन्ह (Murphy's sign) अर्थात् दीर्घश्वास ग्रहण कालमें पित्ताशयपर स्पर्श करनेसे वेदनाकी वृद्धि। (२) दक्षिण उदरदण्डिका पेशीका तनाव। कभी दक्षिण निम्न पर्शुकान्तर पेशियोंकी पीड़नाक्षमता और तनाव। (३) रीडेलका खण्ड (Riedel's lobe) अर्थात् यकृत्के दक्षिण खण्डमें अस्वाभाविक जिह्वा आकारका भाग लगा हुआ प्रतीत होना।

शूलका आक्रमण पित्ताश्मरी शूलके सदृश विलिप्त। पित्ताश्मरी सामान्यतः उपस्थित। कभी उसके सदृश चिरकारी उत्तेजना होती रहती है, किन्तु शस्त्रचिकित्सा करनेपर अश्मरीकी प्राप्ति नहीं होती।

क्रम और अनुगामी उपद्रव—रोगवर्द्धनशील। शिरदर्द अथवा हार्दिक लक्षणों सदृश आक्रमण, हृदय प्रदेशमें वेदना, हृदयमें धड़कन आदि। संलग्नता ग्रहणी या अन्य अवयवके साथ, अस्थिर वेदना। साथमें चिरकारी उपान्त्रप्रदाह उपस्थित।

रोगविनिर्णय—आमाशयिक व्रण, आन्त्रिक व्रण, हृदय पेशीकाक्षत, पृष्ठवंशका संधिप्रदाह (Arthritis) और चिरकारी उपान्त्र-दाहसे पृथक् करना चाहिये।

'क्ष' किरण परीक्षा (Cholecys Tography) अपार दर्शक रंजन करनेपर पित्ताशयकी छाया मंद या अप्रतीत। अथवा वसाप्रधान भोजनके पश्चात् वह रिक्त नहीं होता। संलग्न होनेपर आकृति विकृत होजाती है।

चिकित्सोपयोगी सूचना—भोजनमें घी-तैल कम-से-कम देवें। क्षार सेवन हितकर है। प्रतिदिन सुबह मेगसल्फ १ से १॥ ड्राम उदरशुद्धिके लिये देते रहें।

पित्ताशयप्रदाहक गलनावस्था या शोष (Cholecystitis Obliterans, Atrophic Cholecystitis—वह पित्ताशयाश्मरी और चिरकारी पित्ताशयप्रदाहके परवर्त्ती उपद्रव है। इस प्रकारमें सौत्रिक रज्जुद्वारा पित्ताशयका आकुंचन, अश्मरीसे चिपक जाना और सामान्य संलग्नता उपस्थित होते हैं। फिर लक्षण वेदना, संलग्नताके हेतुसे मंद स्वास्थ्य, कितनेक चिपचिपे कफद्वारा मार्ग भरजाना आदि प्रकाशित होते हैं। पश्चात् पीड़ित घटक चूना रूप बन जाते हैं या गलकर नष्ट होजाते हैं।

इ. चिरकारी पूयात्मक पित्ताशयप्रदाह

(Chronic Suppurative Cholecystitis or Empyema of gall-bladder)

आशुकारी प्रसेकी पित्ताशयप्रदाहके अन्तमें उपस्थित होता है। इसमें पित्ताशय के भीतर थोड़ा पूय होता है।

लक्षण—आशुकारी लक्षण सब शमन होजाते हैं। मंद पूयोत्पत्ति कालमें क्रमशः शीर्णता वृद्धि, अरुचि, उदर पीड़ा, पित्ताशयार्बुद, मंद ज्वर। इनके अतिरिक्त दुर्गन्ध युक्त डकार, अफारा, शिरदर्द और किसी-किसीको शीतल स्वेदभी हो जाता है।

आध्मान न होनेपर भी उदरमें वायु भरी है, ऐसा रोगीको भासता है। इस हेतुसे डकारद्वारा वायुको निकालनेका प्रयत्न करता है। प्रातःकाल उबाक, शिरदर्द और मलावरोध, दोपहरको भोजनके पश्चात् थोड़ा-थोड़ा मल त्याग।

परवर्त्ती विकार—

१. विदारण—होनेपर (१) व्यापक उदर्य्याकला प्रदाह किन्तु इसके प्रतिबंधके पहले संलग्नता। (२) स्थानिक विद्रधि उदा० महाप्राचीराके निम्नभागमें विद्रधि। (३) ग्रहणी या बृहदन्त्र आदिमें विद्रधि (संलग्नताके पश्चात्)। (४) त्वचामें छिद्र होजाता है।

२. प्रदाह—दीवारमेंसे समीपस्थ अवयवोंमें फैलता है (स्थानिक उदर्य्याकला प्रदाह)।

३. संलग्नता—प्रदाह फैलनेपर।

४. पूयात्मक पित्त नलिका—क्वचित् सम्बन्ध हो जानेपर।

इनके अतिरिक्त बहु केन्द्रमय रक्ताणु उपस्थित होते हैं। उपान्त्र प्रदाह सहवर्त्ती होता है। अन्त्रावरोधका भास होता है।

शस्त्रचिकित्साका परिणाम—विशेषतः संतोषप्रद, किन्तु स्थिति गम्भीर। क्वचित् पित्तप्रणालिका कभी पीड़ित हो जाती है और कभी रक्तस्राव होता है। इनके अतिरिक्त पित्ताशयका जीर्ण पूयप्रदाह और कभी आशुकारी प्रकारमेंसे आशुकारी पूयप्रदाह भी होसकता है।

ई. आशुकारी पूयात्मक पित्ताशयप्रदाह

(Acute Suppurative Cholecystitis or Acute Empyema)

शरीर विकृति—पित्ताशयमें पूय उपस्थित। आशुकारी प्रदाहावस्थामें दीवारकी विविध गम्भीरता।

लक्षण-स्वाभाविक क्रियात्मक—प्रायः अतिगम्भीर। गलनात्मक विषोत्पत्ति (Sepsis) के चिह्न-खिंचाव, तेज़नाड़ी, वमन होते रहना, उत्ताप वृद्धि, थकावट, अन्त्रका प्रसारण और स्थानिक उदर्य्याकलाप्रदाह।

स्थानिक—आशुकारी प्रसेकीपित्ताशयके अनुरूप। मृदुसे गंभीर अवस्थातकका तीक्ष्ण शूल। सार्वाङ्गिक स्थितिकी गम्भीरताद्वारा स्थानिक वेदना दब जाती है। दक्षिण फुफ्फुस पीठ प्रभावित होता है।

अनुगामी उपद्रव—चिरकारी पूयात्मक पित्ताशयप्रदाहके समान उपद्रव, किन्तु अतिगम्भीर और तीव्र वेगयुक्त।

रोगविनिर्णय—कठिन, रोगनिर्णायक लक्षण स्थानिक क्षतिके नहीं मिलते। पूर्वगामी पित्ताश्मरीका इतिहास महत्वपूर्ण। निम्न रोगोंसे विभेद करें।

१. यकृत्के समीपके उदरस्थ अवयवोंके रोग—अ. विदारित ग्रहणीक्षत; आ. आशुकारी दक्षिण श्रोणिप्रदेश और दक्षिण वृक्कका प्रदाह (Pyelo-nephritis) जिसमें मूत्रमें पूय आता है और लक्षण लगभग समान भासते हों; इ. महाप्राचीरापेशीके नीचे विद्रधि।
२. दक्षिण फुफ्फुसावरणप्रदाह।
३. उपान्त्रप्रदाह।
४. कभी-कभी आशुकारी अन्त्रावरोध।

साध्यासाध्यता—परिणामका आधार कुछ अंशमें सत्वर शस्त्रचिकित्सा करानेपर। मृत्युसंख्या सर्वदा अधिक।

उ. पित्ताशयके उपादान भूत् तन्तुओंका प्रदाह
(Phlegmonus Cholecystitis)

यह अतिक्वचित्। लक्षण पूयात्मक प्रकारके सदृश, किन्तु अधिक गम्भीर और तीव्रवेगवाले। सेन्द्रिय विष प्रकोप अत्यन्त। सामान्यतः कामला। पित्ताशय शोथयुक्त फूला हुआ और अति सरलतासे चूर्ण होने योग्य। सत्वर पाक होकर फूटना और व्यापक उदर्य्याकला प्रदाह। क्रमस्थिति कालमें संलग्नता क्वचित्।

परवर्त्ती उपद्रव—कोथमय पित्ताशय प्रदाह।

चिकित्सा—सत्वर शस्त्र चिकित्साकरके पित्ताशयको निकाल देना चाहिये। मृत्युसंख्या अधिक।

पित्ताशयप्रदाह चिकित्सोपयोगी सूचना—पित्ताशयकी विकृति होनेसे अधिकपित्त स्राव करानेका कार्य उसे नहीं देना चाहिये। हो सके, उतनी विश्रान्ति दें। कीटाणु मिश्रित पित्त अन्त्रमें जानेपर रोग अधिक दृढ़ बनता है इस हेतुसे भी पित्ताशयसे पित्तस्राव कम कराना चाहिये।

आशुकारी प्रकारमें रोगीको शय्यापर पूर्ण आराम करावें और पित्ताशयपर गरम कपड़ा बाँधें। चिरकारी प्रकारमें मूत्रकी परीक्षा दिनमें २-३ बार करते रहना चाहिये; अन्यथा मूत्रकी क्षारीय प्रतिक्रिया पुष्ट होनेमें पित्ताशयके भीतर उत्तेजना होनेकी भीती है। पित्ताशयका आकुंचन करानेके लिये भोजनके एक घण्टा पहले आधसे २ ड्राम तक मेगसल्फ गुनगुने जलमें मिलाकर देते रहें। प्रभाव अन्त्रपर हो, उतने परिमाण में मेगसल्फ लेना चाहिये। पतले दस्त (अतिसार) होजाय, उतना नहीं। अधिक पित्तस्राव करानेवाला विरेचनभी नहीं देना चाहिये।

यदि पित्ताशयाश्मरीकी रचना होती न हो, तो भोजनमें घी-तैलको अति कम करनेकी आवश्यकता नहीं है। आशुकारी प्रकार और पित्ताशयाश्मरी होनेपर भोजनमें मलाई निकाला दूध या दूधको फाड़ पृथक् किया हुआ जल देना चाहिये।

अथवा आँवले मिलाये हुए मूंगका यूष ही देना चाहिये । तीव्रावस्था और मंदतीव्रावस्थामें सत्वर शस्त्रचिकित्सा करानी चाहिये । पूयरहित चिरकारी अवस्था हो, तो ही औषधि चिकित्सा करें । पित्ताशयमें बड़ी पित्ताश्मरी अवस्थित है, तो सत्वर शस्त्रचिकित्साका आश्रय लें । उपान्त्रप्रदाह हो, तो उसकी चिकित्सा करें । अति तीक्ष्ण असह्य वेदना होती हो, तो मोर्फियाका अन्त:क्षेपण अतिक्रम मात्रामें करें ।

रसतन्त्रसारमें लिखे हुए प्रयोगोंमें से गंधक रसायन, योगराजरस, ताप्यादि लोह, सूतशेखर, सूतराज और त्रिभुवनकीर्त्ति हितकर औषधियाँ हैं । गंधकरसायन रक्तके भीतर सम्मिश्रित कीटाणु विष और अन्त्रस्थविषको जलानेमें सहायक होता है । योगराज रस और तप्यादिलोह. इन दोनोंमेंसे कोईभी एक ज्वर मन्द होनेपर या न होनेपर दीजाती है । इन दोनोंमें शिलाजीत रहनेसे रक्तमें रहे हुए विषको मूत्रद्वारा बाहर निकालने और आमको सुखानेका कार्यभी करसकते हैं ।

ज्वरावस्थामें सूतशेखर, सूतराजरस अथवा त्रिभुवनकीर्त्ति देते रहना चाहिये ।

भोजन करलेनेपर कुटजारिष्ट या जीरकारिष्ट देते रहनेसे अन्त्रमें उग्रता नहीं आती और विष शमनमें सहायता मिलजाती है ।

उबाक आती रहती हो, तो शुक्तिपिष्टी १—१ रत्ती वंशलोचन २—२ रत्ती इलायचीके दाने १—१ रत्ती, २—३ माशे च्यवनप्राशमें मिलाकर दिनमें ४—६ बार देते रहें ।

डॉक्टरी प्रयोग—

(१) हेक्ज़ेमीन (Hexamine) ६० से १०० ग्रेन
जल १ औंस

(२) पोटास साइट्रास Pot. Citras १०० ,,
सोडा साइट्रास Soda Citras १०० ,,
जल १ औंस

इनमेंसे हेक्ज़ेमीन ६० ग्रेनके मिश्रणको तथा दूसरे मिश्रण १ औंसको मिलाकर भोजनके बाद या दूधके बाद दिनमें ३ बार दिया जाता है । हेक्ज़ेमीनकी मात्रा शनै:-शनै: १०० ग्रेन तक बढ़ावें ।

इस तरह यूरोट्रोपाइन (Urotropine) को भी उत्तम औषधि मानी गई है । यह औषधि २०-२० ग्रेन सुबह-शाम, दिनमें दो बार जलमें मिलाकर पिलाते हैं तथा भोजनके पहले एसिड हाईड्रोक्लोरिक डिल्युट १०-२० बूँद जलमें मिलाकर दिनमें दो बार देते हैं ।

सूचना—यदि मूत्रमें उष्णता, पीलापन, बहुमूत्र, रात्रिको बार-बार पेशाब करनेके लिये उठना आदि विकार उत्पन्न हो जाय, तो यूरोट्रोपाइन ४-६ दिनतक बन्द करें और पोटास साइट्रास (Pot. Citras) का सेवन करावें ।

पथ्यापथ्य

पथ्य—कामला रोगके अन्तमें यकृद्विकार वालोंके लिये लिखा है, उस अनुसार पथ्यापथ्यका पालन करना चाहिये।

तीव्रावस्थामें गोदुग्ध, फाड़े हुए दूधका जल, मोसम्मी, संतरा, नींबू आदि फल या आँवले मिश्रित मूंगका यूष देवें। जीर्णावस्थामें, गोदुग्ध, तक्र, दूध-भात या इतर लघु पथ्य भोजन देवें।

तीव्र ज्वर या जीर्ण ज्वर हो, तो ज्वरके अनुरूप एवं पित्ताश्मरी हो, तो पित्ताश्मरीके अनुसार पथ्यापथ्यका पालन करना चाहिये। यदि विद्रधि बनता है, तो आयुर्वेदके मतानुसार रोगीको दूध नहीं देना चाहिये। दूधका जल या मूंगका यूष देते रहना चाहिये।

अपथ्य—घृत युक्त भोजन, वसाप्रधान मांस, अण्डे बादाम आदि तैली फल, ये सब रोगको बढ़ाते हैं, अतः इन सबका त्याग करना चाहिये।

१६. पूयात्मक पित्त प्रणालिका प्रदाह

सुप्युरेटिव कोलनजाइटिस—Suppurative-Cholangitis.

कारण—पित्ताशयाश्मरी फंस जाना आदि।

१. पित्ताश्मरी—६० प्रतिशतमें कारण है। यह पित्ताश्मरीका अनुगामी गम्भीरता उपद्रव है।

२. आशुकारी संक्रामक पित्ताशयप्रदाह, याकृती पित्तनलिकामें क्वचित् फैलता है। पित्तकोषनलिका (Cystic duct) भी संभवतः प्रभावित हो जाती है।

३. नलिकाका कर्कस्फोट।

४. कृमि - कैंचवें सदृश महागुदा कृमि प्रवेश अथवा यकृतका रसार्बुद फूटनेपर उसमेंसे कृमि (टीनिया एकि नो कोकस) का पित्त नलिकामें प्रवेश होता है।

५. प्रतिहारिणी शिराप्रदाहका प्रसारण।

६. संक्रामक ज्वर—फुफ्फुसप्रदाह, इन्फ्लयुएन्जा आदि।

शारीरिक विकृति—

साधारणीपित्तनलिका—प्रायः अत्यन्त प्रसारित। दीवार मोटी और प्रदाह पीड़ित।

यकृत्—बड़ा हुआ, सतहपर छोटे-छोटे अनेकविद्रधियाँ पूयवृद्धिके भीतर अनेक पित्ताभ प्रदेश। कभी एक ही बड़ा विद्रधि। याकृतीपित्तनलिका और उसकी उपनलिकाएँ पित्तरंजित पूयसह प्रसारित।

पित्ताशय—सामान्यतः पूयमय प्रसारित।

विविध प्रकारकी संलग्नता या नाड़ीव्रण (पित्तनलिका अथवा पित्ताशयसे

अन्त्रके भीतर मुखवाला, अग्न्याशयप्रदाह, प्रतिहारिणी शिराप्रदाह, उदर्य्योकला प्रदाह, फुफ्फुसावरणमें द्रव संचय तथा पूयके बाहर निकलनेसे इतर विकृतियाँ।

लक्षण—गम्भीर गलन (पित्ताश्मरीके पूर्व इतिहाससह)।

आक्रमणके प्रारम्भमें—कम्प, उबाक, अति थकावटसह, शारीरिक उत्ताप अनेक विध।

कामला—सामान्यतः अत्यंत, क्वचित् मंद।

यकृत् परपीड़ा—संचलन, होनेपर अधिक कष्ट (यकृदावरण प्रदाह)।

यकृत्—वर्द्धनशीलवृद्धि। सतह चिकनी और कोमल।

पित्ताशय—सामान्यतः बढ़ा हुआ।

प्लीहा—कभी-कभी बढ़ी हुई। रक्तमें श्वेताणु वर्तमान। रक्तका कर्षण (Culture) करनेपर विविध उद्भिद् कीटाणुओंकी प्रतीति। रोग बढ़नेके साथ सत्वर कृशता, थकावट और फिर सामान्यतः मृत्यु।

उपद्रव—कितनेकोंमें पूय फैलकर शोषित विष प्रकोपज सन्निपात (Septicaemia), पूयात्मक प्रतिहारिणी शिराप्रदाह, आर्द्र उरस्तोय तथा हृदयान्तर कलाप्रदाह (Endacarditis)। जब बिना बाह्य सहायता स्वस्थ होजाता है, तब नाड़ीव्रण और नलिकाके मार्गको आकुंचन उपस्थित होते हैं।

रोगविनिर्णय—प्रकृति निर्देशकलक्षण—गम्भीर गलन, कामला, वृद्ध यकृत्, पित्ताश्मरीका इतिहास और वर्द्धन शील लक्षण आदि।

पृथक् विनिर्णय योग्य रोग—

१. साधारणी पित्तनलिकाके ऊर्ध्वमुखका प्रसारण—बीचमें मुक्त, सहवर्त्ती लक्षणों कामला, शूल, शीतकम्प, स्वेद और ज्वर आदिसह पुनः-पुनः आक्रमण।

२. प्रतिहारिणी शिराप्रदाह—सहवर्त्ती होना। लक्षण समान होनेसे प्रभेद करना अशक्य। सामान्यतः उपान्त्रसे भेद करना चाहिये।

३. यकृद् विद्रधि। (उष्ण कटिबन्धमें)।

साध्यासाध्यता—मृत्युपरिमाण अधिक। यकृद् विद्रधिसह होनेपर घातक। पूयकी गति कहाँ-कहाँ हुई है और कितनी हानि हुई है, उसपर रोगनिवृत्ति अवलम्बित। शस्त्रचिकित्सा करनेपर अनुकूल परिणाम। नाड़ीव्रण और अन्त्रमें पूय प्रवेश होनेपर स्वाभाविक अपकार।

चिकित्सा—सत्वर शस्त्रचिकित्सा संगृहीत पूय त्याग और पूय निकलते रहनेके लिये योजना।

२० यकृतार्बुद

(New growths in the Liver.)

बहुधा यकृत्में अर्बुदोंके भीतर घातक प्राथमिक, घातक गौण, दूर होनेके बाद

पुनः न होनेवाला (Benign) और रसार्बुद होते हैं। सामान्यतः गौण घातक अर्बुद अधिक और प्राथमिक बहुत कम, किन्तु इसका उपरुग्ण परीक्षा दृष्टिसे महत्व नहीं है। कृमिज रसार्बुदका वर्णन पहले किया गया है।

जिन स्थानोंपर अर्बुद उत्पन्न होता है, उन स्थानोंके गर्भ-व्याकरण (Embryology) की दृष्टि से तीन कलल-पर्त्त होते हैं। अन्तर, मध्य और बाह्य। इन संधानक धातु भेदसे अर्बुदोंके मुख्य ३ विभाग होजाते हैं। अन्तः कललीय (Hypoblast) मध्य कललीय (Mesoblast) और बाह्य कललीय (Epiblast)।

इनमें मध्य कललीय संधानक धातुमेंसे अनेक सौम्य अर्बुद और दुष्टार्बुद (सार्कोमा) की तथा अन्तः कललीय और बाह्य कललीय धातुमेंसे कर्कस्फोटकी उत्पत्ति होती है। इन अर्बुदोंका विशेष वर्णन यथास्थान अर्बुद रोगमें किया जायगा।

प्रकार—

अ. प्राथमिक घातक यकृतार्बुद।

आ. गौण घातक यकृतार्बुद।

इ. पित्ताशयका कर्कस्फोट।

ई. पित्तनलिकामें कर्कस्फोट।

अ. प्राथमिक घातक यकृतार्बुद

(Primary malignant Tumours)

केवल शव परीक्षा करनेपर गौण प्रकारसे इसका प्रभेद हो सकता है। तीव्रतर गतिसे बढ़ता है। कामला और जलोदर (यकृद्दाल्ली प्रकारके अतिरिक्त प्रकारमें कम सामान्य), ये लक्षण साथमें होते हैं।

अ. कर्कस्फोट—(Carcinoma) अनेक प्रकारके हैं—१. स्थूल (Massive) एकाकी; (२) ग्रन्थिमय (Nodular) गौण प्रकारके अनुरूप बहुग्रन्थिमय; (३) यकृद्दाल्लीसह कर्कस्फोट (Carcinoma with Cirrhosis) संभवतः कर्कस्फोटका विकास यकृद्दाल्लीके उपद्रव रूप होता है जिससे यकृत्के घटकोंकी अस्वाभाविक क्षतिपूरक वृद्धि (अत्यधिक पुनर्जनन) कर्कस्फोटमें जानेके लिये होती है।

आ. दुष्टार्बुद—(Sarcoma) क्वचित्। यह अर्बुद अधिवृक्क तन्तुओंसे उत्पन्न वृक्कार्बुद (Hypernephroma) से भी सम्बन्ध रखता है।

आ. गौणघातक यकृतार्बुद

(Secondary Malignant Tumours.) सामान्यतः ४० से ६० वर्षकी आयुवालोंको होते हैं। इनमें निम्नानुसार मुख्य २ प्रकार हैं।

१. कर्कस्फोट—सामान्य। यकृत्‌की अति वृद्धि। सतहपर गाँठें, प्रायः बीचमें छिद्र युक्त। कटे हुए भागमें धूसराभ अथवा रक्तस्रावमय। प्रायः विस्तृत

प्राथमिक प्रकारका स्वभाव, सामान्यतः सरल घटकोंसे बना हुआ। अपक्रांति सामान्य।

२. कृष्ण दुष्टार्बुद—(Melanotic Sarcoma) यकृत्‌की अति वृद्धि, काली गाँठें या व्यापक अन्तर्भरणमह। एक अवयवसे दूसरे अवयवमें गमन। सत्वर घातक। कभी-कभी कृष्णमेह (Melanuria)

प्रकृतिनिर्देशक लक्षण—

यकृत्—वृद्धि होते रहना। वेदना रहित भारीपन। (कतिपय रोगी यकृत्प्रदेश-में वेदना होनेका कहते हैं)।

कृशता कारक—अरुचि, सामान्य आमाशयिक व्यथा।

कामला—६० प्रतिशतमें, रोगदृढ़ और वर्द्धनशील होनेपर।

चिह्न—

यकृत्—बढ़ा हुआ, गाँठदार आकृतिविषम। किनारा अनियमित। गाँठे प्रायः नाभिसदृश। प्लीहाकी वृद्धि नहीं।

जलोदर—६० प्रतिशत रोगियोंमें।

नाभिकी ओर गाँठें और उदरकी श्वेत पंक्तियाँ—दीर्घप्रबंधनीकी वृद्धि। देखनेपर उदरस्फीत, शीर्णदेह।

ज्वर—सामान्यतः उपस्थित। लगभग १००°।

कभी-कभी प्रतीत होनेवाले—प्राथमिक अर्बुदके शरीरके अन्यस्थानोंमें-दाहिनी ओर उरस्तोय और कास, पैरोंपर शोथ, देरसे उदरकी उत्तानशिराएँ प्रसारित (नाभिके चारों ओर नहीं) इनके अतिरिक्त कितनेक रोगियोंमें उदरकी मांसपेशियाँ दृढ़ होजाना, मुख, नासिका, योनी, गुदा आदि स्थानोंसे रक्तस्राव; कृष्णदुष्टार्बुदमें त्वचापर काली ग्रन्थियाँ आदि चिह्नभी उपस्थित।

वक्तव्य—कामला सामान्यतः सीताके भीतर लसीका ग्रन्थियोंके दबावसे अथवा अग्न्याशयके शिरमें अर्बुद होनेपर। जलोदर प्रतिहारिणी शिरापर दबाव या उदर्य्याकलाप्रदाहसे।

यकृद् वृद्धिका अभाव, यह क्वचित गाँठदार प्राथमिक प्रकारमें और यकृद्दाली-सह कर्कस्फोटमें। अन्तिम यकृद्दालीके साथ उपरुग्ण परीक्षामें अभिन्नतासह।

रोग स्थिति—३ से १२ मास।

रोग विनिर्णय—प्रकृतिदर्शक स्पष्ट लक्षणोंसे (१) रोग वृद्धिके साथ यकृद्-वृद्धि और गाँठे प्रायः नाभिके पास; (२) सत्वर शीर्णता; (३) कामला वृद्धि; (४) विशेषतः उसके साथ जलोदरभी।

पृथक् करने योग्य रोग—

१. बढ़ा हुआ यकृद्दाल्ली—इसमें वर्द्धनशील अवस्था या गाँठोंका अभाव, छोटी-बड़ी आकृति, कृशता कम और मद्यपानके इतिहासकी प्राप्ति। प्रतिहारी शिरावरोध-सुस्पष्ट। इसका आक्रमणभी शनैः-शनैः। एवं पीड़ाभी।

२. वसामय और मोममय यकृत्—इनमें कामलेका अभाव या त्वरित वृद्धि, कृशता कम, मोममयमें गाँठोंके सदृश गमेटा (वोसरमेन प्रतिक्रियासे स्वीकृति)।

३. साधारणी पित्तनलिकामें अश्मरी—कामला और आक्रमणके पश्चात्-यकृत्की वृद्धिमेंसे ह्रास।

४. आशुकारी संक्रामक यकृत्प्रदाह (प्रसेकी-कामला)—उतरती आयुमें कामलाकी स्थितिमें प्रायः लम्बा समय लेता है।

५. गमेटा—यह फिरंगका चिह्न है और वोसरमेनकी परीक्षाद्वारा निर्णित होता है।

अन्य संस्थिति—

६. रीडलका खण्ड—पित्ताश्मरीके पूर्ववर्त्ती।

७. कृमिज रसार्बुद—गाँठे मृदु। कामला और शीर्णताका अभाव।

चिकित्सा—अभाव। वेदनाके शमनार्थ उपाय करते रहें।

३. पित्ताशयका कर्कस्फोट

केन्सर ऑफ दी गॉल ब्लेडर—(Cancer of the gall-bladder.)

पित्ताशयपर प्रायः प्राथमिक कर्कस्फोट होता है। अन्य बहुत कम होते हैं। आयु ५५ से ६५ वर्ष। अनुपात स्त्रियाँ ३-४ और पुरुष १। इस रोगका सम्बन्ध पित्ता-शयाश्मरीसे रहा है। ७५ से ९० प्रतिशतमें अश्मरी वर्त्तमान। १० प्रतिशतमें प्रसेक वर्त्तमान (गौण अर्बुदोंमें), पित्ताश्मरी पीड़ितोंमें कर्कस्फोट ५ से १५ प्रतिशतमें बढ़ता है। पित्ताश्मरी कर्कस्फोटका कारण है, समाप्ति या परिणाम नहीं। अन्य वाहन (संभवतः चिरकारी प्रदाह) होना भी आवश्यक है।

शारीरिक विकृति—

कर्कस्फोट—सरलघटक (Columnar cells) या गोल (Spheroidal) घटकमय। अन्तर्भरण हो, दीवार मोटी होना या अनुप्रस्थ कटावमें रसौंकुरि-काके समान उत्पत्ति होना, कर्कस्फोट विशेषतः स्कन्धभागमें, समग्रभाग या पित्ताशयके कण्ठपर अतिक्रम।

यकृत्—५० प्रतिशतमें गौण वृद्धि। इतरोंमें सामान्यतः पित्तसह प्रसारण।

पित्तनलिका—रोगवृद्धि होनेपर प्रायः प्रभावित। मूलस्थिति प्रायः अनिर्णित।

उदरग्रन्थियाँ—प्रायः प्रभावित। क्वचित् अन्यत्रभी गौण अर्बुद।

लक्षण—बड़ी आयुवाली स्त्रियोंको, पित्ताश्मरीके पूर्ववर्त्ती।

बेचैनी—दक्षिण अनुपार्श्विक प्रदेशमें, गम्भीर वेदना और अकस्मात् प्रचण्ड होना, सतहपर पीड़ना समता (८ वीं पशुंकाकी पंक्तीमें पीछे)।

कामला—प्रायः अभाव ।

इतर लक्षण—वज़नका ह्रास और अरुचि । पित्ताशयपर कठोर और विषम अर्बुद ५० प्रतिशतमें यकृत् बढ़ा हुआ । वर्द्धनशील लक्षण । यकृतवृद्धि होने या प्रतिहारिणी सीतामें ग्रन्थियाँ होने अथवा पित्तनलिका प्रभावित होनेपर कामला ।

रोगस्थिति—कामलाके पश्चात् ६ मास । रक्तमें पित्तप्रकोप (Cholaemia) से मृत्यु ।

उपद्रव—पूयात्मक पित्ताशयप्रदाह । पित्तनलिकाप्रदाह । आमाशयके मुद्रिका-द्वार आदिसे संलग्नता, बृहदन्त्रमें नाड़ीव्रण आदि । प्रतिहारिणी शिरापर दबाव आजाय तो जलोदर । प्रतिहारिणी शिरामें शल्योत्पत्ति ।

पित्ताश्मरीसे प्रभेदक रोग विनिर्णय—कठिन । इस रोगमें बड़ी आयु, क्रमशः वर्द्धनशील कामला और शीर्णता, पित्ताशय स्पर्शग्राह्य और कर्कस्फोटमें प्रायः यकृतपर गौण अर्बुद, इन लक्षणोंसे प्रभेद होजाता है । फिरभी शस्त्रचिकित्साके पहले पित्ताशयका चिरकारीप्रदाह होनेपर उसे कठोर और मोटा बनाता है, जिससे प्रभेद निश्चित नहीं हो सकता ।

यकृत् प्रभावित होनेपर—यकृतके कर्कस्फोटके लक्षण अविभेद्य । इसीतरह पित्तनलिका प्रभावित होनेपर पित्तनलिकाके कर्कस्फोट तथा अग्न्याशयशिरके कर्कस्फोटसे प्रभेद नहीं होता ।

चिकित्सा—यदि यकृत् प्रभावित न हुआ हो, तो शस्त्रचिकित्साद्वारा पित्ताशयको निकाल डालना चाहिये । मृत्यु बहुधा रक्तस्रावसे होती है ।

ई. पित्तनलिकामें कर्कस्फोट

केन्सर ऑफ दी बाइल डक्ट्स–Cancer of the Bile-ducts.

यह कर्कस्फोट प्राथमिक है । आयु ५५ से ६५ वर्ष । स्त्रियोंसे पुरुष कुछ अधिक प्रभावित । ३० प्रतिशत रोगियोंमें पित्ताश्मरी वर्त्तमान ।

शारीरिक विकृति—

कर्कस्फोट—सामान्यतः सरल घटकोंमेंसे, कभी गोल घटकोंसे । मूँगफलीकी अपेक्षा अधिक बड़ा न होना, विशेषतः दीवारोंमें अन्तर्भरण, मार्गका आकुंचन । फिर पित्ताशयके भीतर या अग्न्याशयमें विस्तार ।

पित्तनलिका—कर्कस्फोट वृद्धि होनेपर प्रसारित ।

पित्ताशय—सर्वदा प्रसारित, यदि पूर्वोक्त पित्ताशयप्रदाह होकर संलग्नताद्वारा प्रतिबन्ध न हुआ हो तो ।

यकृत्—गहरे हरे रङ्गका । सर्वदा बढ़ा हुआ नहीं होता । २० प्रतिशतमें गौण अर्बुद । कुछ कम प्रतिशतकी पित्तमय रक्त होजानेसे सत्वर मृत्यु ।

लक्षण—गुप्त आक्रमण शीर्णतासह, गंभीर प्रसेकी कामलाके सदृश लक्षण।

कामला—सामान्यतः अत्यन्त जल्दी, दृढ़ भावसे गहरे रङ्गकी वृद्धि। शौच पाण्डुवर्ण।

शीर्णता—वज़नका ह्रास, अरुचि।

वेदना—अभाव या मन्द। कभी पित्तज शूल।

पित्ताशय—स्पर्शग्राह्य। सतहचिकनी। प्राथमिक अर्बुदकी प्रतीति कभी न होना।

यकृत्—सामान्यतः स्पर्शग्राह्य। अर्बुदका प्रसारण पित्ताशयके कर्कस्फोटसह अभिन्न लक्षण दर्शाता है।

याकृती पित्तनलिकामें कर्कस्फोट—लक्षण उपर्युक्त, किन्तु पित्ताशय अप्रसारित।

पित्तकोषनलिकामें अर्बुद—पित्ताशयके कर्कस्फोटके समान, किन्तु कामलाका अभाव।

स्थितिकाल—कामलाके आक्रमणसे १ मास। पित्तमय रक्तसे या पूयात्मक पित्तनलिकाप्रदाहसे मृत्यु।

उपद्रव—क्वचित्—प्रतिहारिणी शिरामें शल्योत्पत्ति, प्रसारित पित्ताशयका विदारण। अर्बुदमेंसे रक्तस्राव।

पित्ताश्मरीसे प्रभेदक लक्षण—१. आयुभेद; २. गुप्त आक्रमण; ३. क्रमशः वर्द्धनशील कामला और शीर्णता तथा ४. बढ़ा हुआ पित्ताशय।

चिकित्सा—शस्त्रचिकित्साद्वारा पित्ताशयसे अन्त्रमें कृत्रिम मार्ग निकालने (Cholecyst-enterostomy) पर पित्ताशय और यकृत् कुछ समयतक शान्ति देता है।

२१. यकृदावरणप्रदाह

पेरीहेपेटाइटिस—Perihepatitis

यह गौणरोग है। संप्राप्ति यकृद् विद्रधि, गमा (उपदंशज अर्बुद), कृमिज रसार्बुद और पित्तनलिका प्रदाह आदि हेतुओंसे। कभी-कभी चिरकारी रोग हृद्रोगके हेतुसे। एवं अप्रतिरोधी मन्द रक्तसंग्रह, पित्ताशयप्रदाह, क्षयपीड़ित उदर्य्याकला या घातक उदर्य्याकलाप्रदाह आदि कारणोंसे भी।

प्रकार—२ प्रकार, आशुकारी और चिरकारी। एवं संपूर्ण यकृदावरणमें तथा स्थानिक, ऐसेभी भेद होजाते हैं।

अ. आशुकारी यकृदावरणप्रदाह

(Acute Perihepatitis)

इस प्रकारमें रोगी यकृत्प्रदेशमें पीड़ा होनेकी शिकायत करता है। दक्षिण अंसफलकके कोनेके पास या दक्षिण स्कंधपर।

परीक्षा करनेपर पीड़ित प्रदेशमें छातीका संचलन नष्ट होजाता है। यकृत ढकने

पर नरम और स्पर्शसे घर्षणध्वनि विदित होती है। छातीपर पट्टीबाँधकर संचलनको रोक देनेसे वेदनाका अच्छी तरह दमन होजाता है।

आ. चिरकारी यकृदावरणप्रदाह

Chronic Perihepatitis Sugar Iced Liver-Zuckerguss-leber.

शारीरिक विकृति—प्रदाह स्थानिक या विस्तृत, यहाँपर विस्तृत (Diffuse) प्रदाहका वर्णन करते हैं। १. आवरण अस्वाभाविक मोटा होजाता है। (उदर्य्याकला-प्रदाह आदिसे सम्बन्ध वाले इस श्वेत सौत्रिक तन्तुमय आवरणको यकृतसे पृथक् भी कर सकते हैं)। २. यकृत् आकुंचित किन्तु छोटा अथवा आंतरिक यकृद्दाल्ली (यकृत्की रचना करनेवाले तन्तु आकुंचित होकर दृढ़ होजाने) की प्रतीति न होना। ३. चिरकारी प्लीहावरणप्रदाह अनेक अवस्थायुक्त। ४. घटकोंके पुनर्जननसह चिरकारी उदर्य्याकलाप्रदाह। ५. अन्तर्भरणसह चिरकारी वृक्कप्रदाह, (Chronic Interstitial Nephritis)।

लक्षण—सामान्यतः कोई विषप्रकोपज लक्षण नहीं होता। कामलाभी नहीं होता। केवल स्थानिक वेदना।

परीक्षात्मक विशेष चिह्न—१. पुनरावर्त्तक जलोदर; २. चिरकारी वृक्क-प्रदाह; ३. पुनर्जननसह चिरकारी उदर्याकलाप्रदाह, सब अवस्थाओं युक्त। कामला नहीं होता।

चिकित्सा—इनमेंसे जलोदरको जल निकालकर अथवा जलोदरारि रस, गोमूत्र, मेगसल्फ., ऊँटनीका दूध आदि देकर शमन कर सकते हैं।

२२. अग्न्याशय विकार

डिसीज़िज़ ऑफ दी पेन्क्रियाज़—Diseases of the Pancreas.

जिसतरह प्राचीन आचार्योंने पचनेन्द्रिय संस्थानमें रहे हुए आमाशय, अन्त्र, यकृत् आदि आशयोंके रोगोंका वर्णन किया है, उसतरह अग्न्याशयके रोगोंका वर्णन नहीं किया। आधुनिक-युगमें अनेक परीक्षण-साधन होनेपर भी जीवितावस्थामें अग्न्याशयके रोगोंका निर्णय नहीं हुआ। फिरभी सामान्य सम्प्राप्ति शास्त्रानुसार वर्णन देना अच्छा माना है। कितनेक विद्वानोंने इस अग्न्याशयको क्लोम संज्ञा दी है। क्लोम शब्द विवादास्पद होनेसे इस ग्रन्थमें अग्न्याशय ही नाम लिखा गया है।

चित्र नं० ११

महाप्राचीरा, ग्रहणी और अग्न्याशय आदि
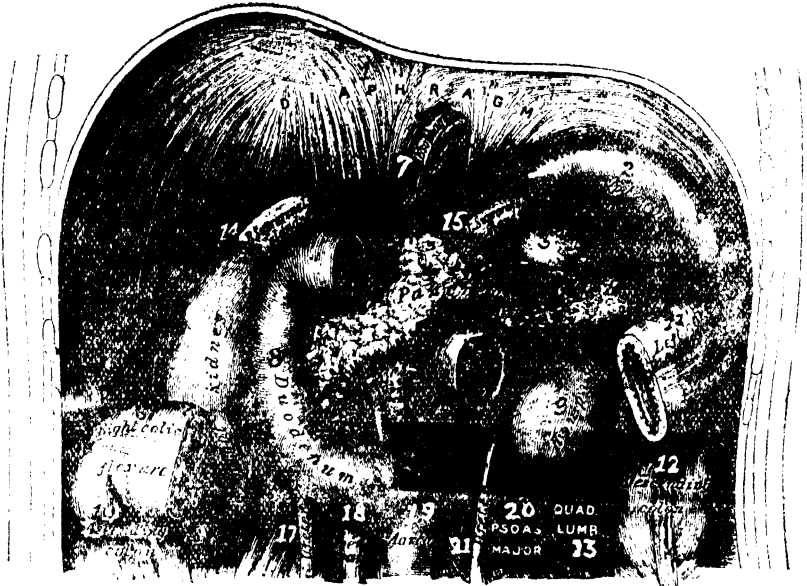
१ महाप्राचीरा पेशी Diaphragm
८ प्लीहा Spleen.
३,६ मूत्र पिण्ड-वृक्क (वाम) Left kidney
४ अग्न्याशय Pancreas.
५-५ मूत्र पिण्ड-वृक्क (दक्षिण) Right kidney
६ बृहदन्त्रका याकृत्कोण (दक्षिण) Right colic flexure
७ अन्न नलिका Oesophagus
८. ग्रहणी Duodeunm
१० बृहदन्त्रका आरोही भाग Ascending Colon
११ बृहदन्त्रका याकृत्कोण (वाम) Left colic flexure
१२ बृहदन्त्रका अवरोही भाग Descending colon.
१३ कटि चतुरस्र पेशी Quadratus Lumborum
१४ अधिवृक्क ग्रन्थी (दक्षिण) Right Suprarenal gland
१५ अधिवृक्क (वाम) Left Suprarenal gland
१६ उत्तरा आन्त्रिकी नाली Superior mesenteric Vessel
१७ (दक्षिण गवीनी) Right Ureter
१८ अधरा महासिरा Inferior Vena Cava
१६ महाधमनी Aorta
२० कटि लम्बिनी दीर्घा पेशी Psoas major muscle
२१ वाम गवीनी Left Ureter

अग्न्याशय—इस आशयकी लम्बाई लगभग १२ से १५ सेन्टीमीटर (५ इंच) और चौड़ाई २ इञ्च है। यह उदरगुहाके भीतर रहा है। यह अनेक छोटी-छोटी ग्रन्थियोंके समूह रूप भासता है। यह आमाशयके पीछे पहली और दूसरी कटि कशेरुकाके आगे आड़ा स्थित है। इसका वज़न लगभग ५-७ तोले हैं। इसके दाहिनी ओरका मोटा भाग (शिर) ग्रहणी द्वारा लपेटा हुआ है और उससे संलग्न है तथा बाँई ओरका हिस्सा (पुच्छ भाग) मुक्त और पतला है; यह प्लीहाकी ओर स्थित है। अभिप्लीहिका धमनी (Splenic Art.) इसकी ऊर्ध्व धाराका अनुसरण करती हुई प्लीहाकी ओर जाती है। इस अग्न्याशयके पीछेकी ओर निम्न अवयव दृष्टिगोचर होते हैं। साधारणी पित्तनलिका, अधरा महाशिरा, वाम अनुवृक्का शिरा, (Left Renal Vein), महाधमनी, उत्तरा आन्त्रिकी शिरा और धमनी (Superior Mesenteric Vein and Artary) पृष्ठवंश, महाप्राचीरा पेशीके दोनों मूल, वाम वृक्क, वाम अधिवृक्क ग्रन्थि और वाम कटि चतुरस्रा पेशी (Left Quadratus Lumborum) आदि। इस आशयकी निम्न धाराका दक्षिण हिस्सा ग्रहणीद्वारा घिरा हुआ है, तथा बाँयाँ भाग बृहदन्त्रके आड़े भागकी प्रवन्धिनियोंसे आच्छादित है।

बाह्य रसस्राव Evternal Secretion)—इस आशयको खड़ा चीरने पर इसमें दो लम्बे स्रोत प्रतीत होते हैं। अग्न्याशयके सूक्ष्म कोषोंमें तैयार किया हुआ आग्नेय रस (Pancreatic Juice) इन स्रोतोंद्वारा संगृहीत होता है। दोनों स्रोत बाँई ओरसे दाहिनी ओर जानेपर कभी-कभी सम्मिलित होकर उनमेंसे एक स्रोत बन जाता है। इन स्रोतोंको आग्नेय स्रोत (Pancreatic duct or Wirsung's duct) संज्ञा दी है। ग्रहणीके भीतर यह स्रोत साधारणी पित्तनलिकाके साथ खुलता है। कभी-कभी अग्न्याशयमें एक ही स्रोत होता है। विशेषतः ये दोनों स्रोत एक साथ सम्मिलित नहीं होते। अलग-अलग खुलते हैं। एक पित्तनलिकाके साथ और दूसरा स्वतन्त्र रूपसे ग्रहणीमें।

निर्माण—इस आशयमें असंख्य कंदिकाएँ (Lobules) संयोजक सूत्रोंसे इकट्ठी होकर छोटे पिण्डों (Lobes) की रचना करती हैं। अनेक पिण्ड मिलकर अग्न्याशय बना है। अणुवीक्षण यन्त्रसे देखनेपर प्रत्येक कंदिका द्राक्षके गुच्छे जैसी छोटी-छोटी थैलियाँ (Saccules) मिलकर बनी हैं। प्रत्येक कंदिकामें आग्नेय स्रोतकी एक सूक्ष्म प्रशाखा प्रवेश करती है जो तैयार हुए आग्नेय रसको बाहर लाती है।

अन्त: स्राव—(Internal Secretion—इस आशयमें कंदिकाओंके भीतर किसी-किसी स्थानपर कितनेक कोषसमूहोंके द्वीप (Islands of Langerhans) देखनेमें आते हैं, जो अग्न्याशयका अन्तःस्राव (इन्स्युलीन-Insulin) को उत्पन्न करते रहते हैं। यह स्राव सीधा रक्तमें मिल जाता है और श्वेतसार (Starch) और शर्करकी पचनक्रियामें महत्वका भाग लेता है। इस रसके अभावमें रक्तके भीतर शक्कर बढ़ जाती है।

पोषण—इस अग्न्याशयका पोषण अभिप्लीहिका, अभियाकृती और उत्तरा आन्त्रिकी धमनियोंकी शाखा-प्रशाखाओंद्वारा होता है। शिराएँ इन धमनियोंके साथ जाती हैं। इस अग्न्याशयपर प्राणदा नाड़ी और इड़ा पिंगला नाड़ीमण्डलके तन्तु फैले हुए हैं।

कर्म—यह आशय आग्नेय रस तैयार करता है। जिस रसद्वारा आमाशयके अर्ध पाचित आहारका पूरा पचन होता है। सामान्यतः मानव देहके भीतर २४ घण्टेमें लगभग ३०-४० तोले आग्नेय रसकी उत्पत्ति होती है।

आग्नेय रसमें पदार्थ मिश्रण—१००० भागमें ६७६ जल, १८ सेन्द्रिय द्रव्य तथा ६ निरिन्द्रिय द्रव्य अवस्थित हैं। सेन्द्रिय द्रव्यके भीतर मण्ड (Enzyme) प्रथिन (Protein), प्रथिनाम्ल (ल्युसिन, टायरोसिन) तथा फेन्थिन द्रव्य हैं। निरिन्द्रिय द्रव्योंमें—नमक, सोडियम, पोटासियम और फॉस्फोरस आदि हैं। यह रस नमक आदिके तथा उसमें रहे हुए कार्बोनेटके हेतुसे क्षारीय होता है।

मण्डके ४ प्रकार—

१. पेषक (Trypsin) यह प्रथिन भंजक (Proteoelastic) और प्रथिन द्रावक (Proteolytic) गुण युक्त है। इसकी उत्पत्ति आग्नेय रसमें रहे हुए पेषक मण्डजनक ट्रिप्सिनोजन (Trypsinogen) मेंसे होती है, जो प्रथिनका फेनी भवन अभिशव (Ferment) करता है।

२. वसाभंजक—(Lypase)—यह मेदके ग्लिसरोल और वसाम्ल, ऐसे दो घटक बनाता है। इस वसाम्लके साथ क्षारीय पदार्थका संयोग होनेपर साबुन बन जाता है, जो अन्त्र क्रियामें अति उपयोगी है।

३. श्वेतसार भंजक (Amylopsin) यह लघु अन्त्रमें आये हुए श्वेतसारके न टूटे हुए कणोंको तोड़ता है और शर्करामें रूपान्तर कराता है।

४. दधिकारक (Milk-curding)—

यह दूधको जमानेकी क्रिया करता है।

आग्नेयरसकी अपूर्णता—जब किसी कारणसे आग्नेयरसकी उत्पत्तिमें न्यूनता होजाती है, तब अन्त्रगत पचन क्रिया योग्य नहीं होती।

आग्नेयरसकी अपूर्णताकी परीक्षा - एक नेत्रकी श्लैष्मिक-कलापर एड्रेनलीन (१-१०००) की २ बूँद डालें। यदि कनीनिका प्रसारित न हो, तो १५ मिनिटपर दूसरी बार डालें। कनीनिका प्रसारण आग्नेय रसका ह्रास दर्शाता है।

मलमें वसाकी वृद्धि (Steatorroheae) तथा मांसतन्तु या नत्रजनकी वृद्धि (Azotorrhoea); मूत्रमें नत्रजन-(डायास्टेस-Diastase) की वृद्धि, यह द्रव्य अग्न्याशयमेंसे रक्तमें शोषित होजाता है, फिर मूत्रमें निकाल दिया जाता है। डायास्टेटिक सूची सामान्यतः ६ से २० एकाई है। यथार्थमें ये सब साधन पूरा संतोष नहीं देता।

सामान्यतः शुष्कमलमें सब मिलकर १५ से २५ प्रतिशत वसा होती है। अविभेद्य (Unsplit) १ से २, वसाम्ल ६ से ११ तथा साबुन १० से १५ प्रतिशत होते हैं; किन्तु रोगावस्थामें निम्नानुसार—

मलमें वसा

अवस्था	वसा	प्रकार
सामान्यावस्था	१५ से २५	पृथक्
आग्नेय रसाभाव	५० से ८०	अपृथक्
पित्ताभाव	६० से ७०	पृथक्
फक्करोग	४० से ७०	पृथक्

अग्न्याशयके आशुकारी क्षतकी संप्राप्ति—(Pathology of Acute Pancreatic Lesions)—आग्नेय रसके भीतर रहे हुए पेषक मण्डद्वारा अग्न्याशयके तन्तुओंका नाश होता है, अर्थात् अपने ही रसकी उग्रताद्वारा अपने तन्तुओंका पचन होता है (Autolysis)। यह संभवतः अग्न्याशयके अनेक क्षतों से होता होगा। उद्भिद् कीटाणुभी उसका वाहक होता होगा।

उपद्रव—अग्न्याशयके रक्तस्रावीय विनाशकी बढ़ी हुई स्थितिमें भिन्न उपद्रव होनेका संभव है।

१. आग्नेयरस अग्न्याशय तन्तुओंका अन्तर्भरण करके रसस्रावमें अवरोध उत्पन्न करता है।

२. अग्न्याशयघटकों और रक्तवाहिनियोंका विनाश। यह विगलन रूप परिणाम पेषक मण्डके हेतुसे होता है, वसाका कोथ नहीं होता।

३. पहले रक्तस्राव भीतर होता है। फिर ग्रन्थियोंके बाहर प्रसारित। अतिक्रम होनेपर परिणाममें चारों ओर तन्तुओंका वसा विनाश।

आग्नेय रसका अवरोध—हेतु निम्नानुसार है।

१. पित्ताश्मरीका असर, यह सामान्य कारण।

२. आमाशयिक रस और ग्रहणीके द्रव्यका ग्रन्थिमें प्रवेश, यह संभवतः ग्रहणीमें आघात पहुँचनेपर (अ) पित्ताश्मरीसे; (आ) वमन और आमाशयप्रदाहसे; (इ) ओडीकी संकोचनी पेशी (Oddi's sphincter) की अस्वाभाविकता (यह पेशी साधारणीपित्त नलिकाके द्वारपर रही है। इनके अतिरिक्त कारणोंसे भी ग्रहणीमें आघात्त पहुँच जाता है।

३. कर्कस्फोट।

४. आगन्तुक चोट।

५. अग्न्याशयमें अश्मरी।

६. परोपजीवी कीटाणु।

७. यकृद्दाल्डी या अग्न्याशयके तन्तुओंका अपक्रान्तिसह शोष (Cirrhosis)

अग्न्याशयकी मुख्य व्याधियाँ—

अ. आशुकारी अग्न्याशयप्रदाह।

A. अग्न्याशयसे रक्तस्राव।

B. आशुकारी रक्तस्रावात्मक अग्न्याशयप्रदाह।

C. कोथमय अग्न्याशयप्रदाह।

D. पूयात्मक अग्न्याशय प्रकार।

आ. उपाशुकारी अग्न्याशयप्रदाह।

इ. चिरकारी अग्न्याशयप्रदाह।

A. चिरकारी कन्दिकान्तरप्रदाह।

B. कोषसंघातान्तरप्रदाह।

ई. अग्न्याशयमें रसार्बुद।

उ. अग्न्याशयार्बुद।

ऊ. अग्न्याशयशीर्षस्थ कर्कस्फोट।

ए. अग्न्याशयाश्मरी।

अ. आशुकारी अग्न्याशयप्रदाह

(एक्युट पेनक्रियाटाइटिज़—Acute Pancreatitis) इसके क्रम अनुसार पहले पेषकमण्ड विनाश, फिर रक्तस्राव और अन्तमें प्रदाह होता है। प्रारम्भमें प्रदाह नहीं होता। अतः विद्वानोंने इसे अग्न्याशयका रक्तस्रावीय विनाश (Haemorrhagic Necrosis of the Pancreas) संज्ञादी है।

परीक्षात्मकप्रकार—

A. अग्न्याशयसे रक्तस्राव या संन्यास (Pancreatic Hemorrhage or Apoplexy) क्वचित् कुछ घण्टोंमें ही यह घातक बन जाता है।

B. आशुकारी रक्तस्रावीय अग्न्याशयप्रदाह (Acute Hemorrhagic Pancreatitis) यह २ से ५ दिनमें घातक या स्वस्थ हो जाता है।

C. उप आशुकारी कोथमयप्रदाह (Gangrenous Pancreatitis Sub acute) यह सप्ताहों या मासोंमें घातक।

D. आशुकारी पूयात्मक अग्न्याशयप्रदाह (Acute suppurative pancreatitis) यह अग्न्याशयका विद्रधि है। अग्न्याशय या अग्न्याशयावरणके रसार्बुद (Cysts) इन दोनोंकी निश्चित उपद्रवरूपसे आशुकारी क्षतिमें से प्राप्ति।

A. अग्न्याशयसे रक्तस्राव
(Pancreatic Hemorrhage)

यह अच्छे स्वास्थ्यमें भी सत्वर मृत्यु कराता है। संप्राप्ति शास्त्रके अनुरूप अग्न्याशयके रक्तस्रावीय विनाशको घातक रोग कहा जायगा।

B. आशुकारी रक्तस्रावात्मक अग्न्याशयप्रदाह
(Acute Hemorrhagic Pancreatitis)

कारण—यह सामान्यतः प्रौढावस्थाके पुरुषोंमें होता है। आग्नेय रसस्रावका अवरोध, आगन्तुक चोट या उद्भिद कीटाणुओंके संक्रमणसे होता है।

शारीरिक विकृति—अग्न्याशय शोथमय। सतह अनेक प्रकारके दागयुक्त। परिवर्त्तित रक्तसह अन्तर्भरण। अग्न्याशयकी रक्तवाहिनियोंके घटकोंका और भीतर रहे हुए तन्तुओंका विनाश। विनाश स्थानके किनारेपर प्रादाहिक परिवर्त्तन। रक्तस्राव-अग्न्याशयके चारों ओर तन्तुओंमें, प्रायः उदर्याकलाके लघुकोष (Lesser sac) में। उसीतरह वसा विनाश। पित्ताशय या ग्रहणीके भीतर साधारणी पित्तनलिकाके संयोग स्थानपर प्रसारण (Ampulla of Vater) में पित्ताश्मरी।

प्रारम्भिक लक्षण—आक्रमण होनेके पहलेसे प्रायः अपचन और आमाशय वेदना। पूर्ववर्त्ती पित्ताशयाश्मरीका शूल कभी-कभी।

मुख्य लक्षण—अकस्मात् आक्रमण।

वेदना—गम्भीर और ऊर्ध्व उदरमें रह-रहकर बढ़ने वाली। (उदरकी बाँई ओर तीव्र शूलके अतिरिक्त अध्मान और विबंध आदिभी)।

आघात और शक्तिपात—अति त्वरित। शीतल चर्म।

वमन—जल्दी, प्रचुर और यकृत् पित्तसे रंजित, कभी मलमय।

उदरप्रसारण—नाभिके ऊपर, पीड़नाक्षमताकी वृद्धि, किन्तु प्रायः तनाव कम। अर्बुद क्वचित् मलावरोध।

शारीरिक उत्ताप—आक्रमण कालमें कम। फिर बढ़ता है और अन्तमें सामान्यसे कुछ कम रहता है।

आग्नेय रसकी फेनी भवन सूची (Diastatic index)—१०० से अधिक, सामान्यतः २०० एकाईसे अधिक। श्वेताणु-वृद्धि सामान्य। कभी-कभी कामला। अतिक्वचित् मंजिष्ठमेह (Glycosuria)

लोवीकी परीक्षा—(Loewi's test) एपीनेफ्रीन क्लोराइड (१-१०००) के ३ बूँद नेत्रकी श्लैष्मिक-कलाकी स्थली (Conjunctival sac) में डालें। पुनः ५ मिनिटपर ३ बूँद दूसरी बार डालनेपर कनीनिका प्रसारित होजाय, तो आग्नेय-रसकी अपूर्णता, मधुमेह या ग्रैवियक ग्रन्थिकी क्रियामें उग्रता (Hyperthyrodism), इन तीनोंमेंसे एक माना जाता है।

साध्यासाध्यता—मृत्यु २ से ४ दिन अथवा अग्न्याशय विषज संन्यास होकर इससे भी पहले। कभी-कभी आराम।

रोग विनिर्णय—कठिन। विशेषतः (१) उदर्य्याकला, प्रदाह अर्थात् आमाशय या ग्रहणीके विदारित क्षत; (२) आशुकारी अन्त्रावरोध; (३) पित्ताश्मरी से पृथक् करना कठिन होता है।

चिकित्सा—पित्ताश्मरीका शोध करें और हो, तो उसे हटावें; अन्यथा होसके उतनी जल्दी शस्त्रचिकित्सा करावें।

सौम्य रोगहो, तो नमक जलमें ५ परसेंट द्राक्षशर्कराकी बस्ति देवें तथा अति कममात्रामें मोर्फियाका अन्तःक्षेपण करें। सफलता न मिले, तो निरुपाय-वश शस्त्रचिकित्सा करें।

गम्भीर प्रकारमें शस्त्रचिकित्सा करें। पित्ताशय प्रभावित हुआ हो, तो उसकी भी चिकित्सा करें।

C. कोथमय अग्न्याशयप्रदाह
(Gangrenous Pancreatitis)

कारण—यह बढ़ी हुई अवस्था है। यह मंद आशुकारी आक्रमणसह अति क्वचित् उपस्थित। आशुकारी रक्तस्रावात्मकप्रदाहमें एक सप्ताहके पश्चात् अग्न्याशय शुष्क और रक्ताभ कृष्ण और लगभग २ सप्ताहके पश्चात् काला और कुड़कीला बन जाता है। फिर दुर्गन्धमय कालाद्रव लघु कोषमें उपस्थित। उस समय अग्न्याशयका कोथ होता रहता है। कभी व्यापक उदर्य्याकलाप्रदाह संयोजनके हेतुसे भी।

लक्षण—अन्तिम स्थितिमें किन्तु चौथे दिनके बाद नष्ट। (१) ज्वर और गलनावस्थाके चिन्ह। (२) नाभिके ऊपर अर्बुद, आमाशय और बृहदन्त्रके बीचमें; प्लीहाके सामने, लघुकोषमें द्रवसंग्रह होनेके हेतुसे (प्रायः स्पर्शग्राह्य नहीं होता)। अन्य लक्षणभी उपस्थित-कौड़ी स्थानमें वेदना और पीड़ना क्षमता, वमन होते रहना; रक्तमें श्वेताणु वृद्धि, सामान्य अतिसार, कभी-कभी कामला, अति क्वचित् मांजिष्ठमेह।

चिकित्सा—द्रव निकाल लेना। आराम क्वचित् ही।

D. पूयात्मक अग्न्याशयप्रदाह
(Suppurative Pancreatitis-Abscess of Pancreas.)

कारण—ऊपर लिखे अनुसार। विद्रधि एक या अनेक।

लक्षण—सामान्यतः विविध। आशुकारी रक्तस्रावमय प्रदाहका आक्रमण, सामान्यतः २-४ सप्ताह पहले। फिर विद्रधिकी जैसे-जैसे प्रगति होती जाती है, वैसे-वैसे रक्तपूय प्रभावित बनता जाता है। उसके अनुरूप मुख्य लक्षणोंकी गम्भीरता बढ़ती है।

(१) ज्वर और पाक; (२) हृदयाधरिकप्रदेशमें अर्बुद (प्रायः अभाव); (३) हृदयाधरिकप्रदेशमें व्याकुलता, (४) कभी कामला और मांजिष्ठमेह।

उत्तरावस्थामें उपद्रव—अग्न्याशयके आवरणकी विद्रधि, विद्रधिका आमाशय, ग्रहणी या उदर्य्याकलामें विदारण; प्रतिहारिणी शिरामें शल्योत्पत्ति ।

चिकित्सा—शस्त्रक्रिया । प्रायः स्वास्थ्य लाभ ।

आ. उप आशुकारी अग्न्याशयप्रदाह

(Sub acute Pancreatitis)

यह कर्णमूलिक ज्वर (Mumps) में तथा पित्ताश्मरी, आमाशयक्षत या ग्रहणी क्षतके हेतुसे उपस्थित । उदरके ऊर्ध्व भागमें वेदनाकी प्राप्ति। परिणाम सर्वदा अच्छा। आघात या अग्न्याशयका रक्तस्राव होनेपर कौड़ी प्रदेशकी वेदना अधिक कालतक स्थिर ।

परीक्षा करनेपर रोगी निस्तेज, कुछ अंशमें नीलगात्र और शक्तिपात ग्रस्त। कौड़ी प्रदेशमें पीड़ना क्षमता और तनाव । शौचमें सामान्यतः वसाकी वृद्धि नहीं होती।

चिकित्सोपयोगी-सूचना—रोगीको ३-४ दिन तक लङ्घन करावें । अति आवश्यकतापर थोड़ा-थोड़ा दूध या द्रव पिलावें । दूसरे सप्ताहमें भोजन कर्बोदक प्रधान दें । वसा अति कम और प्रथिन थोड़ा दें । उत्तर कालमें रोगकी सीमा निर्णीत करने का प्रयत्न करें । यदि आमाशय, ग्रहणी या पित्ताशयमें क्षत हो, तो यथोचित उपचार करना चाहिये ।

इ. चिरकारी अग्न्याशयप्रदाह

(Chronic Pancreatitis)

अग्न्याशयके गर्भभागमें उपस्थित चिरकारी प्रदाह, यह संप्राप्ति शास्त्रकी दृष्टिसे निम्नानुसार २ प्रकारकी है, जो उपलक्षण दृष्टिसे और सम्भवतः कारण भेदसे निम्नानुसार पृथक् होती है ।

A. अग्न्याशयका चिरकारी कंदिकान्तरप्रदाह

(Chronic Interlobular or Chronic interstitial Pancreatitis)

कारण—प्रारम्भ बहुधा नलिकाओंमेंसे, कारण प्रायः अज्ञात ।

१. अग्न्याशय नलिका (Wisung's duct) का आंशिक या पूर्ण अवरोध, सामान्यतः मलसे । (अ.) प्रसारित भागमें पित्ताश्मरी; (आ.) कर्कस्फोट; (इ) अग्न्याशयमें अश्मरी (संभवतः नलिकाके प्रसेकसे गौण) ।

२. पित्तनलिकाप्रदाह (पित्ताश्मरी जन्य), जो अग्न्याशयके चारों ओर फैलता है । (६० प्रतिशतमें)

संप्राप्ति—अग्न्याशय कठोर । कंदिकाओंमें सौत्रिक तन्तुके रचनात्मक द्रव्यकी उत्पत्ति, प्रथमावस्थामें कंदिकाके घटक कुछ प्रभावित, किन्तु फिर अपक्रांति पीड़ित । लेंगरहंसका द्वीप (Islands of Langerhans), जो इन्सुलिन उत्पादक है, वह जबतक सौत्रिक तन्तु बढ़ न जाय तब तक अविरत यत्नशील रहता है। पित्ताश्मरी

और यकृद्दाली उपस्थित होते हैं। अग्न्याशयाश्मरी भी क्वचित् साधारणी पित्तनलिका के प्रसारित भागमें पिताश्मरीके अतिरिक्त आपत्ति करती है। फिर अवयव विस्तृत और अव्यवस्थित होजाते हैं।

लक्षण—अनिश्चित। प्रायः गुप्त। सामान्यतः शस्त्रक्रिया करनेपर पित्ताश्मरी या कर्कस्फोटका बोध होता है। अग्न्याशयका शिर क्वचित् स्पर्शग्राह्य। आग्नेय रस कमी अपूर्ण। यदि अग्न्याशयके उस भागके चारों ओर पित्तनलिकाएँ हों, तो पीड़ारहित कामला। पित्ताशय बढ़ा हुआ (यदि पूर्ववर्ती प्रदाहपीड़ित न हो तो), अन्यथा कामलाका भी अभाव। वेदनाका प्रायः अभाव, किन्तु पुनः-पुनः आक्रमण, रह-रहकर पित्तशूलके सदृश पीड़ासह। वेदना बाँई पशुकाके किनारेपर तथा पीछे पृष्ठ वंशकी बाँई ओर लम्बाईमें। मंजिष्ठमेह अति क्वचित्।

रोगविनिर्णय—यदि चिरकारी कामला वर्त्तमान है, वेदना नहीं है, पित्ताशय बढ़ा हुआ है, तो बोध हो सकता है।

चिकित्सा—चिरकारी कामला है, तो पित्ताशयसे लघुअंत्रमें कृत्रिम छिद्र (Cholecyst enterostomy) किया जाता है। भोजनमें वसा कम देवें। अण्डे नहीं खाना चाहिये। फल और शाक भाजी हितकर है।

अग्न्याशय नलिका संक्रमित हुई हो, तो कीटाणुनाशक औषधि महावातविध्वंसन आदि दें। डॉक्टरीमें सोडासेलिसिलास और सोडा बाईकार्ब मिलाकर देते हैं। उदरको शुद्ध रखना चाहिये।

B. चिरकारी कोषसंघातान्तर अग्न्याशयप्रदाह
(Chronic Interacinar Pancreatitis)

यह मधुमेहोत्पादक है। सामान्यतः यह प्रदाह गुप्तभावसे शनैः-शनैः बढ़ता है। अपचन अग्निमांद्य, शारीरिक शिथिलता, तृषा वृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

किसी-किसीको प्रसेकात्मक होनेपर रह-रहकर उबाक आना, रोंगटे खड़े होना तथा कौड़ी प्रदेशमें वेदना, फिर वमन और अधिक मलसह अतिसार आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

चिकित्सा—मधुमेहशामक।

ई. अग्न्याशयमें रसार्बुद
(Pancreatic Cysts)

अग्न्याशयके पास अन्य अवयव रहनेसे रसार्बुद उत्पन्न होनेपर अग्न्याशयमें है या अन्य अवयव में, यह निर्णय करना कठिन होजाता है।

शारीरिक विकृति—१. संग्राहक रसार्बुद (Retention) इसे सच्चा रसार्बुदभी कहते हैं। यह मुख्य नलिकाका (अश्मरी आदिसे) अवरोध होनेपर उपस्थित होता है। एवं यह चिरकारी तान्तव अग्न्याशयप्रदाह (Interstitial

Pancreatitis) में छोटी नलिकाओंके भीतर अवरोध होनेसे तथा आशुकारी अग्न्याशयप्रदाहके अनुवर्त्ती रूपसेभी उत्पन्न होजाता है।

२. उत्तानस्तरिकाका पुनर्जनन और घटकतन्तुमय रसार्बुद (Cysto-Adenoma) यह अतिक्वचित् होता है, यह अनेक कोषमय है।

३. कृमिज रसार्बुद-यह क्वचित् ही होता है।

लक्षण—गोल अर्बुद नाभिके ऊपर, मध्य और कुछ बाँई ओर। अर्बुद चिकना, वर्त्तुलाकार, द्रवमय होनेसे तरङ्गवाला, प्रायः संचलनशील, क्वचित् श्वासोच्छ्वास से चल तथा समीपके अवयवोंसे सम्बन्धवाला। आमाशय और बृहदन्त्रके बीचमें अत्यन्त सामान्य (अधिक वायुपूर्ण बृहदन्त्रसह) अति क्वचित् आमाशयके ऊपर, नीचे तथा कभी-कभी अन्त्रके नीचे। जबतक अधिक न बढ़ जाय, तबतक लक्षण उपस्थित नहीं होता यह वर्षोंतक रहजाता है।

शूलका गम्भीर आक्रमण कौड़ी प्रदेशमें उसके किरण वाम ओर तथा अंसफलककी ओर गति करते हैं। वमन होती रहती है। कभी-कभी कामला होता है। आग्नेयरसकी अपूर्णता चिह्न अति क्वचित मिलता है।

रसार्बुद द्रव्य—रक्ताभ क्षारीयद्रव। इसमें रक्त और पित्तघन (Cholesterol), तथा फेनीभवनभी होता है। प्रथिनद्रावक फेनीभवन (Proteolytic Ferment) रोग विनिर्णयमें अत्यन्त महत्वका है। तत्पश्चात् वसा और श्वेतसार पृथक्कृतामय फेनीभवन अन्य त्याज्य द्रव्यमें उपयोगी है। किन्तु रक्तकी क्रिया पेषकमण्डके विरुद्ध होनेपर प्रथिन द्रावकका अभाव होता है। वह कभी-कभी अन्यत्र उपस्थित होता है।

रोगविनिर्णय—रसार्बुदकी प्रकृति, संस्थिति और अन्य अवयवसे सम्बन्ध, ये मुख्य लक्षण हैं। अन्त्रबंधनी और उदर्य्याकलाके नीचेकी ओर रहे हुए रसार्बुदसे भेद करना सामान्यतः अशक्य है। उक्त विशेषलक्षणोंद्वारा कृमिज रसार्बुद, वृक्कालिन्दमें मूत्रसंग्रह और बीजाशयके रसार्बुदसे प्रभेद होजाता है।

चिकित्सा—उचित यह है कि, कुछ भागको काटकर द्रव निकल जानेका मार्ग बना लेवें। इसमेंभी अग्न्याशयमें दृढ़ नाड़ीव्रण होजाता है और किनारेपर घाव होनेसे पचन क्रिया प्रायः दुःख दायी बनजाती है। संपूर्ण निकाल देनेकी चेष्टा कदापि नहीं होसकती। उसमें अत्यधिक रक्तस्राव होनेका भय है। द्रवको एस्पिरेटरद्वारा आकर्षित करलेना भी भयप्रद है। ऐसा करनेपर बारम्बार द्रव संगृहीत होता रहता है।

७. अग्न्याशयार्बुद

(Tumours of the Pancreas)

प्रकार—कर्कस्फोट सामान्यतः और अग्न्याशयके शिरपर। अति क्वचित् दुष्टार्बुद, सौम्य उत्तानस्तरिकार्बुद (Adenoma)। आमाशय, पित्तनलिका

आदिके अर्बुदोंसे अग्न्याशय बारम्बार प्रभावित होजाता है। प्रारम्भिक अर्बुदकी संस्थिति भी अनिश्चित्।

ऊ. अग्न्याशय शीर्षपर कर्कस्फोट
(Carcinoma of Head of Pancreas)

यह सामान्यतः ४० वर्षसे अधिक आयुवाले पुरुषको होता है। यह विशेषतः प्राथमिक गौण कम होता है।

लक्षण—सामान्य लक्षण दबाव, (अ) पित्तनलिकापर (आ) अग्न्याशय नलिकापर यह अर्बुदके रक्षणार्थ होता है।

कौड़ी प्रदेशमें वेदना—प्रायः रह-रहकर गम्भीर (संभवतः उदरस्थ नाड़ी कन्दिका-(Coeliac Ganglianमेंसे), दोनों ओर या बाँई ओर अधिकतम। कितनेक रोगीको पीठमें वेदना, जो उष्णता पहुँचनेपर या आगेकी ओर झुकनेपर शान्त होती है।

कामला—गम्भीर, दृढ़ और वर्द्धनशील (अग्न्याशय पित्तनलिकासे चारों ओर वेष्टित न होनेपर अभाव),कामलासे पीताभ त्वचा, कभी हरी त्वचा(कृष्ण कामलामें)।

पित्ताशय बढ़ा हुआ—सर्वदा स्पर्शग्राह्य नहीं।

सत्वर कृशता—(Repid Emaciation)।

उबाक और वान्ति—सामान्य। अन्यलक्षण-क्षुधानाश, पेशाबमें पित्तरंजक और शर्करा। शौच पाण्डु वर्णका और पृथक् अधिक वसायुक्त, अर्बुदप्रायः स्पर्शग्राह्य। अति क्वचित् गजिह्नमेह। अधरा महाशिरापर दबाव आजाय तो पादशोथ आदि।

रोगविनिर्णय—पित्ताश्मरीसे प्रभेदक लक्षण-सत्वर कृशता पित्ताशय सामान्यतः बढ़ा हुआ, कामला क्रमशः वर्द्धनशील और बीचमें विराम नहीं होता। पित्तनलिका, ग्रहणी, आमाशय और यकृत्के कर्कस्फोटसे भी प्रभेद करना चाहिये। जब साधारणी पित्तनलिकापर दबाव आता है,तब सामान्यतः प्रभेद करना कठिन होजाता है।

साध्यासाध्यता—कुछ मासमें रोगीकी मृत्यु।

चिकित्सा—वेदना उपशमनार्थ। कामला दूर करनेके लिये पित्ताशयसे लघु अन्त्रतक छिद्रकरें। कण्डू हो तो, उसके शमनार्थ उपचार करें।

वक्तव्य—यदि अग्न्याशयके मध्यभाग या पुच्छभागमें कर्कस्फोट होजाता है, तो उसमें कृशता, कामलेका अभाव और स्पर्शग्राह्य अर्बुद आदि लक्षण होते हैं। वेदना (शूल) का आक्रमणभी होता है।

ए. अग्न्याशयाश्मरी
(Pancreatic Calculi)

कारण—संभवतः नलिकाके प्रदाहसे गौण अश्मरी उपस्थित। (चिरकारी

कन्दिकान्तर अग्न्याशय प्रदाह देखें) अश्मरी नलिकामें मिलती है। इसका सम्बन्ध कर्कस्फोट से नहीं है।

गुणधर्म—अश्मरी छोटी, सर्वदा अनेक, अपारदर्शक श्वेत।

रचना—निरिन्द्रिय लवण-केलशियम कार्बोनेट या फॉस्फेट। 'क्ष' किरणसे अपारदर्शक।

संप्राप्ति—पित्ताश्मरीके पीछे नलिका प्रसारित और सामान्यतः चिरकारी अग्न्याशयका तान्तवप्रदाहकी वृद्धि। प्रायः अग्न्याशयकी पूर्णरूपसे अव्यवस्था। क्वचित् पूयप्रदाह और विद्रधिकी रचनाकी संप्राप्ति।

लक्षण—अनिश्चित। कौड़ीप्रदेशके शूलका गम्भीर आक्रमण, बारंबार वमन और पुनः-पुनः शीतकम्पसह। वेदनाके किरण बाँई ओर तथा अंसफलककी ओर। कामला होता है। क्वचित् जीर्णगम्भीर रोगमें आग्नेयरसकी अपूर्णता होनेपर रक्तमें शर्करा वृद्धि (Hyper Glycemia), मंजिष्ठमेह, निर्बलताकी वृद्धि और वसामय शौच उपस्थित। अत्यन्त सामान्यतः अश्मरीके हेतुसे नलिकाका प्रसारण फिर गम्भीरकामला, यकृद्वृद्धि। तिलपिष्टनिभ शौच, पित्तरंजित मूत्र आदि लक्षण।

चिकित्सा—वेदनाशामक। आवश्यकतापर मोर्फिया $\frac{1}{४}$ ग्रेनका अन्तःक्षेपण करें या क्लोरोफार्म सुँघावें। विशेष चिकित्सा पित्ताशयाश्मरीके अनुरूप। कितनेक रोगियोंमें शस्त्रचिकित्साद्वारा अश्मरीको निकाल देना पड़ता है।

२३. उदर्य्योकलाप्रदाह

अन्त्रावरणप्रदाह-पेरिटोनाइटिस—Peritonitis

रोग परिचय—उदरप्रदेशमें तीव्र शूल, दबानेपर वेदनाकी वृद्धि, बद्धकोष्ठ, अफारा, वमन, ज्वर, अति कृशता, तुद और तीव्रनाड़ी आदि लक्षणोंसह यह रोग होता है।

उदर्याकलाके दोनों कोष
(बीचमें से कटे हुए)
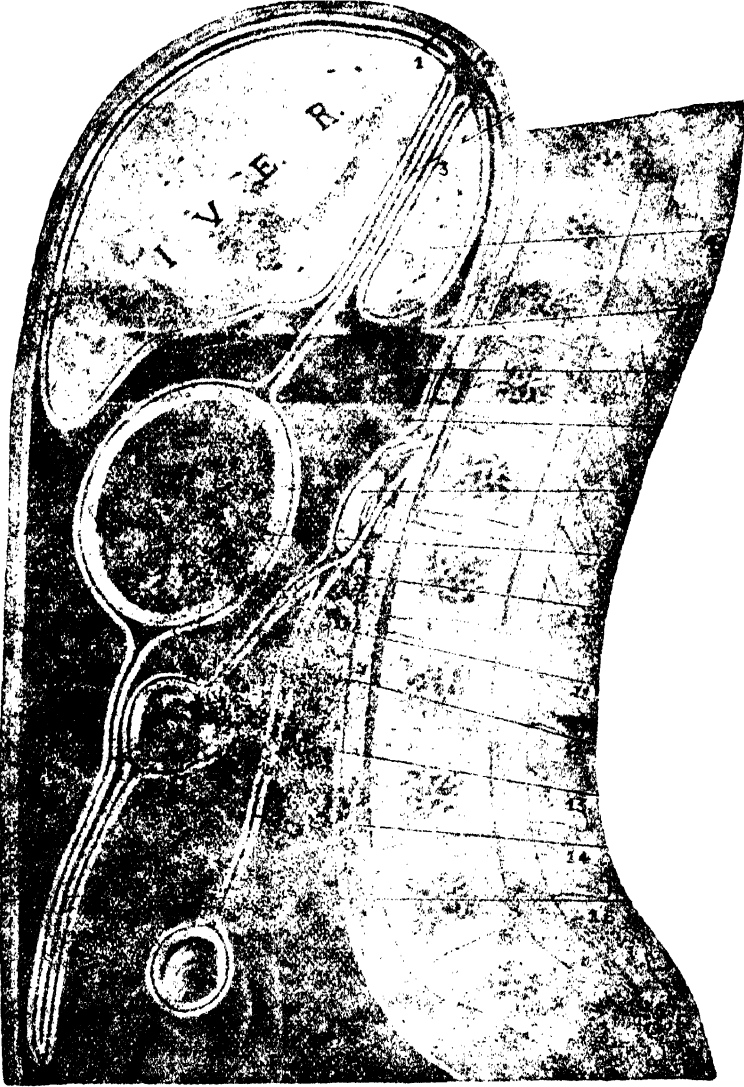
१ यकृत्के ऊपर रही हुई महाकोषकी ऊर्ध्व सीमा।

२ उदर्याकला रहित यकृत्पीठ।

३ लघु वपाका ऊर्ध्व भाग Lesser omentum in fissure for

ducts venosus. (दरारके भीतर संवाहिनी शिरा और आरोही अधरा महाशिराके संयोग स्थानपर)।

४ दीर्घ पिण्डिका Caudate lobe of liver.

५ लघुवपाका ऊर्ध्व भाग Lesser omentum.

६ उदर्य्यान्तरिक छिद्र Epiploric foramen.

७ याकृती धमनी Hepatic artery.

८ अग्न्याशयका कण्ठ Neck of pancreas.

९ आमाशय—Stomach.

१० अग्न्याशका शीर्षप्रवर्धन Uncinate process of head of pancreas·

११ ग्रहणीका त्तैतिज प्रदेश Horizontal part of Duodenum.

१२ उदर्य्याकलाप्रवर्धन–अनुप्रस्थ अन्त्रसंयुक्त Transverse mesocolon.

१३ अनुप्रस्थ अन्त्र Transverse colon.

१४ अन्त्रबन्धनी Mesentery.

१५ वपा Greater omentum.

उदर्य्याकला परिचय—(पेरिटोनियम–Peritonium), छातीके अवयव जिसतरह फुफ्फुसधर कलाकोष (Pleura) के भीतर रहे हुए हैं, इस तरह उदरगुहाके भीतर सब अवयव उदर्य्याकला नामक रस त्वचा (Serous membrane) से आच्छादित हैं। यह कला अति पतली कोमल और मोतीके समान स्वच्छ श्वेत वर्णकी है। फुफ्फुसधराकला कोषके समान इस कलाकी भी एक ही थैली है। पुरुष देहकी इस थैलीमें एकभी छिद्र नहीं है, किन्तु स्त्री शरीरकी थैली छिद्रयुक्त है। कारण–बीजवाहिनियोंके सिरे (Free ends of the Uterine tubes) उदरगुहामें खुलते हैं। इस थैलीके दो स्तर हैं। इनमेंसे एक स्तर उदरकी दीवारको भीतरसे ढकता है तथा दूसरा स्तर उदरस्थ यन्त्र—पचन यन्त्र मूत्रोत्पादन यन्त्र और प्रजनन यन्त्रको आच्छादित करता है। इनके अतिरिक्त भिन्न भिन्न अवयवोंको रक्त देनेवाली धमनियाँ, शिराएँ और वातवाहिनियाँ आदि सब को आवृत्त करता है।

उदर्य्याकला एक सलग स्थली है, तथापि वह उदरके भीतर इस तरह स्थित है कि, इसका दिखाव दो थैलियोंके समान होता है। इसके बाह्य भागको महाकोष और अन्तर भागको लघुकोष संज्ञा दी जाती है।

महाकोष—(मेन पोर्शन और ग्रेटर सैक ऑफ पेरिटोनियम—Main Portion or Greater Sac of Peritonium)-इस महाकोषका बाह्य स्तर लगभग उदरगुहाकी पूरी दीवारको आवृत्त करता है, तथा भीतरका स्तर यकृत, प्लीहा,

आमाशय, ग्रहणी, बृहदन्त्र, लघुअन्त्र, बस्तिका शिखर प्रदेश, स्त्री शरीरमें गर्भाशय और उसके समीपके छोटे-छोटे अवयव आदिको ढकता है।

लघुकोष—(ओमेन्टल बर्सा-लेसर सैक-Omental bursa-Lesser Sac)--यह थैली यकृत और आमाशयके बीचमें उनके पीछे तथा नीचेकी ओर स्थित है। इस थैलीके नीचेका लम्बा हिस्सा वपा नामक प्रसिद्ध कलासे विरचित मोटे स्तरमें मिल जाता है।

वपा-ग्रेटर ओमेन्टम—(Greater Omentum)-लघु उदर्याकलाका यह भाग चार स्तरोंसे बना है। यह उदरगुहाके भीतर मोटे पर्देके समान आमाशयके निम्न किनारेसे लटकता है। इस पर्देकी निम्नधारा मुक्त रहती है। मेदोवृद्धिवाले मनुष्योंके शरीरमें इस वपामें बहुत चर्बी संगृहीत होजाती है। इस वपाके भी छोटे (Lesser) और बड़े (Greater), ऐसे दो विभाग होते हैं।

लघुवपा—ऊपर आमाशयकी क्रोडिकाधारा (Lesser Curvature) और ग्रहणीके प्रारम्भिक स्थानसे लेकर यकृत्प्रदेशतक फैला है।

बृहद्वपा—उदर गुहामें सबसे बड़ी पर्त्त है। यह दोहरी बन जाती है, जिससे इसमें चार पर्त्त होती हैं। दो पर्त्तें आमाशयके आरोही भाग और ग्रहणीके प्रारम्भिक भागसे नीचे लघु अन्त्रपर चल रूपसे अवतरण करती हैं फिर ऊपर उठनेपर यह बृहदन्त्रके अनुप्रस्थ भागतक आ जाती है।

वक्तव्य—इस उदर्याकलाके रोग बहुधा मूलभूत नहीं होते, उपद्रव रूपसे उत्पन्न होते हैं। अतः आयुर्वेदने इनका स्वतन्त्र विवेचन नहीं किया, जो अन्तर्विद्रधि-जन्य विकार हैं, उनका विवेचन आयुर्वेदने असाध्य अंतर्विद्रधिके लक्षणरूपसे किया है। उदर्याकलाका सम्बन्ध पचनेन्द्रिय संस्थानसे अधिक होनेसे इस कलाके रोगोंको डॉक्टरी ग्रन्थोंके आधारसे इस प्रकरणमें लिखा है।

रसत्वचाके विकार—(Sereous Membranes) उदर्याकला, फुफ्फुसावरण, हृदावरण, संधिकला आदि सर्व रसत्वचा हैं। सब रसत्वचाएँ सर्वदा रसस्राव करती रहती हैं। अर्थात् रसत्वचाके भीतर रही हुई इन्द्रियाँ—अन्त्र, फुफ्फुस, हृदय आदिको स्निग्धता मिलती रहनेसे सबका चलन-वलन सरलतापूर्वक होता रहता है। इन सब रसत्वचाओंके विकार सर्वत्र समान ही होते हैं। इन विकारोंमें निम्नानुसार विभाग होते हैं।

१. आशुकारी प्रदाह-(Acute Inflammation)—इसमें सामान्य-कीटाणु रहित (Non-bacterial) और कीटाणुजन्य (Bacterial), ये दो प्रकार हैं। सामान्य प्रकारमें प्रकृतिभाव (Resolution) सुलभतासे प्राप्त हो जाता है। यदि सत्वर प्रकृतिभाव न हुआ, तो रोग जीर्णावस्था धारण कर लेता है।

कीटाणुजन्य विकृति आघात होनेपर होती है। इस आघातज प्रकार (Mec-

hanical Injury) को भगवान् धन्वन्तरिने व्रणशोथ संज्ञा देकर पृथक् कही है। इस प्रकारके शोथमें पूयोत्पत्ति हो जाती है।

(२) चिरकारी दाह-शोथ (Chronic Inflammation—पीड़ाकर कारण क्षुद्र और चिरकारी होनेपर चिरकारी दाह-शोथकी सम्प्राप्ति होती है। इस प्रकारमें कलाएँ परस्पर या भीतर रहे हुए अवयवके साथ चिपचिपे (Adhesive) रसस्रावसे संलग्न हो जाती हैं। फिर सौत्रिक तन्तुओंकी वृद्धि (Hypertrophy) होनेसे प्रदाह स्थानमें रसत्वचा मोटी हो जाती है।

इसके अतिरिक्त इस प्रकारके अन्तर्गत उत्तेजक (Irritative) प्रकार हैं। जिसमें अधिक रसस्राव होकर रस जम जाता है। (Effusion) अथवा रक्तसंचालनमें प्रतिबन्ध होनेसे शिराएँ रक्तपूर्ण बन जाती हैं। फिर रस अधिक मात्रामें चूकर जम जाता है। इस प्रकारको डॉक्टरीमें अप्रतिरोधी रसस्रावसंग्रह (पेसिव ड्रोप्सिकल एफ्युशन-Passive Dropsical effusion) संज्ञा दी है।

(३) सम्बन्ध अनुरूप विकृति—जिस इन्द्रियपर रसत्वचाका आवरण हो, उस इन्द्रियकी विकृतिसे रसत्वचामें भी वैसी ही विकृति होजाती है।

(४) स्थानिक या व्यापक आक्रमण–कचित् रसत्वचा स्थान विशेषमें एवं कभी सर्वत्र पीड़ित होजाती है। क्वचित् एक, अधिक या सर्व रसत्वचा प्रभावित होजाती है। कभी एक साथ, कभी एक फिर दूसरी, तीसरी इस तरह प्रभावित होती जाती हैं।

रस प्रभेद—उदर्य्याकलाप्रदाह और फुफ्फुसावरण प्रदाहके रसमें कुछ अन्तर है। उदर्य्याकलाके रस संचयमें अन्त्र सन्निधिके हेतुसे अन्त्रकीटाणु (Bacilli Coli), प्रवेशकर जल्दी पूयोत्पत्ति करा देते हैं। फुफ्फुसावरणके रससंचयमें यह विकृति नियमपूर्वक नहीं होती।

उदर्य्याकलाप्रदाहात्मक व्याधियाँ—

अ. आशुकारी व्यापक उदर्य्याकलाप्रदाह।

आ. उदर्य्याकलाके भीतर विद्रधि।

इ. महाप्राचीरा निम्नस्थ विद्रधि।

ई. बस्तिगुहामें विद्रधि।

उ. चिरकारी उदर्य्याकलाप्रदाह।

A क्षयात्मक उदर्य्याकलाप्रदाह।

B कर्कस्फोटज उदर्य्याकलाप्रदाह।

C चिरकारी संयोजनशील उदर्य्याकलाप्रदाह।

D नवबर्द्धनसह उदर्य्याकलाप्रदाह।

अ. आशुकारी व्यापक उदर्य्याकलाप्रदाह
(Acute general Peritonitis)

कारण—प्राथमिक और गौण।

१. प्राथमिक उदर्य्याकलाप्रदाह—(१) अज्ञात कारण-जन्य (Idiopathic)—शीत या उष्णके अतिरिक्त अन्य कारणकी अप्रतीति। क्वचित् न्युमोनियाके कीटाणु। (२) उपद्रव भूत (Terminal)-चिरकारी वृक्कप्रदाह और धमनी कोष काठिन्य आदिमें।

२. गौण उदर्य्याकलाप्रदाह—(१) विदारण-सामान्यतः मूल, विशेषतः उपान्त्र आमाशय और ग्रहणीके। लघु अन्त्रप्रदाह यह प्रवाहिका और अन्त्रक्षतमें। (२) प्रदाहका प्रसारण-कर्कस्फोट, समीपस्थ अवयवोंका आशुकारीप्रदाह (आमाशय, अन्त्र, श्रोणिगुहा आदिका), जैसाकि सूतिकाका उदर्य्याकलाप्रदाह। (३) रक्त प्रवाहद्वारा सेन्द्रिय विष या पूयविषका आक्रमण।

सम्प्राप्ति—यह प्रदाह सर्व आवरणका व्यापक (Generalised) और सीमाबद्ध (Localised) होता है। दोनों प्रकारके प्रदाहकी प्रारम्भावस्थामें उदर्य्योकला रक्तपूर्ण बनती है और उस स्थानकी कैशिकाएँ प्रसारित होजाती हैं। कुछ कैशिकाएँ फटभी जाती हैं। फिर उनमेंसे रक्तस्राव होने लगता है; तथा आवरणके स्वाभाविक रक्तस्रावका रोध होता है। आवरणके भीतर लसीकास्राव या कभी स्वच्छ रक्तरस, रक्तमिश्रित रस अथवा पूयमिश्रित रस आने लगता है। इसका शोषण होकर उदर्य्या-कलाकी दोनों कलाएँ स्थान-स्थानपर चिपक जाती हैं या कीटाणुओंके हेतुसे उन स्थानों पर पूयकी उत्पत्ति होजाती है।

उत्सृष्ट लसीका स्रावका शोषण (Absorption) महाप्राचीरापेशी प्रदेश या लघु अन्त्रप्रदेशमें अति तीव्र भावसे होता है और श्रोणिगुहापर धीरे-धीरे होता है। इस दृष्टिसे महाप्राचीराप्रदेश और आन्त्रिक प्रदेशपर आक्रमण होनेपर रोग जितना घातक बन सकता है, उसकी अपेक्षा वंक्षणोत्तरिकसे उत्पन्न रोग कम घातक बनता है।

प्रदाहके हेतुसे वातवहानाड़ियोंमें उत्तेजना (Irritation) होती है। फिर उनका संकोच हो जाता है। अत्यन्त वेदना होनेपर अन्त्रवध होजाता है। पश्चात् उसकी पुरःसरण क्रियाका अभाव होता है, अफारा आ जाता है और उदर तन जाता है।

तरल भरनेपर लक्षण मृदु, सौत्रिक अवस्थामें कुछ तीव्र और पूयावस्थाकी सम्प्राप्ति होनेपर अति तीव्र होते हैं। यदि व्यापक कलामें पूयावस्थाकी प्राप्ति होजाय, तो बहुधा रोगीकी मृत्यु होजाती है। यदि प्रदाह स्थानिक (आंशिक) हो, तो स्थान की न्यूनताके हेतुसे लक्षण कुछ मृदु रहते हैं।

स्थानिक विकृति

लघु अन्त्र कुण्डल—पक्षवध और गैसके संग्रहसे प्रसारित। न्यूनाधिक अंशमें रसस्राव या लसीकास्रावसे संलग्नता।

उदर्य्याकला—लाल, व्यथित और पहलेसे ही प्रभानाश। रसस्राव होना।

रसस्राव—मात्रा और स्वभाव विविध-(१) सौत्रिक तन्तु प्रधान, अति लसीका और थोड़े रक्तरसमय। (२) रक्तरस और सौत्रिक तन्तुमय तथा कुण्डलपर अधिक रक्तरस और लसीका। (३) पूयमय-पूय पतला या अपारदर्शक और मलाई सदृश कभी-कभी। (४) रसस्रावाभाव, किन्तु उदर्य्याकला व्यापक पीड़ित। गम्भीर प्रकार, सामान्यतः स्ट्रप्टोकोकल और सूतिका रोगज (५) गैस विद्यमान् (प्राणवायु या बिना वायु जीवित रहनेवाले सूक्ष्मतर कीटाणु Anaerobes)-गुहाके विदारणमें। (६) रक्तस्रावीय- विशेषतः कर्कस्फोटमें।

उद्भिद्कीटाणुओंका संक्रमण—अत्यधिक समयमें (१) अन्त्रकीटाणु (बेसिलीकोली कोम्युनिज़ तथा बेसिली ऑफ कॉलन समूहकी अनेक जाति जो रोगोत्पादक नहीं मानी जाती); (२) स्ट्रेप्टोकोकाई प्रायः बेसिलीकोलीसे सम्बन्ध वाले; (३) न्युमोकोकाई (न्युमोनियाके कीटाणु); (४) स्टेफाइलो कोकाई तथा अन्य कीटाणु भी-बिना वायु जीवित रहने वाले कीटाणु, गोनोकोकाई (सुज़ाकके कीटाणु), लघु अन्त्रमें रहनेवाले कीटाणु समूह तथा अति क्वचित् इन्फ्ल्युएन्ज़ाके और इतर कीटाणु।

आक्रमणकालमें लक्षण—(१) उदर प्रदेशमें वेदना गंभीर, प्रायः अकस्मात्, दबानेपर और संचलनसे पीड़ावृद्धि, पूर्ण आराम करनेपर वेदना मंद। व्यापक या नाभीके चारों ओर; (२) उदरपर पीड़नाक्षमता प्रायः बढ़ती है; (३) उदरका तनाव; (४) वमन; (५) शय्यावर्ण (Decubitus) पीठपर। जानुसंधिका खिंचाव, स्कंध ऊँचा। व्याकुलता। श्वासोछ्वास उथले और पशुकाओंमें ‡ उत्ताप सामान्यतः स्वाभाविकसे कम जलनात्मक अवस्था (Septic) में शीतकम्प।

लक्षणसमूह—सामान्यतः किसी गुहाके विदारण आदि कारणसे उदर्य्याकलाका अकस्मात् विपद् ग्रस्त होनेपर उदर पीड़ा, वमन, मानसिक धक्का आदि। इस समूहको उदर्य्याकलाकी बेहोशी (Peritonism) संज्ञा दी है। इस अवस्थामें प्रदाह नहीं होता।

आगेका क्रम—छोटे क्रमके लिये (उदर्य्याकलाकी बेहोशीके बाद) प्रारम्भिक लक्षणोंकी वृद्धि तथा प्रायः चारों ओर प्रदाहका प्रसारण।

---

‡ वेदना होनेके थोड़े ही समयमें उदर बढ़ा हुआ, उष्ण और कठिन हो जाता है। उत्सृष्ट रस संचित होने या अफाराके हेतुसे फुफ्फुसोंके निम्न खण्डपर दबाव। जिससे इनका ऊर्ध्व अंश अतिशय रक्तावेग ग्रसित। परिणाममें श्वासोच्छ्वास क्रिया अगम्भीर और वेगपूर्वक (Hurried shallow Thoracic breathing) उदर्य्याकलाकी वातवहानाड़ियोंकी चेष्टा बन्द जिससे श्वासक्रिया करनेमें महाप्राचीरा पेशी और इतर उदरीय मांसपेशियोंका कार्य तुरन्त स्थगित हो जाता है। श्वासोछ्वास केवल ऊर्ध्वभाग (वक्षः स्थान) में। ज्वर और रक्तकीटाणुमय विकार हो, तो ही श्वसन क्रियामें तेजी।

लक्षणप्रगति—

मुखाकृति—आशुकारी उदर्य्याकलाप्रदाहका महत्वपूर्ण लक्षण, चिन्तातुर, निस्तेज और आकुञ्चित मुख-मण्डल, गड्ढेमें डूबी हुई आँख। अरिष्ट लक्षणों (Facies Hippocratica) की प्रगति-डूबी हुई आँख, तेज़ नाक, गाल और दोनों शंखप्रदेश आकुंचित, चिन्तातुर, नीलाभ और खिंचा हुआ मुँह।

उदर—१. प्रसारित और वायुपूर्ण (अन्त्रवधसे) द्रव और कभी गैस भरा हुआ; २. स्थिरता श्वासोच्छ्वासज संचलनका अभाव; ३. पीड़नाक्षमताकी वृद्धि; ४. मांसपेशीका तनाव।

वमन—सत्वर लक्षण, थोड़ी मात्रामें वेदनाप्रद किन्तु थोड़े प्रयत्नसे वमन। प्रारम्भमें आमाशय द्रव्य फिर यकृत् पित्त, अन्तमें पतले मन्द मल द्रवसह वमन। (क्वचित् दुर्दमनीय उबाक, वमन और हिक्का)।

मलावरोध—आक्रमणके साथ मलत्याग। किन्तु परवर्त्ती मल और वायुका पूर्ण अवरोध।

अतिसार (बहुधा जलवत् पतलेदस्त)—सूतिकाप्रदाह और कतिपय समय न्युमोनियाके संक्रमणमें।

नाड़ी—तेज़ (११० से १२०) छोटे आकारकी (Small volume) अधिक तनावयुक्त या तार सदृश। हृदय पतन होनेपर मन्द तनाव या डोरीके सदृश।

उत्ताप—सामान्यतः बढ़ा हुआ। प्रायः १०४°। पतनावस्थामें ह्रास।

जिह्वा—प्रारम्भिक अवस्थामें आर्द्र श्वेताभ, फिर शुष्क और पिङ्गल।

मूत्र—बारंबार होना या संग्रह होना।

रक्तपरिवर्त्तन—श्वेताणु वृद्धि (२०००० या अधिक) साथमें अनेक केन्द्र-मय रञ्ज प्रिय श्वेताणुवृद्धि (७५ से ९० प्रतिशत)।

वक्तव्य—विदारणके हेतुसे उत्ताप होजाता है। ह्रास, फिर वृद्धि, ह्रास; लक्षण बढ़नेपर पुनः पतन हो जाता है। गंभीर रोगियोंमें उत्ताप नहीं बढ़ता है। इस हेतुसे अनिर्णित चिह्न है।

पीड़नाक्षमता—थोड़ा दबानेपर। पीड़ित प्रदेशका उदर्य्याकलासे सम्बन्ध रहता है। सामान्यतः कटिदेशमें पिछली ओर ठेपन करनेपर पीड़नाक्षमताका अभाव होता है।

कभी-कभी पीड़नाक्षमता इतनी बढ़ जाती है कि उदरपर वस्त्र चलनेका आघातभी सहन नहीं होता। छींक, खाँसी आदिसे तो वेदना असह्य होजाती है। इस वेदनाके हेतुसे रोगी जानुओंसे पैरोंको मोड़कर पड़ा रहता है; वेदना वृद्धिके भयसे करवट बदलने और हाथ-पैर चलानेमें संकोच करता है। एवं ज़ोरसे बोलता भी नहीं। यदि उदर्य्याकलाप्रदाह (Traumatic Peritonitis) अभिघातज है, तो आहत स्थानपर शूल चलकर वेदना समग्र उदरप्रदेशमें शीघ्र व्याप्त होजाती है। आमाशय या

अन्त्र आदि यन्त्र अकस्मात् विदीर्ण होनेपर उदर्य्याकलामें प्रदाह उत्पन्न होजाता है। यदि अन्त्रावरणकी कलामें बाह्य पदार्थ प्रविष्ट हुआ हो, तो प्रारम्भसे ही समस्त उदरमें अत्यन्त पीड़ा होने लगती है, साथ-साथ सार्वाङ्गिक अतिशय अवसादके लक्षण होने लगते हैं। यदि विदारण सहसा न होकर धीरे-धीरे हो तो, प्रारम्भमें स्थानिक प्रदाहके लक्षण और फिर समग्र आवरणके प्रदाहके लक्षण-शीत, कम्प, प्रबल ज्वर आदि उपस्थित होने लगते हैं।

उदरके चिह्न —(१) यकृत्‌की मन्दता, प्रायः स्तनान्तरिक रेखामें किन्तु सर्वदा स्कंध प्रदेशमें प्रतीत; (२) द्रव बहुधा उपस्थित, किन्तु सामान्यतः स्वीकार करलेना कठिन; पार्श्वभागमें संचालन शील मन्द ठेपन। (३) गुदामेंसे गैस निकलता है।

कभी-कभी उदर समतल और पूर्ण रूपसे तनावयुक्त।

सूचना—यदि रसोत्सृजन अधिक होता है, तो प्रतिघात ध्वनि मन्द और रोगी अतिशय व्याकुल और हताश होजाता है। उक्त अवस्थामें तत्काल रक्तमोक्षण कराना चाहिये, अथवा किसी भी रीतिसे देहमेंसे रक्तरस अधिक मात्रामें निकाल देना चाहिये। ऐसा न करनेपर रोगीका शरीर अति नीले रङ्गका होजाता है। फिर मानसिक जड़ता और अव्यवस्था आजाती है। निद्रा नाश, व्याकुलता, प्रलाप, अरिष्टसूचक नीलाभ मुखमुद्रा (Facies Hippocratica.) नाक, कान और कपाल शीतल होते हैं। क्षुद्रतर और अति तेज़ नाड़ी भासती है, और गात्रपर शीतल स्वेद आजाता है। ऐसे रोगी कभी-कभी रोगारम्भसे तीसरे या चौथे दिन अथवा एक सप्ताहके भीतर प्राणमुक्त हो जाते हैं। मृत्युके पहले कुछ थोड़ी-सी तन्द्रा आजाती है, फिर मृत्यु होजाती है।

साध्यासाध्यता—शस्त्रचिकित्साके परिणामका मुख्य आधार नाड़ी और मुख-मण्डलपर न्युमोकोकलके अतिरिक्त प्रकारका उदर्य्याकलाप्रदाह होनेपर शस्त्रचिकित्साके अभावमें मृत्यु २ से ७ दिनमें, नाड़ी निर्बल और अनियमित, त्वचाकी शीतलताकी वृद्धि होना, व्यापक नीलाभता या विवर्णता और शक्तिपात होकर मृत्यु।

उद्भिद्कीटाणुओंमें सब प्रकारके स्ट्रेप्टोको कस घातक। न्युमोकोकसका व्यापक आक्रमण गंभीर, स्थानिक आक्रमणमें अच्छा परिणाम। सुज़ाक कीटाणुमें मृत्युसंख्या कम। बेसिली कोलाईके आक्रमणमें विशेष आधार सत्वर शस्त्रक्रियापर।

व्यापक पूयप्रदाह होनेपर दूरतक कला आशयोंको चिपक जाती है। फिर अधिक संकटापन्न स्थिति होजाती है। अनेक बार कीटाणुजन्य व्यापक प्रदाह होनेपर शारीरिक परिवर्त्तन होनेके पहले ही विष शोषण होकर रोगीकी मृत्यु होजाती है।

आशुकारी उदर्य्याकलाप्रदाहके रोगीकी प्रथम सप्ताहमें मृत्यु न हुई और रोगोपशमन भी न हुआ, तो रोग जीर्णावस्था धारण कर लेता है। फिर उदरशूलका ह्रास, पीड़नाक्षमतामें न्यूनता (बलपूर्वक दबानेसे वेदना), अफारा कम हो जाना, क्रमशः ज्वरका शमन, श्वासोच्छ्वास क्रियामें सुधार आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

किन्तु कितनेक रोगियोंको रोगारम्भमें सौत्रिक तन्तुओंके स्रावके हेतुसे आँतोंकी गिडुलियाँ चिपटकर आकुंचित हो जाती हैं। जिससे अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया यथोचित नहीं होती, अन्नपचन ठीक नहीं होता; कोष्ठबद्धता रहती है और मलत्यागके पहले शूलसदृश वेदना होती है। ये विकार मृत्युतक रह जाते हैं। अन्त्रमें रसोत्सृजनकी अधिकता होकर अतिसार हो जाता है, तो उदरकी कठिनता कम होजाती है। नाड़ीस्पन्दन और शारीरिक उष्णताका ह्रास होता है (फिरभी स्वाभाविक अवस्था नहीं आती)।

ज्वर कम हो जाता है, तथापि बीच-बीचमें वृद्धि। रोगी निर्बल, निस्तेज और कृश हो जाता है। वसा कम हो जानेसे मांसपेशियाँ कोमल और शिथिल होजाती हैं। त्वचा शुष्क और मुरझा जाती है। दोनों पैरोंपर शोथ आजाता है, और ४-६ सप्ताहमें रोगी अति क्षीण होकर मृत्यु मुखमें गिर जाता है।

यदि उत्सृष्ट रस पुनः शोषित हो जाता है, तो रोगका अन्त दुर्बलतामें आ-जाता है। यह दुर्बलता दीर्घकालतक रह जाती है। अन्त्रके संकोच और विकृतिके लक्षण प्रकाशित होजाते हैं। फिर उदर्य्याकलामें क्षत और विदारणकी उत्पत्ति होती है, तो ज्वर बढ़ जाता है। उदरकी किसी-किसी स्थानकी दीवार रक्त, अन्तर्भरण (Infiltration) या सौत्रिक पदार्थ विशिष्ट और कुछ समय पश्चात् वह स्थान पूयमय बन जाता है अथवा विद्रधि होकर वह किसी और स्थानमें फूट जाता है। किसी-किसी समय विद्रधि अन्त्रमें फूटनेपर मलके साथ पूय निकलने लगता है। ऐसे प्रसंगोंपर बहुधा अति निर्बलता आकर रोगीकी मृत्यु होजाती है। कोई-कोई समय रोगी चिरकालतक दुःख भोगकर सद्भाग्यसे स्वस्थ हो जाता है।

रोगविनिर्णय—प्रकृतिनिर्देशक लक्षण—१ उदरमें वेदना प्रसारण, पीड़-नाक्षमता, तनाव और फिर रससंग्रह; २. वमन और मलावरोध; ३. तेज़नाड़ी; ४. मुखाकृति; ५. मानस आघात और शक्तिपात। रक्तमें श्वेताणु वृद्धि।

पार्थक्यप्रद रोगविनिर्णय (सदृशरोग लक्षणसह)—

१. **अन्त्रशूल**—मलावरोध, शीशाशूल आदि तथा वृक्कशूलमें भी रह-रहकर वेदना होती है, दबानेपर नहीं बढ़ती।

२. **आशुकारी बृहदन्त्रप्रदाहमें** अतिसार, शूलसदृश वेदना।

३. **आशुकारी अन्त्रावरोधकी** प्रारम्भिक अवस्थामें उदर अप्रसारित और खिंचावका अभाव (केवल अन्त्रव्यावर्त्तनमें ऐसा नहीं होता), वमन प्रचुर और मलमय तथा वेदना शूलसदृश।

४. **अन्त्रमें रक्तस्राव**—होनेपर विशेषतः सगर्भावस्था या अन्त्रप्रदाहावस्थामें नलिका फटजाना। पाण्डुताकी वृद्धि और श्वासावरोध।

५. **हिस्टीरियात्मक उदर्य्याकलाप्रदाह**—कृत्रिम सम्मिश्रित।

६. आशुकारी रक्तस्रावात्मक अन्याशय प्रदाह—उदरके ऊर्ध्वभागमें प्रसारण। शक्तिपात वृद्धि, प्रचुर वमन (कभी-कभी प्रसंगवश)।

७. आशुकारी न्युमोनिया—मुख-मण्डलकी आकृति तथा नाड़ी और श्वासोच्छ्वासका अनुपात देखें। उदरमें वेदना और वान्ति।

८. मुड़ा हुआ बीजाशयका रसार्बुद—अर्बुद वर्त्तमान।

९. वृषणका मुड़ना—एक वृषण नीचे नहीं उतरता।

१०. रोग विनिर्णयार्थ निम्न रोगोंका इतिहास भी पहले जानना चाहिये। आमाशयिक व्रण या ग्रहणीके व्रणका विदारणमें विशेषतः पूर्ववर्त्ती अजीर्ण। उपान्त्र प्रदाहमें, विशेषतः बालकोंमें पूर्ववर्त्ती अच्छी अवस्था होना, यह अत्यन्त सामान्य कारण; अकस्मात् आक्रमण तथा पीड़नाक्षमता, तेज़नाड़ी तथा उत्तापका ह्रास, ये सब इस रोगसे प्रभेदक लक्षण हैं।

उदर्य्याकलाप्रदाहके विशेष प्रकार

श्वसनक ज्वरज उदर्य्याकलाप्रदाह—सामान्यतः बालकोंमें। आयु ३ से ७ वर्ष। अनुपात ४ बालिका और १ बालक। क्वचित् किसीभी आयुमें उपस्थित। कारण अज्ञात-पीड़ित बालिकाएँमें विशेषतः बीजवाहिनी नलिका(Fallopian Tubes) द्वारा आक्रमित होनेका अनुमान है। क्वचित् न्युमोकोकस कीटाणुओंके संक्रमणसे*।

* स्त्रियोंमें गर्भाशयके साथ रहे हुए दोनों स्त्री बीजोंके मुख उदर्य्याकलामें खुलते हैं। इस हेतुसे सुज़ाक आदिके कीटाणु बीजवाहिनी (Uterine Tubes) द्वारा अथवा गर्भकलाप्रदाहद्वारा बीजाशयमें प्रवेशकर उदर्य्याकलामें जाकर वहाँ प्रदाह उत्पन्नकर देते हैं। जब उदर्य्याकलाके किसी भी स्थानमेंसे जीवनशक्ति (Vitality) किसी भी हेतुसे कम होजाती है, तब उस स्थानमें कीटाणुओं (Bacteria) का प्रवेश होजाता है। फिर वे अपनी सृष्टि निर्माण करने लगते हैं। इन कीटाणुओंमें विशेषतर जंजीरसदृश कीटाणु (Streptococci) समुदायबद्ध रहने वाले कीटाणु (Staphylococci) और आन्त्रिक कीटाणु (B. Coli) उल्लेख योग्य हैं। इनमें भी जंजीर सदृश कीटाणु अति प्रबल वेगपूर्वक विस्तृत स्थानमें फैल जाते हैं। इस जंजीर सदृश कीटाणुके आक्रमण होनेपर रस (लसीका) स्राव नहीं जमता और लसीकाणुओं (Leukocites) के समूह सीमान्तमें इकट्ठे नहीं होते। फिर पर्त्त या आशय चिपक नहीं जाते। इस हेतुसे सब विष तत्काल शोषित हो जाता है। फिर रूपान्तरित होकर घोरतर आशयिक विष बन जाता है।

आन्त्रिक कीटाणुद्वारा विशेष प्रकारका प्रदाह होता है। फिरभी जंजीरसदृश कीटाणुकी अपेक्षा अल्प वेगपूर्वक और मर्यादित स्थानमें व्याप्त होता है। एवं लसीकास्राव जम जाना, पर्देका चिपक जाना आदि कुछ बाधायें होती हैं।

समुदायबद्ध कीटाणुओंद्वारा प्रदाह अपेक्षाकृत सीमाबद्ध रहता है।

कभी-कभी वंशानुगत उपदंशविषसे गर्भस्थ शिशुको उदर्य्याकलाप्रदाह होजाता है। एवं नवजात शिशुकी नाभिमें पूयोत्पत्ति होकर या संक्रामक कीटाणुओंका प्रवेश होकर उदर्य्याकलाप्रदाह होजाता है।

पूयमेहज उदर्य्याकलाप्रदाह--स्त्रियोंमें सुज़ाक कीटाणुओंका आक्रमण हो जाय तो प्रदाह फैलनेपर विशेषतः बीजवाहिनीप्रदाह (Gonorrhoeal Salpingitis) द्वारा व्यापक उदर्य्याकलाप्रदाहकी संप्राप्ति होती है। सामान्यतः श्रोणिगुहामें वेदना तथा निम्न उदरमें तनाव, सुज़ाकका पूय निकलनेके साथ सम्बन्ध करनेवाले पुरुषोंमें क्वचित् फैलता है। इस प्रकारमें विश्रान्ति, उत्तरबस्ति, उदरपर सेक आदि, यदि आन्तरिक लक्षणोंकी वृद्धि हो, तो शस्त्र चिकित्सा उपकारक मानी जाती है।

सूतिकारोगज उदर्य्याकलाप्रदाह—प्रसवके पश्चात् २ से ४ दिनके भीतर, विशेषतः पहलीबार प्रसव करने वाली स्त्रीको। सामान्यतः स्ट्रेप्टोकोकाईका आक्रमण (फिरसे शोषित विष प्रकोपज सन्निपात–(Septicaemia) के लक्षण। गर्भाशयसे घृणाजनक स्राव गर्भाशयमेंसे या बीज वाहिनीमेंसे फैलता है। उदरके निम्न प्रदेशमें पीड़ा, अतिप्रसारण। ६ ठवें दिन घातक।

गुप्तप्रकार—वृद्ध मनुष्योंमें अर्थात् उपवृक्क विकार पीड़ितोंमें। लक्षणमन्द। मोतीझरा, किन्तु इसके मन्द लक्षण, बुद्धिमान्द्य, उत्ताप ह्रास और तेज़नाड़ीद्वारा इस-प्रकारकी सूचना मिलती है।

आशुकारी उदर्य्याकलाप्रदाहमें चिकित्सोपयोगी सूचना

इस रोगमें कारण अनुरूप चिकित्सा की जाती है। शीत लग जाना, रक्ता-तिसार, अन्त्रप्रदाह आदि कारणजनित रोगमें अन्त्र और उदरके आवरणको पूर्ण विश्रान्ति देनी चाहिये। इस हेतुसे विरेचन औषधिका बिल्कुल त्याग कर देना चाहिये। आवश्यकतापर बस्तिद्वारा किञ्चित् तार्पिन तैल मिश्रित एरण्ड तैल चढ़ाकर उदरशुद्धि कर लेनी चाहिये।

इस रोगमें अफीम और अफीमके क्षार सब हितकर हैं। योग्य मात्रामें अफीम देनेसे वेदना निवारण होती है, और मलशुद्धि भी होती रहती है।

इस रोगसे ग्रसित व्यक्ति अधिक मात्रामें भी अफीम सहन कर लेता है। इस रोगमें शनैः-शनैः बढ़ाई हुई २–३ माशेतक अफीम एक दिनमें बिना कष्ट पचन हो जाती है और अपना गुण प्रदान करती है। अतः जबतक वेदना शमन न हो और रोगी सुस्थिर न हो; तबतक अफ़ीमकी मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये। अफीमसे उबाक और वमन निवारित होती है। उदरवृद्धिका ह्रास होता है। उदरप्रदेशमें वेदना और पीड़नाक्षमता दूर होती है, और उदर पहले जैसा बन जाता है।

दुर्दमनीय हिक्का होनेपर थोड़ी अफीम मिलाकर धूम्रपान करावें। अथवा हिक्कान्तक रस, मयूरपुच्छ भस्म अथवा कोकेन देवें या श्वासद्वारा क्लोरोफॉर्म सुंघावें।

आशुकारी उदर्य्याकलाप्रदाह चिकित्सा

आशुकारी रोग शामक प्रयोग—रसतन्त्रसारमें लिखे हुये— जाति फला-दिवटी (अतिसार), दुग्धवटी, शंखोदर रस, अगस्तिसूतराज रस, महावातराजरस; इनमेंसे प्रकृतिके अनुकूल औषधि देवें।

इनमेंसे जातिफलादिवटीमें शूल और वेदनाशामक गुण, दुग्धवटीमें रोगशमनके अतिरिक्त ज्वरशामक गुण, अगस्तिसूतराजमें रक्तस्राव कम करानेका गुण, शंखोदर रसमें उदरवात और पित्तविकारको दूर करनेका गुण तथा महावातराजमें शक्ति संरक्षण, वेदना शमन और रोग नाश करनेका गुण विशेष रहा है।

आघातजन्य व्याधि उत्पन्न होनेपर--प्रथमावस्थामें जात्यादि घृत, निगुंण्डी तैल, व्रणशोधन तैल, अरिमेदादि तैल अति लाभदायक हैं। यदि जीवनीय शक्ति क्षीण हो गई हो, तो हृदयको उत्तेजना देनेवाली औषधि-रससिंदूर, लक्ष्मी विलासरस, जवाहर मोहरा या शराब देनी चाहिए।

सूतिका रोगके उपद्रवभूत उदर्य्याकलाप्रदाह चिकित्सा—सूतिका अवस्थामें गर्भाशय विकारसे उत्पन्न उदर्य्याकलाप्रदाहकी चिकित्सा उपर्युक्त क्रमसे बिलकुल भिन्न प्रकारसे की जाती है। इन रुग्णाओंको भी अफीम तो हितावह है ही तथापि प्रसूताको प्रारम्भमें जल सदृश प्रवाही दस्त लानेवाली विरेचन औषधि पूर्ण मात्रामें देनी चाहिए। कुटकी, निसोत या कालादाना देवें अथवा सूतिकारि रस या बालमित्र चूर्ण तीसरी विधि अथवा आरोग्यवर्धिनी दूसरी विधि देवें अथवा मेगनेशिया सल्फास देकर कोष्ठशुद्धि करानी चाहिए। फलतः अन्त्रकी पुरःसरण क्रियामें वृद्धि होकर उदर्य्याकलामें संचित सब तरल निकल जाता है; नाड़ीके स्पंदन बढ़ जाते हैं तथा शारीरिक उत्ताप और वेदनामें कमी हो जाती है। इस तरह विरेचनसे उदरदोषके निवारण होनेके पश्चात् अहिफेनप्रधान औषधि देनी चाहिए। भोजनमें दूध, मछलीके मांसकायूष और फल देना चाहिए।

अभिघातज प्रदाह चिकित्सा—आघातके कारणसे शोषित विषकी रक्तमें वृद्धि (Septicaemia) होकर उदर्य्याकलाका प्रदाह होनेपर शस्त्रचिकित्सा ही करनी चाहिए।

शस्त्रद्वारा दूषित भागका उदरकी दीवारमेंसे छेदन (Laparotomy) और विषघ्न (Antiseptic) चिकित्साका अवलम्बन करना चाहिए। इस प्रकारमें आव-श्यकतानुसार अहिफेन प्रधान औषधि दी जाती है।

आमाशय और अन्त्रका क्षत होनेपर आहार बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। प्यास शमनार्थ बर्फके टुकड़े देते रहें। देह पोषणार्थ बस्तिद्वारा द्राक्षशर्करा आदि प्रवाही चढ़ाते रहें। किन्तु पहले मेगसल्फकी बस्तिसे कोष्ठ शुद्धिकर लेनी चाहिए। विरेचन नहीं देना चाहिए। अन्यथा व्यापक प्रदाह हो जानेकी भीति रहती है।

रोगकी अन्तिम अवस्थामें अति कृशता आनेपर--पूर्ण विश्राम, लघु

पौष्टिक, पथ्य भोजन तथा मृदु उत्तेजक, पौष्टिक और रक्तशोधक औषधि; एवं उदरपर स्थान-स्थानपर ब्लिस्टर प्रयोग करना चाहिए। पौष्टिक औषधियोंमेंसे मधुमालिनी वसंत, ब्राह्मी वटी, कस्तूरीभैरव रस अथवा च्यवनप्राशावलेहके साथ रससिन्दूर और लोहभस्म देना चाहिए।

सामान्यतः न्युमोकोकस और गोनोकोकस जन्य प्रदाहोंके अतिरिक्त प्रकारमें शस्त्रचिकित्सा करनी चाहिये।

रोग निर्णयमें संदेह होनेपर औषध और भोजन नहीं देना चाहिये। उदरपर सेक करें। मालिश करनेमें तार्पिनतैलका उपयोग न करें।

आ. उदर्य्याकलाके भीतर विद्रधि

(Intraperitoneal Abscess)

मुख्य प्रकार—१. उपान्त्र विद्रधि; २. मूत्राशयार्बुद; ३. महाप्राचीराका निम्नस्थ अर्बुद; ४. आशुकारी बृहदन्त्र कृत्रिम स्थली प्रदाह।

महाप्राचीरापेशीकी उदरगत सतहपर अनेक क्षेत्रोंमें पूय फैल सकता है या बढ़ सकता है। उसके समूहका निर्णय करना कठिन होनेसे उसे महाप्राचीरा निम्नस्थ विद्रधि संज्ञा दी है।

इ. महाप्राचीरा निम्नस्थ विद्रधि

(Sub Phrenic Abscess or Sub Diaphragmatic Abscess)

यह आशुकारी उदर्य्याकलाप्रदाहका स्थानिक प्रकार है। इसमें पूय यकृत् और महाप्राचीराके भीतर उपस्थित होता है।

शरीर सम्बन्ध और विद्रधि प्रकार—उदर्य्याकलाकी प्रतिफलित क्रिया यकृत्की ऊर्ध्व और पश्चिम तलपर होनेसे २ क्षेत्रोंमें विभाजित होजाता है। (१) दीर्घा-प्रबन्धनीद्वारा वाम और दक्षिणमें, (२) पश्चिमा (Coronary) और पार्श्विका-प्रबन्धनी-द्वारा अग्रिम और पश्चिम भागमें उदर्य्याकलाके भीतर रहा हुआ पूय इस तरह आंशिक सीमाबद्ध फैलता है। फिर बढ़कर निम्न प्रकारके विद्रधि उपस्थित होते हैं।

१. दक्षिण अग्रिम उदर्य्याकलान्तर प्रदेश—सम्बन्ध-बाँईं ओर दीर्घा प्रबन्धनीसे। ऊपर महाप्राचीरासे, नीचे यकृतसे। पिछली ओर दक्षिण पार्श्विका-प्रबन्धनी से। आगेकी ओर अनुप्रस्थ बृहदन्त्र, महाप्राचीरा तथा यकृत्के निम्नतलके बीचमें संलग्नता। संलग्नताके अभावमें दक्षिण पश्चिमस्थालीपुटके साथ सम्बन्ध। चारों ओर दक्षिण पार्श्विका-प्रबन्धनीके दक्षिण किनारेसे। विद्रधिमूल उपान्त्र विद्रधि ग्रहणी या आमाशयके क्षतका विदारण। कभी यकृद्विद्रधि।

२. वाम अग्रिम उदर्य्याकलान्तर प्रदेश—यह आमाशयावरण अथवा प्लीहावरण प्रदेशभी कहलाता है। सम्बन्ध-दक्षिणमें दीर्घा-प्रबन्धनीसे बाँईं ओर

प्लीहासे नीचे यकृत् और आमाशयसे। ऊपर महाप्राचीरासे पीछे वामपार्श्विक-प्रबन्धनीसे विद्रधिमूल-आमाशय क्षतका विदारण।

३. दक्षिण पश्चिम प्रदेश—यह महाप्राचीरा निम्नस्थ और दक्षिण वृक्कक्षेत्र भी कहलाता है। सम्बन्ध-मिश्रित। नीचे दक्षिणवृक्क और अनुप्रस्थ अन्त्रसे। यकृत् और महाप्राचीराके बीच वाम दक्षिण ऊपरकी ओर प्रसारित, पश्चिमा-प्रबंधनीके सतहसह विद्रधिमूल-उपान्त्रमें, कभी-कभी आमाशय और ग्रहणीमें विद्रधि।

४. वाम पश्चिम प्रदेश—उदर्य्याकलाके लघुकोषद्वारा उत्पन्न। उदर्य्यान्तरिक छिद्र (Epiploic foramen) संयोजनद्वारा बन्द। विद्रधिमूल—आमाशय व्रणका विदारण।

५. उदर्य्याकलाके बाहर—ऊपर यकृत्का विस्तृत प्रदेश। विद्रधिमूल—यकृत् विद्रधि या विदारित कृमिज रसार्बुद।

अत्यन्त बारंबार प्रकार—दक्षिण और वाम अग्रिम प्रदेश। आमाशय या ग्रहणीके क्षतका विदारण। इसकी संस्थिति दीर्घ-प्रबन्धनीकी दक्षिण या वाम दिशामें यथार्थमें प्रसारणकी दिशामें प्रगति।

इन क्षेत्रोंकी सीमाका ठीक निर्णय नहीं हो सकता। तथा पश्चिमा और पार्श्विकी-प्रबन्धनी इन दो के कुछ भागभी प्रभावित होते हैं।

अत्यन्त सामान्य कारण—(१) आमाशय या ग्रहणीके व्रणका विदारण; (२) उपान्त्रप्रदाह, शस्त्रचिकित्साके पहले या पश्चात।

व्रणविदारणजन्य लक्षण—मुख्यचिह्न विदारण। पहले यह स्थानिक होता है। १० दिनके पश्चात् पूयोत्पत्तिके लक्षण बढ़ते हैं। (ज्वर क्वचित १०२°), थकावट, शीत-कम्प, अनियमित मलावरोध या अतिसार, उदरके ऊर्ध्वभागमें वेदना और श्वासो-च्छ्वासकी वृद्धि आदि।

उपान्त्र प्रदाहजन्य लक्षण—पूय लक्षण क्रमशः वृद्धिसह। आक्रमण प्रायः गुप्त।

चिह्न—(१) गैस विद्यमान् या अभावसह, गैसके अभावमें गुहाके भीतर पूयके सदृश चिह्न; (२) विद्रधिकी संस्थिति।

विद्यमानवायु—यदि गैस उपस्थित है, तो थोड़े परिमाणमें प्रायः विदारणके ऊपर निकलती है। आगेके प्रकारोंमें संचलनशील बुद-बुदे (व्यास लगभग १ इञ्च) की प्रतीति। ठेपन ध्वनिवाला क्षेत्र हृदयाधरिक प्रदेश या पशुकाके पीछे, रोगीकी संस्थितिके अनुरूप। यह वायुका चलनशील बुद-बुदा रोग निर्णयमें अति महत्वका है. किन्तु परीक्षा अति सावधानता पूर्वक करनी चाहिये।

यदि गैस अधिक मात्रामें गुहासे बाहर आजाती है या उत्तर कालमें बिना वायु रहनेवाले सूक्ष्म कीटाणुओंका प्रभाव होजाता है, तो पूर्णतः वातभृत फुफ्फुसावरणके समान प्राकृतिक चिह्न। महाप्राचीरा निम्नस्थ वातभृत फुफ्फुसावरण अति क्वचित्।

फुफ्फुसावरण विद्रधिके साथ महाप्राचीरा विद्रधिका अति सादृश्य है। महाप्राचीराके निम्नस्थ विद्रधिकी ऊर्ध्व सीमा उन्नतोदर (Convex) और फुफ्फुसावरण विद्रधिकी ऊर्ध्व सीमानतोदर (Concave) होती है।

वायुका अभाव:—

१. दक्षिण अग्रिमक्षेत्र—अ. उदरगत चिह्न कौड़ी प्रदेशमें तनाव, पशुका-के किनारेके ऊपरमें स्पर्शग्राह्य, ठेपनमें जड़ध्वनि । दीर्घा प्रबन्धनीद्वारा बाँई ओर मर्यादित होना। मध्यपंक्तिसे बाहर अप्रसारित, किन्तु बाह्यपंक्ति प्रबन्धनीके स्फीत भागसे बाँएँ मोड़की ओर। यदि संलग्नता विद्यमान् है तो श्वासोच्छ्वासद्वारा जड़ ध्वनि बिलकुल चल नहीं सकती। पूर्ण स्वाभाविक याकृती सीमाके बाहर नीचे अप्रसारित। आ. उरोगुहामें चिह्न—महाप्राचीरा कुछ ऊपर सरक जाती है। फुफ्फुस पीठपर ठेपन ध्वनिकी जड़ता और फुफ्फुस पीठपर श्वासध्वनिका अभाव। हृदय स्थानान्तरित, किन्तु पार्श्व भागमें नहीं।

२. वाम अग्रिमक्षेत्र—ऊपरके अनुरूप, किन्तु दीर्घा प्रबन्धनीके बाँई ओर

३. दक्षिण पश्चिम क्षेत्र(महाप्राचीरानिम्नस्थ)—चिह्नकठिन । शोथाभाव दक्षिण कटिभागमें पीड़नाक्षमता और तनाव। दक्षिण पीठपर श्वासोच्छ्वासका अभाव और जड़ता हृदय स्थान भ्रष्ट नहीं होता।

४. लघुकोष—ठेपनमें जड़ता अर्बुद नीचे विद्यमान या कभी-कभी आमाशयके ऊपर । कभी अभाव। अग्न्याशयका कृत्रिम रसार्बुद। रोग निर्णय मुख्यतः लक्षणोंसे ।

५. उदर्य्याकलासे बाहर—महाप्राचीरा ऊपर और यकृत नीचे सरक जाता है। श्वासोच्छ्वाससे संचलन। चिन्ह दक्षिण फुफ्फुस पीठपर।

शस्त्र चिकित्सा रहित क्रम—(१) महाप्राचीराका विदारण। उदर्य्याकलाके अतिरिक्त प्रकारकी प्रतीति कभी-कभी फुफ्फुसावरणमें। इतर प्रकारकी प्रगति अति मंदगतिसे होकर फिर फुफ्फुस संलग्न प्रकार और फुफ्फुसमें विदारण। गम्भीर कास और बार-बार कफ निकलना। समय-समयपर अन्त्रमें कफ चला जाना। (२) चिरकारी गलनात्मक अवस्था घातक। बिना शस्त्रचिकित्सा मृत्यु संख्या ७५ प्रतिशत। शस्त्रचिकित्सासे पूय निकलनेका मार्ग करनेपर मृत्यु लगभग ३० प्रतिशत।

रोग विनिर्णय—सामान्यतः उदर्य्याकलाप्रदाह उदरके विभिन्न यन्त्रोंके विकार सहवर्त्ती या उपद्रव रूपसे अथवा अभिघातज होता है।

इतिहास—पूर्ववर्त्ती आमाशय या ग्रहणीमें क्षत और विदारणके लक्षण, उपान्त्रप्रदाह या उदरकी शस्त्रचिकित्सा। आशुकारी लक्षणोंके पश्चात् संप्राप्ति, मध्यवर्त्ती कुछ दिनोंसे सप्ताहोंतक (प्रायः १० से १२ दिन)।

पाकावस्थाके लक्षण—उत्ताप कभी १०२° से अधिक।

प्राकृतिक चिन्ह—प्रायः उदर और छाती, दोनोंके (दक्षिणफुफ्फुसपीठप्रदाह-के प्रसारणसे महाप्राचीराद्वारा चिह्नोत्पत्ति,) वायुका बुदबुदा महत्वका चिह्न है ।

'क्ष' किरण—अवयवोंकी स्थान च्युति और अस्वाभाविक छाया।

सुईसे छिद्रवाला स्थान—निम्न पर्शु'कान्तर स्थानमें, ऊपर जड़ता, अंसफलक-के कशेरुकाके किनारेपर लम्बे भागमें जड़ ठेपन ध्वनि। पूयनिर्णयार्थ ३ इञ्च नीचे परीक्षा करें।

सूचना सुई दूसरी दिशामें अन्तः प्रविष्ट करनेके पहले पूर्णरूपसे बाहर निकाल प्रायः अनेक छिद्र करनेकी आवश्यकता होती है ।

प्रभेदकरोग विनिर्णय—

१. गुहामें पूय—गैसके अभावमें। फुफ्फुसावरणमें द्रव और फुफ्फुसमें परिवर्तन, ये महाप्राचीरा निम्नस्थ विद्रधिके साथ भी हो सकते हैं ।

२. उष्ण कटिबन्ध प्रदेशमें यकृद् विद्रधि ।

३. वृक्कावरण विद्रधि (क्वचित्)।

४. अग्न्याशयकी व्याधि—लघु कोषके विद्रधिमें ।

५. वातभूत फुफ्फुसावरण—अति क्वचित् मात्रामें गैससह ।

ई. बस्तिगुहामें विद्रधि
(Pelvic Abscess)

बीज वाहिनीके प्रदाहसे गौण विद्रधि गर्भाशय या उपान्त्रके चारों ओर हो जाता है। पाक होनेपर लघ्वन्त्र-निम्न उदर प्रदेशमें पीड़नाक्षमता परीक्षा करनेपर गुदनलिका या योनिमार्गमें मृदु शोथ और प्रायः अफाराकी प्रतीति ।

चिकित्सोपयोगी सूचना

विद्रधिको हाथोंसे दबाना नहीं चाहिये, अन्यथा अधिक पूय निकलकर चारों ओर फैल जाता है ।

लघु अन्त्रका क्षत होनेपर आहार बिल्कुल बन्द कर देना चाहिये । प्यास शम-नार्थ बर्फके टुकड़े देते रहें । देह पोषणार्थ बस्तिद्वारा द्राक्षशर्करा आदि प्रवाही चढ़ाते रहें, किन्तु पहले बस्तिसे कोष्ठ शुद्धि कर लेनी चाहिये । विरेचन नहीं देना चाहिये । अन्यथा प्रदाह फैल जानेकी भीति रहती है ।

रोगकी अन्तिम अवस्थामें अति कृशता आनेपर—पूर्ण विश्राम, लघु पौष्टिक पथ्य भोजन तथा मृदु उत्तेजक, पौष्टिक और रक्तशोधक औषधि; एवं उदरके स्थान-स्थानपर ब्लिस्टर प्रयोग करना चाहिये। पौष्टिक औषधियोंमेंसे मधुमालिनी वसंत, ब्राह्मी वटी, कस्तूरीभैरव रस अथवा च्यवनप्राशावलेहके साथ रससिन्दूर और लोह भस्म देना चाहिये ।

आक्रान्त स्थानको शुद्ध करें । फिर १-२ सेर नमक मिश्रियम (Saline Solution) से उदर्य्याकलाको धो लेना चाहिये । एवं समस्त उदरपर लगानेके लिए

पञ्चक्षीर (उदुम्बर, वट, अश्वत्थ, वेतस, प्लक्ष) वृक्षोंकी छालके कल्कोंके मोटे-मोटे लेपका अथवा अलसी या गेहूँके आटेकी पुल्टिसका उपयोग करें, अथवा फलालेनको गर्म जलमें भिगो, निचोड़, उस पर तार्पिनतैल डालकर उदरपर बाँधें। अथवा बर्फ-की थैली या बर्फ की पुल्टिस रखकर शीतलता देवें; किंवा अहिफेन अर्क (Tinct. Opii) में वस्त्रको भिगोकर उदरपर रक्खें; फिर उसपर उष्ण सेक करें।

आवश्यकतापर वेदना निवारणार्थ जलौका लगावें या कपिंग ग्लासका प्रयोग करें। इन दोनोंमेंसे जलौकाका प्रयोग विशेष उपकारक है।

३. चिरकारी उदर्य्याकलाप्रदाह

(Chronic Peritonitis.)

प्रकार—अ. क्षयात्मक उदर्य्याकलाप्रदाह।

आ. कर्कस्फोटज उदर्य्याकलाप्रदाह।

इ. चिरकारी संलग्नशील उदर्य्याकलाप्रदाह—प्रदाहके प्रसारणसे। भिन्न रचनामेंसे।

अ. स्थानिक विशेषतःबस्तिगुहा, यकृत् या प्लीहाका प्रदाह, उपशेषान्त्रक प्रदाह। बृहदन्त्रके आवरणका प्रदाह। अन्त्रकी संलग्नता, आमाशयका मुद्रिकाद्वार, पित्ताशय और आमाशयका प्रदाह।

आ. व्यापक।

ई. चिरकारी पुनर्जननात्मक उदर्य्याकलाप्रदाह

अ. स्थानिक जैसा कि चिरकारी यकृदावरणप्रदाह।

आ. विस्तृत जैसा कि चिरकारी यकृत्प्रदाह।

इ. रक्तस्रावसह रसत्वचाका व्यापक प्रदाह (Polyserositis) रसत्वचाका घातकप्रदाह (Polyorrhomenitis) और कॉन्केटोका रस त्वचाप्रदाह। (Concato's disease)।

व्यापक कारण—प्रकार १ रा और ४ था, ये अत्यन्त कठिन समूह। उद्भिद्कीटाणुजन्य प्रदाहका प्रसारण होना, यह अनेक रोगियोंके लिये निःसन्देह है। जैसाकि बस्तिगुहाका उदर्य्याकलाप्रदाह, उपशेषान्त्रक प्रदाह।

समान जातिका परिवर्त्तन, जिसका अति प्रसारण हुआ हो, उसका संप्राप्ति दृष्टिसे विचार करें, तो वह प्लीहावरणप्रदाह, यकृदावरणप्रदाह आदिकी और व्यापक उदर्य्याकलाप्रदाहकी भी संप्राप्ति कराता है। इतर रस त्वचाप्रदाह बढ़ता है, वह सामान्य प्रदाहके प्रसारणके समान किन्तु अनुमानसे अत्यधिक भागमें। सम्प्राप्त्यात्मक परिवर्त्तन, जो स्थानिक उपस्थितिके समान होता है, जैसाकि यकृदावरणप्रदाहमें। आगे मौलिक स्थानिक परिवर्त्तन क्रमशः उदर्य्याकलामें फैलनेका प्रयत्न करता है।

कभी-कभी समस्या कितनेक असम्भव विचारोंद्वारा हल करनी पड़ती है; जैसाकि बृहदन्त्रके कुण्डलिका भागमें अर्बुद होनेपर। (१) वह किस प्रकारकी प्राप्ति कराता है ? (२) यह क्षयात्मक है या नहीं ? सब प्रकार मूल दिशासे फैलनेका प्रयत्न करे, वैसा है ?

स्थानिक प्रकारोंके नाम—बृहदन्त्रावरण प्रदाह (Pericolitis) बृहदन्त्रपरका उदर्य्याकलाप्रदाह (Pericolitis sinistra) कुण्डलिकावरण प्रदाह (Perisigmoiditis), तन्तुघटकोंकी वृद्धिसह बृहदन्त्रावरणप्रदाह (Hyperplastic pericolitis)।

अ. क्षयात्मक उदर्य्याकलाप्रदाह

(Tuberculosis of the Peritonium)

विशेषतः यह बाल्यावस्थामें होता है। क्वचित् २० वर्षसे भी बड़ी आयुवालेको, फिर कम समय। यह सब आयुवालोंमें प्रगति प्राप्त करता है। बड़ी आयुवालोंमें अति सामान्यतः स्त्रियाँ पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक पीड़ित। उनमें बीजवाहिनी द्वारा संक्रमण।

संक्रमणप्रकार—१. कारण अप्राप्य। प्राथमिक क्षयज उदर्य्याकलाप्रदाह, क्वचित् बड़ी आयुमें। क्षयकीटाणु ५० से ८० प्रतिशत रोगियोंमें गौजातिके (Bovine type)। गौको क्षय होनेपर उसके दूधमें क्षयकीटाणु आते रहते हैं।

२. अन्त्रबन्धनीकी ग्रन्थियोंका क्षय। विक्षिप्त कीटाणु।

३. बीजवाहिनि नलिकामेंसे। स्त्रियोंके सामान्य कारण।

४. फुफ्फुस क्षय। कफ निगलनेपर, क्वचित्। कभी-कभी मूल और सम्मिलित।

५. फुफ्फुसावरण (क्वचित् हृदयावरण) भी प्रभावित। यह घातक रसस्रावात्मक प्रकार स्थापित करते हैं।

६. अन्त्रका प्राथमिक क्षय।

७. कभी-कभी शुक्र प्रपिका (Vesiculae Seminalis) मेंसे। बीजाशयार्बुद आक्रमण सामान्य नहीं।

शारीरिक विकृति—फुफ्फुसका या सार्वाङ्गिक आशुकारी पिटिकामय क्षय होनेपर उदर्य्याकलामें धूसर क्षय ग्रन्थियाँ उपस्थित होती हैं। चिरकारी फुफ्फुसक्षयमें और अन्त्रके क्षयज क्षतकी उदर्य्याकलाकी सतहपर भी वैसी ग्रन्थियाँ होती हैं। अधिक व्यापक होनेपर रोगपरीक्षात्मक दृष्टिसे 'उदर्य्याकलाका क्षय' स्थापित होता है; किन्तु तन्तु प्रभावित होते हैं।

(१) उदर्य्याकलामें क्षयग्रन्थियां, प्रायः पनीरवत् (Caseating), क्षपा बारंबार पीड़ित; (२) उदर्य्याकलाकी संलग्नता, अन्त्र कुण्डलके बीचमें, सौत्रिक अपकाग्निके हेतुसे; (३) व्यापक उदर्य्याकलाका प्रदाह। क्षयग्रन्थियाँ उदर्य्याकलामें विक्षिप्त, विशेषतः जलोदरसे सम्बन्धवाली।

अन्त्रबन्धनीकी ग्रन्थियाँ—प्रभावित, विशेषतः बालकोंमें प्रायः प्राथमिक, किन्तु उदर्य्याकलाप्रदाहसह। शीर्णता और निर्बलता उपस्थित।

अन्त्रकी श्लैष्मिक-कला—प्रायः प्रभावित, किन्तु सर्वदा क्षयात्मक नहीं। प्रभाव जन्य लक्षण उपस्थित; किन्तु भौतिक चिन्ह नहीं।

क्षतपरिणाम—साथमें उत्पन्न विकार, परिवर्त्तन और निम्न सामान्य परिणामपर अवलम्बित।

१. उदरमें अर्बुदकी उपस्थिति—

अ. वपामें क्षयग्रन्थि स्पर्शग्राह्य। उदरमें नाभिके पास आड़ी पड़ी हुई।

आ. स्थालियोंसे निःसरित रस और अन्त्रकी कुण्डलीके बीचमें संलग्नता और रसके सम्मिलनसे। सामान्यतः मध्यवर्त्ती संस्थिति और बीजाशयके अर्बुद सदृश प्रतीति।

इ. ग्रन्थियोंकीस्थूलता-बड़ेपिण्डके आकारमें।

ई. अन्त्रकुण्डली-मोटी होजाना, क्वचित् स्पर्शग्राह्य।

उ. मलसंग्रह अतिसामान्य, अन्त्रावरोध और अन्त्रकी परिचालन क्रियामें प्रतिबन्धसे। बस्तिसे मल दूर होजाता है।

शस्त्रचिकित्सा करनेपर पिण्डकी प्रतीतिका अभाव, यह विशेषतः जलोदर या अफाराके हेतुसे होनेपर।

जलोदर—विशेषतः व्यापक उदर्य्याकलाप्रदाहमें। यकृत्के खातमें बढ़ी हुई ग्रन्थियों द्वाराभी पीड़ित होसकती है।

२. अन्त्रकुण्डलीके बीच संलग्नता—सौत्रिक तन्तुओंकी उत्पत्तिसे, अन्त्रके क्षयज क्षतसे (जो अन्य संलग्न कुण्डलीके भीतर विदारित होता है), अथवा स्थानिक विद्रधिकी रचनासे।

३. नाड़ीव्रण—क्षय ग्रन्थियोंके किलाटजनन (Caseation) और प्रसारण से। सामान्यतः नाभिप्रदेशमें। अन्त्रके चिरकारी क्षत और संलग्नता होनेपर मल निकलता है।

४. अफारा—(१) चिरकारी रोगियोंमें उदर्य्याकलाकी संलग्नतासे; (२) आशुकारी रोगमें स्वाभाविक बलका नाश होनेपर।

परीक्षात्मक लक्षण समूह—इसके २ समूह हैं। (१) जलोदर प्रकार और (२) तन्तुप्रकार। मध्यस्थप्रकार सामान्य।

१. जलोदरप्रकार—अधिक मात्रामें द्रव संग्रह।

२. गठनकारी—अत्यन्त सामान्य। द्रव कम मात्रामें, अर्बुद और अनियमित पिण्ड सामान्य। इसके २ समूह।

अ. क्षतमय या किलाटजननसह—उदर्य्याकलामें क्षयग्रन्थियाँ, ये विद्रधि या

अन्त्रमें नाड़ीव्रण होकर किलाट भवन होनेपर। कितनेक सौत्रिकतन्तु और जालीकी उत्पत्ति।

आ. सौत्रिक तन्तुमय—अन्त्र कुण्डलियोंके बीच संलग्नता और थोड़ा द्रव। परिणाममें अति मन्द चिरकारी अन्त्रावरोध।

आक्रमणकालमें लक्षण—(१) आशुकारी क्षयात्मक उदर्य्याकलाप्रदाह। जलोदर प्रकारमें ३ दिनमें उदर भरजाता है, ज्वर (संभवतः कीटाणुओंके शीघ्र विस्तारसे)। (२) गुप्त—क्षत प्रकारमें सामान्य, महीनों तक व्याकुलता, (३) दृढ़ और चिरकारी-सौत्रिकतन्तु प्रकारमें।

लक्षण—मन्द व्यापक व्यथा—निर्बलता, वज़न कम होना, पाण्डुता।

ज्वर—विविध मात्रामें। अति सामान्य चिरकारी प्रकारमें मन्द, लगभग १००°। सतत या सविराम। कभी स्वाभाविक उत्तापसे भी कम। आशुकारी प्रकारमें १०३° से १०४°। ज्वर प्रायः प्रातःकालको कम तथा सायङ्कालको ज्यादा।

आमाशय अन्त्र लक्षण—सामान्यतः उबाक, वमन न होना। मलावरोध, यदि अन्त्रक्षत न हो तो। क्षत हो तो अतिसार। बहुधा मलमें केवल पतलापन। दुर्गन्धमय मल। कभी आध्मान और उदरमें वायुकी गड़गड़ाहट (Borborigmi), उदर तन जाना।

वेदना—सामान्यतः मंद। अन्त्रावरोधके हेतुसे रह-रहकर। दबानेपर वेदना वृद्धि।

रंजन—उदरका या कभी सार्वाङ्गिक। रंजन असामान्य नहीं। कपोलकी श्लैष्मिक-कला अप्रभावित (एडिसनके रोगसे तुलना करें)।

प्राकृतिक चिन्ह—प्रकार भेदसे अनेक। मध्यम प्रकार पुनः-पुनः।

जलोदरप्रकार—(१) उदर अधिक प्रसारित। पार्श्वभागमें जड़ता। अधिक जीर्ण रोगियोंमें स्थलीमेंसे निःसरित रसस्राव संयोजन करवाता है। जलोदरमें परीक्षा करनेपर तरंगानुभूति (Flactuation)।

गठनकारी प्रकार—(१) क्षतमय प्रकारमें सामान्यतः उदरका मध्यम प्रसारण, प्रकृति निर्देशक कोमलतासह। अन्त्र परिचालन क्रियाकी अप्रतीति। अन्य लक्षणोंकी अप्रतीति, किन्तु सामान्यतः अन्त्रकुण्डलीके बीच रहे हुए वपा, ग्रन्थियाँ अथवा क्षयात्मक द्रव्यमेंसे अनिश्चित पिण्ड बनना। (२) सौत्रिक प्रकार अस्पष्ट लक्षण, स्पर्शग्राह्य अर्बुद, अनियमित कुण्डली, वपा लिपटी हुई या मलसंग्रह। (३) स्पर्शग्राह्य क्षय-ग्रन्थियाँ (बालकोंको अन्त्रबन्धनीका क्षय)-अर्बुद मध्यमें या उण्डुकके पास, सामान्यतः दृढ़; बाह्य सीमा अनियमित और कठोर। यकृत्प्लीहा स्पर्शग्राह्य।

क्रम—प्रतिकूल रोगियोंमें उदरके चिह्न वृद्धिसह वर्द्धमशील शीर्णता।

उपद्रव—परिणाम या क्षतिमें ऊपर देखें। पाण्डु, कभी स्थूल कण रहित रक्ताणु वृद्धि, जो सब प्रकारकी चिकित्साके प्रतिरोधी। ये क्षतमय प्रकारके अन्तमें बढ़ते हैं।

साध्यसाध्यता—बहुधा गठनकारी प्रकारमें साध्य। जलोदर प्रकारमें यदि आराम करनेपर स्रावनष्ट होजाता है तो साध्य। असाध्य प्रकार—(१) दो वर्षके भीतर क्षय कीटाणु लगभग सर्वदा व्यापक होते हैं। (२) क्षयसह अन्त्रप्रदाह; (३) अन्त्रमें नाड़ी व्रणकी रचना होनेके पश्चात्; (४) अन्यत्र क्षय ग्रन्थियाँ होजानेपर।

रोग विनिर्णय—

बालकोंमें—प्रथमावस्थामें कठिन; (१) वज़नका ह्रास होते रहना, स्वास्थ्य प्राप्तिमें असफल होना; (२) कभी-कभी ज्वर; (३) अन्त्रक्रिया विकृति, बारम्बार मलावरोध और बारम्बार अतिसार: बढ़ी हुई अवस्थामें निदान सरलतासे। जलोदर कभी अन्य कारणोंसे।

बड़ोंमें—प्रायः कठिन। प्रभेदक निदान निम्नरोगोंसे। बीजाशयका अर्बुद ज्वराभाव, ठेपनमें जड़ता न होना, बाह्य सीमा निश्चित। अर्बुद सामान्यत: मध्यमें। फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण तथा बीजाशय नलिका व्याधि रहित।

यकृद्दाल्ली—इतिहास और रोगीका देखाव। ठेपनमें मंदता और द्रवनिर्णय होनेपर छिद्रकला (Paracentesis), यकृत्का किनारा स्पर्शग्राह्य। जलोदरसह पिटिकामय कर्कस्फोट द्रवपरीक्षासे निर्णय।

आशुकारी प्रकार—न्युमोनियाके कीटाणुओंसे उदर्य्याकलाप्रदाह और उपान्त्र प्रदाहसे।

उदर्य्याकलाकाद्रव—श्वेताणुकी अधिकता।

चिकित्सोपयोगी सूचना—जबतक ज्वर, लक्षण और चिन्ह, सब शमन न होजाँ, तबतक शय्यापर पूर्ण आराम करावें। अनेक सप्ताहों या महिनों पर्यन्त।

जलवायुका परिवर्त्तन या शुद्ध वायुका सेवन रोगशमनमें सहायक होता है। औषधि रक्तशोधक और पौष्टिक देनी चाहिए। मधुमालिनीवसन्त, रससिंदूर, अभ्रकभस्म और लोहभस्म मिश्रण, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म, मत्स्यतैल आदिका सेवन कराना विशेष उपयोगी है।

यदि उदरमें मामूली जलसंचय हुआ हो, तो वह बाहरके लेप और विरेचन औषधिसे रोगशमनके साथ निवृत्त हो जाता है। अधिक तरल हो, तो व्रीहिमुखयन्त्रद्वारा उदरमें छिद्र (Paracentesis) करके निकाल लेना चाहिए। इसकावर्णन जलोदर चिकित्सामें पहले किया है। पूयमय प्रदाहके लिए शस्त्रचिकित्साका अवलम्बन लेना चाहिए।

सूर्यप्रकाश और शुद्ध वायुमें निवास, पूर्ण विश्राम और वसामय पौष्टिक भोजन देना चाहिए। अतिसार हो, तो दुग्ध या तक्र, उदरपर टिंचर आयोडीन या अहिफेनको

बकरीके दूध या मूत्रमें मिलाकर लगाते रहें। या दोषघ्न लेप लगाते रहें। आवश्यकता अनुसार पुल्टिस या प्लास्टरका प्रयोग भी किया जाता है।

आशुकारी क्षयात्मक प्रकार होनेपर डॉक्टरीमें पारदादि मलहम (Ung. Hydrarg. Co.) १-१ ड्राम कपड़ेपर फैलाकर सप्ताहमें ३-४ दिन उदरपर लगाते हैं, यह भी हितकारक है।

खानेके लिये औषधि फुफ्फुसक्षय और अन्त्रक्षयमें लिखे अनुसार। चतुर्मुख रस, महामृगांक, हेमगर्भ पोटली रस, लोकनाथ रस और लक्ष्मीविलासरस सुवर्ण मिश्रित अति हितकर हैं।

अतिसार होतो—सर्वाङ्ग सुन्दर, ग्रहणीकपाट या कर्पूर रस देवें।

पथ्यापथ्य

पथ्य—रोगीको पूर्ण विश्रान्ति देना, सूर्य-प्रकाश, शुद्ध वायु, तीव्र प्रकोप कालमें लङ्घन, दूध, मोसम्मी, मंतरा, अनार आदि फलोंके रस, अफीम, अफीम क्षार, अफीममिश्रित धूम्रपान, रोग बलका ह्रास होनेपर मांसका यूष, मछली, किशमिश, मुनक्का, नीबू, मट्ठा, लघु पौष्टिक भोजन और कब्ज़ न करनेवाले शाक आदि पथ्य हैं। ज्वरावस्थामें ज्वरके अनुरूप।

अपथ्य—विरेचन, अत्यधिक घी, गुड़, मधुर पदार्थ, अधिक दाल, शुष्क भोजन, मांस, शराब, तेज़ मसाला, अधिक नमक, तैल, घूमना-फिरना, गरम चाय और गरम कॉफी आदि।

आ. कर्कस्फोटज उदर्य्याकलाप्रदाह

(Cancerous Peritonitis)

इसका वर्णन इस रोगके आगे उदर्य्याकलाकी नूतन ग्रन्थियोंमें किया जावेगा।

इ. चिरकारी संयोजनशील उदर्य्याकला प्रदाह

(Chronic Adhesive Peritonitis)

कारण—इसके अन्तर्गत (१) अन्त्रनलिका (Gut) पर क्षत, (इसके विदारण की आवश्यकता नहीं) (२) प्रदाहमय अवयवकी लसीका ग्रन्थियोंद्वारा या उरस्तोयमें महाप्राचीराद्वारा प्रसारण, (३) बाह्य शल्यकी उग्रता।

स्थानिक प्रकार—सामान्यप्रकार प्रदाह (१) बस्तिगुहाका उदर्य्याकला; (२) यकृत्प्लीहाके चारों ओर प्रदाह; (३) उपशेषान्त्रक प्रदाह और बृहदन्त्रावरणका प्रदाह (४) मुद्रिका द्वार, पित्ताशय और आमाशयकी उदर्य्याकलाका प्रदाह।

१. बस्ति गुहावरण प्रदाह—बस्तिगुहाके अवयवोंके प्रदाहसे।

कभी चिरकारी रक्तस्रावमय उदर्य्याकलाप्रदाह प्रणालियोंके नूतन सौत्रिक तंतु वर्तमान। रक्तस्राव उपस्थित, अवयव निर्माण। कदाच रक्तस्रावमय वराशिकाप्रदाह

(मस्तिष्कावरणकी बाह्यवृत्तिका प्रदाह–Pechymeningitis)-से तुलनीय।
सामान्यतः बस्तिगुहाकी उदर्य्याकलाका स्थानिक प्रदाह।

(२) यकृत्प्लीहावरण—संयोजन सामान्य। मुख्यतः महाप्राचीरासे। शव परीक्षासे विदित अथवा अविदित।

(३) उपशेषान्त्रक प्रदाह— वर्णन उदावर्त्तके अन्तमें देखें।

(४) मुद्रिकाद्वार, पित्ताशय और आमाशयका आवरण—प्रसारण विविध प्रकारका। कभी पित्ताश्मरीसह मुद्रिकाद्वारका मोटापन और संयोजनकी प्रतीति। कभी कभी आमाशय-ग्रहणीका क्षत विद्यमान। जिससे विदारणकी आवश्यकता नहीं रहती; अथवा आमाशयका प्रसेक। संयोजन आमाशयके चारों ओर अपचन और प्रायः नाड़ियोंमें पीड़ाके हेतुसे शस्त्र चिकित्सामें सर्वदा रोग निवारणक्षम विभाग नहीं हो सकता। पुनः यकृत्का संयोजन हो जाना, यह सामान्य है।

लघुअन्त्रका संयोजन-प्रायः निम्न शेषान्त्रकके पास।

विस्तृत प्रकार—कभी विशेष विस्तृत भागमें संयोजन। स्थानिक प्रकारके सदृश, स्पष्टतः अवयवोंके साथ साथ संयोजन।

जेकशनकी कला (Jackson's membrane)—यह पतलीकला उण्डुकके चारों ओर है। सामान्यतः पारदर्शक; किन्तु कभी-कभी अपारदर्शक। जन्मसे संभवतः मूलमें वपाका प्रसारण होनेपर उण्डुकके अधोगमनमें नीचे आजाती है।

D. चिरकारी नववर्धनसह उदर्य्याकलाप्रदाह

(Chronic Proliferative Peritonitis)

उपनाम—इस रोगको डॉक्टरोंमें (१) चिरकारी कठिन (chronic indurative); (२) अति गठनकारी (Hyperplastic) तथा (३) संयोजन शील उदर्य्याकला प्रदाह भी कहते हैं।

व्यापक प्रकारमें सब रसकला तथा फुफ्फुसान्तराल प्रदेश आदि प्रभावित होजाते हैं। जैसे व्यापक घातक रसकलाप्रदाह, रसस्रावात्मक रसकलाप्रदाह या कोन्केटो का रसकलाप्रदाह (Polyorrhomenitis, Polyserositis or Concato's Disease).

स्थानिक प्रकारमें नववर्द्धनसह प्लीहावरण प्रदाह या यकृदावरण प्रदाह आदि, यह अवयवके प्रभावित होनेपर आधार रखता है।

मध्यमप्रकार—पीकका रोग (Pick's disease)। अर्थात् हृदयावरण प्रदाहसह यकृत्का कृत्रिम मोटापन।

त्रिविध व्यापक रसत्वचाप्रदाह उपर्युक्त तीनों प्रकारके प्रदाह उदर्य्याकला,

फुफ्फुसावरण, हृदयावरण और फुफ्फुसान्तरालमें अधिक फैलता है। चिरकारी नववर्द्धन सह उदर्य्याकलाप्रदाह तथा हृदयावरण प्रदाह आदिके लक्षण और चिह्न मिश्रित। प्रारम्भिकावस्थामें यह रोग बहुधा अति अनिर्णित।

बढ़ी हुई अवस्था—व्यापक रसत्वचा प्रदाहमें-कारण-वाहक अज्ञात। अनुमानतः (१) सौत्रिक तन्तुओंकी अज्ञात वृद्धि; (२) क्षयग्रन्थियाँ (बारंबार सूचना मिलती है; किन्तु अभीतक सिद्ध नहीं हुआ और आदर्श परिवर्त्तन उपस्थित नहीं हुआ); (३) स्थानिक मूलसे प्रसारित, निश्चित स्थानिक नववर्द्धन प्रकार प्रसारणका प्रयत्न करता है। जलोदरके लिये वेधन करनेके पश्चात् भी वेधन स्थानके चारों ओर नव निर्माण युक्त उदर्य्याकला प्रदाह हो जाता है।

स्थानिक प्रकारमें यकृदावरण प्रदाह अत्यन्त बारंबार प्रतीत, सामान्यतः मध्यम आयुमें। कभी कभी (सर्वदा नहीं) चिरकारी मदात्ययसे सम्बन्धवाला, जो अति विस्तृत उदर्य्याकला प्रदाह तथा चिरकारी वृक्क प्रदाहकी विविध अवस्थाओंमें प्रायः सहवर्ती।

पीकके रोगका सम्बन्ध शराब और क्षयसे नहीं रहता। इन सब प्रकारोंमें सौत्रिक तन्तुओंका अधिक गठन। हेतु वाहक बहुधा अज्ञात।

जीर्ण मदात्ययमें पुनः-पुनः जलोदर और जलोदरके साथ मदात्ययज यकृद्दाली भी। यह उदर्य्याकलाप्रदाहजन्य होता है, ऐसी विशेषज्ञोंकी मान्यता है। उससे होनेवाले यकृदावरण प्रदाह (Sugar-ice type), जो कामला रहित है, वही ठीक उससे सम्बन्धवाला है और वह चिरकारी वृक्क प्रदाहके उपद्रव रूप है।

शारीरिक विकृति—विभाग और प्रसारण अनेक प्रकारके। किन्तु सबका अन्तर्भाव स्थानिक और व्यापक प्रकारोंमें किया जाता है।

उदर्य्याकला—सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्तिसे अधिक मोटी, $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ इञ्च, उज्वल श्वेत। विभाग अनियमित। अन्त्र तरुणास्थिकी कठोरताके अनुसार। अति आकुंचित। मोटापन और आकुंचनके हेतुसे वपा अनुप्रस्थ मुड़ी हुई, विशेषतः वांयीं और अन्त्रबन्धनी छोटी बनी हुई। अन्त्रपीठकी ओर आकर्षित। अन्त्रमार्ग आकुंचित और लम्बाई भी कम। द्रवके अभावमें अनियमित पिण्ड स्पर्शग्राह्य। कभी कभी रंजित पंक्ति और धब्बे। क्षयरहित उभार।

संयोजन—विविध प्रकारका स्थानिक और व्यापक। न्यूनाधिक परिमाणमें; किन्तु प्रायः इषत्। परिणाममें अन्त्र उलट जाना। गम्भीर संयोजनमें अवयवोंसह कितनेक पेन्द्र पीड़ित होते हैं। जैसाकि-मुद्रिका द्वारसे यकृत, पित्ताशय और अग्न्याशय, उपण्डुक और उपान्त्र तथा अन्त्रके मोड़का हिस्से आदिका संयोजन।

रसस्राव—विविध प्रकारका, अति कमसे अत्यधिक। यह संयोजन परिमाण पर कितनेक अंशमें आधार रखता है; कभी-कभी सौम्यरस (Chyle) पर।

अवयवोंपर स्थानिक परिवर्त्तन—यकृत, प्लीहा आदि सीमापर संयोजन, उदा० व्यापक उदर्य्याकलाप्रदाहके एक भागकी महाप्राचीरासे संलग्नता। अन्य रोगियोंमें व्यापक प्रकारमें उसीके अनुरूप दिशामें किन्तु उसी प्रकारका परिवर्तन।

यकृत्—यकृदावरणप्रदाहमें अवयव आकुंचित, किन्तु आवरण मोटा और सरलतासे पृथक् हो, वैसा। कितनेक सौत्रिक तन्तु उपस्थित किन्तु यकृद्दाली क्वचित् ही बढ़ा हुआ, आमाशय-यकृत्से सम्बन्धवाली वपा और प्रतिहारिणी शिरा अन्तराय-युक्त (जब जलोदरोत्पत्ति हो तब) सामान्यतः प्लीहा कुछ अंशमें व्यापक उदर्य्याकलामें प्रभावित। अन्तर्भरणसह वृक्क प्रदाह (Interstitial nephritis) भी। लक्षण—(अ) मदात्ययज सामान्य यकृद्दालीके सदृश; यदि स्थानिक परिवर्त्तन हो, तो शव परीक्षा करनेपर विदित होता हो; (आ) विस्तृत प्रकार या घातक रसकलाप्रदाह।

प्लीहा—प्लीहावरण, यकृदावरणप्रदाहके अनुरूप।

मुद्रिकाद्वार, पित्ताशय, यकृत्, आमाशय और अग्न्याशय—गम्भीर संयोजन। विशेषतः मुद्रिका द्वारका।

उण्डुक और उपान्त्रपुच्छ—इसे उण्डुकके क्षयात्मक अर्बुदसे पृथक् करना चाहिये।

बृहदन्त्र मोड़—यह चिरकारी सौत्रिक उपशेषान्त्रक प्रदाहके सदृश होता है।

विस्तृत प्रकारमें लक्षण चिह्न—दुर्बोध्य, अनेक प्रकारके। (१) प्रसारण (२) क्षति, रसस्रावका सम्बन्ध और संलग्नता। बीचमें तुलनात्मक मुक्ति। अत्यन्त अपरिवर्त्तनीय लक्षण चिह्नः—

उदर पीड़ा—विविध प्रकारकी सविराम। कोई भी रोगी पीड़ासे पूर्ण मुक्त नहीं।

आमाशय-अन्त्र व्याकुलता—दुःखदायी मलावरोध, कभी-कभी अतिसार और वमन, ये आकुंचन, आवर्तन और संयोजनके हेतुसे। अरुचि, अफारा और अपचन सामान्य।

निर्बलता और वर्द्धनशील शीर्णता—

विविध लक्षण—ज्वर, तेजनाड़ी, श्वासकृच्छ्रता और श्वास संस्थानके लक्षण (छातीमें परिवर्त्तनके अनुरूप) कभी-कभी शोथ, पैरोंमें शल्योत्पत्ति क्वचित्। कामला।

उदरगत चिह्न—दर्शन परीक्षा करनेपर उदर अनियमित और विविध प्रसारण युक्त (द्रव और अफारा), शुष्क त्वचा, शिरा प्रसारित, स्पर्शपरीक्षा, नरम और बढ़ी हुई प्रतिकारक शक्ति। विविध पिण्ड और अर्बुद। ठेपन परीक्षा-द्रव व्यापक और स्थिर। अनियमित ध्वनिक्षेत्र। ध्वनि श्रवण परीक्षा—घर्षण ध्वनि क्वचित्।

हृदयावरण और फुफ्फुसावरण—वैसे ही प्रभावित। संयोजनशील हृदयावरणप्रदाह और उरस्तोय।

प्रगति—गुप्त। रोग स्थिति-सामान्यतः वर्षोंतक।

स्थानिक प्रकारमें लक्षण-चिह्न—स्थानके अनुरूप। इतर कार्योंसे स्थानिक चिरकारी अर्बुदके अनुरूप।

रोग विनिर्णय—केवल लम्बे निरीक्षणद्वारा। चिरकारी क्षयात्मक उदर्य्याकला प्रदाह तथा कर्कस्फोटसे प्रभेद करना चाहिये। कभी-कभी प्रभेद शस्त्र चिकित्साके पहले असंभव।

चिकित्सोपयोगी सूचना

चिकित्सा लक्षण अनुसार करें। जलोदर होनेपर उदरमें छिद्र करके द्रव निकालें। द्रवसंग्रह होनेपर पुनः-पुनः निकालते रहे। छिद्र करके जो ग्रथिनमय द्रव निकाला जाय, उसकी परीक्षा करते रहे कि उसमें रक्तग्रथिन है या नहीं?

अग्रगत स्थानिक सीमाबद्ध अर्बुद होनेपर छेदन या पीड़ित दीवारकी शस्त्र चिकित्सा की जाती है, किन्तु वह कुछ समयके लिये शांति देती है। वर्धनशील स्वभाववाले प्रकारमें निरुपायवश अनिश्चित सीमातक विस्तृत शस्त्र चिकित्सा की जाती है। गम्भीर संयोजन होकर उदर्य्याकला मोटी होजाने पर शस्त्र चिकित्साका आश्रय लिया जाता है; किन्तु वह कठिन है तथा सामान्यतः संतोषप्रद भी नहीं।

२४. उदर्य्याकलामें ग्रन्थियां

(New growths in the Peritoneum)

प्रकार—उदर्य्याकलाकी ग्रन्थियोंमें ४ प्रकार हैं।

A. सौम्य ग्रन्थियां (Benign neoplasms)-सौत्रिक तन्तु प्रधान (Fibroma), वसा प्रधान (Lipoma), मांस प्रधान (Myoma)और नीलिका (Angioma), ये सब अति क्वचित्।

B. प्राथमिक घातक ग्रन्थियां दुष्टार्बुद (Sarcoma) यह मायोमाके समान मध्य वृत्तिके संयोजक तन्तुओंमेंसे ही होता है; किन्तु यह गर्भावस्थाकी संधानक धातुका अवशेष है। यह जितना अधिक गर्भ स्वरूपी (Embryonic) हो, उतना ही अधिक घातक होता है।

C. गौणघातक ग्रन्थियाँ—कर्कस्फोट (Carcinoma)

D. रसार्बुद (Cyts) क्षयात्मक।

B. प्राथमिक घातक ग्रन्थियां

(Primary Malignant Neoplasm)

सूक्ष्मरचना—वर्तमानमें कितनेक डॉक्टर घातक दुष्टार्बुदमें कर्कस्फोट मिश्रित करनेका कह रहे हैं। अतः वे इसे कर्कस्फोटसह दुष्टार्बुद (Carcinomatous-Sarcoma) संज्ञा देते हैं।

घातक दुष्टार्बुद—इसमें विकीर्ण पिटिकामय उभार अति क्वचित। उदर्य्याकलाके निम्न भागकी ग्रन्थियोंकी वृद्धि; किन्तु उदरगुहामुक्त।

उदर्य्याकलाका निम्नस्थ दुष्टार्बुद—(Retroperitoneal Sarcoma)यह उदर्य्याकलाका अर्बुद नहीं है। इसका आरम्भ उदर्य्याकलाके निम्नस्थ संयोजक तन्तुमेंसे होता है। यह किसी भी आयुमें होता है। विशेषतः ५ वर्षसे कम आयुमें (शिशुओंको अत्यन्त सामान्य) यह अचल अर्बुद मध्य उदरके पास आगे बढ़ता है। सामान्यतः अन्त्रकुण्डली द्वारा फैलता है। फिर ठेपनकी प्रतिध्वनिमें परिवर्तन होजाता है। कठोर आवाज होनेपर भी सामान्य कृत्रिम रसार्बुद। जलोदरका अभाव। ग्रन्थिकी आभ्यन्तरिक रचनाके अनुरूप लक्षण। स्थानिक लक्षण प्रसारण और आकार दृष्टिसे विविध।

C. गौण घातक ग्रन्थियां

(Secondary Malignant Neoplasms).

सूक्ष्मरचना—बहुधा अपरिवर्तनीय कर्कस्फोट (उदरस्थ ग्रन्थियोंके विकारसे विशेष अंशमें उदर्य्याकला बच जाती है)

प्राथमिक ग्रन्थियां—(१) बीजाशयपर अत्यन्त बारम्बार, (२) मुद्रिका द्वार, आमाशय, अन्त्र और पित्ताशयपर। अति क्वचित छाती और अन्ननलिकापर। विशेषतः स्त्रियोंको मध्य आयुके पश्चात्।

प्रकार—१. विकीर्ण पिटिकामय उभार—उदर्य्याकलाका कर्कस्फोट। कद-पिनके शिरसे मटर समान। प्रायः अधिक रसस्राव होना आच्छादित प्राकृतिक चिह्न है। उदर्य्याकलाके बहुत कम रोगियोंमें नव निर्माणशील उदर्य्याकलाप्रदाहके समान परिवर्त्तन।

प्रकृतिनिर्देशक लक्षण अति जीर्ण प्रकारमें। (१) उदर्य्याकलाका अति मोटापन और आकुंचन; (२) वपा अनुपस्थ मुड़ी हुई; (३) अन्त्रबन्धनी आकुंचित और अन्त्रबद्ध; (४) विविध संयोजन और रसस्राव।

२. ग्रन्थिपिण्ड—(Masses of Growth) पिटिका सम उभार। परिवर्त्तन पूर्वोक्त प्रकारके समान भी उपस्थित।

३. अपक्रान्ति—चिपचिपे रसमय कर्कस्फोट (Colloid cancer) यह बीजाशय और आमाशयके अर्बुदका गौणरूप है। क्वचित् यह प्राथमिक भी होजाता

है। कद बड़ा। पिण्ड स्पर्शग्राह्य। रसस्रावका अभाव।

स्रवित द्रव—रक्तरस, रक्त या सौम्य रस।

रोगस्थिति—रोग परिचय मिलनेके पश्चात् क्वचित् ही ६ माससे अधिक जीवन।

रोगविनिर्णय—सार्वाङ्गिक प्रकृति निर्देशक लक्षण-देहका वजन घटते जाना और पुनरावर्त्तक जलोदर। छिद्र करनेके पश्चात् पिण्ड स्पर्शग्राह्य। रोग निर्णयमें सहायक—(१) स्थानिक प्राथमिक अर्बुद, (२) मध्य आयुके पश्चात् बड़े पिण्ड, सामान्यतः कर्कस्फोट: (३) वाम वंक्षणोत्तरिक (Inguinal) ग्रन्थियाँ या परिनाभिक (Umbilical) छोटे उभार। यकृद्वाली, कामला और बढ़ी हुई शिराएं उपस्थित, किन्तु रोगनिर्णय असंभव। क्षयात्मक तथा चिरकारी उदर्य्याकला प्रदाहसे भी पृथक् करना कठिन।

D. उदर्य्याकलाके रसार्बुद

(Cysts of Peritoneum)

कोई-कोई समय उदरकी ग्रन्थियाँ रसार्बुद बनजाती हैं। कितनेक अन्य रसार्बुद भी मिलते हैं। (१) अन्त्र बन्धनीका रसार्बुद; (२) त्वचागत रसार्बुद, दाँत और बाल आदिसे बना हुआ रसार्बुद (Teratometa), ये अन्त्रबन्धनी अथवा उदर्य्याकला निम्नस्थ भागमें; (३) बस्तिनलिका स्थली; (४) परोपजीवी कीटाणुजन्य स्थली-कृमिज रसार्बुद; यह अति क्वचित् फीता जैसे कृमि—टेपवर्मके बाल कृमिद्वारा भी (लक्षणोंका अभाव)।

अन्त्रबन्धनीके रसार्बुद—मूल संदेहास्पद।

संप्राप्ति—अन्त्रबन्धनीकी स्थली वृन्त रहित और अन्त्रको लगी हुई। सामान्यतः (१) खण्डयुक्त। आच्छादक कला या सौत्रिक तन्तुके आच्छादनमय। द्रव-(१) शुभ्र ग्रथिन, पित्तघन और कभी कफ, (२) सौम्यरस, यह सामान्यतः सच्चा सौम्यरस नहीं, (३) रक्त क्वचित्, (४) कभी कृमिमय और (५) त्वचामय भी।

प्राकृतिकचिह्न—(१) मध्य पंक्तिमें नाभिके पास, सामान्यतः दहिनी ओर अधिक, (२) गोल निश्चित सीमा मृदु और नियमित (कृमिज रसार्बुदके अतिरिक्त), जलतरंगकी प्रतीति, (३) अधिक चलनशील गोल दशामें, किन्तु विशेषतः एकसे दूसरे पार्श्वमें, (४) ठेपनकी मन्दध्वनि अन्त्र कुण्डलीमेंसे आगेकी ओरके क्षेत्रके ऊपरकी ओर, कुछ इञ्च जितने हिस्सेमें। रसार्बुद बड़ा होनेपर संलग्न होजाता है, फिर आवाज़ बिल्कुल जड़ होजाती है।

स्थितिकाल—अनेक वर्ष।

लक्षण—प्रायः इषत्। बढ़े हुए रसार्बुदसे वेदना और मलावरोध। कभी आमाशय-अन्त्र प्रदाह। क्वचित् आशुकारी अन्त्रावरोध। इसका पाक भी होजाता है।

रोगविनिर्णय—अति कठिन। विशेषतः बीजाशय तथा वृक्कार्बुदसे पृथक् करना कठिन। बड़ा रसार्बुद, यह अग्न्याशयके रसार्बुद, उदर्य्याकलाके निम्नस्थ रसार्बुद और अन्य संलग्न अर्बुदोंके समान।

वपाके रसार्बुद (Omental Cysts)—अति उत्तान और विशेष रूपसे चल।

उदर्य्याकलाके निम्नस्थ रसार्बुद (Retroperitoneal Cysts)—यह उदर्य्याकलाके निम्नस्थ तन्तुओंके भीतर। संस्थिति अन्त्र बन्धनीके रसार्बुदके समान; किन्तु संलग्न। अग्न्याशयके रसार्बुद और संलग्न अन्त्रबन्धनीके रसार्बुदसे पृथक् निर्णय असंभव।

बस्ति नलिका रसार्बुद (Urachal or Allantoic Cysts)—क्वचित्। नाभि और बस्तिके बीचमें नलिका (Urachus) का अपूर्ण विनाश होनेपर संप्राप्ति। पुरुषोंमें भरी हुई बस्तिके सदृश; किन्तु मूत्रनलिकाद्वारा दूर नहीं होती। स्त्रियोंमें अति क्वचित् बीजाशयके रसार्बुदके सदृश। परिणाम प्रायः घातक।

चिकित्सा—रसार्बुद मुक्त हो तो शस्त्र चिकित्साद्वारा निकाल देना चाहिये। यदि उदर्य्याकलाके नीचे वृन्तयुक्त हो, तो कुछ अलग करें और द्रव निकालनेके लिये छिद्र करें। उसे पूर्णांशमें निकाल देनेका प्रयत्न कभी नहीं करना चाहिये। कारण, नियन्त्रण न हो सके उतना रक्तस्राव होनेका भय रहता है।

सार्वांगिक व्याधि

(General Disease)

२०. शोथ रोग

शोफ—श्वयथु—अनासार्का—ड्रॉप्सी—ईडिमा—स्वेलिंग
Anasarca—Dropsy—Oedema—Swelling.

रोगपरिचय—रसगह्वर और त्वचाके संयोजक तन्तुओंमें प्रदाह उत्पन्न किये बिना रक्तरस संचित होनेपर शोथ रोग कहलाता है ।

वक्तव्य—पचनेन्द्रिय संस्थानमें आये हुए जलोदर रोग और शोथ रोगकी सम्प्राप्ति और चिकित्सामें अति समता होनेसे पचनेन्द्रिय संस्थानके पश्चात् सार्वाङ्गिक व्याधियों (General diseases) मेंसे शोथ रोगको स्थान दिया है ।

शोथ प्रकार—यह शोथ रोग निज और आगन्तु भेदसे दो प्रकारका है । एवं स्थानिक और सार्वाङ्गिक भेदसे भी दो प्रकारका है । फिर सबमें वातज, पित्तज और कफज भेदसे त्रिविधता होजाती है ।

निज शोथ निदान—स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, शिरोविरेचन आदि संशोधनका अयथावत् प्रयोग, ज्वर, उदररोग आदि जीर्ण व्याधि, अधिक उपवास या अपथ्य सेवन, इनमेंसे किसी कारणसे कृशता और निर्बलता आनेपर क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण या गुरु भोजनका अधिक सेवन, अथवा दही, कच्चा अन्न, मिट्टी, शाक, विरोधी भोजन, दुष्टभोजन, गर (संयोगज मंदप्रकोपी विष) मिश्रित भोजन, अर्श, शारीरिक श्रमका अभाव, देहमें मल आदिके संचय हो जानेपर शुद्धि न करना, आन्तरिक शल्यद्वारा किसी मर्मस्थानपर चोट लगकर आभ्यन्तरिक विकृति होना, विषम प्रसूति (गर्भस्राव, गर्भपात या प्रसवावस्थामें बाधा होजाना) और चिकित्सा अथवा वमन आदि शोधनका मिथ्या उपचार, ये सब निज शोथके उत्पादक कारण हैं ।

इन कारणोंके अतिरिक्त चरकसंहिताके सूत्रस्थानमें कहा है कि, अति मात्रामें नमक, अचार, चटनी, शराब, मांस, जलचर और ग्राम्य जीवोंका मांस, अनूपदेशके जीवोंका मांस, शुष्कमांस, पिट्ठीके पदार्थ, पक्का भोजन, दूषित जलका सेवन, असमय-पर जागरण और शयन, अजीर्णमें चलकर या ऊँट, घोड़ा आदिसे मार्ग गमन, अजीर्णमें व्यायाम अथवा श्रम या मैथुनसेवन, श्वास, कास, अतिसार, शोष, पाण्डु, उदरविकार, प्रदर, ज्वर, भगंदर, विसूचिका, अलसक, वमन, गर्भधारण, विसर्प, पाण्डु

और मिथ्या उपचारसे उत्पन्न इतर रोग, कुष्ठ, कण्डू, पिण्डका आदि रोग, वमन, छींक, डकार, शुक्र, अधोवात, मल मूत्र आदि वेगोंका निग्रह, गर्भका संपीडन, गर्भद्वारा किसी शिराका दब जाना, प्रसूतावस्थामें अपथ्य सेवन आदि कारणोंसे भी शोथ रोगका आविर्भाव होजाता है।

वातज शोथ निदान—शीतल, रूक्ष, लघु और विशद गुणयुक्त भोजनका अति सेवन, अति श्रम, उपवास, अति कर्षण (कृषता लानेवाले कर्म) और अति क्षपण (वमन, विरेचन आदिका अतियोग) आदि कारणोंसे प्रकुपित वायु, त्वचा, मांस और रक्तको प्रदूषित करके शोथकी उत्पत्ति करता है।

पैत्तिक शोथनिदान—उष्ण, तीक्ष्ण, चरपरे, क्षार, लवण और अम्ल पदार्थोंका अत्यधिक सेवन, अपचन होनेपर भी भोजन तथा अग्नि और सूर्यके तापका सेवन इत्यादि कारणोंसे पित्त प्रकुपित होकर त्वचा, मांस और रक्त आदिको दूषितकर शोथकी सम्प्राप्ति कराता है।

कफज शोथनिदान—गुरु, मधुर, शीतल और स्निग्ध भोजनका अतियोग, अति शयन और व्यायामका अभाव आदि कारणोंसे प्रकुपित कफ, त्वचा, मांस और रक्त आदिको दूषितकर शोथकी उत्पत्ति कराता है।

द्वन्द्वज और त्रिदोषज शोथ निदान—अपने-अपने कारणोंके संमिश्रणसे वातपित्तज, वातकफज और पित्तकफज शोथ उत्पन्न होते हैं। अर्थात् वातपित्तजमें वातज और कफजके हेतुओंका तथा पित्तकफजमें पित्तज और कफजके हेतुओंका मिश्रण होकर रोगोत्पत्ति होती है। जैसे मिश्रित निदानसे रोगोत्पत्ति होती है, ऐसे लक्षणोंमें भी मिश्रितपन प्रतीत होता है। द्वन्द्वजके समान त्रिदोषजमें तीनों दोषोंके ही निदान और लक्षणोंका प्रकाशन एक साथ होता है।

आगन्तु शोथ निदान—शस्त्र, लकड़ी, अग्नि, पत्थर, बिजली, सींग, दांत, नख, रस्सी, कांटे आदिसे प्रहार, छेदन, भेदन, पिच्छन (कुचल जाना), बंधन, व्यधन (कांटे आदि चुभना) या क्षत आदि होजानेसे तथा शीतल तेज़वायु और समुद्रकी तेज़ वायुके संस्पर्शसे आगन्तु शोथकी उत्पत्ति होजाती है। एवं भिलावा, कौंचकी फली या शोथोत्पादक विषयुक्त पत्ती आदिके रस या कौंचकी फलीके रोंयें या इतर दाहक बिछुआ आदि औषधियों या विषयुक्त जन्तुओंका स्पर्श हो जानेपर बहुधा आगे बढ़नेवाला, अति उष्ण और त्वचा लाल बनानेवाला पित्तप्रधान लक्षण युक्त शोथ उपस्थित होजाता है। इस शोथको डॉक्टरीमें व्रणशोथ-प्रदाह (इन्फ्लेमेशन-Inflammation) संज्ञा दी है।

आगन्तु शोथमें प्रथम व्यथा होती है, पश्चात् वात, पित्त, कफ धातुओंमें विकृति होती है। किन्तु निज शोथ रोगमें पहले वात आदि धातुओंकी विकृति और फिर शोथ रूप व्याधिका प्रकाश होता है। यह इन दोनोंमें विभिन्नता है।

यह आगन्तु शोथ पट्टीबन्धन, मन्त्र, अगद (विषघ्न औषध), प्रलेप, सेक, निर्वापण (दाहशामक औषध या बर्फ-शीतल जलका सेक) आदि उपचारद्वारा शमन होजाता है। इस आगन्तुके अभिघातज और विषज, ऐसे दो प्रकार हैं। इनमें चोट आदिसे शोथ हो, वह अभिघातज और विष स्पर्श आदिसे हो, वह विषज कहलाता है। दोनोंके निदान भगवान् आत्रेयने एक साथमें ही कहे हैं।

माधवनिदान कथित विषजके हेतु—विष, सर्प आदि प्राणियोंका देहपर चलना या मूत देना; व्याघ्र आदिके दाढ़, दांत, नख, सींग आदिसे आघात होना; विष्ठा, मूत्र, वीर्य लगे हुए वस्त्रोंका धारण करना, विष वृक्षकी वायुका स्पर्श और कृत्रिम विषके चूर्णका स्पर्श इत्यादि कारणोंसे मृदु, चल (संचरणशील), अधोगमनशील, शीघ्र उत्पत्तिकर, दाह और पीड़ा करनेवाला विषज शोथ उत्पन्न होता है।

शोथसंप्राप्ति—जब वायु प्रकुपित होकर बाह्य शिराओंमें प्रवेशित होकर रक्त, पित्त और कफको दूषित करती है, तब उनके मार्गका अवरोध होजाता है, जिससे रक्त आदि समूह फैल जाते हैं और वायु त्वचा, मांस आदिका आश्रय करती है, फिर उत्सेध (उठाव) लक्षणवाले शोथ रोगकी संप्राप्ति हो जाती है।

जब दोष उरोदेश (आमाशय) में स्थित हों तब, ऊपरके भागमें शोथ होता है। जब दोष निम्न देशमें अर्थात् वायुके स्थान पुरीषाशय (बड़ी आँत) में स्थित हों तब निम्न प्रदेशमें और जब मध्य स्थानमें (पक्वाशय-छोटी आँतमें) दोष संचित हों, तब शोथ भी मध्य देहमें प्रकाशित होता है।

यदि दोष सर्व देहव्यापी होजाता है, तो सर्वाङ्ग शोथ और किसी स्थान विशेषमें संगृहीत होजाता है, तो स्थानिक शोथकी उत्पत्ति होती है।

निज और आगन्तु शोथ प्रकार—दोनों प्रकारके शोथोंके सर्वाङ्ग, अर्धाङ्ग और स्थानिक (एक अवयवमें रहा हुआ), ये त्रिविध भेद हैं। दूसरी दृष्टिसे वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, कफपित्तज, वातकफज, त्रिदोषज, अभिघातज और विषज ऐसे ९ भेद होजाते हैं।

पूर्वरूप—निज शोथ रोगकी उत्पत्तिके पूर्वकालमें ऊष्मा (शोथ जहाँ होना हो, वहाँपर उष्णता बढ़ जाना) नेत्र आदि इन्द्रियोंमें दाह, शिराओंमें खिचावट अथवा पीड़ा और अङ्गमें भारीपन आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

यद्यपि शोथ एक दोषज नहीं होता, सब त्रिदोषज ही होते हैं, तथापि जिस शोथमें जिस दोषकी विकृतिके अधिक लक्षण प्रकाशित हों, उस शोथको उस दोषसे उत्पन्न कहा जाता है।

शोथसामान्य लक्षण—अङ्गमें भारीपन, प्रारम्भकालमें शोथकी अस्थिरता (दिनमें ज्यादा और रात्रिको कमी या रात्रिको ज्यादा दिनमें कमी, अथवा एक स्थानमेंसे दूसरे स्थानमें चले जाना), उठाव, उष्णता, शिराओंकी दीवारोंका पतलापन या

शिराका बाहर उभर आना, लोमहर्ष (रोंगटे खड़े हो जाना) और देहका रंग विकृत हो जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

वातज शोथ लक्षण—वातकी प्रधानता होनेपर संचरणशील, पतली त्वचावाला, खुरदरा, रक्त या श्यामवर्ण, स्पर्शज्ञानरहित, रोमहर्ष या झिनझिनाहट सदृश वेदनायुक्त, बिना निमित्त शमन होजाना (अथवा तैल आदिके मर्दन और सेक आदि उपचारसे सत्वर शमन हो जाना), शोथस्थानको दबानेपर दबना, फिर तुरन्त फूलजाना और दिवा-बली (दिनमें बढ़नेवाला और रात्रिको घट जानेवाला) आदि लक्षणों युक्त रहता है।

यह वातज शोथ आगे-आगे फैलता जाता है। सत्वर बढ़ता है और सत्वर घटता है। शोथयुक्त स्थानमें काटने, फाड़ने, दबाने, सूइयाँ चुभाने या चींटियाँ चलनेके सदृश पीड़ा होती रहती है अथवा सरसोंके कल्कका लेप करनेसे जैसी चुनचुनाहट हो, वैसी वेदना होती रहती है। एवं जैसे कोई उस स्थानको सिकोड़ता या खींचता हो, ऐसा भास होता रहता है। यह वातजशोथ चल होनेसे कभी वेदना होती है, और कभी नहीं।

पित्तज शोथ लक्षण—भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, पित्तात्मक शोथमें मृदु, गन्धयुक्त और काले-पीले रंगकी दाहमय त्वचा, स्पर्श करनेपर पीड़ा होना, नेत्रमें दाहके हेतुसे लाली, पाकवान (अति दाह होनेसे अधिक जलसंचय होना), चक्कर, ज्वर, प्रस्वेद, तृषा, और मद (मोह) आदि लक्षण रहते हैं।

यह शोथ शीघ्रही उत्पन्न होजाता है, और शीघ्रही शान्त होजाता है। शोथका वर्ण काला-पीला नीला और लाल आभावाला होता है। शोथका स्थान उष्ण और मृदु रहता है। शोथ स्थानपर रोम कपिल या ताम्रवर्णके होजाते हैं। शोथस्थानमें दाह, चूसने और तपानेके सदृश पीड़ा, प्रस्वेद आकर गीला हो जाना आदि प्रतीत होते हैं, तथा स्पर्श और उष्णतासे दुःख होता है। इस शोथमें त्वचा, नेत्र और मुँह पीले होजाते हैं तथा त्वचा पतली होजाती है।

रोगीको शीतल वायु, जल आदिकी अभिलाषा रहती है तथा अतिसार आदि लक्षणयुक्त होता है। यह मध्यदेहमें पहले होता है, फिर सारे शरीरमें फैलजाता है। इस पैत्तिक शोथके लक्षण डॉक्टरी यकृद् विकारजन्य शोथके साथ मिलते हैं।

कफज शोथ लक्षण—श्लैष्मिक शोथ, गुरु, स्थिर (न फैलनेवाला), स्निग्ध, शीतल, कठिन और पाण्डु वर्णकी श्वेत आभावाला होता है, शोथ स्थानमें खुजली आती रहती है तथा अरुचि, मुँहसे लार गिरना, निद्रावृद्धि, वमन और अग्निमान्द्य आदि लक्षण सहवर्त्ती होता है। यह शोथ वातिक शोथके सदृश दबानेपर जल्दी नहीं उठता। इसकी उत्पत्ति, वृद्धि और लय कष्टसे (शनैः-शनैः) होते हैं। यह शोथ 'रात्रि-बली' होनेसे दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अधिक रहता है। यह शोथ स्पर्श और उष्णताको सहनकर सकता है।

जिस शोथको शस्त्रसे काटनेपर भी रुधिर न निकले, शनैः-शनैः थोड़ी-थोड़ी मात्रामें पिच्छा (चिकना और गाढ़ा) स्राव होता रहता है, वह कफज कहलाता है।

इस शोथ रोगके स्थानिक भेदरूपसे उपजिह्वाका, गलशुण्डी, गलगण्ड, विसर्प, शंखक, पिडका, कर्णशोथ, प्लीहावृद्धि, गुल्म, वृषणवृद्धि, अधिमांस, अर्बुद, ग्रन्थि, श्लीपद, बध्न, रोहिणी आदि अनेक प्रकार हैं। इन सबको स्थान भेदसे पृथक्-पृथक् नाम दिये गये हैं। इन सबका विवेचन चिकित्सातत्त्वप्रदीपके तृतीय-खण्डमें यथास्थान किया जायगा।

साध्यासाध्यता—भगवान् अत्रेय कहते हैं कि, जिस रोगीके मांसमें हीनता न हुई हो, ऐसे रोगीका शोथरोग यदि एकदोषज, नया और बलहीन हो, तो वह सुखसाध्य माना जाता है।

जो शोथ पहले पैरोंपर उत्पन्न होकर सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाय; वह पुरुषोंके लिए अति कष्टसाध्य माना जाता है। जो शोथ स्त्रियोंको मुँहपर पहले होकर सर्वाङ्गमें फैलता है, वह कष्टसाध्य है। स्त्री या पुरुष, दोनोंमेंसे किसीके गुह्यदेशसे उत्पन्न होकर बढ़ता है; एवं जिस शोथ रोगमें उपद्रवकी उत्पत्ति होजाय, वह कष्टतम होजाता है।

अष्टाङ्ग संग्रहकार लिखते हैं कि. पैरोंसे उत्पन्न सर्वाङ्ग शोथमें तन्द्रा, दाह, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, अफारा और अतिसार आदि उपद्रव होनेपर असाध्य माना जाता है।

भगवान् धन्वन्तरीजी कहते हैं कि, जो शोथ शरीरके मध्य देशमें होकर सारे शरीरमें व्याप जाता है, वह कष्टसाध्य माना जाता है। जो शोथ अधोदेशमें होकर ऊर्ध्वभागमें फैलजाता है, वह पुरुषोंके लिये, तथा ऊर्ध्व देशमें प्रारम्भ होकर अधोभागमें गति करनेवाला स्त्रियोंके लिये असाध्य माना जाता है।

चारपाणि कहते हैं कि, पुरुषोंके लिये पैरोंपर प्रारम्भ होकर ऊर्ध्वगामी शोथ, स्त्रियोंके लिये मुखपर प्रारम्भ होकर अधोगामी शोथ और स्त्री-पुरुष, उभयके लिये बस्ति स्थानसे उत्पन्न शोथ असाध्य माना जाना है।

जो शोथ कृश देहवालोंको या इतर रोगोंसे निर्बल हुए देहवालोंको उत्पन्न हुआ हो, तो वमन आदि उपद्रवोंसे युक्त हो, जिस शोथ रोगका कुक्षि, उदर या कण्ठ आदि देशोंमें प्रवेश होगया हो, तथा जो बलहीन व्यक्तिको सर्वाङ्गशोथ हुआ हो, शिराएँ उभरी हुई प्रतीत होती हों और जिनमेंसे स्राव होता रहता हो. ऐसे सब शोथ असाध्य माने जाते हैं।

शोथ उपद्रव—भगवान् आत्रेयके मतमें शोथके वमन, श्वास, अरुचि, तृषा, ज्वर, अतिसार और दुर्बलता, ये ७ उपद्रव हैं। और भगवान् धन्वन्तरिजीने इनके अतिरिक्त हिक्का और कास, ये दो अधिक कहे हैं।

शोथ रोगका डॉक्टरी निदान

देहके भीतर शिराओंद्वारा सतत कितनेक परिमाणमें रक्तरस उत्सृष्ट होता रहता है। जिससे शारीरिक गुहाओंमें रहे हुए यन्त्र और तन्तु आदि सर्वदा आर्द्र रहते

हैं। यह निःसृत रस पुनः लसीका प्रणालियोंद्वारा शोषित होता रहता है। यह रस-स्राव और रसशोषण रूप व्यापार अविराम होता रहनेसे आरोग्य बना रहता है, किन्तु जब इन दो स्वाभाविक क्रियाओंके सामञ्जस्यका भंग होता है; अर्थात् दोनोंमें तारतम्य होजाता है, तब शोथकी उत्पत्ति होजाती है।

त्वचाके नीचे संयोजक तन्तु (Areolar tissues) में रससंचय होनेपर वह स्थान स्फीत होता है; फिर चर्मका वर्ण बदल जाता है। चर्म खिंचा हुआ, मैले रंगका और उज्ज्वल होजाता है। अँगुलीसे दबानेपर गड्ढा पड़ता है, वह शनैः-शनैः पुनः भर जाता है।

शोथप्रकार—१. स्थानिक (Local)

२. सार्वाङ्गिक (General)

अ. मंद रक्त संग्रह (Passive congestion) से सब शिराओं-में रक्तकी अत्यधिक वृद्धि होने और उसी हेतुसे शिराओंकी दीवार-में रक्त दबावकी वृद्धि होनेपर शोथ। A. हृदय विकारजन्य। B. वृक्क विकार जन्य। C. यकृद्विकार जन्य।

आ. जलाधिक्यज (Hydremic) पाण्डु आदि रोगोंमें रक्तके भीतर जलीय अंशकी वृद्धि होजाती है। फिर शिराओंकी दीवारों में विविध परिवर्तन होनेपर दीवारका भेदन होकर रसनिःसरण होने लगता है।

३. रक्तवाहिनियोंके दबाव (Vasomotor) की शिथिलता जन्य।

(१) **स्थानिकशोथ**—दबावके हेतुसे किसी अंगप्रत्यङ्गद्वारा रक्तका प्रत्यावर्तन होनेमें व्याघात होनेपर स्थानिक शोथ उपस्थित होता है। जैसे अँगुलीपर दृढ़ अँगूठी पहनने या पैर आदिकी अस्थिभंग होनेपर उसपर सबल पट्टीबंधन (Bandage) बाँधने अथवा सर्पविष आदि प्रकोपके हेतुसे हाथ-पैर आदि अवयवपर सुदृढ़ डोरी बाँधनेसे बन्धन स्थानके निम्न भागपर शोथ आ जाता है।

हाथ-पैरकी शिरा बाँधनेपर जबतक रसायनियोंमें लसीका वहन सबल रहता है, तबतक शोथकी उत्पत्ति नहीं होती। कारण, रसायनियाँ उनके संयोजक तन्तुओंके भीतर रहे हुए रिक्त स्थानों (Lymphspaces) में उत्सृष्ट रक्तजलको सत्वर ग्रहणकर स्थानान्तरित करने लग जाती है, किन्तु शिराका अवरोध हो जानेपर जब अधिकांश स्थानोंमें विविध कारणोंसे रसायनियोंकी रक्तशोषण क्रियामें व्याघात होजाता है, तब अन्तमें शोथ उपस्थित होता है।

जब किसी बड़ी शिराका अवरोध होता है, तब उसकी शाखाप्रशाखाओंमें थोड़े ही समयमें रक्तदबाव बढ़ जाता है। फिर सब केशवाहिनियोंमेंसे संयोजक तन्तुके सब रिक्त स्थानोंमें रक्तजल या तरल अंश चूने लगता है और शोथ आ जाता है।

(२) सर्वाङ्गशोथ—यह व्याधि बहुधा हृदयके विकारोंसे उत्पन्न होती है इनमें भी विशेषतः हृदयके कपाटकी विकृति होनेपर होती है। इस विकृतिसे इतर लक्षणोंके समान हार्दिक शोथ (Cardiac Dropsy) भी उद्भुत होजाता है। हृत्पिण्डके किसीभी खण्डमें किसीभी प्रकारका अवरोध होनेपर हृदयके कपाटकी क्रियामें परिवर्त्तन होजाता है। कपाटद्वारा स्वस्थ हृदयखण्डका द्वार बन्द होकर प्रतिरुद्ध होजाता है, अथवा हृदयद्वार प्रसारित होनेसे हृदयकपाट स्वस्थ होनेपर भी हृदयद्वार यथोचित रूपसे बन्द नहीं हो सकता। यदि कपाट विकार ग्रसित है, तो उस कपाटके पश्चात्वर्त्ती रक्त-संचालक विधान (शिराओं) में पूर्ण रक्तसंग्रह और रक्तसंचापकी वृद्धि होती है। एवं सम्मुखवर्त्ती सब विधान (धमनियों) में रक्तकी अल्पता और रक्त संचापका ह्रास होजाता है।

शैरिक रक्तसंग्रह लक्षण विशेषतः वाम हृदयमें रहे हुए द्विपत्र कपाटकी विकृति, फुफ्फुसीय रक्तसंचालनमें दीर्घकाल स्थायी अवरोध रहनेसे दक्षिण हृदय खण्डका प्रसारण, महाधमनीमें सामान्यतः जब हृदय क्षीण बनता है, तब वामनिलयमें से धमनीके भीतर यथोचित परिमाणमें रक्तका प्रक्षेप नहीं होता। इस हेतुसे धमनीका स्वाभाविक संचाप न्यून होजाता है। एवं जब हृदयके दक्षिण अलिन्दनिलयमें रक्त संगृहीत रहजाता है, तब शैरिक विधानमें दबाव बढ़ता है। इन दो (धमनीमें रक्तदबावकी न्यूनता या शिराके रक्तदबावकी वृद्धि) मेंसे कोई भी एक कारण होनेपर शोथ उत्पन्न होजाता है।

केशवाहिनियोंमें रक्तसंचारका आधार हृदयकी शक्तिपर रहता है। जब हृदयकी क्षीणताके हेतुसे सब धमनियोंमें रक्तदबाव (Blood pressure) न्यून होजाता है, तब परिणाममें केशवाहिनियोंमें रक्त संचालन क्रिया मन्द होजाती है। फिर रक्तरस चूकर शोथ आ जाता है।

धमनीके दबाव (Arterial tension) और रक्त प्रवाहके वेगका आधार धमनीकी दीवारोंके बलपर भी रहता है। यदि धमनी विस्तृत होगई हो, तो हृदय सबल होनेपर भी रक्तदबावका ह्रास होजाता है। अतः हृदयकी निर्बलता या धमनीकी दीवारोंकी विकृति, इन दोनोंमेंसे एक भी हेतु हो, तो कैशिकाओंका रक्तसंचार मन्द-गतियुक्त होता है या स्थगित होजाता है। फिर रसोत्सर्जन होकर शोथका आविर्भाव होजाता है।

नैसर्गिक नियम अनुसार स्वस्थावस्थामें धमनी, उसकी शाखा, प्रशाखा, अनुशाखा और केशवाहिनियोंकी अपेक्षा शिराओंमें रक्तदबाव कम ही रहता है। फिर धमनीकी दीवारोंकी संहति होनेपर रक्तका खिंचाव (Tension) जब और न्यून होजाता है। तब शिराओंमें रक्त संगृहीत होने लगता है। फिर शिराओंमें रक्तवेग बढ़ जाता है। सामान्यतः शिराओंका रक्त जैसे-जैसे हृदयके दक्षिण अलिन्दकी ओर आगे बढ़ता

जाता है, वैसे वैसे शिराओंमें खिंचाव न्यून होता जाता है। यदि इस शैरिक रक्तप्रवाहमें किसी कारणवश बाधा पहुँचे, तो शिराओंमें रक्तसंचाप (Venous tension) बढ़ जाता है और इन शिराओंसे सम्बन्धवाली केशवाहिनियोंमें रक्तप्रवाह मन्द होजाता है। परिणाममें इन केशवाहिनियोंमेंसे रक्तरस झरने लगता है और फिर शोथकी सम्प्राप्ति होजाती है।

शैरिक रक्तसंग्रह लक्षण विशेषतः वाम हृदयमें रहे हुए द्विपत्र कपाटकी विकृति, फुफ्फुसीय रक्तसंचालनमें दीर्घकाल स्थायी अवरोध रहनेसे दक्षिण हृदय खण्डका प्रसारण, महाधमनीमें विकृतिकी अन्तिमावस्थामें द्विपत्र कपाट (Mitral valve) विकारप्रसित होजाना, चिरकारी वृक्कदाह (Bright's Disease) की शेषावस्थामें हृदयके वाम निलय खण्ड (Left Ventricle) का प्रसारण, वृक्ककी कठोरता, अन्तर्भरणसह दानेदार वृक्क शोथ (Granular Kidney) आदि रोगोंमें प्रकाशित होता है।

रक्तसंग्रहके हेतुसे त्वचा, त्वचाके निम्नस्थ संयोजक तन्तु और श्लैष्मिककलामें अर्थात् क्षुद्र और बृहद् संयोजक तन्तुओंके भीतर रिक्तस्थानों (Lymph-spaces)में रक्तस्राव न होनेपर उसके बदले प्रसारित सब रक्तप्रणालियोंमेंसे रक्तजल चूने लगता है। यह रसोत्सर्जन प्रारम्भमें सरलतापूर्वक त्वचाके नीचे फिर फुफ्फुसावरण या उदर्य्याकलामें होने लगता है, जिससे सर्वाङ्ग शोथ, उरस्तोय या जलोदरकी संप्राप्ति होती है।

यह शोथ गुरुत्वाकर्षण (Law of gravitation) नामक भौतिक नियम के अधीन है, अर्थात् देहमें चरण सबके नीचे होनेसे उनमें रक्तजलका स्राव पहले होता है। इस हेतुसे हृद्रोगपीड़ित मनुष्यका पैर शामको सूज जाता है। पैरोंमें भी शोथ पहले गुल्फ संधिके समीप प्रकाशित होता है। कारण, इस स्थानमें रक्तके भारसे सब शिराओंमें रक्त संग्रह इतर स्थानोंकी अपेक्षा अधिक होता है। इस तरह चलने-फिरनेवाले रोगीके हाथ भी लटकते रहते हैं। जिससे उनपर भी शोथ आने लगता है। परन्तु रात्रिको शय्यापर स्वस्थ पड़े रहनेसे गुरुत्वाकर्षण नियमके अविरुद्ध हृदयको कार्य कम करना पड़ता है। जिससे रात्रिकी विश्रान्तिके पश्चात् पैरोंपरसे शोथ सुबह कम होजाता है और मुख-मण्डलपर कुछ अंशमें शोथ-सा मालूम पड़ता है। विशेषतः रक्तरस पृष्ठ देश, कटि देश, ऊर्ध्व शाखा आदि स्थानोंकी ओर आकर्षित होजाता है। यदि रोगी एक पार्श्वसे सोता है, तो उस पार्श्वके बाहु गुरुत्वाकर्षणके नियम अनुरूप इतर बाहुकी अपेक्षा अधिक सूजा हुआ प्रतीत होता है।

वृक्कविकारज शोथ—वृक्कके आशुकारी अथवा चिरकारी प्रदाह (Acute or Chronic Nephritis) होनेपर मूत्रमें एल्ब्युमिन जाने लगता है। जिससे रक्तमें लसीका एल्ब्युमिनका परिमाण कम होजाता है। इस हेतुसे सर्वाङ्ग शोथ आजाता है।

वृक्कोंके प्रदाहवश केशवाहिनियोंकी दीवारोंको यथोचित पोषण नहीं मिलता। इस हेतुसे और रक्तदबावके परिवर्त्तनके हेतुसे शोथ आ जाता है। वृक्कविकार ग्रस्त होनेपर

मूत्रद्वारा यथोचित परिमाणमें रक्तविष और त्याज्य पदार्थ बाहर नहीं निकल सकते, रक्तमें संग्रह होते रहते हैं। फिर त्वचाके संयोजक तन्तुओंमें जलीय अंशका निकास होने लगता है। दूसरी ओर मूत्रपिण्डकी क्रियाका ह्रास होनेसे सब रक्तवाहिनियाँ रोगग्रस्त हो जाती हैं। परिणाममें हृदयविकृति और कैशिकाओंमें रक्तरसका स्राव होकर सर्वाङ्ग-शोथ प्रकाशित होता है।

अन्तर्भरणसह चिरकारी वृक्कप्रदाह (Chronic Interstitial Nephritis) की शेषावस्थामें शोथ क्रमशः बढ़ता जाता है। मूत्रग्रन्थिकी बाह्य सीमापर रहा हुआ बहिर्वस्तु विभाग (Cortical Matter) शीर्णता ग्रस्त हो जाता है। हृदय और सब रक्तप्रणालियोंकी रचनामें परिवर्त्तन (रोगसंप्राप्तिदर्शक रूपान्तर) भी हो जाता है (ये सब परिणाम भौतिक नियमके अनुसार होते हैं) फिर जब हृदयकी क्षीणताकी वृद्धि होती है, तब शोथ प्रकाशित होता है। यह शोथ प्रारम्भमें दोनों पैरोंपर (मुख-मण्डलपर नहीं) इसके साथ इतर यन्त्रोंमें अत्यधिक रक्त संग्रह। जिससे आमाशय और फुफ्फुसमेंसे रक्तस्राव होने लगता है।

अपक्रान्तिमय आशुकारी वृक्कप्रदाहकी जीर्णावस्था (Acute Parenchymatous Nephritis) में एक प्रकारका सर्वाङ्ग शोथ प्रकाशित होता है। मूत्र परीक्षा करनेपर वृक्कोंके सूक्ष्म मूत्रवहस्रोतों (Tubules) में प्रदाह प्रतीत होता है। यह विकार त्वचाके नीचे रहे हुए तन्तुओंके रिक्त स्थानोंपर आक्रमण करके त्वचाको सत्वर शोथग्रस्त कर देता है। रसायनियोंके भीतर रही हुई रसत्वचा (Serous membrane) में अपेक्षाकृत विलम्बसे रसोत्सृजन (यह क्रिया गुरुत्वाकर्षणके नियमके साथ सम्बन्धवाली नहीं है), परिणाममें शरीरके सब स्थानोंमें वसाका अभाव, सब स्थानोंकी त्वचा प्रसारित और सब स्थानोंके संयोजक तन्तुमें शिथिलता आकर वे शोथग्रस्त होजाते हैं। इसी हेतुसे नेत्रावरण, नेत्रका निम्न प्रदेश, वृषण और मूत्रेन्द्रिय, इन सबकी त्वचापर शोथ आता है। रक्तकी अतिशय न्यूनता होजाती है। इस हेतुसे भी कुछ अंशमें शोथकी उत्पत्ति होती है। रोगी स्थूल, निर्बल और मलिन श्वेत वर्णका भासता है।

यकृद्विकारजन्य शोथ—यकृत्की व्याधियोंमें जब यकृत्में रही हुई बड़ी रक्तप्रणालियोंपर दबाव आता है, तब विशेषतः उदरगह्वरके भीतर निम्न शिराओंमेंसे रसोत्सृजन होता है। फिर जलोदर और शोथ रोगकी सम्प्राप्ति हो जाती है। इसका विशेष विवेचन उदररोगमें किया गया है।

उक्त कारणोंके अतिरिक्त फुफ्फुसोंके वायुकोषोंका विस्तार (Emphysema) की अन्तिमावस्थामें जब हृदयके दक्षिण अलिन्दमें रक्त अत्यधिक शेष रह जाता है, तथा यकृद्दाल्युदर, यकृत्पर कर्कस्फोट, उदर्य्याकलाका क्षय और उदर्य्याकलामें कर्कस्फोट

आदि कारणोंसे दक्षिण निलयमेंसे शिराओंके भीतर रक्त जानेमें जब बाधा पहुँचती है, तब भी मंद शोथका आविर्भाव हो जाता है।

जलाधिक्यज शोथ—इस शोथकी उत्पत्ति रक्तमें जलका परिमाण बढ़ जाने-पर होती है। पहले रक्तवाहिनियोंकी रचनामें परिवर्त्तन हो जाता है। रक्तमें शुभ्र ग्रथिन और रक्ततन्तु (फाइब्रिन) कम हो जाते हैं अथवा प्रस्वेद और मूत्रस्राव स्थगित या स्वल्प हो जाते हैं, फिर संयोजकतन्तुओंमें रक्तरसका निःसरण अत्याधिक परिमाणमें होकर शोथोत्पत्ति होती है।

रक्तजल (Blood Plasma) के भीतर सामान्यतः जल ८०-९० प्रतिशत होता है, शेष अंशमें देहके विविध अवयवोंके लिये उपकारक विविध पदार्थ और त्याज्य पदार्थ होते हैं। इनमें रक्तरस ग्रथिन (Serum Albumin), वसा, द्राक्षौज (Glucose), नत्रजन ग्रथिन (Fibrin), नमक आदि क्षार, लोह आदि पदार्थ, मूत्राम्ल और मूत्रिया आदि त्याज्य पदार्थ, कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन और ऑक्सीजन आदि वायु, कतिपय ग्रन्थियोंके अंतःस्राव और देहमें रासायनिक व्यापार प्रवर्त्तक पदार्थ आदि-आदि द्रव्य अवस्थित होते हैं। जब इनमेंसे ग्रथिन और रक्ततन्तु, इन दो द्रव्योंमें न्यूनता आती है, तब रक्तवाहिनियोंकी रचना विकृत होती है। फिर रक्तरस निःसृत होकर शोथ होता है।

राजयक्ष्मा आदि दुर्बलता लानेवाली व्याधियाँ पाण्डु, कफरक्तज, रक्तपित्त (Scurvy) और त्रिदोषज रक्तपित्त (Purpura) में योग्य पोषणका अभाव होने पर एवं कितनेक आशुकारी रोगोंमें दुर्बलता आ जानेसे रक्तरसकी हीनावस्था और रक्तवाहिनियोंकी दीवारोंमें विकृति हो जाती है। फिर शोथ उपस्थित हो जाता है।

चिरकारी यक्ष्मा रोगमें फुफ्फुसोंकी केशवाहिनियोंका दीर्घकालपर्यन्त अवरोध, हृदयके दक्षिण खण्डका प्रसारण और समस्त देहकी शिराओंमें रक्त संग्रह होनेपर शोथकी उत्पत्ति हो जाती है।

आशुकारी व्याधियोंमें हृदयमें क्षीणता आती है। फिर हृदयके वाम निलयमें विकृति होनेसे धमनीमें रक्तकी न्यूनता होती है, और प्रारम्भमें गुल्फ सन्धिके समीप शोथ आता है।

जब पाण्डु रोगकी वृद्धि होनेपर (रक्तरचनामें विकृति होजानेसे) हृदयकी क्षीणता और धमनियोंमें रक्तसंचालनका ह्रास होता है, तब शोथ उपस्थित होजाता है।

शोथ प्रकार

यद्यपि शोथ है, या नहीं? इस बातके निर्णयमें विशेष विचारकी आवश्यकता नहीं है, तथापि वर्त्तमान शोथकी उत्पत्तिमें वास्तविक हेतु क्या है? इस बातके निर्णयार्थ कतिपय विशेष प्रकार यहाँ दर्शाते हैं।

१. कक्षाधरा शिरा (Axillary vein) या कक्षाधरा धमनीके किसी स्थानमें रक्तसंग्रह, विद्रधि या मारक अर्बुदजन्य स्फोटसे रक्तदबावकी वृद्धि होनेपर उस ओरका बाहु शोथयुक्त बनता है ।

२. शिरामें रक्तजमाव-अचलशल्य (Thrombosis) की उत्पत्ति हो जाने पर ज्वर आकर फिर हाथ-पैरपर शोथ प्रकाशित होता है ।

३. जिस ओरके बाहुपर शोथ आया हो, उस ओरके वक्ष और मुख-मण्डल पर शोथ प्रकाशित हो, तो विदित होता है कि, उस ओरकी काण्डमूला शिरा (Innominate vein) में दबाव वृद्धि हुई है ।

४. समस्त मस्तिष्क, ग्रीवा, दोनों बाहु और वक्षकी चारों ओरकी दीवार शोथ-ग्रस्त हो, तो वह उत्तरामहाशिरा (Superior Vena Cava) के अवरोधका बोध कराती है ।

५. बाहुपर शोथ यकृद्विकारजन्य होनेपर उसे हृदयविकार और वृक्कविकारसे पृथक्कर सकते हैं । यदि एक ओरके बाहुकी अपेक्षा दूसरी ओरका बाहु अथवा एक ओरके मुख-मण्डलकी अपेक्षा दूसरी ओरका मुख-मण्डल अधिकतर स्फीत हो, तो सिद्धान्त किया जाता है; वह वृक्कविकारजनित नहीं है । एवं हृदयके विकारजनित जीर्ण शोथमें भी बहुधा मुख-मण्डल शोथग्रस्त नहीं होता, फलतः वह यकृद् विकारजन्य है ।

६. जायफलके सदृश यकृद्विकारमें शोथ पाण्डुवर्णका बन जाता है; किन्तु यकृद्दाल्युदर जनित शोथमें त्वचापर पाण्डुता नहीं आती ।

७. धमन्यर्बुद होनेपर उत्तान शिराओंका प्रसारण होनेसे सामान्य शोथ ।

८. हृदयमें रक्तसंग्रहसह हृत्साद होनेपर चरणोंपर शोथ आकर फिर ऊपर फैलता है, द्विपत्रकपाटसे रक्त प्रत्यावर्त्तन होनेपर सर्वाङ्ग शोथ, लसीकामेह और चर्मकी भी मलिनता ।

९. मज्जातन्तु विकृतिसह चिरकारी श्लैष्मिक पाण्डु (Chronic Myeloid Leukaemia) में पैरोंपर शोथ । कभी फुफ्फुसावरणमें द्रवसंग्रह । क्वचित् जलोदर ।

१०. जीर्ण कास और अति जीर्ण वृक्कविकारके हेतुसे उत्पन्न शोथमें फुफ्फुस या सारी देहके रक्तसंचालनमें अवरोध और परम्परागत हृदयमें क्षीणता आकर शोथ आने पर, त्वचामें ऐसी विवर्णता नहीं आती; किन्तु वृक्कविकारजन्य जो सर्वाङ्ग शोथ होता है, वह अपेक्षाकृत सत्वर प्रकाशित होता है, साथ-साथ त्वचाका वर्ण पाण्डु भी हो जाता है । और शोथ किसी स्थान विशेषमें विशेषरूपसे व्याप्त हो जाता है ।

११. वृक्कविकारजन्य शोथमें मुख-मण्डल, कटि, वृषण और लिङ्ग त्वरित शोथ-ग्रस्त, परन्तु हृदयविकार या प्रतिहारिणीशिराके अवरोधज शोथमें वे सब स्थान इस तरह शोथयुक्त नहीं होते ।

विविधवृक्क विकारज शोथ—

१२. आशुकारी व्यापक अपक्रांतिसह वृक्कप्रदाहमें नेत्रकी पलकें और गुल्फपर शोथ।

१३. उपाशुकारी अपक्रांतिसह वृक्कप्रदाहमें पहले मुख और चरणपर शोथ।

१४. उपचिरकारी अपक्रांतिसह वृक्कप्रदाहमें घातक सत्वर वर्द्धनशील स्वभाव वाला शोथ; किन्तु योग्य उपचार होनेपर सत्वर शमनशील।

१५. चिरकारी व्यापक अपक्रांतिसह वृक्कप्रदाहमें अवस्था भेदसे शोथ विविध प्रकारका और घातक।

१६. मूत्रवह स्रोतोंकी अपक्रान्तिमें शोथ प्रायः पैरोंपर। महिनोंतक स्थिर। उपचार करनेपर शमन।

१७. वृक्ककी सिक्थापक्रान्ति होनेपर जीर्णावस्थामें शोथ और लसीकामेह।

१८. वृक्ककी घातक कठोरता (चिरकारी मूत्रवहस्रोतप्रदाह) में हृदय पतन होनेपर अक्षिपल्लवपर शोथ, श्वेत वर्णके उज्ज्वल और जलपूर्ण नेत्रावरण, कटि देशमें शोथ। वृषणपर बालकके मस्तिष्कके सदृश शोथ, मूत्रेन्द्रियका विषम प्रसारण और मूत्रेन्द्रियकी त्वचामें अतिशय शोथ होकर, फिर मूत्रेन्द्रिय पशुश्रृंगके सदृश मुड़ जाना (तथापि मूत्रावरोध नहीं होता); इन लक्षणोंपर से बिना मूत्र-परीक्षा भी रोग-विनिर्णय होजाता है।

इस मूत्रवहस्रोतोंके प्रदाहसे उत्पन्न शोथमें सब रसगह्वर (Serous Cavities) शोथ प्रसित और प्रारम्भसे ही जलोदर या फुफ्फुसावरणमें जलसंचय। वक्ष और उदरकी दीवार स्थूल और शोथयुक्त होने से आभ्यन्तरिक रससंग्रह निर्णायक तरंगानुभूति (Fluctuation) की प्रतीति सहज नहीं हो सकती।

प्रभेदक रोग विनिर्णय—१. व्रण शोथ (Inflammation) होनेपर स्थानिक वेदना, शारीरिक उत्तापवृद्धि और त्वचाका रक्तवर्ण होजाता है।

२. त्वचा और अनेक आभ्यन्तरिक यन्त्रोंमें क्लेदन कफके संचय (Mucoid) जन्य सार्वाङ्गिक घन शोथ (मिक्सीडिमा Myxedema) रोगमें वृद्धि स्थाई और दृढ़ तथा स्पर्शशून्यता (Anesthesia) या वेदनानुभवका अभाव (Analgesia)

३. संयोजक तन्तुओंके शोथ (Dystrophy) जन्य कठिन शोथ होनेपर निर्दिष्ट स्थानव्यापी ही होता है और दबानेपर नहीं दबता। वह देहके निम्न भागमें नहीं होता, विशेषतः बाहु, ऊर्ध्वप्रदेश, पृष्ठ भाग और वक्ष प्रदेशमें होता है।

४. वायुकोष विस्तार (Emphysema) में भी स्थान स्फीत, किन्तु वह फुफ्फुसस्थ पीड़ासे उत्पन्न होता है; उसके भीतर वायु भरी रहती है; स्पर्श परीक्षा करनेपर अँगुलीको आवाज़का स्पर्श होता है; परन्तु अँगुलीसे दबानेपर शोथके सदृश खड्डा नहीं होता।

वृक्कविकारज शोथ विवेचन

शोथोत्पादक वृक्करोग—

१. आशुकारी व्यापक अपक्रान्तिसह वृक्कप्रदाह (वृक्करथ ऋजुका प्रदाह Acute diffuse-Glomerulo-Nephritis.)

२. मंदाशुकारी, मंदचिरकारी और चिरकारी वृक्कप्रदाह (Sub-acute, sub-chronic and chronic Glomerulo-Nephritis.)

३. मूत्रवहस्रोतोंकी अपक्रान्तिमय वृक्करोग (Nephrosis)

४. हृदयावसादके उपद्रवरूप वृक्कप्रदाह। इनके अतिरिक्त लसीकामेह (Albuminuria) सह वृक्कप्रदाह, वृक्ककी कठोरता (Nephrosclerosis) तथा आशुकारी रक्तस्रावमय वृक्कप्रदाहमें मंद शोथ या कभी अभाव।

शोथज द्रवमें ग्रथिन परिमाण—	प्रतिशत
१. आशुकारी वृक्कप्रदाहज	१·०
२. मूत्रवह स्रोतोंकी अपक्रान्ति ३. चिरकारी वृक्कप्रदाहज (मूत्रवहस्रोतोंकी अपक्रान्ति सह)	०·१
४. चिरकारी वृक्कप्रदाह, क्षरित रसस्राव मय (Transudates)	०·०१ से ०·०५
५. हृदयावसादज शोथ	०·५
६. कैशिका प्रसारण और क्षतिजन्य उदा० प्रादाहिक शोथ, शीतपित्त, सर्पदंश, हिस्टेमाइनका विषप्रकोप।	५ से ७ (रक्तजलके सदृश)।

श्लैष्मिक कलामेंसे द्रवनिःसरणके वाहक और द्रवशोषण—शोथपर नियन्त्रण रखनेवाले मुख्य वाहक—(१) कैशिकाकी अन्तराकलामेंसे निःसरण शक्ति; (२) कैशिका दबाव; (३) रक्तजलग्रथिनका चिपचिपे रसका निःसरण दबाव; (४) रक्तके अन्य द्रव्योंका असर उदा० नमक, जल आदि; (५) तन्तुओंके घटकोंमें परिवर्त्तन।

१. **कैशिकाओंकी अन्तराकलाकी निःसरण शक्ति—**कैशिकाकी दीवार सामान्य स्थितिमें होनेपर जलस्राव मुक्त रूपसे तथा ग्रथिन स्रावका रोध होता है।

ग्रथिन स्रावके हेतु—अ. कैशिकाओंकीक्षति और प्रसारण (सरलतासे पृथक् नहीं होता), आशुकारी प्रदाह (प्रादाहिकशोथ), पिछली और दबाव; आ. शीतपित्त; इ. हिस्टेमाइन विष; ई. सर्पदंश।

द्रवके उत्तम ग्रथिन द्रव्यसह शोथोत्पादक—अ. आशुकारी वृक्कप्रदाह; आ. हृदयकाशोथ (पूर्णरूपसे)।

द्रवके कनिष्ठ प्रथिन द्रव्यसह शोथोत्पादक—अ. कैशिकाकी दीवारकी निःसरण शक्ति (भेदनशीलता) सामान्यतः जलस्रावको बढ़ा सकती है; किन्तु प्रथिन स्रावको नहीं बढ़ा सकती। आ. सामान्यस्थितिमें कैशिकाओंकी दीवारसे सम्बन्ध होनेपर प्रथिन पृथक् नहीं होसकती। मूत्रवह स्रोत और ऋजुकाओंकी अपक्रान्ति तथा हार्दिक शोथके भीतर (कुछ अंशमें) ये धारण होती हैं। अन्य वाहकोंपर भी निर्भर रहता है।

२. कैशिकाओंमें दबाव—तन्तुओंमें द्रवस्राव करानेमें सहायक। सामान्यतः शिराद्रवनिरोधसे लगभग १२० मिलीमीटर जलकी सत्वर वृद्धि। उदा० हृदयावसाद, (धामनिक दबावसे वृद्धि नहीं होती) इसतरह हृदयकी निर्बलता शोथकी प्रवृत्ति कराता है; तथा कैशिकाओंका प्रसारणभी परिणाममें प्रथिनकी निःसरणशक्तिकी वृद्धि।

३. रक्तजलप्रथिनका निःसरण दबाव—यह प्रथिन रक्ततन्तुजन (Fibrinogen) में रहती है, (यह शोथसे सम्बन्ध नहीं रखती) ग्लोब्युलिन और एल्ब्युमिन-प्रथिन रक्तवाहिनियोंके द्रवको धारण करनेका प्रयत्न करती है, अथवा वे उसके निःसरण दबावकी क्रियाद्वारा तन्तुओंमेंसे शोषित होजाती हैं। यह क्रिया कैशिका दबावके विपरीत होती है।

रक्तरस(या रक्तजल)में ग्लोब्युलिन—मात्रा लगभग २·७ प्रतिशत। पिच्छिल निःसरण दबाव लगभग ४ मिलीमीटर रक्तरंजक। बड़े रेणु (Molecule) सत्वर नहीं फैलते। वृक्कप्रदाहमें इसका कुछ त्याग होता है। रक्तस्रावमें नाश होनेके पश्चात् सत्वर इसकी पुनः उत्पत्ति। शोथ होनेपर ये कुछ प्रवृत्ति करते हैं।

रक्तरस(या रक्तजल) में एल्ब्युमिन—मात्रा लगभग ४·३ प्रतिशत। पूर्ण पिच्छिल निःसरण दबाव लगभग ३० मिलीमीटर। रक्तवाहिनियोंमेंसे द्रवनाशके रक्षणार्थ केवल क्रिया होती है; यह क्रिया पुष्टिसाधक नहीं। ग्लोब्युलिनसे छोटे रेणु अति त्वरित फैलते हैं। मूत्रगत प्रथिनके रूपमें ८५ से ९० प्रतिशत। पुनरोत्पत्ति शनैः-शनैः। शोथमें इसकी प्रबल प्रवृत्ति।

रक्तजल प्रथिन—सब मिलकर लगभग ७ प्रतिशत।

शोथ और रक्तजल प्रथिनका ह्रास—शोथमें औसत रक्तजल प्रथिन ५·५ प्रतिशत रहती है। रक्त इसमेंसे एल्ब्युमिन प्रथिन २·५ प्रतिशत कम होजाती है।

रक्तजल प्रथिनका ह्रास—अ. परिपाक और पोषणमें न्यूनता; आ. रक्तस्राव से प्रथिनकी स्थानच्युति; इ. विस्तृत जलोदरमें प्रथिन द्रवके भीतर मुक्त रहती है; ई. लसीकामेहसह चिरकारी वृक्कप्रदाह।

चिरकारी वृक्कप्रदाहज शोथ और रक्त रसप्रथिनका ह्रास—इस रोगमें प्रथिन ह्रास, यह महत्वका शोथ प्रतिनिधि है। उदा० मूत्रवहस्रोतोंकी अपक्रांति और मूत्रवह स्रोतोंका अपक्रांतिमय प्रदाह। एल्ब्युमिनके ह्रासका परिणाम शोथ रूपसे उपस्थित होता है। ७०००० ग्राम (लगभग १५४ पौण्ड) वज़नके

मनुष्यमें १४० ग्राम ($\frac{1}{500}$ हिस्सा) रक्तरस प्रथिन होती है। उसमेंसे पेशाबके भीतर रोज़ १५ से २५ ग्राम या इससे भी अधिक जाती है। जिससे रक्तजल प्रथिनका सत्वर रूपान्तर। ग्लोब्युलिन कम प्रभावित और कचित् बढ़भी जाती है।

जब एल्ब्युमिन स्राव (लसीकामेह) इषत् होता है, तब चिरकारी वृक्कज शोथ नहीं होता।

वक्तव्य—रक्तजलप्रथिन, यह कम प्रथिनमय भोजनके अभ्यास और वमन द्वारा प्रायः कम होजाती है। एपस्टीनका उत्तम प्रथिनमय भोजन* यह रक्त जल प्रथिनकी वृद्धि कराता है।

यह शोथका ह्रास करानेमें सहायक होता है, विशेषतः प्रथिन सतह किञ्चित् कम हो तो, पिच्छिलका निःसरण दबाव ५००-६०० मिलीमीटर। कैशिका दबाव लगभग १५० मिलीमीटर माना जाता है (यह बिल्कुल सही नहीं है) यदि यह उचित है, तो इतर प्रतिनिधि शेष कमीकी पूर्त्ति करते हैं।

(४) रक्तके अन्य द्रव्योंका असर—इनका प्रभाव अस्वीकृत।

जलका अवरोध—प्रभावके विरुद्ध धारणा किया जाता है। अ. रक्त परिमाण वृक्कप्रदाहमें नहीं बढ़ता; आ. प्रतिदिन मूत्र परिमाणमें शीघ्र परिवर्त्तन; इ. शिरामें लावणिक (Saline) अन्तःक्षेपण सामान्यतः शोथका हेतु नहीं होता; ई. वृक्काश्मरीजन्य मूत्रावरोधशोथका कारण नहीं होता। आशुकारी वृक्कप्रदाहके अतिरिक्त संभवतः जलावरोधको शोथ वाहक नहीं कह सकेंगे।

लवणावरोध—शोथसह चिरकारी वृक्कप्रदाहमें विशेषतः मूत्र त्यागका रोध होता है। शोथ होनेपर लवणका सेवन शोथ बढ़ाता है।

विडालका मत—वृक्क विकृति निकलनेवाले लवणको रोक लेती है; फिर यह देहमें संगृहीत होता है। द्रवरक्तमें प्रवाही नमकको धारण करता है। रक्तमें जल वृद्धि (Hydraemia) के परिमाणमें जल और नमकका त्याग तन्तुओंमें होता है।

विडाल मतमें आपत्ति—अ. फुफ्फुसप्रदाहमें और शोथ रहित वृक्ककी कठोरता होनेपर नमकका संग्रह होता है; आ. चिरकारी वृक्कज शोथमें रक्तजलके भीतर लवण निश्चित परिमाणमें नहीं बढ़ता; इ. वृक्काश्मरीज मूत्रावरोधमें रक्त जलके भीतर नमक बढ़ जाता है, किन्तु शोथ नहीं होता (अतः रक्तमें लवण वृद्धि होनेपर शोथ आता ही है, यह नियम नहीं है)

नमक रहित भोजन—यह अवरोधको दूर करनेकी सुविधा देता है, इससे कई बार शोथकी कमी।

---

*यह वसा प्रधान भोजन है। इसमें अतिकम कर्बोदक, सामान्यमात्रामें प्रथिन और अधिक मात्रामें घृत-तैल रहता है।

नमकके अवरोधका कारण—अ. वृक्ककी कठोरतामें वृक्कका विशेषांश लवण त्यागमें असमर्थ; आ. वृक्कज शोथमें शोथद्रवके भीतर नमककी विच्युति। वृक्कके अग्र प्रान्त (Pre-renal) आभारी। इ. न्युमोनियामें वृक्कके आगेके हिस्सेकी स्थानान्तर क्रियाद्वारा लवणकी विच्युति-त्वचामें और अन्यत्र।

वक्तव्य—सोडियमका दल (Ion) आवश्यक है। सोडियम ब्रोमाइड और बाइकार्बोनेट भी जलावरोधका कारण होता है; किन्तु पोटासियम सॉल्ट नहीं होता।

५. तन्तुघटकोंमें परिवर्त्तन—वर्त्तमानमें यह मान्यता हुई है कि, तन्तुओंके घटकोंकी आकर्षण शक्ति वृक्कप्रदाहमें जलके लिये परिवर्तित, यह परिणाम परिवर्त्तित लवणके चयापचयसे होता है। इस परिवर्त्तनका प्राथमिक वाहक वृक्क क्षतिके कारणके समान। नमकका अवरोध और इसकी क्रिया, ये शोथके उत्पादनमें वाहक सदृश।

आशुकारी वृक्क प्रदाहमें शोथ और उसके कारण—रक्तजल प्रथिनमें ह्रास नहीं होता। शोथके द्रवके भीतर १ प्रतिशत प्रथिन रहती है। शोथ हाथ-पैरोंपर नहीं आता; वृद्धि और सत्वर ह्रासमय। लसीकामेह (Albueminuria) आगे उपस्थित होता है।

कारणानुरूप व्याख्या—(१) आशुकारी वृक्कप्रदाहमें आशुकारी सेन्द्रिय विषप्रकोपसे कैशिकाएँ (केवल कैशिका गुच्छ नहीं, किन्तु सब कैशिकाएँ) प्रभावित। परिणाममें प्रथिनके भेदनमें वृद्धि। फिर शोथ उपस्थित। (२) कैशिकाओंका आक्षेप होने पर उनके दबावमें वृद्धि। (३) वृक्कके आगेके हिस्सेमें नमकके चयापचयमें परिवर्त्तन। (४) स्रावकी व्यापक अपूर्णतासे द्रवका अवरोध (यह अभी स्वीकृत नहीं हुआ)।

विविध रोगोंमें शोथके कारण

रोग	द्रवमें प्रथिन	कारण
आशुकारी वृक्कप्रदाह	१.०	विषज कैशिका प्रदाहके हेतुसे कैशिकाओंकी प्रथिनभेदनशीलता की वृद्धि। लवणके चयापचयमें परिवर्त्तन।
चिरकारी व्यापक वृक्कप्रदाह, मूत्रवह स्रोतोंकी अपक्रान्ति,	०.१	लसीकामेहमें रक्तजलमेंसे प्रथिनका ह्रास (हृदयकी निर्बलता भी आदर्श रूप) लवणका चयापचय परिवर्त्तित।
मूत्रवह स्रोतोंकी अपक्रान्ति, श्लैष्मिक-कलासे द्रव निःसरण	०.०३	
वृक्क काठिन्य		हृदयपतनसे उपस्थित

हृदयपतन	०.५	शिरागत दबावसे कैशिकाएँ प्रसारित होनेपर उनकी प्रथिन-भेदनशीलताकी वृद्धि । प्राणवायुका ह्रास होनेपर भी क्षति ।
अयोग्य पोषण		रक्तरसमें श्वेतप्रथिनका ह्रास ।
यकृद्दाली, जलोदरसह		रक्तरसमें श्वेतप्रथिनका ह्रास । दबाव वृद्धिसे जलोदरके द्रवमें आकर्षित ।
प्रदाहमयशोथ, शीत, पित्त, हिस्टेमाइनका अन्तःक्षेपण		विष प्रकोपसे कैशिकाओंकी प्रथिन भेदनशीलतामें वृद्धि ।

वृक्कप्रदाहकी अवस्था भेदसे शोथ प्रकार—

१. आशुकारी अवस्था—कैशिकाओंमें से प्रथिनके टपकनेके हेतुसे शोथ उपस्थित और परिमित ।

२. उपाशुकारी अथवा चिरकारी अवस्था—रक्तजलनें प्रथिनकी मात्रा घट जानेसे शोथ स्पष्ट उपस्थित; किन्तु किसी अज्ञात हेतुसे शमनभी । नमकके ह्रास से ऐसा होनेकी संभावना है ।

३. चिरकारी जीर्णावस्था—रक्तरस प्रथिनकी वृद्धि, कारण अज्ञात; संभवतः लसीकामेहका ह्रास होनेसे यह शोथ दूर होजाता है ।

४. चिरकारी उन्नतावस्था—हृदयकी निर्बलताके हेतुसे शोथ उपस्थित ।

शोथ चिकित्सोपयोगी सूचना

देहबल, मनोबल, रोगबल, दोष और काल आदिको जाननेवाले चिकित्सक साध्य शोथरोगकी चिकित्साका प्रारम्भ निदान-विपरीत, दोषविपरीत और ऋतु-विपरीत विचारपूर्वक करें ।

सब प्रकारके दोषोंसे उत्पन्न और सर्वाङ्ग शोथ एवं आमदोषसे उत्पन्न शोथके प्रारम्भमें लङ्घन और पाचन चिकित्सा करनी चाहिये । इस शोथरोगमें जो दोष प्रबल हो, उस दोषको दूर करनेके लिये प्रारम्भमें वमन, विरेचन आदि द्वारा संशोधन कराना चाहिये । मस्तिष्कगत दोष होनेपर शिरोविरेचन नस्य, अधोभागमें दोष होनेपर विरेचन और ऊर्ध्वभागमें दोष अवस्थित होनेपर उसके अनुरूप वमनद्वारा दोषसंशोधन आदि क्रिया करनी चाहिये ।

यदि शोथ घृत आदिके अधिक सेवनसे हुआ हो, तो रोगीको रूक्ष करना चाहिये और रूक्ष हेतु वातप्रकोप होकर शोथ हुआ हो, तो स्नेह विधिका आश्रय लेना चाहिये ।

वातज शोथके—प्रारम्भमें १४ दिनतक रोज़ सुबह निसोतका क्वाथ पिलाना

चाहिये अथवा एरंड तैलद्वारा उदर शोधन कराना चाहिये। फिर पुराने शालि चावलका भात, दूध या मांसरसके साथ देवें। एवं स्वेदन, तैलमर्दन, सेक, लेप आदि वातहर चिकित्सा करें। यदि मलावरोध रहता हो, तो निरूह बस्ति देवें।

पित्तज शोथके—रोगीको भोजनमें दूध या दूध-भात देना चाहिए और उदरशोधनके लिये त्रिफला, गिलोय और निसोतका क्वाथ अथवा त्रिफला चूर्णमिश्रित गोमूत्र पिलाना चाहिए।

पित्तवातज—व्याधि हो, तो कड़वी औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ घृत देना चाहिये। यदि इस शोथमें मूर्च्छा, बेचैनी, दाह, तृषा आदि लक्षण भी हों, तो दूध पिलाना हितकर है, एवं उदरशोधन कराना हो, तो दूधके साथ गोमूत्र मिलाकर पिलाना चाहिये।

कफजशोथकी—चिकित्सा क्षार, चरपरे और गरम पदार्थ, गोमूत्र, तक्र और आसव आदिसे करनी चाहिये।

यदि मल पतला और भारी है, तो त्रिकटु, कालानमक और शहद मिलाकर मट्ठा पिलाना चाहिये। एवं कच्चा, सदोष पतला और भारी मल हो, तो हरड़ और गुड़ या सोंठ और गुड़का सेवन कराना चाहिए।

मल और अधोवायुका निरोध हो, तो भोजनके पहले दूध या मांसरसके साथ एरंड तैल पिलाना चाहिए। यदि नाड़ियोंके भीतर अवरोध हुआ हो तथा अग्नि और रुचि नष्ट होगई हो, तो शास्त्रोक्त विधिसे तैयारकी हुई मद्य या अरिष्टका सेवन कराना चाहिए।

आगन्तुक शोथ रोगमें लेप, सेक आदि शीतल उपचार करने चाहियें। इसका विशेष विचार व्रणशोथके साथ किया जायगा।

शोथ रोगकी चिकित्सामें पहले संगृहीत रसको दूर करना चाहिए। फिर शोथके उत्पादक कारणका उपशमन (होसके तो लय) करना चाहिए।

संगृहीत रसको दूर करनेके लिये उस स्थानके प्रति लक्ष्य रखकर रोगीको आवश्यक विश्रान्ति देनी चाहिए। मानसिक श्रम भी छुड़ा देना चाहिए। आवश्यक विश्राम, आवश्यक व्यायाम या अंग मर्दन, उत्तेजक औषधि और शुद्ध खुली वायुका सेवन आदिका उचित प्रबन्ध करना चाहिए। जिस तरह रसका सत्वर शोषण होजाय, जल जाय या प्रस्वेद और मल मूत्रद्वारा बाहर निकल जाय, उस तरह चिकित्सा करनी चाहिए।

रोगीको स्थानान्तरित करानेसे रोग शमन होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है। पुनर्नवामण्डूर आदि शोथहर औषधियाँ और तालसिंदूर आदि रक्तशोधक औषधियाँ लाभदायक हैं। श्वास लेनेमें कष्ट होता हो, तो अभ्रक और लोह मिश्रित औषधि देनी चाहिए। हृदयविकृति हो, तो रससिंदूर, ब्राह्मीवटी, लक्ष्मीविलास रस, जवाहर मोहरा, चन्द्रोदयवटी आदि हृदयपौष्टिक औषधि देनी चाहिए।

रोगके हेतुसे अधिक निर्बलता आनेपर लोह भस्म और ताल प्रधान औषधि द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

बद्धकोष्ठ हो, तो मृदु विरेचन देना चाहिए।

विशेष चिकित्सा जलोदर और सामान्य शोथके अनुसार करनी चाहिये।

यदि वृक्कविकारजन्य शोथ है तो डॉक्टरी मत अनुसार शोथघ्न औषधिके साथ उष्ण जलसे स्नान, उष्ण जलसे स्वेद, वाष्प स्नान (Vapour bath), उष्ण वायुसे स्नान और उष्ण कमरेमें बैठकर शीतल जलकी बस्ति (Turkish Bath) लेना ये सब प्रयोग हितकर हैं। हृदय यदि क्षीण हो, तो हृदय पौष्टिक औषधिका भी साथ साथ सेवन कराना चाहिये।

हाथ या पैरपर (अभिघात आदिसे) शोथ आया हो, तो शोथप्रसित स्थानको देहकी अपेक्षा कुछ ऊँचा रखें। पट्टी (Bandage) यथोचित दबाव देकर बाँधें और शोथप्रसित बाह्य स्थानको सम्हाल-पूर्वक स्वच्छ और शुष्क (शीतल जल या शीतल वायुसे सुरक्षित) रखें।

शोथ रोगमें तरल भोजन और जल होसके उतना कम देना चाहिए, किन्तु दुग्धको पथ्य माना गया है।

जलसंग्रह अधिक होनेपर विरेचन और मूत्रल औषधि देनेसे शोथ कम हो जाता है। अप्रतिरोधी रक्ताधिक्यमें मूत्रल, बल्य और मृदु उत्तेजक औषध देना चाहिये।

विरेचन औषधि, जो पतले जल सदृश दस्त लाती है, वह देनेसे रक्तमेंसे रस प्रचुर परिमाणमें निकल जाता है। फलतः रक्तरस न्यून होकर घन बन जाता है। फिर रक्तमें क्षारकी अधिकता होजाती है। इस क्षतिके पूरणार्थं रक्त प्रणालियाँ अन्तर्वहन और बहिर्वहन (Endosmosis and Exosmosis) क्रियाके नियमानुसार संयोजक तन्तुओंमेंसे संगृहीत रसको आकर्षित कर लेती है। फलतः शोथ कम होजाता है। इस उद्देश्यसे जलोदर और शोथ रोगोंकी चिकित्सामें प्रातःकाल क्षार प्रधान विरेचन औषधिका प्रयोग करना चाहिए। एवं जलपानका उस समय निषेध करना चाहिये।

मूत्र मार्गद्वारा रसको दूर किया जाता है। इस उद्देश्यसे मूत्रपिण्डकी क्रिया बढ़ानी चाहिए। यदि वृक्क विकार-ग्रस्त हों, तो उनसे अधिक कार्य नहीं लेना चाहिये। यदि वृक्क पीड़ित होनेपर भी मूत्रल औषधि दी जायगी, तो शोथमें लाभ नहीं होगा, बल्कि हानि होगी। वृक्क स्वस्थ हों और क्रिया शिथिल हो गई हो, तो मूत्रल औषधि देनेपर मूत्र निःसारक विधानमें उत्तेजना आती है। फिर रक्तदबावमें वृद्धि होकर मूत्रद्वारा अधिक रस निकलने लगता है। जिससे जलोदर और सब प्रकारके शोथ रोगोंमें लाभ पहुँच जाता है।

शोथरोगमें नमक बिल्कुल नहीं देना चाहिये। रोज़ एक या दो बार पतला

शौच होना चाहिये। डॉक्टरी मत अनुसार भोजन अधिक प्रथिन और कम वसा (घृत-तैल) मय देना चाहिये।

सूचना—यदि औषधि-चिकित्सा करनेपर भी शोथ शमन न हो और विषम लक्षण प्रतीत हों, तो हाथ-पैरपर किसी बृहद्रसायनी गह्वर (Serous Cavity) के शोथमें छिद्र यंत्र (Paracentesis) अथवा रबरकी नलीवाली सूक्ष्म आर (Trocar) या इतर सूची द्वारा सूक्ष्म-सूक्ष्म छिद्र करके अथवा किञ्चित्-किञ्चित् काट करके रसको निर्गत करा देना चाहिए।

शोथ रोगकी चिकित्सा जलोदर चिकित्सामें विशेष रूपसे लिखी है, डॉक्टरीमें जलोदरको भी एक प्रकारका स्थानिक शोथ माना है। जलोदरका विवेचन पहले किया गया है अतः शोथ चिकित्साके लिये सूचना और विधि जलोदर चिकित्सामें देख लेना चाहिए।

वृक्कविकारजन्य शोथके लिये वातबलासक ज्वर (Nephritic Fever) चिकित्सामें प्रथम-भाग पृष्ठ ४४५ में कुछ विवेचन किया है।

शोथ चिकित्सा

१. हरड़, सोंठ और देवदारु, इन तीन औषधियोंका कपड़छान चूर्ण ४ माशे गुनगुने जलके साथ या हरड़, सोंफ, देवदारु और पुनर्नवा, इन चारोंका चूर्ण ४ माशे गोमूत्रके साथ देवें तथा औषधि जीर्ण होजानेपर स्नान कराके दूध भातका भोजन कराते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें शोथ शमन हो जाता है।

२. त्रिफलाके क्वाथके साथ शिलाजीत २से४ रत्तीतक प्रातःकाल देते रहनेसे त्रिदोषज शोथ दूर होता है। वृक्कविकारसे उत्पन्न शोथमें भी यह औषधि हितकर है।

३. कृष्णादि चूर्ण—पीपल, पाठा, गजपीपल, छोटी कटेली, चित्रकमूल, सोंठ, हल्दी, ज़ीरा, नागरमोथा, इन १० औषधियोंको कूट चूर्णकर ४-४ माशे गुनगुने जलके साथ दिनमें २ बार प्रातःसायं देते रहनेसे त्रिदोषज जीर्ण शोथ नष्ट होजाता है।

४. सोंठ और चिरायताको जलके साथ पीस कल्ककर, गुनगुने जल अथवा पुनर्नवाके क्वाथके साथ देते रहनेसे त्रिदोष सर्वाङ्ग शोथ नष्ट होजाता है।

५. त्रिकटु १ माशा, यवक्षार १ माशा और लोहभस्म २ रत्ती, तीनोंको घीके साथ मिलाकर चाटलेंगे; फिर ऊपर त्रिफलाका क्वाथ पीनेसे त्रिदोषज जीर्ण (नूतन वृक्कविकार एवं जीर्ण हृदयविकृतिसे उत्पन्न) शोथ शमन होजाता है।

६. कच्ची फिटकरीका चूर्ण३-३रत्ती गोमूत्र या पुनर्नवामूलके क्वाथके साथ देते रहनेसे शोथ रोग नष्ट होजाता है। भोजनमें दूध भातका सेवन कराना चाहिए।

७. पथ्यादि क्वाथ—हरड़, गिलोय, भारंगी, पुनर्नवा, चित्रकमूल, दारु-हल्दी, हल्दी, देवदारु और सोंठ, इन ६ औषधियोंका क्वाथकर पिलाते रहनेसे उदर शोथ तथा पैर और मुखपर आया हुआ शोथ सत्वर दूर हो जाता है।

८. गुड़ार्द्रक योग—रोगीको रोज़ प्रातःकाल ताज़े अदरक, सोंठ, हरड़

या पीपल, इनमेंसे किसी एकके साथ समान गुड़ मिलाकर १ तोला देवें। फिर १-१ माशे रोज़ बढ़ाते जायँ; अदरक आदिको दो तोलेसे अधिक न बढ़ावें। फिर रोज़ सुबह २-२ तोले देते रहनेसे गुल्म, उदर, अर्श, शोथ, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अपचन, कामला, शोष, उन्माद आदि मनोविकार तथा कास और कफप्रकोप आदि व्याधियोंका नाश होता है। औषध जीर्ण होनेपर दूध, यूष या मांसरसके साथ भोजन देना चाहिये।

वातज शोथपर सरल प्रयोग

९. पुनर्नवा, सोंठ और नागरमोथाके ४ से ६ माशेके कल्कको १४ तोले दूधके साथ देनेसे वातज शोथ शमन होजाता है।

१०. अपामार्ग, पीपल, पीपलामूल और सोंठके ३-४ माशे कल्कको आध सेरसे तीन पाव दूधके साथ दिनमें दो बार देनेसे वातज शोथ दूर होता है।

११. शुण्ठ्यादि क्वाथ—सोंठ, पुनर्नवा, एरंड मूल और लघुपञ्चमूल, इन ८ औषधियोंको समभाग मिलाकर २-२ तोलेका क्वाथकर भोजन पचन होजाने पर (सुबह और रात्रिको सोनेके समय) दिनमें २ समय पिलाते रहनेसे वातप्रधान शोथ दूर होता है।

वातपित्त शोथपर सरल प्रयोग

१२. दन्त्यादि क्षीर—दन्तीमूल, निसोत, त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपल) और चित्रकमूल, इन सबको ४-४ माशे लेकर ६४ तोले दूध और ६४ तोले जल मिलाकर दुग्धावशेष क्वाथकर छान लेवें। फिर प्रातःकालको पिलाते रहनेसे वातपित्तज शोथ निवृत्त होता है।

१३. निसोत, एरंडमूल और कालीमिर्चसे उपरोक्त विधिसे दूध सिद्धकर प्रातःकालको पिलाते रहनेसे वातपित्तज शोथ नष्ट होता है।

१४. गिलोय, सोंठ और दन्तीमूलका चूर्ण मिला दूध सिद्धकर पान करानेसे पित्तवातज शोथ शमन होता है।

पित्तप्रधान शोथपर सरल प्रयोग

१५. परवल, त्रिफला, नीमकी अन्तरछाल और दारुहल्दी, इन ६ औषधियोंको समभाग मिलाकर २-२ तोलेका क्वाथ करें। फिर छानकर १-१ माशे शहद-गूगल मिलाकर पिलाते रहनेसे तृषा और ज्वरसह पैत्तिक शोथ निवृत्त होजाता है।

१६. बेलपत्रोंका स्वरस १ से २ तोलेतक कालीमिर्चका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे बद्धकोष्ठ, अर्श, अपचन और कामलासह शोथ रोग नष्ट होता है।

कफजशोथपर सरलयोग

१७. चिकित्सातत्वप्रदीप प्रथम-खण्ड में लिखे हुए त्रिकण्टकादि क्षीर और पुनर्नवादि क्वाथ हितकर औषधियाँ हैं। इस प्रकारके शोथमें मूत्रपिण्ड अपना कार्य यथोचित नहीं कर सकता। इस हेतुसे तीव्र मूत्रल औषधि नहीं दी जाती और मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिए। शिलाजीत मिला देनेमें हानि नहीं होती बल्कि लाभ ही पहुँचता है।

शोथहर विशेषयोग

१८. पटोलमूलादि कषाय—परवलके मूल, देवदारु, दन्तीमूल, त्रायमाण, पीपल, हरड़, इन्द्रायण, मुलहठी, कुटकी, लालचन्दन, निचुल (समुद्रशोषके बीज) और दारुहल्दी, इन १२ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। फिर दो तोले चूर्णको १६ गुने जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। पश्चात् छान दो तोले गोघृत मिलाकर प्रातःकालको पिलाते रहनेसे विसर्प, दाह, ज्वर, सन्निपात, तृषा, विष और शोथकी निवृत्ति होती है।

१९. भल्लातकारिष्ट—भिलावा, चित्रकमूल, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), वायविडंग और बड़ी कटेलीके फल, ये सब ६४-६४ तोले लेवें। इनको कूट २०४८ तोले काँजीमें मिलाकर गोबरीकी अग्निपर चतुर्थांश काँजीको जलावें। तीन भाग काँजी शेष रहनेपर उतार छानकर दहीका जल २०४८ तोले और ४०० तोले मिश्री मिलावें। पश्चात् एक दृढ़ घड़े (अमृतबान) के भीतर चित्रकमूल और पीपलके कल्कका लेपकर इस मिश्रणको भर देवें। मुख बन्दकर किसी कमरेमें १० दिनतक रख देवें। बादमें २॥ से ५ तोलेतक दिनमें २ बार देते रहनेसे शोथ, उदररोग, अर्श, भगंदर, ग्रहणी, कृमिरोग, कुष्ठ, प्रमेह, कृशता और हिक्का रोग सत्वर दूर होते हैं। यह वातप्रधान शोथ रोगपर हितावह है।

२०. पुनर्नवाद्यरिष्ट—श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, बला (खरैटी), अतिबला (कंगई), पाठा, दन्तीमूल, गिलोय, चित्रकमूल, छोटी कटेली, ये ९ औषधियाँ १२-१२ तोले लेकर ८१९२ तोले जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान शीतल होनेपर ८०० तोले पुराना गुड़ और १२८ तोले शहद मिलाकर चिकने घड़े (अमृतबान) में भरें। मुख बन्दकर एक मास तक जौके भीतर दबा देवें। पकजानेपर निकाल ऊपरके साफ नितरे भागमें तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, कालीमिर्च, नेत्रवाला और नागकेसर, सबका चूर्ण २-२ तोले डालकर पुनः अमृतबान या बोतलोंमें भर लेवें। मात्रा २॥-२॥ तोले (या अधिक मात्रामें) भोजन जीर्ण होनेपर दिनमें दो बार पिलाते रहनेसे हृद्रोग, पाण्डु, प्रवृद्ध शोथ, प्लीहावृद्धि, भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगंदर, ६ प्रकारके उदररोग (छिद्रोदर, जलोदर और शल्य साध्यको छोड़कर शेष उदर-

रोग), कास, श्वास, ग्रहणी, कुष्ठ, कण्डू, शाखागत वात, कोष्ठबद्धता, हिक्का, किलास (श्वित्र) और हलीमक आदि रोगोंका शमन होता है तथा वर्ण, बल, तेज और ओजकी वृद्धि होती है। भोजनमें मांस रस या दूधके साथ पुराना शालि चावल देना चाहिये।

२१. चित्रकादि घृत—चित्रकमूल, धनियाँ, अजवायन, पाठा, अजमोद, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अम्लबेंत, बेलगिरी, अनारदाने, यवक्षार, पीपलामूल, और चव्य, इन १४ औषधियोंको १-१ तोला मिलाकर कल्क करें। फिर कल्क, जल ५१२ तोले तथा घी ६४ तोलेको मिलाकर मन्दाग्निपर यथाविधि पाक करें। इस घृतको आधसे दो तोलेतक दिनमें २ बार देते रहनेसे अर्श, गुल्म और कष्टसाध्य शोथ नष्ट होते हैं तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

२२. श्वयथुघाती रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, पीपल, निसोत, कालीमिर्च, देवदारु, हल्दी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, इन सबको समभाग लेवें। पहले पारद गन्धककी कज्जली करके लोहभस्म मिलावें। फिर काष्टादि औषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिला गोमूत्रके साथ खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लें। इनमेंसे १ से २ गोली गोमूत्र या गोमूत्रके अर्कके साथ सेवन कराते रहनेसे सब प्रकारके शोथरोग और उदररोग शमन हो जाते हैं।

२३. रसतन्त्रसारमें लिखी हुई औषधियाँ—तक्रमण्डूर, पुनर्नवा मण्डूर, दुग्धवटी, ताप्यादि लोह, त्रिफलारिष्ट, अभयारिष्ट, पुनर्नवादि चूर्ण, लक्ष्मीविलास रस, (मकोयके अर्कके साथ), आरोग्यवर्द्धिनी दूसरी विधि, पञ्चगव्य घृत, कल्याण घृत, मूलकादि तैल, इच्छाभेदी रस, ये सब हितावह औषधियाँ हैं।

तक्रमण्डूर—पतले दस्तसह सर्वाङ्ग शोथ, यकृत्प्लीहावृद्धि, पाण्डु और ग्रहणी विकार, सबको दूर करके सत्वर रोगीको बलवान् बनाता है। रोगीको केवल मट्ठेपर ही रखना चाहिए। जिनको मट्ठा अनुकूल न हो उनको इस औषधिका सेवन नहीं कराना चाहिए।

पुनर्नवा मण्डूर—अति बढ़े हुए सब प्रकारके शोथ अर्थात् हृदय, यकृत्, प्लीहा, वृक्क स्थान या रक्त निर्बलता आदि हेतुसे उत्पन्न शोथको पाण्डु, कामला, उदररोग, ज्वर, संग्रहणी और अर्श आदि उपद्रवोंसह निवृत्त करता है।

दुग्ध वटी—संग्रहणी, पाण्डु और ज्वरसह सर्वाङ्गशोथ, हृदय, यकृत, प्लीहा या वृक्कविकारजन्य शोथ, सबको दूर करती है। जिन रोगियोंको दूध अनुकूल रहता है, उनके लिये यह अमृतसदृश लाभदायक है। रोगीको केवल दूधपर रखना चाहिए। यह अफीमप्रधान औषधि है, अतः कम मात्रामें उपयोग करना चाहिये।

ताप्यादि लोह—नया वातज और कफज शोथ, रक्तकी निर्बलता, प्लीहावृद्धि और वृक्कप्रदाहसे उत्पन्न शोथमें लाभदायक है।

त्रिफलारिष्ट— हृदय या रक्तकी निर्बलतासे उत्पन्न शोथको अग्निमान्द्य, अर्श और पाण्डुसह दूर करता है।

अभयारिष्ट—अर्श, संग्रहणी और उदरविकारसह शोथपर हितावह है।

पुनर्नवादि चूर्ण— सब प्रकारके नूतन शोथ रोगमें मूत्रद्वारा विषको निकालकर सत्वर लाभ पहुँचाता है। दूसरी विधि वाला पुनर्नवादि चूर्ण मूत्रद्वारा एवं मलद्वारा भी द्रवको निकालता है।

लक्ष्मीविलास रस—अभ्रकयुक्त हृदयविकृतिजन्य नये सर्वाङ्ग शोथको और सुवर्णयुक्त-लक्ष्मीविलास पाण्डु, कामला, क्षय, हृदयविकृति और यकृतकी निर्बलतासह सर्वाङ्ग शोथको दूर करता है। ये दोनों रसायनोंमें हृदय पौष्टिक गुण होनेसे मूत्रल अनुपानके साथ देनेपर मूत्रद्वारा रक्तरसको बाहर निकालकर शोथको शमन करते हैं। एवं शनैः-शनैः शोथके कारण रूप हृदयकी निर्बलताको भी दूर करते हैं।

आरोग्यवर्धिनी—दूसरी विधि- मूत्रपिण्डकी विकृतिसे उत्पन्न जलोदर और सर्वाङ्ग शोथको दूर करनेमें अति हितकर है। तरलको विशेषतः मलद्वारा निकालती है तथा वृक्कशोथको शमनकर जलोदर और सर्वाङ्ग शोथको नष्ट करती है।

पंचगव्य घृत और कल्याण घृत— भोजनके साथ या प्रातःकाल देते रहना, यह वातज शोथमें विशेष हितकर है।

मूलकादि तैल—की मालिश करनेसे शोथ सत्वर कम हो जाता है।

इच्छाभेदी रस—उदरशोधनार्थ दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जलोदर रोगमें कही हुई औषधियाँ भी शोथ रोगपर हितकर मानी गई हैं।

२४. शैलेयादि तैल—शैलेय (छारछरीला-पत्थर फूल) कुष्ठ, अगर, देवदारु, कौन्ती (निर्गुण्डीके बीज), दालचीनी, पद्माख, छोटी इलायचीके दाने, नेत्रवाला, पलाशबीज (टीकाकारोंके मतमें कचूर), नागरमोथा, प्रियंगु, गठिवन, नागकेशर, जटामांसी, तालीसपत्र, प्लव (क्षुद्र मोथा), तेजपात, धनियाँ, गन्धाबिरोजा, ध्यामाक (गन्धतृण), पीपल, स्पृक्का (अभावमें मालती पुष्प) और नखी, इन २४ औषधियोंमेंसे जो-जो मिलसके, वे सब समभाग मिलाकर ३२ तोले कल्क करें। फिर कल्क, तिल-तैल १२८ तोले और ५१२ तोले जल मिलाकर यथाविधि तैलको सिद्ध करें। इस तैलकी मालिश करनेसे वातप्रधानशोथ सत्वर कम होने लगता है। इस तैलकी शुष्क औषधियोंके कपड़छान चूर्णको जलके साथ पीस गुनगुनाकर शोथ स्थानपर लेप भी किया जाता है।

२५. वातिक शोथपर स्वेदन, स्नान और अनुलेपन—रोगीको पहले शैलेयादि तैलकी मालिश करें। वासा, आक, करंज, सुहिंजना, गम्भारी और बनतुलसी, सबके पत्तोंको जलमें मिलाकर उबालें। फिर जलको छान निर्वात स्थानमें टब या बड़ी कड़ाईमें भरकर (सहन हो सके ऐसे जलमें) रोगीको बैठावें। जल कण्ठतक रहना

चाहिए। पसीना आ जानेके पश्चात् सूर्यकिरणोंसे तपाये हुए जलसे स्नान करावें। पश्चात् अगरादि सुगन्धिवाले पदार्थोंका अनुलेपन करें।

२६. वेतसादि तैल—बेंत, बट, पीपल, गूलर और प्लक्षकी छाल, मजीठ, कमलकी नाल, सफेद चन्दन, पद्माख, नेत्रवाला, सबको समभाग मिला पीसकर ३२ तोले कल्क करें। फिर कल्क, १२८ तोले तिल-तैल और ५१२ तोले जल मिलाकर मन्दाग्निपर यथाविधि पाक करें। इस तैलका पित्तात्मक शोथपर मर्दन करनेसे शोथ सरलतासे कम होने लगता है। एवं इन औषधियोंके कल्कका लेप करनेसे भी शोथ शमन हो जाता है।

२७. पैत्तिक शोथपर स्वेदन, स्नान और अनुलेपन—रोगीको पहले वेतसादि तैलकी मालिश करावें। फिर बट, पीपल, गूलर, प्लक्ष और वेतस, इन चार वृक्षोंकी छाल मिलाकर उबाले हुए जलमें या दूधमिश्रित जलमें बैठाना चाहिए तथा चन्दन, खस और पद्माख मिलाकर सूर्यके तापसे तपाये हुए जलसे स्नान कराना चाहिए। पश्चात् श्वेतचन्दनको जलसे घिस शोथस्थानपर लेप करना चाहिए।

२८. श्लैष्मिक शोथपर लेप, स्नान और अनुलेपन—कफात्मक शोथपर पीपल, बालू, पुराना तिलकल्क, सुहिंजनेकी छाल और अलसी, सबको गोमूत्रके साथ पीस गुनगुनाकर शोथ स्थानपर लेप करना चाहिए। फिर कुलथी और सोंठको गोमूत्रमें मिला, सूर्यके तापसे तपाये हुए जलमें डाल अथवा कुलथी और सोंठको गोमूत्रमें ही मिला, सूर्यके तापमें तपाकर स्नान या परिषेचन करना चाहिए। पश्चात् चयवा (चोरक) और अगरको जलमें घिसकर अनुलेपन करना चाहिए।

२९. सब प्रकारके शोथपर लेप—सब प्रकारके शोथोंमें दाह और पीड़ा होती हो, तो बहेड़ेके फलकी गिरीको जलके साथ पीसकर लेप करनेसे दाह और वेदना शमन होते हैं।

३०. रास्ना, अडूसाके पत्ते, आकके पत्ते, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वायविडङ्ग, सुहिंजनेकी छाल, मूषाकर्णी, नीमके पत्ते, वनतुलसीके पत्ते, व्याघ्रनख, दूब, सुवर्चला (हुलहुल), कुटकी, मकोय, बड़ी कटेली, कूठ, पुनर्नवा, चित्रकमूल और सोंठ, इन २१ औषधियोंको गोमूत्रमें पीसकर शोथपर दिनमें दो बार मर्दन करना चाहिए।

३१. मूलीके रस या क्वाथका परिषेचन करनेसे शोथ शमन होता है।

३२. पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सरसों और सुहिंजनेकी छालको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारके शोथोंका विनाश होता है।

३३. शोथहर गुटिका—छोटी हरड़ १ सेर, आँवला ४० तोले, शोरा २० तोले और नीलाथोथा १० तोले लेवें। हरड़ और आँवलेको कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर शोरेका कपड़छान चूर्ण मिलावें। पश्चात् नीलेथोथेके चूर्णको १५ तोले जलमें मिला चूर्णके साथ मिश्रितकर एक गोला बाँध लेवें। इसे १ दिन रहने देवें।

दूसरे दिन गोलेको अच्छी तरह कूटकर गोलियाँ बना लेवें। इसे जलमें घिसकर लेप करनेसे संधियोंकी पीड़ा, चोट लगनेसे उत्पन्न शोथ, जन्तुओंके काटनेसे आया हुआ शोथ और शारीरिक विकृतिसे उत्पन्न शोथ, सब दूर होजाते हैं।

इनके अतिरिक्त यह गुटिका क्षतपर लगाई जाती है। चक्षुपाक होनेपर नेत्रके चारों ओर लगाई जाती है। एवं कानमें शूल चलनेपर और कानके मूलमें सूजन आनेपर इस गुटिकाका लेप करनेसे तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है।

सूचना—बनानेके समय जल अधिक होजानेपर गोलियाँ शिथिल बनती हैं; जल्दी घिस जाती हैं, और लाभ पूरा नहीं पहुँचा सकतीं। चाहिये उतना जल मिलानेपर गोली कठोर बनती है; जल्दी नहीं घिसती तथा तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है।

३४. भल्लातक तैलज शोथ—

अ. यदि भिलावाके तैलके स्पर्शसे शोथ आया हो, तो तिल और काली मिट्टी या केवल तिलको मक्खन या दूधके साथ पीसकर लेप करना चाहिये।

आ. मुलहठी और तिलको मक्खनमें पीसकर लेप करनेसे भिलावेसे उत्पन्न शोथ नष्ट होजाता है।

इ. नारियलका तैल या मालकांगनीका तैल लगानेसे शोथकी निवृत्ति होजाती है।

३५. थूहरके दूधसे उत्पन्न शोथपर घी लगानेसे शोथ और दाह दूर होते हैं।

३६. अभिघातज शोथ पर—

अ. रसतन्त्रसारमें लिखा हुआ अस्थिसंधानक लेप लगानेसे मांस फट जाना, हड्डीपर चोट आ जाना, हड्डी मुड़ जाना, हड्डी टूट जाना आदि सब दोष दूर होकर सूजन थोड़ेही समयमें शान्त होजाती है।

आ. गेहूँके आटेको तिल या सरसोंके तैलका मौण दें, थोड़ा हल्दी और सज्जीखार डाल, जल मिलाकर पतले दही समान घोल करें। पश्चात् गरमकर गाढ़ा होनेपर उतार, चोट स्थानपर लेप करनेसे वेदना दूर होजाती है तथा जमा हुआ रक्त फैल जाता है।

इ. सामान्य चोट होनेपर सत्यानाशीके रसमें हल्दी और नमक मिला गरमकर लेपकर देनेसे शोथ दूर होजाता है।

ई. सत्यानाशी या पुनर्नवाके मूलको घिसकर लेप करनेसे शोथ उतर जाता है।

उ. निम्बपत्रके क्वाथसे घाव धोकर घावपर तैलकी पट्टी लगा देनेसे सूजन रक्तस्राव, मांस पीस जाना, दर्द होना, पूय होजाना आदि विकृति दूर होजाती है।

(ऊ.) शोथनाशक अर्क अथवा टिञ्चर आयोडीन लगानेसे आगन्तुक शोथ दूर होजाता है। मांसपर चोट आनेसे दर्द होता हो, तो टिञ्चर आयोडीन लगाकर ग्लिसरीन मिला हुआ एक्सट्रेक्ट बेलेडोना लगा रुई चिपकाकर पट्टी बाँधनेसे शोथकी निवृत्ति होजाती है।

(ए.) यदि रक्तस्राव होता हो, तो कार्बोलिक लोशनसे धोकर टिञ्चर बेन्जोइनका फोहा रख देनेसे रक्तस्राव बन्द होजाता है। यह रुई घाव मिलजानेके पश्चात् पृथक् होती है।

पथ्यापथ्य

पथ्य—पुराना जौ, पुराना शालिचावल, कुलथीका यूष, पीपल मिला हुआ मूँगका यूष, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल तथा विष्कर जीव, जंगलके जीव, कछुआ, गोह, मोर और शल्लक (सेह), इन सबका मांसरस (जवाखार मिला हुआ) हितकर है। रोगीको शाक खानेकी इच्छा हो, तो सुवर्चिका (हुलहुल), गृञ्जनक (गाजर), परवल, मकोयके पान, मूली, बेंतका अग्रभाग और नीमके पत्तेका शाक देना चाहिए। यदि रोगी अन्न-जलका त्यागकर एक सप्ताहसे एक मास तक केवल ऊँटनीके दूधपर ही रह जाय, तो जलोदरसह शोथ नष्ट होजाता है। अथवा गाय या भैंसके दूधके साथ गोमूत्र मिलाकर पिलाते रहनेसे शोथ रोग शमन होजाता है या रोगी केवल गो दुग्ध पर ही रह जाय, तो भी शोथ रोग निवृत्त होजाता है।

रोगीको निम्बपत्र, पुनर्नवा और अम्लतासकी फलीके क्वाथ या रससे स्नान कराना लाभदायक माना जाता है।

रोगीको गुनगुने जलसे स्नान कराना चाहिये या टबमें गरम जल भरकर आध-आध घण्टे तक प्रतिदिन सुबह निर्वात स्थानमें बैठाना चाहिये। शीतल वायु और शीतल जलसे रक्षण करना चाहिए। गरम वस्त्र धारण करावें। भोजनमें अण्डे का सेवन हितकर है।

जीवन्त्यादि यवागू— चावलोंको ६ गुने जलमें सिद्धकर यवागू बना लेवें, फिर जीवन्ती, ज़ीरा, कचूर, पुष्करमूल, कालाज़ीरा, चित्रकमूल, बेलगिरी, यवक्षार, इन ८ औषधियोंको ६-६ माशे मिलावें। वृक्षाम्ल (कोकम या डाँसरिया) मिलाकर थोड़ी खट्टी कर लेवें। यह यवागू अर्श, अतिसार वातगुल्म, शोथ, हृद्रोग और मन्दाग्निमें हितकर है।

अथवा लघुपञ्चमूलके क्वाथमें चावलोंकी सिद्धकी हुई यवागू पिलाई जाती है।

अथवा दशमूल क्वाथमें पुराना जौ या शालि चावलका आटा मिला यवागू बनाकर देते रहना चाहिये। सैंधा नमक और घी बहुत थोड़े परिमाणमें देवें।

भैषज्यरत्नावली कारने लिखा है कि, शोथ रोगीके दोषोंका शोधन करनेवाली औषधियाँ—लङ्घन, रक्तमोक्षण, स्वेदन, शरीरपर औषधियोंका लेप और सिंचन क्रिया,

पुराने शालि चावल, जौ, कुलथी और मूँग आदि अन्न, गोह, सेई, मोर, तीतर, मुर्गा, लवा एवं जङ्गली जीवों और विष्कर जातिके जीवोंका मांस, कछुएका मांस, शृङ्गीमत्स्य, पुराना घी, मट्ठा, शराब, शहद, आसव, अरिष्ट, सेमकीफली, करेला, लाल सुहिंजना, आम, ककोड़ा, मानकन्दकी मूल, हुलहुलके पत्ते, गाजर, परवल, बेंतका अग्रभाग, बैंगन, मूलीके पत्ते, पुनर्नवा, चित्रक-मूल, फरहद, अरणी, नीमके पत्ते, तालमखानेके पत्ते, एरंड तैल, कुटकी, हल्दी, हरड़, खारवाले द्रव्य, भिलावा, गूगल, अगर तथा कड़वे, चरपरे और पाचक पदार्थ, गौ, बकरी और भैंसका मूत्र, कस्तूरी, शिलाजीत और पाण्डु रोगाधिकारमें कही हुई अग्निप्रदीपक क्रियाएँ, ये सब हितकर हैं। इनका दोषानुसार विचार-पूर्वक सेवन करानेसे शोथ रोग शमन होजाता है।

अपथ्य—इस शोथ रोगमें ग्राम्य, जलचर और आनूप जीवोंका मांस, समुद्र-नमक, सांभर नमक, खारी मिट्टीमेंसे निकाला हुआ नमक, सूखे शाक, नया अन्न (जिस अनाजको एक वर्ष न हुआ हो वह), गुड़के बने हुए पदार्थ, पिट्ठीके पदार्थ, दही, तिलके बने पदार्थ, सूखे मांस, पथ्य और अपथ्य मिश्रित भोजन, गुरु भोजन, असात्म्य भोजन, विदाही वस्तु, दिनमें शयन और मैथुन आदि शोथ रोगीको त्याग देना चाहिये।

शोथ रोगमें हो सके, तबतक सम्पूर्ण प्रकारके नमक, तैल और मिर्चका त्याग कर देना चाहिए। यदि नमकका पूर्णांशमें त्याग न हो सके तो स्वल्प मात्रामें सैंधानमक देना चाहिये।

भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है, कि दूषित वायुका सेवन, दूषित जलपान, मल-मूत्र आदिके वेगोंको धारण, सर्वप्रकारके विरुद्ध पानीय द्रव्य, विषम भोजन, मृत्तिका भक्षण, ग्रामोंमें रहनेवाले और अनूपदेशके जीवोंका मांस, नमक, सूखे शाक, नया अन्न, गुड़की बनी हुई मिठाई, पिट्ठीमेंसे बने हुए पदार्थ, खिचड़ीके साथ दही, बिना जल मिली मदिरा, खट्टे पदार्थ, खील, शुष्क मांस, भारी, अहितकारी और विदाही पदार्थोंका सेवन, रात्रिमें जागरण और स्त्रीसमागम आदि शोथरोगीको त्याग देना चाहिये।

२६. सार्वाङ्गिक घन शोथ

(मिक्सिडिमा—Myxoedema)

रोगपरिचय—ग्रैवेय ग्रन्थि (Thyroid gland) का हीन योग, मेदो-वृद्धि, रूक्ष त्वचा, बाल गिरना और मानसिक निर्बलता आदि लक्षणयुक्त यह सार्वाङ्गिक घन शोथ होता है।

यह विकार प्रायः गरीब स्थिति वाली ३० से ५० वर्ष की आयुमें स्त्रियोंको होता है। प्रौढ़ावस्थामें जब मासिकधर्म बन्द होने लगता है या अनेक संतान होनेसे निर्बलता आई है या बारम्बार गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव होता रहता है, उनपर इस रोगका आक्रमण अधिक। मानसिक उद्वेगके हेतुसे यह रोग कभी-कभी पुरुषोंको भी।

अनुपात ६२ स्त्री और एक पुरुष। विशेषतः इस रोगमें ग्रैवेय ग्रन्थिका ह्रास, किन्तु क्वचित् वह अपक्रान्ति प्रसित होकर बढ़ जाती है। यह रोग विशेषतः शीत कटिबन्ध प्रदेशमें होता है।

निदान—यह व्याधि ग्रैवेय ग्रन्थिके अन्तःस्राव (Internal Secretion) का हीनयोग होनेपर होती है; परन्तु यह हीनयोग क्यों होता है ? इस बातका निर्णय नहीं हुआ। शराब और फिरंग, दोमेंसे एकभी कारण नहीं माना गया।

बाल्यावस्थामें—किसी कारणवश इस ग्रन्थिका हीनयोग हुआ, तो बालककी अपूर्ण वृद्धि (Cretinism) रोग होजाता है। उस रोगसे बालक वामनके सदृश ठिंगना भासता है। युवावस्थाके पश्चात् हीनयोग हो, तो सार्वाङ्गिक घन शोथकी सम्प्राप्ति ग्रैवेय ग्रन्थिकी वृद्धि होनेपर शस्त्रसे काट दिया जाय, तो भी हीनयोग होकर सार्वाङ्गिक घन शोथके सदृश विकार-ग्रैवेय छेदनजन्य घनशोथ या शीर्णता (Cachexia Strumipriva or C. Thyropriva) की संप्राप्ति होती है।

सम्प्राप्ति—ग्रैवेय ग्रन्थिमें अन्तःस्राव उत्पादक तन्तुका ह्रास और सौत्रिक तन्तु वृद्धि। फिर ग्रैवेय ग्रन्थि कृश और कठिन। वज़न २॥ तोलेके स्थानमें १ से २ माशे फिर अन्तःस्रावका अभाव होकर अनेक लक्षणोंकी उत्पत्ति आभ्यन्तरिक त्वचा, केशमूल और प्रस्वेद ग्रन्थियोंके चारों ओर सौत्रिकतन्तु निर्माण होनेसे इन सबका नाश। इस हेतुसे बाह्य त्वचा, केशहीन और रूक्ष; आभ्यन्तरिक त्वचामें क्लेदन कफ (Myx or mucoid) की वृद्धि और विविध यन्त्रोंमें चिपचिपे कफकी उत्पत्ति दोनों अक्षकास्थियाँ (Clavicles) मेदोवृद्धिके हेतुसे ऊपर उठ जाती हैं।

लक्षण—रोगका प्रच्छन्न भावसे आक्रमण, प्रारम्भिक अवस्थामें क्षुधानाश, ठण्डी लगना, सामान्य श्रमसे थकान आ जाना, हृदयकी गति बढ़ जाना, हृत्कम्प और कुछ अंशमें मानसिक अवसाद आदि। कुछ समयके पश्चात् वातवहानाड़ियोंमें मन्द-मन्द पीड़ा या शूल और स्पर्श शक्तिमें विलक्षण।

रोग वृद्धि होनेपर लक्षण—

घन शोथ—उपत्वचाके तन्तुओंका प्रकृति निर्देशक शोथ। विशेषतः मुखमण्डलके गाल, कपाल, नेत्र, पलक और जिह्वापर भी। देखनेपर जड़भरत सदृश मुखाकृति। शोथपर दबानेसे गड्ढा नहीं होता। भारी शरीर चौड़ा मुख मोटे और बड़े ओष्ठ। स्फीत और पतित नेत्रपलक, स्थूल नासिका, बड़ी और चौड़ी कर्णपाली, गालोंपर लाल दागसह पीताभ वर्ण, मोटी नीली और उज्ज्वल जिह्वा, मुँहमें गाढ़ा लालारस और शुष्कता।

त्वचा—शुष्क और खुर्दरी। स्वेदाभाव। केश शुष्क, मोटे और पतनशील। मस्तिष्क बगल और बस्तिदेशके केशका विशेष रूपसे नाश।

चलन और अङ्ग संचालन—मन्द और विचारपूर्वक। हाथ-पैर मोटे और फावड़े सदृश। चलनेमें कष्ट होना।

मस्तिष्क स्थिति—मस्तिष्क क्रिया मन्द । स्मरण शक्ति अपूर्ण । उच्चारण मन्द और अस्पष्ट । बधिरता सामान्य । प्रायः उग्रता, शिरदर्द, कभी दर्शनमें भ्रम, मति विभ्रम और अन्तमें बुद्धिकी जड़ता (Dementia) किसी-किसीको आत्महत्या-की इच्छा होजाना ।

शीत—सर्वदा ठण्डी लगना । उष्ण वायु अच्छी लगना । मलावरोध और पाण्डुता मर्य्यादित ।

नाड़ी—मन्द और नियमित । रोग वृद्धि होनेपर कभी-कभी चिरकारी हृदय-प्रदाह । धमनीमें रक्त दबाव वृद्धि ।

उत्ताप—मन्द । रक्त संवहन संस्थानमें कमी । भौतिक प्रतिबन्ध आनेसे एक ओर की उष्णता दूसरी ओरसे न्यून ।

मूत्र—कुछ लसीकामेह । क्वचित् इक्षुमेह (Glycosuria) ।

ग्रैवेय ग्रन्थि—स्पर्शग्राह्य नहीं होती ।

मासिकस्राव—अनियमित और देरसे । वंध्यत्व अनिश्चित ।

निम्नभागमें चयापचय—ह्रास २० से ४०% ।

कर्बोदक सहिष्णुता-सामान्यतः बढ़ी हुई । इन्सुलिनकी धारण क्षमता अधिक ।

पित्तघन—रक्तमें पित्तघनकी प्रायः नियमित वृद्धि । ४ ग्राम प्रतिशत ।

पाण्डु—अति सामान्य । रक्तमें परिवर्त्तन विविध प्रकारका, अतिकम रक्तवर्ण या अति रक्तवर्ण ।

वक्तव्य—स्त्रीकी आयु बड़ी हो ४० से ६० वर्ष हो, तो लक्षण सौम्य । वह चिकित्सासे शमन ।

चिकित्साके अभावमें रोगवृद्धि—शनैः-शनैः वर्षों तक क्रमशः मन्द वृद्धि । (क्षय, हृदयप्रदाह या वृक्कप्रदाह आदि) रोग उपस्थित होकर मृत्यु ।

रोगविनिर्णय—सरल । प्रारम्भावस्थामें चिरकारी वृक्कप्रदाहसे पृथक् करना चाहिये । चिरकारी वृक्कप्रदाहमें भी पाण्डुता, शोथ, लसीकामेह होते हैं; घनशोथ नहीं होता । एवं शुष्क त्वचा, शुष्क केश, मस्तिष्क स्थितिमें परिवर्त्तन, ये भी नहीं होते । जिससे प्रभेद होसकता है ।

डॉक्टरी चिकित्सा

सार्वाङ्गिक घन शोथ और देहकी अपूर्ण वृद्धि (Cretinism) रोगमें ग्रैवेय-ग्रन्थिका सत्व (एक्सट्रेक्ट थाइरोडिन—Ext. Thyrodin) विशेष लाभदायक है । २-२ ग्रेनकी १-१ गोली दिनमें ३ बार देते रहें । मात्रा १॥ से ४॥ ग्रेन है । सहन हो सके और आवश्यकता हो, तो मात्रा बढ़ावें । हृत्स्पन्दन वृद्धि होकर व्याकुलता, मुखपर लाली, उबाक, मांसपेशियोंमें आक्षेप, निद्रानाश आदि लक्षण प्रकाशित हों तब मात्रा कम करें । फिर इस औषधिका सेवन कम मात्रामें आवश्यकता अनुसार,

जीवनपर्यंत कराया जाता है। इस तरह इसके सत्वका इन्जेक्शन कंधे-अंसप्रदेशके भीतर सप्ताहमें एक बार करनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

या थाइरोडियम सिक्कम (Thyroideum Siccum) अर्थात् मेषके ग्रैवेय ग्रन्थिके शुष्क चूर्णका सेवन करावें। प्रारम्भमें कुछ दिनोंतक चौथाई-चौथाई ग्रेन दोबार दें। फिर वज़नका निर्णय करें। वज़न कम हो जाय, तो औषधिकी अधिक मात्राकी आवश्यकता नहीं रहेगी। रोगबल घट जानेपर क्षुधावृद्धि, शारीरिक उत्तापवृद्धि, देहके वज़नका ह्रास, मुखविकृति और मस्तिष्क विकृतिका शमन आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस अवस्थाको कायम रखनेके लिये आजीवन सप्ताहमें एक, दो या अधिक बार औषधि सेवन करते रहना चाहिए। यदि किसीको कम मात्रासे लाभ न पहुँचे, तो मात्रा (१ दिनमें ४ ग्रेन तक) बढ़ा देनी चाहिए और दीर्घकालतक दिनमें २-३ बार सेवन कराना चाहिये।

मेषका वध होनेपर तुरन्त ग्रैवेय ग्रन्थिको निकाल ऊपरसे चर्बी और संयोजक तन्तुओंको हटा दें। फिर काटकर देखें। भीतर रसार्बुद (Cyst) तो नहीं है? रसार्बुद या इतर कुछभी विकार है, तो उसे त्याग दें। बिल्कुल स्वस्थ ग्रन्थिको चूर्ण-कर ६० से १०० फाइरनहीट (३२ से ३७ सेन्टीग्रेड) उत्तापपर रखकर सुखा लेवें। फिर बारीक चूर्ण करलेवें; साथमें रही हुई चर्बीको पेट्रोलियम स्पिरिटद्वारा दूर करें। शेष भागको पुनः सुखा लें। इस चूर्णमें सामान्य मांसके स्वाद और गंध होते हैं। चूर्णका रंग पिंगल-सा। वायुमें रखनेपर आर्द्र होकर बिगड़ जाता है।

सूचना—यदि मात्रा शक्तिसे अधिक होजायगी, तो हृत्स्पंदन वर्द्धन (Tachy cardia) तथा अन्य लक्षणोंकी वृद्धि होती है। अतः मात्रावृद्धि विचार-पूर्वक करें। हृत्प्रदाहके लक्षण उपस्थित हों तो शय्यापर पूर्ण आराम करावें।

ग्रैवेय ग्रन्थिके चूर्णका सेवन छोड़ देनेपर पुनराक्रमण होजाता है। अतः न्यून मात्रामें आजीवन सेवन करावें।

२७. जनपदव्यापी शोथ

एपिडेमिक ड्रॉप्सी—(Epidemic Dropsy.) यह संक्रामक रोग कभी-कभी आसाम और बङ्गालमें चारों ओर फैलजाता है; ३ से ६ सप्ताह या कभी कुछ अधिक समयतक जनताको त्रास देता है। यह रोग मन्द ज्वर, त्वचामें ग्रन्थियाँ, वमन, प्रवाहिका, उदरविकार आदि लक्षणयुक्त है।

निदान—जब मिलवाले स्वार्थवश सीलवाले दूषित सरसोंका तेल निकालकर जनताको देते हैं, तब यह रोग चारों ओर फैलता है।

रोगकी संप्राप्ति धनिक और गरीब, सबल और निर्बल, सबको समभावसे। युवा स्त्री-पुरुषोंको अधिक। छोटी आयुवाले बालक बालिकाओंको कम। स्तनपायी शिशुओंको बहुधा नहीं होती।

पूर्वरूप—प्रारम्भके वातवहानाड़ियोंकी उत्तेजनाके लक्षण। दाह, त्वचामें झनझनाहट, कण्डू, मूत्रावरोध, हाथ-पैरोंकी नसें खिंचना, मांसपेशियों और अस्थियोंमें दुःखदायक वेदना और दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अधिक पीड़ा आदि। क्वचित् ज्वरभी। फिर हृदयकी विकृति होकर शोथकी उत्पत्ति।

लक्षण—शोथ सामान्यतः प्रारम्भमें दोनों पैरोंपर। अनेकोंको तो देहके निम्न शाखाके अतिरिक्त इतर प्रदेशमें शोथका अभाव। कईयोंको सार्वाङ्ग शोथ। किसी-किसीको शोथ चिरकाल पर्यन्त वर्त्तमान। कितनेक रोगियोंमें इतर रोगोंसे निर्बलता आजानेपर उपद्रव रूपसे इस व्याधिका जन्म।

ज्वर—शोथके सहवर्त्ती। ज्वर किसीको शोथके पहलेसे ही, किसीको शोथके साथ और किसी रोगीको शोथ होजानेके पश्चात्। ज्वर ९९ से १०२ डिग्री, क्वचित् १०४ डिग्रीतक ज्वरके विराम होनेपर कम्प।

वमन और प्रवाहिका—किसी रोगीको विशेष लक्षण रूपसे।

ग्रन्थि-विसर्प (Erythema)—सामान्य रूपसे मुख, छाती और दोनों हाथोंपर ददौरे(Exanthema) एक सप्ताहके पश्चात् उत्पत्ति और १०-१२ दिन स्थिति।

नाड़ी—क्षीण, सतत द्रुतगामी और अनियमित। ध्वनिवाहकयन्त्रसे आवाज़ सुननेपर हृदयके किसी-किसी स्थानपर विलक्षण मर्मर ध्वनि (Bruit)।

श्वसनक्रिया—फुफ्फुस आक्रमित होजानेसे थोड़े से श्रमसे श्वासभर जाना। अनेक रोगियोंको श्वास लेनेमें भी कष्ट। किसी-किसी रोगीको फुफ्फुसावरण और हृदावरणमें रक्तस्राव, फुफ्फुसशोथ, फुफ्फुस खण्डोंमें प्रदाह और हृत्पिण्डका प्रसारण, अधिमन्थ (Glaucoma) आदि भी। पाण्डुता आजानेसे अति दुर्बलता और निस्तेजता। सामान्य रूपसे यकृत्, प्लीहा और वृक्कोंमें विकृति नहीं होती। लसीकामेह नहीं होता एवं वातनाड़ीप्रदाह भी नहीं होता।

साध्यासाध्यता—रोग साध्य है। मृत्युसंख्या बहुत कम।

चिकित्सा—स्नेहन, स्वेदन, अनुलेपन, स्नान आदि हितकर हैं। पुनर्नवा मण्डूर, पुनर्नवादि चूर्ण, शिलाजीत, कृष्णादि चूर्ण, मंजिष्ठादि तालसिंदूर।

ज्वर होनेपर--त्रिभुवनकीर्त्ति, दुर्जलजेता, सूतराज या मृत्युञ्जय। कदाच मलावरोध हो तो पहले दूर करना चाहिये।

२८. वंशागत पादशोथ

Hereditary oedema of the Legs,

Milroy's disease, Chronic Trophoedema.

यह रोग चिरकारी और स्थित, क्वचित् वंशागत. स्त्रियोंको अत्यन्त सामान्य। साधारणतया युवावस्थामें स्पष्ट। पहले एक ओर इसका स्पष्ट कारण नहीं है।

यह रोग रस संस्थानकी अपूर्णताके हेतुसे उत्पन्न होता है। शोथ सामान्यतः निम्न भागोंपर, दबानेपर गड्ढे पड़ना, अन्तमें अधिक स्थूलता। शोथ चारों ओर सीमाबद्ध, चरणपर शोथाभाव। भारीपन आजानेसे कष्ट होना। रात्रिको कुछ अंशमें शान्ति।

आशुकारी प्रकार ज्वरसह। लसीकावाहिनियोंके प्रदाहके हेतुसे शोथवृद्धि।

रोग प्रगति—शोथ बढ़ता है और धड़पर फैलता है। पूतिभाव होनेपर गम्भीर उपद्रव। हृदयकी निर्बलता बढ़ती है। फिर मूलस्थिति अस्पष्ट। कभी हृदय पतन होकर किसी रोगीकी मध्य आयुके लगभग मृत्यु।

चिकित्सा—पैरोंपर पट्टे बाँधें। आराम करनेपर कुछ समयके लिये शान्ति। भोजनमें नमकके स्थानपर सैंधानमकका उपयोग करें, वह भी कम मात्रामें। अति मिर्च, गरम-गरम भोजन और सूर्यके तापमें भ्रमण, ये हानिकर हैं। वीर्यका अधिक क्षय न होने देवें।

हृदयपौष्टिक शीतवीर्य औषधिका सेवन करें। संशमनीवटी, प्रवाल सुवर्ण वसंत मिश्रण, मुक्ता संगयशव, पन्ना, पुनर्नवामण्डूर ये सब हितावह हैं। अधिक कष्ट होनेपर जवाहरमोहरा, लक्ष्मीविलास (सुवर्णयुक्त) या वसंतकुसुमाकरका सेवन कराना चाहिये।

स्वेद अधिक बढ़े या मूत्रोत्पत्ति अधिक हो, तो शोथ कम होता है। काली अनन्तमूल (सारिवा) १।।-१।। माशेकी रोज़ सुबह चायमें लेवें (चाय बनानेके समय जलमें सारिवा मिलालेवें) यह पेशाब अधिक लाती है।

रक्तरचना विकृति प्रकरण

Diseases of the Blood

रुधिरकी व्याधियोंके सम्बन्धमें जाननेके पहिले रुधिरकी स्वभाविक अवस्था और अस्वाभाविक अवस्थामें परिवर्तनको जाननेकी आवश्यकता है। व्याधिग्रस्त अवस्थामें रक्तके स्वाभाविक परिमाणकी विलक्षणता, उपादानके ह्रास-वृद्धि, द्रवीभूत पदार्थोंके परिवर्त्तन और अस्वाभाविक पदार्थोंका अस्तित्व, ये सब लक्षित होते हैं।

स्वस्थावस्थामें बहुधा देहकी रचना करनेवाले संयोजक तन्तुओंके परिमाण और उपादान एक रूप होते हैं। फिर विविध संस्थानोंमें रही हुई स्वाभाविक जीवनीय शक्तिद्वारा प्रयोजनीय पदार्थोंका समीकरण, अप्रयोजनीय पदार्थोंका दूरीकरण तथा अप्रकृत पदार्थ रुधिरमें प्रविष्ट होनेपर उसे बाहर फेंक देना या नाश करना, ये सब कार्य नियमबद्ध होते रहते हैं।

रुधिरकी स्वाभाविक अवस्थाका संरक्षण करनेके लिये अनेक यन्त्रोंमें सावधानतापूर्वक अहोरात्र सतत क्रिया वर्त्तमान रहती है। फिर भी किसी सबल हेतुद्वारा व्याधिकी सम्प्राप्ति होनेपर रुधिरका स्वाभाविक सामञ्जस्य नष्ट हो जाता है, तथा इसकी भौतिक अवस्था और रासायनिक उपादानमें विलक्षणता आ जाती है।

प्राणिमात्रके जीवनका सच्चा आधार शोणित है। इसमें शुद्ध और अशुद्ध, दो प्रकार हैं। शुद्ध चिरमीके सदृश रक्त वर्णका और अशुद्ध बैंजनी है। इस शोणितकी उत्पत्ति रसमें रंजकपित्त मिलनेपर होती है। रसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि—

पाञ्चभौतिकस्य···आहारस्य सम्यक् परिणतस्य यस्तेजोभूतः सारः परमसूक्ष्मः स रस इत्युच्यते ॥ सूत्र० अ० १४।

पाँचभौतिक आहारका भलीभाँति पचन होकर जो तेज स्वरूप परम सूक्ष्म सार भाग बनता है, वह रस कहलाता है।

मनुष्य जो भोजन करते हैं, उसपर आमाशय और अन्त्रमें पचन क्रिया होती है। जिससे उसका रूपान्तर होकर पतला प्रवाही पदार्थ बन जाता है। फिर

इस प्रवाहीमेंसे शोषण करने योग्य अंश अन्नमार्गकी चारों ओर रही हुई सूक्ष्म नलिकाओं द्वारा शोषित होकर यकृत् और प्लीहाकी ओर जाता है; और शोषित न होने योग्य या अधिक होनेसे रहा हुआ भाग मलरूप बनकर बड़ी आंत, मूत्रपिण्ड और त्वचाद्वारा बाहर निकल जाता है। इनमें जो उपयोगी प्रवाही पदार्थ है, उसे रस द्रव्य (Watery essence of food) कहते हैं, (यहाँपर रसका अर्थ स्वाद Taste नहीं है) भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि—

स खल्वाप्यो रसो यकृत्प्लीहानौ प्राप्यरागमुपैति ॥
रंजितास्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनाम् ।
अव्यापन्नाः प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते ॥

आहारके साररूप यह रस यकृत् और प्लीहाको प्राप्त होकर राग (लाल रंग) को प्राप्त होता है। प्राणियोंकी देहमें अवस्थित परिवर्त्तन करानेवाले तेज (रंजक पित्त) से रंगा हुआ जो स्वच्छ रस है, वही रक्त कहलाता है।

रस प्रकार—सौम्य और आग्नेय रस। सौम्यरस (काइल Chyle)-दूध आदि सौम्य पदार्थोंमें से पचन होकर जो रस बनता है, वह सौम्य रस कहलाता है। यह रस आंतोंमेंसे सूक्ष्म-सूक्ष्म रसायनियोंद्वारा रसप्रपा (Cisterna Chyle), वाम रसकुल्या (Thoracic duct) गलमूलिका शिरा और उत्तरामहाशिरामें क्रमशः प्रवेशकर शैरिक रक्तमें मिल जाता है।

आग्नेयरस—मांस आदि आग्नेय पदार्थों (Nitrogenous and Carbohydrates) में से जो रस तैयार होता है, उसे आग्नेयरस कहते हैं। यह रस आमाशय और आंतोंकी चारों ओर अवस्थित सूक्ष्म शिराओंद्वारा शोषण हो, प्लीहा आदि अवयवोंमें से वापस लौट, रक्तके साथ मिलकर प्रतिहारिणी शिराद्वारा यकृतमें जाता है। वहाँपर उसमें रंजकपित्त मिल जाता है; और अनेक प्रकारके विष पृथक् हो जाते हैं। फिर याकृती शिराद्वारा यह रक्त अधरामहाशिरामें जाता है। वहाँ से हृदयमें प्रवेश करता है।

रक्त—डॉक्टरीमत अनुसार गर्भावस्थामें रक्तोत्पत्ति यकृत् और प्लीहामें होती है; किन्तु बड़ी आयुमें मज्जाके भीतर होती है। उस समय यकृत्की श्लैष्मिक-कलाका अन्तःस्राव तथा ग्रैवेयक ग्रन्थिका अन्तःस्राव दोनों सहायक होते हैं।

रुधिर कुछ चिकना, वज़नमें जलकी अपेक्षा कुछ भारी, आपेक्षिक गुरुत्व १०५५, स्वाद कुछ नमकीन-सा तथा विशिष्ट प्रकारकी गन्धयुक्त है। सामान्य रीतिसे उष्णता लगभग १००° अंश (Fahren heit) जितनी। रासायनिक गुण किञ्चित् अम्ल विरोधी। रक्तमें यदि अम्लता बढ़ जाय, तो वह रोग उत्पन्न होनेका चिह्न समझा जाता है।

देहमें रहे हुए रुधिरका परिमाण देहके वज़नसे लगभग १६ वाँ या २० वां भाग जितना है; अर्थात् १।। मन वज़नवाले मनुष्यके शरीरमें रक्त लगभग ३-३ ।सेर होता है ।

रुधिर-कार्य

१—कोषोंको पोषक पदार्थ और प्राणवायु (ऑक्सिजन Oxygen) देना और कोषसे मल आंगारिकवायु (Carbon dioxide gas) को बाहर निकालना ।

२—पृथक् पृथक् अन्तःस्रावों (Internal secretion) को रक्तमें मिलाकर अलग-अलग भागोंपर असर पहुँचाना । जैसे वृषणके अन्तःस्रावसे मूँछ और दाढ़ीके बालोंकी उत्पत्ति कराना ।

३—देहकी उष्णताको मर्यादामें रखना ।

४—देहके प्रवाही तत्त्वको सम परिमाणमें रखना ।

५—विजातीय द्रव्य अथवा बाहरके रोग, कीटाणु और विषके साथ युद्ध करके देह का संरक्षण करना ।

रक्त द्रव्य—रक्तमें द्रव और घन, ऐसे दो विभाग हैं । द्रव भागको रक्तजल (प्लाज़्मा-Plasma) कहते हैं । घन भागमें ३ प्रकारके पदार्थ हैं । रक्तकण, श्वेतकण और सूक्ष्म चक्रिकाएँ ।

रक्तकण—Red Cells or Red-blood Corpuscles-इन रक्तकणोंकी आकृति गोल और दोनों ओरसे कुछ पिचकी हुई होती है । १ क्यूबिक मिलीमीटर ($\frac{१}{१६३८०}$—घन इञ्च) में स्वस्थ पुरुषके भीतर ५० लक्ष और स्त्री शरीरमें ४५ लक्ष रक्तकण रहते हैं । रक्तकण पृथक्-पृथक् होनेपर पीलेसे और अनेक साथमें रहनेपर लाल प्रतीत होते हैं । रक्ताणुओंकी आयु सामान्यतः ३० दिन मानी है ।

इन रक्ताणुओंमें कितनेक नव्य अपक्व रक्ताणु (Alimentary Granulose) भी हैं । ये क्षुद्र, वर्णहीन और बहुधा कोणविशिष्ट होते हैं । इनके साथ जीवकेन्द्र और कुछ अंशमें चर्बी भी रहती है । जब ये पक्व होते हैं तब जीवकेन्द्र और चर्बी नष्ट हो जाते हैं ।

रक्तरंजक (Haemoglobin)—परिपक्व रक्ताणुओंके भीतर रक्तरंजक द्रव्य रहा है । यही द्रव्य इनके लोहित वर्णका कारण है । यदि इस रक्तरंजकको गरम किया जाय, तो उसमेंसे मुख्य रंजक द्रव्य (Hematin) और एल्ब्युमिन वियुक्त हो जाते हैं । यह रक्तरंजक फुफ्फुसोंमें प्राणवायुके साथ तत्काल मिश्रित हो जाता है; और फिर वापस कोषोंको दे दिया जाता है । इन दोनोंके संयोगसे रक्तका रंग लाल हो जाता है । फिर जब प्राणवायु दूषित हो जाती है, तब रक्तका रंग बैंजनी बन जाता है ।

रक्तरंजक भिन्न-भिन्न रोगोंमें न्यूनाधिक हो जाता है। किसी रोगमें रक्तरंजक रक्ताणुओंके भीतर अपेक्षाकृत बढ़ जाता है। एवं किसीमें न्यून और किसीमें अतिन्यून हो जाता है। स्वस्थावस्थामें रक्तरंजकका अनुपात १ प्रतिशत मान लिया है। यह स्त्रियोंके हलीमक-पाण्डुरोग (Chlorosis) में आधा प्रतिशत और इसके विरुद्ध मारक पाण्डु रोगमें १॥ प्रतिशत हो जाता है।

सर्प विष या इतर विषका रुधिरमें प्रवेश हो जानेपर रक्त कणोंका नाश होता है। तब रक्तरंजक उनसे पृथक् होकर रक्तवारिमें घुल जाता है। इसे रक्तकण विनाश (Haemolysis) कहते हैं। यदि एक जातिके प्राणिके रक्तके रक्तकणोंको दूसरी विरोधी जातिके प्राणिके रुधिरमें प्रवेश करा दिया जाय, तो रक्तकण स्वविरोधी पदार्थ-की उत्पत्ति कर देते हैं, जिससे अनेक रक्तकणोंका विनाश हो जाता है।

श्वेतकण—(White Cells or Colourless blood Corpuscles) वर्ण कुछ मैला, १, २ या ३ जीवकेन्द्र (Nuclei) सह।

श्वेताणु प्रकार—आकृति, जीवकेन्द्र और रंगप्रियता। (Staining Power) के भेदसे ६ प्रकारके होते हैं।

१. **क्षुद्रलसीकाणु** (Small Lymphocytes)–उत्पत्ति लसीका ग्रन्थियों से। क्षय सदृश चिरकारी रोगोंमें अति वृद्धि। आयु सामान्यतः १ दिनसे भी कम।

२. **एकजीवकेन्द्र युक्त बृहल्लसीकाणु** (Largemono-nuclear Leukocytes)–उत्पत्ति जालदार अन्तराकलाके कोषाणुओं (Reticulo-endothelial cells) से। विषमज्वरमें बहुत बढ़ जाता है।

३. **बहुजीवकेन्द्रयुक्त बृहच्छ्वेताणु** (Polymorphonuclear Leukocytes)–मज्जाके कोषाणुओंसे कीटाणु विषकी तीव्रता होनेपर उत्पन्न। आयु सामान्यतः ४ दिन।

४. **अम्लरंगसे रंगेच्छुश्वेताणु** (Eosinophil Leukocytes)–यह अम्लरंगसे रंजित होते हैं श्वास, उदरकृमि आदि रोगोंमें इनकी अतिवृद्धि होती है।

५. **क्षारीयरंगेच्छुश्वेताणु** (Basophil Leukocytes)–यह क्वचित् ही रक्तमें प्रतीत होते हैं।

६. **परिवर्तित श्वेताणु** (Transitional Leukocytes)–यह जाति एक जीवकेन्द्र और बहुजीवकेन्द्र युक्त बृहच्छ्वेताणुओंकी परिवर्तित अवस्थामें बनती है। यह श्वेताणु अम्ल और क्षारमय दोनों रंगोंसे रंजित होते हैं, इस हेतुसे इनको उदासीन श्वेताणु (Neutrophils) भी कहते हैं।

श्वेताणुकार्य—श्वेताणुओंके मुख्य ५ कार्य हैं।

१. बाहरसे प्रवेशकर देहको हानि पहुँचाने वाले विष या कीटाणुओंको खाजाना फगोसाइटस (Phagocytes) या कीटाणुनाशक प्रतिविषकी उत्पत्ति कराना।

२. देहके किसीभी भागमें चोट लगने, शोथ आने या विष स्पर्श होनेपर उस स्थानके संरक्षणार्थ और शत्रुओंको नष्ट करनेके लिए दौड़ जाना। फिर शत्रु ओंको नष्टकर हानि पहुँचे हुए अवयव या कोषसंघातोंको अपनी मूलस्थितिमें ला देना।

३. आंतोंमेंसे आहार रसके शोषणमें सहायता देना।

४. रक्तके जमजाने (Clotting) में सहायता देना।

५. रक्तमें रहे हुए प्रथिनोंकी रक्षा करना।

नीरोगावस्थामें इन श्वेताणुओंकी संख्या १ घन सहस्रांश मीटर (मिली मीटर) में ७००० से १०००० लगभग रहती है। बहुधा रक्तकणोंकी अपेक्षा ये ७०० वाँ हिस्सा जितने कम होते हैं। इस संख्यामें सामान्य न्यूनाधिकता, बिना रोग भी होती रहती है। यदि युवा मनुष्योंमें इन श्वेताणुओंकी संख्या दीर्घकाल तक एक घन मिलीमीटरमें दशसहस्रसे अधिक रहे, तो श्वेत, जीवाणु वृद्धि विकार (ल्युकोसाइटोसिस Leukocytosis) कहलाता है। नीरोगास्थामें भोजनके पश्चात् ३-४ घण्टेपर वृद्धि हो जाती है। एवं कितनीक औषधियोंसे भी ये बढ़ जाते हैं। इस तरह व्यायाम, सगर्भावस्था, बाल्यावस्था, शीतल जलसे स्नान और जठराग्नि विकार आदि कारणोंसे इनकी संख्यामें वृद्धि हो जाती है। यदि इन कारणोंके अतिरिक्त समयमें संख्यामें अधिकता प्रतीत हो, तो रक्तमें कीटाणुओंका संसर्ग हुआ है, ऐसा माना जाता है। २०,००० से अधिक संख्या हो, तो मानना चाहिये कि, कहीं पूयकी उत्पत्ति हो गई है। यदि यह संख्या बढ़ती ही जाती हो, तो पूय और कीटाणुओंकी वृद्धि हो रही है, अतः शस्त्र क्रिया विहित है, ऐसी सूचना मिलती है।

रक्तके रक्ताणु श्वेताणुओं के उत्पत्ति क्रम

अवस्था	संज्ञा	अंग्रेज़ी नाम	व्यास
१	दाने रहित जीवकेन्द्रमय बृहद्रक्ताणु	Megalobalst	११ म्यू.
२	जीवकेन्द्रमय मध्यम रक्ताणु	Erythroblast	१० म्यू.
३ अ.	अपक्व जीवकेन्द्रमय रक्ताणु	Normoblast	७ म्यू.
३ आ.	अस्वाभाविक जीवकेन्द्ररहित बृहद्रक्ताणु	Macrocyte	६ म्यू.
४	अपक्वरक्ताणुमेंसे जालदार रक्ताणु (रंगपरिवर्तनशील रक्ताणु)	Raticulocyte (Polichromasia)	७ म्यू.
५	पक्व रक्ताणु	Red cell	७·२

१ दाने रहित स्थूल मज्जाणु	Myeloblast	१४.५
२ दानेदार स्थूल मज्जाणु	Myelocyte	१७ म्यू.
(३ प्रकारके अपक्क श्वेताणु-उदासीन, अम्ल और क्षाररंगेच्छु)		
३ अ. उदासीन बहु जीवकेन्द्रमय श्वेताणु	Neutrophil (Polymorphonuclear)	१२म्यू.
३ आ. अम्लरंगेच्छु बहुजीव केन्द्रमय श्वेताणु	Eosinophil (Polymorphonuclear)	
३ इ. क्षाररंगेच्छु बहुजीवकेन्द्र मय श्वेताणु	Basophil (Polymorphonuclear)	
१ पारदर्शक अपक्क श्वेताणु	Monoblast	१५ म्यू.
२ पक्क परिवर्तनशील श्वेताणु (एक जीवकेन्द्रमय बृहच्छ्वेताणु)	Transitional (Large mononuclear)	१६म्यू.
१ दानेरहित बृहल्लसीकाणु	Lymphoblast	१७.५
२ अ. दानेदारबृहल्लसीकाणु	Large Lymphocyte	१३ म्यू
२ आ. लघु लसीकाणु	Small Lymphocyte	१०म्यू.

रक्तके भीतर मिलनेवाले जीवाणु—स्वस्थावस्थामें स्तनधारी जीवों (मनुष्य, गौ, भैंस, हाथी, घोड़ा, बकरी आदि) के रक्ताणुओंमें जीवकेन्द्र या मज्जाणु नहीं होते, किन्तु ये दोनों रोगावस्थामें उपस्थित होते हैं। इनके अनेक प्रकार मिलते हैं। अत्र स्वाभाविक और अस्वाभाविक अवस्थामें मिलनेवाले विविध रक्ताणु और श्वेताणुओंका चित्र देते हैं। जिसपरसे कुछ परिचय मिल सकेगा।
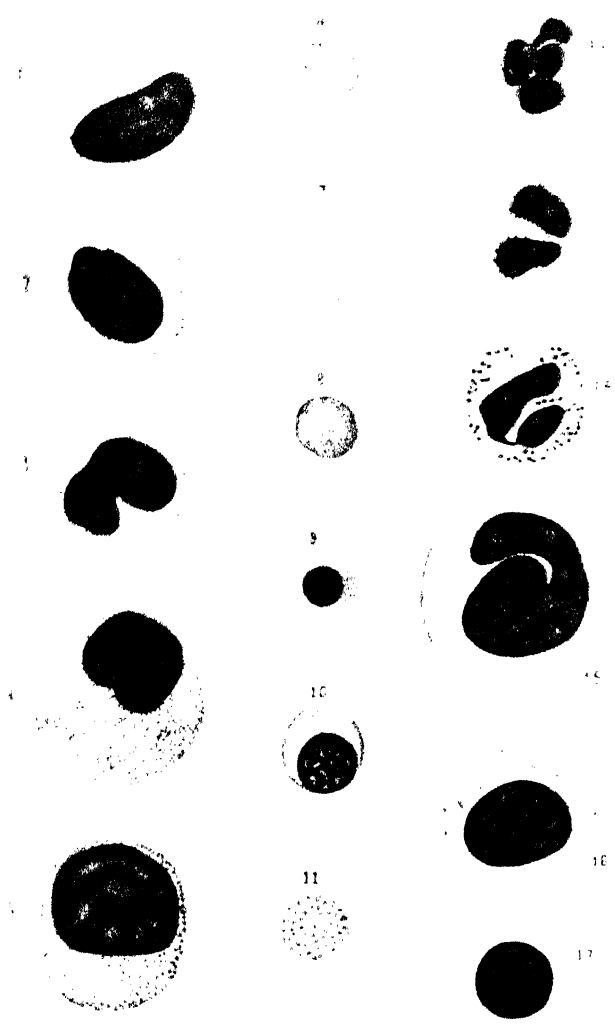
रक्तके भीतर मिलनेवाले जीवाणु

मज्जाणु

१ उदासीन बृहद् मज्जाणु Neutrophil myelocyte Large type.

२ उदासीन लघु मज्जाणु Neutrophil myelocyte Small type.

३ परिवर्त्तनशील उदासीन मज्जाणु Transitional neutrophil.

४ अम्लरंगेच्छु मज्जाणु Eosinophil myelocyte.

५ क्षार रंगेच्छु मज्जाणु Basophil myelocyte.

रक्ताणु

६ सामान्य रक्ताणु Normall red-cel

७ अपूर्ण आकृतिवाले जीवकेन्द्ररहित रक्ताणु Poikilocyte.

८ रंगपरिवर्त्तनशील रक्ताणु Polychromatophilia.

९ अपक्क दानेरहित जीवकेन्द्रसह रक्ताणु Normoblast.

१० स्थूल दानेरहित „ „ Megaloblast.

११ दानेदार अपक्रान्तियुक्त रक्ताणु Granular degenaration.

श्वेताणु

१२ अधिक जीवकेन्द्रयुक्त उदासीन श्वेताणु Polynuclear neutrophil Leukocyte.

१३ अम्लरंगेच्छु श्वेताणु Eosinophil Leukocyte.

१४ स्थूलाकृति श्वेताणु Mast cell (Basophil)

१५ बृहत् पारदर्शक जीवाणु Large Hyaline.

१६ बृहद् लसीकाणु Large Lymphocyte.

१७ क्षुद्र लसीकाणु Small Lymphocyte.

सूक्ष्म चक्रिकाएँ-(ब्लड प्लेटलेट्स Blood platelets)-ये अत्यन्त छोटी वर्णहीन चक्रिकाएँ हैं। ये सब जीवनरस (Protoplasma) में अनियमित आकारके बिन्दुओंके सदृश भासती हैं। रक्त जम जानेमें ये विशेष भाग लेती हैं, ऐसी मान्यता है। ये प्रति क्युबिक मिलीमीटर २ से ५ लक्ष होती हैं।

रक्तजल(ब्लड प्लाज़्मा Blood plasma)-रक्तमें हलके पीले रंगका जो द्रव पदार्थ है, उसे रक्तजल कहते हैं। इस रक्तजलमें रक्तजीवाणु, शरीरपोषक द्रव्य, कुछ निरुपयोगी मल (Waste products) और रोगविरोधी (Antibodies) द्रव्य आदि रहते हैं। यह रक्तजल केशवाहिनियोंके छिद्रोंमेंसे सर्वदा स्रवता रहता है, और धातुओंका पोषण करता रहता है।

जब रक्तस्राव हो जानेसे देहमें रक्त कम हो जाता है; तब प्रारम्भमें रक्तवारि

अपने न्यून अंशकी पूर्ति देहके इतर कोषोंमेंसे कर लेता है। देहसे बाहर निकाला हुआ रक्त जब कुछ काल तक पड़ा रहता है, तब उसमें द्रवभाग और घनभाग, ऐसे दो प्रकार बन जाते हैं। द्रवभाग है, वह रक्तजल है, परन्तु उसे रक्तरस और रक्तमस्तु (सीरम-Serum) संज्ञा दी है।

जब रक्तस्राव होजानेसे देहमें रक्त कम हो जाता है, तब प्रारम्भमें रक्तवारि अपने न्यून अंशकी पूर्ति देहके इतर कोषोंमेंसे जल आकर्षित करके कर लेता है। अधिक रक्त बह गया हो, तो २४ से ४८ घण्टेमें प्रवाही भाग पूर्वके समान हो जाता है। फिर रञ्जक द्रव्य, रक्तकण और श्वेतकण, ये सब अपनी न्यूनताको मिटानेके लिये प्रयत्न करते हैं।

जिनको अधिक रक्तस्राव होजाता है, उनके शरीरमें शिराद्वारा नमक मिश्रित जल प्रवेश करा रक्तके जल भागका परिमाण तुरन्त पूरा करा देते हैं। इसके अतिरिक्त अब दूसरे नीरोगी मनुष्यका रक्तभी शिराद्वारा रोगीकी देहमें प्रवेश करा दिया जाता है। इस सम्बन्धमें विशेष विचार रुग्ण परिचर्यामें किया है।

२६. पाण्डु रोग

एनिमिया Anaemia—

रोगपरिचय—रक्तमेंसे रक्तकणोंकी संख्यामें अति न्यूनता हो जाती है या रक्तमें रहे हुए रक्तरंजककी मात्रा कम हो जानेपर देहका वर्ण निस्तेज पीला-सा हो जाता है, तब पाण्डु रोग कहलाता है।

रोग व्युत्पत्ति—जब पित्त आदि प्रधान दोष प्रकुपित होकर रक्त आदि दूष्यों को दूषित करते हैं तब धातुओंमें शिथिलता और देहमें भारीपन आ जाता है। दोष और दूष्योंका क्षय होनेसे ओजके गुण, वर्ण, बल, स्नेह आदिका क्षय होता है। फिर मेदकी न्यूनता, धातुओंमें निःसारता, इन्द्रियोंमें शिथिलता, देहका रंग विवर्ण (मलिननिस्तेज) हो जाना इत्यादि परिणाम हो जाते हैं।

भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, ओजके शीतल और उष्ण २ प्रकार हैं। यही सब धातुओंका मूल है। यह हृदय (मस्तिष्क) में स्थित है। यही सारे शरीरको नियममें रखता है। इसके क्षयसे रक्तकी न्यूनता हो जाती है।

रोग प्रकार—इस पाण्डु रोगके वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और मृज्ज (मिट्टी खानेसे उत्पन्न) भेदसे ५ प्रकार हैं, यह चरकाचार्यका मत है। सुश्रुताचार्यने मृत्तिकाजन्य पाण्डुको अलग नहीं कहा।

पाण्डु रोगके विप्रकृष्ट—(दूर) निदान पूर्वक सम्प्राप्ति—भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, क्षार, खटाई, नमक, अति उष्ण, विरुद्ध भोजन, असात्म्य भोजन, सेम, उड़द, तिलकी खल, तिलका तैल, पित्तप्रकोप आदि कारणोंसे

अन्नका विपाक विदग्ध हो जाना, दिनमें शयन, अधिक व्यायाम, अधिक मैथुन, वमन-विरेचन आदि शुद्धि कर्ममें भूल, ऋतु परिवर्त्तन, मलमूत्र आदिके वेगोंका धारण, काम, चिन्ता, भय, क्रोध, शोक आदि वृत्तिसे चित्तका उपहत होना, अति शराब सेवन, मिट्टी खाना, इन कारणोंसे हृदयमें रहा हुआ पित्त दूषित होता है। फिर वायु द्वारा हृदयाश्रित दश धमनियोंमें फेंका जाता है। वहाँसे सारे शरीरमें व्याप्त हो जाता है। पश्चात् त्वचा, मांस आदिका आश्रय करके कफ, वात, रक्त, त्वचा और मांस आदि दूष्योंको दूषित कर देता है। जिससे त्वचा, हरी-पीली, हल्दी जैसी या अनेकविध वर्ण युक्त हो जाती है, उसे पाण्डु रोग कहते हैं।

भगवान् धन्वन्तरिजी संक्षेपमें कहते हैं कि, अति मैथुन, अति खट्टे या नमकीन पदार्थोंका अधिक सेवन, अधिक क्षार सेवन, अति मद्यपान, मिट्टी खाना, दिनमें सोना, राई आदि तीक्ष्ण पदार्थ या तीक्ष्ण औषधि आदिका सेवन करना, इन कारणोंसे पित्त आदि दोष प्रकुपित होकर रक्तको दूषित करते हैं; तथा त्वचामें पीलापन ला देते हैं। इनके अतिरिक्त अधिक रक्तस्राव, वृक्क स्थानकी विकृति; कृमिप्रकोप, शुक्रक्षय, शीत ज्वरमें प्लीहावृद्धि और प्रसूति रोग, इन कारणोंसे भी पाण्डु रोग होजाता है।

पूर्वरूप—भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, हृदयस्पंदन बढ़ जाना, त्वचा पीली (निस्तेज) और शुष्क हो जाना, पसीना रुक जाना, थकावट, भोजन नहीं पचना, अरुचि, बार-बार थूकना, मिट्टी खानेकी इच्छा, नेत्रपर सूजन, मल-मूत्रमें पीलापन और भोजन का विपाक न होना, ये सब चिह्न पाण्डुरोग होनेके पहले दृष्टिगोचर होते हैं।

सब प्रकारके पाण्डुके सामान्य लक्षण—कर्णनाद, क्षुधानाश, निर्बलता, हाथ-पैर टूटना, कम निद्रा, थकावट, भ्रम, गात्रशूल, ज्वर, श्वास, अंगका भारीपन, अरुचि, देहमें तोड़ने समान पीड़ा, नेत्रपर शोथ, देहका रंग हरा-सा हो जाना, बाल उड़ जाना, निस्तेजता, क्रोधी हो जाना, शीतल वायु और शीतल जल लगनेपर दुःख होना, (शिशिरद्वेषी), तन्द्रा रहना, पड़े रहनेकी इच्छा, बार-बार थूकना, थोड़ा बोलना, जंघाकी मांस पिण्डियोंमें तोड़ने समान पीड़ा, कटि, ऊरु और पैरोंमें पीड़ा और चढ़ने उतरनेमें अति परिश्रम होना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं।

वातज पाण्डु लक्षण—भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, हाथ-पैर टूटना, वेदना, तोड़ने समान पीड़ा, कम्प, पार्श्वशूल, शिरदर्द, मलावरोध, मुँहका स्वाद नष्ट हो जाना, शोथ और बलक्षय आदि लक्षण होते हैं।

श्रीमाधवाचार्य कहते हैं कि, त्वचा, नेत्र और मूत्र आदिमें रूक्षता और लाल-कालापन, अङ्ग टूटना, सुई चुभानेके सदृश पीड़ा, कम्प, अफारा, भ्रम (चक्कर), शिर-दर्द, शुष्क मल, मुँहमें विरसता, नेत्रमें नीली नसें दीखना, शोथ, कमज़ोरी और धड़कन आदि लक्षण होते हैं।

पित्तज पाण्डु लक्षण—भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, जब पित्तप्रधान आहार आदिका सेवन अत्यधिक होता है, तब पित्त धातु प्रकुपित होकर रक्त आदि दूष्योंको दूषित करके पाण्डुरोग की उत्पत्ति करा देते हैं, फिर शरीर पीला-हरा-सा हो जाना, ज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, मल-मूत्र पीले हो जाना, स्वेद अधिक आना, शीतल पान आदिकी इच्छा, अरुचि, मुँहमें कड़वापन, उष्णता और खटाई सहन न होना, अन्नपाक विदग्ध हो जानेसे खट्टी डकारें आना, दुर्गन्धयुक्त टूटा-सा मल, दुर्बलता और चक्कर आना इत्यादि लक्षण होते हैं।

श्रीमाधवाचार्य कहते हैं कि, मूत्र, मल और नेत्र आदिमें अति पीलापन, मल टूटा हुआ होना, देह अति पीली हो जाना, दाह, तृषा, ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

कफज पाण्डुके लक्षण—भगवान् आत्रेयने कहा है कि, कफवर्धक आहार आदिके अति सेवनसे कफकी अति वृद्धि होनेपर वह पाण्डु रोगकी सम्प्राप्ति कराता है। फिर भारीपन, तन्द्रा, वमन, शरीर निस्तेज, सफेद-सा दीखना, मुँहसे लार गिरना, रोमांच खड़े होना, बेचैनी, मूर्च्छा, चक्कर, थकान, श्वास, कास, आलस्य, अरुचि, आवाज़ रुकना, मल-मूत्र सफेद हो जाना, चरपरे, रूक्ष और उष्ण पदार्थकी इच्छा, शोथ, मुँहमें मीठा स्वाद हो जाना आदि लक्षण कफज पाण्डु होनेपर प्रतीत होते हैं।

श्रीमाधवाचार्य लिखते हैं कि, मुँहमें चिपचिपा थूक आते रहना, शोथ, तन्द्रा, आलस्य, देहमें अति भारीपन, त्वचा, मूत्र, नेत्र और मुख सफेद हो जाना इत्यादि लक्षण होते हैं।

त्रिदोषज पाण्डु लक्षण—भगवान् आत्रेयने कहा है कि, तीनों दोषोंको बढ़ाने वाले आहार आदिके सेवनसे जब वात आदि तीनों दोष प्रकुपित होते हैं, तब अति दुःखदाई पाण्डुरोगकी उत्पत्ति होती है। इसमें तीनों दोषोंके मिश्रित लक्षण देखनेमें आते हैं।

माधवनिदानकारने ज्वर, अरुचि, उबाक, वमन, तृषा, ग्लानि, क्षीणता और इन्द्रियें नष्ट हो जाना अर्थात् नेत्र आदि इन्द्रियोंका अपने विषयको ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाना इत्यादि तीनों दोषोंके मिश्रित लक्षण कहे हैं।

मृज्ज पाण्डुकी सम्प्राप्ति—मिट्टी खानेका स्वभाव होजानेसे वात, पित्त या कफ प्रकुपित होकर वे पाण्डुकी उत्पत्ति कराते हैं। कसैली मिट्टीसे वात, क्षार प्रधान मिट्टीसे पित्त और मधुर रस वाली मिट्टीसे कफप्रकोप होकर पाण्डु रोग उत्पन्न होते हैं। जो मिट्टी उदरमें जाती है, वह रस आदि धातुओंको शुष्क बना देती है। अविपक्व कच्चे रूपमें ही रसवहा स्रोतोंमें प्रविष्ट होकर मार्ग निरुद्ध करदेती है; तथा इन्द्रियों के बल, तेज (दीप्ति), ओज और वीर्यको नष्ट करके पाण्डु रोगकी उत्पत्ति कराती है। जिससे शरीरके बल, वर्ण और जठराग्निका नाश होता है।

मृज पाण्डु लक्षण—नेत्रगोलक, गाल, भ्रू, पैर, नाभि, मूत्रेन्द्रिय आदि भागों पर शोथ, उदरमें कृमिकी उत्पत्ति, रक्त और कफ मिले पतले दस्त, तन्द्रा, आलस्य, श्वास, कास, शूल और अरुचि आदि लक्षण होते हैं।

हलीमक लक्षण—पाण्डुरोग जीर्ण होनेपर वातपित्तप्रकोप होकर जब मन्द-मन्द ताप, रक्तमें रक्तकण कम होना, नेत्र, जिह्वा, मुँह, नाक और गालपर किञ्चित् शोथ, श्वास, मूर्च्छा, क्रोध, उदासीनता, तन्द्रा, हाथ-पैर टूटना, भयंकर निर्बलता, बल और उत्साह का क्षय, चक्कर आना और स्त्री सेवनमें अप्रीति आदि लक्षण होते हैं, तब हलीमक रोग कहलाता है। इस हलीमकको (ज्वरादिसह कुम्भकामलाको) 'लाघरक' 'लोढर', और 'अलस' संज्ञाएँ भी दी हैं। इस रोगमें वात और पित्तदोष अधिक कुपित होते हैं। इस रोगका एक उप-प्रकार तरुण स्त्रियोंको होता है। इस हेतुसे वर्त्तमानमें कितनेक विद्वान् इसे युवती पाण्डु कहते हैं।

पानकी—पाण्डु रोग जीर्ण होनेपर यदि सन्ताप, मल फट जाना, अत्यन्त कृशता, पीला शरीर, अति पीड़ा और नेत्रोंमें पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत हों, तब वह पानकी (अपानकी), पालकी और पल्लकी कहलाता है। इस पानकी रोगको हलीमकके अन्तर्गत ही माना है।

पाण्डु रोगके उपद्रव—भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि, पाण्डुरोगमें अरुचि, प्यास, वमन, ज्वर, शिरदर्द, अग्निमान्द्य, कण्ठमें शोथ हो जाना, निर्बलता, मूर्च्छा, ग्लानि और हृदयमें पीड़ा आदि उपद्रव होते हैं।

९ प्रकारके असाध्य पाण्डुके लक्षण—

१. पाण्डुरोग जीर्ण होनेपर शरीर अति शुष्क हो जाना।
२. सारे शरीरपर शोथ, सब पदार्थ पीले भासना।
३. मल थोड़े अंशमें बँधा, अधिकांशमें पतला, हरा, कफयुक्त।
४. उदास, निस्तेजमुँह, त्वचा सफेद वर्ण लगी-सी। वमन, मूर्च्छा, तृषासे अति पीड़ा।
५. रुधिरका क्षय होकर पाण्डु होना, देह सफेद-पीली हो जाना।
६. दांत, नाखून और नेत्र पाण्डुवर्णके हो जाना तथा सब वस्तुएँ सफेद रंगसे रंगी हुई प्रतीत होना (धन्वन्तरि)।
७. बाहु, जङ्घा और शिरपर शोथ मध्यभाग (धड़) दुर्बल।
८. मध्यभाग पर शोथ। बाहु, जङ्घा और शिर स्थान दुर्बल।
९. गुदा, लिङ्ग और अण्डकोषपर शोथ, ज्वर और अतिसारसे पीड़ित होना तथा मृतप्रायः हो जाना।

इन ९ प्रकारके उपद्रवयुक्त रोगको असाध्य माना है। अतः यशोभिलाषी वैद्यको चाहिए कि, ऐसे रोगियोंका त्याग करें या असाध्य कहकर चिकित्सा करें।

डॉक्टरी मतानुसार पाण्डुरोगका वर्णन

कारण—रक्तरचनामें अव्यवस्थाका सर्व सामान्य कारण—

१. रक्ताणुओं या रक्तरंजककी रचनामें न्यूनता ।

२. रक्ताणुओंका नाश (देहके भीतर) ।

३. रक्तस्राव ।

इनमें से प्रथम कारणको ही यहाँ प्रधानता दी गई है ।

रक्ताणुओंकी रचनामें न्यूनता—इसके लिये स्थूल सूक्ष्म रक्ताणुओंकी रचना और उनके सम्बन्धको जानना चाहिये ।

रक्ताणुओंकी सामान्य उन्नति—रक्ताणुओंकी उन्नति मज्जाके भीतर कैशिकाओंमें होती है । प्रारम्भ दीवारोंके घटकोंमेंसे होता है, संभवतः अन्तःकलाके जालदार घटकरूपसे । फिर विवध अवस्थाओंकी प्राप्ति होती है ।

रक्ताणुओंकी ३ अवस्था—

१. **जालदार अन्तःकला**—(Reticulo Endothelial Stage) यह जीवकेन्द्रमय दानेरहित रक्ताणुओंमें परिवर्तित होता है । प्रतिबन्ध होनेपर मज्जाविकृतिमय (Aplastic) पाण्डु या रक्ताणुह्रासमय (Normocytic) पाण्डुकी सम्प्राप्ति होती है ।

२. **जीवकेन्द्रमय दानेरहित स्थूलावस्था**—(Megaloblastic stage) इनमेंसे जीवकेन्द्रमय सामान्य कदके रक्ताणु बनते हैं । प्रतिबन्ध होनेपर दानेदार स्थूल रक्ताणुमय (Megalocytic) पाण्डुकी प्राप्ति होती है ।

३. **जीवकेन्द्रमय दानेरहित रक्ताणुओंकी सामान्यावस्था**—(Normoblastic stage) इस अवस्थाकी प्रगति होनेपर जीवकेन्द्ररहित दानेदार सामान्य कदके रक्ताणु बनते हैं । व्याघात होनेपर सूक्ष्म रक्ताणुमय (Microcytic) पाण्डुकी उत्पत्ति होती है ।

जालदार आच्छादक त्वचाका घटकावस्थामें प्रतिबन्ध—(मज्जाविकृतिजन्य या सामान्य रक्ताणुमय पाण्डु),–इस अवस्थामें जीवकेन्द्रमय स्थूल रक्ताणुओंकी उत्पत्तिमें क्या अन्तराय आया ? या स्थूल रक्ताणुओंकी उन्नतिका वाहक कौन है ? इसका परिचय अभीतक नहीं मिला । व्याघातका समुदय परिणाम—(१) रक्ताणुओंका ह्रास; (२)रक्तरंजककी मात्राकी न्यूनता, वर्णसूचीमें विविधता ।

वक्तव्य—१. अनेक जीवकेन्द्रमय, दानेरहित, स्थूल रक्ताणुकी उन्नति विशेषतः मूल एक घटकसे तथा अनेक जीवकेन्द्रमय दानेरहित, सामान्य रुधिराणुओंकी उन्नति एक जीवकेन्द्रमय दानेरहित स्थूल रुधिराणुसे होती है ।

२. जीवकेन्द्रमय दानेरहित सामान्य रक्ताणु, यह दानेरहित जीवकेन्द्रमय स्थूल रक्ताणु और पूर्ण परिपक्व, दानेदार, सामान्य कदके रक्ताणुकी अपेक्षा छोटा है ।

३. जीवकेन्द्रमय दानेरहित स्थूल रक्ताणुओंमेंसे जीवकेन्द्रमय दानेदार स्थूल रक्ताणु बन जाते हैं, यदि दानेरहित जीवकेन्द्रमय सामान्य रक्ताणुकी सामान्य उन्नतिमें प्रतिबन्ध हो।

४. जीवकेन्द्रमय दानेरहित सामान्य रक्ताणुओंमेंसे जीवकेन्द्रसह दानेदार सूक्ष्म रक्ताणु बनता है, यदि जीवकेन्द्रमय सामान्य रक्ताणुओंकी साधारण उन्नतिमें व्याघात हो।

५. कितनीक संलग्नशील अवस्था सामान्यतः दानेरहित जीवकेन्द्रमय स्थूल रक्ताणुओं तथा दानेरहित जीवकेन्द्रमय सामान्य रक्ताणुओंकी परिधि भागके रक्ताभिसरणमें प्रवेश करनेसे रोकती है।

दानेरहितजीवकेन्द्रमय स्थूल रक्ताणु अवस्थामें प्रतिबन्ध—जीवकेन्द्रमय स्थूल रक्ताणुओंमेंसे जीवकेन्द्रमय सामान्य रक्ताणु बननेमें मज्जाके भीतर सामान्य उन्नति होती है, इसके लिये यकृत्‌में विशेष द्रव्यके व्यापारकी आवश्यकता है। उस द्रव्य को सान्निपातिक पाण्डुवाहक अथवा पाण्डुविरोधी वाहक कहते हैं। इस द्रव्यके अभावमें स्थूल रक्ताणुओंकी वृद्धि होती है।

दानेदार स्थूल रक्ताणुवृद्धिका स्वभाव—

१. दानेरहित जीवकेन्द्रमय स्थूल रक्ताणुकी स्वाभाविक उन्नतिमें प्रतिबन्ध होता है। तब दानेदार जीवकेन्द्रसहित स्थूल रक्ताणुओंकी बड़ी संख्यामें उत्पत्ति होती है। जो रुधिराभिसरणमें प्रवेश करते हैं। इस हेतुसे रुधिरमें अस्वाभाविक स्थूल रक्ताणुओंकी वृद्धि (Megalocytosis) और जीवकेन्द्रमय दानेरहित सामान्य रक्ताणुओंकी संख्या कम हो जाती है।

२. रक्तरंजककी मात्राका ह्रास।

३. वर्ण सूचीमें वृद्धि। कारण-दानेदार स्थूल रक्ताणु परिपूर्ण रक्तरंजकमय होते हैं। उक्त प्रकारके रक्तमें जीवकेन्द्रमय दानेरहित स्थूलरक्ताणु प्रायः विविध प्रकारके उत्पन्न होते हैं; तथा जीवकेन्द्रमय दानेरहित सामान्य रक्ताणुओंका विशुद्ध आकारमें अभाव होता है। घातक पाण्डुका अस्तित्व दानेरहित सामान्य रुधिराणुओंकी अस्वाभाविकता बिना, स्पष्ट अस्वाभाविक स्थूल रक्ताणुओंकी वृद्धि होनेका प्रदर्शन करता है।

रक्तरचनाकर द्रव्योंकी उत्पत्ति—निम्न प्रतिनिधियोंकी अन्तरक्रिया द्वारा होती है।

१. आभ्यन्तरिक प्रतिनिधि—आमाशयमें रही हुई ग्रन्थियाँ (और संभवतः ग्रहणीमें रही हुई ब्रुन्नर (Brunner) की ग्रन्थियों, द्वारा) जो रसस्राव होता है, जो संभवतः रेनीन फेनीभवन है (रेनीन या पेप्सीन नहीं), वह आभ्यन्तरिक प्रतिनिधि है। जब किसी विकृतिद्वारा रसस्रावका रोध होता है, जिसका कारण लवणाम्लका अभावभी होता है; वह अन्तःक्षेपण करनेपर निष्क्रिय ही रहता है।

२. बाह्यप्रतिनिधि—स्वभाव अविदित। विटामिन B नहीं है, किन्तु उसके

साथ गुप्त रूपसे मिश्रित है। जो मिश्रित भोजनमें अत्यधिक परिमाणमें उपस्थित है।

रक्तरचनाकर द्रव्यका शोषण और संग्रह—यह सामान्यतः लघु अन्त्रमें शोषित होता है। मुँहसे ग्रहणकी हुई वस्तुकी अपेक्षा अन्तःक्षेपित द्रव्योंमेंसे ५० गुना अधिक शोषण होता है। इसका संग्रह यकृत्में होता है एवं कुछ अंशमें वृक्क और अन्य प्लीहादि घन अवयवोंमें भी। इस संग्रहका अवरोध यकृद्दाली आदि यकृत्के रोग तथा अन्य कितनेक बीमारीवाली अवस्थामें होता है।

स्थूल रक्ताणुमय पाण्डु—इसकी उत्पत्तिमें—(१) आभ्यन्तरिक प्रतिनिधि; (२) बाह्यप्रतिनिधि; (३) अन्त्रमें शोषण; (४) यकृत्के संग्रहमें अपूर्णता, इनमेंसे एककी अधिक उपस्थिति समकालमें होनी चाहिये। कभी समकालीन सूक्ष्म रक्ताणुमय पाण्डु की उपस्थिति भी साथमें होनेपर मिश्रित होजाते हैं। एवं कभी कुछ अंशमें मज्जा-विकृतिमय पाण्डुमें भी।

दानेरहित जीवकेन्द्रमय सामान्य परिमाणावस्थामें प्रतिबन्ध—(सूक्ष्म रुधिराणुमय पाण्डु) दानेरहित जीवकेन्द्रमय सामान्य रक्ताणुओंमेंसे सामान्य उन्नति होकर जीवकेन्द्र रहित सामान्य रक्ताणु बनते हैं। इस क्रियामें लोहेके प्रदान और शोषणकी आवश्यकता है (साथमें ताम्र, अन्य खनिज और विटामिन C की भी चाहिये)। इसमें अपूर्णता या प्रतिबन्ध होनेपर—

१. रक्तरंजक का ह्रास।

२. सूक्ष्म रक्ताणुओंकी वृद्धि। उदा० हलीमकमें संख्या लगभग सामान्य रक्ताणुओंके लगभग, अन्य प्रकारमें संख्याकी कमी।

३. वर्णसूचीका ह्रास। परिणाममें सूक्ष्म रुधिराणुओंकी वृद्धि।

सूक्ष्मरक्ताणुमय पाण्डु—यदि आवश्यकताकी अपेक्षा लोहेकी न्यूनता हो, तो इस पाण्डुकी उन्नति होती है। इस न्यूनताकी प्राप्ति—(१) अत्यधिक आवश्यकता, उदा० रक्तस्राव; (२) सदोष आहार तथा (३) अयोग्य शोषण। लोहेका शोषण विशेषतः मुद्रिकाद्वारसे अन्त्रमें प्राथमिक १५ इंचोंके भीतर होता है। एवं अम्लमें क्षार प्रतिक्रियाकी अपेक्षा अच्छा होता है। इसमें प्रतिबन्धक—(१) लवणाम्ल अभाव, तथा संभवतः; (२) अधिक लवणाम्ल स्राव, और (३) अन्त्रके शोषणमें अन्तराय, ये ३ हैं।

सब अवस्थाओंमें प्रतिबन्ध—सब अवस्थाओंमें रक्तरचनाके लिये वाहक और कितनेक द्रव्योंकी आवश्यकता है। इस बातका परिचय बहुत कम मिला है, किन्तु चूना (कैल्शियम) का चयापचय (सामान्य अस्थिरंगके लिये आवश्यक) तथा संभवतः विटामिन C का उसमें अन्तर्भाव होता है। ग्रैवेयक ग्रन्थिके सत्वकी आवश्यकता सिद्ध नहीं है, अत्यधिक दृढ मांग या अन्यरोगके सेन्द्रिय विष प्रभावसे मज्जा थक जाती है। एवं अर्बुद आदि द्वारा यांत्रिक विकृति होनेसे मज्जाका ह्रास होजाता है।

जालदार रक्ताणुओंकी वृद्धि—जालदार रक्ताणु,ये किञ्चित् अपक्व रक्ताणु हैं,

जो रक्ताभिसरणमें पक होते हैं। ये सामान्य रक्तमें विद्यमान् होते हैं (सब रक्ताणुओंके १ प्रतिशत)।

मज्जामेंसे रक्ताणुओंका प्रसव बढ़ता है और रक्ताभिसरणमें प्रवेश करता है। यह परिवर्त्तन या सुधारकालमें किसीभी प्रकारके पाण्डुमें सामयिक होता है, मज्जामेंसे रक्तरचनाकी कमी होती है। ऐसे अपूर्ण पाण्डुमें जालदार रक्ताणुओंकी उत्पत्ति अधिक होती है और उनका आकस्मिक उपशम उपस्थित होता है। रचनाकी सामान्य प्रगतिमें प्रतिबन्ध हुए बिना जब रक्ताणुओंकी मांग बढ़ती ही जाती है, तब उसके अनुरूप प्रबल यत्न करना पड़ता है। उदा० रक्ताणुविनाशक कामला।

जालदार रक्ताणुमयरोग—

१. रक्तस्राव, यदि आशुकारी और महत्त्वका हो।

२. चिरकारी सूक्ष्म रक्ताणुमय पाण्डु (Chronic microcytic anaemia)।

लोहद्वारा सुधार कालमें रक्ताणुओंकी अपूर्णतापर उन्नति या आधार है, रक्तरंजककी अपूर्णतापर नहीं। यदि रक्ताणु ३० लाखसे कम हो और लोहेकी अपूर्णता हो, तो जालदार रक्ताणुओंका आकस्मिक उपशम होता है।

३. स्थूलरक्ताणुमय पाण्डु (Megalocytic anaemia) सान्निपातिक पाण्डुकी चिकित्सा प्रारम्भ करनेपर प्रकृतिनिर्देशक रूपसे प्रतीत होता है। विशेष वर्णन सान्निपातिक पाण्डुमें दिया है।

४. रक्ताणुविनाशक पाण्डु (Haemolycit anaemia)-उदा० पेशाबमें पित्तरहित कामलामें। कभी चिकित्सा करनेके पश्चात् अधिक।

वक्तव्य—जालदार रक्ताणुओंकी उत्पत्ति होती है, इस स्थितिको चिकित्साद्वारा दूर करनेकी आवश्यकता नहीं है। गौण और लवणात्मक पाण्डुके अनेक प्रकारोंमें जालदार रक्ताणु कम हो जाते हैं। (रक्ताणुओंकी रचनाका विनाश होता है), यह स्थिति सामान्यतः मज्जाविकृतिमय पाण्डुमें उपस्थित होती है (५ प्रतिशत)।

आमाशय-ग्रहणीस्रावका अभाव—आमाशय रसकी क्षति, जो लवणाम्लका अभाव उत्पन्न कराती है, वह तथा सूक्ष्म रक्ताणुमय पाण्डु आभ्यन्तरिक प्रतिनिधिको नष्ट नहीं करते (वह ग्रहणीमेंभी उत्पन्न होता है) आमाशयपर शस्त्रक्रिया, आमाशयपर अर्बुद और शोषमय आमाशयप्रदाह द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है; किन्तु अज्ञात क्षति, जो आभ्यन्तरिक प्रतिनिधि को नष्ट करती है, सर्वदा (पहलेसे या समसमयमें) लवणाम्लके अभावकी उत्पत्ति कराती है।

अस्वाभाविक स्थूल और सूक्ष्मरक्ताणु मिश्रित पाण्डु—रुधिर रचनाकर द्रव्य और लोह, दोनोंके प्रतिनिधि—(१) प्रत्येक प्रतिनिधि अपूर्ण या पृथक्, दोमेंसे एक, पूर्णांशमें या कुछ अंशमें; (२) दोनों प्रतिनिधियोंका अभाव या एकसाथ अपूर्णता होने

पर समय-समयमें दोनों प्रकारोंकी उत्पत्ति; (३) दोनों प्रतिनिधि एक साथ रहनेमें असफल या एक दूसरेका अनुयायी होनेमें असफल, एक कार्यपरायण हो दूसरा पूर्णांशमें या कुछ अंशमें पतित हो। विशेषतः भोजन और शोषणकी अपूर्णताके हेतुसे इसके विविध मिश्रण बनते हैं। फक्करोग, यह विविध पाण्डुरोगका मिश्रण प्रकाशित करता है। दोनों प्रकारोंका मिश्रण होनेपर योग्य पृथक्, चिकित्साकी आवश्यकता है। पहले स्थूल रक्ताणुओंकी कारणानुरूप स्थिति (फक्क रोग आदि) में पृथक् चिकित्सा। पहले रक्तका अन्तःसेचन भी।

जब दाने रहित जीवकेन्द्रमय स्थूल रक्ताणुओंके आभ्यन्तरिक प्रतिनिधिका अभाव हो, तब स्थूल रक्ताणुमय पाण्डु उपस्थित होता है। लोहेकी कम मात्रा प्रयोजित होती है, तो वह भी रक्तरंजकके लिये पूर्ण है। तन्तुओंमें कुछ मुक्त लोह संगृहीत हो जाता है। सान्निपातिक पाण्डुके पूर्ण स्वास्थ्यके लिये केवल यकृत् मुक्त लोहपर उपयोगमें आता है, पूर्वकालमें व्यवहारके लिये अयोग्य सान्निपातिक पाण्डुके कितनेक रोगियोंमें तथा सामान्यतः अन्य स्थूल रक्ताणुमय पाण्डुमें चिकित्साकालमें सूक्ष्म रक्ताणुमय पाण्डुकी उन्नति होती है; अर्थात् यह अधिक लोहकी आवश्यकता दर्शाती है।

पाण्डुका सर्वसामान्य रोगविनिर्णय—सर्वदा रक्तपरीक्षाद्वारा निर्णय करना चाहिये।

१. दर्शन—गालोंका रङ्ग मार्ग दर्शक नहीं है। ज्वर, उत्तेजना, सूर्यके तापसे जलना, स्वाभाविक देखाव, चिन्ता आदि पाण्डुको ढक देते हैं। श्लैष्मिक-कला अच्छी मार्ग दर्शक है; किन्तु प्रायः भ्रम हो जाता है। मलावरोध, आशुकारी, मदात्यय आदि अथवा स्वाभाविक देखाव आदिमें उत्पन्न हुपत पाण्डुता (केवल श्लैष्मिक-कलाकी) बढ़े हुए पाण्डुका अनुकरण करती है।

२. रक्तपरीक्षा—४० लक्षसे कम रक्ताणु तथा रक्तरंजक ६० प्रतिशतसे कम होनेपर पाण्डु माना जाता है।

३. प्लीहावृद्धि—किसीभी प्रकारके जीर्ण पाण्डुमें प्लीहा कुछ अंशमें बढ़जाती है।

पाण्डु प्रकार

(रक्ताणुओंके भेदसे)

१. रक्तस्रावज पाण्डु—Anaemia due to Haemorrhage आशुकारी और चिरकारी।

२. सेन्द्रिय विषज पाण्डु—Anaemia due to toxic and toxaemic Causes.

३. लवणाम्ल स्रावरहित सामान्य पाण्डु—Simple Achlorhydric Anaemia.

४. सान्निपातिक पाण्डु—Pernicious Anaemia.
५. अप्रतिरोधी स्थूलमज्जाणुमय पाण्डु—Achrestic Anaemia.
६. आशुकारी रक्तविनाशज ज्वरसह पाण्डु—Acute Haemolytic Anaemia of Lederer.
७. अर्धचन्द्राकार रक्ताणुमय पाण्डु—Sickle-cell Anaemia.
८. मज्जा विकृतिमय पाण्डु—Aplastic Anaemia.
९. सगर्भाके पाण्डु—Anaemias of Pregnancy.
१०. हलीमक—Chlorosis.
११. कृमिज हलीमक—Ankylostomiasis.

(श्वेताणुवृद्धिमय विवेचित विकार)

१२. श्वेताणुवृद्धिमय श्लैष्मिक पाण्डु—Acute Leukaemia.
१३. आशुकारी दानेरहित मज्जाणुसह श्वेताणुवृद्धि—Myeloblastic Leukaemia.
१४. आशुकारी दानेदार लसीकाणुवृद्धिसह श्वेताणुविकृति—Acute Lymphoid Leukaemia.
१५. एक जीवकेन्द्रमय बृहच्छ्वेताणुवृद्धिसह श्लैष्मिक पाण्डु—Monocytic Leukaemia.
१६. चिरकारी मज्जातन्तुविकृतिसह श्वेताणुवृद्धिमय पाण्डु—Chronic Myeloid Leukaemia.
१७. चिरकारी लसीकाणुवृद्धिमय श्लैष्मिक पाण्डु—Chronic Lymphoid Leukaemia.
१८. श्वेताणुवृद्धिमय पाण्डुके अनादर्श प्रकार—Various a typical Forms and Conditions resembling Leukaemia.
१९. हरिताभ श्वेताणुमय श्लैष्मिक पाण्डु—Chloroma.
२०. दानेदार श्वेताणुओंका अभाव—A granulocytosis.
२१. श्वेताणु और दानेरहित रक्ताणुवृद्धिमय पाण्डु—Leuco-Erythroblastosis.
२२. लसीकाग्रन्थि वृद्धिसह सान्निपातिक पाण्डु—Hodgkin's disease.

चिकित्सोपयोगी पाण्डुप्रकार

(१) रक्तस्रावजनित—आशुकारी और चिरकारी।
(२) गौण और लक्षणात्मक पाण्डु—

अ. रक्तस्रावज—बड़ी रक्तवाहिनी टूटने या थोड़ा रक्तस्राव हो जानेपर अभिघात,

आमाशय या ग्रहणीसे मोतीझरामें या क्षतमेंसे रक्तस्राव, रक्तार्श, आमाशय या अन्त्रका अर्बुद; अत्यार्त्तव गर्भाशयका सौत्रिक तन्तुमय अर्बुद, प्रसवके पहले या पश्चात् रक्तस्राव; बीजवाहिनीमें गर्भधारण, धमन्यर्बुद, वंशागत रक्तस्राव रोधक शक्तिकी न्यूनताजन्यरोग (Haemophilia) रक्तपित्त आदिके हेतुसे श्लैष्मिक-कला आदिसे रक्तस्राव होनेकी आदत, उदरकृमि (Hook worm) आदि।

आ. आहारके ग्रहण, शोषण और उपयोगमें प्रतिबन्ध—उपवास, अपूर्णपाण्डु अर्बुद, चिरकारीवृक्कप्रदाह, चिरकारी गलन क्रिया।

इ. रक्तरंजककी पृथक्ता—(१) कतिपय रक्तविकार, उदा० मूत्रमें पित्ताभावयुक्त कामला। (२) प्राणिज कीटाणुओं का संक्रमण—मलेरिया आदि। (३) उद्भिद् कीटाणुओंका संक्रमण। उदा० दूधका प्रबल फेनीभवन करनेवाले वेलसके कीटाणु (Bacilli welchii), रक्तरंजक भेदक स्ट्रेप्टोकोकाई। (४) सेन्द्रियविष--सर्पविष, विविध औषधजन्य।

ई. कतिपय संक्रमण—अत्यन्तविशेष ज्वरोंके भीतर कुछ परिमाणमें।

उ. रक्तविकार— प्लीहोदरसह पाण्डु, श्वेताणु वृद्धिमय पाण्डु आदि।

ऊ. निरिन्द्रिय विषप्रकोप औषधियाँ—अनेक निरिन्द्रिय और सेन्द्रिय विष द्रव्य—सीसा, पारद, सोमल और इतरधातु। 'क्ष' किरण तथा रेडियोके द्रव्यका प्रयोग।

ए. अर्बुद आदि—इनका सम्बन्ध मज्जासे होनेपर अपक्व दानेरहित रक्ताणु-मय पाण्डु (Leuco-Erythroblastic anaemia.)

३. रक्तरचनाके अभावसे पाण्डु (रक्तरचनामें विरोध)— इसका ज्ञान अभी अपूर्ण है, अतः संतोषप्रद वर्गीकरण नहीं हो सकेगा। निम्न सामयिक व्यवस्था हो सकती है।

अ. सामान्य रक्ताणुमय या रक्तरचनामें अपूर्णतासह पाण्डु—मज्जासे होनेवाले रक्ताणुओंमें अपूर्णता।

१. प्राथमिक—कारण अज्ञात।

२. मज्जाका प्रतिरोधक विनाश (जालदार अन्तराकलाके कोषाणुओंपर प्रत्यक्ष प्रभाव) यह 'क्ष' किरण या रेडियोके प्रयोग, सल्फोनेमाइड आदि औषधियोंके उपयोग-आदि कारणों से।

आ. स्थूलरक्ताणुमय पाण्डु—मज्जामें दानेरहित जीवकेन्द्रमय मज्जाणु उपस्थित।

१. आभ्यन्तरिक वाहककी अपूर्णता—

I साम्निपातिकपाण्डु-वाहकका पूर्णरूपसे अभाव। अ विशुद्ध स्थूलरक्ताणुवृद्धि-केवल यकृतपर प्रतिक्रिया दर्शाता है। ब. सूक्ष्म रक्ताणुवृद्धि--यकृत्के अतिरिक्त लोहेकी आवश्यकता।

II कुछ अंशमें अपूर्णता—(१) आमाशयका अर्बुद; (२) आमाशयका बृहच्छेदन ; (३) संग्रहणी और अन्त्रकी शिथिलताके हेतुसे आमाशय बलका ह्रास।

२. भोजनमें बाह्यवाहककी अपूर्णता (अपूर्ण पोषक तत्त्व)-सामान्यतः कुछ अंशमें अपूर्णता, भोजन प्रायः इतरद्रव्यों (लोह, विटामिन B आदि) की अपूर्णतायुक्त। पोषणाभावज स्थूल दानेदार रक्ताणुमयपाण्डु-बालकोंमें, उष्ण कटिबन्धमें तथा सगर्भाओंमें। (yeast) यीस्ट या यीस्टके पश्चात् लोहेकी प्रतिक्रिया, किन्तु सामान्यतः यकृत्की आवश्यकता।

३. रक्तरचनाकर द्रव्य बनना, किन्तु पचनसंस्थानमें शोषणकी कुछ अंशमें अपूर्णता। अन्यकारणरूप रोगोंकी विद्यमानता तथा क्षुद्र रक्ताणुमयपाण्डु। अ. संग्रहणी; आ. बालकोंका फक्करोग, मलमें वसाधिक्य, वसामय अतिसार; इ. कद्दूदानाकृमि जिनके मस्तिष्कमें २ खड्डे हों,ऐसे कृमि (Dibothrio Cephalus latus); ई. अन्त्रकी प्रसारणशील गतिकी विकृति।

वक्तव्य—आभ्यन्तरिक वाहक भी असफल।

४. रक्तरचनाकर द्रव्योंका अपूर्णसंग्रह—यकृत्की प्रसारणशील व्याधि-उदा० यकृद्दाल्यी, चयापचयमें प्रतिबन्ध भी। अप्रतिरोधी स्थूल मज्जाणुमय पाण्डुका आविर्भाव।

५. विविध गंभीर प्रसारणशील उदररोग—चिरकारी क्षय और अन्यक्षति। ऊपरलिखे अनुसार विविधवाहकोंका प्रभाव। चिकित्सा प्रभावशाली नहीं है।

६. मज्जाकी क्लान्ति—इस अवस्थामें स्थूल मज्जाणुमयपाण्डु सामान्यतः क्षुद्र रक्ताणुमयपाण्डुसह बढ़ता है। उदा० पित्ताभावमय मूत्रयुक्त, कामला, रक्तविनाशज कामला, सगर्भाका पाण्डु आदि। आमाशय रसस्राव सामान्य।

वक्तव्य—सुषुम्णाकाण्ड क्वचित् आभ्यन्तरिक वाहककी अपूर्णताकी अपेक्षा अन्य स्थितियोंमें कदापि विस्तृत भागमें प्रभावित नहीं होता।

सब प्रकारमें सामान्यतः स्थूल दानेरहित रक्ताणु विद्यमान। प्रतिरोधक द्रव्योंके सब प्रयोगोंके भीतर यकृत्का उपयोग होता है।

इ. क्षुद्ररक्ताणुमय पाण्डु—सामान्यकदके दानेरहित रक्ताणुमय मज्जा।

१. रक्तोत्पत्तिके लिये अतिरिक्त मांग। कारण—रक्तस्राव, रक्तविनाश या रक्तरंजककी पृथकता।

२. पोषणकी अपूर्णता-पोषण ह्रासज पाण्डु, (बालकोंको, शीतोष्ण कटिबन्धमें और सगर्भाको), हलीमक (संभवतःलोहकी अपूर्णताजन्य) लोह या भोजनकी प्रतिक्रिया।

३. अपूर्णशोषण— अ. आमाशयमें लवणाम्लका ह्रास होनेपर सामान्य क्षुद्ररक्ताणुमय पाण्डु। मुख्यतः लोहेकी न्यूनता। केवल लोहेकी प्रतिक्रिया। आ. पचनसंस्थानगत अन्तराय। उदा० अतिसार रस शोषणमें न्यूनता।

४. सार्वाङ्गिक चयापचयमें अन्तराय-क्षय और क्षयकारक इतर स्थिति।

५. विविधगौण लक्षणात्मक पाण्डु।

ई. सम्मिलित प्रकार—एकाधिक प्रकारके मिश्रित रक्ताणुजन्य पाण्डुकी समय-समयमें विद्यमानता और विविधपरिमाणमें सम्मिलन।

१. क्षुद्रदानेदार रक्ताणुमय पाण्डु उत्पन्न होकर स्थूल रक्ताणुमय पाण्डुके साथ सम्मिलित होना— अ. स्थूल मज्जाणुओंके विशेषवाहकोंकी सहायक स्थिति; उदा॰ आभ्यन्तरिक वाहकोंका नाश। आ. मज्जाक्लान्ति—प्राइसजोनका मोड़ दानेदार सूक्ष्म और स्थूल रक्ताणुओंकी अधिकता प्रकाशित करता है।

२. स्थूल दानेदार रक्ताणुमय पाण्डु—यह मज्जाणु विकृतिमय पाण्डुके भीतर समान भासता है। रक्तकी प्रतिकृति--क्षुद्र या स्थूल रक्ताणुमय पाण्डु वा मज्जाविकृति-सह परिवर्त्तनसे विविध मिश्रण।

३. मज्जाक्लान्ति—अ. आंशिक या सामयिक मज्जासे अस्वाभाविक रक्ताणु रचना होती है। किन्तु थकावट आ जाती है। आंशिक मज्जाविकृति, यह विविध परिमाणमें विश्रान्ति और रक्तका अन्त: सेचनके लिये उत्तरदायी है। जैसे विशेष चिकित्साके लिये प्राथमिक। आ. मज्जाकी स्थिर सच्ची अपूर्ण उन्नति। चिकित्सासे सुधार नहीं होता।

उपरोक्त कारणोंके अतिरिक्त भारतवर्षमें और भी कतिपय हेतुसे पाण्डुताकी प्राप्ति होती है। अनेक व्यक्ति बड़े शहरोंमें अंधकारमय मलिन वायुमण्डलवाले मौहल्लोंमें और सीलदार मकानोंमें रहते हैं। कारागृह वासमें अनेकों को गन्दे मकानोंमें रहना पड़ता है। अनेकोंको रात्रिको जागरण करना पड़ता है। कतिपयोंको पेटभर भोजन नहीं मिलता। अनेक सज्जन मानसिक चिन्तासे ग्रस्त हैं। व्यापारी समाजको आवश्यक व्यायाम नहीं मिलता। अनेक अबोध बालकोंको हस्तमैथुनकी आदत हो जाती है। इनके अतिरिक्त छोटी आयुमें मैथुन सेवन, अति मैथुन, अकाल रतिसेवन आदि करते हैं। ये सब पाण्डुता लानेमें सहायक होते हैं; और अति मद्यपान, अति अफीम, अति धूम्रपान आदि भी परंपरागत पाण्डुता ला देते हैं।

स्त्रियोंकी गर्भावस्था, सन्तानका जन्म होना, स्वाभाविक मासिकधर्ममें प्रतिबन्ध होना, दीर्घकालतक स्वप्नदोष होना, बालकोंको अधिक स्तन्यदान, व्रतपालनार्थ अधिक उपवास आदि कारण भी प्रतीत होते हैं। उक्त सब प्रकारके पाण्डुमें मूलकारणको दूर करके उचित चिकित्सा कीजाय तो लाभ हो सकता है।

कितनेक कुटुम्बोंमें वंशानुगत पाण्डुरोग आता है, उन व्यक्तियोंको किसीभी प्रकारकी चिकित्सासे लाभ नहीं पहुँच सकता। विशुद्ध वायु, सूर्यका प्रकाश, पथ्य भोजन; यथोचित व्यायाम और आवश्यक निद्रा आदि मिलते रहें, तो व्याधिका दमन होता है।

सब प्रकारके पाण्डुके सामान्य लक्षण—सामान्यत: सर्वाङ्गमें त्वचा कोमल, शिथिल और निस्तेज रंगकी। ओष्ठ, जिह्वा, मुँहके भीतरकी श्लैष्मिक-कला, नेत्रके भीतरकी श्लैष्मिक-कला आदि रक्तहीन। मुख-मण्डल निस्तेज। किसी किसी रोगीको

शीर्णता सामान्य और किसी-किसीको अत्यधिक। देहबल कम, हाथ-पैर शीतल, अनेकोंको पैरों और नेत्रोंपर शोथ, रोगी निस्तेज, निद्रातुर और उत्साह-रहित, मुख-मण्डल, मस्तिष्क और पशुंकाओंके भीतरकी पेशियोंमें शूल सदृश वेदना, शिरदर्द, तन्द्रा, चक्कर और बेहोशी। समग्र शारीरविधान विकारग्रस्त होनेसे जीवनक्रिया मृदु और क्षीण। श्वासोच्छ्वास जल्दी-जल्दी चलता है और थोड़े ही परिश्रमसे श्वास भरजाता है।

परिपाक विधानमें विशेष विलक्षणता क्षुधाका लोप या क्षुधाकी विकृति, जिह्वा श्वेतवर्णकी, रक्तविहीनता विशिष्ट, अपचन, उबाक, निद्राभंग होनेपर और भोजनके अंतमें उबाककी वृद्धि, विशेषतः प्रबल बद्धकोष्ठ आदि। स्त्रियोंको सतत रजोवैलक्षण्य, रजःस्राव कम होना, रक्तहीनता उत्पादक रक्तप्रदर, रजःकृच्छ्र और श्वेतप्रदर आदि। सामान्यतः मूत्रके परिणाम की वृद्धि, मूत्रका वर्ण फीका, किन्तु कभी विपरीतता।

नाड़ी मृदु, क्षीण और द्रुतगामी। किसी-किसी व्यक्तिको कभी-कभी नाकमें से रक्तस्राव। हृदयमें वेदना और कम्प उसके साथ हृदयमूलके ऊपर बृहद्धमनीके ऊर्ध्वगामी मुड़े हुए भागपर हृदयके आकुंचनके पश्चात् कोमल मर्मर ध्वनि होना आदि। हृदयक्षीण हो जानेसे वह सामान्य कारणसे उत्तेजित हो जाता है। हृदय-खण्ड प्रसारित हो जानेसे हृत्कपाट सम्यक् प्रकारसे बन्द नहीं होते। जिससे मर्मर ध्वनि उत्पन्न होती है। मन्या शिरामेंसे तरल रक्त निम्न और संचालित होता है; उस समय उसपर भ्रमरके गुञ्जारके सदृश आवाज़ उत्पन्न होती है। सब रक्तवाहिनियोंमें रक्तकी कमी हो जाती है, मस्तिष्कमें रक्तकी न्यूनता होजानेसे चक्कर आते रहते हैं। यदि रोग अति प्रबल हो, तो मूर्च्छा आक्षेप आदि वातप्रकोपके लक्षण उत्पन्न होते हैं।

रक्तस्रावसे पाण्डु होनेपर बहुत जल्दीसे रक्तवारिको पूराकर रक्ताणु बननेका प्रारम्भ हो जाता है। उस समय रक्तरंजक कम होता है। रक्ताणुमें जीवकेन्द्र होते हैं। व्याकुलता अधिक रहती है तथा वायु सेवनकी इच्छा बनी रहती है।

(१ अ.) आशुकारी रक्तस्रावज पाण्डु

(Anaemia due to acute Haemorrhage)

निदान—अधिक मात्रामें रक्तस्राव, २ पिण्ट से अधिक होनेपर गम्भीर तथा ४ पिण्टसे अधिक होनेपर घातक (रक्तके अन्तः सेचनके अभावमें)।

अभिघात, आमाशय और ग्रहणीसे या अन्त्रसे रक्तस्राव, प्रसव होनेपर या गर्भपात होकर रक्तस्राव। आशुकारी रक्तविनाश भी।

लक्षण—(कुछ अंशमें द्रवके ह्राससे) बेहोशी, रक्तद्बावका ह्रास, पाण्डुता, शीत और स्वेद, व्याकुलता, चक्करआना, क्षणिक मूर्च्छा, श्वासकृच्छ्रता, तृषा, उबाक, नाड़ी क्षुद्र और तेज़, उत्तापका ह्रास, क्वचित् आक्षेप, कुछ घण्टोंके लिये शक्तिका ह्रास, कभी क्षणिक दृष्टिनाश तथा अति क्वचित् चाक्षुषी नाड़ीका स्थिरशोथ (पुनराक्रमणके

पश्चात्, कभी पहलीबार रक्तस्रावसे नहीं) रक्तग्रथिनके ह्राससे शोथ कभी-कभी बढ़ता है।

रक्त—

१. रक्तस्रावके पश्चात् तुरन्त कुछ परिवर्त्तन—रक्तरंजककी कुछ उन्नति (कैशिकास्रावका निरोध)।

२. द्रवतन्तुद्वारा रक्तका तरलीकरण—रक्ताणुमय पाण्डुकी प्रगति सामान्य कहके तरलीकरण वृद्धि अनुरूप वर्णसूची लगभग सामान्य किन्तु पतनशील। रक्तरंजनका पतन चालू रहना।

३. १ से ३ दिनके पश्चात्—मज्जाका सम्बन्ध रक्ताणुओंकी अस्वाभाविक वृद्धि और स्रावसे होता है।

एकबार ही अधिक रक्तस्राव हो (पुनः न हो) तो ४–५ सप्ताहमें स्वास्थ्य प्राप्ति होती है।

चिकित्सा—(१) अहिफेन सत्व (मोर्फिया)। (२) द्रव (जल) पिलावें तथा गुदा या त्वचासे अन्तःक्षेपण करके नमक जल चढ़ावें। (३) रुधिरका अन्तः-सेचन करें (धीरे-धीरे चढ़ाया जायगा, तो रक्तदबाव निश्चित सीमा तकही बढ़ेगा और कोई भीति नहीं रहेगी) यदि रक्तस्रावका पूर्ण रोध न हुआ हो, तो बूँद-बूँद रुधिर सिंचन करते रहना चाहिये। (४) रक्तस्रावके लिये आवश्यक उपचार तथा (५) पाण्डुरोग कथित उपचार करना चाहिये।

(१ आ.) चिरकारी रक्तस्रावज पाण्डु

(Anaemia due to Chronic Haemorrhage)

निदान—रक्तार्श, ग्रहणीक्षत, मासिकधर्ममें अति रक्तस्राव आदि।

लक्षण—जबतक रक्तरंजनका पतन ४० प्रतिशत या कम न हो, तब तक चित्ताकर्षक मन्द वेदना। प्राकृतिक और मस्तिष्ककी निर्बलता, सत्वर थकावट, भीतरकी संस्थान पीड़ित। (१) रुधिराभिसरण संस्थान–श्वासकी लघुता, हृदयकी धड़कन वृद्धि, बेहोशी, चक्कर, पैरोंपर शोथ। (२) पचनसंस्थान—मलावरोध, अपचन, क्षुधानाश। (३) वातनाड़ीसंस्थान–शिरदर्द, क्षणिकमूर्च्छा, चक्कर आना, दृष्टिमें मच्छरोंके उड़ने सदृश भास और उग्रता। स्त्री रुग्णा हो, तो मासिकधर्मका लोप या अनियमितता। मंदज्वर।

प्राकृतिक चिह्न—(१) निस्तेजता या पाण्डुता, विशेषतः श्लैष्मिक-कलाकी। (२) नाड़ी मृदु या शीघ्रकारी। (३) हृदयमें मर्मर ध्वनि, निम्न आधारपर या शिखरपर।

रुधिर—मज्जा विविधप्रकार के रक्ताणुओंकी रचना करती है। कितनेक अस्वाभाविक रक्ताणुओंकी उत्पत्ति, किन्तु रुधिरके मूल तन्तु प्रायः अपूर्ण उन्नतिसे थके हुए रक्ताणुओंका विनाश, जालदार रक्ताणुओंका ह्रास, क्षुद्र और बृहद् रक्ताणुओंकी

वृद्धि, सामान्य कद्के रक्ताणुओंका अभाव या न्यूनता। रक्तरंजक, वर्णसूची, श्वेताणु और रक्तचक्रिकाएँ, सबका प्रायः ह्रास।

चिकित्सा—मुख्यकारण अनुसार सामान्य पाण्डुके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। रुधिरका अन्तःसेचन प्रायः शीघ्र लाभ पहुँचाता है।

(२) सेन्द्रिय विषज पाण्डु

(Anaemia due to Toxic and Toxaemic Causes.)

लक्षण—चिरकारी रक्तार्शके पश्चात् लक्षणके समान। सामान्यतः मज्जाका क्षय। वर्णसूचीका विशेष ह्रास नहीं होता।

चिकित्सा—पहले मूल कारणको दूर करें फिर पाण्डुकी सामान्य चिकित्सा करें।

(३) लवणाम्ल रहित सामान्य पाण्डु

(Simple Achlorhydric Anaemia.)

(गौण नाम—Idiopathic Anaemia, Essential Hypochromic Anaemia)

यह रोग अति सामान्यतः ३० से ५० वर्षकी आयुके भीतर बहुधा स्त्रियोंको होता है। लवणाम्ल रहित आमाशयस्राव अधिक मात्रामें उपस्थित। चिरकारी क्षुद्र रक्ताणुमय पाण्डु (Chronic Microcytic Anaemia) भी लवणाम्ल रहित पाण्डुके साथ प्रायः पूर्णभावसे मध्य आयुवाली स्त्रियोंमें प्रतीत होता है।

निदान—रक्तमें लोहधातुकी अपूर्णता। अपुष्टीकर भोजन (भोजनमें लोहेकी अपूर्णता या लोहशोषणमें न्यूनता) सामान्यतः १५ मिलीग्राम लोहकी प्रतिदिन आवश्यकता है। अथवा मासिकधर्म या गर्भधारणद्वारा लोह धातुका ह्रास। आमाशयमें कृत्रिम छिद्र अथवा आमाशय अन्त्रके बीच कृत्रिममार्ग करनेपर भी वैसाही पाण्डुरोग हो जाता है।

संप्राप्ति—मज्जासे अस्वाभाविक रक्ताणुओंकी उत्पत्ति, जीवकेन्द्रमय सामान्य रक्ताणु बहुसंख्य, जीवकेन्द्रमय स्थूल रक्ताणुओंका अति ह्रास या अभाव। आमाशयका चिरकारि प्रदाह तथा आमाशयकी श्लैष्मिक-कलाका शोषण। प्लीहामें सामान्य अस्वाभाविक घटकोंकी वृद्धि।

आक्रमण—गुप्तभावसे। रोगी प्रायः बलवान् नहीं होता। लक्षणोंकी वृद्धि अनेक वर्षोंतक मन्द-मन्द गर्भधारण या कोई बीमारी आनेपर लक्षणोंकी सत्वर उन्नति।

लक्षण—प्रायः मन्द और विविध प्रकारके, कुछ अंशमें पाण्डुके तथा कुछ लवणाम्लके अभावके। थकावट, श्वासकी लघुता (या श्वासावरोध), हृदयमें धड़कन, अफारा, अपचन और मलावरोध, ग्रसनिकाप्रदाह और निगलनेमें कष्ट, मासिकधर्ममें अधिकस्राव होना, यह मासिकधर्मके अभावकी अपेक्षा अति सामान्य। यह विशेषतः

मासिकधर्मके त्यागकालमें वातनाड़ी क्रियाविकृति होनेपर। कितनेकों को चरणपर शोथ आता है। गम्भीर रोग बढ़नेपर हृदयाधरिक प्रदेशमें वेदना भी।

देखाव—सामान्यतः शारीरिक शिथिल रचना, निस्तेजता, पाण्डुता और प्रायः ईषत् पीतप्रभा (किन्तु कामलाका पीलापन नहीं), शुष्क त्वचा, जिह्वा लाल और मुलायम, क्वचित् चतमय नाखून (४० प्रतिशतरोगियोंमें) कुबकीले, पोकल, नतोदर और चिमच जैसे आकारके। कभी आमाशयप्रदाह और प्रसनिका प्रदाहसे जिह्वाप्रदाह भी हो जाता है। प्लीहा सामान्यतः चिरकारी गंभीरतर मात्रामें बढ़ जाती है। (सुषुम्णाकाण्डमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं होता)।

पचनसंस्थानके लक्षण—अनेक रोगियोंमें आमाशयरसके भीतर लवणाम्लका अभाव, लवणाम्लका ह्रास प्रायः स्थिर। विविध प्रकारके हिस्टेमीनका अन्तःक्षेपण ३० प्रतिशतमें मुक्त लवणाम्ल कराता है। प्रायः चिकित्साके पश्चात्‌भी लवणाम्लका अभाव प्रयत्नशील रहता है। खमीर विद्यमान्, किन्तु कम होता जाता है।

मध्यनाड़ी संस्थान—कुछभी परिवर्त्तन नहीं।

रक्त—(१) क्षुद्र रक्ताणुमय। (२) लगभग ४० लक्ष रक्ताणु प्रति मि० मी०। (३) जालदार रक्ताणु सामान्यतः बढ़नेपर ३० लक्ष या कम। रक्तरस निस्तेज-वानडेन बर्घकी कसौटीद्वारा निषेध सूचक।

क्रम—लोहसे चिकित्सा होती है, वह ६-८ सप्ताह तक परिवर्त्तन लक्ष्य देनेके योग्य होनेके पहले। मासिकधर्म त्यागके पश्चात् स्वास्थ्यमें उन्नति होती है, किन्तु पूर्ण बलकी प्राप्ति कदापि नहीं होती।

उपद्रव—घातक पाण्डु अति क्वचित्। क्वचित् अनुगामीरूपसे प्लमर विन्सनके लक्षण समूह (Plummer-Vinson's Syndrome) की सम्प्राप्ति अर्थात् निगलनेमें कष्ट जिह्वाप्रदाह, रक्तरंजककी न्यूनतामय पाण्डु (Hypochronic Anaemia), प्लीहावृद्धि, मुखके भीतर प्रसनिका तथा अन्ननलिकाके ऊर्ध्व भागका शोष (Atrophy)। क्वचित् अन्ननलिकापर अर्बुद होनेका उदाहरण मिला है। रक्तवाहिनिमें शल्योत्पत्ति संभवित है।

चिकित्सोपयोगी सूचना—लोह प्रधान, सामान्य पाण्डुके अनुरूप। यकृत् और आमाशयका सत्व निरुपयोगी रक्तका अन्तःसेचन गंभीर रोगियोंमें सहायक।

विकृतिस्थान, जो कीटाणुओंसे प्रभाधित हो गये हैं, उनकी तथा सहायक वाहकोंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

मासिकधर्म त्यागकालमें (लगभग ५० वर्षकी आयुमें) अति मासिक स्राव होता हो, तो उसकी विशेष चिकित्सा करनी चाहिये।

(४) सान्निपातिक पाण्डु

घातक पाण्डु—पर्निसियस एनिमिया-एडिसोनियन एनिमिया । (Pernicious Anaemia-Addisonian Anaemia)

रोग परिचय—इस गम्भीर पाण्डुकी सम्प्राप्ति आमाशय ग्रहणीके स्रावमें अज्ञात अपूर्णताके हेतुसे होती है । इस रोगके प्रकृति निर्देशक लक्षण-स्थूल रक्ताणु, आमाशयरसमें लवणाम्लका अभाव, मज्जामें अस्वाभाविक घटकोंकी वृद्धि, सुषुम्णाकाण्ड में परिवर्त्तन होनेका स्वभाव, यकृत् और उसके समान चिकित्सासे सत्वर उन्नति, चिकित्साके अभावमें घातक अपरिवर्त्तनीय स्थिति आदि ।

संप्राप्ति ४० से ६० वर्षकी आयुमें अत्यन्त सामान्य स्त्री पुरुषोंको समभावसे प्राप्ति । इस रोगका वंशागत वाहक होना, यह भी संभवित । लवणाम्ल रहित तथा क्षुद्र रक्ताणुमय पाण्डु, ये दोनों इस रोगके सम्बन्धी हैं ।

निदान—इसके कारण सम्बन्धी विचार पाण्डु रोगके डॉक्टरी वर्णनके आरम्भमें पाण्डुरोगके कारणमें किया है ।

सान्निपातिक पाण्डुका अन्य प्रकारसे भेद

द्रव्य	सान्निपातिक	अन्य प्रकारके पाण्डु
श्वेताणु	ह्रास	सामान्यतः वृद्धि
अम्लरंगेच्छु	खण्डवृद्धि	खण्ड वृद्धि नहीं
अपूर्णरक्ताणु	लक्ष्य देने योग्य	किञ्चित्
मुक्तलवणाम्ल	अभाव	विद्यमान
अप्रत्यक्ष वानडेन बर्घ	ऊँच । २ से ५ इकाई	निम्न ०·२ से ०·५
यीस्ट	अप्रभावित	प्रायः कार्यकारी
रक्तशर्करा	सामान्य	प्रायः स्पष्ट मोड़ (Flat Curve)

लक्ष्यपूर्वक रक्तकी परीक्षा करनेपर बहुधा रोग निर्णय हो जाता है । कोई अस्वाभाविक रुधिर द्रव्य प्रतीत हो, विशेषतः श्वेताणुवृद्धि हो, तो उसपर योग्य लक्ष्य देना चाहिये ।

प्राथमिक परिवर्त्तन—(१) शोषसह आमाशयप्रदाह; (२) मज्जासे अस्वाभाविक केन्द्रमय स्थूल दानेदार रक्ताणुओंकी उत्पत्ति; (३) अनेक अवयवोंसे मुक्तलोह; (४) वसापक्रान्ति; (५) सुषुम्णाकाण्डमें परिवर्त्तन ।

व्यापक विकृति—मन्द शोष (Wasting) या अभाव । निस्तेजता या पीताभ प्रभा (Lemon yellow tint) त्वचागत पीतवर्ण । मांसपेशियाँ तेजस्वी रक्त । रसत्वचाकी सतहपर धब्बे होकर रक्तस्राव, रसस्राव भी होते रहना ।

हृदय—वसापक्रान्ति, विशेषतः स्तम्भाकार पेशीसमूह (Papillary muscles) के ऊपर और पासमें (लाल पेशियोंपर पीले दाग) ।

यकृत्—सामान्य कदका या कुछ बड़ा, पीला और (वसा अन्तर्भरणयुक्त) मुक्त लोहकी अधिक उपस्थिति, विशेषतः कंडिकाओंके बाह्य-मण्डलपर ।

प्लीहा—सामान्यतः बढ़ी हुई । लक्ष्य देने योग्य सौत्रिक तन्तुओंकी उत्पत्ति, मुक्त लोहकी अधिकता । कभी शोषमय ।

सुषुम्णाकाण्ड—उप-आशुकारी । पिछली ओर तथा पार्श्वभागमें सामान्य अपक्रान्ति ।

सार्वाङ्गिक प्रकृति निर्देशक लक्षण—(१) गुप्त आक्रमण; (२) अति निर्बलताकी भावना; (३) निस्तेजता, प्रायः पीताभ प्रभा; (४) देहकी शुष्कता मंद या अभाव सामान्यतः पहलीबार निरीक्षणके समय स्थिति पूर्ण बढ़ी हुई, प्रायः भूतकालमें अच्छा स्वास्थ्य; किन्तु कभी-कभी पाण्डुकी प्राप्ति; (५) ज्वरकी प्राप्ति । किसी-किसी रोगीको रात्रिमें १०२-१०४ डिग्री तक ज्वर बढ़ जाना और प्रातःकाल कम हो जाना, किन्तु रोगके प्रारम्भकालमें तथा रोगकी अन्तिमावस्थामें प्रायः ज्वरका अभाव (६) चाक्षुषी नाड़ीकाप्रदाह होनेसे दृष्टिमें विकृति, यह भी प्राथमिक लक्षण ।

पाण्डुताके लक्षण—(१)निर्बलता; (२) श्वासकृच्छ्रता,धड़कन,बेहोशी,चरण या गुल्फपर शोथ । फिर शोथ घुटनोंकी ओर बढ़ता है । मासिक धर्मका अभाव सामान्य ।

आमाशय अन्त्रस्थ लक्षण—आमाशय रसस्रावका अभाव और शोषसह आमाशयप्रदाहके लक्षण—(१) जिह्वापर क्षत लगभग ५० प्रतिशतको । प्रथमावस्थामें लाल और चीरासह या सामान्य, बढ़ी हुई अवस्थामें मुलायम और शोषसह । प्लमर विनसनके लक्षण समूह अति क्वचित् । (२) अपचन और आध्मान । वमनका आक्रमण । अतिसार या पतला शौच ।

वातनाड़ी लक्षण—अस्वाभाविक संवेदना (प्रारम्भमें झनझनाहट और शून्यता सामान्य, विशेषतः हाथ पैरोंमें), कभी-कभी मस्तिष्कके लक्षण-सामान्यतः उत्पीड़न या खिंचावका भ्रम ।

चिह्न—मुख-मण्डल और प्राकृतिक परिवर्तन—रक्तमें पित्तारुण (Bilirubin) बढ़नेसे त्वचामें पीलापन, बाल प्रायः असामयिक धूसर (श्वेत), कुष्ठ जैसे श्वेतदाग और त्वचारंजन, वसा बढ़नेपर देह कृश न भासना । नाखूनोंमें विशेष परिवर्त्तनका अभाव ।

प्लीहा—गम्भीर रोगियोंमें सामान्य वृद्धि, कभी स्पर्शग्राह्य ।

मूत्र—युरोबिलीनकी वृद्धि । शुभ्रप्रथिन सामान्य ।

मल—युरोबिलिनोजनकी वृद्धि ।

रक्तस्राव—क्वचित् नेत्रदर्पण (Retina) में । त्रिदोषज रक्तपित्त (Purpura), अन्तरमें और बाह्य रक्तस्राव अतिक्वचित् ।

लम्बी अस्थियोंमें वेदना—परम्परागत लक्षण (ऊर्वस्थि आदि लम्बी अस्थियोंमें लाल मज्जाकी वृद्धि) ।

हाथ, पैर, कपाल आदिमें झनझनाहट, शून्यता अकड़ाहट, बढ़ी हुई विकृत अनुभूति (Acroparaesthesia) हड्डियोंमें चोष अथवा अपक्रान्ति ।

आमाशय रसस्राव—आमाशय रसका अभाव विविध प्रकारका ११ प्रतिशत से अधिक, समस्त रस बहुत कम । लवणाम्लरहित स्राव पूर्ण और स्थिर । हिस्टेमाइनका अन्तःक्षेपण या पाण्डुरोगके शमनके साथ सम्बन्ध नहीं रहता । लवणाम्लरहित स्राव पाण्डुको बढ़ाता है ।

रक्त—परिणाममें दानेदार स्थूल रक्ताणुओं (Megalocytes) की अधिकता सब प्रकारके रुधिर द्रव्योंका विनाश । क्वचित् सौम्यरोगमें भी दानेरहित केन्द्रमय रक्ताणुओं की उत्पत्ति । प्रकृति निर्देशक दानेरहित जीवकेन्द्रमय स्थूल रक्ताणु उपस्थित, एक मि. मी. में २५ लक्ष से कम किन्तु प्रायः स्वल्प । कभी-कभी अति स्थूल दानेरहित जीवकेन्द्रमय रक्ताणु (Gigantoblasts) विद्यमान । जीवकेन्द्रमयरक्ताणु अन्तिम या गम्भीर अवस्थामें, वह रक्तका आकस्मिक उपशम कहलाता है (यदि उस अवस्थामें चिकित्साका आश्रय सत्वर न लिया जाय, तो परिणाम खराब आता है)।

रक्ताणु परिमाणमें परिवर्त्तन—अति ह्रास होनेपर प्रायः १० से २० लक्ष या कम । रक्तरंजक बहुत कम हो जाता है; किन्तु स्थूल रक्ताणु पूर्णरक्तरंजनमय होनेसे वर्णसूची अधिक । सामान्यतः १·१ से १·२ तक, रक्ताणु अतिकम हो,तो १·८ ।

श्वेताणु—ह्रास, सामान्यतः २००० से ४००० प्रति मिलीमीटर । लसीकाणु ५० प्रतिशत, मध्यस्थ श्वेताणुओंके कदकी कमी बढ़ जाना, अम्लरंगेच्छुका ह्रास । कभी मज्जाणु (Myelocytes) विद्यमान, किन्तुस्वल्प । तुर्कके उत्तेजक श्वेताणु (Turk's cells) भी प्रायः मिल जाते हैं ।

रक्त चक्रिकाएँ—अति स्वल्प ।

रक्तरस—सत्वर पृथक् होता है; किन्तु पीली प्रभायुक्त ।

पित्तवनका ह्रास । रक्त जमनेके समयकी वृद्धि । रक्तशर्करा सामान्य ।

मज्जा—उरः फलकमें छिद्र करके प्राप्तकर सकते हैं । यह रक्ताभिसरणके परिवर्त्तनको दर्शाती है । रुधिरमें कितनेक दानेरहित स्थूलरक्ताणु अति रक्तरंजनमय, जो छोटे पिण्डमें अस्वाभाविक स्थूल रक्ताणुओं द्वारा घिरे हुए । दानेरहित सामान्य रक्ताणु और एक सामान्य रक्ताणु स्वल्प। दानेरहित मज्जाणु सामान्य होनेसे अनेक जीवकेन्द्रयुक्त श्वेताणुओंका ह्रास। लाल मज्जाकी जालदार अन्तराकला, जो सामान्यतः रक्तरंजकके योग्य आचरण करनेवाले सामान्य भक्षक कोषाणुओंको उत्पन्न करती है वह स्थूल कोषाणुओं

को निर्माण करती है, जो रक्ताणुओं में प्रचण्ड भक्षक हैं। चिकित्साद्वारा स्थिति पुनः सुधरने लगती है।

प्रगति और विराम—(योग्य चिकित्साके अभावमें)—

विराम—अति उन्नति साधक या स्वास्थ्य, सामान्यतः प्रथम आक्रमणमें। दूसरा आक्रमण ६ या १२ मासके पश्चात्। उत्तर कालीन आक्रमणोंके बीचका समय कम होता जाता है।

रक्तकी अवस्था विरामकालमें—पहले विराममें पाण्डुकी सत्वर पूर्ति हो जाती है; किन्तु सामान्य स्थिति तक क्वचित् ही पहुँचता है। चिकित्सा करते हुए कुछ कमी रह जाती है।

अन्तिम परिणाम—घातक स्थितिकाल १ से ३ वर्ष, क्वचित् इससे भी अधिक। आशुकारी क्रमकी कुछ सप्ताहोंमें प्राप्ति वा नियमित उतार।

योग्य चिकित्सा होनेपर जालदार रक्ताणुओंके पश्चात् थोड़े ही दिनोंमें उन्नति एक सप्ताहमें लगभग ५ लक्ष रक्ताणु। कद और आकार सामान्य जब तक ५० लक्ष रक्ताणु न हो जाँय तबतक चिकित्सा चालू रखनी चाहिये। रक्तरंगकी वृद्धि अति मंद गतिसे लगभग १ प्रतिशत प्रतिदिन। श्वेताणुओंकी वृद्धि भी मंदगतिसे।

सार्वाङ्गिक स्थिति सत्वर सुधर जाती है, किन्तु हृदय स्पन्दनकी तीव्रगति (Tachycardia) आदिमें लाभ अति शनैः-शनैः। सामान्यतः ३० लक्ष रक्ताणु तथा ६० प्रतिशत रक्तरंजक होनेपर पूर्ण स्वास्थ्यका भास होता है; किन्तु ५० लक्ष रक्ताणु हुए बिना सुषुम्णा क्षतिकी योग्य पूर्ति नहीं होती। सुषुम्णा क्षति अधिक होनेपर या रोग अति बढ़जाने पर चिकित्सा प्रारम्भ कराई जाय, तो उनमेंसे कुछ रोगियोंकी मृत्यु हो जाती है।

उपद्रव—

१. सुषुम्णाकाण्डके पश्चात् और पार्श्वभागकी उप-आशुकारी अपक्रान्ति।

२. गलनात्मक क्रिया—फोड़े और विद्रधि, वृक्कालिन्द प्रदाह (Pyelitis) पित्ताशय प्रदाह।

३. चिरकारी वृक्कप्रदाह और मधुमेह।

४. आमाशयका कर्कस्फोट।

५. फुफ्फुसप्रदाह (अधिक मृत्यु)

इनके अतिरिक्त कभी क्षयकी सम्प्राप्ति।

रोगविनिर्णय—प्रकृति निर्देशक लक्षण और रक्तपरीक्षाद्वारा सरलतासे रोगी मध्य आयुका। गुप्त आक्रमण, शरीरिक निर्बलता पाण्डु, शुष्कदेह, रक्तके भीतर दानेदार स्थूल रक्ताणु, रक्ताणुओंका अति नाश, वर्णसूची अधिक श्वेताणु ह्रास और जीवकेन्द्रमय दानेरहित रक्ताणुओंकी उपस्थितिपरसे सहज निर्णय।

विशेष निर्णय—रक्तपरीक्षा, आमाशयरस तथा उरः फलकमें छिद्र द्वारा।

सादृश्यरोगप्रभेदक निर्णय—

१. अन्य दानेदार रक्ताणु वृद्धिमय पाण्डु (Megalocytic Anaemias) ये संग्रहणी, मलमें वसाकी अधिकता अप्रतिरोधक स्थूल रक्ताणु पाण्डु (Achrestic Anaemia)—आदिमें प्रतीत होते हैं।

२. लघुरक्ताणुमय पाण्डु—रक्तपरीक्षासे निर्णय।

३. आमाशयका कर्कस्फोट—अ. सामान्यतः रक्तमें क्षुद्र रक्ताणु; आ. देह की शुष्कता; इ. रेडियोग्राफ; ई. आमाशयमें अम्लता और फेनीभवन, ये सामान्यतः सान्निपातिक पाण्डुके समान कम नहीं होते इनमें 'क्ष' किरणद्वारा सहायता मिल जाती है।

४. संग्रहणी (Sprue) और कद्दूदाना उदरकृमि (Diphyllobohrium latum) के संक्रमणमें रक्तका चित्र सान्निपातिक पाण्डुके समान भासता है, किन्तु आमाशय रसका अभाव नहीं होता।

५. मज्जाणुविकृतिमय (Aplastic) पाण्डु—दानेदार जीवकेन्द्रमय रक्ताणुओं की कमी वानडेन बर्गकी प्रतिक्रिया निषेधवाचक। सच्चे मज्जा विकृतिमय पाण्डुमय सान्निपातिक पाण्डुकी उन्नति नहीं होती(किन्तु मिश्रप्रकार हो सकता है)

६. एडिसनका रोग—मुख-मण्डल, लक्षण और त्वचाका वर्ण कभी-कभी समान होते हैं।

७. रक्तरोग—उदा० चिरकारी रक्तविनाशज पाण्डु; लेडेररका पाण्डु अनादर्श श्वेताणुवृद्धिमय पाण्डु; इनका प्रभेद करना कठिन।

उक्त रोगोंके अतिरिक्त वृक्कप्रदाह तथा घनशोथभी कभी-कभी भूल करा देते हैं।

चिकित्सा—डॉक्टरीमें यकृत् या वराहका आमाशय देनेको उत्तम चिकित्सा माना है। ५० लक्षरक्ताणु तथा १०० प्रतिशत रक्तरंजक हो, तब तक चिकित्सा चालू रखनी चाहिये। इसके लिये मांसपेशीमें अन्तःक्षेपण ४ सी. सी. का प्रत्येक ३ सप्ताहतक देते रहना, उत्तम और सस्ता उपचार है।

उप-आशुकारी अपक्रान्ति पश्चात् और पार्श्वभागमें हो तथा लक्षण उपस्थित हों तब बड़ी मात्रा देनी चाहिये। कुछ सप्ताहोंतक प्रतिदिन मांसपेशीमें अन्तःक्षेपण करना चाहिये। लोह भी देना चाहिये।

उपद्रव हो तो उपद्रव अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। वृद्धावस्था हो, तो धमनी कोषकाठिन्यका उपचार भी करें।

(५) अप्रतिरोधी स्थूल रक्ताणुमय पाण्डु

(Achrestic Anaemia)

जब स्थूल दानेदार रक्ताणुमय पाण्डुमें अन्तरशक्ति रक्तरचनाकर द्रव्योंका संग्रह करने या युद्ध करनेवाली सेनाके संग्रहमें असफल होती है और यकृतादि अवयवोंमें

से रक्त रचनाकर संगृहीत द्रव्योंका उपयोग करती रहती है, तब परिणाममें प्रतिरोध न हो सके, ऐसा पाण्डु बन जाता है। लवणाम्ल द्रव्यका अभाव या शोषण क्रियामें विकृति नहीं होती। लक्षण और रक्तपरिवर्त्तन सान्निपातिक पाण्डु या मज्जाविकृतिजन्य पाण्डु के सदृश। मज्जासे अत्यधिक अस्वाभाविक या सामान्य कदवाले रक्ताणुओंकी उत्पत्ति। यह रोग बाल्यावस्थाके पश्चात् सब आयुमें उपस्थित। स्थिति काल क्वचित् अनेक वर्षोंतक।

चिकित्सा—सामान्य औषधियाँ निरर्थक। कितनेक रोगियोंमें बलवर्द्धक चिकित्सा करनी पड़ती है। उदा० नियमित शिराके भीतर यकृत् सत्वका अन्तःक्षेपण। रक्तका अन्तःसेचन प्रायः प्रयोजित होता है, किन्तु लाभ बहुत कम मिलता है।

(६) आशुकारी रक्तविनाशज ज्वरसह पाण्डु

लेडेररका पाण्डु—आशुकारी ज्वरसह पाण्डु

(Acute Haemolytic Anaemia of Lederer
Acute Febrile Anaemia)

यह आशुकारी रक्तविनाशज पाण्डु है, इसका मूलकारण अज्ञात है। इस रोगमें श्वेताणुकी उन्नति अति वेगपूर्वक होती है। बारम्बार रक्तका अन्तःसेचन करनेपर कुछ समयके लिये लाली रहती है। यह रोग क्वचित् ही होता है। यह रोग सब आयुमें स्त्री-पुरुष, दोनोंको समभावसे प्राप्त होता है। २० वर्षसे कम आयुवालोंको अत्यन्त सामान्य रूपसे। कभी सगर्भावस्थामें।

विकृतिवृद्धि—अविदित। स्थिर वाहक नहीं। मज्जासे अस्वाभाविक रक्ताणुओंकी अधिक उत्पत्ति, रक्तवाहिनियोंमें शल्योत्पत्ति।

लक्षण—तीव्र आक्रमण। ज्वर, शीतकम्प, बेचैनी, वमन और अतिसार। पाण्डु और निस्तेजताकी सत्वर वृद्धि। कामला हो, तो सामान्य। चिकित्साके अभावमें क्लान्ति और मूर्च्छाकी वृद्धि। नैमित्तिक मंजिष्ठमेह। यकृत्प्लीहाकी किञ्चित् वृद्धि। शल्यके हेतुसे विविध चिन्ह।

रक्तपरिवर्त्तन—

रक्ताणु और रक्तरंजक—इनका सत्वर ह्रास। रक्ताणुओंका कद अस्थिर। जालदार १०-१५ प्रतिशत। वर्णसूची कम या अधिक। जीवकेन्द्रमय दानेरहित रक्ताणु सामान्य कदके या स्थूल विद्यमान; दोमेंसे एक अधिक मात्रामें अथवा स्वल्प (किसी-न-किसी प्रकारकी अस्वाभाविकता)।

श्वेताणु—संख्या वृद्धि। कभी घन मिलीमीटरमें या अधिक। दानेदार मज्जाणु और दानेरहित मज्जाणु बहुसंख्य।

भंगुरता—सामयिक वृद्धि।

रोगविनिर्णय—इस रोगकी गणना प्रायः अप्रकाशित संक्रमणके समान अथवा

स्वतः सिद्ध सुधारयुक्त सान्निपातिक पाण्डुमें अथवा सुधारसह श्वेताणुवृद्धिमय पाण्डुमें होती है।

चिकित्सा—रक्तका अन्तःसेचन। आवश्यकतापर पुनः। (यह प्रतिक्रिया दर्शाता है) यकृत् और लोह आशुकारी अवस्थामें व्यर्थ।

प्रकारभेद—कितनेकोंमें आशुकारी ज्वरसह पाण्डुकी सत्वर उन्नति तथा रक्तरंजककी स्पष्ट पृथकताका अभाव।

(७) अर्धचन्द्राकार रक्ताणुमय पाण्डु

(Sickle-Cell Anaemia Drepanocytosis)

रक्ताणुओंकी वंशागत अस्वाभाविक स्थितिके हेतुसे इस प्रकारके पाण्डुकी सम्प्राप्ति विशेषतः अफ्रिका निवासियोंमें। स्त्री-पुरुष दोनोंमें वंशागत और कुटुम्बागत। पुरुषों की संख्या कुछ अधिक।

मुख्य स्वभाव—ताज़े रक्तमें प्रारम्भ होनेके ६ से २४ घण्टेके भीतर अनेक (२५ से १०० प्रतिशत) रक्ताणु अर्धचन्द्राकार या घास काटने के हँसिया के समान आकारके बन जाते हैं। जब पहला आक्रमण होता है, तब बहुसंख्य नहीं होते।

रक्ताणु और रक्तरंजक दोनोंका ह्रास। वर्णसूची सम परिमाणमें। थोड़े सम कदके दानेरहित रक्ताणु। श्वेताणु वृद्धि। रक्ताणुओंकी भंगुरता लगभग सामान्य। चक्रिकाओंका ह्रास नहीं होता। रक्तजमावका समय सामान्य। रक्तरसमें पित्त विद्यमान।

लक्षण—गुप्त या पाण्डु। रक्तस्रावका अभाव। स्वभाव पैरोंपर व्रण होनेका। यकृत् कुछ बढ़ा हुआ। प्लीहा स्पर्श ग्राह्य नहीं। ग्रन्थियाँ विविध। रोगकी गम्भीरता होनेपर ज्वर, मांसपेशी और संधिस्थानोंमें गम्भीरवेदना। सत्वर पाण्डु और श्वेताणुवृद्धि।

प्रगति—गम्भीर रोगीकी पाण्डु और उपद्रव भूतरोगसे सत्वर मृत्यु। मज्जासे अस्वाभाविक रक्ताणुओंकी वृद्धि। प्लीहाछेदन लाभदायक नहीं।

वक्तव्य—अण्डाकार रक्ताणु यह कौटुम्बिक अस्वाभाविकता है। इसके लक्षण उपस्थित नहीं होते। इसका इस रोगसे सम्बन्ध नहीं है।

(८) मज्जाविकृतिमय पाण्डु

एप्लास्टिक एनेमिया—Aplastic Anaemia.

मज्जाकी अपूर्ण उन्नतिके हेतुसे घातक स्थिति उपस्थित होती है, वह अन्तिम रूपसे प्रकाशित होती है। जिसमें श्वेताणु ह्रास, रक्तचक्रिकाओंका ह्रास (Thrombocytopenia) और अस्वाभाविक या जीवकेन्द्रमय रक्ताणुओंका अभाव होता है। ये अन्तिम परीक्षात्मक प्रदर्शन और रक्तपरिवर्त्तन मज्जाकी अपूर्ण उन्नतिके हेतुसे ही। स्त्री-पुरुषोंको समभावसे युवावस्थामें प्राप्ति।

कारण—(१) प्राथमिक अस्पष्ट। (२) गौण कारण अ. 'क्ष' किरण, रेडियो और रेडियमका प्रयोग आ. बेन्झोल, सल्फोनेमाइड आदि औषधियोंका प्रयोग इ.

भारी धातु पारद, सुवर्ण आदि। ई. मज्जाकी क्लान्ति, आंशिक मज्जाविकृति उदा० सन्निपातिक पाण्डुमें पूर्वकालमें ऐसा होता है। संक्रमण-उदा० कंठरोहिणी भी क्वचित् कारण होजाता है।

विकृति—ऊर्वस्थिकी मज्जामें मात्र पीली मज्जा उपस्थित। बाँई ओर रक्त-मज्जाका अभाव या ह्रास (अणुवीक्षणिक क्षत चिन्हके अतिरिक्त) इससे कम परिवर्तन पशुकाओं तथा कशेरुकामें, यकृत्प्लीहामें लोहका सामान्यतः अभाव और विद्यमान होने पर अल्प मात्रामें।

लक्षण—

आक्रमणकालमें—पाण्डुतासह गम्भीर पाण्डुके लक्षण। कामलाकी प्रभाका अभाव या गुप्त लक्षण। विशेष प्राकृतिक परिवर्त्तनका अभाव।

रक्तस्राव—त्रिदोषज रक्तपित्त (Purpura) के समान श्लैष्मिक-कलामेंसे एक ओर।

रक्तपरिवर्त्तन—संख्या गम्भीर। प्रकारमन्द।

१. श्वेताणु—अन्तमें श्वेताणु ह्रास (८०० से २०००) सम्बन्धवाले लसीकाणु सह (जो लगभग ६० प्रतिशत)।

२. रक्ताणु—अतिकम, ५ से १५ लक्ष। रक्ताणुओंका देखाव सामान्य। जीवकेन्द्रमय नहीं। अपक्व रक्ताणु आदि विद्यमान। जालदार घटक कम (१ प्रतिशत कभी ५ प्रतिशत) कद सामान्य। वर्णसूची विविध प्रकारकी मर्यादासे अधिक या कम। चक्रिका अति कम या अभाव। रक्तरस निस्तेज। रक्तस्रावका तथा रक्त जमनेके समयकी वृद्धि।

लवणाम्लका अभाव—प्रायः सर्वदा, किन्तु परिवर्त्तनशील।

प्रगति—सामान्यतः अन्तभागमें जल्दी। पाण्डु और रक्तस्राव, दोनों बढ़ते हैं। आमाशयप्रदाह सामान्य। स्पष्ट उपशमका अभाव। सुषुम्णाकाण्डमें परिवर्त्तन नहीं।

स्थितिकाल—बोध होनेके पश्चात् ६ मासमें क्वचित् ही अधिक।

चिकित्सा—हो सके तो कारणको दूर करें। रक्तका अन्तःसेचन जल्दी-जल्दी करते रहें, किन्तु गम्भीर प्रतिक्रिया; रक्तरंजनकी पृथक्ता, शक्तिपात सामान्य। कभी गौण कारण होनेपर रोगमुक्ति। यकृत्प्रयोग व्यर्थ। प्लीहाछेदन विचारणीय है।

पृथक्प्रकार—कभी मज्जाविकृतिमय पाण्डु तथा सान्निपातिक पाण्डुके बीच-वाली अवस्था। रक्तमें मामूली अन्तर होनेसे रोगनिर्णयमें कठिनता होती है। शवपरीक्षा करनेपर कतिपय अस्थियोंकी अपूर्ण उन्नति तथा कईयोंकी अत्यधिक उन्नति। कभी समान अस्थियोंके भीतर भी प्रभेद।

(६) सगर्भाका पाण्डु

(Anaemia of Pregnancy)

सगर्भाको अनेक प्रकारके पाण्डुरोगकी संप्राप्ति होती है। पाण्डु मंद या अति गम्भीर हो सकता है। आक्रमण गुप्त या आकस्मिक, एवं सगर्भावस्थामें या प्रसव होने

के पश्चात्। दानेदार सूक्ष्म रक्ताणुमय या स्थूलरक्ताणुमय (सगर्भाका सान्निपातिक पाण्डु) अथवा मिश्रित प्रकार इनकी यथासमय चिकित्सा हो सके इसलिये सगर्भाके रक्तपर योग्य लक्ष देना चाहिये।

इन्द्रियक्रियाविकृतिजन्य पाण्डु—रक्तके स्पन्दनोंकी आकृति (Volume) अन्तिम मासोंमें तरलीकरण द्वारा बढ़ जाती है तथा शरीरमें मात्रा बढ़नेपर भी रक्तरंजन का पतन लगभग ७५ प्रतिशत तक।

हेतु—

१. गर्भको आवश्यकता, विशेषतः लोहकी।

२. चंचल क्षुधा (कभी क्षुधा लगना, कभी न लगना)।

३. आमाशयस्रावमें परिवर्त्तन। मुक्त लवणाम्लका पतन (संभवतः आभ्यन्तरिक वाहक द्वारा)।

४. पहलेसे वर्तमान पाण्डु।

५. अपूर्ण भोजन।

६. उष्णकटिबन्धमें उदरकृमि (Hook worm) और विषम ज्वर।

वक्तव्य—क्वचित् कतिपय वाहक समसमयमें उपस्थित होनेपर मिश्रित पाण्डुकी उत्पत्ति।

गर्भपर असर—सूक्ष्म रक्ताणुओंकी वृद्धिसह मृदुतर पाण्डुमें प्रसव कालमें संतान पाण्डुसे पीड़ित नहीं होता। गम्भीर प्रकारमें प्रसवकालसे पहले ही गर्भपात।

सगर्भाके पाण्डुमें चिकित्सा भेदसे प्रकार—अ. उष्णकटिबन्धज पाण्डु तथा आ. सर्वसाधारण पाण्डु; भेदसे २ प्रकार।

अ. उष्णकटिबन्धमें सगर्भाका पाण्डु

(Tropical Anaemias of Pregnancy)

यह विशेषतः भारतमें होता है। सम्प्राप्ति पोषणकी न्यूनतासे।

महत्वकी स्वाभाविकस्थिति—

१. सूक्ष्म दानेदार रक्ताणुमय (सामान्य गौण पाण्डु) अथवा स्थूल दानेदार रक्ताणुमय (सान्निपातिक पाण्डु)।

२. सूक्ष्म रक्ताणुमय प्रकार स्थूलरक्ताणुमय प्रकारके भीतर बढ़ने वाला।

३. मुक्तलवणाम्ल विद्यमान या उपर्युक्त दोनों प्रकारोंका अभाव।

४. पुरुषोंको तथा सगर्भा न हो ऐसी स्त्रियोंको भी समान प्रकारके पाण्डु होते हैं। किन्तु स्थूल रक्ताणुमय पाण्डु प्रकार अतिक्वचित् ही।

आ. सगर्भाके सर्व साधारण पाण्डु प्रकार

(General Anaemias of Pregnancy)

समशीतोष्ण प्रदेशमें सूक्ष्म और स्थूल रक्ताणुमयपाण्डु, उन्हीं प्रकारोंके प्राप्त होते हैं। उष्णकटिबन्धके प्रकारोंसे इसका समुदय प्रभेद नहीं होता।

सूक्ष्म और स्थूलरक्ताणुमय प्रकार—दोनों प्रकारोंमें निम्न सामान्य स्वाभाविक स्थिति प्रतीत होती है।

१. आयुके साथ सम्बध नहीं।

२. २-३ संतानोंकी माताके लिये भी सामान्यतः यही स्थिति उपस्थित होती है। चिकित्सा न होनेपर स्थिति गम्भीरतर हो जाती है। रोगनिवारक चिकित्सा उसपर असर पहुँचाती है।

३. सगर्भावस्थामें समान्यतः लक्षणोंकी देरसे प्रतीति, किन्तु प्रसव या उत्तरकालतक नहीं रहते।

४. उपदंश, सगर्भाका सेन्द्रियविष, प्रसवकालमें रक्तस्राव, लवणाम्ल अभाव, गलनात्मक प्रकोप, इनमेंसे किसीके साथ इस स्थितिका सम्बन्ध नहीं है। यदि वे बाहक उपस्थित हों, तो कठिन अवस्थाकी प्राप्ति, जिसका चिकित्सासे प्रायः दमन नहीं होता।

सूक्ष्मरक्ताणुमय पाण्डु—

लक्षण—गौण पाण्डुके समान। प्रसवके पश्चात् नैमित्तिक वृद्धि और फिर चिकित्सासे प्रायः कभी।

चिकित्सा—शय्यापर आराम करावें। बड़ी मात्रामें लोह देवें। यीस्ट और यकृत्का परिणाम अनिश्चित; किन्तु उपयोग होनेका संभव है।

गम्भीरस्थिति—इसके लिये रक्तका अन्तःसेचन हितावह है। अन्य चिकित्सासे स्वल्प और मंद लाभ होता है। पाण्डु महीनों या वर्षोंतक स्थिर।

स्थूलरक्ताणुमयपाण्डु (सान्निपातिक पाण्डु)—

आक्रमण और क्रम—क्वचित् सगर्भाके अन्तिम मासोंमें लक्षणोंकी प्रतीति। कुछ स्त्रियोंमें पूर्ववर्त्ती पाण्डु हो सकता है। प्रसवतक लक्षण बढ़ते जाते हैं। कितनीक रुग्णाओंमें प्रसवकालमें लक्षण उपस्थित नहीं होते। उत्तरकालसे प्रसवतक लक्षण— अ. स्वतःसिद्ध शमन; आ. सत्वर प्रगति। यदि गलनशील क्षत है, तो परिणाम खराब। सुषुम्णाकाण्ड अपरिवर्तित।

लक्षण—निस्तेजताकी सत्वर अतिवृद्धि। रुग्णाका ईषत् पीतवर्ण, किन्तु कामला क्वचित्, ज्वर, श्वासकृच्छ्रता, वमन, अतिसार, गंभीर शोथ, त्रिदोषज रक्तपित्त (Perpura) और अति गम्भीर प्रकारमें रक्तस्राव आदि। प्लीहास्पर्शग्राह्य।

रक्तपरिवर्त्तन—महत्त्वके प्रकार ।

१. रक्ताणु और रक्तरंजक—गम्भीर सान्निपातिक (स्थूल रक्ताणुमय) पाण्डुके समान । स्थूल दानेदार रक्ताणु प्रायः लगभग १० लक्ष । बहुसंख्य दानेरहित स्थूल और सामान्य रक्ताणु । विविध रंगसे रंजित होने योग्य प्रकार—(Polycromasia) चिकित्सासे पूर्व जालदार अधिक ।

२. वर्णसूची—विविध, २ से ऊपर या १ से कम ।

३. श्वेताणु—सामान्यतः बढ़े हुए १०००० से २०००० । दाने रहित मज्जाणु और दानेदार मज्जाणु प्रायः वर्त्तमान ।

चिकित्सा—

१. रक्तका अन्तःसेचन । सब गम्भीर रुग्णाओंके लिये हितकर । पुनः सेचन की आवश्यकता ।

२. लोह ।

३. यकृत् या यीस्ट (प्रायः ग्रीष्मकटिबन्ध प्रदेशमें पर्याप्त ।)

(१०) हलीमक

क्लोरोसिज़-ग्रीनसिकनेस—Chlorosis-Green sickness. यह रोग युवा लड़कियोंको प्रायः १४ से २० वर्षकी आयुमें प्राप्त होता है । रक्तरंजकका नाश और क्षुद्र रक्ताणुओंकी उत्पत्ति । त्वचाका रंगनिस्तेज हरा-सा हो जाता है । पाण्डुके लक्षण उत्पन्न होते हैं । देहका शोष नहीं होता, बल्कि रुग्णा पुष्ट भासती है । यह रोग पुरुषों को अति क्वचित् होता है ।

विकृति—लवणाम्लस्राव रहित क्षुद्र रक्ताणुमय पाण्डुसे इसका भेद होता है । (१) प्राथमिक अवस्थामें पीड़ित । (२) मासिकधर्मका अभाव या स्वल्प । (३) कभी जिह्वा और नाखूनोंमें परिवर्त्तन । (४) लवणाम्लद्रव्यकी अधिक उपस्थिति । लोह प्रयोगसे सत्वर सुधार । (५) क्वचित् मस्तिष्ककी सीताओंमें शल्योत्पत्ति होकर मृत्यु । प्लीहा, लसीकाग्रन्थियाँ और अस्थि-मज्जाके भीतर कोई वैलक्षण्यकी प्रतीति नहीं होती । रक्तवारिमें भी परिवर्त्तन नहीं होता । रक्तस्थ ओजस पदार्थके परिमाणमें न्यूनता अथवा अधिकता हो जाती है । इनके अतिरिक्त सब धमनियाँ, विशेषतः बड़ी धमनियोंके भीतरकी कला मेदोपक्रान्तियुक्त हो जाती है; और उनकी दीवार पतली हो जाती है । हृदय की मांसपेशी मेदोपक्रान्तिग्रस्त होती है; तथा शोणित संचालन विधानमें भी इतर विविध अस्वाभाविकता आ जाती है । कारण—यह रोग विशेषतः सूर्यप्रकाश और शुद्ध वायुसे वंचित रहने वाली निर्बल स्त्रियोंको हो जाता है; किन्तु कभी-कभी अकस्मात् सबल स्वस्था युवतीको भी हो जाता है ।

लक्षण—स्थूलता, युवावस्था, पाण्डुता तथा क्षुद्ररक्ताणुमय पाण्डुके लक्षण-चिह्न, सबकी प्राप्ति होती है।

१. देखाव—(१) मुख-मण्डल निस्तेज और चिकना, किञ्चित् हरी प्रभावाला, इसे संज्ञा हरापन (क्लोरोसिज़) दी है, तथापि वह सर्वदा स्पष्ट नहीं। नेत्रका शुक्लमण्डल काला (नीला) और नेत्र तेजस्वी। (२) उप-त्वचामें वसाकी वृद्धि।

२. विशेषलक्षण—क्लान्ति, मासिकधर्मका अभाव, मलावरोध, पैरोंपर शोथ, हाथ-पैर शीतल। वातनाड़ियाँ आवेगशील। क्षुधा परिवर्त्तनशील। अपचन और आध्मान। जिह्वा और नख अप्रभावित।

चरकसंहिताके चिकित्सित स्थान (अ० २० श्लोक १२८—१२६) में कहे हुए श्रम, बलक्षय, उत्साहनाश, श्वास; हृदयस्पंदन, घबराहट, शिरमें शूल, कान गूंजना, अग्निमांद्य, हरी-पीली त्वचा, मलावरोध और चक्कर आना आदि सब लक्षण प्रतीत होते हैं। केवल 'स्त्रीस्वहर्षो' इस लक्षणका अर्थ पुरुष सहवासमें अप्रीति किया जाय, तो हलीमकके पूर्ण लक्षण मिल जाते हैं।

सामान्य लक्षण—श्वास छोटे। आमाशयमें आहार न होनेपर शूल। सर्वाङ्गमें स्थान-स्थानपर शूल। भोजन करलेनेपर १-२ घण्टेमें पेटमें भारीपन। दिन-प्रति-दिन शारीरिक क्षीणताकी वृद्धि। दोनों पैरोंमें भारीपन, मांसपेशियोंकी निर्बलता, मुँह हाथ, पैर, नेत्र, होंठ और गाल आदिमें निस्तेजता, इन सबपर कुछ शोथ, थोड़ा-सा कार्य करनेपर थकावट, मानसिक श्रम लेनेपर शिरःशूल और चक्कर आना, मनके उत्साह का नाश, निद्रावृद्धि तथा कभी-कभी १००-१०१ डिग्रीतक ज्वर आदि। कतिपय रोगियोंमें अपतन्त्रक (Hysteria) के लक्षणकी भी उत्पत्ति।

आमाशय रसस्राव—मुक्तलवणाम्लकी वृद्धि होती रहती है।

चिह्न—हृत्कोष विस्तार, हृदयमें सर्वत्र परिवर्त्तनशील मर्मर ध्वनि (Hemic Murmur) तथा मन्या शिरापर विलक्षण आवाज़-वेनस हम (Venous Hum) सुनी जाती है। जननेन्द्रियका यथोचित विकास न होनेसे स्तन छोटे रह जाते हैं।

रक्त—यह शुद्ध क्षुद्र रक्ताणुमय पाण्डु है। स्थूल रक्ताणु या अपूर्ण उन्नतिका स्वभाव नहीं है। रक्तरंजकका ह्रास (४०-५० प्रतिशत) यह मुख्य परिवर्त्तन है। रक्ताणुओंका सामान्य ह्रास। १ क्यूबिक मिली मीटरमें लगभग ४० लक्ष श्वेताणुओंमें बहुतकम परिवर्त्तन।

रोग विनिर्णय—इस रोगके और क्षयके कुछ लक्षण समान किन्तु निष्ठीवन परीक्षा, ज्वराधिक्य, प्रस्वेदकी अधिकता, श्वास और कास आदि लक्षणोंसे क्षय रोग पृथक् हो जाता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना—क्षुद्र रक्ताणुओंकी विकृतिके समान। लोहभस्म

का सेवन करानेपर सत्वर लाभ। डॉक्टरी मत अनुसार भोजनमें दूध और यकृत्से विशेष लाभ नहीं पहुँचता। मलावरोध होनेपर आवश्यकतानुसार मृदु विरेचन देते रहें।

यदि रक्तमें ३५ लक्षसे कम रक्ताणुओं, तो आराम करावें तथा हृदयका संरक्षण करें। रोग जीर्ण होनेपर मुक्तलवणाम्ल सामान्य रहता है। अधिक नहीं होता। फिर लक्षण लवणाम्लस्राव रहित सामान्य पाण्डुके सदृश भासते हैं। एवं चिकित्साभी उसके अनुरूपकी जाती है।

आयुर्वेदके मत अनुसार नवायसरस या ताप्यादिलोह च्यवन प्राशके साथ दिया जाता है। विशेष विचार पाण्डुरोगकी चिकित्सामें आगे किया है।

(११) कृमिज हलीमक (पाण्डु)

(अन्कायलोस्टोमिएसिज़—Ankylostomiasis).

अमेरिकन नाम—Hookworm disease or uncinariasis.

गौण नाम—Miner's anaemia, Tropical Chlorosis, Tunnel disease, Egyptian Chlorosis.

परिचय—यह रोग अन्त्रदाकृमि (Hook worm) जन्य विषप्रकोपसे उत्पन्न होता है। इस कृमिका वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम-खण्डमें किया है। इस रोगके लक्षण आयुर्वेदीय हलीमकके समान भासते हैं। यह रोग उष्ण और उपोष्ण कटिबन्ध प्रदेशोंमें फैलता है। भारत और सिलोनमें इस रोगसे जनता अधिक पीड़ित होती है।

कृमि—मुख्य समूह २ हैं। पुराने जगतमें अन्कायलोस्टोमा डियोडीनल। नये जगत् (अमेरिका) में नेक्टर अमेरिकन्स या अनसिनेरिया अमेरीकन (हूक वर्म) ये दोनों छोटे, नली सदृशगोल नेमटोड (Nematode) जातिके कृमि हैं।

सम्प्राप्ति—शवको चीरकर परीक्षा करनेपर देह सुपोषित, किन्तु निस्तेज; हृदय, यकृत् और वृक्कस्थान वसामय, लघुअन्त्रकी श्लैष्मिक-कलामें स्थानिक रक्तस्राव, रसस्राव तथा अन्त्रमें एक हज़ारसे अधिक कृमि विद्यमान आदि चिह्न प्रतीत हुए हैं।

लक्षण—इस विकारमें भी हलीमक कथित अनेक लक्षण प्रतीत होते हैं।

कण्डू—कृमिके प्रवेशस्थानपर (विशेषतः पैरोंके तलमें) लाली आना और १ से २ सप्ताह तक खुजली चलती रहना। यह लक्षण कुछ महिनोंके पहलेसे होता है।

+ विशेषलक्षण—(१) पाण्डु, धड़कन, शोथ और तन्द्रा। (२) पचन संस्थानमें पीड़ा—कौड़ी प्रदेशमें वेदना, दबानेपर अधिक पीड़ा। गम्भीर स्थितिमें उबाक, क्षुधा विकृति, विशेषतः मिट्टीखानेकी आदत होजाना (geophagy), देहकी सामा-

+ सुश्रुत संहिताकार लिखते हैं कि:—

ज्वरो विवर्णता शूलम् हृद्रोगः सदनम् भ्रमः।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातः कृमिलक्षणम्॥

न्यतः स्थूलता (वसावृद्धि हो जानेसे), उदरमें गड़गड़ाहट, मलावरोध अथवा अनियमित अतिसार । (३) मस्तिष्ककी जड़ता-उदासीन मुख-मण्डल, एकाग्रताका ह्रास । (४) बालकोंमें शारीरिक उन्नतिमें प्रतिबन्ध । ग्रन्थियों,प्लीहा या यकृत्की वृद्धिका अभाव ।

अन्य लक्षण--ज्वर विविध मात्रामें, प्रायः क्षणमें बढ़नेवाला । श्वासकी लघुता, धड़कन, चक्कर आना, पाण्डु या पीताभ त्वचा, बलक्षय, कर्णगुंज(Tinnitus), दृष्टिमान्द्य, दृष्टिमणिमें रक्तस्राव । देहके वज़नका ह्रास न होना । त्वचाका रंग पाण्डु या इषत् पीत ।

रक्तमें परिवर्त्तन, सूक्ष्म रक्ताणुमय पाण्डु, रक्तरंजक ४०-५० प्रतिशत, क्वचित् इससे भी कम, वर्णसूची कम । रक्ताणुओंमें किञ्चित् परिवर्त्तन नैमित्तिक जीवकेन्द्रमय रक्ताणु और स्थूल जीवकेन्द्रमय रक्ताणुओंकी उपस्थिति । श्वेताणुओंमें अम्लरंगेच्छु १५ से ५० प्रतिशत मलमें रक्त जाना, किन्तु स्पष्ट रक्तस्राव क्वचित् ।

स्थितिकाल—चिरकारी प्रायः अनेक वर्षोंतक । आशुकारी क्वचित् ।

गम्भीर संक्रमणमें अन्तिमस्थिति—पाण्डु कतिपय उपद्रवोंसह । शीर्णता, शोथ, रक्तरसका स्राव तथा क्लान्ति या उपद्रवात्मक रोगसे मृत्यु ।

रोगविनिर्णय—प्राथमिक कण्डू, मस्तिष्क जड़ता, मलमेंसे कृमिके अण्डेकी प्राप्ति (अजवायनसत्व देनेपर), रक्तमें अम्लरंगेच्छुकी वृद्धि आदि लक्षण—चिह्नोंसे निःसन्देह निर्णय ।

चिकित्सा—अन्त्रदा कृमिनाशक चिकित्सा मुख्य है । अजवायन सत्व (Thymol) देकर विलायती नमक (मेग-सल्फ) का विरेचन देना । इस रोगके लिये डॉक्टरीमें कार्बोन टेट्राक्लोराइड (Tetrachloride) विशेष औषधि मानी गई है, इसके देनेके ३ घण्टे बाद मेग-सल्फका (Mag. Sulphas) विरेचन देना पड़ता है । इसतरह डॉक्टरीमें चेनोपोडियमका तैल भी केपसुलोंमें देते हैं ।

इस रोगसे पीड़ितोंको शौच जानेकी टट्टियों (Latrines) का उपयोग दूसरोंको नहीं करना चाहिये अथवा जूते पहनकर जाना चाहिये । अन्यथा पैरोंके तलमेंसे कृमिका प्रवेश देहमें हो जाता है ।

इस रोगसे पीड़ितोंको जल उबालकर शीतल किया हुआ देना चाहिये । भोजनमें कब्ज़ करनेवाला पदार्थ न दें । शराब और क्लोरोफार्म न देवें ।

श्वेताणुवृद्धिमय विवेचित विकार

(Leucocytosis and Leucopenia.)

बहुजीवकेन्द्रमय श्वेताणुवृद्धि—(Polynuclear Leucocytosis) सामान्यतः सबप्रकारके श्वेताणु और अम्लरंगेच्छुके कुछ प्रतिशत, इनकी वृद्धि निम्नावस्थामें होती है ।

१. आशुकारी संक्रमण—विशेषतः पूयोत्पादक कोकाई कीटाणुका ।

२. सेन्द्रिय अन्तर्विष और औषधियाँ—मधुमेहज संन्यास, रक्तमें मूत्रसंग्रह, यकृद्दाली आदिरोग; सेलीसिलेट, बेंज़ोल आदि औषध विष (सूक्ष्म मात्रामें)

३. विविध विकृति—अर्बुद, ग्रन्थियोंका क्षय या अन्यप्रकारका प्रदाह ।

४. गम्भीर रक्तस्राव ।

५. प्रसवकालके लगभग ।

६. प्लीहाच्छेदन (कुछ कालके लिये) ।

सबमिलकर श्वेताणु १०००० से ३०००० या क्वचित् १ लक्ष प्रति क्यूबिक मिलीमीटर भी हो जाते हैं । ये कोषाणु सामान्यकी अपेक्षा अति प्राचीन हैं। जो केन्द्रमय कम विभाजित होते हैं ।

अति गम्भीर संक्रमण होनेपर श्वेताणुओंका ह्रास । फिर बहु केन्द्रमय श्वेताणुओंकी संख्या सामान्यतः अत्यधिक (८० से ९०) ।

लसीकाणुवृद्धि (Lymphocytosis)—विशुद्ध लसीकाणु वृद्धिमें सब श्वेताणु और लसीकाणुओंके कतिपय प्रतिशतकी वृद्धि सम्प्राप्ति निम्नावस्थामें ।

१ मज्जाके पुनर्जननसह श्वेताणुवृद्धि (Leucaemia) और विविध अर्बुदमय स्थिति ।

२. कालीखांसी ।

३. लसीका कर्षक विष समूहोंका संक्रमण—उदा० बालकोंका जनपदव्यापी ज्वर (Glandularfever), जर्मन रोमान्तिका आदि। कदापि पूयोत्पादक(Septic) संक्रमण नहीं । बालकोंमें लसीकाणुके कुछ प्रतिशत वृद्धि । सामान्यतः (४०%लगभग)। ६ वर्ष तककी आयुमें और प्रायः ज्वरावस्थामें वृद्धि। अम्लरंगेच्छुका ह्रास होनेसे लसीकाणुकी वृद्धि। यह स्थिति शारीरिक निर्बलता और कतिपय विशेष ज्वरोंमें। रक्त और मज्जामेंसे दानेदार श्वेताणुओंका लगभग अभाव होनेपर भी । लसीकाणुओंका ह्रास विटामिनकी अपूर्णता और 'क्ष' किरण प्रयोगकी अधिकता होनेपर।

क्षारप्रिय श्वेताणुवृद्धि (Eosinophilia)—४ प्रतिशतसे अधिक। बढ़कर ५० प्रतिशत या अधिक हो जाते हैं । वृद्धि निम्नावस्थामें ।

१. अन्त्रमें परोपजीवीकृमि—गोलकृमि, फीता सदृश कृमि, रसार्बुदके कृमि, श्लीपदकृमि, बिलहार्जिया, ट्राइकीनेला आदि कृमि ।

२. त्वचारोग—विचर्चिका (Psoriasis) आदि।

३ अस्वाभाविक चेतनावृद्धि—रक्तरसकी प्रतिक्रिया, तमकश्वास ।

४. मज्जाविकृतिमय श्वेताणुवृद्धि, रक्ताणुवृद्धि ।

५. लसीकार्बुद, मन्द, स्थिरनहीं। यह रोग निर्णायक नहीं ।

६. ज्वरमें आक्षेप—आशुकारी आमवातिक और शोष ज्वरमें ।

७. भोजनमें यकृत् अत्यधिक होनेपर ।

८. उष्ण कटिबन्धके अपरोपजीवीसे तथा कौटुम्बिक अम्लरंगेच्छु श्वेताणुवृद्धिसे—अस्पष्ट, क्षणिक और अनिश्चित लक्षण ।

९. अम्लरंगेच्छु और श्वेताणु, दोनोंकी वृद्धि (वर्णन आगे किया जायगा) ।

१० इमेटीनसे चिकित्सा ।

अम्लरंगेच्छुका ह्रास (इयोसिनोपिनिया-Eosinopenia)-आशुकारी संक्रमण और विशेष प्रकारके ज्वरमें ।

एक जीवकेन्द्रमय स्थूल श्वेताणुवृद्धि (Monocytosis)—इसका ज्ञान नूतन और अपूर्ण है । स्थूल श्वेताणुवृद्धिमय रोग (Monocytic-Leukaemia), आशुकारी प्रदाहज ज्वर और जर्मन रोमान्तिकामें तथा आशुकारी संक्रामक रोगोंकी अन्तिमावस्थामें उत्पन्न होता है । लक्षणात्मक नेत्रप्रदाह, वातक, मन्दवेगी हृदयान्तरप्रदाह (Endocarditis-Lenta) और पिटिकामय क्षयमें यह रोग निर्णायक है ।

क्षाररंगेच्छु (Pasophils)—इसकी वृद्धि मज्जातन्तु विकृतिमय श्वेताणुवृद्धि (Myeloid leukaemia) में, इसमेंभी विराम कालमें वृद्धि चालू रहती है और आशुकारी आक्रमणमें ह्रास ।

श्वेताणुह्रास (Leucopenia)—श्वेताणु ४००० से कम हो, तो अस्वाभाविक माने जाते हैं । सब प्रकारके श्वेताणुओंके ह्रासको अत्र श्वेताणु ह्रास संज्ञा दी है, किन्तु सर्वदा सामान्यतः उदासीन श्वेताणुओंका ह्रास (Neutropenia) होता है तथा इसके साथ लसीकाणुओंकी वृद्धि होती है ।

मध्यमावस्था—इन्फ्लुएन्झा, रोमान्तिका, ग्रंथिज्वर, अन्त्र पीड़ा और सन्धिशोथमय संक्रामक ज्वर (Undulant Fever), शारीरिक निर्बलता, प्रतिक्रियात्मक आघात तथा प्लीहामें उदासीन श्वेताणुओंका रोध आदिमें सामान्य ह्रास होता है । लक्षण प्रकाशित ।

बढ़ीहुई अवस्थामें—गोणसंक्रमणसे ।

१. रक्त और मज्जाकी व्याधियाँ—मज्जाविकृतिमय पाण्डु, सान्निपातिक पाण्डु तथा तन्तुपरिवर्त्तनसह श्वेताणुवृद्धि(Aleukaemic Leukaemia) में ।

२. गम्भीर सेन्द्रियविषप्रकार और विषप्रयोग -बेन्ज़ोलमिश्रण, राईकी गैस, सुवर्ण, मल्ल और भारी धातु, 'क्ष' किरण और रेडियमका प्रयोग ।

३. रक्त और मज्जामें दानेदार श्वेताणुओंका लगभग अभाव (Agranulocytosis) रक्ताणु और चक्रिकाएँ इसप्रकारमें साधारण ।

(१२) श्वेताणुवृद्धिमय श्लैष्मिक पाण्डु

(ल्युकेमियाज़—Leukaemias)

इन रोगोंकी उत्पत्ति रक्त उत्पादक तन्तुओंकी अव्यवस्थासे होती है। यह विशेषतः रुधिराभिसरणमें सामान्य श्वेताणुओंके पूर्ववर्त्ती मूलद्रव्यकी उपस्थितिका निर्देश करती है। रोगकी संप्राप्ति अज्ञात। यह स्थिर, घातक विकृति है।

वर्गीकरण—रक्तरचना दृष्टिसे इसके ३ मुख्य प्रकार होते हैं।

१. मज्जा या मज्जातन्तु-सामान्यतः दानेदार श्वेताणु और लाल घटकोंकी रचनामें सम्बन्ध रखता है।

२. लसीकातन्तु—इसमें लसीका ग्रन्थियाँ तथा लसीकातन्तुके जो सबसे छोटा संग्रह हो, इन सबका अन्तर्भाव होता है। ये सामान्यतः दानेरहित श्वेताणुओं या लसीकाणुओंकी रचनासे सम्बन्ध वाले हैं।

३. जालदार अन्तराकलागत तन्तु–ये बृहद् श्वेताणु (जीवकेन्द्रमय) की रचनामें साक्षात् सम्बन्ध रखता है।

श्वेताणु वृद्धिमय विकारमें ये संस्थान पृथक्-पृथक् रूपसे प्रभावित होते हैं, जिससे पृथक्-पृथक् प्रकार बन जाता है। फिर वे वैयक्तिक संस्थानके अपक्व कोषाणुओंके अनुपातमें रक्तके भीतर उपस्थिति अनुसार प्रकृति निर्देश करता है। इन ३ प्रकारोंके मिश्रणसे कतिपय प्रकारकी स्थिति न्यूनाधिक अवस्थामें श्वेताणुवृद्धि विकारके लक्षण प्राप्त होती है। जिससे वर्गीकरण अनिश्चित है तथा यह संदेहास्पद है कि, जो कोई श्वेताणु विकृतिसे सम्बन्ध वाले हैं, उनको इस समूहमें साथमें रखना चाहिये या नहीं ?

प्रकार—१. मज्जाविकृतिमय श्वेताणुवृद्धि (Myeloid leukaemia)।

अ. आशुकारी (जीवकेन्द्रमय मज्जाणुसह), आ. चिरकारी।

२. लसीकाविकृतिसह श्वेताणुवृद्धि (Lymphoid leukaemia)।

अ. आशुकारी; आ. चिरकारी।

३. जीवकेन्द्रमय बृहद् श्वेताणुवृद्धि (Monocytic leukaemia) आशुकारी।

४. विविध, अनादर्श श्वेताणु वृद्धिमयविकार और स्थिति, जो इस रोगके सदृश हो।

(चित्र नम्बर १४-१५ देखें)

वक्तव्य—उक्त ३ आशुकारी प्रकार व्यवहार दृष्टिसे अविभेद्य लक्षणात्मक होनेसे साथमेंही विवेचित होते हैं। जीवकेन्द्रमय बृहच्छ्वेताणु प्रकार अत्यन्त क्वचित ही उपस्थित। चिरकारी कोई भी प्रकार अंगीकार करने योग्य नहीं है। चिरकारी मज्जा विकृतिमय प्रकार अत्यन्त सामान्य। बृहल्लसीकाणु विकृतिमय प्रकार अत्यन्त चिरकारी प्रकार है, किन्तु अति क्वचित्।

मज्जासंस्थान—दाने रहित (Myeloblasts) का बृहज्जीवकेन्द्र स्पष्ट रंग-

दार रचनासह कितनेक चक्रोंवाला और गहरे नीले जीवनरस (Cytoplasm) के चक्रद्वारा घिरा हुआ होता है। ये कीटाणु भक्षक नहीं है। यह सामान्यतः रक्तमें नहीं मिलता, किन्तु मज्जामें कितनेक मिलते हैं। मज्जाणु और बहुजीवकेन्द्रमय घटकोंके अग्रगामी होनेपर श्वेताणुवृद्धिमय रक्तमें २ प्रकार हो जाते हैं।

(१) जीवकेन्द्रमय बृहत् मज्जाणु—इसमें चक्र चौड़ा। तुलनात्मक दृष्टिसे जीवकेन्द्र कम रंजित। प्रथिन सरलतासे विदित होती है।

(२) जीवकेन्द्रमय सूक्ष्म मज्जाणु—छोटे लसीकाणुओंके सदृश।

उक्त मज्जाणुओंकी रक्तमें उपस्थिति निम्नरोगोंमें होती है—(१) जीवकेन्द्रमय दानेरहित मज्जाणुयुक्त श्वेताणुवृद्धि; (२) चिरकारी मज्जाविकृतिमय श्वेताणुवृद्धि, यह विविध प्रकारमें उपस्थित, सामान्यतः कमसंख्यामें (कुछ प्रतिशत); (३) नैमित्तिक, अति कम संख्यामें, जब मज्जाकी क्रियाशीलता अति बढ़ जाती है तब, उदा० घातक श्वेताणुवृद्धिमें।

एक जीवकेन्द्रमय दानेदार मज्जाणु–(Myelocites)–ये कीटाणु भक्षक हैं। ये बहुजीवकेन्द्रमय लसीकावृद्धि, मध्यवर्तीप्रकार तथा परिवर्त्तन योग्य प्रकार के अग्रगामी दूत हैं। दाने सुन्दर उदासीन, अम्लरंगेच्छु या क्षार रंगेच्छु, सब प्रकारमें उपस्थित, जीवकेन्द्र गोल या अण्डाकार, मध्यवर्ती प्रकारमें घोड़ेकी नालके आकारका। प्रथिन अनुपस्थित। सामान्य प्रकार अंतिम दानेदार उदासीन मज्जाणु हैं।

इनकी रक्तमें उपस्थिति हो ऐसे रोग – (१)चिरकारी मज्जाविकृतिमय श्वेताणुवृद्धि; (२) मज्जाका अधिक कार्यकारीपन होनेपर सब अवस्थाओंमें थोड़ी संख्यामें उपस्थित; उदा० गम्भीर श्वेताणुवृद्धिमय रोग (गलनात्मक)।

परिवर्त्तनशील अवस्था–(Transitional stages)–दानेदार और दानेरहित एक जीवकेन्द्रमय मज्जाणुओंके बीचकी अवस्थामें जो घटक है, तथा दानेदार एक जीवकेन्द्रमय मज्जाणु और सामान्य लसीकाणुके मध्यवर्ती अवस्थामें भी जो घटक हैं, वे सब परिवर्त्तनशील हैं। इनकी संख्या सामान्यतः कम रहती है; किन्तु श्वेताणुवृद्धिमय विकारमें कभी-कभी इस प्रकारके आच्छादनमय घटक उपस्थित होते हैं। उदा० जीर्ण दानेरहित एक जीवकेन्द्रमय जीर्ण मज्जाणु प्रथिनोंके और इस तरहकी आकृतिके अभावसह कितनेक दाने धारण कर लेते हैं।

लसीका संस्थान—जीवकेन्द्रमय लसीकाणुओं लसीकाणुके अग्रदूत हैं। ये ठीक एकजीवकेन्द्रमय दानेरहित मज्जाणुके सदृश हैं।

अन्तराकला जालदार संस्थान—बृहद् श्वेताणुओंकी रक्तरचनाके स्थानमें (वर्णन इसी श्वेताणुवृद्धिके वर्गीकरणमें पहले किया है) श्वेताणुवृद्धिमय विकारमें इन घटकोंके भीतर इन ३ प्रकारका अन्तर्भाव होता है। अ. आदर्श बृहच्छ्वेताणुवृद्धि। आ. बृहच्छ्वेताणुक्रम अस्पष्ट जीवनरस सह, जो सामान्य श्वेताणुओंके अग्रगामी दूत हैं।

४. स्वच्छ जीवनरससह श्वेताणु, जो दाने रहित एकजीवकेन्द्रमय मज्जाणुके सदृश है, सामान्यतः अति भंगुर है। ये सब प्रकार एमिबा सदृश संचलनशील हैं।

(१२ A.) श्वेताणुवृद्धिमय श्लैष्मिकपाण्डु
(Acute Leukaemia)

यह आशुकारी घातक रोग है। इस रोगमें रक्तके भीतर मौलिक एकजीवकेन्द्रमय श्वेताणु या उसके ठीक सदृश घटकोंकी अधिक मात्रामें उपस्थिति होती है।

मुख्य प्रकार—

१. आशुकारी दानेरहित एक जीवकेन्द्रमय मज्जाणुसह या मज्जातन्तु विकृतिमय श्वेताणुवृद्धि (Acute Myeloblastic or Myeloid Leukaemia)।

२. आशुकारी दानेरहित जीवकेन्द्रमय या लसीकाणुमय श्वेताणुवृद्धि (Acute Lymphoblastic or Lymphoid Leukaemia)।

३. जीवकेन्द्रमय स्थूल श्वेताणुवृद्धिमय विकार (Monocytic Leukaemia)

इन तीनों प्रकारके रोगदर्शक लक्षण और क्रम ठीक समान हैं। अतः उनका एक साथ वर्णन किया जायगा। विशेष लक्षण फिर लक्ष्यमें आते हैं। प्रबल घटकोंके प्रकारका निर्णय संप्राप्ति दृष्टिसे होता है; किन्तु रोगपरीक्षा दृष्टिसे महत्वके नहीं हैं। मज्जाणु लसीकाणु और कुछ बृहद् श्वेताणुके सदृश होनेपर तारतम्यता प्रायः कठिन है। ये सब प्रकार क्वचित् ही होते हैं।

कतिपय अनादर्श श्वेताणुवृद्धि विकारभी आशुकारी होते हैं। उदा० मज्जाघटकोंके अन्तर्भरण और हरिताभ श्वेताणुवृद्धिमय विकार (Chloroma)। इसका वर्णन आगे पृथक् किया जायगा।

निदान—यह रोग सामान्यतः २० वर्षके भीतरके व्यक्तियोंको होता है। २ पुरुष और १ स्त्री का अनुपात। यह वंशागत नहीं है। इसके कोई पूर्ववर्ती रोग या वाहक नहीं हैं।

लक्षण और चिन्ह—निम्न लक्षणोंमेंसे कोई भी एक प्रमुख विशेष लक्षण ध्यान खींचता है।

१. निस्तेजता—प्रथम परीक्षाकालमें गम्भीर पाण्डु और थकावट।

२. शोथ और मसूढ़ेपर क्षत—गालमें भी, गलग्रन्थियोंकी वृद्धि, प्रायः अधिक गम्भीरता।

३. रक्तस्राव—पुनः-पुनः मसूढ़े, नाक, आमाशय, गुदनलिका (तथा स्त्री हुआ होनेपर) योनिमार्गसे भी।

४. त्रिदोषज रक्तपित्त (Purpura)।

५. लसीकाग्रन्थियोंकी वृद्धि—अत्यधिक रोगियोंमें, किन्तु क्वचित् अति वृद्धि।

सामान्यतम, सबसे पहले और अधिकतम लसीकाविकृतिमय प्रकारमें । अन्य प्रकारमें अभाव किन्तु सामान्यतः पाक होता है ।

अन्य विशेष लक्षण—

६. प्लीहावृद्धि—७५ प्रतिशतमें स्पर्शग्राह्य; किन्तु कभी पहले लक्ष्य आकर्षित नहीं करती । सामान्यतः साधारण किन्तु कभी अन्तमें नाभितक । यकृत् भी सामान्यतः बढ़ा हुआ ।

७. वमन—प्रायः अति प्रबल, देरसे । अतिसार कम सामान्य ।

८. ज्वर कभी अभाव । प्रायः १०३° से १०४° ।

९. अर्बुद और उभार—श्वेताणुओंका संग्रह होकर उभार या किसीभी प्रकार की गांठे बनती हैं । उदा० त्वचा, मसूड़े या फुफ्फुसान्तराल प्रदेशमें अधिकतर लम्बे समय तक । प्रायः बैंजनी आभायुक्त । मसूड़ेपर श्वेतपिण्डके आकारमें ।

क्रम—निस्तेजता लक्षण प्रारम्भ कालमें, कभी अन्य कथनीय लक्षणसह, रक्तस्राव, प्लीहा और ग्रन्थियाँ बढ़नेके पश्चात् सत्वर स्पष्ट रक्तस्राव और रक्तपित्त (Purpura) सदृश स्राव । कितनेक रोगियोंमें ग्रन्थि और प्लीहा नहीं बढ़ती । रोगकी वृद्धि चालू रहती है, और निर्बलता सत्वर बढ़ती जाती है, विशेषतः इस अन्तिम समूहमें । विराम क्वचित् । सर्वसामान्यस्थिति व्याकुलतामय । वमन सामान्यतः दुःखदायी, रक्तस्राव नहीं होता । पाण्डु और थकावटसे मृत्यु ।

अरिष्ट—मृत्यु कुछ समयमें नियत । बोध होनेके पश्चात् प्रायः कुछ दिनोंसे कुछ सप्ताहोंमें, नैमित्तिक कुछ मासके बाद ।

रोगविनिर्णय—लक्षणोंसे सामान्य, किन्तु नियत नहीं । रक्तपरीक्षा करनी चाहिये । एकजीवकेन्द्रमय मज्जाणुके प्राबल्यसे निर्णय सरलतासे । निम्न रोगोंमें प्रभेद करना चाहिये ।

१. रक्तस्रावीय रोग—रक्तपित्त (पर्प्युरा, स्कर्वी) में यदि प्लीहाके स्पर्श ग्राह्यपनका अभाव हो, तो उसका मूल श्वेताणुवृद्धिमय विकार है, ऐसी सिद्धि नहीं हो सकेगी । आशुकारी रक्तस्रावमय पर्प्युरा आशुकारी श्वेताणुवृद्धिपाण्डु सदृश होता है ।

२. आशुकारी श्वासावरोधक आक्रमण (Angina)—इसके किसी भी रोगीमें मुखपाक या मसूड़ेका शोथ हो, जो चिकित्सामें प्रतिबन्धक होता हो, तो रक्त परीक्षासे निर्णय करना चाहिये ।

३. संक्रामक हृदयान्तरप्रदाह शोणित विष प्रकोप (Septicaemia) आदि पर्प्युरा और ज्वरकी विद्यमानता होनेपर ।

वक्तव्य—आक्रमण होनेपर बहुजीवकेन्द्रमय श्वेताणुवृद्धिकी प्रबलावस्थामें भ्रम होता है । उदा० १ लक्ष या अधिक प्रति मि० मी० होनेपर दानेदार जीवकेन्द्रमय

मज्जाणु प्रायः मध्यम संख्यामें होते हैं, जो श्वेताणुवृद्धिमय पाण्डुका भ्रम कराता है; विशेषतः गलनात्मक (Septic) प्लीहासह होनेपर।

४. आशुकारी विशेषज्वर—रक्तस्रावमय विषप्रकोपसह। उदा० मोतीझरा, प्रलापक सन्निपात।

५. एकजीवकेन्द्रमय श्वेताणुवृद्धि—आशुकारी ग्रन्थिज ज्वर (Glandular fever) और अन्य अवस्थाओंमें।

६. दानेदार श्वेताणुओंका लगभग अभाव—(Agranulocytosis)।

चिकित्सा—उपशमकारी करें। 'क्ष' किरण, मल्लक आदि व्यर्थ; किन्तु फिरभी सामान्यतः बढ़ी हुई वमन आदि लक्षणोंके विद्यमान होनेपर परीक्षा करें।

आयुर्वेदिक फलत्रिकादि क्वाथ, पंचामृत लोह मण्डूर, योगराजरस, नवायसरस आदि उपयोगी हैं; किन्तु वमन विरेचन, बस्ति आदि क्रियाद्वारा पहले संशोधन करने की अति आवश्यकता है।

(१३) आशुकारी दानेरहित मज्जाणुसह श्वेताणुवृद्धि
(Myeloblastic Leukaemia)

इसमें प्राथमिक और गौण, दो भेद हैं। आशुकारीका अन्त चिरकारी मज्जातन्तु विकृतिमय विकारमें होता है।

रक्त—परिवर्त्तन प्राथमिक और गौण प्रकारोंमें समान।

श्वेताणु—संख्या ३०,००० से २,००,००० प्रति मि० मी० या अधिक।
श्वेताणु ह्रास भी प्रथम परीक्षामें हो सकता है, विशेषतः गौण समूहमें। संख्या फिर शीघ्रतासे बढ़ जाती है।

प्रबल श्वेताणु दानेरहित जीवकेन्द्रमय मज्जाणु हैं। स्थूल या लघु प्रकारके ६० प्रतिशत या अधिक, कुछ दानेदार जीवकेन्द्रमय मज्जाणु और बहुकेन्द्रमय श्वेताणुभी सर्वदा उपस्थित।

रक्ताणु—प्रथमपरीक्षामें सामान्य; किन्तु पाण्डु शीघ्र बढ़ता है और चरमसीमातक पहुँच जाता है। वर्णसूची प्रायः अधिक। दानेरहित सामान्य और दानेरहित स्थूल, ये नानाविध संख्यामें, कमी अधिक संख्यामें।

सम्प्राप्ति—प्लीहा और लसीका ग्रन्थियोंकी सामान्यतः वृद्धि। ग्रन्थिका भेदन करनेपर क्षणिक हरी आभा। यकृत् प्लीहा मुक्तलोहमय, रस त्वचा और अन्यत्रसे रक्तस्राव।

मज्जालाल या धूसराभ। व्यापक अस्वाभाविक घटकोंकी वृद्धि। सब रक्तरचनाकर तन्तु प्रबल घटकोंसह अन्तर्भरणयुक्त।

अन्तिमकुछ दिनोंमें रक्तमें अस्वाभाविक वसाकी विद्यमानता (Lipemia),

रक्तरस अस्पष्ट दुग्धवर्णका। कभी दुग्धाभ रक्त (अधिक स्पष्टरूपसे कहें तो वसा सदृश द्रव्यकी उपस्थिति)।

आशुकारीमज्जातन्तु विकृतिमयश्वेताणु वृद्धि—आशुकारी क्रम, किन्तु रक्त चिरकारी विकारके अनुरूप। यह अति क्वचित्।

(१४) आशुकारी दानेदार लसीकाणुवृद्धिसह श्वेताणु विकृति

(Lymphoblastic or Acute Lymphoid Leukaemia)

इसप्रकारमें लसीका ग्रन्थियाँ सामान्यतः बढ़ी हुई किन्तु नियमपूर्वक सर्वदा नहीं। श्वेताणु प्रायः प्रथम निरीक्षणकालमें १०,००० के भीतर; सामान्यतः श्वेताणु ह्रास २००० से ४०००। फिर २०,००० से १,००,००० तक। प्रबल घटक लसीकाणु प्रायः सर्वदा छोटे प्रकारके सब मिलाकर ९९ प्रतिशत। दानेदार लसीकाणु अल्प। जीवकेन्द्रमय रक्ताणु मज्जाणुविकृति समान।

श्वेताणुओंकी संख्यामें सत्वर न्यूनाधिकता, सामान्य मर्यादाके भीतर। सार्वाङ्गिक स्थितिका पतन और पाण्डुकी क्रमशः वृद्धि।

सम्प्राप्ति—प्लीहाका अन्तर्भरण और लसीका ग्रन्थियोंकी वृद्धि। मज्जा और रक्तरचनाकर तन्तुओंकी स्थिति जीवकेन्द्रमय दानेरहित मज्जाणु वृद्धिमय श्वेताणु प्रकोप (Myeloblastic Leukaemia) के अनुरूप। आदर्श बड़े बृहल्लसीकाणु, क्वचित् अत्यधिक बड़े।

(१५) एक जीवकेन्द्रमय बृहच्छ्वेताणु वृद्धिसह श्लैष्मिक पाण्डु

(Monocytic Leukaemia)

यह क्वचित् ही होता है। सामान्यतः अति आशुकारी। आक्रमण प्रायः अति स्पष्ट। मसूड़े प्रायः वेदनामय, निस्तेज शोथ, रक्तस्राव निश्चित नहीं। प्रायः रक्तपित्त (Purpura) के अतिरिक्त गम्भीर। ग्रन्थियाँ सामान्यतः बढ़ी हुई।

रक्तमें श्वेताणुओंकी संख्या विविध। श्वेताणु ह्रास या अधिक संख्यामें। प्रधान घटक दानेदार एक जीवकेन्द्रमय श्वेताणु है, जो अस्वाभाविक अनुपातमें, किन्तु अन्य घटकोंका बहिष्कार नहीं होता। प्रारम्भमें प्रायः २० से ५० प्रतिशत। फिर बढ़कर ७० से ९० प्रतिशत। रक्ताणु अन्य प्रकारोंके समान।

(१६) चिरकारी मज्जातन्तु विकृति और श्वेताणुवृद्धिमय पाण्डु

(Chronic Myeloid Leukaemia)

गौणनाम–Spleno-medullary Leucaemias Myelosis.

यह मज्जातन्तु प्रभावित होनेसे उत्पन्न घातक अव्यवस्थित रोग है। मज्जा घटक रक्तके भीतर अस्वाभाविक अतिवृद्धि तथा प्लीहा वृद्धि दर्शाता है।

रक्तके भीतर अस्वाभाविक आकारके क्षुद्र लसीकाणुओंकी वृद्धि (चित्राङ्क १४)
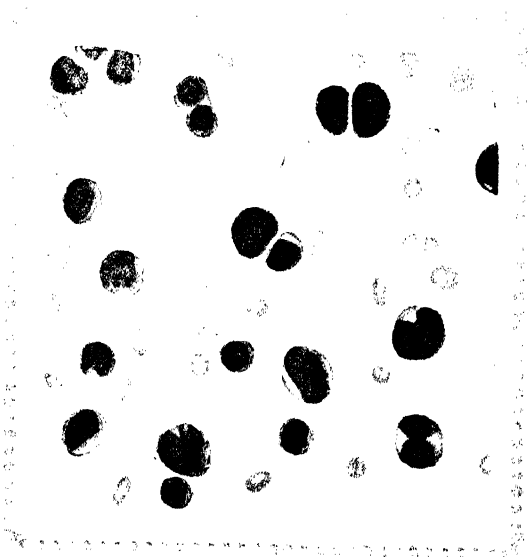
THE BLOOD IN LYMPHATIC LEUKAEMIA.

रक्तके भीतर मज्जाणुओंकी उत्पत्ति और अम्ल-रंगेच्छु श्वेताणुओंकी वृद्धि (चित्राङ्क १५)
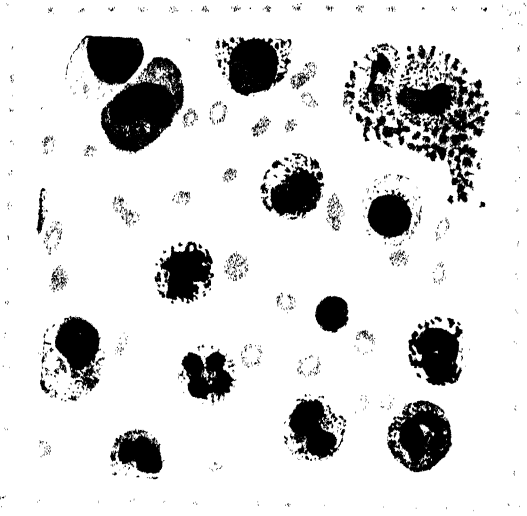
THE BLOOD IN MYELOID LEUKAEMIA.

यह २ पुरुष और १ स्त्री, इस अनुपातमें। सामान्यतः २५ से ४० वर्षोंकी आयुमें और क्वचित् २० वर्षोंसे कम आयुमें भी। पूर्ववर्त्ती वाहकका परिचय अभी नहीं मिला। परीक्षा प्रयोग करनेपर कभी उत्पन्न नहीं होता।

शारीरिक विकृति—रक्तरचनाकर संस्थानमें विशेष क्षति।

मज्जा—मस्तिष्क गुहामें धूसराभ रक्ततन्तु। वसा शेष नहीं रहती। भंगुर दानेरहित एक जीवकेन्द्रमय कोषाणुओंसे सम्बन्धवाले तन्तुओंकी अस्वाभाविक अति वृद्धि होनेसे कतिपय दानेरहित एक जीवकेन्द्रमय बृहत् कोषाणु (मज्जाणु), कभी दानेदार एक जीवकेन्द्रमय मज्जाणु कुछ परिमाणमें और जीवकेन्द्रमय रक्ताणु, दानेरहित सामान्य और बृहत् दोनों प्रकारके।

प्लीहा—सर्वदा बढ़ी हुई। प्रायः अधिक। सामान्यतः स्वस्थावस्थामें वज़न ५-६ औंस। बढ़नेपर वज़न लगभग १० पौण्ड (कभी-कभी १८ पौण्डतक)। सतहपर आवरण प्रदाह और सामान्य संयोजन। आवरण मोटा। शिराएँ गढ्ढे में बढ़ी हुई। मज्जासदृश स्थिति। श्वेताणु अत्यधिक तथा कतिपय जीवकेन्द्रमय दानेदार मज्जाणु भी विद्यमान। जीवकेन्द्रमय श्वेताणुसे सम्बन्धवाले तन्तुमें परिवर्त्तन। परिणाममें घटकोंमें अन्तर्भरण।

लसीकाग्रन्थियाँ—परिधिप्रान्तस्थ ग्रन्थियाँ सामान्यतः अप्रभावित। परिवर्त्तन प्लीहाके सदृश। क्वचित् बढ़ी हुई ग्रन्थियाँ काटनेपर हरिताभ। श्वेताणुओं द्वारा पृष्ठकी ग्रन्थि, लघुअन्त्रस्थ पेयरकी ग्रन्थियाँ (Peyer's Patches) आदि शोथमय।

रक्त—श्वेताणुओंकी वृद्धिसे धूसराभ। प्रायः जमा हुआ।

यकृत्—बढ़ा हुआ। विस्तृत भागमें श्वेताणुओंका अन्तर्भरण। कैशिकाएँ प्रसारित। आणु वीक्षणिक देखाव खण्डमें सूक्ष्म विद्रधि समूहकी सूचना करता हो, ऐसा।

फुफ्फुस और वृक्क—श्वेताणुओंसे अन्तर्भरण सदृश।

हृदय-रक्तकी गांठे अति सामान्य, देखावपूय सदृश।

लक्षण—आक्रमण गुप्त। प्रारम्भिक लक्षण सामान्य—प्लीहाद्वारा उदरकी वृद्धि। प्रायः सबसे पहला लक्षण वज़नमें शनैः-शनैः वृद्धि। बाँये पार्श्वमें वेदना (प्लीहावरणके प्रदाह और फिर शल्योत्पत्तिसे)। देहका शोष होते जाना, श्वासकृच्छ्रता पाण्डु (प्रारम्भमें नहीं बढ़ता किन्तु फिर बढ़ता है)।

अन्य लक्षण—नेत्रदर्पण प्रदाह (श्वेताणुजन्य) प्रायःस्थिर। नेत्रका पिछला हिस्सा निस्तेज, श्वेत व्रणयुक्त, क्वचित् कुछ प्रभावित। कुछ रोगियोंमें यह प्राथमिक लक्षण। जीर्णावस्थामें रक्तस्राव।

ज्वर—सामान्यतः मंद, अनियमित और परिवर्त्तनशील उत्तापमय।

कण्डू—त्वचामें परिवर्त्तन प्रतीत नहीं होता। मस्तिष्क नाड़ियोंका वध—कभी-कभी। मासिकधर्मका निरोध।

शोथ—पैरोंपर सामान्य। नैमित्तिक द्रवमय-उरःस्तोय, जलोदर क्वचित्।

मूत्र—श्वेताणुनाशसे मैहिकाम्ल (Uric acid) का अत्यधिक त्याग। वातरक्त या मैहिकाम्ल लक्षण नहीं।

नैमित्तिक लक्षण—मूत्रेन्द्रियकी अस्वाभाविक दृढ़ता (Priapism) परंपरागत, किन्तु क्वचित् भगशिश्निकामें शल्योत्पत्ति। अकस्मात् आक्रमण, कानकी अर्ध चन्द्राकार शुण्डिकामें रक्तस्राव, त्वचापर अर्बुद। शल्योत्पत्ति और शिरा प्रदाह। त्वचाका वर्ण परिवर्तन, बैंजनी या लाल, प्रारम्भमें मस्तिष्कपर।

प्लीहावृद्धि*—स्थिर। सामान्यतः नाभितक या इससे भी नीचे। सीमा और गड्ढा सरलतासे स्पर्शग्राह्य। किनारा मुलायम, कोमल।

यकृत्—विशेषतः स्पर्शग्राह्य।

लसीकाग्रन्थियाँ—सामान्यतः नहीं बढ़तीं।

अन्तिमावस्था—चिरकारी अवस्थाके भीतर कितनेक लक्षण विरल, किन्तु प्रायः अन्तमें महत्त्वके, यदि यह आशुकारी दानेरहित जीवकेन्द्रमय मज्जाणुसे सम्बन्ध वाला है, तो रक्तस्राव विशेषतः नाक और मसूड़ोंसे। क्वचित् गम्भीर, जीर्णावस्थाकी प्राप्ति होने तक रक्तपित्त (पर्प्युरा) प्रायः आशुकारी अन्त तक। अति क्वचित् चिरकारी अवस्थामें। आमाशय अन्त्रमें बाधाएँ-वमन, अतिसार आदि।

* विशेषतः प्लीहावर्धन समरूपसे होता है, इस हेतुसे प्लीहाकी आकृति और प्लीहा-द्वारका खात (Notch) में कोई विशेष विलक्षणता नहीं होती। उदरकी दीवारके संलग्न अवरोही बृहदन्त्रके प्लैहिक कोणके सम्मुखमें प्लीहा रहती है, जो अवरोही अन्त्र और लघुअन्त्र को दूर हटा देती है। फिर वे श्वासोच्छ्वासके साथ ऊपर नीचे उठते रहते हैं। कितनेक स्थानोंमें प्लीहा इतनी बढ़ जाती है कि उदरके समग्र वाम अनुपार्श्विक प्रदेश (Left Hypochondriac) और वाम वंक्षणोत्तरिक प्रदेश (Left Iliac) प्लीहासे परिपूरित हो जाते हैं। एवं प्लीहा उदरकी मध्यरेखाका उल्लंघन कर दक्षिण ओरमें भी फैल जाती है। कभी-कभी प्लीहाके ऊपर सुननेपर एक प्रकारकी विलक्षण आवाज सुननेमें आती है। जिसे डॉक्टरीमें वेनस हम (Venous Hum कहते हैं) प्लीहाके वृद्धिवशतः महाप्राचीरा पेशी ऊँची उठ जाती है। रक्तकी न्यूनताके हेतुसे श्वासकृच्छ्रता उत्पन्न होती है और बढ़ भी जाती है। कभी-कभी हृदयमें कम्प भी होता है। उदरके सब यन्त्र प्लीहाकी वृद्धिसे दबते जाते हैं। आमाशय विकार होनेपर वमन, अपचन आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

रक्त—सम्प्राप्ति और प्रकृतिदर्शक परिवर्त्तन। ताज़ा रक्त गम्भीर रोगियोंमें श्वेताणुवृद्धिके हेतुसे× धूसराभ। श्वेताणुओंकी संख्यामें अति वृद्धि। सामान्यतः २ से ३ लक्ष। १ लक्षसे अधिक होना, सब जातियोंकी संख्यामें वृद्धि।

"गैरिकोदकप्रतिकाशं स्निग्धं शीतल बहलं पिच्छिलं चिरस्राविं, मांसपेशीप्रभं च श्लेष्मदुष्टं।"

अर्थात् कफसे दूषित हुआ रक्त गेरुके जलसमान, स्निग्ध, शीतल, घन, अति रेशायुक्त, धीरे-धीरे स्रवित होनेवाला और मांसकी छोटी-छोटी पेशियोंके सदृश भासता है।

१. दानेदार मज्जाणु बड़ी संख्यामें अस्वाभाविक विद्यमान १० से २५ प्रतिशतके स्थानपर सामान्यतः ४० से ५० प्रतिशत। दानेरहित मज्जाणु भी उपस्थित, सामान्यतः स्वल्प १० प्रतिशत तुच्छ अरिष्ट दर्शाता है।

२. अम्लरंगेच्छुकी सामान्य वृद्धि।

३. परिवर्त्तनशील प्रकार दानेदार मज्जाणु और सामान्य श्वेताणुओंके बीचका कतिपय। कितनेक रोगियोंमें अति कम और वस्तुतः सामान्य। जीवकेन्द्रप्रतीत होता है किन्तु किञ्चित् विभागमय।

४. क्षारप्रिय—सामान्यतः बड़ी संख्यामें ५ से १० प्रतिशत या १५ प्रतिशत तक। प्रायः अस्वाभाविक सुन्दर दानेदार।

५. रक्ताणु—प्रारम्भावस्थामें विशेष नाश नहीं, सामान्य। रोगवृद्धिके साथ-साथ पतन। जालदार रक्ताणुओंकी वृद्धि। वर्णसूचीका सामान्यतः ह्रास। ०·६ से ०·८। जीवकेन्द्रमय सामान्य और स्थूलका प्रायः अभाव, केवल गम्भीरपाण्डुके अभावमें।

६. रक्तचक्रिकाएँ—थोड़ा परिवर्तन चिरकारी अवस्थामें। जीवकेन्द्रमय दाने रहित मज्जाणु वृद्धि या रक्तस्रावी अवस्थामें ह्रास। संक्षेपमें श्वेताणुओंकी बृहद् संख्यामें वृद्धि। दानेदार घटकोंके हेतुसे मुख्य वृद्धि। दानेदार और मौलिक मज्जाणुओं की उपस्थिति।

परिणाम—अन्तिमावस्थाका चिह्न रक्तस्राव है।

उपद्रव—उपद्रवरूपसे बीचमें क्वचित् गलमात्मक होता है।

श्वेताणु कुछ समयके लिए नष्ट क्षय या फुफ्फुस प्रदाह क्रम और क्वचित् स्थितिकाल—आरोग्य कदापि नहीं होता। मृत्युके हेतु—(१) रक्तस्राव या बिना रक्तस्राव थकावट। (२) दानेरहित जीवकेन्द्रमय मज्जाणु कभी अन्तमें; स्थितिकाल संभवतः निरीक्षणसे पहले लगभग १ वर्ष, सामान्यतः निरीक्षणके

× रोग बढ़नेपर रक्तका स्वरूप सुश्रुतसंहिताके निम्न वचन अनुसार श्लेष्म दुष्ट रक्तके सदृश हो जाता है।

पश्चात् १ वर्षतक, कभी ३ वर्षसे अधिक, किसी हेतुसे कभी ६ से १० या अधिक वर्षोंतक। इसके २ समूह बनते हैं।

३५ वर्षसे कम आयुवालेकी श्वेताणु संख्या और सामान्य स्थितिमें अधिक अन्तर होता है। 'क्ष' किरणसे सामयिक सुधार जब रक्त सामान्य स्थितिमें आ जाय, तब बीचमें श्वेताणुओंका अभाव; किन्तु क्षारप्रिय श्वेताणु सर्वदा अस्वाभाविक और अन्तमें दानेरहित मज्जाणु उपस्थित।

३५ वर्षसे अधिक आयुवालोंको चिकित्सासे रक्त और सामान्यस्थितिमें मामूली अन्तर होता है।

दानेरहित मज्जाणु अन्तमें—किसी हेतुसे अकस्मात् ४० से ६८ प्रतिशत तक उपस्थित। सामान्यतः सब जातिके श्वेताणुओंकी संख्या अकस्मात् गिर जाती है (१५०० से ४०००), किंन्तु प्राथमिक श्वेताणु ह्रास होनेपर २०,००० से १,००,००० तक वृद्धि। अन्तिम लक्षण आशुकारी बननेपर सर्वदा थोड़े ही दिनोंमें मृत्यु, यह मज्जा को अति थकावटके अन्तिम असरकी सूचना करता है।

रोगविनिर्णय—रक्त परीक्षा और प्लीहावृद्धिसे सरल।

चिकित्सा—पोषक आहार, 'क्ष' किरण और रेडियमका प्रयोग, सोमल और बेन्झोल अधिक हितकारक हैं।

'क्ष' किरणका प्रयोग उरःपञ्जर, कशेरुकाएँ और लम्बी अस्थियोंपर या प्लीहापर करें। रेडियम इससे कम असर पहुँचाता है।

मल्लका असर मंद वेगसे, वमन और कम्प भी कराता है। बेन्झोल ज़ैतुनके तैल में मिलाकर केपसूलमें दिया जाता है; यह भी 'क्ष' किरणसे कम प्रभावशाली है।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे शुद्ध वायु और सूर्यके तापका सेवन ताज़े फल, च्यवनप्राश, ग्रामोंकी गौका दूध तथा लोकनाथ, प्रवालपञ्चामृत, अभ्रकभस्म और श्लैष्मिक पाण्डु पर कहे हुए उपचार, ये सब हितावह हैं। डॉक्टरी तीव्र विशाक्त औषधियाँ हानिकर हैं।

(१७) चिरकारी लसीकाणु वृद्धिमय श्लैष्मिकपाण्डु

(Chronic Lymphoid Leukaemia-Lymphadenosis)

इस प्रकारकी घातक स्थितिमें लसीकातन्तुओंकी वृद्धि तथा रक्तके भीतर लसीकाणुओंकी संख्याकी वृद्धि होती है, यह रोग विशेषतः पिछली आयुमें होता है; क्वचित् ही ४० वर्षकी आयुके पहले। ४ पुरुष और १स्त्री का अनुपात।

शारीरिक विकृति—सारे शरीरमें लसीकातन्तुओंकी वृद्धि, बड़े पिण्डोंमें लसीकाग्रन्थियोंकी सामान्य रचनाका नाश। कीटाणुओंका केन्द्र प्रतीत नहीं होता। प्लीहा और मज्जामें लसीकाणुओंके पिण्ड बनते हैं। यकृत्में भी विकृति। प्रतिहारिणी शिराके चारों ओरके संयोजक तन्तुओंमें लसीकाणुओंसे अन्तर्भरण। लम्बी अस्थियोंमें मज्जा धूसराभ।

लक्षण—गुप्त आक्रमण कष्ट स्थानकी ग्रन्थियाँ या अन्यत्र लसीका तन्तुओं-की वृद्धि, गलग्रन्थियाँ, त्वचाके उभार, फुफ्फुसान्तराल प्रदेशमें ग्रन्थियाँ और बालग्रैवेयक इन सबकी वृद्धि। पहले ये सब मुलायम फिर पिछली अवस्थामें कठोर। उन परसे त्वचा सरलतासे दूर हो सकती है।

अनियमित मंद ज्वर, कण्डु, अस्थियोंमें वेदना, नपुंसकता, दबानेपर सुषुम्णा काण्डमें पीड़ा। रोगजीर्ण होनेपर शीर्णता, पाण्डु, रक्तस्राव, क्वचित् मिकुलीज़के लक्षणसमूह (Mikulicz's Syndrome)—अश्रुग्रन्थियों और लालाग्रन्थियोंकी वेदनारहित वृद्धि (शोथ), शुष्कनेत्र, शुष्क मुख तथा दृष्टिमें प्रतिबन्ध आदि।

लसीकाग्रन्थियाँ वेदनारहित, मध्यमकदकी, प्लीहा बढ़ी हुई, कभी नाभिसे नीचे तक। त्वचा लाल या वर्णरहित (श्वेताणुओंका अन्तर्भरण होनेपर)।

रक्तमें रक्ताणु प्रति क्यु. मि. मी. ३० लक्ष या कम, श्वेताणु ६०,००० से १,००,००० तक। श्वेताणुकी अति तेज़ीसे वृद्धि या सामान्य मर्यादाके भीतर। लघु लसीकाणु ९५ प्रतिशतसे अधिक, कभी ९९ प्रतिशत। सामान्यतः छोटे कदके गड्ढेसह जीवकेन्द्रयुक्त। जीवकेन्द्रयुक्त दानेरहित बृहद्लसीकाणुकी उत्पत्ति थोड़ी संख्यामें (यह खराब चिह्न) और दानेदार जीवकेन्द्रयुक्त मज्जाणुकी उत्पत्ति।

रक्ताणुका ह्रास देरसे होनेसे पाण्डुकी वृद्धि देरसे। जीवकेन्द्रमय पर रक्ताणु स्वल्प। जीर्णावस्थामें तथा रक्तस्राव होनेपर रक्त चक्रिकाओंका पतन।

क्रम—अत्यन्त चिरकारी श्वेताणुवृद्धि। प्रायः २-३ वर्ष; किन्तु कभी २० वर्ष से भी अधिक। मृत्यु प्रायः थकावट, उपद्रवरूप व्याधि या रक्तस्रावसे। आशुकारी दानेदार बृहल्लसीकाणुमय अवस्थाकी कभी प्रतीति नहीं होती। क्वचित् दानेदार लसीकाणुओंमें से दानेरहित लसीकाणु बन जाते होंगे।

रोग विनिर्णय—क्वचितही कठिनतासे। रक्तपरीक्षा और मज्जापरीक्षा विशेष सहायक।

चिकित्सा—लसीकाग्रन्थियों और लसीकापिण्डोंपर 'क्ष' किरण प्रयोग करने पर लसीकाणुओंका ह्रास और दमन होता है, किन्तु कभी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है इसलिये प्लीहापर 'क्ष' किरण प्रयोग न करें, अन्यथा गम्भीर प्रतिक्रिया होती है।

आयुर्वेदमतानुसार शुद्ध वायु और सूर्यके तापका सेवन, सुवर्णमालिनी वसंत, लघुमालिनीवसंत, अभ्रक भस्म, लक्ष्मीविलास, गोदुग्ध और लघु पथ्य भोजन आदि हितकारक हैं।

उपप्रकार—

१. स्थूल लसीकाणु-Large Lymphocytes—क्वचित् और अति चिरकारी नीले रंगसे रंजित होनेवाले दाने स्वल्प।

२. श्वेताणु ह्रासमय प्रकार-(Leucopenic or Leukaemic types)-सब मिलकर श्वेताणुओंकी संख्या लगभग सामान्य या कम। लसीकाणुओं

की संख्या १० प्रतिशत प्रथम निरीक्षणमें। फिर महीनों या वर्षोंके पश्चात् श्वेताणु संख्या, लसीकाणुओंकी प्रतिशत संख्या, लसीकाग्रन्थियाँ और प्लीहाका कद, इन सबमें वृद्धि आदर्शप्रकार बनती है और मृत्यु हो जाती है। यह प्रकार बहुत कम होता है, किन्तु सब अवस्थावालोंको होता है।

(१८) श्वेताणुवृद्धिमयपाण्डुके अनादर्शप्रकार

(Various atypical forms and conditions resembling Leukaemia)

इन प्रकारोंकी सम्प्राप्ति रक्तरचनाकर तन्तुओंमें और रक्तमें परिवर्त्तन होनेपर तथा श्वेताणुवृद्धिमय विकारसे कितनेक अंशोंमें प्रभेद होनेपर होती है। इनमें निम्नानुसार ७ प्रकार मुख्य हैं।

१. रक्तरचनाकर तन्तुओंकी वृद्धि-(Growths in or of Haemopoietic tissues)-जो अर्बुदोत्पत्तिकी सूचना करता है।

२. घातक पाण्डुसह श्वेताणुवृद्धि-(Leukanaemia)-दाने रहित जीवकेन्द्रमय स्थूल रक्ताणुमय पाण्डुसह। श्वेताणुवृद्धि।

३. तन्तुपरिवर्त्तनसह श्वेताणुवृद्धि-(Aleukaemic Leukaemia)-इस प्रकारमें तन्तुओंका परिवर्त्तन। रक्तके भीतर बहुत कम परिवर्त्तन। श्वेताणुओंकी संख्या लगभग सामान्य या कुछ कम होती है, किन्तु प्लीहा और लसीका ग्रन्थियोंकी वृद्धि तथा श्वेताणुवृद्धिमय विकारकी अन्य स्थिति उपस्थित।

४. मिश्रित श्वेताणुवृद्धि-(Mixed Leukaemias).

५. अम्ल रंगेच्छु श्वेताणुवृद्धि-(Eosinophilic Leukaemia)-इस प्रकारमें प्लीहावृद्धि होती है। सब मिलकर श्वेताणु २०,००० से २,००,००० तक। इसमें अम्लरंगेच्छु ७० से ६० प्रतिशत।

इस तरह उदासीन और क्षारप्रिय श्वेताणुवृद्धि प्रकार कम होता है। उदासीन प्रकारमें उदासीन श्वेताणु ६० प्रतिशत तथा क्षारप्रियमें क्षारप्रिय श्वेताणु ८० प्रतिशत।

६. श्वेताणुवृद्धि तथा त्वचाकी अस्वाभाविक लाली-(Leukaemic Erythrodermia).

७. इनके अतिरिक्त-अ. गलनात्मक प्रकार, मज्जाणुओंकी उपस्थितिसह।

आ. लसीकाग्रन्थियोंके शोषज विष (आशुकारी प्रदाह ज्वरमें)।

इ. बहुजीवकेन्द्रमय रक्ताणुओंकी वृद्धिसह।

ई. क्षयपीड़ित (सुवर्णके अन्तःक्षेपणासे)।

उ. श्वेताणु और दानेदार रक्ताणुवृद्धि आदि उपस्थित होते हैं।

(१९) हरिताभ श्वेताणुवृद्धिमय श्लैष्मिक पाण्डु

(क्लोरोमा–Chloroma.)

यह आशुकारी श्वेताणुवृद्धिमय विकार है। इसमें मज्जाघटकोंसे उपास्थिधराकला (Sub periosteum) और अन्य तन्तुओंमें अन्तर्भरण होता है। करोटिकी अस्थियाँ प्रभावित, विभाजित करनेपर भीतर हरे रंगकी क्रमशः वृद्धिको प्रतीति।

शारीरिक विकृति—विशेष प्रभावित—(१) नेत्रगृह; (२) शंखास्थि; (३) कशेरुका, (वृक्क तथा अन्य अस्थियाँ), विशेषतः करोटि। इनके अतिरिक्त लसीकाग्रन्थियाँ और त्वचाभी। इस रोगमें कोषाणुओंके पिण्डोंके आकारके अर्बुद होते हैं, जो आशुकारी दाने रहित मज्जाणुमय श्वेताणुवृद्धि रूप रोगमें उत्पन्न गांठोंके सदृश भासते हैं। उस रोगके सदृश उड़ जानेवाली अति तेजस्वी हरी आभा भी इस रोगमें उपस्थित होती है।

लक्षण और चिह्न—आशुकारी श्वेताणुवृद्धिमय विकारसे गम्भीर सत्वर प्राप्त पाण्डु, देहशोष, त्रिदोषज रक्तपित्त (Purpura) रक्तस्राव, मसूढ़ेपर शोथ, वमन तथा प्लीहा और लसीकाग्रन्थियोंकी सामान्यतः अति वृद्धि आदि उत्पन्न होते हैं।

अन्य लक्षण चिह्न—नेत्रगोलकोंका बहिर्गमन (वृद्धि होनेसे नेत्रगृहमेंसे), शंखप्रदेशमें शोथ, दृष्टिनाश, प्रायः बधिरता। बढ़ी हुई ग्रन्थियोंमेंसे अर्बुदोत्पत्ति। ये सब दबावके हेतुसे होते हैं।

रक्तपरिवर्त्तन—आशुकारी दानेरहित मज्जाणुमय श्वेताणुवृद्धिके समान।

स्थितिकाल—३ से ६ मास।

परिणाम—सर्वदा यह रोग घातक है।

(२०) दानेदार श्वेताणुओंका अभाव

(अग्रेन्यूलोसाइटोसिज़—Agranulocytosis.)

इस रोगमें पाण्डु न होनेपर भी विशेषतः मज्जाघटकों का अभाव या नाश होता है। फिर श्वेताणुओंके ह्रासकी संप्राप्ति होती है और मुखपाक और अन्य तन्तुओंके क्षत उपस्थित होते हैं। मृत्यु संख्या अधिक आती है।

क्षत और तन्तुनाश (Necrosis), ये गौण हैं। इनकी संप्राप्ति श्वेताणुह्रास से, सब आयुमें स्त्री–पुरुष, उभयको; तथापि मध्य आयुवाली स्त्रियोंको सामान्यतया गम्भीर प्रकारकी।

निदान—प्राथमिक कारण अज्ञात। गौण कारण विविध औषध विष। उदा० अमिडोपाइरिनका बार्बिटुरेटसके साथ प्रयोग, सलफोनेमाइड आदि।

शारीरिक विकृति—उरःफलकास्थिमें छिद्रकरके मज्जाको देखनेपर बहु जीवकेन्द्रमय राक्षसी मज्जाणु (ये रक्त चक्रिकाओंकी उन्नति करते हैं) और अन्य प्रतीत

होते हैं। (१) दानेरहित मज्जाणुओंका अभाव अर्थात् मज्जाणुओंकी सदोष उन्नति; (२) बहुसंख्यक दानेरहित मज्जाणु अर्थात् अस्वाभाविक संख्या वृद्धि, किन्तु भावी उन्नतिका दमन। दानेदार मज्जाणु या दानेदार अन्य कोषाणु अनुपस्थित। आक्रमणावस्थामें मज्जासे रक्ताणुओंकी उत्पत्तिमें क्रमशः उन्नति।

परीक्षात्मक प्रकार—

१. गम्भीर–(Fulminating)—सामान्यतः मध्य आयुवाली स्त्रीको, पूर्व रूपमें बढ़ी हुई थकावट। उन्माद सामान्य (अमिडोपाइरिनका सेवन) तथा भूतकाल में कुछ समय तक श्वेताणु संख्या ह्रास। अकस्मात् आक्रमण, फिर किञ्चित् उत्तेजना उदा० इन्फ्लूएन्जा उत्तापवृद्धि, कम्प, व्याकुलता, कण्ठमें क्षत, बलक्षय, कभी मंद कामला। त्रिदोष रक्तपित्त और रक्तस्रावका अभाव। प्लीहा कभी स्पर्शग्राह्य। मुखपाक, कण्ठमें और अन्यत्र क्षत। कण्ठ और ग्रन्थियोंमें शोथ, कितनेक रोगियोंके कण्ठमार्गमें लाली। यह रोग कुछ दिनोंमें घातक हो जाता है।

२. उप-आशुकारी प्रकार–(Sub acute type)—लक्षण ऊपरके अनुरूप किन्तु आक्षेपक और आकस्मिक लक्षण कम गम्भीर। पाण्डु, रक्तचक्रिकाओंका ह्रास। रक्तस्रावकी वृद्धि। ६ या अधिक सप्ताहके भीतर स्वास्थ्य या घातकावस्था।

३. पुनरावर्त्तक प्रकार–(Recurrent type)—कारण रहित वर्षोंतक सामान्य विरामसह आक्रमण।

४. सौम्यप्रकार (Mild type)—प्राकृतिकलक्षणमंद, कण्ठमार्गका प्रदाह मध्यम, सब अवस्थाओंमें प्राप्त। पूर्वरूपमें मध्यस्थ श्वेताणुओंका ह्रास। पूर्ण स्वास्थ्य।

रक्तपरिवर्त्तन—श्वेताणुसंख्याका ह्रास, केवल कुछ सौ की कमी। दानेदार श्वेताणुओंका अभाव। रक्ताणु रक्तरंजक और चक्रिकाएँ, ये सब प्रायः कुछ प्रभावित, किन्तु गम्भीर बढ़े हुए पाण्डुमें सत्वर घातक हो जाते हैं।

रोगविनिर्णय—तन्तुप्रदाहसह आशुकारी श्वेताणुवृद्धि (Aleukaemic Leukaemia), रक्ताणुवृद्धिसह तथा गम्भीर रक्तस्रावसह प्रकारसे भी पृथक् करना चाहिये। सौम्यप्रकार है, वह आशुकारी प्रदाहज ज्वरके सदृश भासता है। विन्सेण्टका आक्षेपात्मक विकार और कण्ठरोहिणीको रक्त परीक्षा और फुरेरीद्वारा कण्ठ परीक्षा करके पृथक् करना चाहिये।

चिकित्सा—रक्तका अन्तःसेचन किया जाता है किन्तु गम्भीर प्रतिफलित क्रिया होती है। फिरभी प्रायः सफलता मिलती है। डॉक्टरीमें पेण्टन्युक्लियोटाइड K. 36 का मांसपेशीमें अन्तःक्षेपण करते हैं। यह भी प्रायः गम्भीर प्रतिक्रिया दर्शाता है। हृदय और आमाशय प्रदेशमें वेदना तथा वेपन होते हैं। इस औषधिका ज्ञान अभी अपूर्ण है।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे संशोधक और विषशामक औषधि देनी चाहिये। आरोग्य-वर्द्धिनी, सूतशेखर, चन्द्रकला, कामदूधा, अमृतासत्व, उसीरासव, पुनर्नवादि क्वाथ, सारिवारिष्ट, मंजिष्ठादि अर्क, अरनी आदिके पुष्पोंका रस, गूलरके मूलका रस आदि। पहले निशोथ या आरग्वध प्रधान औषधिसे उदरशुद्धि करें। फिर लीन विषको दूर करें।

(२१) श्वेताणुवृद्धि और दानेरहित रक्ताणु वृद्धिमय पाण्डु

ल्युको एरीथ्रोब्लास्टोसिज़–Leuco-Eaythroblastosis.

प्राचीन नाम—माइलोथाइसिक एनिमिया-ल्युको एरीथ्रोब्लास्टिक एनिमिया, Myelopthisic anaemia-Leuco-erythroblastic anaemia.

वक्तव्य—इसरोगमें रक्ताभिसरणमें भंगुर रक्ताणु और भंगुर मज्जाणुओंकी उपस्थिति होती है; तथापि यह सर्वदा अस्थि या मज्जाके रोगसे सम्बन्धवाला नहीं है।

शारीरिक विकृति—मज्जा सामान्यतः विकारयुक्त, किन्तु स्थिर। अस्वाभाविक रक्ताणुओंकी उत्पत्ति नहीं करती। प्लीहा बढ़ी हुई, मज्जा परिवर्त्तनमय। यकृत्में प्लीहासे कम परिवर्त्तन।

रक्तपरिवर्त्तन—

रक्ताणु—परिवर्त्तनशील पाण्डु। सर्वदा गम्भीर नहीं। भंगुर रक्ताणुओंका कद सामान्य। विशेषतः क्षारप्रिय, दानेरहित, जीवकेन्द्रय रक्ताणु। प्रायः जीवकेन्द्रमय रक्ताणु बहुसंख्य। वर्णसूची सामान्यसे कम। जालदार रक्ताणुओंकी वृद्धि।

श्वेताणु—सामान्य या कुछ बढ़े हुए। क्वचित् ५०,००० से अधिक। जीवकेन्द्रमय दानेदार और दानेविहीन मज्जाणु।

रक्तचक्रिकाएँ—कम।

परीक्षात्मक लक्षण—स्थिर प्रकृतिनिर्देशक लक्षण नहीं। थकावट, पाण्डुके लक्षण, प्लीहावृद्धि (मध्यमसे अत्यधिक तक) आदि।

स्थितिकाल—सर्वदा घातक। समय २ से ५ या कभी १० वर्ष। मृत्यु, कारणानुरूप स्थिति—पाण्डु या प्राकृतिक रक्तस्राव (Haemophilia) से।

(२२) लसीकाग्रन्थिवृद्धिसह सान्निपातिक पाण्डु

हॉज़किन्स डिज़ीज़-लिम्फेडेनोमा—लिम्फॉग्रेन्युलोमा।

(Hodgkin's disease-Lymphadenoma-Lymphogranuloma)

व्याख्या—यह वातकरोग लसीका तन्तुओंकी विकृति, लसीकाग्रन्थियोंकी वृद्धि और सान्निपातिक पाण्डुसह होता है। इस रोगसे प्लीहाके भीतर और अन्यत्र लसीकासंस्थानके दानेदार तन्तुओंके अर्बुद (Lymphogranulomatous) की रचना होती है। जिससे सामान्यतः प्लीहा बढ़ जाती है।

यह रोग बहुधा १५ से ४५ वर्षकी आयु तक होता है। २ पुरुष और १ स्त्री का अनुपात। यह वंशागत नहीं है।

विकृतिक्रम—पाण्डुसह अस्वाभाविक बढ़े हुए लसीका घटक (Lymphadenoma cells) संभवतः जालदार अन्तःकलाके भीतर उत्पन्न होते हैं। उनमेंसे चिरकारी प्रदाह होनेपर कठोर दानेदार अर्बुद बन जाते हैं। यह उद्भिद्कीटाणुजन्य नहीं है किन्तु क्षयकीटाणुओंके समकालीन हैं।

शारीरिक विकृति—प्राथमिक परिवर्त्तन आशुकारी या उप-आशुकारी प्रदाहकी प्रगति होनेपर लसीकातन्तुओंके अस्वाभाविक घटक तथा अविभेद्य जालदार घटकोंकी अतिवेगपूर्वक उत्पत्ति होती है। यह स्थिति रोगविनिर्णयात्मक नहीं है। फिर लसीका ग्रन्थियाँ और लसीकातन्तुओंकी वृद्धिरूप परिणाम आता है, यह प्रकृतिनिर्देशक परिवर्त्तन है। अत्यधिक पिण्ड होते हैं। किन्तु उभार पृथक्-पृथक्। वे संयोजक तन्तु द्वारा जुड़ जाते हैं। क्वचित् प्लीहावरण टूट जाता है। कभी 'क्ष' किरण प्रयोग आदि के परिणाममें फिर ग्रन्थियोंके चारों ओरके तन्तुओंका प्रदाह (Periadenitis) रूप गौण संक्रमण हो जाता है।

१. लसीकाग्रन्थियाँ—पहले उत्तानग्रन्थियाँ प्रभावित। इनमेंभी विशेषतः कण्ठ स्थानकी, फिर बगल और वंक्षण स्थान (ऊरुमूल) में, तत्पश्चात् भीतरके भागोंमें। काटनेपर सतह धूसर, अर्धपारदर्शक। वसापक्रान्ति होनेसे पीतक्षेत्र, किन्तु किलाटजनन रहित।

सूक्ष्म परीक्षा करनेपर उनके भीतर (१) अति स्थूल घटक ३ ४ जीवकेन्द्रयुक्त (Lymphadenoma cells); (२) बृहद् एकजीवकेन्द्रयुक्त अन्तःकालके घटकोंकी अतिवृद्धि; (३) अम्लरंगेच्छु बड़ी संख्यामें और पिण्डरूप; (४) जीर्णावस्थामें सौत्रिक तन्तुओंकी अति वृद्धि।

२. प्लीहा—सर्वदा विस्तृत भागमें बढ़ी हुई, कभी अन्त तक। ऊपरकी सतहपर लगभग अखरोटके कदके धूसर क्षेत्र।

३. यकृत्—प्रायः बढ़ा हुआ। प्लीहाके सदृश उभारमय। मुख्यतः प्रतिहारिणी नलिकामें।

४. वृक्क—कभी-कभी गांठदार।

५. मज्जा—लसीकातन्तुओंके समान अन्तर्भरण।

६. कशेरुकानाली—सुषुम्णाकाण्ड या नाड़ीतन्तुमूलकी वृद्धि होनेपर दबते हैं। सब लसीकातन्तु प्रभावित हो जाते हैं।

शवच्छेद करनेपर सब लसीकाग्रन्थियाँ और प्लीहाकी वृद्धि प्रतीत होती है। कभी-कभी एक ओर कभी-कभी दोनों कक्षान्तरा रसग्रन्थियाँ (Axillary Lymph Glands), वंक्षणीया रसग्रन्थियाँ (Inguinal Lymph Glands) और श्वासनलिका शिखरस्थ रसग्रन्थियाँ बढ़ी हुईं। श्वेताभ वर्णपीत या श्वेत मोमवत्

मृदु या दृढ़ तथा रक्तस्रावजनित दागमय। कभी-कभी वृक, अन्त्रस्थ रसग्रन्थियाँ और उपजिह्विकाओं (Tonsils) की वृद्धि । क्वचित् बालग्रैवेयक ग्रन्थि (Thymus Gland) और एक या दोनों शुक्रोत्पादक वृषण ग्रन्थियों (Testicles) की भी वृद्धि। क्षत या किलाटजननका अभाव। शीघ्र रोगवृद्धि होनेपर मृदु ग्रन्थियाँ, मंदगति होनेपर दृढ़। ग्रन्थियाँ पृथक्, सरलतासे रहने योग्य। कभी संलग्न नहीं होतीं। त्वचा लाल नहीं होती।

रक्तपरिवर्त्तन—रोगनिर्णायक परिवर्तन नहीं।

१. रक्ताणु—बढ़े हुए गौण पाण्डुके समान रक्ताणु और रक्तरंजकका ह्रास, वर्णसूचीका ह्रास, प्राथमिक अवस्थामें मामूली अन्तर। अन्तिमावस्थामें गम्भीर परिवर्त्तन।

२. श्वेताणु—कभी श्वेताणु ह्रास और लसीकाणुओंकी वृद्धि। अथवा बहुजीवकेन्द्रमय श्वेताणु वृद्धि; यह विशेषतः अन्तिमावस्थामें। अम्लरंगेच्छुकी वृद्धि, कभी १० प्रतिशत तक।

लक्षण—आक्रमण गुप्त।

प्रारम्भिक लक्षण—सामान्यतः लसीकाग्रन्थियोंकी वृद्धि विशेषतः कण्ठस्थान की, वेदना रहित।

निस्तेजता, पाण्डु और निर्बलता—प्रारम्भमें स्वल्प, शनैः-शनैः वृद्धि। रक्तस्राव करानेका स्वभाव नहीं। स्त्री रुग्णा है, तो मासिकधर्म अनियमित या स्थगित।

प्लीहा—सामान्य स्पर्शग्राह्य (७५ प्रतिशतमें), किनारा कठोर और तीक्ष्ण, कभी अति वृद्धि।

यकृत्—क्वचित् अति वृद्धि।

ज्वर—सामान्यतः विद्यमान, विशेषतः व्यापकावस्थामें। इसमें (१) मन्द और अनियमित; (२) चालू रहना और अधिक उत्ताप; (३) पेल एब्स्टिन का रोग (Pel-Ebstein) अर्थात् लसीका घटकोंकी अस्वाभाविक वृद्धि और विरामसह ज्वर; (४) अनियमित पेल एब्स्टिन विकार।

त्वचा—कभी गम्भीर कण्डु, स्थानिक या व्यापक वर्ण परिवर्त्तन (कभी रक्तविकार सदृश धब्बे), कभी उत्तान उभार, ग्रन्थियोंमें सर्वदा औरों से बड़ी। सामान्यतः कण्ठके पिछली ओरके त्रिकोण प्रदेशमें आरम्भ। अन्तमें सब लसीकातन्तु प्रभावित होकर सब बड़े-बड़े पिण्ड बन जाते हैं।

दबाव लक्षण—भिन्न-भिन्न स्थानोंमें दबाव होनेपर भिन्न-भिन्न परिणाम आता है।

१. कण्ठस्थग्रन्थियाँ—श्वास नलिकापर दबाव आनेपर कास और श्वासकृच्छ्रता, बढ़नेपर अन्तमें घातक। इनके अतिरिक्त निगलनेमें कष्ट (Dysphagia), हॉर्नरके लक्षण समूह-कण्ठस्थ स्वतन्त्रनाड़ियोंका वध होनेसे नेत्रगोलक का गड्ढेमें डूब

आना, ऊर्ध्वपलकका पतन, निम्नपलकका कुछ ऊँचा चढ़ना, कनीनिकाका खिंचाव, पुटान्तरीया परीक्षा (Palpebral Fissur) का आकुंचन और अस्वाभाविक स्वेद ह्रास आदि। मुख-मण्डलका शोथ, स्वरयन्त्रकी पश्चिमनाड़ीका वध।

२. कक्षाधेरा ग्रन्थियाँ—वेदना और हाथोंपर शोथ।

३. फुफ्फुसान्तरालकी ग्रन्थियाँ—उरःपंजरके अर्बुदका चिह्न, विशेषतः कास, श्वासावरोध और गात्र नीलता, कभी-कभी शोथ और शिरा प्रसारण। कभी फुफ्फुसावरणमें रससंग्रह। कभी अन्ननलिकाके भिन्न-भिन्न अंशमें एडिनाइड तन्तुओंकी वृद्धि हो जानेपर मुखपाक, उबाक, वमन, अतिसार आदि।

४. उदर्य्याकलाकी पिछली ओरकी ग्रन्थियाँ—उदर वेदना, अन्त्रपुच्छ-प्रदाह सदृश, क्षय आदि। पैरोंमें वेदना और शोथ। कभी कामला, जलोदर।

५. वंक्षणोत्तरिक प्रदेशकी नाड़ियाँ—पैरोंका शोथ।

६. सुषुम्णाकाण्ड और नाड़ीमूल—संवेदना और चेष्टामें अन्तर, पैरोंका-वध (Paraplagia) कभी करोटि-प्रदेशके विकारके लक्षण।

परीक्षात्मक प्रकार—

१. विशुद्ध-(Classical type)—मूल लक्षण और सार्वाङ्गिक प्रगति ऊपर लिखे अनुसार, सामान्य विराम। मृत्युके हेतु—(१) उन्नत सान्निपातिक पाण्डु और थकावट; (२) श्वासकृच्छ्रता (श्वासनलिकापर दबाव आनेसे); (३) क्षय; (४) गलन (Sepsis) क्वचित्। स्थितिकाल २ से ५ वर्ष।

२. स्थानिक (Localized type)—एक समूहकी लम्बेकाल तक वृद्धि। अन्यत्र विस्तार नहीं। फिर अन्तमें सत्वर फैलाव। समूह—अ. बाह्य—उदा० कण्ठके एक ओर, आ. अन्तर—उदा० फुफ्फुसान्तराल या उदर्य्याकलाके पश्चिम भागमें। कभी केवल प्लीहामें, यह अत्यन्त चिरकारी प्रकार।

३. आशुकारी और सार्वाङ्गिक (Acute and generalized type)—सत्वर क्रम। सब ग्रन्थियाँ और लसीका तन्तुओंकी वृद्धि।

४. पेल एब्स्टिन लक्षण समूह-(Pel-Ebstein Syndrome)—विलक्षण पुनरावर्त्तक ज्वर, १० से १४ दिनतक, उत्ताप १०३° से १०५° फिर १० से १४ दिन तक ज्वराभाव। इसतरह चक्र कुछ मास तक चलता रहता है। ज्वरकालमें व्याकुलता और ग्रन्थियोंके शोथकी वृद्धि होती है।

५. गुप्त-(Latent type)—गुप्त आक्रमण। व्याकुलता, निर्बलता, उदरमें बेचैनी, उत्तापकी स्थिरता (ज्वर बना रहना), प्लीहावृद्धि, श्वेताणुह्रास, अन्त्रज्वरके सदृश सार्वाङ्गिक स्थिति। उदर्य्याकलाकी पिछली ओरकी ग्रन्थियाँ बढ़ी हुईं। कभी फुफ्फुसान्तरालकी भी, किन्तु बाह्य ग्रन्थि नहीं।

क्रम—अपरिवर्त्तनशील घातक। चिकित्सा होनेपर बीच-बीचमें विराम।

पाण्डु, अन्तमें बलका ह्रास (Asthenia) या दबाव लक्षणकी उत्पत्ति। उत्तान ग्रन्थियोंकी वृद्धि-ह्रास; ये बहुत बढ़ जाती है; किन्तु कभी अन्तिमावस्थामें पहलेके निरीक्षणकी अपेक्षा भी छोटी।

स्थितिकाल—सामान्यतः २-३ वर्ष। कतिपय रोगियोंमें ५ से १० वर्ष।

प्रभेदकरोग विनिर्णय—

१. क्षयजग्रन्थि प्रदाह—(Tuberculous Adenitis)—में ग्रन्थियाँ परस्पर चिपक जाती हैं और त्वचा भी। क्षत और तन्तुनाश या पिच्छिल अपक्रांति (Colloid degeneration) प्लीहामें प्रायः स्पर्शग्राह्य लक्षण नहीं होते हैं (इस रोगमें बढ़ी हुई ग्रन्थियोंके समूह सब स्वतन्त्र संचालन शील। यदि कोई ग्रन्थि निकालकर परीक्षा कीजाय, तो निःसंदेह निर्णय होता है।

२. अर्बुद—मांसार्बुद, लसीका मांसार्बुद, लसीकार्बुद आदि, वृद्धि सत्वर और वे तन्तु तथा त्वचाको संलग्न हो जाते हैं। एवं इनमें अन्तर्भरण होता है। इन लक्षणों से वह पृथक् होजाता है।

३. श्वेताणुवृद्धि—रक्तपरीक्षासे प्रभेद होता है। लसीकातन्तु विकारसह श्वेताणुवृद्धिकी प्राथमिक अवस्थामें प्रभेद करना दुष्कर है।

४. प्लीहोदर—में प्लीहाकी अतिवृद्धि, गम्भीर पाण्डु तथा ग्रन्थियोंकी वृद्धिका अभाव, ये लक्षण प्रभेदक हैं।

५. फिरंग—ग्रंथियोंकी वृद्धि सार्वाङ्गिक और मंद।

६. सामान्य प्रादाहिक ग्रन्थियाँ—

चिकित्सा—शुद्ध वायु, लघु पथ्य आहार, सूर्यके तापवाले मकानमें रहना। डॉक्टरी चिकित्साका फल संदिग्ध।

१. 'क्ष' किरण—बड़े पिण्डोंका ह्रास अति सत्वर होता है; किन्तु पुनःवृद्धि प्रायः विकार गहराईमें होनेपर सर्वदा अंतमें असफलता मिलती है। २ से ३ सप्ताहतक सौम्य मात्रामें उपयोग करें। पुनः दूसरीवार आवृत्ति करें। प्रभावित स्थानों का क्रमशः उपचार करें। रेडियम 'क्ष' किरणकी अपेक्षा कम प्रभावशाली है।

२. सोमल— 'क्ष' किरणके क्रम कालमें देते रहें।

३. शस्त्रचिकित्सा—स्थानिक विकृति ही हो तो करें, अन्यथा हानिकर है।

आयुर्वैदिक संशोधन (पञ्च-कर्म या ४० दिनतक आरोग्यवर्द्धिनी त्रिफला हिम सह) का सेवन करनेपर पचनसंस्थान और परम्परागत सब शरीरकी शुद्धि हो जाती है। फिर श्लैष्मिक पाण्डुकी चिकित्सा प्रारम्भकी जाय, तो सफलता मिलनेकी आशा है।

पाण्डुरोग चिकित्सोपयोगी सूचना

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि पाण्डु रोगीकी प्रकृति और दोष-दूष्यादिका निरीक्षणकर साध्य प्रतीत हो, तो स्नेहन क्रियाके लिये संशोधनात्मक घृतकी योजना करें। फिर वमन, विरेचन आदि से कोष्ठ शुद्धि करें। पाण्डु रोगमें वमनका निषेध किया है, तथापि ऋतु, देश, प्रकृति, काल, शरीर आदिका विचार करके मृदु वमन देना चाहिये।

श्री० वाग्भट्टाचार्य लिखते हैं कि, घी पिलाकर स्निग्ध किये हुए पाण्डु रोगीको तीक्ष्ण वमन कारक औषधिसे वान्ति करानी चाहिए, (इतर आचार्योंके मतानुसार पाण्डु रोगीको वमन कारक औषधि नहीं देनी चाहिए)। वमनद्वारा ऊर्ध्वभागका शोधन करनेपर पुनः घृत पिलाकर स्निग्ध करें। पश्चात् दूध और गोमूत्र पिलाकर या केवल गोदुग्ध पिलाकर अधोभागका शोधन करना चाहिए। फिर हरड़ आदि औषधि घी, शहदके साथ देवें या इतर रोगानुसार चिकित्सा करें।

पाण्डु रोगकी चिकित्सामें लोह भस्म, मण्डूर अथवा सुवर्णमाक्षिक भस्मकी योजना करनेसे स्वल्पकालमें रोगी स्वस्थ हो जाता है। यदि मल्ल-मिश्रित औषधि अनुकूल आजाय (मूत्रशुद्धि नियमित होती रहे, शोथ न होजाय), तो मल्ल श्वेत-जीवाणु संख्या कमकर रक्त जीवाणुओंको बढ़ानेमें अच्छी सहायता करता है।

पाण्डु रोगीको स्नेहनार्थ घी पिलाने और भोजनके साथ-साथ घी देनेके लिये कल्याण घृत (ज्वर रोगमें कहा हुआ), पंचगव्य (अपस्मार रोगपर कहा हुआ), महातिक्त घृत (कुष्ठरोगोक्त) अथवा आरग्वधादिगणोंकी औषधियोंसे सिद्ध किये हुए घृतको उपयोग में लेना चाहिए। गुल्म चिकित्सामें कहे हुए दाधिक घृत और षट्पल घृत भी हितकर माने गये हैं।

हलीमक चिकित्साके लिये आचार्यों ने कहा है कि—

पाण्डुरोगक्रियां सर्वां योजयेच्च हलीमके।
कामलायां तु या दृष्टा साऽपि कार्या भिषग्वरैः॥

हलीमक रोगियोंके लिये पाण्डुरोगमें कहे अनुसार औषधि, आहार और क्रिया आदिकी योजना करनी चाहिए। इस तरह जो औषधियाँ कामला रोगमें हितावह हैं, उनको भी प्रयोगमें ला सकते हैं।

वातज पाण्डु रोगमें स्निग्ध, पित्तजमें कड़वे और शीतल, कफज पाण्डुरोगमें रूक्ष और उष्ण उपचार तथा मिश्र चिकित्सा करनी चाहिए।

यदि पाण्डु रोगकी प्रथम अवस्थामें रोगी अजीर्णसे पीड़ित है या कफकी प्रधानता है, तो ही शास्त्रविधिसे स्नेहन कराकर वमन कराना चाहिए। पाण्डु रोगीके मलको अनेक बार थोड़ा-थोड़ा करके निकालना चाहिए। इस बातको लक्ष्यमें रखना चाहिए कि, एक ही समयमें यदि (तीव्र विरेचन देकर) ज्यादा मल दूर किया जायगा, तो शोथ आकर रोग अधिक दुःखदायी हो जायगा।

यदि रक्तस्रावसे पाण्डुता आई हो, तो लघु पथ्य पौष्टिक भोजन देवें और रक्ताणुओंको बढ़ानेकी चिकित्सा करें। पाण्डु रोगकी विशेष चिकित्साकी आवश्यकता नहीं है।

कृमि या विषम ज्वर आदि हेतुसे पाण्डु रोग हुआ हो, तो मूलकारणकी नाशक चिकित्सा करनी चाहिए।

मिट्टी खानेसे उत्पन्न पाण्डु रोगमें पहले थूहरके दूध आदि तीक्ष्ण विरेचन द्वारा मिट्टीको निकालें। फिर शक्ति बढ़ानेके लिये घृतकी योजना करें तथा मिट्टीसे उत्पन्न वात, पित्त, कफ प्रकोपको जानकर उनके विपरीत चिकित्सा करें।

पाण्डु और कामलामें लघु पञ्चमूलका उपयोग भोजन बनाने और पिलानेके जल में करना हितकारक है। इस तरह आँवला और मुनक्काका रस भी पाण्डु और कामला रोगीके लिये लाभदायक माना गया है।

पाण्डुरोग शमनार्थ शोथमें कही हुई चिकित्सा भी हितकारक है। यदि रक्तस्राव उपस्थित हुआ हो, तो प्रवाल, मौक्तिक, सुवर्णमाक्षिक, सुवर्णगैरिक आदि शीतवीर्य शामक औषधि देनी चाहिए। यदि दांतोंसे पूय निकलता हो अथवा शरीरके इतर भागमें अर्बुद या विद्रधि हुए हों, तो मूल कारणको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

त्रिदोषज दुष्ट पाण्डुमें लोह प्रधान औषधि तथा पशुओंके यकृत्का मांस खिलाने से या यकृत सत्व (Livere xtract) देनेसे रोग वृद्धि रुक जाती है और रक्तवृद्धि होने लगती है।

मुँहसे रक्तस्राव हो और मसूढ़े शिथिल हो गये हों, तो कीटाणुनाशक औषधि नीलगिरी तैल या बोरिक एसिडको जलमें मिलाकर अथवा खदिर छालके क्काथ आदि से कुल्ले करना चाहिये। यदि उदरकृमियोंके प्रकोपसे सान्निपातिक पाण्डु हुआ हो, तो कृमिघ्न उपचार करना चाहिये। फिरंग रोग पहले हुआ हो, तो मल्लप्रधान औषधि अष्टमूर्ति रसायन, मल्ल सिंदूर या अमीररस आदि देना चाहिये (वर्तमानमें सान्निपातिक पाण्डु पर मल्लप्रयोग का त्याग हुआ है।)

रक्ताणुओंका अति ह्रास हो जानेपर डॉक्टरीमें रक्तका अन्तः सेचन करनेका रिवाज बढ़ रहा है।

सगर्भाके पाण्डुपर अभ्रक भस्म, लोहभस्म, प्रवालपिष्टी तथा सितोपलादि चूर्ण मिलाकर देते रहना चाहिये। इनमें अभ्रक, मांससंस्थानको लाभ पहुँचाती है। सगर्भाके लिये प्रवाल अन्तिम दिनोंतक देते रहना चाहिये। प्रवाल और सितोपलादिके सेवनसे सगर्भा और गर्भ, दोनोंको लाभ पहुँचाता है। मलावरोध रहता हो, तो हरड़का चूर्ण, त्रिफला या अन्य सौम्य सारक औषधि देते रहना चाहिये।

क्षयरोगसे पाण्डुका संबंध होनेपर शिलाजीत, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और सुवर्ण मिश्रित औषधि देनी चाहिए।

प्रसूताको पाण्डु होनेपर सूतिकारोगके विषकी नाशक चिकित्सा करनी चाहिए।

शुक्रक्षयजन्य पाण्डु होनेपर शुक्रवर्धक, बृंहण औषधिका सेवन कराना चाहिए और दुग्ध आदि लघु पौष्टिक भोजन अधिक देना चाहिए।

मानसिक विकार, वातवहा नाड़ियोंकी विकृति और फुफ्फुसविकारसह पाण्डुमें मुख्य औषधिके साथ ब्राह्मी वटी, लक्ष्मीविलासरस या अभ्रक भस्म देनी चाहिए। पाण्डुरोगीको शुद्ध वायुमें रखना चाहिए। लघु पौष्टिक पथ्य आहारकी व्यवस्था करनी चाहिए एवं प्रारम्भमें कुछ दिनोंतक पूर्ण विश्रान्ति देनी चाहिए। मानसिक श्रम नहीं लेना चाहिए। दूध अण्डे और लघुपाकवाले मांस आदि भोजन हितावह हैं।

कितनेक तरुण रोगियोंको हस्तमैथुन आदि दुष्ट आदतके हेतुसे पाण्डुरोग होजाता है। ऐसे रोगियोंके दुष्ट अभ्यासको छुड़ा देना चाहिए। फिर लोह, अभ्रक, त्रिवंग, वंग आदि पौष्टिक औषधि तथा लघुपौष्टिक आहार देना चाहिए।

पाण्डुरोगमें क्षुधामान्द्य और कफकी अधिकता हो तो उसे दूर करनेके लिये तुरन्त योग्य उपायकी योजना करनी चाहिए। गोमूत्रादिक्षार, विशालाक्षार आदि औषधियाँ विशेष हितावह हैं।

यदि बद्धकोष्ठ बना रहता हो, तो त्रिफला क्षार या एलुवाके साथ लोह भस्म और मण्डूरभस्म की योजना करनी चाहिये। क्षारमण्डूर और आरोग्यवर्द्धिनी भी हितावह औषधि हैं। यदि जिह्वा मलावृत्त हो, बद्धकोष्ठ बना रहता हो और पाचक शक्ति अति क्षीणहो, तो लोहके स्थानपर मण्डूर देना चाहिए। मण्डूरवटक, पञ्चामृत-लोह-मंडूर, क्षारादि मण्डूर विशलाक्षार इत्यादि औषधियाँ विशेष लाभदायक हैं।

यदि कीटाणुजन्य रोगमें सेन्द्रिय विषकी उत्पत्तिसे पाचन शक्ति मन्द हो गई है, तथा वात और कफप्रकोपजनित लक्षण प्रतीत होते हैं, तो मल्ल प्रधान और ताल प्रधान औषधि कम मात्रामें देनी चाहिए। मल्लसिंदूर अष्टमूर्त्तिरसायन, समीरपन्नग, नारायण ज्वरांकुश आदि हितावह हैं।

स्त्रियोंके हलीमक रोगमें पौष्टिक (बृंहण) औषधि, लोह घटित, रक्तजनक औषधि तथा भैंसका घी और पौष्टिक आहारकी व्यवस्था करनी चाहिए। ताप्यादिलोह नवायस लोह, लोह भस्म और त्रिवंग भस्मका मिश्रण (च्यवनप्राशावलेहके साथ) आदि प्रयोग उपयोगी हैं। इस रोगमें शुद्ध वायुका सेवन, मानसिक प्रसन्नता, समुद्र का भ्रमण और पौष्टिक आहारकी योग्य व्यवस्था करनी चाहिए।

लसीका वृद्धिसह रक्तमें श्वेताणु वृद्धि (श्लैष्मिक पाण्डु) होनेपर जसद भस्म और सुवर्णवसंत उत्तम औषधि है। रक्त शोधक औषधिके साथ लोह भस्म दी जाती है। यदि प्लीहा अत्यधिक बढ़ गई है, तो डॉक्टरी मत अनुसार अस्त्र-चिकित्साका आश्रय लेना पड़ता है। आयुर्वेद के मत अनुसार पहले ऊर्ध्व और अधो भागका शोधन करें फिर पञ्चामृत, लोहमण्डूर, मण्डूरवटक, प्लीहान्तक क्षार चूर्ण, समीरपन्नग आदि देने पर अच्छा लाभ पहुँचता है।

डॉक्टरी ग्रन्थोंसे चिकित्सोपयोगी सूचना

चिकित्सा करनेके पहले रोग निर्णय करना चाहिये। (१) सच्चारोगविनिर्णय। (२) रक्ताणु गणना, आवश्यकता अनुसार पुनः प्रगति निर्णयार्थ। क्षणभंगुर और जालदार रक्ताणुओंकी गणना सब प्रकारके पाण्डु रोगोंमें चिकित्सामें सहायक है।

सब प्रकारोंके लिये उपयोगी—

१. आराम—गम्भीर प्रकारमें शय्यापर। आराम करानेपर सत्वर लाभ और हृदयका रक्षण होता है।

२ प्रारम्भिक कारण—गलनात्मक क्षत और उपद्रव हों, तो पाण्डुके सब प्रकारों की चिकित्साके साथ उनको दमन या निवारणकी चिकित्सा भी करनी चाहिये।

३. आहार—लाल मांस, ताज़ा शाक, फल।

क्षुद्ररक्ताणुमयपाण्डु—रक्ताणु और रक्तरंजनद्वारा प्रगतिका अनुमान करना चाहिये।

लोह—विशेष चिकित्सा, क्षारमय लोह (फेरीसल्फ, फेरी-एट -एमोनिया साइट्रस) डॉक्टरी लोहभस्मकी अपेक्षा आयुर्वेदिक लोह विशेष उपकारक है। आयुर्वेदिक लोहभस्म, मण्डूरभस्म, कासीसभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, लोहासव, इन सबका सरलतासे शोषण हो सकता है। लोह प्रधान अन्तःक्षेपणके अनेक प्रकार पूर्णांशमें असफल हैं। अधिक मात्रा पीड़ाकर होती है। लोहके विषमय लक्षण शिरदर्द और वमनादि तथा कभी पक्षवध आदि उपस्थित होते हैं। लोहके सेन्द्रियकल्प (रक्तरंजनादि) भी व्यर्थ हैं।

ताम्र—संभवतः रक्तरंजनके लिये अत्यावश्यक (मैंगेनीज़ भी) पोषणाभावसे उत्पन्न बालकोंके पाण्डुमें लोह और भोजनके साथ डॉक्टरीमें विशेषतः ताम्र (नीलाथोथा $\frac{3}{150}$ ग्रेन) लोह मिश्रणके साथ दिनमें २ या ३ बार १ से २ सप्ताह तक देते हैं।

यकृत्—होगका आमाशय (Hog's stomach)—अनावश्यक और सामान्यतः असफल। पकाये हुए यकृत्का सेवन रक्तस्रावसे उत्पन्न पाण्डुमें सहायक है।

रक्तका अन्तःसेचन—गम्भीर और प्रतिरोधक रोगियोंमें त्वरित लाभ पहुँचाता है।

लवणाम्ल—अपचनमें हितकर। पाण्डुपर प्रभाव नहीं पड़ता (मात्रा १० बूँद दिनमें ३ बार)।

मल्ल—विपरीत-सूचनादर्शक। मज्जाका ह्रास कराता है।

स्थूलरक्ताणुमयपाण्डु—प्रगतिका अनुमान प्रारम्भमें जालदार आच्छादक त्वचा घटकोंमें रक्तवृद्धिसे, फिर रक्ताणु और रक्तरंजक परसे तथा अन्तमें स्थूल के अदृश्य होनेसे।

यकृत्—रक्तरचनाकर द्रव्यका संग्रह कराता है, यकृत् कच्चा, पकाया हुआ एवं सत्वके अन्तःक्षेपण रूपसे प्रयोजित होता है। इनमें अन्तःक्षेपण सत्वर लाभप्रद है। पोषणार्थ रोज़ उपयोग करें। वृद्धावस्था और धमनीकोषकाठिन्य हो अथवा कीटाणुओंका

संक्रमण और उपद्रव हो, तो मात्रा अधिक। प्रारम्भमें रोगदमनार्थ कच्चा या पकाया हुआ २० से ४० तोले तक प्रतिदिन। फिर पोषणार्थ सप्ताहमें १॥-२ पौण्ड। इससे लोह और विटामिनकी प्राप्ति होती है, किन्तु लम्बे समय तक पूर्णमात्रामें नहीं देना चाहिये।

यदि सत्वके अन्तःक्षेपण से विपरीत असर हो, तो सत्वका सेवन भोजन में करा सकते हैं। अन्तःक्षेपण मांसपेशियोंमें चौथे-चौथे दिनको २ से ५ सी. सी. का किया जाता है। फिर पोषणार्थ प्रत्येक ३ सप्ताहमें ४ से ६ सी. सी.। यदि अन्तःक्षेपणसे वेदना हो, तो प्रयोग बदल देवें।

शिराके भीतर अन्तःक्षेपण गम्भीर रोगोंके आक्रमण होनेपर तथा प्रतिरोधक रोगियोंमें ५ सी. सी. देनेपर रक्तदबावका ह्रास होता है। यह शीतपित्त और शक्तिपात भी कराता है।

होगके आमाशयका शुष्क चूर्ण—हितकर है। १० ग्राम प्रत्येक १० लक्ष रक्ताणुओंकी न्यूनता के लिये प्रतिदिन। पोषणार्थ मात्रा ३-३ ग्राम।

यीस्ट—उष्ण कटिबन्धमें स्थूल रक्ताणुमय पाण्डुमें हितकर। इससे कम हितकर संग्रहणी (Sprue) में सान्निपातिक पाण्डुमें सामान्यतः असफल।

लोह—केवल सूचना करता है। (१) चिकित्सासे सूक्ष्म रक्ताणुओंकी अवस्थाकी उन्नति होती है, तो वर्णसूचीका ह्रास होता है। (२) कतिपय पोषणाभावज पाण्डुमें। अन्यथा व्यर्थ और आमाशयमें उग्रता लाता है। (यह दोष डॉक्टरी लोहमें है, आयुर्वेदिक लोहभस्म, जो शिंगरफ और वनौषधियोंसे मारित है, उसमें नहीं है)।

रक्तका अन्तः सेचन—सगर्भाके स्थूल रक्ताणुमय पाण्डुमें सूचनादर्शक है। अधिक बीमारीमें प्रतिक्रिया दर्शाता है। कभी सान्निपातिक पाण्डुमें आवश्यक होता है।

प्रतिरोधक रोगी—(१) अपूर्ण मात्रा; (२) उपद्रव; (३) मज्जा क्लान्ति या अपूर्ण उन्नति, इन कारणोंसे प्रतिबन्ध होता है। विविध इतर वाहक रहते हैं। जालदार आच्छादक त्वचाके घटकोंमें स्थिर रक्तवृद्धि चालू रहनेपर भी उपद्रव या रक्तरंजक पृथक् हो जानेसे पाण्डुरोगमें लाभ नहीं पहुँचता।

लवणाम्ल और मल्लके लिये सूचना—सूक्ष्म रक्ताणुमयपाण्डुमें देखें।

मिश्रित स्थूल-सूक्ष्मरक्ताणुमय पाण्डु—दोनों प्रकारकी चिकित्सा आवश्यक।

श्वेताणुवृद्धि पाण्डु इनके लिये—आवश्यक सूचना प्रत्येक रोगके अन्तमें पहले दी है।

पाण्डु रोग चिकित्सा

१. हल्दीके कल्क और क्वाथसे घृतको सिद्ध करके पिलानेसे पाण्डुरोग दूर होता है।

२. त्रिफलाके कल्क और क्वाथसे या लोधके कल्क और क्वाथसे गोघृतको सिद्धकर पिलानेसे पाडुरोगका निवारण होता है।

३. यदि कोष्ठमें अधिक मल संचय हो या विष वृद्धि हुई हो, तो विरेचन द्रव्यसे सिद्ध किये हुए घृतमिश्रित विरेचन औषधियोंका सेवन करानेसे पाण्डु रोग शमन हो जाता है।

बहुधा जीर्ण ज्वरके पश्चात् उत्पन्न पाण्डुरोग, प्लीहावृद्धिसह पाण्डु, पित्त प्रकोपजन्य पाण्डु और हलीमक आदिमें विरेचनयुक्त घृतकी आवश्यकता होनेपर उपयोगमें लिया जाता है।

४. हरड़का चूर्ण ४-४ माशेको दिनमें दो बार गुड़के साथ २१ दिनतक सेवन करानेसे पाण्डु रोग नष्ट हो जाता है अथवा हरड़का सेवन घृत और शहदके साथ करावें।

५. त्रिफलाके क्वाथमें घी और मिश्री मिलाकर पिलानेसे वातप्रकोपज पाण्डु रोगी शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

६. दशमूल क्वाथमें सोंठ मिलाकर पिलानेसे कफात्मक पाण्डु, ज्वर, अतिसार, शोथ, ग्रहणी, कास, अरुचि, कण्ठविकार और हृदयविकृति आदि दूर होते हैं।

७. पित्तज पाण्डुपर विरेचनके लिये निसोतका चूर्ण ४-६ माशे दुगनी मिश्री मिलाकर शीतल जलके साथ दें।

८. कफज पाण्डुमें कोष्ठ शोधनार्थ गोमूत्रसे शुद्धकी हुई हरड़का चूर्ण ६ माशे शहद या गुनगुने जलके साथ देना चाहिए।

९. फलत्रिकादि क्वाथ—हरड़, बहेड़ा, आँवला, गिलोय, वासा, कुटकी, चिरायता और नीमकी अंतरछाल, इन ८ औषधियोंको मिला २-२ तोलेका क्वाथकर दिनमें २ बार प्रातः-सायं शहद मिलाकर पिलानेसे कामलासह पाण्डु रोग नष्ट होता है।

१० एरण्डके पत्तेका या गिलोयका स्वरस २ तोले तक्रके साथ देनेसे सेन्द्रिय विषसे उत्पन्न पाण्डु रोग नष्ट होता है।

११. ४-४ पीपलको दूध और जलमें मिला दुग्धावशेष क्वाथकर रोज़ सेवन कराते रहनेसे १ मासमें पाण्डुता दूर हो जाती है अथवा जीर्ण ज्वरमें कहे हुए वर्धमानपिप्पली योगका सेवन कराना चाहिए।

१२. कच्ची फिटकरी १॥ माशेको २१ बार छाने हुए १० तोले गोमूत्रमें मिलावें। मिलानेपर उफाण आवेगा। इस उफाणके शमन होनेतक चम्मचसे चलाते रहें। फिर पिला देवें। इस तरह दिनमें २-३ बार पिलाते रहनेसे १ मासके भीतर शोथसह पाण्डु, कामला और कुम्भकामलाकी निवृत्ति हो जाती है।

१३. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहके प्रयोग—ताप्यादि लोह, नवायस लोह, योगराज रस, लोहभस्म, मण्डूरभस्म, मंडूरमाक्षिकभस्म, सुवर्णमालिनी वसंत, लघुमालिनी वसंत, पुनर्नवामंडूर, तक्रमंडूर, मल्लसिंदूर, मल्लभस्म द्वितीय विधि,

त्रैलोक्यचिन्तामणि, त्रिफलारिष्ट, जसद भस्म, अभ्रक भस्म और लोह भस्म, रौप्यभस्म, सुवर्ण भूपति, पञ्चगव्य घृत, कल्याण घृत, तालीसादि चूर्ण, चन्द्रप्रभावटी, द्राक्षावलेह।

ताप्यादि लोह—शीत ज्वर बाद पाण्डु, हृदयविकृतिसह पाण्डु, त्रिदोषज पाण्डु, स्त्रियोंका पाण्डु (हलीमक), मिट्टी खानेसे होनेवाला पाण्डु, कृमिजन्य पाण्डु, शोथसह इन सबमें लाभ पहुँचाता है।

नवायस लोह—वातज, पित्तज, कफज, पाण्डु और शोथको नष्ट करता है। रक्तरंजककी न्यूनताकी पूर्ति करता है तथा लघु रक्ताणुओंकी उत्पत्तिको रोकता है।

योगराज रस—त्रिदोषज पाण्डु, मिट्टी खानेसे होनेवाला पाण्डु, हलीमक, कृमिजन्य पाण्डु, विषविकारसे उत्पन्न पाण्डु, लसीका ग्रन्थिविकारजनित श्वेताणुवृद्धि, लसीका ग्रन्थि वृद्धिसह घातक पाण्डु, फुफ्फुस और हृदयविकारसह पाण्डु, शोथसह पाण्डु आदि सब प्रकारके पाण्डु रोगोंको नष्ट करता है।

मल्लसिंदूर—कीटाणु या विषप्रकोपजन्य घातक पाण्डुमें मल्लसिंदूर या मल्लभस्म देना हितकर माना गया है। मल्लमिश्रित औषधिसे कीटाणु और विष नष्ट होकर रोगी स्वस्थ हो जाते हैं।

लोहभस्म—पित्तज पाण्डु, हलीमक और कृमिजन्य पाण्डुको दूर करता है। कृमिजन्य पाण्डुके लिये बायविडंग और अजवायनका फूल अनुपान रूपसे देवें। पित्तज और हलीमकमें च्यवनप्राशावलेहके साथ तथा रक्तस्राव होनेसे पाण्डुता आई हो, तो शहद-पीपल या दाडिमावलेहके साथ सेवन कराना चाहिए।

मण्डूरभस्म—नाज़ुक प्रकृतिवाले पुरुष, स्त्री और बालकोंके पाण्डु, मिट्टी खानेसे उत्पन्न पाण्डु, कामलासह पाण्डु, जीर्ण पाण्डु, शोथसह पाण्डु, प्लीहावृद्धि, यकृद् वृद्धि, कृमिजन्य पाण्डु, इन सबपर लाभदायक है। अनुपान त्रिफला और शहद।

मण्डूर माक्षिक भस्म—सगर्भाका पाण्डु, पित्तप्रकोपजन्य पाण्डु और कामला-सह पाण्डुमें सत्वर लाभ पहुँचाती है।

सुवर्णमालिनी और लघुमालिनी वसंत—जीर्णज्वरसह पाण्डु, ज्वरके पश्चात् पाण्डु, लसीका और श्वेताणु वृद्धि और प्लीहा वृद्धिसह पाण्डुको दूर करती है। बालकोंकी लसीका धातुकी विकृतिमें भी हितावह है।

पुनर्नवा मंडूर—मकोयके अर्कके साथ शोथसह पाण्डुमें हितकर।

तक्र मण्डूर—तक्रके अधिकारीको शोथ और पाण्डुके लिये अति हितावह।

त्रिफलारिष्ट और पुनर्नवा मण्डूर—दोनों साथ-साथ भी दिये जाते हैं। हृदयविकृति और शोथसह पाण्डुमें लाभदायक है।

त्रैलोक्य चिन्तामणि रस—ज्वर, हृदयशूल, श्वास, कास और क्षयसह पाण्डुमें सेवन कराना चाहिए।

जसदभस्म, सुवर्णमालिनी और लघुमालिनीका—उपयोग लसीकावृद्धि या लसीका ग्रन्थियोंकी विकृति और पित्तप्रकोपसह पाण्डुपर।

रौप्य भस्म—वातवहा नाड़ियोंकी विकृति या मानसिक चिन्ताजन्य पाण्डु होनेपर अभ्रक भस्म और च्यवनप्राशावलेहके साथ सेवन करावें।

सुवर्ण भूपति रस—वातवहानाड़ियोंकी विकृति, अज्ञातविष प्रकोप, श्वास, कास और मन्द ज्वरसह पाण्डुरोगमें अपना प्रभाव थोड़े ही दिनोंमें दर्शाता है।

पञ्चगव्य घृत या कल्याण घृत—स्नेहनार्थ एवं भोजनमें नित्यप्रति देते रहनेसे पाण्डु रोग सत्वर आराम होता है। विषम ज्वरजन्य व्याधिपर कल्याण घृत और वातवहानाड़ियोंकी विकृतिपर पञ्चगव्य घृत हितकारक है।

तालीसादि चूर्ण, द्राक्षावलेह और चन्द्रप्रभावटी—पाण्डुत्वनाशक सौम्य औषधियाँ हैं। इनमें चन्द्रप्रभावटी विषको मूत्रद्वारा बाहर निकालकर विषजन्य दुष्ट रोगोंको भी नष्ट कर देती है।

१४. उपदंश रोगके पश्चात् पाण्डु होनेपर—अष्टमूर्त्ति रसायन, उपदंश-चूर्ण या मल्लादि वटीका सेवन कराना चाहिए।

१५. शुक्रक्षयजन्य पाण्डुपर—सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवालपिष्टी और वङ्गभस्म मिश्रण, वङ्गभस्म, शिलाजीत और लोह भस्म मिश्रण, बृहद् वङ्गेश्वर रस, पूर्णचन्द्रोदयरस, रससिंदूर, लोहभस्म और वङ्गभस्मसह, वसन्तकुसुमाकर रस, अश्वगन्धारिष्ट, और कौंचपाक आदिमेंसे जो प्रकृतिको विशेष अनुकूल हो उस औषधिका सेवन कराना चाहिए। शिलाजीतको केसर, मिश्री और गोदुग्धके साथ देनेसे शुक्रक्षय और पाण्डुताकी निवृत्ति होती है।

१६. आमवृद्धि और अपचनसह पाण्डुपर—कासीस भस्म और लोह भस्मको त्रिफला और शहदके साथ मिलाकर सेवन करानेसे पाण्डुताकी निवृत्ति होती है।

१७. प्रसूताकी पाण्डुता शमनार्थ मण्डूर भस्म—(दशमूलारिष्टके साथ), सूतशेखर रस, दशमूलारिष्ट, अभ्रक और लोह भस्म (द्राक्षारिष्टके साथ) और सौभाग्य सुण्ठीपाक, इनमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन कराना चाहिए। इनमें वातपित्तप्रकोप होनेपर रुग्णाको सूतशेखर विशेष अनुकूल रहता है।

१८. रक्तस्रावसह पाण्डुपर दुर्वाद्यघृत—कामदुधा रस द्राक्षावलेहके साथ, मौक्तिकपिष्टी धारोष्ण दूधके साथ और उशीरासव आदिमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन कराना चाहिये।

१९. क्षयजन्य पाण्डु होनेपर—राजयक्ष्मानाशक महामृगाङ्क रस या लक्ष्मीविलास रसका सेवन कराना चाहिये। अनुपान च्यवनप्राशावलेह या दाड़िमावलेह।

२०. अतिसार या ग्रहणीसह पाण्डु होनेपर—पञ्चामृत पर्पटी, दिनमें

३ बार थोड़ी-थोड़ी मात्रामें देते रहना चाहिए या हिंगुल रसायन दूसरी विधि १-१ रत्ती दिनमें २ बार अनार शर्बत या दाड़िमावलेहके साथ।

२१. मूत्रद्वारा विष बाहर निकालनेके लिये—शुद्ध शिलाजीत गिलोयके रसके साथ या जलके साथ प्रातः-सायं देते रहें अथवा चन्द्रप्रभावटीका सेवन करावें।

मृज्जन्य पाण्डुनाशक प्रयोग—मृदुविरेचन रस या आरग्वधादि क्वाथ दूसरी विधिसे कोष्ठ शुद्धि करा, फिर ताप्यादि लोह या मण्डूर भस्म द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

२३. प्लीहावृद्धि और मज्जाविकृतिसह—श्लैष्मिक पाण्डुपर आगे लिखा हुआ पञ्चामृत लोहमंडूर अथवा सुवर्णमालिनी वसंत और समीरपन्नगका मिश्रण या लोहमिश्रित प्लीहान्तक गुटिका और मल्लभस्म द्वितीय विधिका सेवन २-३ मासतक पथ्य पालनसह कराते रहना चाहिए।

२४. जीर्ण मंदज्वर और कामलासह पाण्डुपर—चन्दनादि चूर्ण शहद या इतर अनुकूल अनुपानके साथ देते रहना चाहिए।

२५. हलीमक नाशक प्रयोग—ताप्यादि लोह (द्राक्षारिष्टके साथ), योगराज रस, प्रवालपिष्टी, शुक्ति भस्म, मण्डूरभस्म (मूलीके रसके साथ), सुवर्ण-मालिनी वसन्त, सूतशेखर रस (द्राक्षावलेहके साथ), आदिमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन करानेसे थोड़े ही दिनोंमें रोगिणी स्वस्थ हो जाती है।

२६. लोहभस्म २-२ रत्ती और नागरमोथेका चूर्ण ३-३ माशे मिला खैर छालके क्वाथके साथ दिनमें २ समय देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें हलीमक दूर हो जाता है।

२७. कृमिजपाण्डु (हलीमक) चिकित्सा—इस रोगमें नेत्र, गाल, भ्रू, पैर, नाभि और मूत्रेन्द्रियपर सूजन, उदरमें कृमि और कफ तथा रक्त मिश्रित दस्त इत्यादि लक्षण होते हैं। इसपर पहले कृमिघ्न विरेचन देना चाहिए। फिर पाण्डु रोगकी चिकित्सा करनी चाहिए। मंडूरभस्म (त्रिफलाके साथ), लोह-भस्म (वायविडंग और अजवायनके फूलके साथ), कृमिकुठार रस, ताप्यादि लोह, त्रिफलारिष्ट, पुनर्नवा मण्डूर आदिमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन करानेसे कृमिज पाण्डु और कृमिज हलीमकका निवारण हो जाता है। बथुवाका तैल अति लाभदायक है।

२८. रसतन्त्रसार द्वितीय-खण्डमें आये हुए प्रयोग—सामान्य पाण्डुपर प्रवाल-माक्षिक मिश्रण, हरीतकी रसायन और लोहासव उपयोगी है। ज्वरजन्य पाण्डुपर कालमेघ नवायस, विशालादि चूर्ण, लोहासव, योगराज रस, पञ्चामृत मण्डूर और गोमूत्रादिघृत प्रयुक्त होते हैं। शोथसह पाण्डुपर पञ्चानन वटी या नारायणमण्डूर दिया जाता है। वातज पाण्डुपर पञ्चानन वटी, लोहसिंदूर, नारायणमण्डूर और योगराज रस

हितावह है। धातुक्षयज पाण्डुपर लोहसिन्दूर उपयोगी होता है। अम्लशोथसह पाण्डु होनेपर मण्डूरवटकका सेवन कराया जाता है। मिट्टी खानेसे उत्पन्न पाण्डुमें क्षारादिमण्डूर और अपचनसह पाण्डुमें विशालाक्षार और मण्डूरवटक हितावह होते हैं।

२६. पुनर्नवादि क्वाथ—पुनर्नवाका मूल, हरड़, नीमकी अन्तरछाल, दारुहल्दी, कुटकी, परवलके पत्ते, गिलोय और सोंठको क्वाथकर, फिर उसमें गोमूत्र मिलाकर पिलानेसे पाण्डु, कास, उदररोग, श्वास, शूल और सर्वाङ्ग शोथ नष्ट होते हैं। इन पाण्डु आदि रोगोंमें जब शोथ आजाता है,तब अनुपान रूपसे इस क्वाथका प्रयोग करनेसे कोष्ठबद्धता, मन्द ज्वर और यकृत्प्लीहा वृद्धिसह शोथका सत्वर नाश होता है।

उपद्रव भेदसे उपद्रव शामक अनुपानकी योजना करनेपर रोगनाशक मुख्य औषधि अपना कार्य सत्वर कर सकती है। यदि यह क्वाथ सगर्भाको देना हो, तो कम मात्रामें देना चाहिए। प्रसूताको यह क्वाथ अनुपान रूपसे दिया जाता है।

३०. अमृतलतादि घृत—गिलोयके पञ्चाङ्गका कल्क १ सेर, गिलोय स्वरस १६ सेर, दूध ४ सेर और भैंसका घी ४ सेर मिलाकर यथाविधि सिद्ध करें। इस घृतको ४ से ८ तोलेतक रोज़ ७ दिनतक सेवन करा रोगिणीको स्निग्ध करें। फिर आँवलेके रसके साथ निसोतका चूर्ण विरेचन रूपसे देवें। पश्चात् ताप्यादि लोह और द्राक्षावलेह आदि औषधियाँ देते रहनेसे हलीमक रोग समूल नष्ट होजाता है। विरेचनसे कोष्ठशुद्धि कर लेनेके बाद भोजन मधुर वातपित्तशामक देना चाहिए। अग्निमान्द्यवाली रोगिणीको दिनमें दो बार द्राक्षारिष्ट भी देवें तथा आवश्यकता होनेपर दूध और घृत मिलाकर अनुवासन बस्ति देवें।

३१. धात्र्यवलेह—आँवलोंका स्वरस १०२४ तोले, पीपल ६४ तोले, बीज निकाली हुई मुनक्काका कल्क ६४ तोले तथा सोंठ, मुलहठी और वंशलोचन ८-८ तोले लें। इन सबको मिलाकर मन्दाग्निपर पचन करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर शक्कर २०० तोले मिला अवलेह सिद्ध करें। शीतल होनेपर ६४ तोले शहद मिलालें। मात्रा ६ माशेसे १ तोलातक दिनमें २ बार २ रत्ती लोह भस्म मिलाकर सेवन कराते रहनेसे हलीमक, कामला, पाण्डु और कास रोग दूर होते हैं।

डॉक्टरी प्रयोग

(१) रक्ताणु और रक्तरंजक वर्द्धक—

फेरी एट एमोनिया साइट्रेस Ferri et Ammon. Cit. २० से ४० ग्रेन। ग्लिसरीन Glycerin १५ बूँद।

एक्वा क्लोरोफार्म Aqua Chloroform १ औंस इसतरह दिनमें ३ बार भोजनके बाद देवें।

(२) लवणाम्लवर्द्धक—

एसिड हाइड्रोक्लोरिक डी. Acid Hydroc. Dil. २० बूँद

ग्लिसरीन पेप्सिन Glycerin Pepsin ३० बूँद
एका क्लोरोफार्म Aqua Chloroform ½ औंस
भोजनके समय फलोंके रसके साथ, दिनमें ३ बार ।

पाण्डुरोगमें पथ्यापथ्य

पथ्य—सशक्त रोगीको वमन, विरेचन, पुराना जौ, गेहूँ और शालि चावल मूँग, अरहर और मसूरका यूष, जङ्गलके जीवोंका मांस रस, परवल, पक्का पेठा, कच्चा केला जीवन्ती, तालमखानेके पानोंका शाक, मत्स्याक्षी (मछेछी) गिलोय, चौलाई, पुनर्नवा, गूमा, बैंगन, प्याज़, लहसुन, पक्के आम, हरड़, कन्दूरी, शृंगी नामक मछली, गोमूत्र आँवले, मट्ठा, घी, तैल, सौवीर और तुषोदक नामक काँजी, मक्खन, लाल चन्दन, हल्दी, नागकेशर, जवाखार, लोह भस्म, मण्डूर, कसैले रसवाले पदार्थ और केसर आदि ।

पाण्डु रोगीको आग्रह पूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए । भोजन लघु-पौष्टिक लेवें । शुद्ध वायुका सेवन अति हितकर है । हल्दीसे सिद्ध किया घृत इस रोग में अति लाभदायक है । अनार, आँवला, अंगूर आदि मधुर ताज़े फल और मुनक्का, दूध, लघुपाकी मांस और अण्डे आदिका सेवन लाभप्रद है ।

हलीमक रोगीके लिये गायकी अपेक्षा भैंसका घी विशेष हितकर है । हलीमक रोगमें मधुर और वातपित्तघ्न भोजन देना चाहिए । रोगीको पीनेके लिये लोहेकी कड़ाहीमें उबालकर शीतल किया हुआ जल देना चाहिये ।

अपथ्य—शिरा खोलकर रक्तस्राव कराना, जौंक लगवाना, धूम्रपान, वमनके वेगका धारण, स्वेदन क्रिया, मैथुन, सेम, चौलाईके अतिरिक्त पत्ती शाक, हींग, उड़द, अधिक जलपान, तिलकूट, पान, सरसों, शराब, मिट्टी खाना, दिनमें शयन, अति तीक्ष्ण और चरपरे भोजन, अधिक नमक, सह्याद्रि और विन्ध्याचलमें से निकली हुई नदियोंका जल, भारी भोजन और विदाही भोजन ।

बीड़ी, सिगरेट, चाय आदिका व्यसन हो, तो छुड़ा देना चाहिए । कुलथी और तेज़ खटाईका त्याग करना चाहिए ।

हलीमक रोगिणीको दूध और मांस हानिकर हैं । एवं मैथुन, मानसिक चिन्ता, क्रोध, सूर्यके तापमें घूमना, व्यायाम और अधिक परिश्रम अति गरम-गरम भोजन, शुष्क भोजन, वर्षा ऋतुमें नदियोंका जलपान, बार-बार स्नान करना और रात्रिका जागरण, ये सब पाण्डु और हलीमक रोगको बढ़ाने वाले हैं ।

योगराज रसका सेवन करानेपर मकोय (शोथनाशक होने पर भी) अपथ्य है । लसीका ग्रन्थियोंकी विकृति होनेपर नया चावल, उड़दकी दाल, कच्चा दूध, मैदेके पदार्थ, गोंद जैसी चिपचिपी औषधियाँ, लसदार कन्द शाक, चिपचिपे भोजन, गरम-गरम भोजन और गरम-गरम पेय (चाय, दूध) आदि हानिकर हैं ।

कृमिजन्य पाण्डु रोगमें मधुर पदार्थका बिल्कुल त्याग करें कृमिरोगमें लिखे अनुसार पथ्यापथ्यका भी पालन करें।

३० रक्ताणुवृद्धि

परीथ्रीमिया—वकाज़ का रोग—ओसलर का रोग—प्लीहावृद्धिसह रक्ताणुओंकी वृद्धिमय विकार। Erythraemia, Vaquez's disease, Osler's disease, Splenomegalic polycythemia.

इस रोगमें रक्तके भीतर रक्ताणुओं और रक्तके परिभ्रमणकी वृद्धि होती है। मज्जाकी अति क्रिया शीलताके हेतुसे जीवकेन्द्रमय रक्ताणुओंकी अधिक उत्पत्ति। रोग निर्णयात्मक दृष्टिसे प्लीहाकी वृद्धि और रक्त संग्रह युक्त देखावकी प्रतीति।

आयु ३५ से ६० वर्षके भीतर। विशेषतः पुरुषोंको। कभी-कभी स्त्रियोंको सौम्य। उपदंशके विषसे यह नहीं होतो।

संप्राप्ति—मज्जा क्रिया शील, बैंजनी रंगकी प्राप्ति, जीवकेन्द्रमय दानेरहित रक्ताणुओं और अपक्वश्वेताणुओंसे सम्बन्धवाले तन्तुओंकी अस्वाभाविक वृद्धि। बहुसंख्य दानेरहित मज्जाणु विद्यमान। इस हेतुसे इसे दानेरहित रक्ताणुओंका सम्बन्धवाले मज्जा-तन्तुओंका प्राथमिक अस्वाभाविक वृद्धिमय रोग माना है। यह श्वेताणु वृद्धिसे (अधिक संभवतः गौणविकारसे) सम्बन्धवाला है।

लक्षण—शिर दर्द, चक्कर आना, बेहोशीका आक्रमण, मुख-मण्डलपर रक्त वृद्धि, देखनेमें कष्ट, क्षणिक पक्षवध। प्लीहावरण प्रदाहसे पीड़ा, नासारक्त स्राव तथा नेत्र दर्पणमें और अन्यत्र रक्तस्राव (क्वचित् अधिक मात्रामें)। यह शीतकालमें अधिक खराब।

भौतिक चिह्न—

१. देखाव—रक्ताभ, (शीतकालमें नीलाभ)। सामान्यतः सब रक्तवाहिनियाँ प्रसारित। ओष्ठ और कर्णपाली बैंजनी।

२. प्लीहावृद्धि—सामान्यतः नाभि तक, वेदना रहित कठोर।

नेत्रके पिछले हिस्सेमें नेत्रदर्पणकी रक्तवाहिनियाँ रक्त संचयसे नष्ट। शीतबिम्ब (Optic Disc) किञ्चित् शोथ युक्त। रक्तदबावकी वृद्धि। लसीकामेह उपस्थित। यकृत् स्पर्शग्राह्य। हृदयकी स्थूलता क्वचित्।

रक्तपरिवर्त्तन—

१. परिभ्रमण—प्रायः द्विगुण।

२. रक्ताणु—७० से १२० लक्षप्रति सेंटी मिलीमीटर देखाव सामान्य। थोड़े जीवकेन्द्रमय सामान्य रक्ताणु तथा जालदार रक्ताणु उपस्थित।

३. श्वेताणु—१५,००० से २०,००० मुख्यतः बहुजीवकेन्द्रमय। कुछ मज्जाणु।

४. रक्तरंजक—१२० से १६० प्रतिशत। वर्णसूचीका ह्रास।

चिपचिपेपनकी अति वृद्धि । रक्तचक्रिकाओंकी वृद्धि । मूत्राम्ल अधिक । भंगुरता सामान्य । रक्त जमने का समय सामान्यतः जल्दी ।

उपद्रव—रक्ताभिसरणमें अन्तरायके हेतुसे ।

१. रक्तवाहिनियोंमें से रक्तस्राव, शल्योत्पत्ति ।

२. परिधि प्रान्तस्थ धमनीगत—शून्यता, झनझनाहट । रैनोडके लक्षण समूह (Raynaud's Syndrome) रक्तवाहिनियोंकी प्रचेष्टनी नाड़ियोंकी क्रिया विकृति-जन्य स्थानिक चेतना ह्रास, केशिकाओंमें रक्तवृद्धि, स्थानिक शोफ, फिर कोथ, सार्वाङ्गिक वेदना (Erythramelalgia), फिर वृद्धि होनेपर कोथ ।

३. रक्तपरिवर्त्तन—अ. पाण्डु और श्वेताणु ह्रासमह अपूर्ण उन्नति । आ. मज्जाविकृतिसह श्वेताणु वृद्धि सदृश विकृति, अपक्व रक्ताणु और अपक्व श्वेताणुमय रक्तविकार (Erythro-leukaemia), आमाशय-ग्रहणीमें क्षत (अनिश्चित ।

क्रम और साध्यासाध्यता—मध्यवर्ती विरामसह लम्बा समय लेता है, किन्तु आराम नहीं होता । बहुधा हृत्साद या मस्तिष्कगत रक्तवाहिनीमें शल्योत्पत्ति होकर मृत्यु ।

रोगविनिर्णय—रक्ताणु वृद्धि (Erythrocytosis)*कोलटारसे गात्रनीलता और रक्तमें ओसजनमय रक्तरंजककी उपस्थिति (Methaemoglobinaemia) से प्रभेद करना चाहिये ।

चिकित्सा—

१. सिराव्यध—सिरा तोड़कर १० से ३० औंस रक्त निकाल लेवें । पुनः कुछ मासके पश्चात् रक्त निकाल लें ।

औषधोपचार—डॉक्टरी में फेनील हाइड्रेज़िन, हाइड्रोक्लोराइड

*तन्तुओंको ओसजन (Oxygen) मिलनेपर रक्तमें रक्ताणुओंकी संख्या बढ़ जाती है। इसमें प्लीहावृद्धि नहीं होती । इसके कारण अनेक हैं । (१) समुद्र सतहसे अधिक ऊँचाई पर रहना; (२) जन्मसिद्ध हृदरोग; (३) अयरज़ाका रोग—(चिरकारी गात्र नीलता, चिरकारी श्वास कृच्छ्रता, यकृत्प्लीहावृद्धि, मज्जासे अस्वाभाविक रक्ताणुओंकी उत्पत्ति, फुफ्फुस धमनीका कोषकाठिन्य आदिसह विकार); (४) प्रतिहारिणी शिरामें शल्योत्पत्ति (प्लीहा वृद्धि); (५) गुह्यागत फिरंग; (६) पोषणिका ग्रन्थिमें चाररंगेच्छु श्वेताणुओंकी वृद्धि (Cushing's disease-मुख-मण्डल, कपोल और कण्ठपर मेदवृद्धि, कामोत्तेजना केशकी अस्वाभाविक वृद्धि, उदरमें वेदना और मांसपेशियोंकी निर्बलतामय विकार); (७) रक्त गाढा होजाना—उदा० मानसिक आघात, विसूचिका और अतिसारसे रक्तमेंसे अतिजल निकल जाना; (८) कार्बन मोनोक्साइड तथा अन्य विषकी उपस्थिति । (९) पाण्डुमेंसे कुछ कालके लिये स्वास्थ्य प्राप्ति आदि ।

Phenylhydrazin Hydrochloride) १-७ दिन तकके चेहके भीतर १ से ४ ग्रेन मात्रामें दिया जाता है। यह रक्ताणुओंका सत्वर ह्रास कराती है।

३. 'क्ष' किरण प्रयोग—बड़ी अस्थियोंपर कुछ असर।

४. आयुर्वेदिक औषधियाँ शिलाजीत, यवक्षार, गोमूत्र, चिकित्सा तत्त्वप्रदीप प्रथम-खण्डके प्रथम-प्रकरण (पृष्ठ ३९-३७) में कही हुई लंघन चिकित्सा व्योषादि चूर्ण मिश्रित सत्तू आदि सौम्य और अधिक हितकारक है। पहले शिरोभ प्रधान विरेचन देकर उष्णताका ह्रास कराना चाहिये।

(३० अ) रक्तदबाव वृद्धिसह रक्ताणु वृद्धि

(गीसबेकका रोग—पोलीसाइथीमिया हाइपरटोनिका)

(Geisback's disease-Policythaemia Hypertonica.)

इस रोगमें रक्तके भीतर रक्ताणु वृद्धि तथा रक्त दबाव वृद्धि होते हैं, किन्तु प्लीहा वृद्धि नहीं होती। हृदयकी स्थूलता प्रायः हो जाती है। मस्तिष्कमें रक्तस्राव सामान्यतः रक्ताणुवृद्धि अस्थिर।

चिकित्सा—सर्पगन्धा अधिक हितकर औषधि है। फेनेल हाइड्रेजिनका प्रयोग (वृक्क रोग साथमें होनेपर) अनुचित है।

३१. रक्तपित्त

(हिमोर्हेजिक डिसीज़िज़—Haemorrhagic Diseases.)

रोग परिचय—इस रोगमें रक्त और पित्तके प्रकोपसे मुँह, नाक, कान, आँख, गुदा या मूत्रेन्द्रियमेंसे रक्तस्राव होता है।

निदान—भगवान् धन्वन्तरिजीके मत अनुसार माधव निदानकार लिखते हैं कि, सूर्यके तापका सेवन, व्यायाम, अधिक श्रम, शोक, क्रोध, भय, शराब, अधिक मार्ग गमन, अधिक स्त्रीसमागम, खट्टे फल, काँजी, तैल, मछली, बकरे और भेड़का मांस, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षारयुक्त, नमकीन, खट्टे या चरपरे पदार्थोंका अधिक सेवन, क्वचित् स्त्रियोंका मासिकधर्म रुकना, इन कारणोंसे पित्त प्रकुपित होता है। फिर रक्तमें मिश्रित होकर रक्तको दूषित करता है। पश्चात् पित्तमिश्रित रक्त ऊर्ध्व प्रदेश, अधः-प्रदेश या दोनों ओरसे निकलने लगता है। ऊर्ध्व मार्गसे, नाक, कान, नेत्र और मुँहसे तथा अधोदेशसे मूत्रेन्द्रिय और गुदाद्वारसे बाहर निकलता है। इनके अतिरिक्त क्वचित् समस्त रोमकूपोंमेंसे भी झरने लगता है।

महर्षि आत्रेय कहते हैं कि, जब मनुष्य जंगली व्रीहि धान्य, वनकोदों, कोदों आदि नये अन्न, अति उष्ण और अति तीक्ष्ण अन्न, निष्पाव, उड़द, कुलथीका यूष, क्षार, दही, दहीका जल, उदश्वित (आधा जल युक्त मट्ठा), जल रहित मट्ठा, खट्टा

काँजी आदि पदार्थ; सूअर, भैंस, भेड़, मछली और गौके मांसका सेवन, तिलकुट, पिण्डालु, शुष्क शाक, पक्की मूली, सरसों, लहसुन, करंज, सुहिंजनेकी फलीका शाक, कड़वे सुहिंजनेकी फली, खड़यूष (रायता) भूस्तृण (सुगंधयुक्त घास), राई दालचीनी, जंगली तुलसी, श्वेत तुलसी, गण्डीर (एक प्रकारका क्षुद्र शाक), कालमामक (क्षुद्र तुलसी), पर्णाश (काली जंगली तुलसी), क्षवक (नाकछिंकनी या काली सरसों), फणिज्जक (क्षुद्र तुलसी-मरुवा), सुहिंजना, सुरा (शराब), सौवीर-नामक काँजी, तुषोदक नामक काँजी, मैरेय नामक शराब, मेदक नामक शराब, मधुलक नामक शराब, शुक्त (काँजी), कुवल (एक प्रकारका बड़ा बेर) और खट्टे बेर आदि पदार्थोंका सेवन, भोजन करके फिर पिट्ठीके बने पदार्थोंको खाना फिर ऊपरमें अति गरम या अति ज़्यादा या असमयपर दूध पीना, दूधका जिन पदार्थोंके साथ विरोध है। ऐसे रोहिणी शाक, कपोतमांस, सरसोंके तैल, क्षारमिश्रित भोजन, कुलथी, जामुन, कटहलके पक्के फल या बेरोंके साथ दूधका भोजन, कच्चा या अति विशेष या अति उष्ण दूध या इतर विरोधी पदार्थोंका सेवन आदि कारणोंसे पित्त कुपित होता है और रक्त भी अपने परिमाणसे अति बढ़ जाता है। फिर प्रकुपित पित्त देहमें चारों ओर फैल जाता है; किन्तु रुधिरवहानाड़ियों (रुधिर) के उत्पत्तिस्थान रूप यकृत्प्लीहाके भीतर नाड़ियोंके खुले हुए मुखों पर अति प्रवृद्ध रक्त रुक जाता है, जो वहनसे भारी हुआ है, वह फिर पित्त उसी रक्तमें मिलकर उसे दूषितकर देता है। परिमाणमें रक्तपित्तकी संप्राप्ति होती है।

श्री० वाग्भट्टाचार्य लिखते हैं कि, अति उष्ण, अति तीक्ष्ण, अति चरपरे, अति खट्टे, अति नमकीन या अति विदाही अन्न और क्षार आदि पित्तप्रकोपक वस्तुओंका अति सेवन, एवं कोदों, उद्दालक (वन कोदों) आदि कुधान्योंमेंसे बने भोजन, जिनमें नमक, मिर्च, खटाई, हींग, तैल आदि मिलाये हों और जो अति गरम हों, ऐसे पित्तप्रकोपक पदार्थोंके चिरकाल पर्यन्त अति सेवनसे द्रव स्वभाववाले पित्त और रक्त प्रकुपित होते हैं। फिर दोनों मिलकर एक ही वर्णके बनकर देहमें सर्वत्र फैल जाते हैं।

वक्तव्य—इस कथनमें आचार्यने पित्तवर्धक पदार्थोंके नामके अंतमें 'पित्तल' अर्थात् पित्तवर्धक शब्द विशेषण रूपसे बढ़ाया है। कारण—अनार, आँवले, सैंधानमक आदि अनेक पदार्थोंमें खट्टापन और नमकीनपना होनेपर भी वे पित्तप्रकोपक नहीं हैं। दूसरा हेतु व्रीहि प्रभृति जो उष्णवीर्य नहीं है, उनका यदि अति मात्रामें सेवन किया जाय, तो उनसे भी पित्त और रक्त प्रकुपित हो जाता है। जिस तरह अति गरम-गरम पदार्थ पित्त और रक्तको अति प्रकुपित करते हैं, उस तरह इतर व्रीहि आदिके भोजनसे नहीं होता। फिर भी कोदों आदि शीतवीर्य पदार्थोंके साथ यदि अति गरम, अति मिर्च आदिका संयोग होता है, तो वे उनको भी पित्तवर्धक बना देते हैं।

रक्तपित्तकी व्याख्या करनेमें आचार्यने भिन्न-भिन्न समासका आश्रय लिया है। भगवान् धन्वन्तरिजीके मतमें, 'रक्तञ्च पित्तञ्च रक्तपित्तम्' अर्थात् द्वन्द्वसमास अनुसार रक्त और पित्त, दोनों वहन करने लगते हैं, महर्षि आत्रेयके मत अनुसार, राग परिप्राप्तं पित्तं 'रक्तपत्तिं' अर्थात् 'रक्तं' च तत् पित्तं च' इस कर्मधारय समासके अनुसार, निरुक्ति करनेसे रक्त वर्णको प्राप्त हुआ पित्त रक्तपित्त कहलाता है। इस तरह आचार्योंके वचनके शब्दार्थमें भेद भासता है; किन्तु तात्पर्यार्थमें भेद नहीं है। अतः विद्वानोंने दोनों वचनों का सयुक्तिक समन्वय किया है।

पित्त रक्तमेंसे उत्पन्न होता है, अतः पित्तको रक्तका विकार (मल) ही माना है। इस पित्तरूप मलका जब रक्तके साथ संसर्ग होता है, तब वह दूषित हो जाता है। एवं रक्तके गन्ध-वर्णको भी धारण कर लेता है। इसलिये इसका रक्तरूप से ही निर्देश होता है; अर्थात् रक्त अधो या ऊर्ध्वप्रदेशसे निकलता है, ऐसा जो कथन किया है, वह युक्तही माना जाता है।

पूर्वरूप—भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि, अंग टूटना, शीतल वायु, शीतल जल और शीतल गुणवाले भोजनकी इच्छा, कण्ठमें से धुँआँ निकलने के समान प्रतीति, वमन निःश्वासमें रक्तकी गंध इत्यादि चिह्न प्रतीति होते हैं।

चरकसंहिताकार लिखते हैं कि भोजनकी इच्छा न होना, भोजन परिपाक कालमें विदाह, दुर्गन्ध, खट्टी डकार, उबाक, बारबार वमन होना, वमनके पदार्थ दुर्गन्धयुक्त निकलनेसे मनमें घृणा आना, स्वरभेद (आवाज़ मन्द निकलना) हाथ-पैर टूटना, सारे शरीरमें दाह होना, मुँहसे धुँआँ-गरम बाष्प निकलनेके सदृश भासना, उसमें रक्तकी दुर्गन्ध भी आना, देहके अवयव, मल-मूत्र, स्वेद, लाला, नासामल, थूक कानका मल और नेत्रमल सबके वर्ण लाल, हरे, पीले हो जाना, फुन्सियाँ होना, सारी देहमें वेदना और स्वप्नमें बारबार लाल, नीले, पीले, काले प्रकाशवाले अग्निका दर्शन होना इत्यादि पूर्वरूपमें लक्षण होते हैं।

इसके अतिरिक्त श्री वाग्भट्टाचार्यने पूर्वरूपमें कास, श्वास, भ्रम और क्लम ये लक्षण अधिक लिखे हैं।

जो दूषित रक्त आमाशयमें आता है, वह ऊपरकी ओर गति करता है; तथा पक्काशय (छोटी आंत) में जाता है, वह नीचेकी ओरसे निकलता है। यदि दूषित रक्त और पक्काशय दोनों स्थानोंमें प्राप्त होता है; तो दोनों तरफसे प्रवृत्ति करता है।

जो रक्त ऊपरके स्थानोंसे गिरता है उसे ऊर्ध्वरक्तपित्त और जो नीचेके स्थानोंसे गिरता है उसे अधो रक्तपित्त कहते हैं। ऊर्ध्वरक्तपित्त कफमिश्रित रहता है। अधोरक्तपित्त वातमिश्रित रहता है। यदि वात्त और कफ, दोनोंका संसर्ग हो जाय, तो दोनों मार्ग से प्रवृत्ति करता है।

स्निग्ध और उष्ण हेतुसे प्रायः ऊर्ध्व रक्तपित्त और उष्ण एवं रूक्षहेतुसे प्रायः अधो रक्तपित्त होते हैं। क्वचित् इस नियमके विरुद्ध अर्थात् रूक्ष हेतु होनेपर भी ऊर्ध्व और स्निग्ध हेतु होनेपर भी अधो रक्तपित्त होजाता है।

रक्तपित्त वर्ण—रक्तपित्तमें वायुका आधिक्य रहनेसे रक्त मैले लाल रंगका, झागयुक्त, पतला और शुष्क होता है। पित्तकी प्रधानता होनेपर काढ़ेके सदृश काला, चिपचिपा गोमूत्रके समान, मोरकी पूँछके चन्द्रमाके सदृश या तीन वर्ण विशिष्ट या सुरमाके समान होता है। कफकी अधिकतासे रक्त गाढ़ा, किंचित् पाण्डु वर्णयुक्त, किञ्चित् स्नेह युक्त और पिच्छिल होता है।

उपद्रव—रक्तपित्त रोगमें निर्बलता (बलक्षय) श्वास, कास, ज्वर, वमन, मद (नशा-सा), पाण्डुता, दाह, मूर्च्छा, हृदयमें तोड़नेके समान व्यथा, बेचैनी, प्यास, मल पतला हो जाना, मस्तिष्कमें उष्णता, अरुचि, अपचन, पेचिश, भोजनके बाद उदरमें अति दाह होना, भोजनका पाक न होना, मुँहसे दुर्गन्ध निकलना, दांत और दाढ़के मसूड़े सूजनयुक्त, नरम और काले रंगके हो जाना इत्यादि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

साध्यासाध्यता—ऊर्ध्व रक्तपित्त साध्य, अधोरक्तपित्त याप्य (कठिनतासे शान्त होनेवाला) और द्विमार्गी रक्तपित्त असाध्य माना जाता है।

यदि रोगी बलवान् है, रोग नूतन है, एक मार्गी और अतिवेगवान् नहीं है, कोई उपद्रवकी उत्पत्ति नहीं हुई और शीतकाल (हेमन्त-शिशिर ऋतु) है, तो रक्तपित्त साध्य होता है।

रक्तपित्त एक दोषज है, तो साध्य द्विदोषज है, तो याप्य तथा त्रिदोषज अति वेगवान् हो, अग्नि मन्द हो, व्याधिसे देहक्षीण होगई हो या वृद्धावस्था हो या रोगी अरुचि आदिके हेतुसे भोजन न कर सकता हो, तो असाध्य माना जाता है।

जो रक्तपित्त रोग शान्त होकर बारबार होजाता हो, एक मार्गसे दूसरे मार्गकी ओर चला जाता हो, अति प्रवृत्त हो, द्विमार्गी हो, रोगीकी अग्नि मन्द हो उसे असाध्य माना है।

जिस रक्तपित्त रोगीके रोम-रोममेंसे रक्त झरने लग जाता है, उसका रोगभी असाध्य होजाता है।

ऊर्ध्व रक्तपित्तमें पित्तके साथ कफका अनुबंध रहता है, उसका शोधन विरेचन द्वारा हो सकता है; इस विकारके लिए मधुर, कषाय और कड़वे रस प्रधान अनेक औषधियाँ हैं। इसमें पित्तको दूर करनेके लिये विरेचनको उत्तम माना है। साथ-साथ विरेचनसे अनुबंधी कफकी भी शुद्धि हो जाती है। इस हेतुसे ऊर्ध्व रक्तपित्तको साध्य माना है।

कषाय, स्वरस, कल्क, गरम कर शीतल किया हुआ फांट आदि स्वादु औषधियाँ और कड़वी औषधियाँ रक्तपित्त प्रधान सब प्रकारकी व्याधियोंकी प्रतिपक्षी (व्याधिनाशक)

होनेसे इस विकारमें भी हितकर है। जिन रोगियोंकी देह विरेचन आदि से शुद्ध की हो, श्लेष्म विशुद्ध हो गया हो, उनके लिए कड़वी औषधियोंके कषाय आदि जो स्वभाविक कफनाशक हैं, वे सब हितकर हों इसमें आश्चर्य ही क्या ?

अधोरक्तपित्तमें वायुका अनुबन्ध होनेसे उसे याप्य माना है। इसके शोधनका साधन वमन है। पित्तके नाशके लिये वमन अच्छा साधन नहीं माना जाता; वातशमन के लिये भी वमन हितकर नहीं है, एवं औषधि भी अधो रक्तपित्तके लिये कम है। कारण–अनुबन्धी वात है, उसकी शान्ति वमनसे नहीं होती। कड़वी औषधियाँ कषाय के आदिसे वात प्रकुपित हो जाती है; तथा जो औषधियाँ खट्टे नमकीन और चरपरे गुणवाली हैं, वे पित्तविरोधी होनेसे नहीं दे सकते। अतः केवल मधुर रसप्रधान कषाय आदि औषधियाँ ही हितकर मानी जाती हैं। इन कारणों से अधो रक्तपित्तको याप्य कहा है।

कफ और वायु, दोनोंके संसर्ग युक्त उभयमार्गी रक्तपित्तको असाध्य कहा है। कारण- वमन या विरेचन, दोनोंमेंसे एक भी शोधन क्रिया नहीं करा सकते। रक्तपित्तमें सर्वदा प्रतिलोम शोधन कराया जाता है। दोनों ओरसे रक्तस्राव होता है। इस हेतुसे वमन–विरेचन नहीं दे सकते। एवं संशोधन न होनेसे मधुर या कड़वे रसप्रधान औषधि कफ-वातसह रक्तपित्तके शमनके लिये उपयोगी भी नहीं हो सकती अर्थात् मधुर गुणवाली औषधि दें, तो कफ वृद्धि होती है। कड़वे रसवाली औषधिसे वात वृद्धि होती है, और शेष रसोंवाली औषधियोंसे पित्त बढ़ता है। इस हेतुसे सर्वजित् अर्थात् अनुबन्धभूत वात-कफ और मूलभूत पित्त, सबको जीतनेवाली औषधि कोई हो, तो रोग दूर हो सकता है; किन्तु ऐसी उपशमनकारक औषधि नहीं है। इसलिये भगवान् आत्रेय और श्री वाग्भट्टाचार्यजी द्विमार्गी रक्तपित्तको असाध्य कहते हैं।

कदाच कोई कहे कि संशोधन न हो सके, तो मत करो; संशमन औषधि दो, वह भी नहीं बन सकता। करण- संशमन औषधिके दो प्रकार हैं। संतर्पण और अपतर्पण। यदि संतर्पण (बृंहण औषधि) अधोरक्तके वात दोषकी अपेक्षासे दी जाय, तो श्लेष्मवृद्धि हो जाती है, और यदि अपतर्पण (लङ्घन) रूप चिकित्सा ऊर्ध्व रक्तपित्त के कफ दोषकी शान्तिके लिये की जाय, तो वायु प्रकुपित हो जाती है। नृसिंह भगवानके समान उभयात्मक (कफ और वात, दोनोंका निषमन करने वाली), शमन औषधि हो, तो काम कर सकें। परन्तु ऐसी औषधि असाध्य होनेसे उभयमार्गी रोगको असाध्य कहा है।

संतर्पण और अपतर्पण चिकित्साके लिये विशेष रूपसे चिकित्सा तत्त्व प्रदीप प्रथम-खण्डके उपोद्घात प्रकरणमें पृष्ठ १५ से १८ तक देखें।

यदि रोगीकी अग्नि अति मंद है, तो उसकी चिकित्सा नहीं हो सकती। कारण–अग्नि प्रदीप्त करनेके लिये चरपरी, खट्टी, उष्ण, रूक्ष और तीक्ष्ण औषधि

दी जाती है; परन्तु वे रक्तपित्त रोगकी चिकित्सासे बिलकुल विपरीत है। अतः अति मन्द अग्नि होने पर प्रायः रोग असाध्य हो जाता है।

अधो रक्तपित्त होनेपर यदि रक्त स्थूल अन्त्रके अन्तके भागमेंसे निकलता है, तो रक्तका रंग लाल रहता है और लघु अन्त्रमेंसे निकलता है, तो रक्त मैले रंगका मलमिश्रित हो जाता है।

जिन रक्तपित्तके रक्तमें सामान्य वर्ण और वास दूर होकर मांसके धोवनके समान वर्ण हो जाय या अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त या कीचड़के जलके समान मैला या मेद, पूय और रक्तमिश्रित या यकृतके टुकड़े के सदृश या जामुनके पके फलके समान स्निग्ध, नीला, काला, मुर्दे जैसी गन्धवाला या नाना प्रकारके रंगवाला, इनमेंसे किसी भी एक प्रकारका स्राव होने लगे, वह रोग असाध्य माना जाता है।

आकाश और सम्पूर्ण दृश्य पदार्थोंको जो रोगी लाल रंगका देखता है। अथवा जिसे बार-बार रक्तकी वमन, डकार आनेके साथ कण्ठमें रक्तका स्वाद आना और नेत्र अत्यन्त लाल हों, वह नहीं बच सकेगा।

भगवान् धन्वन्तरि लिखते हैं कि, जो रक्तपित्तका रोगी स्वप्नमें रक्तपान करता रहता है, वह मृत्युमुखमें चला जाता है।

रक्तपित्तका डॉक्टरी विवेचन

रक्तस्रावका वर्गीकरण

१. प्राथमिक—अवंशागत, रक्तस्रावमय स्थिति—

अ. – रक्तस्रावमय त्रिदोषज रक्तपित्त (पर्प्युरा) आशुकारी और चिरकारी।

आ. अन्तःक्षेपणकी प्रतिफलित क्रियाजन्य पर्प्युरा (Anaphylactoid Purpura) इसमें हेनोकका पर्प्युरा तथा आमवातिक लक्षणोंसह पर्प्युरा (शानलीनका पर्प्युरा–Schonlein's Purpura) ये दो प्रकार हैं।

२. लाक्षणिक रक्तस्रावीय स्थिति या गौण पर्प्युरा—

अ. संक्रामक ज्वर—(अ.) पिटिकाओंमेंसे रक्तस्राव, जैसे प्रलापक ज्वर, कर्कच सन्निपात (Cerebro spinal Fever), शीतला, नैमित्तिक रोमान्तिका और शोण ज्वर; (आ) आक्रमण कालमें या आक्रमणके पश्चात् सार्वाङ्गिक रक्तस्रावमय स्थिति।

आ. गलनात्मक संक्रमण—शोणित विषज ज्वर (Septicaemia), पूयमय ज्वर, संक्रामक हृदयान्तर प्रदाह।

इ. रक्तरचनाकर तन्तुओंकी व्याधियाँ—उदा० श्वेताणु वृद्धिमय श्लैष्मिक-पाण्डु, रक्तरचना विकृतिमय पाण्डु, सान्निपातिक पाण्डु, होजकिनका रोग।

ई. सेन्द्रिय और निरिन्द्रिय द्रव्य—सुवर्ण, सल्फोनेमाइड, सोमल आदि औषधियाँ तथा सर्पविष।

उ. क्षमतातिशयता (Hypersensitivity)—भिन्न-भिन्न पदार्थोंके व्यसनसे बढ़ीहुई क्षमता (Idiosyncrasy)-शामक और निद्राप्रद औषधि (Sedormid)-अफीम, क्विनाइन, आयोडाइड, प्रथिन आदि। इनके अतिरिक्त पारद, कोपाइवा, क्युबेवा, बेलाडोना, अर्गट, क्लोरल हाइड्रेट, तार्पिनतेल, सेली सिलिक एसिड आदि औषधियाँ भी रासायनिक विकृति उत्पन्न करके रक्तस्राव कराती हैं।

ऊ. शीर्णतामय स्थिति और पोषणमें चिरकारी प्रतिबन्ध—अर्बुद कर्कस्फोट, चिरकारी वृक्कप्रदाह, वृद्धावस्था, पिटिकामय क्षय।

ए. अवयवोंका आशुकारी जन्तुनाश—फिरंग या अन्य विष जन्य-उदा० आशुकारी पीतशोष (गंभीर कामला-Acute-yellow Atrophy)।

ऐ. यान्त्रिक—शिरामें रक्तावरोध या गंभीर पेशी आकुंचन। ऊपर-ऊपर वमन होते रहना, कालीखांसी, अपस्मार आदि।

ओ. वातनाड़ी विकृति और अन्तःस्रावी ग्रन्थियोंकी विकृति—सुषुम्णाकी परस्पर विपरीत दिशामें जानेवाली मज्जा नाड़ियोंका प्रदाह (Transverse myelitis), वातनाड़ीमें वेदना (Neuralgia), मद, अपतन्त्रक आदि।

इसगौण समूहका प्रत्यक्ष रूपसे आगे विशेष उल्लेख नहीं हो सकता।

(३) वंशागत रक्तस्रावीय स्थिति—

अ. वंशागत रक्तस्रावीय स्वभाव।

अ. A. अवंशागत समूहके सदृश लक्षण।

आ. B. रक्तस्रावीय स्वभाव (Haemorrhagic diathesis) और रक्तस्राव रोधक शक्तिकी न्यूनता (Haemophilia) के बीचका प्रकार।

आ. रक्तस्रावरोधक शक्तिकी न्यूनता।

इ. वंशागत रक्तस्रावीय कैशिका प्रसारण (Hereditary Haemorrhagic Telangiectasia)।

(४) पोषणकी न्यूनता जन्य रक्तस्रावीय स्थिति—(१) कफरक्तज रक्तपित्त (शीताद-Scurvy) (२) रक्ततन्तु वाहकका ह्रास (Hypoprothrombinaemia) जन्मे हुए बालकके मलमें रक्त जाना, कामलामें रक्तस्राव।

३. रक्तजमनेमें अधिक समय लगना—(१) रक्ततन्तुकी अपूर्णता (Fibrinopenia); (२) रक्ततन्तु वाहकका ह्रास; (३) अत्यधिक रक्तस्राव करानेका स्वभाव।

कैशिकाओंमेंसे रक्तस्राव करानेवाली विकृतियाँ—(१) कैशिकाओंकी दीवारोंकी भेदनशीलता (Capillary permeability); (२) रक्त चक्रिकाएँ;

(३) रक्त जमावका समय बढ़जाना; (४) मज्जा; (५) प्लीहा; (६) चोट; इन ६ विकारोंमें कैशिकाओंसे रक्तस्राव होता है।

१. कैशिकाओंकी भेदनशीलता—भेदनशीलता बढ़नेपर रक्तका उपादान दीवारका भेदन करके बाहर निकलता है। ऐसी अवस्थामें कैशिकायें प्रसारित होती हैं; फिरभी रुधिरप्रवाह मन्द नहीं होता। संभवतः इससे कैशिकाओंकी वैसी स्थिति गुलाबी उभार या शीतपित्तके धब्बे होनेसे होती है; अर्थात् रक्तजल घटक रहित होने और हिस्टेमाइनका अन्तःक्षेपण करनेपर होती है।

अन्य प्रतिनिधियों रहित केवल भेदन शीलता बढ़ती है, जिससे कैशिकाओंमेंसे रक्तस्राव होता है, जैसे सर्पदंशके पश्चात्। भेदनशीलताकी वृद्धिका कारण अज्ञात और जटिल। विटामीन C की अपूर्णता होनेपर संयोजक तन्तुओंका मुख्य उपादान, जो घटकोंको जोड़ता है, उसमें न्यूनता आती है तथा शक्तिकी शिथिलता होती है (भेदन शीलता नहीं), इन हेतुओंसे रक्तस्राव होता है।

२. रक्त चक्रिकाओंका कार्य—सामान्यतः ये कैशिकाओंके रक्तस्रावमें रक्षण करनेके लिये २ कार्य करती हैं। अ. छिद्र या भेद्य स्थानपर कैशिकाओंकी तीनों वृत्तियोंके भीतर पिण्डोंमें संलग्न होना; आ. रक्त जमावमें सहायता करना, किन्तु रक्तस्रावादि किसी कारणसे रक्त चक्रिकाओंका ह्रास (Thrombocytopaenia) अधिक होजानेपर रक्तचक्रिकाएँ अपने धर्मका पालन नहीं कर सकतीं।

३. रक्त जमनेका समय—वह समय ३ हेतुओंसे बढ़ता है। अ. अत्यधिक रक्तस्राव करानेका स्वभाव; आ. रक्ततन्तु वाहकोंका ह्रास; इ. रक्त तन्तुका ह्रास; (Fibrino penia)। चूनेकी अपूर्णताका रक्तस्रावी स्थितिके साथ स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है।

४. मज्जा—रक्तचक्रिकाओंकी रचना करती है। रक्तस्रावमय आशुकारी व्याधिमें मज्जा सामान्यतः अस्वाभाविक घटकोंकी अति उत्पत्ति करती है; किन्तु गम्भीरस्थितिमें सामान्यतः आंशिक अस्वाभाविक उन्नति करती है। चिरकारी रोगियोंमें अस्वाभाविक अत्युत्पत्ति होती है।

वक्तव्य--मज्जामें रक्तस्राव होनेपर वह घटकोंकी अस्वाभाविक अत्युत्पत्ति करने लगती है।

५. प्लीहा—यह सामान्यतः थकावट और अपूर्ण चक्रिकाओंका नाश करती है है; किन्तु प्लीहाका छेदन करनेपर ऐसी चक्रिकाओंको रक्ताभिसरणमें जानेकी छूट मिल जाती है। (यथा मूत्रमें पित्ताभाव युक्त कामलामें) प्लीहाका छेदन प्रायः रक्तस्रावकी क्षणिक निवृत्ति कराता है। यह संभवतः कैशिकाओंकी दीवारकी भेदनशीलतापर प्लीहाकी प्रत्यक्ष क्रिया होनेकी सूचना करता है।

६. चोट—यह अत्यधिक रक्तस्राव करानेके स्वभाव वालोंमें तथा संभवतः

अन्य प्रकारोंमें (उदा० रक्तचक्रिकाओंका ह्रास, रक्ततन्तुवाहकोंका ह्रास) रक्तस्रावके आक्रमणका कारण है।

संक्षेपमें कैशिकाओंकी दीवारकी बढ़ी हुई भेदनशीलता मुख्य प्रतिनिधि और रक्तचक्रिकाओं का ह्रास, यह सहायक प्रतिनिधि है। इन दोमेंसे एककी उत्पत्ति चक्रिकाओंके नाशसे अथवा मुख्यतः चक्रिकाओंकी रचनाके अपूर्णतासे रक्तवाहिनियोंके संरक्षणके लिये होती है।

रक्तमें परिवर्तन—अपूर्णतावाले रोग इस परिवर्त्तनका विशेष निर्देश करते हैं।

रक्ताणु—प्रकृति निर्देशक परिवर्त्तन नहीं; विस्तृत भागमें रक्तस्राव, चिरकारीपन और मज्जाकी प्रतिफलित क्रिया होती है। मुख्य ३ समूह—

१. रक्तका मध्यम परिणाममें या बीच-बीचमें नाश। रक्ताणुओंका मध्यम ह्रास (क्वचित् रक्ताभिसरणमें रक्ताणुओंकी वृद्धि), श्वेताणुओंकी सामान्य संख्या (कमीवृद्धि)।

२. रक्तका नाश अधिक गम्भीर और चिरकारी (मज्जाकी थकावट), गम्भीर पाण्डु, जालदार रक्ताणुओंकी वृद्धि, श्वेताणुओंका ह्रास, सम्बन्धवाले लसीकाओंकी वृद्धि।

३. आशुकारीप्रकार—पाण्डुके अतिरिक्त स्थिर परिवर्त्तन नहीं। श्वेताणुवृद्धि या श्वेताणुह्रास और सम्बन्धवाले लसीकाणुओंकी वृद्धि। वर्णसूची बढ़ी हुई या कम।

चक्रिकाएँ—रक्तस्राव जब तीव्र प्रतिरोधक अथवा चिरकारी हो, तब चक्रिकाओंका नाश होता है। ह्रासकी मात्रा गम्भीरता और स्थितिकालके अनुरूप भिन्न-भिन्न होती है। चिरकारी सौम्य प्रतिरोधी प्रकार होनेपर या मध्य विरामवाली अवस्थाओंमें प्रायः १ लक्षसे १॥ लक्ष प्रति मि० मी० का क्षय होता है; किन्तु बीच-बीचमें वह बढ़जाता है। तीव्र प्रतिरोधी प्रकारमें अतिक्रम होता है। फिर सामान्यतः बड़े आकारमें उपस्थित होजाता है तथा रक्तचक्रिकाओंका पूर्ण अभाव; किन्तु रक्तस्रावका विराम होनेपर अतिसत्वर थोड़े ही दिनोंमें अभावसे सामान्य स्थिति तक रक्तचक्रिकाएँ बढ़ जाती हैं।

प्लीहा—किसी भी प्रकारमें स्पर्शग्राह्य।

कैशिकाओंकी भेदनशीलता बढ़नेका परिणाम—भेदनशीलताकी वृद्धि होनेपर रक्तजल या रक्ताणु और रक्तजल (अर्थात् सब रक्त) का निःसरण मृदु तन्तुओंमें होता है।

रक्तजलका निःसरण—रंगपरिवर्त्तन हुए बिना निःसरण त्वचा या उपत्वचा के तन्तुओंमें होनेपर उस स्थानको कोमल बनाता है। विवर्ण नहीं। संधिस्थान और उसके पासके तन्तुओंमें होनेपर वेदना और संधिशोथ होता है। पचन संस्थानमें होनेपर वेदना, शूल, वमन, अतिसार आदि होते हैं। संगृहीत होनेपर गुदासे रक्त और श्लेष्मा जाता है।

इसका सम्बन्ध पाण्डुके साथ नहीं है, एवं रक्तचक्रिकाओंमें अथवा रक्तमें परि-

वर्त्तन नहीं होता सत्वर सुधार होता है। इसकी समाप्ति क्षमताधिक्यद्वारा त्वचाके धब्बे (Angioneurotic Oedema) में होती है।

वक्तव्य—यह वर्णन केवल क्षमताशक्तिके ह्राससह त्रिदोषज रक्तपित्त (Anaphylactic Purpura) में घटकोंके बाहर निकलनेका सम्बन्ध होनेपर उपयोगी है।

रक्तका निःसरण—अ. त्रिदोषज रक्तपित्त धब्बे होनेपर या आ. श्लैष्मिक-कलामेंसे रक्तस्राव-स्वाभाविक या चोट लगनेपर उदा० दाँतोंको बाहर निकालनेपर।

वक्तव्य—नासिका और मसूड़ेकी श्लैष्मिक-कला अति सामान्य रूपसे प्रभावित। इस तरह मासिकधर्मका अस्वाभाविक स्राव, मूत्रमें रक्तजाना। उक्त दोमेंसे एक प्रकार सौम्य परिमाणमें।

इस समूहके निर्णयार्थ पाण्डु, चक्रिकाओंमें परिवर्त्तन, रक्तस्रावका समय, कैशिकाओंकी प्रतिरोधक शक्ति इन सबकी परीक्षा करनी चाहिये।

वक्तव्य—(१) रक्तजलका निःसरण तथा रक्तका निःसरण, ये दोनों प्रकार प्रायः एक ही रोगीमें और भिन्न स्थानों से हो सकता है। (२) शूल और संधिशोथ, ये रक्त निःसरणका परिणाम है, किन्तु यह क्वचित् और अतिगम्भीर अवस्था होती है।

३. त्वचाके नीचे विवर्ण दाग (Ecchymosis)—मुख्यरक्तजलका क्षरण होनेसे रक्तका कुछ अंश विवर्ण होजाता है।

कैशिकाओंकी भेदनशीलताकी वृद्धिकी अभिव्यक्ति इसके स्पष्ट ३ विभाग होते हैं।

१. विशुद्ध शीत पित्तके धब्बे—उभार युक्त प्रदेश, संधिशोथ, शूल, पाण्डु का अभाव आदि लक्षण।

२. विशुद्ध रक्तस्राव—रक्तस्राव, रक्तमें परिवर्त्तन। सौम्य पर्प्युराम में रक्तस्राव।

३. उक्त दोनोंका मिश्रण—बाह्य रक्तस्राव मंद; किन्तु शोथके बड़े क्षेत्र में विवर्णताद्वारा अतिस्रावका देखाव। यह प्रतिफलित क्रियाजन्य पर्प्युरा (Anaph Lactoid purpura) समूहमें अर्थात् हेनोकके रक्तपित्त और आमवात-सह रक्तपित्तमें।

नानाविधरक्तस्रावोंके लक्षण—आभ्यन्तरिक यन्त्रोंमें से जो रक्तस्राव होता है, वह संचित होने पर यदि बाहर निकलता है, तो उस रक्तमें यन्त्र विशेषका रस या इतर पदार्थ मिश्रित हो जाता है या रक्त रूपान्तरित हो जाता है।

१. आमाशयमेंसे रक्त आनेपर आमाशयरस मिश्रित होता है। वर्ण पिसी हुई कॉफी (Ground Coffee) के सदृश।

२. फुफ्फुसमें से आनेवाले रक्तका वर्ण उज्ज्वल लोहित। कभी वायु साथमें हो, तो झागदार।

३. दन्तवेष्ट, जिह्वा, तालु और कण्ठके भीतरसे रक्त निकलनेपर श्लेष्मा, फेन और लाला मिश्रित।

४. बाह्यकर्णविवर और सम्मुख नासारन्ध्रमें से जो रक्त निकलता है, वह दीर्घ कालस्थायी होनेपर सामान्यतः जलमिश्रित पतला और पश्चात् नासारन्ध्रमेंसे बाहर निकलनेवाला रक्त जमा हुआ, काला, गाढ़ा और श्लेष्मायुक्त।

५. गुदाद्वारसे निकलने वाला रक्त समीपमेंसे ही आता हो और स्वल्प परिमाणमें हो, तो मलपर केवल लाल दाग ही होते हैं। रक्त अधिक हो, उष्ण और तुरन्त निकलनेवाला हो, तो वेगसे बाहर निकलता है। यदि आन्त्रिक ज्वर आदि कारणों से आंतोंके किसी ऊँचे स्थानसे रक्त आता है, तो अन्त्रके भीतर विविध पदार्थ और रस आदि मिश्रित होनेसे परिवर्त्तित। ऊर्ध्व भागसे आनेवाले रक्तका वर्ण काला हो जाता है। क्वचित् ऊर्ध्व प्रदेशसे आनेवाले रक्तका परिमाण इतना अधिक होता है कि, वह संयत होकर मलके सदृश आकारका होकर निकलता है।

६. स्त्रियोंको ऋतुकालमें बीजकोषोंमेंसे रक्तस्राव होता है, वह दोषभेदसे स्थानिक स्राव मिश्रित होकर रक्त या कृष्ण वर्णका और ग्रन्थि या झागसह तथा विभिन्न प्रकारका होता है। वर्णन स्त्रीरोगमें यथास्थान किया जायगा। यह मासिकधर्म का रक्त भी बहुधा परिवर्त्तन होनेपर आता है। क्वचित् मासिकधर्मके अतिरिक्त पीड़ाके हेतुसे रक्तस्राव होता है, तो रक्तका परिवर्त्तन नहीं होता है; कभी-कभी रुधिर जमा हुआ भी निकलता है।

रक्त पित्त प्रकार—

१. रक्तवमन—Haemetemesis.

२. नासा रक्तस्राव—Epistaxis.

३. शीताद—Scurvy.

४. त्रिदोषज रक्तपित्त—Purpura.

   अ. सौम्य—P. Simplex.

   आ. गम्भीर—P. Haemorrhgica.

   इ. हेनोकका—Henoch's P.

   ई. आमवातज—P. Rheumatica.

५. वंशागत रक्तस्रावीय स्वभाव—Hereditary Haemorrhagic Diathesis.

६. वंशागत रक्तस्रावीय कैशिका प्रसारण—Hereditary Haemorrhagic Telangiectesia.

७. वंशागत रक्त रोधक शक्तिकी न्यूनता—Haemophilia.

(१) रक्तवमन

हिमेटेमेसिस-Haemetemesis.

रक्तकी वमन होनेपर आहारके साथ जो रक्त गिरता है, उसमें आमाशयरस मिश्रित हो जानेसे वह पिसी हुई कॉफी सदृश मैले रंगका होता है। यदि आहार गिर-जानेके पश्चात् रक्त निकलता है या रक्तकी मात्रा अत्यधिक है, तो रक्त लाल होता है। क्वचित् दन्तवेष्ट, कण्ठ, जिह्वा, फुप्फुस या आमाशय नलिकामेंसे भी आता है। अतः रक्त कहाँसे आता है इस बातका निर्णय परीक्षा करके करना चाहिए।

निदान—

अ. आमाशयके स्थानिक रोग—१. आमाशयिक व्रण (Peptic ulcer)

२. अर्बुद (Neoplasma)

३. चिरकारी आमाशय प्रदाह—क्षतज (Due to erosions)

४. आशुकारी आमाशयप्रदाह—मद्यज (Alcoholic)

आ. प्रतिहारिणी शिरामें अप्रतिरोधी रक्तसंग्रह—

१. यकृद्दाल्युदर—सामान्यतः शिराओंमेंसे, आमाशयके हार्दिकद्वारके पाससे।

२. रक्तसंग्रहमय हृदय पतन (क्वचित्)।

३. अर्बुदका दबाव या प्रतिहारिणी शिरामें शल्योत्पत्ति।

इ. रक्तनिगलना—नासिका, ग्रसनिका, अन्ननलिका और फुप्फुसके।

ई. रक्तरोग—प्लीहोदर, नैमित्तिक आशुकारी श्वेताणु वृद्धिसह श्लैष्मिक पाण्डु, रक्तस्रावीय स्थिति (Diathesis) आदि। अति क्वचित् वंशागत रक्तरोधक शक्तिके ह्रास (Haemophilia) से।

(नैमित्तिक कारण)—

उ. अभिघात —(Trauma)

ऊ. मारकविष और पचनसंस्थानकी उद्दीपनावस्था—प्रबल अम्ल या क्षार, मल्ल,कांच आदि। विना जलसे एस्पिरिनकी टेब्लोइडोंको निगलनेसे उत्पन्न आमाशयिक कलामें क्षत।

ए. सेन्द्रिय विष—(१) विशेष ज्वर—पीत-ज्वर, शीतला, घातक शोण-ज्वर; (२) नाना विधविषप्रकोप—आशुकारी पीतशोष, शोणित विषप्रकोप (Septicaemia) में

ऐ. धमन्यर्बुदका विदारण—

ओ. मासिक रजःस्रावके बदले रक्तवमन—

अतिरक्तस्राव—सामान्यतः आमाशयिक व्रण या यकृद्दालीके हेतुसे क्वचित् अधिक रक्तस्राव और घातक रक्तस्रावका हेतु प्लीहोदर और धमन्यर्बुदका विदारण।

शारीरिक विकृति—घातक रोगियोंमें सर्वदा सार्वाङ्गिक पाण्डु। आमाशयमें क्षत, कर्कस्फोट, मारक विष आदिको स्रावकी प्रतीति सेन्द्रियविष प्रकोपमें श्लैष्मिक-कलाके भीतर रक्तस्राव।

प्रतिहारिणी संस्थानमें अवरोध होनेपर श्लैष्मिक-कला निस्तेज, क्षतका अभाव। प्रायः अन्ननलिकाकी शिराएँ अस्पष्ट। चिरकारी आमाशयिक प्रदाहमें रक्तस्रावका चिह्न नहीं मिलता; सम्हालपूर्वक देखनेपर सूक्ष्म क्षतकी प्रतीति।

पूर्वरूप—यदि रक्तस्राव सत्वर अधिक परिमाणमें होता है, तो वमन होनेके पहले आमाशय प्रदेशमें उष्णता, भारीपन, उबाक, मुँहमें बेचैनी उत्पन्न करे ऐसा किञ्चित् मधुर स्वाद तथा अन्ननलिकासे तरल द्रव्य ऊपर उठ रहा हो, ऐसी अनुभूति आदि।

लक्षण—अधिक रक्तस्राव होनेपर मुख-मण्डलपर निस्तेजता, चक्कर आना, मूर्च्छा, कानमें गुंज, नेत्रमेंसे अग्निकी चिनगारियाँ निकलती हों ऐसा भासना, नाड़ी क्षुद्र और द्रुतगामी तथा शरीर शीतल हो जाना (शीतल स्वेद) आदि। एवं रक्तमें मूत्रीयाकी उपस्थिति (Azotaemia) अन्त्रमेंसे रक्तका शोषण होनेके हेतुसे होती है।

क्षत या कर्कस्फोट आदि कारणोंसे आमाशयमेंसे रक्त आता हो, तो वमन होनेके पहले उबाक और चक्कर आते रहते हैं, फिर रक्तवमन। तत्पश्चात् कर्कस्फोटके हेतुसे कुछ मलरूप दूषित काला रक्त (Melaena) आता है। इनके अतिरिक्त आमाशय-विकारके रोगानुसार इतर लक्षण और कौड़ी प्रदेशमें वेदना आदि।

वान्तरक्त—सामान्य गहरा रंग, झागरहित और अम्ल। प्रवाही या जमा हुआ। आमाशयके रससे रूपान्तरित, आमाशयमें रहनेके समयपर अवलम्बित; उदा० पीसी हुई कॉफीके सदृश वमन। मात्रा कितनेक पौण्ड तक।

रोगविनिर्णय—रक्तका रंग कैसा है? इसका निर्णय कठिन होजाता है; कारण-लोह, बिस्मथ, फलोंके रस आदिके सेवनसे भेद। आणुवीक्षणिक परीक्षा और रासायनिक परीक्षाद्वारा निर्णय।

आमाशय और फुफ्फुसके रक्तस्रावका प्रभेद

आमाशयसे रक्त आना।	फुफ्फुससे रक्त आना।
१. इतिहास और चिह्न आमाशय और उदररोगके	फुफ्फुस और हृदयरोगके
२. रक्त वमन	कफ मिश्रित रक्त।
३. झाग रहित, गहरा, अम्ल सामान्यतः जमा हुआ। आहार उपस्थित। मलमें रक्त।	दिनों तक रंजित कफ।

चिकित्सोपयोगी सूचना—मोर्फिया हाइड्रोक्लोराइडका अन्तःक्षेपण। रक्तका अन्तःसेचन। १-१ घण्टेपर थोड़ा-थोड़ा (५-५ तोले) शीतल किया हुआ जल देते रहें (बर्फ चूसनेके लिये देवें) पहले २४ से ४८ घण्टे तक केवल द्रव फलोंका रस या दूध। क्षत होनेपर पहले दूध (अजादुग्ध अधिक हितकर) आधे परिमाणमें। फिर बढ़ावें। क्षतके लिये क्षार सेवन (अम्ल रसकी अम्लता शमनार्थ) प्रारंभसे ही करावें।

मुँहको सम्हालपूर्वक साफ करें। दूसरे दिन बस्ति देवें। शीतल जलसे आमाशयको धोवें।

आयुर्वैदिक दृष्टिसे विशेष सूचना आगे रक्तपित्तकी चिकित्साके आरम्भमें की जायगी।

(२) नासारक्तस्राव

(एपिस्टाक्सिस—Epistaxis)

निदान—१. स्थानिक; २. सार्वाङ्गिक।

१. स्थानिक कारण—बाह्य आघात, नासाक्षत, नासिकामें बाह्य वस्तुका प्रवेश, नासा गह्वरमें अर्बुद आदि। क्वचित् मस्सा। नाककी श्लैष्मिक-कला सूखकर फटजाना। वंशागत रक्तस्रावीय केशिका प्रसारण।

२. सार्वाङ्गिक कारण—अ. विशेषतः जिह्वालोलुप बालकोंको युवावस्थामें प्रवेशकरने के समय।

आ. आशुकारी विषमज्वर—मोतीझरा, शोणज्वर आदिका आक्रमण। सेन्द्रिय विषमय स्थितिमें भी।

इ. रक्तदबाव वृद्धिमय स्थिति—धमनीकोष काठिन्य, वृक्कप्रदाह, अस्वाभाविक दबावकी वृद्धि (Hyperpiesis); यकृद्दाल्ली। शिरामें रक्तसंग्रह–उदा० द्विपत्र कपाटका आकुंचन, काली खांसी। फुफ्फुसान्तरालमें अर्बुद।

ई. रक्तविकार—रक्तकी विकृति और सब प्रकारके गंभीर पाण्डुमें। वायु मण्डलके दबावका परिवर्त्तन–उदा० पहाड़ोंपर जानेपर।

उ. आयुसे सम्बन्धवाले संभवित कारण—बाल्यावस्था–आघात, नाक-पकना, बाह्यवस्तुका प्रवेश। आशुकारी ज्वरआदि। युवावस्था—स्वाभाविक। प्रौढ़ावस्था—रक्तविकार, अर्बुद।

परिपक्वावस्था और वृद्धावस्था—रक्तदबाव वृद्धि और अर्बुद।

जब देहके किसी भी अंशमें रक्तका परिमाण अत्यधिक होजाता है, तब उसमेंसे कुछ अंश रक्तस्राव होकर बाहर निकल जाता है। इस नियम अनुसार सार्वाङ्गिक या स्थानिक कारणसे नासिकामेंसे रक्तस्राव हो सकता है। इस रक्तस्रावको बन्द करनेकी चेष्टा करनेके पहले इस बातका निर्णय करना चाहिए कि, किस हेतुसे और कहाँसे रक्तस्राव होरहा है।

किस ओरसे रक्त आरहा है, इसके निर्णयके लिये, पहले एक ओरके नासाछिद्र को दबाकर रेचन करें। फिर दूसरी ओरके। जिस ओरसे रक्त आता होगा, उस ओरसे रक्त वायुके साथ बाहर आजाता है।

सूचना—१. यदि किसी सार्वाङ्गिक पीड़ाके हेतुसे या किसी यन्त्रकी विषम वेदनाके हेतुसे रक्तस्राव हुआ हो; अत्यधिक परिमाणमें रक्तस्राव न हो और क्रमशः स्राव कम हो रहा हो, तो बलात्कारसे स्रावको बन्द करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

२. यदि हृदय या फुफ्फुसके किसी चिरकारी रोगके हेतुसे या श्वासनलिका-

प्रदाहज तीव्र काससे नासारक्तस्राव हो रहा हो, तो वह उपकारक है। हानिकर नहीं है।

अधिक परिश्रम, उत्तेजना, क्रोध और मानसिक आवेग आदि कारणोंसे कभी-कभी रक्तसंचयका दबाव अत्यन्त बढ़ जाता है, फिर रक्तस्राव होकर इसका उपशम हो जाता है। सम्भवतः इस रक्तस्रावके होनेसे थोड़े ही समयमें होनेवाले संन्यासका आक्रमण शमन हो जाता है और हृदय खण्डीकी तीव्र क्रियाजनित क्लान्ति निवारित हो जाती है।

साध्यासाध्यता—कभी गंभीर। रोग गंभीर रूप धारण करनेपर क्वचित् मृत्यु।

चिकित्सोपयोगी सूचना—रोगीको सरल बैठा मस्तिष्कको कण्ठसे मुड़वा नीचा रखाकर शिरपर शीतल जलकी धारा डालें। एवं कपड़ेकी तहको भिगो (या बर्फ) शिरके आगेके हिस्सेमें या नाकपर रखें।

नासिकासे गिरनेवाले रक्तको बाहर निकाल देवें। फुफ्फुस या आमाशयमें रक्त न चला जाय, यह सम्हालें।

डॉक्टरीमें एड्रेनलीन (१-१०००) का अन्तःक्षेपण श्लैष्मिक-कलामें करते हैं। सर्पविषका प्रयोग भी, यदि एक ओरसे अधिक स्राव हो रहा हो, तो कोटरी द्वारा जलाकर बन्द करें।

अतिरक्तस्राव होगया हो, तो रक्तका अन्तःसेचन करें।

(३) कफरक्तज रक्तपित्त

शीताद-स्कर्वी-स्कोर्ब्युटस—Scurvy-Scorbutus.

रोग परिचय—यह रोग भोजनमें विटामिन C की अपूर्णता और मसुड़ेके शोथ और पाण्डु आदिसे होता है; तथा बलक्षय, पाण्डुता, संधिओंमें शिथिलता, दन्तवेष्ट पीले हो जाना और रक्तस्राव आदि लक्षण होते हैं। इस रोगमें त्वचाके नीचे नीले रंगका रक्तसंग्रह प्रतीत होता है। जिनको स्पर्श करनेपर चारों ओरकी अपेक्षा रक्तके दागवाला स्थान कठिन प्रतीत होता है। संधियोंमें शिथिलता, वेदना और पाण्डुता देखनेमें आती है।

इस रोगको सुश्रुत संहिताके निदान स्थानके १६ वें अध्यायमें शीताद संज्ञा दी है। वहाँपर निम्नानुसार वर्णन लिखा है।

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात् प्रवर्त्तते।
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च॥
दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम्।
शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः॥

निदान—मुख्य कारण असात्म्य खान पान, भोजनमें विटामिन C और इतर पोषक अंशकी अपूर्णता।

सहायक कारण—नमकका अत्यधिक सेवन, सीलवाले मकानमें रहना, शीतल और आर्द्र वस्त्र पहनना और मानसिक चिन्ता आदि।

यह रोग दुष्कालके समय निर्धन जनताको तथा जहाज़ोंके भीतर कार्य करने वाले मज़दूरोंको अधिक होजाता है।

चयकाल—४ मास या सामान्यतः लगभग ८ मास।

लक्षण—आक्रमण गुप्त। सार्वाङ्गिक निर्बलताकी शनैः-शनैः वृद्धि, निस्तेजता, फिर पाण्डुके लक्षण। प्रारम्भिक चिह्न त्वचापर कठोरदाग (Follicular Keratosis) त्वचाकी शृङ्गमय वृत्तिकी वृद्धि। उत्तानक्षति अति सरलतासे।

स्वभाव—

१. मसूड़ेका शोथ—प्रथमावस्थामें मसूढ़े निस्तेज और स्पंजके सदृश। शोथ आना, विशेषतः मसूड़ेपर चारों ओर। मलिन दाँत। दबानेपर मसूढ़ेमेंसे रक्तस्राव। जीर्णावस्थामें क्षत। निःश्वासमें और मुँहसे दुर्गन्ध आना।

२. दाँतोंकी शिथिलता। धीरे-धीरे दाँतोंका गलना।

३. रक्तस्राव—अ. नाक और मुँहकी श्लैष्मिक-कला तथा नेत्रकी उपश्लैष्मिक-कलामेंसे; किन्तु रक्तवमन या रक्तष्ठीवन क्वचित्; आ. रक्तरसका स्राव या त्वचा तथा उपत्वचाके तन्तुओंमें विवर्ण दाग। मांसपेशीके भीतरके तन्तु या अस्थि धराकलाके नीचे। सामान्यतः त्वचामें शिथिल सिलवट। परिणाममें मन्द क्षत। इ. गम्भीरभागमें प्रायः अधिक रक्तस्राव, कोमलता, दबानेपर गड्ढा। त्वचा सतहपर लाल और उष्ण। क्षत सामान्य सबके पहले रक्तस्राव प्रायः उपस्थित, जिसमें विशेषतः ऊरूके बाह्य भागपर बालोंकी पिटिकाओंके चारों ओर नीले-लाल दाग। कभी-कभी गुल्फ संधियोंपर शोथ।

४. पाण्डु—गम्भीर रक्तरंजकके ह्राससह पाण्डु (Sever hypochromic Anaemia) का रक्तस्रावके प्रसारणके साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है। रक्तस्रावका समय सामान्य हृदयस्पंदन प्रायः गम्भीर। गुल्फपर कुछ शोथ; किन्तु सार्वाङ्गिक नहीं। इनके अतिरिक्त लसीकामेह सामान्य (किसीको मूत्र रक्तवर्णका), मूत्रको रोकनेकी शक्तिका ह्रास, उत्ताप सामान्य (उपद्रव न होनेपर), बहुधा मलावरोध क्वचित् अति उदर पीड़ा, अतिसार सामान्य, पचनसंस्थान अप्रभावित (मसूढ़ेकी अवस्थासे उत्पन्न उबाकके अतिरिक्त)।

रोग वृद्धिके अनुरूप रोगीके बलका क्षय होता जाता है। मुख निस्तेज और कृष्णाभ, पीतवर्ण या हरिताभ वर्णका होजाना, अनियमित मन्द नाड़ी, हृदयका प्रथम शब्द अति स्पष्ट, हृदय प्रदेशमें सर्वत्र मर्मरध्वनि, आलस्य, अति दुर्बलता, सांधे टूटना, थोड़ेसे परिश्रमसे श्वास भर आना, १-२ सप्ताह जानेपर शरीरकी उपत्वचाके रोमके छिद्रोंमेंसे स्थान-स्थानपरसे रक्तस्राव होना, रक्तस्राववाले स्थान काले हो जानेसे देहपर सर्वत्र छोटे-छोटे काले दाग प्रतीत होना, ऊरुके पश्चात् भागमेंसे और पैरोंकी पिण्डियोंके नीचेके भागमेंसे रक्तस्राव होकर कठिन शोथ आ जाना और उसमें पीड़ा होना तथा इस पैरोंके शोथके हेतुसे दोनों जानुके मिलानेमें कष्ट होना इत्यादि लक्षण होते हैं।

कोई-कोई रोगीको मस्तिष्कमें उष्णता अधिक पहुँच जानेसे (भोजनमें विटामिन A का ह्रास होनेपर) रात्रिको दिखाई नहीं देता। यह नक्तान्धता इस रोगका एक विशेष लक्षण है। कभी-कभी प्रथमावस्थामें यह लक्षण नहीं उत्पन्न होता। परन्तु कुछ दिनोंके पश्चात् रोगी दिनमें अच्छा देख सकता है और रात्रिको चन्द्रके प्रकाशमें कुछ भी नहीं देख सकता। यदि दीपकका प्रकाश न किया जाय; तो रोगी रात्रिको बिल्कुल अन्धा होजाता है। नेत्र शुष्क हो जाते हैं, और अन्य नेत्र विकार भी हो जाते हैं।

किसी-किसी रोगीके एक या दोनों नेत्रगोलकोंके चारों ओर त्वचापर शोथ और नीलाभ वर्ण प्रतीत होते हैं। नेत्रके बाह्य पटल (Selerotic Coat) की श्लैष्मिक-कला (Conjuctiva) शोथयुक्त और उज्ज्वल रक्त वर्णकी होजाती हैं, तथा वह शुक्ल-मण्डल (Cornea) से लगभग $\frac{1}{8}$ इञ्च ऊँची होजाती है, फिर शुक्ल-मण्डल विवरके तल देशमें घुस जाती है। ऐसा होनेपर व्याधि घातक बन जाती है।

नाकमेंसे और इतर श्लैष्मिक-कलामेंसे रक्तस्राव होने लगता है। फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण, हृदावरण और अन्त्रमें दाह-शोथ उत्पादक पदार्थका संचय होने लगता है।

फुफ्फुसकोथ—कभी फुफ्फुसमें रक्तस्राव होनेपर कोथ होता है। श्वासोच्छ्वास में कष्ट होने लगता है, श्वासोच्छ्वासकी परीक्षा करनेपर कभी-कभी आगन्तुक आवाज़ (Rales) और अंगुलियोंसे ठेपन करनेपर घनध्वनि सुननेमें आती है। हृदयपर ध्वनि वाहक यन्त्रसे परीक्षाकी जाय, तो पाण्डु रोगके सदृश आवाज़ आती है।

रोगविनिर्णय—अतिशय बलक्षय, दन्तवेष्ट विकृति, स्थान-स्थान परसे रक्तस्राव और सूजनपरसे सहज निश्चय हो जाता है।

साध्यासाध्यता—यदि इस रोगको सत्वर न दबा दिया तो सब लक्षण प्रबलतर हो जाते हैं, एवं व्रण होकर रक्तस्राव होने लगता है। चिरकारी क्षत पुनः उत्पन्न होते हैं। जुड़ी हुई हड्डियाँ पुनः खुल जाती हैं; रोगी बेहोश-सा और अत्यधिक कृश हो जाता है। यदि इस रोगमें रक्तके ददोरे (Eruption) अत्यन्त व्याप्त हो जाय और श्लैष्मिक-कलामेंसे रक्तस्राव अधिक होने लगे,तो रोग असाध्य हो जाता है। लसीका-ग्रन्थियों या देहके संयोजक तन्तुओंमेंसे रक्तनिःसरण होनेपर रोगीकी मृत्यु होजाती है।

शवपरीक्षा—शवच्छेद करके देखनेपर हृदय कोमल और म्लान या मेदयुक्त, प्लीहा बढ़ी हुई और कोमल तथा रक्त जलके सदृश पतला प्रतीत होता है। अन्त्रमें त्रिदोषज रक्तपित्तके सदृश रक्तस्रावके चिन्ह देखनेमें आते हैं। सब संधियोंमें रक्त संचित हो जाता है।

(४) त्रिदोषज रक्तपित्त

(पर्प्युरा—Purpura)

परिचय—कैशिकाओंमेंसे त्वचा और श्लैष्मिक-कलामें रक्तका स्राव या

निःसरण होनेको त्रिदोषज रक्तपित्त कहते हैं। रक्त और रक्तजलके स्राव और निःसरण भेदसे इस रोगके सामान्यतः ४ प्रकार होते हैं।

अ. सौम्य पर्प्युरा (Purpura Simplex)-मृदु रक्तस्राव प्रकार।

आ. पर्प्युरा (Purpura Haemorrhagica) गम्भीर रक्तस्रावमय।

इ. हेनोकका पर्प्युरा (Henoch's Purpura) यह प्रतिफलित क्रियाजन्य पर्प्युरा है। मुख्यतः रक्तरसका निःसरण, प्रमुख उदरके लक्षणोंसह।

ई. आमवातसह पर्प्युरा (Purpura Rheumatica) यह प्रतिफलित क्रियाजन्य पर्प्युरा। मुख्यतः रक्तरस निःसरण। संधिस्थानोंके मुख्य लक्षणों सह उपस्थित।

उक्त चारों प्रकारके २ समूह होते हैं। (१) मुख्य रक्तस्रावमय (Predminantly haemorrhagic), जिसमें पहले और दूसरे प्रकारका अन्तर्भाव होता है। उक्त प्रकारोंमें आशुकारी, चिरकारी दो उपप्रकार होते हैं। (२) प्रतिफलित क्रियाजन्य, इस प्रकारमें मुख्यतः रक्तसे रंजित रक्तरसका निःसरण होता है; किन्तु कतिपय स्थानोंमें विशुद्ध रक्तरस और अन्यत्र कम मात्रामें रक्त होता है। इस समूहमें तीसरे और चौथे प्रकारका अन्तर्भाव होता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना—डॉक्टरीमें इस रोगपर असकोर्बिक एसिड देते हैं। आयुर्वेदिक मतानुसार उत्तम औषधि, वासापत्र, आँवले, मोसम्मी, नारंगी, नींबू, अनार आदिका रस है। (आँवलेमें विटामिन C अधिक मात्रामें रहता है। अतः वह अतिहितावह है) चन्द्रकला रस, दुर्वाद्यघृत, वासावलेह, कामदूधा ये सब हितकारक औषधियाँ हैं (डॉक्टरीमें यकृत्का सत्व भी देते हैं)।

भोजनमें दूधका सेवन करना चाहिये और रोगीको विशुद्ध वायुमें रखना चाहिये।

मसूढ़ेपर हाइड्रोजन-पर-ऑक्साइड लगावें और निम्न मिश्रणका कुल्ला करावें।

फिटकरी	५ ग्रेन
गंधकाम्ल पतला	१० बूँद
बीजाबोलका अर्क (Tr. Myrrhre)	१० बूँद
वाष्प जल	१ औंस

(अ) सौम्य त्रिदोषज रक्तपित्त

(पर्प्युरा सिम्प्लेक्स—Purpura Simplex)

रोगी—सामान्यतः बालक या युवा।

लक्षण—किञ्चित् बेचैनी, कभी-कभी शिरदर्द, संधिस्थानोंमें क्षणिक वेदना, या अतिसार। कुटुम्बके पृथक् व्यक्तिको होनेपर, भोजनमें विटामिन B की न्यूनता होनेपर, त्वचापर रक्तके लाल-नीले दाग (Cetechiae)की प्रतीति, अवसन्नता, कंधे और पैरोंमें वेदना।

चिह्न—मुख्यतः पैरोंकी प्रसारणी पेशीपर छोटे-छोटे लाल-नीले धब्बे, कण्ठ, हाथ और कभी मुख-मंडलपर भी धब्बे। धब्बे बाहर आनेपर किञ्चित् ज्वर। श्लैष्मिक-

• कलामेंसे रक्तस्राव न होना। रक्तचक्रिकाएँ सामान्यतः मूलस्थितिमें। रक्तस्राव और रक्त जमावका समय सामान्य।

क्रम—धब्बेको अदृश्य होनेमें ५-६ सप्ताह। पुनः आक्रमण होता है।

परिणाम—अच्छा।

चिकित्सा—धब्बे अदृश्य न हों तब तक रोगीको शय्यापर आराम करावें। डॉक्टरीमें मल्ल प्रयोजित होता है; किन्तु उसके लाभमें संदेह है। आयुर्वेदमें चन्द्रकला, दुर्वाद्यघृत, रक्तपित्तान्तक रस, कामदूधा, बोलबद्ध रस आदि उत्तम सिद्ध औषधियाँ हैं।

(आ) रक्तस्रावात्मक त्रिदोषज रक्तपित्त

(हेमोर्हेजिक पर्प्युरा—Haemorrhagic Purpura.)

गौणसंज्ञा—(Thrombopenia)

परिचय—इस रोगमें त्वचा, श्लैष्मिक-कला और भी तटस्थ अवयवोंमें रक्तस्राव तथा कुछ रक्त चक्रिकाओंका ह्रास होता है। रोगके आशुकारी और चिरकारी २ प्रकार हैं।

A. आशुकारी रक्तस्रावी त्रिदोषज रक्तपित्त

यह स्त्री-पुरुष, दोनों जातियोंको सब आयुमें, विशेषतः बाल्यावस्था और युवावस्थामें प्राप्त होता है। आक्रमण सामान्यतः अकस्मात्। पूर्ववर्त्ती रक्तस्रावके स्वभाव सहित या रहित। पूर्ववर्त्ती कितनेक दिनोंसे सामान्य निर्बलता। पाण्डुकी वृद्धि होती है। किन्तु सर्वदा पूर्ववर्त्ती निर्बलता नहीं होती।

लक्षण—सब प्रकारके रक्तस्राव।

१. उत्तान रक्तस्राव—पर्प्युरा, त्वचाके नीचे विवर्ण दाग। प्रायः रक्तजलके निःसरणसे विवर्णतासह कोमल क्षेत्र।

२. श्लैष्मिक-कलामेंसे विस्तीर्ण रक्तस्राव।

३. सामान्यतः अनियमित ज्वर। गंभीरस्वाभाविक बेचैनी। वमन और अतिसार सामान्य। प्लीहा स्पर्शग्राह्य।

४. संधिस्थान और उदरमें वेदना वर्तमान।

चिह्न—देहपर लाल-नीले धब्बे और त्वचाके नीचे विवर्ण दाग। मसूढ़ेसे रक्तस्राव (किन्तु कफरक्तज रक्तपित्तके समान शिथिल नहीं)।

रक्त—आक्रमण कालमें या सत्वर रक्तचक्रिकाओंका अति ह्रास (मज्जाका परिपाक अपूर्ण होनेसे) प्रायः अतिस्थूल चक्रिकाओंकी उत्पत्ति तथा रक्तमें अन्य परिवर्त्तन।

प्लीहामें रक्तचक्रिकाओंका नाश। कैशिकाओंकी भेदनशीलतामें वृद्धि। रक्तमें कुछ जीवकेन्द्रमय रक्ताणुओंकी उपस्थिति। वर्ण सूचीके ह्रासमय पाण्डु। जालदार रक्ताणु १०% वृद्धि। श्वेताणु और लसीकाणुओंकी वृद्धि।

क्रम—निर्बलता बढ़ती रहना, अति बेचैनी, शीघ्र पाण्डु। थकावट आने या

मस्तिष्कमें रक्तस्राव होनेपर सत्वर गंभीरावस्था; किन्तु स्वास्थ्य होनेपर रक्तस्राव किसी अवस्थासे रुक जाता है। सामान्यतः जीर्ण होनेपर चिरकारी प्रकारमें परिवर्त्तित।

परिणाम—सर्वदा अतिगंभीर।

घातक आक्रमणकारी त्रिदोषज रक्तपित्त

(Purpura Fulminans)

यह अति तीव्र और घातक प्रकार विशेषतः बच्चोंको होता है। उत्तापवृद्धि, विस्तृत उपत्वचाके भीतर रक्तक्षरणके विवर्णदाग, चक्रिकाएँ सामान्य संख्यामें तथा रक्तपाण्डुके सदृश प्रकार। मृत्यु १ से ४ दिनके भीतर।

B. चिरकारी रक्तस्रावी त्रिदोषज रक्तपित्त

रक्तस्रावी अवस्था स्वभाविक। किसी भी आयुमें प्रारम्भ। बीचमें विराम या वर्त्तमान; किन्तु जीर्णावस्थामें केवल सौम्य प्रकार लम्बे समय तक चालू रहती है। थोड़े रक्तस्रावके दागसे लेकर गम्भीरतम रक्तस्रावावस्था तक प्रत्येक परिमाण सब अवस्थाओंमें उपस्थित होते हैं या बढ़ जाते हैं।

पुनराक्रमण अविभाज्य प्रकारमें। अ. समान प्रकारके सब उदा० नासास्रावसह पर्प्युरा अथवा रक्तमेह (Haematuria) या अस्वाभाविक मासिक धर्म। आ. भिन्न-भिन्न प्रकारोंमें धारावाहिक आक्रमण—उदा० सौम्य पर्प्युरा, शीत पित्त, श्लैष्मिक-कलामें से रक्तस्राव।

रक्त—नानाविध परिवर्त्तन। परीक्षाके समयपर चिरकारीपना और गम्भीरता, दोनोंपर आधार है। मध्यम गम्भीरतामें चक्रिकाएँ प्रायः १ से १॥ लक्ष।

क्रम—वर्षोंतक चालू रहता है या जीवनमें पाण्डुकी भिन्न-भिन्न अवस्थासह पुनराक्रमण होता है।

उपद्रव—मस्तिष्क या मस्तिष्क सुषुम्णाकी कलामें कभी रक्तस्राव।

३. हेनोकका रक्तपित्त

(Henoch's Purpura)

यह मुख्यतः पृथक्-पृथक् मात्रामें रक्तस्रावसह रक्तजलके निःसरणसे प्राप्त होता है। यह किसी भी आयुमें, किन्तु बहुधा युवावस्थाके पहले दस वर्षमें।

आक्रमण—आशुकारी, चिरकारीमेंसे आशुकारी या पुराक्रमण। कुछ दिन पहलेसे व्याकुलता।

लक्षण और चिह्न—

१. त्वचाके नीचे विवर्णता, परिवर्त्तन शील विस्तृत, व्यापक स्थानमें। धब्बेका अभाव या स्वल्प। कोमल उभारमय शोथ या शीतपित्त सदृश शोथ।

२. उदरमें शूल, मलावरोध, अतिसार और वमन।

३. संधिस्थानोंमें वेदना तथा शोथमय। विवर्णताका अभाव।

४. प्रायः स्वाभाविक व्याकुलता लक्ष्य देने योग्य। कोमल स्थानपर स्पर्श करनेपर पीड़ा होना।

रक्त—थोड़ा परिवर्तित। चक्रिकाएँ सामान्य या कुछ कम १ से १॥ लक्ष। प्लीहा स्पर्शग्राह्य।

उपद्रव—अन्त्रान्त्रप्रवेशका प्रायः पूर्णरूपसे अनुकरण। गुदनलिकामेंसे रक्त और आमका निर्गमन। शोथमय प्रदेशके उपान्त्रको काट देनेपर अन्त्रान्त्रप्रदेशकी सच्ची उत्पत्ति। उपान्त्र प्रदाहभी होना चाहिये। करोटिके भीतर शोथसे मूर्च्छा या मृत्यु (रक्तमें मूत्र-विषवृद्धिका अनुकरण)। कभी-कभी रक्तस्राव।

क्रम—कुछ वर्षोंतक पुनः-पुनः उपस्थिति। ह्रास होनेका स्वभाव। आक्रमणके पश्चात् प्रायः आश्चर्यकर तेज़ीसे स्वास्थ्य। थोड़ा रक्त बाहर निकलता है; जिससे पाण्डुता नहीं आती। क्वचित् रक्तस्रावकी वृद्धि होकर रोगकी उत्पत्ति होती है।

ई. त्रिदोषज आमवातिक रक्तपित्त

(पर्प्युरारूमेटिका—Purpura Rheumatica.)

इस रोगमें आमवातके आक्रमणका कोई चिह्न नहीं मिलता। रोगी प्रायः युवा पुरुष।

लक्षण—त्वचा ठीक हेनोकके रक्तपित्तके समान। ज्वर और कण्ठक्षत प्रायः आक्रमणके समय। प्रारम्भके कुछ दिनोंमें उत्ताप लगभग १००° तक बढ़ जाता है। प्रभावित संधियाँ गुल्फ और जानुसंधिपर कुछ शोथ और कोमलता (यह विशेष लक्षण है)। त्वचा विवर्ण नहीं होती। पैरोंकी प्रसारण करनेवाली पेशियोंकी सतहपर रक्तस्रावके धब्बे और शीतपित्तके धब्बे होनेसे उपत्वचामें परिवर्त्तन। रक्तवाहिनियोंकी चेष्टा नाड़ियोंकी क्रियाविकृतिजन्य (Angio-neurotic)। पैर, चरण, हाथ और मुखपर शोथ।

रोगविनिर्णय—आमवातिक पूर्ववर्त्ती लक्षणोंकी अभिव्यक्ति न होनेसे एवं हृदयान्तरप्रदाह न होनेसे तथा सेलीसिलेटका प्रभाव न होनेसे आमवातसे यह पृथक् होजाता है। आशुकारी आमवातमें त्रिदोषज रक्तपित्त अति क्वचित् होता है।

चारों प्रकारके पर्प्युराका रोग विनिर्णय—प्लीहोदर (Splenic Anaemia), मज्जाविकृतिमय पाण्डु (Aplastic Anaemia) तथा आशुकारी लसीका तन्तुविकृतिसह श्वेताणु वृद्धिमय पाण्डु (Aleukaemic Leukaemia), इन सबमें प्रभेद कठिनतासे होता है।

चिकित्सा—आशुकारी प्रकारमें रक्तका अन्तःसेचन। लगभग २०० से ३०० सी. सी.। किसका रक्तलेना, यह निर्णय सावधानतासे करना चाहिये। पुनरावृत्ति भी करें। रक्तस्रावी अवस्थामें लाभ अनिश्चित।

प्लीहाका छेदन—आशुकारी प्रकारमें अति भय युक्त। योग्य होनेपर आयु-

वृद्धि । रक्तस्राव का शमन; किन्तु निमित्त होनेपर तत्काल उपस्थित । चक्रिकाओंकी उन्नति ।

चिरकारी अवस्था और प्रतिफलित क्रियाजन्य प्रकारोंमें शस्त्रक्रियासे मृत्यु संख्या १० प्रतिशत ।

उत्तर कालीन क्रम—रक्तस्राव सत्वर बंद होता है और स्थिर या चालू मन्द परिणाममें कुछ वर्षोंतक पुनः-पुनः रक्तस्राव और पुनः-पुनः दमन । चक्रिकाएँ बढ़जाती हैं और फिर कम होजाती हैं। चक्रिका ह्रास (Thrombopenia) होनेपर फिर रक्तस्राव होने लगता है । रोग मुक्तिके लम्बे समयके पश्चात् पुनरावर्त्तक स्थितिकी उन्नति । कभी-कभी चक्रिकाओंकी वृद्धि या सुधार नहीं होता ।

स्थानिक चिकित्सा—सर्पविष स्थानिक रक्तस्रावका रोध करता है ।

संदेहास्पद चिकित्सा—डॉक्टरी मतअनुसार रक्तरसके विरोधके लिये चूना-कल्प, यकृत्, नीलातीत किरण आदि व्यर्थ । T. A. B. गव्यका अन्तःक्षेपण करनेपर प्रथिनका आधार भयप्रद । अश्वके रक्तरसका अन्तःक्षेपण प्रतिफलित क्रियाजन्य प्रकारमें क्षणिक हितकर । 'क्ष' किरणका लाभ अनिश्चित । पोषणकी अपूर्णतामें (विटामिन C की न्यूनतामें) बालकोंके लिये कभी एड्रेनलिन का अन्तःक्षेपण हितकर ।

इस रोगपर डॉक्टरी चिकित्सा प्रायः असफल । पञ्च कर्म और आयुर्वेदिक उपचार अति हितकर । वर्णन रक्तपित्त चिकित्सामें देखें ।

(५) वंशागत रक्तस्रावीय स्थिति

(Hereditary Haemorrhagic Diathesis.)

यह रोग स्त्री और पुरुष, दोनों को वंशागत मिलता है । लक्षण अवंशागतके समान चक्रिकाओंका ह्रास तथा अन्य रोगप्रकाशक लक्षण समान ।

चिकित्सा— अवंशागत रक्तपित्तके समान । प्लीहाका छेदन अति सम्हाल-पूर्वक करना चाहिये । इससे कतिपय रोगियोंके लिये अच्छा परिणाम आया है, कभी सामान्यतः चक्रिकाओंकी वृद्धिके अभावमें रोग घातक भी बन जाता है ।

मध्यस्थ प्रकार—(पूर्ववर्ती रक्तस्रावीय स्थिति और रक्तस्रावरोधक शक्तिकी न्यूनता, इन दोनोंके बीचका प्रकार)—इसका निर्णय भी संदेहास्पद । यह अति क्वचित् उपस्थित । इस प्रकारमें रक्त जमावका समय चक्रिकाओंके परिवर्त्तन सहित (या रहित) लम्बा । स्त्रियोंमें रक्तवहनकी अधिक मात्रा इधर-उधर होती है, उसे कृत्रिम अति रक्तस्रावीय स्थिति कहा है ।

(६) वंशागत रक्तस्रावीय कैशिकाओं का प्रसारण

(Hereditary Haemorrhagic Telangiectesia.)

कैशिकाओंका नानाविध आकार में प्रसारण, यह वंशागत विकार है । फटनेपर

रक्तस्राव। यह विकृति स्त्री-पुरुष, उभय जातिके एक कुटुम्बके आधे मनुष्य पीड़ित। संभवतः कैशिका संस्थानकी उन्नति अपूर्ण।

लक्षण—सबसे पहला लक्षण नासिकासे रक्तस्राव। प्रारंभ बाल्यावस्थामें। कैशिका-प्रसारण जन्म काल में नहीं होता। लगभग २१ से ३० वर्षकी आयुमें प्राप्ति। कैशिका-प्रसारणकी संख्यामें क्रमशः वृद्धि। प्रत्येक स्थानकी क्षति स्थिर रह जाती है, ये बहुत प्रकार की होती है, उदा० पिनके अग्रभागके समान, मकड़ीके आकारकी, तारा सदृश अथवा गांठदार। ये मुख-मण्डल, मुख, जिह्वा, नासापुट तथा श्लैष्मिक-कलापर अति सामान्यतः। कोई भी स्थान मुक्त नहीं।

रक्तस्राव नासिकाके अतिरिक्त इतर स्थानोंसे भी होता है। रक्तमें सूक्ष्म रक्ताणु उपस्थित होते हैं।

चिकित्सा—इसकी कोई विशेष चिकित्सा नहीं है। दहन क्रिया किञ्चित् लाभदायक। किसी-किसीको यकृद्दाली होजाता है।

(७) वंशागत रक्तरोधक शक्तिकी न्यूनता

(हिमोफीलिया—Haemophilia.)

यह वंशागत विकृति पुरुषों में ही सीमित है, किन्तु स्त्रियों द्वारा प्राप्त होती है। थोड़ी-सी चोट लगने तथा रक्त जमनेका समय बढ़ाती है और अति रक्तस्राव होता है।

मुख्य वंशागत प्रकार—यह स्त्रियों द्वारा दिया जाता है और केवल पुरुषों द्वारा प्रदर्शित होता है। जैसे--किसी पुरुषको यह विकृति है, उसकी पुत्रीको यह विकृति नहीं होती; किन्तु उस पुत्रीके पुत्रको होजाती है। यद्यपि इसका निःसंदेह उदाहरण नहीं मिला, किन्तु उस कुटुम्बकी स्त्रियों (पुत्रियों) का कुछ अंशमें सहज रक्त जाता है तथा उसे वर्णान्धता (Colour blindness) होती है। यह भी विचारणीय है। स्त्रियोंमें अति उद्भावनका स्वभाव है। सफल जनन क्रियामें रक्तस्रावी द्रव्यकी मात्रा सामान्यतः कम होजाती है। पृथक् कुटुम्बोंमें स्थितिकी गम्भीरता परिवर्त्तित होती है।

यदि पित्ताशय इस रोगसे पीड़ित हो तथा माता रोगकी प्रेरक हो, तो अति क्वचित् पुत्रीको भी यह विकृति मिल जाती है।

संप्राप्ति—रक्त जमावमें विलम्ब। रक्त तन्तुओंकी रचनामें अस्वाभाविकता।

रक्तजमावकी देरीमें कारण—इसके प्रमाण अपूर्ण हैं किन्तु रक्त तन्तु जन (Fibrinogen) सदोष नहीं; चूना (Calcium) की मात्रा कम नहीं, रक्तस्तम्भक-मण्ड (Thrombokinase) और रक्तस्तम्भकजन (Prothrombin) ये दोनों भी इस रोगसे पीड़ित व्यक्तिके रक्तमें प्रतीत होते हैं; कोई अस्वाभाविकता नहीं होती (अतः यह प्रयोग निस्संदिग्ध नहीं माना जायगा)।

संभवतः रक्तस्तम्भक जनमें से रक्तस्तम्भक द्रव्य (Thrombin) की रचना होनेमें भूल होती है। रक्तस्तम्भक मण्डकी अपूर्णता अर्थात् तन्तु घटकमें

मौलिकक्षति (रक्तमें नहीं) अथवा रक्तस्तम्भक जमकी रचना करने वाले द्रव्यकी निर्बलता इनमें से किसी एक में क्षति है, जमा हुआ रक्त घावमें विद्यमान होने पर भी रक्तस्राव चालू रहता है ।

रक्तमें परिवर्त्तन—

रक्ताणु—रक्तस्रावके पश्चात् पाण्डु ।

चक्रिकाएँ—सामान्यतः स्वाभाविक, किन्तु रक्तस्राव होने पर कम होजाती हैं ।

रक्तजमावका समय—सामान्यतः अधिक (५ से ८ गुना); किन्तु आक्रमण के बीच में सामान्य ।

रक्तस्रावका समय—सामान्य ।

लक्षण—सामान्य चोट लगनेपर भी अति रक्तस्राव । सामान्यतः शैशवावस्थामें प्रारम्भ, किन्तु जन्मकाल में क्वचित् नाभिमें से रक्तस्राव । आयुके साथ इस विकृतिकी कमी होती है । यह परिव र्न विशेषतः भिन्न-भिन्न समयमें रक्तस्राव होनेपर सामान्यतः १००° तक उत्ताप वृद्धि ।

आक्रमण और रक्तस्रावका स्वभाव—संभवतः सर्वदा तुच्छ आघात होने पर या मामूली घर्षण क्रियासे भी रक्तस्राव होने लगता है । बूँद-बूँद टपकता है; स्रावकी मात्रामें अस्वाभाविक अधिकता नहीं होती; किन्तु समय अधिक लगता है ।

रक्तस्रावके स्थान—

१. बाह्य—दाँतों के निकलनेपर, नासारक्तस्राव, मसूढ़ेमें से विशेषतः । थोड़ा-सा कटने, सुन्नत करने (Circumcision) आदि हेतुसे । रक्तक्षरणजन्य त्वचा की विवर्णता । कभी नीले-लाल धब्बे नहीं ।

२. अन्तरमें—किञ्चित आघातसे त्वचाके नीचे या मांसपेशीके भीतर रक्तका अर्बुद प्रायः विस्तृत फैला हुआ ।

३. संधिस्थानोंमें—थोड़ा रक्तक्षरण । विशेषतः बृहत् संधिमें, विशेषतः जानु संधिमें । रक्त स्राव सत्वर । रक्तपूर्ण शोषित होता है और कुछ भी शेष नहीं रहता या शिथिल स्थिति और अस्वाभाविक घनता रूप परिणाम आता है ।

४. सुषुम्णाकाण्ड—मज्जाप्रदाह रूप परिणाम । इनके अतिरिक्त आमाशय, वृक्क, फुफ्फुसमें से क्वचित् ही रक्तस्राव ।

रोग विनिर्णय—पुरुष रोगी, मंद आघातमें । लम्बे समय तक रक्तस्राव, प्रारम्भ शैशवावस्थासे, रक्तजमावमें विलम्ब, वंशागत इतिहास तथा माताद्वारा संप्राप्ति आदि लक्षण चिह्नोंपर से निर्णय ।

परिणाम—बाल्यावस्थामें अशुभ । आयुवृद्धिके साथ उन्नति । पृथक्-पृथक् कुटुम्बोंकी गम्भीरतामें अन्तर । युवावस्थाके पश्चात् भय बहुत कम ।

चिकित्सा—ग्रहणक्षम व्यक्तिके लिये रोगोत्पत्ति न होनेके लिये सावधान रहे ।

स्थानिक चिकित्सा—कोमल हाथसे जमे हुए रक्तको धो लेवें। सर्पविष (Russell's vipervenom) १-१०,००० फुरेरीसे लगावें अथवा मनुष्यका ताज़ा रक्त लगावें।

संधिस्थान—रक्तसे स्फीत होनेपर आकर्षित कर लेवें। (सूची जन्य छिद्र भी क्वचित् रक्तस्राव कराता है)।

वक्तव्य-रक्तका अन्तःसेचन—करनेपर ४ दिन तक रक्तजमावका समय सामान्य रहता है। अतः शस्त्रक्रिया करनी हो, तो इस समयके भीतर कर लेनी चाहिये।

औषधियाँ—बीजाशय सत्व, प्रथिनका अन्तःक्षेपण, चूना, गर्भवेष्टन सत्व आदिकी परीक्षा होरही है।

रक्तपित्तचिकित्सोपयोगी सूचना

बलवान् रोगीके वेगसे गिरते हुए दूषित रक्तस्रावको एकदम बन्द करनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए। कारण-दूषित रक्तका रोध होनेसे रक्तविकार, विद्रधि, विसर्प, गलगण्ड, ज्वर, खुजली, शोथ, पाण्डु, हृद्रोग, ग्रहणी, अर्श, भगंदर, प्लीहावृद्धि, आनाह, गुल्म, क्षय, मूर्च्छा, किलास, कुष्ठ, वातरक्त, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, बुद्धि या स्मरण शक्तिमें विकृति इत्यादि रोगोंकी उत्पत्ति होजाती है।

यदि दूषित रक्त सूक्ष्म शिराओंद्वारा अन्तचर्ममें प्रवेश करता है तो पाण्डुरोग। ग्रहणीमें प्रवेश करता है तो ग्रहणी रोग, इतर धातुओंमें प्राप्त होता है तो कुष्ठ। रक्तमें विकृति होनेपर रक्तविकार। प्लीहापर आघात पहुँचावे तो प्लीहावृद्धि। उदरमें या गर्भाशयमें संचित हो तो गुल्म। एवं रसवाहिनियों और स्वेदवाहिनियोंकी ओर प्रवृत्ति करे तो ज्वर रोगकी उत्पत्ति कराता है। ऐसे ही पृथक्-पृथक् स्थानोंमें दूषित रक्तकी गति अनुसार इतर रोगोंकी सम्प्राप्ति होजाती है।

यदि रोगी बलवान्, पुष्ट और प्रदीप्त अग्निवाला है, तो तीव्र रक्तपित्तका प्रारम्भ होनेपर लङ्घन कराकर कच्चे दोषको जला देना, यह परम हितकारी है; किन्तु निर्बलोंको लङ्घन नहीं कराना चाहिए। यदि रोगी अत्यन्त निर्बल है और रक्त बन्द न होनेसे मरणकी भीति है तो भावी उपद्रवका विचार किये बिना रक्तको तत्काल बन्द कर देना चाहिए। फिर रोगशामक संशमन औषधियाँ देनी चाहिए।

रोगकी उत्पत्ति संतर्पणसे हुई हो और रोगी सशक्त है, तो चिकित्साके प्रारम्भमें ऊर्ध्व रक्तपित्तवालेको विरेचन देकर और अधो रक्तपित्तवालेको वमन कराकर शुद्धकर लेना चाहिए।

यदि रोगकी उत्पत्ति अपतर्पणसे हुई हो और रोगी अशक्त हो, तो बिना संशोधन किये ऊर्ध्व रक्तपित्तमें संशमन चिकित्सा और अधो रक्तपित्तमें बृंहण चिकित्सा

करनी चाहिए। एवं द्विमार्गी रक्तपित्तका रोगी यदि बलवान् है, तो प्रथम लङ्घन करा फिर संशमन औषधि देनी चाहिए।

यदि बालक, वृद्ध या शोष रोगसे पीड़ित को रक्तपित्त हुआ है, तो लङ्घन या वमन-विरेचन नहीं कराना चाहिए। संशमन उपचारका ही प्रारम्भ करना चाहिए।

ऊर्ध्व रक्तपित्त और अधो रक्तपित्तमें मुख, नासिका, गुदा, मूत्रेन्द्रिय आदि स्थान भेद तथा देश, काल, रोग बल, अग्नि बल, रोगी बल और उपद्रव आदिके भेदको जानकर चिकित्सा करनी चाहिए। रक्तपित्तमें कफ नाश होनेपर और जठराग्नि प्रदीप्त हो जानेपर भी रक्तपित्त शमन न हुआ हो, तो वातप्रधान रक्तपित्तमें दूधकी योजना करनी चाहिए।

ऊर्ध्व रक्तपित्तमें कफ होनेपर कमलकी नालके क्षारको या प्रवालपिष्टीको घी-शहदके साथ मिलाकर देना लाभदायक है। यदि नाकसे रक्त गिरता हो, तो सूँघनेकी औषधि—गोघृत, दुर्वाद्यघृत आदि देनी चाहिए।

यदि अधो रक्तपित्तमें रक्त गुदाद्वारसे जाता है, तो सिद्ध घृतकी बस्ति देनी चाहिए। वातोल्वण रक्तपित्तमें बकरीके दूधकी बस्ति और रक्तातिसारनाशक चिकित्सा हितकर मानी गई है। मूत्रमार्गसे रक्त जानेपर उत्तरबस्ति देनी चाहिए।

जिन रोगियोंको लङ्घन कराया जाय, उनको लङ्घनके बाद चावलोंकी थोड़ी पेया पिलानी चाहिए तथा संतर्पण, पाचन, अवलेह और रक्तपित्तशामक सिद्ध घृत देना चाहिए।

ऊर्ध्व रक्तपित्तमें कड़वे और कसैले रसवाले पदार्थ, षडङ्ग जल (सोंठ रहित), संशमन औषधि और उपवास तथा अधोरक्तपित्तमें मधुर पौष्टिक भोजन लाभदायक है।

रक्तपित्त रोगीको विरेचनार्थ मुनक्का, मुलहठी, गम्भारी और मिश्री मिलाकर देवें और वमक औषधि मैनफल आदि देनी हो तो मुलहठी और शहदके साथ मिला-कर देनी चाहिए।

रक्तपित्तके रोगीके पीनेके जलमें षडङ्ग जलकी औषधियाँ (सोंठको छोड़ शेष पाँच औषधियाँ) मिला या नेत्रवाला, चन्दन, खस, नागरमोथा और पित्तपापड़ा मिला, उबालकर शीतल किया हुआ जल देना चाहिए अथवा लघु पञ्चमूल मिलाकर उबाला हुआ, शहद मिला हुआ, खट्टे फल, मुनक्का आदि मिला हुआ, पित्तघ्न फल मिला हुआ या बिना औषधि मिलाये केवल उबालकर शीतल किया हुआ जल देना चाहिए।

क्षीण बल वाले रोगीको ऊर्ध्व रक्तपित्तमें पहले तर्पण करावें। फिर विरेचन दें और अधोगामी रक्तपित्तमें पहले लघु पञ्चमूलके क्वाथमें चावलकी पेया पिलाकर वमन करावें।

रक्तपित्तमें पेया, तर्पण, पाचन, अवलेह और सिद्ध-घृत-परम हितकर हैं।

अधो रक्तपित्तमें यदि वायु बलवान् है, तो यवागू न दें। मूंगका यूष वा मांस रस देना चाहिए। अधोगामी रक्तपित्तमें खजूर, मुनक्का, मुलहठी और फालसाके जलके साथ मिश्री मिला तर्पण बनाकर पिलाना चाहिए।

ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें खीलके सत्तूका तर्पण घृत और शहद मिलाकर खिलावें। मन्दाग्नि हो तो दाडिम, आँवला आदि पथ्य अम्ल वस्तुका तर्पण देवें अथवा इन औषधियोंका सेवन भोजनके साथ करावें।

यहाँ जो औषधियाँ रक्तपित्तशामक कही हैं इनके अतिरिक्त पित्तज्वरमें अन्तर्बाह्य उपचार कहे हैं तथा क्षत क्षीणके लिये जो औषधियाँ कही हैं वे सब रक्तपित्तमें हितकर मानी जाती हैं। आवश्यकतापर उनमेंसे भी विचारपूर्वक प्रयोगमें लाई जाती हैं।

रक्त वमन रोगमें बर्फ चूसनेको देना हितकारी है। यदि यकृत्‌मेंसे अधिक रक्तस्राव हो गया हो, तो लवण मिश्रित विरेचन देना चाहिए। भोजन और पेय बिल्कुल शीतल देना चाहिए।

रक्तनिष्ठीवनमें रोगीको थोड़ा-थोड़ा बर्फ चूसने देवें। सम्पूर्ण विश्रान्ति देवें। ज्यादा बोलने भी नहीं देना चाहिए। रोगीको शीतल खुली वायु वाले स्थानमें रखना चाहिए। आवश्यकतापर फुप्फुसपर बर्फकी थैली रखकर शीतलता पहुँचानी चाहिए। रक्तनिष्ठीवन रोगीको भोजन और पेय आदि सब बिलकुल शीतल देना चाहिए। यदि फुप्फुसमेंसे अत्यधिक रक्तस्राव हो रहा हो, तो तार्पिन तैलकी बाष्पदेवें (श्वासके साथ प्रवेश करावें।)

रक्तरोधक औषध देनेसे संयोजकतन्तुओंका संकोच होकर और रक्त संयत होकर रक्तस्राव बन्द हो जाता है। चन्द्रकलारस, बोलबद्धरस, बोलपर्पटी, तृणकांत-मणि पिष्टी, उशीरासव आदि औषधियाँ सत्वर रक्तस्रावका रोध करती हैं।

यदि नासिकामेंसे होनेवाला रक्तस्राव अधिक न हो, तो उसे बलात्कारसे रोकनेकी चिकित्सा न करनी चाहिए। यदि अधिक रक्तस्राव हो और किसी कारणवश रोकनेकी आवश्यकता हो, तो रक्तस्राव रोकनेके दो उपाय हैं। नैसर्गिक बाह्योपचार और औषधि चिकित्सा।

नैसर्गिक बाह्योपचार—

अ. मस्तिष्कको कुछ नीचा झुकाकर शिरपर शीतल जल छिड़कें या बर्फ रखें।

आ. दोनों पैरोंको गरम जलमें डूबो रखनेसे निम्न शाखाकी शिराएँ प्रसारित होती हैं। फलतः मस्तिष्कमेंसे रक्त नीचेकी ओर आ जाता है।

इ. पृष्ठदेशमें कशेरुकाओंके ऊपर गरम जलसे सेक करनेपर मस्तिष्कमेंसे रक्त सत्वर आकर्षित हो जाता है।

रक्तस्रावीय प्रकृतिवालोंको (और दूसरोंको भी) बाह्य रक्तस्राव बन्द करनेके लिए उस स्थानपर बर्फ रखना चाहिए।

त्रिदोषज रक्तपित्त (Purpura) में मूल कारणको दूर कराना चाहिए। पौष्टिक, मधुर, लघु भोजन देना चाहिए। इस रोगपर लोह प्रधान और रक्तवाहिनियोंको संकोच करनेवाली औषधियाँ (चन्द्रकलारस, वासावलेह, बोलबद्ध रस आदि) लाभदायक हैं। विरेचन औषधिद्वारा विषको निकालदेनेसे सत्वर लाभ हो जाता है।

कफरक्तज रक्तपित्त (Scurvy) रोगसे पीड़ितको पक्के फल, नाना प्रकारके नींबू, सन्तरा, मोसम्मी, माल्टा, आँवला आदि और पौष्टिक आहारकी व्यवस्था करनी चाहिए। रोगीको विशुद्ध खुली वायुमें रखें। च्यवनप्राशावलेह और लोह प्रधान औषधि इस रोगमें अति हितकर मानी गई है।

मसूड़ोंके दोषकी निवृत्ति अर्थ, त्रिफला या बंबूलकी छालके क्वाथसे कुल्ले करावें। अथवा दन्तदोषहर मंजन, पाठादि चूर्ण या जातिफलादि चूर्ण से मंजन कराना चाहिए।

त्रिवृत्तादि मोदक—श्वेत निसोत, हरड़, बहेड़ा, आँवला, काली निसोत, पीपल, ये सब समभाग सबके बराबर शक्कर और शहद लड्डू बांधने योग्य लेवें। सबको मिला १–१ तोलेके लड्डू बनाकर खिलानेसे कोष्ठशुद्धि होकर त्रिदोष ऊर्ध्व रक्तपित्त, शोथ और ज्वर दूर होते हैं।

अमलतासके फलका गूदा और आँवले २–२ तोलेका क्वाथकर मिश्री और शहद १–१ तोला मिलाकर पिलानेसे कोष्ठ शुद्धि होकर ऊर्ध्व रक्तपित्त शमन होजाता है।

वामक औषधियाँ—१. पहले शालपर्णी आदि लघु पञ्चमूलसे सिद्ध पेया पिलावें फिर मैनफलका चूर्ण ६ माशे मिश्री, जल और शहद मिला मथनकर वमनार्थ पिलानेसे अधो रक्तपित्तमें पित्तदोष बाहर निकल जाता है।

२. ईखके रसमें मैनफलका चूर्ण और मिश्री मिलाकर देवें।

३. इन्द्रजौ, नागरमोथा, मैनफल और मुलहठीका चूर्ण शहदके साथ मिलाकर पिलानेसे वमन होकर ऊर्ध्वगत दोषोंका संशोधन हो जाता है।

रक्तपित्त चिकित्सा

१. अडूसेके पत्तोंका स्वरस (पुटपाक कृतिसे निकाला हुआ) ६–६ माशेको शहद-मिश्री मिलाकर पिलानेसे दारुण रक्तपित्त भी नष्ट होजाता है।

२. अडूसेके पत्तोंका स्वरस, गूलरका रस, शहद और मिश्री ६-६ माशे को मिलाकर पिलानेसे रक्तपित्त शमन होता है।

३. अडूसेके रसमें प्रियंगू, गोपीचन्दन, रसौंत और लोधका चूर्ण तथा शहद-मिश्री मिलाकर पिलानेसे अधो और ऊर्ध्व, दोनों प्रकारके रक्तपित्त शमन होजाते हैं।

४. वासा कषाय—अडूसेके पत्तेका स्वरस या कशायके साथ नील कमल, गोपीचन्दन, प्रियंगू, लोध, रसौंत और कमलकेशर, इन ६ औषधियोंका कल्क तथा शहद-मिश्री मिलाकर पिलानेसे रक्तपित्तके प्रबल वेगका भी शमन होजाता है।

अडूसाके लिये आचार्यों ने कहा है कि—

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥

जब तक अडूसा संसारमें विद्यमान् है, तब तक रक्तपित्त, क्षय और कासके रोगीके जीवनकी आशा रहती है, फिर ये क्यों व्यर्थ दुःखी हो रहे हैं ?

५. वासा स्वरसके साथ शहद और तालीसपत्रका चूर्ण मिलाकर देनेसे कफ, पित्त, कास, तमकश्वास और स्वरभेदसह रक्तपित्त नष्ट होता है ।

६. अडूसाके पत्ते, मुनक्का और हरड़का क्वाथकर शहद-मिश्री मिलाकर दिनमें दो बार पिलानेसे कास, श्वास और रक्तपित्त दूर होते हैं ।

७. गेंदेके पत्तेका रस २ तोले पिलानेसे रक्त गिरना तुरन्त बन्द होजाता है ।

८. रात्रिको २ तोले लाखके चूर्णको जलमें भिगो दें । सुबह मसल छानकर पिला देनेसे रक्तस्राव बन्द होजाता है ।

९. मोचरसका चूर्ण ३ माशे शहदके साथ मिलाकर चाट लेनेसे गुदासे गिरनेवाला रक्त बन्द होता है ।

१०. खजूर, मुनक्का और मुलहठीका कषाय, शक्कर मिलाकर पिलानेसे रक्तपित्त शमन होता है ।

११. लाखका चूर्ण ६ माशे घी और शहद मिलाकर चटानेसे प्रबल रक्त वमनका भी शमन होजाता है ।

१२. गूलरका पक्का फल (जन्तुओंको दूर करके), गम्भारीका फल, हरड़, पिण्डखजूर या अंगूर, इनमेंसे किसी एकको पीस शहद मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त शान्त होजाता है ।

१३. अडूसेके स्वरसके साथ शहद-मिश्री तथा किशमिश, रक्तचन्दन, लोध और प्रियंगू, इन ४ औषधियोंका कल्क मिलाकर पिलाने या चटानेसे वेगपूर्वक नाक, मुख, गुदा या मूत्रेन्द्रियसे गिरनेवाला रक्त तुरन्त बन्द होजाता है । यह प्रयोग रक्तपित्त-शमनके लिये प्रयोगोंका राजा है । यदि कहींसे शस्त्र लगनेपर रक्तस्राव वेगपूर्वक होता हो, तो उस स्थानपर किशमिश, रक्त चन्दन, लोध और प्रियंगूके चूर्णका लेप लगानेसे वह भी बन्द हो जाता है ।

१४. सिंघाड़ा, धानका लावा और नागरमोथाके चूर्णके साथ कमल-केशर, खजूर और शहद मिलाकर चटावें ।

१५. मरु देशके पशु पक्षियोंका रक्त, शहद मिलाकर चटानेसे रक्तपित्तसे उत्पन्न रुधिरकी न्यूनता दूर होजाती है । (वर्त्तमानमें सम-प्रकारके रक्तका अन्तःक्षेपण करनेका रिवाज है; इससे गम्भीरावस्थामें तत्काल लाभ पहुँच जाता है ।)

१६. कबूतरकी विष्ठाको पीस शहद मिलाकर खिलानेसे रक्तकी गांठे बनना बन्द होजाता है।

१७. धान्यकादि हिम—धनियाँ, आँवला, अडूसेके पत्ते, द्राक्षा और पित्तपापड़ा, इनका चूर्ण १ से २ तोले ले, ४ गुने उबलते जलमें मिलाकर ढक देवें। फिर शीतल होनेपर छानकर पिलावें। इससे रक्तपित्त, मंद ज्वर, दाह, तृषा और शोषकी निवृत्ति होती है।

१८. ह्रीबेरादि क्वाथ—नेत्रवाला, नील कमल, धनियाँ, रक्तचन्दन, मुलहठी, गिलोय, खस और निसोत, इन ८ औषधियोंका क्वाथकर शहद मिश्री मिलाकर पिलानेसे उग्र रक्तपित्तका सद्यः नाश होजाता है तथा ज्वर, दाह और तृषा भी दूर होजाते हैं। यह क्वाथ ऊर्ध्व रक्तपित्तमें बहुधा तत्काल लाभ दर्शाता है। इस क्वाथकी एक दूसरी विधि रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह में दी है, वह भी हितावह है।

१९. अलसीके मूल, लजवन्ती, बड़के अंकुर और छाल, सबको समभाग मिला जलमें पीस छानकर पिलाते रहने और पथ्यमें मूंगका यूष देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें प्रबल रक्तपित्त शमन होजाता है।

२०. ज़ीरा ३ माशे और मिश्री ६ माशे मिलाकर जलके साथ देनेसे रक्तस्राव, उबाक, वमन और अरुचि दूर होते हैं तथा क्षुधा प्रदीप्त होती है। ज़ीराको शास्त्रमें उष्ण माना है। फिर भी रक्तपित्त रोगमें लाभ पहुँचाता है, ऐसा अनुभवमें आया है।

२१. फिटकरीका फूला ३ से ६ रत्ती ३-३ माशे मिश्रीमें मिलाकर देनेसे रक्तपित्त, रक्तवमन और राजयक्ष्माकी भयङ्कर वमनका सत्वर निवारण होजाता है।

२२. सत्यानाशीके बीज ३ माशेको जलमें मिलाकर खरल करें। फिर ४ माशे नींबूका रस और १ छटांक जल मिलाकर पिला देवें। इस तरह दिनमें ३ समय पिलानेसे ऊर्ध्व और अधो रक्तपित्त, दोनोंकी एक ही दिनमें निवृत्ति होजाती है। यह उपाय ३-४ दिनतक करते रहना चाहिए।

२३. राल ३ रत्तीको १ माशा मिश्रीके साथ मिलाकर जलके साथ दिनमें ३ समय देनेसे कफके साथ आता हुआ रक्त बन्द हो जाता है।

२४. ताज़ा धनियाँ २ तोलेको जलके साथ पीस छानकर पिला देनेसे रक्त-वमन सत्वर बन्द हो जाती है।

२५. सांपकी काँचली १ माशा और किशमिश ४ तोले मिला खरल करके ६ मोदक बनावें। प्रातः-सायं १-१ शीतल जलके साथ देनेसे सब प्रकारके रक्तपित्तकी निवृत्ति होती है।

२६. गोदन्ती भस्म २ रत्ती, राल २ रत्ती, जसद भस्म १ रत्ती और मिश्री १ माशा मिलाकर आँवलोंके जलके साथ सेवन करानेसे अधो और ऊर्ध्व रक्तपित्त तथा रक्तप्रदरकी निवृत्ति होती है।

नाकसे रुधिर गिरनेपर

१. आँवलोंको घीमें भून, काँजीमें पीस शिरपर लेपकर देनेसे नासास्रावकी निवृत्ति होजाती है। जिस तरह नदियोंका जलप्रवाह बांधद्वारा रुक जाता है, उस तरह इस प्रयोगद्वारा रुधिरप्रवाह सत्वर शमन होजाता है।

२. मिश्री मिला हुआ जल, बकरीका कच्चा दूध, द्राक्षासव, दूधके मक्खनका घी या ईखका रस नाकसे पिलानेसे रक्तस्राव शमन हो जाता है।

३. अनारके फूल, दूब, आमकी गुठलीकी गिरी या प्याज़, इन चारमेंसे किसी एकका रस सुँघानेसे रक्त बन्द हो जाता है।

४. गोबर या घोड़ेकी लीदका रस सुँघानेसे तत्काल रक्तस्राव बन्द होजाता है।

५. अनारके फूलोंका स्वरस और दूबका रस मिलाकर सुँघानेसे अथवा लाखके जल और हरड़को भिगोकर निचोड़े हुए जलको सुँघानेसे रुधिर त्रिदोषज हो, तो भी निःसंदेह उसी समय बन्द हो जाता है।

६. लजवन्ती, धायके फूल, मोचरस या लोधके जलका नस्य करानेसे रक्त बन्द हो जाता है।

७. कहेरवा (तृणकांतमणिपिष्टी) सुँघाने और ४-४ रत्ती दिनमें ३ बार जलके साथ सेवन करानेसे रक्तस्राव दूर हो जाता है। मुख, गुदा, मूत्रेन्द्रिय, इन सब स्थानोंके स्रावमें यह लाभदायक है।

८. कलमीशोरा सिरकेमें पीस शिरपर लगानेसे नाकसे रक्त गिरना बन्द होजाताहै।

९. नींबूके रस या सिरकेकी पिचकारी लगानेसे रक्तस्राव बन्द होजाता है।

१०. फिटकरीका चूर्ण सुँघानेसे रक्तस्राव रुक जाता है।

११. तृणकान्तमणिपिष्टी और सोनागेरूको मिला दूध या जलके साथ दिनमें ३ समय देनेसे नासिका, मुख, गुदा, मूत्रेन्द्रिय आदिसे होने वाला रक्तस्राव बन्द होजाताहै।

१२. तार्पिनके तैलकी वाष्प सुँघानेसे या स्प्रेद्वारा छिड़कनेपर रक्तस्राव शमन हो जाता है।

१३. बर्फके जलकी पिचकारी लगानेसे रक्तका रोध होजाता है।

१४. मुलतानी मिट्टी, गेरू और आँवलोंको जलमें पीस शिरपर लेप करनेसे नकसीर बन्द हो जाता है।

१५. लोकी (घीया) का रस शिरपर छिड़कने या लोकीका कल्क शिरपर रखनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

१६ नींबू, सन्तरे या केवड़ेका शर्बत, बर्फ और जल मिलाकर पिलानेसे दाह और बेचैनीसह रुधिर गिरना तत्काल बन्द होजाता है।

१७. यदि रक्त किसी भी उपायसे न रुक सके, तब जिस ओरसे रक्त आता

हो, उस ओरकी नासा गुहा (Nasal Cavity) में सिरके या इतर औषधिमें भिगोये हुए लिएटको दृढ़तापूर्वक दबा देना चाहिए।

उपर्युक्त क्रियाके लिये तर्जनी अंगुलीको मुँहमेंसे ऊपर, पश्चात् भागमें रहे हुए नासा पश्चिम द्वार (Posterior Naris) में प्रवेश कराना चाहिए। फिर कपड़ेकी लम्बी पट्टी (Lint) को नासापुरो द्वार (AnteriorNaris) मेंसे प्रवेश करा, फिर पश्चिम द्वारके ऊपर रहे हुए नासा विवरमें ठोंस कर(बाहर निकल न सके उस तरह सम्हालपूर्वक) उसे बन्द कर देना चाहिए।

इस क्रियाके लिये पहले नासा पुरो द्वारसे केथेटर या इतर यन्त्रके अग्रभागपर सूत (डोरी) बांधकर प्रवेश कराया जाता है। फिर नासापश्चिम द्वारसे खेंचकर सूतके सिरेको मुँहमेंसे बाहर लाना चाहिए और पट्टी या रुईकी छोटी-सी पोटलीकर उस डोरीके बीचसे दृढ़ बांध लेवें। पश्चात् नासिकामेंसे यन्त्रको बाहर निकाल लेवें और उस सूतकी डोरीके बीचमें बंधी हुई पोटलीको बलपूर्वक नासा गुहामें जितने दूर होसके उतने दूर दबा देवें। बादमें डोरीके दोनों सिरे (नाक और मुँहमें बाहर रहे हुए) को एक साथ बांध देवें और नाकमें रही हुई डोरीको खेंच फिर नाकके भीतर रुई या लिएटको ठोंसकर भर देवें। इस बन्धनको शनैः-शनैः २४ घण्टेमें खोलें। तत्पश्चात् भी रोगीको २४ घण्टेतक पूर्ण विश्राम लेनेकी सूचना करें। नाकसे छींकनेका निषेध करें। भोजनमें दूध या फलोंका रस ही देवें अथवा सादा, लघु, शीतल और अनुत्तेजक भोजन देवें।

मूत्रेन्द्रियसे रक्तस्राव होनेपर

१. पञ्चतृणमूल २ तोले, बकरीका दूध १६ तोले और जल १२८ तोलेको मिला दुग्धावशेष क्काथकर पिलानेसे मूत्रके साथ आनेवाला रक्त बन्द होजाता है।

२. शतावरी और गोखरूके साथ या शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी और माषपर्णीके साथ दूध और जल मिला दुग्धावशेष क्काथकर पिलानेसे रक्तस्राव निवृत्त हो जाता है।

३. बकरीका दूध या अनारके फूलोंका रस और मिश्री मिलाकर उत्तर-बस्ति देनेसे रुधिर रुक जाता है।

रक्तपित्तशामक सिद्ध प्रयोग

१. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—मौक्तिक पिष्टी, वैडूर्यभस्म, सुवर्णमाक्षिक और प्रवालपिष्टी (हल्दी, गेरू और बकरीके दूधके साथ), लोह भस्म (बकरीके दूध या ह्रीबेरादि क्काथके साथ), संगजराहत भस्म, तृणकांत-मणि पिष्टी, बोलपर्पटी (प्रथम-विधि), चन्द्रकला रस, बोलबद्धरस, एलादिवटी,

च्यवनप्राशावलेह, दुर्वाद्यघृत, वासावलेह, कुष्माण्डावलेह, उशीरासव, पर्पटादि क्काथ और ह्रीबेरादि क्काथ, ये सब हितावह हैं।

मौक्तिक पिष्टी—ऊर्ध्व और अधो रक्तपित्त,किसी भी हेतुसे होनेवाला रक्तस्राव, सुज़ाक या इतर हेतुसे होनेवाला मूत्रदाह, ग्रीष्म ऋतुसे होनेवाला रक्तस्राव और आमाशयप्रदाह आदि सब विकारोंपर निर्भय और उत्तम औषधि है।

वैडूर्य पिष्टी—पित्तजन्य दाह, क्षयके कीटाणु और दोनों मार्गके रक्तपित्तोंकी निवृत्ति करती है।

सुवर्णमाक्षिक और प्रवालपिष्टी—अति सौम्य औषधि हैं। ऊर्ध्व रक्तपित्त में विशेष हितकर हैं। पथ्यमें केवल बकरीका दूध देनेपर तीव्र प्रकोपको सत्वर दबाती है और आमाशयके पित्तकी अम्लता तथा तीक्ष्णताको कम करती है।

लोहभस्म—हृदयकी घबराहट, रक्तकी कमी और निर्बलतापर विशेष हितकर है। लोहभस्म आँवले, पीपल और मिश्री मिलाकर सेवन करानेसे रक्तपित्त, अम्लपित्त, पित्तविकार या वातविकारसे उत्पन्न रोग नष्ट होते हैं। शास्त्रकारोंने इस अनुपानके साथ लोह मिलानेको आमलक्यादि लोह और रक्तपित्तान्तक लोह संज्ञा दी है।

संगजराहत भस्म—स्त्रियों और नाज़ुक प्रकृतिवालोंके बार-बार होनेवाले विकारमें अति लाभदायक है।

तृणकान्तमणि पिष्टी—रुधिरस्रावको सत्वर बन्द करती है। यह औषधि निर्दोष है। इसके सेवनसे शिरदर्द पीड़ित अनेक मनुष्योंके मस्तिष्कमेंसे चौथाई इञ्चके लम्बे अनेक कृमि नासिकासे गिरकर नासा रक्तस्राव और शिरदर्द, दोनों दूर हुए हैं। देहके ऊर्ध्व या अधो किसी भी द्वारसे गिरनेवाले रक्तको रोकनेमें यह आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाती है।

बोलपर्पटी और बोलबद्ध रस—अधो रक्तपित्त, गुदा और मूत्रेन्द्रियसे जानेवाला रक्त (रक्तपित्त, अर्श या रक्तातिसारके हेतुसे) एवं नाकसे गिरनेवाले रक्तपर भी लाभदायक है।

चन्द्रकला रस—सब प्रकारके रक्तपित्त, ऊर्ध्व और अधो किसी भी द्वारसे रक्त गिरना, रक्तप्रदर, रक्तवमन, सबको दूर करता है। ग्रीष्म ऋतुमें भी शान्तिदायक है। सामान्य अनुपान ज़ीरा और मिश्री है। मूत्रमें रक्त जाता हो, तो गोखरू, धमासा और धनियाँका हिम देवें। नासिकासे रक्तस्रावपर उशीरासव या बकरीके दूधके साथ तथा रक्तप्रदरमें अशोकारिष्ट या उशीरासवके साथ दिनमें दो बार देते रहें। मूत्राशय या मूत्रनलिकामें दाह होनेपर ब्राह्मी, सारिवा और पित्तपापड़ाके शीतकषायके साथ देना चाहिए। यह रसायन रक्तपित्त रोगीके लिये अमृत रूप है। चन्द्रकला रस चन्द्रकी कलाके समान शीतल होनेपर भी जठराग्निको मन्द नहीं करता। इस रसायनसे सन्निपातके पित्तप्रकोपजन्य-प्रलापके भी शमन होनेके दृष्टान्त मिले हैं।

वासावलेह—रक्तपित्त, क्षय और दारुण कासको नष्ट करता है।

कुष्माण्डावलेह—अम्लपित्त, दाह और रक्तपित्तको दूर करता है।

च्यवनप्राशावलेह—क्षय, उरःक्षत और निर्बलतासह रक्तपित्तको निवृत्त करता है।

दुर्वाद्य घृत—औषध रूपसे और भोजनके साथ दिया जाता है। यह ऊर्ध्व रक्तपित्त, अधो रक्तपित्त, रक्तार्श, रक्तप्रदर, सबको शान्त करता है।

पर्पटादि क्वाथ—रक्तपित्त और पित्तज्वरको दूर करता है।

ह्रीबेरादि क्वाथ—तीव्र रक्तपित्तमें सत्वर लाभदायक है। ऊर्ध्व रक्तपित्तके लिये एक और पाठ रक्तपित्त चिकित्सामें पहले दिया है।

एलादिवटी—अति सौम्य है। बार-बार होनेवाले रक्तस्रावमें दीर्घकालतक सेवन करानेमें हितकर है। क्षय, उरःक्षत और मन्द ज्वरमें भी हितकर है।

उपर्युक्त प्रयोगोंमेंसे सगर्भाको सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवालपिष्टी, मौक्तिकपिष्टी, तृणकान्तमणि पिष्टी, चन्द्रकला रस, उशीरासव, वासावलेह, वासा स्वरस, एलादिवटी, दुर्वाद्यघृत, ह्रीबेरादि क्वाथ, च्यवनप्राश आदिका सेवन निर्भयतापूर्वक कराया जाता है।

२. रसतन्त्रसार द्वितीय-खण्डमें आयेहुए प्रयोग—रक्तपित्तान्तक रस त्रिदोषज रक्तपित्तमें, अर्केश्वर रस कफरक्तज विकारपर और ज्वरविष, अपथ्यादिसे उत्पन्न रोगपर रसामृत रस लाभदायक है।

३. वासाकुष्माण्ड खण्ड—उत्तम पके हुए सफेद पेठेको छील बीज निकाल घीयाकससे कसकर २०० तोले लेवें। गोघृत ६४ तोले, अडूसेकी जड़ ६४ तोले, शक्कर ४८ तोले, नागरमोथा, आँवला, वंशलोचन, भारंगी, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायचीके दाने, ये ७ औषधियाँ १-१ तोला, एलवालुक (अभावमें नेत्रवाला), सोंठ, धनियाँ, कालीमिर्च, ये ४ औषधियाँ ४-४ तोले, पीपल १६ तोले और शहद ३२ तोले लेवें। पेठेको निचोड़कर रस अलग रक्खें। फिर धूपमें थोड़ा सुखा घीमें मन्दाग्निपर भून लेवें। अडूसाकी जड़को १६ गुने जलमें मिला चतुर्थांश क्वाथ करें और काष्ठादि औषधियोंको पीसकर बारीक चूर्ण करें। फिर क्वाथको छान पेठेका रस, शक्कर और भूना पेठा मिला अवलेह समान बना लेवें। तैयार होनेपर नीचे उतार काष्ठादि औषधियोंका चूर्ण मिलावें और शीतल होनेपर शहद मिला लेवें। मात्रा-१ से २ तोलेतक दिनमें २ बार बकरीके दूधके साथ सेवन करानेसे कास, श्वास, क्षय, हिक्का, रक्तपित्त, हलीमक, हृद्रोग, अम्लपित्त और पीनस आदि रोग नष्ट होते हैं।

नये तीव्र विकारमें—प्रवालपिष्टी या तृणकांतमणि पिष्टी दिनमें ४ समय देवें। अनुपान वासावलेह, वासास्वरस, अमृतासत्व, उशीरासव, ह्रीबेरादिक्वाथ या कुष्माण्डावलेह।

योनिमें दाह, खाज और स्राव शमनके लिए—शत धौत घृतका फोहा रखना चाहिए। अंजन, नस्य, पान, मर्दन, बस्ति आदि कार्यके लिये—दुर्वाद्यघृतको प्रयोगमें लावें।

मालिशके लिये—दुर्वाद्यघृत, चन्दनादि तैल, चन्दनबलालाक्षादि तैल, इनमें-से अनुकूल औषधिको प्रयोगमें लावें।

मन्द-मन्द ज्वर भी रहता हो तो— सुवर्णमालिनीवसंत या लघुमालिनीवसंत के साथ ह्रीबेरादि क्वाथका सेवन करावें अथवा रक्तपित्तान्तक रस देवें।

कफ वृद्धि, श्वास, स्वरभंगसह रक्तपित्तपर—अभ्रिरसके साथ वासा-वलेहका सेवन करावें अथवा चन्द्रकलारस, तालीसपत्रके चूर्ण, वासापत्रके स्वरस और शहदके साथ देवें।

पथ्यापथ्य

पथ्य—अधोगत रक्तपित्तमें वमन, ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें विरेचन, द्विमार्गी रक्तपित्तमें लङ्घन, पुराना-शालि और साँठी चावल, कोदों, काँगनीके चावल, नीवार धान्य, जौ, प्रशातिका (लाल नीवार) मूँग, मसूर, चने, अरहर, मोठ, चिङ्गर मछली, बर्मि मछली, खरगोश, कबूतर, हिरन, काले हिरन, लवा, शरारि पक्षी, परेवा, बतक, बगुला, भेड़, बारहसिंगा और तीतर, इन पशु-पक्षियोंका मांस, कषाय वर्गकी सब औषधियाँ आगे लिखी हुई, गोदुग्ध, बकरीका दूध, घी, भैंसका घी, कटहल और चिरौंजी आदि पथ्य हैं।

केला, नाड़ीका शाक, चौलाई, परवल, बेंतका अग्र भाग, बड़ी, पक्की अदरक, पक्का कुष्माण्ड, पक्के तालफल, उसके बीज और जल, अडूसा, मीठी कन्दुरी, अनार, खजूर, आँवले, सौंफ, नारियल, कशेरू, सिंघाड़े, भिलावा, पक्का कैथ, मसींड़े, फालसा, चिरायता, मीठे और कड़वे नीमके पत्तोंका शाक, लौकी, तरबूज़, खीलोंके सत्तू, अंगूर, किशमिश, मिश्री, शहद, ईखका रस, ईखके रसका पदार्थ, शीतल जल, शीतल झरनोंका जल, शीतल जलका सिंचन, जलमें प्रवेश कर स्नान करना, शतधौत घृतकी मालिश, शीतललेप, शीतल वायु, चन्दन, चाँदनी और मनको प्रसन्न करने वाली मधुर वार्त्तालाप, ये सब पथ्य कहे हैं।

इनके अतिरिक्त फुहारेवाले बाग और शीतल गुफाओंमें निवास, वैडूर्य, मोती आदि मणियोंकी मालाओंका धारण, केले, कुमुद और कमल, तीनोंमेंसे एक दो या तीनोंके पत्तोंपर शयन, रेशमी वस्त्र धारण, शीतल बागोंमें विश्राम, प्रियंगू, चन्दनके लेपवाली रूपवती युवतियोंसे आलिङ्गन, खिले हुए कमलवाले नदी या तालाबके किनारे पर निवास, चाँदनीमें बैठना, बर्फके समान शीतल कन्दराओंमें रहना, पर्वतके शीतल झरनोंका जलपान, कानको प्रिय हो ऐसे गीत और वाद्योंका श्रवण, निर्मल जल और कपूर, ये सब पदार्थ रक्तपित्त रोगीके लिये भैषज्य रत्नावलीकारने मित्र रूप कहे हैं।

इनके अतिरिक्त सफेद मटरका यूष, करेला, सेमलके फूल, गूलरके पक्के फल (अन्तु निकाला हुआ), गूलरके मूलका जल, शंखके जीव और कछुवेका मांस, घृत मिली हुई यवागू, संतरा, मीठा नींबू, मोसम्मी, सेम, लहेसवा, बड़के अंकुर, चिरौंजी, नारियलका जल, गरम करके शीतल किया हुआ जल, मुलहठी, महुआ, कचनारके फूल तुरई, पीपल और कोमल फूलोंकी शय्या, इत्यादि भी पथ्य माने जाते हैं।

भोजन, दूध या जल जो कुछ दिये जायँ, वे सब शीतल करके देना चाहिए। इन पथ्य पदार्थोंमें से भी कोई पदार्थ उपद्रव भेदसे या स्वभावसे अनुकूल न रहता हो, तो नहीं देना चाहिए।

तीव्र प्रकोपमें रोगी केवल बकरीके दूधपर रह जाय, तो चिकित्सासे सत्वर लाभ पहुँचता है। संक्षेपमें जो औषधि, आहार और विहार रक्त और पित्तके प्रकोपको शमन करनेवाले हों, वे सब इस रोग में हितकर माने जाते हैं। इस रोगमें उपवास उनको कराना चाहिए कि जिनकी देहमें बल, मांस और अग्निबलका क्षय न हुआ हो।

सगर्भा, वृद्ध, बालक, रूक्ष और अल्प बलवालेको वमन या विरेचन नहीं कराना चाहिए।

मंदाग्निवालों को दाड़िम, नींबू और आँवलेकी खटाई दी जाती है। कफानुबंध रक्तपित्तमें शाक और यूष तथा वातानुबंध रक्तपित्तमें मांसरस अति हितकर है। घीसे भुने शाक हितकर हैं; (तैलवाला शाक लाभदायक नहीं है)। लङ्घन करनेवालों को सफेद मटरका यूष, मिश्री और चावलोंका सत्तू देवें या इसके साथ मांस स देवें। वात प्रबल हो, तो यवागू नहीं देनी चाहिए, मूँगका यूष देवें।

लघु पञ्चमूलके क्वाथमें पेया बनाकर गुदद्वारसे जानेवाले अधो रक्तपित्त रोगीको देवें। पेया बनानेकी विधि चिकित्सातत्त्व प्रदीप प्रथम-खण्ड में लिखी है।

दुग्धके लिये भगवान् पुनर्वसु चरकसंहितामें कहते हैं कि—

छागं पयं स्यात्प्रथमं प्रयोगे गव्यं शृतं पञ्चगुणे जले वा।
सशर्करं माक्षिकसंप्रयुक्तं विदारीगन्धादि गणैः शृतं वा॥

रक्तपित्त विकार शमनार्थ बकरीका दूध अति उत्तम है। गायका दूध देना हो, तो ५ गुना जल मिला दुग्धावशेष रहनेतक उबाल मिश्री व शहद मिलाकर देवें, अथवा विदारीगंध आदि गणकी औषधिके क्वाथके साथ सिद्ध करके देना चाहिए। विदारीगंधादि गणका वर्णन औषधगुणधर्म विवेचन में दिया है।

अथवा (१) मुनक्का, (२) नागरमोथा, (३) खरैंटीमूल, (४) गोखरू (५) जीवक, (६) ऋषभक, (७) शतावरी और गोखरू, (८) शालपर्णी, पृष्ट पर्णी मुद्गपर्णी और माषपर्णी, तथा (९) मुलहठी, इन ९ प्रकारकी औषधियोंमेंसे किसी एकके क्वाथके साथ दूध सिद्धकर पिलाना चाहिए। जीवक, ऋषभकसे दूध सिद्ध करनेपर

घी और मिश्री मिला लेवें तथा शेष क्वाथका उपयोग करें, तो उनके साथ मिश्री और शहद मिला लेवें।

लघु पञ्चमूलमें वातघ्न, मुनक्कामें पित्तशामक; नागरमोथामें कफहर और ज्वरहर। खरैंटीमें मूत्रातिसारशामक और मूत्रकृच्छ्र नाशक। गोखरूमें मूत्राशयशोधक और पौष्टिक। पर्णीचतुष्टयमें बलवर्धक, वातहर और मूत्रल तथा मुलहठीमें उपतापशामक और कफघ्न आदि गुण रहे हैं। इन गुणोंकी दृष्टिसे सब क्वाथोंके साथ उबाले हुए दूधके गुणों में कुछ अन्तर पड़ता है। जिस गुणकी अधिक आवश्यकता हो उसका उपयोग करना चाहिए।

कषायवर्ग—(सुश्रुत संहिता सूत्रस्थानके आधारसे)।

१. न्यग्रोधादिगण—बड़, गूलर, पीपल, पिलखन, महुआ, आमड़ा, अर्जुन, आम, कोशाम्र, चोरकपत्र (लाखका वृक्ष), दो प्रकारके जामुन, चिरौंजी, मुलहठी, रोहिणी (काश्मीरी), बेंत, कदम्ब, बेर, तेंदू, शल्लकी (शालई) लोध, पठानी लोध, भिलावा, पलाश और पारस पीपल, ये २५ औषधियाँ न्यग्रोधादि गण की कहलाती हैं। यह गण व्रणके लिये हितकारक, संग्राही, टूटे हुए को सांधनेवाला, रक्तपित्तनाशक, दाहशामक, मेदहर और योनिदोषहर हैं।

२. अम्बष्ठादिगण—अम्बष्ठा (पाठा), धायके फूल, लजालू, अरलू, मुलहठी, बेलगिरी, लोध, पठानी लोध, पलाश, पारस पीपल और कमल केशर, इन ११ औषधियोंको अम्बष्ठादि गण कहते हैं। इस गणमें पक्व अतिसारशामका, भग्नसंयोजक, पित्तनाशक और व्रणरोपण आदि गुण रहे हैं।

३. प्रियंग्वादिगण—प्रियंगु, लजालू, धायके फूल, नागकेशर, लालचन्दन, कुचन्दन, मोचरस, रसौत, कुंभी (भोजपत्र), काला सुरमा, कमलकेशर, मजीठ और धमासा, इन १३ औषधियोंको प्रियंग्वादिगण कहते हैं। इस गणका गुण अम्बष्ठादि गणके सामन माना गया है।

४. सालसारादिगण—सालवृक्ष (सखुवा), अजकर्ण (बड़ा सखुआ), खदिर, सफेद खदिर, कालस्कंध (विट् खदिर, दुर्गन्धवाला खदिर या गूलर), सुपारी, भोज पत्र, मेढासिंगी, तिनिस, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, शीशम, सिरस, असन (विजयसार), धव, अर्जुन, ताड़, सागोन, कटकरंजा, पूतिकरंज, अश्वकर्ण (राल निकलनेवाला वृक्ष—शालवृक्षकी एक जाति), अगर और पीला चन्दन, इन २३ औषधियोंको सालसारादि गण कहते हैं। इस गणमें कुष्ठ, प्रमेह, पाण्डु, कफ और मेदको नाश करना इत्यादि गुण रहे हैं।

५. हरड़, बहेड़ा, आँवला, शल्लकी (शालई), जामुन, आम, बकुल (मौलसरी), तेंदूके फल, कतकशाक, पाषाणभेद, बड़ वृक्ष के फल, चिल्ली शाक, पालक, कुरचक, शाक, कचनार, जीवन्ती, चौपतियाँ (शिरयारी) आदि शाक-भाजी नीवार आदि

धान्य, मूंग आदि द्विदल धान्य, ये सब कषाय वर्गमें हैं ।

६. बथुवा, पोई, मारिष (सफेद मरसा) चौलाई, नाड़ीका शाक, पटुआ शाक, गोभीके पत्ते, ये सब शाक भी रक्तपित्तमें हितकर हैं ।

इन सबको कषायवर्ग कहा है । ये सब औषध, धान्य आदि रक्तपित्त रोगमें हितकर माने गये हैं ।

मूत्रमार्गसे रक्त जाता हो, तब शतावरी, गोखरू या ४ पर्णीके क्वाथके साथ उबाला हुआ दूध हितकर है अथवा तृण पञ्चमूलको ८ गुने दूध और दूधसे ८ गुने जलमें मिला, दुग्धावशेष क्वाथकर पिलानेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है ।

यदि गुदासे रक्त जाता है, तो दूधको मोचरससे सिद्ध करके देना चाहिए । अथवा बड़के अंकुर या बड़के कोमल पत्ते या नेत्रवाला, कमल और सोंठ, इन तीन औषधियोंको मिलाकर दूधको सिद्ध करें । इनमेंसे किसी एक अनुकूल क्वाथके साथ घीको सिद्धकर पिलाना चाहिए, एवं भोजनमें भी उपयोगमें लेना चाहिए ।

नाकसे रक्त जानेपर शिरपर शीतल पानी छिड़कनेसे रक्तप्रवाह बन्द होजाताहै ।

सामान्य रीतिसे भोजनके लिये पुराना शालि और सांठी चावल गेहूँ, मटर, अरहर, चने, मूंग, मोठ, मसूर, समा और कंगुनीके भातका उपयोग करना चाहिए । इनमें मूँग, मोठ, चने, मसूर, अरहर और मटरका यूष बनवाकर सेवन करावें । (किसी-किसी देशके लिये अरहरका यूष गरम माना जाता है) खटाईके लिये अनार और आँवले तथा नमकके स्थानपर थोड़े परिमाणमें सेंधानमक देते रहें ।

यदि मलावरोध रहता है, तो खरगोशका मांसरस और बथुआका शाक हितकर है, यदि वायुका प्रकोप अधिक है, तो तीतरका मांसरस गूलरके क्वाथमें सिद्ध करके देना चाहिए । अथवा प्लक्ष (पाखर) के क्वाथमें मोरके मांसको पकाकर मांसरस पिलानेसे वातप्रकोप शमन होता है या बड़के अंकुरोंके क्वाथमें मुर्गेके मांसको पका, फिर मांसरस देनेसे सत्वर वातशमन हो जाता है । अथवा बेलछाल और कमलके क्वाथमें बटेर या तीतरके मांसको पकाकर मांसरस देनेसे वातनिवृत्ति हो जाती है ।

यदि रक्त बहुत निकल गया हो, तो जंगलके पशु-पक्षीका रुधिर शहद मिलाकर पिलावें या बकरेका कच्चा यकृत् पित्त सहित ही खिलाना चाहिए ।

रक्तपित्तके रोगीको भोजनके लिये पेया या यूष प्रकृतिके अनुसार देना हो, वह निम्न क्वाथमेंसे एकके साथ बनाना चाहिए ।

१. कमलकेशर, प्रश्नपर्णी और प्रियंगूके क्वाथमें पेया ।

२. सफेद चन्दन, खस, लोध और सोंठ के क्वाथमें पेया ।

३. चिरायता, कुटकी, खस और नागरमोथाके क्वाथमें पेया ।

विशेषतः ऊर्ध्व रक्तपित्तमें ज्वर होनेपर कुटकी मिलाना, न मिलाना या कम करना, यह प्रकृतिको देखकर निर्णय करें । कुटकी मिलानेपर पेया अति कड़वी हो जाती है ।

४. धायके फूल, नेत्रवाला, धमासा और बेलछालके क्वाथमें पेया बना कर देवें।

५. पृश्नपर्णीके क्वाथमें मसूरका यूष।

६. लघु पञ्चमूलके क्वाथमें मूंगका यूष।

७. खरैंटीके क्वाथमें घृत मिला हुआ अरहरका यूष।

८. जंगलके पशु-पक्षियोंके मांसरस, जो शीतवीर्य हैं; इनमें से किसी एकके रसमें यवागू बना शीतलकर शहद-मिश्री मिलाकर देवें। वात प्रकोपके शमन और रक्तवृद्धिके लिये यह हितकर है।

९. उपर्युक्त खरगोश आदि पशु-पक्षियोंका मांसरस, अनारदाने आदि मिला घृतसे छौंक देकर शीतल होनेपर शहद-मिश्री डालकर देना चाहिए।

अपथ्य— चरक संहिताकार कहते हैं कि—

निदानं रक्तपित्तस्य यत् किञ्चित् संप्रकाशितम्।
जीवितारोग्यकामैस्तन्न सेव्यं रक्तपित्तिभिः॥

जो रक्तपित्तके प्रारम्भमें रोग उत्पन्न होनेके हेतुरूप कहे हैं, उनका सेवन जीवन और आरोग्यकी इच्छावाले रक्तपित्तके रोगियोंको नहीं करना चाहिए।

पक्का भोजन, अति तीक्ष्ण, अति चरपरे, खट्टे, नमकीन, उष्ण और रूक्ष भोजन, विरुद्ध भोजन, उड़द, दही, भैंसका दूध, तक्र, हींग, लहसुन, लालमिर्च, सोंठ, गुड़, कुलथी, बैंगन, तिल, सरसों, सरसोंका तैल, क्षार, तेज़ नमक सेम, आलू, खट्टे फल, खट्टे पित्तप्रकोप शाक, कुएँका जल, मल-मूत्रादि वेगोंका धारण, चपलता (जल्दी चलना आदि), दातुनसे दांत घिसना, व्यायाम, हाथी-घोड़े आदिपर बैठना, मार्ग गमन, धूम्र पान (सिगरेट, हुक्का, बीड़ी, चिलम आदि), सूर्यका ताप, अग्निसेवन, रात्रिका जागरण, हृदयमें आघात पहुँचे ऐसा कार्य, शीतल जलसे स्नान, ओसमें बैठना, ज़ोरसे बोलना या गाना, स्वेदन क्रिया, रुधिर निकलवाना, क्रोध करना, ताम्बूल (नागरबेलका पान), मैथुन, शराब इत्यादि अपथ्य हैं।

जलमें बैठकर, स्नान करना (५-१५ मिनटतक बैठना), यह प्रकृति भेदसे हितकर होता है और कभी प्रकृति भेदसे शीतल जलसे स्नान हानिकर भी माना जाता है। जिनको अधिक निर्बलता न आई हो, रोगका वेग तीव्र हो और ज्वर न हो उनको टबमें या जलाशयमें बैठना हितकर है। मन्द ज्वर रहता है और अधिक निर्बलता है, तो स्नान ही नहीं कराना चाहिए।

भैषज्यरत्नावली ग्रन्थमें नलदाम्बु (खसके जल) को अपथ्यके साथ लिखा है। वहाँ पर दूसरा शब्द होगा या ग्रन्थ छापनेमें भूल हुई है, ऐसा अनुमान है अथवा प्रकृतिभेदसे वह किसीको अनुकूल न रहता हो, तो उसका त्यागकर देना चाहिए।

नाक, मुख, कण्ठ और स्वरयन्त्रके भीतरकी रचना
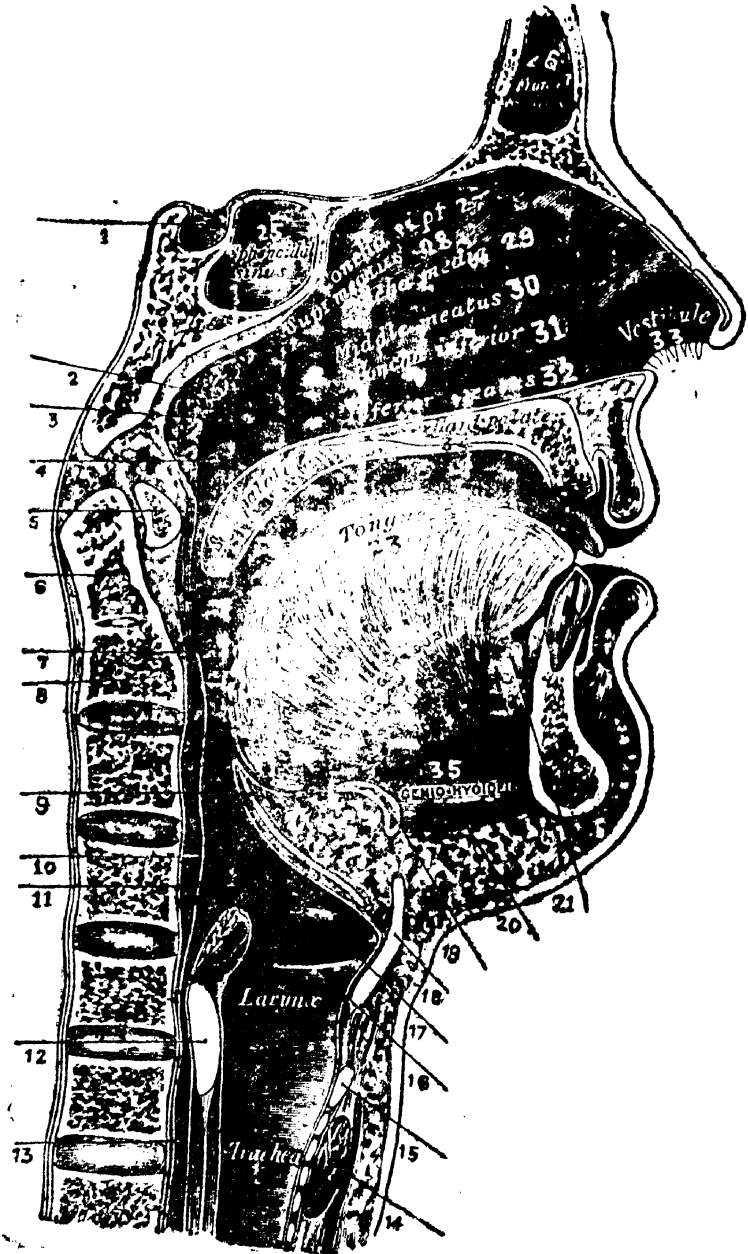
नाक, मुख, कण्ठ और स्वरयन्त्रके भीतरकी रचना

१ पोषणिका ग्रन्थिखात—Hypophysis (Pituitary Fossa).
२ ग्रसनिका ग्रन्थि—Pharyngeal tonsil (Adenoids).
३ श्रुति सुरंग द्वार—Orifice of auditory tube.
४ ग्रसनिका नासागुहा पश्चिम—Nasal part of Pharynx.
५ प्रथमा ग्रीवा कशेरुका—Anterior arch of atlas.
६ द्वितीय ग्रीवा कशेरुका—Dens of axis.
७ ग्रसनिका (गलद्वार पश्चिम)—Oral part of Pharynx.
८ ग्रीवा कशेरुका पिण्ड—Body of axis.
९ अधिजिह्विका—Epiglottis.
१० ग्रसनिका स्वरयन्त्र पश्चिम—Laryngeal part of Pharynx.
११ गोजिह्वा घाटिका पेशीकी पर्त—Aryepiglottic fold.
१२ कृकाटकका पिछला हिस्सा—Cricoid cartilage.
१३ अन्ननलिका—Oesophagus.
१४ ग्रैवेयक ग्रन्थि संधानक—Isthmus of thyreoid gland.
१५ कृकाटक तरुणास्थि—Cricoid cartilage.
१६ स्वरतन्त्री—Vocal fold.
१७ स्वरयन्त्र द्वार—Venticular fold.
१८ अवटुक तरुणास्थि—Thyreoid cartilage.
१९ कण्ठिकास्थि—Hyoid bone.
२० मुखभूमि कण्ठिका पेशी—Mylohyoid muscle.
२१ जिह्वाकी कलामय सेवनी—Frenulum linguae.
२२ जिह्वा चिबुक कण्ठिका पेशी—Genio Glossus muscle.
२३ जिह्वा—Tongue.
२४ कोमल तालु—Soft palate.
२५ जातूक कोटर—Sphenoidal sinus.
२६ ललाट कोटर Frontal sinus.
२७ ऊर्ध्व शुक्तिका—Concha supr.
२८ ऊर्ध्व सुरंग—Supr. Meatus.
२९ मध्य शुक्तिका—Concha media.
३० मध्य सुरंग—Middle meatus.
३१ शुक्तिकास्थि—Concha inferior.
३२ अधः सुरंग—Inferior meatus.
३३ नासाछिद्र—Vestibule.
३४ कठोर तालु—Hard palate.
३५ चिबुक कण्ठिकापेशी—Genio Hyoideus.
३६ स्वरयन्त्र—Larynx,
३७ बृहच्छ्वास नलिका—Trachea.

श्वसनसंस्थान व्याधि प्रकरण

Diseases of The Respiratory System

इस संस्थानमें नासिका, स्वरयन्त्र, श्वासनलिकासह फुफ्फुस और फुफ्फुसावरण, इन ४ यन्त्रोंका समावेश होता है। अतः इस संस्थानके रोगोंमें मुख्य ४ विभाग होते हैं। (१) नासिका विकार, (२) स्वरयन्त्र विकार, (३) श्वास नलिका और फुफ्फुसों की व्याधियाँ (४) फुफ्फुसावरणकी पीड़ा। इन ४ विभागोंमेंसे नासिका विविध विकारोंको ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंके साथ तृतीय-खण्डमें दिया जायगा। शेष ३ अवयवोंके विकार इस खण्डमें दिये हैं।

उक्त ४ अवयवोंके अतिरिक्त इस संस्थानको उदरके स्नायु और महाप्राचीरा पेशीकी सहायता मिलती है। एवं हृदय और मस्तिष्कके कितनेक रोगोंका श्वासोच्छ्-वासपर प्रत्यक्ष परिणाम भी होता है। इन सबके रोगोंका विवेचन तृतीय-खण्डमें यथास्थान किया जायगा।

सारे शरीरके लिये आवश्यक प्राणवायु (Oxygen) को बाहरके वायु-मण्डलमेंसे खिंचना और अपायकारक आंगारिक वायु (Carbon Dioxid) को बाहर निकाल देना, ये दोनों कार्य इस संस्थानद्वारा होते हैं। देहके इतर स्थानोंमें शुद्ध वायुकी प्राप्ति रक्तद्वारा होती है। फुफ्फुसोंमें प्राणवायुसे शुद्ध हुआ रक्त धमनी द्वारा समस्त अवयवोंको निरन्तर मिलता रहता है; और विविध अवयवोंकी क्रियासे उत्पन्नविष आदि तथा आंगारिक वायु मिलनेसे अशुद्ध हुआ रक्त शिराओंद्वारा पुनः हृदयमें होकर फुफ्फुसोंमें शुद्ध्यर्थ सतत आता रहता है। इस तरह फुफ्फुस सर्वदा सतत क्रिया करता रहता है।

इन फुफ्फुसोंके भीतर सामान्यतः नीरोगावस्थामें श्वास लेने और त्याग करनेमें समयका ५:१ अनुपात रहता है। एवं श्वासोच्छ्वासकी ध्वनिका ३:१ जितना अन्तर रहता है। रोगाक्रमण होने पर इस नियमका भङ्ग होजाता है। नियम-भङ्ग होनेपर रक्तकी शुद्धि यथोचित नहीं होती; फिर रक्त और फुफ्फुसोंमें विविध व्याधिके लक्षण प्रकाशित होते हैं।

सामान्यतः स्वस्थावस्थामें स्वासोच्छ्वास संख्या प्रति मिनट शिशुकी ३५; ६ वर्ष तक ३०; १२ वर्ष तक २०; १६ वर्ष तक १८ और युवावस्थामें १६ लगभग हो जाती है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके दो श्वास अधिक चलते हैं।

इस फुफ्फुस प्रधान संस्थानके रोगोंकी निर्णयात्मक परीक्षा करनेके लिये छाती की-दर्शन, स्पर्श, ठेपन और श्रवण परीक्षाकी जाती है। इनके अतिरिक्त वर्त्तमानमें 'क्ष' किरणकी भी सहायता ली जाती है। एवं कफ परीक्षा छातीका माप, वज़न आदि द्वारा भी अनुमान किया जाता है इन सबका विस्तृत विवेचन सिद्ध परीक्षामें किया गया है।

३२. स्वरभेद

कण्ठ बैठ जाना-होर्सनेस-Hoarseness।

रोग परिचय—गला बैठ जानेको स्वरभेद कहते हैं। इस स्वरभेदकी उत्पत्ति स्वरयन्त्रकी विकृति होनेपर होती है। अतः प्रारम्भमें स्वरयन्त्रकी रचना और कार्यका विवेचन करते हैं।

स्वरयन्त्र-(Larynx)-यह आवाज़ उत्पादक-यन्त्र कण्ठके आगेके हिस्सेमें बृहच्छ्वासनलिकाके ऊपर स्थित है। इसकी आकृति मुकुटके समान है। यह तरुणास्थियाँ, सूक्ष्म मांसपेशियाँ और अनेक स्नायु समूह मिलकर बना है। इसमें एक छिद्र नीचे और एक ऊपर है। ऊपरका छिद्र ग्रसनिका (Pharynx) के साथ और नीचेका छिद्र श्वासनलिकाके साथ सम्बन्ध रखता है।

स्वरयन्त्र और उसकी मांस पेशियाँ
(आगेकी ओरसे)
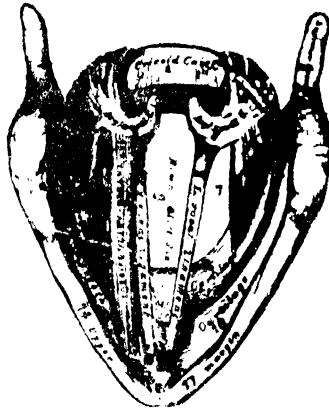
१ कृकाटक-Cricoid cartilage.
२ घाटान्तरिया पेशी-Arytoenoideus.
३ घाटिका तरुणास्थि-Arytenoid Cartilage.
४ पश्चिम कृकाटघाटिका पेशी-Cricoarytoenoideus posterior.
५ घाटिका तरुणास्थि-Arytenoid C.
६ अवटुकका ऊर्ध्व शृंग-Superior Cornu.
७ कृकाटघाटिका पेशी (पार्श्वगा)-Cricoarytoenoideus lateralis.

८ वाम मुख्य स्वरतन्त्री–Left Vocal ligament.
९ स्वरयन्त्रोदर–Rima Glottidis.
१० दक्षिण मुख्य स्वरतन्त्री–Right Vocal ligament.
११ अवटुघाटिका पेशी–Thyreo arytoenoideus.
१२–१५ कृकाटक तरुणास्थि–Cricoid Cartilage.
१३–१६ अवटुक पत्र (तरुणास्थि)–Thyreoid Cartilage.
१४–१७ अवटुक ऊर्ध्वधारा–Upper margin.

इस स्वरयन्त्रमेंसे श्वासोच्छ्वासका आवागमन का (Respiration) और आवाज़का उच्चारण (Phonation), ये दो कार्य होते रहते हैं। यह कण्ठकी अगली ओर मध्यरेखामें और कण्ठिकास्थि (Hyoide bone) के मूलभागसे अवटुकके निम्न प्रवर्धन (Adam's Apple) तक त्वचाके नीचे विदित होता है। यह मांसपेशियोंसे आच्छादित है। इसका ऊर्ध्व शिरा कण्ठिकास्थिके और निम्न सिरा श्वासनलिकासे संलग्न है।

इसकी लम्बाई–चौड़ाई शैशवावस्थामें पुरुष और स्त्रियोंमें निम्नानुसार होती है।

नाप	पुरुष	स्त्री
लम्बाई	४४ मिलीमीटर	३६ मिलीमीटर
अनुप्रस्थ व्यास	४३ ,,	४१ ,,
अनुलम्ब व्यास	३६ ,,	२६ ,,
परिधि	१३६ ,,	११२ ,,

युवावस्था तक पुरुषोंमें स्त्रियोंकी अपेक्षा कुछ अधिक वृद्धि होती है।

अधिजिह्विका–(Epiglottis)–स्वरयन्त्रके ऊपरका द्वार जो कण्ठमें खुलता है, उस द्वारकी रक्षा अधिजिह्विका अस्थि करती है। जल या भोजन निगलनेके समय यह स्वरयन्त्रके द्वारको बन्दकर देती है।

अधिजिह्विका (पिछली ओर से)
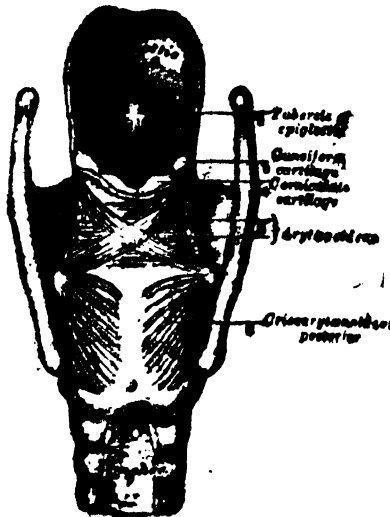
१ अधिजिह्विका–Epiglottis.
२ अधिजिह्विका कूट–Tubercle of epiglottis.
३ कर्णिका तरुणास्थि–Cuniform Cartilage.
४ कोणिका तरुणास्थि–Coniculate Cartilage.
५ घाटान्तरिया पेशी–Arytoenoideus transversus.
६ पश्चिम कृकाट घाटिका–Crico arytoenoideus posterior.
७ बृहच्छ्वास नलिका–Trachea.

स्वरयन्त्रोदर–(Cavum Laryngis or cavity of the Larynx)–तरुणास्थि, छोटी मांसपेशियाँ और पतली विविध स्नायुमय पट्टियाँ मिलकर यह स्थान बना है। इसके भीतर पतली श्लैष्मिक-कला लगी है। उसमेंसे पतले प्रवाही श्लेष्मका स्राव होता है। इस स्वरयन्त्रोदरका ऊर्ध्वद्वार कण्ठमें खुलता है। इस द्वारका रक्षण अधिजिह्विका तरुणास्थि करती है।

स्वरतन्त्रियाँ–(Vocal cords)–स्वरयन्त्रके भीतर पोलेभाग में तीरके समान आगे पीछे फैली हुई कोमल और पतली ४ पट्टी (Bands) अवस्थित हैं। इनमें दो मुख्य और दो गौण हैं जो ऊपरमें हैं, और स्वरयन्त्रकी मध्यरेखासे कुछ दूर हैं, वे गौण तन्त्री हैं। इनके नीचे और मध्यरेखाके बिलकुल समीप तन्त्री अवस्थित हैं।

विविध व्यापारोंके अनुरूप तन्त्रीद्वारके आकार और नापमें अन्तर हो जाता है। इस स्वरयन्त्रमेंसे वायुका आवागमन होनेसे शारीरिक दो मुख्य क्रियाओंकी सिद्धि होती है। श्वासोच्छ्वास और शब्दोच्चारण। जब शान्तिपूर्वक श्वसन क्रिया चलती है; तब तन्त्रीद्वार त्रिकोणाकार और दीर्घश्वास ग्रहण करनेपर लगभग गोल हो जाता है।

इस तन्त्रीद्वारकी कोमल त्वचामें प्रदाह, कफ लग जाना, व्रण हो जाना आदि विकृति होनेपर स्वरभंग हो जाता है। क्षय और उपदंश रोगमें प्रदाह होकर व्रण हो जाता है।

स्वरयन्त्रपर ठेपन करनेपर सौषिर ध्वनि, उत्पन्न होती है मुँह खुला रखने पर आवाज़ उच्चतर ग्रामविशिष्ट होजाती है और मुँह बन्द रखनेपर गम्भीर आवाज़ होती है। स्वरयन्त्र और बृहच्छ्वासनलिका पर ध्वनिवाहक यन्त्रसे सुनने पर श्वासोच्छ्वासकी उच्च-वेणु ध्वनि (Laryngotracheal respiration) सुनने में आती है।

स्वरभेद निदान—बहुत ज़ोरसे बोलना, विष आदि पदार्थोंका सेवन, ऊँची आवाज़से पढ़ना, कण्ठ आदि प्रदेश पर चोट लगना या अन्य कारणोंसे जब स्वरयन्त्रसे सम्बन्ध वाले वात आदि दोष प्रकुपित होते हैं, तब स्वरयन्त्रके छिद्रोंमें प्रवेशकर आवाज़को बैठा देते हैं।

स्वरभेद प्रकार—इस स्वरभेदमें दोषभेदसे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज; क्षयज और मेदज, ऐसे ६ भेद हैं।

(१) वातज स्वरभेद लक्षण—कठोर, बैठी हुई आवाज़, तालु और कण्ठमें चुभनेके समान वेदना, नेत्र, मुख, मल और मूत्रमें श्यामता तथा मलमूत्रावरोध रहना आदि।

(२) पित्तज स्वरभेद लक्षण—बोलनेमें वेदना, कण्ठ और तालुमें दाह तथा मुँह, नेत्र, मल-मूत्र-सब पीले हो जाना आदि।

(३) कफज स्वरभेद लक्षण—रोगी मंद स्वरसे धीरे-धीरे बोलता है। कंठ में कफ खुरखुर करता है तथा रात्रिको थोड़ा और दिनको अधिक बोल सकता है।

(४) सन्निपातज स्वरभेद लक्षण—इस प्रकारमें वात, पित्त, कफ, तीनों के मिश्रित लक्षण होते हैं। यदि रोगीके शब्द समझ में न आवे और रोगका बल अति बढ़ गया हो, तो रोग असाध्य माना जाता है।

(५) क्षयज स्वरभेद लक्षण—नाक और मुँहसे धुँआसा निकलता है, ऐसा रोगीको भास होता है। बोलनेके समय शब्द नष्ट हो जाते हैं। जब इस क्षय जनित रोगमें ओजका क्षय हो जाता है, देहकी कान्ति नष्ट हो जाती है और मुँहसे उच्चारण नहीं होता है, तब रोग असाध्य हो जाता है। यदि विकार क्षयके प्रारम्भकालमें हुआ हो, तो साध्य हो सकता है।

(६) मेदज स्वरभेद लक्षण—मेदज स्वरभेदमें स्वरवह स्रोतोंमें मेद भर जाता है। जिससे रोगी अस्पष्ट बोलता है और देर से बोलता है। बहुधा यह दूसरोंकी समझमें नहीं आता। कण्ठ, ओष्ठ और तालु मेदसे भरे रहते हैं। इस स्वर भेदमें तृषा अधिक लगती है। परन्तु कफजमें तृषा नहीं लगती, यह श्लेष्मज और मेदजमें अन्तर है।

इनके अतिरिक्त भगवान् आत्रेयने रक्तसंचय, कास और पीनससे स्वरभंग होनेका कहा है।

रक्तज स्वरभेद—जब स्वरयन्त्रमें रक्तविबंध होता है, तब तत्काल स्वरभेद हो जाता है। इस विकारसे बोलनेमें कष्ट होता है।

कासजन्य स्वरभेद—जब शुष्क कास तीव्र वेगसे चलती है, तब कण्ठ प्रदेश शुष्क होकर मृत-सा हो जाता है। फिर रोगीसे भलीभाँति बोला नहीं जाता।

पीनसजन्य स्वरभेद—कभी पीनस रोग होनेपर स्वरभेद हो जाता है। उसमें कफवातज लक्षण प्रतीत होते हैं।

असाध्य लक्षण—क्षयसे क्षीण शरीर वाले, वयोवृद्ध और अति दुर्बल मनुष्यका स्वरभेद, बहुत समयका पुराना, जन्मसे होने वाला, मेदस्वीका और सम्पूर्ण उपद्रवों युक्त स्वरभेद, ये साध्य नहीं होते। अष्टाङ्ग हृदय कारने गलगण्ड, स्वरभेद और श्वास रोगको १ वर्ष हो जाने पर असाध्य माना है।

डॉक्टरी स्वरभेद विवेचन

स्वरयन्त्रकी व्याधियोंमें जो लक्षण उत्पन्न होते हैं, वे सब स्वरयन्त्रकी मुख्य

विकृति जन्य है, ऐसा नहीं कह सकेंगे। विविध सार्वाङ्गिक वेदना या इतर स्थानिक पीड़ावशात: स्वरयन्त्र परम्परा विकार ग्रस्त होता है। इसलिये स्वरयन्त्रके लक्षण प्रकाशित होनेपर स्वरयन्त्र और इतर शारीरिक विधानकी परीक्षा कर सच्चे कारणका अनुसंधान करना चाहिये।

कण्ठ स्वर—अनेक कारणोंसे कण्ठ स्वरमें विकृति हो जाती है। कोमल तालुका पक्षाघात या कोमल तालुमें छिद्र हो जानेके पश्चात् नासारन्ध्रमें अवरोध होनेपर आवाज़ उन्मुक्त (Open) होती है। नासार्बुद या प्रतिश्याय आदि हेतुओंसे नासारन्ध्रमें वायुप्रवाह निरुद्ध होनेपर आवाज़ आबद्ध अनुनासिक हो जाती है। अधिक व्याख्यान आदि से आवाज़ बैठ जाती है। इनके अतिरिक्त क्षीण कण्ठस्वर, अधिक अक्षर सहवर्ती स्वर लोप (Aphonia), प्रसनिकामें से उत्पन्न तीक्ष्ण स्वर, अस्वाभाविक मोटी आवाज़ आदि भेद होजाते हैं।

स्वरयन्त्रकी पीड़ाके निर्णयार्थ कण्ठ स्वर आदि सब बातोंपर लक्ष्य देना चाहिये। स्वरयन्त्रका प्रदाह चाहे उतना सामान्य हो, फिर भी कण्ठस्वरमें विकृति हो जाती है। चाहे स्वरभंग हो या अशुद्ध अपूर्ण उच्चारण हो। आशुकारी प्रदाह होनेपर स्वरलोप होजाता है। रोगीके बोलनेपर ऐसा भास होता है कि, कानके पास फिसफिस आवाज़ हो रही है, इसे स्वरलोप कहते हैं। स्वरोच्चारणमें कष्ट होनेपर तथा उसके साथ कण्ठ स्वरके स्वभावमें परिवर्त्तन होजाने पर उसे स्वरकृच्छ्रता (Dysphonia) कहते हैं।

चिरकारी स्वरयन्त्रप्रदाह होनेपर स्वरलोप या स्वरकृच्छ्रता उपस्थित होती है। एवं स्वरयन्त्रमें क्षत, स्थूलता, अप्राकृत वृद्धि आदि विकारों में यदि स्वरतन्त्री आक्रांत होती है, तो कण्ठस्वर फट जाता है और फिसफिस उच्चारण होने लगता है; अथवा स्वरलोप हो जाता है। इनके अतिरिक्त द्वारका शोथ और स्वरोत्पादक मांस पेशीका पक्षाघात होनेपर स्वरलोप होजाता है।

कृकाटक अवटु मांस पेशीका पक्षाघात होनेपर श्वासोच्छ्वासके समयमें स्वर तन्त्री बाहरकी ओर संचालित नहीं होती। श्वासोच्छ्वासके समयमें पक्षाघात ग्रस्त स्वरतन्त्री मध्यरेखाके समीप रहती है।

उभय स्वरतन्त्रियोंका पक्षाघात होनेपर दोनोंके बीचमें सामान्य कथन मात्रका अन्तर रहता है। इस हेतुसे श्वास ग्रहणमें कष्ट होता है। एवं कृकाटकघाटिका पार्श्विका पेशी और अन्तरस्थ घाटान्तरिया पेशी, सबके आक्षेप और संकोचके हेतुसे इस तरह श्वासकृच्छ्रता उपस्थित हो जाती है।

घाटान्तरिया पेशीका पक्षाघात होनेपर दोनों घाटिका तरुणास्थि परस्पर जुड़ जाती हैं। इनके प्रवर्द्धन (कृकाटकघांटिका पार्श्विका पेशी) परस्पर नज़दीक आजाते हैं; किन्तु उनके पीठ प्रदेश (Base) इस तरह समीप नहीं आते तथा स्वरोच्चारणमें स्वरयन्त्रद्वारके पश्चात् तृतीयांशमें एक त्रिकोण स्थान बन जाता है।

अवटु घाटिकाके पक्षाघातमें स्वरोच्चारण होने पर स्वरतन्त्री कुछ खिंचती है। तन्त्री बाहरकी ओर धनुषके आकारकी बन जाती है। एवं इसकी वियुक्त धारा टेढ़ी हो जाती है। यदि इसके साथ अन्तरस्थ घाटान्तरिया पेशी भी पक्षाघातग्रस्त होती है, तो तन्त्रीमें स्थान अलग रह जाता है; और सम्मुख कृकाटक घाटिका पार्श्विका पेशी बाहरकी ओर धनुषके सदृश बन जाती है।

पार्श्विका और घाटान्तरीया पेशीसमूहका पक्षाघात होने पर स्वरोत्पादनके समय स्वरयन्त्रद्वार मुक्त रहता है; और वह बृहत् त्रिभुजाकार बन जाता है। केवल पार्श्विका कृकाटघाटिका पेशीका पक्षाघात हो, तो स्वरयन्त्र शिखराकारा (Lozenge) बन जाता है।

यदि दोनों ओर स्वरयन्त्र परावर्त्तिनी नाड़ियोंके तन्तुका घात हो जाय, तो स्वरोत्पादनमें और श्वासोच्छ्वासमें स्वर तन्त्रीकी अर्ध मुक्त अवस्था हो होजाने से वह अचल रहती है। मृत्युके पश्चात् स्वरतन्त्रीकी यही अवस्था प्रतीत होती है। एक ओरकी स्वयन्त्र परावर्तिनी (Recurrent) नाड़ीका पक्षाघात होने पर स्वस्थ दिशाकी तन्त्री श्वासोच्छ्वासमें बाहरकी ओर स्वाभाविक रूपसे संचालित होती रहती है। एवं स्वरोत्पादनमें यह घाटिका तरुणास्थिका अतिक्रमण करके अवसन्न तन्त्रीके पास आ जाती है।

कृकाटक अवटुक पेशीका पक्षाघात होने पर स्वरोत्पादनमें स्वस्थतन्त्रीकी अपेक्षा अव सन्न तन्त्री गम्भीर भावसे स्थिर होती है। उत्तरास्वरयन्त्रगा नाड़ियोंका पक्षाघात होने पर पक्षाघात वाली दिशामें अधिजिह्विका अचल हो जाती है। एवं इसकी श्लैष्मिक-कला की स्पर्शानुभूति लुप्त हो जाती है। इस हेतुसे प्रतिफलित क्रिया के अभाववशात: भोजन के निगलनेके समय वह श्वासनलिकामें प्रविष्ट होजाता है और विषम यन्त्रणा उत्पन्न करा देता है। इनके अतिरिक्त जिन-जिन स्थानोंमें स्वरयन्त्र या कण्ठस्वरमें कोई भी विकार होनेकी संभावना न हो, उन-उन स्थानोंमें भी अतिशय दुर्बलता आजानेसे फुफ्फुसोंमेंसे वायुको बाहर निकालनेमें असमर्थता आजाती है, स्वरलोप भी होजाता है।

वेदना—अतिशय तीव्र शूलके सदृश अथवा भारीपन, खुजली और जलनके समान दबाने, बोलने और निगलनेके समय वेदनाकी वृद्धि। कोई-कोई बार वेदना इतनी प्रबल हो जाती है कि, बोलना और निगलना आदि बिल्कुल नहीं होता। आशुकारी स्वरयन्त्रप्रदाहमें वेदना काटनेके समान; किन्तु प्रदाह अपेक्षा कृत मृदु होने पर तथा शुष्क प्रतिश्याय और मण्डल कुष्ठ (Lupus) में स्वरयन्त्रके ऊपर सामान्य वेदना। कर्कस्फोट, राजयक्ष्मा, क्वचित् उपदंश रोगमें और स्वरयन्त्रमें बाह्य पदार्थका प्रवेश होने पर अति प्रबल और तीव्र वेदना। ध्वंसकारक क्षत वर्त्तमान होने पर अत्यधिक और तीक्ष्ण वेदना, यह लक्षण तरुणास्थिके आवरणमें प्रदाह (Perichondritis) का निर्णायक है।

अस्वाभाविक अनुभूति-(Paresthesia)—अपतन्त्रक रोगमें अनेक बार विशेष प्रकारकी व्यथाका अनुभव। जलन, खुजली और गुलगुली अथवा किसी बाह्य पदार्थके भीतर रहने या शीतल वायु लगनेका भास। एवं स्वरयन्त्र भर गया या कण्ठमें कुछ फंस गया है, ऐसी प्रतीति। रोगी बारबार प्रवाही वस्तु के घूंट (Draught) को निगलता रहता है। इस अवस्थाको डॉक्टरीमें ग्लोबस हिस्टेरिकस (Globus Hystericus) कहते हैं। इस अवस्थामें स्वरयन्त्रके किसी भी स्थानमें परिवर्तनकी प्रतीति नहीं होती। यह हिस्टीरियाके इतर लक्षणोंके साथ होता है। किसी प्रकारकी उत्तेजना होनेसे यह अवस्था दूर होती है या बढ़ जाती है। हिस्टीरिया और चित्तोद्वेग विकारमें अस्वाभाविक अनुभव होता है। पाण्डु और हलीमकमें वातवाहिनियोंकी विकृतिके हेतुसे भी यह लक्षण उपस्थित हो जाता है।

आशुकारी स्वरयन्त्रप्रदाहकी प्रथमावस्था और चिरकारी स्वरयन्त्रप्रदाहकी कोई भी अवस्थामें सामान्यतः स्थानिक शुष्कता भासती है। सब प्रकारके स्वरयन्त्रप्रदाह और गलौघ व्याधि (Croup) होनेपर तथा स्वरयन्त्रद्वारमें शोथ और उपदंशजनित अन्तर्भरण होनेपर रोगीको स्वरयन्त्र पूर्ण भरा हुआ या इसपर दबाव आने का भ्रम होता है अथवा बाह्य पदार्थ कुछ भीतर है, ऐसी भावना हो जाती है।

चेतनाधिक्य और चेतनाह्रास—(Hyperesthesia and Anesthesia)—चेतना वृद्धि होनेपर निरन्तर खांसनेकी इच्छा। सामान्यतः स्थानिक उग्रता होनेपर कासोत्पत्ति। कासका आवेग होना, वह अतिशय दुःखदायी। यह वेदनाप्रद अनुभव स्वरयन्त्रके आशुकारीप्रदाह और राजयक्ष्माकी प्रथमावस्थामें होता है। कतिपय स्त्रियोंको मासिकधर्म आनेपर और सगर्भावस्थामें चेतनाधिक्य या चेतनाह्रासकी प्रतीति। चेतनाधिक्य हो जानेपर शलाका (Probe) द्वारा संस्पर्श करनेपर तत्काल निर्णय हो जाता है। चेतनाह्रास होनेपर भोजनका अंश स्वरयन्त्रमें प्रविष्ट होजाता है। श्लैष्मिक-कलाको प्रोबसे संस्पर्श करनेपर अनुभव नहीं होता। हिस्टीरिया, कण्ठरोहिणीजन्य पक्षाघात, स्वरयन्त्रकी उत्तरा वातनाड़ियोंका पक्षाघात, स्वर यन्त्रद्वारका पक्षाघात, मस्तिष्ककी कोमलीभूति अथवा मस्तिष्कसे रक्तस्राव (Cerebral Softening or Haemorrhage), या किसी इतर कारणवशतः बेहोशी (Coma) आनेपर स्वरयन्त्रकी चेतनाका ह्रास हो जाता है।

श्वासकृच्छ्रता और कास—स्वरयन्त्रकी विकृति होनेपर श्वासकृच्छ्रता अथवा कास तथा श्वासग्रहण और श्वास त्यागमें कष्ट।

गिलनकष्ट-(Dysphagia)—स्वरयन्त्रका नाश होनेपर या उसकी पेशियोंके समीप या संयोग स्थान पर आशुकारीप्रदाह होनेपर निगलनेमें अतिकष्ट। स्वरयन्त्रमें क्षयकीटाणु या घातक क्षत वर्त्तमान होनेपर या तरुणास्थिके आवरणका प्रदाह

होनेपर गिलनकष्ट इतना अधिक होता है कि, रोगी मर्यादित दूध आदि प्रवाही भोजन को भी ग्रहण करनेमें असमर्थ होजाता है ।

भोजनका विमार्ग गमन-(Miss swalling)-किसी कारणवश भोजन या जलके निगलनेके समय उसमेंसे कुछ अंश स्वरयन्त्रमें प्रवेशकर जाता है, तब भोजन ऊंछूं चला गया, ऐसा कहते हैं । निगलनेके समय अन्य मनस्क होने या हंसते-हंसते निगलने या अति जल्दी करनेपर स्वस्थावस्थामें भी ऐसा होता है । चेतना ह्रास या वातवाहिनियोंमें वेदना होनेपर यह लक्षण प्रकाशित होता है ।

रक्तस्राव—प्रबल कास या अति बलपूर्वक अस्वाभाविक बूम मारने पर स्वर यन्त्रमेंसे रक्तस्राव होने लगता है । स्वरयन्त्रमें क्षत होनेसे अपेक्षा कृत अधिक रक्तस्राव । विविध प्रकारके रक्तपित्तविकार, प्रलापकज्वर, शीतला और पाण्डुरोग (रक्तमें श्वेताणु-वृद्धि) में सामान्य रक्तस्राव ।

विनियोग--(Co-ordination) विकृति—इस विकारमें अनेक प्रकार हैं । किसी विरोधीके मतका खण्डन करनेके हेतुसे बोलनेपर अधिजिह्विकाका आक्षेप । फिर सामान्य वार्तालापमें अति कष्ट अथवा बोलनेमें बिल्कुल असमर्थ । कभी-कभी श्वासग्रहण क्रिया पूर्ण करनेके लिये स्वरयन्त्रद्वार खुला न रहनेपर श्वासग्रहण करनेके समय श्वासावरोध, एवं सां-सां ध्वनि युक्त श्वास (Stridor) ।

सामान्यतः स्वरयन्त्रकी वेदनामें उपसर्गरूपसे स्वरयन्त्रद्वारका आक्षेप होता है, इसे परिवर्त्तनशील स्वरयन्त्र विकार (Crises Laryngeal) कहते हैं । शाकुन्तगति रोग (लोकोमोटर एटेक्सिया-Locomotor Ataxia) होने पर भी इसी तरह आवेगसंयुक्त आक्षेप दृष्टिगोचर होता है ।

स्वरभेद प्रकार—

१. आशुकारी प्रसेकमय स्वरयन्त्रप्रदाह—Acute Catarrhal Laryngitis.
२. चिरकारी स्वरयन्त्रप्रदाह—Chronic Laryngitis.
३. शोफमय स्वरयन्त्रप्रदाह—Oedematous Laryngitis.
४. क्षयज स्वरयन्त्रप्रदाह—Tuberculous Laryngitis.
५. फिरंगज स्वरयन्त्रप्रदाह—Syphilitic Laryngitis.

(१) आशुकारी प्रसेकमय स्वरयन्त्रप्रदाह

एक्युट केटेर्हल लेरिंजाइटिस

(Acute Catarrhal Laryngitis)

निदान—१ प्रतिश्याय या शीत लगजाना ।

२. अतिबोलना या ज़ोरसे बोलना आदि आवाज़का अति उपयोग ।

३. आशुकारी विशेषज्वर-रोमान्तिका, इन्फलुएन्ज़ा, शीतला आदि ।

४. स्थानिक उग्रता– गैस, गरम गरमपेय, धुआँ, धूल आदि बाह्य वस्तुका प्रवेश आदि ।

इनके अतिरिक्त क्षय आदि रोगोंमें उपद्रव। समीपकी इन्द्रियोंके प्रदाहका विस्तार।

संप्राप्ति—कण्ठवीक्षण यन्त्र (Laryngoscope) से देखनेपर घण्टिका, तरुणास्थि और अधिजिह्विकाकी पर्त्त (Aryepiglottidean Folds) रक्त-संग्रहमय, तन्त्रीलाल और शोथमय, क्षीण संचलनशीलता, कुछ कफ।

लक्षण—

बच्चोंके सामान्य आक्रमणमें –(१) स्वरयन्त्रमें हर्ष (गुदगुदी), शीतल वायुसे उग्रता आना; (२) भारी आवाज़; (३) शुष्ककास, झागदार कफ; (४) स्वाभाविक लक्षण मंद।

गम्भीर आक्रमण—लगभग स्वरलोप । निगलने में कष्ट। स्वरयन्त्रपर वेदना । क्वचित् श्वासावरोध ।

बालकोंमें—अतिगंभीर । आक्षेप और शोथसे श्वासावरोध ।

अभिघातज प्रबलरोग होनेपर पूर्वोक्त लक्षणोंके साथ कम्प और ज्वर । मुख-मण्डल लाल, किसीका तेजस्वी, किसीका मलिन । नाड़ी क्षीण और अनियमित, अत्यन्त बेचैनी आदि भी। फिर श्वासकृच्छ्रतावशतः मृत्यु । विशेषतः स्वरतन्त्रीके आक्षेपवशतः या मांस-पेशियोंका पक्षाघात होनेपर श्वासावरोध होकर रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

बालकोंमें विलक्षण ज्वरसह प्रारम्भ। जिह्वा श्वेत वर्णके लेप युक्त, नाड़ी वेगवती और कठिन, त्वचा उष्ण और शुष्क, मुख-मण्डल लाल, श्वासोच्छ्वासमें कष्ट, स्वरभङ्ग, कर्कश या शब्द रहित कास या बैठी हुई आवाज़ वाली कास और अत्यन्त बेचैनी आदि एवं रात्रीको बार-बार श्वासावरोध ।

साध्यासाध्यता—विशेषतः ४ से ७ दिन तक स्थिरता । क्वचित् पूर्ण आरोग्य होनेमें २-३ सप्ताह । यह रोग प्रायः असाध्य नहीं है चिकित्सा न करनेपर जीर्णावस्था । अधिजिह्विकाके ऊपर शोथ होने या स्वरयन्त्रमें पूयोत्पत्ति होजानेपर असाध्य । यह असाध्यता युवा मनुष्योंमें बालकोंकी अपेक्षा अधिकतर ।

रोग विनिर्णय—स्थानिक वेदनासह ज्वर वर्त्तमान होनेपर, उसे स्वरयन्त्रके आक्षेपयुक्त विकारसे स्वर बैठजाना, फिर स्वर लोप होना, इस लक्षण परसे गलौघ रोगसे भी अलग किया जाता है। एवं कण्ठवीक्षण यन्त्रसे निःसंदेह निर्णय होजाता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना

रोगीको गरम आर्द्र कमरेमें रक्खें, जहाँ विपुल शुद्धवायु तथा किटलीसे वाष्प मिलती रहे। कमरेका उत्ताप ६०° से ७०° तक। वाष्प १ दिनमें ३ बार ५-५ मिनिट दें।

बोलना बिल्कुल बन्द करें । उदरको शुद्ध रक्खें । ज्वर हो, तो ज्वरघ्न स्वेदल

औषधि बनफशाक्वाथ आदि देवें। आक्षेप आते हों तो आक्षेपहर लक्ष्मीनारायण, वातकुलान्तक रस आदि देवें।

स्थानिक बाह्य उपचार बर्फकी थैली या शीतल जलकी पट्टी रक्खें अथवा गरम पट्टी रक्खें या बनफशाक्वाथके बचे हुए फोक को कुछ घीमें गरमकर बांध देवें। लोहबान अर्कको उबलते जलमें मिलाकर वाष्पकी नस्य देवें। कफ या झाग दूर करनेके लिये मुँहमें खदिरादि वटी या कण्ठसुधारक वटी रखकर रस चूसें।

(२) चिरकारी-स्वरयन्त्रप्रदाह

क्रॉनिक लेरिन्जाइटिस—(Chronic Laryngitis)

निदान—आक्रमणसे ही प्रायः चिरकारी या आशुकारीकी जीर्णावस्था। आवाज़का अत्युपयोग, यह सामान्य हेतु, कभी शराब, तमाखु भी।

अधिक व्याख्यान करनेसे प्रसनिकाप्रदाह होकर आवाज़ बैठ जाती है, उसे डॉक्टरीमें पुरोहितों (क्लर्जिमेन) का गलक्षत कहते हैं। इसका वर्णन चिरकारी प्रसनिका प्रदाहमें किया है।

लक्षण और चिह्न—

१. आवाज़का परिवर्त्तन और आवाज़ बैठजाना।

२. स्वरयन्त्रमें हर्ष (गुदगुदी), कासकी इच्छासह।

३. कण्ठदर्शक यन्त्रसे देखनेपर श्लैष्मिक-कला शोथमय, कभी क्षतयुक्त, तन्त्री स्फीत, सतहपर कफ। किञ्चित् रक्तवृद्धि, घाटान्तरिया पेशी, जो स्वरतन्त्रियोंको निकट लानेका कार्य करती हैं, उनकी निर्बलता।

किसी-किसीको शुष्ककास निरन्तर चलती रहना, क्षत होजाय तो कफ पूयमय निकलना, कफमेंसे दुर्गन्ध आना तथा रोग बढ़नेपर भोजन निगलनेमें कष्ट आदि।

रोग विनिर्णय—बढ़े हुए रोगमें कण्ठदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करनी चाहिये। क्षयज, घातक और उपदंशजका प्रारम्भ इस चिरकारी प्रकारके अनुरूप होता है, जो इतिहास और अन्य लक्षणोंद्वारा पृथक् होजाते हैं।

(३) शोथमय-स्वरयन्त्रप्रदाह

इडिमेटोस लेरिन्जाइटिस—इडिमा ऑफ दी ग्लोटिस।

(Oedematous Laryngitis–Oedema of the glottis).

यह विकार स्वरयन्त्रद्वारके गम्भीर शोफमय होनेसे सत्वर श्वासावरोध और मृत्यु की प्राप्ति करा देते हैं। यह कभी प्राथमिक नहीं होता। स्थानिक और सार्वाङ्गिक स्थितिके हेतुसे गौण ही होता है।

निदान—

१. स्थानिक—अ. तीक्ष्ण शस्त्रोंका आघात, जलना आदि; आ. आशुकारी

स्वरयन्त्रप्रदाहकी उत्तरवर्त्ती विकृति; इ. चिरकारी उपदंशज या क्षयप्रदाहज स्वरयन्त्रके क्षतकी उत्तरवर्त्ती अवस्था; ई. कचित् स्थानिक प्रदाहिक अवस्था—गलेके शिथिल संयोजक तन्तुओंका प्रदाह (Cellulitis), मुख-मण्डल अथवा गलेका विसर्प कण्ठरोहिणी।

२. सार्वाङ्गिक—अ. वृक्कप्रदाह चिरकारी या आशुकारी; आ. चेतनाधिक्य-सह रुधिरवाहिनियोंका शोथ (Angioneurotic Oedema); इ. कचित् आशुकारी प्रदाहज ज्वर।

इनके अतिरिक्त कचित् तेज़ाब, उग्रक्षार, आयोडाइड आदि पदार्थोंके सेवनसे भी इस शोफकी उत्पत्ति होजाती है।

संप्राप्ति—अधिजिह्विकाद्वार अति शोफमय, अधिजिह्विकाकी पर्त शोफमय और सम्मिलित। स्वरयन्त्र द्वारके नीचे शोफ। सच्ची स्वरतन्त्रियाँ कचित् ही प्रभावित।

लक्षण—श्वासग्रहणमें कष्ट, स्वरयन्त्रद्वारके स्फीत होजानेसे अन्न निगलनेमें कष्ट, स्वरभेद और गात्रनीलिमा आदि। क्रमशः श्वास ग्रहणमें कष्टकी वृद्धि। पहले कण्ठस्वर रुद्ध, अस्पष्ट और दबा हुआ। धीरे-धीरे उच्चारणमें क्षीणताकी वृद्धि और अन्तमें बिलकुल लोप।

कास पहले शुष्क। फिर जितना रसोत्सृजन बढ़ता जाता है, उतनी कास रुकी हुई और आवाज़सह अथवा आवाज़ रहित। प्रारम्भमें कफका अभाव। कण्ठको साफ करनेका प्रयत्न अच्छी तरह करने पर एवं कासके पश्चात् कुछ झागमय श्लेष्म। फिर धीरे-धीरे श्वासावरोधकी वृद्धि। एवं श्वासग्रहणमें 'शी-शी' सदृश ध्वनि की उत्पत्ति। रोगी शय्यामें बैठा रहता है और मुँह खोलकर श्वासग्रहणके लिये प्रयत्न करता है।

नेत्र गोलकके अतिरिक्त समस्त देहमें अति तीव्र आक्षेप और नीला-सा मुख-मण्डल, ये सब लक्षण कितनेक समय रहकर किञ्चित् शान्ति। पुनः-पुनः सब लक्षण उपस्थित, फिर जब तुरन्त शमन न हुए तब किसी पर्य्यायमें श्वासावरोध होकर मृत्यु।

कण्ठमें धीरे-धीरे अंगुलीको प्रवेश कराने पर अधिजिह्विका प्रदेश अति स्थूल तथा अधिजिह्विकाकी पर्त्त अत्यन्त फूली हुई भासती है। स्वरयन्त्रवीक्षण यन्त्रसे देखनेपर श्लैष्मिक-कला अति लाल तथा अधिजिह्विका अर्ध स्वच्छ, गोलाकार सूजन युक्त, दृढ़ और खिंची हुई। स्वरतन्त्रीमें बहुधा लसीका या रसका स्राव देखनेमें नहीं आता।

रोग विनिर्णय—रोगका इतिहास और कण्ठवीक्षणयन्त्रद्वारा परीक्षा करनेपर स्पष्ट निर्णय।

साध्यासाध्यता—तत्काल योग्य चिकित्साका आश्रय लिया जाय, तो साध्य; अन्यथा असाध्य।

चिकित्सोपयोगी सूचना—रस शोषणार्थ गलेपर बर्फ रक्खावें। वाष्पका नस्य करावें। रोग गम्भीर होनेपर २० प्रतिशत कोकैनका स्प्रे छिड़कें। अधिजिह्विकाकी

उत्तान त्वचा काट देवें। विना संदेह किये श्वासनलिकामें कृत्रिम छिद्र करें, अन्यथा मृत्युसंख्या अधिक।

यदि राक्षसी शीतपित्त (Urticaria Gigantea) के आक्रमणसे रोगोत्पत्ति हुई हो तो डॉक्टरीमें एड्रिनेलिन हाइड्रोक्लोराइडका अन्तःक्षेपण करते हैं और स्प्रे से स्वरयन्त्रपर भी छिड़कते हैं।

आयोडाइडके अति सेवनसे शोथ आया हो तो सोडाबाई कार्ब १-१ ड्राम दिनमें ३ बार देवें।

(४) क्षयज स्वरयन्त्रप्रदाह

(ट्युबरक्युलस लेरिन्जाइटिस—Tuberculous Laryngitis)

निदान—अति क्वचित् प्राथमिक। विशेषतः राजयक्ष्माके हेतुसे। स्वरयन्त्रकी विकृति बढ़नेपर फुफ्फुस शिखरपर मंदचिह्न।

संप्राप्ति—प्रारम्भ अधिजिह्विका और घाटिका तरुणास्थिकी पत्तोंकी पिछले अन्तभागकी ओरसे तथा घाटिकातरुणास्थिकी बीचकी पत्तेपर फिर चारों ओर फैलता है। स्वरतन्त्रीपर मुख्यतः पिछले अर्धभागमें।

परीक्षा करनेपर प्रथमावस्थामें श्लैष्मिक-कला निस्तेज, मोटी और अन्तर्भरणयुक्त। द्वितीयावस्थामें क्वचित् क्षय ग्रन्थियाँ। तृतीयावस्थामें क्षत चौड़े, उथला, धूसर, रससे आच्छादित। सर्व सामान्य देखाव कीड़ेसे खाये हुए के सदृश।

रोग अधिजिह्विकासे आगे बढ़ता है और इस भागको नष्ट करता जाता है। क्षतद्वारा तरुणास्थिकी आच्छादक श्लैष्मिक-कलाका प्रदाह होकर तरुणास्थिका कोथ। स्वरतन्त्री मोटी। ग्रसनिकाकी विकृती और कमी-कमी विस्तार, क्वचित् परिणाममें स्वरयन्त्रद्वारका आकुंचन।

लक्षण—आक्रमणके समय आवाज़में कुछ भारीपन और उग्रता। जीर्णावस्थामें आवाज़ बैठजाना, कण्ठमें घुर-घुर आवाज़ और स्वरलोप। क्षत बढ़नेके हेतुसे कास। भोजन निगलनेमें कष्ट, विशेषतः अधिजिह्विकाके क्षतसे और ग्रसनिका तक फैलनेपर। असह्य वेदना।

रोग विनिर्णय—(१) कण्ठदर्शक यन्त्रसे देखनेपर निस्तेजता, अन्तर्भरण और क्षत। (२) फुफ्फुसक्षय। (३) कफमें क्षय कीटाणुओंकी प्राप्ति। इन ३ हेतुओंसे निर्णय।

फिरङ्गज स्वरयन्त्रप्रदाह सामान्यतः वेदनारहित तथा कण्ठदर्शक यन्त्रसे देखनेपर अधिक रक्तसंग्रह, प्रारम्भ अधिजिह्विकाके तलसे, गहरेक्षत और क्षतचिह्नपरसे पृथक् होजाता है।

कर्कस्फोट होनेपर स्वरतन्त्रियोंमें या तन्त्रियोंके बीचमें पिडिकामय वृद्धि। प्रथमावस्थामें एक और प्रभावित इस हेतुसे प्रभेद होजाता है।

मधवक्कुष्ठ (Lupus) में वेदना रहित तथा अधिजिह्विकासे प्रारम्भ होनेसे अलग होजाता है।

साध्यासाध्यता— प्रथमावस्थामें स्वास्थ्य प्राप्ति हो सकती है। किन्तु गंभीर अवस्थामें फुफ्फुस क्षति होनेपर घातक।

चिकित्सोपयोगी सूचना—कुछ महीनोंतक बोलना बिल्कुल बन्द रक्खें। पीपरमेण्टके तेल मिले हुए जेतूनके तेलका स्प्रे देवें।

सार्वाङ्गिक अवस्था अच्छी हो तो क्षतको जला देवें या खुरच देवें। क्षतमय अधिजिह्विकाको दूरकी जाय तो श्वासावरोध दूर होता है; किन्तु स्वरयन्त्रकी स्थिति फिर तेज़ीसे आगे बढ़जाती है। भोजन निगलनेमें कष्ट होता हो, तो भोजन करनेके आध घण्टे पहले ओर्थोफोर्म और बेन्जोइन (या लोहबान और गूगल) का धुआँ नलिका-द्वारा देवें। भोजन अर्ध तरल देवें। वोल्फेण्डन स्थितिमें अर्थात् शय्यापर लेटकर मस्तिष्कको नीचे झुकाकर नलिकासे भोजनको चूसें। सार्वाङ्गिक चिकित्सा राजयक्ष्मा के अनुरूप।

(५) फिरङ्गज स्वरयन्त्रप्रदाह

(सिफिलिटिक लेरिन्जाइटिस–Syphilitic Laryngitis)

निदान—

वंशागत फिरङ्ग- (१) ६ मासकी आयुमें या पहले कुछ वर्षोंतक प्रसेकमय स्वरयन्त्रप्रदाह; (२) युवावस्थामें फिरङ्गकी तृतीयावस्थाके समान।

गौण फिरङ्ग—आशुकारी स्वरयन्त्र प्रदाहके सदृश किन्तु अति प्रतिरोधक शक्तियुक्त। नैमित्तिक क्षत। फिरङ्गशूक (Condylomata) अति क्वचित्।

फिरङ्गकी तृतीयावस्था—(१) सच्ची गमा ग्रन्थिका अधिजिह्विकाके तलपर प्रारम्भ, उसके परिणाम—अ स्वरयन्त्रका आकुञ्चन अतिशय; आ. गहराक्षत अति क्वचित्। (२) व्यापक अन्तर्भरण।

लक्षण— चिरकारी स्वरयन्त्रप्रदाहके सदृश। आवाज़ बैठजाना। कासक्वचित्। प्रायः स्थिर वेदना रहित।

चिकित्सा—फिरङ्ग शामक। डॉक्टरीमत अनुसार पोटास आयोडाइडसे सत्वर शमन; किन्तु फिर क्षत चिह्न उपस्थित।

आयुर्वेदिक अमीररस, उपदंशसूर्य, रक्तशोधकारिष्ट आदि सत्वर लाभप्रद औषधियाँ हैं।

स्वरयन्त्रद्वारका आकुंचन होगया हो तो श्रोटरकी शलाका (Schrœtter's bougies) डालकर प्रसारित करें; किन्तु पुनरुत्पत्ति सामान्य। ऐसी अवस्थामें फिर श्वासनलिकामें छिद्र करना आवश्यक होता है।

स्वरभेद चिकित्सोपयोगी सूचना

भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं कि, स्वरभेद-रोगीको पहले स्नेहन, फिर वमन, विरेचन और बस्तिकर्म विधिपूर्वक करावें। अवपीडन नस्य, मुखधावन (कुल्ले करना), शास्त्रीय धूम्रपान और नाना प्रकारके कवलधारण आदि क्रियाद्वारा चिकित्सा करें। इनके अतिरिक्त श्वासकासमें कही हुई चिकित्सा-विधि भी इस रोगमें हितकारक है।

अवपीडन नस्यके सम्बन्धमें आचार्य कहते हैं कि—

गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे।
मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम्॥

कण्ठ रोग, सन्निपात, निद्रावृद्धि, विषम ज्वर, मानसिक विकृति और कृमिरोगमें अवपीडन नस्य हितकारक है। विधि और फलके लिये चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम-खण्ड पृष्ठ ८६-९४ देखें।

वातज स्वरभेदमें लवणसहित तैलका, पित्तजमें शहदसह घृतका और कफजमें क्षार और चरपरे पदार्थोंके साथ शहदका कवल धारण करावें।

वातजमें भोजन - घी गुड़ मिश्रित भात देवें तथा ऊपर गुनगुना जल पिलावें; अथवा वातज स्वरभेदमें भोजन करके घृतपान कराना लाभदायक है।

पित्तज स्वरभेदमें दूध और मधुर औषधियोंका विरेचन देवें और मधुर औषधियों (काकोली, मुलहठी आदि) के चूर्णको घृत और शहदके साथ देवें; दूधमें घी मिलाकर पिलावें या दूधसह भोजन देवें और घृतपान करावें।

कफज और मेदजमें सोंठ, मिर्च, पीपल और पीपलामूलका चूर्ण मिला हुआ गोमूत्र पिलावें। ज़ोरसे गाने या बोलनेसे स्वरभंग हुआ है, तो मधुर द्रव्यसे औटाया हुआ दूध, मिश्री और शहद मिलाकर पिलावें।

क्षयज और त्रिदोषज स्वरभेदको प्रत्याख्याय-असाध्य कहकर चिकित्सा करनी चाहिये। पीनसजनित, क्षयज और उपदंश स्वरभेदमें मूलरोगोंको दूर करने लिये चिकित्सा करनी चाहिए।

मेदज स्वरभेदमें चरपरे, कड़वे और कसैले रसयुक्त औषधियोंद्वारा स्वरभेदको जीतना चाहिये। मेदज स्वरभेदपर कफज स्वरभेदमें कही हुई औषधियाँ भी दी जाती हैं।

जौके साथ आँवला और पीपल मिला, यवागू बना घी और तैल मिलाकर पिलावें; फिर ऊपर सोंठ और पीपल खिलावें अथवा तीक्ष्ण वमन करानेसे स्वरभेदके कफ और मेद आदि उत्पादक दोष नष्ट हो जाते हैं।

स्वरभेद होनेपर शीत और तेज़ वायुसे बचनेके लिये गले पर ऊनी वस्त्र लपेट कर रखना चाहिए। तीव्रप्रकोपमें आग्रहपूर्वक तेज़ वायुसे बचना चाहिए। गरम जलमें पिसी हुई राई मिला उसमें पैर डुबानेसे वातज और कफज प्रकोपमें लाभ हो जाता है। खानेके लिये नरम पदार्थ देवें, गरम और उत्तेजक पदार्थ नहीं देना चाहिए।

क्षयज स्वरभेदके लिये कहा है कि—

कासे श्वासे च हिक्कायां क्षये प्रोक्तानि यानि तु।
घृतानि तानि योज्यानि भिषग्भिः स्वरसंक्षये ॥

कास, श्वास, हिक्का और क्षयरोगमें जो सिद्ध घृत कहे हैं, उन सबको क्षयज और इतर स्वरभेदों में प्रयुक्त करना चाहिए।

आशुकारीस्वरयन्त्र प्रदाह—होने पर विलम्ब किये बिना विश्रान्ति लेनी चाहिए। विश्राम करनेके स्थानमें उत्ताप समभाव रक्खें। जलकी बाष्पद्वारा मकान को आर्द्रउष्ण रक्खें।

यदि कब्ज़ हो और जिह्वापर मल लगा हो, तो उदरशुद्धिके लिये पंचसकार या पंचसम चूर्ण अथवा मेगनेशिया सलफास देना चाहिये। कण्ठपर सतत पुल्टिस बाँधनी चाहिये या आर्द्रसेक करना चाहिये। कभी-कभी राई या सरसोंकी पुल्टिस या प्लास्टरसे उपकार हो जाता है। राई मिश्रित उष्ण जलमें पैर डुबोना प्रस्वेद लानेवाली औषधि देना विशेष हितकारक है। कपूर, जवाखार, बनफशा, अंकोल, देवदारु, द्रोण-पुष्पी, रुद्रवन्ती, शोरा गुनगुनी चाय आदिका सेवन हितावह है। खदिरादि वटी या कण्ठ सुधारक वटीको मुँहमें रखकर रस चूसते रहनेसे भी अच्छी सहायता मिल जाती है।

आवश्यकतापर ज्वर और पीड़ा शमनार्थं बच्छनाग प्रधान औषधि (कब्ज़ हो तो ज्वरकेसरी वटी और कब्ज़ न हो तो आनन्द भैरव रस) का सेवन करावें या तीव्र पीड़ाके निवारणार्थ अति कम मात्रामें ($\frac{1}{8}$ रत्ती तक) अफीम मिश्रित जातिफलादि वटीका सेवन कराया जाता है। परन्तु कब्ज़ हो, तब तक अफीम नहीं देनी चाहिए।

यदि प्रतिश्याय और गाढ़ा श्लेष्म हो, तो प्रतिश्यायहरकषाय वासादि क्वाथ या कफकर्तन रसका सेवन कराना चाहिये या लोहबानकी भस्मका सेवन कराना चाहिए। रोगीको बोलनेका बिल्कुल निषेध कर देना चाहिए। उग्रतासाधक पेय और आहारका त्याग कराना चाहिए। अधिक बोलने या गानेसे उत्पन्न आशुकारी स्वरयन्त्र प्रदाहमें जलमिश्रित शोरेके तेज़ाब (Acid Nitric dil) के २ से ५ बूँद घण्टे-घण्टे या दो-दो घण्टे पर १-१ औंस जलमें मिलाकर पिलानेसे आश्चर्यकारक लाभ पहुँच जाता है।

चिरकारी स्वरयन्त्रप्रदाहमें—बोलनेका निषेध करें। शुष्क वातावरणमें निवास करें। पूर्व पचन संस्थानके विकारको सत्वर दूर करें। यदि गलशुण्डिका (कौआ) बढ़ गया है, तो उसका उपचार संकोचक (ग्राहि) औषधिद्वारा करना चाहिए। मिश्री और फिटकरीका चूर्ण $\frac{3}{2}$ रत्ती, लगानेसे विकृति दूर हो जाती है। कर्पूरादि वटी मुँहमें रखनेसे अनेकोंको लाभ पहुँच गया है। अनेकोंको तालु उठानेसे लाभ हो जाता है। फिटकरीको शहदमें मिलाकर कौए पर लगानेसे भी कौआ ठीक हो जाता है।

स्वरयन्त्रशोथ—होने पर अवरोधको तत्काल दूर करना चाहिए, देर नहीं करनी चाहिए। स्वरयन्त्रके ऊपर बाहर एक ओर जलौका प्रयोग करनेसे शोथ अनेकांशमें दूर

हो जाता है। वाष्पका नस्य देवें। स्वरयन्त्रपर कोकेन या अन्य चेतनाहर औषधिका स्प्रे छिड़कें। पुनर्नवा मण्डूर, पुनर्नवादिक्काथ या सारिवासवके साथ सेवन करावें। गले पर बर्फ रक्खें। इन प्रयोगोंसे लाभ न हो, श्वासकृच्छ्रता अत्यधिक हो रही हो, तो बिना देर किये श्वासनलिकामें कृत्रिम छिद्र (Tracheotomy) कराना चाहिये।

क्षयजन्य स्वरयन्त्रका क्षत—होनेपर क्षयनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। एवं नीलेथोथेका जल उस भागपर लगाते रहना चाहिये।

उपदंशज स्वरयन्त्र क्षत—होनेपर सोहागेका फूला लगानेसे और मल्ल-प्रधान औषध-अष्टमूर्त्ति रसायन, व्याधिहरण रस या उपदंश सूर्यका सेवन करनेसे लाभ हो जाता है। क्षतमें पीड़ा होनेपर कण्ठपर बाहरसे पुल्टिस बाँधे या गरम जलसे सेक करते रहें। एवं उपद्रव अनुसार योग्य उपचार करें।

वातज स्वरभेद चिकित्सा

१. तिल्लीके ताज़े तैलमें सैंधानमक मिलाकर मुँहमें गण्डूष (कुल्ले) धारण करनेसे कण्ठ, तालु, जिह्वा और दंतमूलमें से संचित कफ निकल जाता है तथा वातज स्वरभेद दूर होजाता है।

२. घी और गुड़ मिश्रित कर बनाये हुए भातका भोजन कराने तथा फिर गुनगुना जल पिलानेसे वातज स्वरभंग दूर हो जाता है।

३. भोजन करा ऊपरसे सिद्ध घृत पिलाने अथवा सफेद मिर्च ११ नग निगलवा कर ऊपर ४ तोले गोघृत पिलानेसे वातज स्वरभेद निवृत्त होता है।

४. कास मर्दन घृत—ऽ४ सेर कसौंदीके रसमें भारंगीका कल्क २० तोले और १ सेर गोघृत मिलाकर यथाविधि घृत सिद्ध करें। मात्रा २-२ तोले देते रहनेसे वातज स्वरभेद शमन हो जाता है।

५. ब्राह्मी, गोरखमुण्डी, बच, सोंठ और पीपलका चूर्ण ४ से ६ माशे तक शहद मिलाकर दिनमें २ समय प्रातः सायं ७ दिन तक खिलानेसे स्वरभंग दूर होकर स्वर सुन्दर बन जाता है।

६. भृंगराज घृत—भांगरेका स्वरस, गिलोयका रस, अडूसेका रस, दशमूल क्वाथ और कसौंदीका रस प्रत्येक ३। सेर, छोटी पीपलका कल्क १ सेर तथा गोघृत ४ सेर लेवें। सबको मिला यथाविधि घृतको सिद्ध करें। मात्रा १ से २ तोले तक देते रहनेसे सब प्रकारके स्वरभंग और कास रोग दूर हो जाते हैं।

पित्तज स्वरभेदचिकित्सा

१. मुलहठीका चूर्ण घी-शहदके साथ चाटने या मुलहठीका सत्व (रब्बेसूस) मुँहमें रखकर रस चूसते रहनेसे स्वर खुल जाता है।

२. शहद और मिश्री मिलाकर चाटनेसे पित्तज स्वरभेद शमन होता है।

३. स्वरभेद–ज़ोरसे बोलनेके हेतुसे हो, तो शतावर या खरैंटीका चूर्ण ६–६ माशे समान मिश्रीके साथ खिलाकर ऊपरसे मिश्री मिला दूध पिलावें।

४. शतावर और धानकी खीलका चूर्ण शहदके साथ मिलाकर सेवन करानेसे अधिक बोलनेके हेतुसे उत्पन्न विकृति नष्ट हो जाती है।

कफज स्वरभेदचिकित्सा

१. पीपल, पीपलामूल, कालीमिर्च और सोंठको मिला चूर्णकर २–२ माशे को गोमूत्रमें मिलाकर दिनमें २ समय पिलानेसे अथवा इस चूर्णको शहद और तैल मिलाकर चटानेसे कफज स्वरभेद दूर हो जाता है।

२. भोजनके पश्चात् सोंठ, मिर्च, पीपल या इतर लौंग आदि चरपरे पदार्थ खिलानेसे मुखमें से कफ दोष दूर होकर स्वरभेद नष्ट हो जाता है।

३. सोंठ और हरडका थोड़ा-थोड़ा चूर्ण बार-बार मुँहमें रखकर रस चूसें।

४. बड़े बेरके कोमल पत्तोंको जलके साथ पीस थोड़ा सैंधानमक मिलाकर २ तोलेकी पूरी बना घीमें भूनकर खानेसे स्वरभंग दूर हो जाता है।

५. बेरकी जड़को मुखमें रखकर रस चूसनेसे स्वरभेद दूर होता है।

त्रिदोषज स्वरभेदचिकित्सा

१. अजवायन, हलदी, आँवले, जवाखार और चित्रकमूलको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। इसमेंसे १ से ३ माशे तक चूर्ण दिनमें २–३ समय घी और शहद मिला-कर चटानेसे त्रिदोषज स्वरभंग दूर होता है।

२. त्रिफला (हरड, बहेड़ा, आँवला) त्रिकटु (सोंठ, काली मिर्च, पीपल) और जवाखार, इन ७ औषधियों को समभाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर ४–४ माशे चूर्ण दिनमें दो समय सेवन करानेसे सन्निपातज स्वरभंग दूर होता है।

सूचना—जवाखार या इतर कोई क्षारको मुँहमें ऐसेही डाल देनेसे जिह्वा फट जाती है। इसलिये घी मिलाकर लेना चाहिये।

३. काली अगर, देवदारु और हल्दीका क्वाथकर दिनमें ३–४ समय पिलानेसे सन्निपातज स्वरभंग दूर होता है।

४. अभ्रक भस्म १-१ रत्ती शहदके साथ चटाकर ऊपर दशमूलारिष्ट पिलानेसे त्रिदोषज स्वरभंगका निवारण होजाता है।

क्षयज स्वरभेद चिकित्सा

१. रसतन्त्रसारमें लिखा हुआ कर्पूरादिचूर्ण दिनमें २–३ समय शहदके साथ देनेसे क्षयज स्वरभंग दूर होता है।

२. सितोपलादि चूर्ण ३-३ माशे दिनमें २ से ३ समय घी और शहदके साथ सेवन करानेसे स्वरभेद, कास, क्षय, श्वास, पार्श्वशूल और कफप्रकोपज व्याधियाँ नष्ट होजाती हैं।

३. अभ्रक भस्म आधी रत्ती तथा सुवर्ण भस्म और कस्तूरी चौथाई-चौथाई रत्ती मिला सितोपलादि चूर्णके साथ सेवन करानेसे स्वरभंगका शमन हो जाता है।

४. लक्ष्मीविलास रस (सुवर्ण मिश्रित) कुलिञ्जनाद्यवलेहके साथ सेवन करानेसे क्षय-कीटाणु नष्ट होकर स्वरभंग दूर हो जाता है।

५. मधुकादि तैल—मुलहठी, मुनक्का, पीपल, बायविडंग, मैनफल और हंसपदी (कीड़ामारी) का मूल, इन सबको मिलाकर कल्क करें। फिर चार गुने तिलके तैलमें मिला यथाविधि सिद्धकर नस्य करानेसे कण्ठ, तालु आदि स्थानोंमें रुका हुआ दोष दूर होकर क्षयज स्वरभंग दूर होता है।

६. बलादि घृत—खरैंटीमूल, शालपर्णी, विदारीकन्द और मुलहठी, इन ४ औषधियोंको समभाग मिलाकर कल्क करें। फिर ४ गुना गोघृत और १६ गुने जलके साथ कल्कको मिला, यथाविधि सिद्धकर नस्य देनेसे क्षयज और पित्तज स्वरभेद नष्ट होते हैं।

समस्त स्वरभेद नाशक प्रयोग

१. कुलिञ्जनाद्य चूर्ण—कुलीञ्जन, अकरकरा, बच, ब्राह्मी, मीठा कूठ और सफेद मिर्च, इन सबको मिला चूर्णकर १ से २ माशे दिनमें ३ समय ६-६ माशे शहद मिलाकर चटानेसे स्वरभेद शमन हो जाता है। गलौघ (कृत्रिम झिल्ली) से उत्पन्न स्वरभेदमें भी यह चूर्ण उपकारक है।

२. रसतन्त्रसार द्वितीय-खण्डमें आये हुए प्रयोग—त्र्यम्बकाभ्र, गोरखवटी, मृगनाभ्यादि चूर्ण, कुलिञ्जनादि गुटिका, कुलिञ्जनाद्यवलेह और चव्यादि चूर्ण भिन्न-भिन्न लक्षणोंमें व्यवहृत होते हैं।

त्र्यम्बकाभ्र, कफप्रधान और वातप्रधान नूतन और जीर्ण रोगोंमें, गोरखवटी शीतके आघातसे उत्पन्न विकारमें, मृगनाभ्यादि चूर्ण आक्षेपज रोगमें और शेष औषधियाँ सामान्यरूपसे व्यवहृत होती रहती हैं।

३. सारस्वत घृत—ब्राह्मीका रस या क्वाथ ४ सेर, गोघृत १ सेर, हल्दी, मालतीके फूल, कूठ, निसोत और हरड़ २–२ तोले तथा पीपल, बायविडंग, सैंधानमक, शक्कर और बच १–१ तोला मिलाकर कल्क करें। फिर सबको मिला मन्दाग्नि पर यथाविधि सिद्ध करें। इसमें से १ से २ तोले तक पान कराने से वाणी शुद्ध होती है। एक सप्ताहमें किन्नर समान कण्ठ हो जाता है। एक पक्ष सेवन कराने पर चन्द्रके समान कान्ति हो जाती है। १ मास सेवन कराने पर स्मरण शक्ति अति बढ़ जाती है। इनके अतिरिक्त सब प्रकारके कुष्ठ, अर्श, पाँच प्रकारके गुल्म, प्रमेह, पाँच प्रकारकी कास आदि रोगों की निवृत्ति हो जाती है। यह घृत वंध्याको पुत्र देता है, एवं यह अल्प वीर्य वालेको भी अति हितावह है। इस घृतके सेवनसे बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होती है।

४. ब्राह्म्याद्यवलेह—ब्राह्मी, बच, हरड़, अडूसेके पत्ते और पीपल, सबको सममाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर शहदमें मिलाकर अवलेहके सदृश बना लेवें। इस अवलेहमेंसे ४-६ माशे प्रातःसायं चटाते रहनेसे एक सप्ताहमें स्वरभेद आराम हो जाता है।

५. सोनागेरूको ताज़े धनियेके रसमें पीस कण्ठपर लेप करनेसे स्वरभंग दूर हो जाता है।

६. आमकी मंजरी या बबूलके सूखे फूलको मुँहमें रखकर रस निगलनेसे स्वरभंग दूर होता है।

७. व्याघ्री घृत—छोटी कटेली पञ्चाङ्ग ४ सेर लेकर ८ गुने जलमें चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान कर खरैंटी (पीले फूल वाली), गोखरू, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, सबको कटेलीके क्वाथमें पीस ४० तोले कल्क बनावें। पश्चात् क्वाथ, कल्क और २ सेर गोघृत मिलाकर यथाविधि पाक करें। इसमेंसे ६-६ माशे घृत दिनमें दो बार खिलानेसे कफप्रकोपज स्वरभंग और पाँचो प्रकारकी खांसीका शमन होता है।

८. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—तेजोवत्यादि गुटिका, कण्ठसुधारक वटी, एलादि मन्थ, च्यवनप्राशावलेह, कल्याण घृत, जसद भस्म, कर्पूराद्य चूर्ण और कट्फलादि क्वाथ आदि हितावह हैं। इनमेंसे अधिक अनुकूल हो, उसका उपयोग करना चाहिये।

९. जसद भस्म, गिलोयके सत्व और शहदके साथ दिनमें ३ समय देनेसे उपजिह्विका वृद्धि, कण्ठशोथ, लसीकाग्रन्थियोंका बढ़ना, ये सब दूर हो जाते हैं।

१०. मेदज स्वर भेदपर रसतन्त्रसारमें लिखे हुए प्रयोग बृहद्योगराज गूगल, शिलासिंदूरवटी, चंद्रप्रभावटी (मेदोहर अर्कके साथ), और त्रिफलारिष्ट, ये सब हितावह हैं। इनमें से अधिक अनुकूल हो उसे प्रयोगमें लानी चाहिये।

११. विषप्रकोपजन्य हो, तो सुवर्ण भस्म, प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व मिलाकर दूधके साथ सेवन कराना चाहिये।

१२. उपदंशजनित होनेपर रसतन्त्रसारमें कही हुई औषधियाँ—उपदंश सूर्य, अष्टमूर्त्ति रसायन, मल्लादिवटी, रक्तशोधकारिष्ट, इनमेंसे कोई भी एक औषधिका सेवन करानेसे उपदंशज विष नष्ट होकर स्वरभंग दूर होता है।

१३. निर्बलताके हेतुसे स्वरभंग होनेपर अभ्रकभस्म (च्यवनप्राशावलेहके साथ), लोह भस्म और ताम्रभस्म (शहद या गुनगुने दूधके साथ), या सारस्वतारिष्ट का सेवन कराना चाहिये।

१४. कंठनलीके तीक्ष्ण शोथ शमनार्थ कबवी तुरईको चिलममें रख तमाकूकी तरह धुआँ पीकर लार टपकानेसे लाभ हो जाता है।

१५. हरड़ और पीपलको गुड़में या चूनेको शहदमें मिलाकर बाहर कण्ठ पर मोटा-मोटा लेप करें, फिर कपड़ेसे बाँध देनेसे शोथ शमन हो जाता है।

१६. पोस्तके डोडे या कुलथीको जलमें मिलाकर उबालें। ऊपर चालनी ढकें, फिर चालनीके ऊपर फ्लानेल रक्खें। वाष्पसे गरम होनेपर उससे कण्ठपर सेक करें; और दूसरा फ्लानेल चालनीपर रक्खें; जिससे सेक चालू रह सके। ऐसे १ घण्टे तक सेक करनेसे शोथ और प्रदाहजन्य वेदनाका निवारण होजाता है।

पथ्यापथ्य

पथ्य—स्वेदन, बस्तिक्रिया, शास्त्रीय धूम्रपान, विरेचन, कवलधारण, नस्य, मस्तकका शिरावेध, जौ, लाल शाली चावल, हंस, जंगली मुर्गे और मोरके मांसका रस, मुनक्काकी पुरानी शराब (थोड़े परिमाणमें), गोखरू, मुनक्का, किशमिश, जीवन्ती, अंगूर, खजूर, हरड़, बिजौरा, लहसुन, सैंधानमक, मकोय, अदरक, कोमल मूली, नागरवेलका पान, कालीमिर्च, घी, दूध, मिश्री, शहद, गेहूँ, मूंग और धानका लावा आदि पथ्य हैं।

अपथ्य—कच्चे कैथ, मोलसिरीके फल, भसींडा, जामुन, तेंदुकके फल, हरड़के अतिरिक्त कसैले पदार्थ, वमन, अधिक निद्रा, व्याख्यान देना और भोजनकर लेनेपर तुरन्त शीतल जल पान करना आदि स्वरभेद रोगीके लिये हानिकर हैं। तेज़वायु, भोजन कठोर पदार्थ, अति गरम पदार्थ, ज़्यादा मिर्च, सिगरेट आदिका व्यसन तथा शराब आदि उत्तेजक पदार्थोंका अतिसेवन, ये सब हानि पहुँचाते हैं।

(६) कुक्कुट ध्वनिमय विकार

गलौघ-क्रुप-Croup.

व्याख्या—शिशु और बालकोंके जिन विकारोंमें श्वासग्रहण कालमें कुक्कुट ध्वनि (Crowing) उत्पन्न होती है, उन सबको डॉक्टरीमें क्रुप संज्ञा दी है। आयुर्वेदके विविध कण्ठरोग-गलौघ, रोहिणी, स्वरघ्न और कण्ठ शालूक रोगके लक्षण इन रोगोंमें प्रतीत होते हैं।

प्रकार—

१. प्रादाहिक—अ. साक्षेप स्वरयन्त्र प्रसेक; आ. कृत्रिम कलामय स्वरयन्त्र प्रदाह (रोहिणीजन्य और रोहिणी अजन्य); इ. सामान्य आशुकारी स्वरयन्त्र प्रदाह; ई. काली-खांसी।

कृत्रिम कलामय प्रदाहमें रोहिणीके लक्षण तथा इतर रोगोंमें गलौघके लक्षण, ज्वर, श्वासावरोध, अन्नमार्गावरोध, ये तीनों लक्षण मिलते हैं।

२. प्रतिफलित—स्वरयन्त्रका आक्षेप। यह विकार, उपजिह्वावृद्धि, नासा-पश्चिम ग्रन्थिवृद्धि, दांतनिकलना, पेशी आकुंचनमय, आक्षेप (Tetany) और अस्थिवक्रतासे सम्बन्ध वाला है।

आयुर्वेद कथित स्वरघ्न रोगके कष्टपूर्वक श्वसन, स्वरभेद, शुष्ककण्ठ और निगलने में कष्ट ये लक्षण इस रोगमें प्रतीत होते हैं।

३. यान्त्रिक—बालकोंके स्वरयन्त्र विकारज शीत्कार ध्वनि, स्वरयन्त्रके मस्से (Laryngeal polypi), स्वरयन्त्रमें बाह्य वस्तुका प्रवेश, बृहच्छ्वासनलिका-पर बढ़ी हुई बाह्यग्रैवेयक ग्रन्थिका दबाव।

इस तरह अन्य रोगोंमें भी क्रुपकी उपस्थिति हो सकती है।

(अ) साक्षेप स्वरयन्त्रप्रसेक

केटर्हल स्पाज़्म ऑफ दी लेरिङ्क्स-स्पाज़्मोडिक लेरिन्जाइटिस-स्पाज़्मोडिक क्रुप-लेरिन्जाइटिस स्ट्रिड्युलोसा।

(Catarrhal spasm of the Larynx—Spasmodic Laryngitis—Spasmodic Croup—Laryngitis Stridulosa.)

यह स्वरयन्त्रके सौम्य प्रदाहसह स्वरयन्त्रका आक्षेप है। यह रोग २ से ४ वर्षकी आयुमें होता है; क्वचित् ६ मासके भीतरकी आयुवालेको भी।

निदान—नासापश्चिमा ग्रन्थि, उपजिह्विका और ग्रसनिकाग्रन्थिकी वृद्धि, शीत लगजाना तथा अपचन आदि।

पूर्वरूप—किञ्चित् कास या सामान्यतः प्रतिश्याय, मन्दज्वर और कण्ठस्वर बैठ जाने पर बालक सो जाता है। फिर घण्टोंके बाद अकस्मात् रात्रिमें निद्रा भंग होने पर श्वासावरोध और कासका आक्रमण उपस्थित होता है।

लक्षण—श्वासोच्छ्वास पीडासह, श्वासग्रहणमें कुक्कुटध्वनि, श्वासावरोधज शुष्क कास, भारी आवाज़ और व्याकुलता। स्वरयन्त्रके अवरोधके चिह्नरूप श्वास ग्रहणकाल में हृदयाधरिक प्रदेश और उत्तर उरःफलक खातमें आकर्षण (गड्ढा होना)। बालकका देखाव गम्भीर और भयभीत।

आधसे तीन घण्टेमें कास श्वास आदिकी निवृत्ति होती है। फिर बालक शान्त सो जाता है। इस तरहका आक्रमण २-३ रात्रि तक होता है। दिनमें बालक स्वस्थ रहता है। यह रोग कभी घातक नहीं होता।

चिकित्सा—वामक औषधि वमन न हो तब तक। डॉक्टरीमें पल्विस इपिकाक आध-आध घण्टे पर। आयुर्वेदमें बचका घासा डब्बानाशक गुटिका या बाल-जीवन वटी।

मकानको गरम जलकी भाफसे आर्द्र रखें। स्वरयन्त्रपर गरमजलका सेक करें। आवश्यकता हो तो किञ्चित् क्लोरोफार्म देवें।

दूसरी रात्रिमें आक्रमणको रोकनेके लिये दिन में स्वरयन्त्रके कफको दूर करने वाली औषधि देवें। शृंगभस्म और कुमार कल्याण हितकर है। शीत न लगने देवें।

फिर नासापश्चिम ग्रन्थिकी वृद्धि हुई हो तो उसका उपचार करें। बालार्क गुटिका सेवन करावें।

(आ) स्वरयन्त्रका आक्षेप

लेरिञ्जिस्मसस्ट्रिड्यूलस—(Laryngismus Stridulus.)

यह तमक श्वासके दौरेके सदृश प्रदाह रहित स्वरयन्त्रका आक्षेप है।

यह बालकोंको होने वाले आक्षेप (Tetany-Spasmophilia) का उत्पादक है। सामान्यत: अस्थिवक्रता वर्त्तमान। नासा पश्चिमग्रन्थिका क्वचित् प्रभाव। इस रोगको अंग्रेज़ीमें श्वास स्तम्भरूप आक्रमण (Breath-holding attack) भी कहते हैं।

इस रोगका आक्रमण लगभग १॥ वर्षके बालक पर होता है। ६ माससे छोटे बच्चे पर नहीं होता। ३ वर्ष से बड़ी आयु वाले पर भी क्वचित् होजाता है।

निदान—भय या तिरस्कार अथवा यातनादियोंके अन्य उत्तेजक कारण उपस्थित होने पर स्वरयन्त्र परावर्त्तिनी नाड़ीमें दबाव आना, सामान्यतः दांत निकलनेके समय मसूड़ोंमें उग्रता आनेसे या आमाशय-अन्त्रकी उग्रताकी प्रतिफलित क्रियारूपमें पुनरावर्त्तिनी नाड़ीमें दबाव आना, क्वचित् मस्तिष्कमें तरल संग्रह, ग्रैवेय ग्रन्थिवृद्धि या रक्ताधिक्यसे भी।

लक्षण—आक्रमण रात्रिको निद्राभंगके पश्चात् या प्रातःकाल जल्दी। ज्वर, कास और स्वरभेदका अभाव। श्वासोच्छ्वासमें कुक्कुट ध्वनि, श्वासोच्छ्वास क्रिया क्षणिक (विराम श्वासाभाव) सह, श्वासग्रहणके लिये व्याकुलता, रक्तसंग्रह; आक्षेप शिथिल होनेपर (स्वरतन्त्री मुक्त होने पर) रोनेके साथ दीर्घश्वास ग्रहण होना आदि।

कभी-कभी आक्रमणकालमें चोस्टेक चिह्न (Chvostek's sign) अर्थात् मुख-मण्डलके एक ओर अकस्मात् आक्षेप। यदि श्वास कष्ट कुछ समय तक रह जाय, तो मुख-मण्डल मलिन नीलवर्णका होजाता है। आक्षेप (Tetany) के हेतुसे हाथोंकी मुट्ठी बन्द होजाती है और पैरोंकी अगुलियाँ भी आकुंचित होती हैं। अतिशय क्षीणता आकर और श्वासावरोध होकर किसीकी मृत्यु होजाती है। किसी-किसीको रोगका दौरा बारम्बार होता रहता है।

रोगका आवेग होनेपर मस्तक पीछेकी ओर खिंचता है। दोनों नासापुट प्रसारित होते हैं। कण्ठ और मस्तिष्क की सब शिराएँ फूल जाती हैं। एवं श्वासोच्छ्वास करानेवाली सब पेशियाँ आक्षेपग्रस्त होजाती हैं। रोगी श्वास ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाता है। छातीकी दीवार भीतरकी ओर हो जाती है। श्वासग्रहणमें अति प्रतिबन्ध कितनीक सैकण्डों तक रहता है। उस समय भय लगता है कि, रोगीकी तुरन्त मृत्यु हो जायगी, किन्तु अविलम्ब रोगी मुर्गेकी-सी आवाज़सह लम्बा श्वास ग्रहण करता है।

फिर आक्षेप और वेदना सब निवृत्त होजाते हैं। पुनः यह रोग उसी रात्रिको या दूसरी रात्रिको न्यूनाधिक बलके साथ उपस्थित होता है। किसी-किसी समय तेज़ आक्षेप भी प्रकाशित होजाता है।

आक्षेप और स्वरयन्त्र अवरोधकी अवस्थामें लक्षणोंकी भिन्नता

१. स्वरयन्त्रका आक्षेप—रोगी ६ माससे कम आयुवाला नहीं होता। पूर्वकालमें कास और स्वरभेदका अभाव, अकस्मात् आक्रमण। क्षणिक विश्रान्ति (श्वासाभाव) सह श्वसनक्रिया। क्वचित् घातक।

२. जन्मजात स्वरयन्त्रकी शीत्कार ध्वनि (Congenital Laryngeal Stridor)—जन्मसे सतत चालु। कुछ मासके पश्चात् बन्द। क्लेशाभाव। कभी-कभी घातक नहीं; किन्तु श्वासनलिकाप्रदाह (कास) होनेपर ध्वनि गंभीर। यह स्वरयंत्रकी अस्वाभाविकता (लघुद्वार) के हेतुसे।

३. साक्षेप स्वरयन्त्र आक्षेप—पूर्वकालमें मंद कास और स्वरभेद। आक्रमण त्वरित किन्तु अकस्मात् नहीं। श्वसनक्रियाका अभाव नहीं। बीच-बीचमें दौरा। कभी घातक नहीं।

४. प्रसेकमय (आशुकारी) स्वरयन्त्रप्रदाह—पूर्वकालमें प्रतिश्याय, श्वासकृच्छ्रता और ज्वर। श्वासकृच्छ्रताकी क्रमशः वृद्धि। स्थितिकाल लम्बा। मध्यवर्त्ती विरामका अभाव रोग भयप्रद, कभी सौम्य या कण्ठरोहिणी जन्य।

५. कालीखांसी—पूर्वरूपमें कास, श्वासग्रहणके पहले ही लघुनिःश्वाससह आक्षेपका आरम्भ तथा अन्तमें 'हूप' ध्वनि।

६. नासापश्चिम ग्रन्थि या उपजिह्विका वृद्धिकी विद्यमानता-कास श्वासग्रहणमें शीत्कारध्वनि तथा स्वरयन्त्रमें अवरोधकी सूचना करती है।

७. स्वरयंत्रमें मस्से (Papilloma)—रोग निर्णय केवल कण्ठदर्शक यन्त्रसे। चिरकारी स्वरयन्त्रप्रदाहके लक्षण।

८. बाह्यवस्तु—होनेपर वस्तु अनुरूपवेदना।

(बड़ी आयुवालोंमें)—स्वरयंत्रकी परावर्त्तिनी।

९. नाड़ीकी उग्रता—फुफ्फुसान्तरालमें ग्रन्थि, अर्बुद या धमन्यर्बुद होनेपर।

१०. केन्द्रीय वातनाड़ीमें क्षति—विशेषतः प्राणदा नाड़ीमें।

११. क्रियाजन्य—उदा० हिस्टीरिया जन्य कण्ठावरोध।

साध्यासाध्यता—बहुधा साध्य। क्वचित् निर्बल या श्वसन यन्त्रकी व्याधिसे पीड़ितके लिये असाध्य।

चिकित्सोपयोगी सूचना

आक्षेपकालमें—मस्तिष्क और छातीपर शीतलजल डालें। या आक्षेप शमनार्थ कण्ठनलीपर गुदगुदीकरें अथवा स्वरयन्त्रपर गरम-जलमें डुबोया हुआ फ्लानेलका

टुकड़ा रक्खें। जिह्वाको आगेकी ओर खींचें। बच्चेको पुनः-पुनः गरम-जलमें बैठावें। सिरपर शीतलजलकी पट्टी रक्खें। कपड़ेको बार-बार बदल डालें।

लक्ष्मीनारायण और वातकुलान्तक या अन्य आक्षेपशामक औषधि देवें। भांगका धुँआ देवें। प्याज़के रुपैये जैसे पतले टुकड़े बारम्बार नये-नये काटकर सुंघाते रहें। डॉक्टरीमें अमिलनाइट्रेट अथवा क्लोरोफार्म सुंघाते हैं।

चूनेकी न्यूनतापर—(अस्थिवक्रतापर) आशुकारी आक्रमणमें मांसपेशीमें केलशियम क्लोराइडका अन्तःक्षेपण अथवा पेशी आकुंचनमय आक्षेप (Tetany) के समान उपचार। आयुर्वेदमें बालार्क गुटिका, मोतीपिष्टी, कामदूधा, गोदन्तीभस्म आदि निर्भय, स्थिर कार्यकर श्रेष्ठ औषधियाँ हैं। आवश्यकता अनुसार, लघुवसन्त, मण्डूर, मण्डूरमाक्षिक आदि मिला लेवें।

नासापश्चिम ग्रन्थि (कण्ठशालूक-Adenoides) या ग्रैवेयक ग्रन्थिकी वृद्धि हो तो लघुवसन्त+कामदूधा मिश्रण देवें।

(३) स्वरयन्त्रके नववर्धन

(New Growths of the Larynx.)

इन रोगोंमें आयुर्वेद कथित कण्ठशालूकके भी लक्षण मिलते हैं।

सौम्यअर्बुद—

१. स्पर्शाङ्कुराबुर्द (Papilloma) आच्छादक कलासे उत्पन्न।

२. सूत्राबुर्द (Fibroma) संयोजक तन्तुसे उत्पन्न।

३. सिंगरका उभार (Singer's Nodule) आवाज़ उत्पत्तिकी मूलसे उत्पन्न एक या दोनों स्वरतन्त्रीपर लघुश्वेतामपिण्ड। यह आच्छादककलाकी प्रादाहिक स्फीति है। विशेषतः पहली और तीसरी तन्त्रीके संयोगस्थानपर।

लक्षण—स्वरभङ्ग या शीत्कार ध्वनि।

चिकित्सा—निकाल देना।

घातकअर्बुद—

१. आभ्यन्तरिक—स्वरयन्त्रकी गुहामें। जीर्णावस्थामें स्थानपरिवर्तन (Metastasis), गंभीर आच्छादक कलार्बुद (Epithelioma) सामान्यतम।

२. बाह्य—द्वार, अधिजिह्विका और घाटिका भित्तिके ऊपर। इनमें अधिजिह्विकापर सामान्यतम। स्थान परिवर्तन प्रारम्भावस्थामें। आच्छादक कलार्बुद। नैमित्तिक-मण्डलाकार घटकपर कर्कस्फोट (Spheroidal Celled Carcinoma)। मांसार्बुद (Sarcoma) क्वचित्।

लक्षण—स्वरभेद चिकित्सामें प्रतिबन्धक है। आक्रमण कालमें वेदनाका अभाव। कास अस्वाभाविक, व्याकुलता, जीर्णावस्थामें वेदना, भोजन निगलनेमें कष्ट,

श्वासकृच्छ्रता, शीर्णता। गलनशील फुफ्फुस प्रदाह (Septic Pneumonia) क्वचित् स्वरयन्त्रकी स्थानच्युति।

रोगविनिर्णय—स्वरयन्त्र वीक्षण द्वारा।

चिकित्सा—शस्त्रसाध्य। रेडियमका स्थानिक प्रयोग। उपदंशज रोग होने पर मल्लप्रधान (समीररस, उपदंशसूर्य) औषधियाँ।

३३. कासरोग

(खांसी-कफ-Cough, Tussis.)

रोग परिचय—'कसति शिरः कण्ठादूर्ध्वं गच्छति वायुरिति कासः', अर्थात् वायु फुफ्फुस आदिमेंसे निकल शिर और कण्ठके मार्गमें ऊर्ध्वगति करता रहता है, वह कास रोग कहलाता है। कास रोग विशेषतया स्वरयन्त्र, श्वासनलिका और फुफ्फुस में विकृति होने या श्वासोच्छ्वास क्रियामें प्रतिबन्ध आनेपर उपस्थित होता है। नैसर्गिक नियमानुसार फुफ्फुस आदिमें जब कुछ प्रतिबन्ध आजाता है, तब उसे दूर करनेके लिये खांसी चलने लगती है।

इस कास रोगके निदान आदि जाननेके लिये फुफ्फुस, श्वासनलिका और स्वरयन्त्रकी रचना और कार्य जाननेकी आवश्यकता है। इनमेंसे फुफ्फुसका वर्णन चि० त० प्रदीप प्रथम-खण्डमें श्वसनक ज्वरके साथ किया है। स्वरयन्त्रका वर्णन स्वरभंग रोगमें दिया है। शेष श्वासनलिकाका विवेचन यहाँ करते हैं।

बृहच्छ्वासनलिका—(ट्रेकिया और विन्ड पाइप-Trachea or wind pipe) यह लगभग ४॥ इन्च लम्बी और १ इञ्च चौड़ी है। यह एक पर एक आधारित १६ से २० गोलाकार तरुणास्थियोंसे बनी है। इस नलीमेंसे श्वासोच्छ्वासका आवागमन होता रहता है। यह नली गलेकी आगेकी ओर तथा अवटुकके ऊपर उठे हुए हिस्से (आदम्स एपल-Adam's apple) से सहज नीचेकी ओरसे प्रारम्भ होकर नीचे उतरती है। पहले छातीमें जाती है। फिर दोनों फुफ्फुसोंके मूल भागके पास दो मुख्य शाखाओंमें विभक्त हो जाती है।

कण्ठमें इस नलीके आगेकी ओर ग्रैवेयक ग्रन्थि और दो ग्रैवेयक शिराएँ हैं तथा पीछेकी ओर अन्ननलिका, उसे ढकनेवाली ग्रीवा प्रच्छदा प्रावरणी (Prevertebral fascia) और धमनियाँ स्थित हैं।

कण्ठकी आगेकी ओर रहे हुए कण्ठकूप पर अँगुली लगानेसे इस श्वासनलिका का २-३ अँगुल जितना भाग जाना जाता है। इस नलिकाकी २ शाखायें पाँचवीं पृष्ठकशेरुकाके पास हो जाती हैं। ये शाखा दोनों फुफ्फुसोंके भीतर प्रवेश कर जाती हैं। इन शाखाओंको डॉक्टरीमें श्रोंकाइ (Bronchi) कहते हैं। इन शाखाओंकी भी आगे छोटी-छोटी अनेक उपशाखा-प्रशाखायें हो जाती हैं। फिर अति सूक्ष्म होकर

वायुकोषोंमें प्रवेश कर जाती हैं। इस पूर्ण श्वासनलिकाके भीतरके सब भाग सूक्ष्म श्लेष्मस्रावी कलासे आच्छादित हैं और उसमेंसे अवलम्बक नामक श्लेष्मका स्राव होता रहता है।

स्वरयन्त्र और श्वासनलिकाके तरुणास्थि
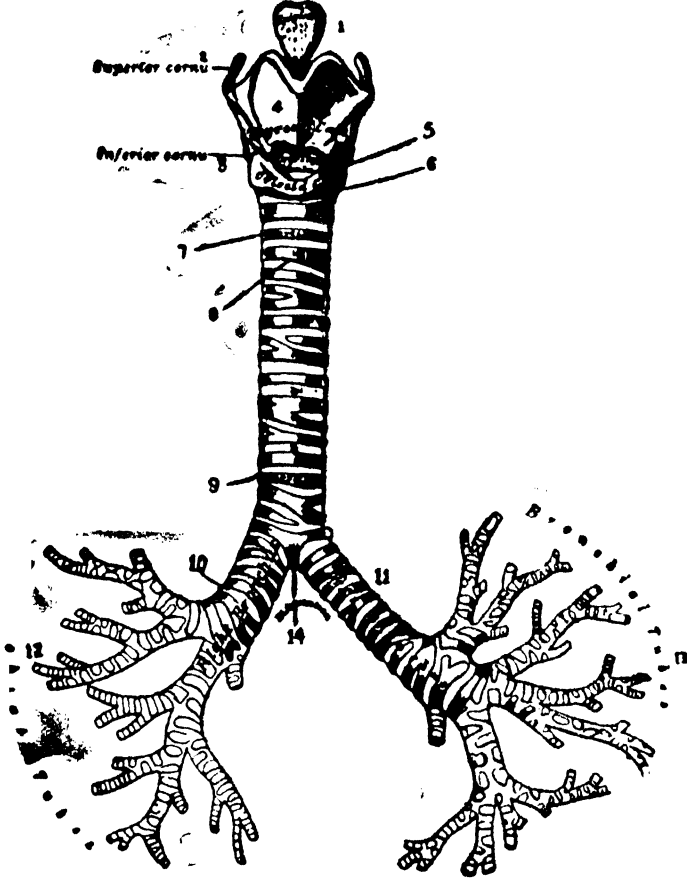
१ अधिजिह्विका–Epiglottis.
२ ऊर्ध्वश्रृंग–Superior Cornu.
३ अधःश्रृंग–Inferior Cornu.
४ अवटु तरुणास्थि–Thyreoid Cartilage.
५ अवटु कृकाटिका कला–Cric. Thyr. Membrane.
६ कृकाटक तरुणास्थि–Cricoid Cartilage.
७ और ८ श्वासनलिकाके तरुणास्थि–Cartilages of Trachea.

८ बृहच्छ्वासनलिका-Trachea.
१० दक्षिण श्वासनलिका-Right Bronchus.
११ वाम श्वासनलिका-Left Bronchus.
१२/१३ श्वास प्रणालिकाएँ-Bronchial Tubes.
१४ श्वासनलिका विभाग-Bifurcation.

दक्षिण श्वासनलिका शाखा बांयी की अपेक्षा अधिक मोटी और छोटी है; इसकी लम्बाई लगभग १ इन्च है। वाम शाखा पतली और लम्बी है। इसकी लम्बाई लगभग २ इन्च है।

कासनिदान—श्वास लेनेके समय मुँह या नाकद्वारा धुँआ या धूलि आदिका स्वरयन्त्र और श्वासनालिकामें प्रवेश हो जाना, अति व्यायाम करनेपर स्वरयन्त्रमें उष्णता बढ़कर शुष्कता आजाना, रूक्ष अन्न सेवन करनेसे कण्ठस्थ तरल श्लेष्मकी न्यूनता हो जाना, भोजन करते समय शीघ्रतासे भोजनको निगलनेपर क्वचित् भोजनके अंशका विमार्गगामी होजाना, अर्थात् स्वरयन्त्रमें चला जाना, एवं क्षुधा, तृषा या मल-मूत्र और छींक आदिके वेगका अवरोध होनेपर वायु प्रकुपित होना इत्यादि कारणोंसे कास रोगकी उत्पत्ति होती है।

कण्ठमें अन्ननलिका और श्वासनलिका, दोनों समीप रहती हैं। इस अन्ननलिकाके ऊपरके चौड़े हिस्सेको ग्रसनिका कहते हैं। इस ग्रसनिकामें ७ छिद्र (द्वार) होनेसे इसे सप्तपथ और सप्तसिन्धु प्रदेश भी कहते हैं।

प्रकृतिने इस ग्रसनिकाकी दीवारकी मांसपेशीयां परतन्त्र (Voluntary) बनाई हैं जिससे ये मांसपेशियां ग्रास निगलनेके समय ग्रसनिकाको चौड़ा करके ऊपर लाती हैं। फिर ये ग्रसनिकाकी मांसपेशियां ग्रास (भोजन) के चारों ओर संकुचित होती है, और ग्रसनिका नीचे आ जाती है; जिससे भोजन नीचे अन्ननलिकामें चला जाता है। इस क्रियाकालमें स्वरयन्त्रकाद्वार और नासिकाके पीछे रहा हुआ द्वार, दोनों क्रमशः अधिजिह्विका और कोमल तालुसे बन्द हो जाते हैं; किन्तु जल्दी-जल्दी भोजन करनेवालोंके द्वार कभी-कभी शीघ्रतासे बन्द नहीं हो सकते, जिससे अन्न या जल कभी स्वरयन्त्रमें या कभी नासिकामें चला जाता है। इनमेंसे स्वरयन्त्रमें प्रवेश हो जानेपर खांसी और नासिकामें प्रवेश हो जानेपर छींकें आने लगती हैं। यदि स्वरयन्त्र या श्वासनलिकामें गया हुआ अन्न या इतर पदार्थ खांसनेपर भी जल्दी नहीं निकल जाता; तो स्वरयन्त्र आदि अवयवोंमें विकार होकर कास रोगकी उत्पत्ति हो जाती है।

अनेक बच्चोंको इस ग्रसनिकाकी ग्रन्थियोंपर शोथ आ जाता है; इस हेतुसे कितनेक बालक बधिर होजाते हैं। इस शोथके हेतुसे नासिकाद्वारा श्वास अच्छी तरह नहीं लिया जाता, फिर मुंहसे श्वास लेना पड़ता है। अधिक काल तक यह स्थिति रह जाय, तो मुँहसे धूलि या जन्तुका प्रवेश होकर कास और प्रतिश्याय हो

जाते हैं। ऐसे बालकोंके नाक, मुँहके ऊपरका हिस्सा तथा ऊपरका होंठ, तीनोंकी आकृति-में परिवर्त्तन हो जाता है। इनके अतिरिक्त छातीको श्वास खींचनेमें भी अधिक श्रम करना पड़ता है। परिणाममें छाती विकृत हो जाती है।

जब कुपित प्राणवायु उदानवायुके अनुगत हो जाता है, तब फूटे हुए कांसीपात्र-की-सी आवाज़ निकलती रहती है। यह विकृति श्वासनलिका या स्वरयन्त्रमें रहे हुए श्लेष्म-कलाका ह्रास होकर, उस स्थानमें शुष्कता आजानेपर होती है। फिर रोगी घों-घों, या खों-खों, करता रहता है।

यदि धुआँ, धूलि, भोजन, जल या इतर पदार्थ स्वरयन्त्र और श्वासमार्गमें चला जाय, तो तत्काल खाँसी उत्पन्न हो जाती है, उसे धांस कहते हैं, वह बहुधा सत्वर शमन हो जाती है, परन्तु जो श्वासयन्त्रको विकृत करने वाले कारणोंसे उत्पन्न होती है, वह योग्य चिकित्सा करने पर कई दिनोंके बाद दूर होती है। पहले वायु कुपित होती है, फिर वह कफ और पित्तको प्रकुपित करती है। इस तरह धातुओंमें विकृति अधिक हो जानेसे सत्वर दूर नहीं होती।

पूर्वरूप—कास रोग उत्पन्न होनेके पूर्व गला काँटोंसे युक्त हो जाता है। जैसे जौ आदि धान्यके अग्रभागमें सूक्ष्म नोक होती है, तद्वत् ही गलेमें शुष्क मांसल काँटे हो जाते हैं। इन काँटोंकी उत्पत्ति श्लैष्मिक-कलामें रूक्षताद्वारा विकृति होनेपर होती है। कण्ठमें खुजली चलना, भोजन निगलनेमें व्यथा होना, भोजनका कण्ठमें रुकना, अग्निमान्द्य, भोजनमें अरुचि, कण्ठ और तालुमें लेपसा भासना तथा आवाज़ भारी हो जाना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं।

कास प्रकार—वातादि भेदोंसे ५ प्रकार हैं। वातज, पित्तज, श्लेष्मज क्षतज और क्षयज। इनमें उत्तरोत्तर अधिक बलवान् माने गये हैं; अर्थात् वातजसे पित्तज, पित्तजसे कफज आदि। ये सब खांसी विशेष बलवान बनने पर शरीरका क्षय कराती है।

चरक सुश्रुत और वाग्भट्ट प्रभृति सभी आचार्योंने कास रोगके ५ प्रकार कहे हैं। किन्तु हारीताचार्यने चिकित्साकी सरलतार्थ वातपित्तज, कफपित्तज और सन्निपातज, ये तीन भेद अधिक कहे हैं।

१. वातिक कास निदान—रूखे, शीतल और कसैले पदार्थ का अति सेवन, अति कम भोजन, अधिक स्त्री सहवास, छींक आदि वेगोंका धारण और अधिक परिश्रम करना इत्यादि कारणोंसे वात प्रकुपित होकर शुष्क कासकी उत्पत्ति कराती है।

२. पैत्तिक कास निदान—चरपरे, अति गरम, विदाही, खट्टे और नमक आदि क्षारका अधिक सेवन, अग्नि और सूर्यके तापका सेवन और अति क्रोध करना, इन कारणोंसे पैत्तिक कासकी उत्पत्ति होती है।

३. कफज कास निदान—भारी (देरसे पाक होने वाले पके भोजन), दही, आदि अभिष्यंदी, मधुररस, स्निग्ध-घृत-तैल आदिका दुरुपयोग, दिनमें निद्रा लेना और मेहनत न करना, आदि कारणोंसे कफधातु प्रकुपित होकर कफज कासकी उत्पत्ति कराती है।

४. क्षतज कास (Haemoptysis) निदान—अति स्त्रीसहवास, अति बोझ उठाना, अधिक प्रवास, साहस, अधिक परिश्रम, अधिक बलवान् से या घोड़े-हाथी आदिसे युद्ध करना और अति बड़ी आवाज़से गाना आदि कारणोंसे (बहुधा रूक्ष मनुष्योंको) क्षतज कास हो जाती है।

इनमें से किसी भी हेतुसे जब फुफ्फुसपर अधिक दबाव पड़ता है, तब अन्तर्त्वचा (प्रणालिका या कोषकी त्वचा) फट जाती है, और वहाँ पर क्षत हो जाता है। फिर वायु प्रकुपित होकर क्षतज कासको उत्पन्न कर देती है।

५. क्षय कास (Bronchiectasis) निदान—विषम भोजन, अपथ्य भोजन, विरुद्ध भोजन, अति मैथुन, छींक, क्षुधा, तृषा, मल-मूत्र आदि वेगोंका धारण और अति उपवासके साथ अति चिन्ता या शोक करना, इन कारणोंसे जठराग्नि मन्द हो जाती है। फिर तीनों दोष प्रकुपित होकर देहका क्षय कराने वाली दारुण कास अथवा राजयक्ष्माके लक्षणभूत कासको उत्पन्न करा देते हैं।

विषमाशन, विरुद्धाशन आदि कारणोंसे अग्नि दूषित हो जाती है, तब भोजनमें से यथोचित रस नहीं बनता। फिर रसकी न्यूनतासे रक्त, मांस आदिमें कमी होती है। इस तरह शनैः-शनैः सब धातुओंका क्षय होनेपर क्षयकासकी उत्पत्ति होती है।

क्षत कास और क्षय कास, दोनोंका सम्बन्ध क्रमशः उरःक्षत और राजयक्ष्मासे है। माधव निदानमें 'विषमा सात्म्य०' यह निदान दर्शक श्लोक चरकसंहिता परसे लिया गया है। चरकसंहिताके टीकाकार चक्रदत्तने राजयक्ष्माके कारणोंसे ही इस क्षयकासकी उत्पत्ति मानी है, किन्तु माधव निदानके टीकाकारोंने इस बातको स्वीकार नहीं किया। मधुकोष टीकामें 'क्षयजमिति शुक्रादि धातुक्षयजम्, न तु राजयक्ष्मजम्'; एवं आतङ्कदर्पण टीकामें भी 'क्षयजमिति रक्तादि क्षयजम्, लिखा है इस तरह दोनों टीकाकारोंने विद्यार्थियोंको भ्रममें डाला है।

इसका विशेष स्पष्टीकरण अष्टाङ्ग संग्रह निदान अध्याय ३ में श्री० वाग्भट्टाचार्यजीके निम्न वचनसे हो जाता है।

> वायुप्रधानः कुपिताः धातवो राजयक्ष्मिणः।
> कुर्वन्ति यक्ष्मायतनैः कासं ष्ठीवेत् कफं ततः॥

राजयक्ष्मा रोगसे पीड़ित व्यक्तिके वातादि धातुओं, राजयक्ष्माके हेतुभूत कारणोंसे कुपित होकर कासकी उत्पत्ति करते हैं।

यही तात्पर्य अष्टाङ्ग-संग्रहकी शशिलेखा टीका और अष्टाङ्ग हृदय की सर्वाङ्ग-सुन्दरामें स्पष्ट रूपसे लिखा है।

विशेषरूपसे देखा जाय, तो क्षयकासकी, उत्पत्ति राजयक्ष्मा और अन्य हेतुओंसे भी होती है। इसकाससे पीड़ित रोगी प्राय: १०-२० वर्ष तक जीवित रह जाता है।

१. वातज कास लक्षण—हृदय, ललाट, दोनों पार्श्व, उदर, फुफ्फुस और शिर में शूलके समान दर्द होना, वातप्रकोपसे उर, कण्ठ और मुखका सूखना, रोंगटे खड़े हो जाना, चक्कर आना, बल, स्वर और ओजका क्षय, मुखकी कान्ति नष्ट हो जाना; तन्द्रा आना, बार-बार वेगपूर्वक कास चलना, कफका शुष्क हो जाना, आवाज़ बैठ जाना, स्निग्ध, खट्टे, नमकीन और गरम पदार्थ खानेसे वेगका शमन होना तथा भोजन का परिपाक होनेपर वायुका ऊर्ध्व गमन होकर खांसीका वेग उत्पन्न होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

इस कासमें कफ सूख जाता है, जिससे खांसनेमें बड़ा कष्ट होता है। इस कासको सामान्य जन सूखी खांसी कहते हैं। इस खांसीमें कफ बहुत नहीं आता। २-५ मिनट तक खांसी वेगसे आती रहती है, फिर थोड़ा-सा झाग निकलता है। अनेक रोगियोंको सोने पर खांसी ज़ोरसे आने लगती है और बैठने पर कम हो जाती है। कभी-कभी फुफ्फुसमें दोष होता है, तब उस पार्श्वसे सोने पर खांसी उत्पन्न होती है। किसी-किसी को कफ निकलता है और कफ निकलने पर खांसी शमन हो जाती है। किसी-किसीको क्षुधा-तृषा लगने पर एवं चलने फिरने पर खांसी चलने लगती है।

कइयों को सूर्यके तापमें घूमनेसे स्वरयन्त्रका प्रदाह होकर प्रतिश्याय हो जाता है उसमें गरम उपचार करने पर खांसी होती है। एवं कितनेक मनुष्योंको पचन क्रिया बिगड़ने आदि कारणों से गलशुण्डिका शिथिल हो जाती है। फिर सोने पर कास आती रहती है। इन दोनों प्रकारों का अन्तर्भाव वातिककासमें हो सकता है। इन दोनों के लक्षण निम्नानुसार प्रतीत होते हैं।

प्रतिश्यायज कास—ज़ुकाम बिगड़नेसे इस खांसीकी उत्पत्ति है। इसे सामान्य लोग सर्दीकी खांसी कहते हैं। इस रोगमें छातीमें भारीपन, फुफ्फुसोंमें खुजली, दाह, शुष्क कास, रात्रिको सोनेके पश्चात् अधिक खांसी चलना, क्वचित् मन्द ज्वर तथा प्रतिश्यायके इतर लक्षण भी होते हैं। ज़ुकामके हेतुसे मुँहमें बार-बार कफ आता रहता है। यदि इसकी उपेक्षा कीजाय, तो यह घोर रूप धारण कर दीर्घ-काल तक संतापित करती रहती है।

निशाकास (Night Cough)—यह खांसी गल शुण्डिका (कव्वा) के शिथिल होनेपर या उस पर शोथ होनेपर होती है। यह बहुधा रात्रिको सोनेके समय अति त्रास देती है। किसी-किसीको दिनमें भी बार-बार सूखी खांसी आती रहती है; और कण्ठमें सुरसुराहट करती है। इससे कण्ठावरोध और वमन होते हैं। इस रोगको

दूर करनेके लिये गलशुण्डिकाको उठाया जाता है। गलशुण्डिकाके दोषको दूर किये विना इस कासकी निवृत्ति नहीं होती।

इस निशाकासको सुश्रुत संहिता और वाग्भट्ट आदि आचार्योंने मुखरोगके अंतर्गत तालुरोगमें लिखा है; तथा 'कण्ठशुण्डी' और 'गलशुण्डिका' संज्ञा दी है। इसकी उत्पत्ति दूषित कफ और रक्तसे मानी है। यदि वातपित्त अनुबन्ध होनेसे तोड़ने समान पीड़ा और दाहसह हो, तो तुण्डीकेरी कहलाता है और केवल रक्तसे व्याधि उत्पन्न हुई हो तथा ज्वर और पीड़ासह मृदु शोथ हो, तो उसे 'अध्रुष' कहते हैं।

२. पित्तजकास लक्षण—छातीमें जलन, छातीमें से धुआँसा निकलना, मंद-मंद ज्वर रहना, मुँहका सूखना, मुँहका कड़वा होना, बार-बार तृषासे पीड़ित होना, आवाज़ बदल जाना, चरपरे रसयुक्त पीले रंगकी वमन होना, नेत्र, नाखून, चेहरा, और शरीरका पाण्डुवर्ण होना, मोह (मूर्च्छा आ जाना), अरुचि, चक्कर आना, बार-बार वेग उत्पन्न होना, खांसनेपर प्रकाश-सा दीखना या तारे चमकते हों ऐसा भासना और गलेमें जलन होना, ये सब लक्षण पित्तजकासमें होते हैं। इस रोगमें क्वचित् पित्त और रक्तकी वमन होती है।

इस रोगका मुख्य लक्षण पित्तमिश्रित तरल कफकी प्रतीति है। साधारण लोग इसे गरमीकी खांसी कहते हैं।

३. श्लेष्मज कास लक्षण—मुँह सदा कफसे लिपा हुआ रहना, मुँहका स्वाद मीठा रहना, शरीरमें पीड़ा, शिरदर्द, सारा शरीर कफसे भरा हो ऐसा भासना. भोजनमें ग्लानि, अग्निमान्द्य, शरीरमें भारीपन, दूषित कफकी सम्पूर्ण शरीरमें वृद्धि हो जानेसे उबाक आते रहना, कभी वमन हो जाना, रोमांचित होना, पीनस या ज़ुकाम होना, तथा श्वास-प्रश्वास क्रियासे कण्ठमें खुजली चलना तथा खांसनेके साथ सफेद, कुछ पीला, गाढ़ा और चिपचिपा कफ निकलना, छातीमें कफवृद्धिसे कुछ दर्द होना, खांसते समय छाती कफसे भरी हो ऐसा ज्ञान पड़ना, निद्रा अधिक आना देहमें जड़ता और चक्कर आना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं।

सामान्य लोग इस कफज कासको तर खांसी कहते हैं। यह खांसी बहुधा निद्रामेंसे जागनेपर अधिक चलती है और २-४ बार कफ निकल जानेपर वेग मन्द हो जाता है।

४. वातपित्तप्रकोपज कास लक्षण—बार-बार सूखी खांसी चलना, खुजली, पसलियोंमें शूल, निद्रानाश, आलस्य, अरुचि, मलावरोध और कण्ठ शोष आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

५. पित्तकफज कास लक्षण—कण्ठमेंसे धुँआ निकला, रक्तमिश्रित कफ गिरना, नेत्रमें लाली और जलन होना, व्याकुलता और हाथ-पैर टूटना आदि लक्षण होते हैं।

६. त्रिदोषज कास लक्षण—खुजली, दाह, श्वास, उबाक, कभी वमन, अग्निमान्द्य, शोष, अरुचि, शिर दर्द, मुँहमें बार-बार चिपचिपा थूक आते रहना, सूजन, बेहोशी और बेचैनी आदि लक्षण होते हैं।

७. क्षतज कासके लक्षण—इस प्रकारमें पहले विना कफके ही सूखी खांसी चलती है, फिर कुछ दिनोंके पश्चात् रक्तमिश्रित कफ गिरने लगता है तथा कण्ठमें दर्द, छातीमें क्षत होनेसे काटनेके समान पीड़ा होना, पार्श्व भागमें सुई चुभानेके समान असह्य दर्द, तीव्र शूलके हेतुसे स्पर्श करनेपर भी वेदना होना, संधियोंमें दर्द, मन्द-ज्वर, श्वास, तृषा बढ़ जाना, कास, स्वर-भेद तथा कण्ठमेंसे पारावत (कबूतर) के सदृश आवाज़ निकलना आदि लक्षण होते हैं। रोग वृद्धि होनेपर कम्प होना, बल, वीर्य, वर्ण, रुचि और जठराग्निका ह्रास होना, पीठ और कमर जकड़ जाना तथा मूत्रमें रक्त जाना, इत्यादि लक्षण भी उपस्थित होते हैं।

८. क्षयज कास लक्षण—भगवान् धन्वन्तरि लिखते हैं कि, इसरोगमें फुफ्फुस आदि अङ्गोंमें शूल चलना, ज्वर, दाह, मोह (बेहोशी) देहको धारण करने वाली प्राणशक्तिका क्षय, देह सूखकर दुर्बल होना, बार-बार थूकते रहना, शरीरमें मांस बिल्कुल कम होजानेसे देह हाड़-पिञ्जर-सा होजाना और दुर्गन्ध युक्त पूय (राध) मिश्रित कफ निकलना इत्यादि लक्षण दिन-प्रति-दिन बढ़ते जाते हैं। जब उपर्युक्त सब लक्षणोंकी उत्पत्ति हो जाती है, तब रोग दुश्चिकित्स्य होजाता है।

भगवान् आत्रेयने लिखा है कि, इस रोगमें पूयमिश्रित दुर्गन्ध युक्त, पीले, हरे कुछ लाल वर्णवाला बताशेके सदृश कफ निकलना, खांसने पर पार्श्वभाग स्थान भ्रष्ट हो जाने और हृदय गिर जानेके समान भासना, अकस्मात् गरमी और शीतकी इच्छा होते रहना, कभी शीत लगने पर उष्णताकी इच्छा न होना, कभी गरमी होती हो, फिर भी शीतकी इच्छा न होना, भोजन पूर्ण करनेपर भी दिन-प्रति-दिन बलका क्षय होता रहना इत्यादि लक्षण होते हैं तथा बिना हेतु मुँह स्निग्ध और प्रसन्न रहना, दाँत और नेत्र अच्छे प्रतीत होना, हाथ-पैरोंके तल मुलायम हो जाना, ईर्ष्या और घृणा करनेका स्वभाव हो जाना, ज्वर बना रहना, फुफ्फुस आदि अंगोंमें वेदना होना, पीनस, अरुचि, पतले फटे हुए दस्त और स्वरभेद आदि लक्षण भी हो जाते हैं। फिर रोग अति बढ़ जाने पर पीनस, श्वास आदि क्षयकारक लक्षणोंकी उत्पत्ति हो जाती है।

साध्यासाध्यता—यह रोग क्षीण देह वालोंके लिये घातक और बलवान् मनुष्यों के लिये याप्य या कष्टसाध्य हो जाता है। क्षयज और क्षतज रोग नया हो, दृढ़तापूर्वक पथ्य पालन किया जाय तथा सद्वैद्य श्रेष्ठ औषधि, आज्ञापालक परिचारक और सात्विक रोगी, ये सब युक्त हों, तो कदाचित् साध्य हो सकता है।

इस कास रोगमें वातज, पित्तज और कफज, तीनों प्रकार जो एक दोषज हैं, वे पथ्य पालन करने पर साध्य हो जाते हैं। द्विदोषज और वृद्धावस्थामें सब धातुओंका

क्षय होकर उत्पन्न हुए कास रोग, दोनों याप्य माने गये हैं।

जिस रोगीको (बहुधा क्षयज कासमें) पूयमिश्रित कुछ मैला, हरा-पीला रंगका कफ निकलता हो, श्वास, स्वरभंग आदि उपद्रव हों, वह नहीं बच सकेगा।

यह कास सामान्य प्रतीत होनेपर भी महा घातक है। इस हेतुसे कहावत बनी है, कि 'लड़ाईका मूल हांसी और रोगका मूल खांसी' शास्त्रकारोंने भी इसे अनेक रोगों को उत्पन्न करने वाला माना है। इस हेतुसे श्री० वाग्भट्टाचार्यने लिखा है कि—

कासाच्छ्वास-क्षय-च्छर्दि-स्वरसादादयो गदाः।
भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तं त्वरया जयेत्॥

इस कास रोगकी उपेक्षा करनेपर श्वास, वमन, स्वरभेद और पीनस आदि रोगोंकी उत्पत्ति होती जाती है, अतः इसकी सत्वर चिकित्सा करनी चाहिए।

उक्त हेतुओंके अतिरिक्त प्रतिश्याय होने और गलशुण्डिकाकी वृद्धि होनेपर कास प्रकाशित होती है, इस तरह अनेक रोगोंमें उपद्रव रूपसे प्रतीत होती है। इन सबका वर्णन मूलरोगोंके साथ किया जायगा।

कास संप्राप्ति—हारीत संहितामें लिखा है कि, कण्ठमें रहने वाली उदानवायु में विकृति हो जाती है तथा फुफ्फुस आदिमें रही हुई प्राणवायुका कफके साथ संयोग होता है। फिर छातीमें जमा हुआ कफ खांसनेसे कण्ठमें आजाता है। इससे खांसी चलने लगती है। कफधातु जब तक प्रकुपित न हो, तबतक इस कास रोगकी सम्प्राप्ति नहीं होती। इस हेतुसे हारीत आचार्य कहते हैं—

न वातेन विना श्वासः कासो न श्लेष्मणा विना।
न रक्तेन विना पित्तं न पित्तरहितः क्षयः॥

अर्थात् विना वातप्रकोपके श्वासरोग नहीं होता, विना कफ विकारके कास नहीं होती; विना रक्तविकृति पित्त (रक्तपित्त) नहीं होता और विना पित्तप्रकोप क्षय नहीं होता।

यूनानी ग्रन्थकार लिखते हैं कि, फेफड़ोंके मुँह या मांसमें सादे गरम दुष्ट रस अथवा सादे शीतल रसकी उत्पत्ति होजानेसे खांसी चलने लगती है अथवा कोई गरम या पतली चीज़ शिरकी ओरसे उतरकर फुफ्फुसोंमें खुजली और जलन उत्पन्न कराती है। या मस्तिष्कमें से मवाद उतरकर गाढ़ा और चिपचिपा होकर फुफ्फुसोंमें रुक जाता है, फिर खांसी हो जाती है। अलावा फेफड़ोंमें धुँआ या धूल भर जाना, पित्तमिश्रित रक्त आजाना, शुष्कता, सूजन, फुन्सियाँ या घाव हो जाना इत्यादिमेंसे कोईभी विकार होजानेपर खांसी उत्पन्न हो जाती है।

वास्तविक दृष्टिसे विचार करनेपर जाना जाता है कि, जब श्वास मार्गमें हानिकर पदार्थ धूल, अन्न आदि आजाता है, तब उसे नैसर्गिक शक्ति बलात्कारसे बाहर निकालनेके लिये प्रयत्न करती है। इस तरह कफ भी आजाय तो उसे भी बाहर

निकालनेके लिये नीचेसे दबाव उत्पन्न किया जाता है। विज्ञानकी दृष्टिसे जब हानिकर पदार्थ श्वासपथमें प्रवेश कर जाता है, तब श्वास पथमें रहे हुए वातवहानाड़ियोंके तन्तु उत्तेजित होते हैं फिर वहाँसे उत्पन्न हुई प्रेरणाके बलसे सुषुम्णामें स्थित श्वसन केन्द्रमें आवश्यक उत्तेजना उत्पन्न होकर, वह विजातीय या हानिकर पदार्थको बाहर निकाल देती है।

खांसीके प्रारम्भमें एक दीर्घ-श्वास लेकर फिर वायुको बाहर निकाला जाता है; किन्तु यह सरलतापूर्वक बाहर नहीं निकल सकता। कारण, स्वरयन्त्रका मुँह बन्द रहने या मार्गमें कफ आजानेसे प्रतिबन्ध होता है। इस हेतुसे उदरमें स्थित मांस पेशियाँ आदि फुफ्फुसपर नीचेसे दबाव डालती हैं और भीतरकी निरुद्ध वायुको सवेग बाहर फेंक देनेके लिये सतत प्रयत्न करती रहती हैं। जिससे अन्तमें स्वरयंत्र खुल जाता है और थोड़ा कफ बलपूर्वक निश्वासके साथ बाहर निकल जाता है।

इस श्वासनलिकाकी मांसपेशियोंको प्राणदा नाड़ियाँ (Vagus nerves) के तन्तु संकुचित करते हैं। इसके विरुद्ध इड़ा पिंगलाके तन्तु (Sympathetic nerves) इन पेशियोंको शिथिल बनाकर कफका परिमाण कम कराते हैं। इस तरह कफको बाहर निकालनेके लिये इन नाड़ियोंको विशेष श्रम करना पड़ता है। अधिक परिश्रमके हेतुसे जब इन नाड़ियोंमें शिथिलता आजाती है,तब बार-बार तमक श्वास(Asthma) सह कासका आक्रमण होता रहता है।

कास रोगका डॉक्टरी विवेचन

डॉक्टरीमें कासको रोग नहीं माना; इतर रोगोंका लक्षण कहा है। डॉक्टरी मतके अनुसार कासके मुख्य २ भेद हैं। प्रतिबन्धविरोधी और रोगदर्शक। भीतरके कफ, धूलि आदिको बाहर फेंकनेके लिये जो कास उत्पन्न होती है, वह प्रतिबन्धविरोधी है; और जो किसी रोग विशेषका बोध कराती है, उसे रोगदर्शक कहा है। रोगदर्शक प्रकारमें आर्द्र, शुष्क आदि अनेक विभाग होते हैं। आयुर्वैदिक कास रोगसे सम्बन्धवाले रोग डॉक्टरीमें निम्नानुसार हैं।

१. बृहद् श्वास नलिकाप्रदाह—Tracheitis.
२. आशुकारी श्वासनलिकाप्रदाह—Acute Bronchitis.
३. आशुकारी पूयमय श्वासनलिकाप्रदाह—Acute purulent Bronchitis.
४. चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह—Chronic Bronchitis.
५. श्वासनलिकाप्रसारण—Bronchiectasis.
६. रक्तमय कफस्राव—Haemoptysis.
७. सौत्रिक श्वासनलिकाप्रदाह—Fibrinous Bronchitis.
८. फुफ्फुसकी सौत्रिक अपक्रांति—Fibrosis of the Lungs.
९. कुक्कुर कास-काली खांसी—Whooping Cough.

(१) बृहच्छ्वासनलिकाप्रदाह

(ट्रेकाइटिस—Tracheitis.)

प्रकार—आशुकारी और चिरकारी। आशुकारी प्रदाह सामान्यतः ऊर्ध्वश्वासमार्गके प्रसेकसह।

(१) आशुकारी प्रदाहके कारण—

१. प्रतिश्यायका प्रसारण।

२. इन्फ्लुएन्ज़ा, कालीखांसी, रोमान्तिका।

३. फुफ्फुसोंमें उग्रताका आकर्षण-वाष्प, विषाक्त वायु, शीतल ओसमय (आर्द्र) वायु।

लक्षण—उरः फलकके पीछे दुःखदायी, बारम्बार कर्कश, शुष्क, वेदनाप्रद कास। श्वासनलिका (शाखा) प्रदाहका अभाव, स्वाभाविक आवाज़।

चिकित्सा—गंभीर हो तो आशुकारी श्वासनलिका प्रदाह (Bronchitis) के समान। लोहबान अर्ककी वाष्पका नस्य।

२. चिरकारी प्रदाहके कारण— (१) आशुकारीके अनुगामीरूप; (२) चिरकारी उग्रता उदा० तमाखु सेवन, नासिका या स्वरयन्त्रकी प्रादाहिक अवस्था, अर्बुद।

चिकित्सा—कफघ्न उपचार—लवंगादिवटी, मरिचादिवटी, कफकुठार रस। उष्णता शमनार्थ प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण मिश्रण।

(२) आशुकारी श्वासनलिकाप्रदाह

(एक्युट ब्रोंकाइटिज़—Acute Bronchitis.)

परिचय—श्वासनलिकाकी मुख्य बड़ी और मध्यम शाखाकी श्लैष्मिक-कलाका आशुकारी प्रसेकमयप्रदाह। प्रायः बृहच्छ्वासनलिकाकाभी अन्तर्भाव। अर्थात् बृहद्-मध्यम श्वासनलिकाप्रदाह (Tracheo Bronchitis)। इसके अतिरिक्त लघुशाखामें कैशिका (या प्रणालिका) श्वासनलिकाप्रदाह (Capillary Bronchitis) का भी समावेश, उसका वर्णन फुफ्फुसप्रणालिकाप्रदाह (Broncho-pneumonia) के भीतर चिकित्सा तत्त्वप्रदीप प्रथम-खण्ड (पृष्ठ २८४ से २९३ में किया गया है)।

इस रोगका आयुसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, तथापि बारम्बार वृद्ध मनुष्यों और बच्चोंपर गंभीर आक्रमण होता है। विशेषतः आक्रमण ऋतु परिवर्त्तन कालमें।

निदान—

१. पूर्ववर्त्ती कारण—बालकोंमें दाँत निकलना, अस्थिवक्रता और विशेषप्रकारके ज्वर-रोमान्तिका, क्वचित् मधुराके द्वितीय या तृतीय सप्ताहमें कालीखांसी आदि। प्रतिश्यायके विषका निम्न ओर प्रसारण।

२. उद्दीपककारण—छातीको शीत लगजाना (कितनेक वंशोंमें या कुटुम्बोंमें शीतका आक्रमण सहज होजाता है), उष्ण वायु-मण्डल (एञ्जिन आदिकी गर्मी

या प्रचण्ड सूर्यतापमें रहना), वायु-मण्डलमें नैसर्गिक परिवर्त्तन, धूलमय वातावरण, गद्दी तकियेपर बैठे रहने योग्य व्यापार ।

३. वृक्कप्रदाह, हृदयकी क्षति—मधुमेह, अस्थिवक्रता आदि रोगभी इस रोगकी वृद्धिमें सहायक ।

कीटाणुविज्ञान—सामान्यतः न्युमोकोकस, स्ट्रेप्टोकोकस भी कभी प्रतिश्यायके कीटाणु और इन्फ्लुएञ्जाके कीटाणु ।

शारीरविकृति—बृहच्छ्वासनलिका और मध्यश्वासनलिकाकी श्लैष्मिक-कला लाल, रक्त-संग्रहमय और श्लेष्मासे आच्छादित ।

पिटिकामय ज्वरों (Eruptive Fevers) में श्वासनलिका की सब ग्रन्थियाँ स्फीत । फिर अपक्रान्तिका प्रारम्भ ।

लक्षण—

आक्रमण—शीत लगनेके समान सार्वाङ्गिक बेचैनी (क्षण-क्षणमें सार्वाङ्गिक दाह या उष्णता), शिरमें भारीपन, आमाशयमें भारीपन, सामान्यतः मलावरोध, आवाज़में सामान्यतः भारीपन, कुछ उत्तापवृद्धि, कभी १००° से १०१° (किसीको १०३° तक), नाड़ी भरी हुई, जिह्वा मलयुक्त । श्वासनलिकाके लक्षण (आक्रमण कालमें) खांसी (१ दिन शुष्क कास, फिर आर्द्र), खिंचाव और छातीमें दबाव, केवल कार्य करनेपर श्वासकृच्छ्रता ।

वृद्धि—इसकी ३ अवस्थाएँ प्रतीत होती हैं ।

१. शुष्ककास श्लेष्म अपूर्ण और चिपचिपा ।

२. शिथिलकास-श्लेष्म अधिक और कफ पूयमय ।

३ कास प्रायः विरामसह-श्लेष्मा पूयमय ।

स्वस्थावस्था प्राप्त होनेपर स्थितिका निवारण या लम्बे समयतक बनी रहना । रक्तकासका अभाव । कभी प्रसनिकामें से किञ्चित् रक्त आना ।

प्राकृतिक चिह्न—श्वासोच्छ्वास किञ्चित् बढ़ा हुआ ।

स्पर्श—श्वासनलिकाकी दीवारमें कम्पन ।

ध्वनिश्रवण—नानाविध अस्वाभाविक ध्वनि (Rales) और शुष्कध्वनि (Rhonchi) ।

आर्द्रता या शीत लगने अथवा जलसे भीगनेपर देहमें भारीपन आ जाना, छातीपर दबाव या खिंचने समान भासना अथवा उरःफलकास्थिके नीचे भोजनका कुछ अंश रुक जानेके समान भासना । नासा गह्वर और तालुमें शुष्कता, श्वासद्वारा गृहीत वायुमें शुष्कता भासना, हाथ-पैरोंके तलोंमें जलन, बृहच्छ्वास नलिकामें कुछ वेदना और शूलका अनुभव होना, छातीमें स्थान-स्थान पर वेदना, ज्वर रहना, नाड़ी तीव्रगति युक्त किन्तु क्षीण, प्रारम्भमें कष्टदायक शुष्क कास, खांसनेके समय छातीके भीतर पीड़ित

स्थानपर वेदनावृद्धि और व्याकुलता, पीड़ाके हेतुसे वेदना वाले स्थानको हाथसे दबाकर खांसना, बारबार खांसनेसे स्वरयन्त्र और ग्रसनिकामें पीड़ा हो जाना तथा कासके वेगसे अनेक बार स्वरभंग हो जाना आदि।

रोगीकी वक्षःपरीक्षा करनेपर वक्षःके पश्चात् प्रदेशमें दोनों कन्धोंके बीचमें श्वासनलिकाके भीतर श्वासोच्छ्वास ध्वनि बढ़ी हुई। वायुका आवागमन रूक्ष, स्फीत और प्रदाहयुक्त श्लैष्मिक-कलाको स्पर्श करके होता है; इस हेतुसे आवाज़ अपेक्षाकृत कर्कशा यह ध्वनि छातीकी दीवारपर सर्वत्र। निःश्वासकी आवाज़ बढ़ी।

बालकोंके दाँत आनेके समय इस रोगकी उत्पत्ति हो जाय, तो द्रुत आक्षेप उत्पन्न हो जाता है। फिर ज्वर आता है, तब वेगवती नाड़ी, प्यास, मस्तिष्कमें भारीपन, आदि ज्वरके लक्षण। पेशाबमें फोस्फेट जाता है। रोग बढ़नेपर श्वासोच्छ्वासमें तेज़ी तथा छातीमें खिंचावट और वेदना।

द्वितीयावस्थाके प्रारम्भमें थोड़े परिमाणमें झागयुक्त चिपचिपे, श्लेष्ममय नमकीन कफ। रोग बढ़नेपर कफ गाढ़ा, धूसर वर्णका या हल्दीके सदृश पीला और कभी-कभी रक्तके चिह्न युक्त। कभी-कभी कफ गाढ़ा बताशेके समान गोल बन्धा हुआ बनजाता है। इस अवस्थामें वक्षःपरीक्षा करनेपर सूक्ष्म, आर्द्र आगन्तुक ध्वनि। पश्चात् ये सब ध्वनि आर्द्र बृहद् बिम्बस्फोटनवत्।

इस रोगमें जो भौतिक चिह्न होते हैं, इनको भी जानना चाहिये। वक्षः पर ठेपन परीक्षा करनेपर कोई साक्षात् फल नहीं होता। स्वस्थावस्थामें ठेपनध्वनिमें कोई विलक्षणता नहीं होती, यह कितनेक अंशमें सत्य है। फुफ्फुसकोष विस्तार होनेपर ठेपन ध्वनिमें वृद्धि। इसके अतिरिक्त श्वासनली श्लेष्मद्वारा अवरुद्ध होनेपर फुफ्फुसका कोई अंश वायुरहित हो, तो फुफ्फुसोंमें स्थानिक संकोच या अवसाद। फिर वहाँपर घन (Dull) ध्वनिकी उत्पत्ति।

अनेक स्थलोंमें स्पर्श परीक्षा करनेपर कम्पनकी प्रतीति। कासकी प्रथमावस्थामें ध्वनिग्राहक यन्त्रसे सुननेपर कोई विशेष चिह्न नहीं; परन्तु कुछ कालके पश्चात् श्वासोच्छ्वास ध्वनिका रूपान्तर, फिर वह ध्वनि विविध आगन्तुक आवाज़द्वारा आच्छादित। उस समय शुष्क या आर्द्र ध्वनि श्वास-नलिकाके भीतर आवरणकलाकी स्फीतिके हेतुसे नलीका आकुंचन। इसी हेतुसे शुष्क ध्वनिकी उत्पत्ति। नलीमें श्लेष्मा है, तो उसमेंसे वायुका आवागमन होनेसे आर्द्रध्वनिकी उत्पत्ति। शुष्क ध्वनि बृहच्छ्वासनलिकामें होनेपर उसे कूजनध्वनि (Rhonchus) और सूक्ष्म प्रणालिकाओंमें होनेपर उसे वेणुवादनवत् 'शी-शी' ध्वनि (Sibilus) कहते हैं। यह ध्वनि फुफ्फुसके वैधानिक विकार और संभवतः फुफ्फुसोंकी दृढ़ता दर्शानेके लिये उपस्थित। विशेषतः आर्द्र आवाज़को केशमर्दनवत् ध्वनि (Crepitus) कहते हैं। बड़ी या छोटी नलिकामें स्थिति अनुसार ध्वनि दो प्रकारकी—बड़ी और छोटी। नलीमें रसस्राव होने पर आवाज़ परसे

इसका बोध हो जाता है। इसी हेतुसे उत्सृष्ट श्लेष्मामें वायुके बुद्बुदे फूटते हैं। स्मरण रखना चाहिये कि, कभी-कभी वक्षःप्रदेशके किसी-किसी स्थानपर श्वासोच्छ्वास ध्वनि क्षणभरके लिये सुननेमें नहीं आती। श्वासनलिका, श्लेष्मद्वारा अवरुद्ध होनेपर ऐसा होता है। इसी हेतुसे कभी-कभी फुफ्फुसके किसी-किसी अंशका संकोच या पतन उपस्थित होता है। फिर दूसरे अंशमें क्रियाधिक्य हो जाता है। परिणाममें कासके अतिरिक्त वेगसे फुफ्फुसकोष विस्फारणग्रस्त हो जाते हैं।

क्रम—स्वस्थ मनुष्योंमें १ सप्ताहमें तृतीयावस्थाकी प्राप्ति और दो सप्ताहमें आरोग्य प्राप्ति। बालकोंमें श्वासप्रणालिकाओंमें प्रदाह फैल जाना, फिर उस हेतुसे आकुंचन और श्वासप्रणालिकाप्रदाहकी प्राप्ति (चिह्न-क्षुद्र-क्षुद्र भागोंमें जड़ ठेपन और नालीय ध्वनि), वृद्ध व्यक्तियोंमें तलभाग पर कफ संगृहीत होना और मन्द-मन्द फुफ्फुसप्रदाह।

रोगविनिर्णय—क्वचित् ही कठिन, किन्तु आक्रमण कालमें विशेष ज्वरसे प्रभेद करना चाहिये।

साध्यासाध्यता—परिणाम शुभ। अति छोटे शिशु और अति वृद्धोंके लिये कष्ट कर।

चिकित्सा—सौम्य रोगियोंमें प्रतिश्यायके सदृश। कमरेमें उष्ण जलकी वाष्प उत्पन्न करें। प्रातःकालको उदरशुद्धि करें। रात्रिको गरम पेय दें। शान्त निद्रा की व्यवस्थाकरें और त्वचाको उष्ण रक्खें।

१. प्रथमावस्थामें शुष्ककास होनेपर स्वेदल, सारक और कफ शामक औषधि देवें। रात्रिको गरम पेय और निद्राप्रद औषधि (आवश्यकता हो तो)। लोहबान अर्ककी वाष्पका नस्य।

२. द्वितीयावस्थामें कफ शिथिल होनेपर उत्तेजक कफघ्न औषधि वाष्पका नस्य देते रहें। अफीम न देवें। कासका गम्भीर दौरा होता हो, तो सूचीबूटीका अर्क (Tr. Belladonnae) मिला देवें। आयुर्वेदमें कफ कुठार, अभ्रक भस्म, शृंगभस्म उत्तम औषधि हैं।

३. तृतीयावस्थामें कफ दृढ बनने पर कफहर योग। शामक रूपसे अफीम। गात्रनीलता हो तो अफीम का निषेध।

ज्वरावस्थामें ज्वरके अनुरूप पथ्य पालन करें।

(३) आशुकारी पूयमय श्वासनलिका प्रदाह

एक्युट प्युरुलेण्ट ब्रोंकाइटिस-सफोकेटिव केटेर्ह।

(Acute Purulent Bronchitis-Suffocative catarrh.)

व्याख्या—यह श्वासनलिकाके आशुकारी प्रदाहकी एक जाति है। यह व्यापक रूप धारण कर चारों ओर फैल जाता है। स्वभाव पूयमय कफ स्राव करानेका

निदान—न्युमोनियाके डिप्लोकोकस, इन्फ्लूएन्जाके हिमोफिलस तथा प्रतिश्यायके निसेरिया (Neisseria) कीटाणु कफके भीतर (१९१८-१७ ई० जनपद व्यापी प्रकार में) उपस्थित ।

संप्राप्ति—मध्यम और लघुतर श्वास-नलिकाका पूयमय प्रदाह। वायु कोषाणुओं में सौत्रिक तन्तुमय स्राव।

लक्षण—रोगी अकस्मात् व्याकुलता, शीतकम्प और ज्वरसह पीड़ित होता है। कासकी वृद्धि, अति छोटे श्वास तथा बंधा हुआ कफ।

चिह्न—देखनेपर गात्रनीलता और स्पष्ट श्वासकृच्छ्रता। नासासेतु और श्वसन-क्रिया कराने वाली अन्य सहायक मांस पेशियाँ पीड़ित। फुफ्फुसोंमें जड़ता नहीं, स्पर्श करनेपर दोनों पार्श्वोंपर कम्पका अनुभव। श्वसनध्वनि प्रायः निर्बल तथा शिखर से तल तक मध्यम बिम्बस्फोटन ध्वनि, प्रायः प्रतिदिन १०-१५ औंस पूयमय कफस्राव।

प्रभेदक रोग विनिर्णय—गात्रनीलता, श्वासकृच्छ्रता। पूयमय कफ, ये सब अन्य आशुकारी प्रकारसे भेद करा देते हैं।

क्रम और उपद्रव—यह अति गम्भीर रोग है। १-३ सप्ताहमें आराम या २-३ दिन में मृत्यु। हृत्साद यह महत्वका उपद्रव है।

साध्यासाध्यता—रोग अति घातक।

चिकित्सा—आशुकारी प्रसेकमय श्वासनलिकाप्रदाहके अनुसार उपचार; किन्तु गात्रनीलताके लिये हो सके उतना अधिक प्राणवायु (ओक्सिजन) दो नासा-नलिकाद्वारा देते रहना चाहिये।

आयुर्वेदिक शृंगभस्म, अपामार्गक्षार, वंगक्षार, कासकण्डनावलेह और कफ कुठार उत्तम औषधियाँ हैं। अभ्रक और शृंग, (कासकण्डनावलेह या अपामार्गक्षार और शहदके साथ देनेपर सरलतासे सत्वर कफ निकलता है; गात्रनीलता दूर होती है, तथा उत्तापका ह्रास हो जाता है।

(४) चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह

(क्रोनिक ब्रोंकाईटिस—Chronic Bronchitis)

निदान—(१) गुप्त आक्रमण, अधिक धूम्रपान या ऊर्ध्ववायुमार्गमें कीटाणुओंका संक्रमण। (२) आशुकारी श्वासनलिकाप्रदाहकी जीर्णावस्था या पुनराक्रमण। (३) फुफ्फुसप्रदाह आदि रोगोंके पश्चात् सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्ति। (४) वृक्क अथवा हृदयके रोगों का परिणाम।

शारीरिक विकृति—श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक-कला शुष्क और पतली दीवारें मोटी होजाना, कुछ रोममय आच्छादक-कला उपस्थित, सतहपर कुछ श्वेताणु।

उप-श्लेष्मामें सौत्रिकतन्तु और कितनेक गोल घटक। वायुकोषोंका प्रसारण विद्यमान ।

लक्षण—शीतकालमें पुनः-पुनः आक्रमण या लक्षणोंकी वृद्धि। उष्ण ऋतुमें रोगी रोगमुक्त।

१. श्वासकी लघुता—थोड़ा-सा श्रम लेने पर।

२. कास—विशेषतः रात्रिको कष्टकर। दौरा होने पर चक्कर आजाना।

३. कफ—सामान्यतः विपुल, श्लेष्मपूयमय। प्रातःकाल अत्यधिक; कभी अभाव।

४. सार्वाङ्गिक स्वास्थ्य—प्रायः अच्छा। ज्वराभाव। प्रायः रोगी कृश होता है। अति बलवान् मनुष्यको कास हो तो वह अधिक कष्टकर।

५. वायुकोष प्रसारण—कभी अभाव। वृक्क, हृदय और अन्य स्थानोंके रोग विद्यमान होनेपर उनके लक्षण भी उपस्थित।

रोगदर्शक चिह्न—मुख्यतः वायुकोष प्रसारणके चिह्न छाती प्रसारित, रोग स्थानकी वृद्धि कम, दीर्घ निःश्वास। नानाविध अस्वाभाविक ध्वनि और शुष्क ध्वनि। प्रायः मुख-मण्डल पर कुछ ताम्रनीलता तथा अंगुलियोंके अन्तिम पर्व प्रसारित।

प्रकार—

१. शुष्कप्रसेक—(शुष्क श्वासनलिका-प्रदाह-Bronchitis sicca) कफ स्वल्प। कासका गम्भीर ज़िद्दी आक्रमण (आयुर्वैदिक वातिक कास)।

२. अधिक कफस्राव—(Bronchorrhoea)—कफ अधिक मात्रामें (कभी कितनेक सेर), सामान्यतः पूयमय, अन्योंमें जलमय (रसत्वचासे स्राव-Bronchorrhoea Serosa)। वर्षों तक स्थिर। सामान्यतः श्वास नलिकाका प्रसारण।

३. पूतिकास—अर्थात् दुर्गन्धमय श्वासनलिकाप्रदाह इसका विवेचन आगे श्वासनलिकाप्रसारण (Bronchiectasis) में किया जायगा।

क्रम—वर्धनशील स्वभाव। कुछ कालके पश्चात् वायुकोषप्रसारण, तमकश्वास, श्वासनलिकाप्रसारण, हृदयप्रसारण की वृद्धि (प्रायः निलय खण्डकी वृद्धि)।

वायुकोष प्रसारण होनेपर श्वासविकृति, श्वासनलिकाप्रसारण होनेपर बारम्बार कासका दौरा और दुर्गन्धमय कफस्राव। हृदयविकृति होनेपर क्षीणनाड़ी और सर्वाङ्ग शोथ।

साध्यासाध्यता—यह रोग सामान्यतः जीर्ण होनेपर या विपरीत वातावरणमें रहने पर असाध्य।

रोगविनिर्णय—सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्ति, राजयक्ष्मा और श्वासनलिका प्रदाहका प्रभेद करलेना चाहिये।

चिकित्सोपयोगी सूचना—पुनराक्रमणसे रक्षार्थ विशेष प्रयत्न करना

श्वासनलिका

श्वासनलिका प्रसारण जन्य, हृदयके पीछे आकुंचित अधो फुफ्फुस खण्ड

चाहिये। लक्षणोंके ह्रासके लिये उपचार करें। हृदयपतन न हो और पिछली ओर फुफ्फुसके ऊपर दबाव न बढ़े, यह सम्हालें।

रोगीको ठण्ड न लग जाय, यह सम्हालना चाहिये। सीलवाले मकान या धूलिवाले वातावरणमें नहीं रहें। शीतकालमें ऐसे स्थानपर रहें कि, जहाँ बराम्बार वर्षा न हो तथा शीत सहन हो सके उतनी हो। मकान अच्छा हवादार और उष्ण होना चाहिये। भोजनमें घृत-तैल अधिक लें। श्वसनक्रिया नासिकासे ही करें।

निर्बलता आगई हो तो पौष्टिक औषधि अभ्रक, रस सिंदूर आदि मिला दें। फुफ्फुसयंत्रमें निर्बलता आई हो और उत्तेजक औषधिकी आवश्यकता हो तो कुचिला प्रधान औषधि नवजीवनरस या अभ्रक+श्रृंगभस्म दें।

दुर्गन्धमय कफ हो तो कफघ्न, रक्तशोधक और कीटाणुहर औषधि। डॉक्टरीमें पोटास आयोडाइड, एमोनियाकार्ब मिश्रित देते हैं। आयुर्वेदमें यह कार्य अभ्रक+बङ्ग+श्रृंग और अपामार्ग क्षार (या वंगक्षार) के मिश्रणसे उत्तम होता है। एवं लोहबान अर्ककी वाष्पसे स्वेदन कराने (नस्यदेने) से भी लाभ पहुँचता है।

आयुर्वेदके मतानुसार जीर्ण कासरोगीको जल गरम करके शीतल किया हुआ पीना चाहिये। सुबहको गरम किया हुआ शामतक और शामको गरम किया हुआ सुबह तक उपयोगमें लेवें।

कास अति दुःखदायी चलती हो, तो डॉक्टरीमें अफीम सत्व हिरोइन (Heroin) या अफीम-मिश्रित कपूर अर्क देते हैं। आयुर्वेदमें लवंगादिवटी मुँहमें रखकर रस चूसाते हैं, इससे भी कास वेग कम हो जाता है और कफ सरलतासे निकलता रहता है अथवा वेग शमनार्थ प्रवल+ सितोपलादि घी शहदसे दें यूनानी मत अनुसार शर्बत जूफा देनेसे अथवा आयुर्वेदीय कफकर्तन रस या वासाहरीतक्यावलेह देनेसे भी कफसत्त्वर शिथिल होकर निकलता रहता है।

रात्रिको कास चलती रहनेसे निद्रामें बाधा होती हो तो डॉक्टरी में हिरोइन देते हैं। आयुर्वेदमें निद्रोदयरस आवश्यकता पर शराब या द्राक्षारिष्ट भी दिया जाता है।

सूचना—गम्भीर वायुकोष प्रसारण हो या गात्रनीलता हो तो अफीमप्रधान औषधि हानि पहुँचाती है।

(५) श्वासनलिकाप्रसारण

ब्रोङ्की एक्टेसिज़—डिलेटेशन ऑफ दी ब्रोङ्काई

(Bronchiectasis-Dilatation of the Bronchi.)

निदान—(१) यांत्रिक, (२) संक्रामक और (३) जन्मजात।

१. **यान्त्रिक कारण**—भीतरसे आंशिक प्रतिबन्ध या बाहरसे दबावद्वारा

श्वासनलिकाका आकुंचन होने पर आकुंचित श्वासनलिकाकी अन्य दीवारके गौण प्रसारणसह दीवारके अन्तर्गत दबावका पतन। परिणाममें श्वासनलिका प्रसारण। आकुंचन हेतु-अ. बाह्यद्रव्यका प्रवेश, दाँत, अस्थि, गलग्रन्थि, नासापश्चिम ग्रन्थि, उपजिह्विका आदिके टुकड़े या स्नान करनेके स्पंजके टुकड़े आदिका प्रवेश। आ. धमन्यर्बुद या अर्बुदका दबाव। इ. फुफ्फुसके सौत्रिक तन्तुओं-का फुफ्फुसावरणसे संयोजन होकर खिंचाव। फिर श्वासनलिका प्रसारण। इस तरहकी संप्राप्ति विधानान्तर्गत फुफ्फुसप्रदाह (Interstitial Pneumonia), श्वासप्रणालिका प्रदाह, फिरंग, राजयक्ष्मा, गौण या चिरकारी उरस्तोय, कालीखाँसी, रोमान्तिका, इन्फ्लूएन्झा अथवा छातीमें तीक्ष्ण शस्त्रके अभिघात होनेके पश्चात्।

२. कीटाणु संक्रमण—श्वासनलिकाकी दीवारके भीतर चिरकारी पूयोत्पत्ति होनेपर वह निर्बल और पतली होती है; साथ-साथ प्रबलकास उपस्थित होनेसे श्वासनलिकाका प्रसारण संप्राप्ति गलनशील पदार्थका श्वासनलिकामें प्रवेश, चिरकारी पूयमय श्वासनलिकाप्रदाह और फुफ्फुस विद्रधि होने पर।

३. जन्मजात कारण—यह प्रगतिमें बाधक है।

संप्राप्ति—नानाविध सम्प्राप्ति। विस्तृत भागमें या थोड़ेमें। विशेषतः फुफ्फुस खण्डपर प्रसारण प्रतीयमान। सौत्रिकतन्तुके आकुंचन और वायु कोष प्रसारणके क्षेत्र पर। संभवतः मुख्य वामश्वासनलिकाके शारीरिक सम्बन्धसे वाम फुफ्फुस अत्यधिक समय प्रभावित। निम्न खण्ड ऊर्ध्वखण्डकी अपेक्षा अधिक प्रभावित। प्रसारण प्रकार।

अ. स्थलीसदृश-(Saccular)—यह अति छोटी नलिकाका गोल लट्टू सदृश, रेडियोग्राफ से देखनेपर अंगूरके गुच्छा सदृश।

आ. नली सदृश-(Cylindrical or rat tail) यह बड़ी नलिकाका। देखाव दस्तानेमें रही हुई अंगुलियोंके सदृश। दीवार प्रसारित।

लक्षण—गुप्त आक्रमण। यदि रसस्राव हो तो गुप्त। बाह्य पदार्थका प्रवेश होने पर आक्रमण सत्वर। लक्षणोंका आधार प्रसारणके विस्तार तथा स्रावके गलन और मात्रा पर है। अच्छी तरह बढ़े हुए रोगीमें।

१. कास—प्रचण्ड आक्रमण, जब स्राव अनुभवग्राही श्लैष्मिक-कला तक पहुँचता है, विशेषतः प्रातःकालको, प्रायः दिनमें १ या २ बार, तब। कास और कफ स्राव भावभङ्गी से परिवर्त्तन।

२. दुर्गन्धित कफ—अ. अधिक मात्रामें। आ. मधुर अति अप्रिय वासयुक्त। मधुरके झागदार, तरल और बन्धा हुआ, ये ३ प्रकार। कफकी गांठ बनने पर श्वेताणु और स्फटिकमय।

वक्तव्य—प्रचुर कफ होने पर भी सर्व समय नियमपूर्वक दुर्गन्धमय नहीं होता। कितनेक रोगियोंके निःश्वासमें सड़ी हुई दुर्गन्ध। २४ घण्टोंमें कफ १ से २० औंस या अधिक गिरता है। कफ अनेक बार राजयक्ष्माकी तृतीयावस्थाके सदृश अर्थात् हरिताभ, मोटा, बन्धा हुआ और पूयमय।

३. रक्तमय कफ—व्रण होजाने पर कफको रक्त लग जाता है। क्वचित् अधिक। सामान्यतः बारम्बार अल्प मात्रामें।

४. प्रसारित पर्वमय अंगुलियाँ—अंगुलियोंके अन्तिम पर्वकी अस्थि छोटी और चौड़ी तथा नाखून आगे निकले हुए, यह लक्षण अति सामन्य है।

५. सार्वाङ्गिकस्थिति—निस्तेजता, कुछ नीलापन, किन्तु विशेषतः अच्छा स्वास्थ्य। श्वासोच्छ्वास कष्टकर। ज्वर मन्द या अभाव, निद्रानाश, कृशता श्रम लेने पर श्वासकृच्छ्रता। विवरमें से कफ निगलजाने पर प्रसन्नता। बहुधा रात्रिको और प्रातःकाल उठने पर कास आना।

६. विषप्रकोप—पुनः-पुनः ज्वरका आक्रमण, कास और कफप्रकोप। सार्वाङ्गिक स्थिति सदोष। सौम्य प्रकार होनेपर दुर्गन्धमयकफका अभाव। अच्छे स्वास्थ्यकी प्राप्ति। स्थिति सामान्यतः उन्नत।

भौतिक चिह्न—विशेषतः एक पार्श्वमें और आधार स्थानपर। चिरकारी श्वासनलिका प्रदाह और वायुकोषप्रसारण प्रायः अप्रभावित स्थानमें विद्यमान। हृदयकी वृद्धि। जब श्वासनलिका शुष्क हो तब कम मात्रामें। चित्र नं० २० में देखें।

दर्शन परीक्षा—सौत्रिक तन्तु चिह्न।

ठेपन—क्षीण, कुछ जड़ता।

ध्वनि श्रवण—यदि प्रसारण रिक्त हो, तो कौप्यक, आगन्तुक अस्वाभाविक और शुष्क ध्वनि; प्रसारण कफपूर्ण हो तो श्वासध्वनिका लोप, अस्वाभाविक ध्वनिमंद। मध्यम प्रकार हो तो श्वासग्रहण कालमें आधार स्थानपर अस्वाभाविक ध्वनिकी उत्पत्ति।

आशुकारी श्वासप्रणालिका विस्तार—(Acute Bronchiolectasis) प्रणालिकाएँ प्रसारित। फुफ्फुस पूयपूर्ण कोषाणुसह, मधुमक्षिकाके गृह सदृश। बहुधा बड़ी नालिकामें इन्फ्लूएन्ज़ा होनेके पश्चात्।

उपद्रव और अनुगामी विकार—

१. विगलन-(Sepsis)-विशेषतः मस्तिष्क विद्रधि। गलनात्मक फुफ्फुसप्रणालिकाप्रदाह, उरस्तोय, हृदयावरणप्रदाह और फुफ्फुस कोथ भी। सब घातक।

२. श्वासनलिकाप्रदाहका पुनराक्रमण।

३. संधिप्रदाह-(Arthritis.)

४. वृद्धियुक्त फुफ्फुसस्थ अस्थिसंधि विकृति–सब अवस्थाओंमें। प्रसारित पर्वमय अंगुलियोंसे अति बारम्बार प्राप्ति, कभी आदर्श स्थिति।

रोग विनिर्णय—लक्षणोंपरसे सरल। ऊर्ध्व-खण्डके आधार स्थानपर विवर, इस रोगकी सूचना करता है। निम्न रोगोंसे इसे पृथक् करना चाहिये।

१. चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह।

२. फुफ्फुस विद्रधि—शारीरिक रचनामें प्रबल चिह्न। बहुधा ऊपर दबाने पर वेदना वृद्धि।

३. जन्मजात स्थलीमय फुफ्फुस—लक्षण लगभग समान, प्रायः वर्षोंतक विना उन्नति शील।

४. राजयक्ष्मा—ऊर्ध्व-खण्डके प्रसारित नलिकामें। क्षय कीटाणुओंका अभाव होनेपर क्षय नहीं होता।

साध्यासाध्यता— विशेषतः दोनों पार्श्वोंमें होनेपर पूर्ण बढ़े हुए रोगका परिणाम अति खराब। पथ्य पालन करनेपर वर्षों तक अच्छा आरोग्य रह सकता है। गलनात्मक प्रकार, हृदय पतन, मस्तिष्क विद्रधि, फुफ्फुस कोथ और कभी रक्तमय कफ, ये सब प्राणघातक हैं।

रोग एक फुफ्फुसमें होनेपर फुफ्फुस खण्डका छेदन (Lobectomy) करानेसे परिणाम शुभ।

श्वासनलिका प्रसारण चिकित्सा
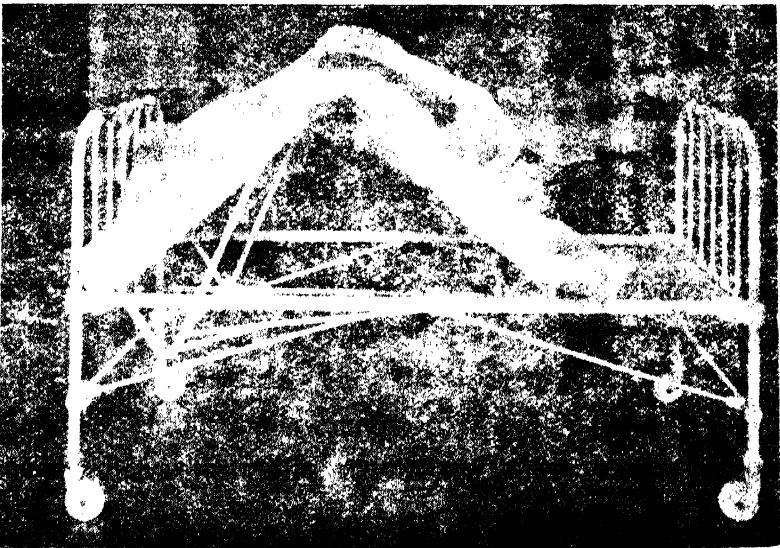
१. औषधोपचार—सार्वाङ्गिक स्वास्थ्यके लिये आवश्यक। (१) विवरोंको रिक्त करनेके लिये; (२) प्रतिविषद्वारा दुर्गन्धमय द्रव्यको दूर करनेके लिये। विवरों को रिक्त करनेके लिये पलंगके किनारेपर मस्तिष्कको नीचे झुकावें। (पैर या कटि भाग ऊँचा रक्खावें) हृदयकी स्थिति विपरीत रहेगी। इसके लिये चित्रमें दर्शाये अनुसार नेलसन पलंगका उपयोग हितावह है। इस स्थितिको निम्न निष्कासन पद्धति (Postural drainage) संज्ञा दी है। प्रतिविष चिकित्सार्थ डॉक्टरीमें क्रियोसोट व्यवहृत होता है। आयुर्वेदमें प्रवालपिष्टी, अभ्रक भस्म और शृंगभस्म खिलाते हैं।

डॉक्टरीमें १ औंस क्रियोसोटको पीतल या जर्मनसिल्वरकी तश्तरीमें रखकर स्पिरिट लेपकर रखते हैं (१७० घन फीटके कमरा के लिये १ औंस क्रियोसोट) यह प्रयोग १०-१५ मिनट तक सप्ताहमें २-३ बार करते हैं अथवा क्रियोसोट, स्पिरिट मेन्थोल और स्पिरिट क्लोरोफार्म, तीनों २०-२० बूँद मिला लेवें। फिर देगची (Kettle) में १० छटाँक जल डाल चूल्हेपर चढ़ावें। जल अच्छी तरह उबलनेपर औषधिका मिश्रण डाल फिर रबरकी नलीद्वारा सुंघाते रहें। १ मिनिटमें ७-८ बार सुंघावें। इस तरह १० मिनिट तक प्रातःसायं वाष्प देते रहें। सुंघानेके समय देगची को अग्निपरही रहने देवें।

इसके अतिरिक्त वर्तमानमें बर्नी-यीओ (Burney yeo) के वाष्पयन्त्रमें क्रियोसोटकी बूँदें डालकर उस यन्त्रको कानपर अटकाकर रात्रि-दिन उसमेंसे श्वसन कराते हैं।

आयुर्वेदमें गूगल और लोहबानको निधूँम गोबरीकी अग्निपर जलाकर नस्य कराते हैं, यह विशेष उपकारक है।

शस्त्रोपचार—फुफ्फुसखण्ड छेदन। परिणाम शुभ। किन्तु ४५ वर्षसे अधिक आयु हो या हृयकी संचालक नाड़ियोंकी विकृति हो, तो नहीं।

कृत्रिम वायु पूर्ण फुफ्फुस—(Artificial Pneumothorax) एक पार्श्वगत विकार हो और फुफ्फुसावरण मुक्त हो तो अच्छा परिणाम। आकुंचन कतिपय वर्षों तक।

अनुकोष्ठिका नाड़ी छेदन–(Phrenic Avulsion)–परिणाममें महाप्राचीरा वध।
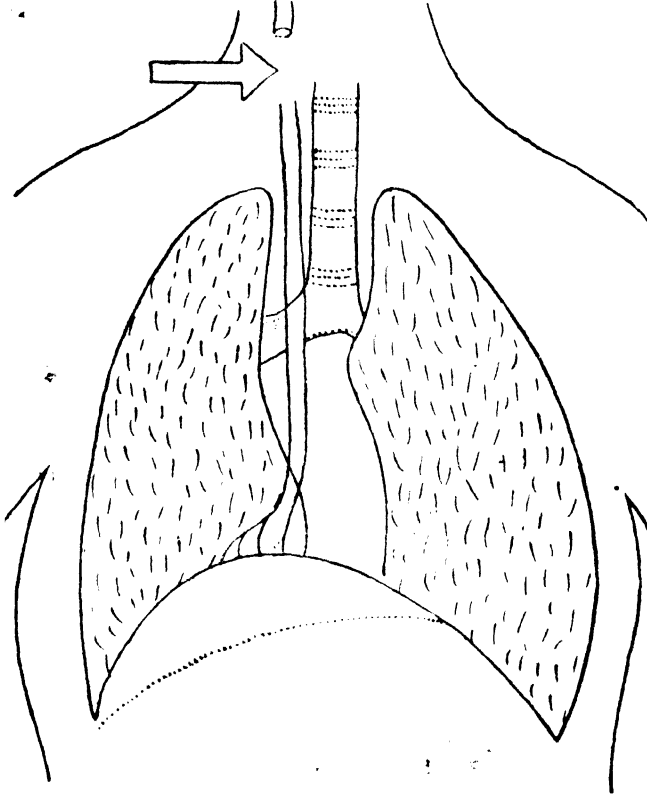
PHRENIC AVULSION
अनुकोष्ठिका नाडी छेदन

उरःपंजरके कोमल तन्तुओंका परिवर्त्तन—(Thoracoplasty) पूर्वोक्त प्रणालियाँ असफल होनेपर।

द्रव आकर्षण—श्वासनलिकाकी परीक्षा करके द्रव आकर्षण करलेनेपर पुनः-पुनः निरीक्षण किये हुए शस्त्रोपचार द्वारा परिणाम शुभ आता है।

(६) रक्तमय कफस्राव

(क्षतकास-हिमोप्टाइसिज़—Haemoptysis)

इस रोगमें कफके साथ या कफके स्थानपर केवल रक्त गिरता है। मुँह, नाक या ग्रसनलिकामेंसे रक्त गिरे, उसका अन्तर्भाव इस रोगमें नहीं होता।

निदान—

बारम्बार उपस्थित होनेवाले कारण—

१. राजयक्ष्मा—अ. प्राथमिकावस्था—कैशिकाओंमेंसे शनैः-शनैः रक्तरस टपकना; आ. जीर्णावस्था—रक्तवाहिनी गलजानेपर प्रचुरस्राव।

२. द्विपत्रकपाटका आकुंचन (हृदयकी अन्य क्षति सामान्य नहीं है)।

(नैमित्तिक कारण)

३. कतिपय फुफ्फुस व्याधियाँ—अ. फुफ्फुसप्रदाहमें फुफ्फुसकी दृढ़ता होनेके पश्चात् कोमल होजाना; आ. कोथमय शल्य (हृद्रोगसह उपस्थित); इ. नववर्धन, श्वासनलिका प्रसारण (केवल गुप्त होनेपर), फुफ्फुसमें धूली आदिका संग्रह, कोथ, विद्रधि।

४. महाधमन्यर्बुद—अ. श्वासनलिका गलजानेपर स्थली (अर्बुद) का पतन होना; आ. फुफ्फुसके गल जानेपर; इ. अर्बुदका विदारण होनेपर।

५. स्वरयन्त्र और मुख्य श्वासनलिकाका क्षत—उपदंश, नववर्द्धन ग्रन्थि आदिसे।

(स्वाभाविक कारण)

६. त्रिदोषज रक्तपित्त और रक्तविकार क्वचित्।

७. कतिपय घातक विशेष ज्वर।

८. डिस्टोमा पल्मोनैल नामक फुफ्फुस कृमि—इस कृमिप्रकोपसे चीन-जापानमें जनपद-व्यापी रक्तमय कफस्रावका आक्रमण होता है।

(विशेष प्रयोजनीय कारण)

९. स्वस्थ भासने वाले मनुष्योंमें कतिपय क्षय पीड़ित होते हैं, उनका घाव भर गया हो, उसमेंसे रक्तस्राव होता है। कितनेक स्वस्थ व्यक्तियोंमें संस्थागत या फुफ्फुसगत रक्तवाहिनियोंका दबाव बढ़कर नासारक्तस्रावके समान। फुफ्फुसमेंसे रक्तस्राव होता है।

१०. छातीकी दीवारको चोट लगना।

सत्वर घातक होनेवाला प्रचुर रक्तस्राव—यह विशेषतः ३ रोगोंमें होता है। (१) आगे बढ़ा हुआ राजयक्ष्मा; (२) धमन्यर्बुद; (३) द्विपत्र कपाटका आकुंचन, यह अधिक परिमाणमें स्राव कराने वाला, क्वचित् घातक और सामान्यतः हितावह है।

फुफ्फुसप्रदाहमें—कभी आक्रमण होनेपर एक साथ प्रचुर रक्तस्राव। लोहेके जंग सदृश कफस्राव प्रारम्भिक अवस्थामें चालू।

प्रतिनिधिस्थानसे रक्तस्राव-(Vicarious Hamorrhage)-किसी स्थान विशेषसे रक्तस्राव होता हो, उसे बन्द करनेपर (या बन्द होनेपर) इतर स्थानसे रक्तस्राव होता है, ऐसा हिपोक्रेटिस कालसे माना जाता था, किन्तु अब विदित हुआ है कि, यह रक्तस्राव क्षयके हेतुसे होता है।

मिथ्या रक्तस्राव—(Spurious Haemorrhage) दंतवेष्टमेंसे होता है जिससे थूकमें रंग आजाता है। यह फुफ्फुस ष्ठीवनका भ्रम कराता है।

लक्षण— सामान्यतः रक्तष्ठीवन अकस्मात् प्रारंभ। अधिकांश स्थलोंमें पूर्व लक्षणोंका अभाव। मुँहसे रक्त आता है, तब ईषत् नमकीन स्वादका अनुभव। क्वचित् कण्ठमें कण्डु, फिर श्लेष्ममिश्रित रक्तस्राव। कभी आध छटांक रक्त आकर फिर बन्द हो जाता है। कभी-कभी स्वल्प परिमाणमें दिनों तक रक्तस्राव। कोई बड़ी धमनीका अर्बुद या क्षत फटनेपर रक्तस्राव होता है, तो अत्यधिक परिमाणमें रक्त निर्गत होता है। रोगीको कितनीक वार खांसनेकी चेष्टा करनेपर श्वासावरोध और श्वासनलीमें अधिक रक्त भर जाने पर मृत्यु। एवं जब रक्तस्राव अधिक हो जाता है, तब नीरक्तावस्थाकी प्राप्ति होकर मृत्यु होजाती है।

किसी-किसी स्थानपर रक्तस्राव स्थगित हो जाता है। फिर कुछ दिनोंके बाद पुनः प्रारम्भ होकर कुछ दिनों तक रक्तमिश्रित कफ निकलता रहता है।

चोट लगने आदि कारणोंसे रक्त आता है, तब श्लेष्म नहीं होता; क्षारीय झागदार-लाल रंगका रक्त आने लगता है।

फुफ्फुसष्ठीवन और रक्त वमनका भेद—यह रक्त नमकीन प्रतिक्रिया कराता है, तब रक्तवमनमें सामान्यतः अम्ल। इस विकारमें रक्त झागदार और रक्तवमनमें झागरहित, गहरा।

चिकित्सोपयोगी सूचना

मस्तिष्ककी थकावट और दुःखदायी कास, जो आगे रक्तस्राव कराने में सहायक है, उनपर लक्ष्य दें। क्षयकी प्रथमावस्थामें होनेवाले मंदतर रक्तस्रावके लिये तत्काल चिकित्साकी आवश्यकता नहीं है। द्विपत्र कपाटके आकुंचनमें प्रचुर रक्तस्राव सामान्यतः लाभदायक।

रोगीको विश्रान्ति देवें। हृदयस्पन्दनका ह्रास करावें। दूसरी ओरकी श्वासनलिकामें प्रतिबंध हो तो दूर करें।

शराब और उत्तेजक पेय न दें। क्योंकि ये रक्तको जमानेमें सहायक होते हैं।

तात्कालिक चिकित्सा—रोगीको सान्त्वना देवें। भयको दूर करें। संक्षिप्त परीक्षा करें। अफीमसत्व (मोर्फिया) का अन्तःक्षेपण करें। रोगीको सुख मिले और रक्त बाहर निकलजाय, उस तरह आगेकी ओर झुकाकर बैठावें। कंधेको ऊँचा रखावें। पीड़ित भागपर कोहनी रक्खें। शिर नीचे झुका देवें। बाहर निकलनेवाले रक्तको सुविधा देवें। अप्रभावित श्वासनलिकाका संरक्षण करें।

परवर्त्ती चिकित्सा–विश्रान्ति, लघुभोजन, शराबका त्याग, मेगसल्फसे उदर शुद्धि।

फुफ्फुसके रक्तदबावका ह्रास कराना—अभीतक फुफ्फुसके रक्ताभिसरणके सम्बन्धमें कम परिचय मिला है। अर्गट रक्तदबाव बढ़ाता है। अतः वह उपयोगी नहीं है। टिंचर एकोनाइट (बच्छनागका अर्क) रक्तदबावका ह्रास कराता है, किन्तु हृदयको

निर्बल बनाता है। अमिल नाइट्राइट हृदयको उत्तेजना देता है। इपिकाक्यु आना वमन कराता है। इस तरह डॉक्टरीमें कोई योग्य उपचार प्रतीत नहीं होता।

आयुर्वैदिक उपचार—चंद्रकला (ह्रीबेरादि क्वाथसे या नेत्रवाला, नागरमोथा गिलोय और धनियाँके क्वाथसे) देवें। अतिस्राव हो, तो तृणकांतमणि पिष्टी+कामदूधा मिलाकर च्यवनप्राशके साथ। फिर चंद्रकला देवें।

७. सौत्रिक श्वासनलिकाप्रदाह

फाइब्रिनौस ब्रोंकाइटिस-प्लास्टिक ब्रोंकाइटिस।

(Fibrinous Bronchitis-Plastic Bronchitis.)

परिचय—इस रोगमें लघुतर श्वासनलिका और श्वास प्रणालिकाओंके ठीक नलिकाकार कंचुक (Casts) निकलते हैं। श्वासनलिकामेंसे निकलनेवाले कंचुक लगभग ६ इञ्च लम्बे होते हैं। ये कफके अनुरूप होते हैं।

संप्राप्ति—कंचुक निर्माण पद्धति अज्ञात। फुफ्फुस प्रदेशमें स्थापना विलक्षण। चिरकारी रोगियोंके शवकी परीक्षा करनेपर वायुकोषप्रसारण स्थिर और बारम्बार राजयक्ष्माकी प्रतीति। रोगनिर्देशक चिह्नका अभाव। तमकश्वास बारम्बार।

प्रकार—चिरकारी और आशुकारी।

१. चिरकारीस्वतः सिद्ध सौत्रिक श्वासनलिका प्रदाह—पुनः-पुनः आक्रमण। सदृश कंचुकद्वारा उसी स्थानपर आक्रमणका निर्णय होता है। घातक नहीं, क्वचित् श्वासावरोधद्वारा मृत्यु। २४ घण्टेमें कई बार आक्रमण।

आशुकारीप्रकार—ज्वरों (मधुरा, फुफ्फुसप्रदाह आदि) में तथा फुफ्फुसावरणमेंसे द्रव निकालनेके लिये कृत्रिम छिद्र करनेके पश्चात्। मृत्यु संख्या अनल्प।

वक्तव्य—सौत्रिक तन्तुमय कंचुक कभी जीर्ण हृद्रोग और राजयक्ष्मामें भी निष्कासित। कण्ठरोहिणीमें भी अनेक बार। छोटे कंचुक फुफ्फसप्रदाहमें।

लक्षण—कास और श्वासकृच्छ्रताका प्रचण्ड आक्रमण या तमक श्वासके सदृश दौरा; कंचुकमय कफद्वारा अनुमान।

आक्रमणकालमें—परिचायात्मक चिह्न नष्ट। श्वसनध्वनि और अस्वाभाविक ध्वनिद्वारा स्थानके पीड़ित होनेकी सूचना मिलती है। श्वासोच्छ्वासक्रियामें कंचुकके फड़फड़ाहटकी ध्वनि श्रवण। प्रभावित स्थानमें फुफ्फुसका आकुंचन।

चिकित्सा—पुनरोत्पत्ति रोकनेके लिये डॉक्टरीमें कुछभी संतोषप्रद उपाय नहीं मिला। आयुर्वेदमें प्रवालपिष्टी और सितोपलादि घी शहदसे देना उपकारक सिद्ध हुआ है। आशुकारीकी चिकित्सा श्वासनलिकाप्रदाहके अनुसार। अर्थात् स्वेदन और कफघ्न चिकित्सा। आक्रमण शमन होनेके पश्चात् कीटाणु नाश और रक्तशुद्धिके लिये

डॉक्टरीमें पोटाश आयोडाइड, आयुर्वेदमें चंद्रकला रस या सूतशेखर और प्रवाल मिश्रण अथवा सारिवासव या उशीरासव शृंग या कनकासव दिया जाता है।

(८) फुफ्फुसकी सौत्रिक अपक्रान्ति

क्षयकास–फाइब्रोसिस ऑफ दी लंग–क्रॉनिक इण्टर स्टिशियल न्युमोनिया।

(Fibrosis of the Lung Chronic Interstitial Pneumonia.)

परिचय—इस रोगकी संप्राप्ति श्वासनलिका, फुफ्फुस अथवा फुफ्फुसावरणकी आशुकारी या चिरकारी प्रादाहिक या उग्रतायुक्त स्थितिमेंसे होती है। श्वासनलिका प्रसारणकी उन्नति बड़े हिस्सेमें होती है। राजयक्ष्मा इसका साधारण कारण है।

प्रकार—रोग स्थानिक और व्यापक, एक या दोनों फुफ्फुसोंमें होता है।

१. **स्थानिक प्रकार**—अ. राजयक्ष्मामें स्थिर परिवर्त्तन; आ. नववर्धन या धमन्यर्बुदका श्वासनलिकापर दबाव; इ. तन्तुओंके भीतर कोथमय शल्य।

२. **व्यापक**—वह निम्न रोगोंमें प्राप्त।

अ. चिरकारी राजयक्ष्मा-सौत्रिक तन्तुमय क्षय। एकपार्श्वगत होनेपर।

आ. फुफ्फुस प्रणालिकाप्रदाह—रोमान्तिका, कालीखांसी, इन्फ्लूएन्जा, पुनराक्रमित फुफ्फुसप्रदाह और श्वासनलिकाप्रदाहमें। सौत्रिक तन्तुओंकी प्राप्ति श्वासनलिकामेंसे। श्वासप्रणालिकाविस्तार विद्यमान। मर्यादित प्रकार। एक साथ बढ़नेवाला फुफ्फुस प्रणालिकाप्रदाह इसका सामान्यतम कारण है।

इ. आशुकारी फुफ्फुसप्रदाहमें अतिक्वचित् अनुगामीविकार। प्रकृतिभाव असफल गाँठे (गोलियाँ) बनना, वायुकोषाणुओंकी दीवार मोटी (धूसर और कठोर) होजाना कठोर खण्डप्रकार।

ई. फुफ्फुसावरणका विस्तार होनेपर फुफ्फुसावरण मोटा होजाना तथा किनारेपर फुफ्फुसमें सौत्रिक उभार फैलजाना। फुफ्फुसका गंभीरतरभाग अप्रभावित।

उ. फुफ्फुसमें बाह्यद्रव्य संग्रह–(Pneumo-Coniosis)–धूल आदिके आकर्षणसे।

ऊ. फिरंग रोगमें।

उत्पत्तिस्थान—सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्ति और प्रसारण स्थान—

१. श्वासनलिका आवरणके तन्तुओंमें श्वासप्रणालिकाप्रदाहके प्रकारके समान।

२. वायुकोषाणुओंकी दीवारमें फुफ्फुसप्रदाह प्रकारके समान।

३. फुफ्फुसावरण तथा खण्डान्तराला कलामें।

संप्राप्ति—मुख्य २ प्रकार। (१) कठोर या खण्डीय (Massive or Lobular), एक या अधिकखण्ड प्रभावित। (२) द्वीपरूप या फुफ्फुस प्रणालिकाप्रदाहसे सम्बन्धवाला (Insular or Broncho pneumonic) बिखरे हुए स्थान। दोनों प्रकारोंमें श्वासनलिकाप्रसारण सामान्यतः विद्यमान।

१. कठोरप्रकार—एकपार्श्वगत, सामान्यतः निम्नखण्डमें। उरःपंजर और अवयव, ये फुफ्फुसके आकुंचनद्वारा प्रभावित। फुफ्फुस छोटा, धूसर वायुहीन और सरेसके पिण्डसदृश दृढ़। फफ्फुसावरणका संयोजन स्थिर। यदि राजयक्ष्मा है, तो बारंबार शिखरपर विवर और दूसरा फुफ्फुस क्षय कीटाणुओंसे पीड़ित। फुफ्फुसावरणमें कीटाणुओंकी उत्पत्ति (Pleurogenous) होनेपर फुफ्फुसावरण प्रायः आधसे एक इञ्च मोटा होजाता है। अप्रभावित फुफ्फुस वायुकोषप्रसारणमय।

२. द्वीपरूप या फुफ्फुस प्रणालिकाप्रदाह प्रकार—विच्छिन्न रंजित सौत्रिक तन्तुमय क्षेत्र। विशेषतः निम्नखण्डमें। प्रायः केन्द्रीय स्थानगत तन्तु शोथमय। फुफ्फुसावरण कुछ प्रभावित। यह राजयक्ष्मासे रहित सौत्रिक तन्तुमय सामान्यतम प्रकार।

जालदार प्रकार-(Reticular Form)—बीचमें छेद करनेपर किनारेपर सौत्रिक तन्तु। यह प्रकार क्वचित्। हृदयकी वृद्धि सामान्य।

लक्षण—चिरकारी स्थिति। वर्षोंतक सामान्य कार्य होसकता है। चिरकारी श्वासनलिका प्रदाहके लक्षण (लक्षणोंकी प्रबलतासह)—(१) चिरकारी कफज कास; (२) श्वासकी लघुता, केवल श्रम लेनेपर। सौत्रिक तन्तुमय फुफ्फुस, यह सामान्यतः श्वासनलिकाप्रसारण या हृदयकी निर्बलता, इन दोमेंसे एक स्थिति उत्पन्न कर देता है।

अनेक रोगियोंका कफ जीर्णकास रोगके समान बन्धा हुआ सफेद या पीला। कितनेकोंमें राजयक्ष्माके समान दुर्गन्धमय। कास और कफका त्रास शीतकालमें अधिक।

चिह्न—सौत्रिक तन्तुमय फुफ्फुसका आकुंचनद्वारा उत्पन्न मुख्य महत्वके चिह्न दर्शन परीक्षाद्वारा विदित।

दर्शन—छातीकी दीवार प्रभावित पार्श्वमें खिंची हुई और आकुंचित कंधेकी पेशियोंका शोष। फुफ्फुस संचालन मंद। मुख्य श्वासनलिका भी स्थानच्युत।

हृदय प्रभावित पार्श्वकी ओर स्थानच्युत। दक्षिण ओर पूर्णच्युत। बांयी ओर है तो स्पन्दनमय अधिक प्रदेश तथा शिखर स्पन्दन ऊपर या नीचे स्थानान्तरित। नाप करनेपर प्रभावितपार्श्व प्रभावितकी अपेक्षा छोटा।

स्पर्श—सामान्यतः स्पर्शनीय कम्पन नष्ट।

ठेपन—श्वासनलिका या श्वासनलिका शाखाके प्रसारण और विवरणके भेदसे अनेक प्रकारके।

ध्वनि श्रवण—ठेपनके समान नानाविध। बहुधा तलपर श्वसनध्वनि निर्बल, बुदबुदे सदृश अस्वाभाविक ध्वनि। शिखरपर प्रायः कौप्यकध्वनि।

अप्रभावित पार्श्वमें—वायुकोष प्रसारणमय। स्थूल, बढ़ी हुई आवाज़।

अंगुलियोंके पर्व—सामान्यतः प्रसारित। जीर्ण रोगियोंके मुख-मण्डलपर कुछ गात्र नीलता।

कफ—क्षयकीटाणुओंकी परीक्षाकरें। सब प्रकारोंमें गौण आक्रमण सामान्य।

रोगविनिर्णय—दर्शन परीक्षा सामान्यतः उपयुक्त है। अन्य प्रकारोंका क्षयप्रकारसे प्रभेद। (१) क्षय कीटाणु कफमें अनुपस्थित; (२) दूसरी ओरका फुफ्फुस सामान्यतः शिखरपर चिह्न दर्शाता है। प्रायः प्रभेद करना अशक्य। श्वासनलिका प्रसारण विद्यमान होनेपर दुर्गन्धमय कफ।

साध्यासाध्यता—श्वासनलिका प्रसारण और गलनके अभावमें शुभ। प्रायः १५-२० वर्षतक जीवनकाल। हृदयके दक्षिण-खण्डका अवसाद होनेपर मृत्यु। कभी रक्तस्राव, वसापक्रान्ति या फुफ्फुस कोथ से मृत्यु।

चिकित्सा—सौम्यवायुमण्डलमें निवास। आग्रहपूर्वक पथ्य पालन। चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह, श्वासनलिका प्रसारणके और लक्षणोंके अनुरूप उपचार। आयुर्वेदमें क्षयकासपर दर्शायी हुई चिकित्सा हितावह।

(६) कुक्कुर कास

काली खांसी-हुपिंग-कफ पर्ट्युसिस

(Whooping Cough-Pertussis)

रोग परिचय—यह श्वसन संस्थानके प्रसेकसह विशेष संक्रामक व्याधि है। इस रोग में आक्षेपके अन्तमें श्वासग्रहणकालमें एक गम्भीर और बड़ी कुक्कुरध्वनिवत् 'हूप' आवाज़ निकलती है।

कभी यह रोग जनपद-व्यापी बन जाता है। सामान्यतः स्थानिक यत्र-तत्र उपस्थित। विशेषतः शीतकाल और वसंतऋतु में उपस्थित। अधिक-से-अधिक मार्चमें तथा कम-से-कम सितम्बरमें।

सामान्यतः २ से ५ वर्षकी आयुवालोंकी संप्राप्ति; किन्तु सर्वांशमें यह नियम नहीं है। कभी-कभी छोटे शिशुको भी। वृद्धोंमें सामान्यतः गम्भीर। बालिकाओंपर बालकोंकी अपेक्षा कुछ अधिक आक्रमण।

इस रोगके साथ सामान्यतः रोमान्तिका भी उपस्थित। चेतनाधिक्य होता है, किन्तु सर्वत्र नहीं।

कीटाणु—इसके कीटाणुओंका शोध १९०६ ई० में बोर्डे और गेंगू (Bordet-Gengou) ने किया है। कीटाणुओं को बेसिलस पर्टुसिज (Bacillus Pertussis) संज्ञा दी है। ये कीटाणु आवेग। अन्तमें निकलनेवाले चिपचिपे श्लेष्ममें से मिलते हैं। जीर्णावस्थामें ये कठिनतासे मिलते हैं या नहीं मिलते। सामान्यतः कुक्कुरकासके कारणरूप इन कीटाणुओंका स्वीकार हुआ है, तथापि सप्रमाण सिद्ध नहीं हुआ।

शारीर विकृति—विशेषपरिवर्त्तन नहीं। शव परीक्षा करनेपर सामान्यतः क्षत होना, ये कितनेक घातक उपद्रवोंमें से है। अपूर्ण घातक रोगियोंमें शक्तिपात और वायु

कोष प्रसारण प्रदेश और बृहद् और मध्यम श्वासनलिकाकी ग्रन्थियोंकी वृद्धि प्रतीत होती है।

संक्रमण प्रकार—कफमें से सीधा संक्रमण। कफके छोटे परमाणु उड़ते हैं, वे चारों ओर फैलकर दूसरोंको लग जाते हैं। बिल्ली और कुत्ते भी इन कीटाणुओंके वाहक बन जाते हैं।

संक्रामकस्थिति—आक्रमण होनेके पश्चात् ६ सप्ताह या आवेगके आक्रमणके बाद ४ सप्ताह। जबतक २ सप्ताह तक हूपका अभाव न हो जाय और जबतक दौरेका वेग बन्द नहीं होता, तबतक उससे संक्रमण हो सकता है। हूपकी निवृत्तिके पश्चात् जो कफ शेष रहता है वह आवेग उत्पन्न करानेपर भी संक्रमण शीघ्र नहीं है।

प्रतिबन्ध –(Quarantine)—१ सप्ताह।

चयकाल—६ से १८ दिन। बारम्बार १० से १४ दिन।

प्रसेकावस्था—(Catarrhal Stages)—गुप्त आक्रमण, मामुली बेचैनी से प्रारम्भ, प्रतिश्याय और कास। गम्भीर कास नहीं, किन्तु प्रसेककी अपेक्षा अधिक, फुफ्फुसोंमें मन्द श्वासनलिकाप्रदाह। ज्वरमन्द (विशेषतः १००° तक) और सविराम। कुछ आमाशयिक व्याकुलता।

कास विशेषतर आवेगमय, रात्रिमें अधिक, श्वासग्रहणमें आक्षेपकी वृद्धि। कासकी कुछ आवृत्तिके अन्तमें रोगदर्शक हूप आवाज़। कितनेक रोगियोंमें प्रायः तत्काल हूपकी प्राप्ति और इतरों में देरसे या अभाव।

आवेगावस्था—(Proxysmal stage)—पहले हूपसे ही आरम्भ। प्रतिश्याय पहलेसे कम ज्वर मन्द या अभाव।

कासकादौरा आदर्श क्रमानुसार; (१) वेगके अन्तमें दीर्घश्वासग्रह (कमीअभाव)। (२) लघु निःश्वासकी आवृत्ति (प्रायः १०-१२ निःश्वास), उरःपंजर आकर्षित, भीतर वायु न रहना, दौरेमें श्वासावरोध होता है, तब मुख-मण्डल रक्त। श्वासग्रहण हूप ध्वनिसह। रक्तसंग्रहमय देखाव सत्वर अदृश्य, किन्तु बालक क्लान्त हो जाता है। बहुधा आवेगके अन्तमें वमन होजाती है यह रोग निर्णय कराती है। अनेकबार इसका चक्र धारावाहिक चलता है। (लगभग ५-७ चक्र हो जाता है) फिर आवेगके अन्तमें थोड़ा-सा लसदार श्लेष्मा निकलता है। एक दिनमें आवेगकी संख्या ४० से अधिक हो जाती है, रात्रिको अधिक स्पष्ट। बालक आक्रमणका आरम्भ होनेको पहिलेसे जान जाता है और उसे दबा देनेका प्रयत्न करता है। फिर भयभीत हो जाता है (कितनेक बच्चे सोये हों, तो तुरन्त उठकर बैठ जाते हैं और अधिक कष्टसे बचनेके लिये लकड़ी आदि, जो कुछ समीप हो, उसे पकड़ लेता है या माताके पास दोड़ जाता है)। आक्रमण शमन होनेपर थोड़े समय तक निद्रा आ जाती है या बड़े बच्चे शिरदर्दकी फर्याद करते हैं। दौराके आगे या पीछे खूब छींकें आती हैं। मूत्रमें मूत्राम्ल बढ़ जाता है।

बार-बार रक्तसंग्रह होता रहनेसे मुख-मण्डल स्फीत हो जाता है, नेत्रोंपर शोथ भासता है, जो प्रायः व्यथाकी सूचना देता है।

कभी-कभी जिह्वाके नीचे व्रण होजाता है। दो निम्न मध्य कर्त्तनक दांत ढन्त्विस हो जाते हैं। ये कभी आवेगावस्थाके पहले नहीं।

आवेग सामान्यतः स्वतःसिद्ध। कमरेमें वायुका रोध होने पर उग्रता धारण करता है। मन क्षुब्ध हो जाता है, किसी स्थितिमें चैन नहीं पड़ता। शिशुमें हूपका सामान्यतः अभाव। आयु बड़ी हो तो नैमित्तिक हूप।

चिह्न—फुफ्फुसमें अतिमन्द। निःश्वासज कासके समय ध्वनि अपूर्ण और परीक्षा करने पर फुफ्फुस तलपर कुछ अस्वाभाविक आवाज़। नाड़ी अति तेज़।

रक्त परिवर्त्तन—सब प्रकारके श्वेताणुओंकी वृद्धि; किन्तु लसीकाणुओंकी वृद्धि प्रकृति निर्देश करती है। इसकी ८% वृद्धि। ये प्रारम्भमें प्रसेकावस्थाके समय उपस्थित।

उन्नतावस्था—(Convalescent stage)—स्वास्थ्यकी उन्नति होनेपर आवेग कम समय और कम गम्भीर। हूप ध्वनि क्रमशः अदृश्य। श्वेताणुओंकी गिनती करनेपर पुनः सामान्य। भोजन पचन होकर रस-रक्तादि बनने लगते हैं। शनैः-शनैः बालकके बलकी वृद्धि। सामान्यतः बच्चे १॥-२ मासमें रोगमुक्त। किन्तु कभी-कभी महीनों तक पीड़ित।

रोगस्थिति—अति भिन्नतायुक्त। प्रसेकावस्था लगभग १ सप्ताह। सामान्यतः ३ दिनसे २ सप्ताहतक। आवेगावस्था ४ सप्ताह या अधिक। सब मिलकर ६ से ८ सप्ताह तक; किन्तु बढ़ भी जाता है। वृद्धिका कारण नासापश्चिम ग्रन्थि हो सकता है।

उपद्रव—

१. फुफ्फुसमें उपद्रव—श्वासप्रणालिका प्रदाह, फुफ्फुसप्रदाह, बालक दो आक्रमणोंके बीचमें बीमार रहता है। हूप अदृश्य। कभी राजयक्ष्मा। खण्डीय फुफ्फुस प्रदाह क्वचित्।

फुफ्फुसके वायुकोषोंमें और प्रणालिकाओंमें स्थितिस्थापकता और विस्तारक्षमता नष्ट हो जानेसे फुफ्फुसके किसी भागका संकोच, विशेष अस्थिवक्रता पीड़ित बच्चोंमें, लसदार स्रावद्वारा वायुमार्ग रुद्ध हो जानेसे।

वायुकोषप्रसारणकी उन्नति। कभी फुफ्फुसावरणमें वायुसंग्रह।

श्वासग्रहणमें हूप प्राप्त न होने पर श्वासकृच्छ्रता किन्तु यह क्वचित्।

उक्त सब उपद्रव लगभग आपत्ति कारक।

२. वमन वृद्धि—सामान्य वमनकी कभी अति वृद्धि।

३. श्वासनलिकाकी ग्रन्थियों की वृद्धि—बारम्बार।

४. आक्षेप—शिशुओंमें सामान्य, बढ़ हो तो प्रायः घातक।

५. शिराओंमें रक्तसंग्रह तथा अधिक दबाव—आवेगकालमें, यह अनेक उपद्रवोंका कारण हो जाता है। (१) अन्त्रावतरण; (२) गुदनलिकापतन। (३) नासिका आदिसे रक्तस्राव; त्वचापर लाल धब्बे, नेत्रश्लेष्मावरणमें विवर्णता। कभी मस्तिष्कावरणमें रक्तस्राव, यह घातक है।

६. लसीकामेह—नैमित्तिक। वृक्कप्रदाह कचित् ही।

७. पक्षवध और परिधिप्रान्तकी नाड़ियोंका प्रदाह—अतिकचित्।

अनुगामीरोग—

क्षय—फुफ्फुस या ग्रन्थियोंका; यह असामान्य नहीं।

चिरकारी फुफ्फुसरोग—उदा० श्वासनलिकाप्रदाह, वायुकोषप्रसारकभी श्वासप्रणालिकाप्रदाहके पश्चात् सौत्रिकतन्तुओंकी रचना, सामान्यकास उत्तरकालमें आवेगमय। बड़ी आयुवालोंमें तमकश्वासकी प्रगति।

उरःफलककी रचना विकृति - उदा० कपोतवक्ष (Pigeon brest) यह लम्बे आक्रमणके पश्चात्।

मध्यकर्ण प्रदाह—कभी हेतुवश।

हृदयकी निर्बलता—पुनरोत्पत्ति होनेपर।

पुनः-पुनः आक्रमण या दूसरा आक्रमण—कचित।

रोगविनिर्णय—

प्रसेकावस्थामें—प्रायः अति कठिन। सामान्यतः कास परिमाणसे अत्यधिक कासका दौरा विशेषतः रात्रिको। कासकी अनुगामी वान्ति, ये निर्णय करनेमें सहायक।

आक्रमणावस्थामें—आदर्श रोगियोंमें सरलता से, किन्तु बड़े बच्चेमें हूपका सर्वांशमें अभाव होने पर दुष्कर। ऐसे समयपर कासके स्वभावपरसे निर्णय।

रक्त—प्रसेकावस्थाके प्रारम्भमें अपरिवर्तित। आक्रमणावस्थामें श्वेताणु वृद्धि और शमनावस्थामें स्थिर। श्वेताणु सामान्यतः ३०,०००। गंभीर रोगियोंमें ८०,००० या अधिक। छोटे लसीकाणु ६० से ८५ प्रतिशत।

हूपका कारण—अनिश्चित। कफसे स्वरयन्त्रमें स्थानिक उग्रता आनेपर स्वरयन्त्रका आक्षेप होकर हूप होनेकी कल्पना। पूरा निर्णय नहीं हुआ।

साध्यासाध्यता—बहुधा शुभफल। मृत्यु आयुभेदसे नानाविध। १ वर्षके भीतरमें अधिक, ३ वर्षके भीतर सामान्य। ५ वर्षसे बड़ी आयुमें १ प्रतिशतसे कम। वृद्धोंके लिये गंभीर। आक्षेप आनेपर अधिक मृत्यु। श्वासप्रणालिकाप्रदाह (कफ्वा) होनेपर अत्यधिक मृत्यु। क्षय और फुफ्फुसकी चिरकारी व्याधियाँ होनेपर कचित् देरसे भी लाभ नहीं होता।

चिकित्सोपयोगी सूचना

रोगीको हवादार कमरेमें रक्खें, जहाँ अधिक शीत या अधिक उष्णता न हो।

प्रसेकावस्था और ज्वरावस्थामें शय्यापर आराम करावें। गरम कपड़ा पहनाकर छातीकी रक्षा करें। आवेगावस्थामें उदरपर पट्टा बांधे। ३-४ सप्ताह मकानके भीतर रखें; किन्तु शय्याधीन रखनेकी आवश्यकता नहीं है।

भोजन दूध, फलोंका रस या मांसरस थोड़ा-थोड़ा देते रहें। (गरम भोजन न देवें) भोजन आवेगकी समाप्ति होनेपर देवें। जिससे दूसरा आवेग उत्पन्न होनेतक उसमें से कुछ अंश पच जाय।

नीलगिरीतैलको वस्त्रपर छिड़के। नाक और गलेमें थोड़ा कीटाणुनाशक 'स्प्रे' छिड़कें। छातीपर कपूरमिश्रित गरमतैल या लिनिमेंटकी मालिश करें। बड़ी आयुवाले बच्चेके लिये कपूर और एमोनिया मिली हुई लिनिमेण्टकी मालिश कराई जाती है।

१. प्रसेकावस्थामें—औषधि श्वासनलिकाप्रदाहके अनुरूप। आयुर्वेदमें प्रसेकावस्थामें तथा आक्रमणावस्थामें कीटाणु और विषको जलाना हो, तबतक बालघोर-कासघ्न चूर्ण दिया जाता है जो उत्तमकार्य करता है। इसतरह हरतालगोदन्ती (मिश्र) भस्म (थूहरके लालफलोंके रसके साथ) भी अच्छा लाभ पहुँचाती है।

२. आक्रमणावस्थामें—शामक औषधि दें। डॉक्टरीमें ब्रोमोफॉर्म (Bromoform) या पोटास ब्रोमाइडका प्रयोग करते हैं। आयुर्वेदमें कामदूधा उत्तम औषधि है।

३. फुफ्फुसावरणमें उपद्रव होनेपर—डॉक्टरीमें सल्फोनेमाइड, आयुर्वेदमें हरतालगोदन्ती (मिश्र), वङ्ग भस्म, और अभ्रकभस्म मिलाकर।

सबलतावस्थाकी प्राप्ति होनेपर ठण्डी न लगजाय,यह सम्हालें। क्षय और फुफ्फुस विकृति न हो, इसलिये डॉक्टरीमें काडलिवर ऑइल, माल्ट और लोह मिश्रण देते हैं। आयुर्वेदमें लक्ष्मीविलास अभ्रकप्रधान, बालार्कगुटिका और कुमारकल्याण रस।

रोग दीर्घकालतक रहजाता है तो डॉक्टरीमत अनुसार नासापश्चिमग्रन्थिकी परीक्षा करनी चाहिये, यदि हो तो उसे निकाल देवें। अधिक वमन होनेपर रक्तमेंसे हाइड्रो-जनके ह्रास और रक्तरचनाकी विकृति होनेपर द्राक्षशर्करा १-१ ड्राम दिनमें ३ बार दी जाती है। (कामदूधा देते रहनेपर बहुधा अधिक वमन नहीं होती)।

शिशुओंको आक्षेप आता है. उसके शमनार्थ डॉक्टरीमें गरम जलमें बैठाते हैं, गुदासे पोटास ब्रोमाइड चढ़ाते हैं या क्लोरोफार्म सुंघाते हैं। आयुर्वेदमें आक्षेपको रोक-नेके लिये सूतशेखररस, लक्ष्मीनारायण या त्रिभुवनकीर्ति दिया जाता है। बालघोरकासघ्न चूर्ण देते रहनेपर बहुधा आक्षेप उपस्थित नहीं होता।

कास चिकित्सोपयोगी सूचना

वातिककास-रोगीकी देह रूक्ष है, तो पहले वातघ्न औषधियोंसे सिद्ध घृत आदिका पान करावें; स्नेह बस्ति देवें तथा पेया, दूध, मांस रस आदिका भोजन करावें।

वातिक विकारपर अवलेह, युक्तिपूर्वक धूम्रपान, तैलकी मालिश, स्वेदन और स्निग्ध सेक आदि उपचार लाभदायक है।

यदि वायु मलदोषसे बद्ध है, तो बस्तिक्रियाद्वारा चिकित्सा करें। वातिक कासमें पित्तका अनुबन्ध है, तो पेया आदिसे चिकित्सा करें। यदि वातिक कासमें कफका अनुबन्ध है, तो घी, दूध और स्नेहयुक्त विरेचन, स्नेह बस्ति और निरूह बस्ति-द्वारा चिकित्सा करें।

वातात्मक कासमें घी, तैल, ईखके रस, गुड़के बने पदार्थ, दही, काँजी, खट्टे फल, प्रसन्ना (शराब), मधुर, खट्टे और नमकीन पदार्थोंका सेवन, ये सब हितकारक हैं।

यदि खाँसीके तीव्र वेगके हेतुसे नासिकामेंसे श्लेष्मस्राव होता हो, स्वर बैठ गया हो, बार-बार छींकें आती हों, तो स्नैहिक धूम्रपान कराना हितकारक है।

पित्तप्रकोपजन्य—कासमें कफ वृद्धि हो, तो घृत पिलाकर वमन कराना चाहिये। कफ पतला हो, तो मधुर रस मिश्रित निसोतसे विरेचन कराना हितकारक है। कफ गाढ़ा है, तो कुटकीके साथ निसोत मिलाकर विरेचन देवें। फिर दोष दूर होनेपर शीतल, मधुर, स्निग्ध पेया आदिका सेवन करावें, किन्तु कफ गाढ़ा होनेपर शीतल, रूक्ष और कड़वे रस युक्त पेया पिलानी चाहिये।

पैत्तिक कासमें मिश्री-मिश्रित लेह, कफसह पैत्तिक कासमें नागरमोथा और कालीमिर्च युक्त लेह और वातसह पैत्तिक कासमें घृत मिला हुआ लेह देना चाहिए।

सूचना—पित्तप्रकोपज कासमें गरम चिकित्सा कदापि नहीं करनी चाहिये। अभ्रकभस्म, रससिंदूर, सोंठ, पीपल आदि औषधियोंके सेवनसे कासका वेग बढ़ता है और कष्टकी वृद्धि होती है।

कफ कासकी चिकित्साके लिये भगवान् धन्वन्तरिजी लिखते हैं कि, रोगीको वमन, विरेचन, शिरोविरेचन, धूम, उष्ण कवलधारण, उष्ण अवलेह और चरपरे पदार्थोंका सेवन कराना चाहिये।

वमन करानेके लिये रोगीको ऊकडूँ बैठाकर नमक मिला हुआ गुनगुना जल पेट भर कर पिलावें। जिससे सरलता पूर्वक वमन होकर दोष निकल जाय। कुछ जल भीतर रहजाता है, वह शोषित हो जानेपर २-३ घण्टे बाद एक जुलाब लगकर कफ और मल निकल जाते हैं।

भगवान् आत्रेय कहते हैं कि—

> कासिने छर्दनं दद्यात् स्वरभंगे च बुद्धिमान्।
> वातश्लेष्महरैर्युक्तं तमके तु विरेचनम्॥

अर्थात् कासरोग और स्वरभङ्ग रोगमें वमन करानी चाहिये तथा तमकश्वासमें वातश्लेष्महर औषधियोंका विरेचन देना चाहिये।

यदि कफ पतला और कच्चा है, तो रोगीको वमन न करावें; उपवास कराना चाहिये। उपवाससे कुछ कफ दग्ध होकर नष्ट हो जाता है; और शेष पक जाता है।

फुफ्फुसोंमें चिपके हुए कफको अलग करनेके लिये सरसोंके तैलको गुनगुनाकर थोड़ा सैंधानमक मिला धीरे-धीरे मालिश कराना चाहिये।

कफ कासमें रोगी बलवान् है, तो वमन करा, फिर जौ आदि अन्न, चरपरा, रूक्ष और गरम भोजन देवें तथा कफघ्न चिकित्सा करें।

श्लैष्मिक कासमें—देवदारु, चित्रक आदि औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ घृत, त्रिकटु और यवक्षार मिलाकर पिलावें। इसतरह स्नेहपानसे स्निग्ध करके युक्तिपूर्वक शिरोविरेचन और वस्ति आदिसे शोधन करें। यदि रोगी बलवान् है, तो तीक्ष्ण विरेचन देवें। फिर पेया आदिका सेवन करावें। यदि कफ गाढ़ा है और अधिक है, तो शमन धूम्रका पान करावें।

यदि श्लैष्मिक कासमें पित्तानुबन्धयुक्त तमक श्वास हो, तो उसके शमनार्थ आवश्यकतानुसार पित्तकास शामक क्रिया करनी चाहिये।

त्रिदोषज कास—यदि वातात्मक कासमें कफका अनुबन्ध हो तो कफकास नाशक चिकित्सा तथा वातात्मक या कफात्मक कासमें पित्तकी प्रधानता हो, तो पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये।

वातश्लेष्मात्मक शुष्क कास हो, तो स्निग्ध क्रिया और आर्द्र कास (पतले कफयुक्त कास) हो, तो रूक्ष क्रिया और अन्न-पानकी योजना करनी चाहिये। कफ प्रधान कासमें पित्तका अनुबन्ध है, तो भोजनमें कड़वी औषधियाँ मिला लेनी चाहिये।

उरःक्षतज कास—इस कासको महाघातक समझकर तुरन्त बल्य (बलवर्धक), बृंहणीय (पौष्टिक) और जीवनीय (आयुवर्धक) गणकी औषधियोंद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। बल्य, बृंहणीय और जीवनीय गणका वर्णन वैज्ञानिक विचारणामें किया है।

पित्तका अनुबन्ध हो, तो पैत्तिक कासशामक दूध, घृत आदि मधुर औषधियाँ एवं इतर मधुर और कासनाशक औषधियोंकी योजना करें।

उरःक्षतमें वातपित्तात्मक प्रकोप हो और गात्र भेद हो, तो घीकी मालिश; तथा केवल वातप्रकोपज पीड़ा हो, तो लाक्षादि या इतर सिद्ध तैलकी मालिश करनी चाहिये।

क्षतज कासका रोगी क्षीण हो, निद्रा कम आती हो, किन्तु अग्नि प्रदीप्त हो, तो गरम करके शीतल किये दूधके साथ घी, शहद, मिश्री और बकरेकी चर्बी मिलाकर सेवन कराना चाहिए। क्षतज कासमें यवागू आदि पेय जो दिया जाय, वह सब शीतल करके देना चाहिए। यदि क्षतज कासके रोगीको अति तृषा लगती हो, तो अनुकूल औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ दूध पिलाना चाहिए। ईख, कमल, कुमोदिनी, चन्दन, दर्भ, कास, कुशादि औषधियाँ क्वाथार्थ उपयोगमें ली जाती हैं।

हृदय और पार्श्वमें पीड़ा होनेपर जीवनीय गणकी औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलाना हितकारक है; या वातशामक, पित्त और रक्तकी अविरोधी चिकित्सा करनी चाहिए।

सूचना—क्षतज और क्षयज कासमें राजयक्ष्मामें कहे हुए उपचार करने चाहिएँ। और अतिसार हो, तो ग्राही औषधि देनी चाहिए।

क्षयज कासमें—सम्पूर्ण लक्षण प्रतीत हों और शरीर अस्थिपञ्जर सदृश हो तो उसे छोड़ देना चाहिये। रोग नया है और देहमें बल है, तो रोगशामक चिकित्सा करनी चाहिए। नाड़ियोंके दोषके शोधनकी आवश्यकता है, तो शोधन करनेके लिये सिद्ध घृत पिलाना चाहिए।

क्षयज कासमें पहले बृंहण औषधि दें और अग्निप्रदीप्त करें। उदरमें अधिक मल संग्रहीत हो गया हो और दोष अति बढ़ा हुआ है, तो प्रारम्भिक अवस्थामें सम्हालपूर्वक स्नेह मिश्रित मृदु विरेचन देना चाहिये।

त्रिदोषज कास—होनेपर दोष बलका विचारकर तीनों दोषोंमें जो प्रधान हो, उसे दूर करनेके लिये जिस तरह हित हो, उस तरह चिकित्सा करनी चाहिये।

खाँसीमें कफ होनेपर भीतर सुखानेकी औषधि नहीं देनी चाहिये। यदि गरम औषधि और गरम भोजनसे भीतर संचित हुए कफको सुखा दिया जायगा, तो खाँसते समय अधिक कष्ट होगा।

प्रतिश्यायज कास—में कफ धातुको स्वस्थ करनेकी ओर लक्ष्य देना चाहिये। जबतक जुकाम रहता है, तबतक खाँसी दूर नहीं होती। इस प्रकारकी खाँसीमें केवल खाँसी नाश करने वाली औषधिसे लाभ नहीं हो सकता। यदि अधिक गरम औषधि दी जायगी, तो कफ सूखकर भीतर जम जायगा।

जब कण्ठमें कफकी घररर-घरर अवाज़ आती है, किन्तु भीतरसे कफ सत्वर नहीं छूटता, कठिनतासे कष्टपूर्वक कफ निकलता है, ऐसे समय कफको सरलतासे बाहर निकालने वाली औषधि दी जाती है। कफकुठाररस, वत्समिश्रित औषधि, छोटी कटेलीका क्वाथ, मुलहठी, अडूसा या मिश्री मिला अलसीका क्वाथ आदि प्रयोग हितावह हैं। अडूसाके पत्ते, मुलहठी, बहेड़ा और भारंगीका क्वाथ देनेसे कफ सरलतासे निकलने लगता है।

जीर्ण शुष्क कास रोगमें तैल पिलाना हो, तो अलसीका तैल इतर तैलोंकी अपेक्षा विशेष हितकर है। तैल पिलानेपर दूध न देवें। ऊपर अलसीका क्वाथ या इतर मिश्री मिला गुनगुना जल पिलावें।

कफ कास, जीर्ण क्षत कास, क्षयकास, आशुकारी श्वासनलिका प्रदाहजश्लेष्म-पित्तात्मक कास, इन रोगोंमें शीतल वायु और आर्द्रतासे बचना चाहिये। तेज़ वायु न हो, ऐसे स्वच्छ प्रकाश वाले स्थानमें रहना चाहिये।

कफप्रकोप होनेपर वस्त्र गरम पहनना चाहिये। शीतकालमें रात्रिको कम्बल आदि ओढ लेवें, परन्तु तङ्ग वस्त्र पहनकर न सोवें।

कफ वृद्धि होनेपर शीतल जलसे स्नान न करें; एवं खुली वायुमें भी स्नान न करें। गुनगुने जलसे बन्द मकानमें स्नान करें। स्तनपान करने वाले बालकोंको खाँसीकी औषधि देनेके समय उसकी माताको भी उचित औषधि देनी चाहिये।

आर्द्रकासमें चूसनेकी औषधि नहीं देनी चाहिये।

जीर्ण कासके रोगियोंको शुष्क जलवायु वाले स्थानमें रखना चाहिये। पहाड़ोंपर रहना हितकारक है।

कफ संचय अधिक हो जानेपर शीतल और आर्द्र वायुसे बचनेके अतिरिक्त सिगरेट, बर्फ, आइसक्रीम, सोडावाटर, लेमोनेड वाटर आदिसे भी दूर रहना चाहिये।

यह रोग कफ धातुप्रकोपज है। अतः कफ धातुके दोषको दूर करना, कफको बाहर निकालना, कफमलकी उत्पत्तिको रोकना, कफका शोषण करना और कफका रूपान्तर कराना आदि क्रियाओंमेंसे कौनसी क्रिया कितने अंशमें कब करनी चाहिये। इन सब बातोंका तथा कफ विकारमें हितावह औषधियोंके गुणका विवेचन वैज्ञानिक विचारणामें किया गया है।

आशुकारी श्वासनलिकाप्रदाह—की प्रथमावस्थामें ही रोगी विश्रान्ति लें, तो सत्वर लाभ पहुँच जाता है। आराम करनेके समय मस्तक ऊँचा रहे, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये। मकानका उत्ताप समान रखना चाहिये और वायुको आर्द्र रखना चाहिये। वायुको आर्द्र रखनेके लिये एक ईंटको खूब गरम करें। फिर रोगीके निवास-स्थानके एक कोनेमें जलसे भरे हुए पात्रमें उस ईंटको डालदें। जिससे वातावरण आर्द्र और उष्ण बन जाता है। यह प्रयोग आध-आध घण्टेपर करते रहना चाहिये।

श्वासनलिकाप्रदाहके निवारणार्थ आवश्यकता पर वाष्प श्वसनोपचार (Inhalation) करना चाहिये। श्वासद्वारा औषधोपचारका वर्णन कञ्जपरिचर्याके प्रकरण ६ के भीतर भाग २४ में किया है। रोगारम्भमें एरण्ड तैल या इतर औषधि देकर उदर शोधन करलेना चाहिये।

यदि उरःफलकास्थिके नीचे दबाव अधिक होता हो, तो छातीपर पतली, चौड़ी पुल्टिसका प्रयोग बार-बार करना चाहिये यदि पुल्टिस अति मोटी बांधी जायगी, तो भार अधिक बढ़कर वेदनामें वृद्धि हो जाती है। एवं पुल्टिसके ऊपर रेशमी वस्त्र (आइलड सिल्क) बांध देनेसे पुल्टिसकी उष्णताका संरक्षण होता है। इस हेतुसे ३-४ घण्टे तक पुल्टिस बदलनेकी आवश्यकता नहीं रहती। कभी-कभी इस रोगमें बालककी छाती और पीठ सम्पूर्ण पुल्टिसद्वारा ढक देनी पड़ती है। उसे जाकट पुल्टिस (Jacket poultice) कहते हैं। इस पुल्टिसको बार-बार बदलनेमें बालकोंको अत्यन्त कष्ट होता है। इस हेतुसे फलालेनकी ४ पर्तकर उसे गरम-जलमें डुबो निचोड़

कर बांध देवें। फिर उसके ऊपर रेशमी वस्त्र बांध देवें तथा शीत न लग जाय, यह सम्हालते रहें।

अथवा तार्पिन तैलकी मालिश करके प्रत्युग्रता उत्पन्न करावें। फिर रुई या फलालेनसे समस्त छातीको ढक देवें। प्रस्वेद आजानेपर जाकट या फलालेनको बदल दें। इस हेतुसे कपड़ा दूना या इससे भी अधिक रखें।

प्रत्युग्रताके निमित्त राईका प्लास्तर लगाया जाता है। बालकोंको प्लास्तर लगानेमें खूब सावधानता रखनी चाहिये। कारण, बालकोंकी त्वचा कोमल और पतली होती है। १ तोला राईको १६ तोले गरम जलमें मिला, उसमें फलालेन डुबोकर छातीपर बांधना चाहिये।

इस रोगमें आवश्यकतापर वमन कराने वाली और प्रस्वेद लाने वाली औषधि देनेसे रोग सत्वर शमन हो जाता है। साथ साथ पैरोंके तलोंको राईके गुनगुने जलसे धोना चाहिये।

इस रोगकी रसोत्सृजन अवस्था (द्वितीयावस्था) में कफ चिपचिपा होजाता है और अति कष्टपूर्वक निकलता है। ऐसे समयपर ३ उद्देश्यसे चिकित्सा करनी चाहिये।

१—सरलतापूर्वक कफ निर्गमन कराना।

२—अत्यधिक निःसरणका दमन।

३—कासातिशयका ह्रास।

इन हेतुओंसे कफनिःसारक उत्तेजक (Stimulants Expectorants) औषधियाँ देनी चाहियें। इसका विवेचन वैज्ञानिक विचारणामें किया है। कपूर, खोरासानी अजवायन, लोहबान, तार्पिन तैल, तमाखू आदि औषधियाँ हितावह हैं।

कफ निःसरणार्थ वंगक्षार, अपामार्ग क्षार, अर्कक्षार, जवाखार आदि क्षार प्रधान औषधियाँ हितावह हैं। क्षार प्रधान औषधिसे स्रावित रस पतला होता है। एवं श्लैष्मिक-कला तथा उपश्लैष्मिक-कलाके सब कोष उत्तेजित होनेसे उपकार होता है। वक्षःस्थानपर लहसुन या प्याज़के रसकी मालिश या पुल्टिस बांधनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। आवश्यकता पर दूधमें लहसुन डाल गरम कर फिर छानकर पिलानेसे कफ निःसरणमें सहायता मिलजाती है।

कदाच अत्यन्त श्वासकृच्छ्रता, मुख-मण्डलपर नीलापन, कासकी क्षीणता, योग्य कफस्राव न होना तथा नाड़ीमें अति निर्बलता और उत्तेजना आ जाना आदि लक्षण प्रकाशित हों, तो तत्काल ६ से १२ जलौका लगवाकर या वेट कपिंगद्वारा रक्त मोक्षण कराना चाहिये। जलौका विधि और कपिंगग्लासविधि चि. त. प्रदीप प्रथम-खण्डमें तथा रुग्णपरिचर्याके प्रकरण ७ के भाग ३२ वे में विस्तार से दर्शाया है।

यदि श्वासनलिकामें कफ अति संगृहीत होगया हो, रोगी कफको बाहर निकालनेमें असमर्थ हो, तो वमनकारक औषधि देनी चाहिये। आध तोला राई १ ग्लास गुनगुने जलमें मिलाकर देवें या १-१॥ माशा तेज़ाबघटित जसदपुष्प (Sulphate of Zinc) देवें; या बचका सेवन कराकर वमन करावें।

सगर्भावस्थामें शुष्क कास उपस्थित होनेपर कामदुधा रस, प्रवालपिष्टी, सितोपलादि चूर्ण आदि शामक औषधियोंका सेवन कराना चाहिये। यदि हृदय क्षीण हो गया हो, तो लक्ष्मीविलास रस, अभ्रक भस्म, समीरपन्नग, ६४ प्रहरी पीपल, द्राक्षासव आदिका सेवन कम मात्रामें कराना चाहिये।

बच्चेको श्वासनलिका प्रदाह होनेपर दूधके साथ कुछ बूँद तेज़ शराब (ब्रांडी) की देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

सूचना—जब श्वासनलिकामें पतला कफ विशेष रूपसे हो, तब नौसादर आदि क्षार प्रधान औषधि नहीं देनी चाहिये; अन्यथा उपकारके स्थानपर अपकार हो जायगा (तरल श्लेष्माकी और वृद्धि हो जायगी); इस हेतुसे चिकित्सा करनेके पहले ही श्लेष्मा कच्चा है या पक्का, इस बातका निर्णय करलेना चाहिये।

बालकोंको इस रोगमें श्वासप्रणालिका प्रदाह (डब्बा रोग) की प्राप्ति न हो जाय, इस बातका खूब लक्ष्य रखना चाहिये।

रोग शमन होजानेपर अग्निप्रदीपक और बल्य औषधि देनी चाहिये।

औषधि—बच, जसदपुष्प, मैनफल आदि योग्य मात्रामें दी जाती है। या बच प्रधान औषधिका सेवन कराना चाहिये। चूनेके जलकी वाष्प इस रोगमें अति हितावह मानी गई है।

कालीखांसी—इसके लिये सूचना कालीखांसीके डॉक्टरी विवेचनके अन्तमें दी है।

चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाहका—रोगी दुर्बल और कृष हो, तो बलकारक औषधि देनी चाहिये। श्वसनेन्द्रियको (कण्ठ और छातीपर) शीत न लगे जाय, इस हेतुसे गरम वस्त्र पहनाना चाहिये। शुद्ध वायु और मृदु व्यायाम इस रोगमें विशेष उपकारक हैं। यदि शुष्क कास हो, तो रसस्रावकी वृद्धि करनी चाहिये। इस हेतुसे जलकी वाष्पके श्वासका प्रबन्ध करना चाहिये।

पक्क कफका निःसरण अत्यधिक होनेपर तार्पिन तैल अति उत्तम औषधि है। ५-१० बूँद शक्करके साथ मिलाकर खिला देवें। रोग जीर्ण होनेपर शृङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, कफकुठार रस सोमलप्रधान औषधि समीरपन्नग आदि हितावह होती हैं। एवं नौसादर, जवाखार, वज्रक्षार और इतर क्षारप्रधान औषधि भी प्रयोजित होती है।

इस रोगमें अग्निको प्रदीप्त करना चाहिये। एवं उदरको शुद्ध रखना चाहिये। वेदना होती हो, तो छातीपर तार्पिन तैल या नीलगिरी तैलकी मालिश करानी चाहिये। कफ निकलनेमें कष्ट होता हो, तो कफकर्त्तन रस, कफकुठाररस और क्षारप्रधान औषधि

अति हितकारक मानीगई हैं। कफकुठारके सेवनसे कफ सरलतासे बाहर आ जाता है, और ज्वरका भी शमन हो जाता है। अति उग्रताजनक कास हो और रात्रिको निद्रामें बाधाहोती हो, तो अफीम और अफीमक्षार युक्त औषधिका सेवन कराना चाहिये।

श्वासनलिका प्रसारण—(क्षयजकास) में दुर्गन्ध दूर करने और कफको कम करनेके लिये कफ निःसारक लोहबानके अर्ककी बाष्पका प्रयोग हितकारक माना गया है। एवं शृङ्गभस्म, शुभ्राभस्म, कासकण्डनोवलेह, कफकुठार रस आदि औषधियाँ लाभदायक हैं। कफकी दुर्गन्ध कम होनेपर मरिचादिवटी, खदिरादिवटी, लवङ्गादिवटी आदि प्रयोजित हो सकती हैं।

वातज कास चिकित्सा

१. बृहत् पञ्चमूलका क्वाथ कर १-१ माशा पीपलके चूर्णका प्रक्षेप मिला दिनमें २ समय पिलाने और मांसरस सह भातका भोजन करानेसे वातज कास थोड़े ही दिनोंमें नष्ट हो जाती है।

२. शृंग्यादि लेह—काकड़ासिंगी, कचूर, छोटी पीपल, भारंगी, नागरमोथा और जवासा, इन ६ औषधियों को समभाग मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर इसमेंसे ३-३ माशे चूर्ण ३ माशे गुड़ (पुराना) मिला, फिर तिल्लीका तैल (अथवा घृत) मिलाकर चाट लेवें। दिनमें २ समय चटाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें वातिक कास दूर हो जाती है।

३. भार्ङ्ग्यादि लेह—भारंगी, मुनक्का (बीज निकाली हुई), कचूर, काकड़ासिंगी, पीपल और सोंठ, इन ६ औषधियोंका चूर्णकर ऊपर लिखी विधिसे चाटण बना लेवें। इस चाटणके सेवनसे वातज सूखी खांसी निःसन्देह नष्ट हो जाती है।

४. विश्वादि लेह—सोंठ, धमासा, काकड़ासिंगी, बीज निकाली हुई मुनक्का, कचूर और मिश्री, इन ६ औषधियोंको समभाग मिला लेवें। फिर ६-६ माशे ताजा गो-घृत मिलाकर दिनमें ३ समय चाटनेसे पित्त अनुबन्ध सह दारुण वातज कास निवृत्त हो जाती है।

५. २ तोले मिश्री और २ माशे कालीमिर्चो को २० तोले जलमें मिलाकर उबालें। फिर गुनगुना पिलानेसे वातात्मक कास शमन हो जाती है।

६. जीर्ण कासान्तक वटी—लोहबानके फूल १ तोला, शृंगभस्म १ तोला, कपूर ६ माशे और अफीम ३ माशा शहदमें खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १-१ गोली दिनमें २ या ३ समय देनेसे कफ पूयमय पुरानी खाँसी दूर होती है। कण्ठ और श्वासनलिकामें क्षत होनेपर यह प्रयोजित होती है।

७. ६ माशे गुड़ और ६ माशे कड़वा तैल मिलाकर सुबह शाम चाटनेसे वातिक कास शमन होती है।

८. बहेड़ेपर घी चुपड़ ऊपर कपड़मिट्टी करें (गोबर मिट्टी लगा देवें); फिर पुट पाक कृति अनुसार राखमें दबा ऊपर अग्नि रखकर पका लेवें। फिर इस बहेड़ेका १-१ टुकड़ा मुँहमें रखकर रस चूसते रहनेसे सूखी खांसी आराम होजाती है। इस क्रियासे बहेड़ा न पकाया जाय, तो कच्चे के उपयोगसे भी लाभ पहुँच जाता है।

कण्ठप्रदाह, कण्ठशोथ, फुन्सियाँ और गलशुण्डिका प्रदाह आदि विकृतिसे कास चलती हो, तब बहेड़ा अति हितकर औषधि है।

९. बहेड़ा, मुलहठी और अनारके छिलकाको ४-४ माशे मिलाकर १६ तोले जलमें उबालें; चतुर्थांश जल शेष रहने पर छान ६ माशे मिश्री मिलाकर सुबह शाम पिलाते रहनेसे सूखी खांसी मिट जाती है।

१०. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रहमें लिखी हुई औषधियां—चन्द्रामृत रस (शहद या दूधके साथ), कर्पूरादि वटी, कासमर्दन वटी, लवंगादि वटी, हरीतक्यादि गुटिका, रौप्य भस्म (मलाई-मिश्रीके साथ), शुष्ककासहर क्वाथ, नाग भस्म, वंग भस्म, लऊक सपिस्तां, वासादि चूर्ण, इनमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन कराना चाहिये।

कर्पूरादिवटी, कासमर्दनवटी, लवंगादिवटी, हरीतक्यादिगुटिका—ये सब शामक औषधियां है। इनमेंसे किसी एककी १-१ गोली दिनमें १०-१५ गोली तक मुंहमें रखकर रस चूसे। ये सब सरल सामान्य औषधियां होने पर भी शुष्क कास और नूतन कास पर अति लाभदायक हैं।

खांसते-खांसते कैशिकाओंमेंसे कोई फटकर रक्त भी आता हो और पार्श्वशूल या दाह होता हो, तो प्रवालपिष्टीको वासावलेहके साथ सेवन कराना चाहिये।

जीर्ण कासमें एवं नाजुक प्रकृतिवालोंको रौप्यभस्मका सेवन लाभदायक है। चन्द्रामृतरस सब प्रकारके उग्र कास रोगमें हितकारक है।

नाग भस्म—मक्खन-मिश्रीके साथ देनेसे फुफ्फुसोंकी निर्बलतासह शुष्क कास-का निवारण होता है रौप्यभस्म (मलाई-मिश्री या मक्खन मिश्रीके साथ) का सेवन करानेसे शुक्रक्षयज शुष्क कासका शमन हो जाता है।

लऊक सपिस्तां—१-१ तोला दिनमें २ बार सेवन करानेसे शुष्ककफ आर्द्र बन जाता है। फिर सरलतापूर्वक बाहर आ जाता है; श्वासनलिका और फुफ्फुसोंका प्रदाह शमन होता है, और वेदना दूर होती है। वासादिचूर्ण दिनमें ३ बार ३-३ रत्ती शहदके साथ देनेसे शुष्क कफयुक्त कास की निवृत्ति होती है। इस तरह शुष्क कासहर क्वाथ का सेवन भी शुष्ककास पर अति लाभदायक है।

११. रसतन्त्रसार द्वितीयखण्डमें आये हुए प्रयोग—अमृतार्णव रस नागवल्लभ रस, कासविजयचूर्ण और शर्बतजूफा ये वातिक कास पर व्यवहृत होते हैं। इनमें नागवल्लभरस, ज्वर सह वातिक कास जिसमें पतलाकफ निकलता रहता हो, उसपर विशेष उपयोगी है।

१२. कंटकार्यादि घृत—कंटकारी और ताजी गिलोय, दोनोंका स्वरस १२८-१२८ तोले और गोघृत ६४ तोले मिला यथाविधि घृत सिद्ध करें। इसमेंसे ॥-१ तोला घृत सेवन कराकर पेया पिलानेसे वातिक कास (जिसमें पतला कफ आता रहता है) शमन होती है, और अग्नि प्रदीप्त होती है।

१३. क्षुद्रामृतप्राश्य—कटेली पंचांग और गिलोय ५-५ सेर लेकर भिन्न-भिन्न २० सेर जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर दोनों क्वाथोंको छान मिलाकर पुनः पकावें, लगभग २॥ सेर जल शेष रहने पर ३।॥ सेर मिश्री मिलाकर शर्बत लायक चासनी करें। पश्चात् पुष्करमूल, तेजपात, लौंग, नागरमोथा, भारंगी, जावित्री, छोटी कटेलीके फूल, जायफल, आकके फूल की कली, सोंठ और धनियाँ, ये ११ औषधियाँ ३-३ तोले, छोटी इलायचीके दाने ४ तोले, दालचीनी और काकड़ासिंगी ५-५ तोले, सफेद मिर्च ६ तोले मिला तथा पीपल १० तोले मिला कपड़छान चूर्ण कर ३० तोले गोघृतमें अधभुना कर लें। फिर चाशनीमें भूना हुआ चूर्ण और शिलाजीत ८ तोले डालकर अवलेह सिद्ध करें। तैयार होने पर संगजराहत और वंशलोचन का चूर्ण १०-१० तोले डालें। शीतल होनेपर ४० तोले शहद मिला लेवें।

मात्रा ६ माशेसे १। तोले तक दिनमें २ समय। वातज कासमें धारोष्ण दूध या घृतके साथ। साधारण कासमें निवाये जलसे। कफयुक्त कासमें पीपलका चूर्ण और शहदके साथ और जीर्णकासमें बकरीके दूध के साथ।

इस अवलेहके सेवनसे अति पुरानी खांसी दूर हो जाती है। संगृहीत कफको और अति चिपके हुए कफको सरलतासे बाहर निकलता है। काली खांसीमें भी यह अमृत सदृश उपकारक है। इस अवलेहका २ मास तक पथ्यपूर्वक नियमित रीतिसे सेवन करानेसे जीर्ण कास, फुफ्फुसोंकी निर्बलता, श्वासका फूलना, श्वास, मंदाग्नि और पाण्डु रोग आदि विकार दूर होते हैं।

यदि मुँह और नाकसे रक्त आता हो, रक्तमिश्रित दुर्गन्धयुक्त कफ निकलता हो, तो इस अवलेहके साथ मुक्तपिष्टी १ रत्ती अथवा प्रवालपिष्टी २ रत्ती मिलाकर सेवन करानेसे शीघ्र व्रण भर जाता है, और बलकी वृद्धि होने लगती है। हृदयकी निर्बलता-में सुवर्णका वर्क मिला दें। तीव्र श्वासप्रकोपमें ताम्र भस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती मिलाकर सेवन करावें। पूयमय कफ हो तो शृंगभस्म और लोहवान पुष्प मिलालेना चाहिये।

पित्तज कासचिकित्सा

१ पिण्ड खजूर, मुनक्का, पीपल, मिश्री और धानकी खील को मिला घी और शहदके साथ चाटनेसे पित्तज कास शमन हो जाती है।

२. खरैंटी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, बासाके पत्ते और मुनक्का, इन ५ औषधियोंका क्वाथ बनाकर ६-६ माशे शहद-मिश्री मिलाकर दिनमें २ बार पिलाते रहनेसे पित्तज कासकी निवृत्ति होती है।

सूचना—क्वाथ पिलानेके पश्चात् १ घण्टे तक दूध या जल न पिलावें।

३. छोटी कटेली, बड़ी कटेली, मुनक्का, अडूसाके पत्ते, कपूर, नेत्र-वाला, सोंठ और पीपल, इन ८ औषधियोंका क्वाथ कर शहद-मिश्री मिलाकर पिलानेसे पैत्तिक कास दूर होती है।

४. मुनक्का, आंवला, पिण्डखजूर, छोटी पीपल और काली मिर्चको मिला चटनीकी तरह पीस, घी और शहद मिला कर चटानेसे कफानुबन्धसह पित्तज कास नष्ट होती है।

५. तृण पञ्चमूल, पीपल और मुनक्का इन ७ औषधियोंको दूध १६ तोले और जल ६४ तोलेके साथ मिला औटाकर दुग्धावशेष क्वाथ करें। फिर छान शहद-मिश्री ६-६ माशे (या अधिक) मिलाकर पिलावें। इस तरह दिनमें २ समय पिलाते रहने से पित्तज कास, शिरःशूल और मूत्रावरोध दूर होते हैं।

६. मुनक्का और मिश्री ६-६ माशे मुलहठीका सत्व (रबसूस), वंशलोचन, तुरंजबीन और छोटी इलायचीके दाने २-२ माशे लेकर सबको मिला लेवें। फिर चटनी-के समान पीस ६-६ माशे शहद मिलाकर चटानेसे पित्तज कासकी निवृत्ति होती है।

७. लिहसोड़े और मुलहठी १-१तोला तथा हरड़, बहेड़ा, आंवला, तीनों ४-४ माशे लेकर २४ तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहनेपर मलकर छान लेवें। फिर ६-६ माशे शहद-मिश्री मिलाकर पिलावें।

८. अंजीर और मुलहठी १-१ तोलेको दूध ८ तोले और जल ३२ तोलेमें मिलाकर दुग्धावशेष क्वाथ करें। फिर शहद मिश्री मिलाकर पिलानेसे पित्तजन्यकास और दाहका शमन होता है।

९. ईसबगोल ६—६ माशेको जलमें भिगो लुआब बना मिश्री मिलाकर देवें।

१०. अडूसेके पत्तोंका पुटपाक रीतिसे १-१ तोला स्वरस निकाल ६-६ माशे शहद मिलाकर बकरीके दूधके साथ सेवन करानेसे पित्तश्लेष्मप्रधान कास और रक्तपित्त-की निवृत्ति होती है।

११. कफ सरलतासे बाहर न निकलता हो, तो आधसेर जलमें १ तोला शक्कर डालकर गरम करें। छटांक भर रहनेपर उतारकर गुनगुना-गुनगुना पिलानेसे तुरन्त कफ सरलतापूर्वक पृथक् होने लगता है, और व्याकुलता शमन हो जाती है।

१२. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—प्रवालपिष्टी (अनारके रस और मिश्रीके साथ) सितोपलादि चूर्ण (अनार शर्बतके साथ), बृहत् सितोपलादि चूर्ण, कासमर्दन वटी, सुवर्ण भस्म (द्राक्षारिष्टके साथ), चन्द्रामृत रस, वासादि क्वाथ, मौक्तिक पिष्टी (सितोपलादि चूर्ण, गिलोय सत्व और शहदके साथ)।

दाह अधिक हो, रक्त जाता हो और कासका वेग तीव्र हो, तो वेग शमनार्थ मौक्तिकपिष्टी, प्रवालपिष्टी, सितोपलादि चूर्ण या बृहत् सितोपलादि चूर्णको प्रयोगमें लिया जाता है। मौक्तिक पिष्टी या प्रवाल पिष्टीको सितोपलादि या बृहत् सितोपलादि चूर्णके साथ मिलाकरके भी दी जाती है। कासमर्दनवटी मुँहमें रखकर रस चूसते रहनेसे वेग शान्त होजाता है। पित्तके साथ कफका अनुबंध हो या मुँहसे रक्त निकलता हो, तो वासादि क्वाथ हितकारक है। चन्द्रामृत रस सब दोषोंकी विकृति युक्त उत्तेजक कासपर दिया जाता है। सूखी पुरानी खांसीके साथ हाथ पैरोंमें जलन हो तो सुवर्ण भस्म और प्रवाल पिष्टी, गिलोयसत्व और शहद अथवा दाडिमावलेहके साथ दी जाती है। यदि क्षय कास अनेक महीनोंसे त्रास देरहा हो, तो सुवर्णभस्म द्राक्षारिष्टके साथ देनी चाहिए।

१३. वातपित्तात्मक कास—पर सूतशेखर रस १ रत्ती और प्रवालपिष्टी २ रत्ती अदरखके रस और शहदके साथ देवें।

कफज कासचिकित्सा

१. अदरखका रस शहद मिलाकर चटानेसे श्वास, कास, जुखाम और दूषित कफकी निवृत्ति होती है।

२. दशमूलका क्वाथ बना १–१ माशा पीपल प्रक्षेप रूपसे मिलाकर पिलानेसे पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास, कास आदि कफप्रधान रोगोंका नाश होता है।

३. पुष्करमूल, कायफल, भारंगी, सोंठ और छोटी पीपलको समभाग मिलाकर क्वाथ करें। फिर शहद डालकर पिलानेसे कफवृद्धिसे उत्पन्न कास, श्वास और हृदय-वेदना आदि विकार नष्ट होते हैं।

४. हरड़, सोंठ और नागरमोथाको समभाग मिला गुड़के साथ जंगली बेरके सदृश गोलियाँ बनाकर दिनमें ३–४ बार सेवन करानेसे श्वास और कास नष्ट होते हैं। यदि गुड़की चाशनी बना लेवें, तो गोलियाँ दृढ़ बनती हैं, फिर मुँहमें रखकर रस चूंसते रहनेसे सत्वर लाभ होता है।

५. कटेलीके फल और पीपलको मिला चूर्ण कर १–१ माशा दिनमें २ बार शहदके साथ देते रहनेसे कफज कासकी निवृत्ति होती है। इस चूर्णसे दूषित कफ सरलतासे बाहर निकलता है।

६. कटेली पञ्चाङ्गका क्वाथ कर पीपलका चूर्ण और शहद डालकर पिलानेसे कफ सरलतासे बाहर निकल जाता है।

७. पीपल या मुलहठीके क्वाथमें शहद मिलाकर पिलानेसे कफ वाली खाँसी दूर होती है। पीपलसे दूषित कफकी शुद्धि होती है, और मुलहठीसे श्वासवाहिनियोंका

प्रदाह दूर होता है तथा कासका वेग कम होता है। जिसकी आवश्यकता हो, उसे उपयोगमें लेना चाहिये।

८. भारंगी, पीपल, सोंठ और काकड़ासिंगीका चूर्णकर ४-४ माशे दिनमें २ बार शहदके साथ चटानेसे श्वास और कास नष्ट होते हैं।

९. आककी जड़को सम्पुटमें बन्दकर भस्म करें। इसमेंसे १-१ रत्ती मलाई या शहदके साथ या नागरबेलके पानमें दिनमें ३-४ बार देनेसे कफ सरलतासे निकलकर कफकास दूर होती है।

१०. मुलहठी और कालीमिर्चको समभाग मिला तवे पर भून लेवें। फिर पीस समान मिश्रीकी चाशनीमें मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। १-१ गोली मुँहमें रखकर रस चूसते रहें। एक दिनमें १०-१५ गोली चूसें। इन गोलियोंके सेवनसे नई कफज कास चली जाती है।

११. कुचिलेको १६ गुने घीमें भूनें, भली-भांति भुन जानेपर उतारकर पीस लेवें। इसमें से १-१ रत्ती नागरबेलके पानमें या शहदके साथ देनेसे श्वासनलिका सबल बनकर कफको सरलतासे बाहर निकालती है।

१२. समशर्कर चूर्ण—लौंग, जायफल, पीपल १-१ तोला, काली मिर्च ३ तोले, सोंठ १६ तोले और मिश्री २५ तोले लेवें (सबको कूटकर कपड़छान चूर्ण करें (इसमेंसे ४ माशेसे ६ माशे चूर्ण दिनमें २ समय जल या शहदके साथ देनेसे कास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, अग्निमान्द्य और प्रहणी विकार, ये सब शीघ्र दूर होते हैं (खांसीके साथ मंद ज्वर रहना, दिनमें ३-४ पतले-पतले दस्त लगना और पचनक्रिया विकृति होना आदि पर इस चूर्णका उपयोग लाभदायक है।

१३. पिप्पल्यादि क्वाथ—पीपल, कायफल, सोंठ, काकड़ासिंगी, कालीमिर्च कालाजीरा, छोटी कटेली, निर्गुण्डीके बीज, अजवायन, चित्रकमूल और अडूसाके पत्ते, इन १२ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। इसमेंसे २-२ तोलेका क्वाथ कर पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर पिलाने से कफ कास नष्ट होती है।

१४ अपामार्गका क्षार या वंगक्षार (सुवर्णवंग बनानेके साथ बना हुआ क्षार) २-२ रत्ती ३ माशे घी और ६ माशे शहद मिलाकर चाट लेनेसे कफ जल्दी दूर हो जाता है, कोई-कोई पानमें रखकर रस चूसते हैं।

१५. शृंग भस्म सोहागेका फूला २-२ रत्ती नागरबेलके पानमें रखकर सुबह-शाम खिलानेसे दूषित कफकी सत्वर शुद्धि हो जाती है।

१६. पञ्चलवण, यवक्षार और सज्जीक्षार, इन ७ औषधियोंको एक-एक छटाँक लेकर मिला लेवें। फिर सेहुण्डके ताजे डंडेमें भर कर मुँह बन्द करें, और ऊपर कपड़ मिट्टी कर सुखा लें। पश्चात् गजपुट अग्नि दें। स्वाङ्ग शीतल होनेपर निकालकर

पीस लेवें, इसमेंसे २ से ४ रत्ती दिनमें ३ बार शहद या गुनगुने जलके साथ देते रहनेसे दूषित कफ सरलतासे बाहर आता रहता है।

१७. यदि कफवृद्धि और कोष्ठबद्धता हो, तो अमलतास का गूदा १-१ माशे समान मिश्रीके साथ मिलाकर गुनगुने जलके साथ सुबह शाम सेवन करानेसे कफ, आम, विष और संचित मल निकल जाते हैं।

१८. बहेड़ा सोंठ, पीपल और पीपलामूलको कूटकर ४-४ माशे चूर्ण शहदके साथ देते रहनेसे कफज कास निवृत्त होती है।

१९. अहिफेनादि चूर्ण—अफीम, छोटी हरड़ बहेड़ा, सफेद मिर्च, आकके फूलकी कली, इन पाँच औषधियोंको समभाग लेवें। अफीमको छोड़ शेष औषधियोंका कपड़छान चूर्ण करें। फिर अफीमको जलमें मिलावें। इस जलके साथ खरलकर चूर्णको सुखा लेवें। पश्चात् मिट्टीके तवेपर जलाकर काली राख बना लेवें। इसमेंसे १-१ रत्ती चूर्ण शहदके साथ दिनमें दो समय देनेसे सब प्रकारकी खांसी दूर होती है।

२०. हरिद्रादिचूर्ण—हल्दी १ तोला, सज्जीखार (सोडा बाई कार्ब) ३ माशे और पीपरमेण्टका फूल १ माशा लेवें। पहले हल्दी और सज्जीखारको किञ्चित् जलके साथ खरल करें। फिर पीपरमेण्टका फूल मिलावें। इसमेंसे २-२ रत्ती चूर्ण दिनमें २-३ बार नागरबेलके पानमें खिलानेसे कफ कासकी सत्वर निवृत्ति होती है।

२१. अर्कादि वटी—आकके फूलोंकी कलियां और काली मिर्च समभाग तथा दोनोंके समान कत्था मिला जलमें खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बना लेवें इनमेंसे सुबह शाम १ से २ गोली तक देते रहनेसे थोड़े ही दिनोमें कास रोग निवृत्त हो जाता है।

जब कफ चिपचिपा बनजाता है। बड़ी कठिनाइसे छूटता है, या सुबहको बहुत ज्यादा परिमाणमें गिरता है, तब कफको सरलतासे निकालनेके लिये और उत्पत्तिको रोकनेके लिये यह दिया जाता है।

२२. रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—कनकासव, शृंगभस्म, मल्लसिंदूर प्रथमविधि, मल्लभस्म, कफकुठार रस, महावातराज रस, आनन्दभैरव रस, मरिचादि वटी, अतिविषादि वटी, लवङ्गादि वटी, अग्नि रस, वासावलेह, अष्टाङ्गावलेह, आर्द्रकावलेह, संजीवनी वटी, हरीतक्यादि गुटिका, कफकर्त्तनरस कासकण्डनोवलेह, शृंग्यादि चूर्ण और वासादि चूर्ण, ये सब हितकारक हैं।

इन औषधियोंमें कनकासव श्वासनलिकाप्रदाहका शामक, उष्ण कफस्राव करानेवाला, शोथहर, मादक और वेदनाशामक है। यह तमक श्वास और कफकासकी उत्तम औषधि है।

शृंगभस्म दूषित कफको बाहर निकालने, कीटाणुओंको नष्ट करने और फुफ्फुसों-की शुद्धि करनेमें हितकर है। शक्करके साथ देनेसे कफको सत्वर बाहर निकालती है; और शहदके साथ सेवन करानेसे कीटाणुओंकी उत्पत्तिको रोककर फुफ्फुसोंकी शुद्धि और मंद ज्वरकी निवृत्ति करती है। अनेक बार अधिक कफस्राव करानेके लिये शृङ्गभस्म अडूसेके रसके साथ दी जाती है। श्वासवाहिनियोंमें शोथ आजानेसे कफ संचित रहता हो, ऐसी कासमें शृङ्गभस्मके साथ थोड़े प्रमाणमें रससिंदूर मिलाकर शहदके साथ देना चाहिये; और ऊपर में अडूसा, मुलहठी, बहेड़ा और मिश्रीका क्काथ पिलाना चाहिये, या वासावलेहके साथ सेवन कराना चाहिये।

यदि श्वास रोगमें कफवृद्धि हो, कफ पूयमिश्रित हो और वृक्कस्थानमें विकृति न हो, मूत्रशुद्धि नियमित होती हो, तो मल्लभस्म या मल्लसिंदूर दिया जाता है। उपदंश रोग जिनको पहले हो गया उनको यदि कफकास है, तो सोमलमिश्रित औषधिका सेवन अधिक लाभ होता है।

जब छातीमें कफ बहुत जमा हो गया, बार-बार खाँसी आकर कष्टपूर्वक थोड़ा थोड़ा कफ गिरता रहता हो, मंद-मंद ज्वर रहता हो, तब सरलता पूर्वक सत्वर कफ निकालनेके लिये "कफकुठार रस" दिया जाता है।

सामान्य जुखाम, ज्वर और कफ कासमें कफमें "कफकर्तन रस" आनन्दभैरव रस या "संजीवनी वटी" लाभदायक है। इनमें कफकर्तन नई और पुरानी खाँसी, एवं आर्द्र और शुष्क कास, सब पर प्रयोजित होता है।

कफका शनैः शनैः शोधन करानेके लिये निर्बल प्रकृति वालोंको "मरिचादि वटी या लवंगादि वटी" मुँह में रखकर रस चूसनेको दी जाती है। यदि कफ पीला हो गया हो, तो मरिचादि वटी विशेष हितकर मानी जाती है। रोग अति जीर्ण हो गया हो, कफ पीला या हरा हो, तो "कासकण्डनोवलेह" देने से कीटाणु, फुफ्फुसादिके व्रण और कफ दोष, सबकी निवृत्ति होकर शमन हो जाता है।

कफके साथ रक्त आता हो, तो अग्नि रस सेवन कराया जाता है। यदि कफ अधिक हो और पित्तका प्रकोप भी हो, तो "वासावलेह" देना चाहिये। अग्निरस और वासावलेह, दोनोंको मिलाकर भी दे सकते हैं।

निर्बल प्रकृतिवालोंकी सामान्य कफयुक्त नई और पुरानी खाँसीमें "चन्द्रामृत रस" का सेवन हितकारक है। यदि कफ ज्यादा हो, तो साथ-साथ "कासकण्डनो-वलेह" भी देते रहें।

कण्ठमें रुका हुआ कफ सरलतासे बाहर न हो, तो कफको बाहर निकालनेके लिये "अष्टाङ्गावलेह" दिया जाता है।

यदि अग्निमान्द्यसे आमवृद्धि, कफकास और श्वास हुए हों, तो "आर्द्रकावलेह का सेवन करानेसे सत्वर लाभ पहुँच जाता है।

जब पतला कफ बार-बार उत्पन्न होता रहता है और कफके जलांश का शोषण कराने की या श्वासवाहिनियों को सबल बनाने और प्रतिश्याय को दूर कराने की अथवा रात्रि को कास के वेग को शान्त कराने की आवश्यकता हो तब "महावातराज रस" दिया जाता है। इस रसायन में आधी अफीम होने से इसका उपयोग खूब सम्हाल-पूर्वक किया जाता है। मधुमेह, संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका आदि रोग पीड़ितों को कफज कास में दिया जाता है। कोष्ठबद्धता हो या नीलगात्रता हो तो इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

शृंग्यादि चूर्ण, वासादि चूर्ण, हरीतक्यादि वटी और अतिविषादि वटी ये सामान्य औषधियाँ होनेपर भी अति हितकर हैं। जब सौम्य औषधि देनी हो, तब ये औषधियाँ प्रयोगमें ली जाती हैं।

२३. धूम्रपान—(१) मनःशिलादि या जात्यादि धूम्रपान करा ऊपर दूध (गुड़ या शक्कर मिला हुआ) पिलानेसे सत्वर कफकी निवृत्ति होकर स्वरयन्त्र, श्वास-वाहिनी और फुफ्फुस दोष मुक्त होजाते हैं (श्वासकृच्छ्रता निवृत्त होती है)

(२) आककी छाल और मैनसिल २-२ रत्ती तथा सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, तीनों मिलाकर २ रत्ती लें। सबको मिला चिलम में रख धूम्रपान करावें। ऊपर जल या दूध पिलाने, अथवा नागरबेलका पान खिलानेसे सत्वर कफ निकलकर तमक श्वास और कफ कासकी निवृत्ति होती है।

२४. वमन करानेकेलिये—नीलकण्ठ रस गुनगुने जलके साथ देवें; या चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथमखण्ड के संशोधन प्रकरणमें लिखे हुए वामक प्रयोगोंमें से अनुकूल औषधिका उपयोग करें। कुछ प्रयोग पहले चिकित्सोपयोगी सूचनाके साथ भी लिखे हैं।

सूचना—वमन करानेमें अधिकारी, विधि, औषधि, और फलका विशेष वर्णन प्रथमखण्ड से पृष्ठ ४७ से ६० तक किया है, उसको अच्छी तरह समझकर प्रयोग करना चाहिए।

मैनफल २ तोलेका क्वाथ कर पीपल और सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे कफकी निवृत्ति हो जाती है; या मैनफल ६ माशे तथा पीपल और सैंधानमक २-२ माशे मिला गुनगुने जलके साथ देनेसे वमन होकर कफ निकल जाता है। वमन करानेमें यह अति निर्दोष और सौम्य औषधि है।

२५. कफकी उत्पत्ति कम कराने के लिये—अभ्रकभस्म और लोहभस्म (पीपलका चूर्ण और शहदके साथ) अथवा त्र्यूषणाद्य लोह का सेवन करानेसे कफ और मेद दोनोंकी उत्पत्ति मर्यादित बन जातीहै।

२६. रसतन्त्रसार द्वितीय खण्डमें आये हुए प्रयोग—नाग रसायन, कफकेतु, कफ कुञ्जर रस, बृहच्छृङ्गाराभ्र, कासकेसरी रस, हिंगुलादि वटी, अर्कमूलत्वगादि चूर्ण,

कासान्तक चूर्ण अर्कलवणादि वटी, श्वासकृच्छ्रान्तक बटी, द्राक्षादि वटी और मधुयष्ट्यादि वटी भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें सफलता पूर्वक व्यवहृत होते हैं।

२७. तामखूके व्यसनीकी खाँसी पर—१. गोमूत्रक्षार चूर्ण या श्वासरोगान्तक वटी दूसरी विधि का सेवन कराना चाहिये।

२. ऊपर लिखे हुए धूम्रपान करावें।

३. धतूरेकी जड़को चिलममें रखकर धूम्रपान करावें।

४. पीपल या छोटी हरड़को चिलममें रखकर धुँआ पिलावें।

शुक्रक्षयजन्य कास पर—रससिंदूर आधो रत्ती, वंगभस्म १ रत्ती और अभ्रभस्म २ रत्ती, तीनोंको मिलाकर शहदके साथ दिनमें २ समय देते रहने और ऊपर वृद्धदारु चूर्ण दूधके साथ पिलाते रहने से शुक्रक्षय, हृदयकी निर्बलता और कफप्रकोप दूर हो जाते हैं।

वातकफात्मक कास चिकित्सा

१. कटफलादि क्वाथ—कायफल, रोहिष तृण, भारंगी, नागरमोथा, धनियां, बच, हरड़, सोंठ, पित्तपापड़ा, काकड़ासिंगी और देवदारु, इन ११ औषधियों का क्वाथ कर १ रत्ती भूनी हींग और ६ माशे शहद मिलाकर पिलानेसे कंठविकार, श्वास, हिक्का और ज्वरसह वातकफात्मक खाँसी दूर होती है।

२. कालानमक, हरड़, आँवला, पीपल, जवाखार और सोंठको मिलाकर चूर्ण करें इसमें से ३-३ माशे चूर्ण दिनमें २ या ३ बार घी के साथ सेवन करानेसे वातकफात्मक कासकी निवृत्ति होती है।

३. तालीसादि मोदक—तालीसपत्र १ तोला, काली मिर्च २ तोले, सोंठ ३ तोले, छोटी पीपल ४ तोले, दालचीनी और छोटी इलायचीके दाने ६-६ माशे और मिश्री ३२ तोले लेवें। मिश्रीकी चाशनी बना उसमें शेष औषधियोंका चूर्ण मिलाकर ४-४ माशेके मोदक बना लेवें (यदि मोदक न बनाना हो, तो चूर्ण रहने देवें; चूर्णकी अपेक्षा मोदक दीर्घकाल तक गुणदायी रहता है और सत्वर लाभ पहुँचाता है) मात्रा—१ से २ मोदक दिनमें २ समय। श्वास, कास, अरुचि, वमन, प्लीहावृद्धि, हृदय और पार्श्वमें शूल, पाण्डु, ज्वर, अतिसार और मूढवात (मूत्रावरोध या वायु उदरमें भरा रहना), इन सब विकारोंको दूर करता है। वातश्लेष्मज कास पर यह अच्छा लाभ पहुँचाता है। पित्तका अनुबन्ध होने पर ५ तोले वंशलोचन भी मिला लेना चाहिये।

४. दशमूल २-२ तोलेका क्वाथ कर ६ माशे घी मिलाकर दिनमें २ समय पिलाने से वातकफात्मक कास शमन होजाती है।

५. वातिक कासमें लिखा हुआ क्षुद्रामृतप्राश्य, रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग

संग्रहमें लिखी हुई औषधियाँ—लवंगादि वटी, अतिविषादि वटी, चन्द्रामृत रस, श्वास-कुठार रस, कफकर्त्तन रस, चिन्तामणि चूर्ण और समीरपन्नग रस ये सब हितकर हैं।

इनमें समीरपन्नग अति उग्र है। उसका उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिए। कफ अत्यधिक हो, तो समीरपन्नगको प्रयोगमें लावें। कफाधिक कासमें अनुपान अदरख का रस और शहद तथा वाताधिक कासमें घी-शहद इतर अथवा इतर अनुपान दें। शेष औषधियाँ सौम्य हैं।

पित्तकफात्मक कासचिकित्सा

१. अडूसेके पत्तोंमेंसे पुटपाक रीतिसे निकाले हुए १ तोले स्वरसमें ६ माशे शहद मिलाकर पिलानेसे रक्तपित्त और पित्तकफात्मक कास दूर होते हैं। उरःक्षतमें यह अति हितावह है।

२. रस तन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखा हुआ लवंगादि तालसिन्दूर का सेवन करानेसे पित्तप्रकोप और कफसह कास, दोनोंकी निवृत्ति होती है।

३. मरिचादि वटी चूसते रहनेसे दूषित पीला कफ सरलतासे बाहर आजाता है; और थोड़े ही दिनोंमें प्रकृति स्वस्थ हो जाती है।

४. शृंगभस्म २ रत्ती, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, अभ्रकभस्म १ रत्ती और सितोप-लादि चूर्ण २ माशे, चारोंको मिलाकर घी-शहदके साथ देनेसे पित्तकफात्मक कासकी निवृत्ति होती है।

५ कफकुठार रस का सेवन करानेसे दूषित कफ और ज्वरसह कास रोग थोड़े ही दिनोंमें निवृत्त हो जाते हैं।

६. अलसीका क्वाथ मिश्री मिलाकर पिलानेसे कफ सरलतापूर्वक बाहर आजाता है।

७. सितोपलादि अवलेह अडूसेके स्वरसके साथ देनेसे कफ सत्वर बाहर निकल जाता है। यदि शुष्क कास हो, तो अवलेह सेवन बकरीके दूधके साथ कराना चाहिये।

८. चन्द्रामृत रस पित्तकफात्मक कास पर अति हितकर है। शक्ति संरक्षणार्थ अभ्रकभस्म १-१ रत्ती च्यवनप्राशावलेह १-१ तोलाके साथ दिनमें २ समय देते रहें।

९. कफकासमें लिखे हुए अहिफेनादि चूर्ण कफकुञ्जर रस, जीर्णकासान्तक वटी, कसान्तकवटी, ये सब उपकारक हैं।

१०. कनकासव दिनमें २ समय पिलाते रहनेसे कफ सरलतासे निकलता है, वेदना कम होजाती है और शक्ति कायम रहती है।

क्षतज कास चिकित्सा

१. वासा स्वरस २ तोलेमें ६ माशे शहद मिलाकर देवें। ऊपर बकरीका दूध पिलावें।

२. पीपल की लाख १ माशेको शहदमें मिलाकर दिनमें २ बार चटानेसे रक्त गिरना और कफप्रकोप, दोनों दूर होते हैं ।

३. आंवलेका चूर्ण १ तोला १६ तोले दूधमें डाल, फिर घी मिलाकर सेवन करानेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है ।

४. काँसकी जड़, ईख, कमलकी नाल, पद्माख, कमलकी केशर और रक्तचन्दन को मिलाकर २ तोले लें। फिर दूध १६ तोले और जल ६४ तोलेके साथ:मिलाकर दुग्धावशेष क्वाथ करें। पश्चात् छान शीतल होने पर शहद मिलाकर पिलानेसे रक्तस्राव निवृत हो जाता है ।

५. पीपल १ माशे को कुचल १६ तोले दूध और ६४ तोले जलमें मिलाकर दुग्धावशेष क्वाथ करें। फिर पीपल खिला ऊपर दूध (१ तोला घृत मिलाकर) पिलाने से रक्तस्राव और कफवृद्धि, दोनों दूर होते हैं ।

६. पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपल मुलहठी, मुनक्का, लाख, काकड़ासिंगी और शतावर १–१ तोला, वंशलोचन २ तोले और मिश्री ३२ तोले लेकर कपड़छान चूर्ण करें। इसमेंसे ३ से ६ माशे चूर्ण दिनमें २ बार सुबह-शाम ३ माशे घी और ६ माशे शहद मिलाकर सेवन करानेसे क्षतज कास निवृत्त होती है ।

७. पीपल पद्माख,, लाख, कटेलीके पक्के फल, इनका चूर्ण कर २–२ माशे घी और शहद मिलाकर दिनमें २ समय चटाते रहनेसे कफ सरलतासे बाहर आ जाता है; तथा रक्तस्राव भी बन्द हो जाता है। यदि कफ अत्यधिक हो तथा पीला, दुर्गन्धयुक्त हो, तो इस औषधि को प्रयोगमें लाना चाहिये ।

८. खसखसके बीज ६ तोले और ईसबगोल २ तोले को मिला ६४ तोले जल में अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर छान, २ तोले बबूलका गोंद, ४ तोले खसखस और १ सेर मिश्री मिलाकर पाक करें। चाटने लायक हो जाय, तब उतार लेवें । इस अवलेहमें से १–१ तोला दिनमें २ बार चटानेसे रक्तस्राव, प्रतिश्याय और कफ गिरना बन्द हो जाते हैं ।

९ मूर्वा, रसोत, चित्रकमूल, छोटी पीपल, हल्दी, पाठा, और मजीठ, सबको समभाग मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर ४–४ माशे चूर्ण शहदके साथ दिनमें २ समय चटाते रहनेसे क्षतज कास शमन हो जाते हैं ।

१०. प्रवालपिष्टी २ रत्ती और सितोपलादि चूर्ण ३ माशे के साथ ३ माशे घृत और ६ माशे शहद मिलाकर चटानेसे रक्तस्राव और कफोत्पत्ति, दोनों रुक जाते हैं ।

११. लऊक सपिस्तां १ से २ तोले दिनमें २ समय चटानेसे कफ सरलतासे बाहर निकलता है और रक्तस्राव बन्द हो जाता है ।

१२. शृंगभस्म २ रत्ती तथा वंशलोचन, छोटी इलायचीके दाने और संगजराहत भस्म दूसरी विधि ४-४ रत्ती मिलाकर दिनमें २ समय प्रातः सायं मक्खन-मिश्री के

साथ तथा मध्याह्न को शहद के साथ देते रहनेसे कफ-प्रकोप और रक्तस्राव दूर होते हैं।

१३. शक्ति क्षीण होगई हो, तो द्राक्षासव या महाद्राक्षासव दिनमें २ समय पिलाते रहना चाहिए।

१४. वासावलेह प्रथम विधि १-१ तोलाके साथ प्रवाल पिष्टी २ रत्ती या मौक्तिक पिष्टी १ रत्ती मिलाकर दिनमें २ समय देते रहनेसे कफ सरलतासे बाहर आ जाता है; रक्तस्राव बन्द हो जाता है और दुष्ट कफकी उत्पत्तिका दमन हो जाता है।

१५. एलादिवटी १-१ माशा दिनमें ३ समय बकरीके ताजे दूधके साथ देते रहनेसे उरःक्षत, ज्वर, कास, शोष, रक्त गिरना आदि विकार निवृत्त होते हैं।

१६. कनकासव दिनमें २ बार पिलानेसे कफ सरलतासे बाहर आता रहता है। पीड़ा कम होती है, और शक्ति कायम रहती है।

१७. पीप हो गया हो तो मनःशिलादि धूम्रपान या कफकासमें लिखे हुए इतर धूम्रपानसेवन करानेसे दूषित कफ सत्वर बाहर आ जाता है; कीटाणु नष्ट होजाते हैं; और व्रण शुद्ध होकर सूख जाता है।

१८. तरुणानन्द रस—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक २-२ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर बेल छाल, अरनी छाल, गम्भारीकी छाल, पाढलकी छाल, खरैंटी की जड़की छाल, नागरमोथा, पुनर्नवाकी जड़, आंवला, बड़ी कटेली, अडूसेके पत्ते, विदारीकन्द और शतावरी, इन सबके स्वरस ५-५ तोले या क्वाथके साथ अनुक्रमसे मर्दन करें। फिर अडूसेके १० तोले स्वरसके साथ खरलकर देवें, पश्चात् अभ्रकभस्म कज्जलीसे दुगुनी और आधा कपूर मिलावें। जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीसपत्र, छोटी इलायचीके दाने और लौंग, इन ६ औषधियोंको १-१ माशा लेकर बारीक चूर्ण कर मिला देवें। फिर विदारीकन्दके स्वरसकी १ भावना देकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लेवें।

मात्रा—१-१ गोली दिनमें २ बार नारियलके जल या दूधके साथ सेवन करानेसे राजयक्ष्मा, धातुक्षय, उत्कट उरःक्षत, पाँचों प्रकारकी खाँसी, स्वरभंग, अरुचि, कामला पाण्डु, प्लीहावृद्धि, हलीमक, जीर्ण ज्वर, तृषा, गुल्म, आमप्रधान ग्रहणी, अतिसार शोथ, कुष्ट, भगंदर आदि रोग दूर होते हैं। यह प्रयोग उग्रता शामक, कीटाणु-नाशक, कफघ्न और जीर्ण ज्वरहर है। एवं रसायनों में उत्तम, धातु-वर्धक, नेत्रके लिये हितकर, पिष्टक, कामोत्तेजक, बुद्धिवर्धक और बलक्षयनाशक है। २ मास सेवन करने से कासादि रोगोंको दूरकर शुक्रको बढ़ाती है और ज्वरको दूर करती है। इस रसायन के साथ नारियलका जल रोगशामक अनुपान है और दूध वीर्यवर्धक अनुपान है।

इस रोगकी विशेष चिकित्सा राजयक्ष्माके अन्तर्गत उरःक्षत विकार में लिखी जायगी।

क्षयकास चिकित्सा

१. सुवर्णमाक्षिक भस्म २ रत्ती और अभ्रकभस्म १ रत्ती मिलाकर वासावलेहके साथ दिनमें २ समय देते रहनेसे काम, कफप्रकोप, पार्श्व और हृदयमें वेदना तथा दाह की निवृत्ति होती है। ज्वर न हो, तो इस औषधिका उपयोग करें।

२. शृंगभस्म २ रत्ती और अभ्रक भस्म १ रत्तीको मिलाकर शहदके साथ दिनमें २ बार दें; ऊपर अडूसा, मुलहठी, बहेड़ा और मिश्रीका क्वाथ पिलावें।

३. सितोपलादि अवलेह १-१- माशे शहद मिलाये हुए १-१ तोले अडूसेके स्वरसके साथ दिनमें २ बार देवें, ऊपर बकरीका दूध पिलावें।

४. हेमगर्भ पोटली रस दूसरी विधि २-२ रत्ती कालीमिर्च और शहदके साथ देवें। यकृतमें से पित्त पूरा न निकलता हो तो प्रथमविधि वाला रस, पीपल और शहद के साथ देवें।

५. हृदय और मनको बल देनेके लिए द्राक्षासव या महा द्राक्षासव २॥ से ५ तोले दिनमें २ बार पिलाते रहें।

६. दूषित कफ अधिक बढ़ गया हो, ज्वर रहता हो और सत्वर कफ बाहर निकालना हो, तो कफकुठार रस १-१ रत्ती नागरबेलके पानके साथ सुबह १ समय देवें। फिर ३ दिन बाद शृंगभस्म और अभ्रकभस्म मिलाकर दिनमें २ बार सेवन करावें (लोहवान गूगल की वायुका प्रयोग भी करें)।

७. अडूसा, गिलोय, भारंगी, नागरमोथा और छोटी कटेलीके क्वाथके साथ चन्द्रामृत रस का सेवन करानेसे संचित कफ जल्दी निकलकर फुफ्फुस और श्वास-नलिकाएँ निर्दोष बन जाती हैं।

८. कफ अधिक हो तथा ज्वर और दाह भी रहते हों, तो लवंगादि लाल सिंदूर बकरीके दूधके साथ दिनमें २ समय देवें।

शक्तिका संरक्षण करनेके लिये—अभ्रकभस्म और रससिंदूर को च्यवन-प्राशावलेहके साथ दें, अथवा सुवर्णयुक्त लक्ष्मीविलास रस और प्रवालपिष्टी को मिला सितोपलादि चूर्णके साथ देवें।

मालिशके लिये—लाक्षादि तैल की छाती पर मालिश करावें। यदि दाह भीतर रहता हो तो चन्दनबला लाक्षादि तैल की मालिश करावें।

सूचना—जब ज्वर न हो या कम हो, तब मालिश करानी चाहिये। ज्वर बढ़ जानेपर मालिश नहीं करानी चाहिये, अन्यथा स्वेदावरोध होकर विषवृद्धि होजाती है।

शृंगाराभ्र—अभ्रक भस्म ८ तोले, कपूर, जावित्री, नेत्रवाला गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तालीस पत्र, दालचीनी, नागकेसर, कूठ और धायके फूल ये १२ औषधियाँ ३-३ माशे, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल ये सब

१।।-१।। माशे, छोटी इलायचीके दाने, जायफल, शुद्ध गन्धक, ये सब ६-६ माशे तथा पारद ३ माशे लेवें। पहले पारद गन्धककी कज्जली करें। फिर अभ्रक भस्म तथा तत्पश्चात् काष्ठादि औषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिला जलके साथ खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें।

मात्रा—१से २ गोली दिनमें २ समय अदरख और नागरबेलके पानके साथ देनेसे अग्निमान्द्य जनित रोग, ज्वर, उदरपीड़ा राजयक्ष्मा, धातुक्षय, कास, श्वास, शोथ, नेत्रविकार, प्रमेह, मेदवृद्धि, वमन, शूल, अम्लपित्त, अति तृषा, घोर गुल्म रोग, पाण्डु, रक्तपित्त, विषविकार, पीनस, प्लीहावृद्धि, आमवातजनित रोग, कफ और वात-जनित रोग, तथा सब प्रकारके पित्त रोग दूर होते हैं। यह रसायन बलदायक, धातुपौष्टिक और युवावस्थाकी प्राप्ति कराने वाली तथा कामोत्तेजक है। इस रसायनके सेवन करने वाला वलीपलितादि रहित और काममूर्ति बनकर दीर्घायु भोगता है।

सूचना—इस रसायनका सेवन करने पर कुछ दिनों तक शाक और खटाईका त्याग कराना चाहिये।

नाग रस—लौंग, जायफल, जावित्री, नाग भस्म, कालीमिर्च, पीपलामूल, ये ६ औषधियाँ १-१ तोला तथा कस्तूरी और केशर ३-३ माशे मिला अदरखके रसमें १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। मात्रा-१ से २ गोली अदरखके रसके साथ देनेसे कफ, क्षय, श्वास, कास और शूलका नाश होता है। अनुपान भेदसे यह रसायन सब प्रकारके रोगोंका नाश करता है।

विशेष उपचार आगे क्षय रोगमें लिखे जायँगे।

गलशुण्डिकाविकृतिजन्य कासचिकित्सा

१. केवल माजूफल अथवा माजूफल, फिटकरी और सैंधानमकके चूर्णको अंगुष्ठ पर लगाकर गलशुण्डिकाको उठानेसे वह सुदृढ़ हो जाती है और झागयुक्त कफ निकल जाता है।

२. सेहुण्डके दूधका १ बूँद सम्हालपूर्वक कव्वे पर लगाने से कव्वा दृढ़ हो जाता है।

३. ताजी मकोय और ताजे धनियेके स्वरसके गण्डूषों (कुल्लों) का मुँहमें धारण करनेसे गलशुण्डिका का दाह, शिथिलता और लाली दूर होकर वह सुदृढ़ हो जाती है।

४. २ तोले अमलतासके गूदेके क्वाथमें ६ माशे तुरंजबीन मिलाकर पिलानेसे पित्तप्रकोप दूर होता है और कव्वा स्वस्थ हो जाता है।

५. कर्पूरादि वटी या कासमर्दन वटी १-१ गोली मुँहमें रखकर रस चूसते रहें। दिनमें १०-१५ गोली तक।

६. प्रवालपिष्टीका सेवन करानेसे पित्त शमन होकर वेदना दूर हो जाती है।

७. बालकके तालुए (मस्तिष्क) पर सिरकेमें पीसे हुए माजूफलका लेप करनेसे कव्वा उठ जाता है।

८. जली हुई मुलतानी मिट्टीको सिरकेमें मिलाकर बालक के तालुए पर लगा देनेसे कव्वा उठ जाता है।

९. लोहका अर्क (Tinct. Ferri) अथवा ग्लिसरीन विथ टॉनिक एसिड (Glycerine with Tannic Acid) को रुईके फोहेसे लगानेसे कव्वा उठ जाता है।

प्रतिश्यायजन्य कासचिकित्सा

१. प्रतिश्यायहर कषाय पिलानेसे जुखाम, मन्द ज्वर, मलावरोध और कास दूर होते हैं।

२ दूधमें कालीमिर्चका चूर्ण १ माशा और मिश्री मिला उबालकर गुनगुना रहने पर पिलानेसे, अथवा चायमें काली मिर्च और दालचीनी मिलाकर पिलावें। फिर कपड़ा ऊढाकर सुला देनेसे स्वेद आजाता है; तथा जुखाम और खाँसी मिट जाते हैं।

३. सोंठ और कालीमिर्चके चूर्णके साथ शहद अथवा घी और गुड़ मिलाकर खिलानेसे जुखाम और खाँसी दूर हो जाते हैं।

४. सोंठ या लौंगको जलमें पीस गरम कर कपाल और कनपटी पर लेप करनेसे जुखाम और खाँसी शान्त हो जाते हैं।

५. आनन्दभैरव रस अथवा नागगुटिका देनेसे जुखाम और कास, दोनों दूर होते हैं।

६. लवंगादि वटी व्योषादि वटी, जातिफलादि चूर्ण, या तालीसादि चूर्ण (भाँग-मिश्रित) देनेसे कास, प्रतिश्याय और बारबार दस्त लगना ये सब विकार शान्त होजाते हैं।

७. पित्तप्रकोपजन्य रोग हो, तो सितोपलादि चूर्ण अथवा लवंगादि चूर्ण का सेवन करानेसे शिरदर्द, दाह, जुखाम और खाँसी, सब दूर होते हैं।

विशेष उपचार प्रतिश्याय रोगके साथ लिखे जायँगे।

बालकोंके कास रोगकी चिकित्सा

१. काकड़ासिंगी, पीपल, अतीस और नागरमोथाको मिला चूर्ण कर १-१ रत्ती माताके दूध या शहदके साथ दिनमें ३ बार देनेसे ज्वर, खाँसी, जुखाम, दस्त, वमन, ये सब दोष दूर होजाते हैं।

२. छाती पर तार्पिनके तैल या गुनगुने सरसोंके तैलकी मालिश करनेसे छातीमें जमा हुआ कफ सरलतासे निकल जाता है। यदि कफका ज़ोर अधिक हो, तो फुफ्फुस पर थोड़ा सेक करें (परन्तु हृदय पर सेक नहीं करना चाहिये)।

३. बालकों की गुदा पर सरसोंका तैल दिनमें ३-४ बार लगानेसे सूखी खांसी दब जाती है।

४. काकड़ासिंगी १ रत्ती बड़ी मुनक्कामें भरकर खिला देनेसे बच्चों की खांसी निवृत्त हो जाती है।

५. बच $\frac{1}{4}$ रत्ती माताके दूधमें घिसकर पिलानेसे स्तनपान करने वाले छोटे बच्चों की कफकास दूर हो जाती है।

६. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रहमें लिखे हुए शृंग्यादि चूर्ण, बालघोर-कासघ्न चूर्ण, माणिक्यरसादि वटी, बालसंजीवन रस, बालार्क गुटिका, ये सब अति हितकर हैं।

इनमें शृंग्यादि चूर्ण और बालघोरकासघ्न चूर्ण सामान्य औषधि होते हुए भी अति लाभदायक हैं। हम बार-बार इन दोनों को प्रयोगमें लाते रहते हैं। दोनोंका उपयोग अति निर्भयतापूर्वक हो सकता है। अतिसार, मंदज्वर और जुखाम साथमें होने पर बालसंजीवन रस लाभदायक है। मंदज्वर, श्वास, जुखाम और खांसीपर बालार्क गुटिका सत्वर लाभ पहुँचाती है। श्वास, हृदयावरोध और खांसी हो, या पसली रोगके कुछ लक्षण प्रतीत होते हों, तो माणिक्यरसादिवटीको प्रयोगमें लाना चाहिये।

काली खांसी की चिकित्सा

१. छोटी कटेलीका क्वाथ कर शहद मिलाकर पिलानेसे तीव्रता नष्ट हो जाती है।

२. कस्तूरी $\frac{1}{8}$ रत्तीको शहद या दूधके साथ देनेसे खांसीका वेग कम हो जाता है।

३. पियाबांसा की छालका क्वाथ दिनमें ३-४ समय देते रहनेसे खांसी दब जाती है।

४. थूहरके लाल फल को गरम कर स्वरस निकाल शहदके साथ चटानेसे खांसी नष्ट हो जाती है।

५. वातज कासमें लिखा हुआ कंटकारि घृत या क्षुद्रामृतप्राश्य का सेवन करानेसे काली खांसी निवृत्त हो जाती है।

६. सौंफ, मुलहठीका सत्व, मुनक्का और तवे पर भूनी हुई बड़ी इलायचीके दाने, सबको मिला चूर्ण कर २-२ रत्ती दिनमें ४ समय शहदके साथ देनेसे काली खांसी शमन होती है।

७. आकके फूलोंकी कली, लौंग, काली मिर्च और सफेद कत्था, सबको समभाग मिला दिनमें ४-६ गोली चूसानेसे बड़े लड़कोंकी काली खांसी दूर होती है।

८. खोहरानका फूल चौथाई चौथाई रत्ती अथवा भांगको शहदके साथ दिनमें ४ बार देनेसे खांसीके वेगका दमन हो जाता है।

९. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखी हुई प्रवालपिष्टी अकेली अथवा शृंगभस्म के साथ मिलाकर देवें। कामदूधारस, हरताल गोदंती भस्म, शुभ्राभस्म,

बालघोरकासघ्न चूर्ण, इनमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन करानेसे कालीखांसीका निवारण हो जाता है।

बालघोरकासघ्न सस्ती और उत्तम औषधि है। इसे हम बार-बार उपयोगमें लेते रहते हैं। प्रकृति भेदसे कभी दूसरी औषधिकी योजना करनी पड़ती है। ऐसे ही हरताल-गोदंतीभस्म भी हितावह है। कामदूधा रस बढ़े हुए वेगको सत्वर दबाता है। शुभ्राभस्म विषको जलानेमें अच्छा काम देती है।

पथ्यापथ्य

कासरोगमें पथ्य—स्वेदन, विरेचन, कफ अति बढ़ने पर विधिपूर्वक शास्त्रीय धूम्रपान, परिमित भोजन, शालि और सांठी चावल, गेहूँ, श्यामाक (सामों), जौ, कोदों, कौंचके बीज, उड़दका यूष, मूंगका यूष, कुलथीका यूष, गाँवोंमें रहने वाले बकरे, मुरगे आदि पशु पक्षी, मछली आदि जलजीव तथा हिरन आदि जंगलके पशु, अनूपदेश और मरुदेशके पशु-पक्षियों का मांस, शराब, पुराना घी, बकरीका दूध, बकरीका घी, बथुआ, मकोय, बैंगन, कोमल मूली, कटेली, कसौंदीकी पत्ती, कच्चा केला, सुहिंजनेकी फली, गूलर, परवल, खजूर, अनार, जीवन्ती, चोपत्तियां, मुनक्का, कस्तूरी, बिजौरा, पुष्करमूल, अडूसाके पत्ते, छोटी इलायची, गोमूत्र, लहशुन, जीरा, हरड़, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, गरम किया हुआ जल, शहद, धानकी खील, दिनमें सोना और हल्के अन्न, ये सब पथ्य हैं।

अधिक कफप्रकोप हो, तो रात्रिको चावल न देवें और मलावरोध रहता हो, तो चावल बिल्कुल न देवें।

अति निर्बल रोगियों को साबूदाना, आरारूट या बार्लो देवें। पीनेके लिये रोगीको गरम करके शीतल किया हुआ जल देना विशेष लाभदायक है।

वातज कासमें पथ्य—बथुआ, मकोय, कोमल मूली, चौलाई, तैल आदि स्नेह, दूध, ईखका रस, पुराने गुड़के बने पदार्थ, दही कांजी, खट्टे फल, प्रसन्ना नामक शराब, मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थ, ग्राम्य पशु-पक्षी, अनूप देशके पशु-पक्षी और जलचर जीवोंका मांस, शालि चावल, जौ, गेहूँ, उड़द और कौंचके बीजोंके यूषके साथ सांठी चावलोंके भात, कैथकी चटनी, ये सब हितकर पदार्थ हैं।

अलसीका यूष और अलसीका तैल पिलानेसे शुष्क वातिक कासमें सत्वर लाभ पहुँचाता है। शुष्क कासमें रात्रिको सोनेके समय मलाई-मिश्री और सुबह मक्खन-मिश्री खाना हितकारक है।

पित्तज कासमें पथ्य—मलावरोध हो और कफ पतला हो, तो शक्करके साथ निसोतका विरेचन। यदि कफ गाढ़ा हो, तो कड़वे पदार्थोंके रसके साथ निसोतका चूर्ण देवें।

मधुर रस, जांगल देशके जीवोंका मांसरस, श्यामाक, जौ, कोदों, मूंग आदिका यूष और कड़वे शाक तथा मुनक्का, खजूर, पीपल, मिश्री, कालीमिर्च आदि पित्तज कासमें पथ्य माने गये हैं।

कफज कासमें पथ्य—वमन, जौ आदि अन्न, कुलथी और मूली का यूष, चरपरे, रूक्ष और गरम पदार्थ, पीपल, सोंठ, कालीमिर्च अदरख, कटेली, बहेड़ा, अडूसा, हलका भोजन, अति कफ वृद्धि हो तो शास्त्रीय धूम्रपान तथा गरम किया हुआ जल, ये सब हितावह है।

क्षतज कासमें पथ्य—बल्य (बलवर्धक), जीवनीय (आयुवर्धक), बृंहण (पौष्टिक), हलका भोजन, पित्तज कासशामक मधुर औषधियां, शीतल यवागू, पीपल, मुनक्का, वंशलोचन, अडूसा, मिश्री-दूध, घी, शहद तथा उरःक्षत और राजयक्ष्मा रोग में कहे हुए पदार्थ सब हितकर हैं।

क्षय कासमें पथ्य—राजयक्ष्मा रोगमें कहे अनुसार पथ्या-पथ्यका पालन कराना चाहिये।

प्रतिश्यायज कासमें पथ्य—प्रतिश्यायमें कहे अनुसार (तथा ज्वर हो तो ज्वरके अनुसार भी) पथ्यका पालन करना चाहिये।

गलशुण्डिका (कव्वे) की विकृतिजन्य कासमें वात, पित्त या कफप्रकोपके अनुसार पथ्यका पालन कराना चाहिये। अजीर्ण रहता हो, तो अजीर्णकारक भोजन-से आग्रहपूर्वक बचना चाहिये। जल्दी पचन हो और मलावरोध न करे, ऐसा सात्विक, लघु पौष्टिक भोजन करना चाहिये।

कास रोगमें अपथ्य—बस्तिक्रिया, नस्य, खून निकलवाना, कसरत, स्त्रीसहवास, दतौन करना (दन्तमन्जन लगानेमें आपत्ति नहीं,) मैदेके पदार्थ, कोष्ठबद्धता करनेवाले भोजन, विदाही और रूक्ष पदार्थ, मल, मूत्र, छींक, डकार, कास, वमन, आदि वेगोंका धारण, सूर्यके तापमें बैठना या घूमना, अग्नि सेवन, दुष्ट वायु, धूलि और धुंएका सेवन, घोड़े पर सवारी, पैदल चलना, मछली, आलू, अरबी आदि कन्द शाक, सरसों, राई, लाल मिर्च, तेज खटाई, इमली, बाजरा, चना, लौकी, पोईका पान, दूषित जलका सेवन, दुष्ट या विरुद्ध अन्नोपान, भारी या शीतल भोजन, शीतल जलसे स्नान, फल, घी या तैल खाकर जल पीना, रात्रिका जागरण, रात्रिको खुले स्थानमें (ओस गिरता हो वहाँ पर) सोना और बैठना तथा जोरसे गाना, ये सब हानिकर हैं।

कितनेक रोगियोंके लिये हींग, प्याज और लहशुन अनिष्टकारक तथा कितने-कोंको अति हितकारक होते हैं। अधिक बार स्नान, वर्षाके जलमें स्नान, तेज वायु में स्नान अथवा शीतके समय स्नान, ये सब हानिकारक हैं।

कण्ठरोहिणी और काली खांसीमें लहशुनको उत्तम औषधि मानी गई है।

एवं क्षय-कासमें भी लहशुन अच्छा लाभ पहुँचाता है। लहशुनका विशेष वर्णन आगे क्षयरोग में करेंगे।

३४. श्वास रोग

दमा-डिस्फोनियां—Dysphonea

जिन कारणोंसे हिक्का रोग उत्पन्न होता है, उन कारणोंसे ही श्वास रोगकी उत्पत्ति होनेसे, श्वसनक्रियामें अति कष्ट हो जाता है।

विशेष परिचय — जिन कारणोंसे वात दोष प्रकुपित होकर उरोगुहाके तलमें प्रवेशकर महाप्राचीरापेशी और श्वासनलिकाके सम्बन्धको बिगाड़कर हिक्का रोगकी उत्पत्ति कराता है, उन्हीं हेतुओंसे प्रकुपित वात दोष कफसे मिल इतर मांसपेशियोंके कार्यमें विकृतिकर श्वास रोगकी उत्पत्ति कराता है। दोषकी गति किस ओर होगी, इस बातका आधार अनुकूलता प्रतिकूलता पर रहता है।

अपने शरीरके मध्य भागमें उरोगुहा है। जिसमें २ फुफ्फुस, श्वास नलिका, अन्ननलिका, हृदय, इनसे सम्बन्ध रखनेवाली धमनियाँ और शिराएँ अवस्थित हैं।
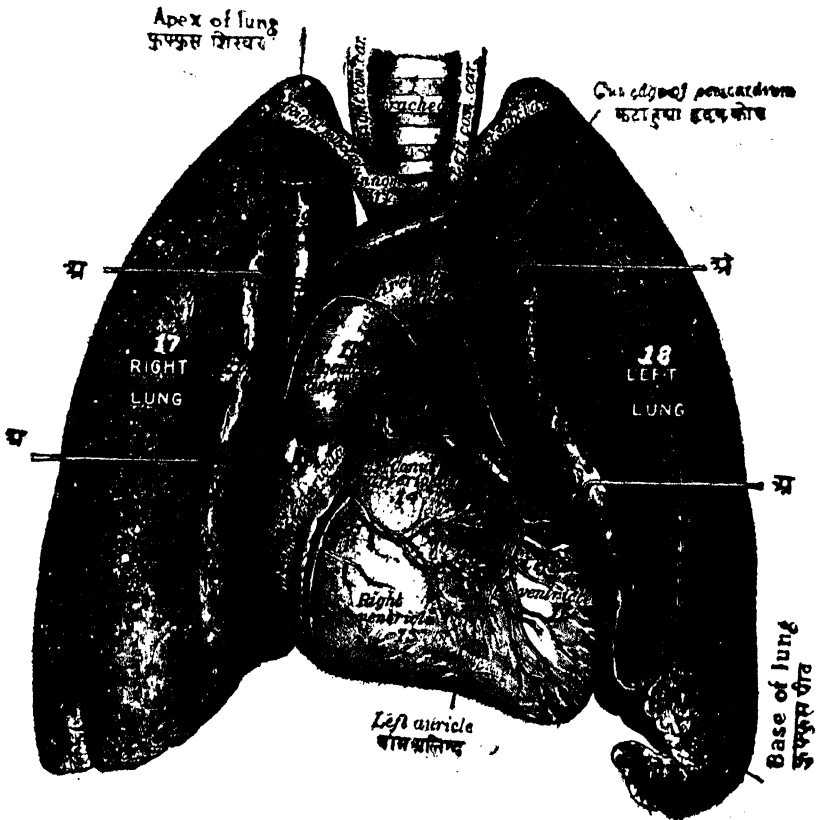
इनमेंस्थित हुए दो फुफ्फुस, श्वासनलिका तथा श्वासनलिकाके ऊपर स्थित स्वरयन्त्र, इन सबको मिलाकर श्वासयन्त्र कहा है। इस श्वासयन्त्रद्वारा श्वासोच्छ्वास क्रिया जीवनके अन्त तक निरन्तर होती रहती है।

जब वायु श्वासरूपसे भीतर आती है, तब उरोगुहाका विस्तार होनेसे फुफ्फुस कोष फूलते हैं और निःश्वास रूपसे वायु बाहर निकलती है, तब उरोगुहाका संकोच होनेपर फुफ्फुसोंके वायुकोषोंको संकुचित होना पड़ता है।

जब इस श्वासयन्त्रके व्यापारमें विकृति होती है; या हृदय, अन्नमार्ग अथवा आमाशय आदिमें विकृति होती है, तब परम्परागत श्वासोच्छ्वास रूप व्यापारमें भी व्यत्यय हो जाता है। फिर श्वास-कास आदि रोगोंकी उत्पत्ति होती है। श्वासयन्त्रमें दूसरा अवयव श्वासनलिका है, वह अति सूक्ष्म शाखाओंद्वारा फुफ्फुसोंके प्रत्येक वायुकोषोंमें प्रवेश करता है। इन सब शाखा-प्रशाखाओंके भीतर श्लेष्मस्रावी कलाका आच्छादन लगा है। उसमेंसे अवलम्बक कफ निरन्तर स्रवता रहता है। इस मार्गसे गृहीत वायु वायुकोषोंमें प्रवेश करती है; और बाहर निकलती है; परन्तु कफविकृति होनेपर जब इन कोषोंमें सूक्ष्मश्वासवाहिनियों और मुख्य श्वासनलिकामें श्लेष्मा चारों ओर चिपक जाता है, तब वायुके आवागमनमें प्रतिबन्ध होता है। फिर इसकी थोड़े ही समयमें सम्यक् चिकित्सा न होनेपर फुफ्फुस आदि सब अवयव शनैः-शनैः अधिकाधिक शिथिल होते जाते हैं। परिणाममें श्वास रोगकी सम्प्राप्ति होजाती है।

दोनों फुफ्फुसों पर रही हुई फुफ्फुसधराकलाकोषमें तीव्र आघात होकर या और किसी हेतुसे वायु भर जाय, तब श्वासका वेग बहुत बढ़ जाता है।

जब हृदयस्थ प्राणवायु प्रकुपित होती है, तब मर्यादासे बहुत ज्यादा रक्तको फुफ्फुसोंमें फेंकती रहती है। जिससे फुफ्फुसकोष और श्वासवाहिनियोंके स्रोतोंमें रक्त विशेषांशमें भर जाता है। अथवा जब किसीभी कारणसे हृदयके सम्बन्धमें व्यत्यय होता है, तब धातुओंकी साम्यावस्था भंग होती है। इनमें भी श्वासयन्त्रमें जब कफ-वातादि विकृति अधिक होती है, तब श्वास, कास आदि रोगोंका आविर्भाव होजाता है।

इस हृदयकी चेष्टा प्राणदा और इड़ा पिंगला नाड़ियों पर अवलम्बित है। प्राणदा नाड़ियोंके तन्तु हृदयकी गतिको मन्द करते हैं; और इड़ा पिंगलाके तन्तु गतिको तेज़ करते हैं। इन नाड़ियोंका सम्बन्ध आमाशय और श्वासनलिकासे भी रहता है। जब अजीर्ण आदि हेतुसे आमाशयमें विकृति होती है, तब प्राणदा नाड़ियोंके तन्तुओंमें उत्तेजना होती है। फिर हृदय और फुफ्फुसादि आशयोंमें वातविकृति होकर हृदयकी धड़कन बढ़ना, श्वास चढ़ना, खांसी आना इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। तमक श्वासका दौरा इस आमाशय विकृतिसे भी हो जाता है।

इन प्राणदा नाड़ियोंके तन्तु श्वासनलिकाकी मांसपेशियोंको संकुचित करते हैं, और कफको बाहर निकालनेका कार्य करते हैं। एवं इससे विरुद्ध इड़ा पिंगलाके तन्तु

इन पेशियोंको शिथिल-विस्तृत बनाकर कफका परिमाण न्यून कराते हैं। तमक श्वासके रोगीमें प्राणदा नाड़ियोंमें विकृति प्रत्यक्ष होती है।

इनके अतिरिक्त कासवृद्धि, आमातिसार, वमन, पाण्डु, ज्वर, मर्मस्थानमें चोट लगना, आमाशयविकृति, विष सेवन, प्रतिश्याय, क्षतक्षय, रक्तपित्त, उदावर्त्त, विसूचिका, अलसक, पाण्डु रोग, अति स्त्रीसेवन और धूम्रपान, इन कारणोंसे भी श्वास रोग हो जाता है। जब प्राणवायु-विकृत होकर कफसे मिलकर ऊर्ध्वगामी होती है, तब श्वास रोगकी उत्पत्ति होती है।

श्वास निदान—जो पहले हिक्का रोगकी उत्पत्तिमें हेतु कहे हैं, उन्हीं हेतुओंसे श्वास रोगकी उत्पत्ति होती है।

श्वास भेद—शास्त्राचार्योंने चिकित्साकी सुविधाके लिये श्वास रोगमें महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमक श्वास और क्षुद्र श्वास, ये ५ भेद किये हैं। इनमेंसे तमक श्वासमें जब पित्तप्रकोप प्रतीत होता है, तब उसे 'प्रतमक' संज्ञा दी है।

पूर्वरूप—श्वासरोग होनेके पहले कण्ठ और उरःस्थानमें भारीपन, हृदयमें पीड़ा, शूल, अफारा, मलावरोध, मुँहका स्वाद बिगड़ना, कनपटियोंमें तोड़नेके समान व्यथा होना इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं।

सम्प्राप्ति—जब श्वासवाहिनी और अन्नजलवाहिनियोंके स्रोतसोंमें दूषित कफ भरजानेसे वायुके आवागमन करनेका मार्ग निरुद्ध हो जाता है, तब आमाशयमेंसे प्राणवायु प्रकुपित होकर सर्वत्र (उरःस्थान में) फैल जाती है, और श्वासरोगकी सम्प्राप्ति करा देती है।

इस देहका तन्त्रयन्त्रधर वायु है। यह वायु अनेक रूपमें विभाजित होकर शरीरका नियन्त्रण करती है। इन विभागोंमें मुख्य प्राणवायु है। वह उरःस्थान (हृदय, फुफ्फुस और आमाशय आदि) में रहती है; और प्राणवाहिनी नाड़ियों द्वारा आवागमन करती रहती है। इन प्राणवाहिनियोंमें निम्न कारणोंसे विकृति हो जाती है।

> क्षयात् सन्धारणाद् रौक्ष्याद् व्यायामात् क्षुधितस्य च।
> प्राणवाहीनि दुष्यन्ति स्रोतांस्यन्यैश्च दारुणैः॥
> च० सं० वि० अ० ५।१८

धातुक्षय, मल-मूत्र, क्षुधा तृषादिके वेगका संधारण, रूक्ष पदार्थोंका सेवन, अति व्यायाम, अति क्षुधा लगना (उपवास करना) और इतर दारुण कार्योंके करनेसे प्राणवाहिनियां दूषित हो जाती हैं।

प्राणवाहिनियोंकी विकृति होने के पश्चात् प्राणवायु प्रकुपित होती है, तब वह श्वास रोगकी सम्प्राप्ति करा देती है, यह स्थिति क्षुद्रश्वासमें प्रतीत होती है।

इसके अतिरिक्त मार्गमें प्रतिबन्ध होने पर भी प्राणवायु कुपित होती है। यह प्रतिबन्ध कफ, पित्त, शोथ, या इतर पदार्थ प्राणवाहिनीमें आजाने और नलिकाके

मुखका संकोच हो जाने पर होता है। महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास और तमकश्वास, इन चारोंमें प्राणवाहिनियोंकी विकृतिके अतिरिक्त मार्गमें कफका प्रतिबन्ध भी हो जाता है। तमक श्वासमें मार्ग संकुचित हो जाता है: और छिन्न श्वासमें पित्तप्रकोपजन्य श्वास भी होता रहता है।

१. महाश्वास लक्षण—*(Amphoric Breathing) जिसका श्वास आवाज़सहित ऊपर उठता है, वह अति दुःखी हो जाता है। उसकी श्वासोच्छ्वास क्रियाकी आवाज़ बद्ध, मदोन्मत्त सांडके समान बड़ी होती है। उतना दुःख होता है, कि ज्ञानविज्ञान सब नष्टप्रायः हो जाता है; नेत्रमें लाली और चंचलता, कचित् फटे हुए, स्तब्ध नेत्र और मुख, मलमूत्रका अवरोध, बोलनेमें असमर्थता, अति बेचैनी, श्वासोच्छ्वासकी आवाज़ दूरसे सुननेमें आना, पसलियोंमें शूल, कण्ठ सूखना इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस श्वास को मारक कहा है। तुरन्त योग्य चिकित्सा न हो सके, तो थोड़े ही समयमें रोगी को मृत्यु हो जाती है।

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि, बेहोशी, पार्श्वशूल कण्ठ सूखना, श्वासकी बड़ी आवाज़ आना लाल नेत्र और श्वास लेनेमें शरीर शिथिल हो जाना इत्यादि लक्षण महाश्वासमें प्रतीत होते हैं।

वैद्यविनोदकारने लिखा है, कि—

विभ्रान्तनेत्रो विकृताननः स्यात् श्वासात्प्रवृद्धान्मरणम्प्रयाति

यदि प्रवृद्ध महाश्वाससे पीड़ित रोगीके नेत्र भ्रमित-से और मुखाकृति विकृत हो जाय, तो वह मृत्युको पाता है।

२. ऊर्ध्व श्वास लक्षण (Orthopnea)×—इस रोगमें प्राणवायु बार-बार ऊपर-ऊपर उठती रहती है, जिससे अति त्वरापूर्वक रेचक (निःश्वास) निकलता रहता है। परन्तु फुफ्फुसकोषोंमें पुनः प्राण वायु प्रवेश नहीं कर सकती; अर्थात् सम्यक् पूरक (श्वास आना) क्रिया नहीं हो सकती ; कारण -कुपित हुई वायु ने श्लेष्म धातुमें विकृति करा श्वासवहा नाड़ियोंके मुख और मार्गमें कफको भर दिया है। इस रोगमें दृष्टि ऊपरकी ओर ही रहती है। बेहोशी, अति वेदना, मुँह सूखना, अत्यन्त बेचैनी, श्वास लेनेमें अति कष्ट होना (बहुधा श्वास नहीं लिया जाता) इत्यादि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

---

*इस रोगके लक्षण विशेषतः डॉक्टरी फुफ्फुसगत शल्य (Infarction of the Lungs) में प्रतीत होते हैं। कुछ लक्षण बृहच्छ्वास नलिकाके अवरोध (Tracheal obstruction) में भी उपस्थित होते हैं, किन्तु उसके भीतर महत्वका लक्षण पार्श्वशूलका अभाव है।

× डॉक्टरी आशुकारी फुफ्फुस शोथ (Acute Oedema of the Lungs) में इस विकार के लक्षण मिलते हैं।

महाश्वासमें श्वासोच्छ्वास क्रिया की आवाज़ बहुत बड़ी होती है; श्वास ग्रहण और त्याग, दोनों क्रियाओंमें भयंकर कष्ट होता है; किन्तु ऊर्ध्वश्वासमें श्वासोच्छ्वास-क्रिया ऊपर-ऊपर चलती रहती है; कफसे मार्ग रुद्ध हो जानेसे वायुकोषोंके भीतर वायु की गति नहीं होती; दृष्टि ऊपरकी ओर ही रहती है; तथा श्वासग्रहण में अति कष्ट होता है।

इस रोगमें बहुधा फुफ्फुसधराकलाकोषमें वायुका प्रवेश हो जाता है। जिससे रोगी श्वास नहीं ले सकता; फिर उरःस्थानकी वातनाड़ियोंमें उत्तेजना बढ़नेसे हृदयकी धड़कन बहुत बढ़ जाती है; हृदयावरोध होने लगता है; नाड़ियाँ खिंचने लगतीं और सारा शरीर श्याम हो जाता है। यदि इस रोगका प्रतीकार सत्वर न किया जाय, तो रोगी मूर्च्छित और दुःखी होकर थोड़े ही समयमें प्राणोंसे मुक्त हो जाता है। विशेष विचार डॉक्टरी विवेचन में आगे किया जायगा।

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि, जिस श्वासरोगमें मर्म स्थान खिंचने लगें, बार-बार बेहोशी होकर श्वास लिया जाय, दृष्टि ऊँची रहे और श्वासका शब्द मन्द हो जाय, उसे ऊर्ध्वश्वास कहते हैं।

वैद्यविनोदकार लिखते हैं, कि जब ऊर्ध्वश्वास रोग कुपित होकर नीचे आनेवाले (फुफ्फुसों में आने वाले) श्वासका निरोध करता है, तब जीवको मार ही डालता है।

३. छिन्न श्वास—(Cheyne-Stokes respiration) इस रोगमें पित्त का अनुबन्ध रहता है। रोगी अत्यन्त कष्टपूर्वक रह रह कर श्वास लेता है, हृदय बस्ति और मस्तिष्कमें तीव्र वेदना होती है। इनमें भी विशेषतः बस्तिमें तो जलाने और काटनेके समान पीड़ा होती है। मलावरोध, अफारा, प्रस्वेद, मूर्च्छा, बस्ति (मूत्राशय) में भयंकर दाह होना और मूत्रावरोध हो जाना नेत्र फटे-या चंचल और जलसे पूर्ण, दृष्टि नीचे रहना, अत्यन्त क्षीणता, मुँह सूखना, चित्तमें उद्वेग (अस्थिर चित्त) चिल्लाना, मुँह निस्तेज हो जाना, बहुधा एक नेत्रका रंग लाल (कचित् दोनों लाल), सदा हाँफते रहना, हाथ पैरों की संधि टूटना, भयंकर वेदना इत्यादि लक्षण होते हैं। यदि इस रोगका तुरन्त उपचार न किया जाय, तो रोगी मरणके शरण हो जाता है।

वैद्यविनोदमें लिखा है कि, छिन्नश्वास में रोगीका मुँह सूखता है, ठहर-ठहर कर श्वास लेता है, विलाप करता है, मन अस्थिर हो जाता है, चक्षु फटे-से रहते हैं, ये सब लक्षण हो जाते हैं; फिर वह तुरन्त प्राणोंका त्याग कर देता है। +

+छिन्नश्वास (Cheyne Stokes breathing) यह लक्षण डॉक्टरी मत अनुसार हृदय पतन, वृक्कविकार और मस्तिष्कार्बुद की अन्तिमावस्थामें उपस्थित होता है। इन सब रोगों के हेतु, लक्षण, चिह्न और चिकित्सामें प्रभेद है। यह मुख्य लक्षण भी नहीं है। अतः यहाँ चिकित्साकी सुविधाके लिये उक्त रोगोंके भिन्न-भिन्न संक्षिप्त लक्षण लिखते हैं।

४. तमक श्वास (अस्थमा—Asthma)—जब वायु अपने रास्ते को छोड़ प्रतिलोम होकर उल्टे मार्गसे नाड़ियोंमें प्रवेश करती है। तब कण्ठ और मस्तिष्क जकड़ जाते हैं, श्लेष्म बढ़नेसे पीनस (जुखाम) होता है; फुफ्फुस और पसलियोंमें कफ भर जाता है; कंठमें घर घर आवाज़ सह तीव्र वेग से श्वासका चलना, हृदयावरोध होना, अंधकारमें पड़ा हुआ हूँ ऐसा रोगीको भासना, बार-बार तृषा लगना, निश्चेष्ट होजाना अत्यन्त वेगपूर्वक खांसी उठना खाँसीके वेगसे बार-बार मूर्छित हो जाना, कंठसे बाहर कफ कठिनतासे निकना, कफ निकलजाने पर कुछ समय तक शान्ति मिलना, श्वासनलिका खिंचते रहनेसे कण्ठमें वेदना होना और इससे बोलनेमें कष्ट होना, लेटने पर श्वासकासकी वृद्धि होनेसे निद्रा न मिलना, बल्कि सोने पर पसलियोंमें घोर पीड़ा होना और बैठने पर दर्द कुछ कम होना नेत्र ऊँचे और सूजन आई हो ऐसे दीखना, उष्ण पदार्थ सेवन

+छिन्न श्वसन क्रिया युक्त रोगमें श्वसन क्रिया क्रमशः प्रबल और निर्बल होती रहती है और बीचमें ५ से ४० सेकण्ड तक बन्द होजाती है। अस्वाभाविक प्रबल वेगावस्थाके परिणाम में श्वसन केन्द्र उत्तेजित होता है और विषाक्त वायु (कार्बोन डाई ऑक्साइड) रक्तमें से बाहर फेंकी जाती है। फिर उससे विरामावस्था की प्राप्ति होती है। विरामावस्थामें रोगी निद्रा-धीन होजाता है और प्रत्येक संचलनावस्थामें जागजाता है। इस तरह चक्र चलता रहता है। एक चक्र लगभग २ मिनिट में समाप्त होजाता है।

छिन्न श्वासमें श्वसन चक्र

इस श्वसन क्रियाका कारण हृदय विकार से सम्बन्ध वाली श्वासकृच्छ्रता है, ऐसा अब नहीं माना जाता। वातनाड़ी की प्रति फलित क्रिया, जो श्वसन केन्द्रको अपूर्ण रक्त या अपूर्ण प्राणवायु प्रदान करती है, जो क्रिया फुफ्फुसमें उत्पन्न होती हैं और प्राणदानाड़ियों द्वारा श्वसनकेन्द्रको पहुँचती है, वह कितनेक अंशमें जबाबदार है।

फुफ्फुसमें प्रतिफलित क्रियाकी उत्पत्ति होने पर रक्त संग्रह होने का माना जाता है। फिर फुफ्फुसका स्थितिस्थापक गुणनष्ट होजाता है। जब रोगी रात्रिको सोता है, तब जीवनीय शक्ति नष्ट होती है और फुफ्फुसके रक्त संग्रहकी वृद्धि होती है। यह वृद्धि विशेषतः दक्षिण निलयमेंसे रक्तप्रदानकी वृद्धिके हेतुसे और संभवतः वामनिलयके अकस्मात् और अधिकतर प्रसारणके हेतुसे होती है। इसका परिणाम शनैः शनैः चैन स्टोक्स (छिन्नश्वास) की संप्राप्ति है।

की, इच्छा, *कपाल पर पसीना आना, अत्यन्त पीड़ा होना, मुँह सूखना, अरुचि, क्वचित् कफकी वमन हो जाना और श्वासप्रकोपसे सारा शरीर डोलना इत्यादि लक्षण होते हैं। यह तमक श्वास बादल और वर्षा होने, शीतकालमें ठण्ठी लगने, पूर्व दिशा की वायु चलने और कफकारक भोजन करने पर बढ़ जाता है। यह रोग नया हो, तब तक साध्य होता है और जीर्ण होने पर याप्य हो जाता है।

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि तृषा, प्रस्वेद, वमन कण्ठमें घररर घररर आवाज़ सह जो श्वास चले, विशेष करके बद्दलके दिनोंमें हो जाय, उसे तमक श्वास कहते हैं।

जिस तमक श्वासमें श्वासकी आवाज़ बड़ी हो, कास, कफ की अधिकता, बलकी न्यूनता, अरुचि और सोनेमें अधिक पीड़ा आदि लक्षण हों, वह तमक श्वास दुःखदायी होता है।

वैद्य विनोदमें इस तमक श्वासके लक्षण लिखे हैं—

आसीन उष्णैर्लभते च सौख्यं,
सुप्तस्य पार्श्वे परिगृह्य वायुः।

+ रक्तसंग्रह मय हृदय पतन—(Congestive Heart Failure)—इस विकारमें वृद्धि होनेपर छिन्नश्वास उपस्थित होते हैं। सामान्यतः लक्षणहृत्स्पंदमें अस्वाभाविकता, धमनीपरिवर्त्तन सहवेदना, निस्तजता, गात्रनीलता, चक्कर आना, व्याकुलता, मुँहपर तेजी, रक्तदबाव वृद्धि, श्वासकृच्छ्रता, कास, रक्तमय कफ, पैरोंपर सूजन, निद्रानाश, व्याकुलता, क्षुधानाश, वमन, जलोदर, मूत्र ह्रास, निर्बल किन्तु तेजनाड़ी, यकृद्वृद्धि आदि।

चिरकारी वृक्क संन्यास (Uraemia)—इसकी अन्तिमावस्थामें छिन्नश्वास की उत्पत्ति प्रथमावस्थामें शिरदर्द, निद्रानाश वमन, मांसपेशियोंमें खिचाव, श्वासमें भारीपन, आकुंचित कनीनिका तथा मलमय जिह्वा आदि लक्षण। द्वितीयावस्थामें गम्भीर वमन, श्वासकृच्छ्रका आवेग और विविध पक्षवध। तृतीयावस्थामें छिन्नश्वास, अपस्मारके सदृश आक्षेप और मूर्च्छा में ही मृत्यु।

घातक वृक्क काठिन्य (Malignant Nephrosclerosis)—इसमें भी रोगकी अन्तिममावस्थामें छिन्नश्वास उपस्थित। पहले अपचन, वमन, शिरदर्द, चक्कर आना, व्याकुलता हृत्स्पंदवर्धन, श्वासमें भारीपन रात्रिको बारम्बार पेशाब होना, दृष्टिनाश, ओजक्षय, रात्रिको अधिक सन्ताप होना, कास, कानों में गुंज आदि लक्षण।

मस्तिष्क गत अर्बुद—मास्तिष्क के भीतर उत्पन्न अर्बुदका दबाव जब श्वास केन्द्र पर पड़ता है, तब मुख्य लक्षण गम्भीर शिरदर्द, वमन, नेत्र नाड़ीप्रदाह, चक्कर आना, आक्षेप, मन्द नाड़ी, मन्द उत्ताप और छिन्नश्वास आदि उपस्थित।

बहुधा छिन्नश्वास उत्पन्न होनेपर रोग असाध्य होजाता है। फिर भी कारणानुरूप उपचार करने पर कुछ रोगी बच जाते हैं।

आध्मापये तं तमकं वदन्ति,
मेघाम्बु शीतैः सह याति वृद्धिम् ॥

जिस रोगमें बैठे रहने और गरम पदार्थोंके सेवनसे रोगी सुख पाता है; लेटनेसे उसके पसवाड़े खिंचते हैं और वायु उदर को फुला देती है; तथा जलवृष्टि होने, बद्दल आने और शीतल पदार्थोंसे बढ़ जाता है, उसे तमक श्वास कहते हैं।

प्रतमक श्वास लक्षण—यदि इस तमक श्वासमें पित्तानुबंधसे ज्वर और श्वास मूर्च्छा लक्षणभी हों; और शीतल आहार विहारसे शान्त होजाता हो; अथवा जो तमक उदावर्त्त, श्वासमें धूल, रज या धुंआ जाने, अजीर्ण होने, विशेषतः विदग्धाजीर्ण होने, परिश्रम करने, मलमूत्र आदि वेगको रोकने, मानसिक चिन्ता, रात्रिके समय, अंधकारमें या गरम आहार विहार आदि कारणोंसे बढ़ता हो और शीतल (उष्ण न हो ऐसे) अन्नपानसे शान्त होता हो, वह प्रतमक श्वास कहलाता है।

यह रोग जीर्ण होनेपर श्वासनलिकाएं शिथिल और चौड़ी होजाती हैं। यकृत् और आमाशय आदि इन्द्रियाँ अपना कार्य नियमित नहीं कर सकतीं। देहमेंसे जहरको बाहर फेंकनेका कार्य भी पूर्ण रीतिसे नहीं होता। जिससे रक्तमें ज़हरकी वृद्धि होती रहती है; शरीर दिन-प्रति-दिन निर्बल और निस्तेज होता जाता है; तथा बार-बार चक्कर आता रहता है।

तमक श्वासमें वातकफप्रकोप प्रधान होनेसे उष्ण पदार्थका सेवन हितावह भासता है; किन्तु इस प्रतमक श्वासमें पित्तका अनुबन्ध होनेसे उष्ण पदार्थ लाभ नहीं पहुँचाता; बल्कि हानि पहुँचाता है। अधिक शीतल या अधिक उष्ण न हो, ऐसे आहार और औषध अनुकूल रहते हैं।

४. क्षुद्रश्वास—Breathlessness—रूक्ष अन्नपान, व्यायाम, परिश्रम, इतर रोग, तमाखूके व्यसन, धातुक्षीणता आदि सामान्य कारणोंसे उदरमें वातप्रकोप होता है। फिर वायुकी उर्ध्व गति होनेपर इस क्षुद्र श्वासकी उत्पत्ति हो जाती है। इस रोगमें श्वासोच्छ्वासका वेग बढ़ जाता है। फिर भी यह रोग अधिक दुख नहीं देता। खाने-पीने और अन्नपानकी गति होनेमें (रस-रक्तादि बननेमें) विघ्न नहीं करता। इस रोगमें सामान्य लक्षण होते हैं। अतः बलवान् रोगीका यह रोग साध्य होता है।

भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि, कुछ बलका काम करनेपर श्वास चलने लग जाय और शान्ति मिलने पर शमन हो जाय, उसे क्षुद्र श्वास कहते हैं।

महाश्वास और ऊर्ध्वश्वासमें भयङ्कर वातप्रकोप होता है। छिन्नश्वासमें पित्तके संसर्गसहित वाताधिक प्रकोप होता है। तमक श्वास कफाधिक, प्रतमक पित्तके संसर्गसह कफाधिक और क्षुद्र श्वास वाताधिक होते हैं।

साध्यासाध्यता—श्री० आचार्य माधवकर भगवान् आत्रेयके वचन अनुसार लिखते हैं कि—

स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः,
क्षुद्रः साध्यो मतस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते।
त्रयः श्वासा न सिद्ध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च॥

बलवान् रोगियोंके महाश्वास आदि सब श्वास रोग जब तक अव्यक्त लक्षण युक्त हों; अर्थात् पूर्ण उपद्रवों सह न हों, तब तक शमन हो सकते हैं। क्षुद्र श्वासको साध्य, तमकको कष्टसाध्य, शेष तीनको असाध्य, और तमक भी दुर्बल मनुष्यको हुआ हो, तो असाध्य माना जाता है।

श्वास लेनेमें कष्ट-श्वास रोग का डॉक्टरी विवेचन

डॉक्टरीमें श्वासरोग(Dysphonea)को फुप्फुस रोगोंके लक्षण रूप माना है। श्वासयन्त्रमें विकृति हो जानेपर या कुछ प्रतिबन्ध आजानेपर जब निःश्वास या उच्छ्वास क्रिया बलात्कारसे होती है, तब वह श्वास रोग कहलाता है। रक्तमें जब आङ्गारिक वायु (Carbon dioxide gas) अत्यधिक हो जाती है, तब प्राणदा नाड़ी (Vagus nerves) की फुप्फुसगत शाखा आक्षेप ग्रस्त हो जाती है और श्वास केन्द्रमें उत्तेजना आ जाती है। श्वास केन्द्र (Respiratory Centre) सुषुम्णाशीर्षमें अवस्थित है वही श्वासोच्छ्वास क्रियाका मुख्य आधार रूप है। इसके उत्तेजित होनेपर दूषित वायुको बाहर निकाल देनेके लिये निःश्वास क्रियामें वेग बढ़ जाता है; फिर श्वासरोग की सम्प्राप्ति होजाती है।

जब हृत्कोष विस्तृत या कृश हो जाता है, तब रुधिराभिसरण क्रिया सम्यक् प्रकारसे नहीं होती, तब आवश्यक शुद्ध रक्त शरीरको नहीं मिलता। फिर इस हृदयपर अंकुश रखनेवाला हृत्केन्द्र उत्तेजित हो जाता है। परिणाममें हृदय सत्वर काम करने लग जाता है, परन्तु जब पीड़ित हृदयसे अशुद्ध रक्त खींचा नहीं जाता, तब दूषित वायु रक्तमें बढ़ती जाती है। फिर इस वायुका परिमाण अत्यधिक हो जाने पर श्वासकेन्द्र उत्तेजित होकर उद्विकारज तमकश्वास(Cardiac Asthma)की उत्पत्ति करा देता है।

हृत्केन्द्र और श्वासकेन्द्र, इन दोनों केन्द्रस्थानोंका परस्पर सम्बन्ध है। फिर भी प्रारम्भमें हृदयगति और श्वासोच्छ्वासके अनुपातमें अन्तर नहीं पड़ता; किन्तु धीरे-धीरे अन्तर पड़ जाता है, और दोनोंके बीचका अनुपात न्यूनाधिक हो जाता है।

पाण्डु रोग होनेपर रक्तमें प्राणवायुको शोषण करनेकी शक्ति न्यून हो जाती है। इस हेतुसे भी रक्तमें दूषित वायु शेष रह जाती है। जब इस तरह मलिन वायुका संग्रह अत्यधिक हो जाता है, तब श्वास रोगका दौरा हो जाता है।

आयुर्वेदके महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास और तमकश्वास आदिके वेगका हेतु बहुधा

श्वासकेन्द्रकी विकृति या पाण्डु रोगजन्य रक्त विकृति है। जब किसी भी हेतुसे रक्तमें आंगारिक वायु बढ़ जाती है, तब श्वासका वेग उत्पन्न होता है।

वृक्कसंन्यास, वृक्कधमनीका कोषकाठिन्य, मस्तिष्कान्तर्गत अर्बुदोत्पत्ति तथा हृदयपतन आदि रोगोंमें श्वासकेन्द्र दूषित होजानेके पश्चात् शनैः-शनैः अधिक निर्बल हो जाता है। फिर क्वचित् श्वासकेन्द्रमें प्रतिफलित क्रिया (Reflex action) ही कम या बन्द हो जाती है। पश्चात् रक्तमें अशुद्ध वायु बढ़नेपर भी केन्द्रमें उत्तेजना नहीं होती। जिससे स्वाभाविक श्वासक्रिया कुछ काल बन्द हो जाती है। उसे डॉक्टरीमें चेन स्टोक्स रेस्पिरेशन (Cheyne-stokes respiration) कहते हैं। आयुर्वेदमें इसे छिन्न श्वास रोग मान लिया है, ऐसा अनुमान है।

डॉक्टरीमें तमक श्वास (Asthma) रोगका वर्णन निम्नानुसार मिलता है। इस श्वास रोगका यकायक मध्य रात्रिमें श्वासावरोध होकर दौरा होता है, और अनियत समयपर दूर होता है। बहुधा यह शीत और आर्द्र जलवायु वाले स्थानोंमें होता है।

स्वरयन्त्रद्वारका आक्षेप (Laryngismus Stridulus) होनेपर श्वासकृच्छ्रता उपस्थित होती है; उसे डॉक्टरीमें कोप्स अस्थमा (Kopp's Asthma) कहते हैं। इसका विचार स्वरयन्त्रके आक्षेप में किया गया है। इस रोगकी श्वासकृच्छ्रताके लक्षण महाश्वासके लक्षणोंके साथ मिलते हैं।

आयुर्वेदीय श्वासरोगसे सम्बन्धवाले रोग—

१. आक्षेपात्मक तमकश्वास—Bronchial Asthma.

२. आवेगात्मक (हार्दिक) तमकश्वास—Cardiac Asthma.

३. आशुकारी फुफ्फुसशोथ—Acute Oedema of the Lungs.

४. फुफ्फुसगत शल्य—Infaraction of the Lungs.

१. आक्षेपात्मक तमकश्वास—

ब्रौंकियल अस्थमा—स्पेज्मोडिक अस्थमा

(Bronchial Asthma-Spasmodic Asthma).

व्याख्या—श्वासनलिकाकी मांसपेशियोंके आक्षेप और मांसपेशियोंके प्रतिबाधके हेतुसे श्वासकृच्छ्रताके आवेगका आक्रमण, विशेषतः श्वासत्यागमें आक्रमणको तमकश्वास कहते हैं। इस व्याख्याके भीतर वृक्कप्रकोपज और हृत्प्रकोपज तमकश्वासका अन्तर्भाव नहीं होता।

सामान्यतः यह किसी भी आयुमें उपस्थित। बाल्यावस्थामें क्वचित्। २५ वर्षकी आयुके पश्चात् श्वासनलिकाप्रदाह न होनेपर भी। यह पुरुषोंमें कितनेक अंशमें सामान्यतर। यह रोग अनेक व्यक्तियोंमें वंशागत भी। वंशागत व्याधि भी सामान्यतः प्रथमावस्थामें प्राप्त वातनाड़ीकी निर्बलतावाले कुटुम्बोंमें यह बारंबार उपस्थित। माता-

पिताको वातवाहिनियोंके इतर कोई भी व्याधि होनेपर वह रूपान्तरित होकर किसी सन्तानको तमक श्वास रूपसे प्राप्त हो सकती है तथा अन्योंमें अपस्मार शिरदर्द, वात-नाड़ी क्रियाविकृति अथवा शीतपित्त, व्यूची, दुष्टगन्धजज्वर (Hay fever) आदिमेंसे कोई भी बनसकती है। जलवायु (Climate) प्रायः इसरोगकी वृद्धिमें सहायक होता है; किन्तु नियमपूर्वक नहीं।

प्रथिन, चेतनाधिक्य और उद्दीपक कारण—प्राणी और पुष्पोंके निःसरित रेणु या कितनेक प्रकारके आहार औषध आदिके सेवन द्वारा कितनीक समय तमक श्वासका प्रत्यक्ष आक्रमण होता है, यह विविध प्रयोगों द्वारा स्वीकृत हुआ है। विजातीय प्रथिनोंकी उपस्थितिसे चेतनाधिक्य होकर तमक श्वासका दौरा हो जाता है, विशेषतः बालकोंमें, क्वचित वृद्धों और निर्बलोंमें। दौरा होनेके अतिरिक्त तमकश्वासके आवेगकी प्रबलता भी प्राप्त होजाती है क्वचित् त्वचापर प्रथिनकी प्रतिफलित क्रिया होती है, वह भी तमक श्वासका दौरा कराती है।

निदान—

प्रतिकूल प्रथिनजन्य चेतनाधिक्य—अत्यधिक। इसके भीतर—

१. श्वासग्रहणमें—(अ) विषाक्त तृण आदिसे जैसे तृण गन्धज ज्वरमें; (आ) अश्व, पक्षी, बिल्ली आदिके मूत्र, पर, स्वेदादि निःसरितद्रव्य तथा पुष्पोंकी उग्रवाससे। इनके अतिरिक्त फुफ्फुसमें धूल, कोयले रुई, रङ्ग, गन्धक आदिका धुआँ इत्यादिके प्रवेशसे श्वासनलिकामें शोथ आकरके भी इसरोगकी संप्राप्ति।

२. अन्न सेवनजन्य—सामान्यतम। नानाविध धान्य, विशेषतः, गेंहू, आलू, दूध, अण्डे, मछली, मांस आदिके दूषित होनेपर या संयोग विरुद्ध होनेपर।

कल्पना है कि पचनक्रिया कालमें विजातीय प्रथिन पृथक् होकर चेतनाधिक्य कराती है।

प्रतिफलित और अन्यक्षतिओंसे सम्बन्धवाले कारण—(अ) नासा-गुहाके पश्चिमभागकी स्थिति, श्लैष्मिककलाकी वृन्तमयवृद्धि (मस्से-Polypi), नासा-मध्यस्थ प्राचीरका एक ओर झुकजाना आदि। प्रवृत्त आक्रमणकी चिकित्सा। (आ) पचनसंस्थानमें विकृति भारी भोजन, देरसे-भोजन अफारा, मलावरोध। (इ) फुफ्फुस—श्वासनलिकाप्रदाह कभी-कभी ग्रहणशील व्यक्तियोंमें आक्षेपका कारण होजाता है। (ई) स्त्रियोंमें ओणिगुहाके भीतर विकृति। (उ) क्लान्ति और मनोभावना-मानस प्रतिनिधि तमकश्वासके ग्रहणका भयउत्पन्न करा आक्रमणकी उन्नति प्रदर्शित कराता है।

श्वासनलिकाके तमक श्वासका अन्यपीड़ासे सम्बन्ध—इस श्वासके आक्रमणका सम्बन्ध तृणगंधजज्वर, कतिपय प्रकारके शीतपित्त, वातनाड़ीपोषणकी अपूर्णताजन्य वातनाड़ी क्रियाविकृति (Trophoneurosis) से अन्तरस्थ परिवर्त्तन तथा चेतनाधिक्यसे उत्पन्न इतर स्थितियोंसे रहता है।

श्वासाक्रमणसे उन्नत विकृत स्थिति—श्वासके आवेगकालमें मुख्य कठिनता श्वास त्यागमें होती है। फुफ्फुस वेगपूर्वक श्वासग्रहण करता है, तीव्र असर होनेपर थोड़ी-थोड़ी वायु बाहर-भीतर आती जाती है।

प्रारम्भिकस्थिति—(१) लघुतर श्वासनलिकाकी मांसपेशियोंका आक्षेप, (२) श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक-कलाका शोथ; इन दो वाहकोंद्वारा सूक्ष्म श्वासनलिकाओंका प्रतिबन्ध; वायुकोषाणुओंमेंसे वायु बाहर नहीं निकल सकती; किन्तु जबतक फुफ्फुस पूर्ण स्फीत न हो जाय, तबतक श्वासग्रहण करनेवाली अधिकतर बलवाली पेशियोंद्वारा आकर्षित होती रहती है। ऊपरकी तीन श्वासनलिकामेंसे श्लेष्माका अत्यधिकस्राव होता है, जो श्लेष्ममण्ड (Mucinase) की फेनीभवन क्रियाद्वारा श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलामें जम जाता है। आक्रमणके अन्तमें मुड़ीहुई श्वासप्रणालिकाओंके आगे दबाव होता है तथा कर्शमेनके मुड़ेहुए तन्तु (Curschmann's spirals) युक्त कफ बाहर फेंका जाता है।

शारीरविकृति—पुनः-पुनः आक्रमणसे वायुकोष प्रसारणकी उत्पत्ति। छोटी आयुवालोंमें वायुकोषोंका पूर्ण प्रसारण, श्वासप्रणालिकाके सम्बन्धसे रहित। शवच्छेदन करनेपर अन्य विकृतिकी अप्रतीति।

आक्रमणकालमें लक्षण—विशेषतः आवेग रात्रिको कुछ घण्टोंकी निद्राके बाद। आक्रमण अकस्मात् अथवा छातीमें दबावके सूचनादेनेवाले पूर्ण लक्षणोंसह। आवेगात्मक छींकआना, अफारा, अपचन, ठोस द्रव्योंकी वृद्धि सह बहुमूत्र (Polyuria) अर्थात् मूत्राधिक्य और बार-बार मूत्रत्याग, वातनाड़ियोंका विषाद, अतिशय व्याकुलता, आलस्य, शिरदर्द, तन्द्रा आदि, किसीको मानस स्फूर्ति आदि।

आवेग—सब सहायक पेशियोंके संचालनसह प्रबल तेजीसे श्वसन, लघु श्वासग्रहण, सां सां ध्वनिमय लम्बा निःश्वास। थोड़ी वायुका प्रवेश, श्वसनक्रिया प्रबल, रोगी निस्तेज या श्याम और चिन्तातुर, शीतल स्वेद, मंदनाड़ी, तथा अत्यन्त मानस वेदना आदि। कुछ कालके पश्चात् आवेगका पतन। कभी घातक नहीं होता।

आवेगका अन्त—सत्वर, फिर लम्बी मुक्ति, किन्तु पुनः आवेग उपस्थित। दौरा शीत और वर्षाऋतुमें अधिक। क्वचित् भयङ्कर गर्मीके दिनोंमें भी। एक समय रोग हो जानेकेबाद तेजवायु धूलि या धुंएका सेवन, धूपमें घूमना, स्थान परिवर्त्तन, आहार-विहारमें अनियमता, अजीर्णमें भोजन, भय लगजाना और कोष्ठबद्धता आदि कारणोंसे तथा सब प्रकारसे सम्हालनेपर भी आकाशमें बद्दल छानेपर दौरा। अतः रोगीको आजीवन सावधान रहना पड़ता है।

कास—आवेगके अन्ततक मंद। फिर रोगी चिपचिपा कफ निकालता है।

स्थितिकाल—कुछ मिनटोंसे कितनेक घण्टोंतक। अनेक स्थानोंमें रोगी २ से

१ घण्टे कष्ट भोगकर गाढ निद्रा लेने लग जाता है। जागृत होनेपर उसे पूर्व स्वस्थता भासती है।

आवेगकालके चिह्न—रोगी आगेकी ओर मुड़कर बैठता है। अंसफलकको स्थिर बनाकर तकिया, टेबल आदि जो हो उसे दृढ़तापूर्वक पकड़ता है। मस्तिष्कको पिछली ओर झुकाता है, कन्धोंको ऊंचा उठाता है। पहली और दूसरी पशुकाकी पेशियां (Scaleni) और उरःकर्णमूलिका पेशियां उरःपंजरको उठाते रहनेका प्रयत्न करती हैं। रोगी सामान्यतः उठने-बैठने एवं कभी-कभी बोलनेमें भी अक्षम हो जाता है। रक्तसंचालन क्रियामें विलक्षणता आ जानेसे हाथ-पैरोंमें शीतलता और मुखमण्डल-पर स्वेद या सम्पूर्ण देह शीतलस्वेद मय। छाती फूली हुई लगभग स्थिर। महाप्राचीरा किञ्चित् गतिशील।

ठेपन परीक्षा करनेपर ध्वनिवृद्धि। ध्वनि श्रवण करनेपर अनेक अस्वाभाविक अवाज़ और बड़ी आवाज़। वायुके अन्तप्रंहणका अभाव।

तमकश्वासमय स्थिति—सामान्य स्थितिकालका पुनराक्रमण। आक्रमण कई दिनोंतक दृढ। निद्रा और पोषणमें प्रतिबन्ध। क्वचित् आक्रमण के अन्तमें ह्रस्वाद।

कफ—आवेग समाप्त होनेपर कफस्रावका आरम्भ। उसमें कर्शमेनके मुड़े हुए तन्तुओंकी प्रतीति, पहले लसदार फिर शिथिल ये तन्तु ही प्रायः रोगका निर्णय कराते हैं; किन्तु वे वृद्ध मनुष्योंमें वायुकोष स्फीति होनेपर नहीं मिलते। अति क्वचित् आशुकारी राजयक्ष्माके कफमें उपस्थित; किन्तु अम्ल रंगेच्छु नहीं मिलते।

लघु श्वासवाहिनीकी आकृति गोल मुड़ी हुई बननेपर उसके भीतर छोटी और चिपचिपी कफगांठ बनती है। इस गांठके भीतर स्वच्छ केन्द्रीय सूत्र, लिपटे हुए कफ तन्तु और अम्ल रंगेच्छु प्रतीत होते हैं। कफमें कर्शमेनके तन्तु आवेगके पश्चात् २-३ दिनतक मिलते हैं। उक्त तन्तुओंके अतिरिक्त कफमें सूक्ष्म अष्टपार्श्वयुक्त स्फटिक (Octahedral Charcot-Leyden Crystals) भी मिलते है, किन्तु ये रोग निर्णायक नहीं है।

रक्त—अम्लरंगेच्छु श्वेताणुओंकी उपस्थिति, सर्वश्वेताणुओंमें ५ से १० प्रतिशत या अधिक।

भावी परिणाम—बच्चोंमें आक्रमणका अन्त आसकता है। वृद्धोंमें सामान्यतः वृद्धिगत। पुनराक्रमण होनेपर वायुकोष प्रसारणकी उन्नति। उरःपंजरकी आकृति विकृत, कंधे ऊंचे चौकोर और पृष्ठवंश मुड़ा हुआ, पीछे शब्द फिर से दर्शाया है शंका रहेतो देख लेवें (नलाकार वक्ष-Funnul Shaped Depression) ग्रीवाकी शिराएं फूली हुई सूक्ष्मरूपमें श्वास बना रहना, इस तरहके परिवर्त्तन और हृदय स्थितिपर परिणाम अवलम्बित। फुफ्फुसक्षयकी उन्नति। अनेक रोगियोंमें आयु वृद्धिके साथ हृदयके दक्षिणखण्ड की विकृति। फिर त्रिपत्रकपाटकी अक्षमता (Tricupid-

Insufficiency), रक्तसंचालनमें प्रतिबन्ध और शोथ उपस्थित। फिर रोगघातक

रोगविनिर्णय—आक्षेपात्मक तथा आवेगात्मक श्वासकृच्छ्रतासे। (१) स्वरयन्त्र, बृहच्छ्वासनलिका और श्वासनलिकाके श्वासग्रहणकालमें श्वासकृच्छ्रता; (२) हृदयविकारज और वृक्क विकारज तमकश्वाससे, उनमें हृदय और वृक्ककी क्षति विद्यमान।

चिकित्सोपयोगीसूचना

कारणोंके अनुसंधानार्थ वायुमण्डल प्रतिकूल होतो बदलें। भोजन आदिमें परिवर्त्तन करें। त्वचाकी प्रतिफलित क्रियाका अनुमान हो, तो उसे दूर करनेका प्रयत्न करें।

आवेगकालमें सर्व सामान्य स्वास्थ्यकी रक्षार्थ प्रयत्न। मलावरोध, अफारा आदि लक्षण हों, तो उनकी चिकित्सा करें। रात्रिके तमक श्वासके लिये शामको लघु भोजन, तीसरेपहरके बाद परिश्रम करना छोड़ें। दिनमें भोजनके पहले निद्रा ले लेवें।

इसरोगसे पीड़ितोंका आमाशय बहुधा सदोष और निर्बल बन जाता है। थोड़ेसे अपथ्य और अपचनसे रोगका आक्रमण हो जाता है। अतः आजीवन पथ्य पालन करना चाहिये। विजातीय प्रथिनजन्य चेतनाधिक्य होनेपर मूल कारणको दूर करें एवं योग्य विषशामक उपचार भी करें।

चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह (कास) भी हो तो आवेगके पश्चात् डॉक्टरोंमें अनेक वर्षों से जीर्ण रोगियोंको इसके तन्तुओंके गव्यका अन्तःक्षेपण करते हैं; किन्तु परिणाम संतोष प्रद नहीं मिला। कास विशेषतः तमाखूके व्यसनीको होती है। ऐसा होनेपर व्यसन छुड़ा देना चाहिये। अन्यकारण हो तो मूल कारणको दूर करें। कारणानुरुप चिकित्सा करें। जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाते रहना चाहिये।

डॉक्टरी औषधि—

टिंचर लोबेलिया ईथर	१५ बूंद	
पोटास आयोडाइड	५ ग्रेन	
स्पिरिट एमोनिया एरोमेटिक	२० बूंद	इसतरह दिनमें ३ समय।
कर्पूर जल	१ औंस	

आयुर्वेदमें श्वासकास चिंतामणि आदि औषधियां दी जाती हैं। कफ अधिक संगृहीत हो उसे मनः शिलादि धूम्रपान आदि। विशेष विचार आगे श्वासचिकित्साके साथ किया जायगा। [नाकमें मस्से हों, तो दूर करें।]

आवेग शमनार्थ एड्रिनलीन या एफेड्रिनका अन्तःक्षेपण किया जाता है। आयुर्वेदमें सोमकल्प देते हैं। अब डॉक्टरीमें मोर्फिया, कोकेन या हिरोइन नहीं देते।

आक्रमणकालमें पैरोंपर गरम जलकी थैली रखने तथा काफी पिलानेसे कुछ लाभ पहुंचता है। काफी १-१ कप आध-आध घण्टेपर २-३ बार पिलावें।

किसी-किसीको अमिलनाइट्रेट ५ बूंद (नाकके पास केप्सुलको तोड़कर) सुंघानेसे आराम हो जाता है। तमाखूके व्यसनीकेलिये मनःशिलादि धूम्रपान या धतूरेकेपत्तोंका धूम्रपान करानेसे कफ निकलकर सत्वर शान्ति हो जाती है।

डॉक्टरीमें आक्षेपावस्थामें निम्न औषधियों के धूम्रका नस्य कराते हैं। यह कुछ शान्ति प्रदान करता है, किन्तु कासको उत्तेजित करता है।

स्ट्रेमोनियमके पत्तेका चूर्ण, सूचीबूटी (बेलाडोना) के पत्ते का चूर्ण, खुरासानी अजवायन (हायोस्यामी) के पत्तेका चूर्ण और शोरा (पोटास नाइट्रास) प्रत्येक १५-१५ ग्रेन लें। इनको तस्तरीमें जलाते हैं।

लगभग ५० प्रतिशत रोगियोंमें आमाशयके रसस्रावमें लवणाम्ल नहीं होता। उनको डॉक्टरीमें लवणाम्ल देते हैं। आयुर्वेदमें जम्भीरी द्राव, कन्यादरस या क्षुद्-बोधकरस देते हैं। एवं अति गरम पेयका सेवन बन्द कराते हैं।

जब आक्रमण मंदवेगवाला दिनोंतक रह जाता है, तब डॉक्टरीमें ऑक्सिजन २० प्रतिशत और हिलियम ८० प्रतिशत मिला उसमेंसे १ घण्टेतक श्वसनक्रिया कराते हैं। फिर ऑक्सिजन (प्राणवायु) ९० प्रतिशत मिलाकर १-२ घण्टोंतक मुखाच्छादन (Mash) से श्वसन क्रिया कराते हैं। आवश्यकतापर पुनःदेवें। हिलियम शिथिल, किन्तु अति हल्की गेस है। यह निःश्वासके परिश्रमका ह्रास कराती है। ऑक्सिजन के श्वसनोपचारका वर्णन रुग्ण परिचर्या भाग २४ में किया है।

२. आवेगात्मक तमक श्वास

हृदयविकारज श्वास--कार्डियाक अॅस्थमा--पेरोक्सिसमेल डिस्फोनिया।

Cardiac Asthma-Paroxysmal Dysphonea.

परिचय—वामनिलय खण्डके पतनरूप परिणामसे हृदयके वाम और दक्षिण भागोंकी विषमदृढ़ताके परिणामस्वरूप उत्पन्न श्वासकृच्छ्रताको आवेगात्मक तमक श्वास कहते हैं।

निदान—(१) दबाव वृद्धिसह धमनीकोष काठिन्य, महाधमनीके विकार, चिरकारी हृदयपेशी प्रदाह, धमन्यर्बुद, ये सब सामान्यतः मध्य आयुवाले पुरुषोंको। (२) द्विपत्रकपाटका आकुंचन। यह आकुंचन क्वचित् अस्पष्टतः अलिन्दकम्पन रहित या वाम अलिन्दके अति प्रसारणसह।

लक्षण—सामान्यतः रात्रिको अकस्मात् निद्राभंग होनेपर आक्रमण। छातीमें दबाव और अत्यन्त श्वासावरोधका असर, अत्यन्त कष्ट, श्वास ग्रहणमें अति व्याकुलता, वेदना का अभाव, कास, रक्तरंजित, झागमय कफस्राव तथा आशुकारी फुफ्फुसशोथ (Acute Pulmonary Oedema) की उत्पत्ति।

चिह्न—नाड़ीके तालमें विकृति (नाड़ी बीचमें टूट जाना—Gallop-rhythm), फुफ्फुसकी ध्वनि श्रवण करनेपर शुष्क और अस्वाभाविक ध्वनिकी उत्पत्ति। हृदयकी ध्वनि श्रवण करनेपर अर्धचन्द्राकार कपाटिकाओंकी बन्द होनेकी प्रबल आवाज।

स्थितिकाल—कुछ मिनटोंसे घण्टोंतक। प्रायः १ घण्टा। फिर अत्यधिक क्लान्ति। आक्षेपरूपसे पुनराक्रमण।

साध्यासाध्यता—क्वचित् पहले आक्रमणमें मृत्यु। पुनरावृत्ति होनेपर परिणाम खराब।

रोगविनिर्णय—रक्तमें मूत्रविषवृद्धिसे, तथा आक्षेपज तमक श्वास, जिसमें श्वासत्यागमें कष्ट होता है, उससे पृथक करना चाहिये। श्वासनलिकाके नवबर्द्धनमें भी लगभग ऐसा ही आक्रमण होता है।

चिकित्सा—मोर्फियाका अन्तःक्षेपण। ऑक्सिजनकी श्वसनक्रिया। नेपेन्थ (Nepenth) की २०-३० बूंद सोनेके समय देनेपर आक्रमणको रोक देती है। आयुर्वेदमें जवाहर मोहरा और महावातराजरसका उपयोग होता है।

(३) आशुकारी फुफ्फुसशोथ

ऊर्ध्वश्वास-एक्यूट इडिमा आफ दी लंग्स

(Acute Oedema of the Lungs)

व्याख्या—फुफ्फुसविधान, वायुकोष और श्वासप्रणालिकाओंके स्थानोंमें रक्तरसोत्सृजनयुक्त व्याधिको फुफ्फुसशोथ कहते हैं। इसके आशुकारी और चिरकारी, दो प्रकार हैं। इनमेंसे यहां आशुकारी का वर्णन करते हैं। चिरकारी प्रकार प्रतिरोधक रक्तसंग्रह होता है, जैसा वृक्करोग में शोथ।

संप्रापक स्थिति—निम्न स्थितियोंमें प्रायः फुफ्फुस शोथोत्पत्ति।

१. हृदय, हृदयके मांसतन्तु और वृक्क स्थिति +। इनकी विकृति, किन्तु रक्त दबाववृद्धि नहीं; उदा० हार्दिक धमनीमें शल्योत्पत्ति, द्विपत्रकपाटका आकुंचन या हृदयके बायें भागके अकस्मात् पतनकी सूचना।

२. विषाक्त स्थिति—उदा० आशुकारी विशेषज्वर, सगर्भावस्था, मधुमेह (संभवतः वसामय शल्य)।

३. फुफ्फुसावरणमें कृत्रिम छेद करने पर—कितनेक रोगियों में फुफ्फुसावरणके स्रावका आकर्षण होकर श्वेतप्रथिनमय कफस्राव होता है। संभवतः कफस्रावकी मात्रा आकर्षित मात्रासे अत्यधिक होती है। आकुंचित फुफ्फुस सत्वर फैल जाता है। पीड़ित रक्तवाहिनियां प्रसारित और रक्तवृद्धि मय होती हैं तथा प्रवाहीको जाने देती हैं।

४. रक्तवाहिनियों की चेष्टा, नाड़ियोंकी क्रियाविकृतिजन्य शोथ (Angioneuro-oedema)—संभवतः स्थानिक। युवा व्यक्तियोंमें जो ऊपरसे स्वस्थ भासते हों, वे पीड़ित। समकालमें मुखपर भी शोथकी प्रतीति।

५. ईथरजन्य चेतनालोप या विषाक्त गैस—शिराछेदन (Vein-section) अनावश्यक। कारण—हृदयपतन नहीं होता।

६. स्वाभाविक विकृति—संभवतः पहले न्युमोनिया या इन्फ्लुएन्ज़ा होजाने से।

शारीर विकृति—फुफ्फुस निस्तेज, अर्धठोस, पकाये हुए मांस के सदृश, दबानेपर गड्ढा पड़ना, काटनेपर सतहपर झागदार स्राव होना।

डाक्टर वेल्श (Welch) की उपपत्तिके अनुसार हृदयके वाम निलयका सापेप पतन, दक्षिण निलय कार्य परायण। जबतक कफस्राव नहीं होता; तब तक रक्त फुफ्फुसमें संगृहीत होता रहता है। (हृदय और वृक्कप्रकारमें भी झागदार स्राव होता है) अन्यप्रकार भी और कारणोंसे उपस्थित होते हैं, जैसे शीतपित्त।

लक्षण—छाती के दबाव और श्वसनक्रिया में कठिनाई (Orthopnea) सह अकस्मात् आक्रमण। सोनेपर अधिक कष्ट। अतः रुग्णा बैठी ही रहती है। श्वासकृच्छ्रता बढ़ते जाना, कास छोटी और बारंबार, कासकी अनेक आवृत्ति होनेपर झागदार

+ डाक्टर न्यूमोण्टने लिखा है कि, इसरोगका सम्बन्ध अधिकतम समयमें धमनीकोषकाठिन्य, महाधमनी विकार, हृदयके मांस तन्तुओंकी अपक्रान्ति, हार्दिक धमनीमें रक्त जमाव, और चिरकारी वृक्करोगके साथ रहा है तथा यह क्रम बारंबार फुफ्फुसावरणमें से रसस्राव के आकर्षण से उपस्थित होता है।

सामान्यतः यह रोग ४० वर्षसे अधिक आयुवाली स्त्रियोंको होता है। आक्रमण होने पर श्वसनक्रिया उथल और जल्दी होती है और थोड़े ही समयमें अर्ध चेतनायुक्त या पूर्ण बेहोशी वाली स्थितिमें आ जाती है।

पानी सदृश प्रचुरस्राव, कभी पूयस्राव। जब कभी स्रावका बिल्कुल अभाव हो जाता है, तब सत्वर शक्तिपात होता है और व्याकुलता, गात्रनीलता, निस्तेजता, शीतलस्वेद, निर्बलनाड़ी आदि लक्षण सत्वर बढ़ जाते हैं।

चिह्न—ध्वनिश्रवण करनेपर लघु बिम्ब स्फोटन ध्वनि। ठेपन ध्वनि रोगवृद्धि होनेपर जड़। रक्तदबाववृद्धि, पूर्ववर्ती शोथ, रक्तरंजनवृद्धि। हृदय सामान्यतः नियमित, किन्तु स्पन्दन त्वरित, त्वचा निस्तेज स्वेदमय। कुछ गात्रनीलता।

कुछ मिनटों से आध घण्टे तक फुफ्फुसमेंसे झागदार द्रव आता रहता है। मुख और नासापुटोंसे उसके बाष्पकण निकलते रहते हैं। द्रव प्रायः गुलाबी होता है। क्षणिक लसीकामेह भी उपस्थित होता है।

साध्यासाध्यता—प्रायः पहला आक्रमण कुछ घण्टे या मिनटोंमें घातक (यदि रोगी बेहोश होगया होतो)।

स्थितिकाल—आराम होतो भी कुछ घण्टों में।

उपद्रव—यह रोग किसी किसी व्यक्तिपर पुनः पुन: आक्रमण करता है। डाक्टर ब्यूमोण्ट लिखते हैं कि एक रोगीपर ७० बार आक्रमणकी सूचनामिली है।

चिकित्सा—डॉक्टरोंमें मोर्फिया और एट्रोपिनका अन्तःक्षेपण करते हैं; तथा तेज हृदयोत्तेजक (स्ट्रोफेन्थिन या कोरेमाइन आदि) का शिरामें अन्तःक्षेपण करते हैं। वाम निलयमेंसे १०-२० औंस तक रक्त निकाल लेते हैं। श्वसनक्रियामें ऑक्सिजनका प्रवेश कराते हैं। त्वचाके नीचे एड्रेनलिनका अन्तः क्षेपण करते हैं। आवश्यकता पर पुनः दूसरी बार भी किया जाता है।

आयुर्वेदने ऊर्ध्व श्वासको मारक कहा है। फिर भी श्वासकास चिन्तामणि और मृगमदासव (रसतन्त्रसार द्वितीय खण्ड) का सेवन कराया जाता है। प्राणवायु से श्वसनक्रिया कराते रहना चाहिये। रक्त संग्रह होनेपर कुछ रक्त तत्काल निकाल लेवें। ताकि औषधि अपना कार्य सत्वर कर सके। विशेष विचार आगे श्वासचिकित्सा में किया जायगा।

(४) फुफ्फुसगत शल्य

महाश्वास-इन्फर्कशन आफ दी लंग-पल्मनरी एम्बोलिज़म या पल्मनरी थ्रोम्बोसिज़-पल्मनरी एपोप्लेक्सी।

(Infarction of the Lung-Pulmonary Embolism or P. Thrombosis—Apoplexy)

व्याख्या—फुफ्फुस गत रक्तवाहिनियों में रक्त जमजाना अर्थात् (स्थानिकशल्य) या परिभ्रामक शल्य (Thrombus or Embolus) द्वारा अवरोध होने पर परिणाममें फुफ्फुसोंके तन्तुओंमें परीक्षात्मक सूचनाप्रद और संप्राप्त्यात्मक परिवर्त्तन। इन २ प्रकारोंके शल्यों में मुख्य परिभ्रामक शल्य है।

निदान—१. कभी हृदयके दक्षिण भागमें शल्योत्पत्ति आदि कारणसे शल्याणु निकलकर फुफ्फुसवाहिनीमें प्रवेश कर जाता है। (२) कभी हृदयके दक्षिण भागके भीतर—अ. अलिन्दशीर्षक (Auricular appendix) में रक्त जमाव, (हृदय पतन या अलिन्द कम्पनमें उत्पन्न), आ. अर्बुदावृद्धि (Vegetations), क्वचित् संक्रामक। इनके अतिरिक्त वायु परिभ्रामक शल्यरूप बन जाती है एवं अस्थि-भंग होने के पश्चात् कभी वसा भी आगे गति करके शल्य रूप धारणकर लेती है। इस तरह रसार्बुद (Hydatid Cyst) अर्बुद सन्तान (daughter cyst) के कृमि द्वारा और अर्बुद आदि कारणों से भी इस विकार की प्राप्ति होसकती है।

फुफ्फुस की बड़ी रक्तवाहिनियोंमें परिभ्रामक शल्य (Pulmonary embolism) और छोटी रक्तवाहिनियोंके शल्य (Pulmonary infarction) इनके परिणाम में सामान्यतः कोई अन्तर नहीं पड़ता।

स्थानिक शल्योत्पत्ति आशुकारी या चिरकारी फुफ्फुसरोग तथा द्विपत्रकपाटके आकुंचनसे होता है इनके अतिरिक्त फुफ्फुसके परिभ्रमाक शल्यसे सम्बन्ध होनेपर गौण प्रवृत्ति। यह शिराप्रदाहकी सूचना करता है एवं शस्त्रचिकित्सा पश्चात् भी उपस्थित होता है।

इस शल्यका परिणाम भी परिभ्रामक शल्यके समान प्रकाशित होता है उदा० द्विपत्रकपाटके आकुंचनमें व फुफ्फुसगत रक्ताभिसरण। मन्द और रक्तजमावमें भी वैसा ही लक्षण मालूम होता है।

लक्षण और चिह्न—गम्भीरताकी सर्व अवस्थाका आधार पीड़ित रक्तवाहिनीके परिमाण तथा पहलेसे हृदयरोग आदि, जो उपस्थित हों उनपर रहता है।

गम्भीर प्रकार—(बड़ी शिरामें परिभ्रामक शल्य)—आक्रमण पूर्णांश में होनेपर एक पार्श्वमें अकस्मात् असह्य वेदना, श्वासग्रहणमें अति कष्ट (श्वासकृच्छ्रता), कासोत्पत्ति, रक्त और झागदार कफ, सामान्यतः निस्तेजता बेहोशी की वृद्धि और कुछ मिनटों में मृत्यु।

कमगम्भीरप्रकार—(छोटी वाहिनियोंमें परिभ्रामक शल्य) छाती में अकस्मात् वेदना, श्वासकृच्छ्रता, आवेग कुछ घण्टोंसे १ या २ दिन तक, कास, रक्त रंजित झागदार कफ और ज्वर। रोगका स्थितिकाल कुछ दिनोंतक। निस्तेजता, गात्र-नीलता, व्याकुलता और स्वेद भी शिथिल संचलन और मन्द श्वासध्वनि। जीर्णावस्थामें फुफ्फुसावरणका प्रदाह। घनताके चिह्नभी।

रेडियोग्राफसे देखने पर फुफ्फुसके परिधिभागमें कीलकाकार घनताकी प्रतीति।

इस प्रकारमें फुफ्फुसके भीतर परिवर्त्तनरूप प्राकृतिक कोई भी चिह्न प्रथमावस्था में नहीं मिलता। केवल वायु प्रवेश में न्यूनता। कुछ घण्टोंके बाद मन्द जड़ताके स्थानपर

निश्चित अपूर्ण आवाज और अस्वाभाविक ध्वनि। फिर कुछ समयके पश्चात् फुफ्फुसावरण की घर्षण ध्वनिका श्रवण (फुफ्फुस घनताके चिह्नसह), सामान्यतः निम्न खण्डमें।

यदि शल्य आधार स्थानपर हो, और महाप्राचीरासे सम्बन्धवाला फुफ्फुसावरण पीड़ित हो, तो वेदना स्कन्धके ऊपर तक। उत्ताप, नाड़ी और श्वसनक्रिया, तीनों की उन्नति, किन्तु सब रोगी इस प्रकारके चिह्नयुक्त हों, ऐसा नहीं कह सकेंगे।

कितनेक हृदय विकृतिवाले होते हैं, जिनमेंसे कई शस्त्रचिकित्साके पश्चात् अकस्मात् निस्तेजता, शक्तिपात, वेदनाका अभाव तथा श्वासकृच्छ्रता आदि होकर कुछ मिनटोंमें ही चले जाते हैं। जब तक उन रोगियों की शव परीक्षा न हो, तब तक निर्णय नहीं होता है कि, इन रोगियोंमें फुफ्फुसके भीतर परिभ्रामक शल्य है या नहीं। इनमें मस्तिष्कप्रकार और संन्यास प्रकार भी हैं। जो रोगी शस्त्रचिकित्साके पश्चात् २ सप्ताह तक स्वास्थ्य लाभ कर रहा है, उसे अकस्मात् बेहोशी, गात्रनीलता और गम्भीर श्वसन ध्वनि हो जाती है; तथा कुछ घण्टोंमें मृत्युके शरण हो जाता है। उसकी शव परीक्षा करने पर मस्तिष्कमें रक्तस्रावकी प्रतीति नहीं होती, किन्तु फुफ्फुसमें परिभ्रामक शल्य मिल जाता है।

यदि वसारूप परिभ्रामक शल्य हो तो कुछ घण्टोंसे दो दिनके मध्यवर्तीकालमें लक्षण— श्वासकृच्छ्रता, निस्तेजता, गात्रनीलता और स्वेद। वसाकण कफमें मिल जाने पर शमन।

प्रसवकालमें गर्भजलके हेतुसे फुफ्फुसमें परिभ्रामक शल्य पहुँच जाना, उसे सामान्यतम कारण कहा है, यह १ घण्टेके भीतर मृत्यु कराता है। कम गम्भीरतावाले रोगियोंमें शवछेदन करनेपर मानस आघात और शक्तिपात रूपकरण विदित होता है।

शारीर विकृति—मुख्यतः फुफ्फुसके परिधि भाग की सतहपर वर्तुलाकार मैले रंगकी स्थिर रचना। मन्द फुफ्फुसावरण प्रदाह, काटनेपर कीलकाकार शल्यकी प्रतीति। अधिकतम चौड़ाई फुफ्फुसकी सतहपर, कद जायफल से सन्त्रे तक या इससे भी अधिक। प्रायः वृद्धिशील।

नया शल्य गहरा, कठिन, रक्तजमावके सदृश, रक्तकी पूर्णता होनेपर उत्पन्न अवरोधसे वायुकोषोंसे अति दूर। शल्य जीर्ण होनेपर सुव्यवस्थित रचनायुक्त, सौत्रिक तन्तुमय और आकुंचन कारक। गलनात्मक (Septic) परिभ्रामक शल्य (संक्रामक हृदयान्तर प्रदाह), तो कभी पूयपाक।

उपद्रव और अनुगामीरोग—फुफ्फुसगत शल्य सामान्यतः १ से २ सप्ताह स्थिर रहनेके चिह्न मिलते हैं और कफमें ७ से १० दिन तक रक्त आते हैं। यदि परिभ्रामक शल्य संक्रामक है तो फुफ्फुसमें विद्रधिकी प्राप्ति हो जाती है।

भावी परिणाम—यदि रोगी प्राथमिक कुछ मिनटोंतक जीवित रह जाता है,

तो पूर्ण आराम हो सकता है। सामान्यत: शल्य बड़ा हो, हृदय या मस्तिष्क विकार हो, तो परिणाम अशुभ।

चिकित्सा—ऑक्सिजनका श्वसन। मोर्फियाका अन्त:क्षेपण करें। यदि हृदयावरोधकी संभावना है, तो तत्काल शिराको चीर दें। फुफ्फुसाभिगामिनी धमनीके भीतर शल्य है, तो उसे खोलकर जमे हुए रक्तको निकाल डालें। शक्तिपात हो तो हृदयोत्तेजक औषधिका शिरामें अन्तः क्षेपण। हेपरिन (Heparien) का अन्तः क्षेपण दिनमें ३ बार कुछ दिनोंतक। अनेक सप्ताहों तक पूर्ण आराम। शस्त्रचिकित्सा करके रक्त जमावको दूर करना।

रोगनिरोधक उपचार—अस्थिभंग या शस्त्रचिकित्साके पश्चात् पशु का प्रदेशकी श्वासक्रिया और महाप्राचीरा आदि सार्वाङ्गिक पेशियोंके आकुंचनको उत्तेजित करना चाहिये। किसी शाखाकी शिरामें स्थिर शल्य उत्पन्न हुआ हो, तो उस भागको आराम दें। आयुर्वेदमें भिलावा अथवा यवक्षार देते हैं।

महाश्वासको आयुर्वेदने मारक कहा है। वायु या वसाकण से अवरोध हो तो आयुर्वेदिक औषधि सहायक बन सकती है, किन्तु तत्काल वायु वा वसा शल्य है, ऐसा निःसंदेह निर्णय नहीं हो सकता। अतः रेडियोग्राफसे निर्णय, प्राणवायुश्वसन, शस्त्र-चिकित्सा और अन्तःक्षेपण आदि डॉक्टरी चिकित्साका आधार लेना पड़ता है।

श्वास चिकित्सोपयोगी सूचना

हिक्का और श्वास रोग, दोनोंमें कारणकी समानता होनेसे दोनोंमें चिकित्सा भी एक-सी होती है। रोगी बलवान् या दुर्बल, कफाधिक है या वाताधिक, इन बातोंको सोचकर चिकित्सा करनी चाहिये। श्वास रोग और हिक्का रोग, दोनोंमें समान सावधानता रक्खी जाती है। इस हेतुसे चिकित्सोपयोगी महत्त्वकी सूचना पहले हिक्का रोगमें पृष्ठ ४६३ से ४६८ तक लिखी गई है।

तमक श्वासमें विरेचन देना हितकारक है।

प्रतमक श्वासमें पित्तका अनुबंध रहनेमें दाह, बेचैनी आदि होती है, ऐसे रोगियोंको वातश्लेष्महर गरम औषधि नहीं देनी चाहिये। यदि रोगीके कण्ठमें कफ बोलता है; कफ निकलनेके समय वेदना होती है; छाती कफसे भारी मालूम पड़ती है, तो कफको पतला बनाकर निकालनेकी स्निग्ध उष्ण औषधि देनी चाहिये। ऐसे मौके पर कफको सुखानेवाली गरम औषधि नहीं देनी चाहिये; अन्यथा रोगीके कष्टमें वृद्धि हो जाती है।

भगवान् धन्वन्तरिजी श्वास चिकित्सार्थ बलवान् और दुर्बल, ऐसा विभाग कर, कहते हैं कि—

बलीयसि कफग्रस्ते वमनं सविरेचनम्।
दुर्बले चैव रूक्षे च तर्पणं हितमुच्यते॥

बढ़े हुए कफवाले बलवान् रोगीको वमन और विरेचन कराना चाहिये; किन्तु दुर्बल और रूक्ष रोगीको वमन और विरेचन नहीं देना चाहिये। दुर्बल और रूक्ष रोगीको तर्पण कराना और पौष्टिक पदार्थ देना हितकर है; अर्थात् जंगलके पशु आकाशमें उड़नेवाले पक्षी या अनूप देशके (जलके किनारे रहनेवाले) जीवोंका मांस रस घृतसे सिद्ध करके देना चाहिये।

जीर्ण या चिरकारी प्रकोपमें नाड़ियोंका शोधन कर चिकित्सा करनी चाहिये। कफ प्रधान तीक्ष्ण प्रकोपको सत्वर दबानेके लिये धूम्रपान कराना चाहिये। श्री वाग्भट्टाचार्य तो श्वास आदि रोग की उत्पत्ति होनेपर उत्पन्न विकारको नष्ट करनेके लिये सर्वदा धूम्रपान करानेका निम्न श्लोकसे कहते हैं—

जत्रूर्ध्वं कफवातोत्थविकाराणामजन्मने।
उच्छेदाय च जातानां पिबेद्धूमं सदाऽऽत्मवान्॥

सात्विक पथ्य और हितकर आहार-विहार करने वाले बुद्धिमानोंको चाहिये कि, कण्ठके ऊपर श्लेष्मवातके प्रकोपजन्य व्याधियोंके उत्पन्न न होने और उत्पन्न विकारोंको नष्ट करनेके लिये शास्त्रीय मर्यादानुसार सदा धूम्रका सेवन कराना चाहिये।

शीत प्रदेश, शीतकाल, कफ प्रकृति और पथ्य आहार-विहारके सेवन करने वाले युवा और वृद्ध पुरुषोंको कदाचित् धूम्रपानकी आवश्यकता हो, तो वे नित्य नियमित समयपर मर्यादामें सेवन करें, तो बाधा नहीं है। यदि बिना धूम्रमान चल सके, तो विशेष हितकर माना जायगा। बिना प्रयोजन धूम्रपानका उपयोग नहीं करना चाहिये। रक्तपित्त विकारवाले और बालक आदि अनधिकारियोंको तो इससे आग्रहपूर्वक बचना चाहिये। धूम्रपानमें भी वाताधिक श्वास वालोंको स्नैहिक, मृदु धूम्रपान, वातकफाधिक वालोंको शमन, मध्य धूम्र और कफाधिक श्वासमें वैरेचनिक तीक्ष्ण धूम्रपान करना चाहिये। इस धूम्रपानके विधि, अधिकारी आदिका वर्णन चिकित्सा तत्वप्रदीप प्रथम खण्ड में लिखा है।

ऊर्ध्वश्वास और छिन्नश्वासके तीव्र वेगमें सत्वर कण्ठस्थ कफको दूर करना चाहिये। फिर हृदय क्रियाको नियमित बनाने और कफप्रकोपको शमन करनेके लिये उपचार करना चाहिये। तीव्र वेगके समय कफस्रावकी आवश्यकता हो, वहाँ कफस्रावी उत्तेजक औषधियां या धूम्रपान आदि द्वारा स्राव करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

यदि श्वास रोगकी प्राप्ति वृक्क विकार, हृदयरोग, पाण्डु, और शोथके उपद्रव रूपसे हुई हो, तो उन रोगोंकी चिकित्सा में कही हुई औषधियां देनेसे श्वासकी निवृत्ति हो जाती है।

कास रोगमें जो प्रयोग दिये हैं, वे सब इस श्वास रोगपर भी हितकारी है। श्वास कास और हिक्का, ये तीनों रोगोंके प्रयोग परस्पर एक दूसरेके लिये उपयोगमें लिये जाते हैं।

तमक श्वासमें रोगीकी व्याकुलताका निवारण, रोगके आक्रमणका दमन, फिर पुनराक्रमणका दमन, फिर पुनराक्रमणका निवारण, इन तीनों उद्देश्योंसे चिकित्सा की जाती है।

यदि श्वासनलिकाप्रदाह न हो, तो अफीमप्रधान औषधि देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। आमाशय भरा होने पर वमन कराने वाली औषधि देनेसे एवं किसी-किसीको विरेचन देनेसे लाभ पहुँच जाता है।

यदि आक्रमणकालमें अपचन न हो, तो (आमाशय खाली होनेपर) श्वास-कुठार रस देकर ऊपर गुनगुनी काफी पिलानेसे वेग शिथिल हो जाता है।

सोमके चूर्ण १ माशाको उबलते हुए ५-१० तोले जलमें डाल १ मिनट उबालें। फिर उतारकर ढक देवें। १० मिनट बाद छान थोड़ी मिश्री मिलाकर पिला देनेसे आवेगबल शिथिल हो जाता है।

चिलममें तमाखूके साथ धतूराके बीज डालकर धूम्रपान करानेसे कफ निकल जाता है और वेगका सत्वर दमन हो जाता है।

बालकोंको और बड़े मनुष्योंको दौरा न हो, तब सोमलप्रधान औषधि अति हितकारक है; किन्तु पित्तप्रकोप श्वासनलिकाप्रदाह या वृक्क प्रदाह न हो, तो ही सोमलका उपयोग करना चाहिये।

वायुकोषप्रसारणसह तमकश्वास जीर्ण हो जानेपर दूर नहीं होता। चिकित्सा और पथ्य, दोनोंकी सहायता हो, तो रोगको रोका जा सकता है।

श्वास रोगीका हृदय निर्बल हो, तो हृदय पौष्टिक औषधि भी साथमें देते रहना चाहिये। यदि हृदयकी निर्बलता कायम रहेगी; तो पुनःपुनःदौरा होता रहेगा; और श्वासरोग दब नहीं सकेगा, बल्कि अधिक त्रासदायक होता जायगा।

श्वास-कासके बलवान् रोगीके लिये हठ योगकी धोती क्रिया और कुंजल (गजकरणी) अत्यन्त लाभदायक है।

श्वासरोगीको भोजन करनेके १ घण्टे बाद जल पीना चाहिये। तुरन्त जल पीनेसे कफ वृद्धि होती है।

अतिसार और ज्वर आदि रोगोंमें उपद्रव रूपसे श्वास उत्पन्न हुआ हो, तो मूल रोगको दूर करनेके लिये प्रथम चिकित्सा करें। बहुधा प्रधान रोगके शमनसे श्वास दूर हो जाता है। क्वचित् इस श्वासका वेग अति तीव्र है, तो पहले श्वासवेगको कम करनेके पश्चात् प्रधानकी चिकित्सा करें।

तीव्र वेगके समय धूम्रपान, बाष्प, नस्य या तत्काल उरःस्थान और रक्ताभिसरण क्रिया पर असर पहुँचाने वाली कर्षण औषधिका उपयोग कराना चाहिये। सामान्य प्रकोपमें हो सके तबतक कर्षण-कफ सुखाने वाले प्रयोगोंको उपयोगमें नहीं लेना चाहिये।

श्वास रोग शमन हो जाने परभी कुछ काल तक शमन और बृंहण चिकित्सा करते रहना चाहिये। जिससे जीवनीय शक्ति सबल हो जाय।

श्वासरोगमें कारणभेदसे वेग शमनार्थ भिन्न-भिन्न चिकित्सा की जाती है। इनका वर्णन प्रत्येक रोगके डॉक्टरी वर्णनके अन्तमें किया है। उदा० महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास (शल्यज श्वासऔर आशुकारी फुफ्फुस शोथ) में कभी-कभी तत्काल शस्त्र चिकित्सा का आश्रय लिया जाता है। यदि श्वासरोगीको दाह रहता हो, तो उष्ण औषधि नहीं चाहिये। अन्यथा कफ सूख जाता है। जिन रोगियोंको कफ न निकलता हो, उष्णता प्रतीत होती हो, उनको प्रवालपिष्टी, सितोपलादि चूर्ण और अमृतासत्व मिलाकर घी-शहदके साथ सेवन कराने पर शान्ति मिलती है।

सब प्रकारके श्वास रोगमें बहुधा प्रातः वातश्लेष्मको दूर करनेकी चिकित्साकी जाती है। इनमें यदि वेग तीव्र न हो, तो फुफ्फुस और हृदय पर सैंधानमक मिलाये हुए तैलकी मालिश करा स्वेदन करावें। जिससे श्वासप्रणालियोंमें दृढ चिपका हुआ कफ छूट जाता है; स्रोतें सब मृदु हो जाते हैं; और प्राणवायुकी गति अनुलोम हो जाती है। तत्पश्चात् बलवान् रोगीको वमन क्रिया करानेके लिये चावलमें घी या मछली, शूकर आदिका मांसरस मिलाकर भोजन करावें, या दही भात देवें। कफ उत्क्लेशित होने पर वातके अविरोधी पीपल, सैंधव और शहद मिला हुआ मैनफलका गुनगुना क्वाथ पिलाकर वमन करावें; या आककी जड़ १॥ माशा गुनगुने जलसे देकर वमन करावें; अथवा बचका चूर्ण गुनगुने जलसे देवें।

इस तरह क्रिया करनेपर कफ दूर होकर वायु अनुलोम होती है। श्वासरोग और हिक्कारोग, दोनोंमें वमन करानेके लिये पहले पुराना (कफवातघ्न और वातको अनुलोमन करने वाली औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ) घृत पिलाना विशेष हितावह है; अथवा सुश्रुतसंहिता कथित हरड़, बिड़नमक और हींग आदि औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलाना चाहिये। यह घृत श्वास, कास, हिक्का और हृद्रोगमें लाभदायक है।

यदि श्वासके साथ नव ज्वरभी हो, तो विना स्नेहन कराये रूक्ष स्वेद देना चाहिये। आमकी अधिकता हो, तो लङ्घनभी कराना चाहिये। और वातप्रकोप हो, तो भोजनमें मांसरस या वातहर यूष आदि देना चाहिये।

यदि उदावर्त्त या आध्मान रूप उपद्रव है, तो बिजौरा, अम्लबेंत आदि खट्टे फलोंके रस, पीलू, बिड़नमक और हींग मिला हुआ भोजन देना चाहिये।

भगवान् आत्रेय इस श्वास रोगकी चिकित्साके लिये संक्षेपमें कहते हैं कि—

यत् किञ्चित् कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम्।
भेषजं पानमन्नं वा तद्धितं श्वासहिक्किने॥

श्वास और हिक्का रोगियोंके लिये जो कुछ कफवातघ्न, उष्ण और वातका अनुलोमन कराने वाले औषध, पान या भोजन हों, वे सब हितकारक हैं।

अवस्था भेदसे चिकित्सा करनेमें वातप्रधान श्वासमें वातघ्न और कफकर औषध; तथा श्लेष्मप्रधान श्वासमें कफघ्न और वातकर औषधका लगातार प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि उपयोग करना पड़े, तो इन दोनोंमें बहुधा वातनाशक और कफकरको (दूसरेकी अपेक्षासे) अच्छा माना है। कारण कफकर, बृंहण औषधि आदिसे दैवव-शात् कुछ अपाय हो जाय, तो भी बहुत थोड़ा होता है; जिसे सरलता-पूर्वक दूर करसकते हैं।

यदि शमन चिकित्सा करनेपर रोगीको कदाचित् हानि हुई तो भी अधिक नहीं होगी; किन्तु कर्षण चिकित्सा (वातवर्धक औषध या अन्नपान) से दुर्भाग्यवशतः हानि हो जाय, तो इतनी अधिक होगी, जो सम्हल नहीं सकेगी। इस हेतुसे सर्वत्र कर्षण चिकित्सा बिना विचार किये नहीं करनी चाहिये ; यदि भली भाँति विदित हो जाय कि, यह रोगी कर्षणीय है, तो यही उसकी कर्षण (कफघ्न और वातवर्धक) चिकित्सा करें। चिकित्सक को चाहिये कि वे संदिग्धावस्थामें शमनचिकित्सा या बृंहण चिकित्सा करें। वमन विरेचन आदिसे रोगी शुद्ध हो या शुद्ध न हो; दोनोंके लिये शमन और बृंहण चिकित्सामें भीति नहीं है।

बलवान् श्वास रोगीको मृदु वमन और मृदु विरेचन देकर शुद्ध करें, स्नेहबस्ति नहीं देनी चाहिए, ऐसा किसी आचार्यका मत सुश्रुतसंहिताकारने दर्शाया है।

श्वास रोगीके लिये तीव्रवायु, शीतलवायु और ओसमें सोना बैठना हानिकर माना है। स्वच्छ प्रकाशवाले सम शीतोष्ण मकान में रहना चाहिये।

श्वास रोगीको सर्वदा रात्रिके समय सात्विक, लघु और सूक्ष्म आहार ही करना चाहिये ;तथा अपचन होने पर लङ्घन करना चाहिये।

यदि तमक श्वासजनित कष्ट ग्रैवेय ग्रन्थि (Thymus gland) की वृद्धिके कारण होता हो, तो उस मूलकारणको हटानेका उपचार करना चाहिये।

यदि रक्तमें अम्लरंगेच्छु (Eosino phil) अधिक होगये हों तो सोमल या मैनसिल प्रधान औषधिका सेवन करना चाहिये।

यदि श्वासनलिकाप्रदाह मुख्य हेतु है, तो कासरोगकथित उपचार मुख्य रूपसे करना चाहिये। यदि हृदय विकृतिके साथ श्वासका दौरा होता है, तो हम औषधि-सुवर्णप्रधान श्वास-कास चिन्तामणि, श्वासहारी अथवा अन्य दौरा शमन होनेके पश्चात् देते रहना चाहिये।

सन्निपात आदि अनेक रोग प्राणघातक हैं; किन्तु इन सबमें श्वास और हिक्का को अति प्रबल माना है, ऐसा निम्न श्लोकसे कहा है:—

कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा ।
यथा श्वासश्च हिक्का च प्राणानाशु निकृन्ततः ॥

इस तरह भगवान् धन्वन्तरि भी इस श्वास रोगको निम्न श्लोकमें दुर्निवार कहते हैं ।

यथाग्निरिद्धः खलु काष्ठसंघैर्वज्रं यथा वा सुरराजमुक्तम् ।
रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराःश्वासश्च कासश्च विलम्बिका च ॥

जैसे लकड़ीके समूहमें प्रविष्ट हुआ अग्नि और इन्द्रका छोड़ा हुआ वज्र, दोनों दुर्निवार होते हैं; वैसे ही श्वास, कास और विलम्बिका रोगभी निश्चयपूर्वक कठिनतासे निवारण होने योग्य हैं ।

तीव्रवेगरोधक चिकित्सा

१. तीव्र दौरेके समय आगेकी ओर झुक कर बैठनेसे पीड़ा कुछ कम होती है । फिरभी रोगीको जिस तरह सुभीता मालूम हो, उस तरह बैठावें । पश्चात् रोगीके कण्ठ और छाती पर सैंधानमक मिला हुआ गोघृत मलें । फिर एक बर्त्तनमें जलको गरम करें, ऊपर चालनी ढक दें; उसमेंसे जो बाष्प निकले; उससे फलालेनके टुकड़े को गरम कर रोगीकी छातीपर सेक करें । फलालेनके दो टुकड़े रखनेसे दूसरा टुकड़ा गरम होता रहेगा । एक टुकड़ा शीतल होनेपर तुरन्त दूसरेको उठालें, और पहले टुकड़ेको गरम होनेके लिये बाष्प पर धर देवें । इस तरह १०-२० मिनट तक सेक करनेसे रोगीको शान्ति मालूम पड़ती है ।

२. रोगी सह सके उतना गरम जल किसी पात्रमें भर कर उसमें रोगीके दोनों पैर रखानेसे दौराका वेग घटने लगता ।

३. यदि अपचनके हेतुसे दौरा हुआ हो, तो तुरन्त वमन करा देना चाहिये । रात्रिके समय और साधन न मिले तो थोड़ी पीसी हुई राई मिलाकर गुनगुना जल पिलानेसे वमन होजाती है ।

४. यदि मलावरोध हो, तो मृदु विरेचन देना चाहिए ।

५. सामान्य मलावरोध और प्रतिश्याय हो, तो बिना बीजकी मुनक्का २ तोले लेकर आधपाव जल और आधपाव दूधमें मिलाकर औटावें । दूध शेष रहने पर मुनक्काको मलकर दूध छान लेवें । फिर १ माशा कालीमिर्चका चूर्ण और १ तोला मिश्री मिलाकर गुनगुना दूध पिला देवें । यदि चाय या कॉफी मिलाकर पिलाया जाय, तो सत्वर लाभ होता है ।

६. कण्ठमें कफ अधिक हो, तो लाल फिटकरीका फूला ४ रत्ती और ३ माशे मिश्री मिलाकर खिला देवें । जल न पिलावें ।

७. कलमी शोराको १६ गुने जलमें डाल, उसमें ब्लाटिंग पेपरको डुबोकर

सुखा देवें। इस तरह तैयार किये हुए कागज़को बीड़ी की तरह लपेट कर धूम्रपान करानेसे वेग दब जाता है। ब्लाटिंग पेपरके स्थान पर कपड़ेको शोरेके जलमें भिगोकर सुखा लिया जाय, तो भी धूम्रपानके लिये चल सकता है।

८. वेग उठनेके पहले यदि धतूरेके सूखे पत्तेके चूर्णका धूम्रपान कराया जाय, तो वेग नहीं उठ सकता।

९- छोटी कटेली २ तोले और सोंठ ६ माशे मिला क्वाथ कर ६ माशे मिश्री और १ माशे पीपलका चूर्ण मिलाकर पिला देनेसे कफ सरलतासे निकलकर दौरा शान्त हो जाता है।

१०. अडूसेके पत्तोंका स्वरस पुटपाक कृतिसे निकाला हुआ २ तोले; शहद ६ माशे और सैंधानमक ४ रत्ती (या बिड़नमक) मिलाकर पिला देनेसे तुरन्त कफ निकल कर वेग निवृत्त हो जाता है।

११ सोंठ और मिश्री ४-४ माशे मिलाकर खिलानेसे अपचन और कफ प्रकोप दूर होकर वेग शान्त हो जाता है।

१२. सोंठ और भारङ्गमूलका चूर्ण और शहद मिलाकर चटानेसे श्वास निवृत्त हो जाता है।

१३. सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पीपलामूल, चारों मिलकर २ माशे, बहेड़ेका चूर्ण और ६ माशे शहद मिलाकर चटानेसे श्वासका वेग दब जाता है।

१४. अपामार्गक्षार या यवक्षार २ माशे लेकर ६ माशे घृतमें मिलाकर चटानेसे कफ सरलतासे बाहर निकल कर श्वास रोग दूर हो जाता है।

१५. धतूराके फलकी राख १ माशा ६ माशे शहदमें मिलाकर चटानेसे वेग बलका ह्रास होजाता है।

१६. आकके पत्तोंका रस १ से २ तोला पिला देनेसे वमन होकर कफ निकल जाता है और रोग शमन हो जाता है।

१७. आकके फूलकी कली और कालीमिर्च मिला चूर्ण कर १-१ माशा शहदके साथ देनेसे दौरा बैठ जाता है।

१८. मयूरपुच्छकी भस्म ६ रत्ती और पीपलका चूर्ण ६ रत्ती मिला ६ माशे शहदके साथ चटानेसे प्रबल श्वास वेग और प्रबल हिक्काकी निवृत्ति होजाती है।

१९. कफ यदि सूख गया हो, तो १ तोला मुलहठीको २० तोले जलमें उबाल छान, घी और मिश्री तथा १ माशा सैंधानमक मिलाकर पिलानेसे कफ गल जाता है; और सरलतासे बाहर आ जाता है।

२०. छोटी कटेलीके फलका चूर्ण १ माशा और ४ रत्ती भूनी हींगको ६ माशे शहद मिलाकर चटानेसे कफ सत्वर निकल जाता है और प्रवृद्ध श्वास वेगभी शमन होजाता है।

२१. सोमका चूर्ण १ माशा लेकर ५-१० तोले जलमें उबालें। १-२ उफाण आनेपर उतार कर ढक देवें १५-२० मिनिट बाद छानकर शहद मिलाकर पिला देनेसे वेग तत्काल दब जाता है।

२२. शृंग्यादि चूर्ण—काकड़ासिंगी, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, पुष्करमूल, कचूर, और कालीमिर्च, समभाग मिलाकर चूर्ण करें। इस चूर्णमेंसे ४ माशेको समभाग मिश्री मिलाकर सेवन करावें; फिर ऊपर गिलोय, अडूसा और बृहत्पञ्चमूल (२ तोले) का क्वाथ पिलानेसे तीव्र वेगका शमन हो जाता है।

२३. अति घबराहट होनेपर आध सेर जलमें १ तोला शक्कर मिलाकर गरम करें। एक छटाँक रहने पर उतार लें। गुनगुना रहने पर पिला देनेसे आध घण्टेमें कफ निकल जाता है; व्याकुलता और श्वासकृच्छ्रता दूर होती है; तथा रोगीको निद्रा आ जाती है। यह जल एक ही समय पिलाना चाहिये।

२४. रसतन्त्रसार द्वितीय खण्डमें आये हुए प्रयोग—पीत श्वासकुठार, तालीशसोमादि चूर्ण और रसेश्वर अर्क दौरेके समय व्यवहृत होते हैं।

२५. मनःशिलादि धूम्रपान—मनःशिल, देवदारु, जटामांसी, हल्दी, तेजपात, लाख और लाल एरण्डकी जड़, इन सबको पीस कागज़ या पत्ते पर लगा, ऊपर घी चुपड़ बीड़ीकी तरह बनाकर धुँआ पीनेसे कफसे रुका हुआमार्ग खुल जाता है और श्वासका वेग मन्द होजाता है; अथवा जौके आटेको घीमें मिलाकर धूम्रपान करानेसेभी लाभ होजाता है।

२६. धतूरेके पत्ते, फल और शाखाकी छालको कूट सुखा तमाखूकी तरह चिलममें डाल या बीड़ी बनाकर पीनेसे सत्वर कफ निकलकर श्वासवेग शमन होजाता है। कफाधिक श्वास रोगमें यह प्रयोग अति उपकारक है। डॉक्टरीमें धतूरेके पान (Datura Stramonium) और शोरा (पोटास नाइट्रास) मिला सिगरेट बनाकर पिलाते हैं।

२७. देवदारु, खरैंटी और जटामांसीको समभाग मिला बारीक कपड़छान चूर्ण करें। फिर जलके साथ खरलकर सिगरेटके आकारकी बत्तियाँ बना लेवें। परन्तु बीचमें थोड़ा छेद रक्खें। इस बत्तीका धूम्रपान करानेसे तत्काल श्वासप्रकोप शमन हो जाता है।

२८. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रहमें आये हुए प्रयोग मनःशिलादिधूम्रपान, समीर रस, मल्लसिंदूर नं० २, समीरपन्नग रस (अदरखके रस और शहदके साथ), दशमूल क्वाथ (जवाखार और सैंधानमक मिलाकर), दशमूलाद्य घृत दूसरी विधि, चिन्तामणिचूर्ण, श्वासकुठार रस (अदरखका रस और घृतके साथ), ये सब लाभदायक हैं। तीव्रवेगके समय तत्काल योजना करनी चाहिये।

समीरपन्नग, मल्लसिंदूर या श्वासकुठार—का सेवन करानेसे सामान्य

वेग शमन हो जाता है। इनमें श्वासकुठार सौम्य औषधि है। यदि नाज़ुक प्रकृतिवालों को अधिक सौम्य औषधि देनी हो, तो चिन्तामणिचूर्ण, दशमूल क्वाथ या दशमूलाद्यघृत देना चाहिये। दशमूलाद्य घृतका सेवन भोजनके साथ दीर्घकाल तक किया जाय, तो फिर श्वासका दौरा नहीं होता।

तीव्र प्रकोपके शमनके पश्चात् चिकित्सा

१. रास्नादि क्वाथ—रास्ना, दशमूल, सोंठ, कचूर, पीपल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, भूमिआंवला, भारंगी, गिलोय नागरमोथा और चित्रकमूल की छाल, इन २१ औषधियोंको समभाग मिला ६ तोलेका क्वाथ कर तीन हिस्सा कर दिनमें ३ समय पिलाते रहनेसे श्वास, हृदयग्रह, पार्श्वशूल, हिक्का और कास रोगका शमन हो जाता है।

२. देवदार्वादि क्वाथ—देवदारू, बच छोटी कटेली, सोंठ, कायफल और पुष्कर मूल, इन ६ औषधियों को समभाग मिला २-२ तोलेका क्वाथ कर दिनमें २ समय पिलाते रहनेसे श्वास और कास दूर होते हैं।

३. एक बालिस्त लम्बा थूहरका ताजा डंडा लाकर उसमें एक ओरसे खड्डा कर एक छटाँक लाल फिटकरी भर मुँह बन्द कर कपड़मिट्टी करें। फिर गजपुटमें जला फिटकरीका फूला मिली भस्म निकाल लें। इसमेंसे २-२ रत्ती पानमें लेते रहनेसे २१ दिन में नया प्रतमक श्वास दूर होता है।

४. अमृतादि क्वाथ—गिलोय सोंठ, भारंगी, छोटी कटेली और तुलसीके पान, इन ५ औषधियों को समभाग मिलाकर क्वाथ करें। फिर छान, १ माशा छोटी पीपलकाचूर्ण मिलाकर दिनमें २ समय पिलाते रहनेसे श्वास और कास नष्ट होते हैं। यह क्वाथ सामान्यतः तीव्र वेग को भी तुरन्त दबा देता है।

५. हरिद्रादि लेह—हल्दी, काली मिर्च, मुनक्का, रास्ना, पीपल और कचूर को मिलाकर चूर्ण करें। फिर १ तोला चूर्ण, १ तोला पुराना गुड़ और १ तोला तेल मिलाकर चटानेसे प्राणहर श्वास भी दूर हो जाता है।

६. सिंह्यादि क्वाथ—बड़ी कटेली, हल्दी, अडूसाके पत्ते, गिलोय, सोंठ, छोटी इलायचीके दाने, भारंगी, नागरमोथा पीपल और कालीमिर्च इन १८ औषधियों का क्वाथ कर दिनमें २ समय पिलाते रहनेसे संगृहीत कफ और श्वास रोग नष्ट हो जाते हैं।

७. पुराना गुड़ २ से ४ तोले और सरसोंका ताजा तेल लगभग २ तोले मिलाकर रोज सुबह २१ दिन तक खानेसे फुफ्फुसोंमें रहा हुआ जीर्ण कफ दूर होकर श्वास रोग निर्मूल हो जाता है।

८. दशमूलका क्वाथ कर १ माशा पुष्करमूलका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे कास, पार्श्वशूल, हृदय शूल और श्वास रोग दूर हो जाते हैं।

९. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखे हुऐ प्रयोग—समीरपन्नगरस, अभ्रक भस्म और लोह भस्म मिश्रण, कफ कुठार रस, गोमूत्रक्षार चूर्ण, श्वासरोगान्तक-वटी प्रथमविधि, वासादिक्काथ, शृंग्यादि चूर्ण और कनकासव, ये सब हितावह औषधियाँ हैं।

तमाखूके व्यसनी और जिनकी देहमें कफसंग्रह अधिक हो गया हो, मलावरोध और अग्निमान्द्य हो, उनके लिये गोमूत्रक्षार चूर्ण अति हितकर है। समीरपन्नग, श्वासरोगान्तक वटी और कफकुठार उग्र है। ये तीनों औषधियाँ ज्वर होने पर भी दी जाती हैं। कफकुठार रसमें कफको बाहर निकालनेकी शक्ति अधिक है। समीरपन्नग और श्वासरोगान्तक वटी जीर्ण कफप्रधान श्वासरोग और नये रोगमें लाभ पहुँचाती है। ये दोनों शनैः-शनैः फुफ्फुसोंको सबल बनाते हैं। यदि तमाखूके हेतुसे रोग हुआ हो, तो श्वासरोगान्तक वटी नं० २ हितकारक है।

जब छातीमें कफके हेतुसे पीड़ा होती हो, तो वासादि क्काथ सरलतापूर्वक कफको बाहर निकालनेमें हितकारक है। कनकासव वेदनाके समय शान्ति प्रदान करता है और कफको बाहर निकालनेमें सहायता करता है। शृंग्यादिचूर्ण अति सौम्य औषधि है। बालक और नाज़ुक प्रकृति वालोंके लिये हितकर है।

मल्लभस्म, मल्लसिंदूर नं० १, मल्लादि वटी, ये सब उग्र औषधियाँ हैं। सम्हालपूर्वक उपयोग करना चाहिए। अपक्व कफको सुखाना और पक्कको बाहर निकालना, दोनों कार्य सिद्ध होते हैं। अनुपान बहेड़ेका चूर्ण और शहद।

श्वासकुठार रस, लवंगादि तालसिंदूर और शृंग भस्म में कफकी उत्पत्ति कम कराना, ज्वर शमन करना और जन्तुओंको नष्ट कर फुफ्फुसोंको शुद्ध करना, ये गुण अधिक हैं। श्वासकुठार रस—आमाशय, फुफ्फुस और फुफ्फुसधरा कलाको सबल बनाता है। लवंगादि तालसिंदूर रक्त, हृदय और कण्ठके दोषको दूर करनेके साथ कफोत्पत्तिको भी रोकता है।

१०. डामरेश्वराभ्र—मयूरपुच्छके चन्दलोंकी भस्म और अभ्रकभस्म ४-४ तोले लेवें। फिर ब्रह्मदण्डी, धतूराके पान, गिलोय, अडूसा, कसौंदी, बकायनकी छाल, चव्य, पीपलामूल, चित्रकमूलकी छाल, इन औषधियोंके ४-४ तोले (या १६-१६ तोले) स्वरस या क्काथके साथ क्रमशः खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। मात्रा १ से २ गोली दिनमें २ समय शहद या अनुकूल अनुपानके साथ देनेसे गम्भीर हिक्का, श्वास, कास, उदर रोग, जीर्ण, प्रमेह रोग, पाण्डु, यकृद्विकार, प्लीहावृद्धि, गलरोग, शोथ, मोह, नेत्ररोग, मुखरोग, राजयक्ष्मा, पीनस, कृत्रिम विषका दुष्ट असर, निर्बलता, गलगण्ड, गण्डमाला, वमन, भ्रम, दाह, विषम ज्वर और मूत्रकृच्छ्र आदि सब रोग दूर होते हैं।

यह रसायन वातज, पित्तज, कफज और द्वन्द्वज आदि सब रोगोंका नाश करता है। अनुपान रूपसे वातकफाधिकतामें दशमूल क्वाथ, कफाधिकतामें वासादि क्वाथ और वातात्मकमें रास्नादि क्वाथ या देवदार्वादि क्वाथ पिलाते रहें अथवा इतर अनुकूल अनुपान देते रहनेसे श्वास रोग सत्वर दब जाता है।

११. फुफ्फुसमें पीप हो गया हो और कफमें दुर्गन्धि आती हो, तो समीरपन्नग, शृंगभस्म और सोहागेके फूलेको वासास्वरसके साथ अथवा सुवर्ण भस्म, शृङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, इन तीनोंको मिलाकर वासावलेहके साथ देना चाहिये।

१२. रसतन्त्रसार द्वितीय खण्डमें आयेहुए प्रयोग—श्वासकासचिन्तामणि, श्वासहारी रस, श्वासदमन गुटिका, श्वासारिपूला, सोमशृंग्यादि चूर्ण, श्वासात्मक चूर्ण, मरिचादि कषाय, वासकासव और श्वासहरयोग, ये सब प्रकृतिभेद और अवस्थाभेदसे प्रयोजित होते हैं।

१३. शुद्ध कुचिला, छोटीपीपल और कालीमिर्च, तीनोंको समभाग मिला नागरबेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनावें। गोली प्रातःकाल निगलवाकर २ तोले गोघृत गुनगुना करके पिलावें। रात्रिको १ से २ गोली दूधके साथ सेवन करावें। इस औषधिके सेवनसे नूतन और जीर्ण तमक श्वास और मन्द ज्वर दूर होते हैं। पचनशक्ति सबल होती है तथा शरीरमें स्फूर्ति आ जाती है। ज्वर रहता हो, तो घी नहीं पिलाना चाहिये।

१४. प्रतमक श्वास—पर अभ्रकभस्म, शृङ्गभस्म, प्रवालपिष्टी और सतगिलोयका मिश्रणकर शहदके साथ देवें, ऊपर बकरीका धारोष्ण दूध पिलावें। कफ अधिक हो जाय, तब वासास्वरस भी देवें। अथवा सुवर्णभस्म, लक्ष्मीविलास रस सुवर्ण प्रधान या अभ्रकभस्म और लोह भस्म (शहद-पीपल और बहेड़ेके चूर्णके साथ), इनमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन करावें तथा शिलाजीत आध घन्टे पहले दिनमें २ समय देते रहें। तथा मौक्तिक पिष्टी बृहत्सितोपलादि चूर्ण और शहदके साथ दिनमें दो समय देते रहें।

अभ्रक, शृङ्ग और प्रवाल—तीनों मिलाकर लेनेसे वातवहानाड़ियोंकी शिथिलता, कोथ, कीटाणु या पूयोत्पत्ति और दाह, सब एक साथ शमन होते हैं। राजयक्ष्माका भय हो या शुष्क कास और अधिक निर्बलता हो, उदासीनता, प्रतिश्याय सह जीर्ण रोग हो, तब लक्ष्मीविलास सुवर्णप्रधान लाभदायक है। पाण्डुसह श्वास हो तब अभ्रक और लोह मिलाकर दिया जाता है। अंतरमें अधिक दाह, मस्तिष्कमें निर्बलता, चक्कर आना आदि लक्षण हों, तो मौक्तिकपिष्टी दी जाती है। निर्बलता अधिक हो और हृदयकी कमज़ोरी हो, तो सुवर्ण भस्म द्राक्षारिष्टके साथ दी जाती है।

१५. उपदंश रोगीके श्वासपर—सारिवादि सार करके साथ अभ्रक भस्म देवें अथवा मल्लसिंदूर नं० १, अष्टमूर्ति रसायन या मल्लसिंदूर वटी,

इनमेंसे किसी एकको प्रयोगमें लावें। अभ्रकभस्म सौम्य है। शेष सबमें सोमल आता है; अतः वे उग्र हैं। फिरभी अष्टमूर्त्ति रसायन अधिक उग्र नहीं है।

१६ क्षुद्रश्वास पर—धातु क्षीणता वालोंको वंगभस्म और अभ्रक भस्म मिश्रण, पूर्ण चन्द्रोदयरस, लक्ष्मीविलासरस, वसन्तकुसुमाकर रस (द्राक्षारिष्टके साथ) या बृहद् वंगेश्वर रस, इनमेंसे एक या अन्य धातुपौष्टिक औषधियाँ जो अनुकूल हों, उनका सेवन करना चाहिये।

१७. तमाखूके व्यसनीके श्वासपर—श्वासान्तक वटी, गोमूत्र क्षार चूर्ण, अभ्रकभस्म और मौक्तिकपिष्टी या दशामूलाद्य घृतमेंसे एकको प्रयोगमें लाना चाहिये।

१८. मेदवृद्धिसे क्षुद्रश्वास होने पर—शिलासिंदूरवटी, लोह भस्म और शिलाजीत, बृहद्‌योगराज गूगल या चन्द्रप्रभावटी, (शहदके साथ), इनमेंसे अनुकूल प्रयोगका सेवन करानेसे शक्तिवृद्धि होकर श्वास दूर हो जाता है।

१६. पार्श्वशूलपर—महा वातराज रस, महाविध्वंसन रस और शूलवज्रिणी वटी, इनमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन करावें। महावातराजमें अफीमकी मात्रा अत्यधिक होनेसे, यह कब्ज़ वालोंको नहीं देना चाहिये।

२०. मलशुद्धिके लिये—आरोग्यवर्द्धिनी, गोमूत्रक्षार चूर्ण, पंचसम चूर्ण, पंचसकार चूर्ण, इनमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन करानेसे कोष्टशुद्धि होकर श्वास-प्रकोपका निवारण हो जाता है।

२१. श्वासकृच्छ्रान्तक वटी—(दूसरी विधि) २–२ गोली जलके साथ देने से उदरशुद्धि होती है, हाँफ दूर होती है; पचनक्रिया सबल बनती है और रोगका निवारण होता है। गोली निगलनेके ५ मिनटके पश्चात् २ से ४ तोले गुनगुना घी पीनेसे कफका भी जल्दी निवारण होता है। श्वासकृच्छ्रान्तकवटी बनानेकी विधि कास-रोगकी चिकित्सा के भीतर लिखी है।

२२. तीव्र प्रकोप शमन हो जानेपर पीत श्वासकुठार, हिंगुलवटी और शृंगभस्म, तीनोंको मिलाकर शहद और घी या केवल शहदके साथ दिनमें ३ समय देते रहनेसे श्वास रोगी को अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

२३. विषको मूत्रद्वारा निकालने के लिये—शिलाजीत दिनमें १ या २ बार इतर औषधिके सेवनके साथ देते रहें।

२४. भार्ङ्गी गुड़—भारंगीका जौ कूट चूर्ण ५ सेर, दशमूल मिलित ५ सेर तथा बड़ी अच्छी जातिकी हरड़ साबुत ५ सेर लें। सबको मिला ४ गुने (६० सेर) जलमें डाल चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर उतारकर छान लेवें और हरड़ोंको भी निकाल लेवें; पश्चात् क्वाथमें ५ सेर गुड़ और हरड़ डाल मन्द-मन्द अग्नि देकर अवलेह जैसी चासनी करें। सिद्ध होने पर नीचे उतार लेवें। गुनगुना रहनेपर सोंठ, मिर्च, पीपल,

दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायचीके दाने प्रत्येक ४-४ तोले तथा खार २ तोले मिलावें तथा शीतल होनेपर २४ तोले शहद मिला लेवें।

इसमें से १ हरड़ खाकर ऊपर २ तोले अवलेह सेवन करें। इस औषधिके सेवनसे दारुण श्वास, नये और पुराने सब प्रकारके श्वास और सब प्रकारकी कास, ये सब दूर होते हैं। स्वर, वर्ण और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। शोष, हिक्का, कफवृद्धि, विष, ज्वर, पीनस इत्यादि विकार शमन हो जाते हैं। अपचन और कब्ज़से पीड़ित रोगियोंके लिये यह अति हितकर औषध हैं।

डॉक्टरी चिकित्सा

१. $\frac{1}{1000}$ एड्रिनलीन सॉल्यूशन—Adrenalin Solution के ५ बूंदका इन्जेक्शन देनेसे तत्काल हार्दिक श्वास का वेग शान्त हो जाता है, किन्तु बार-बार प्रयोग में लाते रहनेसे शनै-शनैः प्रभाव न्यून होता जाता है।

अथवा लाइकर एड्रिनलीन, हाइड्रनलीन, हाइड्रो क्लोराइड १० बूंद थोड़े जल में मिलाकर पिला देनेसे वेग शांत हो जाता है।

२ मॉर्फिन हाइपोडर्मिक (Morphine Hypodermic) अकेलेका या एट्रोपिन (Atropine) मिलाकर इन्जेक्शन देनेसे दीर्घस्थायी दौरा शमन हो जाता है। यह अन्तःक्षेपन, आक्षेप, अकुंचन और शोथके निवारणार्थ दिया है।

मॉर्फिन अफीमका सत्व है, अफीमसे आठ गुना उग्र है। अधिक तेज़ दौरा हो, तभी अकेलेका इन्जेक्शन दिया जाता है। मॉर्फियाकी उग्रता या दोषसे बचनेके लिये एट्रोपिन मिलाया जाता है। एवं एट्रोपिनसे श्वासनलिका संकोच दूर होनेमें सहायता भी मिल जाती है। मॉर्फिया खिलानेसे भी दौरा दब जाता है।

३. एफिड्रीन हाइड्रोक्लोराइड (Ephedrine Hydrochloride) का इन्जेक्शन देने या आध-आध ग्रेन खिलानेसे वेग शनैः-शनैः शमन हो जाता है। यह श्वसन संस्थानगत विकृति (Bronchial Asthma) के लिये हितावह है।

४. श्वासमिश्रण—

पोटास आयोडाइड	Pot. Iodid.	४ ग्रेन
टिंचर स्ट्रामोनी	Tr. Stramonii	५ बूंद
टिंचर लोबेलिया इथ	Tr. Lobelia Aeth.	१५ बूंद
लाइकर आर्सेनिक	Liq. Arsenic	३ बूंद
स्पि० एमोनिया, एरो.	Spt. Ammon. Arom.	२० बूंद
एक्वा क्लोरोफार्म	Aqua Chloroform	१ औंस

यह मिश्रण ४-४ घण्टे पर देते रहें।

५. इथिल आयोडिडम (Aethyl Iodidum) के ५-५ ग्रेनके केपसुलको कपड़े में लपेट नाकके पास रख कर तोड़े। जिससे श्वास लेनेके साथ औषध फुफ्फुसों

में प्रवेशकर जाती है और तुरन्त श्वासप्रकोपको दबा देती है। श्वासकृच्छ्रता, श्वासनलिका प्रदाह, स्वरयन्त्रप्रदाहको दूर करती है। २-३ केपसुलका उपयोग करना पड़ता है।

पथ्यापथ्य

पथ्य—विरेचन, स्वेदन, कफनाशार्थ धूम्रपान, वमन, स्नेहन, स्वेदन, भोजन के पहले दिनमें शयन, पुराने सांठी और लाल शालि चावल, कुलथी, गेहूँ, जौ, खरगोश, मोर, तीतर, लावा, मुर्गा, तोता और मरुभूमिके मृग और पक्षी आदिका मांस, समुद्र तटपर रहना, पुराना घी पीपल या मूँगका, यूष, यवागू, सुरा (शराब), हींग, शहद, मुनक्का, अंगूर किशमिश, आँवला, बेल, फुफ्फुस और हृदयपर तैलकी मालिश, गरम करके शीतल किया हुआ जल, गेहूँका दलिया, गेहूँके पतले फुलके, मूँगकी दाल, बकरीका दूध, गोदुग्ध, कटेली, करंज, हरड़ जम्मीरी नींबू, जीवन्ती, कच्ची मूली, पोई, परवल, बैंगन, तोरई, बथुआ, चौलाई, पालक, लूणी, लहसुन, कन्दुरी (बिम्बी), बिजौरा, खजूर, केला सन्तरा, अनार, नयी बादाम, कच्चा बेल, आँवले, छोटी इलायची गोमूत्र, पुष्करमूल, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल वे सब पथ्य हैं।

वर्षा होनेपर वातावरणमें जलके परमाणु मिश्रित हो जाते हैं जो श्वास मार्गसे फुफ्फुसमें जाकर हानि पहुँचाते है। अतः श्वासरोगीको चाहिए कि वर्षाके जलयुक्त वातावरणमें बाहर बैठने, सोने या फिरनेका त्याग करें। रात्रिको ओसमें सोनेसे फुफ्फुसों में कफकी वृद्धि हो जाती है।

कुलथीका यूष—छोटी कटेली, बेलगिरी, काकड़ासिंगी, जवासा, गोखरू, गिलोय और चित्रकमूल, सबको मिलाकर ४ तोले लेकर २५६ तोले जलमें अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर छान इसमें ८ तोले कुलथी मिलाकर यूषको सिद्ध करें। पश्चात् पीपल डाल घी से छोंक दें और आवश्यक सोंठ और सैंधा नमक (या बिड़नमक) मिलाकर पिलावें। यह यूष श्वास, कास, पीनस, अर्श, गुल्म, अश्मरी, तूनी और प्रतूनी आदि वातप्रकोप सबको दूर करता है।

कुलथी—उष्णवीर्य, विपाकमें खट्टी और शुक्र को हानि पहुँचाती है। ज्वर हो, तो यह यूष नहीं दिया जाता है, परन्तु कुलथीको श्वास रोगमें हितावह माना है। आचार्यों ने लिखा है कि—

कुलत्था ग्राहिणः कास-हिक्का-श्वासार्शसां हिताः।

कुलथी ग्राही है। कास, हिक्का, श्वास और अर्श रोगमें हितकर है।

मूंगका यूष—रास्ना, खरैंटी, लघुपञ्चमूल, गिलोय और चित्रकमूल, इन ९ वस्तुओंके क्वाथमें ऊपर लिखी विधि अनुसार मूंग को सिद्ध करें। फिर पिप्पली घृत-भर्जित करके पिलावें। यह यूष वातप्रकोप और पित्तप्रकोप को शमन करता है।

यवागू प्रथम प्रकार—हींग, कालानमक, जीरा, बिड़नमक, पुष्करमूल चित्रकमूल और काकड़ासिंगी, इन ७ औषधियों को ४ तोले लेकर २५६ तोले जलमें

मिला अर्धावशेष या चतुर्थांश क्वाथकर छान लें, फिर उसमें लाल चावल छठवां हिस्सा मिला कांजी बनाकर श्वास और हिक्का रोगी को सेवन करावें।

यूष यवागू आदिकी विधि और गुणका विशेष वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम-खण्डमें ज्वरप्रकरणके पथ्यापथ्य के साथ किया है।

यवागू द्वितीय प्रकार—दशमूल, कचूर, रास्ना, पीपलामूल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, भूमि आंवले, भारंगी, गिलोय, सोंठ और नेत्रवाला, इन २० औषधियों के अर्धावशेष क्वाथमें यवागू बनाकर देवें या क्वाथ ही पिलावें; तो कास, हृदय पार्श्वशूल, हिक्का, श्वास इत्यादि प्रकोप शमन होते हैं।

यवागू तृतीय प्रकार—पुष्करमूल, कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, बिजौरा और अम्लबेंत, इन ७ औषधियोंका क्वाथकर उसमें लाल चावलोंकी यवागू बनाकर घी, बिड़नमक और हींग मिलाकर सेवन करावें।

हिक्का और श्वासके तीव्र प्रकोपमें तृषा लगनेपर दशमूल या देवदारु मिलाकर उबाला हुआ जल या शराब पिलाना चाहिये। भूलकर शीतल ताज़ा जल नहीं पिलाना चाहिये।

सूजीको घृतमें भून लपसी बना मुलहठी, वंशलोचन, सोंठ और पीपल मिला पित्तानुबन्धसह श्वासमें भोजन रूपसे देवें; किन्तु यदि श्वासमें वातका प्राधान्य हो, तो सेह और शशेका मांस, शल्लक (साहिब) का रक्त, पीपल और घी साथ देना चाहिये। यदि श्वास वातपित्तानुबन्ध युक्त है, तो शाली चावलोंका भात, त्रिकटु, घी और दूध मिलाकर देना चाहिये। इस दूधको सुवर्चला (हुलहुल) का रस मिलाकर सिद्धकर लेना चाहिये। एवं श्वासमें कफपित्तानुबन्ध है तो शाली चावलोंका भात, पीपल और शिरीषके फूलोंका रस या सात्विणका रस मिलाकर देवें।

वक्षःस्थल, दोनों पैरों और दोनों हाथोंकी मध्यमा अंगुलियों के मूल और कण्ठ कूपमें तपायी हुई लोहशलाकासे दाग देनेसे श्वास रोगमें लाभ पहुँच जाता है।

रात्रिको हो सके तब-तब चावल न खायँ। कारण, चावल कब्ज़ा करता है। रात्रिको पथ्य भोजन, हलका और थोड़ा करना चाहिये।

श्वास, कास, हिक्का रोग और हृद्रोगमें हरड़ बिड़नमक और हींगसे सिद्ध किया हुआ पुराना घी हितावह है अथवा काला नमक हरड़ और बेलगिरीसे सिद्ध किया हुआ नया घृत उपयोगमें लेना चाहिये या पाँचों नमक मिले घृतका सेवन करना, यह श्वास और कास रोगीके लिये अति हितकारक है।

३५ वायुकोष स्फीति

एम्फिसिमा—Emphysema.

रोग परिचय—जब फुफ्फुसोंके वायुकोष चौड़े होकर फूल जाते हैं और इनकी दीवारें पतली होकर जर्जरित हो जाती हैं, तब वायुकोष स्फीति कहलाती है।

वायुकोषसमूह (Lobules) के भीतर रहे हुए संयोजक तन्तुओं (Areolar Tissue) में या फुफ्फुसावरणके निम्न भाग (Subpleural) के तन्तुओंमें वायु संचित होनेपर वायुकोष स्फीत हो जाते हैं ।

श्वासनलिकासह फुफ्फुसोंके वायुकोष
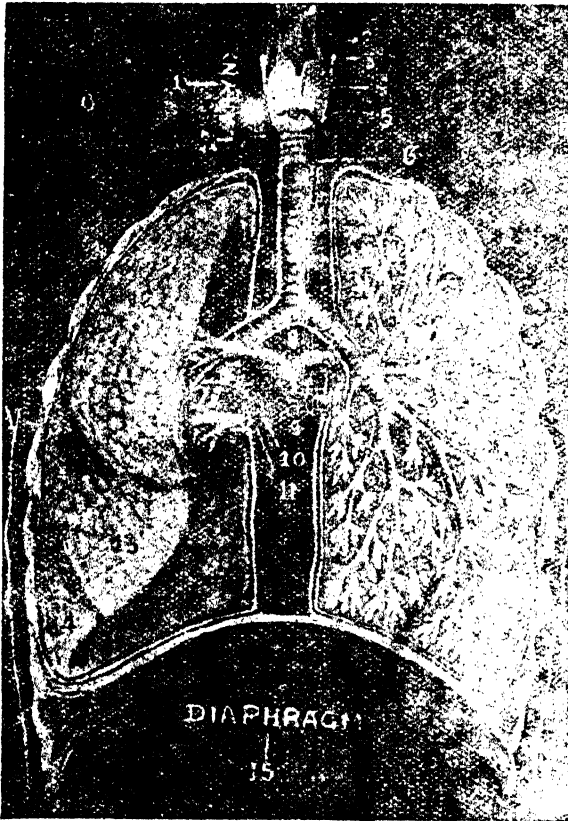
१—स्वरयन्त्र Larynx.

२—अधिजिह्विका Epiglottis.

३—अवटुकका ऊर्ध्व शृङ्ग Superior Cornu of Thyreoid Cartilage.

४—अवटुक तरुणास्थि Thyreoid Cartilage.

५—कृकाटक तरुणास्थि Cricoid Cartilage.

६—बृहच्छ्वास नलिका Trachea.

७—वायुकोष समूह Lobules.

८—दो श्वास नलिकाओंका संयोगस्थान.

९—महाधमनी Aorta.

१०—फुफ्फुसीया धमनी Pulmonary artary.

११—फुफ्फुसीया शिरा Pulmonary Vein.

१२—ऊर्ध्व फुफ्फुसपिण्ड Upper Lobe.

१३—मध्य फुफ्फुस पिण्ड Middle Lobe.

१४—अधः फुफ्फुस पिण्ड Lower Lobe.

१५—महाप्राचीरा पेशी Diaphragm.

रोगोत्पादक कारण समभावसे अवस्थित होनेपर कितनेक निर्बल व्यक्ति इतर रोगोंकी अपेक्षा इस रोगके अधिक वशवर्त्ती होते हैं। यह रोग वंशावली क्रमसे आगत हो, चाहे स्वसम्पादित हो, जब फुफ्फसीय विधानके पोषणका अभाव या क्षीणता होती है, तभी इसकी सम्प्राप्ति होती है।

फुफ्फुसोंके वायुकोष (Air Cells) अर्ध गोलाकार होते हैं और सबपर स्थितिस्थापक स्नायुसूत्र लपटे हुए हैं। इनके भीतर अन्तर्गोल बाजूमें पतली कला लगी है। इनमेंसे स्नायुसूत्रके आधारसे वायुकोष बार-बार फैलते हैं और सिकुड़ते रहते हैं। जब इन स्नायु सूत्रोंको संकोचन शक्ति क्षीण हो जाती है, तब सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ नष्ट हो जाती हैं और उसके अनुरूप प्राणवायु शोषणक्रियाका क्षेत्र संकुचित हो जाता है। फिर छातीका प्रसारण, श्वासोच्छ्वास क्रियामें श्रम पहुँचना, हृदयके दक्षिण प्रदेशकी वृद्धि, रक्तमें दूषित वायु रह जाना और इन हेतुओंसे शरीरकी सब इन्द्रियोंका कार्य थोड़े-बहुत अंशमें सदोष हो जाना आदि हानि होती है।

एक वायुकोषसंघ (Lobule) में रहे हुए वायुकोष
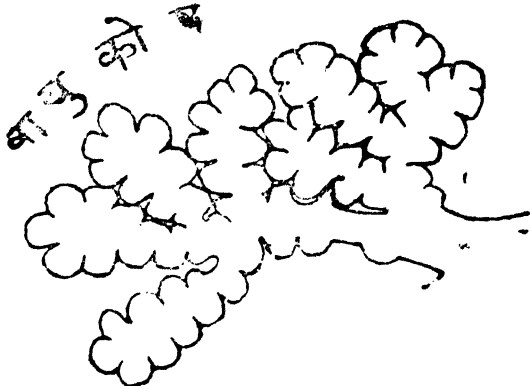
इस रोगमें उभय फुफ्फुस आक्रान्त होते हैं; परन्तु दोनों समभावसे आक्रान्त

नहीं होते। रोगीकी मृत्यु होनेपर शवच्छेद करनेसे विदित होता है कि, फुफ्फुसका आकार बढ़ गया है, वह फिर संकुचित नहीं होता। फुफ्फुसकी परीक्षा करनेपर प्रतीत होता है कि सर्वत्र, विशेषतः अग्रभाग (Apex) में सम्मुख धारा, पीठ और मूल आदि जलपूरित स्फोटों (Bulla) से आक्रान्त हैं। इन जलपूरित प्यालियोंसे सर्वत्र प्रवर्द्धन प्रतीत होता है। ये मुर्गेके अण्डेके समान बड़े आकारके हो जाते हैं। वाम फुफ्फुसका जो पतला लम्बा प्रदेश है, वह स्वस्थावस्थामें हृदयके ऊपर रहता है वह उतना बढ़ जाता है कि, उससे समग्र हृदय प्रदेश ढक जाता है। जिससे हृदयपर मृदु टेपन करनेपर सुननेमें आनेवाली मृदुध्वनिका लोप हो जाता है। ये सब स्फोट स्वाभाविककी अपेक्षा मन्दवर्ण वाले होते हैं। एव इसके भीतर रही हुई वायु सब सन्निहित विधानमें प्रविष्ट हो जाती है।

फुफ्फुसके ऊपर अंगुलीसे दबाकर सुननेपर स्वाभाविक मर्मरध्वनि (द्रवध्वनि) का भास होता है। वायुकोष स्फीति (Vesicular Emphysema) होनेपर फुफ्फुस विधान कोमलतर भासता है। जिसतरह रेशमी वस्त्रकी थैली दबानेपर स्पर्श बोध हो, ऐसी फुफ्फुस विधानकी कोमलता भासती है। अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षा करनेपर वायुकोषका विलक्षण फुलाव प्रतीत होता है। उसका घेरा पतला हो जाता है और टूट जाता है। सब वायुकोषोंके भीतर जो उपश्लैष्मिक कोष आवृत्त होते हैं, उनका प्रायः परिवर्त्तन नहीं होता। डॉक्टरीमें इस प्रकारको पलमनरि एम्फिसिमा (Pulmonary Emphysema) भी कहते हैं।

वायुकोष स्फीति प्रकार—

१. वृद्धिमय—Hypertrophic.
२. शोषमय—Atrophic.
३. क्षतिपूरक—Compensatory.
४. आशुकारी प्रसारण सह—Acute Vesicular.
५. तन्तुओंके भीतर वायु प्रवेश—Interstitial.

इनमें वृद्धिमय स्फीति मुख्य और अन्य गौण हैं।

(१) वृद्धिमय वायुकोष स्फीति

हाइपर ट्रोफिक एम्फाइसिमा—Hypertrophic Emphysema.

यह प्रकार स्वयंभूत (Idiopathic) अथवा जेनर के बृहत् फुफ्फुसमय वायुकोष स्फीति (Jenner's large-lunged Imphysema.) के नामसे भी प्रसिद्ध है। फुफ्फुसकी स्थूलता, श्वासकृच्छ्रता और गात्रनीलता, ये ३ लक्षण इस प्रकारके प्रकृति निर्देशक हैं।

निदान—

१. वायुकोष प्रसारण—(Dilatation of Alveoli) यह प्राथमिक परिवर्त्तन है । इसके हेतु—

अ. श्वास ग्रहणका दबाव—बल पूर्वक पूरक (प्राणायाम) करनेपर वायुकोष फूलते हैं । यह क्षति पूरक स्फीतिकी उत्पत्ति तथा तमकश्वासकी प्राप्ति करा सकता है, किन्तु सर्वसामान्य कारण रूपसे स्वीकृत नहीं हुआ ।

आ. निःश्वासका दबाव—बलपूर्वक निःश्वास करनेपर (उदा० कास, स्वरयन्त्रद्वारका बन्द होना और उरःपंजर पर दबाव आदि) परिणाममें वायुकोषोंको अधिक फूलना पड़ता है । पहले शिखर और फुफ्फुसके आगेकी सतह पर ये कम सुरक्षित है । बाजेवाले, जो मुँहसे फूंककर बजाते हैं, उनमें यह विकृति प्रायः उत्पन्न हो जाती है ।

इ. फुफ्फुसके स्थिति स्थापक तन्तुओंकी जन्मसिद्ध निर्बलता—यह कौटुम्बिक स्वभाव है । कतिपय जन्मजात निर्बलतासह निःश्वास दबाव मुख्य कारण रूपसे स्वीकृत हुआ है ।

२. कास प्रभाव—चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाहके साथ वायुकोषोंकी स्फीति प्रायः उपस्थित हो जाती है ।

३. श्वासनलिका विकृतिमय तमकश्वास—यह छोटे बालकोंमें विशुद्ध वायुकोष स्फीति कास रहित उत्पन्न करा देता है ।

४. आयु—सामान्यतः मध्यमावस्था और वृद्धावस्था । कभी बाल्यावस्थामें तमकश्वास, कुक्कुरकास और पुनरावर्त्तक काससे ।

५. जाति—सामान्यतः पुरुषोंमें ।

६. हृदय पेशी प्रदाह—यह कभी-कभी आनुषंगिक कारण ।

संप्राप्ति—अधिक दबावके हेतुसे वायुकोषोंकी स्फीति । यह स्फीति वायुकोषोंकी दीवारोंको प्रसारित करती है तथा कैशिकाओंको पीड़ित करती है तथा संभवतः स्थितिस्थापक तन्तुओंको भी क्षति लगाकर देती है । उपस्थित रक्तकी न्यूनतासे पोषणकी कमी होती है । परिणाममें वायुकोषोंकी दीवारोंका शोष होता है । फिर वे अन्तमें टूट जाती हैं; कितनेक वायुकोष जुड़जाते हैं और बुद्बुदे (Bullae) बनते हैं ।

अणुवीक्षणयन्त्रसे देखनेपर पक्व आच्छादन कला, पतली दीवार, थोड़े स्थिति स्थापक तन्तु और नष्ट कैशिकाओंसह बड़े बने हुए वायु स्थान प्रतीत होते हैं । इस तरह फुफ्फुसमें वायुकोषों और कैशिकाओंके नाशसे स्फीति उत्पन्न होती है, जो रक्तको तथा स्थितिस्थापक तन्तुओंको वायुपूर्ण बनाती है और फुफ्फुसको आकुंचित करती है । इसके अनुगामी २ प्रकार होते हैं ।

१. निःश्वास वृद्धि। स्थितिस्थापक तन्तुका नाश होनेपर आकुंचन शक्तिका नाश होता है। जिससे निःश्वासका समय बढ़ जाता है। यह आंशिक प्रतिबद्धता रूप है।

२. श्वासग्रहण अत्यधिक होता है। वायुकोष और कशिकाओंकी न्यूनता हो जानेसे रक्तमें आवश्यक प्राणवायु पहुँचनेका कार्य अपूर्ण न रह जाय, इस हेतुसे अत्यधिक पूरक होता है।

अत्यधिक वायु पूरक तथा स्थितिस्थापक तन्तुओंका अपूर्ण संकोच और अपूर्ण वायु रेचक होते रहनेसे फुफ्फुसको पूर्ण वायुग्रहणका अभ्यास हो जाता है। परिणाममें (१) छातीकी दीवार उपपर्शुकाके अस्थिभवन होनेसे पूर्ण वायु ग्रहण में भी दृढ़ रहती हैं; किन्तु (२) महाप्राचीरा अवनत होती है। इस स्थितिमें श्वासग्रहण सहायक श्वसनकारी पेशियोंद्वारा होता रहता है। सहायक पेशियोंमें विषम (Scaleni) पेशी और उरःकर्ण मूलिका (Sternomastoid) पेशी उरःपंजरको पूर्ण रूपमें उठाती है।

कैशिकाओंके ह्रास और प्राणवायुके संशोधनकी अपूर्णतासे हृदयका कार्यभी बढ़ जाता है। दक्षिण हृदयकी वृद्धि होती है और प्रसारित होता है। कभी फुफ्फुसा-भिगा धमनीकी अपक्रान्तिमय कठिनता होती है। अन्तमें हृदय पतन होजाता है।

शारीरविकृति—

उरः पंजर—बेरलकी तरह स्फीत। उपपर्शुकाएँ अस्थिरूप।

वृद्धावस्थामें वायुकोष स्फीतिजनित बेरल सदृश छाती

उरःफलक स्थानान्तरित होनेपर—फुफ्फुस आकुंचित नहीं होते। आगेकी धारा अग्र फुफ्फुसान्तरालको प्राप्त होती है और हृदयको आच्छादित करती है।

फुफ्फुस हटनेपर—आकुंचित नहीं होते। उस समय फुफ्फुस स्थूल, निस्तेज और स्पर्श करनेपर कोमल भासता है। एवं दबानेपर गड्ढा पड़ता है शिखर और अग्रधारा अत्यन्त प्रभावित। बृहद्‌जलमय स्फोट। दोनों पार्श्वमें परिवर्त्तन। आधार प्रदेश रक्तसंग्रहमय और शोथमय।

बड़ी श्वासनलिकामें चिरकारीप्रदाह। छोटी प्रणालिकाएँ कुछ प्रसारित, किन्तु श्वासनलिका क्वचित ही प्रसारित।

हृदय—दक्षिण निलयके वृद्धि और प्रसारण। बारम्बार फुफ्फुसाभिगा धमनी की अपक्रान्तिमय कठिनता या प्रसारण।

अन्य अवयवमें—शिराओंके भीतर रक्तसंग्रह।

लक्षण—रक्तमें अपूर्ण प्राणवायु सम्मिलनके परिणाम स्वरूप चिरकारी श्वास-नलिकाप्रदाह नाना प्रकारका, केवल बालकोंमें श्वासनलिकाके तमक श्वाससह।

१. श्वासकृच्छ्रता—स्थिर, विशेषतः परिश्रम करनेपर। आवेगात्मक आक्रमणभी होसकता है।

२. गात्रनीलता—अच्छी स्थितिमें भी बढ़ती जाती है।

३. चिरकारीश्वासनलिका प्रदाहसे कास—कभी अभाव। कफ प्रायः अपूर्ण, बहुधा झागदार आयुवृद्धि और पुनराक्रमणके साथ रोगकी उन्नति होती है। मेदोवृद्धि क्वचित्, किन्तु कितनेक रोगियोंमें शुष्कता। बालकोंमें परिश्रम पड़नेपर सब लक्षणोंके साथ श्वासकृच्छ्रता भी होती है।

प्राकृतिकचिह्न—दोनों पार्श्वोंमें।

दर्शन परीक्षा—उरः पंजर बेरल सदृश स्फीत। आगे पीछेका व्यास बढ़जाता है। पूर्ण पूरक प्राणायाम करनेपर कंधे उन्नत होते हैं। अक्षकास्थि समुन्नत, पर्शुकान्तर प्रदेश विस्तृत, उरःफलकका कोन बढ़ा हुआ शिखरस्पंदन अप्रतीत। हृदयाधरिक प्रदेशमें कम्पन (दक्षिण निलयमें), श्वासग्रहणमें खिंचाव भी। कण्ठस्थानकी शिराएँ उन्नत। पिछली ओर पीठ गोल और अंसफलक लगभग समतल।

स्पर्शपरीक्षा—शिखर स्पन्दन अविदित। वाकोच्चारण सामान्य या किञ्चित्‌ह्रास।

ठेपनपरीक्षा—बढ़ीहुई आवाज़। हृदयकी जड़ताका ह्रास या कभी अभाव।

ध्वनिश्रवण परीक्षा—(रोगीको आगेकी ओर झुकाकर बैठाना चाहिये) निःश्वासवृद्धि। श्वासग्रहण लघु। श्वास ग्रहणके अन्तमें अवकाश नहीं। अस्वाभाविक ध्वनि और शुष्क ध्वनिका श्रवण। श्वसन ध्वनिका ह्रास। हृदयकी आवाज़ निर्बल, किन्तु स्पष्ट।

'क्ष' किरण परीक्षा—इसमें फुफ्फुस क्षेत्र ईषत् स्वच्छ। महाप्राचीरा कुछ नीची, स्थान संचलनता थोड़ी। पर्शुका प्राचीराकोण प्रसारित। हृदय प्रायः लम्बा और पतला।

युवाव्यक्ति सामान्यतः गंभीर श्वास ग्रहण करनेपर ३६०० सी०सी० वायुका त्याग करता है; किन्तु इस रोगसे पीड़ितके द्वारा वायु त्याग आधी या इससे भी कम होसकती है। रक्तमें प्रायः रक्ताणु अधिक मिलते हैं।

क्रम—वर्द्धनशील। लक्षण विशेषतः श्वासनलिकाप्रदाहकी पुनरावृत्तिपर अवलम्बित। रोगी गर्मीके दिनोंमें अच्छा रहता है। और शीतकालमें पीड़ित होजाता है। सम्हाल और अच्छे जलवायुमें निवाससे अनेकबार आक्रमण टल जाता है। स्थिति काल १५-२० वर्ष। अन्तमें हृदयपतन या नैमित्तिक फुफ्फुसप्रदाह।

परिणाम—स्फीतिके परिणाम, श्वासनलिकाप्रदाह, हृदय और वृक्ककी स्थिति, इन सबपर अवलम्बित है।

चिकित्सोपयोगी सूचना—मूलकारण प्राणवात हो, तो उसे हटाना चाहिये। अन्य कारण हो तो प्रायः किसीभी उपचारसे इस रोगका उन्नति नहीं रुकती। यह रोग बहुधा जीर्ण कास रोग या क्षुद्र श्वासके सहवर्ती होता है। (इस हेतुसे अनेक विद्वानोंकी मान्यता है कि आयुर्वेदकथित क्षुद्र श्वास यही है) अतः इनके आक्रमणसे रक्षा करनेके लिये योग्य लक्ष्य देवें और चिकित्सा करें। समुद्र सतहसे कम ऊँचाई पर, गरम, आर्द्र तथा धूल और तेज़वायुसे रहित स्थानपर रहना चाहिये। पहाड़ोंपर या अधिक ऊँचाईपर रहना प्रायः अति प्रतिकूल होता है। जहाँ तक होसके शीतकालमें अधिक शीतलस्थानमें नहीं रहना चाहिये।

छातीपर ऊनीवस्त्र पहने, सर्वदा उदरशुद्धिका लक्ष्य रक्खें। लघुपौष्टिक भोजन लेवें। डॉक्टरी मतानुसार गात्रनीलता आजाय, तो ऑक्सिजनसे श्वसनक्रिया करावें। हृदय-की निर्बलतामें हृदय पौष्टिक औषधि देवें। अफारा आनेपर श्वासकृच्छ्रतामें वृद्धि होती है, अतः उसे तत्काल दूर करना चाहिये।

डॉक्टरीमें—सप्ताहमें २-३ बार उष्ण वायुसे स्वेदन कराते हैं। विशेष प्रकारके कमरेमें रोगीको बैठाकर वातावरणको उष्ण करते हैं। आध घण्टेबाद उष्णता कम करके सामान्य उत्ताप पर लाते हैं। इस स्वेदनमें १-१॥ घण्टा लग जाता है, सामान्य शान्ति मिलती है। इसे पुनः-पुनः करते रहना पड़ता है। आयुर्वेदके मतानुसार श्वासहारी (रसतन्त्र द्वितीय खण्ड) और समीरपन्नगका सेवन कराया जाता है। अति कम मात्रामें १५ दिन देवें। फिर १५ दिन कफ प्रकोप हो तो कफकुञ्जर रस देवें। अन्यथा लक्ष्मीविलास, अभ्रकवाला या अभ्रक+प्रवाल देवें। पुनः समीरपन्नग चालू करें। इस तरह १५-१५ दिन दोनों औषधियोंका सेवन करावें, इस विधिसे दीर्घकाल तक श्वासहारी और समीरपन्नगका सेवन करानेपर उपकार होता है।

वायुकोष स्फीति जनित श्वासरोग जीर्ण होजाने पर दूर नहीं होता। चिकित्सा और पथ्य, दोनोंकी सहायता हो, तो रोगको दबाया जा सकता है। श्वास रोगीका हृदय निर्बल हो, तो हृदय पौष्टिक औषधि जवाहर-मोहरा या लक्ष्मीविलास आदि भी साथमें देते रहना चाहिये। यदि हृदयकी निर्बलता कायम रहेगी, तो पुनः-पुनः दौरा होता रहेगा और श्वास रोग दब नहीं सकेगा; बल्कि अधिक त्रासदायक होता जायगा।

रसतन्त्रसारमें लिखी हुई औषधियोंमेंसे अभ्रकभस्म (पीपल-शहदके साथ), समीरपन्नग, शृङ्गभस्म, मल्लादि वटी (प्रथम विधि), श्वासकुठार रस, कफकुठार रस, लवंगादि तालसिंदूर, लक्ष्मीविलास रस, चंद्रामृत रस, पूर्णचन्द्रोदय रस, कनकासव आदि उपकारक हैं।

यदि कफको बाहर निकालना है, तब कनकासव और कफकुञ्जर हितावह है। शक्तिवृद्धि अर्थ समीरपन्नग, मल्लादिवटी और लवङ्गादि, तालसिंदूर हितावह हैं; किन्तु जिनको पित्त प्रकोप या वृक्क स्थानमें विकृति हो, उनको मल्लप्रधान औषधि नहीं दी जाती। उनको लक्ष्मीविलास या अभ्रकका सेवन कराना चाहिये। कफ संशोधन और दूषित कफको रोकनेके लिये शृङ्गभस्म उत्तम है।

तमकश्वासका दौरा हो, तब सोम या श्वासकुठार रस। एवं इतर समयमें पूर्ण-चन्द्रोदय या समीरपन्नग देना चाहिये। पित्तप्रकोप भी हो, तो प्रवालपिष्टी को अभ्रकके साथ मिला देना चाहिये। जीर्ण विकारमें चन्द्रामृत रस या लक्ष्मीविलास रसका शान्तिपूर्वक दीर्घकाल तक सेवन कराना चाहिये।

विशेष औषधि कास-श्वासरोगमें लिखे अनुसार करें। पथ्यापथ्यभी कास और श्वासके अनुरूप पालन करें।

(२) शोषमय वायुकोष स्फीति

(Atrophic Emphysema)

इसे वृद्धावस्थाजन्य फुफ्फुस शोष (Senile Atrophy) तथा जेनर कथित लघुफुफ्फुस स्फीति (Jenner's small-lunged Emphysema) भी कहते हैं। इस विकारमें फुफ्फुसस्थ वायुकोषोंके बीचकी दीवार (Septa) की अपक्रान्ति होनेपर वायुकोषका प्रसारण होजाता है। यह प्राथमिक रोग है। विशेषतः ६० वर्षसे अधिक आयुवालोंको सार्वाङ्गिक शोषसह प्राप्त होता है। यह शुष्क देहवालोंमें विशेष प्रतीत होता है। इस स्फीतिकी स्थिति वृद्धिमय स्फीतिसे बिलकुल विपरीत होती है। उरःपंजरलघु, पशुकाएँ तिर्यक् तथा स्थलान्तर होनेपर फुफ्फुस स्थूल।

संप्राप्ति—शवच्छेदन करनेपर फुफ्फुस छोटे, गहरे रङ्गके तथा सरलतासे पूर्ण होने योग्य भासता है। काटनेपर छोटे-छोटे बुदबुदे (Bullae) सतहके ऊपर तथा विभागोंमें वायुकोषका विस्तृत स्थान प्रतीत होता है।

चिह्न—थोड़े से परिश्रममें श्वास भरजाता है, यह स्थिति बढ़ती जाती है। सामान्यतः श्वासनलिकाप्रदाहके हेतुसे कास आती है और कफ गिरता है। छाती समतल होजाती है। श्वासलेनेपर छातीका विस्तार किञ्चित् बढ़ता है। स्पर्श परीक्षामें कम्पनका ह्रास, ठेपन ध्वनि बढ़ी हुई, किन्तु हृदय और यकृत्की जड़ताका किसीभी परिणाममें ह्रास नहीं होता। दीर्घ पूरकभी निर्बल, निःश्वास कुछ बढ़ा हुआ, श्वासनलिकाके प्रदाहके हेतुसे अस्वाभाविक ध्वनिका श्रवण।

चिकित्सा—कोई विशेष चिकित्सा नहीं है। हृदयप्रसारण या श्वासनलिका प्रदाह हो, तो उसके लिये आहार-विहारमें योग्य सम्हाल रखना चाहिये।

(३) क्षतिपूरक वायुकोषस्फीति

(Compensatory Emphysema)

इसे स्थानिक वृद्धिमय स्फीति (Localised Hypertrophic Emphysema) भी कहते हैं। यह फुफ्फुसकी गौण क्षति है। फुफ्फुसके तन्तुओंका शक्तिसे अधिक प्रसारण होनेपर अनुगामी रूपसे अन्य अवयवोंके विस्तार होनेमें प्रतिबन्ध या आकुंचन होता है। यह स्थिति मर्यादित भागमें फुफ्फुसगत श्वासप्रणालिका प्रदाहके धब्बे, क्षयके व्रण चिह्न या विवरोंके पास होती है अथवा सौत्रिक तन्तुमय राजयक्ष्मामें पूर्णांशमें अप्रभावित फुफ्फुसके भीतर होती है।

इनके अतिरिक्त, फुफ्फुसप्रदाह, नववर्धन, फुफ्फुसावरणमें द्रवसंग्रह आदि कारणोंसे भी फुफ्फुसमें सामान्यतः स्थानिक वायुकोषस्फीति होजाता है।

संप्राप्ति—प्रथमावस्थामें वायुकोषोंकी दीवार प्रसारित होती है। फिर जीर्णावस्थामें वे शोष पीड़ित होती हैं और फटजाती है, परिणाममें सच्ची वायुकोषस्फीति उत्पन्न होती है।

फुफ्फुसके स्थानिक प्रदेशके भीतर वायुप्रवेशमें प्रतिबन्धसह श्वासग्रहणमें परिश्रम पड़ता है। जिससे उसके समीपस्थ फुफ्फुसभागके वायुकोषका विस्तार हो जाता है। यदि किसी एक फुफ्फुसका क्षयके सौत्रिक तन्तु आदि द्वारा विशेषांशमें ध्वंस होता है, तो दूसरोंमें क्षतिपूरणार्थ वायुकोषस्फीतिकी प्राप्ति होती है। इस प्रकारमें फुफ्फुस तन्तुओंकी सच्ची वृद्धि नहीं होती, किन्तु उसके सदृश परिवर्त्तन होजाता है। फिर फुफ्फुसकी वायुशोषण शक्तिका ह्रास होजाता है।

लक्षण—प्राथमिक स्फीतिके समान। क्वचित् श्वासकृच्छ्रताभी। स्थिति दृढ़ होनेपर श्वासग्रहणमें मंदता और निःश्वास दीर्घ। इतर अस्वाभाविक चिह्न नहीं मिलता। पीड़ित स्थानपर ठेपन करनेसे ध्वनि वृद्धि, यह ध्वनि उरःफलककी मध्यपंक्तिमें आगे फैल जाती है। प्राथमिक अवस्थामें श्वासध्वनि बड़ी और बढ़ी हुई।

चिकित्सा—कोई विशेष चिकित्सा नहीं है।

(४) आशुकारी आयुकोष प्रसारणसह स्फीति

(Acute Vesicular Emphysema)

प्रबल श्वासग्रहणके असरसे अकस्मात् फुफ्फुस स्फीति होजाती है। यह श्वासावरोध होकर मृत्यु होनेपर विदित होती है। यह फुफ्फुसगत श्वासप्रणालिका प्रदाह, कुक्कुरकास और तमक श्वासमें प्राप्त होती है तथा प्राणदा नाड़ियोंपर दबाव आनेके हेतुसे उत्पन्न होती है। देहविकृति विशेषतः बच्चोंमें प्रतीत होती है।

ठेपन करनेपर अस्वाभाविक ध्वनिसह आवाज़की वृद्धि और निःश्वास बढ़ा हुआ कितनेक रोगियोंमें फिर स्वाभाविक आवाज़ आजाती है।

(५) फुफ्फुसस्थ तन्तुओंके भीतर वायुप्रवेश

(Interstitial Emphysema.)

फुफ्फुसावरणके नीचे और फुफ्फुसके तन्तुओंके भीतर वायु उपस्थित होती है। इसका सम्बन्ध सच्चा वायुकोषस्फीतिसे नहीं है। यह स्थिति कभी दौड़ने, कूदने या खेल करने आदि कारणोंसे वायुकोषकी दीवारके टूटने, फुफ्फुसपर शस्त्रलगने, कासका प्रबलवेग होनेसे पशुकाके टूटने और कभी श्वासनलिकामें कृत्रिम छिद्र करनेपर उत्पन्न होती है। स्वस्थ मनुष्यमें स्वतःसिद्ध वातभृत फुफ्फुसावरणकी उपस्थिति होजाती है।

संप्राप्ति—मुक्त वायु फुफ्फुसके मूलद्वारा होकर फुफ्फुसान्तरालमें पहुँचती है अथवा कण्ठ या छातीमें शस्त्रचिकित्सासे प्राप्त स्फीति या उपत्वचाकी स्फीति प्रतीत होती है।

लक्षण—व्यायाम करनेपर दृढ़ता अथवा छाती या कण्ठमें वेदनाका भास तथा छोटा श्वास। शस्त्रचिकित्सासे उत्पन्न स्फीतिमें ठेपन करनेपर छाती या कण्ठपर पात्रभंगवत् ध्वनि। वायु आगेके फुफ्फुसान्तरालमें फैली हो, तो हृदयके उत्तान प्रदेशमें अस्पष्ट जड़ता रोगी श्वास लेने और हृदय स्पन्दित होनेपर, ध्वनिवाहक यन्त्रसे सुननेसे हृदयकी आवाज़ दूर होती है; पात्रभंगवत् ध्वनि हृदयाधारिक प्रदेशपर सुनी जाती है।

क्रम—वायु सामान्यतः कुछ दिनोंके भीतर शोषित होजाती है।

चिकित्सा—रोगीको शय्यापर आराम करावें। मोर्फियाका अन्तःक्षेपण, कासका अवरोध होने और निद्रा लानेमें सहायक होता है।

कपड़ेमें रुईकी पोटली बना, उसे गरम घी या तैलमें डुबोकर सहन हो सके उतनी गरम पोटलीसे पीड़ितस्थान पर १५–२० मिनट तक चोभा देवें या सेक करें। पश्चात् गरम कपड़ा बांध देनेसे वायु बाहर निकल जाती है।

महावात विध्वंसन रस या जिनसे अफीम प्रधान औषधि सहन हो, उनको महावातराज रस देनेसे तुरन्त लाभ पहुँचता है।

३६ फुफ्फुसोंमें मंद रक्ताधिक्य

पेसिव कन्जेशन ऑफ दी लंग्ज़

(Passive Congestion of the Lungs)

फुफ्फुसोंके सब वायुकोषोंकी श्लैष्मिक सम्बन्धवाली कैशिकाओं तथा धमनी प्रशाखाओंका प्रसारण अथवा उनमें अनुचित रक्तकी वृद्धिको रक्ताधिक्य कहते हैं।

प्रकार—

१. यान्त्रिक रक्ताधिक्य या पिंगल कठिनता—Mechanical Congestion (Brown induration)

२. अधः संगृहीत रक्ताधिक्य या प्लीहातन्तुवत् स्थिति—Hypostatic Congestion or Hypostatic Pneumonia (Splenization of lung)

१. यान्त्रिक रक्ताधिक्यका कारण-हृदयको वापस रक्त लौटनेमें प्रतिबन्ध। विशेषतः हृदयके वामभागके रोगमें।

शारीरविकृति—फुफ्फुस स्थूल, कठोर और शोथमय। काटनेपर पिंगल सतह, वायु लगनेपर लाल।

सौत्रिकतन्तुओंकी वृद्धि, कैशिकाएँ प्रसारित। वायुकोषोंकी दीवारोंमें रक्तरंजक द्रव्य। वायुकोषोंमें आच्छादक कलाके घटक तथा परिवर्तित रक्तरंजक।

लक्षण—हृदयको रक्त भेजनेमें जब असफलता मिलती है, तब श्वासकृच्छ्रता, कास तथा फुफ्फुसके विगलनसे कफस्राव, रक्तवमन कभी-कभी, श्वासध्वनि दुर्बल और फुफ्फुस पीठपर मंद आगंतुक ध्वनि। रक्ताणुओंकी संख्या लगभग ७० लक्ष वृद्धि।

चिकित्सा—हृदय पतनमें कहे अनुसार। शिरावेध करके १०–२० औंस रक्त निकाल लेवें या जलौकासे खिचवा लें। लावणिक विरेचन, दोनों शाखाओंमें सेक, लघुपौष्टिक भोजन भी उपकारक होते हैं।

२. अधः संगृहीत रक्ताधिक्य निदान—दुर्बल स्थितिमें, विशेषतः वृद्धावस्थामें मोतीझरा, मस्तिष्क विकृति, मस्तिष्क संन्यास, बेहोशी अथवा उदरप्रदेशमें अर्बुद, जलोदर आदिसे साक्षात् दबाव।

रक्ताधिक्य और फुफ्फुस पीठका आकुंचन—यह परिणाम कुछ अंशमें भारोपनसे तथा कुछ अंशमें फुफ्फुसपेशी और हृदयके दुर्बल प्रभावसे।

शारीर विकृति—जब रोग बढ़जाता है, तब प्लीहातन्तुके सदृश तन्तु उपस्थित होते हैं। पीठ प्रदेश विशेषतः पिछली ओर गहरा लाल, ठोस, वायुहीन, विगलन, दबानेपर गड्ढे होना, जलमें डालनेपर डूब जाना, कटी हुई सतह बहुधा प्लीहा सदृश, रक्त और रक्तरसका बूँद-बूँद चरण।

लक्षण—अनिश्चित्। आक्रमण कालमें श्वासकृच्छ्रता और गात्रनीलता सामान्यतः मन्द; किन्तु निश्चित।

चिह्न—फुफ्फुस पीठपर अस्वाभाविक ध्वनि । श्वसनध्वनिका ह्रास । रोग बढ़ने पर श्वासनलिकाके निर्बल श्वसन और दुर्बल ध्वनि ।

परिणाम—गंभीर ।

रोग निरोधक चिकित्सा—वृद्ध मनुष्यमें मोतीझरा आदिमें शय्याधीन होनेपर २-२ घण्टेपर करवट बदलना चाहिये । हृदयकी निर्बलता हो, तो उत्तेजक औषधि दें । ज्वर हो, तो ज्वरकी चिकित्सा करें । फुफ्फुस गल रहा हो, तो बंगभस्म और शृङ्गभस्मका सेवन दीर्घकाल तक कराना चाहिये ।

३७. फुफ्फुस संकोच

कोलेप्स ऑफ दी लंग्ज़—Collapse of the Lungs.

क्वचित् जन्म होनेपर किसी शिशुका फुफ्फुस अपूर्ण प्रसारण युक्त होनेसे प्रसारित नहीं हो सकता । ऐसे फुफ्फुस-वायुहीन, निस्तेज, सामान्यतः यकृत् तन्तुओंके समान होते हैं । उसमें परीक्षात्मक महत्त्व नहीं होता । जीवनमें आकुंचन २ प्रकारका होता है । (अ) ठोस (Massive); (आ) मन्द या अप्रतिरोधी (Passive), इसमें खण्डीय (Lobar) और वायुकोष संचीय (Lobular), दो उपविभाग हैं ।

अ. ठोस फुफ्फुस सङ्कोच

(Massive Collapse)

यह फुफ्फुसके पूर्ण अथवा बड़े भागका आशुकारी आकुञ्चन है । इससे आशुकारी फुफ्फुस खण्ड संकोच (Active Lobar Collapse) भी कहते हैं ।

हेतु—

१. अस्त्रचिकित्सा करनेपर—विशेषतः, किन्तु महाप्राचीराके पास उदरकी अस्त्रचिकित्सा करनेपर उत्पन्न नहीं होता । संभवतः अनेक रोगियोंमें फुफ्फुसप्रदाहकी शस्त्रचिकित्सा करनेके पश्चात् सत्वर इस विकारसे पीड़ित होजाते हैं ।

२. श्वसन क्रियाकारी पेशियोंका पक्षवध— उदा० कण्ठरोहिणी जन्य ।

३. श्वसनक्रियाकारी पेशियोंका दमन— उदा० फुफ्फुस प्रदाहमें ।

४. आघात— सामान्यतः, किन्तु छातीकी दीवारपर चोटमें नियत नहीं ।

५. बड़ी श्वासवाहिनीका अवरोध—विशेषतः बाह्य द्रव्यद्वारा ।

शारीर विकृति—प्रभावित फुफ्फुस नीलाभ, दृढ़ । मसलनेपर केशामर्दनवत् आवाज़ । जलमें डालनेपर डूब जाना । युद्धकालमें शवोंकी परीक्षा करनेपर इसके ३ प्रकार प्रतीत हुए हैं । (१) तीक्ष्ण शस्त्रसे विद्ध (Penetrating wounds) अथवा वातभृत फुफ्फुसावरणसह, (अ) उसीपार्श्वमें (Homolataral) आकुंचन, (आ) दूसरे पार्श्वमें (Contra-lateral of Chest) अर्थात् क्षतसे विपरीत ओरको । (२) तीक्ष्णशस्त्रसे अविद्ध (Non-Penetrating wounds) (अ) उसी पार्श्वगत; (आ) विपरीत पार्श्वगत । (इ) अन्यत्र विद्ध—उदा० नितम्ब

पर। स्वस्थमनुष्यके श्वासनलिकाप्रदाह (कास) रहित और विपरीत पार्श्वगत आकुञ्चन में चोट प्रायः तुच्छ, किन्तु लक्ष्य देने योग्य होती है। इसके भीतर प्रतिस्पर्धी २ मत उपस्थित किये जाते हैं।

१. वायुमार्गकी आकुंचन क्रिया—शवच्छेदन करके देखनेपर स्वस्थ फुफ्फुसका कभी पूर्ण आकुञ्चन या कभी नहीं, होता। श्वासप्रणालिकाका आकुञ्चन नलिकाके आड़ेभागके बन्द होनेके साथ सत्वर होता है। फिर वायुकोषोंमें वायु मुक्त नहीं हो सकती। किन्तु जीवनमें ऐसी बद्धवायु रक्तद्वारा आकर्षित होजाती है। फिर प्रभावित स्थानमें श्वासनलिका या श्वासप्रणालिकाके संकोचके बाद तत्काल पूर्ण आकुञ्चन होजाता है। परिणाममें वायुकोष संघीय या खण्डीय आकुंचन होता है। यह निःसंदेह है कि, श्वासनलिका और वायुकोषसंघीय विस्तृतप्रदेशके अवरोधके परिणाम स्वरूप ठोस आकुंचन हैं। इसे अनेक ग्रन्थोंके भीतर श्वासनलिकाप्रदाहसे उत्पन्न कफद्वारा कितनीक छोटी श्वासनलिकाओंका पर्याप्तरोध होनेपर ठोस आकुंचन होनेका आरोप करते हैं।

२. श्वसनकरानेवाली मांसपेशियोंकी जड़ता—यह परिणाम—(अ) पक्षवध उदा० कण्ठरोहिणीजन्य, मांसपेशियोंकी क्लान्ति–(Myasthenia Gravis) (आ) दमन-उदा० अस्त्रचिकित्साके पश्चात् अभिघात, फुफ्फुसप्रदाह आदि। निम्न विषयोंपर लक्ष्य देना चाहिये।

अ. सब प्रकारके अत्यन्त बढ़े हुए श्वासनलिकाप्रदाह सामान्य है, किन्तु ठोस आकुंचन अति क्वचित् होता है। इस हेतुसे अन्यवाहक भी उपस्थित होना चाहिये।

आ. कतिपय युद्धोंमें तथा अनेक रोगियोंमें श्वासनलिकाप्रदाह नहीं होता या फुफ्फुस स्थिति ऐसी नहीं होती है कि, जो श्वासनलिकाका रोधकर सके। उदा० पृष्ठवंशकी चेतना नाशके पश्चात्।

इ. छातीकी दीवार सर्वदा प्रभावित पार्श्वमें स्थिर होती है तथा महाप्राचीरा पूर्ण निःश्वास कराने योग्य स्थितिमें होती है।

सिद्धान्त—मांस पेशियोंकी जड़ता या श्वासनलिकाका आकुंचन, इन दो मेंसे एक प्राथमिक वाहक है। मांसपेशियोंकी जड़तामें क्रियाकी संभवनीय पद्धति निःश्वासकालमें छातीकी दीवार दृढ़ रहती है। वायुप्रवेश मामूली होता है। वायु कोषोंमें उपस्थित होती है। वह रक्तद्वारा शोषित होती है और दूसरे स्थानमें नहीं जासकती। परिणाममें फुफ्फुसका आकुंचन हो जाता है। फिर श्वासप्रणालिका शाखाओंका नलियोंके आड़ेभागमें संकोच होजाता है। यह आकुंचन प्रबलवेगसे आगे बढ़ता है ठोस होता है।

श्वासप्रणालिकाप्रदाहके वर्त्तमान होने पर इस प्रकार की प्रगतिमें सहायता मिल जाती है। (उरःपंजरके भीतरमें दबावका वाहक फुफ्फुसकी स्थिति व्यापकता आदि अति जटिल है और उनके प्रभावका अनुमान ठोस आकुंचनमें नहीं किया जाता)।

जड़ पेशियोंका विभाग तक पर्शुकान्तरिकाका निषेध करते हैं और आकुंचनकी यन्त्रणाको निम्नानुसार सिद्ध करते हैं।

सामान्यतः पूर्णश्वसनसह चित्त सोनेपर महाप्राचीरा स्तम्भभाग का केवल आकुंचन होता है (पर्शुका की ओरका भाग स्थगित), निर्बलता, शस्त्र-चिकित्सा और सेन्द्रिय विषप्रकोप आदिमें स्तम्भभागके आकुंचनका ह्रास होता है और निम्न खण्डका विपथमें गमन होता है। फिर फुफ्फुसप्रदाह अथवा उरस्तोय उत्पन्न होता है और बढ़ता है।

लक्षण—आक्रमण अकस्मात्, छातीमें पीड़ासह। आघात लगनेपर १, २ या ३ दिन बाद लक्षणोंकी प्रतीति। लक्षण नानाविध रोगी बड़ी हुई बीमारीयुक्त, किन्तु पूर्ण आराम करने पर लक्षण प्रायः मंद, प्रयत्न करनेपर सामान्य लक्षण श्वासकृच्छ्रता, शीघ्र श्वसनक्रिया, तेज़ नाड़ी और व्याकुलता। क्वचित् गात्रनीलता। प्रायः मन्दकास तथा कफका अभाव।

चिह्न—(१) छातीकी दीवार, अचल। छोटी या बड़ी बाज़ू अप्रभावित। (२) हृदय और फुफ्फुसान्तराल प्रदेश प्रभावित प्रदेशकी ओर आकर्षित; बृहच्छ्वासनलिका भी स्थानान्तरित। (३) प्रभावित आधार स्थानपर ठेपनध्वनि जड़ नहीं, वायुप्रवेश किञ्चत्, श्वसनध्वनि स्पष्ट और दूर, स्वाभाविक या ह्रास अथवा पूर्णतः अभाव। आगन्तुक आवाज़का अभाव। अनेकबार फुफ्फुसप्रदाह या फुफ्फुसावरणमें तरल संग्रहकी भ्रान्ति होजाती है, (अतः बहुधा पुनः-पुनः मन्द ठेपन करना चाहिये)।

तरल—यदि फुफ्फुसावरणमें है, तो यह चिह्न निश्चित् परिवर्त्तित होजाता है; किन्तु आकुंचनसह हृदय सामान्य स्थितिमें होनेपर बड़ी मात्रामें तरलके अनुरूप चिह्न होता है।

'क्ष' किरण परीक्षा रोग निदानकर होती है।

प्रगति— स्वास्थ्य उन्नति होनेपर हृदय लगभग ३ सप्ताहमें मूलस्थानकी ओर वापस आने लगता है। कभी अधिक कालमें, कभी केवल १० दिनमें। फुफ्फुस प्रसारित होनेपर सामान्यतः आगन्तुक अस्वाभाविक ध्वनि और कफ उपस्थित। फुफ्फुसप्रदाह, उरस्तोय और तरलकी उन्नति।

अनुगामी विकार—यदि फुफ्फुस पूर्ण विस्तार होनेमें असफल रहता है, तो सौत्रिक तन्तुकी उत्पत्ति और श्वासनलिकाप्रसारणकी संप्राप्ति होती है।

रोगविनिर्णय—खण्डीय फुफ्फुसप्रदाह, फुफ्फुसावरणमें तरल संग्रह वातभृत फुफ्फुसावरण और फुफ्फुसगत शल्य, इन रोगों से प्रभेदकरना चाहिये। रेडियोग्राफ से रोगनिदान किया जाय, तो बहुधा भूल नहीं होती।

विस्तृत आकुंचनार्थ चिकित्सोपयोगी सूचना—कारण अनुरूप चिकित्सा तन्तुओंको प्राणवायु देनेके लिये शस्त्रचिकित्साके कुछ घण्टे पहलेसे प्राणवायुका नस्य

देवें या कृत्रिमश्वसन क्रिया। (कितनेक रोगियोंमें) करावें। बिस्तरपर करवट बदल देवें। छोटी पशुंकाएँ अति महत्वकी होनेसे उसपर पट्टीका बन्धन न आवे, यह सम्हालें।

डॉक्टरीमें उत्तेजक औषधरूपसे कुचिलासत्व (Stnychnin Hydrochlor.) और सूचीबूटी सत्व (Atropin sulph.) को मिलाकर अन्तःक्षेपण करते हैं। पट्टी छातीके निम्नभागपर शिथिल बांधनी चाहिये।

श्वसनभी विशेषतः ५ प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड और ९५ प्रतिशत ऑक्सिजन मिलाकर नासिकासे कैथेटरद्वारा कराया जाता है। वक्षपर नीलगिरी तैल, लौंगका तैल, दालचीनीका तैल या अन्य उत्तेजक मर्दन प्रयुक्तता साधन रूपसे करना चाहिए। यदि श्लेष्मा संगृहीत है और रोग दुर्बल नहीं है; तो बच, राई, मैनफल या अन्य वमनकारक औषधि देनी चाहिए। बच स्वल्पमात्रामें देनेसे कफ निःसारक कार्य करके अच्छा उपकार दर्शाती है।

यदि विस्तृत स्थानमें संकोच हो, तो तेज़ शराब और मृतसंजनी सुरा आदि उत्तेजक औषधि देनी चाहिए। एवं भोजन भी पौष्टिक तथा उत्तेजक देना चाहिए। रोगका कुछ अंशमें उपशमन होने फुफ्फुसप्रसारणार्थ दीर्घश्वासोच्छ्वास क्रिया, सूर्यनमस्कार, घूमना आदि क्रिया करनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

आ. मन्द आकुंचन
(Passive Collapse)

प्रकार— अ. विस्तृत (Extensive); ब. वायुकोष संघोंके आकुंचित प्रदेशोंमें स्वल्प विक्षिप्त (Small scatterdareas of lobular Collapse)

अ. विस्तृत आकुंचित प्रदेशका कारण (अ) श्वासनलिकाकी मुख्य शाखा में अवरोध। उदा० नववर्धनकी वृद्धिसे; (आ) यान्त्रिक हेतु-उदा० फुफ्फुसावरणमें तरल, वातभृत्फुफ्फुसावरण; बढ़ा हुआ हृदय। (इ) लघुश्वासनलिका प्रदाह, कुक्कुरकास। (ई) मांसपेशियोंका क्रियावरोध-उदा० शय्यागत रोगियोंमें।

लक्षण और चिह्न—सम्मिलित स्थितिके अनुरूप प्रबल, परीक्षात्मक चिह्न ठोस आकुंचन प्रकारके सदृश।

ब. वायुकोष संघोंमें स्वल्प विक्षिप्ति-आकुंचित प्रदेशके कारण—(१) निश्चित फुफ्फुसरोग सर्वदा उपस्थित—उदा० विशेषतः बच्चोंमें श्वासप्रणालिका प्रदाह; श्वासनलिकाप्रसारण, चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह, फुफ्फुसपीठका शोथ (विशेषतःवयोवृद्धोंमें)। (२) निर्बलतामें—उदा० अन्त्रकी निर्बलता, कभी कुक्कुरकासमें, कभी सौत्रिकतन्तुमय श्वासनलिकाप्रदाहमें।

शारीर विकृति—आकुंचित वायुकोषसंघोंका प्रदेश सर्वमान्य सतहकी अपेक्षा नीची, बैंजनी प्रभायुक्त, स्पष्ट किनारे युक्त और दबानेमें स्थिर। काटनेपर वायु-

हीन और स्वल्प तरलयुक्त। जलमें डालने पर डूब जाता है। विशेषतः निम्न खण्डमें और किनारे पर सम्मिलित। खण्डके विस्तृत भागोंमें।

लक्षण और चिह्न—सम्मिलित स्थितिके अनुरूप प्रबल। श्वासकृच्छ्रता और गात्रनीलताकी वृद्धि, तेज़ नाड़ी। परीक्षात्मक चिह्न सामान्यतः स्पष्ट। बालकोंमें निम्न पर्शुका प्रदेश और उदरके भीतर श्वासग्रहणमें खिंचाव।

चिकित्सोपयोगी सूचना—७ प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड और ९३ प्रतिशत ऑक्सीजन मिलाकर श्वसन कराना चाहिये।

३८. सौत्रिक तन्तुमयफुफ्फुस

फाइब्रोसिज़ ऑफ दी लंग्ज़—क्रोनिक इण्टरस्टिटियल न्युमोनिया।

(Fibrosis of the Lungs-Chronic Interstitial Pneumonia.)

रोगपरिचय—श्वासनलिका फुफ्फुस या फुफ्फुसावरणपर किसीभी प्रकारकी आशुकारी या चिरकारी प्रादाहिक या उद्दीपक स्थितिका आक्रमण होनेपर अनुगामी विकार रूपसे फुफ्फुसमें सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्ति होती है। श्वासनलिकाप्रसारण बृहद् अनुपातमें उन्नति करता है। फुफ्फुसका क्षय (राजयक्ष्मा) इसका सामान्य कारण है (इसका वर्णन सौत्रिकतन्तुमय राजयक्ष्मामें आगे किया जायगा) यह रोग शराबी मनुष्योंको अन्योंकी अपेक्षा अधिक होता है।

प्रकार—(१) स्थानिक-फुफ्फुसके कुछ हिस्सेमें; (२) व्यापक-एक या दोनों फुफ्फुसोंके भीतर।

१ स्थानिक प्रकार—अ. राजयक्ष्मामें स्थिर परिवर्त्तन आ. नववर्धन या धमन्यर्बुदसे श्वासनलिकापर दबाव; इ. शल्य।

२. व्यापक प्रकार—अ. चिरकारी क्षय (सौत्रिक तन्तुमय) एक पार्श्वका।

आ. श्वासप्रणालिकाप्रदाह यह रोमान्तिका कुक्कुर कास, इन्फ्लुएञ्जा, पुनरावर्त्तक श्वासप्रणालिकाप्रदाह तथा श्वासनलिकाप्रदाह आदि रोगोंमें उपस्थित होता है। सौत्रिक-तन्तुका फैलाव-श्वासनलिकामेंसे फैलते हैं। श्वासनलिकाप्रसारण वर्त्तमान। सम्मिलनशील श्वासप्रणालिकाप्रदाह सामान्यतम कारण। यह संकीर्ण प्रकार (Insular type) है।

इ. आशुकारी फुफ्फुसप्रदाह—अति क्वचित् अनुगामी रूपसे। प्रकृति भावकी प्राप्ति नहीं होती, गांठें बनती हैं। वायुकोषोंकी दीवार मोटी (पिंगल कठोरताकी प्राप्ति), होती है। यह खण्डीय ठोस प्रकार (Massive, Lobar type) है।

ई. फुफ्फुसावरणमेंसे प्रसारण-स्थूल फुफ्फुसावरण फुफ्फुसके भीतर किनारेपर सौत्रिकतन्तुओंकी क्रमोन्नति। फुफ्फुसका गहरा भाग अप्रभावित।

उ. धूल आदि जन्य फुफ्फुस विकृति (Pneumo-Coniasis) इसका वर्णन आगे किया जायगा।

ऊ. फिरंगरोग (उपद्रवरूप)।

मूलस्थान—सौत्रिकतन्तुओंके प्रारंभस्थान और फैलनेका मूलस्थानक(१) श्वासनलिकाके चारों ओरके तन्तु, जैसे श्वासप्रणालिकाप्रदाहप्रकारमें; (२) वायुकोषोंकी दीवार फुफ्फुसप्रदाह प्रकारके समान; (३) फुफ्फुसावरण और वायुकोष सबोंके भीतरकी दीवार।

शारीरविकृति—मुख्य दो प्रकार-(१) ठोस या खण्डीय, एक या अधिक खण्ड प्रभावित; (२) संकीर्ण या श्वासप्रणालिकाप्रदाहसह, विक्षिप्त स्थानोंमें। दोनों प्रकारोंमें श्वासनलिकाप्रसारण वर्त्तमान। इनके अतिरिक्त तीसरा जालदार प्रकार कचित्।

१. **ठोसप्रकार**—एक पार्श्वमें सामान्यतः निम्न खण्डमें। फुफ्फुस आकुंचनसे उरःपंजर और अवयव प्रभावित। फुफ्फुस छोटा, धूसर, वायुहीन, दृढ़। फुफ्फुसावरण संयोजन स्थिर। यदि क्षय हो, तो फुफ्फुस शिखरपर प्रायः विवर तथा दूसरा फुफ्फुसभी क्षय ग्रन्थिमय। फुफ्फुसावरण उत्पत्ति स्थान हो, तो वह आध इञ्च मोटा। अप्रभावित फुफ्फुस वायुकोष स्फाति युक्त।

२. **संकीर्ण या फुफ्फुस प्रदाहज प्रकार**—विक्षिप्त रंजित अनेक सौत्रिकतन्तुमय स्थान। विशेष निम्नखण्डमें। प्रायः केन्द्रस्थानके मध्यभागके तन्तु प्रसारित। फुफ्फुसावरण कुछ प्रभावित, क्षय कीटाणु रहित सौत्रिकतन्तुमय सामान्यतम प्रकार।

३. **जालदार प्रकार**— आड़ा ऊभा विभाजित सौत्रिकतन्तुमय प्रकार यह अति कचित्, हृदयकी अति वृद्धि सामान्य।

लक्षण--चिरकारी स्थिति। अनेक वर्षोंतक हलका कार्य संभवित। चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाहके लक्षण और लक्षणोंकी शनैः शनैः वृद्धि। (१) चिरकारी कफकास (शीतकालमें अधिक कष्टप्रद); (२) श्वासकी लघुता प्रायः परिश्रम करनेपर। सौत्रिकतन्तुमय फुफ्फुस सामान्यतः श्वासनलिकाप्रसारण या हार्दिक निर्बलता के समान वर्त्तमान।

चिह्न—दर्शन परीक्षा अति महत्व रखती है। सौत्रिकतन्तुमय फुफ्फुस की उत्पत्ति आकुंचनसे होती है।

दर्शन परीक्षा—(१) छातीकी दीवार प्रभावित पार्श्वमें खिंची हुई। कंधे नीचे गिरजाना, कंधेकी पेशियोंकी विशीर्णता। श्वसनसंचलन मंद। बृहच्छ्वासनलिका स्थानान्तरित। (२) हृदय प्रभावित स्थानकी ओर आकर्षित, दाहिनी ओर पूर्णांशमें। यदि बांयी ओर हो, तो विस्तृत प्रदेशमें स्पंदन (बायांऊर्ध्व खण्ड प्रभावित होनेपर हृदय स्पन्दन दूसरे और तीसरे पर्शुकान्तर प्रदेशमें) तथा शिखर स्पन्दन स्थानान्तरित ऊर्ध्व और बाहर। (३) मापनेपर प्रभावित पार्श्व अप्रभावितकी अपेक्षा छोटा।

स्पर्श परीक्षा—स्पर्शजन्य कम्पनका सामान्यतः ह्रास।

ठेपनपरीक्षा—एक या दोनों श्वासनलिकाके प्रसारण और विवरके हेतुसे नानाविध आवाज़। विशेषतः ठेपन ध्वनिका ह्रास।

ध्वनिश्रवण—ठेपनके अनुरूप नानाविध। विशेषांशमें फुफ्फुस पीठपर श्वसन ध्वनि निर्बल और बुद्बुदे सदृश अस्वाभाविक ध्वनि। शब्द ध्वनिका ह्रास। शिखरपर कौप्यकध्वनि।

अप्रभावित पार्श्व—स्फीतिमय, स्थूल, बढ़ी हुई आवाज़ युक्त।

अंगुलियोंके अग्रपर्वकी स्थूलता—सामान्य। उक्त चिह्नोंकी सर्वावस्था प्रतीत होती है।

रोगजीर्ण होनेपर मुख-मण्डलपर गात्रनीलता भी सामान्यतः प्रतीत होती है। यह रोग दीर्घकाल स्थायी है। रोगी क्रमशः शीर्ण होता जाता है। वक्षः प्रदेशमें खिंचाव और व्याकुलता होती है, कभी-कभी वेदनाभी।

कफ—क्षयकीटाणुके निर्णयार्थ परीक्षा करें। सब प्रकारोंमें गौण संक्रमण सामान्य।

रोगविनिर्णय—बहुधा दर्शन परीक्षा काफी है। अन्य प्रकारोंसे क्षय प्रकारका प्रभेद-(१) कफमें क्षय कीटाणुओंका अभाव; (२) दूसरा शिखर सामान्यतः शिखरपर चिह्न दर्शाता है (क्षय हो तो क्षयका)। फिरभी प्रभेद करना अशक्य। श्वासनलिका विस्तारकी उपस्थिति हो, तो कफ दुर्गन्धमय।

परिणाम—श्वासनलिका विस्तारके अभावमें और विगलनात्मक प्रकोप (Sepsis) न होनेपर अच्छा। प्रायः १५-२० वर्ष तक अवस्थिति। विशेषतः दक्षिण हृदयके पतनसे मृत्यु। क्वचित् रक्तस्राव, वसापक्रान्ति। फुफ्फुसकोथसे मृत्यु।

चिकित्सोपयोगी सूचना

सौम्य जलवायुमय प्रदेशमें निवास। आहार-विहारमें योग्य सम्हाल। लघुपौष्टिक आहार और प्रातःकालके सूर्य किरणोंका सेवन। चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह और श्वासनलिकाप्रसारण होनेपर लक्षणके अनुरूप उपचार। शराबका व्यसन हो, तो होसके उतना कम कर देना चाहिये या छोड़ देना चाहिये। श्वासप्रणालिकाप्रदाह, फुफ्फुसप्रदाह और पूयमय विकारमें प्रत्येक रोगीको प्रकृतिभावकी प्राप्तिकालमें आवश्यक दीर्घश्वासग्रहणमय व्यायाम करना चाहिये। जिससे फुफ्फुस पीठका फैलाव होता है और सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध होता है।

सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्ति हो जानेपर यदि क्षय कीटाणुकी उत्पत्ति न हुई हो, तो फुफ्फुसोंका विस्तार करने तथा श्वासनलिका विस्तारकी उन्नतिको रोकनेके प्रयत्नार्थ नित्य नियमित परिणाममें दीर्घश्वसन करना चाहिये, किन्तु धूलि, धुआँ, सील आदिसे रहित विशुद्ध वातावरणमें सूर्यके प्रकाशका सेवन करें। अधिक शीत न लग जाय, यह सम्हालें। शीतकालमें कम शीतवाले प्रदेशमें रहना अधिक हितावह है।

फिरंगज सौत्रिक तन्तु हो तो फिरंग नाशक औषधि-आयोडीड, रस मूर्तिरसायन, समीररस, रक्तशोधकारिष्ट आदि देना चाहिये।

३६. फुफ्फुसोंमें कणसंचय

न्युमोकोनियोसिज़-डस्ट डिज़ीज़ ऑफ दी लंग्स

(Pneumoconiosis-Dust disease of the Lungs)

परिचय—दीर्घकाल तक फुफ्फुसोंमें धूलि, धुआँ, कोयला, आटा, रुई, रंग आदिके कणोंका प्रवेश होता रहनेसे फुफ्फुसोंके भीतर सम्प्राप्त्यात्मक परिवर्तन होजाता है। फिर अनुगामी रूपसे रोग निदानकर विकृति उपस्थित होती है।

प्रकार—आकर्षित कणोंके स्वभावपर अवलम्बित।

१. खनिज कणसंचय—(Silicosis)।

२. खटमग्नाणु संचय—(Asbestosis)।

३. कर्बाणु संचय—(Anthracosis)।

उक्तकण बड़ी मात्रामें वायुमार्गसे देहमें प्रवेश होते रहते हैं, इनमेंसे कतिपय नासिका और ग्रसनिका द्वारा रोक लिये जाते हैं।

बृहच्छ्वासनलिका और विभाजित श्वासनलिकामें—अवस्थित श्लैष्मिकाणु आये हुए उन अणुओंको धारण करते हैं, पक्ष्म सदृश प्रवर्द्धन उनको आगे बढ़ाते हैं। कास उनका कफके भीतर निक्षेप कराती है। श्वासनलिकाप्रदाह (कास) के साथ बहुजीवकेन्द्रमय क्षार प्रियश्वेताणु भी उपस्थित होते हैं।

लघु श्वासनलिकामें—फुफ्फुसके वायुकोषोंकी दीवारोंके घटक श्वासप्रणालिका के शिरेपर अवस्थित फुफ्फुसगत वायुकोषकी आच्छादक कलाकी सूक्ष्म पर्त, जिनपर कण चिपके हैं, उनको निकाल देते हैं।

वायुकोष—इनको धूलि सामान्यतः मामूली पहुँचती है या नहीं पहुँचती।

(१) फुफ्फुसमें खनिज कण संचय

(सिलिकोसिज़–Silicosis)

फुफ्फुसमें खनिज कणोंका संग्रह होनेपर फुफ्फुसमें व्यापक रूपसे रोगप्रदर्शन परिणाम गांठदार सौत्रिकतन्तुओंकी प्राप्ति होती है। इस रोगके महत्वका कारण खनिज कण (Silica) अथवा सिलिकन डाइ ऑक्साइड (Silicon Dioxide) है। यद्यपि कितनेक कतिपय ग्रन्थकारों ने एल्युमिनियम और पोटासियमके हाइड्रेटिड सिलिकेटसे भी संप्राप्तिका उल्लेख किया है; किन्तु उसका सर्वत्र स्वीकार नहीं हुआ।

क्रियापद्धति इसकी गतिका आधार-(१) आकर्षित धूलिकी मात्रा; (२) खनिजकणका सामर्थ्य (३) अणुओंका कद। १० म्यू० से बड़े अणु आपत्तिकर नहीं होते, छोटे कद (१ से ३ म्यू०) के अणु सत्वर क्रिया करने लगते हैं। यान्त्रिक आघात-

से रोगोत्पादक क्रिया नहीं होती; किन्तु कण देहके भीतर तरलमें मिल, सिलिसिकाम्ल (Silicic Acid) की रचना करके हानि पहुँचाता है । धारण शक्ति सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्ति के लिये द्रवाभूत होनेमें सम्बन्धित होती है । खनिज कण (सिलिका) सिलिकन मिश्रणमें अत्यन्त द्रवणीय है ।

शारीर विकृति— पूरे फुफ्फुसपर व्यापक परिवर्त्तन होता है उनकी अवस्थाएँ—

१. अणु वायुकोषों और वायुप्रणालिकाओंमें पहुँचते हैं ।

२. वायुकोषोंके भक्षक (Phagocytic) घटक अणुओंको धारण करते हैं और जो लसीकातन्तुओंके छोटे उभारोंके पास प्रेरित करते हैं । फिर वे फुफ्फुसोंमेंसे अन्तिम श्वासप्रणालिका शाखाओंके पास विक्षिप्त होते हैं ।

३. द्रव होनेके पश्चात् कण इन उभारोंमें प्रदाह और सौत्रिकतन्तुओंकी रचना करते हैं । जिससे खनिज कणमय क्षुद्र द्वीप उत्पन्न होते हैं और उभारोंकी वृद्धि होती है, ये 'क्ष' किरण द्वारा प्रतीत होते हैं ।

४. आगे और आकर्षण होनेपर उत्तरकालीन प्रवर्द्धनोंकी वृद्धि होती है । फिर उभारोंका सम्मिलन होनेपर ठोस सौत्रिकतन्तुओंका प्रदेश बन जाता है । ग्रन्थियोंकी नलिका संस्थान, जो रस वहन करती है, उससे फुफ्फुसभी प्रभावित हो जाता है ।

राजयक्ष्माकी ग्रन्थियाँ—बृहत् परिणाममें वृद्धि, संभवतः रक्षण करनेवाले बहुजीवकेन्द्रमय घटकों को हानि पहुंचनेसे ।

निदान—

१. पहाड़ोंपर सुवर्णादिकी खानोंमें काम करना ।

२. कोयलेकी खानोंमें काम करनेवालोंको पहाड़ोंमें छिद्र करनेपर ।

३. कलईकी खानोंमें काम करनेवाले, पत्थरोंके काम करनेवाले, धातुओंको घिसनेवाले, रेती उड़ानेवाले, चीनी मिट्टीका काम करनेवाले, सीमेण्ट बनानेवाले, इन सबको लगभग समान सम्प्राप्ति ।

लक्षण—मंद उन्नति ।

श्वासकृच्छ्रता—लक्ष्य देने योग्य । भौतिक चिह्नके परिमाणसे बाहर ।

कास—जीर्णावस्थामें बढ़ती है । अनुत्पादक ।

जीर्णावस्थामें—श्वासनलिकाप्रदाहका स्वभाव । फुफ्फुसावरणमें वेदना । गात्रनीलता देरसे ।

अभाव—ज्वर, हृदयगतिकी वृद्धि (हृत्स्पंदवर्द्धन-Tachycardia), बलका ह्रास, थूकमें रक्तस्राव, कफस्राव, इन सबका अभाव ।

वक्तव्य—राजयक्ष्मा हो तो इसके लक्षणोंकी जल्दी वृद्धि करता है ।

चिह्न—लक्षणोंसे मंद तुलना करता है । आगे बढ़े हुए प्रकारोंमें उरःपंजर

जकड़ा हुआ, मर्यादित संचलन, ठेपन रिक्तध्वनि (वायुकोष स्फीतिमेंसे), पीड़ित स्थानोंमें जड़ता।

'क्ष' किरणोंके चित्रोंमें फुफ्फुसमें सर्वत्र उभारोंकी विच्छिन्न छाया प्रतीत होती है।

कफकी—परीक्षा करनेपर खनिजाणु मिलते हैं। अणुवीक्षणयन्त्रसे विशेष प्रकारके आकर्षित (पोलराइज्ड) प्रकाशद्वारा देखनेपर स्पष्ट प्रतीति होती है।

क्रम—मन्दगतिसे वर्द्धनशील। आक्रमणात्मक लक्षण उपस्थित होनेके पश्चात् २ से २० वर्ष तक। क्षय कीटाणुओंका अभाव हो और आक्रमितव्यक्ति स्थान परिवर्तन करे, तो रोग बढ़ नहीं सकता।

फुफ्फुसमें धातवाणु संचय (Sidarosis)—यह लोह, कलई, शीशा आदि के कारखानोंमें कार्य करनेवालोंको तथा लोह घिसने वालों को प्राप्त होता है। संभवतः खनिज कणजन्य धातवीय अणुओंके सहकारी धारणसह प्राथमिक सौत्रिक-तन्तुओंकी प्राप्ति। (खनिजाणु सिलिका) की संप्राप्तिकी अपेक्षा लोहाणुकी मन्दतर गतिसे उन्नति होती है।

चिकित्सा

रोगोत्पत्ति रोधक उपाय—खान और कारखानेमें काम करनेवालोंको चाहिये, स्थानमें जलसिंचन करते रहें और वायुसंचालनका प्रबंध करें, जिससे धूलिका ह्रास हो। मुखाच्छादक (Mask) का उपयोग करें। व्यक्तिगत स्वच्छता रक्खें। ऐसे स्थानों पर कार्य करने वालोंकी 'क्ष' किरण परीक्षा नियमित ६-६ मास पर करते रहना चाहिये।

रोगशामक चिकित्सा—लक्षण अनुरूप। श्वासनलिकाप्रदाह और वायु-कोषस्फीतिकी। रोग प्राप्तिरूप कार्य छुड़ा देना चाहिये।

(२) फुफ्फुसमें खटमग्राणु संचय

(एस्बिस्टोसिज़—(Asbestosis)

खटमग्र (Asbestos-Magnisum silicate) के प्रभावसे फुफ्फुसोंके तन्तुओंके भीतर व्यापक सौत्रिकतन्तुओंकी प्राप्ति होती है। (सौत्रिकतन्तुओंकी रचनाके साथ केवल खनिज पदार्थ विदित हुआ है) व्यापक सौत्रिकतन्तुकी रचनामें यह खटमग्र खनिज कण (Silicosis) संचयसे पृथक् होता है इसमें राजयक्ष्माकी उत्पत्ति कराने का मन्द स्वभाव है।

१. क्रिया पद्धति—खटमग्रकी फुफ्फुसमें प्राप्त विधि।

२. खटमग्र अणु (Asbestos bodies)—सुवर्ण सदृश पीले या पिंगल लम्बाई ७५ म्यू. ($\frac{1}{350}$ इंच)। ये अणु गोल पिण्ड रूप बन जाते हैं। फुफ्फुसमें से जो कफ निकलता है, उसके चारों ओर खटमग्रके तन्तुके सूक्ष्म अंश लगे हुए प्रतीत होते हैं। ये अणु लोह सदृश नील (Prussian blue) प्रतिक्रिया दर्शाते हैं।

संप्राप्ति—फुफ्फुसतन्तुओंके भीतर व्यापक जालदार सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्ति, विशेषतः निम्नखण्डमें । फुफ्फुसावरण मोटा होजाता है और महाप्राचीरासे संलग्न हो जाता है । वायुकोषप्रसारण और श्वासनलिकाप्रसारण सामान्य ।

लक्षण और चिह्न—खनिजाणुके सदृश किन्तु प्रगति मन्दतर । श्वासनलिका प्रसारण सामान्य । कफकी परीक्षा सामान्य अणुवीक्षणसे ही करनेसे खटमणाणुकी प्रतीति होजाती है ।

(३) फुफ्फुसमें कर्बाणु संचय

(Anthrocosis)

इस प्रकारमें फुफ्फुसके भीतर कर्बाणु (कोयलेके अणु) वर्त्तमान होते हैं । यह शहरवासियोंमें और कोयलेकी खानमें काम करने वालों में मिलता है । कर्बलसीकावाहिनियाँ, फुफ्फुस ग्रन्थियाँ, फुफ्फुसान्तरालकी ग्रन्थियाँ तथा फुफ्फुसावरणमें प्रतीत होता है । वैधानिक परिवर्त्तन किञ्चित् होता है । मृत व्यक्तियोंके फुफ्फुसोंकी परीक्षा करने पर काले प्रतीत होते हैं ।

आधुनिक विद्वानोंकी मान्यता है कि इस प्रकारमें कितनेक लक्षण अपूर्ण प्राप्त खनिजाणुके समान होते हैं । अतः इनसे क्षयकी संप्राप्ति न हो, यह सम्हालना चाहिये ।

कार्पासाणुसंचय (Bussinosis)—कोयलेके समान सूत और कपड़े की मिल, जिन, रुई की गांठ बांधने का प्रेस आदिमें कार्य करनेवालोंके फुफ्फुसोंमें कार्पासाणु मिलते हैं ।

इस तरह पत्थरकी खानोंके मज़दूर, पत्थरोंके काम करनेवाले कारीगर और चीनी मिट्टीके कारखानेके मज़दूरोंके कफमें मृद्क्षार के अणु (Lithosis or पत्थरके अणु Chalicosis) तथा कलई, जसद, सीसा, लोहा, सोना आदि की खानोंमें काम करने वालोंके कफमें धात्वाणु मिलते हैं । उससे प्राप्त रोगको डॉक्टरोंमें सिडरो सिज़ (Siderosis) संज्ञा दी है । रंगके कारखाने और टाइपफाउण्ड्रीमें कार्य करने वालों के कफमें सीसाके परमाणु मिल जाते हैं ।

४० श्वासनलिकामें गांठदार अर्बुद

एडिनोमा ऑफ दी ब्रोंकस—Adenoma of the Bronchaus.

यह रोग सामान्यतः ४० वर्षसे कम आयुवालों में ६० प्रतिशत होता है । एवं इस रोग पीड़ितों में स्त्रियोंकी संख्या ६० प्रतिशत ।

शारीर विकृति—सामान्यतः विभाजित मुख्य श्वासनलिका पीड़ित होती है । यह दीवारकी श्लैष्मिक-कलामें उत्पन्न होता है और भीतर आवे भागमें बढ़ता है । ग्रन्थिका विशेषभाग दीवारमें रहता है । कम हिस्सा नलिकामें आता है । आकार वृन्त-रहित नलिकाकार अर्बुदके समान । यह ग्रन्थि मुलायम, तेजस्वी और अति रक्त

वाहिनीमय होती है। यह कम घातक है। जीर्णावस्थामें फुफ्फुसमें प्रवेश करती है; किन्तु क्वचित् यह दूसरोंकी मार्फत (घातक अर्बुद या अन्योंके घटकों द्वारा) आगे बढ़ती है।

लक्षण - रक्तमय कफस्राव प्रायः प्राथमिक लक्षण है। अन्य कितनेक रोगियोंमें शुष्क उरस्तोय, तरलमय उरस्तोय या पूयमय उरस्तोयसह उपस्थित होती है। यदि श्वासनलिकाका अवरोध होता है, तो कण्ठमें सांसां आवाज़ (Wheezing), फुफ्फुसका वलक्षय और श्वासनलिकाप्रसारण होता है।

रोग विनिर्णय—रक्तमय कफस्राव, फुफ्फुसका शक्तिपात या श्वासनलिका प्रसारणसे। कितनेक रोगियोंमें फुफ्फुसावरणके भीतर तरल सञ्चय होनेपर मौलिक कारणकी संभवतः उपेक्षा होजाती है। यथार्थमें श्वासनलिकादर्शक यन्त्रकी सहायतासे ग्रन्थिका टुकड़ा निकाल अणुवीक्षण यन्त्रद्वारा परीक्षा करके निदान करना चाहिये।

परिणाम—प्रथमावस्थामें रोगनिर्णय होजाने पर शुभ।

चिकित्सोपयोगी सूचना—श्वासनलिकादर्शकयन्त्रमेंसे चिमटेद्वारा निकाल देनेका प्रयत्न करने पर या डॉयाथर्मी यन्त्रद्वारा विद्युतोपचार करने पर घातक रक्तस्राव होनेकी भीति रहती है। गम्भीर 'क्ष' किरण चिकित्सा, यह श्वासनलिका दर्शकयन्त्रके भीतरसे रेडोन सीड्सका प्रवेश करानेकी अपेक्षा अधिकतर सफल है। फुफ्फुसके भीतर पूयोत्पत्ति या श्वासनलिकाप्रसारण हो, तो प्रतिबन्ध या रोगनिवारणार्थ फुफ्फुसखण्डके छेदनकी शस्त्रक्रिया करनी पड़ती है।

४१ बृहच्छ्वास नलिकामें अवरोध

ट्रेकियल ऑबस्ट्रक्शन—Tracheal Obstruction.

बृहच्छ्वास नलिकामें अवरोध बढ़नेपर महाश्वासके समान लक्षण उपस्थित होते हैं।

निदान—

१. नलिकाके आड़े भागमें—शल्य (विजातीय द्रव्य) का प्रवेश। परिणाम में कभी तत्काल मृत्यु, कभी कासवेगसे शल्य बाहर आजाना, क्वचित् विभाजित श्वासनलिकामें चला जाना। इसके अतिरिक्त नलिकाके आड़े भागमें वृन्तमय स्पर्शाङ्करार्बुद (Papilloma) होजाना।

२. दीवारके भीतर—गम्भीर उत्तेजना होने पर सौत्रिकतन्तुओंका निर्माण। क्षत पर आच्छादक त्वचा या बृहच्छ्वासनलिकामें कृत्रिम छिद्र करने पर व्रणवस्तुकी उत्पत्ति। फिरंग, कुष्ठ, मस्से, गौण घातक द्रव्य और अर्बुद से अवरोध।

३. दीवारके बाहर—ग्रैवेय ग्रन्थिका दबाव होनेपर बृहच्छ्वासनलिका समतल होजाना (Scabbard trachea), या ग्रैवेयी ग्रन्थियोंपर नववर्धन,

फुफ्फुसान्तरालमें अर्बुद। बालग्रैवेयक ग्रन्थिकी वृद्धि, धमन्यर्बुद आदिका दबाव। छोटे बच्चोंमें विशेषतः बाल ग्रैवेयक ग्रन्थिका दबाव।

लक्षण—श्वासकृच्छ्रता-श्वासग्रहणमें अकस्मात गम्भीर आक्रमण। बृहच्छ्वासीय कपोत कूजनवत ध्वनि (Tracheal stridor) की श्वासग्रहणमें अत्यन्त प्रतीति। निद्रा आने पर प्रारम्भमें दर्शनीय।

शारीरिक उत्ताप सामान्य। गात्रनीलता और श्वासकृच्छ्रताकी समय-समय पर वृद्धि। यदि प्रवेशित शल्य आगे विभाजित श्वासनलिकामें चला जाता है, तो श्वासकृच्छ्रता और व्याकुलतामें वृद्धि हो जाती है। जब अवरोधकी गम्भीर स्थिति हो जाती है, तब स्वरयंत्रमें भी अग्रगामी स्पष्ट श्वास प्रतिबन्ध होने लगता है तथा श्वसनक्रिया करानेवाली मांसपेशियाँ दृढ़तापूर्वक आकुंचित होती हैं। श्वासग्रहण कालमें लघु पर्शुकाभी भीतर खिंचती रहती है।

रोगविनिर्णय— इस रोगको गलौघ (Crup) से पृथक् करलेना चाहिये।

चिकित्सा—कारणानुसार। बच्चा हो तो उसे ज़मीनपर लेटने न देवें। 'क्ष' किरण से सत्वर निर्णय करे तथा श्वासनलिका दर्शकयन्त्रकी सहायतासे शल्यको बाहर निकालनेका प्रयत्न करें।

४२ विभाजित श्वासनलिकामें अवरोध

(ब्राँकियल ऑब्स्ट्रक्शन—Bronchial Obstruction)

कारण—बृहच्छ्वासनलिकाके अनुरूप विजातीय द्रव्य बांयी नलिकाकी अपेक्षा दाहिनीमें अधिकतर प्रवेश करजाता है। कारण, दक्षिण ओरका संधिस्थान कुछ अधिक चौड़ा और कम तीक्ष्ण कोणयुक्त है।

१. नलिकाके आड़ेभागमें—विजातीय द्रव्यका प्रवेश। कभी बृहच्छ्वास नलिकाके कृत्रिम छिद्र करनेपर उसमेंसे या विभाजित श्वासनलिकाकी दीवारमेंसे ग्रन्थियोंके चलके टुकड़ेका प्रवेश।

२. दीवारमें—गंभीर उत्तेजनाके आकर्षणके पश्चात् सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्ति। उत्तेजनाके हेतु-फिरङ्ग, क्षयक्षत आदिसे चलाच्छादक त्वचा, नववर्द्धन आदिकी उत्पत्तिसे। गांठदार अर्बुद (Adenoma) और कर्कस्फोटकी कारणरूपसे अधिक प्रतीति।

३. दीवार पर बाहरसे दबाव— अन्ननलिका, फुफ्फुसान्तरालमें अर्बुद, फुफ्फुसके भीतर अर्बुद, हृदयावरणमें तरल संग्रह, धमन्यर्बुद आदिसे दबाव।

अनुगामीरोग—(१) फुफ्फुसाकुंचन सत्वर या क्रमशः; (२) गलनात्मक विषज प्रवर्द्धन, कोथ, श्वासनलिका विस्तार, विद्रधि आदि।

लक्षण—अकस्मात् अवरोध, वेदना और कासोत्पत्ति। जीर्णावस्थामें फुफ्फुस स्थिति अनुसार लक्षणोत्पत्ति।

कर्क स्फोटज वाम फुफ्फुसगत श्वास नलिकामें
अवरोध और रसवातभृत फुफ्फुसावरण ।

सामान्यतः प्रारम्भमें छातीमें कुछ असुख और साधारण कास। यदि विगलनावस्थाकी प्राप्ति होती है, तो उसके पहले नानाविध गुप्त क्रम होजाते हैं। फिर प्रायः प्रथम लक्षण कासके पश्चात् दुर्गन्धमय श्वसन। पश्चात् दुर्गन्धमय थोड़ा कफ गिरना-होगी कास, कफस्राव और ज्वरसह प्रबलतर बीमार होजाता है।

चिन्ह—ठेपनमें थोड़े प्रदेशके भीतर जड़ता। नलिकामेंसे श्वसनध्वनि कुछ अस्वाभाविक मन्दध्वनिसह।

यदि बेरके सदृश गोलद्रव्य हो और श्वासनलिकामेंसे फुफ्फुस मुखपर चलाजाय, तो समस्त फुफ्फुसके वायुकोषोंका आकुंचन होता है। फिर उस पार्श्वकी छातीके फुलावका ह्रास और उसमें वायुप्रवेश की कमी या अभाव। ध्वनि संचालन वृद्धि। हृदयपीड़ित पार्श्वमें स्थानान्तरित। अन्य कितनेक रोगियोंमें श्वासनलिकाप्रसारण या विद्रधिकी संप्राप्ति। लिपियोडोल (Lipiodol) का अन्तःक्षेपण कर 'क्ष' किरणोंद्वारा परीक्षा करके अवरोधके स्थान और स्थितिका निर्णय करें। कभी कर्कस्फोटज अवरोध, अर्बुद या फिरंगज आकुंचन होजाता है, वह हेतुभी 'क्ष' किरणसे विदित होजाता है।

चित्र नं० २६ में आर्टपर देखें।

रोगविनिर्णय—निदान करनेके पहले नाक, ग्रीवा आदिकी शस्त्र क्रियाके इतिहासका विचार करें। दुर्गन्धमय कफ हो तो दूषित विजातीय शल्यका निर्णय होजाता है।

परिणाम—विजातीय द्रव्य छोटा है और वेदना कम है तो सरलतासे निकल सकता है। मुलायम और दूषित द्रव्यसे विगलनात्मक विष फैलगया हो, तो परिणाम गंभीर। घातक अर्बुदज अवरोध हो, तो बिलकुल असाध्य।

चिकित्सा—श्वासनलिकादर्शककी सहायतासे कठोर विजातीय द्रव्यको निकाल लेवें। फिरंगज उपद्रव हो, तो मल्लप्रधान चिकित्सा अष्टमूर्ति रसायन, समीररस आदि तथा पोटास आयोडाइड देना चाहिये।

४३ फुफ्फुसविद्रधि

एब्सेस ऑफ दी लंग्ज़—Absess of the lungs.

इस रोगमें फुफ्फुसके तन्तुओंमें पूयोत्पत्ति होती है। सर्वदा यह गौण होता है।

निदान—

१. वेदनाप्रदवस्तु आदिके प्रवेशजन्य फुफ्फुस प्रदाह (Aspiration Pneumonia)—पक्षवध, स्वरयंत्र विकार, ग्रीवाके अभिघात, उन्माद आदिमें अन्न, धूलि या इतर विजातीय द्रव्यका फुफ्फुसमें प्रवेश। क्वचित् निद्रावस्थामें शराब आदिसे मत्त व्यक्तिके मुहमेंसे विजातीय द्रव्यका प्रवेश होजाना।

२. बाह्यस्थानसे पूयात्मक रोगविस्तार—पूयभृत फुफ्फुसावरणका विदारण, महाप्राचीराके निम्न देशमें विद्रधि, कृमिजन्य रसार्बुद, पर्शुकाभग, क्वचित् घावका फूटना आदिसे।

३. श्वासनलिकामें बाह्यद्रव्य प्रवेश-आकर्षित फुफ्फुसप्रदाह (Inhalation Pneumonia) उदा० दांत या शस्त्रचिकित्साके पश्चात् उपजिह्विका आदिके टुकड़ेका प्रवेश होनेपर।

४. संक्रामक परिभ्रामकशल्य (Infective Emboli)—महाप्राचीराके निम्नभागके वर्द्धनशील विद्रधिसे। स्थानिक लक्षण क्वचित्।

५. श्वासनलिकाप्रसारण या नववर्धनका विदारण।

६. खण्डीय फुफ्फुसप्रदाह—क्वचित् अन्तिमावस्थामें-उदा० मधुमेहसह।

७. इन्फ्लुएञ्जा, श्वास प्रणालिकाप्रदाह।

शारीर विकृति—नूतनविद्रधि। गलित दीवारोंसह अनियमित विवर। घृणाजनक दुर्गन्धयुक्त मृत तन्तु। दृढी भवन प्रदेशसे घिराहुआ विद्रधि। जीर्णांतर विवर मुलायम सौत्रिकतन्तुओंकी दीवार युक्त। आकर्षित द्रव्यजन्य विद्रधि विशेषतः दक्षिण फुफ्फुसमें होता है।

लक्षण और चिह्न—वैधानिक विशेषलक्षण तथा विगलनसे उत्पन्न दृश्य। उपजिह्विका निकालनेके थोड़े ही दिनोंके बाद प्रारम्भ आदि। ज्वर, पूयस्राव होने पर ज्वरका ह्रास, कास, श्वासकृच्छ्रता और वेदना।

अंगुलियोंके अग्रपर्वका चौड़ापन—सत्वर वृद्धि।

कफ—केवल श्वासनलिकासे सम्बन्ध होनेपर कफ दुर्गन्धमय, किन्तु श्वासनलिकाप्रसारणके और कोथजन्य कफके सदृश मधुर दुर्गन्धमय नहीं। कफमें पूय और स्थिति-स्थापक तन्तु वर्त्तमान। श्वासनलिकामें विद्रधि फूटनेपर पूयात्मक दुर्गन्धमयकफ २४ घण्टेमें १४ औंस या अधिक निकलता है।

प्राकृतिकचिह्न—दृढी भवनके चिह्न, टेपनध्वनि पत्थरपर चोट लगानेके समान और स्पर्शजन्य कम्पनका अभाव। श्रवण परीक्षामें अस्वाभाविक ध्वनि। विवरोंके चिह्न क्वचित्।

रक्तमें श्वेताणुवृद्धि (श्वेताणु १२,००० से १५,००० प्रति मि० मी०)।

'क्ष' किरणसे चित्र—वर्तुलाकार घन अपारदर्शकता। दृढी भवनके चारों ओर तरलमय सतह। विजातीय द्रव्यके लिये परीक्षा करनी चाहिये। लिपियोडोल औषधि विवरोंमें नहीं जाती।

उपद्रव—यदि विद्रधि सतहतक पहुँचता है, तो विविध प्रकारका पूयात्मक उरस्तोय, फुफ्फुसकोथ, हृदयावरणप्रदाह, रक्तमय कफस्राव, मस्तिष्कविद्रधि। रोगजीर्ण होनेपर वसामय विकार।

कितनेक रोगियोंमें संयोजन होजानेसे विद्रधि फुफ्फुसावरणमें फूटता है। ऐसे रोगी उस पार्श्वमें वेदनाका अनुभव करता है उत्तापवृद्धि होती है तथा फुफ्फुसावरणमें द्रव बढ़ने लगता है। तत्काल उसे निकालकर परीक्षा करनी चाहिये।

रोगविनिर्णय—कठिन। स्थितिस्थापकतन्तु कफमें होते हैं। श्वासनलिका

दर्शकयन्त्रसे महत्वकी सहायता मिलजाती है। पूयभृत् फुफ्फुसावरण, अर्बुद, क्षय, सौत्रिकतन्तुकी उत्पत्ति और श्वासनलिका प्रसारणके लक्षणोंसे पृथक् करें।

परिणाम—घातक। विशेष आधार रोगीकी प्रतिरोधक शक्तिपर। फुफ्फुसावरणप्रदाहके पश्चात् होनेपर आराम। प्रवेशज फुफ्फुसावरण और विजातीय द्रव्यके प्रवेशज होनेपर मृत्युसंख्या अत्यधिक।

फुफ्फुसविद्रधि चिकित्सा

औषधोपचार—क्रियोसोटकी नस्य (विशेषतः बर्नीयोओके बाष्पयन्त्रमें क्रियोसोटका फोहा रखकर उसे चश्माके समान कानपर लगाते हैं। वर्णन रुग्णपरिचर्याके छठवें प्रकरणके भाग २४ में देखें।) सल्फोनेमाइडका कम प्रभाव। संस्थिति अनुरूप पूय निकलनेका मार्गकर देना चाहिये।

शस्त्रचिकित्सा—श्वासनलिका दर्शकयन्त्रसे शस्त्र प्रवेश। फुफ्फुसाकुञ्चन। फुफ्फुस खण्ड छेदनभी सम्भवित।

यदि फुफ्फुसका फुफ्फुसावरणसे संयोजन होनेसे फुफ्फुसावरणमें विद्रधि फूटे, तो तत्काल पशुकाको तोड़कर पूयको निकालनेका मार्ग कर दें। संयोजन न होनेपर २ समय शस्त्रचिकित्सा करनी पड़ती है पहली विद्रधिपर फुफ्फुसावरण संयोजन की क्षति पूरणार्थ; दूसरी विद्रधिके पूय निर्गमनार्थ। इस का परिणाम अनेक रोगियोंमें अच्छा आता है; किन्तु अनेक मास लगजाते हैं। कभी आराम होनेके पश्चात् फिर घाव फटकर पुनः पूयस्राव होने लगता है। कभी नाड़ी व्रण बन जाता है।

४४ फुफ्फुस कोथ

ग्रेंग्रीन ऑफ दी लंग—Gangrene of the Lung.

निदान—यह विद्रधिकी बढ़ी हुई अवस्था है। तन्तुध्वंसमय प्रदेशके विगलनके हेतुसे कोथ होता है। उत्पत्तिकी पद्धति संशयात्मक। पूयोत्पादक कीटाणु और बिना वायु जीवित रहनेवाले कीटाणु (Anaerobic Bacilli) की प्राप्ति (कदाच अन्तःक्षेपण द्वारा) तथा रोगीकी प्रतिरोधक शक्ति अति कम होनेपर कोथ होता है। सम्प्राप्ति निम्न अवस्थाओंमें होती है।

१. गलनात्मक विषज श्वासप्रणालिका प्रदाह—यह इसका मूल हेतु है।

अ. कण प्रवेशज फुफ्फुस प्रदाह (Aspiration Pneumonia) पक्षवध और स्वरयंत्रके रोग, ग्रीवापर अभिघात या उन्माद पीड़ित व्यक्तियोंमें अति बारंबार।

आ अन्ननलिकाके अर्बुदका विदारण आदि; धमन्यर्बुदका श्वासनलिकापर दबाव होनेपर। पूयभृत फुफ्फुसावरण, महाप्राचीरा निम्नस्थ विद्रधि या यकृद्विद्रधिका विदारण। मध्यकर्णका पूयप्रदाह।

इ. श्वासनलिकाप्रसारणज द्रव्य या अति कचित् राजयक्ष्माके विवर ।

२. श्वासप्रणालिका प्रदाह—विशेषतः रोमान्तिकाके पश्चात् । ऐसा कचित् ।

३. खण्डीय फुफ्फुसप्रदाह—मधुमेह या निर्बलता से पीड़ितों में कभी । बढ़ी हुई अवस्थामें कचित् अन्तिमावस्थामें ।

४. फुफ्फुसाभिगाधमनीमें परिभ्रामक शल्य—सामान्य विगलनात्मक, कचित् अन्नके भीतर ।

५. फुफ्फुसपर तीक्ष्ण शस्त्रका आघात—उदा० बन्दूककी गोलीजन्य घाव ।

सहायक कारण—मधुमेह, निर्बलता और संभवतः मंदात्यय । एवं वृद्धावस्था ।

शारीर विकृति—दो प्रकार—(१) व्यापक, पूरा फुफ्फुस अति कचित्; (२) सीमाबद्ध, इस प्रकारमें चारों ओर सीमा-दर्शक पंक्ति होती है, जो कोथके चारों ओर प्रतीत होती है । कोथ रक्त संग्रहमय प्रदेशके बाहर और तीव्र शोथ स्थानके आगे होता है । कोथमय प्रदेश पहले हरिताभ पिंगल (या हरिताभकृष्ण), फिर नरम होना, विवर बनना, गला हुआ और दुर्गन्धमय ।

लक्षण—सामान्यतः गुप्त आक्रमण । अति शक्तिक्षय । ज्वर विविध प्रकारका, मन्द या क्षयज (Hectic) रोगनिर्देशक—(१) दुर्गन्धमय निःश्वास; (२) दुर्गन्धमय कफस्राव, कफमें ३ तह होती हैं । झागदार, हरी आभावाला प्रवाही और हरी आभावाला निक्षेप । जीर्णावस्थामें स्थिर स्थापकतन्तु और प्रायः फुफ्फुसतन्तु का दमन; किन्तु सफेद, पिंगल या पीली आभावाली कफ गांठ (Dittrich's plugs) नहीं मिलती । रोग दर्शक प्राकृतिक चिह्न नहीं मिलते ।

बढ़े हुए गुप्तरोग, विशेषतः मधुमेह पीड़ितोंके तथा कोथमय प्रदेश, जिसका मुख श्वासनलिकासे न मिला हो, उनके शवकी परीक्षा करनेपर दुर्गन्ध या दुर्गन्धमय कफ नहीं मिला ।

उपद्रव—

१. फुफ्फुस सम्बन्धी—अ. श्वासनलिकाप्रदाह स्थिर । (गुप्त प्रकारमें अभाव); आ. रक्तमय कफस्राव; इ. उरस्तोय; ई. वातभृत् फुफ्फुसावरण-फुफ्फुसावरणमें फूटना ।

२. मस्तिष्कमें विद्रधि—बारंबार ।

परिणाम—कचित ही शुभ ।

चिकित्सा—लाभ होनेका संभव हो, तो शस्त्र-चिकित्सा । फुफ्फुसाकुंचन या संयोजन हो, तो शस्त्रद्वारा मार्ग कर नली डालकर पूयस्राव बाहर करावें अन्यथा श्वासनलिका प्रसारणके अनुरूप चिकित्सा करें । बर्मीयोके मुखाच्छादकमें क्रियोसोट द्रव डालकर नस्य करावें । डॉक्टरीमें नियोआर्सफेनेमाइन (नियो सल्वरसन् ९१४) का अन्तः क्षेपण करते हैं । आयुर्वेदमें समीररस या मल्लसिंदूर प्रयोजित करते हैं ।

४५ फुफ्फुसमें नववर्धन

न्यू ग्रोथ इन दी लंग—New growth in the Lung.

फुफ्फुसमें प्राथमिकतम घातक अर्बुदका आरंभ श्वासनलिकामें से होता है, किन्तु प्रथानुसार उनका वर्णन सामान्यतः फुफ्फुसके नववर्धनरूपसे किया जाता है, केवल गांठदार अर्बुद (Adenoma) अपवाद रूप है। इस तरह कभी कृमिज रसार्बुद (Hydatid cyst) और अति कचित् फिरंगज ग्रन्थि भी होती है।

सौम्य अर्बुद+ कूर्चार्बुद (Enchondroma), अस्थ्यार्बुद (Osteoma) तथा कचित् वसार्बुद (Lipomo), श्लेष्मार्बुद (Myxoma); सूत्रार्बुद (Fibroma), स्पर्शांकुरार्बुद (Papilloma) आदि। अतिवृद्धि कचित् ही। दबाव जन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं।

घातक प्राथमिक अर्बुद—सामान्यतः एक पार्श्वगत।

१. शुक्ति घटकमय कर्कस्फोट (Squamous Carcinoma)—फुफ्फुसके मूलमें कठोर, श्वेत, खुरदरा, दानेदार और वृद्धिमय। सम्प्राप्ति सामान्यतः ४० वर्षसे अधिक आयुमें।

२. स्तम्भाकार घटक और मण्डलाकार घटकमय कर्कस्फोट (Columnar and spheroidal celld carcinoma)—बड़ा, मुलायम गुलाबी आभावाला, सत्वर फैलनेवाला तथा स्थानानान्तरमें गति करने वाला (Metastasis)।

३. वर्तुलाकार और यवाकार घटकमय कर्कस्फोट (Round and oat celled Carcinoma) बड़े आकारका, मुलायम और शीघ्र वर्द्धनशील। संप्राप्ति लगभग ४० वर्षकी आयुमें।

उरःपंजरके भीतरके अर्बुद, अन्ननलिका का कर्कस्फोट पाण्डुलस लसीका

+ कूर्चार्बुद—यह पारदर्शक तरुणास्थि से उत्पन्न होता है। इसमें एक या अनेक खंड होते हैं।

अस्थ्यार्बुद—यह अस्थिमेंसे निकलता है। इसमें सछिद्र और ठोस २ प्रकार हैं। लम्बी हड्डियों के सिरेमें से सछिद्र अर्बुद बनता है। ठोस अर्बुद वृन्तरहित और छिद्रवाला वृन्त सहित होता है।

वसार्बुद—इसकी वृद्धि अधिक होती है। यह विशेष प्रसारणशील और स्थिति स्थापक होता है।

श्लेष्मार्बुद—यह चिपचिपे तरलमय होता है।

सूत्रार्बुद—यह श्वेततन्तुमय, कठिन या मृदु तथा कन्द्रिकामय होता है।

स्पर्शांकुरार्बुद—यह त्वचाके भीतर स्थिति स्पर्शांकुरोंमें से बनता है।

ग्रन्थियोंकी घातक वृद्धि (Lymphadenoma), दुष्टार्बुद* (Sarcoma), वर्णहीन दुष्टार्बुद (Leucosarcoma), इन सबका अन्तर्भाव घातक अर्बुदों में होता है ।

उपद्रवभूत (Secondary) घातक अर्बुद—इस प्रकारकी भी प्रतीति होती है । इसकी रचना—(१) अस्थ्यर्बुद और (२) बाह्य गर्भाच्छादक कलार्बुद (Chorion-epithelioma) में से; तथा (३) छाती; (४) पचनमार्ग; (५) अधिवृक्क तन्तुओंसे उत्पन्न वृक्कार्बुद (Hyper-Nephroma); (६) अग्न्याशय; (७) अधिवृक्क; (८) ग्रैवेय ग्रन्थि; (९) पौरुषग्रन्थिसे भी । इन स्थानोंमें घातक अर्बुद या कर्क स्फोट होनेपर फुफ्फुसको प्रभावित कर देते हैं । एवं फुफ्फुसान्तराल और फुफ्फुसावरणमें अर्बुद होनेपर वह सीधा आक्रमण भी कर सकता है ।

शारीर विकृति—फुफ्फुसके नववर्द्धनोंकी कुछ वर्षोंमें वृद्धि कारण अज्ञात । सामान्यतः लगभग ५० वर्षकी आयुमें संप्राप्ति; किन्तु कितनेक अल्पवयस्कोंको भी । अनुपात ४ पुरुष और १ स्त्री ।

लक्षण—आक्रमण अनिश्चित । श्वासकृच्छ्रताकी वृद्धि या कास या रक्तमय कफस्राव और ज्वर । वेदना अस्थिर किन्तु प्रारंभमें वातनाड़ियोंके मूल या फुफ्फुसावरण पर दबावके हेतुसे गम्भीर और रोगदर्शक, दृढ़ । रोगस्थान और वृद्धिकी दिशाभेदसे नानाविध लक्षण ।

१. फुफ्फुस और श्वासनलिकासे सम्बन्धवाली-रचना—(१) कास, कभी सुस्पष्ट पहले (शुष्क कास); (२) बृहद् श्वासनलिका विभाजनपर दबावसे अत्यन्त, श्वासकृच्छ्रता; (३) फुफ्फुसमार्गसे रक्तस्राव; (४) कफस्राव रक्तमिश्रित, यह परम्परागत किन्तु क्वचित् वर्त्तमान । घातक अर्बुदोंमें कफ थोड़ा और गोंदके सदृश चिपचिपा या लालरंग मिली हुई शक्करकी चाशनीके सदृश या फलोंके गहरे लाल रसके समान ।

२. फुफ्फुसावरण—पुनः-पुनः फुफ्फुसावरणमें तरलसंग्रहसे नववर्द्धनकी सूचना । तरल प्रायः स्वच्छ होता है, तथापि नववर्द्धन दृढ़ रक्तमयस्रावका कारणभी बारंबार हो जाता है । वातभृत् फुफ्फुसावरणभी बन जाता है ।

---

* दुष्टार्बुद (Sarcoma)—उत्पत्ति गर्भ व्याकरण दृष्टिसे संयोजकतन्तुओंमें से अधिकतर अस्थि, अस्थ्यावरण, मज्जा और लसिका ग्रन्थियोंमें उत्पत्ति । इसके भीतर रक्तवाहिनियाँ अधिक होने से रक्तसंचार अधिक होता है । परिणाममें रक्तस्राव बहुत होता है । इसमें स्थित विविध आकारके घटकोंके अनुसार इसके अनेक प्रकार होते हैं । इसकी संप्राप्ति विशेषतः बाल्यावस्था और युवावस्थामें होती है ।

३. दबावजन्य लक्षण—विशेषतः फुफ्फुसान्तरालकी ग्रन्थियाँ सम्मिलित हों तो—अ. उरःपंजर और मस्तिष्कके एक ओर में शोथ (यह भी अत्यन्त); आ. प्रसारित शिराएँ; इ. स्कंध और बाहुमें पीड़ा; ई. स्वरभंग (बारम्बार), निगलनेमें पीड़ा, दोनों कनीनिकाओं में विषमता। वर्द्धनशील क्षीणता-देहका वज़न कम होता रहता और पाण्डु। सामान्यतः मंदज्वर उक्त लक्षण सर्व वर्त्तमान। इनके अतिरिक्त घातक अर्बुदोंमें गात्रनीलता, पैरोंपर शोथ, अरुचि, स्वेद वृद्धि, कण्ठमें सां-सां आवाज़, शिराओंमें रक्ताधिक्य आदि भी।

चिह्न—एक पार्श्वमें है तो स्पष्ट चिह्न। वृद्धिके आयतन, श्वासनलिकापर दबाव और फुफ्फुसाकुंचनके अनुसार भिन्न भिन्न चिह्न। तरलसंग्रह और विवर वर्त्तमान। फुफ्फुसान्तरालके ग्रन्थियोंकी वृद्धि, फुफ्फुसान्तरालके अर्बुदके सदृश। ऊर्ध्व जत्रुका ग्रन्थियाँ स्पर्शग्राह्य।

'क्ष' किरण चित्र—(१) वृद्धिकी छाया, (२) फुफ्फुसान्तरालमें तरल (प्रायः अस्पष्ट छाया), (३) बृहच्छ्वासनलिका स्थानान्तरित। लिपियोडल औषधिके अन्तःक्षेपणसे प्रतीत श्वासनलिकावरोधमें चूहेकी पूंछ सदृश क्रमशः पतली छाया पंक्ति।

स्थितिकाल—६ से १८ मास। क्षीणता, स्थानान्तर शाखाके हेतुसे या रक्तस्राव या ह्रस्सादसे मृत्यु। पेनकोस्टका अर्बुद (Pancoast's Tumour) शिखरस्थ कर्कस्फोट (Apical carcinoma), संभवतः विकास होनेपर विभिन्नता। लक्षण (१) स्कंधप्रदेश, बाहुके भीतर और बाहुके पूरे भागपर वेदना, (२) हाथकी छोटी पेशियोंकी कृशता; (३) होर्नरके लक्षणसमूह-गड्ढेमें स्थित नेत्रगोलक, ऊर्ध्वअक्षिपुटका पतन, निम्न अक्षिपुट किञ्चित् ऊपर उठा हुआ, कनीनिकाका आकुंचन, पुटान्तरीया परिखाका सकड़ापन, स्वेदमें न्यूनता आदि; (४) ठेपन करनेपर शिखरपर जड़ ध्वनि। 'क्ष' किरण चित्रमें शिखरकी छाया, पहली तीन पर्शुका पश्चिम भागका तथा कभी-कभी ऊर्ध्व पृष्ठ कशेरुकाओंका नाश।

रोगविनिर्णय—सामान्यतः प्रथमावस्थामें कठिन; विशेषतः—(१) फुफ्फुसावरणमें तरल संग्रह; (२) राजयक्ष्मा; (३) फुफ्फुसगत अविगलित चिह्नमय शेष फुफ्फुसप्रदाह (Unresolved Pneumonia); (४) धमन्यर्बुद; (५) ग्रन्थि वृद्धि, होजकिन का रोग आदि; (६) फुफ्फुस विद्रधि इन रोगोंसे।

विशेष निदान—

१. 'क्ष' किरण परीक्षा द्वारा।

२. कफ परीक्षा—अ. यवाकार घटक सामान्यतः उपस्थित; आ. क्षय कीटाणुओंका अभाव; फलोंके रस सदृशस्राव।

३. श्वासनलिका दर्शकयन्त्रसे ।

४. फुफ्फुसावरणके तरलका स्वभाव-अ. पुनःपुनः उपस्थिति; आ. पूयस्राव इ. घटक रचना क्रिया विज्ञान (Cytology), पूय घटकका अभाव, अम्लसत्त्वचाके वर्तमान (कचित् छोटे लसीकाणु), नवबर्द्धनके घटकोंकी उपस्थिति, कचित् अत्यन्त ।

५. प्राथमिक अर्बुदोंकी उपस्थिति ।

६. लक्षण—अ. वर्द्धनशील; आ. देह क्षय; इ. मंदज्वर या अभाव; ई. दबाव चिह्न; उ. ऊर्ध्वजत्रु की ग्रन्थियाँ ।

७. वॉशरमेनकी प्रतिफलित क्रिया ।

उपद्रव—श्वासनलिकाप्रदाह, श्वासनलिकाप्रसारण, फुफ्फुस विद्रधि, कोथ, उरस्तोय, श्वसनसंस्थानमेंसे घातक रक्तस्राव आदि ।

अनुगामी रोग—गौण अर्बुदोंकी उत्पत्ति ग्रन्थियाँ, यकृत, वृक्क, अधिवृक्क, मस्तिष्क, सुषुम्नाकाण्ड और अस्थि आदिमें ।

परिणाम—आक्रमणात्मक लक्षण उपस्थित होनेके पश्चात् सामान्यतः ८ से २२ मासमें मृत्यु ।

चिकित्सोपयोगी सूचना—घातक अर्बुद रोगमें गौण अर्बुदकी उपस्थिति होनेके पहले प्रथमावस्थामेंही उस फुफ्फुसकोही काटकर निकाल देनेपर रोगी ६ वर्ष तक अच्छी स्थितिमें रह सकता है । यदि अर्बुद निम्न फुफ्फुस खण्डमें हो तो प्रथमावस्थामें केवल उसी खण्डको निकाल देना चाहिये । अर्बुदकी वृद्धि होनेपर 'क्ष' किरण या रेडियम (Radium) का प्रयोग भी उपकारक नहीं होता ।

लक्षण और पीड़ाके अनुरूप उपशमकारी चिकित्सा करनी चाहिये । तरल वृद्धिसे लक्षण उपस्थित होनेपर कृत्रिम छिद्रकर तरल निकाल लेना चाहिये ।

४६. फुफ्फुसके जन्मसिद्ध रसार्बुद

कोन्जेनिटल सिस्टिक डिज़ीज़ ऑफ दी लंग ।

(Congenital Cystic Disease of the lung.)

जन्मजात रसार्बुद (रसौली) फुफ्फुसमें होनेपर लक्षण उपस्थित होते हैं । इनमें २ प्रकार हैं । (१) एकाकी (Solitary), (२) बहुसंख्य (MultiPle)।

लक्षण—शिशुमें एकाकी रसार्बुद श्वासनलिकामेंसे कपाटकी क्रियाद्वारा वायुसे अत्यधिक प्रसारण कराता है । एवं वह श्वसनसंस्थानके कष्टके लक्षण तथा फुफ्फुसावरणके फुलावको उपस्थित करता है ।

१. एकाकी रसार्बुद—लक्षण फुफ्फुसविद्रधिके समान ।

२. बहुसंख्य रसार्बुद—लक्षण बढ़े हुए श्वासनलिकाप्रसारण के सदृश ।

शारीर विकृति—रसार्बुद श्वासनलिकाकी आच्छादक कलासे आच्छादित

है। पोषण करनेवाले तन्तु, तरुणास्थि, मांसपेशी, स्थितिस्थापकतन्तु और श्लैष्मिक ग्रन्थियाँ, इन सबकी अनियमित व्यवस्था।

रोग विनिर्णय—रेडियोग्राफ द्वारा-फुफ्फुसमें बुद्बुदे (मधुमक्षिकाके छत्ते के समान फुफ्फुस रचना) की प्रतीति। लिपियोडोलके प्रयोग द्वारा विदित होता है।

चिकित्सा—एक पार्श्वगत हो या मर्यादित भागमें हो, तो पूरे फुफ्फुसको अथवा एक या अधिक खण्डोंको निकाल डालें। परिणाम बहुत अच्छा आता है। दोनों पार्श्वोंमें होनेपर विकृत स्थानोंसे रसस्राव करनेका मार्ग करना चाहिये। एक बड़ा रसार्बुद फुटबॉलकी तरह फूला हुआ हो, तो उसमें सुईका प्रवेश करा पहले तरल निकाल लें। फिर फुफ्फुस खण्डकी अस्त्र चिकित्सा करें।

४७ राजयक्ष्मा

क्षय-शोष-सिल-हुम्मादिक-तपेदिक-थाईसिज़-पल्मनरी ट्युबरक्युलोसीस-टी० बी०-पल्मनरी कंजम्पशन।

Phthisis–Pulmonary-Tuberculosis–T. B.-Pulmonary Consumption.

इस रोगको शास्त्रकारोंने रोगराट् (रोगोंका राजा) कहा है। इस व्याधिका वर्णन विस्तारसह किया है। डॉक्टरीमें तो इस व्याधिका विवेचन स्वतन्त्र बड़े ग्रन्थ रूपसे मिलता है।

परिचय—यह फुफ्फुसोंकी व्याधि है। इस व्याधिमें फुफ्फुसरचनामें स्थित वैधानिक तन्तु (Stromas) और वायुकोषोंमें स्थित सब ग्रन्थियाँ पीड़ित होती हैं। पहले आक्रान्त स्थानोंकी दृढ़ता होती है। फिर घनीभूत तन्तु कोमल (हलवे सदृश) बनकर नष्ट होते जाते हैं।

आयुर्वेदिक क्षय निदान—श्री माधवाचार्यजी लिखते हैं कि, यह यक्ष्मा-रोग अधोवायु, मल या मूत्र आदिके वेगोंका रोध, अधिक स्त्रीसेवन, बलात्कारसे गर्भपात करना, बलवानोंसे कुश्तीलड़ना, चोट लगना, साहस, अधिक परिश्रम, विषम भोजन, असमय पर बार बार भोजन, क्षययुक्त पशुओंके मांसका भोजन, अपथ्य भोजन, मानसिक चिन्ता, अधिक मल, उपवास, महापाप, जीर्ण ज्वरमें अपथ्य सेवन, ईर्ष्या, शोक अथवा मधुमेह, वृक्कप्रदाह, मोतीझरा, कूकरखांसी या इतर किसी रोगसे धातुओंका क्षय होनेपर उत्पन्न हो जाता है।

भगवान् पुनर्वसुका मत—भगवान् पुनर्वसुने इस यक्ष्मा रोगके उत्पादक कारण-साहस, संधारण, क्षय और विषमाशन, ये ४ कहकर इनकी सुन्दर सारगर्भित व्याख्या की है। इन कारणोंसे ही शारीरिक रोगनिरोधक शक्ति और जीवनीय शक्तिका क्षय होता है। फिर क्षय कीटाणुओंकी उत्पत्ति, निवास और वृद्धिके लिये उपयुक्त क्षेत्र तैयार

होता है। यदि इन कारणों का अभाव हो, तो क्षयकीटाणुओंकी उत्पत्ति या वृद्धि कदापि नहीं हो सकेगी।

युद्धाध्ययन-भाराध्व-लंघन-प्लवनादिभिः।
पतनैरभिघातैर्वा साहसैर्वा तथापरैः॥

१. साहस—* दुर्बल होनेपर बलवान्के साथ मल्लयुद्ध करना, अत्यन्त बड़े मनुष्यको खेंचना, अति ज़ोरसे बोलना या अत्यन्त बोलना, बहुत ज़्यादा बोझ उठाना, शक्तिसे अत्यधिक तैरना, जल्दी-जल्दी दौड़ना, चोटखाना, कूदना, उछलना, मार्गका अतिगमन, अति वेगपूर्वक मार्गगमन, पत्थर आदिको ज़ोरसे फेंकना, किसीको बलपूर्वक मारना आदि-आदि अति साहसके कार्य या जिसमें अत्यन्त परिश्रम होता हो, ऐसे कार्य करनेपर अकस्मात वायु प्रकुपित होती है। फिर फुफ्फुसोंमें उरःक्षतकी प्राप्ति होती है। वहाँ रुकी हुई वायु कफको भी कुपित कराती है। एवं दूषित कफको उरःस्थानमें अति उत्पन्नकर और धातुओंका शोषण कर ऊपर, नीचे और तिर्यक् स्थानोंमें गमन करती रहती है। इस वायुका जो अंश शरीरकी संधियोंमें प्रवेश करता है; वह जम्भाई, अंगमर्द (अंग टूटना) और ज्वरकी उत्पत्ति कराता है। आमाशयमें प्रवेश कर अरुच और मल भेदन आदि उत्पन्न कराता है। इसके हृदयमें प्रवेश करने पर हृदय शूल आदि विकृति हो जाती है। कण्ठस्थानमें प्राप्त होनेपर स्वरभङ्ग पीड़ा होती है। प्राणवाहिनियोंमें जानेपर श्वास और प्रतिश्यायकी उत्पत्ति होती है। जब वायु मस्तिष्कमें स्थित करती है, तब शिरदर्द होने लगता है।

फिर उरःस्थानकाक्षय, वायुकी विषम गति और कण्ठका विध्वंस हो जानेसे कास सतत बनी रहती है। खांसनेपर उरःक्षतमेंसे रक्त मिला हुआ कफ निकलता रहता है। रुधिर आनेके पश्चात कफमें दुर्गन्धभी आने लगती है। इस तरह ये सब विकार (लक्षण) साहसके हेतुसे उत्पन्न होजाते हैं।

यह रोग महाकष्टकर होनेसे आचार्यने निदानमें विवेचन करनेके पश्चात् पुनः चिकित्सित स्थानमेंभी इन लक्षणोंका वर्णन निम्न श्लोकों से किया है—

अयथा बलमारम्भै र्जन्तोरुरसि विक्षते।
वायुः प्रकुपितो दोषावुदीर्योभौ विधावति॥
स शिरःस्थः शिरःशूलं करोति गलमाश्रितः।
कण्ठोध्वंसं च कासं च स्वरभेदमरोचकम्॥
पार्श्वशूलं च पार्श्वस्थो वर्चोभेदं गुदे स्थितः।
जृम्भां ज्वरं च सन्धिस्थ उरस्थश्चोरसो रुजम्॥

* क्वचित् पहलवानोंको क्षय होता हुआ प्रतीत होता है; ऐसे ही बड़े जहाजोंमें नौकरी करनेवाले मल्लाहों (Shipmen), जो समुद्रकी पवित्र वायुमें रहते हैं, उनको भी क्षय हो जाता है। अतः साहस करनेवाले भी अनेकबार क्षयकीटाणुओंके शिकार बन जाते हैं।

क्षणनाच्चोरसो रक्तं कासमानः कफानुगम् ।
अर्जरणोरसा कृच्छ्रं मुत्रशूली निरस्यति ॥

पुनः आचार्यने दूसरी बार जो उपदेश किया है; वह इस रोगसे अधिक सम्हाल-नेके लिये है। इन विकारोंके हेतुसे रक्त आदि धातुओंका शोषण होता जाता है और मनुष्य धीरे-धीरे सूखता जाता है। अतः मतिमान् मनुष्योंको चाहिये कि, अपने बलके अनुसार कार्य करें। बलके आधारसे देहका संधारण होता है और देहही मनुष्योंको सुख सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये मुख्य आधार रूप है। इसलिये उपदेश रूपसे कहते हैं कि—

साहसं वर्जयेत्कर्म रक्षन् जीवितमात्मनः ।
जीवन् हि पुरुषस्त्विष्टं कर्मणः फलमश्नुते ॥

जीवनरक्षाकी इच्छावाले मनुष्योंको चाहिये कि, साहस-कर्मका त्याग करें। कारण, पुरुष जीवन रहनेपर ही इष्ट कर्मोंके फलोंको पा सकता है।

२. संधारण—जब मनुष्य राजा, मालिक, गुरु, द्यूतसभा, सन्तसमाज, स्त्री समाज या इतर किसीके समीप होनेके हेतुसे लज्जावश अपान वायुके वेगको रोक देता है अथवा दूसरोंकी शर्मके मारे, घृणा, भय, किसी काममें लगे रहने, गाड़ी आदिमें प्रवास करने या इतर किसी कारणवश सुविधा न मिलनेसे मल-मूत्रके वेगका धारण करता है, तब वायु प्रकुपित होती है। फिर शूलकी उत्पत्ति, अवयवोंका भेदन, मलको शुष्क, पसलियोंमें अति पीड़ा, कंधे, कण्ठ, उरःस्थान शिर आदि स्थानोंमें हानि तथा कास, श्वास, ज्वर, स्वरभेद और जुकाम आदिकी उत्पत्ति कराती है। पश्चात् इन विकारोंसे धातुओंका शोषण कर शनैः-शनैः देहको सुखा देती है और राजयक्ष्माकी प्राप्ति करा देती है। इस संधारणवेगजनित विकारोंका वर्णन पुनः चिकित्सित स्थानमें निम्न वचनसे किया है।

ह्रीमत्वाद्वा घृणित्वाद्वा भयाद्वा वेगमागतम् ।
वातमूत्रपुरीषाणां निगृह्णाति यदा नरः ॥
तथा वेगप्रतीघातात्कफपित्ते समीरयन् ।
ऊर्ध्वं तिर्यगधः कुर्याद्विकारान्कुपितोऽनिलः ॥
प्रतिश्यायं च कासं च स्वरभेदमरोचकम् ।
पार्श्वशूलं शिरःशूलं ज्वरमंसावमर्दनम् ॥
अङ्गमर्दं मुहुश्छर्दि वर्चोभेदं त्रिलक्षणम् ।
रूपाण्येकादशैतानि यक्ष्मा यै रुच्यते महान् ॥

अर्थात् अधोवायु, मल-मूत्रादिके वेगको लज्जा, घृणा या भयके हेतुसे निरोध करनेसे वायु प्रकुपित होकर फिर कफपित्तको प्रकुपित कर ११ लक्षणयुक्त राजयक्ष्माकी सम्प्राप्ति करा देती है। इससे संरक्षण करनेके लिये भगवान् आत्रेय कहते हैं कि—

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत् ।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम् ॥

सब बातोंको छोड़कर शरीरका पालन करना चाहिए। इस शरीरका अभाव—नाश होजानेपर जीवके सब भावोंका नाश होजाता है। अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थोंसे वह वंचित हो जाता है।

३. क्षय—जब मनुष्य अतिशय शोक, चिन्ता युक्त बनता है या ईर्ष्या, उत्कण्ठा, भय, क्रोध आदि मानसिक वृत्तियोंकी उत्पत्ति होजाती है; देह कृश हो जानेपर भी शुष्क अन्नपान सेवन करता है; निर्बल होनेपर भी उपवास या अतिक्रम भोजन करता है, तब उसके हृदयमें स्थित देहपोषक सत्व—ओजका क्षय हो जाता है। फिर शोष रोगकी सम्प्राप्ति होजाती है।

जब मनुष्य अति हर्षमें आकर अत्यन्त स्त्री संभोग करता रहता है, तब अति मात्र प्रसङ्गके हेतुसे शुक्रका क्षय हो जाता है, फिर भी मानसिक तृप्ति न होनेसे स्त्रीसमागममें अधिक-से-अधिक प्रवृत्ति करता है ऐसे प्रसङ्गोंमें वीर्यपात भी नहीं होता। प्रकुपित वायु देहकी धमनियोंमें प्रवेशकर जाती है और शुक्राशयस्थ रक्तवाहिनीमेंसे रक्तस्राव कराती है। जिससे शुक्रक्षयके पश्चात् शुक्रमार्गसे रक्तप्रवृत्ति होती है। फिर संधियोंमें शिथिलता और देहमें रूक्षता आजाती है; शरीर अधिक-से-अधिक दुर्बल बनता जाता है। वायु प्रकुपित होकर वशिक (शून्य-सी) हो जाती है। फिर देहरूप नगरीमें चारों ओर फैलकर सब धातुओंका शोषण करलेती है। जिससे मांस और रक्तका क्षय, श्लेष्म और पित्तका प्रकोप, पसलियोंमें विकृति, कण्ठका ध्वंस, अति दूषित कफसे मस्तिष्क भरआना, साँधों-साँधोंमें पीड़ा, अङ्गमर्द, अरुचि, भोजनका विपाक न होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। एवं पित्त श्लेष्मके उत्क्लेशित होजानेसे वायु प्रतिलोम गतिकर ज्वर, कास, श्वास, स्वरभेद, प्रतिश्याय आदि की उत्पत्ति कराती है। पुनः इन विकारोंसे पीड़ित होनेसे दिन-प्रति-दिन धातुओंका अधिकाधिक शोषण होता जाता है; और शनैः-शनैः देह सूखती जाती है।

इस बातको अधिक स्पष्टरूपसे समझनेके लिये आचार्य पुनः कहते हैं कि, जब हर्ष, उत्कण्ठा, भय, त्रास, क्रोध, शोक, देहको अतिकृश करना, अति व्यवाय (स्त्री-संभोग) और उपवास आदिसे शुष्क और ओजका क्षय हो जाता है, तब वायु कोपित बनकर पित्तको प्रकुपित करा देती है। फिर प्राणोंका नाश करने वाला यक्ष्मारोग एकादश लक्षण युक्त उत्पन्न हो जाता है। प्रतिश्याय, ज्वर, कास, अंगमर्द, शिरदर्द, श्वास, मलभेदन, अरुचि, पार्श्वशूल, स्वरक्षय और कंधोंमें वेदना, ये ११ लक्षण शुक्र और ओजके क्षयसे उत्पन्न होते हैं। इस हेतुसे बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि, देहकी रक्षा करनेके लिये शुक्रका संरक्षण करें। भगवान् आत्रेय कहते हैं कि—

आहारस्य परं धामः शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः ।
क्षयो ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति ॥

आहारसे उत्पन्न रस-रक्त आदि धातुओंमें शुक्र सबके परमधाम रूप है। इस लिये इसका आग्रहपूर्वक संरक्षण करना चाहिये। इस शुक्र धातुका क्षय हो जानेसे नाना प्रकारके रोग सताते हैं और मरण भी होजाता है।

४. विषमाशन—'विषमं बहुवाल्पं वाप्यप्राप्तातीत कालयोः' अर्थात् अधिक या थोड़ा खाना, भोजनके समयके पहले खाना, भोजनका समय टलजाने पर खाना, ये सब विषमाशन कहलाता है। जब मनुष्य आहार सेवन करनेमें प्रकृति (आहार, औषधि द्रव्यका गुरु लघु आदि गुण), करण (भोजनपर किये हुए संस्कार), संयोग (घी, शहद आदिका मिश्रण), राशि (मात्रा), देश काल, उपयोग संस्था (यह मेरे लिये उपयोगी है या नहीं, इस तरहके उपयोग-नियम). उपशय (प्रकृति, रोग और अभ्यासके अनुकूल) आदिसे विरुद्ध वर्त्ताव करता है, तब उसके वात, पित्त और कफ वैषम्य भाव को प्राप्त होते हैं। फिर ये वातादि दोष प्रकुपित होकर नाड़ियोंके मार्ग को रोक देते हैं। इनका निवारण किये बिना मनुष्य यदि आहारका सेवन करता रहता है, तो उसके मल-मूत्रकी अधिक वृद्धि होने लगती है, आहारसे रस-रक्त आदि धातुओं की पुष्टि नहीं होती। फिर मल संचित होने लगता है और बहुधा सूखता जाता है, पश्चात् इसमेंसे सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति और इतर धातुएँ दूषित होती रहती हैं।

इस तरह स्वच्छन्दी मनुष्यके विषमाशनसे संचित दोष विविध विकारोंसे युक्त होकर शरीरका अति शोषण कर लेते हैं। परिणाममें राजयक्ष्मा की प्राप्ति हो जाती है। पश्चात् शनैः-शनैः मनुष्य सूखत जाता है। इस विवेचनका अधिक स्पष्टीकरण करनेके लिये आचार्य चिकित्सित स्थानमें पुनः लिखते हैं कि—

विविधान्यन्नपानानि वैषम्येण समश्नतः ।
जनयन्त्यामयान् घोरान् विषमान् मारुतादयः ॥
स्रोतांसि रुधिरादीनां वैषम्याद्विषमं गताः ।
रुध्वा रोगाय कल्पन्ते पुष्यन्ति च न धातवः ॥

जब मनुष्य विविध प्रकारके अन्नपानको मौजमें आवे, उस तरह खाते रहते हैं; पथ्यापथ्य या सात्म्य-असात्म्यका विचार नहीं करता; तब वात आदि धातुएँ प्रकुपित होकर घोर विषम रोगोंकी उत्पत्ति करा देती हैं। प्रकुपित हुए दोष रुधिरवाहिनियोंके मार्गका रोध कर देते हैं; और धातुओंको पुष्ट नहीं करते। फिर यक्ष्मा रोगके लक्षण—प्रतिश्याय, मुँहमें बार-बार कफ आना, कास, छर्दि, अरुचि, ज्वर, कंधोंमें वेदना, कफमें रुधिर आना, पार्श्वशूल, शिरःशूल और स्वरभेद, ये ११ उपस्थित होते हैं। इस-लिये मतिमान् पुरुषोंको चाहिये कि, प्रकृति आदिके अनुकूल आहारका सेवन करते रहें। आचार्य उपदेश करते हैं कि—

हिताशी स्यात् मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः ।
पश्यन् रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात् ।

विषमाशनसे उत्पन्न विविध विकार और अनेकविध कष्टोंको देखकर बुद्धिमानों को चाहिये कि हिताशी (हितकर भोजन करने वाले), मिताशी (मर्यादामें भोजन करने वाले), काल भोजी (ऋतुके अनुकूल भोजन करने वाले) और जितेन्द्रिय बनें । खूब चटपटे भोजन, नाक तक ठूंस कर खाना, असमय पर खाना, मनको सन्तुष्ट करने वा जिह्वाके स्वादके लिये खाना, अपवित्र, गन्दे और दूषित अन्नका सेवन तथा शरीरको पहुँचाने वाले पदार्थोंका भक्षण, इन सबसे आग्रहपूर्वक बचना चाहिये ।

उक्त चार कारणोंसे राजयक्ष्मा रोगकी उत्पत्ति होती है । इनमें साहसजन्य क्षयमें स्वरभेद पार्श्वपीड़ा और जम्भाई; वेग संधारणजन्य क्षयमें अंगमर्द, बार-बार वमन और मलभेद; धातुक्षयज यक्ष्मामें श्वास, शूल और सन्ताप; तथा विषमाशनसे उत्पन्न शोषमें रुधिर की वमन, ये लक्षण परस्पर भेद वाले हैं । साहसज क्षयमें प्रतिश्याय नहीं होती । धातुक्षयसे उत्पन्न विकारमें प्रतिश्यायका सद्भाव होता है ।

इन कारणचतुष्टयके अतिरिक्त अजन निदानकारने रक्त-पित्तसे राजयक्ष्माकी सम्प्राप्ति कही है । एवं महर्षि आत्रेयने चिकित्सित स्थानमें पूज्योंके शापको तथा हारीत ऋषिने पूर्वकृत पापको भी क्षय रोगका कारण माना है । जिस मनुष्यने पहलेके जन्मोंमें देवमूर्तियों को तोड़ा है; गर्भमें रहे हुए जीवोंको दुःख दिया है; गौ, राजा, ब्राह्मण, बालक, स्त्री, असावधान और सोये हुए मनुष्यकी हत्या की है या देवों (मूर्तियों) का जलाना, बाग आदिका नाश करना, डाका डालना, देवताओंका धन खा जाना, गर्भ गिराना, किसीको विष खिला देना अथवा इतर महापाप किया है, उसे विपरीत कर्मके फल की प्राप्तिके निमित्त मन और सूक्ष्म धातुओंमें विकृति होकर महादारुण राजयक्ष्मा रोगकी सम्प्राप्ति होजाती है ।

इनके अतिरिक्त स्वामीकी स्त्री और गुरुपत्निसे सम्भोग, सुवर्णकी चोरी और महापापियोंको पापकार्यमें प्रेरणा करना, ये भी राजयक्ष्माके उत्पादक कारण माने गये हैं । महापापके परिणामरूपसे उत्पन्न होने वाले रोगोंमेंसे कुछ नाम निम्नानुसार दर्शाये हैं ।

कुष्ठं च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा ।
मूत्रकृच्छ्रं श्मरी कास अतिसार-भगन्दरौ ॥
दुष्टं व्रणं गण्डमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनं ।
इत्येवमादयो रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः ॥

कुष्ठ, क्षय, प्रमेह, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, कास, अतिसार, भगंदर, नासूर, गण्डमाला, पक्षाघात और अन्धता आदि रोग महापाप करने वालों को प्राप्त होते हैं ।

इस यक्ष्मा रोगकी उत्पत्ति अनुलोम और प्रतिलोम, इन दो प्रकारसे होती है। यदि कफप्रधान दोषों से रस आदि मार्गका रोध होकर रस, रक्त, मांस आदि क्रमसे हो, तो अनुलोम क्षय और अति मैथुन आदिसे वीर्यका अधिक पात होकर शुक्र, मज्जा, अस्थि, मेद आदि क्रमसे शोष हो, तो प्रतिलोम क्षय कहलाता है। दोनों प्रकारोंमें सम्पूर्ण धातुओंका क्षय होकर मनुष्य शुष्क अस्थिपञ्जरवत् बन जाता है।

यह रोग विशेषतः क्षीण वीर्य वालोंको और निर्बल पचनशक्ति वालोंको होता है। इसलिये श्री० वाग्भट्टाचार्य कहते हैं कि—

अग्नि मूलं बलं पुंसां रेतो मूलं च जीवितम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शुक्रं वह्निं च रक्षयेत्॥

मनुष्योंके बलका आधार अग्नि (पचन शक्ति) है; और जीवनका आधार शुक्र है। अतः मतिमान् मनुष्योंको चाहिये कि, सब प्रकारसे वीर्य और अग्नि का संरक्षण करें।

राजयक्ष्माका पूर्वरूप—श्री माधवाचार्यजी लिखते हैं कि, क्षय रोगकी उत्पत्तिके पहले श्वासके वेगकी वृद्धि, अंग टूटना, मुँहसे बारबार कफ निकलना, तालु सूखना, वमन, अग्निमान्द्य, मानसिक अस्वस्थता, नशा-सा बना रहना, पीनस (जुकाम), कास, निद्रावृद्धि, शोथ, मुख-मण्डल, नाखून और नेत्र सफेद निस्तेज बन जाने, स्निग्ध पौष्टिक भोजन, मद्य, मांस और मैथुनके सेवनकी इच्छा बढ़ना, स्वप्नमें कौआ, तोता, शल्लकी (सेई), मोर, गीध, बन्दर, गिरगट आदि पशुपक्षियों पर सवारी करना, जल रहित सूखी नदियाँ, सूखेवृक्ष, दावानल, जंगल या पर्वत पर अग्नि लगना, बाल, हड्डी या राखके ढेरों पर चढ़ना, आकाशसे पहाड़ और तारा टूटना, व्याघ्र आदि पशुओंका हमला, बीभत्स और मर्यादाके विरुद्ध नाना प्रकारके दृश्योंका दर्शन आदि लक्षण इसरोगकी सूक्ष्मावस्थामें प्रतीत होते हैं।

चरकसंहिताकार कहते हैं कि, प्रतिश्याय, बार-बार छींक आना श्लेष्मकी वृद्धि, मुँहका मीठापन, भोजनके समय पर भोजनकी इच्छा न होना, थकावट, पात्र, जल, अन्न, दाल, पिसे हुए पदार्थ, चटनी आदि निर्दोष और थोड़े दोष वालेमें अति दोषका देखना अर्थात् निष्प्रयोजन, भोजनके बर्त्तनोंको अपवित्र समझना और भोजनके पदार्थोंमें मक्खियाँ, तृण, केश आदि गिर जानेका भ्रम होना, भोजनकर लेने पर उबाक आना और कभी-कभी वमन होकर भोजन निकल जाना, मुँह और हाथ पैरोंका, हाथोंको बार-बार देखते रहना, नेत्र सफेद और निस्तेज हो जाना, मेरे बाहु कैसे हैं यह जानने की इच्छा होना, स्त्री सम्भोग की इच्छा बनी रहना, अति घृणा करना, देहमें खराब वास और खराब रूपकी भ्रान्ति होना, स्वप्नमें बार-बार नदी, तालाब आदि जलाशयोंको जलरहित देखना, ग्राम, नगर, नगरी आदि मनुष्य की आबादी वाले स्थानोंको जनशून्य देखना, गिरगट, मोर, बन्दर, तोता, साँप, कौआ

उल्लू, गीध आदि पक्षियोंका स्पर्श और उनपर सवारी करना, बाल, हड्डियाँ, राख, तुष (धान्यके छिलके), कोयले या निर्धूम अग्नि आदिके समूह पर चढ़ना, इत्यादि पूर्वरूप भासते हैं।

इनके अतिरिक्त पुनः चिकित्सा स्थानमें कुछ लक्षण दर्शाये हैं कि, भोजन अच्छा करने पर भी बलका क्षय होते रहना, स्त्री, मद्य और मांस सेवनकी अति इच्छा होना, मस्तिष्कको वस्त्र आदिसे ढकने की इच्छा, नख और केशकी अति वृद्धि, स्वप्नमें तारा, नक्षत्र आदिका पतन, पहाड़ोंका गिरना और वनमें आग लग जाना आदि दर्शन बार बार होते रहना, इत्यादि लक्षण इस बहुरूप वाले राजयक्ष्मा-के पूर्वकालमें उपस्थित होते हैं।

पूर्वरूपके लक्षण शास्त्रकार इसलिए समझाते हैं कि चतुर लोग इन लक्षणोंका अनुभव होनेपर सावधान होजायँ। तत्काल सम्यक् प्रकारसे चिकित्सा करानेका प्रबन्ध करें और भविष्यमें आने वाली महान् विपत्तिसे बच जायँ।

राजयक्ष्माके लक्षण—श्री० माधवाचार्यजी लिखते हैं कि, कन्धे और पसलियोंमें पीड़ा, हाथ-पैरके तलवोंमें दाह और ज्वर बना रहना, ये ३ लक्षण मुख्य होते हैं।

श्री० भोज आचार्यने कास, ज्वर और रक्तपित्त, ये ३ कहे हैं। सुश्रुतसंहि-ताकारने भोजनकी इच्छा न होना, ज्वर, श्वास, कास, रक्तष्ठीवन, स्वरभेद, ये ६ लक्षण कहे हैं।

यह रोग तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है; इस हेतुसे तीनोंके मिश्रित लक्षण दर्शाये हैं। जब रोग बढ़ जाता है, तब निम्न ११ लक्षण प्रतीत होते हैं।

वातप्रकोप—स्वरभङ्ग, शूल और अंस (कन्धों) तथा पसलियोंका संकोच ये ३ लक्षण।

पित्तप्रकोपसे—ज्वर, दाह, अतिसार और रक्त आना (उरः- क्षत होकर थूकमें रक्त आना, क्वचित् अन्त्रमें क्षत होकर रक्तातिसार होता), ये ४ लक्षण।

कफ प्रकोप—शिरका भारीपन, अरुचि, कास और कण्ठमेंसे कफकी खरखर आवाज़ निकलना, ये ४ लक्षण।

चरकसंहिताकारने इस रोगके लक्षण—शिरका भारीपन, कास, श्वास, स्वरभेद, श्लेष्मकी वमन, रक्तष्ठीवन, पार्श्वपीड़ा, कन्धोंका टूटना, ज्वर, अतिसार और अरुचि, ये ११ कहे हैं। तथा श्री० वाग्भट्टाचार्य ने भिन्न ११ लक्षण दर्शाये हैं।

ऊर्ध्व देहमें पीनस (प्रतिश्याय), श्वास, कास, कन्धोंमें वेदना, शिर दर्द, स्वरभेद और अरुचि, ये ७। ८. अधोगत दोषसे मल पतला हो जाना, और कभी-कभी कब्ज़ हो जाना। ९. कोष्ठस्थ दोषसे वमन। १०. तिर्यग्गत दोषसे पार्श्वपीड़ा। ११. संधिगत दोषसे ज्वर।

उपद्रव—श्री० वाग्भट्टाचार्यने लिखा है कि, कण्ठका नाश (स्वरभंग), उरोरुज (फुफ्फुसोंसे क्षत), जम्भाई, अंग मर्द, कफमें रक्त आना, अग्नि नष्ट हो जाना और मुँहसे दुर्गन्ध निकलना ये ७ उपद्रव, रोग प्रबल होने पर कुछ कालके पश्चात् उत्पन्न होते हैं।

साध्यासाध्यता—जिस राजयक्ष्मा रोगीके उपर्युक्त ११ लक्षण अथवा कास, अतिसार, पार्श्व पीड़ा, स्वरभेद, अरुचि और ज्वर, ये ६ लक्षण; अथवा कास, श्वास और रक्तस्राव, ये ३ लक्षण पूर्ण बलयुक्त प्रतीत होते हों; ऐसे रोगीका त्याग कर देना चाहिये; अर्थात् इन ११, ६ या ३ लक्षणोंके साथ मांस और बलका क्षय हो गया हो; अथवा सब लक्षण प्रबल प्रतीत होते हों, तो उस रोगीको बचनेकी आशा नहीं है।

जो रोगी दुर्बल और मांस-रक्तके अति क्षय वाला हो, उनके लक्षण चाहे स्वल्प ही प्रतीत होते हों, तो भी उसे त्याग देना चाहिये।

जिस रोगीका आहार अत्यंत बढ़ गया हो और बल-मांस का क्षय हो गया हो, या जिस फुफ्फुसक्षय रोगीको अतिसार (संग्रहणी) हो गया हो; अथवा जिस रोगीके वृषण और उदर पर शोथ आ गया हो, उनका परित्याग कर देना चाहिये।

जिस रोगीके नेत्र निस्तेज सफेद हो गये हों, अरुचि, ऊर्ध्व श्वास और जिसके मलका त्याग अति कष्ट पूर्वक होता हो, ऐसे मनुष्यको यह यक्ष्मा मार डालता है।

यदि लक्षण अधिक हो और अरिष्टकी प्रतीति न होती हो, तो भी उसका त्याग कर दें। कारण, बढ़ जाने पर अरिष्टचिह्नोंकी उत्पत्ति, विना निमित्त अकस्मात् हो जाती है।

व्याधि और औषधिके बलको जो रोगी सहन नहीं कर सकता; चाहे अल्प लिङ्ग वाला ही क्यों न हो, उसका परित्याग कर देना चाहिये।

क्वचित् अन्तकालके थोड़े दिन (१॥-२ मास) पहले रोगीके दोनों जबाड़ों पर बड़े-बड़े दाने निकलना, लगभग १ मास पहले शिरमें काला दाना होना, ४ दिन पहले शिर पर लाल फुन्सियाँ होना, मृत्युसे थोड़े दिन पहले क्षुधा बहुत बढ़ जाना इत्यादि उपद्रव हो जाते हैं। फिर निर्बल रोगियोंके जीर्ण रोगकी चिकित्सामें प्रायः सफलता नहीं मिलती। इस हेतुसे शास्त्रकारोंने ऐसे पूर्ण उपद्रव युक्त रोगियोंको त्याग देनेकी आज्ञा की है।

इसके विरुद्ध जिस रोगीके मांस-शोणितका क्षय न हुआ हो, बलवान् हो और अरिष्टकी प्रतीति न होती हो, परन्तु सब दोष लक्षणोंसे युक्त हो, तो भी साध्य माना जाता है। जिस रोगीके बल वर्ण कायम हैं, व्याधिके बलको सहन कर सकता है, वह बहुलिङ्ग वाला होनेपर भी अल्प लिङ्ग वाला ही माना जाता है।

धातु शोष होनेका हेतु— क्षय रोगीको पौष्टिक भोजन देने पर भी धातु और देह क्यों पुष्ट नहीं होती ? इस शंकाके निवारणार्थ श्री वाग्भट्टाचार्य लिखते हैं कि, वात, पित्त, कफ, तीनों दोषोंमें कफका प्राधान्य हो जाता है; फिर दूषित कफका सर्वत्र उपलेप हो जाता है; नाड़ियोंके मुखका रोध हो जाता है; जठराग्नि मन्द और रस आदि धातुओंमें ऊष्मा अति स्वल्प होनेके हेतुसे भोजन से उत्पन्न होने वाला रस स्वस्थानमें ही विदाही हो जाता है। फिर उसमेंसे रक्त मांस आदि धातु नहीं बनती वह दूषित रस रक्तभावको प्राप्त होकर ऊपरकी ओर गति करता है। इस हेतुसे कफके साथ आ जाता है; कभी केवल रक्त गिरता है। कोष्ठमें अन्न पचता है, परन्तु उसका धातुओंमें सम्यक् रूपान्तर नहीं होता; उसमेंसे विशेष रूपसे मल बन जाता है। इस हेतुसे रक्त मांस आदि धातुओंकी पुष्टि नहीं होती।

फिर आचार्य कहते हैं कि—

रसोऽप्यस्य न रक्ताय मांसाय कुत एव तु।
उपस्तब्धः सशकृता केवलं वर्त्तते क्षयी॥

भोजनका रस जब रक्तको पुष्ट नहीं बना सकता; तब मांस आदि इतर धातुओंको पुष्ट किस तरह कर सकेगा। राजयक्ष्मा रोगीके लिये भोजन केवल मल रूपमें ही अवस्थित हो जाता है।

भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, नाड़ियोंके मार्ग रुद्ध हो जाने से रस स्वस्थानमें बढ़ता रहता है। फिर कफ बनकर बहुत अधिक परिमाणमें खांसी चल चलकर निकलता रहता है।

प्राचीन आचार्योंने इस क्षय रोगके कारणभेदसे ६ विभाग किये हैं। व्यवाय शोष, शोकज शोष, वार्द्धक्य शोष, अध्व शोष, व्यायाम शोष और व्रण (उरःक्षत) शोष।

१. व्यवाय शोष लक्षण—व्यवाय (अधिक स्त्री सेवन) से क्षय होने पर लिङ्ग और वृषणमें वेदना, मैथुन करनेमें अशक्ति, शुक्र क्षय होनेसे स्त्री दर्शन या विचार होने पर थोड़ा सा उष्णवीर्य निकल जाना, स्त्री समागम होने पर अति देरसे थोड़ा-सा वीर्य या रक्त निकलना, देहका पाण्डु वर्ण, मज्जा, मांस आदिका विपरीत क्रमसे क्षय होना इत्यादि लक्षण होते हैं।

२. शोकज शोष लक्षण—शोक करनेसे क्षय होनेपर चिन्तातुर मुख-मण्डल, निस्तेज शरीर, मानसिक बेचैनी, हाथ पैरोंमें शिथिलता और भ्रम आदि लक्षण होते हैं।

३. जरा शोष लक्षण—वृद्धावस्थासे क्षय होने पर कृशता, वीर्य, बुद्धि, बल और इन्द्रियोंकी शक्ति मन्द होना, कम्प, अत्यन्त अरुचि, आवाज़ कांसीके फूटे बर्त्तन जैसी हो जाना, कफवृद्धि होकर कण्ठवाहिनीमें आनेपर भी सरलतासे बाहर न

आना, शरीर भारी रहना, स्फूर्तिका अभाव, अरुचि, मुँह, नाक और नेत्रसे जलस्राव होते रहना, मलावरोध, मल शुष्क और काला बन जाना इत्यादि लक्षण होते हैं।

४. अध्व शोष लक्षण— अत्यन्त मार्ग चलनेसे उत्पन्न शोषमें शिथिल गात्र, काली शुष्क त्वचा, त्वचासे सम्बन्धवाली संज्ञावाहिनियोंकी शक्ति नष्ट होनेसे स्पर्श ज्ञानका अभाव हो जाना तथा कण्ठ, तालु और मुँहका सूखना इत्यादि लक्षण होते हैं।

५. व्यायाम शोष लक्षण— व्यायामजनित क्षय होनेपर अध्व शोषके सब लक्षण विशेषरूपसे तथा उरःक्षतके भी लक्षण केवल क्षत नहीं होता।

६. व्रण शोष निदान—रक्तक्षय (रक्तमेंसे रक्ताणुओंके नाश और रक्तस्राव अधिक हो जानेसे रक्तकी न्यूनता), व्रणवेदना, भय, शोक आदि मानसिक क्षोभ, भोजन ग्रहण और पचन करनेमें कष्ट होना, इन कारणोंसे उत्पन्न क्षयरोगको असाध्य माना है।

व्रण (उरःक्षत) निदान— अत्यन्त बलपूर्वक तीर चलाना, शक्तिसे अधिक बोझ उठाना, बलवानके साथ कुश्ती करना, अकस्मात् गिरना, ऊंचे या विषम स्थानसे गिरना, दौड़ते हुए बैल, घोड़ा आदिको रोकनेकी चेष्टा करना, शिला, लकड़ी या शस्त्रको बलपूर्वक फेंकना, दूसरोंको मारना, बड़े जोरसे पढ़ना, जोरसे दौड़ना, बड़ी नदियोंको तैरकर पार करना, घोड़ोंके साथ दौड़ना, दूर तक कूदना, अकस्मात् उछलना, कूदना, कला खान, अत्यन्त चपलता पूर्वक नाचना इत्यादि साहस कर्मोंसे मनुष्योंकी छाती और फुफ्फुस फट जाते हैं। फिर उरःक्षत होकर शोष (क्षय) हो जाता है।

एवं अत्यन्त स्त्रीसेवन या इतर रीतिसे अत्यन्त शुक्र और ओजका क्षय, शुष्क भोजन, दीर्घ काल तक अत्यल्प परिमाणमें भोजन, इन कारणोंसे भी उरःक्षत हो जाता है।

उरःक्षत लक्षण—शूलसे भेदन करने और उरःस्थानके दो टुकड़े करनेके सदृश पीड़ा होना, पार्श्वभागमें अति पीड़ा, समस्त शरीर सूख जाना, कम्प, वीर्य, बल, वर्ण, रुचि और अग्निका क्षय हो जाना, ज्वर, पार्श्वपीड़ा, मनमें दीनता, दस्त पतला हो जाना, जठराग्नि नष्ट हो जाना और खांसी चलकर अति दूषित, मैला दुर्गन्ध युक्त पीला, बताशे सदृश बंधा हुआ, बहुत-सा कफ रक्त और पूय मिला हुआ बार-बार निकलना इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। एवं शुक्र और ओज धातुका क्षय हो जानेपर उरःक्षत रोगी विषम क्षयको प्राप्त हो जाता है।

उरःक्षतका पूर्वरूप—इस रोगका पूर्वरूप अव्यक्त है; अर्थात् धनुष आकर्षण आदि बाह्य क्रिया करनेके पहले कुछ भी विकार नहीं होता।

उरःक्षत क्षयीके असाधारण लक्षण—छातीमें पीड़ा, रक्तष्ठीवन, अति कफ युक्त कास, मूत्रमें रक्त जाना, पसली, पीठ और कमर अकड़ जाना इत्यादि लक्षण हो जाते हैं।

उरःक्षत साध्यासाध्यता—थोड़े लक्षण, तेज़ अग्नि और बलवान देहवालेका नया रोग है, तो साध्य; एक वर्ष हो गया हो तो याप्य और सब लक्षण उत्पन्न हो जानेपर असाध्य हो जाता है।

क्षयरोग का डॉक्टरी विवेचन

इतिहास—राजयक्ष्मा का बोध ईसाके ४०० वर्ष पहले यूरोप में ग्रीक विशेषज्ञ हिपोक्रेटिस और गेलेनको हुआ था। १७ वीं शताब्दी में सिल्वियस ने क्षयग्रन्थियोंका सम्बन्ध राजयक्ष्मासे दर्शाया। १८१९ ई० में लीनिकको क्षय ग्रन्थियों का मलाई सदृश किलाट जलन (Caseation) होना विदित हुआ। १८६८ ई० में फ्रांसके डाक्टर विलैमिन ने क्षय ग्रन्थिस्थ द्रव्यका प्रयोग पशुओंपर किया। उसका अध्ययनकर डॉक्टर कोहनहीम और सेलोमनसेन ने १८७९ में लघुवराह और खरगोशके नेत्रके पूर्व जलमय खण्डमें इस द्रव्यका अन्तः क्षेपण किया। परिणाममें लसीका ग्रन्थियाँ विकृत हुईं और फिर आशुकारी क्षय उत्पन्न हुआ।

इस प्रयोग द्वारा सर्वत्र संक्रमण स्वीकृत हुआ और कीटाणुओंकी शोधपर विद्वानोंका लक्ष्य गया। फिर जर्मनीके वैज्ञानिक रोबर्टकौक ने यक्ष्माकीटाणु (Bacilli Tuberculosis) का शोध किया। उस समय एहर लिकने कीटाणु रंजन विधिका पता लगाया, जो वर्त्तमान कुछ संशोधनसह प्रयोजित होती है। जो झील-नीलसन पद्धति (Ziehl-Neelsen's method) के नामसे व्यवहृत होता है। तत्पश्चात् डा० कॉकने यक्ष्माकीटाणु विष (T. B. Toxin) का १८९९ ई० में प्रकाशन किया। पुनः इन्होंने इन कीटाणुओंके मानुषिक और पाशविक, इन दो प्रकारोंके स्वातन्त्र्यका निर्णय १९०१ ई० में कराया। इस परसे विदित हुआ है कि, मनुष्य, पशुओं द्वारा आक्रमित नहीं हो सकता। (आगे राजपरिषद् का निर्णय देखें)

क्षय कीटाणु (B. Tuberculosis)—इस रोगके कारणरूप क्षयकीटाणु को वैज्ञानिक भाषामें माइको। बेक्टेरियम ट्यूबरक्युलोसिज़ होमिनिस (Myco bacterium tuberculosis hominis) कहते हैं। यह दण्ड सदृश सीधे या किञ्चित् मुड़े हुए हैं। सिरे कुछ मोटे हैं। कफ सूख जाने पर उसमें २ मासके बाद भी कीटाणु विष रहता है। ये कीटाणु १००° सेण्टी-ग्रेड उत्तापवाले तरल और तन्तुओं में मर जाते हैं, तरल सूख जाने पर विष १ घण्टेके बाद नष्ट होता है। आमाशयिक रससे इन कीटाणुओंका नाश नहीं होता। सूर्यके ताप और कार्बोलिक एसिडके द्रावण १/२० में वे जल्दी मर जाते हैं।

क्षयकीटाणु प्रकार—मुख्य ४ प्रकार। (१) मानुषिक (Human); (२) पाशविक (Bovine); (३) वैहंगमिक (Avain); (४) जालचारिक (Piscine).

इनमेंसे मुर्गे आदि पक्षियोंके प्रकार से मनुष्योंको बाधा नहीं पहुँचती। मत्स्य आदि जलचरके कीटाणुओं का आकार मानुषिक कीटाणुके सदृश है, किन्तु वे २६° सेण्टी मीटर से अधिक उष्णता सहन नहीं कर सकते, एवं स्तनधारी जीवोंको बाधा नहीं पहुँचा सकता। वराहमें पशुओंके कीटाणुओंके आकारके कीटाणु होते हैं, कभी मनुष्य और पक्षियोंके कीटाणुओंके आकारके। ये अन्त्रमें क्षत कराते हैं।

मनुष्योंमें मानुषिक और पाशविक कीटाणु-(शतांशमें)—

आक्रमण योग्य स्थान	मानुषिक	पाशविक
ग्रैवेय ग्रन्थियाँ	३५	६५
,, (५ वर्षसे कम आयुमें)	१५	८५
अस्थि और संधियाँ	६५	३५
फुफ्फुस	९७	३
प्राथमिक उदरगत	१८	८२
त्वचा (क्षयपिटिका-Lupus)	५०	५०

देहसे बाहर कीटाणुओंका अस्तित्व—विशेषतः दूधमें। रास्तेकी धूल आदिसे प्राप्त; किन्तु क्षय रोगियोंके निमित्त बनाये हुए सेनेटोरियममें प्रायः अभाव।

देहके भीतर कीटाणुओं का उद्योग—

आशुकारी प्रकारमें—प्रायः अनेक क्षत; विशेषतः उनको सत्वर मृदु किलाटजनन (Caseation) की प्राप्ति। बच्चोंके आशुकारी प्रकारमें प्लीहाके भीतर बहुसंख्य क्षत। किसी सम्बन्धवालीसंस्थान विशेषके क्षयमें पूयके भीतर जब क्षतका किलाटसंग्रह न सत्वर होरहा हो, तब भी मूत्र, मज्जावारी (Cerebrospinal Fluid) और मलके भीतर कुछ कम कीटाणु विद्यमान। आशुकारी पिटिकामय क्षय (Miliary Tuberculosis) में क्वचित् बहुसंख्य कीटाणुक्षत।

चिरकारी प्रकारमें—अतिकम कीटाणुक्षत। उदा० फुफ्फुसावरणके तरल, किलाट द्रव्य (Caseous matter), लसीकाग्रन्थियाँ आदिमें; किन्तु अण्डेरूप-माध्यमपर कृत्रिम तैयार करने पर प्रायः स्पष्टतः अधिक। पशुओंमें अन्तःक्षेपण भी अस्तित्वके प्रमाणके लिये आवश्यक। सामान्यतः कीटाणु घटकोंसे बाहर, कभी-कभी राक्षसी कोष्ठाणु, श्वेताणु और आच्छादक कलाके घटकोंके भीतर अत्यधिक संख्यामें।

रक्तके भीतर कीटाणुओंका प्रवेश पिटिकमय क्षय और बढ़े हुए फुफ्फुसक्षयमें कभी-कभी होता है।

राज परिषद्का अनुभव—१९१२ ई० में मानुषिक और पाशविक, ये २ प्रकार के कीटाणुओंमें प्रभेद—

१. कर्षण—मानुषिक कीटाणु उगने पर प्रचुर, शुष्क, छिल्टेदार और पीताभ। पाशविक कीटाणु छोटे और मोटे, विशेषतः ग्लिसरीनमें बोने पर स्वल्प, आर्द्र, श्वेत और मुलायम। जीवनीय शक्ति कम।

२. विष—पाशविक प्रकार पशुओंके लिये अधिकतर विषमय। पशुओंमें अन्तःक्षेपण करने पर सार्वाङ्गिक घातक क्षयरोगकी उत्पत्ति। मानुषिक कीटाणु विष केवल स्थानिक क्षति कारक। खरगोशको पाशविक विष घातक और मानुषिक विष अकार्यकर। लघु वराहको दोनों विष हानिकर।

३. विभाजन—पशुओंमें सर्वदा पाशविक कीटाणु। मनुष्योंमें दोनों प्रकार कार्यकारी।

४. रूपान्तर—पाशविक कीटाणु मानव देहमें आनेपर मानुषिक कीटाणु बन जाते हैं। ऐसा प्रमाण नहीं मिला।

परिणाम—(१) मनुष्योंमें संक्रमण मानुषिक कीटाणुओंका कुछ अपवादसह होता है। (२) यदि उदरस्थ अवयवोंके प्राथमिक रोग तथा ग्रैवेयग्रन्थियोंका प्रदाह हो, तो वे पाशविक कीटाणुओंका संक्रमण हो जाता है।

रोग विभाजन और स्वाभाविक वृत्तान्त—व्यापक रूपसे मनुष्य, पशु और पक्षियोंमें प्रबल, विशेषतः मुर्गेमें। शूकरोंमें सामान्य। मत्स्योंमें भी प्रतीति क्वचित्; कुत्ते, बिल्ली, भेड़ और घोड़ोंमें। खरगोश और छोटे शूकरोंमें नहीं है; तथापि दोनों अन्तःक्षेपणद्वारा परीक्षा करनेके लिये अति ग्रहणक्षम्य प्राणी हैं। सामान्यतः पालतू बन्दरोंमें भी कीटाणु संक्रमण।

पूर्ववर्त्ति कारण—क्षयकीटाणु विशेषांशमें सार्वभौम है। शवच्छेदन करनेपर ८० प्रतिशतमें क्षयक्षत प्रतीत होते हैं। वोनपिरके की प्रतिक्रियाके अनुरूप १२ वर्षके भीतर ९० प्रतिशत जनता संक्रामित हो जाती है। फिर पूर्व प्रवृत्त कारण क्षय कीटाणुओंमें संक्रमणको अति सहायक होजाता है। ये पूर्व प्रवृत्तकारण वंशागत × और अर्जित इनमेंसे कोई भी हो सकता है।

वंशागत—क्षय प्रवणता (Tuberculous diathesis) को विशेष स्वीकृति मिली है। इसके २ प्रकार हैं—

× वंशागत रोगोंको सुश्रुत संहितामें आदिबल प्रवृत्त (Hereditary) संज्ञा दी है। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके अन्वेषण अनुसार कीटाणुजन्य कोई भी रोग वंशागत नहीं है; किन्तु रोग पीड़ित माता-पिताके सम्बन्धमें सन्तान को वह रोग सरलता से प्राप्त हो जाता है। (क्योंकि उनमें रोग प्रवणता अधिकतर होती है) अतः सन्तानों को राजयक्ष्मा आदि कीटाणु प्रधान रोगों से पीड़ित माता-पिताको पृथक् कर देना चाहिये।

१. स्वाभाविक—कोमलत्वचा, अस्वाभाविक नीले नेत्र, पतली समतल छाती; मुड़ा हुआ अंसफलक आदि चिह्नों युक्त।

२. कण्ठमाल प्रकार—मोटी त्वचा, प्रसारित मुख-मण्डल और अवयव, छोटी, भारी अस्थियाँ और आकृति।

आयु—सब आयुमें संप्राप्ति। १० वर्षके भीतर क्षय कीटाणुओंके आक्रमणासे प्रभावित मस्तिष्कावरण प्रदाहके हेतुसे ७० प्रतिशत रोगियोंकी मृत्यु। फुफ्फुसक्षय कचित् १५ वर्षके भीतर, फिर पतनकी त्वरित वृद्धि। अधिकतम १८ से ४५ वर्ष के भीतर।

पारिपार्श्विक अवस्था—महत्वकी। गंदे वायु मण्डल, सीलदार प्रकाश हीन मकान या जहाँ सूर्यके तापका प्रवेश न हो, वहां रहना, चाहे जहाँ थूक देना, दूषित आहार सेवन, गांजा, सिगरेट, शराब आदिका व्यसन तथा शारीरिक निर्बलता आदि रोगोत्पत्तिमें सहायक होते हैं। इस तरह कपड़ेकी मिल, जिनमें रुई की गांठ बांधनेवाला प्रेस, ज़मीन के भीतर खानोंमें काम करना (कोयलोंके खानके अतिरिक्त) आदि नौकरी क्षयोत्पत्तिकर है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क आदिपर अभिघात, बालविवाह, अति वीर्यक्षय, थोड़े-थोड़े समयमें संतानोत्पत्ति, (निर्बल अवस्थामें गर्भ धारण होने पर पहले ४ मासमें कभी कभी क्षय प्राप्ति) आदि भी सहायक कारण होजाते हैं।

क्षयरोगी, जो अंधकार वाले गन्दे मकानमें रहते हैं, उनके परिचारकों को राजयक्ष्मा सहज हो जाता है। एवं धर्मशाला, सिनेमा, नाटकशाला, होटल, रेलगाड़ी, मोटर आदि द्वारा इन्हीं क्षय कीटाणुओंसे अनेक-अनेक निरपराधी क्षयग्रसित हो जाते हैं। एवं राजयक्ष्माके सदृश इतर स्थानोंके क्षयके कीटाणु भी पूयमल-मूत्र आदिमें मिल सूखकर वायुद्वारा श्वासमें जा सकते हैं।

रेलगाड़ी, मोटर, सिनेमा, नाटकशाला, धर्मशाला आदिमें रोगी चाहे जहाँ थूकते रहते हैं; जिससे वे अज्ञानता पूर्वक अनेक निरपराधियों को मारते रहते हैं।

स्टेशन पर झाड़ु निकालनेके समय जो वहाँ बैठे हों, एवं जो झाड़ु निकालता हो, इनमेंसे अनेकोंके फुफ्फुसमें कीटाणु श्वासमार्गसे पहुँच जाते हैं। फिर जिनकी रोग-निरोधक शक्ति निर्बल हो, उनको इस रोगकी प्राप्ति हो जाती है।

रोगीके झूठे अन्नजलको ग्रहण करनेवालोंकी देहमें कीटाणु, सरलतापूर्वक प्रवेश कर जाते हैं।

अनेक वैष्णव जन रेलवे स्टेशन पर अपने बर्तन स्टेशन की धूलसे साफ करते रहते हैं। जिस स्टेशन या जंकशनसे प्रतिदिन लाखों या हज़ारों यात्री प्रवास करते रहते हैं, उनके मल-मूत्र और थूकमें प्रविष्ट हुए कीटाणु स्टेशनके हाते (Compound) में सर्वत्र फैल जाते हैं उस धूलको पवित्र मानकर जो प्रवासी अपने पात्रों को मांजते हैं, वे क्षय आदि अनेक रोगोंके कीटाणु अपने साथ ले जाते हैं। इनमेंसे अनेकों को राजयक्ष्मा हो जाता है।

होटलोंमें चाय आदि पीने वालों को झूठे बर्तनोंद्वारा राजयक्ष्मा आदि अनेक रोग उपहारमें मिल जाते हैं। होटलोंमें राजयक्ष्मा, कुष्ठ, उपदंश, सुज़ाक आदि रोगियोंके पात्रोंको कभी अलग नहीं रक्खा जाता इनके पात्रों क भी सामान्यतः जलसे धो लेते हैं। परन्तु जलसे धोने पर ये कीटाणु कभी दूर नहीं होते। इसलिये होटल, ढाबा, लॉज आदि द्वारा राजयक्ष्मा खूब फैलता है।

क्षय रोग ग्रसित गाय, भैंसका दूध पीनेसे क्षयकी प्राप्ति हो जानेकी संभावना है। इनके अतिरिक्त यदि रोगी अपने कफको निगल लेता है; तो कफमें मिले हुए कीटाणु आमाशयमेंसे आँतोंमें जाकर आँतोंकी लसीका ग्रन्थियोंमें पहुँचकर आन्त्रिक क्षयकी उत्पत्ति करा देते हैं।

क्वचित् आन्त्रिकक्षयके मल या क्षयज व्रणके पूयपर मक्खियाँ बैठती हैं, और समीपमें भोजनके रखे हुए पदार्थोंमें कीटाणुओं को पहुँचा देती हैं। फिर वह पदार्थ जिसके खानेमें आवे, उसकी देहमें कीटाणुओंकी आबादी हो जाती है।

देहमें कीटाणुका प्रवेश होने पर रोग प्रसारके लिये ३ स्थानोंको प्रभावित करना है—श्लैष्मिकत्वचा, रसायनियाँ और रक्त। इन तीनों मार्गों द्वारा कीटाणुओंका जहाँ-जहाँ प्रवेश हो जाय, वहाँ-वहाँपर क्षयकी सम्प्राप्ति करा देते हैं। सार्वदेहिक और स्थानिक, दोनों प्रकारके क्षयका प्रसार इन मार्गोंद्वारा ही होता है।

कभी-कभी गल ग्रन्थियोंमें प्रविष्ट कीटाणु वर्षों तक प्रगति किये बिना रह जाते हैं। फिर जब रोगनिरोधक शक्ति क्षीण होती है, तब आक्रमण कर देते हैं। छोटे बालकोंमें इसी हेतुसे कुछ कालतक कण्ठमाल, गलगण्ड आदि ग्रन्थियाँ सत्वर नहीं बढ़ सकतीं।

वंशानुगत प्रवृत्ति—डॉक्टरी मत अनुसार यह क्षय रोग वंशपरम्परागत सन्तानोंको प्राप्त नहीं होता। जिनके माता-पिताओंको क्षय हुआ हो, उनको क्षय होना ही चाहिये, यह नियमित नहीं। राजयक्ष्मा रोगियोंके रज वीर्यमें इस रोगके कीटाणु नहीं मिलते। इस रोगके कीटाणु न मिलने पर भी इस रोगके द्वारा अनेक परिवारोंको नष्ट होनेके उदाहरण मिलते हैं उन सबका रोग स्वसंपादित है अर्थात् वे सब किसी क्षय रोगीसे क्षय कीटाणु प्राप्त होनेके परिणाम स्वरूप हैं। सामान्य रीतिसे क्षयपीड़ित माताकी सन्तानों में रोगनिरोधक शक्ति और शारीरिक शक्ति, दोनों कम होती हैं, इस हेतुसे इनमें क्षयप्रवृत्ति अधिकतर होती है।

यदि क्षयग्रसित माताओंसे उनकी छोटी-छोटी सन्तानोंको अलग कर शुद्ध वातावरणमें रक्खी जायँ और स्वास्थ्य उन्नतिके लिये योग्य लक्ष्य दिया जाय, तो वे क्षय रोगसे बच जाती हैं; परन्तु निरक्षर समाजमें बहुधा यह रिवाज है कि, क्षय रोगिणी जो दूषित गन्दे अंधकार वाले मकानमें पड़ी है, वहाँ ही उसके संसर्गमें बच्चोंको

रख देते हैं। परिणाम यही आता है कि बच्चेके कोमल अवयवोंको क्षयकीटाणु जल्दी प्रभावित कर देते हैं।

यह क्षय रोग अति प्राचीन कालसे होता रहता है। फिर भी पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भारत और इतर देशोंमें जितना-जितना बढ़ता जाता है, उतना-उतना क्षय रोगका प्रसार भी अधिकतर हो रहा है। रेलगाड़ी, मोटर, हवाई जहाज़, ट्राम, नाटक, सिनेमा, बड़े-बड़े कल, कारखाने, होटल आदि विलास प्रधान साधनोंका जितना उत्कर्ष अधिक होता जाता है; उतना ही राजयक्ष्मा आदि रोगोंका ताण्डवनृत्य अधिक बलपूर्वक होता जाता है।

यह रोग ग्रामों की अपेक्षा शहरोंमें अधिक फैलता है। यद्यपि ग्रामोंमें सफाई करनेके लिये म्युनिसिपैलिटीकी उचित योजना नहीं होती, तथापि ग्रामवासियोंका जीवन प्रकृतिके अधिक अनुकूल होता है। शुद्ध वायु और शुद्ध प्रकाश उनको पर्याप्त मिल जाता है; तथा भोजन पवित्र और आरोग्यप्रद मिलता है। इन हेतुओंसे उनकी रोग-निरोधक शक्ति अति सबल होती है। जिससे वे क्षय रोगका शिकार नहीं होते। इसके बिलकुल प्रतिकूल शहरोंमें म्युनिसिपैलिटी उचित योजना होने पर भी धनिक और निर्धन, सब नागरिक जनोंका आहार-विहार बहुधा इच्छानुरूप किन्तु स्वास्थ्यके प्रतिकूल होता है। धनिक और निर्धन सबको शहरकी गन्दी वायुका सेवन करना ही पड़ता है। इनमें भी जिन मजदूरोंको कल कारखानों और मीलोंके भीतर दूषित वायुमें काम करना पड़ता है, उनको तो दूषित वायुके साथ द्वन्द युद्ध करना ही पड़ता है। उनके श्वासग्रहणके साथ रुई, सन, रंग, चमड़े, लकड़ी, कागज गेहूँ, आदिके सूक्ष्म परमाणु कण्ठ और फुफ्फुसमें प्रवेश करते हैं। फिर इन पर क्षय कीटाणु जल्दी स्थान जमाते हैं।

जिन मनुष्योंकी शक्ति दुर्बल है या दीर्घकालसे किसी सबल रोगसे पीड़ित हैं, वे लोग यदि सूर्यप्रकाशसे रहित दूषित वायु वाले (सीलवाले) गन्दे मकानोंमें रहते हैं, तो वे सरलतापूर्वक राजयक्ष्माके शिकार बन जाते हैं। जीर्ण प्रतिश्याय, जीर्ण कास, रक्तपित्त, फुफ्फुसप्रदाह, श्लैष्मिक ज्वर, जीर्ण विषम ज्वर, जीर्ण प्रसूति रोग, जीर्ण मधुमेह और जीर्ण उपदंश आदि रोगोंसे पीड़ितोंमेंसे अनेकोंकी क्षमता शक्तिका ह्रास हो जाता है। फिर उनपर क्षय-कीटाणुओं का संक्रमण सहज हो सकता है।

यदि प्रबल रोगनिरोधक शक्तिवालों पर क्षयकीटाणुओंका आक्रमण हो, तो भी आपत्ति नहीं आती क्षयकीटाणुओंका विनाश करनेके लिये इनके रक्त और लसीकामें प्रबलरोग निरोधक शक्ति की उत्पत्ति हो जाती है। फिर कीटाणुओंको नष्टकर शनैः-शनैः वह शमन होजाती है। ऐसे लोग क्षयग्रसित अवश्य माने जायेंगे, तथापि वे क्षय रोगसे पीड़ित नहीं कहलायेंगे। बड़े शहरोंमें ऐसे अनेक क्षय संक्रामित सबल मनुष्य मिलते हैं, जिनको क्षयका असर कथन मात्र होकर स्वतः अच्छे हो जाते हैं। उनके

मृत देहोंकी परीक्षा करने पर सत्य जाना जाता है। अनेक पाश्चात्य विशेषज्ञोंकी मान्यता अनुसार नगर निवासी सभ्य संसार में ९० प्रतिशत लोग क्षय कीटाणुओंसे संक्रामित हो जाते हैं; इसके विरुद्ध वनवासी असभ्य जातियों के मृत शरीरोंमें क्षय कीटाणुओंके आक्रमणका अणुमात्र चिह्न भी नहीं मिलता।

अन्य शारीर विकृति से सम्बन्ध—पूर्वप्रवृत्त संक्रमण या गुप्त क्षतको फैलाने के लिये—

१. कतिपय आशुकारी रोग—सामान्यतः इन्फ्लुएन्ज़ा, रोमान्तिका और काली-खांसीके पश्चात् श्वसनसंस्थानपर प्रसर रख देते हैं। फुफ्फुसप्रदाह क्षय पूर्वप्रवर्तक नहीं होता; कितनेक रोगी अन्तिमावस्थामें फुफ्फुसावरणप्रदाह (Pleurisy) और काससह क्षयरोगसे आक्रमित होता है। वायुकोष स्फीति और तमकश्वास क्षयके वाहक नहीं होते।

२. जन्म जात हृद्रोग पीड़ित-वारंवार अन्तिमावस्थाके समान।

३ मधुमेह, मदात्यय, चिरकारी वृक्कप्रदाह, यकृद्दाल्ली, इनके अन्त में अनेक बार क्षयोत्पत्ति।

संक्रमणमार्ग—(१) क्षय पीड़ितोंके खाँसने या बोलने के समय थूक या सूक्ष्माणु उड़कर दूसरोंके श्वासमें चला जाना। कभी सूखे कफमें से अणु उड़कर दूसरों के श्वासमें प्रवेशकर जाना। मक्खियों द्वारा कफमें कीटाणुओंको दूसरोंके भोजनमें पहुँचा देना। रोगी शान्त श्वसन करता हो, उस समय कीटाणु निक्षेप नहीं होता। (२) स्तन पर क्षय हो ऐसे पशुओंका दूध (मांस में क्षय कीटाणु हों, वे तो विशेषतः पकाने पर नष्ट हो जाते हैं।) इस तरह दूधको विधिवत् उबाल लेने (Pasteurization) पर कीटाणु मर जाते हैं।

संक्रमण पद्धति—(१) श्वासमार्गसे प्रवेश (Inhalation); (२) अन्नमार्गसे प्रवेश (Ingestion); (३) त्वचाके नीचे प्रवेश (Cutaneous inoculation); (४) वंशागत।

१. श्वासमार्ग से प्रवेश—क्षय पीड़ित व्यक्तिके कफसे मुख्य सम्प्राप्ति। विशेषतः फुफ्फुसपर ही आक्रमण, फुफ्फुस क्षयके लिये मानुषिक क्षय कीटाणु विशेषतः कारण होता है। विलेमिन और कोकने १८८४ ई० में सिद्धकर दिया है कि श्वसनद्वारा पशुओंको भी फुफ्फुस क्षय होता है। कभी स्त्री पुरुषके समागमद्वारा परस्पर संक्रमण होजाता है।

२. अन्नमार्गसे प्रवेश—गलग्रन्थि, अन्ननलिका आदि पर आक्रमण होता है। मुख्य कारण-क्षय कीटाणुमय दूधका सेवन है। बालकोंमें उदरस्थ अंगोंके क्षयमें ८० प्रतिशतके लिये पाशविक कीटाणु होते हैं।

३. त्वचाके नीचे प्रवेश—खटिक और शवच्छेदन करने वालोंमें सामान्यतः स्थानिक विकारकी सम्प्राप्ति होती है।

४. वंशागत—जन्मसे प्राप्त प्रकार अति क्वचित्। शिशुओं पर आँवल (Placenta) में से संक्रमण होता है, जो सामान्यतः प्रभावित होजाता है। शुक्र कीटाणु या रजघटकद्वारा आक्रमण का स्वीकार नहीं हो सकता।

फुफ्फुसक्षयमें आक्रमणका मार्ग—

श्वसनमार्ग—अ. सीधा छोटी श्वासनलिकासे उप फुफ्फुसावरणकी सतह के भीतर। आ. कीटाणुओंके प्रवेश होनेपर क्षत न होने पर भी गलग्रन्थि और ग्रैवेयक ग्रन्थियोंके भीतर गहराईमें प्रवेश। पश्चात् अक्षकास्थिकी उत्तान ग्रन्थियों और फुफ्फुसके सन्निहित तन्तुओंमें या श्वासनलिकाकी ग्रन्थियों में प्रवेश। इ. कीटाणुओंका बृहच्छ्वासनलिकाकी श्लैष्मिक-कलाके भीतर प्रवेश होकर फिर श्वासनलिकाकी ग्रन्थियों में प्रवेश। तत्पश्चात् रक्त और लसीका द्वारा फुफ्फुसतन्तुओंकी सम्प्राप्ति।

अन्नमार्ग—कीटाणु प्रवेश अन्त्रकी श्लैष्मिक-कलाद्वारा ग्रन्थियोंमें। फिर मुख्य रस कुल्या और रक्तद्वारा फुफ्फुसमें। अन्त्रबन्धनीकी ग्रन्थियाँ क्वचित् प्रभावित होजाती हैं।

प्राथमिक फुफ्फुस संक्रमण—घोनके क्षत (Ghon's focus) घोनने श्वसनमार्गसे प्रवेशित कीटाणु जन्य बालकोंके फुफ्फुस क्षयमें फुफ्फुस तन्तुओंके उभारके भीतर प्राथमिक क्षत देखा है। जो सामान्यतः फुफ्फुसावरणके नीचे निम्न फुफ्फुस खण्ड में होता है। उस उभारमें से लसीका मार्गसे तथा बढ़ी हुई ग्रन्थियों द्वारा श्वासनलिका की ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। फिर फुफ्फुसक्षय उपस्थित होता है।

इन उभारोंके परिणाममें स्वस्थताकी प्राप्ति क्षय मरण ये भावी वर्षोंमें रेडियोग्राफ द्वारा अथवा मृत देह परीक्षा द्वारा व्यक्त होता है। अथवा क्षय ग्रन्थिपर आनुषंगिक प्रादाहिक अन्तर्भरण (Epituberculosis) की उन्नति होती है।×

× अन्तर्भरण (Infiltration)—वैधानिक तन्तुओंमें इतर नूतन पदार्थ भरने और अवस्थित पदार्थके अधिक परिमाणमें संचय होनेको अन्तर्भरण कहते हैं। अन्तर्भरणमें ६ प्रकार हैं।

१. मधुभरण-(Glycogenic Infiltration) यह मधुर होता है। यह विशेषतः यकृत्में और कुछ अंशमें घटकों के भीतर होता है। रोगावस्थामें यह कर्कस्फोट, पूयभाव, न्यूमोनिया और इतर संक्रामक रोगमें रक्तके श्वेत कीटाणुओंके भीतर भर जाता है। आयोडीनसे यह कुछ रक्तवर्णके और कठोर हो जाते हैं।

२. मेदोभरण-(Fatty Infiltration) मेद सर्वघटकोंमें कुछ अंशमें रहता है। अति भोजन, व्यायामका अभाव, शराब वंशपरम्परागत स्वभाव या किसी घटनाका अतियोग (Anabalic habit) से मेदवृद्धि होती है।

शिशुओंका सौम्य चिरकारी क्षय (Epituberculosis)—**यह विकार फुफ्फुसखण्डके भीतर खातमें से राजयक्ष्माके क्षतके सदृश अपारदर्शकता द्वारा बढ़ता है। यह क्षतसे सम्बन्धवाला है। कारणादि भिन्नानुसार।**

कारण—अनिश्चित। संभवतः आकुंचन (प्राथमिक क्षतसह), गौण श्वासनलिका आकुंचनके हेतुसे बढ़ी हुई ग्रन्थियों द्वारा रोगोत्पत्ति।

लक्षण—अप्रत्यक्ष। विशेषतः कुछ व्याकुलता, कास, ज्वर, फुफ्फुसावरणमें **वेदना, कफ या आमाशय द्रवमें क्षय कीटाणुओंकी उपस्थिति।**

चिह्न—प्रभाव या संचलन में दुर्बलता, ठेपनमें कुछ भेद। अस्वाभाविक ध्वनि उपस्थित। फुफ्फुसान्तराल प्रभावित पार्श्वकी विरुद्ध दिशामें स्थानच्युत। संभवतः इन्फ्लुएन्जाके समान रोगनिर्णय। ग्रन्थि विसर्पके उभार (Erythema nodosum) **६-८ सप्ताह के बाद उपस्थित होते हैं।**

उन्नति—ग्रन्थियोंकी उन्नति होनेपर सामान्यतः पूर्णांशमें विगलित होजाती हैं। कभी-कभी सौत्रिकतन्तु (शिखरस्थ श्वासनलिकाप्रसारणका परिणाम) या सौत्रिक-किलाटमय अपक्रान्ति (Fibre-Caseous **) क्षयग्रन्थियाँ बन जाती हैं।**

×१. **क्षारभरण**-(Calcareous Infiltration or calcification)-मृतभागमें खटिकक्षार (Calcium salt) का संचय होता है। धमनी, हृदय, हृदावरण, क्षयग्रसित जीर्णभाग, अर्बुद, विद्रधि, बीजवाहिनीमें मृत गर्भ, ग्रैवेयग्रन्थि और वृद्धावस्थामें तरुणास्थियें (Cartilages) इनमें अनेक बार क्षारभरण होकर वे कठिन हो जाते हैं।

क्षयकीटाणु विवर बनाते ही रहते हैं तथा रोगनिरोधक शक्ति उनका प्रतिकार करती रहती है। इस हेतुसे विवर भर जाते हैं और नये भी होते रहते हैं; किन्तु कीटाणुबल अत्यधिक होनेपर क्षमता शक्तिकी हार हो जाती है; और अनेक रोगी शनैः-शनैः अस्थिपञ्जरवत् बनकर मृत्युके मुखमें चले जाते हैं।

यदि रोगनिरोधक शक्ति—(Immunity) प्रबल है, तो कणोंके सौत्रिक-तन्तुओंमें खटिक क्षार संचित होने लगता है। फिर शनैः-शनैः सब दानोंका क्षारभरण हो जाता है। यदि पूर्णक्षारभरण हो जाता है, तो क्षारभरण रूप दीवारके नीचे एकत्रित हुए क्षय कीटाणुओं को आहार मिलना बन्द हो जाता है। इस हेतुसे १ से ३ वर्षके भीतर नष्ट होजाते हैं।

यदि देहमें क्षारभरण क्रिया अपूर्ण हुई है, तो क्षय कीटाणु क्षारभरण रूप कारागृहके भीतर मृत तुल्य स्थितिमें मनुष्यकी मृत्यु तक जीवित रह जाते हैं। कदाचित् भविष्यमें कीटाणुओं को अनुकूल आहार अधिक मिलने लग जाय तो पुनः आसुरी स्वरूप धारण कर लेते हैं। इसी हेतुसे अनेक बालकोंकी गलग्रन्थियाँ सत्वर नहीं पकती, और मृत्युके मुखसे बचे हुए राजयक्ष्माके अनेक रोगी सामान्य अपथ्य या स्त्री समागमकी कुछ अधिकता होनेपर पुनः आक्रमित हो जाते हैं।

रेडियोग्राफका देखाव—व्यापक समजातीय। अस्वच्छता गढ्ढेसे परिधिप्रान्तके सामने। स्वास्थ्यकी उन्नति होनेपर अस्वच्छता गढ्ढेके सामने आकुंचित होजाती है। प्राथमिक क्षत खुला और क्षार पूरित होता है तथा गढ्ढेकी ग्रन्थियाँ प्रतीत होती हैं। पूर्णांशमें सामान्यावस्था को प्राप्त हो जाती है।

वयस्कोंमें फुफ्फुस विस्तार का मार्ग—

१. ताज़ा अन्तः क्षेपण।

२. अपूर्ण आरोग्य से विस्तार या सामान्यतः ग्रन्थियोंके प्राथमिक क्रमणकी पुनः क्षिप्रकारिता—सामान्यतः रक्तप्रवाह या लसीकाप्रवाह या दोनोंद्वारा फैलता है। क्षत छोटे अनेक सम्मिलित (Simon's foci) अथवा एक बड़ा क्षत (Assmann's focus) होता है। छोटे क्षतः सामान्यतः शिखरोंके सामने तथा बड़ा क्षत प्रायः ऊर्ध्व-खण्डके अक्षकास्थिके निम्न प्रदेशमें या मूलके पास होता है।

उक्त दोनों प्रकार वर्द्धनशील क्षयके हैं; किन्तु इस अवस्थामें लक्षण कम होते हैं अर्थात् मन्द ज्वर, कास, कफस्राव, कफमें क्षय, कीटाणुओंकी उपस्थिति। चिह्न क्वचित्। रेडियोग्राफद्वारा विदित।

क्षयक्षतकी सूक्ष्म रचना—क्षय कीटाणुओं द्वारा चिरकारीप्रदाह होकर दाने-दार परिवर्त्तन होता है। आदर्श उपादान क्षयग्रन्थि है। सूक्ष्म-दृष्टिसे यह कितनेक स्थानिक-प्रदाहसे अभिन्न होती है। उदा० पिण्डमय हनु या हन्वर्बुद (Actinomycosis)

उपादानात्मक विकृति—क्षयकीटाणुओंकी प्राप्ति होनेपर—(१) संयोजक-तन्तुओंके घटकोंका आच्छादक कलाके घटकोंमें परिवर्तन, (२) बहुकेन्द्रमय श्वेताणु आकर नष्ट होजाते हैं फिर लघु लसीकाणु आते हैं। (३) राक्षसी घटक उत्पन्न होते हैं। (४) घटकोंके चारों ओर सूक्ष्मतन्तुओंकी जाली बन जाती है।

क्षय ग्रन्थियोंकी उन्नति—पहले पिटिका या धूसर क्षय ग्रन्थियाँ होती हैं। उपादानात्मक कितनेक द्रव्य गलनेसे उत्पत्ति। इनका आयतन पिनके शिर जितना छोटा। ग्रन्थियाँ अर्धस्वच्छ और दृढ़। फिर गलनेकी क्रिया और किलाटजनन क्रिया—(Caseation) सम समयमें होनेपर धूसर ग्रन्थियोंकी उन्नति होकर पीलीसुपारी जितनी बड़ी ग्रन्थि बन जाती है। इसके चारों ओर धूसर क्षय ग्रन्थिओंके चक्र होते हैं। इसके आगेके भागमें रक्तवृद्धि, फुफ्फुसमें वायुकोष का पुनर्जनन और छोटी श्वासनलिकामें पृथक् हुए घटक तथा रसस्रावकी प्रतीति। क्षय ग्रन्थियाँ सर्वदा रक्तवाहिनी रहित।

गौण अपक्रान्ति रूप परिवर्त्तन— (१) किलाटजनन; (२) सौत्रिक-तन्तु निर्माण; (३) क्षार भरण; (४) कोमलीभूति।

१. किलाट जनन—क्षय कीटाणु या उनके विषसे उत्पत्ति। प्रारम्भ केन्द्रस्थान से। कीटाणुओंका ह्रास या अभाव। किन्तु द्रव्य सामान्यतः विषमय बनना।

२. सौत्रिकतन्तु निर्माण—परिधिभागसे प्रारम्भ। संयोजक तन्तुओंमें से उत्पत्ति। परिणाममें क्षय ग्रन्थियों द्वारा प्रदाह। किलाट और सौत्रिकतन्तुओंके निर्माण में आभक्षता आना, यदि सौत्रिकतन्तुओंको सफलता मिले तो आच्छादन बन जाता है और क्षयग्रन्थियोंकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध होता है, किन्तु वे टूट जाँय, तो क्षय कीटाणु अच्छादित किलाट द्रव्य को शनैः-शनैः विषमय बनाते हैं।

३. क्षारभरण—किलाट द्रव्यमें क्षारलवणका प्रवेश होनेपर वे कठोर और वेदना रहित पिण्ड बन जाते हैं; उदा० फुफ्फुसाश्मरी।

४. कोमलीभूति—किलाट द्रव्यमें तरल मिल जानेपर कोमल बनता है। यह क्रिया सतहके पास होती है, पर तन्तुकोमल बन जाते हैं। इस कथन मात्रके चिरकारी विद्रधि के भीतर श्वेत वालुका सदृश, फल न देने वाला द्रव्य बन जाता है। सच्चा पूय नहीं होता। चारों ओर बैंजनी दानेदार तन्तुओंकी दीवार शिथिल भावसे संलग्न होती है और भीतर क्षय कीटाणु रहते हैं।

क्षयग्रन्थियों का देहमें विभाजन—वयस्कोंमें विशेषतः फुफ्फुसोंमें। बालकोंमें-विशेषतः अस्थि, संधिस्थान और लसीका ग्रन्थियोंमें। क्वचित् आमाशय, अन्ननलिका, ग्रैवेयग्रन्थि और मांस पेशियोंमें तथा हृदयावरणमें अस्वाभाविक।

देहमें प्रसारण पद्धति—क्षयक्षतमें से निम्नमार्ग से चारों ओर फैलते हैं—(१) श्लैष्मिक सतह,इस तरह कफ फुफ्फुसके अन्य मार्गोंपर अथवा शोथके बाद अन्त्रपर असर पहुँचता है। (२) लसीका मार्ग से। (३) रक्तप्रवाहद्वारा। परिणाम स्थानिक या व्यापक। फुफ्फुसाभिगा धमनीकी शाखामें प्रवेश करने और फुफ्फुस प्रदेश पर आक्रमण करने पर स्थानिक तथा फुफ्फुसाभिगा शिरामें प्रवेश करने और आशुकारी व्यापक पिटिका मय क्षय होनेपर व्यापक क्रिया दर्शाता है।

(१) पिटिकामय राजयक्ष्मा

मिलियरी ट्युबरक्युलोसिज़—Miliary Tuberculosis.

रोगपरिचय—जब प्राथमिक क्षयक्षतमेंसे क्षयकीटाणुओंका सम्बन्ध रक्तप्रवाहसे होता है, तब व्यापक पिटिकामय (बाजरीके दाने सदृश सूक्ष्म ग्रन्थिमय) क्षयकी उत्पत्ति होती है। यथा अनाच्छादित पीली क्षयग्रन्थि। विगर्ट (Weigert) ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि रक्तवाहिनियोंकी क्षयग्रन्थियोंकी उपस्थिति (संयोजित किलाट ग्रन्थियोंकी वारम्वार उपस्थिति) सामान्यतम अधिक परिमाणमें फुफ्फुसाभिगा-शिरा और मुख्य रसकुल्यापर होती है।

व्यापकक्षय ग्रन्थिप्रकार—विगर्टके कीटाणु बहुगुण हुए बिना रक्तमें उपस्थित और अवयवोंमें स्थापित होते हैं। इसके २ प्रकार हैं—A. आशुकारी पिटिकामय क्षय—अ. सब अवयव प्रभावित और आ. कतिपय विशेष अवयव प्रभावित—B. चिरकारी

व्यापक क्षय । क्वचित्—मुख्यतः बालकों को । विशेषतर पीली और किलाटमय क्षयग्रन्थियाँ ।

A. आशुकारी पिटिकामयक्षय

(Acute Miliary Tuberculosis)

इसका विशेष स्वभाव ये है कि (१) सर्वदा प्राथमिक स्थानिक क्षतसे गौण क्षत बहुत छोटा । (२) ज्वरावस्था कुछ सप्ताहोंसे अधिक नहीं । (३) सर्वदा बालक । (४) अत्यन्त बारम्बार छोटे बालकोंमें, विशेषतः रोमान्तिका और कुक्कुटकासके पश्चात् । इसके मुख्य ३ प्रकार हैं ।

अ. आशुकारी व्यापक पिटिकामय क्षय । लक्षण मधुराके समान ।

आ. आशुकारी पिटिकामय राजयक्ष्मा । फुफ्फुस लक्षण उपस्थित ।

इ. क्षयात्मक मस्तिष्कावरणप्रदाह । मस्तिष्कके लक्षणोंसह (अत्यन्त शिरदर्द प्रलाप आदि) सब बीचके प्रकारोंकी प्राप्ति होती है । फुफ्फुस और मस्तिष्कके प्रकारकी उन्नति व्यापक प्रकारके समान ।

अ. आशुकारी सार्वाङ्गिक पिटिकामयक्षय

(Acute General Miliary Tuberculosis.)

यह मोतीझराके सदृश प्रहार है । यह सामान्यतः छोटी आयुमें प्राप्त होता है । २० वर्षसे अधिक आयुवालोंको क्वचित् ही होता है ।

आक्रमण कालके लक्षण—असुखकी गुप्त उन्नति । ज्वरावस्था, निर्बलता, कृशताकी क्रमशः वृद्धि । क्वचित् अकस्मात् आक्रमण ।

प्रगति होनेपर लक्षण—कुछ स्थानिक लक्षणोंसह गंभीर विषप्रकोप द्वारा उत्पन्न लक्षण—(१) जिह्वा और त्वचा शुष्क, कपोल नीलाभ तेजयुक्त, सत्वर वज़नका ह्रास, स्वेद आना । (२) नाड़ी निर्बल और तेज़ (स्पन्दन प्रायः १२० से १३०) कभी दो विराममय नाड़ी (Dicrotic pulse) । (३) अनियमित उत्ताप—लगभग १०३° अविराम (सतत) या सविराम, विपरीत प्रकारभी होसकता है । (प्रातःकाल वृद्धि), क्वचित् प्रायः अभाव । (४) फुफ्फुसोंमें परिवर्तन नहीं; किन्तु कम श्वासनलिकाप्रदाह । (५) प्लीहाप्रायः स्पर्शग्राह्य, अतिसार विरल । (६) मानसिक निष्क्रियताकी वृद्धि होकर अन्तमें बेहोशी । आशुकारी प्रलाप कभी ।

अन्तिमावस्थामें लक्षण—प्रायः फुफ्फुस या मस्तिष्कके लक्षणोंकी वृद्धि (अन्य प्रकार से सम्बन्ध) मधुराकी भयङ्कर स्थिति होनेपर बेहोशीमें मृत्यु ।

स्थितिकाल—१ माससे कम । कभी १ से ३ मास ।

रोगविनिर्णय—सामान्यतः रोगनिर्देशक विशेष लक्षणोंका अभाव होनेपर, अत्यन्त कठिन । निम्नरोगोंसे प्रभेद करना पड़ता है ।

मोतीझरा—क्षयके भीतर होनेपर उसमें लक्षण—(१) अनियमित, उत्ताप तेज़ नाड़ी किन्तु गुलाबी पिटिकाका अभाव। (२) विशेष प्रतिक्रिया-समूहोत्पत्ति (Agglutination) रूप प्रतिक्रिया और रक्तकर्षणका अभाव। (३) रक्तमें बहुजीवकेन्द्रमय श्वेताणुओंकी उत्पत्ति।

शोणित विषज ज्वरमें—रक्तमें क्षयकीटाणुओंकी उत्पत्ति और पूयोत्पादक क्षयक्षत।

संक्रामक हृदयान्तरकला प्रदाह—रक्तमें कीटाणुओंकी वृद्धि और हृदयक्षत।

होजकिनका रोग—विरल प्रकार।

गर्भपातकारक कीटाणुका संक्रमण—समूहोत्पत्तिरूप प्रतिक्रिया (बहुधा यह प्रतिक्रिया दूसरे सप्ताहमें उत्पन्न होती। उक्त लक्षणों द्वारा पिटिकामयक्षय पृथक् होजाता है।

आ. आशुकारी पिटिकामय राजयक्ष्मा

Acute Miliary Tuberculosis of the Lungs.

यह बड़ी आयुवालोंको होता है। पूर्ववर्ती कास या क्षयसे। बालकोंमें रोमान्तिका या कुक्कुटकास या क्षय। कोई वाहक नहीं है।

शारीरविकृति—फुफ्फुस सूक्ष्म धूसर क्षयग्रन्थियाँ युक्त। प्राथमिक किलाटमय क्षति प्रायः शिखरपर श्वासनलिकाकी ग्रन्थियोंमें। शिराका स्थानिक विनाश प्रतीत होता है। गौण श्वासप्रणालिका प्रदाह होजाता है।

आक्रमण कालमें लक्षण—श्वासनलिका प्रदाहके समान।

कफपूयात्मक। क्वचित् थूकके साथ रक्त आना।

विशेष लक्षण—कास, श्वासकृच्छ्रता, गात्रनीलता, ये तीनों गंभीर और चिह्न अनुपातसे बाहर। बहुधा रात्रिका स्वेद आदर्श किन्तु सामान्यतः कम्पका अभाव।

अन्यलक्षण—ज्वर १०२° से १०४°, विपरीत प्रकारभी हो सकता है, कभी ज्वरका विराम प्रायः प्रातः कालको सायङ्कालकी अपेक्षा अधिकतर उत्ताप। प्लीहा स्पर्श ग्राह्य। श्वासनलिकाप्रदाह होता है और अस्वाभाविकता फुफ्फुसमें नहीं होती। ठेपनकी आवाज़ बड़ी। बालकोंमें प्रायः कुछ मन्द ठेपन और शक्तिपात होने से आधार स्थानपर श्वासनलिकाकी श्वसन ध्वनि निर्बल।

रेडियोग्राफ—फुफ्फुसोंमें सर्वत्र सुन्दर विविध दाग।

प्रगति—सत्वर, शीर्णता और निर्बलताकी वृद्धि। मस्तिष्क प्रकारके लक्षणोंकी वृद्धि।

स्थितिकाल—लगभग २ सप्ताह। सामान्यतः १ से ६ सप्ताह। क्वचित् २ मास।

रोगविनिर्णय—विशेष लक्षण और रेडियोग्राफसे निःसन्देह। क्वचित् कफमें क्षय कीटाणु। नेत्रमध्य पटलमें क्षयग्रन्थि अति क्वचित्।

३. क्षयात्मक मस्तिष्कावरणप्रदाह

(Tuberculous Meningitis.)

यह साधारणतया २ से ५ वर्षके बालकों को होता है। क्वचित् १ वर्षके भीतरकी आयुमें। क्षयात्मक क्षतसे किसी भी स्थानमें गौणोत्पत्ति। प्रायः श्वासनलिका और अन्त्र-बन्धनीकी ग्रन्थियाँ प्रभावित। सामान्यतः फुफ्फुस क्षयमेंसे सीधा आक्रमण नहीं। यह व्यापक पिटिकामयक्षयके एक अंश रूप या अन्तिम अंशरूप है।

शारीरविकृति—

आधार स्थानपर मस्तिष्कावरण प्रभावित—(चीनांशुनिशाविका प्रदाह-Leptomeningitis)—वराशिकावृत्ति (Dura mater) अप्रभावित। मृणालान्तराल (Interpeduncular) स्थान, दृष्टिनाड़ी योजनिका (Optic Chiasma) तथा शंखपार्श्वान्तरा सीता (Sylvein Fissure) प्रभावित। संक्रमण पार्श्विक सतह तथा उष्णीषक (Pons) तथा क्वचित् ऊर्ध्व सतहपर प्रसारित।

कला—जालमय बनी हुई या पूयात्मक क्षरणयुक्त अथवा उक्त प्रदेशोंके ऊपर अधारे कुल्या (Sub-arachnoid) के भीतर गंदले तरलसे दुग्धसदृश बनी हुई, जो वातनाड़ियों के साथ-साथ प्रसारित होती है। कलाओंमें कुछ मोटापन।

क्षयग्रन्थियाँ—पिनके मस्तिष्क जितनी छोटी श्वेताभ, स्वल्प अथवा बहुसंख्य। स्थान—अ. कलाओंपर, विशेषतः शंख पार्श्वान्तरा सीतामें; आ. धमनियों पर (छोटे उभारके समान देखाव), विशेषतः मध्य मस्तिष्क तथा अग्रिमा और पश्चिमा सुषिर पत्रिकाकी धमनियों पर।

पार्श्विकगुहा (त्रिपथगुहा—Lateral ventricles)-गदले तरलसे स्फीत, तथा छत्रिका (Fornix) और काचपत्रिका (Septum Lucidum) का विनाश। मांज (Convolutions) समतल आशुकारी शीर्षोदर (Acute Hydrocephalus) की उत्पत्ति क्षयग्रन्थियाँ सामान्यतः मंजरिका चक्र (Choroid plexus) और आवरण कलाओंपर।

मस्तिष्क तन्तु—शोथमय मस्तिष्कावरणके नीचे तथा श्वेताणुओंके अन्तर्भरण से प्रभावित अर्थात् मस्तिष्क प्रदाह (Encephalitis) विद्यमान।

कभी-कभी ग्रैवेयिक सुषुम्णा काण्डका आवरण प्रभावित। किलाटमय क्षयात्मक पिण्ड मस्तिष्क द्रव्यमें उपस्थित।

लक्षण—बालकोंमें अनेक प्रकारके।

क्रम—पूर्वावस्था। फिर ३ अवस्था। सर्वदा पृथक् नहीं। सबके भीतर लगभग 1-1 सप्ताहका समय। प्रथमा उद्दीपनावस्था, द्वितीया करोटिगत दबाव वर्द्धमानावस्था, तृतीया पक्षवधावस्था या संन्यास (Coma)।

पूर्वलक्षण—(Prodomal Symptoms) रोमान्तिका, कुक्कुट कास या शक्तिपातके पश्चात् उपस्थित। कृशता, अरुचि, चिड़चिड़ापन। स्थितिकाल लगभग २ सप्ताह या ६ सप्ताह तक।

उद्दीपनावस्थाके लक्षण—मस्तिष्कावरण और बल्ककी उद्दीपना प्रायः आक्षेपसह आक्रमण। आक्रमणकालमें मुख्य।

१. अत्यन्त शिरदर्द, बालक शिरपर हाथ रखता है।

२. वमन, मस्तिष्क प्रकारकी अर्थात् बिना यत्न, उबाक रहित बारंबार वमन।

३. ज्वर १०२° से १०३°।

(शनैः-शनैः प्रकाशित अन्य लक्षण)

४. नाड़ी पहले तेज़ फिर मन्द और अनियमित।

५. कब्ज़ नानाविध।

६. शीर्षोदर जन्य रुदन—थोड़ा कारण रहित, अकस्मात् ज़ोरसे अथवा सतत रुदन।

७. कनीनिका आकुञ्चित।

सामान्य लक्षण—व्याकुलता, मांसपेशियोंमें खिंचाव, दृष्टिमें किंचित् तिर्यक्पन, प्रकाशकी असहिष्णुता (Photophobia), करोटिके ऊपर अस्थि रहित स्थानमें खिंचाव (Fontanelle tense) तथा कभी-कभी चेतनाधिक्यकी प्रतीति आदि।

दबाववर्द्धनावस्थाके लक्षण—करोटिके भीतर दबाव बढ़नेपर उद्दीपना नष्ट होती है अर्थात् वमन, शिरदर्द आदिका ह्रास होता है। कर्परसे मोड़कर पार्श्वपर शयन करते हैं और जानुभी मोड़ लेते हैं। निगलनेमें कष्ट होता है। इनके अतिरिक्त लक्षण—

१. तन्द्रा, किन्तु उग्रता। चलने और खानेमें प्रतिबन्ध।

२. उदर किस्तकाकार (Carinated), त्वचा कृश और मलावरोध।

३. नेत्रमें परिवर्त्तन—अ. कनीनिका प्रसारित अथवा विषम, प्रकाश परिवर्तनके साथ प्रतिक्रिया; आ. नेत्रगोलकोंका संचलन अव्यवस्थित; इ. तिर्यक् पन; ई. शीघ्र दृष्टिनाड़ीप्रदाह और अक्षिपुटपतन।

४. आक्षेप या खिंचाव। पहले खिंचाव फिर आक्षेप।

५. उत्ताप—कम लगभग १००° से १०२°।

६. नाड़ी मन्द और अनियमित। श्वसन सशब्द, किन्तु कम प्रमाणरूप।

मस्तिष्कका खिंचाव सामान्यतः किन्तु क्वचित् लक्ष्य देने योग्य। नाखूनसे खुरचने समान चिह्न, ग्रन्थि विसर्प तथा प्रायः तेज़ीका रोध आदि।

पक्षवधावस्थाके लक्षण—

१. संन्यास (Coma) गहरा।

२. संचालक नाड़ियोंके लक्षण–धनुर्वात (आक्षेप), स्थानिक आक्षेप, पक्षाघात और आकुंचन।

३. कनीनिका प्रसारित और अन्य चिह्न द्वितीयावस्थाके समान। नेत्रच्छद अर्धनिमीलित।

नाड़ी तेज़। अतिसार, संयमका पूर्ण अभाव। मोतीझरावस्था। उत्ताप, ह्रास, मृत्युके पहले उत्ताप वृद्धि।

स्थितिकाल—सामान्यतः ३ सप्ताह। कभी २ से ६ सप्ताह।

प्रकार—(१) आशुकारी प्रकार, यह अकस्मात् आक्रमण करके कुछ दिनों में घातक बननेवाला। (२) आशुकारी क्षयात्मक अर्बुदपर अकस्मात् तीव्र आक्रमण कारक, इस प्रकारमें मस्तिष्कार्बुदके लक्षण उपस्थित।

विशेष लक्षणोंका विवेचन—

नाड़ी—आक्रमण कालमें तेज़। फिर करोटिके भीतर दबाव बढ़नेके अनुरूप नाड़ीमंद और अनियमित। अन्तमें तेज़, हृदयके पतनके समान।

उत्ताप—प्रथमावस्थामें अधिक (१०३°) फिर पतन (१००°), फिर अति वृद्धि (१०६°) तृतीयावस्थामें।

नेत्र परिवर्त्तन—कनीनिका प्रथमावस्थामें आकुंचित। फिर करोटिके भीतर तरलका दबाव बढ़नेपर प्रसारित। प्रायः विषम। प्रकाशसे दोलायमान, पहले आकुंचित फिर सत्वर प्रसारित। पश्चात् प्रसारणकी वृद्धि और प्रकाशकी प्रतिक्रिया-का अभाव।

नेत्रकी बाह्यपेशियाँ—तिर्यक् पतन, प्रायः पहलेही उपस्थित। संचलनमें अव्यवस्था। एकसे दूसरी ओर जानेमें दोनों नेत्र गोलकोंकी मंद स्वतंत्रगति यह महत्त्वका चिह्न, किन्तु स्वस्थ निद्रित बालकोंमेंभी उपस्थित। अक्षिपुट पतन।

दृष्टिनाड़ी प्रदाह—क्वचित् अत्यन्त। सितबिम्ब (Optic disc) के किनारे पर दाग और रक्तवाहिनी मुड़ी हुई। यह प्रथमावस्थामें उपस्थिति संदेह युक्त।

मध्यपटलपर ग्रन्थि—अति क्वचित्।

नेत्र श्लैष्मिक-कला और शुक्लमण्डलकी प्रतिक्रिया अन्तिमावस्थामें नष्ट।

संचेष्टनी नाड़ियोंके लक्षण—आक्षेप—(१) प्रथमावस्थामें आक्रमण कालमें, एकाकी व्यापक आक्षेप (धनुर्वात) (२) द्वितीयावस्थामें बहुत और नानाविध। प्रायः एक अवयवका स्थानिक आक्षेप आदि वल्कस्थ (Cortical) क्षमताके हेतुसे। (३) तृतीयावस्थामें सार्वाङ्गिक। खिंचाव, पक्षाघात या आकुंचनकी उत्पत्ति।

पक्षवध—द्वितीय और तृतीयावस्थामें। कितनेक समय क्षणिक। (१) अर्धाङ्ग वध (Hemi plegia) यह आन्तर कूर्चवल्लिका (Internal Capsule) या वल्कसे (मध्य मस्तिष्क धमनीकी शाखाओं के प्रभावसे)। (२)

अवयव वध या किसी एक या अधिकभागोंका वध (Monoplegias) नानाविध। अत्यन्त वारंवार तीसरी और ७ वीं नाड़ीका वध होनेपर वेबर (Weber) के लक्षण समूह उपस्थित अर्थात् पीड़ित नाड़ीके सामने के भागमें मस्तिष्क मूलाङ्क (Crura Cerebri) में क्षतिजन्य लक्षण।

खिंचाव—स्थिर। प्रायः आक्षेपके पश्चात्। विविध लक्षण कम्पन, हाथ पैरोंके चलनमें अव्यवस्था, स्थानिक आक्षेप कर्निगचिह्न * (Kernig's Sign) सामान्यतः उपस्थित।

बॉबिनस्की का चिह्न × (Babinski's sign) कभी-कभी उपस्थित। आनुक्षेप नानाविध उन्नत या ह्रास।

शयनविधि—(Decubitus) पहली और दूसरी अवस्थामें पार्श्वसे शयन। कूर्पर और जानु मोड़ लिये जाते हैं। यदि रोगी पीछेकी ओर गति करते हैं, तो पार्श्वमें मुड़ जाता है। तीसरी अवस्थामें चित लेट सकता है।

विशेष प्रतिफलित क्रिया—

ब्रह्मवारिकी स्थिति—(१) प्रथिन वृद्धि। (२) लघुलसीकाणु उपस्थित; किन्तु क्वचित् बहुजीव केन्द्र युक्त श्वेताणु प्रमुख। (३) चपकीटाणु सामान्यतः उपस्थित प्रायः शोधनेमें कठिनता; किन्तु अण्डेमें बोनेपर सामान्यतः उग आते हैं।

---

* पीड़ित व्यक्तिको चित लिटाकर उसके सांथलको उदरपर मुड़वावे तो पैर जानुसे पूर्णांशमें नहीं मुड़ सकता। यह चिह्न मस्तिष्कावरण प्रदाहके लगभग ८५ प्रतिशत रोगियोंमें उपस्थित होता है।

(चित्र क्लिनिकल मैथड पृ० ४४४ से)

× मांस पेशियोंकी क्रियामें विषमता लघुमस्तिष्ककी विकृतिसे होती है, उसे बॉबिनस्कीका चिह्न कहते है।

(४) द्राक्षशर्कराका ह्रास सामान्यतः १०० सी० सी० में ६५० मिलीग्राम। तरल स्वच्छ या किञ्चित् गंदला।

रक्तगणना—बहुजीव केन्द्रमय श्वेताणु अनियमित।

वयस्कोंमें अन्तर—पूर्व लक्षण क्वचित्। प्रारम्भिक लक्षण (१) तिर्यक् पन दोनों नेत्रमें। (२) वाणीमें कुछ परिवर्त्तन या वाग्वध। (३) वमन कम सामान्य। (४) अर्धाङ्ग वध या किसी अवयव विशेषका वध, कभी-कभी वाग्वधसह। (५) अपतन्त्रक (Hysteria) की स्थितिकी प्राप्ति। प्रलाप और मांसपेशियोंका खिंचाव और कठोरता सामान्य, किन्तु व्यापक आक्षेप क्वचित्। संन्यास सत्वर और स्थितिकाल कम (लगभग २ सप्ताह) यह प्रौढोंकी अस्थियोंकी कठोरताके हेतुसे होता है।

रोगविनिर्णय—मस्तिष्कावरण प्रदाह वर्तमान है। यदि है तो किस प्रकारका? इसके लिये महत्वके अ. मज्जवारिकी पूर्णरूपसे परीक्षा। रक्तरसका समूहीकरण रूप प्रतिफलित क्रिया। आ. क्वचित् १ वर्षके भीतर, सामान्यतः २ से ५ वर्ष। इ. पूर्ववर्त्ति लक्षणवत्।

१. मस्तिष्कावरणप्रदाह वर्त्तमान हो तो निदान निम्न रोगोंसे मधुरा—इसमें रोगी शिथिल होता है। चित सो सकता है। उदर प्रसारित।

फुफ्फुसावरण प्रदाह—विशेषतः शिखरस्थ। इसमें फुफ्फुस चिह्न उपस्थित।

आशुकारी आमाशय प्रदाह—इसमें जिह्वा मल लिप्त। मस्तिष्कके कोई चिह्न नहीं।

मस्तिष्कके धूसर द्रव्यका या मस्तिष्कका आशुकारी प्रदाह। मध्य कर्ण प्रदाह।

आशुकारी वृक्कालिन्द प्रदाह—(Acute Pyelitis) छोटे बालकों में वयस्कोंमें करोटिगत अर्बुद या क्वचित् अपतन्त्रकसे विभेद करना पड़ता है।

२. मस्तिष्कावरणप्रदाह प्रकार—मस्तिष्क सुषुम्णाके आवरणका प्रदाह सामान्यतः १ वर्षके भीतर होता है। मस्तिष्कका खिंचाव लक्ष्य देने योग्य।

परिणाम—घातक।

चिकित्सा—कटिस्थ सुषुम्णा मुखमें छिद्रकर द्रव निकालनेपर वेदना कम होजाती है। २४ या ४८ घंटेके पश्चात् पुनः निकालें। बढ़ी हुई अवस्थामें परिचर्या करने और नासिकासे भोजन देनेमें सम्हालने पर आयुमें कुछ वृद्धि होती है।

२. राजयक्ष्मा

फुफ्फुस क्षय-पल्मनरी ट्यूबर क्युलोसिस़

(Pulmonary Tuberculosis)

वर्गीकरण—फुफ्फुसक्षयके निम्न प्रकार होते हैं।

अ. फुफ्फुस खण्डीय क्षय।

आ. श्वासप्रणालिकाओं का क्षय।

इ. फुफ्फुसका पिटिकामय क्षय (वर्णन पहले होगया है)।

ई. चिरकारी फुफ्फुस क्षय।

उ. सौत्रिकतन्तुमय फुफ्फुस क्षय।

अ. आशुकारी फुफ्फुस खण्डीय क्षय

Acute Pneumonic Tuberculosis,

Tuberculous Lober Pneumonia.

शारीर विकृति—एक खण्डमें सामान्यतः ऊर्ध्वखण्ड प्रभावित अथवा कम समय पूरा फुफ्फुस। जब संक्रमण संभवतः श्वासनलिका द्वारा फैलता है, तब छोटा विवर या किलाट क्षत बारंबार। प्रभावित क्षेत्र कठोर, भारी, वायुरहित, धूसराभ, घनीभवन (यकृतकेतन्तुओं) सदृश, पिटिकामय, कठोर, क्षयग्रन्थियाँ, प्रायः अस्पष्ट। दूसरे खण्डमें या दूसरे फुफ्फुसमें समान कठोर ग्रन्थियाँ या किलाट ग्रन्थियाँ, यह स्थिति केवल, विवर या किलाट क्षतके अभावमें होती है। यदि किलाट जनन या गह्वरोत्पत्तिके प्रदेशोंमें ये ग्रन्थियाँ अधिकतर चिरकारी हों, तो कभी पूरा फुफ्फुस किलाट विकृतिमय अर्थात् मलाई के सदृश कोमल बन जाता है।

आक्रमण—प्रायः आशुकारी खण्डीय फुफ्फुसप्रदाहके आदर्श लक्षणों सह।

प्रगति होनेपर लक्षण—फुफ्फुस प्रदाहके आदर्श लक्षण और चिह्न, जब तक आकस्मित पतनकी प्राप्ति न हो। फिर सूचित लक्षणोंकी उत्पत्ति। (१) अनियमित उत्ताप; (२) तेज़नाड़ी और गम्भीर वैधानिक व्यथा; (३) फुफ्फुसोंमें घनीभवनकी उपस्थिति।

उत्तरकालमें—अनियमित उत्ताप, सत्वर कृशता और स्वेद, शक्तिह्रास, विवर चिह्न—की उत्पत्ति, पूयमय कफस्राव।

अन्तिमावस्थामें लक्षण—(१) मधुराकी अवस्था और सत्वर मृत्यु लगभग २ सप्ताह में। (२) सामान्य प्रकारमें क्रमशः रोगवृद्धि और लगभग २ मासमें मृत्यु। क्वचित् कुछ रोगियोंमें अन्तिमावस्थामें आशुकारी प्रकोपके लक्षण अदृश्य होकर चिरकारी क्रम बन जाता है।

रोगविनिर्णय—आदर्श फुफ्फुसावरण प्रदाहसे प्रभेद। आकस्मिक पतनके पहले क्वचित् ही होता है। (प्रभेदका कुछ भी फल नहीं है) प्रभेद साधन—(१) संदेहास्पद कौटुम्बिक या व्यक्तिगत इतिहास आक्रमण कम आकस्मित, (२) उत्ताप आरम्भ से ही कम नियमित। (३) श्वसनध्वनि नालीय नादकी अपेक्षा कुछ अंशमें दुर्बल। स्वर अधिकभारी।

पहले सप्ताहमें क्षय ग्रन्थियाँ भी प्रतीत होती हैं; किन्तु कभी १० दिनमें। विवर चिह्न सबसे पहले रोग निदान कराता है।

आ. आशुकारी फुफ्फुस प्रणालीय क्षय

Acute Broncho pneumonic Tuberculosis–Tuberculous Broncho pneumonia.

यह रोग प्रबल-वेगी राजयक्ष्मा (Galloping Consumption) का सामान्यतम प्रकार है। यह विशेषतः बालकोंमें होता है।

शारीर विकृति—

१. फुफ्फुस धूसराभ उभारोंसह ग्रन्थिमय या लम्बे स्थितिकालमें छोटे किलाट पिण्ड, $\frac{1}{4}$से $\frac{1}{2}$ इञ्च व्यास। पिटिकामय क्षय विरल।

२. विकीर्ण छोटे गलित विवर। लघु स्थिति-कालके हेतुसे बड़े नूतन विरल।

३. फुफ्फुसके मध्यवर्त्ति प्रदेशके भीतर-भीतर शिरामय प्रदेश—अ. फुफ्फुसप्रादाहिक रक्तघनता, या आ. वायुकोष स्फीति शोथ।

४. जीर्ण विवर या क्षत सामान्यतः शिखरपर।

५. श्वास नलिकामें पूयात्मक स्राव।

६. सौत्रिकतन्तुमय उरस्तोय वर्त्तमान।

७. श्वासनलिका की ग्रन्थियाँ प्रायः बढ़ी हुईं और किलाटमय (Caseous) बनी हुई बालकोंके फुफ्फुसमूलके चारों ओर। वायुभृत फुफ्फुसावरण (Pneumothorax) की संप्राप्ति भी हो सकती है।

प्रदेश अन्य प्रकारसे भी पीड़ित हो, सकता है। विशेषतः दोनों शिखरों पर। अन्य रोगियोंमें एक खण्ड लगभग कठोर; किन्तु बीचमें कीटाणु रहित भाग लगभग सर्वदा अनुभूत होता है।

बालकोंमें जब स्थितिकाल कम हो, फुफ्फुस प्रणालीय प्रदाहका क्षयोत्पादक स्वभाव नेत्रसे निरीक्षण करने पर कभी विदित नहीं होता। मन्द गतिवाले प्रकारमें किलाटमय प्रदेश वर्त्तमान।

सूक्ष्म निरीक्षण—आशुकारी क्षतका आरम्भ सूक्ष्मश्वास प्रणालिकाओंकी दीवारोंके भीतर। प्रसेकमय फुफ्फुस प्रदाहसे समीपके वायुकोष प्रभावित होते हैं। क्षय-प्रगति और किलाट जननके परिणाममें क्रमशः प्रसारण। लघुक्षतमें निम्न परिवर्त्तन विद्यमान।

१. मध्यस्थ श्वासप्रणालीय शाखाएँ-दीवार मोटी और गली हुई। नलीके भीतर किलाटमय द्रव्य।

२. किलाटजनन द्वारा समीपस्थ वायुकोष सत्वरनाशके हेतुसे वह स्थान नानाविध सौत्रिकतन्तुमय होजाते हैं। वायु कोषोंका अवशिष्ट अंश प्रतीत होता है।

३. वायुकोषोंके मण्डलके चारों ओर मोटे वायुकोषों की दीवार तथा वायुस्थानों का मुख प्रसेकमय द्रव्योंसे रुद्ध। उन भागोंमें किलाट जनन क्रियाका आरंभ उपस्थित।

४. वायुकोषोंका बाह्यमण्डल अपरिवर्तित अथवा वायुकोषस्फीति, शोथके प्रसारण सह या क्षयकेन्द्रके भीतर आरम्भ।

आक्रमणपद्धति—बड़े मनुष्य में।

१. अकस्मात् आक्रमण—अति परिश्रम या साहसके पश्चात् आक्रमण विशेषतः शराबियोंमें।

२. इन्फ्लुएन्झाके पश्चात् आरम्भ।

३. आवेग युक्त कास फैल जानेपर क्षयकेन्द्र।

४. थूकके साथ रक्तस्राव; जब श्वासनलिकामें क्षय द्रवका आकर्षण हो विशेषत: सत्वर उन्नति।

बालकोंमें रोमान्तिका और कुक्कुटकासके पश्चात्।

लक्षण—

आक्रमणके समय—वेपन, श्वासकृच्छ्रता, कास, अधिक उत्ताप, तेज़नाड़ी। कभी-कभी अधिक-नियमित।

प्रगति—शीर्णता और अति निर्बलता, प्रायः वांति।

अन्तिम—लक्षणोंकी सत्वर उन्नति। प्रलेपक ज्वरके सदृश अनियमित ज्वर, स्वेद विशेषत: रात्रिको शीर्णता और फुफ्फुस विकारके लक्षण। मोतीझरा अवस्थाकी उन्नति, प्रलाप, शुष्कजिह्वा, शुष्कत्वचा, अतिसार। मृत्यु ३ सप्ताहमें।

कम सत्वरगति हो तो मृत्यु लगभग २ मास में। क्वचित् कुछ सप्ताहके बाद उन्नति होकर चिरकारी अवस्थाकी प्राप्ति।

परीक्षात्मक चिह्न—प्रारम्भमें व्यापक श्वासनलिकाप्रदाह, दोनों फुफ्फुसोंमें भी फिर घनीभवन प्रदेश, विशेषतः शिखरपर। टेपन निर्बल, श्वसन ध्वनि बड़ी या नालीय तथा आगंतुक ध्वनि। हरा पीला दुर्गन्ध युक्त कफ। इनके अतिरिक्त मुखमण्डल निस्तेज नीलाभ, निम्नओष्ठमें नीलापन, निस्तेज चक्षु, अत्यधिक तन्द्रा और निद्रा आदि भी।

रेडियोग्राफ—फुफ्फुसमें सर्वत्र छाया।

रोगविनिर्णय—

बड़ोंमें—कफके भीतर क्षयकीटाणु वर्त्तमान। लक्षणोंकी गंभीरतासे निर्णय।

बालकोंमें—सामान्यतः फूला हुआ कफ। कण्ठदर्शक दर्पणसे परीक्षा करनेपर उसे कफ कण या आमाशयिक द्रव्य लग जाता है, उसमेंसे कीटाणु मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त सत्वर कृशता और निर्बलता तथा श्वासप्रणालिका प्रदाह भी रोगनिर्णय में सहायक होते हैं।

६. चिरकारी राजयक्ष्मा

Chronic Pulmonary Tuberculosis-Fibro caseous Tuberculosis

इस रोगसे पीड़ितोंकी संख्या भारतवर्षमें यूरोपकी अपेक्षा अनेक गुनी

अधिक है। कारण, गरीबाई, स्वच्छताके नियमोंका अज्ञान और बाल विवाह। यूरोपमें स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष रोगियोंकी संख्या कुछ अधिक प्रतीत होती है, किन्तु भारतवर्षमें पर्दा प्रथाके हेतुसे स्त्रियाँ अत्यधिक क्षयपीड़ित हो जाती हैं।

प्राथमिक क्षत—विशेषतः ऊर्ध्व खण्डमें शिखरसे १–१॥ इञ्च नीचे, पिछले और बाहरके किनारेके पास। दोनोंका सम्बन्ध सतहपर। अ. आगेकी ओर अक्षकास्थिके बीचके भागसे नीचे। आ. पिछली और उत्तर अंसपृष्ठ (Supra-spinous fossa) पर। फिर नीचेकी ओर विस्तार, उरःफलक पंक्तिसे लगभग १॥ इञ्च आगेकी सतहपर। कम सामान्य अक्षकास्थिके बीच बाह्य तृतीय भागके नीचे, प्रथम और द्वितीय स्थानके बीचमें।

गौणक्षत—सामान्यतः (१) उसी फुफ्फुसके निम्न खण्डमें उसके शिखरके १–१॥ इञ्च नीचे। पिछली ओर ५ वीं पृष्ठ कशेरुकाके सामने, सतह पर सम्बन्ध विस्तार खण्डोंके बीचकी दीवार तक नीचे और बाहरकी ओर समान। (२) सामनेके फुफ्फुसका ऊर्ध्वखण्ड, जो उन दोनों खण्डोंसे पहलेके समान सम्बंध कायम रखता है, उसमें गौणक्षत संदेहयुक्त। निम्न खण्डमें सम्भवतः पहलेसे प्रारम्भ। प्रायः सर्वदा प्रभावित होनेके समयसे परीक्षात्मक चिह्न शिखरपर वर्त्तमान।

दूसरी ओर फुफ्फुसपीठ और निम्नखण्डका आगेका हिस्सा प्रभावित। सबसे पहले आधार स्थानपर क्षत, क्वचित् वयस्कोंमें, कम क्वचित् बालकोंमें।

दक्षिण फुफ्फुस वाम फुफ्फुसकी अपेक्षा कुछ अंशमें अधिकतर प्रभावित।

विस्तार प्रणाली—इसका फैलाव-(१) सीधा तन्तुओंके चारों ओर अन्तर्भरण द्वारा; (२) लसीका मार्ग और कैशिकाओं द्वारा। अ. श्वासनलिकाके चारों ओर, पासमें कठोर पिटिका होनेपर, वे रक्षक पिण्डसह द्रवीभूत होकर उत्पन्न करती है। आ. फुफ्फुसावरणके नीचे और तन्तुओंके बीचमें अधिकतर प्रसारण। (३) संक्रमित द्रव्यका श्वासप्रणालिका शाखा या श्वासनलिकामें आकर्षण, यह पिटिकामय क्षयके हेतुसे रक्तवाहिनियों द्वारा होता है।

शारीर विकृति—इसका वर्णन पहले सामान्य क्षय विवेचनमें किया गया है। क्षत अन्तमें बहुत प्रकारके होते हैं। केवल पृथक् रोगियोंमें नहीं, किन्तु उसी व्यक्तिके पृथक् खण्डमें भी और उसी खण्डके विविध भागोंमें भी विविधता होती है।

क्षय प्रकोपज विशेष क्षतोंमें कोथ (और किलाट जनन) द्वारा घटकोंमें परिवर्त्तन अथवा सौत्रिकतन्तुओंकी उन्नति (सौत्रिकतन्तुओंकी उन्नति या संयोजक तन्तुओंकी अति वृद्धि, Fibrosis or Sclerosis) ये दो अनुगामी स्थिति साथमें होती है। परिणाम उनकी प्रबलतापर रहता है। सौत्रिकतन्तु आरोग्य देनेका तथा कोथ क्षतको फैलानेका प्रयत्न करता है।

चिरकारी राजयक्ष्मामें विकृतिजनन वृक्ष
१. अन्तिम वा लघु श्वासनलिका
दीवारमें प्राथमिक व्रण
राजसी पटल संक्रमण
धूसर कठोरग्रन्थि
किलाटजनन
२. वायुकोष
अ. नलिकाके भीतर
आच्छादक स्राव
आ. दीवारमें
अन्तर्भरण और स्थूलता
किलाटजनन
किलाटजनन
३. केशिकाएँ
वायुकोषोंकी दीवारमें नष्ट
मन्द रक्तमय कफस्राव
किलाटजनन
४. सौत्रिक तन्तु
वायुकोषोंकी दीवारोंमें
(नं० २के भीतर आ देखो)
इसके पश्चात
खण्डोंके बीचकी दीवारोंमें
किलाटजनन
अविच्छिन्न उन्नति
(फुफ्फुसावरणमें
सौत्रिक तन्तुवृद्धि)
३. सौत्रिक तन्तुमय फुफ्फुस
(सौत्रिक तन्तुमय क्षय)
चारों ओरके तन्तुओंमें
फुफ्फुसश्वासनलिकाप्रदाह
लसीकाद्वारा
समीपमें कठोर पिटिकाओंकी
उत्पत्ति
पोतग्रन्थियाँ
केन्द्रस्थ श्वासनलिकाप्रदाह
या
क्षयकेन्द्रकी
वृद्धिसे विनाश
१. किलाटपिण्डकी उन्नति
(किलाट उत्पत्तिमय फुफ्फुसश्वासनलीय
क्षेत्र और कठोर पिटिकाओंमेंसे उत्पन्न
घनकेन्द्रों के संयोगद्वारा
पिण्डकी कोमलीभूति और स्राव
२. सौत्रिक तन्तुओंसे आच्छादित
व्रणरोपणार्थ चेष्टा
A. आकुंचनद्वारा
(व्रणरोपण)
फुफ्फुस शिखरपर
सामान्य
B. किलाटमय उमारयुक्त
सौत्रिक आवरणसह
आवरण निश्चल
किन्तु विदारण होनेपर
संक्रामक
C. चूनेके लवणोंका
अनुप्रवेश,
दाश्मरण,
व्रणरोपण.
दीवारका किलाटभवन
अ. नाजिन भित्ति
सौत्रिकदर्शक कलाका अभाव
त्वरित प्रसारण।
आ. मिश्रित सौत्रिक भित्ति,
किन्तु मन्द प्रसारण,
पूयस्राव
चिरकारी प्रकारमें सामान्य
दीवारमें सौत्रिक तन्तुनिर्माण
इ. विच्छिन्न गह्वर,
कोमल सौत्रिक भित्ति।
शिखरपर सामान्य

चिरकारी क्षय ग्रन्थियोंकी नियमित उन्नतिका संक्षिप्त विवरण—प्राथमिक केन्द्र लघु श्वासप्रणालिका या अन्तिम श्वासप्रणालिकाकी दीवारमें। धूसर कठोर ग्रन्थिकी उन्नति। उस समयमें वायुकोष आच्छादक घटकोंसे भर जाता है। वतको कोथ भावकी प्राप्ति (मध्य स्थानसे प्रारम्भ) और सौत्रिकतन्तु परिधि भागसे। अस्वाभाविक अन्न तन्त्र प्रसारण। केन्द्रके पास इस समय उपस्थित। (१) केन्द्रीय श्वासप्रणालिकाके भीतर श्लेष्मा या देरसे किलाट द्रव्य (वायुकोषसे प्राप्त)। (२) श्वासप्रणालिकाकी दीवार और समीपस्थ वायुकोषोंमें क्षय ग्रन्थियोंकी रचनाकी सतत प्रगति होना, विनाश और किलाटभवन। कुछ अंशमें सौत्रिकतन्तुओंकी रचना। (३) वायुकोषोंके चारों ओर प्रसेकावस्था, यह फुफ्फुसप्रणालिका प्रदाहके समान। (४) बाहर अ. वायुकोषोंके पतनसे ग्रन्थियाँ और वायुकोष स्फीति (अति स्पष्ट फुलाव); आ. पिटिकामय क्षयका फैलाव लसीका मार्गसे प्राथमिक क्षतमें से।

फुफ्फुसके प्रभावित विविध तन्तुओंके अनुरूप क्षत—

लघु श्वासनलिका और श्वासप्रणालिकाएँ—चिरकारी क्षयका आरम्भ सामान्यतः दीवारमें, वैधानिक द्रव्यसे धूसर कठोर ग्रन्थिप्रकार। वर्णन पहले शारीर सूक्ष्म रचना विकृतिमें किया है।

वायुकोष और उनकी दीवार—(१) वायुकोष पीड़ित श्वासप्रणालिकाकी कन्दिकामें वायुकोष आच्छादक घटकों और कुछ श्वेताणुओंसे पूरित इन कोषोंको कोथ प्राप्ति। वायुकोषोंकी दीवारोंमें आच्छादन निर्माण। (२) वायुकोषकी दीवार–प्राथमिक परिवर्तन, घटकका अन्तर्भरण और सौत्रिकतन्तुओंका कुछ मोटापन। व्यापक कोथ। वायुकोषस्थ द्रव्यकी अपेक्षा दीवारोंमें देरसे। परिणाममें वायुकोषसे द्रव्यसह किलाटपिण्ड-की रचना होती है और श्वासनलिकाके आवरणस्थ क्षय ग्रन्थियोंसे सम्बन्ध होता है।

इसी अवस्थामें श्वासप्रणालिकाके भीतरसे बाहर प्रतीयमान स्थान—अ. किलाट प्रदेश; आ. किलाटसह वायुकोषोंकी स्थूल दीवारमय प्रदेश; इ. आच्छादक घटकमय वायुकोषोंकी दीवारका प्राथमिक परिवर्तन।

उत्तर कालीन प्रगति (और इस अवस्थामें प्रसारगामी) निम्न क्षयात्मक एक या दो पूर्वावस्थाओंपर अवलम्बित है। (१) कोथ-किलाट पिण्ड निर्मित। श्वास-नलिकामें विदारण होकर लघुगह्वरकी उत्पत्ति। (२) सौत्रिकतन्तु निर्माण-इसकी उत्पत्तिसे श्वासनलिका या वायुकोषोंकी दीवार या कंदिकाओंके बीचकी दीवारमें एकत्रित संयोजक तन्तुओंकी वृद्धि किसीभी स्थानसे रुक जाती है। सौत्रिकतन्तुओंके आच्छादनके भीतर पिण्ड बन्द होजाता है।

उक्त उन्नतिकी प्रत्येक अवस्था फुफ्फुसके छोटे प्रदेशमें प्रतीत होती है। क्षय

ग्रन्थियोंकी प्रत्येक अवस्थामें संघर्ष होता है। एक ओर सौत्रिकतन्तु प्रबल होता है और दूसरी ओर कोथ नष्ट होता है।

सूक्ष्म धमनी प्रशाखाएँ और कैशिकाएँ—क्षयकी वृद्धि होनेपर नष्ट होजाते हैं। क्षयग्रन्थियोंमें रक्तवाहिनी अनुपस्थित। कैशिकाएँ टूटनेपर प्रारम्भमें किञ्चित् रक्तस्राव।

सौत्रिक तन्तु—क्षयप्रगतिका अवरोधक। क्षयमण्डलके भीतर सब सौत्रिक-तन्तुप्रसारणकी शीघ्रतासह न्यूनाधिक मात्रामें पुनर्जनन होनेवाले अंशका संरक्षण करते हैं; क्षयप्रगतिको रोकते हैं और क्षतका रोपण करते हैं।

१. वायुकोषकी दीवार और सूक्ष्म श्वासप्रणालिकाओंमें सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्तिका परिणाम—अ. उत्तर कालीन अपक्रान्ति किलाटमय द्रव्यसह दानेदार टुकड़े तक की; आ. स्थिर सौत्रिकतन्तु बनकर क्षयप्रगतिको रोक देना। यह सामान्य नहीं है।

२. कन्दिकाओंके बीचकी दीवारमें वैसीही सौत्रिकतन्तुमय स्थिति; किन्तु विशेषतरस्थिर; नूतन रक्तवाहिनियोंकी उत्पत्तिसे देरसे रचना और आकुंचन। सौत्रिकतन्तु-मय फुफ्फुस रचनाद्वारा क्षयका अवरोध।

सौत्रिक आच्छादन और क्षतरोपणका परिणाम—

१. क्षताच्छादन आकुंचित्। विशेषतः शिखरपर।

२. स्थूल सौत्रिक आच्छादनसह किलाटमय उभार। मध्यस्थ द्रव्य संक्रामक और आशुकारी क्षयके हेतुसे विदारण।

३. उभारका क्षार भरण। उन्नति लवणका अन्तर्भरण होने तक। फिर अति कठोर फुफ्फुस।

विवरोंकी दीवारमें सौत्रिकतन्तुओंकी रचना होनेसे रोग प्रगतिमें न्यूनाधिक अंशमें प्रतिबन्ध होता है।

बाहरकी ओर स्पष्ट लघु उभार—ये प्रदर्शित करते हैं कि—

१. प्रसेकमय फुफ्फुस प्रदाह—सामान्य फुफ्फुस प्रणालिकाप्रदाहके समान। इसमें प्रतीत स्थितियाँ—अ. रक्तघनी भवन; आ. समजातीय तथा पिच्छिल अन्तर्भरण; इ. अनेक अस्वच्छचिह्न, वायुकोषके द्रव्यकी अपक्रान्तिसे उत्पन्न।

२. वायुकोष आकुंचनकी ग्रन्थियाँ। श्वासप्रणालिकाके बन्द होनेसे।

३. वायुकोषस्फीतिकी ग्रन्थियाँ या अतिस्पष्ट वायुकोष प्रसारण।

विवर—किलाटमय द्रव्य। द्रवके प्रवेशसे मुलायम होता है। फिर क्षतमय श्वासनलिकामें स्राव होने लगता है। परिणाममें विवर बनजाता है। आयतन छोटे मटरसे लेकर पूरे फुफ्फुसखण्ड तक। इसमें निम्नप्रकार प्रतीत होते हैं।

नूतन क्षतमयगह्वर—कोमल दीवार युक्त । आशुकारी क्षयमें प्रायः अनेक और छोटे ।

सौत्रिकतन्तुमय गह्वर—दीवार स्पष्ट सौत्रिकतन्तुमय, किन्तु पूयस्राव वर्त्तमान । यह शनैः-शनैः वैधानिक बृहद्प्रकारमें बनता है ।

स्थिर गह्वर—सौत्रिकतन्तुओंकी कोमल दीवारयुक्त । सामान्यतः छोटा । गह्वरका अधिकतम रोपण करता है ।

सौत्रिकतन्तुवृद्धि—गह्वरके पासके सौत्रिकतन्तु बढ़ते हैं और समीपस्थ फुफ्फुसावरणकी स्थूलताका संरक्षण करते हैं । यह क्रिया सामान्यतः शिखरपर, एक वा अधिक स्थिर गह्वरसह ।

रक्तवाहिनियाँ—प्रदाहद्वारा नष्ट; किन्तु अन्तिम तन्तुप्रभावित । इसकी वृद्धि होनेपर—अ. दीवारका नाश; आ. धमन्यर्बुदकी रचना होकर गंभीर रक्तस्राव ।

फुफ्फुसावरण—चिरकारी राजयक्ष्मामें सर्वदा प्रभावित ।

१. शुष्क उरस्तोय—पतला संयोजन ।

२. शुष्क उरस्तोय—फुफ्फुसावरणकी अतिस्थूलता ।

३. क्षयपिण्ड—फुफ्फुसावरणमें किलाटमय क्षयपिण्ड ।

४. क्षरण—स्वच्छ, रक्तस्रावीय वा पूयात्मक । सामान्यतः अपरिणामी । कभी-कभी न्युमोकोकाई या इतर पूयात्मक कोकाई युक्त ।

५. वातभृतफुफ्फुसावरण—किलाटमय लघु उभारके विदारणसे ।

श्वासनलिका—लघुश्वासनलिकामेंसे प्रदाहका प्रसारण । कासद्वारा सहायता मिलती है । परिणाममें श्वासनलिकाप्रसारण । बृहद्नलिकाओंमें चिरकारी प्रसेक ।

श्वासनलिकाकी ग्रन्थियाँ—आशुकारी क्षयमें बढ़ी हुई और शोथमय । कठोर क्षय पिटिकाएँ और किलाटमयक्षत वर्त्तमान । चिरकारी क्षयमें ग्रन्थियाँ किलाटमय, कठोर अथवा क्षारमबनमय या कोमलीभूतिसह ।

रंजन (Pigmentation)—रोगकी जीर्णावस्थामें सौत्रिकतन्तुओंका रङ्ग अवस्थाभेदसे विविध होजाता है । जीर्णांचत कर्बाणुओं (Carbon particles) से स्लेट (राख) जैसे रङ्गके बनजाते हैं ।

अन्यप्रभावित अवयव—क्षय कीटाणुओंकी उपस्थिति-(१) लसीकाग्रन्थियोंमें । (२) अन्त्रमें । (३) स्वरयन्त्रमें और (४) प्लीहामें । इनसे कम वृक्कमें, मस्तिष्क और यकृत्में । क्वचित् हृदावरणमें । हृदयके भीतर अति क्वचित् ।

क्षयकी अवस्थाओंका वर्गीकरण—(इङ्गलैण्डके स्वास्थ्य विभागकी ओरसे

प्रकाशित)। अ. पहले प्रकार-इस प्रकारमें क्षयकीटाणु कभी कफ या फुफ्फुसावरणके तरल आदिके भीतर नहीं मिलता।

आ. द्वितीय प्रकार-इस प्रकारमें कितनेक समय क्षयकीटाणुकी प्राप्ति होती है।

१. किसीभी प्रकारका वैधानिक क्षोभ होनेपर मन्द। उपद्रव नहीं होता। एक पार्श्वगत विकारमें चिह्न ऊपरके मण्डल तक सीमित। उभय पार्श्वगत विकारमें अक्षकास्थि या अंसप्राचीरक (Spine of Scapula) के नीचे।

२ रोगी १ से ३ समूहके भीतर।

३. गंभीर वैधानिक क्षोभयुक्त रोगियोंमें गम्भीर उपद्रव या विस्तृत परीक्षात्मक चिह्न। कुछ स्वस्थताका दृश्य या उसका अभाव।

लक्षण—आक्रमण पद्धति (कीटाणुसंक्रमणकी) पहले दर्शाई है।

१. आक्रमण—गुप्त। लक्षण उत्पन्न हुए विना क्षतप्रगति।

२. आशुकारी अचिरस्थाई मन्दज्वरावस्था—श्वसनसंस्थानमें प्रसेकसह। प्रायः इन्फ्लुएन्झाके समान रोगनिदान।

३. रक्तमय कफस्राव—इसकी सम्प्राप्तिके हेतु—अ. संक्रामक द्रव्यके आकर्षणसे सत्वरक्षय; आ. मन्दप्रगति।

४. उरस्तोय—अ. तरलमय; तरलका शोषण होनेपर या वृद्धि होनेपर चिह्न वर्त्तमान; आ. शुष्क-उदा० शिखरपर घर्षण; इ. वातभृत फुफ्फुसावरण।

५. पचनसंस्थानगत—अरुचि, आध्मान, देहके वज़नका ह्रास।

६. पाण्डुता और निर्बलता।

७. स्वरयन्त्रस्थ लक्षण—स्वरमें भारीपन और कण्ठमें उग्रता। स्वरयन्त्रमें क्षय प्राप्ति, सर्वदा फुफ्फुसद्वारा गौणरूपसे। फिरभी पहलेसे ही लक्षण दर्शाता है।

८. कितनेक अनुगामी रोग—रोमान्तिका, कुक्कुट कास।

९. ग्रैवेय या कक्षाधरा ग्रन्थियोंकी वृद्धि—पूर्ववर्ती फुफ्फुस लक्षण वर्षोंतक रहते हैं।

१०. क्वचित् तमकश्वास अथवा विषमज्वरके सदृश।

११. छातीपर आघात।

लक्षणोंका वर्गीकरण—

स्थानिक—(१) कास; (२) कफस्राव; (३) रुधिरस्राव; (४) वेदना और (५) श्वासकृच्छ्रता।

व्यापक या वैधानिक—(१) ज्वर; (२) तेज़नाड़ी; (३) स्वेद (४) वज़नका

ह्रास और क्लांति; (२) क्षुधानाश, कम स्पष्ट; (६) विशेषमुखाकृति और गात्रगौरवता; (७) अंगुलियोंके अग्र पर्वका चौड़ापन; (८) पाण्डुता।

स्थानिक लक्षण विचार—

कास—अत्यधिक बार, यह पहला लक्षण, सामान्य सर्वशामें रह। क्वचित् बिलकुल अभाव। रोगदर्शक लक्षणका अभाव। रात्रिमें और प्रातःकाल सत्वर अधिकतम। सत्वर वृद्धि होने तथा स्वरयन्त्र और बृहच्छ्वासनलिकाका रोग होनेपर अशुभ; किन्तु उसकी गंभीरताके साथ सम्बन्ध बना नहीं रहता। वमन होजाना। विशेषतः आवेगात्मक होनेपर। आहार (अपथ्य) आक्रमणका कारण होसकता है। प्रथमावस्थामें शुष्ककास। रोगवृद्धि होनेपर कास शिथिल और कफस्राव। गह्वर होनेपर प्रायः आवेगात्मक, विशेषतः प्रातःको। स्वरयन्त्रका क्षय होनेपर स्वरभङ्गसह तथा निष्फल।

कफस्राव—प्रथमावस्थामें अभाव। किन्तु जबतक कफको बाहर निकालनेकी सूचना नहीं मिलती, तबतक रोगी प्रमादवश कफको निगल जाता है। अवस्था न बढ़े और जब तक कफ न बंधजाय बताशेके सदृश न हो जाय, तब तक रोग निर्देशक नहीं बनता। सच्चामहत्व, क्षय कीटाणु, रक्त या ग्रथिनकी उपस्थिति होने पर। अवस्था अनुरूप स्वभाव नानाविध।

प्रारम्भावस्थामें अपक्रान्त आच्छादक घटकोंमेंसे श्लेष्मामय जीर्णावस्थामें हरिताभ पूयमय कफ, जो राजयक्ष्माकी अति सूचना करता है। विवरोंकी उपस्थिति–बंधा हुआ कफ (बताशेके सदृश), भारी, वायु हीन, जलमें डालनेपर डूबने वाला।

मात्रा—शीघ्रकारी रोगियोंमें अतिकाससह प्रतिदिन ५०० सी० सी०। विवर होनेपर प्रातःकालको अत्यधिक।

गंध—मधुरसी, उपद्रव होनेपर दुर्गन्धमय उदा० श्वासनलिका प्रसारण, कोथ।

रक्त—रक्तवाहिनीपर आघात होनेपर उपस्थित।

अणुवीक्षण यन्त्रसे परीक्षा—अ. क्षयकीटाणु; आ. स्थिति स्थापक तन्तु. तन्तुओंके नाशका प्रमाण; वर्तमानमें इसका महत्व ईषत्। १० प्रतिशत कॉस्टिक सोडा और कफके समान जल मिलाकर उबालकर निक्षेपकी परीक्षा करें।

रक्तस्राव—६० से ८० प्रतिशत रोगियोंमें तथा २ अवस्थाओं में।

प्रथमावस्था—कम मात्रा। कफ रक्तकी रेखामय, कैशिकाओंके विनाशसे। कभी घातक नहीं, किन्तु क्वचित् ही प्रारंभावस्थामें लक्षण।

जीर्णावस्था—विवरोंमेंसे अतिशय। मार्ग (१) रक्तवाहिनियोंमें अर्बुद (सीमित भागमें रक्तसंग्रह–Aneurysm.) उदा० फुफ्फुसाभिगा धमनी, आयतन

मटरसे नारंगी तक। (२) कम समय रक्तवाहिनीका विवरमें विदारण । कचित् घातकरूप धारण कर लेता है।

चेष्टा पद्धति—सामान्यतः अकस्मात् आक्रमण, मुखमें नमकीन स्वाद, स्राव होने पर मानसिक उत्तेजना या अवसाद। फुफ्फुसमें असर होने पर रोगी सतर्क हो जाता है। इस हेतुसे अति मानस भयसूचक असर और अवसाद।

स्वभाव—लाल, झागदार, नमकीन। कभी-कभी निगलनेमें आजाता है फिर वान्ति होती है।

कफ—उत्तरकालमें दिनों तक रक्त लगा हुआ।

पुनराक्रमण—सामान्य कतिपय समय।

अनुगामी—(१) कुछ दिनोंके बाद उत्तापवृद्धि; (२) क्षयकी शीघ्र उन्नति (इतर श्वासनलिकामें रक्तका आकर्षण होकर अधिक फैलाव)।

रक्तस्रावका क्षयसे सम्बन्ध—अकस्मात् झागदार या जलते हुए रक्तका स्राव होना, यह फुफ्फुसक्षयका प्रथम चिह्न है। यद्यपि इसी प्रकारके स्रावकी प्राप्ति अच्छी तरह स्वस्थ व्यक्तिमें होती है, तथापि कास और अन्य लक्षणोंका अभाव होता है। सच्चा रक्तस्राव अधिकतम समयमें क्षयदर्शक होता है। पहलेसे स्वस्थ भासमान मनुष्योंमें प्राप्त होनेपर उसके ३ प्रकार लक्षित होते हैं।

१. परीक्षात्मक चिह्न, रेडियोग्राफ अथवा कफ परीक्षाद्वारा क्षय प्रमाणका अभाव; किन्तु उत्तरकालमें इनकी प्रतीति।

२. क्षयका प्रमाण पूर्ण वर्त्तमान।

३. उत्तरकालमें बीमारी या लक्षणों का अभाव (लगभग १५ प्रतिशतमें सद्भाव) सम्भवतः सब क्षयके मूल वाले होते हैं। जब फिर छातीमें आघात या गंभीर मानस अवसाद, तब सदृश प्रकार। इनमेंसे लगभग आधे क्षय पीड़ित।

वेदना—कुछ वेदना सामान्य नहीं; किन्तु मंद। उरस्तोय प्राप्तिसे वेदना होनेपर सामान्यतः निम्न उरःपंजरपर असर होता है, कभी-कभी शिखर या अंस-फलकपर। प्राणदा नाड़ियोंमें वेदना होनेपर संभवतः कासके हेतुसे मांस पेशियोंमें प्रति फलित।

श्वासकृच्छ्रता—प्रथमावस्थामें मंद। जीर्णावस्थामें पीड़ित पार्श्वके प्रसारणसे विविधता। इनके अतिरिक्त (१) आशुकारी पिटिकामय क्षयका आविर्भाव; (२) फुफ्फुसप्रणालिका प्रदाह या वायुकोष स्फीति; (३) वातभृत फुफ्फुसावरण; (४) ह्रस्वाद, जैसा कि सौत्रिकतन्तुमय फुफ्फुसमें, इनमें से कोई उपद्रव होनेपर श्वासकृच्छ्रता।

व्यापक अथवा वैधानिक लक्षण—

ज्वर—रोगकी गंभीरता और प्रगतिके महत्वका नाप। रोगकी दृढ़ता और प्रसारण तथा प्रयत्नके परिमाणसे विविधता। विषके शोषणके हेतुसे ज्वरोत्पत्ति अर्थात् क्षय कीटाणुओंके अन्तःक्षेपणके समान शरीरस्थ विषका आकर्षण (Auto-Inoculation) दिनमें दोपहरको १ से ६ बजे तक उत्तेजित। सामान्यतः अधिकतम दोपहरको ४ से ६ तक या रात्रिको ६ के पश्चात्। मुँह या गुदामें नाप करना चाहिये।

गुदाका उत्ताप मुखकी अपेक्षा पृथक् आता है। एवं व्यक्तिगत प्रभेदभी होजाता है; किन्तु सामान्यतः १° अधिक (सीमा लगभग ०–६° से १–८°)

प्रथमावस्थामें—उत्ताप सम प्रकोपी (Continuous) या विषम प्रकोपी (Remittent), सीमा गंभीरतासह नानाविध। आराम करनेपर ज्वरका पतन। शय्यामें आराम करनेपर मुँहके भीतर कभी-कभी उत्ताप ६६° (अर्थात् १४ दिनमें ३ बार), यह रोगीकी दृढ़ताका चिह्न है।

बढ़ी हुई अवस्थामें, किलाट जनन और विवर निर्माण होते रहनेसे सविराम प्रलेपक या तरंगित (Intermittent-Hectic) उत्ताप। बढ़कर १०४°। अधिकतम शामको ६ बजे स्वेद आजानेपर सुबहको सामान्य उत्ताप तक पतन।

श्रमका असर—आराम करनेपर जब उत्ताप सामान्य हो, तब सौम्य श्रम होनेपर गुदाका उत्ताप १०१° (स्वस्थमनुष्यमें) होकर फिर आध घण्टेमें पुनः सामान्य। उग्र रोगोंमें (शरीरस्थ विषका आकर्षणके हेतुसे) २–३ घण्टे तक उत्तापकी दृढ़ता। श्रमका विराम होनेपर उत्ताप बढ़ने लगता है। यह शरीरगत विषका विशेष आकर्षणका चिह्न है।

नाड़ी—स्पन्दनवृद्धि। रोग उग्र हो और जब उत्ताप सामान्य हो, तब नाड़ी दृढ़। फिर आवश्यकता अनुरूप। उग्र क्षयमें क्वचित् नाड़ी स्पन्दन ८४ से भी कम।

स्वेद्—प्रायः भीगजाना, विशेषतः रात्रिको और सुबह जल्दी। कभी यह प्रारम्भ कालीन लक्षण। जीर्णावस्थामें स्वेद अति क्लेश दायी। रात्रिस्वेद और प्रातः-काल जल्दी स्वेदके हेतुसे शरीर भीगजाना।

वज़नका ह्रास और क्लान्ति—प्रायः जल्दी और स्थिर। वज़न, यह रोगकी स्थिति दर्शक महत्वका चिह्न है। बलका ह्रासभी वर्त्तमान।

क्षुधानाश—सामान्यतः पहलेसे, विशेषतः घृत आदिके लिये। ह्रास वृद्धि। वान्ति विरल।

मुख-मण्डलका देखाव—सामान्यतः निस्तेजता। गात्रनीलता पहले नहीं। जीर्णावस्थामें नैमित्तिक प्रलेपक ज्वरकी तेज़ी (Hectic Flush)।

अंगुलीके अग्रपर्वकी लघुता—पुनः सहज ज्ञानके लिये महत्वका चिह्न, कभी प्रथमावस्थामें, क्वचित् फुफ्फुस रोगके चिह्नरूप लम्बी अस्थियोंके सिरेपर शोथ (Osteopulmonary Arthropathy)।

पाण्डुता—सामान्य; किन्तु प्रथमावस्थामें नियमित नहीं। रक्त रंजनका ह्रास। श्वेताणु संख्या सामान्य या न्यून।

फुफ्फुसके शारीरिक चिह्न—

प्राथमिक चिह्न—शिखरपर चारों ओर घनीभवन युक्त श्वासनलिकाप्रदाह (टर्बनकी प्रथमावस्था) (१) शिखर पर स्थानिक और दृढ़ सूक्ष्म केशमर्दनवत् ध्वनि, जो काससे भी स्थानान्तरित नहीं होती। यह सामान्यतम प्रथम चिह्न है। अन्य प्रथमावस्थाके और कितनेक समय प्रारम्भिक चिह्न। (२) शिखर पर किञ्चित् प्रतिबंध या प्रसारणकी न्यूनता और समतल पना (कम बारंबार, यह प्रारंभिक चिह्न) (३) ठेपन किञ्चित् निर्बल। (४) श्वसनध्वनिका ह्रास या कम बारंबार कर्कश और लम्बा निःश्वास।

क्षत प्रगति—किन्तु पहले प्रगति रहित। घनीभवनकी वृद्धि। अन्य लक्षणभी पहले चिह्न दर्शाते हैं (टर्बनकी द्वितीयावस्था) (१) प्रसारणमें न्यूनता और निम्नता। (२) निर्बलता। (३) केशमर्दनवत् ध्वनि। (४) श्वसन ध्वनि। स्पष्टतः अधिकतर कर्कश और निःश्वासवृद्धि। (५) वृहत् प्रतिध्वनि (Whispering Pectoriloquy) अर्थात् रोगीके कानमें धीरेसे कहे हुए शब्दकी बड़ी आवाज़ विवरपर श्रवणयन्त्रद्वारा सुनने में आती है तथा अजाभिनाद (Bronchophony) ध्वनिका श्रवण। प्रारम्भिक चिह्न सामान्यतः दूसरी ओर पहले प्रतीत होते हैं।

शिखरपर अधिक उन्नत क्षत—किलाटजनन, कोमल भूमि, प्रभावित फुफ्फुसावरण (टर्बनकी द्वितीया या तृतीयावस्था)।

दर्शन और स्पर्श—अक्षकास्थि उन्नत, शिखरकी निम्नता, छाती प्रसारण अपूर्ण।
ठेपन—निर्बल।

ध्वनिश्रवण—श्वसनध्वनि अधिकतर नालीय। अस्वाभाविक ध्वनि अधिक बढ़ी हुई और विस्तृत। वाणीकी बढ़ी हुई प्रतिध्वनि और अजाभिनाद ध्वनि। सामान्यतः दूसरी ओरको चिह्नों की प्रगति।

दर्शन परीक्षा—(१) प्रभावित शिखरपर प्रसारणमें परिवर्तन—अ. विलम्बित संचलन। प्रायः अति पहलेसे प्रारंभ; आ. अपूर्ण प्रसारणभी पहलेसे।

२. शिखरपर निम्नता—मांस पेशियोंके क्षयसे, सौत्रिकतन्तुओंका आकर्षण

और फुफ्फुसावरणका संयोजन । यह क्वचित् ही प्रारंभकालमें । यह अन्य मंद चिह्नोंके साथ (या चिह्न रहित) क्षत रोपण होने पर अवशेष ।

१. अक्षकास्थि समुन्नत ।

अन्य परिवर्त्तन (किन्तु प्रारंभमें नहीं) अंसचक्र (Shoulder Girdle) की पेशियोंका क्षय । पृष्ठ वंशका किञ्चित् एक पार्श्वकी ओर मुड़ाव (Scoliosis)। पीड़ित पार्श्वके प्रसारणका ह्रास, नापसे प्रतीति ।

वक्तव्य—क्षय छातीके किसीभी प्रकारके साथ उपस्थित होता है; किन्तु २ प्रकार विशेष हैं । (१) पक्षवत् वक्ष—लम्बी और सकड़ी छाती, पर्शुकाकोण तीव्र, पर्शुका पतित, अंसफलक पक्षयुक्त (पतित स्कन्ध, पर्शुकाओंका तिर्यक्पन, उथला उरःपंजर) । (२) समतल वक्ष, अग्रिम पश्चिम व्यास लघु । उरःफलक प्रायः अवनत और उपपर्शुकाएँ समुन्नत ।

दीर्घश्वसनद्वारा दर्शन चिह्न प्रकाशित । दर्शन और स्पर्श परीक्षा सहायक होती है, किन्तु प्रथमावस्थाका कदापि निर्णय नहीं करा सकती ।

शिखरके प्रसारणका निर्णय पिछली ओरसे उत्तम होता है ।

स्पर्शपरीक्षा—दर्शन परीक्षाका अनुमोदन करती है । वाक्स्पंदन, यह पीड़ित स्थानमें सर्वत्र बढ़ता है । यदि फुफ्फुसावरणकी अधिक स्थूलता या तरल हो, तो नहीं ।

ठेपनपरीक्षा—

प्रथमावस्था—ठेपन किञ्चित् निर्बल । प्रायः पहली परीक्षाके समय आगन्तुक ध्वनि उपस्थित । सबसे पहले अक्षकास्थिके ऊपर, बीचमें और भीतरके तीसरे भागमें एवं ऊर्ध्व और निम्न । पिछली ओर अंसोर्ध्व खात (Supra Scapular fossa) में तथा पृष्ठ कंटकोंके मध्य प्रदेश (Inter Spinous Area) में सामान्यतः निम्न खण्डपर द्वितीयावस्थामें । ध्वनि भवनकी उन्नति-ठेपन करनेपर जड़ता अधिक स्पष्ट ।

विवर—विवरोंके समान, जड़ताका ह्रास ।

विविधता और विशेष कठिनता—प्रथमावस्थामें क्षय केन्द्रमेंसे सामान्य सीमा फुफ्फुस तन्तु मध्यवर्त्ती होनेपर केशमर्दनवत् ध्वनि । वायु कोषस्फीति होनेपर सामान्यकी अपेक्षा बड़ी ध्वनि ।

शिखरपर लघु विवर होनेपर ठेपन ध्वनि सामान्य, किन्तु ध्वनियन्त्र द्वारा स्पष्ट परिवर्त्तन या बढ़ी हुई ठेपन ध्वनि ।

फुफ्फुसावरणकी स्थूलता और कुछ घनीभवन होनेपर निर्बल श्वसनध्वनिसह निर्बल ठेपन ।

ठेपनके लिये वक्तव्य—मंद ठेपनसे मंदपरिवर्त्तनका प्रकाशन । दोनों

और श्वसनकी समानताकी तुलना करें। पूर्ण पूरक कराकर परीक्षा करें। पूर्ण संदेह होनेपर पूर्ण निःश्वास कालमें भी अक्षकास्थिसे ऊर्ध्व तथा शिखरपर पिछली ओर से ठेपन करें। बढ़े हुए रोगियोंमें पेशी प्रसारणजन्य उत्तेजना सामान्य, उसका रोग निर्णायक मूल्य नहीं।

ध्वनि परीक्षा—

१. श्वसन ध्वनि—सबसे पहले परिवर्त्तित-अ. निर्बल, विशेषतः श्वासग्रहणमें, निःश्वासदीर्घ। श्वासनलिकाके प्रदाहसे फुफ्फुस, आकुंचन और वायुप्रवेशका ह्रास। आ. घनीभवनके हेतुसे निःश्वास वृद्धिसह कर्कशध्वनि। केशमर्दनवत् ध्वनि या जड़ताकी वृद्धि। इ. अधिक बारंबार टूटता हुआ श्वासग्रहणसे विच्छिन्न ध्वनि (Cogwheel), किन्तु दुर्बल मनुष्योंमें रोगनिर्णायक नहीं।

जीर्णावस्थामें—श्वासग्रहण कर्कश, निःश्वासवृद्धि घनीभवन-नालीय श्वसन। विवर-श्वसन ध्वनि बढ़ी हुई। फुफ्फुसके अप्रभावित भाग-कर्कश या बृहद् शैशवीय ध्वनि (Puerile)।

२. आगन्तुक ध्वनि—प्रथमावस्थामें परिवर्त्तित। शिखरपर दृढ कोमल केशमर्दनवत् ध्वनि श्वासग्रहणमें। अत्यधिक रोगियोंमें यह पहला चिह्न। यह मंद केशमर्दन ध्वनि (Subcrepitant Rale) श्वासनलिकामेंसे आनेके हेतुसे फुफ्फुसप्रदाहके लिनिक (Laennec) के केशमर्दन ध्वनिकी अपेक्षा कम मंद। सुननेके समय-(१) स्पष्ट श्वसन; (२) गंभीर श्वासग्रहण; (३) कास और दीर्घ श्वास। स्वभाव—केशमर्दन ध्वनि किसी प्रदेशमें मर्यादित, दृढ़ और पुनरावृत्ति, कास आनेपर दूर नहीं होता अर्थात् यह शिखरस्थ श्वासनलिकाप्रदाहका प्रमाण रूप है।

वक्तव्य—पहले गंभीर श्वासमें केशमर्दन ध्वनि जो पुनरावृत्तिमें अदृश्य होती है, वह उपेक्षणीय है। किलाटजनन और कोमलीभूति—आगन्तुक ध्वनि बढ़ी हुई और बिम्ब स्फोटम ध्वनि उपस्थित अर्थात् आर्द्र ध्वनि (ठेपन निर्बल नहीं)।

विवर—आगन्तुक ध्वनि बढ़ी और ठेपन ध्वनि भी बढ़ी हुई, विशेष कास चलने पर। धातव ध्वनि या कौप्यक ध्वनि। उत्पन्न विवर शुष्क होनेपर कमी अभाव।

३. वाग्ध्वनि—पीड़ित भागमें बढ़ी हुई। बढ़ी हुई प्रतिध्वनि और अजानिनाद ध्वनि, विशेषतः अक्षकास्थिके ऊपर। घनीभवनके हेतुसे प्रथमावस्थामें सूचनाकर चिह्न विवरपर अति बढ़ी हुई वाग्ध्वनि।

इतर श्रवणीय विशेष ध्वनि—

फुफ्फुसावरणका घर्षण—पहले शिखरपर या किसीभी अवस्थामें।

हृदय-फुफ्फुस संस्थानकी मर्मर—फुफ्फुसके तन्तुओंमेंसे निकली हुई युवा

हृदयको आनेपर। प्रारम्भिक क्षय ग्रन्थियोंमें या बृहद् विवरमें श्रुत। एवं सामान्य पतले और निर्बल व्यक्तिमें भी। श्वासग्रहण कालमें आगेकी ओर उत्तम प्रकारसे श्रुत।

हृदयपर अवस्थित फुफ्फुसके शिथिल भाग पर—(१) घनीभवन हो तो हृदयके दबावके हेतुसे हृदय स्पन्दनके साथ टिक-टिक आवाज़। (२) फुफ्फुसावरण और हृदावरणका घर्षण।

पीड़ित शिखरकी ओर हृदय ध्वनिका वर्द्धित संचार अक्षाधराधमनी (Subclavian art) में आकुंचन ध्वनि—स्थूल फुफ्फुसावरणके दबावसे उपस्थित।

विवरके शारीरिक चिह्न—

दर्शन परीक्षा—छातीकी दीवारकी निम्नता।

ठेपन परीक्षा—परिवर्त्तित आवाज़। यदि विवर बड़ा है तो निर्बल (या बिल्कुल जड़) या सौषिर आवाज़। नैमित्तिक-(१) यदि फुफ्फुसावरण स्थूल हो और घनीभवन मंद हो तो सामान्य आवाज़। (२) बृहद् विवरपर भग्नभाण्ड (Cracked pot) अर्थात् फूटे हुऐ घड़ेके सदृश ध्वनि, जब मुँह खुला हो। (३) कौप्यक ध्वनि अति बड़े गह्वरोंमें से। (४) विंट्रिक चिह्न (Wintrich's Sign) अर्थात् मुख खुला और बन्द होनेपर दोनों अवस्थाओंमें विवर पर ठेपन ध्वनिमें अन्तर (कम महत्त्व)।

श्रवण परीक्षा—

श्वसन ध्वनि—परिवर्त्तित। विवरके आयतनके अनुरूप फूंकने सदृश, नालीय, विवर ध्वनि या अपूर्ण कौप्यक-ध्वनि।

आगन्तुक ध्वनि—बिम्ब स्फोटनवत् या कट्कट् ध्वनि और कौप्यक प्रति ध्वनिभी। घण्टानाद् अति क्वचित्। विवर शुष्क होनेपर आगन्तुक ध्वनिका अभाव।

श्रवणपरीक्षाके भीतर वाग्ध्वनि—वाणीकी प्रतिध्वनि, विशेषतः कास और कानमें धीरेसे कहे हुए शब्दों की भी बढ़ी हुई प्रति ध्वनि। चोषणध्वनि (Post-Tussic suction) कास आनेके पश्चात् दीर्घश्वास ग्रहण करनेपर वायु सूक्ष्म रन्ध्रमेंसे गह्वरमें प्रवेश करती हो, ऐसी अनुभूति होती है। घनीभवनमेंसे गह्वरको पृथक् करनेके लिये यह अत्यन्त मूल्यवान् चिह्न है।

वक्तव्य—(१) ध्वनि श्रवणपर निदानका आधार रहता है, विशेष चोषण ध्वनि पर। (२) बृहच्छ्वास नलिकाके पास घनीभवन होनेपर वैसा ही चिह्न समीप में उत्पन्न होता है (मिथ्या विवर ध्वनि (Pseudocavernous) ।

विभिन्न अवस्थाओं में विकृति भेदक चिह्न

स्थिति	दर्शन	स्पर्श परीक्षा	ठेपन परीक्षा	ध्वनिपरीक्षा
फुफ्फुसघनता		तरंगवृद्धि	जड़ता	नालीय, कतिपय आगन्तुक ध्वनि, वाग्ध्वनि वृद्धि।
किलाट जनन		,,	,,	पोकल और नालीय, कासके पश्चात् कट्-कट् ध्वनि और बुद्बुद् ध्वनि। वाग्ध्वनि वृद्धि।
विवर	विवरपर छाती की दीवार समतल		ध्वनिवृद्धि. मुख खुला और बन्द होने-पर ध्वनिग्राम में भेद, श्वासनलिकासे सम्बन्ध होने-पर फूटे हुए बर्तन सदृश आवाज़।	कौप्यक, विवर या धातव ध्वनि, वाग्ध्वनि वृद्धि। कासके पश्चात् वायुके आकर्षण होनेकी आवाज़। विवर द्रव पूर्ण हो, तो परीक्षात्मक चिह्न मन्द, श्वसनध्वनि मन्द और वाग्ध्वनिका ह्रास।
सौत्रिक तन्तुमय	तन्तुस्थानमें छातीकी दीवार समतल	तरंग ह्रास	जड़ता	श्वसन ध्वनि मन्द, आगन्तुकध्वनि, वाग्ध्वनिका ह्रास।

राजयक्ष्मामें भ्रान्ति

ऐसा भी देखा गया है कि, क्षय रोग न होने पर भी डॉक्टर, वैद्य और हकीमोंने अनेक रोगियोंको भ्रममें डाल दिया था; और भ्रम में डाल रहे हैं। इस भयसे अनेक निर्बल मन वाले रोगियोंकी मृत्यु होती रहती है। हमें भी क्षय न होनेपर भयभीत हुए अनेक रोगी मिले हैं; जो सामान्य औषधिसे ही थोड़े ही समयमें अच्छे हो गये हैं।

रोग विनिर्णयकी भूलका एक जगप्रसिद्ध उदाहरण गत यूरोपीय महायुद्ध है। पलटनोंके अनेक सिपाहियोंको क्षय पीड़ित मानकर डॉक्टरों ने सेनिटोरियममें भेज दिया था। उनका अनुसन्धान करने पर केवल १२ प्रतिशत रोगी क्षयग्रस्त मिले थे। फ्रान्सके डॉक्टर मेजर रिष्ट लिखते हैं कि, फ्रेंच सेनाके १००० रोगियोंको क्षयग्रस्त मानकर अस्पताल भेज दिया था; उनमेंसे ८०७ मनुष्य तो निःसन्देह क्षय रोगसे रहित जाने गये। इस हेतुसे क्षयनिर्णयके समय निम्न इतिहास पर लक्ष्य देना चाहिये—

विषमज्वर, इन्फ्ल्युएन्ज़ा, न्यूमोनिया, प्रसूतिरोग, रोमान्तिका, कास, काली खाँसी, जीर्ण, प्रतिश्याय, जीर्ण-अजीर्ण रोग, पाण्डु, फुफ्फुसावरणप्रदाह (उरस्तोय), रक्तष्ठीवन, कण्ठमाल, गलगण्ड, अपची मधुमेह क्षयज, स्वरभेद या इतर कोई क्षयोत्पादक रोग पहले हुआ था ?

इस कुटुम्बमें या जहाँ रोगी रहते हैं, वहाँ पर पहले किसी को क्षय हुआ है ? पहले किसी क्षयरोगीके संसर्गमें रहा है ?

रोगी अति व्यभिचारी, होटलोंके पदार्थोंको अति खाने वाला अथवा आर्थिक या कौटुम्बिक चिन्तामें डूबा हुआ।

अनेक बार कुशल चिकित्सक भी क्षयरोगकी प्रारम्भावस्थामें सम्यक् निर्णय नहीं कर सकता। 'क्ष' किरण द्वारा भी पूरा पता नहीं लगता। अनेक क्षयरोग रहित मनुष्योंके फुफ्फुस शिखरोंमें बाहरसे परीक्षा करने पर विकृत स्थितिका बोध होता है। अतः केवल संदेह होने पर ही रोगी और उनके कुटुम्बियों को भयमें नहीं डाल देना चाहिये।

उ. सौत्रिकतन्तुमय राजयक्ष्मा

फाइब्रोइड थाइसिज़—फाइब्रोइड लंग।

• Fibroid Phthisis—Fibroid Lung.

यह चिरकारी राजयक्ष्माके अनुगामी रोग है। यह सामान्यतः अति धीरे-धीरे बढ़ता है। इसके साथ उरस्तोय भी रहता है। इसका आक्रमण और प्रगति, दोनों गुप्त और अतिचिरकारी होते हैं।

लक्षण—मंद १०-१२ वर्षके लिये चिरकारी। (१) कास प्रायः आवेगात्मक। (२) प्रयत्नकरनेपर श्वासकृच्छ्रता। (३) दुर्गन्ध युक्त पूयमयकफ। ज्वर कभी रहता, कभी नहीं। प्रारंभमें नाड़ीकी मृदुता। शनैः-शनैः निर्बलताकी वृद्धि।

पीड़ित पार्श्व पर चिह्न—अति प्रकृति निर्देशक। रोग निर्णय मुख्यतः दर्शन और स्पर्श परीक्षासे क्षयात्मक या क्षय रहित प्रकारमें थोड़ा-सा ही अन्तर, किन्तु जीर्णावस्थामें शिखरपर विवर होते हैं तथा दूसरे फुफ्फुसमें प्रायः परिवर्त्तन होजाता है।

दर्शन, मापन और स्पर्श परीक्षा—उरःपंजर बेडौल, सामन्य कुब्जता, प्रभावित पार्श्वके प्रसारणका ह्रास, प्रायः स्पष्ट। छाती बैठी हुई, प्रसारण कम। कंधे नीचे। शिखर स्पन्दन अति स्थान च्युत। हृदयकी गति प्रायः बढ़ी हुई। विशेषतः बाम फुफ्फुस प्रभावित। वाग्तरंगकी स्पर्श ग्राह्यतामें वृद्धि या ह्रास (फुफ्फुसावरण स्थूल)।

ठेपन—निर्बल, किन्तु जड़ता कभी स्पष्ट। विवरके होने और फुफ्फुसावरण स्थूल होने पर ठेपनमें विविधता। हृदयकी जड़ ठेपन स्थान च्युत दूसरी ओरके फुफ्फुसपर ठेपन ध्वनिकी वृद्धि।

ध्वनिश्रवण—श्वसनध्वनि सामान्यतः निर्बल और नालीय; किन्तु विवर स्थानपर भिन्न। विवर और श्वासनलिका प्रसारणके हेतुसे ध्वनि भेद और आगन्तुक ध्वनि। विवरसे अन्यत्र वाग्ध्वनिका ह्रास। हृदयकी मर्मरध्वनि सामान्य, हृदयके हेतुसे कुछ अंशमें स्थानान्तरित।

ऊ. राजयक्ष्माके विभन्न प्रकार

Various forms of Pulmonary Tuberculosis.

वायुकोषस्फीति (Emphysema)—वायुकोष स्फीति और चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह होनेपर राजयक्ष्माकी उन्नति होती है। क्षय प्रन्थियोंका रोगविनिर्णय पृथक्। शीर्णता, कभी-कभी जड़ ध्वनिका प्रदेश और मुँहसे रक्तस्राव परसे सूचना मिलती है। क्षय कीटाणुओंकी उपस्थिति और 'क्ष' किरण परीक्षाद्वारा निर्णीत होता है।

वृद्धावस्थामें—सामान्यतः मन्द प्रगतिसह गुप्त वायुकोष स्फीति और चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह द्वारा आच्छादित। क्षयकीटाणुओंके मिलनेपर ज्ञात। बच्चोंमें चिरकारी क्षय विरल। वयस्कोंकी अपेक्षा आशुकारीक्षय विशेषतर।

खातमय राजयक्ष्मा (Hilum Tuberculosis) बालकोंमें फुफ्फुस, मूल-पर क्षय ग्रन्थियाँ फैलजाने पर फुफ्फुसक्षयकी उत्पत्ति होती है, उसे वैधानिक खातमय राजयक्ष्मा कहते हैं। लक्षण और चिह्न मन्द १३७२ रेडियोग्राफ से प्रायः मूलकी प्रसारित छाया द्वारा निर्णय होजाता है, जो प्रायः नूतन क्षतमय खात (Hilar Flare) के कारण फैलती है। कुछ वर्षों पहले 'क्ष' किरण द्वारा प्रायः ऐसा निर्णय होता था और फिर उत्तर कालमें कभी-कभी संदेह होजाता था। वयस्कों में अति क्वचित्।

चिरकारी राजयक्ष्माके उपद्रव

श्वसनसंस्थान में उपद्रव—

स्वरयन्त्र—प्रायः प्रभावित। देरसे उत्पन्न होने वाले दुःखदायी लक्षणोंमें से

यह महत्वका है। कफका सीधा सम्बन्ध होता रहनेके हेतुसे यह होता है। कोई रोगी गलेमें कफ आजानेपर आलस्यके हेतुसे सत्वर नहीं निकालते, वे जल्दी पीड़ित होजाते हैं।

पुनः-पुनः शवपरीक्षा करनेपर ५० प्रतिशत पीड़ितमें। जीवितोंमें २० प्रतिशतमें लक्षण उपस्थित।

लक्षण—प्रारंभ में स्वरभेद। जीर्णावस्थामें निगलनेमें कष्ट वृद्धि, स्वरलोप भी अथवा निष्फल कास।

वायुकोष स्फीति—सामान्यतः क्षय क्षतोंको आच्छादित करता है। बारंबार अप्रभावित (या कम प्रभावित) फुफ्फुसमें।

फुफ्फुसावरण—लक्षण दर्शाये विना प्रायः संयोजन। लक्षणोंकी उपस्थितिके हेतु—

१. शुष्क उरस्तोय।

२. तरलमय उरस्तोय—आक्रमणके समय आगेके क्रमकी अपेक्षा अधिकतर सामान्य; किन्तु पुनराक्रमण होता है। आगेके क्रममें क्वचित् रक्तस्राव।

३. क्षयात्मक वायुकोष स्फीति-किलाट पिंडके द्रवीभूत होनेसे।

श्वासनलिका प्रसारण—सौत्रिकतन्तुमय राजयक्ष्मामें सामान्य।

वायुभृत फुफ्फुसावरण—

ग्रन्थियाँ—श्वासनलिका, फुफ्फुसान्तराल तथा बृहच्छ्वासनलिका की ग्रन्थियाँ प्रायः प्रभावित।

फुफ्फुसप्रणालिका प्रदाह—सामान्य और गम्भीर। लसीका, रुधिर और श्वासनलिकाके क्षत केन्द्रके अकस्मात् प्रसारणसे।

हृदय और रक्तवाहिनी संस्थानमें उपद्रव—

हृदय—प्रायः छोटा। रक्त दबाव कम। सौत्रिकतन्तुमय फुफ्फुससे वृद्धि। रक्तके हेतुसे मर्मर विरल। क्वचित् अन्तमें क्षयात्मक हृदान्तर, प्रदाह।

हृदावरणप्रदाह—अति क्वचित्।

पचनसंस्थानमें उपद्रव—

जिह्वा—कभी-कभी अति दुःखदायी, उथल क्षयक्षत। कफद्वारा सीधा सम्बन्ध होकर।

अन्ननलिका और आमाशय—आक्रमण अति दुर्लभ।

अरुचि—प्रारंभमें लक्षण। विशेषतः वसा (घृत) के लिये। हृल्लास और वान्ति जीर्णावस्थामें। यह कासके पश्चात्।

अन्त्र—अतिसार, यह प्रायः जीर्णावस्थाका लक्षण।

हेतु—(१) अन्त्रप्रसेक मुख्य कारण (२) क्षय-क्षत सामान्यतः-शेषान्त्रकके कुछ भागमें; किन्तु किसीभी 'स्थानमें' अतिवारंवार गौण आक्रमणके स्थानपर (शवच्छेदन में ७५ प्रतिशतमें) कभी विदारित । (३) वसापक्रान्तिमयरोग ।

क्षयात्मक उदर्य्याकलाप्रदाह— क्षयमें कचित् ।

भगंदर—सामान्यतः । मूल क्षयात्मक ।

वातनाड़ी संस्थानमें उपद्रव—इन्द्रियात्मकक्षत विरल इसके अन्तर्गत—क्षय पिण्ड, अति वारंवार लघुमस्तिष्क में । क्षयात्मक फुफ्फुसावरण प्रदाह । अन्तिमावस्थामें भी आशावान (Spes phthisica) रहना अर्थात् रोगी सर्वदा आशान्वित रहता है; मृत्यु होनेकी भावना कभी नहीं होती । ओजक्षय (Neurasthenia) और अवसाद अतिशय सामान्य और वे दुःखदायी ।

मूत्र-जनन संस्थानमें उपद्रव—चिरकारी राजयक्ष्मामें इन दोनों संस्थानोंके भीतर क्षय प्रवृत्ति विरल । शुभ्रग्रथिनस्राव (लसीकामेह) होता है । हेतु—(१) ज्वर; (२) वसापक्रान्ति विकार; (३) कचित् वृक्कप्रदाह । मासिक धर्मकी अनियमितता या अभाव सामान्य ।

रक्त—गौण पाण्डुकी उन्नति, किन्तु सामान्यतः यह प्रारम्भावस्थामें नहीं । श्वेताणुह्रास प्रथमावस्थामें । बहुकेन्द्रमय श्वेताणु जीर्णावस्थामें ।

अस्थि और संधि संस्थानमें उपद्रव- गौण रोग विरल । चिरकारी संधि-प्रदाह विरल नहीं, मन्द प्रतिबन्ध ।

त्वक् संस्थानमें उपद्रव—कभी-कभी रंग परिवर्त्तन । उदर्य्याकलाके क्षयसे होने की अपेक्षा फुफ्फुसक्षयमें कम वारंवार ।

वसापक्रान्तिमयविकार-(१) वृक्कके-उदकमेह (Polyuria), लसीका-मेह (Albuminuria), मूत्रमें कंचुक (Casts) (२) स्राव । अन्त्रके-अतिसार । (३) यकृत्प्लीहाके-वृद्धि ।

सम्मिलित या गौण संक्रमण—नानाविध उद्भिद्-कीटाणु, विशेषतः न्युमो-कोकाई, स्ट्रेप्टोकोकाई और प्रसेक उत्पादक माइक्रोकोकाई कफमें उपस्थित । ये सब विषलक्षण उत्पन्न कराते हैं ।

चिरकारी राजयक्ष्माका रोग विनिर्णय

प्रारम्भावस्थामें रोग विनिर्णय कठिन । रोगनिर्णय आधार—(१) लक्षण और इतिहास; (२) शारीरिक चिह्न और उत्ताप; (३) कफमें क्षयकीटाणुओंकी उपस्थिति; (४) विशेष कसौटी; (५) प्रसारित किरण परीक्षा (Radiology) ।

सूचना—संदेहास्पद रोगियोंका निरीक्षण शय्यापर करना चाहिये ।

रोग निर्णायक महत्वके लक्षण—(१) वज़न, बल और क्षुधाका ह्रास। (२) दृढ़ कास और कफस्राव। (३) मुखसे रक्तस्राव। (४) रात्रिको स्वेद आना। (५) ज्वर और तेज़नाड़ी। उक्तलक्षणके समान प्रतीति अजीर्ण (Dispepsia), ओजक्षय (Neurasthenia), निर्बलता, हृत्स्पंदवर्द्धन, (Tacy Cardia) सह प्रारम्भिक ग्रैवरोग (Grave's disease) अर्थात् तुगांच-गलगण्ड, इन सबमें होती है।

महत्वके शारीरिक चिह्न—सबसे पहले-श्वासध्वनिमें परिवर्तन, केशमर्दनवत् ध्वनि और शिखरपर कुछ दुर्बल टेपन। लक्षणोंके अभावमें विशेष सम्हाल पूर्वक मन्द चिह्नोंको भी स्वीकार करना चाहिये। शारीरिक चिह्न फुफ्फुसके प्रति क्षतियोंका संकेत करता है। उदा० तमकश्वास, चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह, श्वासनलिकाप्रसारण, वायुकोषस्फीति, सौत्रिकतन्तुओंकी रचना, उरस्तोय नवबर्द्धन, क्षयात्मक ग्रन्थिमय क्षत (Sarcoidosis)।

कफमें क्षयकीटाणु—उपस्थिति निःसंदिग्ध निर्णय कराती है। कीटाणुओंका अभाव निषेध नहीं करता, फिरसे कसौटी करनी चाहिये। संदिग्ध रोगियोंमें कफ अथवा आमाशयिक आमको अण्डेके रसमें बोकर निर्णय करना चाहिये। जब क्षयमें कफ पूयमय हो, तब कीटाणु लगभग सर्वदा उपस्थित होते हैं। कीटाणुओंका अभाव हो, तो फिरसे कीटाणुओंसे विपरीत परीक्षा करनी चाहिये।

विशेष कसौटी—क्षय कीटाणुओंकी निर्णायक कसौटी ट्यूबरक्युलिन प्रतिवादोंका बोध कराती है। (१) सत्तावाचक प्रतिक्रिया होनेपर भी वह सर्वदा दृढ़ताका प्रमाण नहीं देती। (२) सत्तावाचक प्रतिक्रिया भयप्रद है।

क्षय कीटाणुओंके विरुद्ध प्रतिक्रिया—क्षयकीटाणु बहुधा श्वासमार्गसे फुफ्फुसोंमें प्रवेश करते हैं और फुफ्फुसोंकी मांसपेशियोंपर आक्रमण करते हैं। उस समय लसीका और मांसपेशियाँ, उन कीटाणुओं को नष्ट करनेका प्रयत्न करती हैं। यह आघात प्रत्याघात रूप क्रिया कुछ दिनों तक चालू रहनेसे उसमेंसे विष (विशिष्ट-द्रव्य) उत्पन्न होकर रक्तमें मिल जाता है। फिर यह विष रक्तवाहिनियोंकी दीवार वातवहानाड़ियों और त्वचामें पहुँच जाता है। रक्तमें इस विषके विरुद्ध प्रतिक्रिया होने लगती है। परिणाममें विषविरोधी शक्ति उत्पन्न होती है। इस शक्तिको वॉन पिरके (Von Pirquet) ने प्रतिरोधक शक्ति (Allergy) संज्ञा दी है। इस शक्तिकी उत्पत्तिमें लगभग १ से १॥ मास लग जाता है। फिर क्षयरोगका निर्णय क्षय कीटाणुओंके अर्क (ट्यूबरक्युलिन-Tuberculin) द्वारा किया जाता है।

क्षय कीटाणुओंकी अर्कविधि—क्षयकीटाणुओंके विषसे यह तैयार होता है। मांसके क्वाथमें ५ प्रतिशत ग्लिसरीन और १ प्रतिशत पेप्टोन मिला लेते हैं। फिर इसमें क्षयकीटाणु डालते हैं। पश्चात् इस मिश्रणको ३० डिग्री सेन्टिग्रेड उष्णता-

वाली पेटी या कमरेमें रखते हैं। १-१॥ मासमें इस मिश्रणके ऊपर मलाई रूपसे क्षय कीटाणुओंकी भयङ्कर आबादी होजाती है। इस तरह निश्चित परिणाममें वृद्धि होनेपर उसे अग्निपर चढ़ाते हैं; फिर दशवां हिस्सा शेष रहनेपर उतार कर छान लेते हैं। आस्ट्रिया देशके विएना शहरमें इस अर्क को तैयार करनेके पहले छान लेते हैं; फिर उबालते हैं। इस तरह अर्क (ट्युबरक्युलिन) तैयार होनेपर पशुओंपर प्रयोग करके निश्चय करते हैं। फिर छोटी-छोटी शीशियोंमें पैक कर बेचनेके लिए बाहर भेजते हैं।

यद्यपि क्षयकीटाणुओंका यह अर्क विषारी है, तथापि यह क्षय आक्रमित रोगियोंके लिये ही आपत्तिकर है। क्षयकीटाणुओंके संसर्गसे रहित मनुष्योंपर (यदि क्षमता शक्ति प्रबल है तो) इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता; परन्तु क्षयरोगके निर्णय करनेके लिये इस बातको भी लक्ष्यमें रखना चाहिये कि, क्षयरोगीके रक्तमें इसका प्रवेश अधिक परिमाणमें करा दिया जायगा, तो रोगीकी मृत्यु हो जायगी।

इस अर्क द्वारा जर्मनी और ऑस्ट्रियामें अनेक क्षयरोगियोंपर परीक्षा हुई है। जिन मनुष्योंको क्षय रोग होनेका क्षयकीटाणु अर्कसे जाना गया है; उन सबपर क्षय-कीटाणुओंका आक्रमण निश्चित हो चुका है। परन्तु इस वचनका ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिये कि, वे सब परीक्षाकालमें क्षय रोगसे ग्रसित हैं। पहले क्षय रोगका आक्रमण हुआ हो और विष विरोधी शक्ति उत्पन्न होकर क्षयकीटाणुओंको दबा दिया हो, ऐसा भी हो सकता है।

क्षयकीटाणु अर्ककी एक विधिका निर्माण १८८६ ईस्वी में प्रो० कोक (Koch) ने किया है, उसे प्राचीन परीक्षाविधि (Oldtest) कहते हैं। फिर उन्होंने नूतन विधि १८६१ ईस्वीमें तैयार की है। नूतन विधिमें भेद यह है कि, यह उग्र रोगोत्पादक सकल जीवाणुओंमेंसे बना हुआ (Culture) है। इसको प्रयोगमें लानेपर प्राचीन विधानके सदृश स्फोट नहीं होता। इस विधिमें क्षय कीटाणुओंका द्रव या मिश्रण (Emulsion) बन जाता है। इसमें उत्पादित विष पदार्थ वर्त्तमान नहीं रहता।

प्राचीन विधिकी परीक्षामें अर्कका अन्तःक्षेपण ही किया जाता है। यदि रोगी क्षयग्रस्त न हो, तो कोई भी स्थानिक या सार्वाङ्गिक चिह्न या लक्षणकी उत्पत्ति नहीं होती; आक्रमित है, तो प्रतिक्रिया (Reaction) हो जाती है।

क्षयकीटाणुके अर्क द्वारा परीक्षाविधि—यह त्वचापर मसलकर, त्वचापर खुरचकर, त्वचामें प्रवेश कराकर, त्वचाके नीचे प्रवेश कराकर और नेत्रमें डालकर, इन पाँच प्रकारसे होती है। परन्तु अन्तिम दो प्रकारोंका उपयोग बहुधा नहीं किया जाता। इनमें हानि होनेकी सम्भावना है।

त्वचापर मसलकर परीक्षा (Percutanous Tuberculin test)—अर्क और वैसलीनको समभाग मिलाकर मलहम तैयार करते हैं। फिर छातीके बीचमें

हड्डीपर १-१।। इञ्च भागको इथरके फोहेसे साफ करते हैं। पश्चात् थर्मामीटर जिस नलीमें रखते हैं, उसके सिरेसे ज्वारके दाने जितना मलहम लेकर उस स्थानपर २-३ मिनट तक मसलते हैं, जिससे वह त्वचामें प्रवेश कर जाता है। पश्चात् १ या २ दिन बाद उस स्थानको देखते हैं। जो उस स्थानपर लाली आजाय और छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जायँ, तो समझना चाहिये कि, इसे क्षयरोग हुआ था। यह परीक्षा ६ वर्षसे कम आयुवाले बच्चोंके लिये उपयोगमें ली जाती है।

त्वचापर खुरचकर परीक्षा (Cutaneous test)—यह विधि कूर्पर (कुहनी) के नीचे की त्वचापर की जाती है। पहले इथरके फोहेसे धोकर फिर वहाँपर ट्युबरक्युलिनका एक बूँद डालकर २ इञ्च दूरीपर दूसरी बूँद डालते हैं। पश्चात् एक तीक्ष्ण सुईसे खुरचकर दो बूँदोंके बीच 'x' ऐसी आकृति करते हैं। तदनन्तर दोनों बूँदोंपर भी वैसी ही आकृति करते हैं। इस खुरचनेमें इस बातका ख़याल रक्खा जाता है कि रक्त न निकले; और बीचकी चतुष्कोण आकृतिको ट्युबरक्युलिनभी न लगे। लगभग ५ मिनटमें ट्युबरक्युलिनकी बूँद सूख जाती है। फिर २४ या ४८ घण्टेके पश्चात् हाथको देखें। यदि उसे पहले क्षयरोग हुआ हो,तो बूँदोंपरके चिह्न वाला $\frac{1}{8}$ से १ इञ्च व्यासका स्थान ट्युबरक्युलिनकी प्रतिक्रियाके अनुरूप लाल होकर सूज जाता है। बीचकी आकृतिसे निर्णय किया जाता है; अर्थात् बीचकी आकृति से उस स्थानकी विकृति कितनी अधिक हुई है। यदि यह परीक्षा नास्ति पक्षमें हुई हो, तो पुनः १ सप्ताहके पश्चात् अधिक तेज़ अर्क द्वारा परीक्षा कीजाती है। यदि अधिक बलपूर्वक प्रतिक्रिया होनेकी भीति हो, तो इस अर्कको ४-८ गुने जलमें मिलाकर फिर परीक्षा करते हैं। यह परीक्षा ६ से १५ वर्षकी आयुवालोंके लिये सुविधा वाली है।

त्वचागत परीक्षा (Intracutaneous test)—इस विधिमें ट्युबरक्युलिनको एक हज़ार या दशहज़ार गुने जलमें मिलाकर उपयोगमें लिया जाता। फिर इस जल मिश्रित अंकके $\frac{3}{4}$ से $\frac{3}{2}$ बूँद या ($\frac{1}{20}$ से $\frac{1}{10}$ क्युबिक सेन्टीमीटर) जितना अंश पिचकारीमें लेकर सूक्ष्म सुईसे हाथकी त्वचाके ऊपरकी पर्त्तमें प्रवेश करावें। ऊपरकी सतहमें टोंचनेसे वह स्थान चने या मटर जितना उभर जाता है। परीक्षार्थ इसी तरह शुद्ध जलको भी इस हाथपर या दूसरे हाथपर टोंचकर प्रवेश करावें। फिर २४ या ४८ घण्टे पश्चात् ट्युबरक्युलिन वाला स्थान $\frac{1}{8}$ इञ्च या अधिक भाग लाल होकर कुछ सूज जाय, तो अस्ति पक्ष माना जाता है। बड़ी आयुवालोंके लिये इस विधिसे निश्चय किया जाता है। अनेक डॉक्टर हाथके ऊपर अंसफलक स्थान (Intrascapular) में अर्कको प्रवेश कराते हैं। इस परीक्षासे पिचकारी द्वारा प्रयोग करने पर बहुधा १२ घण्टेके भीतर देहमें २-३ डिग्री उष्णता बढ़जाती है। साथ-साथ बेचैनी, मस्तिष्क, पीठ और पैरोंमें पीड़ा और क्वचित् उबाक और वमन भी उपस्थित होते हैं। उत्ताप वृद्धि

होनेके कुछ घण्टोंके पश्चात् फिर घटकर स्वाभाविक अवस्थाकी प्राप्ति हो जाती है और सर्व लक्षण शमन हो जाते हैं।

मनटूअकी त्वचागत कसौटी (Mantoux's intracutaneous test)—प्राचीन ट्युबरक्युलिन (०·०१ मिलीग्राम) को ०·१ सी. सी. का अन्तः क्षेपण करें। ४८ से ७२ घण्टे बाद परीक्षा करें। लालचक्र, ४ मि. मी. व्यासका अन्तःक्षेपण स्थानके चारों ओर होनेपर क्षयका अस्तित्व दर्शाता है। यदि निषेध प्रतीत हो तो फिर १ सप्ताहमें ०·१ मिलीग्रामका और उत्तर कालमें १ मिलीग्रामका अन्तःक्षेपण करें। निषेध, यह क्षयके विरुद्ध प्रतिक्रिया और सत्तावाचक परिणाम अनिर्णायक माने जाते हैं।

दाग कसौटी (Patch Test)—अर्क छाननेके (कागज़ फिल्टर पेपर) के दो छोटे चोकोर टुकड़ेको प्राचीन ट्युबरक्युलिन (बिना जल मिलाये) में डुबोकर उरःफलकपर चिपकने लेप (Adhesive plaster) द्वारा चिपका देवें। ४८ घण्टे बाद खोलें। क्षयका अस्तित्व होनेपर वह स्थान १२ से २४ घण्टेमें लाल और अन्तर्भरण युक्त हो जायगा।

यह कसौटी अधिकतम विश्वसनीय है। वोन फिरकेकी त्वचा परीक्षा ट्युबरक्युलिन चेतनाधिक्य रूप परिणाम द्वारा पूर्व कालीन आक्रमणका बोध कराती है, वह अति परिपक्व आयुवालोंके क्षयके अस्तित्वको दर्शाती है और २ वर्षसे कम आयुवालोंको छोड़कर इतरोंके उग्ररोगका प्रदर्शक नहीं है।

प्रसारित किरण परीक्षा (Radiology)—राजयक्ष्माका संदेह होनेपर इस किरण प्रसारणके दर्शन द्वारा 'क्ष' किरणके चित्रके समान निर्णय होता है। क्षयरोगमें रोगनिर्णयार्थ लक्षण और चिह्नोंको यह दृढ़ कराता है। वर्त्तमान दृढ़ताका प्रमाण मिलनेपर सम्हाल रखनेकी आवश्यकता है। यह परीक्षा चिकित्सा पथका बोध कराने और प्रगतिके परीक्षणार्थ अति महत्त्वकी है।

चित्र—क्षतकी उपस्थिति और प्रसारण, फुफ्फुसावरणमें तरल और फुफ्फुसावरणमें वायु आदिका प्रदर्शन करता है। उग्र क्षतमें सामान्य देखाव—

१. अन्तर्भरण—अस्पष्ट सीमायुक्त, भीतरसे नरम, सफेद दाग, जो इधर-उधर फैले हुए या स्थानिक।

२. विवर—मुद्रिका सदृश छाया तरलकी सतह पर। फुफ्फुसका 'क्ष' किरण चित्र (Tomography) उसकी गहराईके नापका निर्णय विशेष रूपसे कराता है।

३. बृहद्दाग—'क्ष' किरणका फुफ्फुसचित्र दागका प्रदेश दर्शाता है, जो पिछली ओर रहा हो।

४. सौत्रिकतन्तुमें रचना, फुफ्फुसावरणमें तरल, फुफ्फुसावरणकी स्थूलता।

५. फुफ्फुसके कुछ अंशका आकुंचन, स्थानच्युत फुफ्फुसान्तराल।

६. मूलकीछाया—सूचनासह निर्णय करता है। बढ़ती हुई आयु तथा रक्तवाहिनियों की वृद्धिकी छायासह।

७. आसमेनका क्षतकेन्द्र (Assmann's focus) राजयक्ष्मामें वरण युक्त प्राथमिक क्षत, विशेषतः शिखरके निम्नप्रदेश या अक्षकाधर प्रदेश (Subclavicular region) में होता है, उसका स्थानिक श्वेतदाग, लगभग आध इन्च व्यासका प्रतीत होता है।

८. हृदय—प्रायः आकुंचित और खड़ा।

चित्रमें बद्धक्षत—इसके देखावके अन्तर्गत—

१. शिखरके चमकीलेपनका ह्रास। श्वासग्रहणमें अपरिवर्त्तित।

२. क्षार भरितप्रदेश—विच्छिन्न या स्थानिक।

चिरकारी राजयक्ष्माका अरिष्ट

कितनेक विशेष लक्षण व्यक्ति विशेषके लिये अरिष्टरूप होसकते हैं, किन्तु सर्वसामान्यके लिये नियम—

१. क्षतप्रसारणकी अपेक्षा सहनशीलता अधिकतर महत्वकी है।

२. शारीरिक उत्ताप सहनशीलता दर्शानेका उत्तम माप है।

३. योग्यचिकित्सा अरिष्टसे बचनेमें उत्तम मार्गदर्शक है।

४. उपद्रव गम्भीर होते हैं।

व्यक्तिगत विशेष लक्षण—

कुटुम्बागत—सम्बन्धियोंमें सम्मिलित रहनेपर अशुभकारक।

जाति—सगर्भाके अतिरिक्त अन्योंपर प्रभाव नहीं।

आयु—१८ से कम और ५० से अधिक आयुवालोंके लिये अशुभ।

शारीरिक रचना—निर्बल होनेपर खराब।

आभ्यन्तरिक शक्ति—चिकित्सा, योग्य परिचर्या, सहिष्णुता और गम्भीरता पर अवलम्बित।

इतिहास—शराबका व्यसन, फिरङ्ग, जन्मजात हृद्रोग, ये सब अशुभ हैं। द्विपत्र कपाटका आकुंचन शुभ भासता है।

उद्योग—गन्दे वायु-मण्डलमें कार्यकरना, कपड़े की मिल, जिन, प्रेस, रङ्गका कारखाना, छापाखाना, टाइप फाउण्ड्री आदिमें काम करना, ये सब क्षयवर्द्धक हैं।

लक्षण—

कफमें क्षयकीटाणु—कीटाणुओंका अभाव या चिकित्सा होनेपर अभाव होना, यह उत्तम परिणामदायी है।

कास—दृढ़हो तो निद्रामें बाधा होती है।

उत्ताप—रोगकी उग्रतामें मार्गदर्शक है। शय्यापर पड़े हुए रोगीको अधिक ज्वर रहना, यह खराब। ज्वराभाव उत्तम।

रक्तस्राव—प्रारम्भावस्थामें हो तो शीघ्र परिणाम दर्शाता है, यह अच्छा परिणाम लाता है। जीर्णावस्थामें अधिक रक्तस्राव होनेपर रोग फैल जाता है।

रात्रिका दृढ़ स्वेद, प्रारम्भिक अरुचि, हृत्स्पंदवर्द्धन,न्यून रक्तदबाव, लसीकामेह—ये सब अशुभ हैं।

शारीरिक चिह्न—

विवर—(१) शुष्क विवर बिल्कुल युक्त होनेपर जीवन अनेक वर्षोंतक। (२) मुक्त विवर किन्तु पूयमय कफ और क्षयकीटाणुमय होनेपर शेष आयु १ से २ वर्षतक; यदि विवर आच्छादित न हुए और सहनशीलता गिर गई तो; (३) सौत्रिक-तन्तुमय विवर विष लक्षणसे रहित हो, तो जीवन अनेक वर्षोंतक।

जीवनीयशक्ति—राजयक्ष्मामें स्पष्टतः कम हो; यह तो उत्तम मानी जाती है। यदि (१) लगभग सामान्य हो, (२) चिकित्सासे उन्नति होती हो, (३) सामान्य जीवनमें नियमित हो।

रक्तनिक्षेपकी मात्रा (Sedimentation rate)—बाहर निकाले हुए स्वस्थ रक्तमेंसे रक्ताणुरूप निक्षेप तलमें बैठजाना और शुद्ध रक्तवारि ऊपर रहजाना, यह स्थिति रोगकालमें नहीं रहती; यह पुनः सहनशीलता अनुसार बढ़ती है और उसकी उन्नति अनुरूप स्वास्थ्य प्राप्ति होती है।

घातक उपद्रव—प्रायः गम्भीरताकी वृद्धि होनेपर उपस्थित।

स्वरयंत्र प्रदाह—गम्भीर।

वातभृत् फुफ्फुसावरण—क्षत प्रसारणशील है, तो पूयवातभृत् फुफ्फुसावरणकी उन्नति होकर रोगघातक होजाता है। प्रारम्भिक स्वाभाविक प्रकार हो, वह उपकारक होता है।

तरलमय उरस्तोय—अशुभ नहीं।

प्रसेकमय संक्रमण—रोग फैलानेमें सहायक।

अभिवृक्षणिका प्रदाह (Epididymitis)—परिणामपर असर नहीं पहुँचाता।

मस्तिष्कावरणप्रदाह, उदर्य्याकलाप्रदाह, अन्त्रप्रदाह—घातक।

क्षयप्रसार प्रतिबन्धक उपाय

(Prophylaxis.)

क्षयरोगी नित्यप्रति अनन्त क्षयकीटाणुओं को अपनी देहमेंसे बाहर निकालते रहते हैं। उन कीटाणुओंकी उत्पत्ति और प्रसारको रोकनेके लिये निम्नानुसार नियमोंका पालन करना चाहिये।

१. मकानकी स्वच्छता—रोगीको प्रकाश और शुद्ध वायुवाले * कमरेमें रक्खें। कमरेमें नित्यप्रति झाड़ू निकालें और दीवारोंको भी साफ रक्खें। कमरेकी खिड़कियाँ सर्वदा खुली रखें। थोड़ी-सी गन्दगी होनेपर ज़मीनको कीटाणुनाशक जलसे धो देवें और दीवारोंपर भी चूना पुतवा लेवें। गन्देमकान, घनी बस्तीवाले मकान और सीलवाले मकानमें रोगीको न रखना चाहिये। मकानमें मकड़ीके जाले न होने देवें। कूड़ाकचरा मकानके पास इकट्ठा न करें। मकानकी मोरी, नाली और टट्टी आदि स्थानोंको बार-बार साफ कराते रहें। मक्खी और मच्छर, खटमल, पिस्सू, जूँ आदि जन्तुओंको जल्दी नष्ट करें।

मिट्टीके मकानमें क्षयरोगीको रखा हो, तो मकानको लीपने पोतनेके लिये भैंसके गोबरका उपयोग न करें, केवल नीरोगी गौओंका ही गोबर उपयोगमें लेवें। एवं वर्षा ऋतुमें केवल मिट्टीसे ही ज़मीनको लीप लेना चाहिये।

कच्चे मकान और चूनापत्थरके पक्के मकानोंमें भी वर्षाऋतुमें ज़मीनको अधिक समय गीली न रहने देवें।

कमरेमें मच्छर न रहने देवें और रात्रिको मच्छरदानी भी लगा लेवें। रोगीके कमरेमें अधिक मनुष्यको नहीं सोना चाहिये।

आयुर्वेदके कथन अनुसार कमरेमें नित्यप्रति गूगल, लोहवान आदिका धूप करते रहें; जिससे नये आये हुए मच्छर आदि निकल जायँ, कीटाणु नष्ट होजायँ और वायु निर्दोष हो जाय।

कमरेकी खिड़की दिन-रात खुली रहनी चाहिये। शीत, वर्षा और उत्ताप वृद्धि आदि कारणोंसे बिलकुल बन्द नहीं करनी चाहिये। (ग्रीष्मकालमें दोपहरको पर्दा

---

* भगवान धन्वन्तरिजीने क्षयरोगीके लिये उत्तर दिशाकी वायुको विशेष लाभप्रद लिखा है।

उत्तरो मारुतः स्निग्धो मृदुर्मधुर एव च।
कषायानुरसः शीतो दोषाणां चाप्रकोपणः॥
तस्माच्च प्रकृतिस्थानां क्लेदनो बलवर्द्धनः।
क्षीण क्षय विषार्तानां विशेषेण तु पूजितः॥

॥ सु० सू० अ० २०-२८।२९॥

लगाकर अधिक उष्णतासे रक्षण करें; इस तरह तीव्रवायु और तेज़ वर्षाके समयपर भी सम्हाल लेवें)।

२. भोजन—पथ्य, लघु (जल्दी पचन हो वैसा) और ताज़ा देवें। नियत समयपर भोजन करावें। ज्वरावस्थाके लक्ष्यमें रखकर समय निश्चित करना चाहिये। दिनमें ३-४ बार थोड़ा-थोड़ा भोजन देवें। एक साथ अधिक भोजन न देवें।

बासी, दुर्गन्धयुक्त, जिसपर मक्खियाँ बैठी हों अथवा अपथ्य हो, ऐसे भोजनका उपयोग न करें। शहरवासी गौओंके दूधको बिना गरम किये कभी काममें न लें *। उतरे (बिगड़े) हुए बासी फल, शाकको काममें न लेवें। अति गरम पेय न पिलावें। दूध, चाय गुनगुना पिलावें। भोजन भी अधिक गरम न देवें।

सिगरेट, भांग, गांजा, बीड़ी, हुक्का, अफीम, शराब आदि का व्यसन हो तो शनैः-शनैः छुड़ा देवें। बर्फ, आइस्क्रीम आदि अतिशीतल वस्तुओंका उपयोग भी न करें।

जल उबालकर शीतल किया हुआ देवें। सुबह गरम करें, उसका उपयोग शामतक करें। शामको उबाले हुए जलका उपयोग सुबहतक करें। बिना उबाले जलसे आम-कफकी उत्पत्ति अधिक होती है।

क्षयरोगीके खाने-पीनेके बर्तन अलग रक्खें। दूसरोंके लिये उपयोगमें लेना हो तो अग्नि डालकर शुद्धकर लेना चाहिये।

३. वस्त्र—रोज़ सुबह वस्त्र बदल देवें। पहने हुए वस्त्रोंको रोज़ साबुनसे धुलवाकर सूर्यके तापमें सुखा देवें। हो सके तबतक साबुन या सोडाके उबलते जलमें वस्त्रोंको भिगोकर फिर धोना चाहिये।

बिछौनेके ऊपरकी चद्दरको रोज़ बदल देवें। बिछौनेको दोपहरमें १ घण्टे तक सूर्यके तापमें डालदेवें। जिससे पसीनेकी दुर्गन्ध उड़जाय।

४. पुस्तक आदि—वाचन हो सके उतना कम करें। देह, नेत्र और मनको अधिक श्रम न देवें। पुस्तक पढ़नेके समय पन्ना उलटनेके लिये अंगुलियोंको थूक न लगावें और पेन्सिलको भी मुँहमें न डालें।

५. लक्ष्य देनेयोग्य अन्य नियम—

अ. शरीरको सीधा रखें। कमरसे आगेकी ओर झुककर न बैठें।

आ. नियमित समयपर सोजायँ।

इ. ब्रह्मचर्यका आग्रहपूर्वक पालन करें।

ई. सोनेके समय मुँहपर वस्त्र न ढकें। श्वासोच्छ्वासके लिये शुद्ध वायुकी आवश्यकता है, गन्दी वायु श्वासद्वारा बार-बार फुफ्फुसोंमें जाती रहेगी, तो रोग दमन नहीं हो सकेगा।

* १४०° फेरनहीटपर उबालने से १० मिनिटमें तथा १६४° फे० पर केवल आध मिनिटमें ही क्षयकीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

उ. रात्रिको सोनेके समय अति तङ्ग वस्त्र न पहने।

ऊ. क्षयपीड़ित रुग्णाके छोटे-छोटे बच्चोंको दूर रखें। उसे चाहिये कि, अपने शिशुको दूध (स्तन्य) न पिलावें और चुम्बन भी न करें।

ए. रोगीको चिन्तातुर या शोकातुर न होने देवें। सदैव प्रसन्न रखें।

ऐ. रोगीको निद्रामेंसे न जगावें।

ओ. रोगीको शीत न लगजाय, यह सम्हालें। देह उष्ण रहनी चाहिये; किन्तु भारीवस्त्र पहनाकर उष्ण रखनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

औ. अतिकब्ज़ न होने देवें। विरेचन औषधि देकर उदरशुद्धिका प्रयत्न भी न करें। स्वाभाविक उदरशुद्धि होती रहे, ऐसी आदत डालें।

६. कफमल—क्षय रोगीके कफ और (अन्त्रक्षय हो जाने पर) मल कीटाणुयुक्त होते हैं; अतः इन दोनोंको एक हाथ गहरे गड्ढेमें गाढ़ देना चाहिये या घास और मिट्टीका तेल डालकर जलादेना चाहिये। क्षय कीटाणुओंको किसी गन्दी नालियोंमें नहीं डालना चाहिये। कारण, वहाँ कीटाणु दीर्घकाल तक जीवित रह जाते हैं। ज़मीनपर फेंक देनेसे कफ सूखनेपर कीटाणु उड़कर दूसरोंके श्वासमें प्रवेश करजाते हैं। अतः उसे जला देनाही सर्वोत्तम माना जाता है।

रोगीके पास थूकनेके लिये फिनाइल, कार्बोलिक एसिड या मिट्टीका तैल डाला हुआ पीकदान या बोतल रक्खें; अथवा कागज़के लिफाफोंमें थूकें और उसे जला देवें। दीवार या फर्शपर नहीं थूकना चाहिये।

खाँसनेके समय मुँहके पास रुमाल या कपड़ा रख लेवें। कारण, कफके तुषार परिचारकोंके श्वासमें चले जाने पर उनको भी क्षय हो जानेकी भीति रहती है।

स्वास्थ्य-गृह और दिनचर्या

वर्तमानमें इस क्षयके प्रतिबन्धार्थ पाश्चात्य प्रदेशके अनुसार भारतवर्षमें भी अनेक स्वास्थ्य-गृह (सेनेटोरियम-Sanatorium) बनाए गये हैं। धनिक रोगी वहाँ आकर रह सकते हैं। उस स्थानके शुद्ध जलवायुसे सत्वर लाभ पहुँचता है। औषधिकी अपेक्षा शुद्ध वायुको विशेष गुणदायक माना है। इस सम्बन्धमें कहावत भी है "सौ दवा और एक हवा"।

परन्तु क्षयकी बढ़ी हुई अवस्थावालोंको या आशुकारी ज्वरपीड़ितोंको इस स्वास्थ्य-गृहमें नहीं भेजना चाहिये। जिन रोगियोंका रोग गुप्तावस्थामें है या प्रारम्भावस्था में दबा दिया गया है, उनके स्वास्थ्यकी उन्नतिके लिये स्वास्थ्य-गृहका निर्माण हुआ है। उक्त प्रकारके रोगी वहाँपर रहकर मर्यादित जीवन, शुद्धवायुका सेवन, चिन्ताका परित्याग, इन्द्रियदमन, अनुकूल पथ्य भोजन, आवश्यक व्यायाम, (बाल सूर्यकिरणोंका सेवन, दीर्घश्वसनक्रिया, भ्रमण आदि) तथा भक्तिद्वारा सुप्त असरको नष्टकर सत्वर स्वास्थ्य प्राप्ति कर सकते हैं।

आशुकारी ज्वरपीड़ित प्रथमावस्थाके रोगीको वहाँ भेजनेकी आवश्यकता नहीं है। उनको शय्यामें पूर्ण आराम देना चाहिये; एवं योग्य चिकित्सा करके रोगके मूलको दबादेना चाहिये।

यह भी खयाल चाहिये कि, जो मनुष्य जिस देशका है, उसी देशके सेनेटोरियम ही उसके लिये लाभदायक माने हैं। मद्रासवासीके लिये बंगलोरका जलवायु जैसा अनुकूल हो सकेगा वैसा गुलमर्ग (काश्मीर) का जलवायु लाभप्रद नहीं हो सकेगा। इस तरह काठियावाड़ वासियोंको समुद्र किनारेका जलवायु, बंगालवासियोंको वैद्यनाथ या जगन्नाथपुरीका जलवायु, सी० पी० वालोंको पंचमढ़ीका जलवायु, एवं गुजरात और मारवाड़ वासियोंको आबूका जलवायु जितना अनुकूल रहेगा; उतना दार्जिलिंगका जलवायु अनुकूल नहीं रहेगा; बल्कि हानि पहुँचायगा। इस तरह इतर देशोंके लिये भी समझ लेना चाहिये।

चिरकारी रोगी तथा ज्वरावस्थासे मुक्त तुरन्तके रोगियोंको सेनेटोरियममें कम-से-कम ६ मास तक रखना चाहिये या कफमेंसे कीटाणु अदृश्य हो तबतक। तत्पश्चात् भी उन्नति कर उपचार क्रम चालु रखना चाहिये। एवं कुछ वर्षोंतक परीक्षाविधि अनुरूप तथा रेडियोलोजीद्वारा बारंबार नियमित परीक्षा कराते रहना चाहिये।

सामान्य रीतिसे समुद्रके किनारेकी वायु अति हितकर मानी जाती है। नदीतट और स्वच्छ मैदानमें निवास करना भी लाभदायक है। प्रतिदिन नौकारोहण करके समुद्रमें थोड़े-थोड़े समयतक भ्रमण करनेका अवसर मिले तो वह रोगनाशमें सहायक होता है। समुद्र जलका स्नान भी अनेक रोगियोंके लिये हितावह होता है। स्वरयन्त्रप्रदाह,श्वासनलिकाप्रदाह या फुफ्फुसकोष स्फीति युक्त चिरकारीरोगमें समुद्रतट अति हितावह है।

शुष्क, उष्ण शुद्ध जलवायुमें निवास हितकर है; किन्तु जहाँ धूल और रेत उड़ती रहती है, वहाँ नहीं।

पर्वतोंपर जहाँ बार-बार वर्षा होकर ऋतुका परिवर्तन होता है, वहाँकी वायु उस प्रदेशवासियोंके लिये कदाच हितकर हो सकती है; किन्तु इतरोंके लिये नहीं। अनेकोंको पर्वतपर अतिसार हो जाता है, और देह सत्वर निर्बल बन जाती है; अनेकोंको ज्वर और कफकी वृद्धि हो जाती है। जाँगल देशवासियोंके लिये जाँगल देश वातप्रधान होनेपर भी अति हितकर है। जाँगलदेशमें कफकी वृद्धि अधिक नहीं होती।

कितनेक प्रथमावस्थाके रोगी, जो ज्वरपीड़ित न हों, एवं श्वासनलिकाप्रदाह, स्वरयन्त्रप्रदाह, हृद्रोग, धमनीकोषकाठिन्य, वृक्कप्रदाह, वायुकोषस्फीति और निद्रानाशसे आक्रान्त न हो, उनको गर्मीके दिनोंमें पहाड़ोंपरका जलवायु अनुकूल रह सकता है। सामान्यतः वर्तमान युगमें निर्धन या सामान्यस्थिति वाले रोगी पहाड़ोंपर स्वास्थ्य लाभ नहीं उठासकते।

शुद्धवायु—जीवनके लिये शुद्धवायुकी नितान्त आवश्यकता है। यदि भोजन कुछ दिनों तक नहीं मिलेगा, तो भी चल सकेगा। मनुष्य बिना जल भी कुछ काल निकाल सकेगा; किन्तु श्वासोच्छ्वासके लिये शुद्ध वायु न मिले, तो मनुष्यकी मृत्यु मिनटोंमें ही हो जाती है।

शुद्ध वायुके भीतर १०० भागमें ऑक्सिजन (Oxygen) २०.१२ भाग, नाइट्रोजन (Nitrogen) ७८.१० भाग, और शेष जहरी वायु अर्थात् कार्बन डाइ-ऑक्साइड (Carbon dioxide) रहते हैं। इस वायुमेंसे हम श्वास लेते हैं।

जो वायु निःश्वास रूप बाहर निकलती है; उसमें ऑक्सीजन १६ और नाइट्रोजन ७६ भाग और कार्बनडाइऑक्साइड ४.४ भाग होती है। अर्थात् ऑक्सिजनका परिमाण कम होकर ज़हरी वायु बढ़ गई है। इस परसे पाठक सहज समझ सकते हैं कि, देहमें उत्पन्न विषको बाहर निकालनेके लिये शुद्ध वायुकी सर्वदा और सर्वथा आवश्यकता रहती है। सामान्य रीतिसे जितनी वायु श्वासमें ली जाती है; उसकी अपेक्षा बाहर निकलने वाली वायु १/५० हिस्सा कम रहती है।

स्वस्थ युवा पुरुषके रक्तमें प्रतिदिन लगभग १ सेर ऑक्सिजन मिश्रित हो जाती है; और लगभग उतनी ही ज़हरी वायु बाहर निकलती है। निःश्वासकी वायुमें ३० तोले जल भी बाहर निकलता रहता है। भीतर जो वायु आकर्षित होती है, वह शीतल होती है और बाहर निकलती है, वह रक्तकी उष्णताको भी बाहर निकालती रहती है। अतः निःश्वासकी वायु लगभग शारीरिक उष्णता जितनी उष्ण होती है।

सामान्यतः स्वस्थ मनुष्य प्रति मिनिट १७ श्वास लेता है। प्रतिश्वास ५०० घन शतांश मीटर (८×८×८, क्युबिक सेन्टीमीटर) या ३०.५ घन इञ्च वायु बाहर निकालता है। इस दृष्टिसे स्वस्थ मनुष्यको रहनेके लिये वायुके आने और निकलनेका पूरा प्रबन्ध हो, ऐसा मकान कम-से-कम ८०० घन फीट (१० फीट लम्बा १० फीट ऊँचा और ८ फीट चौड़ा) चाहिये; और रोगियोंके लिये तो इससे दो-तीन गुना बड़ा मकान रहना चाहिये।

कारखाना, मील, धर्मशाला, मन्दिरोंके उत्सवकाल, रेलगाड़ी, ट्राम और मोटर आदिमें जब मनुष्योंकी भीड़ होती है; तब श्वासवायु कितनी दूषित मिलती होगी, इस बातका खयाल पाठक सहज कर सकेंगे।

मनुष्यको सर्वदा चाहिये कि, नासिकासे ही श्वास लेते रहें; मुँहसे कदापि न लें। नासिकासे श्वासलेनेमें वायु छनकर स्वरयन्त्रमें होकर फुफ्फुसोंमें जाती है। वायुमें स्थित अनेक प्रकारके दूषित परमाणु नाकमें ही रह जाते हैं। यह लाभ मुँहसे श्वास-लेने वालोंको नहीं मिलता। जिन मनुष्योंको मुँहसे श्वास लेनेका अभ्यास हो जाता है, उनके ऊपरके जबड़ा (Jaw) और नाककी आकृति बिगड़ जाती है तथा ऊपरका ओष्ठ ऊंचा खिंच जाता है।

नियमित व्यायाम—रोगसे मुक्त हुए व्यक्तियोंको आग्रहपूर्वक व्यायाम या भ्रमण कराना चाहिये । पहले कुछ हाथतक चलावें । बिना वार्तालाप शनैः-शनैः भ्रमण बढ़ावें । फिर बागमें घुमावें । कुछ महीनोंके पश्चात् प्रतिदिन १०-१२ मील घूमनेका नियम बनालेना चाहिये ।

शारीरिक उत्ताप परिश्रमवृद्धिका नाप दर्शाता है । घूमनेके पश्चात् १ घण्टा आराम लेकर उत्ताप नापें । गुदामें ९८·६° से अधिक न होना चाहिये । यदि अधिक है तो भ्रमण कम करें या शय्यापर आराम करें । यदि व्यायामके पश्चात् नियमित उत्ताप बढ़ता है तो,उसीके शरीरकेही गम्भीर विषका अन्तःक्षेपण(Severauto Inoculation) करना चाहिये ।

रोग बढ़नेपर यदि रोगी शुद्धवायुके सेवनार्थ १-२ मील या कम भ्रमण करता रहता है, तो वह अपनी मौतको स्वेच्छासे बुला रहा है । परिश्रम करनेवालोंको अच्छी से अच्छी औषधि भी कदापि लाभ नहीं पहुँचा सकती ।

यदि नाड़ीकी गति बढ़ जाती है; दिनके किसीभी समयमें ९९° तक या अधिक ज्वर आ जाता है, तो मनुष्यको समझना चाहिये कि, विषने मस्तिष्कमें जाकर उष्णता उत्पादक, नियामक और शामक केन्द्रोंको प्रकुपित किया है; इसी हेतुसे ज्वरकी उत्पत्ति हुई है । ऐसी परिस्थितिमें ईश्वर या प्रकृति विश्राम लेनेके लिये आज्ञा करते हैं । जो मनुष्य इस दैवी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है, वह घोर व्याधिसे पीड़ित होकर जीवन-यात्राको समाप्त कर देता है ।

जबतक चिकित्सा चलती रहे, तबतक दो पहर और रात्रिके भोजनके पहले १ घण्टा लेटकर विश्रान्ति लेनी चाहिये ।

अनेक चिकित्सक क्षय रोगीको प्राणायाम करनेकी सलाह देते हैं । प्राणायामका अर्थ प्रातःकाल भोजनके पहले शुद्धवायु में बैठकर दीर्घश्वास लेना और तुरन्त शनैः-शनैः निकाल देना है । प्राचीन शास्त्रीय प्राणायाम, जिसमें नाकके एक छिद्रको अंगुलीसे बन्द करके पूरक करते हैं । फिर कुम्भक (श्वासको रोकना) करनेके बाद रेचक किया जाता है । उसे प्रयोगमें नहीं लाना चाहिये । इस प्राणायामका अधिकार स्वस्थ मनुष्यको आसनकी दृढ़ता होने (३ घण्टे तक एक आसनसे बैठने) पर मिलता है; और सद्गुरु की सन्निधिमें रहकर क्रिया सीखनी पड़ती है । रोगी केवल दीर्घश्वासोच्छ्वास क्रिया प्रातःकाल, ज्वर न होनेपर, प्रथमावस्थाके प्रारम्भमें चिकित्सककी सलाह अनुसार कर सकता है । जब तक देहके बलका ह्रास न हुआ हो और क्षयग्रन्थि विगलित न हुई हो, तबतक सम्हालपूर्वक दीर्घश्वास क्रियाका प्रारम्भ कर दिया हो, तो वह क्षयग्रन्थियोंको सुखाकर नष्ट करनेमें सफलता प्राप्त कर सकता है । यह क्रिया प्रारम्भमें ५ मिनट करें । फिर १-१ मिनट प्रतिदिन बढ़ाता जाय । १५ मिनट या २० मिनट तक बढ़ावें । परन्तु क्षयग्रन्थि फूट जानेपर पूय-रक्त या रसका स्राव होनेपर तथा सूक्ष्म विवर बनजाने पर

दीर्घश्वासका प्रारम्भ किया जायगा, तो वह हानि ही पहुँचायगा; अर्थात् विवरको बढ़ाने और बलको घटानेका ही कार्य करेगा।

रोगी मनोरंजनके लिये रेडियो, ग्रामोफोन या बाजा आदि सुनते रहें; परन्तु अधिक वार्त्तालाप न करें। एवं अपने पास अधिक मनुष्योंको बैठने न देवें। अधिक मनुष्य इकट्ठे होनेपर वायु दूषित होती है और मन क्षुब्ध होता है।

रोगीके पैरोंके तलोंको सूखे और गरम रखना चाहिये। शीतकाल और वर्षाके समय पैरोंमें गरम मोजे पहनाना चाहिये।

रोगीके कपड़े ढीले, हलके और स्वच्छ होने चाहियें। तंग कपड़ेसे प्रस्वेदद्वारा विष बाहर आनेमें प्रतिबन्ध होता है। गर्मीके दिनोंमें सूतीवस्त्र और शीतकालमें ऊनीवस्त्र को उपयोगमें लाना चाहिये।

प्रतिदिन प्रातः-सायं ज्वर अधिक न बढ़ा हो, तो ऐसे समयपर दांतोंको दन्त-मंजन से साफ करें और अच्छी तरह कुल्ले करें।

रोगीको ज्वर रहने और कफ वृद्धि होनेके पश्चात् शीतल जलसे स्नान नहीं कराना चाहिये और प्रातः-कालमें भी स्नान नहीं कराना चाहिये। शीतकालमें रोज़ स्नान न करावें। स्नान जब कराना हो, तब भोजनके १ घण्टे पहले गुनगुने जलसे निर्वात स्थानमें स्नान करावें। गरम जलमें कपड़ा भिगो, उससे देहको पोंछकर साफ करलें। फिर वस्त्र बदल देवें।

सूर्यस्नान—क्षयरोगीको रोज़ सूर्योदयके १ या २ घण्टेके पश्चात् सूर्यके तापका सेवन (सूर्यस्नान) कराना चाहिये। पहले ५ मिनिट पैरोंसे घुटनों तक। दूसरे दिन १० मिनट कमर तक, तीसरे दिन १५ मिनट छाती तक। चौथे दिन २० मिनट कण्ठ तक। फिर धीरे-धीरे समय बढ़ाते जायँ। रोगीके शारीरिक बलके अनुसार नित्य बाल-किरणोंका १-१ घण्टे तक सेवन करानेसे क्षयकीटाणु सत्वर नष्ट हो जाते हैं। परन्तु सूर्यस्नानमें रोगीको शीत न लग जाय, इस बातका सम्हाल रखकर सूर्यस्नान कराना चाहिये।

सूर्यके तापका सेवन कराना हो, तब रोगी नग्न रहे, तो विशेष लाभ पहुँचता है। सूर्यस्नानके लिये स्थान जंगलमें ऊंचाईपर होना चाहिए। यदि ज्वर शामको या रात्रिको अधिक बढ़ जाता है, तो सूर्यके तापका सेवन कराना हानिकर होता है। सूर्यस्नानकी इच्छा वाले रोगीको पहले शुद्धवायु और कमरेके भीतर आनेवाली मन्द किरणोंमें कुछ दिन रक्खें। फिर जंगलके शुद्धवायु वाले स्थानमें सूर्यस्नान करानेका प्रबन्ध करें। यदि नियमित ३-४ मास तक सूर्यस्नान होता रहे, तो बढ़ा हुआ राज-यक्ष्मा, उरस्तोय, पाण्डु, मृदुास्थि, दुष्टव्रण, प्रतिश्याय आदि दूर हो जाते हैं।

सूचना— सूर्यस्नान वायुमें उष्णता आजानेके पश्चात् नहीं कराया जाता। जबतक वायुमें कुछ शीतलता हो, तबतक ही कराया जाता है।

जिस रोगीको ज्वर ९९ डिग्रीसे अधिक बढ़ जाता है, या रक्तभार वृद्धि हो जाती है, वह सूर्यस्नानका अनधिकारी माना जाता है। इस हेतुसे फुफ्फुस क्षयकी द्वितीय श्रेणी और तृतीय श्रेणी वालेको बहुधा सूर्यस्नान नहीं कराना चाहिये।

रोगीको कोई प्रतिकूल चिह्न बढ़ जाय, तो ४-८ दिन तक सूर्यस्नानको बन्दकर फिरसे शान्तिपूर्वक प्रारम्भ कराना चाहिये। एवं रोगीको कभी ज्वरवेग अधिक हो जाय, तो उस दिन सूर्यस्नान नहीं कराना चाहिये। जहाँ सूर्यकिरणकी सुविधा न हो वहाँपर नीलातीत किरण (Altra-Violet rays) द्वारा चिकित्साकी जाती है।

भोजन—रोगमुक्त होनेपर लघुपौष्टिक पथ्य ३००० केलोरीतक क्रमशः बढ़ावें। क्वचित् ज्वर आ जाता है, तो उस समय ज्वरानुरूप पथ्य-पालन करें। दुग्ध सेवन नियमित करें। अत्यधिक वसा (घृत तैल) हितकर नहीं है। शराब और धूम्रपानका त्याग करें। वज़न बार-बार नियमित करते रहें।

विशिष्ट चिकित्सा

आकुंचन चिकित्सा (Collapse therapy)—इस चिकित्साका मुख्य उद्देश्य फुफ्फुसोंको आराम पहुँचाना है। जब राजयक्ष्मा पीड़ित रोगीके फुफ्फुसों को अन्य उपायोंसे प्राप्य आरामसे भी अधिक आरामकी आवश्यकता हो तब, इस विधिका सहारा लिया जाता है। कभी-कभी जब रोग अत्यन्त बढ़ गया हो और यहाँ तक कि, गह्वर उत्पन्न हो जानेके पश्चात् इस चिकित्साका आश्रय लेनेपर रोगीका स्वास्थ्य सुधर सकता है। और पूर्णस्वास्थ्य भी प्राप्त हो सकता है; परन्तु यह निश्चित है कि, फुफ्फुसमें जितनी विकृति ज़्यादा विस्तृत होगी, उतनी ही रोपण त्वचा (Scar) बड़ी होगी। इसलिये इस उपायका सहारा शीघ्र ले लेना चाहिये; न कि इसे सबसे अन्तमें प्रयुक्त करने योग्य उपाय समझा जाय।

प्रकारभेद—

- अ. कृत्रिम वातभृत् फुफ्फुसावरण (ए. पी. अथवा Artificial Pneumothorax.)
- आ. अनुकोष्ठिका नाड़ीका छेदन या दमन (Evulsion or Crushing of Phrenic Nerve.)
- इ. उरःपञ्जरकी शस्त्रचिकित्सा (Thoracoplasty.)
- ई. शिखरभागकी आकुंचनकारी शस्त्रचिकित्सा (Apicolysis.)

अ. कृत्रिम वातभृत् फुफ्फुसावरण—विरोधि लक्षणोंकी अनुपस्थितिमें कृत्रिम वातभृत् फुफ्फुसावरणका प्रयोग एक पार्श्वमें फुफ्फुसोंके क्षयसे पीड़ित रोगियोंमें निम्न परिस्थितियोंमें करना चाहिये।

वक्तव्य—फुफ्फुसावरणमें वायु भरना (A. P.) यह कभी-कभी हानि पहुँचा देता है। वायुमेंसे जल (या कभी पूय) बनजाता है। जिससे फुफ्फुसावरणप्रदाह

(उरस्तोय) की प्राप्ति होजाती है। वह भय होनेपर भी फुफ्फुसशीर्षपर रोग होनेपर वह क्रिया ६०% में सफल हो जाती है।

अनुकोष्ठिका नाड़ी छेदनसे प्रायः ८-१० मासतक महाप्राचीरा पेशी फुफ्फुसके कार्यमें प्रतिबन्ध करती है, जिससे फुफ्फुसको विश्रान्ति मिलती है। उतने समयमें फुफ्फुस सबल और नीरोगी नहीं बन सका, तो यह अर्धचिकित्सा निष्फल होती है।

उक्त उपचारोंके अतिरिक्त फुफ्फुसका निम्न भाग पीड़ित होनेपर वर्त्तमानमें उद्-र्य्योकलामें वायुभरी जाती है। इसे पी. पी. (Pneumoperitonium) कहते हैं। इसक्रियासे महाप्राचीरा अधिक ऊँची उठती है और रोगी फुफ्फुसपर प्रबल दबाव आता है। जिससे चतस्थान आकुंचित होता है। कुछ दिन तक रोगीको इसक्रियासे घबराहट प्रतीत होती है। फिर सह्य हो जाता है। इस प्रकारसे नीरोगी फुफ्फुसकी अच्छीतरह रक्षा हो जाती है और पीड़ित फुफ्फुसकोभी सहायता मिलजाती है। वर्त्तमान में ए. पी. की अपेक्षा इस पी. पी. क्रियाको अधिक सहायक मान रहे हैं।

जब ऊपर कहे हुए सब उपचार असफल होते हैं, तब पीठकी ओर स्थित ५-७ पसलियोंको काटते हैं। जिससे फुफ्फुस निराधार हो जाता हो फिर श्वसनक्रिया बन्द हो जाती है।

सरकारकी ओरसे शीतलारोग निरोधके समान क्षयरोग प्रतिसन्धार्थ बी. सी. जी. का उपयोग १ वर्षकी आयुवाले (कभी-कभी १०-१० दिन के) शिशुओंपर भी हो रहा है। परिणाम कुछ वर्षोंके पश्चात् प्रतीत होसकेगा।

१. यदि रोग तीव्र पूयमय है, शारीरिक लक्षण और राजयक्ष्माके कीटाणु कफमें विद्यमान होनेपर।

२. अगर फुफ्फुस अंशके ऊपर स्थायी केशमर्दनवत् ध्वनि (Crepitations) सुनाई दें और राजयक्ष्माके कीटाणु कफमें विद्यमान हों।

३. यदि ६ सप्ताहतक पूर्ण विश्राम करनेपर भी रोग बढ़ रहा हो और स्वास्थ्य सुधारके कोई लक्षण न हों तो।

४. आर्थिक, मानसिक या अन्य कारणोंसे जो रोगी साधारण लम्बी चिकित्सा न करा सके, रोगीका जीवन अत्यन्त कार्यशील हो, उसका आकुंचन चिकित्सा करवेने पर पुनः आक्रमणका भय कम हो जाता है।

५. कुछ रोगियोंमें गह्वरके आकुंचित करनेके लिये। परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि, गह्वर-की उपस्थिति सर्वदा आकुंचन चिकित्साकी आवश्यकता प्रगट नहीं करती।

६. तीव्र और पुनरावर्त्तक रक्तमय कफस्राव (Haemoptysis) विद्यमान होतो।

७. सेन्द्रिय विष प्रकोपरूप (Toxaemia) उपद्रव और स्वरयन्त्रका क्षय (Laryngitis tuberculous) भी इस चिकित्सासे अच्छे हो जाते हैं।

दोनों पार्श्वके फुफ्फुस क्षयसे पीड़ित होनेपर भी कृत्रिम वातभृत् फुफ्फुसावरण का प्रयोग करनेके लिये लक्षण समान ही हैं, और यदि अत्यधिक पीड़ित फुफ्फुसकी आकुंचन चिकित्सा की जाय तो, प्रायः दूसरेका सुधार होता है; परन्तु इस अवस्थामें यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि, एक फुफ्फुसका आकुंचन कर दिया जाय तो दूसरे पीड़ित पार्श्वके फुफ्फुसकी भी आंशिक आकुंचन चिकित्सा या अन्य किसी प्रकार की चिकित्साकी आवश्यकता हो सकती है। ताकि उसमें भी रोग न बढ़सके।

दोनों पार्श्वोंके पीड़ित होनेपर कृत्रिम वातभृत फुफ्फुसावरणका प्रयोग करनेका निश्चय करनेके लिये कुछ स्वस्थ फुफ्फुसकी दृढ़ताकी मात्रा, उसके विस्तारकी अपेक्षा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

सूचना

१. अगर फुफ्फुसमें उत्पन्न व्रणोंका रोपणसाधारण काय चिकित्सा द्वारा होरहा हो और रोगीकी परिस्थति आर्थिक, मानसिक आदि ऐसी हो कि, वह लम्बे समयतक पूर्ण विश्रान्ति ले सके तो इस आकुंचन चिकित्साका आश्रय न लेवें।

२. रोगके अत्यधिक बढ़जाने पर अन्तिम उपायके रूपमें कृत्रिम वातभृत् फुफ्फुसावरणका प्रयोग न करें।

३. अगर अत्यधिक मूत्रोत्पत्ति हो गई हो, तो उरःपञ्जरकी शस्त्र चिकित्सा ज्यादा लाभदायक है। उरःपञ्जरकी अच्छी शस्त्रचिकित्सा खराब कृत्रिम वातभृत्से कई गुनी अच्छी है। यदि गह्वर विस्तृत हो रहे या ज्यादा संलग्न फुफ्फुसावरण हो और तीव्ररोग से पीड़ित फुफ्फुसका आंकुचन न हो और संलग्नताके कारण योग्य आकुंचन होना असंभवित हो, आंशिक कृत्रिम वातभृत् फुफ्फुसावरण का त्याग करनाही श्रेष्ठ माना जायगा। इतना होने पर भी आकुंचन चिकित्साकी परम आवश्यकता समझी जाय, तो उरःपञ्जरकी शस्त्रचिकित्सा ही ज्यादा श्रेष्ठ मानी जायगी।

४. जिन रोगियोंकी आयु ५० वर्ष से ज्यादा हो, उनके लिये साधारण चिकित्सा ही श्रेष्ठ है।

५. यदि कोई मध्यमें बाधा उपस्थित करनेवाला गम्भीररोग विद्यमान हो, जैसे तमकश्वास और जीर्ण श्वासप्रणाली प्रदाह, तो इस चिकित्साका अवलम्बन न लेवें, किन्तु मधुमेहसे इसमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित नहीं होती। अनेक रोगी इन्स्यूलीन और कृत्रिम वातभृत् फुफ्फुसावरण का एक साथ प्रयोग करते हुये अच्छी अवस्थामें रक्खे गये हैं।

वायु की मात्रा—जब फुफ्फुसावरणमें सूचिका प्रवेश करायी जाती है, तब मेनोमीटरका संदोलन दबावरहित (Negative pressure) अर्थात् सामान्यतः १० से ५-मिलीमीटर जलके समान होता है। फिर कीटाणुरहित वायु २०० से ३०० सी० सी० दबाव जितनी प्रवेश करावें। प्रथम सप्ताहमें लगभग ३ बार पुनरावृत्ति

करें। वायु प्रवेशके अन्तमें प्रत्येक समय फुफ्फुसावरणके भीतरका दबाव लगभग १ सेण्टीमीटर जितना बढ़ना चाहिये। फिर भीतरकी लम्बाई १, २ और ४ सप्ताहतक अन्तःक्षेपणा के बीचके समयमें उन्नतिशील होनी चाहिये। प्रत्येक अन्तः क्षेपणामें वायुका आयतन (घनफल) लगभग ५०० सी० सी० होना चाहिये। प्रत्येक अन्तःक्षेपणामें प्रारम्भिक दबाव से ४ सेण्टीमीटर दबाव वृद्धि होनी चाहिये। ३ मास के पश्चात् दबाव लगभग×२० सेण्टीमीटर जल जितना होजाना चाहिये। जो पृष्ठवंशके विरुद्ध फुफ्फुसाकुंचन के लिये पर्याप्त माना जाता है। वातभृत फुफ्फुसावरणके शारीरिक चिह्नोंकी जाँच करते हुये उत्तर कालीन अन्तःक्षेपणोंके बीचमें लगभग ६ मास के भीतर +२५ सेण्टीमीटरसे आगे नहीं बढ़ना चाहिये ।

इस आकुंचन चिकित्सा (Collapse therapy) का परिणाम पसन्द किये रोगियोंमें अति सफल आता है। वायुभरनेकी क्रिया ३ वर्ष तक चालू रहनी चाहिये। इसके पश्चात् संतोषप्रद स्थिति हो तो आकुंचनको दूर करने की अनुमति दे देनी चाहिये । प्रसारणके पश्चात् सर्वदा फुफ्फुसावरणकी संलग्नता होती है और फिर आकुंचनकी कदापि पुनरावृत्ति नहीं हो सकती ।

संलग्नतासे प्रभावशाली आकुंचन होनेमें प्रतिबन्ध होता है ऐसी अवस्थामें विद्युत् दाहकयन्त्र (Electrocautery) द्वारा फुफ्फुसावरण दर्शकयन्त्र (Thoracoscope) मेंसे जलाकर काट देवें ।

सूचना—फुफ्फुसावरणके आघातसे मृत्यु हो जानेकी भीति रहती है। क्वचित् फुफ्फुसावरण पूर्णांशमें चेतनारहित हो जानेका भी भय रहता है।

आ. अनुकोष्ठिका नाड़ीका भेदन या दमन—जब कृत्रिम वातभृत फुफ्फुसावरण अव्यावहारिक हो जाता है, तब अनुकोष्ठिका नाड़ी (Phrenic nerve) पीड़ित हो जाती है। पक्षवध हुई महाप्राचीरापेशी ऊपर उठती है, इसी हेतुसे फुफ्फुस-तलमें आकुंचन तथा शिखर भागमें कुछ शिथिलता उत्पन्न हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप विवरोंके बन्द होनेमें वृद्धि होती है। नाड़ीका दमन होने पर सामयिक पक्षवध ६ मासके लिये हो जाता है। (यह उरःपंजरकी शस्त्रचिकित्साके पूर्व कभी लाभदायक होता है।

इ. उरःपञ्जरकी दोषहर शस्त्रचिकित्सा (Thoracoplasty)—यदि फुफ्फुसावरणमें कृत्रिम वायु भरने योग्य रोगी न हो, तो फिर ऐसे कितनेक योग्य रोगियोंके लिये शस्त्र चिकित्साका विचार करना चाहिये । इस प्रकारमें फुफ्फुसका आजीवन आकुंचन रह जाता है।

ई. शिखर भागकी आकुंचनकारी शस्त्रचिकित्सा (Apicolysis)—इस चिकित्सामें गुहाकी दीवारका फुफ्फुसावरण छातीकी दीवारसे पृथक् किया जाता है

और स्थानिक पीड़ितप्रदेशमें मोम या ऐसे किसी इतर द्रव्यका प्रवेशकराके अथवा विशेष प्रकारकी वातभृत फुफ्फुसावरण क्रिया द्वारा आकुंचन कराया जाता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना

यह रोग चाहे कितने स्वल्प परिमाणमें हो, फिर भी पूर्णस्वास्थ्यकी प्राप्तिके लिये २-३ वर्ष तक पथ्यपालनसह चिकित्सा करते रहना चाहिये। अनेक बार कीटाणु दब जाते हैं और बाहरसे दोष नष्ट होगया, ऐसा भास होता है। फिर रोगी आहार-विहारमें दुर्लक्ष्य कर देता है और औषधिका त्याग कर देता है। परिणाममें पुनः उलटकर रोग आक्रमण कर देता है; पश्चात् रोग सम्हल नहीं सकता। इस हेतुसे चिकित्सक और रोगीको चाहिये कि, वे पहलेसे ही आर्थिक स्थिति, सम्बन्ध, स्थान, बाह्य अनुकूलता, रोगीकी पथ्यपालनमें दृढ़ता, श्रद्धा आदिका विचार करलें। यदि निर्धनता या प्रतिकूलताके हेतुसे बीचमें ही चिकित्साका त्याग किया जाता है, तो पहले किया हुआ सब वृथा हो जाता है।

राजयक्ष्मा रोगमें ज्वरका अनुबन्ध न हो, रोगी उपचार करने योग्य बलवान्, दीप्ताग्निवाला हो, देह अति कृश न हुई हो तथा रोगी बलवान्, धैर्यवान् और मनोबल युक्त हो; तो ही चिकित्सा करनी चाहिये।

जिस हेतुसे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति हुई, उस हेतुको जानकर उसे अवश्य दूर करना चाहिये। जैसे एक मनुष्यको अति व्यवायसे शोष रोग हुआ है, तो उसे ब्रह्मचर्य का पालन आग्रहपूर्वक करना चाहिये और चिकित्सा विशेषतः शुक्रवर्द्धक करनी चाहिये। अपथ्य सेवनसे रोग उत्पन्न हुआ है, तो सत्वर कोष्ठशुद्धि करनी चाहिये और अपथ्य आहारका बिल्कुल त्याग करना चाहिये। किसी रोगके पश्चात् उपद्रव रूपसे क्षय उत्पन्न हुआ हो, शोषके साथ मूल रोगकी शामक चिकित्सा करनी चाहिये।

शोष रोगीकी चिकित्सा स्थिरादि वर्ग (विदारीगन्धादिगण) से सिद्ध किये हुए बकरी या भेड़के घी द्वारा करनी चाहिये।

विदारीगन्धादिगण — विदारीगन्ध (शालपर्णी), विदारीकन्द, सहदेवी, गंगेरन, गोखरू, प्रश्नपर्णी, शतावरी, श्वेत सारिवा, कृष्णसारिवा, जीवक, ऋषभक, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, पुनर्नवा, एरण्डमूल, हंसपदी (हंसराज) वृश्चिकाली (मेषशृंगी भेद) और कौंच, इन २० औषधियोंको विदारीगन्धादिगण कहते हैं। इस गणकी औषधियाँ पित्त और वातनाशक हैं। शोष, गुल्म, अंगमर्द, ऊर्ध्वश्वास और कासको नष्ट करती हैं।

रोगीको स्निग्ध कर ऊर्ध्व और अधोभागका शोधन करें। फिर मृदु आस्थापन बस्ति देवें और मृदु शिरोविरेचन करावें। इस वचनमें भगवान् धन्वन्तरिजी का यह भी आशय रहा है कि यदि रोगी रूक्ष या दुर्बल है, तो उसे संशमन

औषधि नहीं देनी चाहिये। इस तरह वाग्भट्टाचार्यने भी कहा है कि, रोगी बलवान् बहुदोष वाला है, तो ही स्नेहन और स्वेदन करा फिर ऊपर नीचेके मार्गका शोधन कराना चाहिये। इस बातको भी ध्यान में रक्खें कि, देहमें कृशता न आ जाय। इसलिये शक्तिका विचार कर मृदु वमन और मृदु विरेचन देना चाहिये।

वमन करानेके लिये मैनफलके चूर्णको दूध या मधुर फलोंके रस या मांसरसके साथ देना चाहिये; अथवा घृतयुक्त यवागूमें मैनफल आदि औषधि मिलाकर देनी चाहिये।

विरेचनके लिये सफेद या काली निसोत अथवा अमलतासकी फलीके गर्भ को मिश्री, शहद और घीके साथ देवें; अथवा दूध, इतर संतर्पण (पौष्टिक) पदार्थ, अंगूर, विदारीकंद और काली मुनक्का, इनमेंसे किसी एकके रस या मांसरसके साथ विरेचन औषधि देवें।

शोधन होने पर हृदय को प्रिय और सत्वर पचन हो सके ऐसे वातहर आहार, जौ, गेहूँ, चावल आदिको मांसरसके साथ सेवन कराना चाहिये। फिर जठराग्नि बढ़ने और उपद्रव नष्ट होने पर बृंहण (मांसवर्द्धक, बलदायक) भोजन देते रहें।

इस यक्ष्मा रोगमें स्वास्थ्यकी उन्नतिके निमित्त विविध औषधियाँ व्यवहारमें लाई जाती हैं। इन सब औषधियों द्वारा पचनयन्त्रकी क्रिया जितनी सबल बनती जाती है उतनी ही चिकित्सा फलप्रद होती जाती है। अतः पचनेन्द्रिय संस्थानपर दृष्टि रखकर चिकित्सा करना, यह चिकित्सकका मुख्य कर्त्तव्य है। पचन शक्ति पर दुर्लक्ष्य करके सुवर्ण, लोहभस्म आदि कीटाणुनाशक, रक्तवर्द्धक और बृंहण औषधि देने पर भी यथेष्ट लाभ नहीं हो सकता। बलकारक औषधि पचनक्रिया सबल बनने पर सत्वर फल प्रदान कर सकती है।

यदि आमाशयकी श्लैष्मिक-कलाका तीव्र प्रदाह (Gastric Catarrh) उत्पन्न हो जाय और उस हेतुसे जिह्वा उज्ज्वल रक्तवर्ण कांटेदार और फटी-सी हो जाय, तो प्रवालभस्म या मौक्तिक भस्म, सितोपलादि चूर्ण और गिलोयसत्वको घृत या शहद में मिलाकर प्रातः-सायं भोजनके एक घण्टा पहले देना चाहिये। डॉक्टरीमें बिस्मथ कार्बोनेट (Bismuth Carbonate) १० से २० ग्रेन तक भोजनके आध घण्टे पहले दिनमें २ बार देते रहते हैं।

क्षुधामान्द्य और उदरवात रहनेपर द्राक्षारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट, यवानीखाण्डव चूर्ण या तालीसाद्य चूर्ण (आगे इसी प्रकरणमें लिखा जायगा) को प्रयोगमें लाना चाहिये।

जिह्वा पर मल उत्पन्न हो जाय, तो मल-शोधनार्थ मृदु सारक औषधि सूक्ष्म मात्रामें देनी चाहिये। उदरमें दूषित मल रहना और अतिसार हो जाना, इन दोनोंसे हानि पहुँचती है। दूषित मलसे रक्तमें विष मिल जाता है; अतिसारसे शक्तिका ह्रास

हो जाता है। इन विकारों पर द्राक्षारिष्ट, च्यवनप्राशावलेह, हरड़का मुरब्बा, आरग्वधादि क्वाथ आदिका उपयोग किया जाता है।

यदि उबाक या वमन रहती है, तो एलादि वटी, एलादि चूर्ण या यवानीखाण्डव चूर्ण दिया जाता है। दुर्दमन वमन होने पर शुभ्राभस्म और फिटकरी उपकारक मानी गई है।

अति त्रासदायक शुष्कक्षयकास होने पर शृंगभस्म, अभ्रकभस्म, प्रवाल पिष्टी और सितोपलादि चूर्ण, चारोंको मिलाकर शर्बत अनारके साथ देवें। कफ अधिक होने पर सितोपलादि अवलेह देवें। रक्तनिष्ठीवन वालोंको वासास्वरस अनुपान रूपसे देवें। इतर रोगियोंको बकरीका दूध अनुपान रूपसे देवें। डॉक्टरीमें क्षयकास पर कॉडलिवर ऑइल (मच्छीका तैल) को प्रधान औषधि माना है। मात्रा २-२ ड्राम भोजन कर लेने पर तुरन्त दूधमें मिलाकर दिया जाता है। जिन रोगियों को आमाशय विकृति के हेतुसे कॉडलिवर तैल सहन न हो, उसे इमलशन बनाकर दिया जाता है। कभी-कभी कॉडलिवर तैलसे हानि पहुँचती है। इसमें दुर्गन्ध आदिके हेतुसे अरुचि, क्षुधामान्द्य, अतिसार आदि हो जाते हैं। ऐसा होने पर तत्काल इसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिये।

यक्ष्मा रोगकी प्रथमावस्थामें रक्तनिष्ठीवन होने लगे, तो रोगीको पूर्ण विश्राम लेना चाहिये। यदि रक्त निकलना बन्द हो जाय तो भी शय्याका त्याग कुछ दिनोंके बाद ही करना चाहिये। रोगीके कमरेमें प्रकाश और शुद्ध प्रचुर वायु आनेके लिये खिड़कियोंको खुली रखनी चहिये। दोनों पैरोंके तलोंको उष्ण रखने के लिये गरम मोजा पहना रक्खें या गरम कपड़े से ढका रक्खें। भोजन तरल, लघु, पौष्टिक और शीतल देना चाहिये। गरम दूध, गरम चाय, गरम जल, शराब आदि उत्तेजक पदार्थ; बीड़ी, तमाखू और सिगरेट आदि का बिलकुल त्याग करना चाहिये। बर्फके कुछ टुकड़े खाने को दे सकते हैं। इस अवस्थामें प्रवाल, मौक्तिक, तृणकान्तमणि पिष्टी और वासा आदि औषधियाँ अतिहितकर हैं। आवश्यकता पर उदरशुद्धि और उष्णता शमनार्थ नमक मिले हुए पंचसकार चूर्णका प्रयोग करना चाहिये।

आक्रान्त स्थान पर ग्लास लगाने की (Dry cupping) क्रिया हितकर रहती है। विधि चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम-खण्डके पृष्ठ ११२ में लिखी है।

प्रथमावस्थामें क्षय कास और तीव्र ज्वर हों, तो रोगाक्रान्त फुफ्फुसपर राई या सरसोंकी पुल्टिस बाँधना, या सेक करना हितकर है।

क्षयकासग्रसित रोगीको जलवायु परिवर्त्तन करा देना अति उपकारक माना गया है। किसी सेनेटोरियममें रहनेका प्रबन्ध हो, तो विशेष लाभदायक है। अति शीत और अति उष्ण स्थान इस रोगमें प्रतिकूल रहते हैं। अनेक बार जन्म-भूमिका शुद्ध

जलवायु ही विशेष अनुकूल रहता है । बाहर जाने पर प्रकृतिमें विकृति हो जाती है ।

अत्यन्त ज्वर, फुफ्फुसस्थ पीड़ाका अति विस्तार, अतिशय कृशता, वायुकोष स्फीति (Emphysema) और पूयभृत फुफ्फुसावरण (Empyema) आदि उपद्रव उपस्थित होने पर स्थानान्तर करना युक्तिसंगत नहीं माना जाता ।

यथार्थमें ऐसे स्थानपर निवास करना चाहिये कि, जिस स्थानका जलवायु रोगकी प्रकृतिको अनुकूल हो; अर्थात् ज्वरका ह्रास, क्षतमें शुष्कता, कफ और निशास्वेदका निवारण, रोगोत्पादक सूक्ष्म कीटाणुओं (Microbes) का नाश और पचनक्रियाकी शुद्धि आदि कार्योंमें सहायक बनें ।

यक्ष्मा रोगमें फुफ्फुससे जितना अधिक कफ बाहर निकाल सकें, उतना निकालनेका प्रयत्न करना चाहिये । कफ अधिकांशमें रह जानेसे नूतन-नूतन अंशको रोगाक्रान्त करते जाते हैं । कफ निकालनेके लिये कास रहना आवश्यक है; परन्तु कासका अतियोग होकर निद्रामें विघ्न न हो, इस बातको भी सम्हालना चाहिये । वासाक्षार, अभ्रक, शृङ्ग आदि कफनाशक और कासहर औषधियाँ अति लाभदायक हैं । निद्रालाने के लिये द्राक्षारिष्ट निर्दोष और उत्तम औषधि है ।

डॉक्टरी मत अनुसार रात्रिको निद्राका त्रास न होने और शान्त निद्रा लानेके लिये अफीम मिश्रित औषधि देते हैं । कष्टदायक होनेपर रेस्पिरेटर (Respirator Inhaler) यन्त्रमें औषधि भर मुँह पर बाँध बलपूर्वक श्वासग्रहण कराते हैं । यन्त्र में रुई रख ऊपर ३ भाग गोयाकोल और १ भाग क्लोरोफार्ममें मिला, उसकी कुछ बूंद डालकर प्रयोगमें लानेसे सत्वर लाभ पहुँचता है । इस यन्त्रके प्रयोगसे कफ सरलता पूर्वक बाहर निकल कर कम हो जाता है । इस यन्त्रका व्यवहार बार-बार करते रहना चाहिये ।

यदि कष्टदायक कासके हेतुसे वमन हो जाती है, तो प्रवालपिष्टी, कामदुधा रस, गिलोय सत्व आदिको प्रयोगमें लाना चाहिये । अति त्रास होने पर फिटकरी या शुभ्रा-भस्म देना चाहिये; अथवा आमाशय पर स्फोट (फ्लुड ब्लिस्टर) उठाना चाहिये । प्रयोगविधि चि० त० प्र० प्रथम-खण्ड पृ० १२१ में दी गई है ।

रात्रिको प्रस्वेद आना, यह राजयक्ष्मा प्रधान लक्षण है । इस हेतुसे निद्रामें बाधा पहुँचती है और रोगी दिन-प्रति-दिन कृश होता जाता है । अतः इसके लिये लक्ष्य रखकर प्रबन्ध करना चाहिए । अनेक रोगियोंको रात्रिको बलदायक भोजन देने से प्रस्वेद कम आता है । दूध और मुर्गेका अण्डा उत्कृष्ट भोजन माना जाता है । आवश्यकतापर औषधिका प्रयोग करना चाहिए । शिलाजीत मिश्रित अभ्रकभस्म, प्रवालपिष्टी, रुद्रवन्ती, कनकासव आदि हितकर औषधियाँ हैं ।

यक्ष्मामें फुफ्फुसके नूतन अंश रोगग्रस्त होने और फुफ्फुसका दृढ़ अंश नष्ट होकर विषका शोषण होने, इन दोनों हेतुओंसे ज्वर उत्पन्न होता है। पहले हेतुसे उत्पन्न ज्वर अविराम रहता है, और द्वितीय हेतु जनित ज्वर सविराम होता है; अर्थात् विष जल जाने पर शमन हो जाता है। अनेक बार उभय कारण एकीभूत होकर ज्वर की उत्पत्ति करते हैं। फिर भी इनमें एक कारण मुख्य और दूसरा गौण होता है।

ज्वर उत्पादनार्थ दोनोंमें से कोई भी एक हो या दोनों मिले हुए हों, रोगी को ज्वर कालमें सम्पूर्ण विश्राम लेना चाहिए; और सतत ज्वर के शमनार्थ त्रैलोक्यचिन्तामणि, जयमङ्गल, चतुर्मुख, पञ्चामृत रस, अभ्रक मिश्रित लक्ष्मीविलास, प्रवालपिष्टी, सुदर्शन चूर्ण आदिको प्रयोगमें लाना चाहिए।

कितनेक चिकित्सक यक्ष्माकी चिकित्सामें सोमल (Arsenic) विशेष रूपसे देते रहते हैं। अत्यन्त दुर्बलता, शीघ्र शक्तिपात, जीर्णज्वर, बार-बार ज्वर अधिक बढ़ जाना, अति प्यास, उबाक, आमाशयप्रदाह, अरुचि, अतिसार, उदासीनता, अति श्वासकृच्छ्रता, फुफ्फुसोंमें तीक्ष्ण वेदना, हृत्स्पंदन वृद्धि आदि लक्षण प्रकाशित होने पर स्वल्प मात्रामें मल्लभस्म या मल्लसिंदूर देनेसे लाभ पहुँचता है।

डॉक्टरीमें क्षय ज्वरमें क्विनाइनका प्रयोग करते हैं; परन्तु ज्वर न होनेपर क्विनाइन देना चाहिये। क्विनाइन मस्तिष्क, वृक्क और आमाशयमें उग्रता लाता है; जिससे निद्रा नहीं आती, किसीको भली भाँति मूत्र शुद्धि नहीं होती और आमाशय प्रदाह हो जाता है। अतः इस बातका विचार करके व्यवहार करना चाहिये।

यद्यपि चिकित्सा करते रहने पर भी बहुधा ज्वरका शमन नहीं होता, तथापि रुधिराभिसरण संस्थान और वातवहा नाड़ियों को सहायता पहुँचती है। अतः ज्वरशामक चिकित्साको व्यर्थमानकर छोड़ नहीं देना चाहिये।

शोष रोगीकी शारीरिक शक्तिका हो सके उतने अंशमें संरक्षण करना चाहिये। इसके लिये मांसाहारी पशु-पक्षियोंका मांस हितकर माना गया है।

महर्षि आत्रेय शोष रोगीके लिये कहते हैं कि—

"मांसेनोपचिताङ्गानां मांसं मांसकरं परम्।"

मांसहारी जीवोंका मांस मांसवृद्धिके अर्थ सर्वोत्तम है। इस तरह श्री वाग्भट्टाचार्य लिखते हैं कि—

"आजं क्षीरं घृतं मांसं क्रव्यान्मांसं च शोषजित्।"

बकरीका दूध, घी, मक्खन और मांस तथा मांसभक्षी पशु-पक्षियोंका मांस, ये सब राजयक्ष्मा रोगके जीतने वाले हैं।

भगवान् धन्वन्तरि ने भी निम्न वचनसे बकरीके दूधको विशेष हितकर दर्शाया है।

गव्य तुल्य गुणं त्वाजं विशेषाच्छोषिणां हितम्।
दीपनं लघु संग्राहि श्वासकासास्र पित्तनुत्॥

क्षय पीड़ितों के लिये मक्खन भी अति लाभप्रद है। भगवान् धन्वन्तरिने ताज़े मक्खनको हल्का, मृदुता लानेवाला, मधुर, कषाय, किञ्चित् अम्ल, शीतवीर्य, बुद्धिवर्द्धक, दीपन, हृद्य, ग्राही, वातहर, पित्तशामक, वृष्य और अविदाही कहा है तथा यक्ष्मा, कास, व्रण, शोष, अर्श और अर्दित का नाशक माना है।

डॉक्टरीमें बलके संरक्षणार्थ मछलीका तैल देते हैं। एवं वर्तमानमें अमरिकाके भीतर कच्चे नारियल की गिरीका दूध देने लगे हैं। इस दूधको पुष्टिकर और सरलतासे पचने वाला माना है। आयुर्वेदके मतानुसार कच्चे नारियल की गिरी शीतवीर्य, मधुर, हृदयके लिये हितावह, बस्तिशोधन, बल्य, मांसवर्द्धक और पित्तहर है।

रोगीकी देहको भीतर और बाहरसे शुद्ध रक्खें। स्नान योग्य रोगियोंको स्नान करावें या गरम जलमें वस्त्र भिगो देहको पोंछकर नित्यप्रति वस्त्र बदल डालें। मैले वस्त्रों को रोज़ सोडा या साबुन मिले हुए उबलते जलसे धोकर धूपमें सुखावें। प्रातः काल और सायंकाल दांतोंको दन्तमंजन लगाकर साफ करावें। दन्तमंजन लगाने पर कसैले जल (मौलसिरी, आम, जामुन या बबूलकी छालका क्वाथ या सोहागा मिले जल) से कुल्ले करावें।

अति व्यवाय (मैथुन) से राजयक्ष्माकी उत्पत्ति हुई हो, तो स्निग्ध, वातशामक, बृंहण और दीपन चिकित्सा ही करनी चाहिये। बकरीका दूध, घी, मांसरस, मधुर पदार्थ, बृंहणीय और जीवनीयगणकी औषधियाँ हितकर मानी जाती हैं।

उरःक्षतकी चिकित्सा स्निग्ध, दीपन, मधुर और शीतल औषधियोंसे करनी चाहिये।

शोक, शोष वालोंके लिये दीपन, लघु, स्निग्ध, मधुर और शीतल गुणवाला भोजन, दूध, मनको प्रसन्न रखने योग्य वार्त्तालाप और क्रिया तथा धैर्य इत्यादि उपचार हितकारक माने गये हैं।

अध्वशोषीको सुन्दर आसन या गद्दी पर बैठावें। भोजनके पहले कोमल शय्यापर दिनमें भी सुलावें; शीतल, मधुर और बृंहण चिकित्सा करें; और मांसरस आदि पौष्टिक भोजन देवें।

व्यायामशोषीके लिये क्षतक्षयमें कहे हुए हितकारक, शीतल, जीवनीय, स्निग्ध और कफवर्द्धक उपचार करें; तथा किञ्चित् अम्ल या अम्लतारहित यूष और मांसरस आदिका भोजन देवें।

मांसभक्षक रोगियोंको मांसके साथ अनुपान रूपसे शराब, प्रसन्ना, वारुणी, शीधु, अरिष्ट, आसव या मधु, इनमेंसे जो प्रकृतिके अधिक अनुकूल हो, वह स्वल्प मात्रामें देते रहना चाहिए।

मद्यमें तीक्ष्ण, उष्ण, विशद (फैलने वाला) और सूक्ष्म गुण होनेसे वह नाड़ियोंके मुखमें तत्काल प्रवेश कर जाता है; और नाड़ियोंके भीतर स्थित कफ आदि प्रतिबन्धको दूर कर मुखों को खोल देता है। इस हेतुसे सातों धातुएँ पुष्ट होती हैं; और शोष रोग शमन हो जाता है।

परन्तु रोगीको ब्रांडी आदि तीक्ष्ण दाहक शराब नहीं देनी चाहिए। वर्तमानमें विचारवान् नव्य चिकित्सकोंने भी तेज़ शराबका घोर निषेध किया है। शराब न लेनेवालोंको यन्त्रसे खींचा हुआ द्राक्षासव देवें; अथवा इतर सामान्य रीतिसे ज़मीनमें गाड़ कर बनाया हुआ द्राक्षारिष्ट ५-५ तोले भोजनके बाद दिनमें दो समय देते रहें।

मांस और मांसरसके साथ घीको सिद्ध करें या १० गुने दूधके साथ घीको सिद्ध कर शहदके साथ सेवन करावें; अथवा दशमूल क्वाथ और मधुर पदार्थोंके कल्कके साथ घीको सिद्ध करें। सिद्ध घृतको शहद मिलाकर देते रहनेसे क्षयकी निवृत्तिमें सहायता मिल जाती है।

भगवान् पुनर्वसु आत्रेय लिखते हैं कि—

क्षीरमांसरसोपेतं घृतं शोषहरं परम्।

दूध और मांसरससह सिद्ध घृतका सेवन श्रेष्ठ शोषहर है। नाड़ियोंके शोधनके लिये पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ और जवाखार, इन ६ औषधियोंका कल्क, कल्कसे ४ गुना घी और घीसे ४ गुना दूध मिला यथाविधि घृत सिद्ध करके सेवन करानेसे नाड़ियोंमें रहा हुआ कफ दोष सत्वर दूर हो जाता है।

शोष रोगके निवारणार्थ भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि—

अजा-शकृन्मूत्र-पयो-घृतासृङ्मांसालयानि प्रतिसेवमानः।
स्नानादि-नानाविधिना जहाति मासादशेषं नियमेन शोषम्॥

बकरीकी मेंगनीका उपयोग उबटन रूपसे करें, फिर बकरियों के मूत्रसे स्नान करें। पीनेके जलमें बकरीका मूत्र मिला लेवें। बकरियोंके साथमें निवास, भोजनमें बकरेका मांसरस, बकरेका रुधिर, बकरीका घी और बकरीका दूध लेवें। मांसरस आदि भोजन मेंगनीकी ही अग्नि पर सिद्ध करें। इस तरह बकरा-बकरीके पदार्थोंका उपयोग करनेसे क्षय रोगके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

इतर आचार्योंने भी लिखा है कि—

छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पि सशर्करम्।
छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत्॥

यक्ष्मारोगियोंको चाहिए कि, बकरेका मांस, बकरीका दूध, बकरीका घी और मिश्रीका सेवन करें; और बकरियोंकी सेवा तथा बकरियोंके बीच शयन करते रहें।

प्रश्न होता है कि, बकरा-बकरीको शास्त्रकारोंने इतना महत्त्व क्यों दिया? इसका प्रत्युत्तर आधुनिक विज्ञान देता है कि, संसारके सब प्राणियों पर क्षय रोगके कीटाणु

आक्रमण करते हैं; केवल बकरे और खरगोशकी जातिपर कीटाणुओंका आक्रमण नहीं होता।

इस छागमांसादि प्रयोगमें 'सशर्करम्' इस शब्दके स्थानपर किसी आचार्यने 'स नागरम्' पाठ भी लिखा है। अर्थात् दूधके साथ सोंठ मिलाकर सेवन कराना चाहिये।

इस प्रयोगके अतिरिक्त इतर सामान्य प्रयोग भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि—

रसोनयोगं विधिवत् क्षयार्त्तः क्षीरेण वा नागबलाप्रयोगम्।
सेवेत वा मागधिकाविधानं तथोपयोगं जतुनोऽश्मजस्य॥

क्षयरोगीको विधिवत् लहशुनका सेवन करावें या दूधके साथ नागबला (गंगेरन) देवें; अर्थात् दूध जलमें नागबलाको मिला दुग्धावशेष क्वाथ करके देवें; अथवा वर्धमान पिप्पली प्रयोग या शिलाजीतका सेवन करावें।

लहशुन—लहशुनको संस्कृतमें रसोन कहते हैं। 'रसेनैकेनोनः रसोनः' अर्थात् लहशुनमें षट्रसोंमें से एक अम्लरसकी कमी है; शेष ५ रस हैं। इसमें स्निग्ध, तीक्ष्ण, उष्ण, चरपरा, पिच्छिल, गुरु, रस, मधुर, बलदायक, वीर्यवर्द्धक, मेधा (बुद्धि), स्वर और वर्णको हितकर, चक्षुष्य तथा टूटी हुई अस्थिसंधियोंको जोड़ना आदि गुण वर्त्तमान हैं। यह हृद्रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, विबन्ध (कब्ज़), गुल्म, अरुचि, कास, शोषरोग, अर्श, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, कृमि, वातरोग, श्वास और कफ प्रकोपको दूर करता है। (सु० सं० सूत्रस्थान अ० ४६)

लहशुन सततज्वर आदि विषमज्वरोंमें कीटाणुओंका नाशकर ज्वरका उपशम कराता है। दद्रुपर रगड़नेसे नूतन दद्रुरोगके कीटाणु नष्ट होते हैं। इसी तरह पामा रोगीकी औषधियोंमें लहशुनका रस मिलानेसे कीटाणुओंका सत्वर विनाश होता है।

इनके अतिरिक्त कर्णशूल, बधिरता, आघातजन्य व्रण, कटिशूल, गृध्रसी आदि वातरोग, आमवात, प्रतिश्याय, श्वास रोग, उदरशूल, आध्मान, अजीर्ण, विसूचिका आदि रोगोंपर आयुर्वेदने लहशनका उपयोग विविध औषधियोंमें मिलाने या भावना देनेके लिये किया है।

इङ्गलैण्डके सुप्रसिद्ध डॉक्टर मिंचिन (Minchin) ने आन्त्रिक ज्वर, प्रलापक ज्वर (Typhus) और कण्ठरोहिणी (Diphtheria) में रोगनिरोधक चिकित्सा रूपसे लहशुनके उपयोगको अच्छा माना है।

इन व्याधियोंमेंसे आन्त्रिक ज्वर और प्रलापक ज्वरपर लहशुनका स्वरस (Luccus Alliisativi) १-१ ड्राम ४-४ घण्टेपर शर्बत अनार या मांसके शोर्वेके साथ देते रहनेसे आंतोंमें स्थित हुए कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

कण्ठरोहिणीमें बार-बार (१-१ घण्टेपर) लहशनकी एक-एक कलीको चबाते

रहनेसे दूषित आवरण दूर होकर सत्वर रोगी स्वस्थ हो जाता है। रोगका उपशम होनेपर भी एक दो सप्ताह तक प्रतिदिन ३-४ तोले लहशुन खाते रहना चाहिए।

रक्तभार वृद्धि (High Blood Pressure) को दूर करनेमें लहशुन अत्युत्तम औषधि मानी गई है। रोज़ सुबह २॥-२॥ तोले लहशुन चटनीकी तरह पीस, सैंधा नमक, ज़ीरा और सरसोंका तैल मिलाकर खिलानेसे रक्तभारवृद्धिका ह्रास होनेके अनेक उदाहरण मिले हैं। एवं यह लहशुन क्षयकीटाणुओंकी वृद्धिको भी रोक देता है।

लहशुन खानेवालेके लिये मद्य, मांस और अम्ल पदार्थ (मट्ठा आदि) हितकर हैं। दूध अनुकूल नहीं रहता। यदि मद्य-मांसका सेवन न करें, तो अधिक लाभ नहीं पहुँचा सकता, ऐसा भावप्रकाशकारका मत है।

प्राचीन (नावनीतकम्) ग्रन्थमें लहशुन कल्प लिखा है; उसमें यक्ष्मापीड़ित रोगीके लिये लहशुनको घृत और दुग्धके साथ सेवन करने का लिखा है। इनके अतिरिक्त इस घातक रोग पर निघण्टु आदर्शकार ने "प्रेक्टीकल मेडीसिन" फेब्रुआरी १०२१ के लेख की नकल की है; जिसमें लिखा है कि, बेक्टेरियासे उत्पन्न सब प्रकारके रोगोंमें लहशुन हितकर है। श्वासयन्त्रके सब प्रकारके रोग श्रांको न्युमोनिया (पसली रोग), दुर्गन्धयुक्त कफकास, काली खाँसी, चिरकारी राजयक्ष्मा (द्वितीयावस्था तक) आदिको नष्ट करता है। फुफ्फुस कोथ (मांस सड़ना) पर भी लहशुनके अर्कसे सत्वर लाभ पहुँचनेके उदाहरण मिले हैं; तथा नाड़ीव्रणमें भी लहशुनके इन्जेक्शनसे आश्चर्यकारक लाभ मिला है।

वर्त्तमानमें अमेरिकन डॉक्टरोंने भी लहशुनका उपयोग किया है। उनको अति सन्तोषजनक फलका अनुभव हुआ है। अमेरिकाके 'वर्ल्ड मेगज़ीन' नामक मासिकपत्रमें कुछ वर्षों पहले लहशुनके प्रयोगकी सफलता दर्शायी थी। एवं इङ्गलैण्डके दो प्रसिद्ध डॉक्टर विलियम सी० मिंचन और एम० डब्ल्यु० मेकडफीने अनेक क्षयपीड़ित रोगियों पर लहशुनका प्रयोग किया है; और दोनोंने अति सन्तोषप्रद अभिप्राय दिया है।

स्वरयन्त्रके क्षयपर लहशुनका स्वरस या लहशुनके तैलका उपयोग दिनमें २-३ बार करते रहनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

लहशुनके तैलमें ३० वाँ हिस्सा उग्र वाष्पीय रसोनगंधक (एलियम सल्फाइड— Alltum Sulphide) विद्यमान है, जो वायुमें तत्काल वाष्प रूप होकर उड़ता रहता है; वही कीटाणुनाशक है। इसी द्रव्यके योगसे तैलमें क्षयकीटाणुओंके विनाशका अद्भुत गुण प्रतीत होता है। यह तैल देहके भीतर जाने पर सत्वर फुफ्फुस, त्वचा, मूत्रपिण्ड और यकृत् आदि स्थानोंमें फैल जाता है; और रक्तमें रहे हुए ऑक्सीजन और लसीकाके साथमें मिलकर गंधकके तिज़ाब (Alio Sulphuric) के सदृश अम्लतत्वको उत्पन्न करता है। यदि लहशुनको पीसकर या तैल रूपसे बाहर

लगाया जाय, तो भी सत्वर त्वचामेंसे देहमें प्रवेशकर क्षयकीटाणुओंका नाश करने लगता है। यदि तिर्यक् या अधःपतनसे तैल निकाला जाय, तो गंधक प्रधान कीटाणुनाशक द्रव्यएलियम सल्फाइड उड़ जाता है।

सल्फ्युरिक एसिड जो गंधकमें से तैयार होता है। वह विदाही होनेसे अधिक मात्रामें नहीं दे सकते। एवं वह इच्छित काम भी नहीं कर सकता। परन्तु लहशुनमें वर्त्तमान तैलमेंसे रासायनिक नियम अनुसार देहके भीतर उत्पन्न हुआ नैसर्गिक तिज़ाब अच्छा प्रभाव दर्शाता है। इसी द्रव्यके हेतुसे लहशुन मलेरिया, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, वातवहानाड़ियोंकी विकृति, ग्रहणी रोग, आन्त्रिक क्षय कण्ठमाल, उदरशूल, विसूचिका, काली खाँसी, कण्ठरोहिणी और अपस्मार आदि रोगोंका भी नाश करता है।

आयुर्वेदकी सरल रीतिके अनुसार लहशुन और सैंधेनमकको घी (या तैल) के साथ मिला खरल कर कल्क बना १ से २ तोले तक प्रातः-सायं या भोजनके साथ खिलाते रहनेसे क्षय, क्षयज्वर, अग्निमान्द्य, अरुचि, अजीर्ण, अफारा, दूषित कफ, अन्त्रविकार, नाड़ीव्रण, वातवहानाड़ियोंकी विकृतिजन्य सब प्रकारके वातरोग, रक्तपित्त, शूल, श्वास और अपस्मार आदि रोग नष्ट होते हैं।

लहशुनको समान मिश्री और दोनोंके समान शहद मिलाकर या मक्खन, मीठे नीमके पत्ते, ज़ीरा और सैंधानमकके साथ मिला करके भी सेवन कराया जाता है।

मद्रासके डॉक्टर लहशुनका अर्क (Tinct. Allii) निम्न रीति से बनाकर उपयोगमें लेते हैं—

लहशुनकी साफ कलियाँ	२० ड्राम
तुलसीके पत्ते	२० ,,
जावित्री	२० ,,
रेक्टीफाइड स्पिरिट	१० औंस

इन सबको मिलाकर ४८ घण्टे तक भिगो दें; फिर छानकर उपयोगमें लेवें।

अति शुक्रक्षीणता हो, तो नागबलाका सेवन हितकर है। मंद-मंद ज्वर अरुचि, किञ्चित् कास, प्रतिश्याय आदि लक्षणोंसह नया क्षयरोग हो, तो वर्धमान पिप्पली प्रयोगका सेवन कराना चाहिये। यदि मेदवृद्धि, सड़े हुए मांस या रक्तविषको दूर करना हो, तो अस्थिकी सन्धियोंमें रही हुई मज्जाको शुद्ध करना चाहिये। यदि पित्तप्रकोपके कोई लक्षण न हों, तो शिलाजीतका सेवन कराना चाहिए। शिलाजीत रक्तको शुद्ध और सबल बनाता है; जिससे क्षयकीटाणुओंका बल दबता जाता है।

वमन होती हो, तो हृद्य (रुचिकर और हृदयके लिये हितकर), वातनाशक और हलके अन्नपानका सेवन कराना चाहिये। अतिसार होनेपर अग्निप्रदीपक, अतिसारनाशक, रुचिकर और मुखशुद्धिकर अन्नपान और औषधियोंको प्रयोगमें लाना चाहिये।

यदि क्षय रोगीको प्रतिश्याय, शिरःशूल, कास, श्वास, स्वरक्षय और पार्श्व शूलआदि उपद्रवोंसे अधिक संताप होता है, तो उपद्रव अनुसार विविध क्रियाएँ करनी चाहियें।

पीनस निवृत्तिके लिये स्वेदन, अभ्यंग, धूम्रपान, लेप, परिषेक (शीतल या गरम सेक), अवगाहन, जौके यवागू या दलिया आदिको प्रयोगमें लाना चाहिये। इनमेंसे अभ्यंग, अवगाहन और यवागूका वर्णन पथ्यके साथ लिखा जायगा।

यदि शिर, पसली या कन्धोंमें शूल चलता रहता हो, तो जलौका, तुम्बी या सिंगी लगवाकर दुष्ट रुधिरको निकलवा देना चाहिये। रुधिर पित्तप्रकोपसे दुष्ट हुआ है, तो जलौकासे, कफदोषमें तुम्बीसे और वातविकृतिमें सिंगी लगवाकर निकलवाना चाहिये।

राजयक्ष्माके रोगीके उदरको शुद्ध रखना चाहिये। (आवश्यकतापर एरण्ड तैल या ग्लिसरीनकी पिचकारी देकर मलशुद्धि करा सकते हैं।) परन्तु विरेचनकी औषधि नहीं देनी चाहिये। इस सम्बन्धमें चरकसंहिताकार लिखते हैं कि—

शोषी मुञ्चति गात्राणि पुरीषस्रं सनादपि।
अबलापेक्षिणीं मात्रां किं पुनर्यो विरिच्यते॥

शोष रोगीका मल बलकी अपेक्षा अधिक गिरनेमें उसकी मृत्यु हो जानेकी भीति रहती है; अतः यदि कोई चिकित्सक विरेचनकी औषधि देकर मलको तोड़े, तो उसका मरण हो जाय, उसमें आश्चर्य ही क्या? इस उद्देश्यसे आचार्यने इस वचनके पहले भी कहा है कि—

तस्मात् पुरीषं संरक्ष्यं विशेषाद्राजयक्ष्मिणः।
सर्वधातुक्षयार्त्तस्य बलं तस्य हि विड्बलम्॥

अर्थात् राजयक्ष्मा रोगीके मलका विशेष रूपसे संरक्षण करना चाहिये। कारण, सब धातुओंका क्षय हो जानेपर रोगीकी देहका आधार मलके बल (मल बँधा हुआ दुर्गन्ध रहित रहने) पर ही है।

भगवान् धन्वन्तरिजी भी कहते हैं कि, 'पुरीषक्षये हृदयपार्श्वपीडा सशब्दस्य च वायोरूर्ध्वं गमनं कुक्षौ संचरणं च'' अर्थात् मलका अति क्षय होनेपर हृदय और पार्श्वमें पीड़ा, उदरमें गड़गड़ाहट, वायुका ऊर्ध्व गमन और कुक्षिमें घूमना आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

इस तरह इतर आचार्योंने भी कहा है, कि—

शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तं हि जीवितम्।
तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी॥

मनुष्योंका बल शुक्र पर अवलम्बित है, और जीवनका आधार मलपर रहा है; इसलिये राजयक्ष्मा रोगीके मल और वीर्यका आग्रहपूर्वक संरक्षण करना चाहिये।

मल बँधा हुआ होना और उसमें दुर्गन्धकी उत्पत्ति न होना, ऐसे मलके लिये यहाँ आचार्यका कथन है। यदि मल पतला हो गया है या दुर्गन्ध उत्पन्न हुई है, या कच्चे अन्नसहित आमयुक्त मल जाता है; तो मलका बल टूटा जानकर सत्वर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। मल दूषित बननेपर शरीर को हानि पहुँचता है।

मलाशयमें मलके कुछ शेष रहजानेसे रक्तके भीतर कुछ विषका प्रवेश होता है, यह हानि ही है; किन्तु विरेचन देनेमें उपेक्षाकृत अधिक हानि होती है। सामान्यतः विरेचनद्रव्यका सेवन करनेपर आमाशयिक रस, आन्त्रिकरस और यकृत्पित्त आदिका अधिक स्राव होता है; रक्तमेंसे कुछ रक्तजलका आकर्षण होता है तथा कितनेक कीटाणु अन्त्रमें आकर्षित होकर मलमें मिश्रित हो जाते हैं। फिर ये सब मलके साथ मिलकर बाहर निकल जाते हैं। मलके साथ देहपोषक द्रव्योंका निःसरण होजानेसे शरीरबल और वज़नका ह्रास होता है तथा अन्यकी श्लैष्मिक-कलामें उग्रता भी उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त मलमिश्रण बाहर न निकल जाय, तब तक सब मिश्रणमेंसे कुछ अंशका और शेष रह जाय, उसमेंसे अधिकांशका शोषण सूक्ष्म रसवाहिनियों द्वारा होता है। जिससे दूषितमल और कीटाणु रक्तमें भी पहुँच जाते हैं। रक्तमें रोगनिरोधक शक्ति मंद होनेसे उसका नाश नहीं हो सकता; किन्तु इसके विपरीत क्षयकीटाणु रक्तमें विषवृद्धिकरा सर्वाङ्गशोष की प्राप्ति करा देता है। परिणाममें रोगीकी मृत्यु कुछ सप्ताहमें ही हो जाती है। इस उद्देश्यसे मलके रक्षणकी आज्ञा की है।

नित्यं स्वदेहपूजी भक्तो भैषज्य-देवतागुरुषु।
छागं मांस-पयोऽश्नञ्जीवति यक्ष्मी चिरं धृतिमान्॥

जो राजयक्ष्माका रोगी अपनी देहको सम्हालता रहता है; औषध, देव, गुरु (वैद्य आदि) के प्रति पूज्यबुद्धि रखता है; बकरेका मांस और बकरीके दूधका भोजन करता है, तथा धैर्यवान् है, वह चिरकाल तक जीवित रहता है।

यदि क्षयरोग बढ़ जाने (कीटाणुओंकी अति वृद्धि होने) के पहले योग्य चिकित्साका प्रारम्भ हुआ हो, रोगी तरुण और आज्ञा पालक हो, चिकित्सक, औषधि तथा परिचारक आदि सब अनुकूल हों, तो रोगीकी आयु १००० दिनकी मानी जाती है। किन्तु जब यक्ष्मा घोर रूप धारण कर लेता है, फुफ्फुसोंमें खड्डे हो जाते हैं, पूय मिश्रित कफ निकलता है, ज्वर बना रहता है; तब थोड़े ही समयमें रोगी चला जाता है। ऐसे रोगियोंके लिये हारीत मुनि लिखते हैं कि—

संजीवेच्चतुरो मासान् षण्मासं वा बलाधिकः।
उत्कृष्टैश्च प्रतीकारैः सहस्राहं तु जीवति॥
सहस्रात् परतो नास्ति जीवितं राजयक्ष्मिणः॥

राजयक्ष्मा रोगी ४ मास तक जीवित रहता है; यदि बल अधिक है, तो ६ मास तक और उत्कृष्ट चिकित्सा होती रही, तो १००० दिन (२॥–३ वर्ष) तक जीवित रहता है; परन्तु १००० दिनसे अधिक काल तक तो राजयक्ष्मा रोगी जीवित नहीं रह सकता।

इस रोगमें चिकित्सा अति सोच विचारकर करनी चाहिये। थोड़ी-सी भूल हो जानेसे रोगीकी मृत्यु हो जाती है। अनेक यूनानी हकीमोंने उरःक्षत होनेपर 'वर्म जिगर' (यकृत्व्याधि) मानकर उसके अनुरूप चिकित्सा करके अनेक रोगियोंके रोग को बढ़ा दिया था। कितनेक यूनानी ग्रन्थोंमें भी तपेदिकके भीतर वर्म जिगर होनेका लिखा है। इस तरह क्षय रोगमें प्रतिकूल चिकित्साकी जाय, तो थोड़े ही दिनोंके पश्चात् कुशल चिकित्सकसे भी यह रोग नहीं सम्हल सकता।

यक्ष्मा रोगीके कमरेमें घी, एरण्ड तैल या अलसीके तैलकी बत्ती रखनी चाहिये। मिट्टीके तैलका उपयोग हानिकर है। एवं बिजलीका तेज़ प्रकाशभी हानि पहुँचाता है। बिजली रखना हो, तो अति मन्द प्रकाश वाली बत्ती रक्खें।

यक्ष्मा रोगकी चिकित्सा करनेके समय रोगीके हृदयमें दुःख न पहुँचे, एवं सर्वदा मनसे सन्तुष्ट और प्रसन्न रहे, इस बातका सर्वथा खयाल रखना चाहिये।

यद्यपि सब प्रकारके राजयक्ष्मा रोग तीनों दोष प्रकुपित होनेपर होते हैं; तथापि जिस दोषका प्राधान्य हो, उस दोषके अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये।

वातका प्राधान्य होनेपर पार्श्वशूल, कंधोंमें पीड़ा, स्वरभेद आदि लक्षण प्रबल होते हैं; पित्तका प्राधान्य होनेपर ज्वर, दाह, अतिसार, रक्तस्राव आदिकी अधिकता होती है; और कफोल्वणता होनेपर कफवृद्धि, अरुचि, कास, कण्ठमें पीड़ा, शिरमें भारीपन, आलस्य आदि लक्षणोंकी प्रबलता प्रतीत होती है। फिर रोगीको अनुलोम क्षय हुआ है या प्रतिलोम क्षय। किस धातुकी अधिक कमी हुई है? रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्यमेंसे किस पर अधिक आक्रमण हुआ है? इस बातका निर्णय करना चाहिये।

रसक्षय होनेपर आमाशय रस, यकृत् पित्त, आन्त्रिक रस आदि यथोचित बने, ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये। रक्तकी कमी होनेपर रक्तवर्द्धक उपचार करें। रक्तसे रक्तवृद्धि होती है। वर्त्तमानमें दूसरे निरोगी मनुष्यकी देहमेंसे सीधा रोगीकी देहमें रक्त प्रवेश करानेका सरल साधन हो गया है। यद्यपि क्षय रोगमें डॉक्टर बहुधा दूसरों के रक्तका प्रवेश नहीं कराते; तथापि रुधिर वृद्धि कराना इष्ट हो, तो हो सकता है। एवं लोह, मण्डूर आदि औषधि भी रक्तवर्द्धक हैं। मांसक्षयमें मांसका भोजन और उसके अनुरूप औषधि देते रहना चाहिये।

मेदक्षयमें घृतादि चिकित्सा सर्वोत्तम है। अस्थि मज्जाका उपदंश, सुज़ाक

या इतर रोगसे क्षय हुआ हो, तो उसके अनुरूप चिकित्सा करें। उचित पोषण न मिलनेसे अस्थिक्षय हुआ हो, तो उचित अस्थि पोषक प्रवाल पिष्टी आदि देवें। शुक्रक्षयमें शुक्रपान या शुक्रवर्द्धक चिकित्सा करनी चाहिये।

रस रक्त आदि धातुक्षयके शारीरिक और मानसिक लक्षण, दोनों चि० त० प्र० प्रथम-खण्ड पृष्ठ ३३ से ३५ तक स्पष्ट लिखे हैं।

यदि क्षयकी उत्पत्ति सूतिका रोग या इतर रोगके उपद्रव रूप हुई हो, तो मूल रोगकी नाशक चिकित्सा भी करनी चाहिये।

पचनशक्ति अच्छी होने और ज्वर न होनेपर (या कम होनेपर) अन्न देना हितकर है। अधिक ज्वर होनेपर दूध या फल फूल दें; अन्न नहीं देना चाहिये। अरुचि और अपचन होनेपर घृत आदि पदार्थोंकी मात्रा बहुत कम कर देनी चाहिये।

कितनेक रोगियोंको दूध सहन नहीं होता। उनके लिये दूधके साथ समभाग जल मिलाकर उबालें। दूध शेष रहनेपर उतार लेवें। फिर पिलानेसे पचन हो जाता है। आवश्यकतानुसार मिश्री मिलावें। एवं पीपल, सोंठ और नागरमोथेका चूर्ण दूध उबालनेके समय मिला सकते हैं। प्रारम्भमें दूध ५ तोले देवें; फिर शनैः-शनैः बढ़ाते जायँ।

[डॉक्टरी ग्रन्थोंसे सूचना]

१. गुप्तरोगके लिये—आगे उत्पन्न होनेवाली अवस्थाका प्रतिबन्ध करनेके लिए (१) सामान्य औषधप्रयोग (२) स्वास्थ्य-गृहनिवास; क्षयविरोधी जलवायुमें निवास।

२. वर्द्धनशील प्रथमावस्थाके रोगीके लिये—

अ. आशुकारी रोगवृद्धि न होनेके लिये पूर्ण आराम, कृत्रिम वातभृत् फुफ्फुसावरण, शारीरिक क्रिया शक्तिवर्द्धन चिकित्सा।

आ. मन्द आशुकारी—आराम, कृत्रिमवातभृत् फुफ्फुसावरण, सुवर्ण प्रधान चिकित्सा, शारीरिक क्रिया शक्तिवर्द्धन चिकित्सा, क्षयकीटाणु विषका अन्तःक्षेपण।

इ. चिरकारी—स्वास्थ्य-गृहनिवास, कृत्रिम वातभृत् फुफ्फुसावरण, सुवर्ण प्रधान चिकित्सा, क्षत-कीटाणुविषका अन्तःक्षेपण, अनुकोष्ठिका नाड़ीका पक्षवध।

३. वर्द्धनशील बढ़ी हुई अवस्थामें—कीटाणु और रोगका संयम करनेके लिये आराम और आवश्यक श्रम, उसके अनुरूप चिकित्साकार्य, अनुकोष्ठिका नाड़ीका पक्षवध, उरःपंजरकी विकृति नाशक (फुफ्फुससंरक्षणार्थ) अस्त्रचिकित्सा।

४. चिरकारी सौत्रिकतन्तुमय अवस्था—(पुनराक्रमण होनेपर) सम्हाल पूर्वक देख भाल, स्वास्थ्योन्नतिकर तथा लक्षणशामक चिकित्साकार्य, अनुकोष्ठिका नाड़ीका पक्षवध, उरःपंजरकी विकृतिनाशक अस्त्र चिकित्सा।

गुप्तावस्थामें कोई विशेष चिकित्साकी आवश्यकता नहीं है। पूर्ण सावधानता और स्वास्थ्य उन्नतिकर उपचारकी आवश्यकता है।

प्राथमिक वर्द्धनशील अवस्थाको आक्रमणावस्था कह सकेंगे; क्योंकि इस अवस्थामें विशेष परिवर्त्तन होता है। ज्वरावस्था हो, तो पूर्ण आराम करना चाहिये। कितने समय तक रोगीको शय्याधीन रखें, यह उनकी स्थितिपरसे ही निर्णय करना चाहिये। प्राथमिक अवस्थामें सामान्यतः २-३मास रखना काफी है। फिर स्वास्थ्य-गृहमें भेजने योग्य स्थिति हो जाती है।

जब रोगका गुप्त आक्रमण हो, निर्बलता या काससह थोड़ा ज्वर रहता हो, तब आराम करना हितकर है, उस समय थोड़ेही प्रयत्नसे स्वास्थ्य-गृहमें भेजने योग्य बन सकता है, किन्तु भारतवर्षमें अनेक अनभिज्ञरोगी भूल करके रोगको बढ़ा लेते हैं। इस अवस्था में कृत्रिम वातभृत् फुफ्फुसावरणका आश्रय लिया जाय, तो सत्वर लाभ पहुँच जाता है।

बढ़ी हुई जीर्णावस्थामें संरक्षण करना कठिन है फिर भी रोकना चाहिये। एवं लक्षणात्मक चिकित्सा करनी चाहिये।

यदि चिरकारी सौत्रिकतन्तुमय अवस्था दृढ़ है, तो रोगबल कम हो गया है, ऐसा माना जायगा। इस अवस्थामें आयु कुछ वर्षोंके लिये बढ़ जाती है। यदि इस अवस्थामें ज्वर, रक्तस्राव आदि प्रबल लक्षण न हो तो दृढ़ चिकित्साकी आवश्यकता नहीं है।

बहुधा डॉक्टरीमें सब रोगियोंको मछलीका तैल भोजनके पश्चात् दिनमें २ या ३ बार देते रहते हैं।

वर्तमानमें चिरकारी राजयक्ष्माके रोगियोंपर सुवर्ण प्रधान औषधियाँ (Sanocrysin, Crisalbine)का प्रयोग करते हैं। इस चिकित्सासे लक्षण दूर हो जाते हैं, किन्तु क्षयकीटाणु फिरभी रह जाते हैं; सत्वर विष (Toxin), कफ और फुफ्फुसोंकी आर्द्रताका ह्रास होता है।

डॉक्टरी चिकित्सा अनुसार ज्वर १०३° से अधिक होनेपर स्पंजसे देहको पोंछते हैं।

कष्टकर रात्रिस्वेद -- आनेपर सोनेके पहले जल मिश्रित सिरके से या शराब स्पंज करें। फिर अच्छी तरह पोंछ लेवें।

निष्फलकास (शुष्क कास)—कफको आर्द्र बनाकर सरलतासे बाहर निकालनेके लिये औषधि देवें। ग्लिसराइन्का की टिकिया देते हैं। आयुर्वेदमें मुलहठीकी गोलियाँ, वासावलेह आदि देते हैं।

शुष्ककासके दमनार्थ श्वासको रोकनेका अभ्यास करलेवें, तो उससे सत्वर लाभ पहुँचता है।

प्रातःकालके कासका वेग अधिक होनेपर गोंदके सदृश चिपचिपा कफ गिरता है, तब डॉक्टरीमें नमक मिश्रण तथा आयुर्वेदमें कफकुञ्जर रस (कफ कासपर लिखा हुआ) या अपामार्ग (क्षारघृतके साथ) दिया जाता है।

अरुचि हो तो भोजनमें अन्तर करें। भोजनके पहले कटु पौष्टिक औषधि देवें। अतिसार हो तो जल्दी दूर करनेका प्रयत्न करें और अतिसारके अनुरूप पथ्य पालन करें।

निद्रा न आती हो, तो सोनेके समय गरम पेय देवें और कास शामक औषधि देवें। मलावरोध न हो, तो निद्रोदयरस भी हितावह है। चिरकारी सौत्रिकतन्तुमय फुफ्फुस बन जानेपर कितनेक रोगियोंको प्रथमावस्थामें किन्तु विशेषतः जीर्णावस्थामें श्वासकृच्छ्रता उपस्थित होती है। यह प्रायः हृदयकी निर्बलताके हेतुसे होती है। इसपर आवेगके शमन करनेके लिये डॉक्टरीमें एफेड्रिन आध-आध ग्रेन देते हैं और आयुर्वेदमें सोमकल्प। रात्रिके समय मोर्फिया या निद्रोदय रस देनेसे रोगीको आराम मिल जाता है। इनके अतिरिक्त प्राणवायु (Oxygen) से श्वसन कराया जाता है। क्वचित् हृदय और फुफ्फुसान्तराल स्थान च्युत होने से पीड़ा होती है, तब कभी-कभी अनुकोष्ठिका नाड़ीका छेदन किया जाता है।

रात्रिस्वेद अति दुःखदायी चिह्न है। प्रथमावस्थामें हो तो शुद्ध वायुका सेवन और आराम करनेपर दूर हो जाता है। क्वचित् रोगवृद्धि होनेपर स्वेद आता है, तब उसे रोकने के लिये यसदभस्म या यसदपुष्प (Zinc Oxide) २ ग्रेन और $\frac{3}{8}$ ग्रेन सूची बूटी सत्व (Extract Belladonna) मिलाकर रात्रिको देते हैं। एवं गुनगुना दूध रात्रिको सोनेके समय पिलाते हैं।

विवर होनेपर (एक पार्श्वमें ही रोग हो तो) फुफ्फुसावरणमें कृत्रिम वायु भरते हैं। दोनों पार्श्वमें होनेपर औषधोपचार ही किया जाता है।

राजयक्ष्मानाशक शास्त्रीय प्रयोग

सूचना—कितनेक प्रयोग कास रोगमें क्षयकास पर लिखे हैं; वे सब राजयक्ष्मा में प्रयोजित होते हैं।

१. विन्ध्यवासि योग—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, शतावरी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, गंगेरन और खरैंटी, इन ६ औषधियोंको सम भाग मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर चूर्णका समभाग लोहभस्म मिलाकर १ से २ रत्ती दिनमें ३ समय घृत-शहदके साथ सेवन करानेसे उरःक्षत, कण्ठरोग, कास, श्वास, बाहुस्तंभ, अर्दित आदि रोगोंसहित उग्र राजयक्ष्मा दूर होता है।

२. कबूतर, बन्दर, बकरा और हिरन, इनमें से किसी एकके मांसको भून चूर्णकर बकरीके दूधके साथ सेवन करानेसे क्षयरोग निवृत्त होता है।

३. अर्जुनछाल, गंगेरनकी छाल और कौंचके बीज, तीनोंको समभाग मिला ६ माशे चूर्णको दूधमें मिलाकर पकावें। फिर उसमें शहद, घी और मिश्री मिलाकर पान करानेसे व्यवायशोष और यक्ष्माके कासकी निवृत्ति होती है।

सूचना—दूध उबलने पर चूर्ण थोड़ा-थोड़ा सम्हालपूर्वक चारों ओर दूधमें फैलावें और चलाते रहें। एक ही स्थान पर डाल देनेसे गोली-सी-बन जाती है।

४. अश्वगन्धादि क्वाथ—असगन्ध, गिलोय, शतावरी, दशमूल, खरैंटी, अडूसाकी जड़, पुष्करमूल और अतीस, इन १७ औषधियोंको समभाग मिला क्वाथकर दिनमें २ समय पिलाते रहें। भोजनमें दूध और मांसरस देते रहें, तो क्षयरोग नष्ट हो जाता है।

५. शिलाजत्वादिलोह—शुद्ध शिलाजीत, मुलहठी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सुवर्णमाक्षिक भस्म और लोह भस्म, सबको समभाग मिला खरल कर चूर्ण बना लेवें। इसमेंसे ४ से ६ रत्ती चूर्ण दिनमें २ समय दूधके साथ सेवन कराते रहनेसे राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है। एवं क्षयविवर, रक्तवमन, शोथ, अरुचि, निद्रानाश, कास इत्यादि सब उपद्रव दूर होते हैं।

सूचना—यदि ज्वर अधिक रहता है। तो सुवर्णमाक्षिकको छोड़ शेष औषधियाँ ही मिलानी चाहियें। सुवर्णमाक्षिकके बदले प्रवालपिष्टी मिला लेवें।

६. क्षयकेसरी लोह—त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला, (हरड़ बहेड़ा, आँवला) इलायची, जायफल और लौंग, इन ६ औषधियोंको १-१ तोला और लोह-भस्मको ६ तोले लें। सबको मिला खरलकर १ से ४ रत्ती शहदके साथ दिनमें २ बार देते रहनेसे पाण्डुता, अरुचि और ज्वरसह राजयक्ष्मा नष्ट होता है।

७. सुवर्ण भस्म या सोनेका वर्क चौथाई रत्ती मक्खन, मिश्री और शहदके साथ मिलाकर दिनमें २ समय देते रहनेसे क्षयरोग नष्ट हो जाता है।

सूचना—प्रबल ज्वरावस्थामें हो सके तब तक सुवर्णका सेवन नहीं कराना चाहिये। ज्वर उतर जाने पर सुवर्णमिश्रित औषधि देना अधिक हितकर है।

८. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें लिखे हुए प्रयोग—सुवर्णभस्म (गिलोय सत्वऔर सितोपलादि चूर्णके साथ) सुवर्णभस्म (शृङ्गभस्म, प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्वके साथ), सुवर्णभस्म (दाड़िमावलेहके साथ), अभ्रक भस्म और शृंगभस्मको (गिलोयसत्वके साथ) या शहद पीपलके साथ। वङ्गभस्म (सुवर्ण भस्म और अभ्रकभस्म के साथ), वैक्रान्तभस्म, शृङ्गभस्म, मौक्तिकपिष्टी, प्रवालपिष्टी, शुभ्राभस्म ताल-सिंदूर, सुवर्णभूपति रस, सुवर्णमालिनी वसन्त, लघुमालिनीवसन्त; लक्ष्मीविलास रस, सितोपलादि अवलेह, सितोपलादि चूर्ण, त्रैलोक्यचिन्तामणि, जयमंगल रस, वसन्तकुसुमाकर, हेमगर्भ पोटली रस, लोकनाथरस, च्यवन प्राशावलेह, योगरस, ताप्यादि लोह, महामृगाङ्करस, बालचन्द्र रस, योगेन्द्ररस, जीवन्त्यादि घृत आदि हितावह हैं।

सुवर्णभस्म—क्षयके कीटाणुओंके नाश करनेकी सर्वोत्तम औषधि मानी गई। ज्वर न हो, तब प्रयोगमें लाई जाती है। यदि प्रथमावस्था है और शुष्क कास है, तो गिलोयसत्व और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर देवें। दूषित कफ अधिक है, तो शृङ्ग-भस्म और प्रवालपिष्टी मिलावें। अशक्ति नष्ट करनेके लिये च्यवनप्राशावलेहमें, अतिसार

हो, तो दाड़िमावलेहके साथ; उरःक्षत होकर रक्तस्राव होता हो या कफ सरलतासे बाहर न आता हो, तो वासावलेहके साथ देवें।

अभ्रकभस्म—निर्जन्तुक क्षयमें उपकारक है। जन्तुजन्य क्षयमें सुवर्णभस्मके साथ देते रहनेसे शक्तिका क्षय नहीं होता। प्रथमावस्थामें अभ्रकभस्म, शृङ्गभस्म और गिलोयसत्व मिलाकर शहदके साथ देनेसे दाह, जीर्णज्वर, कास, कफविकृति आदि विकारोंसह क्षय दूर होता है। जीर्णज्वर और मन्दाग्नि हो, तो शहद पीपलके साथदें।

वज्रभस्म—कीटाणु मारने और शक्तिके संरक्षणार्थ अति लाभदायक है। आवश्यकता पर सुवर्णभस्मके साथ दी जाती है; अथवा त्रैलोक्यचिन्तामणि या वसन्त-कुसुमाकर रस (हीराभस्म मिला हुआ), इनमेंसे एक को प्रयोगमें लाना चाहिये।

वैक्रान्तभस्म—वज्रभस्मके अभावमें मिलाई जाती है। यह भस्म वज्रके सदृश, किन्तु कुछ न्यून गुण पहुँचाती है।

शृङ्गभस्म—निर्जन्तुक और जन्तुजन्य क्षयमें कफ शुद्धिकी जहाँ आवश्यकता हो, वहाँपर इतर औषधियोंके साथ मिला दी जाती है। निर्जन्तुक क्षयमें अकेली भी दी जाती है। शृंगभस्म देते रहनेसे कीटाणुओंकी वृद्धिमें प्रबल प्रतिबन्ध हो जाता है।

मौक्तिक पिष्टी—क्षयज्वर, दाह, उरःक्षत, व्याकुलता आदि दूर करनेके लिये दी जाती है। एवं क्षयनाशक इतर औषधिके साथ मिलाने पर सत्वर लाभ पहुँचाती है।

प्रवाल पिष्टी—ज्वर, प्रस्वेद, रक्तस्राव, शुष्क कास, व्याकुलता, शारीरिक निर्बलता और हड्डियोंकी निर्बलता आदिको दूर करनेके लिये मुख्य औषधिके साथ मिला लेना हितकारक माना जाता है। अति प्रस्वेदको दूर करनेमें प्रवालपिष्टी सर्वोत्तम औषधि मानी जाती है। प्रवालपिष्टी ज्वरजन्यविषको जलानेके लिये निर्दोष और हितकर औषधि है।

शुभ्रा भस्म—क्षयमें होनेवाली भयप्रद वमनको रोकनेके लिये शुभ्राभस्म अथवा फिटकरीको मिश्रीके साथ दिया जाता है। एवं रक्त वमनको भी सत्वर बन्द करती है।

तालसिंदूर—क्षयकीटाणुओंको नाश करने, विवरको भरने, शोथको दूर करने, रसायनियोंको बलवान और ज्वरको शमन करनेमें हितकर है।

सुवर्णभूपति—वातप्रकोप, पाण्डुता, पित्तदुष्टी, शूल, अन्त्रमें विषसंचय और कब्ज़ आदिसह राजयक्ष्माको दूर करता है।

सुवर्णमालिनीवसन्त—किसीभी प्रकारके ज्वरमें से राजयक्ष्मा हुआ हो, लसीकाग्रन्थियाँ और रसायनियोंकी विकृति हुई हो, अरुचि, अग्निमान्द्य, मन्द-मन्द ज्वर प्लीहावृद्धि, शुक्रकी शिथिलता आदि लक्षण हों, उन सबको सत्वर शमन करती है।

लघुमालिनी वसन्त—सुवर्ण मालिनीवसन्तके अभावमें प्रथमावस्थाके समय दी जाती है। एवं निर्जन्तुक क्षयमें अति हितकर है। बालक, सगर्भा और नाज़ुक प्रकृति वालोंके लिये सौम्य और उत्तम औषधि है।

लक्ष्मी विलास रस—(सुवर्ण मिश्रित) पाण्डु, कामला, शुक्रक्षय, सूक्ष्म-ज्वर, प्रतिश्याय, वातप्रकोप और शूल आदि उपद्रवोंसह राजयक्ष्मा को नष्ट करता है, हृदयको सबल बनाता है; और शक्ति वृद्धि कराता है।

सितोपलादि अवलेह—सस्ता, सौम्य और निर्दोष है। सब अवस्थाओंमें निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। कीटाणुओंका नाश करता है, रक्तस्राव और कफप्रकोपको दूर करता है; ज्वरका शमन करता है तथा शक्तिका संरक्षण करता है।

सितोपलादि चूर्ण—प्रथमावस्था और द्वितीयावस्थामें अनुपानरूप से सहायता पहुँचाता है। मंद ज्वर, अरुचि, रक्तनिष्ठीवन, शुष्क कास, दाह आदिको दूर करता है। कीटाणुवृद्धिमें प्रतिबन्ध करता है।

त्रैलोक्य चिन्तामणि रस—दिव्य रसायन है। अति गिरी हुई हालतमें भी लाभ पहुँचाता है। किसी कारणवश ज्वर बढ़ने पर दिया जाता है। एवं विवर बढ़ जाने पर भी अपना प्रभाव दर्शाता है।

जयमंगल रस—अधिक ज्वर, मन्द ज्वर, प्रथमा, द्वितीया और तृतीयावस्था अथवा सब समयमें दिया जाता है। ज्वरको अधिकारमें लानेके लिये हितकर माना जाता है। सुवर्णयुक्त रसायन होनेसे क्षयको भी दूर करता है; एवं शारीरिक शक्तिको भी बढ़ाता है।

वसन्तकुसुमाकर रस—शुक्रक्षय, रक्तपित्त, प्रमेह, प्रदर, रक्तमें विषवृद्धि, दाह आदि उपद्रवसह राजयक्ष्माको दूर करता है। यकृत्, वृक्क, मूत्राशय आदिकी विकृतिको दूर करता है। रस, रक्त आदि सातों धातुओंको पुष्ट करता है। शुक्रक्षय और वृक्कप्रदाह वालोंको अति हितकर है।

हेमगर्भपोटली रस— यकृत-प्लीहावृद्धि, पित्तविकार, कफवृद्धि और ग्रहणीसह राजयक्ष्माको दूर करता है। अधिक दाह, अतिसार आदि हों, तो दूसरी विधि वाला रसायन दिया जाता है।

लोकनाथरस—अति वीर्यवान् तीव्र औषध है। क्षयके कीटाणुओंको नष्ट करने, कफ वृद्धिको रोकने और गाँठोंको बिखेरने (रक्तप्रसादन करने) में उत्तम है। एवं अतिसार, गुल्म, कास, श्वास आदिसह राजयक्ष्माको भी नष्ट करता है।

च्यवनप्राशावलेह—शक्तिसंरक्षणार्थ सब अवस्थाओंमें निर्भय और हितकर है। च्यवनप्राशावलेह सेवन करानेके एक घण्टे तक दूध या भोजन आदि न दिया जाय, तो च्यवनप्राशावलेह २ तोले तक पचन हो जाता है और लाभ भी अधिक पहुँचाता है। मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये।

ताप्यादि लोह और योगराज रस—दोनों यकृतकी विकृतिसह शोष रक्तमें न्यूनता, पाण्डु. क्षतका प्रारम्भ, वातप्रकोप आदिसह राजयक्ष्मामें हितकारक हैं।

महामृगाङ्करस—अति दिव्य औषधि है। इसका उपयोग चिकित्सकवर्ग अधिक रूपसे करते हैं। दूषित कफ, कास, स्वरभेद, अरुचि, मन्द ज्वर, वातवहा-नाड़ियोंकी शिथिलता, पित्तप्रकोप आदि नाना प्रकारके उपद्रवोंसह राजयक्ष्मामें दिया जाता है। क्षयकी सब अवस्थाओंमें लाभ पहुँचाता है।

पञ्चामृत रस—क्षय रोगमें ज्वर बढ़ जाय पर उसे मर्यादामें लानेके लिये यह रसायन अति हितावह है। विषको नष्ट करता है और मूत्रद्वारा बाहर निकालता है; तथा शक्तिका संरक्षण करता है।

बालचन्द्र रस—वमन, अतिसार, श्वासकृच्छ्रता, शुष्क कास और रक्तपित्त आदि उपद्रवों पर हितावह है।

योगेन्द्र रस—वातपित्तज विकृतिसह राजयक्ष्माको दूर करता है। अम्लपित्त, बहुमूत्र, पक्षाघात, उन्माद, मूर्च्छा, अपस्मार, हिस्टीरिया आदिसह क्षयका निवारण करता है।

चतुर्मुख रस—यह रसायन पचनेन्द्रियसंस्थानमें विकृति होकर राजयक्ष्मा होने पर अति लाभदायक है। अन्त्रमें रहे हुए सेन्द्रिय विषको जलाता है, पचनशक्तिको सबल बनाता है; शारीरिक शक्तिका संरक्षण करता है और यक्ष्माको नष्ट करता है।

जीवन्त्यादि घृत—अति सौम्य औषध है। औषध और भोजन रूपसे उपयोग हो सकता है। किसी भी औषधिके साथ अनुपान रूपसे दे सकते हैं।

९. सुवर्णमालिनीवसन्त १ रत्ती, अभ्रकभस्म ।॥ रत्ती, शृङ्गभस्म १॥ रत्ती, ६४ प्रहरी पीपल ३ रत्ती और गिलोयसत्व ६ रत्ती लें। सबको मिलाकर ३ विभाग करें। प्रातः-मध्याह्न और सायंकालको शर्बत अनारके साथ देते रहें। दोपहरको प्रवाल-पिष्टी १-१ रत्ती इस मिश्रणमें मिलाते रहनेसे राजयक्ष्माका निवारण हो जाता है। अधिक दाह हो, तो प्रातःसायं भी प्रवालपिष्टी मिला लेनी चाहिये।

सूचना—शुष्क कास हो तो पीपलके स्थान पर ३ माशे सितोपलादि चूर्ण मिला लेना चाहिये।

१०. रसतन्त्रसार द्वितीय-खण्डमें आये हुए प्रयोगोंमेंसे प्रथमावस्थामें विषम ज्वरान्तक लोह मृगाङ्क रस, कपर्द पोटली और रसराज द्वितीय विधि हितावह है।

द्वितीयावस्था और तृतीयावस्थामें हेमाभ्रसिन्दूर, सुवर्ण सर्वाङ्ग-सुन्दर, बृहत् सुवर्ण मालिनीवसंत, राजयक्ष्मा, करिमत्त केसरी, क्षयकुलान्तक रस, क्षयकेसरी, रसराज प्रथम विधि, कर्पूरादि गुटिका, लोकेश्वरपोटली, मृगाङ्क और चतुर्भुज रस हितावह है।

शक्ति संरक्षणार्थ अमृतप्राश, एलादिमन्थ, शुक्रसंजीवन, काम चूड़ामणि और गुडूच्यादि रसायन आदि व्यवहृत होते हैं। अधिक ज्वर होनेपर रजतादि लोह दी जाती है।

उरःक्षत होनेपर वासकासव, अमृत प्राश, एलादिमन्थ, कुसं कहरुवा और बलाद्य घृतका उपयोग किया जाता है।

११. सुवर्ण लवण— $\frac{1}{16}$ से $\frac{1}{8}$ रत्ती तक अश्वगन्धारिष्ट या द्राक्षारिष्टमें मिलाकर दिनमें २ समय भोजनकर लेनेपर देते रहनेसे क्षयकीटाणुओंका सत्वर नाश होकर रोगी सशक्त बन जाता है। यदि रक्तस्राव अधिक होता हो, तो वासास्वरस या उशीरासवके साथ देवें। अतिसार हो, तो बबूलारिष्ट या अतिसार नाशक लिहाई औषधके साथ देवें।

१२. रत्नगर्भपोटली रस—रससिंदूर, हीराभस्म, सुवर्ण भस्म, रौप्यभस्म, नाग भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म, मौक्तिक भस्म, प्रवाल भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शंख भस्म और तुत्थ भस्म, इन १२ औषधियोंको समभाग मिलाकर ७ दिन तक चित्रक मूलकी छालके क्वाथके साथ मर्दनकर चूर्ण करें। फिर इसे शुद्ध पीली कौड़ियों में भरें। पश्चात् आकके दूधमें सुहागाको मिलाकर उनके मुखको भली-भाँति बन्द करें; तदनन्तर सबको मिट्टीकी मज़बूत छोटी हाँडीमें रख सराव ढक कपड़ मिट्टी करें। सूखनेपर गजपुट देवें। स्वाँग शीतल होनेपर निकालकर कौड़ियों सहित पीसकर निगुंडीके क्वाथकी ७, अदरकके रसकी ७ और चित्रकमूलकी छालके क्वाथकी २१ भावना देकर १–१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—१–१ गोली दिनमें २ बार शहद-पीपल अथवा सफेद मिर्च और घीके साथ देनेसे साध्य और असाध्य राजयक्ष्मा रोग निःसन्देह दूर हो जाता है। यह औषधि आठों प्रकारके महारोग वात व्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, अश्मरी, मूढ़गर्भ और उदर रोग, कास, श्वास और अतिसार, सबको उपद्रव-सह नष्ट कर देता है।

आमाशय और अन्त्रमें सेन्द्रियविष संचयको यह रसायन दूर करता है। पचनशक्तिको सबल बनाता है। अंत्रप्रदाह और अतिसारका नाश करता है। यकृत्-प्लीहाकी विकृतिको दूर करता है। वातवाहिनियों और रक्तवाहिनियोंकी निर्बलता को दूर करता है। क्षयकीटाणुओंका नाश करता है। फुफ्फुस, हृदय, मस्तिष्क, यकृत्, प्लीहा, वृक्क, आमाशय, अन्त्र, अस्थिसंस्थान सबपर यह रसायन लाभ पहुँचाता है। अमीरोंके लिये यह अति हितावह है।

१३. बबूलाद्यरिष्ट—बबूलकी छाल ८०० तोले लेकर ४०९६ तोले जलमें मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवें। फिर ४०० तोले गुड़ मिलावें। प्रक्षेप रूपसे धायके फूल ६४ तोले, पीपल ८ तोले, जायफल, शीतलमिर्च, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, तेजपात, नागकेशर, लौंग, कालीमिर्च, प्रत्येक ४-४ तोले डालें। एक मास तक बन्द करके रक्खें। परिपक्व होनेपर छानकर ३–४ मास रहने देवें।

मात्रा—२॥-२॥ तोले दिनमें २ बार देते रहनेसे क्षय, कुष्ठ, अतिसार, प्रमेह, श्वास और कास आदि रोग नष्ट होते हैं ।

१४. क्षय नाशक घृत—गौ, घोड़ा, हाथी, भेड़, बकरी, इन नीरोगी पशुओंका ताज़ा गोबर (वर्षा ऋतुसे इतर ऋतुका) पृथक्-पृथक् लेकर रस निचोड़ लेवें । कठोर गोबर और मैंगनी आदिमें उतना जल मिलावें कि, घोल बन जाय । फिर मूर्वा, हल्दी और खैरछालका अलग-अलग क्वाथ करें । इस तरह ५ प्रकारके गोबरके रस और ३ प्रकारके क्वाथमें १ भाग दूध और १ भाग घृत मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्ध करें । घृत पकनेके समय त्रिफला, मधुर द्रव्य (काकोल्यादि गणकी औषधियाँ), त्रिकटु और देवदारुका कल्क घृतसे चौथा हिस्सा मिला लेवें ।

मात्रा—१ से २ तोले तक दिनमें दो बार सेवन करानेसे अन्त्रमें उत्पन्न सेन्द्रिय विष, रक्तमें स्थित विष और क्षय कीटाणुओंका नाश होकर राजयक्ष्माका निवारण हो जाता है ।

१५. छागलाद्य घृत—बकरेका मांस ५ सेर और जल १०२४ तोले मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें । फिर छानकर ६४ तोले घी और और निम्न औषधियों का कल्क मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्ध करें । अष्टवर्गकी औषधियाँ ४-४ तोले लेकर कल्क करें । अष्टवर्गके अभावमें विदारीकन्द, वाराहीकन्द, शतावरी, असगन्ध, इन चारोंको ८-८ तोले लेवें । फिर घृतको निकाल ३२ तोले मिश्री और शहद १६ तोले मिला लेवें ।

मात्रा—२ से ४ तोले तक सेवन करानेसे राजयक्ष्मा, क्षतक्षय, कास, पार्श्व-शूल, अरुचि, स्वरभेद, उरःक्षत और दारुण श्वासरोग नष्ट होजाते हैं । बल, मांस और वीर्यकी वृद्धि होती है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है ।

१६. जीवन्त्यादि घृत—जीवन्ती, मुलहठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, कचूर, पुष्कर-मूल, छोटी कटेली, गोखरु, खरैंटीकी जड़की छाल, नीले कमल, भूमि आँवले, त्रायमाण, धमासा और पीपल, इन १४ औषधियोंको समभाग मिलाकर ३२ तोले कल्क करें । फिर १२८ तोले गोघृत और घृत से ४ गुना दूध (या जल) मिला यथाविधि घृत पाक करें ।

मात्रा—१ से २ तोले तक दिनमें २ समय देते रहनेसे ११ प्रकारके लक्षणों युक्त उग्र राजयक्ष्मा रोगका नाश हो जाता है ।

१७. बलादि क्षीर—खरैंटीके मूलकी छाल, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बड़ी कटेली और छोटी कटेलीको मिला ८ गुने जलमें क्वाथ करें । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर दूध (शेष रहे हुए जलके समान) डालें तथा सोंठ, मुनक्का, पिण्डखजूर और पीपलका कल्क मिलाकर दुग्धावशेष रहे पर्यन्त क्वाथ करें । फिर उतार छान शीतल होनेपर

शहद मिलाकर पिलानेसे ज्वर, कास और स्वरभेद आदि उपद्रव सह राजयक्ष्मा रोग दूर होता है।

शुक्रक्षय या रजःक्षयपर—वसन्तकुसुमाकर रस, चौथाई रत्ती दिनमें २ समय कपूर और शिलाजीत या शहदके साथ दें। वंगभस्म, रौप्यभस्म, वङ्गभस्म और सुवर्णमाक्षिक; बृहद् वङ्गेश्वर रस, पूर्णचन्द्रोदय रस, वङ्गभस्म और रससिन्दूर, सुवर्णमाक्षिक भस्म और शृङ्गभस्म, वङ्गभस्म और शृङ्गभस्म, ये सब प्रयोग हितावह हैं। इनमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन कराना चाहिए।

वसन्तकुसुमाकर और बृहद् वङ्गेश्वर—शुक्रवाहिनियोंको सुदृढ़ बनानेके अलावा क्षयकीटाणुओंको नष्ट करते हैं, और सब धातुओंको पुष्ट बनाते हैं। वंगभस्ममें मुख्य गुण शुक्राशयको सबल बनानेका है। पूर्णचन्द्रोदय और रससिन्दूर हृदयपौष्टिक, धातुओंको सुदृढ़ बनानेवाले दुष्ट कफके नाशक और विषघ्न हैं। शृङ्गभस्म दूषित कफकी उत्पत्तिको कम कराती है, और स्थित कफको बाहर निकालती है। रौप्यभस्म वातवहा-नाड़ियोंको पुष्ट बनाती है। सुवर्णमाक्षिक भस्म पित्तविकार, वमन, दाह, शीर्षशूल निद्रा-नाश आदिको दूरकर रजःवीर्यको गाढ़ा और स्थिर बनाती है।

राजयक्ष्माके लक्षण-उपद्रवहरप्रयोग

राजयक्ष्मामें कितनेक लक्षण पहलेसे होते हैं और कोई-कोई अकस्मात् उत्पन्न होकर कष्ट पहुँचाता है। ऐसे समयपर उसकी विशेष चिकित्सा करनी पड़ती है। इस हेतुसे अंत्र प्रतिश्याय, अरुचि, प्रस्वेद, ज्वर, स्वरभेद, अतिसार, शिरदर्द, पार्श्वशूल, कास, उरःक्षत, मूत्रावरोध, वमन, दाह, निद्रानाश, हृदयका पतन और मलावरोध, इनके उपचारका क्रमशः वर्णन करते हैं।

प्रतिश्यायपर—१. रीठेके एक छिलकेको एक छटांक गाय या बकरीके दूधमें पीसकर रक्खें। आध घण्टे पश्चात् ऊपरसे नितरे हुए दूधको छान लें। फिर उसमें आध रत्ती कपूर और केशर खरल करके मिलालें। बादमें पलङ्गपर रोगीको लिटा शिर नीचा रखवाकर दोनों नथनोंमें ५-५ बूँद दूध ड्रॉपर या फोहेसे डालदें। पश्चात् रोगीको तुरन्त बैठा देनेसे उसी समय मुँह और नाकसे बहुत कफ निकल जाता है। आवश्यकता पर २-३ दिन पश्चात् सुबहको दो-तीन बार यह प्रयोग करें। यह प्रयोग क्षयकी प्रथमावस्थामें बलवान् रोगीके लिये हितकारक है।

२. रसतन्त्रसारमें लिखा हुआ प्रतिश्यायहर शर्बत दिनमें २ बार ३-४ दिन तक सेवन करानेसे जुखाम दूर हो जाता है।

अरुचि होनेपर—१. अजवायन और कोकम (अभावमें डाँसरिया या अमचूर) के क्वाथसे कुल्ले करें। एवं इनकी गोलियाँ बनाकर मुखमें धारण करें।

२. दालचीनी, नागरमोथा, इलायची और धनियाँके क्वाथसे कुल्ले करें। एवं इनकी गोलियोंको मुखमें रखकर रस चूसते रहें।

३. नागरमोथा, आँवला और दालचीनीके क्राथसे कुल्ले करें और इनकी गोलियोंको मुँहमें रक्खें या इनके कवल धारण करें।

४. सुरा, माध्वीक (शराब), शीधु, तैल, घी-शहद (मिश्रित), दूध, गन्नेका रस, इनमेंसे इष्ट पदार्थका कवल धारण करावें।

५. यवानीखाण्डव चूर्ण, कर्पूराद्य चूर्ण, लवंगादि चूर्ण, द्राक्षासव, आर्द्रकावलेह, इनमेंसे जो औषधि अधिक अनुकूल हो, वह प्रयोगमें लानेसे अरुचिकी निवृत्ति होती है।

यवानीखाण्डव—वमन, कब्ज़, पतले दस्तसह अरुचिमें हितकर।

कर्पूराद्य चूर्ण—स्वरभंग, वमन और अरुचिमें लाभदायक है। इसका उपयोग भोजनके साथ मसाला रूपसे भी हो सकता है।

लवङ्गादि चूर्ण—उरःक्षत, स्वरभङ्ग, कास और अतिसारसह अरुचिमें हितकर है।

द्राक्षारिष्ट—अरुचिको दूर करता है, शान्त निद्रा लाता है और मनको प्रसन्न रखता है। परन्तु तीव्र अतिसार हो, तो द्राक्षारिष्ट नहीं देना चाहिये। मुँह चिपचिपा और मीठा रहता हो, तो द्राक्षारिष्ट या आर्द्रकावलेह देवें। मुँह कड़वा रहता है, तो लवंगादि चूर्ण, सितोपलादि चूर्ण (अनार शर्बतके साथ) या कर्पूराद्य चूर्णमेंसे एक का सेवन करावें। यदि व्यवायशोष रोगीका मुँह कसैला रहता है, तो वङ्गभस्म २-२ रत्ती च्यवनप्राशावलेहके साथ देते रहें।

प्रस्वेद शमनार्थ—१. प्रवालपिष्टी १ से २ रत्ती और गिलोय सत्व ४-४ रत्तीको मिलाकर शहदके साथ दिनमें ३ समय देते रहनेसे प्रस्वेद आना कम हो जाता है।

२. रुद्रवन्ती (Cressa Cretica) में स्वेदशामक अद्वितीय गुण हैं। केवल रुद्रवन्तीका चूर्ण शहदके साथ या प्रवालके साथ मिलाकर भी दिया जाता है।

३. सितोपलादिचूर्ण, लवंगादि चूर्ण या पहले कहा हुआ तालीसाद्य चूर्ण और एलादि चूर्ण, सबमें प्रस्वेदको कम करनेका गुण विद्यमान है। इनमेंसे जो अन्य लक्षणोंकी दृष्टिसे अधिक हितावह हो, उसका उपयोग करना चाहिए।

४. ब्रह्मदण्डीके मूलका चूर्ण शहदके साथ दिनमें २ समय देनेसे प्रस्वेद कम होजाता है।

५. जसदभस्म १ रत्ती, गिलोयसत्व २ रत्ती और शिलाजीत २ रत्ती मिलाकर दूध या जलके साथ देनेसे प्रस्वेद कम होजाता है; विष शमन हो जाता है और बल कायम रहता है।

ज्वरपर—जयमङ्गल रस, जसदभस्म (शिलाजीतके साथ), सुवर्णमालिनीवसंत, लघुमालिनी वसन्त, चन्दनादिलोह (पतलेदस्त होनेपर), प्रवालपिष्टी (सितोपलादि चूर्ण के साथ), माणिक्य रस (शुष्ककास सह), इसमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन कराते रहें

सुवर्णमालिनी वसंत, लघुमालिनी वसंत और चन्दनादि लोह—प्रथमावस्थामें विशेष लाभदायक हैं। जयमङ्गलरस प्रथमा और द्वितीयावस्थामें उपकारक

है। जसदभस्म और शिलाजीत सब अवस्थाओंमें लाभदायक है।

स्वरभेद पर— १. पुण्डरीक काष्ठ, मुलहठी, पीपल, बड़ी कटेली और कटेरीके मूलकी छालका कल्ककर चारगुने घी और १६ गुने दूधमें मिला घी सिद्धकर नस्य करानेसे स्वरभेद दूर होजाता है।

२. जसदभस्म मक्खन-मिश्रीके साथ देवें। यदि उरःक्षत बढ़े होनेसे ज्वर सतत रहता हो, तो जसदभस्म, शिलाजीत और वंशलोचनकी गोलियाँ बनाकर प्रातःसायं देते रहनेसे स्वरभेद, उरःक्षत, ज्वर, निर्बलता और अति प्रस्वेद आदि दूर होते हैं, रसायनियाँ सबल बनती हैं; विषका शमन हो जाता है और मानसिक बेचैनी दूर होती है।

अतिसार पर—१. सोंठ और इन्द्रजौको मठे या चावलोंके धोवनके साथ देवें।

२. पाठा, बेलगिरी और अजवायनके ३-३ माशे चूर्णको मट्ठे (या बकरीके दूध) के साथ दिनमें ३ समय देते रहनेसे अतिसार नष्ट होता है।

३. अदरक और पाठाके चूर्ण ३-३ माशेको बबूलारिष्ट या सुरा (शराब) साथ देनेसे अतिसार शमन हो जाता है।

४. जम्ब्वादि चूर्ण—जामुनके बीजकी गिरी, आमकी गुठलीकी गिरी, कच्चे बेलफल, कैथ और सोंठको मिलाकर चूर्ण करें। इसमें से ३ से ६ माशे चूर्ण यवागू या मण्डके साथ सेवन करानेसे अतिसारकी निवृत्ति हो जाती है।

५. रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रहमें कही हुई औषधियाँ—सूतशेखर, सुवर्ण पर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी, प्राणदा पर्पटी, हेमगर्भपोटली रस (दूसरी विधि), अभ्रपर्पटी, अभ्रकभस्म, मौक्तिक पिष्टी, शंखभस्म और वराटिकाभस्म, इन चारोंका मिश्रण (सोंठके ताज़े चूर्ण और घृतके साथ), जातिफलादि चूर्ण, तालीसादि चूर्ण, (भांगयुक्त) और बाल अतिसारहर चूर्ण, ये सब लाभदायक हैं।

सूतशेखर—क्षयनाशक, वातपित्तहर, अम्लपित्तनाशक, हृद्य, वमन और अतिसारको दूर करता है। प्रथमावस्थामें खट्टे डकार या वमनसह अतिसार होने और सूतिका रोगसे क्षयकी सम्प्राप्ति होनेपर सत्वर गुण दर्शाता है।

सुवर्णपर्पटी—सब अवस्थाओंमें उपयोगी है; किन्तु ज्वर कम हो तब देना चाहिये, अधिक ज्वर होनेपर नहीं। यह क्षय कीटाणुओंका नाशकर जीवनीय शक्तिका संरक्षण करती है।

पंचामृत पर्पटी—सब अवस्थाओंमें लाभदायक है। ज्वर हो या न हो, रक्त पूय हो या न हो, पेचिश हो या न हो, अन्त्रविकारजनित सब उपद्रवोंके लिये हितकर है। जब सुवर्णपर्पटी नहीं दी जाती, तब इसका निर्भयतापूर्वक उपयोग किया जाता है।

प्राणदापर्पटी—आम और ज्वरसह अतिसारमें हितकर है।

हेमगर्भ पोटलीरस (क्षय)—रक्तनिष्ठीवन, रक्तस्रावसह अतिसार या ग्रहणी, शिरदर्द, अफारा, अन्त्रप्रदाह आदिको निवृत्त करता है।

अभ्रपर्पटी—सगर्भा और अति नाजुक प्रकृतिवालोंको हितकर है।

अभ्रक, मौक्तिक, शंख, वराटिका मिश्रण—तीनों अवस्थाओंके अतिसारमें हितकर हैं। पित्तमें अम्लता आई हो, उसे दूर करता है और शक्तिको कायम रखता है।

जातिफलादि चूर्ण और तालीसादि चूर्ण—सौम्य, पाचक, अरुचिनाशक और ग्रहणीनाशक हैं। ये चूर्ण अकेले दिये जाते हैं, एवं इतर रस आदिके साथ अनुपान रूपसे भी मिलाये जाते हैं। दोनों चूर्णोंमें भाँग होनेसे उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

१. चि० त० प्र० प्रथम-खण्डमें लिखे हुए वृद्ध गंगाधर चूर्ण, विजयावलेह, अतिविषावलेह, कपित्थाष्टक चूर्ण और दाड़िमाष्टक चूर्ण, इनमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन करानेसे अतिसारकी निवृत्ति होजाती है। इन सबके गुणमें सूक्ष्म-सूक्ष्म भेद रहता है। जो अधिक अनुकूल हो, उसे प्रयोगमें लाना चाहिए।

सूचना—अतिसारको रोकनेके लिये बलात्कारसे मलको रोकनेवाली स्तम्भक औषधि अफीममिश्रित नहीं देनी चाहिए; अन्यथा विषका संग्रह होकर नानाप्रकारके उपद्रवोंकी उत्पत्ति हो जाती है।

ग्राही और पाचक औषधि थोड़ी-थोड़ी मात्रामें देते रहें; जिससे अन्त्र सबल बन, आहारको पाचनकर धारण कर सकें।

पक्का बेलफल क्षय रोगमें हानिकारक माना गया है। कपित्थाष्टकमें कच्चा बेल-फल मिलावें।

शिरदर्दपर—१. खरैंटी, गिलोय और मुलहठीका क्वाथ सहन हो सके, उतना गरम शिरपर छिड़कें।

२. बकरे या मछलीके शिरके क्वाथसे नाड़ी स्वेद देवें।

नाड़ीस्वेद विधान—एक हांडी या घड़ेमें क्वाथ भरें। जिस घड़ेको हाथीकी सूंडके अग्रभागके समान ५-७ फीट लम्बी पीतल आदि धातुकी नली लगी हो, जो नली दो-तीन स्थानोंसे मुड़ी हो, ऐसी नली वाला घड़ा लें। फिर सेक लेनेपर नलीके छिद्रपर सर्वत्र वातहर पत्ते लपेट देवें। पश्चात् रोगीको वातहर तैल या घृतकी मालिश कर यन्त्रके नीचे अग्नि जलावें और स्वेदन करें। इस नाड़ीस्वेदमें वाष्पको मुड़-मुड़कर जाना पड़ता है। इसलिये त्वचाको तीव्र आघात नहीं पहुँचता।

३. बेल, अरनी, सोनापाठा, रास्ना, पाढल, खरैंटी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली और एरण्डमूल आदि वातनाशक औषधियोंके क्वाथसे नाड़ीस्वेद देवें।

४. जलचर और अनूपदेशके पशु-पक्षियोंके मांससे, लघु पञ्चमूलके क्वाथसे या स्नेहमिश्रित काँजीसे नाड़ीस्वेद देनेसे शिरदर्द, पार्श्वशूल आदि नष्ट हो जाते हैं।

पार्श्वशूलपर—१. जीवन्ती, सोया, खरैंटी, मुलहठी, बच, मसाला और गुड़-घी मिला हुआ भुना मांस, विदारीकन्द, मूली और अनूप या जलचर जीवोंका मांस, इन सबको मिला उपनाह स्वेद देवें। उपनाह स्वेद विधि चि० त० प्र० प्रथम-खण्ड पृष्ठ ५० से ५३ में लिखी है।

२. सोया, मुलहठी, कूठ, तगर और देवदारुको घीमें मिला गुनगुना कर पसली पर मोटालेप करें। ऊपर रुई चिपका देनेसे शिरदर्द, पार्श्वपीड़ा और अंसशूल (कन्धों-की वेदना), ये सब दूर होते हैं।

३. पुराना घी २ भाग और तार्पिनका तैल १ भाग मिलाकर मालिश करनेसे पार्श्वशूल, हृदयशूल और अंसपीड़ा आदि नष्ट होजाते हैं।

४. तार्पिनके तैलमें अफीम और कपूर मिलाकर मालिश करनेसे शूलकी निवृत्ति होती है।

५. मुर्गीके कच्चे मांसको पीसकर मोटा-मोटा लेप करनेसे पसलीकी पीड़ा शमन होजाती है।

६. दशमूल, धनियाँ, सोंठ और पीपल, इन १३ औषधियोंको मिला क्वाथकर पिलानेसे पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास और पीनस आदि उपद्रवोंका निवारण होता है।

७. गूगल, देवदारु, तगर, सफेद चन्दन और नागकेशर, इन ५ औषधियोंको मिला घीमें चटनीकी तरह पीस गरमकर शूल स्थानपर सुहाता-सुहाता मोटा लेपकर रूई चिपकाकर कपड़े से बाँध देनेसे वेदनाका नाश होजाता है।

८. पोस्तके डोडोंको जलमें उबाल उसकी वाष्पसे सेक करें। पात्रको चूल्हेपर रक्खें। ऊपर चालनी ढकें। फिर चालनीपर फलालेनका टुकड़ा रक्खें। गरम होनेपर उससे सेक करें। सेक करनेके लिये फलालेनके दो टुकड़े लें। एकसे सेक करें और दूसरा चालनीपर रखें। पहला शीतल होनेपर उसे चालनीपर रखें और चालनीपर रखे हुए टुकड़ेसे सेक करें।

९. दशमूल, खरैंटी, रास्ना, पुष्करमूल, देवदारु और सोंठका क्वाथ पिलानेसे पार्श्वशूल, स्कंधशूल, शिरःशूल और शुष्क वातिक कास आदि पीड़ा शमन होती है।

१०. षडंग यूषके सेवनसे प्रतिश्याय, शिरःशूल, कास, श्वास, स्वरक्षय और पार्श्वशूल आदि उपद्रव नष्ट होते हैं।

कास शमनार्थ—१. मुलहठी और पीपलका चूर्ण या त्रिकटु २ माशेको शहद १ माशेके साथ मिलाकर सेवन करानेसे कास और ज्वरकी निवृत्ति होती है।

२. क्षयकेसरी योग—सफेद मिर्च २ तोले, फिटकरीका फूला २ तोले, शुद्ध बच्छनाग ६ माशे और शुद्ध नौसादर १ तोला लें। इन सबको मिलाकर चूर्ण करें। इसमेंसे आध-आध रत्ती दो माशे मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करानेसे क्षयज्वर और कास नष्ट होते हैं।

सूचना—इस योगमें बच्छनाग होनेसे मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिये।

३. अभ्रकभस्म १। तोला, शृङ्गभस्म २॥ तोले, गिलोय सत्व, मुलहठी, वासाक्षार, तीनों १०-१० तोले और सितोपलादि चूर्ण २० तोलेको अनार शर्बत ४० तोलेमें मिलाकर अवलेह बना लेवें। मात्रा ६ माशेसे १ तोला तक दिनमें २ या ३ बार देनेसे कास, ज्वर, श्वास, अरुचि, रक्तस्राव आदि विकार शमन हो जाते हैं।

४. छोटी पीपल और गुड़का कल्क ४ गुने बकरीके घी और १६ गुने बकरीके दूधके साथ मिलाकर यथाविधि घृत सिद्ध करें। इस घृतमेंसे ६-६ माशे दिनमें २ समय सेवन करनेसे कफकास शमन होती है और अग्नि प्रदीप्त होती है।

५. मरिच्यादि गुटिका—एक-एक गोली मुँहमें रखकर रस चूसनेसे कफ सरलतासे बाहर आता है। दिनमें १०-१५ गोली तक सेवन करें।

६. शृङ्गभस्म—२ से ४ रत्ती तक ३-३ माशे मिश्रीके साथ दिनमें २ समय देते रहनेसे कफशुद्धि होती है और दूषित कफकी उत्पत्ति बन्द होजाती है।

शुष्क कासपर—१. कर्पूरादिवटी या कासमर्दनवटी, इन दोनोंमें से अनुकूल हो उसे मुँहमें रखकर रस चूसें। दिननें १०-१५ गोली तक।

२. माणिक्य रस दिनमें २ समय मक्खन-मिश्रीके साथ देते रहनेसे सूखी खाँसी दूर होजाती है।

३. रौप्यभस्म दिनमें २ समय वंशलोचन, छोटी इलायची, गिलोयसत्व और शहदके साथ देते रहनेसे वातपित्तज कास नष्ट होती है।

४. प्रवालपिष्टी दिनमें २ समय अनारके रस और मिश्रीके साथ देते रहनेसे पित्तप्रधान कास दूर होती है।

५. अलसीकी पुलिटस या रोटी बनाकर फुफ्फुसपर बार-बार बाँधते रहनेसे वेदना, दाह और कफका शमन होजाता है।

उरःक्षत पर—१. खरैंटी, असगंध, शालपर्णी (या गंभारीके फल) शतावरी और श्वेत पुनर्नवाकी जड़को समभाग मिलाकर चूर्ण करें। इसमेंसे ४-४ माशे चूर्ण दिनमें २ समय बकरीके दूध या गोदुग्धके साथ देनेसे उरःक्षत और शोष दूर होते हैं।

२. दूधमें से निकाला हुआ मक्खन, मिश्री और शहद मिलाकर सेवन करनेसे क्षत नष्ट होते हैं तथा शरीर पुष्ट होता है।

३. शुद्ध लाखका चूर्ण १–३ माशे दिनमें दो बार घी और शहदके साथ देवें।

४. बिहीदानेके लुआबमें मिश्री मिलाकर पिलाने रक्तस्रावकी निवृत्ति होती है।

५. लाखके रस या क्वाथ २–२ तोलेमें ६–६ माशे शहद मिलाकर सेवन करानेसे रक्तवमन दूर होती है। लाक्षारस विधि रसतन्त्रसार में लिखी है।

६. स्वरस कृतिसे निकाला हुआ अडूसेके पत्तोंका रस ६ माशे, शहद ६ माशे और पीपलका चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर देवें। ऊपर बकरीका दूध ५ से १० तोले पिलावें।

७. कुकरोंधेका रस २ तोले पिलानेसे रक्तवमन और कफमें रक्त आना बन्द हो जाता है।

८. मुलहठी और रक्तचंदनको बकरीके दूधमें घिसकर पिलानेसे रक्तवमन बन्द होती है।

९. रसतन्त्रसारोक्त लऊक सपिस्ताँ (दूसरी विधि) दिनमें २-३ समय चटानेसे सरलतासे कफ बाहर आता है और रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

१०. अर्जुन छालके चूर्णको अडूसेके पत्तोंके स्वरसकी ७ भावना देवें। इस चूर्णको मिश्री, घृत और शहदके साथ ४--४ माशे दिनमें २ बार देते रहनेसे क्षयकास और रक्तपित्तका नाश होता है।

११. गूलरके मूलका जल या कच्चे गूलरके फलोंका स्वरस १ से २ तोले शहद मिलाकर पिलानेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

१२. संगजराहत भस्म, तृणकान्तमणि पिष्टी, गिलोयसत्व, वंशलोचन, छोटी इलायचीके दाने, सोनागेरू; हीराबोल (खून खराबा—Myrrha) और हीरादोखी गोंद (दमोलखबैन), इन ८ औषधियोंको समभाग मिलाकर १ से २ माशे दिनमें ३ समय शहद या शर्बत अनारके साथ सेवन करानेसे रक्तस्राव सत्वर शमन हो जाता है।

१३. दर्दवाले भागपर फिटकरीके जलमें भिगोया हुआ कपड़ा रक्खें और आध-आध घण्टे पर बदलते रहें।

रसतन्त्रसारमें लिखे हुए रक्तस्रावनाशक प्रयोग अभ्रिरस, लवंगादि, तालसिंदूर, सुवर्णभस्म और प्रवालपिष्टी, एलादिवटी च्यवनप्राशावलेह, वासावलेह, संगजराहत भस्म, बोलपर्पटी वैडूर्यभस्म, मधुकाद्यवलेह (दूसरी विधि), दुर्वाद्यघृत, बोलबद्ध रस और शुभ्राभस्म द्वितीयखण्डोक्त एलादि रसायन।

अभ्रिरस—सरलतासे कफस्राव कराता है; रक्तको बन्द करता है और उरःक्षतको भर देता है।

लवंगादि तालसिन्दूर—क्षय कीटाणु नाशक और अरुचिको दूर करने वाला है। वमन और उरःक्षतके रक्तको बन्द करनेमें हितावह है।

सुवर्ण भस्म और प्रवालपिष्टी मिश्रण—वेदनाशामक, कीटाणुनाशक, विषघ्न, रक्तबन्द करने वाला और तीनों अवस्थाओंमें हितकारी है। ज्वर कम हो तो ही सुवर्ण मिलाना चाहिये। ज्वरावस्थामें केवल प्रवाल देवें; प्रवाल सब अवस्थामें उपकारक है।

एलादि वटी—सौम्य, वान्तिहर, अरुचिनाशक और अति हितकर औषधि है। सब अवस्थाओंमें लाभ पहुँचाती है। सब प्रकृति वालोंको एवं स्त्री-पुरुष, छोटे बड़े सबको निर्भयतापूर्वक दी जाती है। वमन, हिक्का, रक्तस्राव, अरुचि और ज्वरको दूर करती है।

च्यवनप्राशावलेह—रक्त बन्द करने वाला तथा शक्ति देने वाला रसायन है। मस्तिष्क, हृदय और रस-रक्त आदि सातों धातुओंको पुष्ट बनाता है। अधिक दस्त होते हों, तो नहीं देना चाहिये। यह सब अवस्थामें निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। भस्म और रस आदि सेवनके साथ अनुपान रूपसे भी मिलाया जाता है। स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े सबके लिये हितकारक है।

वासावलेह—रक्तपित्त, अधिक रक्त जाना, कफ सरलतासे न निकलना और दाह आदिको दूर करता है। अकेला और अनुपान रूप से भी दिया जाता है।

संगजराहत भस्म—शरीरके किसीभी भागमें से रक्त जानेपर सबको दिया है। अतिनिर्दोष औषधि है। प्रदर, प्रमेह, सुज़ाक, दाह और मुखपाक आदिको भी दूर करती है।

बोलपर्पटी प्रथम विधि और बोलबद्ध रस—रक्त अधिक जानेपर सत्वर रोकनेके लिये दिये जाते हैं। दोनों सौम्य औषधियाँ हैं।

वैडूर्य पिष्टी—रक्त बन्द करने, कीटाणु नष्ट करने और उरःक्षत भरनेमें अति लाभदायक है। आध-आध रत्ती वैडूर्य पिष्टीको प्रवालपिष्टी, गिलोयसत्व और शहदके साथ दिनमें २ या ३ समय देते रहनेसे कीटाणु नष्ट होते हैं; शारीरिक उत्ताप कम हो जाता है और रक्तस्रावका स्तम्भन होता है।

मधुकाद्यवलेह—कास और श्वाससह उरःक्षतको नष्ट करनेमें सौम्य और निर्भय औषधि है। यह अवलेह अकेला एवं दूसरे भस्म, रसायन आदिके साथ अनुपान रूपसे भी दिया जाता है।

दुर्वाद्य घृत—अधिक रक्तस्राव होनेपर उसे शीघ्र बन्द कर देता है।

शुभ्राभस्म—राजयक्ष्माकी वमन, रक्तवमन, रक्तप्रदर, काली खाँसी, सुज़ाक-जनित मूत्रदाह आदि अनेक रोगोंमें उपकारक है। बड़ी उत्तम और निर्भय औषधि है।

विषको मूत्रद्वारा बाहर निकालनेके लिये—१. चन्दनादि अर्क दिनमें २ या ३ समय देते रहनेसे विष सरलतासे बाहर निकल जाता है; जिससे शिरदर्द, दाह, निद्रानाश और ज्वर आदि उपद्रवोंका बल न्यून हो जाता है।

२. जसद भस्म और लोहभस्म १ तोला तथा शिलाजीत २ तोले, तीनोंको मिला जलके साथ खरलकर १–१ रत्तीकी गोलियाँ बाँधकर वंशलोचनके चूर्णमें डालते जायँ और तश्तरीको घुमाते रहें, जिससे वंशलोचन सबपर लग जाय। इन गोलियोंमें से २–२ गोली दिनमें दो समय दूधके साथ देते रहनेसे ज्वरकी बेचैनी, दाह, शिरदर्द, मूत्रमें दाह, स्वप्नदोष, अतिप्रस्वेद, निर्बलता आदि दूर होते हैं और मूत्र शुद्धि होती है।

वमन शमनार्थ—१. एलादिवटी, एलादिचूर्ण, कर्पूराद्य चूर्ण, इनमेंसे अनुकूल औषधि देते रहें। वमनका अधिक त्रास होनेपर शुभ्राभस्म या कच्ची फिटकरी का चूर्ण २ से ५ रत्ती तक मिश्रीमें मिलाकर देनेसे कै बन्द हो जाती है।

२. पीपल (अश्वत्थ) की छालकी राखको १६ गुने जलमें भिगो ऊपरसे नितरा हुआ जल निकालकर थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहनेसे वमनकी निवृत्ति हो जाती है।

दाह शमनार्थ—१. लाक्षादि तैल, चन्दन बलालाक्षादितैल या बकरीके दूध की मालिश करनेसे दाहकी निवृत्ति होती है और त्वचा सुन्दर और मुलायम बनती है।

२. पुराने गोघृतको सौवार जलसे धोकर मालिश करनेसे दाह शान्त हो जाता है।

३. दहीको कपड़ेमें बाँध जल निकाल थोड़ा कपूर मिलाकर मालिश करने से दाहजनित वेदना दूर होती है।

४. खरैंटी, रास्ना, तिल, मुलहठी और नीले कमलको घीमें मिलाकर लेप करने से दाह दूर होता है और शूल भी नष्ट हो जाता है।

हृदय शक्तिके संरक्षणार्थ—१. अभ्रक भस्म और पूर्ण चन्द्रोदय रसको मिलाकर च्यवनप्राशावलेहके साथ देते रहें।

२. नागभस्म, अभ्रकभस्म और लोहभस्म मिलाकर पीपल और शहद के साथ देवें।

३. द्राक्षारिष्ट ५-५ तोले दिनमें दो बार देते रहनेसे हृदयको उत्तेजना मिलती है और मन प्रफुल्लित होता है।

४. जुवाहर मोहरा (रसतन्त्रसार द्वितीय-खण्ड) या दिवालमुश्क दिनमें २ बार देते रहने से हृदय और मस्तिष्कको शान्ति मिलती है।

निद्रा लानेके लिये—१. पैरोंके तलोंमें कांसीकी कटोरीसे मक्खन या लाक्षादि तैलकी मालिश करें।

२. द्राक्षारिष्ट अथवा सारस्वतारिष्ट पिलावें।

३. सूतशेखर रस १-१ रत्ती शामको दूध-मिश्रीके साथ देवें।

४. निद्रोदय रस या अफीम $\frac{1}{8}$ रत्ती देनेसे रक्तस्राव बन्द होता है और निद्रा भी आ जाती है। यह प्रयोग मलावरोध या दुर्गन्धयुक्त अतिसार न हो, तो ही करना चाहिये।

५. जातिफलादि चूर्ण या तालीसादि चूर्ण (भांगवाले) का सेवन कराने से निद्रा आजाती है।

मलावरोध होनेपर च्यवनप्राशावलेह, द्राक्षारिष्ट या आँवलोंके मुरब्बाका सेवन करना चाहिये।

लक्ष्य देने योग्य सूचना

१. सुवर्ण—क्षयरोगमें जन्तु नाश करनेके लिये उत्तम औषध है। किन्तु सुवर्णकी मात्रा $\frac{1}{32}$ रत्ती और सुवर्ण भस्मकी मात्रा $\frac{1}{16}$ से $\frac{1}{8}$ रत्ती से अधिक नहीं देनी चाहिये। अधिक मात्रा देनेसे जन्तु अधिक मर कर उनके विषसे ज्वर बढ़ जाता है।

२. ज्वर १०० डिग्रीसे अधिक होनेपर सुवर्णयुक्त औषध नहीं देना चाहिये। पहले पञ्चामृतरस, रौप्यभस्म, माणिक्य रस या इतर औषधसे ज्वरको कम करने का प्रयत्न करें अथवा सुबह जिस समय ज्वर कम हो उस समय सुवर्ण-मिश्रित औषधि दें।

३. ज्वर अधिक होनेपर तैलकी मालिश नहीं करनी चाहिये। मन्द ज्वर वाले और ज्वररहित रोगियोंके लिये तैल मर्दन लाभदायक है। तैलमर्दन सायंकालको हलके हाथ से करना चाहिये; दूसरे दिन सुबह गरम जलमें कपड़ा भिगोकर देहको पोंछ लेना चाहिये। लाक्षादि तैलकी मालिशसे प्रस्वेद कम आता है; जिससे शक्तिपात कम होता है।

४. ज्वर दिनमें बार-बार घटता-बढ़ता है। अतः क्षय रोगीका ज्वर ३—३ घण्टेपर जाँच करके लिखते रहना चाहिये। बगल, मुँह और गुदा, इन ३ स्थानोंसे उत्तापका निर्णय होता है। बगलकी अपेक्षा मुँहमें १ डिग्री और गुदामें १ से ३ डिग्री गरमी बहुधा अधिक आती है। प्रस्वेद या तेज़ वायुके आघातके पश्चात् बगलकी उष्णता कम हो जाती है। मुँहमें अधिक बोलनेके पश्चात् या मुखपाक होनेसे उत्ताप निर्णय नहीं होता। थर्मामीटरको श्वासोच्छ्वासकी वायु लगते रहनेसे भी उष्णता कम आती है; तथा गुदामें शौचके पश्चात् तुरन्त देखनेसे गरमी कम आती है। अन्य समयमें सच्चा बोध कराती है। अतः जैसी अनुकूलता हो उस अनुसार उत्तापकी जाँच करें। गुदाके लिये थर्मामीटर अलग रखना चाहिये।

५. भोजन, निद्रा, शौच और स्नानके पश्चात् एवं मानसिक चिन्ता होनेपर शारीरिक उष्णता कम हो जाती है; तथा मैथुन, परिश्रम मध्याह्नकाल, क्रोध, भय, ईर्ष्या आदि वृत्तिकी उत्पत्ति होनेपर एवं स्त्रियों का मासिक धर्म आनेपर उष्णता बढ़ जाती है। इन कारणों परभी लक्ष्य देकर उत्ताप क्रमकी जाँच करनी चाहिये।

६. दूषित कफको सत्वर बाहर निकालनेका प्रयत्न करें; अन्यथा दूषित कफमें रहे हुए कीटाणु फुफ्फुसके नूतन-नूतन भागको दूषित करते रहेंगे। रात्रिको अधिक कास चलनेपर निद्रा नहीं मिलती; इस हेतुसे रात्रिके समय कफको अधिक उत्तेजना देने वाली औषधिका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

७. यदि रक्त गिरता हो, तो रक्तको बन्द करनेके लिये सबसे अधिक लक्ष्य देना चाहिये और इतर उपद्रवोंकी चिकित्सा गौण रूपसे करनी चाहिये। रक्तस्रावके रोगीको पूर्ण विश्रान्ति देनी चाहिये।

८. ज्वर शमनार्थ पसीना लाने वाली औषधि नहीं देनी चाहिये; एवं अतिसार बन्द करनेके लिये अफीममिश्रित औषधि और पक्के बेलका उपयोग नहीं करना चाहिये।

९. क्षय रोगकी एकभी ऐसी औषधि नहीं है, जो १०–२० दिनमें रोगको दूर कर दे। इस रोगमें शान्ति और श्रद्धापूर्वक पथ्यपालनसह दीर्घकाल पर्यन्त नियमित रूपमें औषधिका सेवन करते रहनेसे ही लाभ होनेकी आशा रक्खी है।

मन्त्रचिकित्सा

सबल मानसिक संकल्पवालों द्वारा सद्भावनापूर्वक यक्ष्माके नाशके लिये अथर्व संहिताके द्वितीय-काण्डके निम्न सूक्तके पाठका विधान किया है—

(१) अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया विवृहामि ते॥

(२) ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनुक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्य मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते॥

(३) हृदयात्ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात्पार्श्वाभ्याम्।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि॥

(४) आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठो रुदरादधि।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्यां वि वृहामि ते॥

(५) ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते॥

(६) अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते॥

(७) अङ्गे अङ्गे लोम्नि लोम्नि यस्ते पर्वणि पर्वणि।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीवर्हेण वि ष्वञ्चंविवृहामसि॥

अथर्व० २। ३३। १ से ७ मन्त्र

उपर्युक्त मन्त्र पुनः अथर्ववेदके काण्ड २० सूक्त ९६ के मन्त्र १७ से २३ तक भी लिखे हैं।

हे राजयक्ष्मा गृहीत रोगी! तेरे नेत्र, नासिका, कर्ण, चिबुक (होंठके नीचेके प्रदेश) शीर्ष, जिह्वा और शिरमें प्रवेश किये हुए यक्ष्मारोगको बाहर निकाल लेता हूँ॥ १॥

हे रोगी! तेरे ग्रीवा (सूक्ष्म-सूक्ष्म १४ अस्थि), रक्तवाहिनियाँ, कीकसा (कण्ठस्थ अस्थि) अनूक्य आदि ३३ अस्थियाँ, कन्धे और हाथ आदिमें से यक्ष्माको पृथक् कर देता हूँ॥ २॥

हे व्याधिपीड़ित! तेरे हृदय कमल, हृदयके समीपमें रहे हुए क्लोम, (फुफ्फुस) हलीक्ष्ण संज्ञावाला मांसपिण्ड, दोनों पार्श्व, दोनों मतस्न (वृक्क) प्लीहा और यकृत में से यक्ष्मा रोगको नष्ट कर देता हूँ॥ ३॥

हे यक्ष्मगृहीत रोगी ! तेरे लघु अन्त्र, गुदा, बृहदन्त्र, उदर, प्लाशि (शिश्नमूलकी नाड़ी या उपान्त्र) या फुफ्फुस और नाभि प्रदेशसे यक्ष्माको दूर करता हूँ ॥ ४ ॥

हे रोगी ! तेरे दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों पार्ष्णि (एड़ी), दोनों पैरके अगले भाग, भसत् (कटि प्रदेश), दोनों श्रोणि (कटिके नीचेका दोनों ओरका प्रदेश), भासद (गुह्य प्रदेशके भीतरका भाग) और भासमान (गुह्यस्थान), इन सब स्थानों से यक्ष्माको अलग कर देता हूँ ॥ ५ ॥

हे व्याधि पीड़ित मनुष्य ! तेरे अस्थि और मज्जा आदि सब धातु, सूक्ष्म शिराएँ, धमनियाँ (स्थूल नाड़ियाँ), हाथ, अंगुलियाँ, नख आदि स्थानोंमेंसे यक्ष्मा निकाल देता हूँ ॥ ६ ॥

हे रोगी ! तेरे न कहे हुए सब अङ्ग और सब रोम कूप, सब सन्धियों, त्वचा और चक्षु आदि समस्त अवयवोंमें व्याप्त यक्ष्मारोगको इस कश्यप ऋषि प्रणीत मन्त्रसे आकर्षित कर बाहर फेंक देता हूँ ॥ ७ ॥

ऋग्वेद संहिता अष्टक ८, मण्डल १०, सूक्त १६३ यक्ष्मनाशन प्रकरणमें इस प्रकार मन्त्र कहे हैं—

(१) अक्षिभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिकाज्जिह्वाया विवृहामि ते ॥

(२) ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनुक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य मंसाभ्यां बाहुभ्यां विवृहामि ते ॥

(३) आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोहृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो विवृहामि ते ॥

(४) ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो विवृहामि ते ॥

(५) मेहनाद्वनं करणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं विवृहामि ते ॥

(६) अङ्गादङ्गाल्लोम्नोल्लोम्नो जातं पर्वणि पर्वणि ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं विवृहामि ते ॥

इन उपर्युक्त मन्त्रोंका अर्थ पहले लिखा गया है अतः यहाँ पुनरावृत्ति नहीं की ।

इस तरह ऋग्वेद संहितामें यक्ष्मानाशक इतर अनेक सूक्त गाये हैं । इनमेंसे दशम मण्डलके दो मन्त्र यहाँ दिये जाते हैं ।

आत्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षंते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥
ऋ० मं० १० । सू० १३७ । ४ ।

हे रोगी ! सुखकर, शान्तिप्रद, मंगलदायक और बलवान् मनोबलद्वारा आकर्षण करके तेरे यक्ष्मा रोग को नष्ट करता हूँ ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय ।
कमज्ञात यक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदि वै तदेनं ।
तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम् ।

ऋ० मं० १० । सू० १६१ । १ ।

हे यक्ष्माभिभूत मनुष्य ! इस चरु साधन द्वारा तेरे को अज्ञात यक्ष्मा रोग एवं चिरकालस्थायी राजयक्ष्मा रोगसे छुड़ा देता हूँ । यदि इस कालमें इस व्याधिग्रस्त व्यक्ति को ग्रहण करने वाले किसी देवता ने पीड़ित किया हो, तो हे इन्द्राग्नि देव ! इस रोगी को मुक्त कर दे ।

ऋग्वेदके दशम मण्डलके १६१ वां सूक्त अथर्ववेदमें भी लिखा गया है। इस हेतुसे यह मंत्र अथर्ववेदमें भी आया है ।

समस्त व्याधि समूहोंका नाशक एक सूक्त अथर्ववेदका आगे ग्रहावेशित मूर्च्छा की चिकित्सामें दिया जायगा ।

वेदोंमें अनेक सूक्त और मन्त्र रोगनाशक कहे हैं । मन्त्र शास्त्रमें नाना प्रकारके मन्त्रोंका विधान है । शास्त्रकारोंने मन्त्रचिकित्साको श्रेष्ठ दैवीचिकित्सा कही है । मानसिक बलवृद्धि और सदाचारका आग्रह पूर्वक पालन होनेपर मनुष्य इस दैवी-चिकित्साका उपयोग कर सकता है । वर्त्तमानमें मनोबल बढ़ानेकी ओर जनताकी रुचि कम है; एवं मन्त्र-तन्त्रमें श्रद्धा न होनेसे इसका अधिक विस्तार नहीं किया ।

डॉक्टरी औषध चिकित्सा

डॉक्टरीमें सुवर्ण लोह मिश्रित सेनोक्रा इसिनका शिरामें अन्तःक्षेपण करते हैं । इसके प्रभावसे लक्षण दूर हो जाते हैं; किन्तु कीटाणु जीवित रह जाते हैं । इसके अतिरिक्त इसकी प्रतिक्रिया रूप ज्वर, लसीकामें है, अतिसार और त्वचाप्रदाह आदि विकार गंभीर रूपमें उपस्थित होते हैं । पाण्डुताकी या कणरहित श्वेताणुओंकी भी वृद्धि होती है । वर्त्तमानमें स्ट्रेप्टो माइसिन के अन्तःक्षेपण दिये जाते हैं । किन्तु वह वातवाहिनियोंपर घातक असर पहुँचाता है । इस बातका स्वीकार ब्रिटिश मेडिकल जर्नल ने भी किया है ।

कफवृद्धि होनेपर—

गिलसराइज़ाका घनसत्व (रवेसूस) २।। ग्रेन
अनिसून (सौंफ) का तैल ।। बूंद
अरब्बी गोंद १० ग्रेन

इस हिसाब से टिकिया बनाकर देते रहें।

कासशमनार्थ—मोर्फिया या हिरोइन देते हैं।

अतिसार होने पर—डोवर्स पाऊडर या विस्मथ।

अरुचिपर—भोजनके पहले कुचिलेके अर्कका मिश्रण।

पथ्यापथ्य

पथ्य—विधिवत् मद्यपान (शराबके व्यसनीके लिये प्राचीन विधिसे बनी हुई शराबका मर्यादामें पीना), जंगलके पशु-पक्षियोंके सूखे मांस, मूंग, साठी चावल, गेहूँ, जौ, शालि चावल, ये सब भोजन हितकर हैं।

दोषोंकी अधिकता है, देह बलवान् है, तो (प्रथमावस्थाके आरम्भमें) मृदु वमनविरेचनद्वारा कोष्ठ शुद्धि करें। फिर गेहूँ, मूंग, चना, लाल शालि चावलोंके भात, बकरेका मांस, बकरीके घी, मक्खन और दूध मांसाहारी पशु-पक्षियोंका मांस, जंगलके पशु-पक्षियोंका मांस रस, पक्के केलेका मोचा, पक्के कटहल, पक्के आम, आँवले, खजूर, पुष्करमूल, फालसे, नारियल, सुहिंजनेकी फली; परवल, तालके नये फूल, अंगूर, सौंफ, सैंधानमक, वासा के पत्ते, गौ और भैंसका घी, बकरियोंके बीच रहना, सोना, बकरीके मल-मूत्रका लेप, मत्स्यण्डिका (मिश्री), शिखरणी (श्रीखण्ड), मदिरा, रसाला (शिखरणीभेद), कपूर, कस्तूरी, श्वेत चन्दन, केशर, सुगन्धित तैल, आदिकी मालिश, सुगन्धित पदार्थोंका लेप, स्नान, मनोहर वस्त्र आदिका धारण, अवगाहन (टबमें जल भरवाकर बैठना), ऊँची अट्टालिकाओंमें निवास, सुवासिक पुष्पमाला धारण, आनन्ददायक वार्त्तालाप, सुगंधयुक्त मन्द वायुका सेवन, गीतश्रवण, नृत्य कराना, चन्द्रकी निर्मल चाँदनी में बैठना, रमणीय दृश्य देखना और मोतीमणि-योंवाले अभूषणोंका धारण, होम, दान तथा देव, ब्राह्मण, वैद्य और पूज्योंकी सेवा आदि।

इसके अतिरिक्त दूधमेंसे निकाला हुआ घी, ब्रह्मचर्यका आग्रहपूर्वक पालन, शराबमें प्रसन्ना, वारुणी, शीधु, वारुणीमण्ड आदि, आसव, अरिष्ट, शहद, अण्डे, चाङ्गेरी, अनारदाना, सोंठ, अदरक, पीपल, लौंग, कालीमिर्च, दालचीनी, इलायची, जौ, मूंगका यूष, कुलथीका यूष, धनियाँ, ज़ीरा आदि पथ्य माने गये हैं।

भगवान् धन्वन्तरिजीने लहशुनको पथ्य माना है। इतना ही नहीं; बल्कि राजयक्ष्मा रोगकी उत्तम औषधि रूप भी कहा है। आधुनिक विद्वानोंका भी यही मत है।

परवल, गूलर, बथुआ, सुहिंजनेकी फली, पुराना कुष्माण्ड, सैंधानमक, अनारकी चटनी, साबूदाना, आरारोट, बार्लि, शरीरको कपड़ेसे सदा ढका रखना, औटाकर शीतल किया हुआ जल, समुद्रतटपर रहना, गूगलका धूप, लोहबानकी धूप, देवदारु, सरल या बांसके जंगलमें निवास, पक्के मीठे आम, अंगूर, मीठे अनार,

खजूर, छुहारे, फालसे, नारियल और बृंहण-मांसवर्धक भोजन इत्यादि पथ्य हैं। बकरीका दूध पचन हो उतने परिमाणमें देवें। किसीको दूध पचन न होता हो, तो चूनेका नितरा हुआ जल या सोड बाई कार्ब मिलाकर देनेसे पचन हो जाता है। इस तरह समान जल तथा थोड़ा नागरमोथा और सोंठका चूर्ण मिला दुग्धावशेष क्वाथकर देनेसे भी दूधका पचन हो जाता है।

रोगीको मांसरस या मांस मिलाकर सिद्ध किया हुआ भोजन या छागलाद्य घृतका सेवन कराना अति हितकारक है।

मांसाहारी रोगियोंको कौआ, उल्लू, भेड़िया (Wolf), चीता, साँप, नौला, गीध, नीलकण्ठ आदि मांसभक्षी पशु-पक्षियोंका मांस खिलाना चाहिए। ऐसे रोगियोंको मयूरका मांस कहकर गीध और नीलकण्ठ आदिका मांस देवें। तीतरके मांसके बहानेसे कौएका मांस, मछलीका कहकर साँपका मांस, घीमें भूनी हुई मछलीकी आँतोंके व्याजसे भूने हुए केंचवे, खरगोशके नामसे लोमड़ी, नौला, बिल्ली, गीदड़के बच्चे आदिका मांस, हिरनके बहाने सिंह, व्याघ्र, तरक्षु (जरख) आदिका मांस तथा भैंसके व्याजसे हाथी, गैंडा, घोड़ा, ऊँट आदिका मांस खिलाते रहें।

यद्यपि घास खाने वाले पशुओंका मांस भी हितकर ही है; तथापि मांस-भक्षी पशु-पक्षियोंका मांस बढ़ानेमें अति विशेष है।

इस हेतुसे महर्षि आत्रेय कहते हैं कि—

मांसेनोपचिताङ्गानां मांसं मांसकरं परम्।

अर्थात् मांसहारियोंका मांस, मांस बढ़ानेमें सर्वोत्तम है।

इस तरह मृग आदि पशु-पक्षियोंके मांस भी तीक्ष्ण, उष्ण और लघु होनेसे प्रशस्त हैं। मांस-भक्षी प्राणियों की अपेक्षा हिरन, खरगोश आदिका मांस लघु होता है। अतः प्रकृति, रोगबल, आयु, रोगीका आहार, ऋतु, सात्म्य आदिका विचार करके अधिक हितकर मांसको प्रयोगमें लाना चाहिए।

अनेक निंदित मांसाहारी प्राणियोंका मांस खानेका रिवाज नहीं है। इसलिए नाम बदल कर देनेकी आचार्योंने आज्ञा की है। नाम बदल कर देते हैं, तो सुखपूर्वक सेवन हो सकेगा। यदि सत्य कह दिया जायगा, तो घृणा आ जानेसे उबाक आने लगेगी और वमन होकर मांस निकल जायगा। यदि केवल बेचैनी रहे, तो भी ऐसा आहार, बल और ओजकी वृद्धि नहीं कर सकता।

मयूर, तीतर, मुर्गे, हंस, सूअर, ऊँट, गधा, गौ, भैंस आदिके मांस भी मांस-वृद्धिके लिए उत्तम हैं।

वातज शोषमें प्रसह जातिके पशु-पक्षी, भूशय जातिके पशु, अनूप देशके जल-चर और स्थलचर जीवोंका मांस भोजनके लिए देना चाहिए। तथा कफपित्तप्रधान

शोष रोगीको प्रतुद (गीध, बाज़ आदि पक्षी), विष्कर (तीतर, लावा, मुर्गा, चिड़िया आदि पक्षी) और धन्वजों (निर्जल देशमें रहने वाले पशु-पक्षी) मांस विधिवत् पकाकर देना चाहिए।

मांसके लिये प्राणियोंकी ८ जाति की हैं—(१) प्रसह (हमलाकर दूसरे जीवोंको मारकर मांस खानेवाले पशु पक्षी), (२) भूशय (बिलमें रहने वाले), (३) आनूप (अनूप देशवासी), (४) जलजा (जलमें निवास करने वाले), (५) जलचर (जलमें विचरने वाले), (६) स्थलजा (जंगलमें रहने वाले मृग आदि), (७) विष्कर, (पैर और चञ्चुसे कुरेदनेवाले) और (८) प्रतुद (पंजे और चोंचसे बार-बार चोट लगाकर चुगने वाले)।

इन सबके गुण पृथक् पृथक् होनेसे जीवोंके नाम और गुणका संक्षेपमें चरक संहिता और सुश्रुत संहिताके आधारसे वर्णन करते हैं।

इनमेंसे सामान्यरूपसे प्रसह, भूशय, आनूप, वारिजा और वारिचारिण जीवोंका मांस, गुरु, उष्ण, स्निग्ध, मधुर, बलमांसवर्धक, शुक्रप्रद, वातहर और कफपित्तवर्धक हैं। ये मांस नित्य व्यायाम करने वाले और दीप्ताग्निवालोंके लिये हितकर हैं।

इनमें मांस खानेवाले प्रसह जातिके जीवोंका मांस, जीर्ण अर्श, ग्रहणी दोष और शोष रोगीको देना चाहिए।

लावा आदि विष्कर वर्ग, प्रतुद वर्ग और मृग आदि जांगल पशुओंका मांस लघु शीतल, मधुर, कसैला और मनुष्योंके लिये हितकर है। पित्तकी अति वृद्धि, वातमध्य तथा कफकी हीनता होनेपर ये हितकर हैं। मलको भी बांधता है।

बकरेका मांस, किञ्चित् शीतल, गुरु, स्निग्ध, अल्प दोष वाला है। मनुष्य और बकरेके देहकी धातु समान होनेसे अभिष्यंदी नहीं है; और मांसवर्धक है।

प्रसह—गौ, गधा, घोड़ा, खच्चर, ऊंट, चीता, सिंह, भालू, बन्दर, भेड़िया, बाघ, तरक्षु, (जरख), बभ्रु (बहुत बाल वाले एक प्रकारके पर्वतके कुत्ते), बिल्ली, चूहा, लोमड़ी, गीदड़, श्येन (सकरा) पक्षी, कुत्ता, चाष, कौआ, बाज़, मधुहा (पक्षी भेद), सफेद चील, नीलकण्ठ, गीध, उल्लू, कुलिङ्ग (काली चिड़िया), धूमीका (चिड़िया) और कुरर (मछली खानेवाला पक्षी), ये सब पशु-पक्षी प्रसह जातिके कहलाते हैं।

इस प्रसह जातिके जीवोंमेंसे सिंह आदि पशुओंको सुश्रुत संहितामें गुहाशय कहा है; तथा इनके मांसके गुण मधुर, गुरु, स्निग्ध, बल्य, वातनाशक और उष्णवीर्य हैं। इनके मांस नेत्र और गुह्य रोगोंमें सर्वदा हितकर है। प्रसह पक्षियोंके मांसके गुण, रस, वीर्य, विपाकमें सिंह आदि पशुओंके समान हैं। ये सब शोष रोगीको हितकर हैं।

भूमिशय—सफेद, श्याम, काला और चितकबरा जल-सर्प, कूर्चीका, चिल्लट (चील पक्षी), मेंढक, गोह, शल्लक (सेह), गण्डक (गोह का भेद), कदली (बाघ जैसा पशु या अजगर), नौला और दूसरी प्रकारके सेह ये सब भूमिशय कहलाते हैं।

इस भूमिशय जातिके जीवोंके मांसमें मल-मूत्रका संग्रह करना, उष्ण-वीर्य, मधुर विपाकी, वातहर, श्लेष्म और पित्त धातुको बढ़ाना, स्निग्ध तथा कास, श्वास और कृशताको दूर करना आदि गुण रहे हैं।

खरगोश—कसैला, मधुर, पित्तकफशामक तथा वीर्यमें अति शीतल न होनेसे वायुको सामान्य लाभ पहुँचाने वाला है।

गोह—का मांस विपाकमें मधुर, रसमें कसैला और चरपरा, कफपित्तशामक, मांसवर्द्धक और बलवर्द्धक।

शल्यक—(नौला) मधुर, पित्तनाशक, लघु, शीतल और विषनाशक।

प्रियक—(चित्र मृग) वायु रोगमें पथ्य।

अजगर—बवासीरमें हितकर।

सर्पका मांस—अर्श और वात रोगका नाशक। कृमि और दूषि विषको नष्ट करता है; चक्षुके लिये हितकर, विपाकमें मधुर तथा बुद्धि और अग्निको बढ़ाने वाला है। इनमें दर्वीकर—चौड़ी फन वाला साँप और दीपक सांप विपाकमें चरपरे, नेत्रके लिये हितकर तथा मल-मूत्र और वायुको निकालने वाले हैं।

वारीशया—कछुआ, ककोड़ा, मछली, शिशुमार (नाकु), तिमिङ्गिल (ह्वेल मछली), छीप, शंख, जलबिल्ली (ऊदबिलाव), कुम्भीर (घड़ियाल), चुलुकी (शिशुमार भेद) और बड़े मगरमच्छ आदि।

वारिचारिणः—हंस, क्रौंच (कुंजपक्षी), बलाका (समूह रूपसे उड़ने वाले बगुले), बगुल, कारण्डव (सफेद हंसभेद), प्लव, शरारी (आटी), पुष्कराह्व, केशरी, मानतुण्डक, मृणालकण्ठ (कमलकी नाल सदृश कण्ठ वाला), मद्गु (जल कौआ), कादम्ब (कलहंस), काकतुण्डक (सफेद कारण्डव), उत्क्रोश (कुररीपक्षी भेद), पुण्डरीकाक्ष (पुण्डर), मेघराव (पपीया-चातक), अम्बुकुक्कुटी (जलमुर्गी), आरा, नन्दीमुखा, वाटी, सुमुख, सहचारी, रोहिणी, काशकानी, सारस, रक्तशीर्षक (सारसभेद), चक्रवाक (चकवा) और जलमें विचरने वाले अन्य पक्षी वारिचारण कहलाते हैं।

वारिचर प्राणि, शंख आदि और कछुए आदि रस और विपाकमें मधुर, वातनाशक, शीतल, स्निग्ध, पित्त धातुको हितकर (पित्तको शान्त बनाने वाला), ग्राही और श्लेष्म शोधक है।

काला ककोड़ा—बलवर्धक, कुछ उष्ण, वातनाशक, संधि स्थानोंको जोड़ने वाला, मल-मूत्र निकालने वाला तथा वातपित्तनाशक है।

नदीके मत्स्य—मधुर, गुरु, वातहर, रक्तपित्तवर्धक, उष्ण, वृष्य, स्निग्ध और मलको कम करने वाले हैं। तालाबके मत्स्य-स्निग्ध और स्वादु; तथा समुद्रमें रहने वाले मत्स्य भारी, स्निग्ध, मधुर, अति पित्तवर्धक नहीं, उष्ण, वातहर, वीर्यवर्धक, मल और श्लेष्मधातुको बढ़ाने वाले हैं। समुद्रके मत्स्य मांसभोजी होनेसे विशेषतः बलवर्धक होते हैं।

विष्कर—काली तीतर, बटेर, वार्त्तिक (बगुला या कपिञ्जल भेद), गोरा तीतर, चकोर, उपचक्र (काली नोक वाला चकोर), लाल वर्णका कुक्कुभ, ये सब विष्कर कहलाते हैं। एवं वर्त्तक (बत्तक), वर्त्तिका (छोटी जातिकी बत्तक), मयूर, तीतर, मुर्गा, कुंकु, सारपद, इन्द्राभ, मल्ल कङ्क, गोनर्दा (घोड़ा कङ्क), गिरीवर्त्तक, क्रकर (क्रया पक्षी), अवकर, वारट (हंस) आदि भी विष्कर कहलाते हैं।

ये दो प्रकारके विष्कर कहे हैं। इनके गुणमें कुछ अन्तर होनेसे दो समूह अलग-अलग कहे हैं।

भगवान् धन्वन्तरिजीने इस विष्कर जातिवाले पक्षियोंके मांसका गुण हलका शीतल, मधुर, कसैला और दोषशामक कहा है।

लावा-संग्राही, दीपन, कसैला, मधुर, लघु, विपाकमें चरपरा और त्रिदोषनाशक।

तीतर-कुछ भारी, उष्ण, मधुर, वृष्य (वीर्यवर्धक), बुद्धि और जठराग्निको बढ़ाने वाला, सर्वदोषनाशक, ग्राही और वर्णको प्रसन्न करने वाला है। गौर तीतर विशेषतः हिक्का, श्वास और वातहर।

कपिंजल-रक्तपित्तनाशक, शीतल और लघु तथा कफप्रधान रोग और मन्द वातमें अति हितकर है।

क्रकर और उपचक्र,-वातपित्तनाशक, वीर्य, बुद्धि, अग्नि और बल को बढ़ाने वाले, लघु और हृदयपौष्टिक।

मयूर-कसैला, मधुर, नमकीन, त्वचा और बालोंको हितकर तथा रुचिप्रद। स्वर, मेधा, जठराग्नि, आयु, नेत्र-शक्ति, वर्ण-शक्ति आदिको बढ़ाता है।

जंगली मुर्गा-स्निग्ध, उष्ण, वातहर, वृष्य और मांसवर्धक। गाँवके मुर्गेमें वे ही गुण हैं; किन्तु कुछ भारी है। संग्रहणी वालोंको हानिकर है; तथा वातरोग, क्षय, वमन और विषम ज्वरको नाश करता है।

प्रतुद—शतपत्र (राजशूक-कठफोड़ा), भृङ्गराज (काले रंगका पक्षी-पक्षिराज), कोयष्टि (कोपग-बड़ी जांघवाला पक्षी), जीवजीवक (विष देखनेसे जिसकी मृत्यु हो जाती है। भूतकालमें राजा लोग इस पक्षीको भोजन दिखाकर फिर भोजन करते थे), कैरात (कोकिल भेद), कोकिल (कोयल), अत्यूह (डाहुक), गोपापुत्र, प्रियात्मज, लट्वा (बुलबुल-फेंचाक), लट्टूषको (लट्वाकाही भेद है), बभ्रु (पिङ्गल वर्णका पक्षी), वटहा (बडहा), हिडिमानक (जो बहुत ज़ोरसे बोलता है),

जटी (जटायु), दुन्दुभि वाक्कार, लोहपृष्ठ (कुलिङ्ग भेद), कुलिङ्ग (वनका चिड़ा-वधा), कपोत (जंगली कबूतर), शुक (तोता), शारंग (चातक), चिरिटी (चिटाई पक्षी), कंकु (काउनपक्षी), यष्टिक (या हूटपक्षी), सारिका (मैना), कलविङ्क (लाल शिरवाली चिड़िया), जंगली चिड़िया, अङ्गारचूड़क (बुलबुल), पारावत (परेवा) और पानविक (कबूतर भेद) ।

सुश्रुत संहितामें इन प्रतुदोंके मांसको कसैला, मधुर, रुक्ष, वातुल, पित्तश्लेष्महर, शीतल, मूत्रको बद्ध करनेवाला और मलकी उत्पत्तिको कम करने वाला लिखा है ।

जंगली कबूतर–कसैला, स्वादु नमकीन और भारी है । पारावत–रक्तपित्तशामक, कसैला और विशद; तथा विपाकमें मधुर और भारी ।

कुलिङ्ग–मधुर, स्निग्ध, कफ, धातु और शुक्रको बढ़ानेवाला तथा रक्तपित्तनाशक है ।

घरमें रहनेवाला चिड़ा अति वीर्यवर्धक ।

व्यवाय शोषीको कौआ, उल्लू, नौला, बिलाव, गण्डूपदा (कैंचवे), व्याल (चीता आदि) विलेशय जीव, चूहे और गीध आदिके मांसको सरसोंके तैलमें भून सैंधानमक मिलाकर देना चाहिये । इस तरह जांगल पशुओंका मांस तथा मूंग और अरहरकी दालके यूषको स्वादिष्ट बनाकर देना चाहिये । एवं गधे, ऊँट, हाथी, खच्चर और घोड़ा आदिका मांस भी सुन्दर कल्पनाकर (नाम बदलकर) देना चाहिये ।

मांस सेवन करने वालोंको साथ-साथ शराब देते रहना चाहिये । शराबसे नाड़ियोंका शोधन सत्वर होता है;जिससे धातुपुष्ट होकर शोष रोग सत्वर शमन होता है।

कितनेक आचार्योंके मतमें मांस सेवन करने वाली स्त्रियोंके लिये मांस खानेवाले पशुओंका मांसरस और पुरुषोंके लिये पक्षियोंका मांसरस विशेष उपकारक माना गया है । किन्तु हिरन और बकरेके मांसको पीस चूर्णकर बकरीके दूधके साथ देना यह स्त्री-पुरुष, दोनोंके क्षय व्याधिका निवारण करने वाला है ।

गदहीका दूध मिश्री मिलाकर पिलानेसे निर्बलता सत्वर दूर होजाती है और कफ घटजाता है ।

यदि प्रस्वेद अधिक आता हो, तो दूधमें अण्डेका रस मिलाकर सेवन कराना अति लाभदायक है ।

रक्तनिष्ठीवन होनेपर बर्फचूसनेको दिया जाता है ।

रोगीको ताप ९९° से अधिक रहता हो, तो ऊनी वस्त्र पहनना चाहिये और रोज़ सुबह बदलकर धो लेना चाहिये । फिर वस्त्रोंको धूपमें ही सुखाना चाहिये ।

बिछौनेकी गादीको रोज़ दोपहरके समय १-२ घण्टे तक तेज़ धूपमें डालें और ऊपरकी चद्दरको रोज़ बदल देवें ।

कोई भी वस्तु खिलानेके पहले हाथोंको जन्तुघ्न लोशन, राख या इतर कीटाणु-नाशक औषधिसे ज़रूर धुलवा लेना चाहिये ।

यदि रोगीको प्रतिश्याय हो, तो लावा, तीतर, मुर्गा और बटेर, इनमेंसे एकके मांसरसके साथ लवण, अम्ल, कटु (चरपरे) रसयुक्त, उष्ण तथा घी आदि स्नेहयुक्त भोजन देवें।

षडङ्ग यूष—पीपल, जौ, कुलथी, सोंठ, अनारदाने और आँवला, इन ६ पदार्थोंका यूष स्वादिष्ट बने उतने परिमाणमें लेवें। अन्नकी अपेक्षा द्विगुण बकरेका मांस लेवें। फिर ८ गुने जलमें यथाविधि यूष तैयारकर घीसे छौंककर राजयक्ष्मा रोगीको पिलानेसे प्रतिश्याय, श्वास, कास, शिरदर्द, स्वरक्षय और पार्श्वशूल, ये ६ विकार नष्ट होते हैं; तथा रुचिकी उत्पत्ति होती है।

जौ ४ तोले, कुलथी ४ तोले, मांस १६ तोले और जल १६२ तोले मिलाकर पाक करें। फिर ४ तोले घीमें छौंकें; तथा पीपल, सोंठ, अनारदाने, आँवला और सैंधानमक आदि मसाले रुचि अनुसार मिला लेवें।

क्षय रोगीके लिये मांसरसके सदृश अंडेभी उपकारी हैं। अण्डेकी ज़र्दी, कच्ची ही खाना विशेष लाभदायक है; १ अण्डेकी ज़र्दीको गुनगुने दूधमें मिश्रित करदी जाय, तो वह अधिक सुपाच्य और पौष्टिक मानी जाती है। इस तरह न ले सकें, तो अण्डेको थोड़ा उबाल फिर नमक या मीठा मिलाकर लेवें अथवा मक्खन, मलाई या बिस्कुट आदिके साथ लेवें। इस रोगमें एकबार पूर्ण भोजनकर लेनेकी अपेक्षा थोड़ा थोड़ा दिनमें ३-४ समय कराना अधिक उपकारक है।

अरुचि हो, तो अदरकके टुकड़ेपर नींबूका रस डाल सैंधानमक मिलाकर भोजनके साथ देवें; परन्तु दूधके साथ नींबूका रस नहीं देना चाहिये।

रोगियोंको रोटी देनी हो, तो मोटे बिनाछाने आटेकी देनी चाहिये। बारीक आटे या मेदेकी रोटी देनेसे आँतोंमें दूषित मलसंग्रह होने लगता है। रोटीके लिये नये गेहूँकी अपेक्षा पुराना गेहूँ विशेष हितकर होता है।

भोजनकर लेनेपर १०–२० मिनट बैठकर बाँयी करवट लेट जाना चाहिये। फिर इच्छा होनेपर करवट बदल देवें। भोजनके पहले और पश्चात् १ घण्टा या अधिक लेटे रहना हितकर माना जाता है।

भोजनमें दूध लिया हो, तो मोसम्मी, अनार आदि फल ३ घण्टेके पहले न लेवें। मोसम्मी आदि फल लिया हो, तो ३ घण्टे तक दूध नहीं लेना चाहिये।

क्षय रोगीके लिये पूर्ण विश्रान्ति और अच्छी निद्राकी पूर्ण आवश्यकता है। निद्राके लिये 'अर्धरोगहरि निद्रा' यह परम्परागत आया हुआ वचन पूर्ण सत्य है। निद्रा आनेपर भयङ्कर-से-भयङ्कर वेदनाभी शमन हो जाती है; शरीर हलका हो जाता है और मन प्रफुल्लित बन जाता है।

क्षय रोगीके शुक्रका भली प्रकारसे संरक्षण करना चाहिये। स्त्री समागमसे आग्रहपूर्वक बचना चाहिये। ऐसा विचारभी न लावें कि, स्वप्नदोष होता रहे। स्वप्नमें

वीर्यपात होते रहनेसे भी निर्बलता बढ़ती जाती है। स्वप्नदोष होता हो, तो उसे सत्वर बन्द करनेका प्रयत्न करें। खट्टे, चरपरे पदार्थ और अधिक मधुर पदार्थ भी न खायँ।

रोगीको भोजन कब करना चाहिये, यह नियम ऋतु, स्वभाव और स्थानपर निर्भर है। सामान्य रूपसे जो रोगी प्रातःकाल जल्दी उठ सके, उनको भोजन जल्दी कराना हितकर है। उठनेके २-३ घण्टे बाद थोड़ा दूध,फिर ३ घण्टे बाद थोड़ा भोजन, दोपहरको ताज़ा फल या फलका रस, सायंकालके पहले या रात्रिको जल्दी भोजन, शयनके आध घण्टे पहले थोड़ा दूध इस तरह दे सकते हैं। इनमेंसे प्रकृति या आर्थिक स्थितिके भेदसे उचित अन्तर हो सकता है।

डॉक्टरीमें गेडस मोर्हु (Gadus Morrhua) आदि जातिके मत्स्योंका तैल (Cod Liver Oil) अति हितकर भोजन और औषधिरूप माना है। इस तैलसे यद्यपि क्षयके कीटाणु नष्ट नहीं होते; तथापि यह मांसवर्धक और बलवर्धक माना जाता है। जो रोगी इस तैलको दूधमें मिलाकर ले सकें, उनको भोजनकर लेनेपर तुरन्त दे देवें। मात्रा १ से ४ ड्राम। जो रोगी इस तरह न ले सकें, उनको इमलशनके रूपमें देना चाहिये। अथवा इसकी गोलियाँ (ओस्टेलिन पिल्स आदि) देनी चाहियें।

मांससेवन न करने वालोंके लिये मूली या कुलथी आदिके यूषको घीका छौंक देकर जौ, गेहूँ या शालि चावलोंके साथ देते रहना चाहिये।

पीनेका जल—१. वारुणी (शराब) का ऊपरसे नितरा हुआ अंश देवें।

वारुणी जल ज्वर, थकान, निद्रानाश और कीटाणुओंको दूर करता है, किन्तु रक्तपित्त, रक्तस्राव, विषमिश्रित औषधि सेवन, विषप्रकोप आदिमेंसे कोई हेतु है, तो नहीं देना चाहिये।

२. लघुपञ्चमूलको जलमें मिला उबाल शीतल कर देते रहें।

वातपित्तकी प्रधानता है, तो लघुपञ्चमूलका जल हितकर है।

३. सोंठ और धनियाँ मिला जलको उबालकर देवें। कफ अधिक है और अतिसार होगया है, तो सोंठ वाला जल उपकारक है।

४. भूमि आँवले मिला, जलको सिद्ध करके देते रहें। यह जल रक्तस्राव, पित्त, तृषा, मूत्राघात आदिमें हितकर है।

५. शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, इन ४ पर्णियोंको जलमें मिला पका छानकर देते रहें। यह जल रक्तस्राव और वातप्रकोपको दूर करता है।

भोजन बनानेके लिये इन सिद्ध जलोंमेंसे जो अधिक अनुकूल हो उसे प्रयोगमें लाना चाहिये।

भोजनकर लेनेपर या भोजनके साथ दशमूलाद्य घृत या इतर सिद्ध घृत देनेसे शिरःशूल, पार्श्वशूल, अंसशूल, कास तथा श्वास, ये सब नष्ट होते हैं।

कफ अत्यधिक हो, तो जौ, गेहूँ, माध्वीक (शराब), शीधु (शराब), अरिष्ट,

सुरा, (शराब), आसव और जङ्गलके पशु-पक्षियोंके मांस आदिका भोजन देना चाहिये। भोजन स्नेह (घी) मिला हुआ गुनगुना देवें।

अतिसार हो, तो चांगेरी, मट्ठा और अनारदाने मिली हुई चावलोंकी यवागू तैयारकर पिलाना चाहिये।

मुँह और दाँतोंको खूब साफ रखना चाहिये।

योगरत्नाकरके राजयक्ष्माके पथ्यके अन्तमें लिखा है कि—

ब्रह्मचर्येण दानेन तपसा देवतार्चनैः।
सत्येनाऽचारयोगेन रविमण्डलसेवया॥
वैद्यविप्रार्चनाच्चैव रोगराजो निवर्त्तते।

ब्रह्मचर्य, दान देना, तप (मन और इन्द्रियोंका संयम), देवपूजा, सत्यपालन, सदाचार, रविमण्डल सेवा (सूर्यपूजा-सूर्यस्नान) और वैद्य-ब्राह्मणोंकी पूजा आदिका श्रद्धापूर्वक सम्यक् प्रकारसे पालन करनेपर इस रोगराट्की निवृत्ति होती है।

ब्रह्मचर्यके पालनमें न्यूनता रहेगी, तो पथ्य, चिकित्सा, सेवा आदि सब निष्फल हो जाते हैं।

सूर्यस्नानके जो अधिकारी हैं, उनको सूर्य भगवान् निःसन्देह प्राणदान देते हैं।

अवगाहन विधि—ज्वरमुक्त राजयक्ष्मा रोगीको पहले लाक्षादि या चन्दनादि तैलकी भली-भांति मालिश कर स्नेह (तैल आदि), दूध और जल, तीनोंको मिलाकर कढ़ाई या टब (Tub) में बैठाकर स्रोतोंके प्रतिबन्धकी निवृत्ति अर्थ तथा बलपुष्टि अर्थ अवगाहन कराना चाहिये।

फिर रोगीको सुखसे बैठाकर हलके हाथोंसे घी या तैलका मर्दन करें। पश्चात् उत्सादन (उबटन) लगावें।

यह विधि ज्वर न हो, ऐसी अवस्थामें (केवल प्रथमावस्थामें) करना चाहिये। अवगाहनार्थ रोगीको प्रातःकाल भोजनके १ घण्टे पहले निर्वात स्थानमें १० से ३० मिनट तक बैठाना चाहिये। तैल बहुत थोड़ा (२–४ तोले) डालें। दूध जलकी अपेक्षा १६ वाँ या ८ वाँ हिस्सा लेवें। जलको गरम कर मिलावें। सबको मिलानेपर गुनगुना हो जाना चाहिये। प्रकृति भेदसे तैल, दूध जलके परिमाणमें उचित अन्तर हो सकता है। रोगीके कण्ठतक जल रहना चाहिये।

खुली तेज़वायु न लगे, इस बातका खयाल रखना चाहिये। आकाश स्वच्छ हो, ऐसे दिनोंमें यह क्रिया होती है। यह क्रिया कुछ दिनोंतक रोज़ करा सकते हैं।

उत्सादन—जीवन्ती, शतवीर्या (दूब), विकसा (मजीठ), पुनर्नवा, असगन्ध, अपामार्ग, तरकारी (विजया अथवा अरनी) मुलहठी, खरैंटी, विदारीकंद, सरसों, कूठ, चावल, अलसी, उड़द, तिल, किण्व (महुएके फल या शराबकी गाद), इन सबको मिलाकर चूर्ण करें। चूर्णसे तीन गुना जौका आटा मिलावें। फिर दही और थोड़ा

शहद मिलाकर उबटन लगावें। इस उबटनसे पुष्टि, वर्ण और बलकी प्राप्ति होती है।

स्नान—उबटन लगानेके पश्चात् शीत और वर्षा-ऋतुमें जीवनीय गणकी औषधियों को मिला, जल उबालकर स्नान करावें। जल गुनगुना रक्खें। उष्ण कालमें सुगन्धित पदार्थ मिलाकर स्नान कराना चाहिये।

अपथ्य—विरेचन, मल-मूत्र अधोवायु आदि वेगोंका रोकना, परिश्रम, स्त्री-समागम, स्वेदन, अंजन, रात्रिमें जागरण, साहसकर्म, रूक्ष अन्नपान, विषम भोजन, ताम्बूल, तरबूज़, कुलथी, उड़द, बांसके अंकुरोंका शाक, हींग, खट्टे, कड़वे और कसैले पदार्थ, चरपरे पदार्थ, सम्पूर्ण पत्रशाक (पालक, मेथी, चन्दलोई आदि) क्षार पदार्थ विरुद्ध भोजन, सेमकी फली, ककोड़ा—समस्त विदाही भोजन, करेला और बैंगन आदि।

अपथ्यके अंतमें भैषज्यरत्नावलीकार लिखते हैं कि—

"वृन्ताकं कारवेल्लं च तैलं बिल्वं च राजिकाम्।
व्यायामं च दिवानिद्रां क्षयी कोपं विवर्जयेत्॥"

क्षय रोगीको चाहिये कि, बैंगन, करेला, तैल, पक्के बेल, राई (सरसों), व्यायाम, दिनमें निद्रा लेना तथा क्रोध इन सबको त्याग देवें। भोजनके पश्चात् थोड़ा आराम करनेमें बाधा नहीं है।

इनके अतिरिक्त ओसमें बैठना, चिल्ला-चिल्लाकर बोलना, घूमना, घोड़े आदि पर सवारी करना, धूम्रपान (सिगरेट, बीड़ी गांजा आदि), अधिक नमक, लालमिर्च, मूली, आलू, कंदूरी, रक्तनिष्ठीवन हो जानेके बाद सोंठ, पुनर्नवा, ज्वर रहता हो तो नदीका ताज़ाजल, ज्वरकालमें स्नान, तेज़ शीतल वायुका सेवन, तेज़ धूपका सेवन, अग्निसेवन, संगीत गाना, बाजरी, ज्वार, रायता, अचार, सिरका, चिन्ता, शोक, ईर्ष्या, और कच्चा दूध इत्यादि हानिकारक हैं।

कुलथी अम्लविपाकी होनेसे अम्लपित्त या पित्तकी विकृति वालोंके लिये अपथ्य मानी जाती है। इस तरह अम्लपित्त वालोंको चावलभी बाधा पहुँचाता है।

कदाच लहशुन कटु विपाकी होनेसे भैषज्यरत्नावलीकारने अपथ्य माना है। परन्तु भगवान् धन्वन्तरिजी और आधुनिक विद्वानोंने अति हितकर माना है। यदि किसी रोगीके लिये लहशुन चरपरे विपाकवाला और कामोत्तेजक होनेसे हानिकर होता हो, तो वे सेवन न करें। परन्तु जिन-जिनको पथ्य रहता हो, उनको सेवन कराना चाहिये।

इस विषयमें भगवान् धन्वन्तरिजीका मत चिकित्साके प्रारम्भमें विस्तारपूर्वक दिया गया है। दिनमें निद्रा लेनेका निषेध किया है, फिरभी जिन रोगियोंको रात्रिमें पूरी निद्रा न मिली हो; व्यायामशोषी या अध्वशोषी हो अथवा रोगीबालक या वयोवृद्ध हो या वातवहानाड़ियोंमें शिथिलता आई हो, ऐसे रोगियोंके लिये दिनमें निद्रा लेना हितकर है। यदि दिनमें निद्रा लेनेसे रात्रिको निद्रा कम आती हो, तो ऐसी परिस्थितिमें दिनमें लेटे-लेटे वार्त्तालाप करते रहना हितकर माना जाता है। दिनमें निद्रा लेनेसे कफवृद्धि होती है।

क्षय रोगको सामान्य कासरोग मानकर लंघन नहीं कराना चाहिये या शुष्क भोजन नहीं देना चाहिये । एवं कफ या श्वासरोग मानकर कफस्राव करानेवाली धतूरा आदि औषधियोंका धूम्रपान नहीं कराना चाहिये ।

४८. उरस्तोय

फुफ्फुसावरण प्रदाह-प्लूरिसी-इन्फ्लेमेशन ऑफ प्लूरा ।

Pleurisy-Inflamation of Pleura.

फुफ्फुसावरण परिचय—छातीके दोनों ओर रहे हुए फुफ्फुसपर फुफ्फुसावरण लिपटा हुआ है । यह फुफ्फुसावरण एक थैली रूप है । यह थैली पतली, कोमल श्लैष्मिक-कलामेंसे बनती है । इस थैलीका एक पर्त्त फुफ्फुसको दृढतापूर्वक लगा है और दूसरा पर्त्त छातीके भीतरकी ओर लगा है । दोनों पर्त्तके बीचमें सामान्यावस्थामें कुछ पतली लसीका रहती है, जिससे परस्पर घर्षण नहीं होता ।
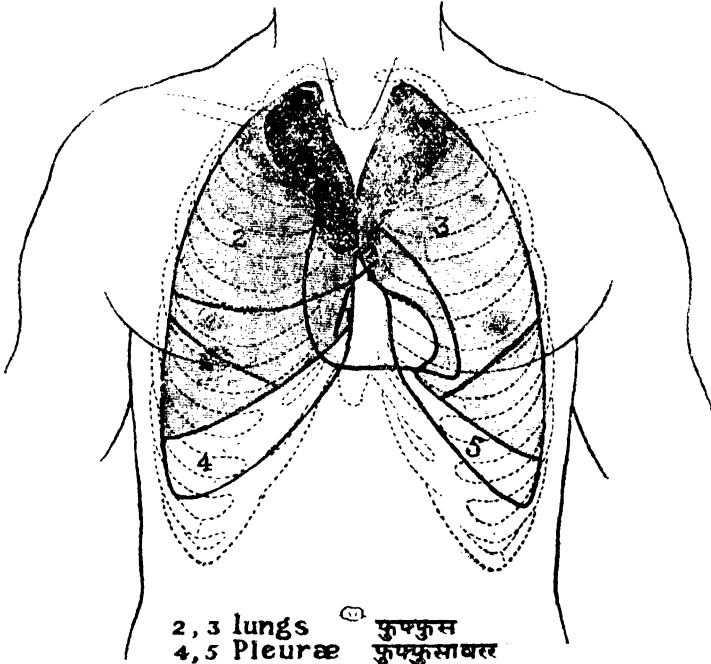
2, 3 lungs फुफ्फुस
4, 5 Pleurae फुफ्फुसावरण

A. Aortic valve. धमनी कपाटिका
B. Bicuspid or mitral valve. द्विपत्र कपाट
P. Pulmonary valve. फुफ्फुसाभिगा धमनीकी कपाटिका
T. Tricuspid valve. त्रिपत्र कपाट

थैलीके भीतरका पर्त्त, जो फुफ्फुसको लगा है, उसे पर्य्याशय स्तर (Visceral Layer) और बाहरका पर्त्त, जो छातीके भीतर लगा है, उसे परिसरीय स्तर (Parietal layer) संज्ञा दी है ।

पर्य्याशय स्तर—समग्र फुफ्फुसको आच्छादित करके मूल भागके चारों ओर लपट जाता है। इस स्थानपर यह परिसरीय स्तरको भी मिल जाता है।

परिसरीय स्तर—दोनों पार्श्वमें छातीके पञ्जरके भीतरकी ओर, आगे उरःफलककी पिछली ओरको तथा पीछे पृष्ठवंशके आगेकी ओरको लगा है। ऊपरकी ओर कण्ठके मूल भागमें फुफ्फुस शीर्षणी (Sibson's Fascia) नामक गंभीर प्रावरणीके निम्न तलको तथा नीचेकी ओर महाप्राचीरा पेशीके ऊर्ध्व तलको लगा है।

यह परिसरीय स्तरका ऊर्ध्व भाग कण्ठमूलसे और फुफ्फुस शिखर परसे होकर, धड़की मध्यरेखाकी ओर मुड़, फिर श्वासनलिकाके पाससे नीचे उतरकर फुफ्फुस-वृन्त तक आता है। इस तरह इस पर्तका निम्न भाग महाप्राचीराके ऊर्ध्वतल परसे मध्य रेखाकी ओर ऊपर जा, हृदयकोषके पास होकर निकलता है और फुफ्फुसवृन्त पर्यन्त ऊपर जाता है। फिर ऊपर और नीचेकी तहें, दोनों फुफ्फुस मूलके चारों ओर लपट जाती हैं और पर्य्याशय स्तरके साथ मिल जाती हैं।

इस परिसरीय स्तरके दोहरा होनेपर जो त्रिकोणाकार प्रदेश बनता है, जो फुफ्फुस वृन्तके नीचे और पिछली ओर जाता है, वह प्रदेश (स्नायुरज्जु सदृश सिरा) महाप्राचीराके मूलको लग जाता है।

जब श्वासग्रहण किया जाता है, तब फुफ्फुस फूलते हैं, जिससे फुफ्फुसावरणके दोनों स्तर एक दूसरेके नज़दीक आते हैं। इससे विपरीत निःश्वास कालमें दोनों फुफ्फुस आकुंचित रहते हैं; जिससे फुफ्फुसावरणके दोनों पर्त्त पृथक् होजाते हैं।

फुफ्फुसावरणके रोगोंकी परीक्षा विधि

प्रकार—(१) दर्शन परीक्षा; (२) घटक रचनाक्रिया विज्ञान; (३) उद्भिद कीटाणु विज्ञान तथा इनके अतिरिक्त रासायनिक परीक्षा।

१. द्रवकी दर्शन परीक्षा—अ. स्वच्छ या गंदला; आ. पूयात्मक; इ. रक्तमय; ई. नानाविध वर्णदर्शक (Opalescent.)

रक्तमयक्षरण—(Exudates)-(१) क्षयरोगमें तन्तुओंमेंसे स्रवित द्रवके भीतर नयी बनी हुई रक्तवाहिनियोंका फटजाना; (२) फुफ्फुसमें नववर्द्धन। यह अति क्वचित् चिरकारी वृक्कप्रदाह, यकृद्दाली और गम्भीर ज्वरोंमें भी।

कोई भी तरल, जिसे पहले आकर्षित किया गया हो, वह रक्तवाहिनियाँ टूटनेपर स्रवित हुआ हो, ऐसी संभावना है। आकर्षणार्थ छिद्र करानेवाली आरदार सुई तरलमें रक्तस्राव कराती है।

नानाविध वर्णदर्शक क्षरण—(पायसतरल या दुग्ध सदृश तरल-Chylous or Milhy effusions) यह वृक्कप्रदाहमें अत्यन्त बारम्बार, फुफ्फुस या फुफ्फुसावरणके घातक रोगोंमें, नववर्द्धनोंमें क्वचित् अथवा पुनः आकर्षित होनेके

पश्चात्। मुख्यतः वसा सदृश स्वरूप होनेपर मद्यार्कमें द्रवणीय किन्तु ईथरमें नहीं, अतः वह कृत्रिम पायस तरल माना जायगा। सच्चा पायस (वसामय पायस) अति क्वचित्। वह मुख्य रसकुल्याकी क्षति, श्वेताणु या अन्तस्त्वचाकी अपक्रान्ति या फाइलेरिया (Filaria) कृमि प्रकोपसे क्षति होता है।

न्युमोकोकल कीटाणुमय तरल—सामान्यतः क्रीम सदृश गाढा पूय और बहुत रक्ततन्तुसह होता है।

दुर्गन्धोत्पत्ति सामान्य—श्वासनलिका प्रसारण और फुफ्फुसकोथमें जब श्वासनलिकासे सम्बन्ध होता है, तब।

२. घटक रचनाक्रिया विज्ञान—निम्न घटक उपस्थित।

अ. लघुलसीकाणु चिरकारी प्रदाहमें, बहुधा सर्वदा क्षयमें, तरल सामान्यतः अनुत्पादक (विकृतिकी उत्पत्ति करानेवाला)।

आ. बहुजीवकेन्द्रमय मध्यस्थ श्वेताणु–पूयोत्पादक आशुकारी प्रदाहमें।

इ. अन्तस्त्वचाके घटक—यदि स्राव नववर्द्धन, हृत्साद, वृक्कप्रदाह और अप्रादाहिक परिस्थितिके हेतुसे श्लैष्मिक-कलामेंसे होकर निकलता है, तो उसके भीतर विशेषतः अन्तस्त्वचाके घटक मिल जाते हैं। तरल बीजशक्तिहीन।

ई. घटकाभाव—श्लैष्मिक-कलामेंसे होकर क्षरित तरल(Transudates) में कभी-कभी घटकाभाव।

३. उद्‌भिद् कीटाणुविज्ञान—

अ. पूयात्मक तरल और बहुजीवकेन्द्रमय मध्यस्थ श्वेताणुयुक्त द्रवमें सूक्ष्म कीटाणु होते हैं। (१) न्युमोकोकस सामान्यतम, परिणाम अशुभ; (२) स्ट्रेप्टोकोकस पायोजेनस–परिणाम कुछ शुभ; (२) स्टेफिलोकोकस - क्वचित् एवं इन्फ्लुएन्जा, प्रलापक ज्वर (Typhus) और सुज़ाक रोगके कीटाणु तथा बृहदन्त्रके कीटाणु समूह आदि।

आ. लघुलसीकाणुमय तरलमें—क्षय कीटाणु कदापि काँचपट्टीपर अनुभवमें नहीं आये; किन्तु धमनीकी दीवारकी मध्य वृत्तिपर इनका प्रतिशत परिमाण बढ़ता जाता है। आवश्यकतापर पशुओंमें अन्तःक्षेपण करके अंगीकार कराया जाता है।

फुफ्फुसावरणमें तरलस्रावके मुख्य कारण—

१. तन्तुओंमेंसे उग्रनिःसरण—(Exudates) आशुकारी प्रदाह (१) फुफ्फुस और फुफ्फुसावरणका; उदा० न्युमोनिया; (२) उरःपंजरके बाहरके संक्रमणका विस्तार; अ. महाप्राचीराका घर्षण; आ. शोणित विषप्रकोप (Septicaemia); (३) आशुकारी आमवातके (कदापि पूयात्मक नहीं) घटक; बहुजीवकेन्द्रमय दानेदार श्वेताणु।

क्षरित द्रवका स्वभाव—रंग पीलेसे पिंगल तक। आपेक्षिक गुरुत्व १०१८ या

अधिक। प्रथिन ४% से अधिक। रसरक्त प्रथिन-एलब्यूमिन और ग्लोब्यूलिन तथा रक्ततन्तुजन। प्रायः जमें हुए टुकड़े।

चिरकारीप्रदाह—क्षय। घटक—लघुलसिकाणु, प्रथमावस्थामें बहुजीवकेन्द्रमयकी उत्पत्ति।

२. मंद निःसरण—(कलामें होकर स्रवण—(Transudates) अन्तस्त्वचाके घटकसह अथवा घटक रहित। कारण—

अ. हृत्साद।

आ. आशुकारी या चिरकारी वृक्कप्रदाह।

इ. उरोगुहाके भीतर नववर्द्धन—(क्वचित् लघुलसीकाणु)।

ई. विविध निर्बलतायुक्त स्थितियोंके अन्तमें।

उ. कभी-कभी महाप्राचीराके नीचे पूयोत्पत्तिसे।

परस्थानीय स्रवणका स्वभाव—रंग हल्का पीला, आपेक्षिक गुरुत्व १०१५ अथवा कम। प्रथिन सामान्यतः १ प्रतिशत; क्वचित् ३%। गुठलियाँ नहीं बनतीं।

३. रक्तस्रावीय तरलका स्रवण (पृष्ठ ७५२ दर्शन परीक्षामें दर्शाया)।

४. विविध वर्णमय तरलका स्रवण (पृष्ठ ७५२ दर्शन परीक्षामें।

रोगपरिचय—इस फुफ्फुसावरणके प्रदाहको उरस्तोय संज्ञा दी है। इस प्रदाहके निम्नानुसार मुख्य ४ प्रकार होते हैं।

१. शुष्क आशुकारी उरस्तोय—Acute dry Pleurisy.

२. तरलमय उरस्तोय—Pleurisy with Effusion.

३. पूयमय उरस्तोय—Empuhyema.

४. चिरकारी उरस्तोय—Chronic pleurisy.

१. आशुकारी शुष्क उरस्तोय

(एक्युट ड्राइप्लूरिसी—Acute dry Pleurisy).

इसे तन्तुमय उरस्तोय (Fibrinous Pleurisy) भी कहते हैं। यह फुफ्फुसावरणका आशुकारी प्रदाह है। इसमें रक्ततन्तुमय-कला छा जाती है। यह युवा व्यक्तियोंको अधिक होता है। प्राचीन आचार्योंने इसका अन्तर्भाव पार्श्वशूलमें किया है। भैषज्य रत्नावलीकारने इसे उरस्तोय संज्ञा दी है।

निदान—

१. प्राथमिक—शीत अथवा वेपनके पश्चात्। अनेक रोगी संभवतः क्षयपीड़ित, किन्तु सब नहीं। क्वचित् पुनराक्रमण अनेक वर्षोंके पश्चात् अनुगामीरोगके बिना, संभवतः न्युमोनियाके कीटाणुद्वारा।

२. गौण—तरलमय उरस्तोयके समान, जो समान्यतः उन्नत होते हैं। श्वासनलिका प्रसारण गुप्त उरस्तोयका सामान्य कारण।

संप्राप्ति—स्थानिक या व्यापक प्रदाह। सामान्यतः फुफ्फुसावरणके दोनों पर्त पीड़ित, चिपकनेवाला लसीका स्राव और रक्ततन्तुकी प्राप्ति। विशेष वर्णन तरलमय उरस्तोयमें किया जायगा।

लक्षण—अकस्मात् आक्रमण। पूर्ववर्तीलक्षण, कुछ समय तक व्याकुलता।

वेदना—गम्भीरशूल सदृश। कास आनेपर या गम्भीर श्वासग्रहण, संचलन या कुछ दबाव द्वारा वेदनावृद्धि। स्थान बगलके नीचे। पीड़ित स्थानपर दबानेपर वेदना वृद्धि। उदर या स्कंधपर प्रतिफलित (महाप्राचीरा प्रदेशके उरस्तोयमें) शिखर-प्रदेशकी विकृतिमें मात्र मंद वेदना। रसोत्पत्ति होनेपर वेदनाका ह्रास।

कास—सामान्यतः प्रारम्भमें, लघु, शुष्क और दुःखदायी।

ज्वर—उत्ताप सामान्यतः ९९° या १००° कभी १०१°- १०२°, विरामसह।

शयनस्थिति—विविध। पीड़ित पार्श्वमें शोथकम हो, तो उस पार्श्वको दबाकर लेटनेसे पीड़ा कम प्रतीत होती है; परन्तु शोथ अधिक हो, तो उस पार्श्वके बलसे रोगी नहीं लेट सकता। लेटनेपर शोथके हेतुसे वेदना असह्य भासती है।

भौतिक चिह्न—

छातीका संचलन—ह्रास कुछ कम।

श्वसन—कुछ संख्या वृद्धि उथला श्वास किन्तु श्वासकृच्छ्रता नहीं।

स्पर्श—घर्षणका अनुभव होता है।

ठेपन—स्वाभाविक ध्वनि या कुछ ह्रास।

ध्वनि श्रवण—पीड़ित प्रदेशमें वायुका कम प्रवेश। श्वासग्रहणके अन्त और त्यागके आरम्भमें घर्षणध्वनि। कड़-कड़ आवाज़ या चमड़के घिसने सदृश। कम सामान्य: केश रगड़ने सदृश मन्द आवाज़। (इस रोगमें घर्षण कास होनेके पश्चात चालू, किन्तु फुफ्फुसकी अस्वाभाविकध्वनि कास आनेके बाद अदृश्य।)

श्वसनध्वनि—सामान्यतः अपरिवर्तित. शब्दध्वनि भी मूलस्थितिमें (पीड़ित स्थानमें कुछ ह्रास)।

वक्तव्य—प्राथमिक क्षतिके लक्षण—चिह्नभी विद्यमान।

क्रम—कुछ दिनोंमें—(लगभग १ सप्ताहमें) तरलोत्पत्ति न हो तो प्रशमन।

रोगविनिर्णय—घर्षणध्वनि सामान्यतः रोगनिर्णायक, किन्तु जब उसका अभाव (महाप्राचीरा स्थानके उरस्तोयमें) हो या तुच्छ हो, तब वेदनाके अन्य कारणोंसे प्रभेद करना कठिन होता है। प्रभेद—(१) पर्शुकान्तर प्रदेशमें वातनाड़ी शूल, ज्वराभाव (वातनाड़ी शूलमें वेदनाकी वातमार्गसे गति। पीठकी ओर मर्यादित स्थानमें

पीडनाक्षमता); (२) नवबर्द्धन, धमन्यर्बुद तथा कशेरुकाके गलन(Caries of vertebrae) से पर्शुकान्तर प्रदेशमें वातनाडीपर दबाव; (३) दलबद्धव्रणामय कक्षा (Herpes Zoster) में पिटिका होनेके पहले; (४) वेदना उदरमें प्रेरित होनेपर वह उपान्त्र प्रदाहका सङ्केत करती है। जनपदव्यापी उरस्तोय (बोर्नहोम रोग),इसमें पर्शुकान्तर प्रदेशकी पेशियोंमें आवेगात्मक भयङ्कर पीड़ा होती है, यह मांसपेशियोंका आमवात है, इसका भी युवा व्यक्तियोंके लिये प्रभेद करना चाहिये।

चिकित्सोपयोगी सूचना—उत्ताप सामान्य न हो तब तक रोगीको शय्यापर आराम करावें। एण्टीफ्लोजिस्टीनकी पट्टी लगावें, सेक करें। कोई-कोई चिकित्सक पूर्ण निःश्वास होता हो, तो उस पार्श्वको बंधवाते हैं। विशेष चिकित्सा कारण तथा तरलोत्पत्तिके अनुसार करनी चाहिये। ज्वर कम होनेपर 'क्ष' किरण परीक्षा कराकर चिकित्सा करनी चाहिये।

शुष्ककासमें शामक औषधि देनी चाहिये। प्रवालपिष्टी, शृङ्गभस्म और सितोपलादि को घी शहदमें मिलाकर देना, अति लाभदायक है। ज्वर हो, तो तबतक स्वेदल और ज्वरघ्न औषधि देनी चाहिये। महाप्राचीरा प्रदेशमें उरस्तोय होनेपर अहिफेनयुक्त औषधि (महावातराज आदि) की अधिक आवश्यकता रहती है। निद्रा लानेके लिये डॉक्टरीमें एस्पिरिन देते हैं। बिना एस्पिरिन केवल द्राक्षारिष्टसे निद्रा मिल जाय, तो उत्तम माना जायगा। मलावरोध न हो, तो महावातराज या निद्रोदयरस दे सकते हैं। पीड़ित स्थानपर गरम घी में डुबायी हुई रूईकी पोटलीसे चोमा देना (.सेक करना) अति हितावह है।

ज्वर हो तबतक रोगीको दूध और फलोंके रस पर रखें अथवा प्रवाही भोजनपर उदर शुद्धि नियमित होनी चाहिये। क्षयके चिह्न प्रतीत हो, तो क्षयका उपचार करें और दीर्घकाल पर्यन्त आहार-विहारमें अति सम्हाल रखें।

तरलमय उरस्तोय

प्लुरिसी विथ इफ्यूज़न—Pleurisy with Effusion.

परिचय—रक्तरस अथवा रक्तरससह रक्ततन्तुमय निःसरणके उत्पादनयुक्त फुफ्फुसावरण प्रदाहको तरलमय उरस्तोय कहते हैं।

निदान—

१. प्राथमिक—अ. शीत और वेपनकी प्राप्ति। आ. स्पष्टकारणका अभाव, सामान्यतः गुप्त राजयक्ष्माके कीटाणुओंसे सम्बन्ध।

२. फुफ्फुसोंमें से प्रदाहका विस्तार—राजयक्ष्मा, फुफ्फुसप्रदाह, श्वासनलिकाप्रसारण, फुफ्फुसके नवबर्द्धन, फुफ्फुसमें शल्यप्राप्ति, विद्रधि, कोथ आदि।

३. समीपके अवयवोंके प्रदाहका विस्तार—उदा० हृदयावरणप्रदाह, महाप्राचीरा निम्नस्थ विद्रधि।

४. परंपरागत संक्रमण—सेन्द्रियविष प्रकोप, मध्यकर्णप्रदाह आदि ।

५. चिरकारी कृषताकारक व्याधियाँ—विशेषतः वृक्कप्रदाह ।

६. रसस्रावसह रसकलाका व्यापक प्रदाह—(Polyserositis).

७. छातीकी दीवारपर अभिघात ।

क्षयरोगसे सम्बन्ध—शीत लगजानेके पश्चात् विशेषतः उरस्तोयकी प्रत्यक्ष प्राप्ति हो जाती है । इनमें अधिकतमरोगी क्षय पीड़ित होते हैं । यह विचार निम्नानुसार अनुसंधान करनेके बाद दिया गया है ।

१. क्षयक्षत कभी पूर्ववर्ती गुप्तरूपसे निःसंदेह होते हैं, क्षत कभी तरलके आकर्षणके पश्चात् होता है । कफके भीतर १५ प्रतिशतमें क्षयकीटाणु ।

२. क्षयक्षत अकस्मात् मृत्यु प्राप्त व्यक्तियोंकी शवपरीक्षा करनेपर विदित होते हैं ।

३. निःसरण घटक रचनाक्रिया विज्ञानके अनुसार क्षयज तरल सदृश (लघु-श्वेताणुमय) ।

४. निःसरणको विधिसह कर्षण करनेपर क्षयकीटाणुओंकी वृद्धि होती है एवं लघुवराहमें अन्तःक्षेपण करनेपर क्षयोत्पत्ति कराता है ।

५. क्षयकी संप्राप्ति उत्तरकालमें इस स्थितिवालोंको ५ से १० वर्षके भीतर लगभग २० प्रतिशत होजाती है । इस तरह उरस्तोय पीड़ितोंमें से ४० प्रतिशतमें क्षय संक्रमणकी गिनतीकी जाती है । कभी-कभी न्युमोकोकाई तथा क्वचित् स्ट्रेप्टोकोकाई भी मिल जाते हैं । लक्षणात्मक प्रकारमें कोई भी कारण विवेचन करने योग्य नहीं ।

उद्भूत कीटाणु परिचय—उत्तरकालमें जो पूय होता है, इसकी प्रथमावस्थाके अतिरिक्त तरलोंमें कीटाणुओंकी उपस्थिति अति क्वचित् ।

शारीर विकृति—सामान्यतः रसकलाप्रदाह । तरल स्वच्छ या गन्दला । क्षय-ग्रन्थियाँ अथवा नववर्द्धन होनेपर रक्तमय । चित्र नं० ३३ आर्टपर देखें ।

१. फुफ्फुसावरणमें परिवर्त्तन—केवल नेत्रसे प्रतीति—प्रथमावस्थामें तेज़ीका नाश, सतह पीड़ित । फिर तरल या रक्ततन्तुका क्षरण । उत्तरकालमें तरलका शोषण फिर पीड़ित सतहका संयोजन या रक्ततन्तुकी रचनाके हेतुसे अनियमित स्थान-स्थानपर संयोजन तथा कभी तरल सूक्ष्म गह्वरोंमें विभाजित ।

सौत्रिक तन्तुओंके रुक जानेसे लसीकाके सहज चूर्ण होने योग्य पट्टीमेंसे विविध प्रकारका संयोजन अथवा अति मोटाई हो, ऐसा सर्वत्र व्यापक संयोजन । शिखरके पास, महाप्राचीरा सतहके उर्ध्व भागमें तथा हृदयावरणके ऊपर संलग्नता सामान्यतम ।

सूक्ष्मरचना विकृति—अन्तःकलाके घटक सदृश घटकोत्पत्ति और आच्छादक-कला द्रव्यका त्याग करती है । कैशिकाएँ प्रसारित और श्वेताणु मुक्त होते हैं; उपाच्छादक तन्तुओंका अन्तर्भरण होकर वह फुफ्फुसावरणकी सतह तक पहुँचता है । रक्ततन्तुमय लसीकाके क्षरणमें अन्तस्त्वक्के घटक और श्वेताणु होते हैं ।

शुष्क उरस्तोयके उत्तरकालमें संयोजक तन्तुओंके घटकोंकी उत्पत्ति होती है। लसीकामें जो प्रवर्द्धन निकलते हैं, वे शोषित हो जाते हैं। नव रक्तवाहिनियोंकी रचना होती है। फिर सतहके सौत्रिक तन्तुओंका सम्मिलन होता है।

तरलमय उरस्तोयके उत्तरकालमें शिरा और लसीकावाहिनियों द्वारा रसका शोषण होता है तथा लसीकाके भीतरसे उत्पत्ति होकर शुष्क उरस्तोयके समान पीड़ित सतहोंके बीचमें संयोजन होता है।

तरलका फुफ्फुसपर प्रभाव—जबतक तरल कम हो तब तक फुफ्फुसकी पिछली सीमा और आधार पीठ आकुंचित नीले, वायुहीन, किन्तु रक्त और शोथमय। तरल अधिक बढ़ जानेपर फुफ्फुस पृष्ठवंशके निकट दबता है तथा वायुहीन, धूसर और रक्तहीन होता है।

अवयवोंका स्थानान्तर—विशेषद्रव बढ़जानेपर हृदय और फुफ्फुसान्तराल विरुद्ध दिशामें स्थानान्तरित और महाप्राचीरा चेष्टा हीन होती है।

लक्षण—

१. क्षयात्मक प्रकारमें—प्रायः गुप्त आक्रमण। तरल धीरे-धीरे बनता है। किञ्चित् श्वासकृच्छ्रता।

२. इतर प्रकारोंमें—प्राथमिक क्षतसह विविध। आशुकारी शुष्क उरस्तोयके समान वेदना और शुष्क काससह आक्रमण। तरल फुफ्फुसावरणकी प्रदाह पीड़ित सतहमें मुक्त होनेपर वेदना शमन। उत्ताप मध्यम। वैधानिक लक्षण प्रायः अधिकतर लक्ष्य देने योग्य। जैसे तरल बढ़ता है वैसे-वैसे यांत्रिक असरसे लक्षण उपस्थित होते हैं। जैसे श्वासकृच्छ्रताकी प्राप्ति फुफ्फुसाकुञ्चन और फुफ्फुसान्तरालके स्थानान्तरित से होती है। गात्रनीलता असामान्य।

तरलकी विशिष्टता—(१) स्पर्शगम्य कम्पनका अभाव; (२) ठेपनमें जड़ता; (३) श्वसनध्वनिका ह्रास या अभाव; (४) शिखर स्पन्दन और अवयवोंका स्थानान्तर। प्रथमावस्थामें या शुष्क उरस्तोय होनेपर केवल घर्षणध्वनि।

दर्शनपरीक्षा—शिखरस्पन्दनका च्युत होना। पार्श्वकी अचलता। कभी पर्शुकान्तर प्रदेशका ध्वंस।

स्पर्शपरीक्षा—स्पर्श ग्राह्य वाक् कम्पनका अभाव या अति कम (बालकोंमें कम निश्चित)। दीवारमें शोथ नहीं यकृत्प्लीहाकी अवनति।

ठेपनपरीक्षा—रोग दर्शक-विशुद्ध जड़ताका अँगुलियोंसे अनुभव। जड़ता कुछ अंशमें तरलके हेतुसे और कुछ अंशमें फुफ्फुसके दबनेसे। सबके पहले पिछली ओर आधार स्थानपर यह अधकास्थितक पहुँचती है। उरःफलकके बाहर तक फैलती है। दाहिनी ओर यकृत्की जड़तासे मिल जाती है। बांईं ओर अधिक तरलसे आमाशयके ऊपर रहा हुआ ट्रोबेका (Traube's) अर्द्ध चन्द्राकार

प्रदेशकी जड़ताका केवल ध्वंस होता है। यह जड़ता क्वचित् चलनशील होती है, और वातभूत् फुफ्फुसावरणकी सूचना करती है।

स्कोडा ध्वनि—(Skodaic resonance) सौषिर आवाज़युक्त प्रदेश बारंबार उपस्थित, जड़ताकी सीमाके ऊपर। तरल चौथी पशु का तक पहुँचनेपर अक्षकास्थिके नीचे विशेषतम लक्षित। तरलके उत्पत्तिका कारण फुफ्फुसकी शिथिलता हो ऐसा माना जाता है। जिससे सौषिर ध्वनिके सदृश ठेपनकी मन्द क्षीणता विदित होती है।

ध्वनिश्रवण परीक्षा—

श्वसनध्वनि—अ. जड़प्रदेशपर मन्द या अभाव, कभी नालीय नाद, विशेषतः बच्चोंमें। आ. जड़प्रदेशके ऊर्ध्व भागमें कर्कश, बड़ी और प्रायःवंशी सदृश ध्वनि। अस्वाभाविक ध्वनिभी।

वाक् ध्वनि—सामान्यतः अभाव या ह्रास; क्वचित् अस्पष्ट।

अजानिनाद ध्वनि (Aegophony) बकरीके बोलनेके सदृश अनुनासिक आवाज़ सामान्यतः जड़ताकी ऊर्ध्व धाराके सामने। बारंबार अंसफलकके कोन की ओर, तरलके पतले पर्त्तपर आरोप।

श्वसनध्वनिकी अवनति-श्वासनलिकाके दबावसे होती है; अधिक तरल संग्रहसे नहीं। तरल अच्छा ध्वनिवाहक है।

हृदयपरीक्षा—तरलसे स्थानान्तरित। हृदय प्रदेशकी जड़ताका प्रदेश और श्रवणीय ध्वनि परिवर्त्तित हो जाता है। जब अधिक स्थानान्तरित हो जाय, तब आकुंचन ध्वनि आधार स्थानपर होती है। बाँई ओरके तरलसे फुफ्फुसावरण और हृदयावरणका घर्षण होता है।

मापनपरीक्षा—अधिक तरलसे अण्डाकारमें से वर्तुलाकार होनेसे आधा विभाग परिवर्त्तित होता है। फिर आकार बढ़ता है और आयतन बड़ा भासता है। परिधि प्रान्तके नापमें कुछ अन्तर होता है।

लिटेनका चिह्न (Litten's Sign)—महाप्राचीराका संचलन। पतले सामान्य स्वस्थ मनुष्यमें चित सोनेपर बगलपर मन्द तिर्यक्पन, श्वसनके साथ महाप्राचीरास्थानमें छातीका संचलन। फुफ्फुसावरणमें तरल भरनेपर तथा बारंबार इतर फुफ्फुसरोगोंमें इसका अभाव। रोगीके श्वासोच्छवासक्रियाके साथ-साथ छातीकी दीवारपर महाप्राचीराके संचलनकी छाया प्रतीत होती है, वह पीड़ित पार्श्वपर नहीं होती। महाप्राचीराके निम्नस्थ विद्रधिमें वह भाग अस्वाभाविक ऊँचा होता है।

रक्ताणुगणना—श्वेताणु वृद्धि नहीं। क्वचित् १२,००० से अधिक (सम्मिलित स्थितिकी उपस्थितिमें अपवाद)।

अंसफलक प्रदेशमें आकुंचित फुफ्फुसके ऊर्ध्वभागपर, कुछ अधिक तरल संग्रहसह स्पर्शग्राह्य कम्पन, वंशीनाद सदृश श्वसनध्वनि तथा दूरस्थ मन्द वाक् ध्वनि।

रेडियोग्राफ परीक्षा—आधार स्थानपर निविड़ छाया । महाप्राचीराकी बाह्य सीमा अविदित । पशुंका-प्राचीरा कोण अस्पष्ट । छायाकी ऊर्ध्व धारा अन्तर्गोल, बाहर और भीतर मुड़ी हुई । हृदय स्थानान्तरित ।

वक्तव्य—तरल फुफ्फुसावरणकी गुहाके किसी भागके भीतर भिन्न-भिन्न विवरोंमें । उदा० खण्डोंके बीचमें ।

क्रम—कारण अनुसार नानाविध । शोषण करनेका स्वभाव । अधिक तरल रक्तवाहिनियोंपर दबाव डालता है, जिससे प्रतिबन्ध होता है । साधारणतः आकर्षण करनेपर सत्वर अच्छा परिणाम आता है ।

१. अल्प तरल—वेपनके पश्चात् और स्वाभाविक प्रकारमें । ज्वरका क्रमशः पतन ७ से १० दिनमें । तरल कुछ सप्ताह (२-३ सप्ताह) में आकर्षित । छातीमें किञ्चित् परिवर्त्तन ।

२. अधिक तरल—यदि चौथी पशुंकाके ऊपर हो, तो शोषण मन्द; कुछ तरलका आकर्षण करलेने पर सत्वर, (तरलका आकर्षण न हो तब तक शोषण नहीं होता) विस्तृत भागमें अधिक तरल उपस्थित हो, आकुंचित फुफ्फुसके ऊपर फुफ्फुसावरण मोटा हो, तो सौत्रिकतन्तुकी रचनाका प्रारम्भ और फुफ्फुस विस्तारके अयोग्य । तरल शोषणके साथ छातीकी दीवारका पतन ।

३. तरल महीनोंतक अपरिवर्त्तित दृढ़—क्षयपीड़ितोंमें ।

४. तरल आकर्षणके पश्चात् पुनरोत्पत्ति—नववर्द्धन होनेपर ।

आकुंचित फुफ्फुस दृढ़ होता है । उसके चिह्न तरलसे मिलते हुए ।

५. क्वचित् प्रथमावस्थामें फुफ्फुसके आशुकारी शोथकी प्राप्ति हो जाती है ।

शोषण—प्राथमिक चिह्न अवयवोंके स्थानान्तरका ह्रास, श्वसनध्वनि और स्पर्शग्राह्य कम्पनकी पुनः उत्पत्ति । क्वचित् घर्षण ध्वनि । प्रसारित फुफ्फुसपर स्कोडाध्वनिकी उन्नति । आधार स्थानपर श्वसन ध्वनि और ठेपन ध्वनिकी मन्दता अवशिष्ट रह जाती है । यह फुफ्फुसके आकुंचनके हेतुसे कुछ समय तक । फुफ्फुसावरणके संयोजन और मोटापन स्थिर रह जाते हैं । फिर द्रवका पूर्ण शोषण होना कठिन होता है । सत्वर शोषण होनेसे छातीकी दीवार नीचे बैठ जाती है और मूल स्थितिमें आ जाती है; किन्तु संयोजनके हेतुसे शनैः-शनैः और अपूर्ण ।

संयोजन—यह सब उरस्तोयोंका अन्तिम परिणाम है । फिर शुष्क उरस्तोयके समान कोई परीक्षात्मक चिह्न प्रकाशित नहीं होता ।

रोग विनिर्णय—

निदान पद्धति—(१) लक्षण; (२) चिह्न; (३) अनुसंधानेके लिये

कृत्रिम छिद्र करना; (४) रेडियोग्रामसे चित्र; तथा प्रश्न—अ. तरल विद्यमान है; आ. उसका स्वभाव क्या ? इन सबपरसे निर्णय किया जाता है।

तरलकी उपस्थिति—

अधिक परिमाणमें तरल होनेपर रोगनिदान सरल (१) स्थिरता; (२) अवयवोंका स्थानान्तर; (३) स्पर्शग्राह्यकम्पन का अभाव; (४) कष्ट सदृश जड़ता; (५) सामान्यतः श्वासध्वनिका अभाव, सब परीक्षात्मक चिह्नोंमें स्पर्शग्राह्य अत्यन्त जवाबदार।

मध्य परिमाणमें तरल होने और स्थानान्तर न होने पर निम्न विकारोंसे प्रभेद करना चाहिये।

अ. फुफ्फुसप्रदाह।

आ. जाणं मोटा फुफ्फुसावरण।

इ. फुफ्फुसके नववर्द्धन।

ई. व्यापक फुफ्फुसप्रदाह और फुफ्फुस आकुंचन। यह क्वचित् ही।

उ. वाम ओर में—हृदयावरण तरलसे। ऐसा होनेपर जड़ताका प्रदेश उपस्थित। हृदयका स्थानान्तर नहीं होता। हृदय ध्वनि मंद, श्वासकृच्छ्रता, फुफ्फुसके दबनेसे कठिनतामें वृद्धि।

ऊ. दाहिनी ओरमें-महाप्राचीराके निम्नस्थ विद्रधिसे।

उरस्तोय और फुफ्फुसप्रदाहमें प्रभेद

उरस्तोय—Pleurisy।	फुफ्फुसप्रदाह—Pneumonia।
१–तीव्र वेदना, घर्षण ध्वनि, शुष्क कास और फुफ्फुसकी दीवारोंकी विलक्षण गति।	मृदु वेदना, केशमर्दनवत् (Crepitant) ध्वनि, कफ कास।
२–द्वितीयावस्थामें पशुंका समीप स्थानके बाहर निकल आती है। आक्रान्त स्थानकी शिथिलता, वृद्धि और विविध यन्त्रोंकी स्थान च्युति।	द्वितीयाघनावस्था (Heptization) में उरस्तोयका एकभी लक्षण नहीं मिलता।
३–विशेषतः अपक्रान्त स्थानपर ठेपन करने पर घनध्वनि, ध्वनि-वाहक यन्त्रसे सुननेपर श्वासो-च्छ्वास ध्वनि क्षीण या लोप।	ठेपनसे जड़ ध्वनि, ध्वनिवाहकसे वंशीनाद(Tubular), वाक्योच्चारणकी प्रतिध्वनि तीव्र और स्वरोत्कम्पनमें वृद्धि।
४–द्वितीयावस्थामें रोगी आक्रान्त पार्श्वसे शयन कर सकता है।	सोनेमें कोई विशेष नहीं है। क्वचित् रोगी स्वस्थपार्श्वकी ओर शयन करता है।

५-फेन सदृश कफ। कभी आगन्तुक ध्वनि (Rales)	रक्त मिश्रित चिपचिपा दुर्गन्धयुक्त लोहेके जंग सदृश कफ । श्वासप्रणालिकाओंका प्रदाह हो जानेसे सर्वत्र आगन्तुक ध्वनि ।
६-मन्द ज्वर ।	प्रबल ज्वर ।
७-अनियमित शारीरिक उत्ताप । उत्तापकी कोई विशेष अवस्था नहीं होती । कभी-कभी उत्ताप बढ़ता है ।	शारीरिक उत्तापकी अवस्था विशेष रूपसे जानी जाती है । रोगाक्रमण होनेपर सत्वर उत्ताप बढ़ जाता है । प्रातः अल्प विराम और शामको वृद्धि । ज्वरके अकस्मात् अति वृद्धि और ह्रास ।

परीणाम—सत्वर चिकित्सा होनेपर अच्छा; किन्तु स्वस्थ हुए रोगियोंमें अनुगामी व्याधि-राजयक्ष्माकी प्राप्ति हो जाती है। इससे कम रोगियोंमें सौत्रिक तन्तुमय फुफ्फुसपर श्वासनलिका विस्तार हो जाता है ।

उरस्तोय चिकित्सोपयोगी सूचना

रोग प्रारम्भका बोध होनेपर रोगीको आरामसे लेटावें । शीतल वायुसे रोगीका रक्षण करें । भोजन प्रवाही, लघु और सात्म्य देवें । रोग दृढ़ है, तो नमक बहुत कम देवें । यदि आशुकारी ज्वर है, तो अन्न न दें, दूध, साबूदाना, मोसम्मीका रस अननास का रस, मीठा अंगूर आदि देवें ।

इस रोगमें कफको गीलाकर निकालने और मूत्रकी प्रवृत्ति कराने वाली औषधि देनी चाहिये । प्यासका हो सके, उतना निग्रह करें । शीतल जल और शीतल वायु, दोनोंका यत्नपूर्वक त्याग करें । दही आदि अभिष्यंदी पदार्थोंको छोड़ देवें । उबालकर चतुर्थांश शेष रहा हुआ जल थोड़ा-थोड़ा पीकर तृषाका शमन करें अथवा तृषा लगने पर गरम करके शीतल किया हुआ दूध पिलाकर तृषाको दूर करें ।

तीव्र उरस्तोयकी प्रथमावस्थामें रोगी बलवान् और रक्ताधिक्य ग्रसित हो, नाड़ी सबल, अत्यन्त वेदना और व्याकुलता हो, तथा फुफ्फुसपर दबाव आता हो, तो "कपिंग ग्लास द्वारा" या जलौका लगवाकर रक्तमोक्षण कराना हितकर है ।

यदि रोगी रक्तमोक्षणके योग्य न हो, तो अलसीकी गरम पुल्टिस बांधनी चाहिये अथवा बिलस्टर प्रयोग करना चाहिये । रोगी निर्बल हो, तो रोगका बिलस्टरसे दमन हो जाता है ।

रोगके प्रारम्भकालमें रक्तदबाव को शिथिल करनेवाली औषधि देनी चाहिये । वह कार्य बच्छनाग प्रधान औषधिसे अच्छा होता है । अतः सूतराज रस, ज्वरकेसर वटी, त्रिभुवनकीर्तिरस आदि औषधियोंमें से योजना करनी चाहिये ।

द्वितीयावस्थामें तरल थोड़ा है, तो रूपान्तर करा जल्दी लीन करानेका प्रयत्न

करना चाहिये । यदि तरल अत्यधिक होनेसे या रक्तपूय मिल गया हो, तो यन्त्रद्वारा तरलको बाहर निकाल लेना चाहिये ।

यदि यह व्याधि औषधि आदि चिकित्सासे शान्त न हुई, तो जिस चिकित्सकका हाथ हलका है, वह त्रिकूर्च्चक शस्त्रको यकृत्प्लीहाकी रक्षा करती हुई बगलके बीचकी पंक्तिमें नीचे विशेषतः ७ और ८ वीं पर्शुका (या ९ से ६ पर्शुकाओं) के बीच फुफ्फुसावरणमें प्रवेश करावें; और सञ्चित सब कुछ (२० औंस) जलको बाहर निकाल लेवें, ऐसा करनेसे व्याधि शमन होजाती है ।

सुश्रुत संहितामें लिखा है कि बालक, वृद्ध, सुकुमार, भीरु, स्त्री, राजा और राजपुत्रके रक्त या जलके स्राव करानेके लिये त्रिकूर्च्चक यन्त्रका उपयोग करना चाहिये । सू. अ. ८।४।।

वर्तमानमें प्राचीन शस्त्रोंकी निर्माणविधि और उपयोग विधि, दोनोंका बोध केवल शब्दों द्वारा दिया जाता है । व्यावहारिक शिक्षण देनेकी प्रथा लुप्त-सी होगई है; या ऐसे कहो कि आयुर्वेदके मुख्य अङ्गका प्रमादवश या पराधीनताके हेतुसे त्याग हो गया है । डॉक्टरीमें इसका विशेष प्रचार है । उसकी विधि आगे दी जायगी ।

रक्ततन्तु प्रधान रक्तरस (Sero-Fibrinous) उत्सृजन होनेपर, उत्सृष्ट पदार्थका परिमाण और उसकी क्रियाद्वारा कितनी हानि होती है, इस बातका विचार कर चिकित्सा करनी चाहिये । संचितरस कुछ औंस तक होनेपर वक्षकी दीवारके निम्न प्रदेशमें ठेपन करनेपर घन प्रतिघातध्वनि ३-४ अंगुल ऊर्ध्व तक होती है । ऐसी परिस्थितिमें बार-बार क्षुद्र ब्लिस्टरका प्रयोग करते रहना चाहिये ।

डॉक्टरीमें बिल्कुल प्रारम्भिक अवस्थामें रक्त शोषणार्थ टिन्चर आयोडीनका लेप करते हैं; या पारदमिश्रित औषधिका मर्दन कराते हैं । इस तरह आयोडीन मिश्रित मलहम भी मर्दन कराया जाता है ।

द्वितीयावस्थामें कोष्ठशुद्धिका पूर्ण लक्ष्य रखना चाहिये । उग्र विरेचन नहीं देना चाहिये । मूत्रल औषधि अच्छा उपकार दर्शाती है । मूत्रल औषधि रूपसे जंगली प्याज़ (Scilla) १ से ३ रत्ती दिनमें २ बार दे सकते हैं । यह मूत्रल, कफघ्न, वामक, उष्ण और हृदय पौष्टिक है । अधिक मात्रा (१ माशा) देनेपर वमन कराती है । इसके अतिरिक्त शिलाजीत, पुनर्नवा, जवाखार, छोटी इलायची और गोखरू आदि हितकर औषधियाँ हैं । डॉक्टरीमें मूत्रल औषधि रूपसे पोटास आयोडाइडके साथमें सीला और डिजीटेलिस देते हैं । एवं केफाइन साइट्रसके साथ सोडियम बेन्ज़ोएटको भी उपयोगमें लेते हैं । इस विकारमें फुफ्फुसपर शनैः-शनैः घर्षण और मर्दन (Massage) हितकर माना जाता है।

रस कुछ पौण्ड संगृहीत हो जानेपर वक्षगह्वर भर जाता है और फुफ्फुस को दबा देता है; समीपके सब अवयव च्युत हो जाते हैं; श्वासोच्छ्वास क्रियामें कष्ट होता है,

तथा चर्ममें नीलिमा, पेशाब थोड़ा और गाढ़ा, नाड़ी क्षुद्र और अनियमित, ध्वनिवाहक; यन्त्रसे सुननेपर श्वासोच्छ्वास ध्वनिका अभाव और थोड़ेसे श्रमसे हृदयमें धड़कन होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्थामें समयको वृथा नष्ट नहीं करना चाहिए। एस्पिरेटर यन्त्रसे फुफ्फुसकी दीवारमें छिद्र करके रसको सावधानतापूर्वक बाहर निकाल लेना चाहिए।

नियम—

१. एक समयमें तरल २० औंससे अधिक आकर्षित न करें। आवश्यकतापर पुनः आकर्षित करें। (कभी-कभी तरल ४-७ बार निकालना पड़ता है) तरल विशेषतः चौथी पशु काके ऊपरतक आगेकी ओर भर जाय, श्वसन क्रिया और नाड़ी प्रभावित हो जाय तरल २-३ सप्ताह होजानेपर भी शोषित न हो जाय, तो निकाल लेना चाहिये।

२. थोड़ा तरल सामान्यतः कुछ भी बाधा नहीं पहुँचाता; स्वयमेव शोषित हो जाता है (शोषित हो जानेसे बहुधा फुफ्फुसावरणकी पर्त्त मोटी हो जाती है या संयोजन हो जाता है)।

३. तरल क्षयात्मक हो, (क्षयरोगका 'क्ष' किरण आदिसे निर्णय हो जाय) तो हो सके तबतक तरल आकर्पित न करें। आकर्षणके अनुरूप चिह्न विद्यमान हो, तो २० औंससे अधिक न निकालें। फिर रिक्तस्थानको वायुसे भर देवें। इसमें भूल होनेपर सार्वाङ्गिकक्षय होनेकी भीति रहती है।

आजकल तरलको आकर्षित करलेनेके लिये अनेक प्रकारके एस्पिरेटर यन्त्र बने हैं। उनमेंसे पोटेनका एस्पिरेटर (Potain's Aspirater) का उपयोग अधिक हो रहा है।

तरल निकालनेके लिये रोगीको शान्तिसे आरामकुर्सीपर अर्धशयित अवस्थामें बैठाकर रोगीके हाथको विपरीत कंधेपर रखवाकर बगलके मध्य बिन्दुसे सीधी पंक्तिमें सातवीं पशु कान्तर प्रदेशमें ऊपरकी पशु काके नीचेके किनारेके पाससे यन्त्रकी आरक प्रवेश कराया जाता है। पहले उस स्थानको नोवोकेन २%के अन्तःक्षेपणद्वारा मूर्च्छित कर लेते हैं; ताकि यन्त्रकी आरके प्रवेशसे पीड़ा न हो। सार्वाङ्गिक संमोहिनीकी आवश्यकता नहीं है।

पशु काएँ—(Ribs) छातीकी दोनों ओर धनुष्यके समान मुड़े हुए स्थितिस्थापक अस्थि लगे हैं; उनको पशु काएँ (पसली) कहते हैं। छातीमें दोनों ओर १२-१२ पसलियाँ रहती हैं। (क्वचित् १३-१३ भी होती हैं)। सब पसलियोंके पीछेके सिरे पृष्ठ वंश (रीढ) के कशेरुकाके साथ जुड़े हुये हैं। आगेके सिरेका संधान कुछ पृथक् होता है।

दोनों ओर ७ पशु काएँ क्रमशः लम्बी और मोटी होकर अगले सिरेसे उपपशु काओं (Costal cartilages) के साथ मिलती हैं। ये ७ पशु काएँ मुख्य

(True ribs) मानी जाती हैं। शेष ५ क्रमशः पतली और छोटी होती जाती हैं। वे उरःफलकके साथ संलग्न नहीं है। उनको गौण (False ribs) कहते हैं। उनमें ८-९ और १० वीं पशु काके आगेके सिरे अपनी उपपशु का द्वारा अपनी ऊपर रही हुई पशु काकी उपपशु काके साथ मिले हुए होते हैं; और अन्तिम दो (११ वीं १२ वीं पसलियोंके सिरे बिल्कुल छूटे होनेसे उनको विमुक्ताग्र पशु काएँ (Floating ribs) कहते हैं।

इन सबमें पहली पसली सबसे छोटी है। इसकी आकृति घास काटनेके हँसियाके समान होती है। इसका सिरा छोटा है। इसमें कोन नहीं है। दूसरी पशु का पहलीके जैसी ही है, किन्तु अधिक लम्बी है। दशवीं पशु का छोटी और बड़ीस (Hook) के सदृश है। इसका कोन काण्ड भागके भीतर रहा है। ११ वीं पसली वैसी ही है; किन्तु इसमें अर्बुद (उठा हुआ गोल भाग–Tubercle) और ग्रीवा नहीं है। १२ वीं पसलीमें कोन नहीं है। इनपशु काओंके सिरे जिन स्थानोंपर पशु काओंसे मिलते हैं, वहाँ पर उनके संयोगस्थान फूलकर कठिन प्रतीत हैं।

स्त्रियोंकी ऊपरकी पशु काएँ सरलतापूर्वक चल सकती हैं, जिससे छातीका ऊपरका हिस्सा सरलतासे फूलता है; और हर्ष, शोक आदि मानस वृत्तियोंको असर स्त्रियोंकी छातीपर तत्काल होजाता है।

उपपशु काएँ—(Costal cartilages) उपयु क्त पशु काओंके साथ दोनों ओर १२-१२ उपपशु काएँ लगी हैं। अतः इनकी संख्याभी २४ है। ये सब तरुणास्थि (कोमल हड्डी) में से बनी हैं। प्राचीन आचार्योंने इन सबकी गिनती स्वतन्त्र हड्डियोंमें की है।

इन पशु काओंमेंसे १ से ७ तक उरःफलकके दोनों ओर लगी हैं। इनमें पहली उपपशु काकी सन्धि निश्चल है।

एस्पिरेटर यन्त्रमें एक बोतल है; तथा वायु खींच लेनेके लिये एक पिचकारी और फुफ्फुसावरणमें प्रवेश करानेके लिये एक व्रीहिमुख यन्त्र-नली वाली आर (ट्रोकर केन्युला) लगी है। पहले आरकी ओरके पेचको बन्दकर पिचकारी द्वारा बोतलकी वायुको आकर्षितकर लें। फिर उस ओरके पेचको भी बन्द करदें। पश्चात् निर्दिष्ट-स्थानपर नलीसह आरको प्रवेश करावें। लगभग १-१। इञ्च आर भीतर जानेपर फुफ्फुसावरणकी ऊपरकी कलाके नीचे पहुँच जाती है। फिर आरको खींच लें, केवल नली (केन्युला) को रहने दें और उस तरफके पेचको खोल दें; जिससे बोतलके रिक्त स्थानको भरनेके लिए तरल आकर्षित होकर आने लगेगा। बोतलका रिक्तस्थान भर जानेपर उस ओरके पेचको बन्द कर दूसरी ओरके पेचको खोल, फिर पिचकारी द्वारा वायुको खींच लेवें। पश्चात् आरकी ओर लगे हुए पेचको खोल दें, जिससे पुनः तरल भरने लगेगा। इस तरह जब बोतल पूरी भरजाय तब दोनों ओरके पेच बन्दकर डाटसे

बोतलको हटाकर खाली कर लेवें। पुनः उसी तरह लगाकर वायु खींचकर तरलका आकर्षण करावें। यदि रोगीको कुछ तकलीफ मालूम पड़े, खांसी चलने लगे और और श्वास उठ जाय, तो तत्काल क्रियाको बन्द करदेना चाहिए। फिर कीटाणु बन्द न हो एवं सड़नेकी क्रिया न होने लगे, इसलिये छिद्रको कोलोडियन से बन्द करें।

तरलाकर्षणसे उपद्रव—

१. यदि आकर्षण कालमें कास चलने लगे तो क्रियाबन्द करें।

२. दबाव परिवर्त्तनसे बेहोशी आजाय और हृदयस्थान बदल जाय तो उत्तेजक औषधि-ब्राण्डि, मृत संजीवनीसुरा या जवाहर मोहरा देना चाहिये।

३. क्वचित् फुफ्फुसावरणमें वायु (Pneumothorax) भर जाती है।

४. अतिक्वचित् फुफ्फुसकोषोंके तन्तुओंमें (Emphysema) वायुका प्रवेश हो जानेसे वायुकोषस्फीति।

५ आशुकारी फुफ्फुस शोथ और ग्रथिनमय कफस्राव, ये घातक हैं।

६. मूर्च्छा आकार, अकस्मात् मृत्यु।

यन्त्र सम्यक् रीतिसे कार्य कर सकता है या नहीं? यह पहले देख लेना चाहिए, तथा यन्त्रको कीटाणुरहित (Sterilized) विशुद्ध करलेना चाहिए।

इस रोगकी निवृत्ति होनेपर भी क्षयकीटाणुओंकी परीक्षा करानी चाहिये। रक्तके भीतर लसीकाणु है या नहीं? यदि है तो उसके अनुरूप उपचार करें।

इस रोगकी निवृत्ति हो जाने पर भी २-३ वर्ष तक पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये। इनमें भी स्त्रीसहवासका तो विचार भी नहीं करना चाहिये; कारण, क्षयपीड़ितोंमें प्रायः कीटाणु कुछ-न-कुछ अंशमें रह ही जाते हैं। वे पुनः अपथ्य आहार-विहारसे वृद्धिंगत होकर रोगीको मार डालते हैं।

चिरकारी उरस्तोय रोगमें आशुकारी रोगके समान ही चिकित्साकी जाती है। लघु पौष्टिक आहार देना चाहिये। राजयक्ष्मा रोगोक्त क्षय कीटाणुनाशक औषधि रोग दूर होनेपर भी देते रहना चाहिये। मांसपेशियोंके बलकी वृद्धिके लिये प्रातः-सायं थोड़े-थोड़े दीर्घ श्वासोच्छ्वास (कुम्भक रहित) करते रहना उपकारक है।

उरस्तोय चिकित्सा

तरलको कम करानेके लिये—१. शिलाजीत ४-४ रत्ती पुनर्नवादि चूर्ण प्रथम विधि ४-४ माशेके कषायके साथ दिनमें २ बार देवें।

२. जवाखार ४ रत्ती ३ माशे घृतमें मिलाकर चटावें; ऊपर पुनर्नवाका स्वरस २ से ४ तोले पिलावें। इस तरह प्रातः-सायं दिनमें दो समय देते रहें।

३. आरोग्यवर्द्धिनी देते रहनेसे मल-मूत्रोत्सर्ग नियमित होकर प्रकृति सुधर जाती है।

४. यदि जलकी उत्पत्ति न हुई हो, तो श्वासकुठार रस दिनमें दो बार शहद के साथ देवें।

५. जल मामूली हो, मन्दज्वर रहता हो, तो रससिंदूर, आरोग्य वर्द्धिनी, शृङ्गभस्म और लघुमालिनी वसंतको मिलाकर दिनमें दो बार देते रहें।

६. शृङ्गभस्म २-२ रत्ती ३-३ माशे मिश्रीके साथ दिनमें दो समय देते रहनेसे कफका संशोधन होकर रोग शमन हो जाता है।

७. शृङ्गभस्म और शृंगाराभ्र (कास चिकित्सामें लिखा हुआ), दोनोंको शहदके साथ मिलाकर देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें नया शुष्क उरस्तोय निवृत्त हो जाता है।

८. कासका त्रास अति हो, तो माणिक्य रस १-१ रत्ती दिनमे दोबार शहद या मक्खन-मिश्रीके साथ देते रहें या चन्द्रामृत रस (बकरीके दूधके साथ) देवें; तथा कासमर्दन वटी, कर्पूराद्य वटी या मरीच्यादि वटी, इन तीनोंमें से एककी एक-एक गोली मुँहमें रखकर रस चूसते रहें। दिनमें १०-१५ गोली तक चूसें।

९. कल्याण सुन्दरी रस १-१ रत्ती दिनमें दो बार पुनर्नवादि क्काथ या गुनगुने जलके साथ देते रहनेसे थोड़ा जलभरा हो तो लीन होजाता है।

१०. पञ्चसूत १-१ रत्ती दिनमें दो बार मुलहठी, बहेड़ा, वासा, भारङ्गी और मिश्रीके क्काथके साथ देते रहनेसे तरलका रूपान्तर, ज्वर शमन, शोथ नाश आदि कार्यों को सत्वर करके थोड़े ही दिनोंमें रोगको निवृत्तकर देता है।

११. ज्वर बढ़नेपर कस्तूरीभैरव, जयमङ्गल या त्रिभुवनकीर्त्ति रस दिनमें दो बार देते रहें।

१२. पार्श्वशूलपर चिकित्सातत्वप्रदीप प्रथम-खण्ड के भीतर न्युमोनिया चिकित्सामें लिखे हुए उपाय लाभदायक हैं।

१३. दोषघ्न लेप लगानेसे पार्श्वशूलका निवारण होता है; अथवा अलसीकी पुल्टिस रोटीके समान बड़ी बनाकर बाँधें और १-१ घण्टेपर बदलते रहें।

१४. बालुकाको गरम कर सेक करने या रबरकी थैलीमें गरम जलभर कर सेक करनेसे पसलीमें चलने वाले शूलकी निवृत्ति होजाती है।

१५. पार्श्वशूलनाशक लेप लगावें; अथवा बारहसिंगेके सींगको गोमूत्र या काँजीमें घिस हींग मिला गुनगुना कर लेप करने या हींग और अफीम मिला गुनगुना कर लेप करनेसे सत्वर शूल शमन होजाता है।

१६. केसर और अफीमको जलमें पीस गुनगुनाकर लेप करने या केसरको पुराना घी, सरसोंका तैल और शहदके साथ मिला गुनगुनाकर लेप करनेसे वेदना शमन हो जाती है।

१७. वर्त्तमानमें एन्टीफ्लोजिस्टीन या एन्टीफ्लेमिनकी पट्टी लगानेका भी रिवाज है।

३. पूयमय उरस्तोय

एम्पायेमा—पुरूलेण्ट प्लूरिसी

Empyema Purulent Pleurisy.

फुफ्फुसावरणमें पूयसंचय होनेपर उसे पूयमय उरस्तोय कहते हैं; किन्तु क्षय-प्रकोपज पूयविकारका इसमें अन्तर्भाव नहीं होता। यह विकार सामान्यतम १० वर्षके भीतरकी आयुवाले बालकोंको होता है। फिर २० से ३० वर्ष की आयुतक इसकी सम्प्राप्ति फुफ्फुसप्रदाहके विषसे होती है।

निदान—किसीभी कारणसे फुफ्फुसावरणमें संगृहीत तरल पूयात्मक बन सकता है। सामान्यतः प्राथमिक अवस्था।

१. आशुकारी फुफ्फुसप्रदाह—यह प्रबल कारण है।

२. फुफ्फुसप्रदाहके कीटाणुओंका विस्तार या गलनशील स्थान अथवा शोणित विष प्रकोप (रसार्बुद, कर्कस्फोट, विद्रधि आदिसे)

३. अभिघात—पर्शुकाभङ्ग, तीक्ष्णशस्त्रका घाव।

उद्भिद् कीटाणुविज्ञान—सामान्यतः न्युमोकोकस या स्ट्रेप्टोकोकस जवाबदार। कभी-कभी स्टेफाईलोकोकस, बेसिली इन्फ्लूएन्झा तथा अन्य कीटाणु—कोलाई समूह भी।

शारीरविकृति—तरलमय उरस्तोयके समान प्रदाह; किन्तु तरल पूयात्मक। तरल गन्धरहित या अति दुर्गन्धमय। पतला या गाढ़ा, पीताभ, हरिताभ या पिंगल। शवच्छेदनकरने पर फुफ्फुसावरण सामान्यतः मोटा और प्रायः आधार स्थानकी ओर गाढ़ापूय तथा ऊपर स्वच्छ तरल। न्युमोकोकसका संक्रमण होनेपर गाढ़ापूय और रक्त तन्तु विकृति अधिक। स्ट्रेप्टोकोकस हो तो पतला तरल। आपेक्षिक गुरुत्व १०३० से अधिक।

लक्षण—सामान्यतः उत्तान शिराएँ प्राथमिक स्थितिमें। आक्रमण बहुधा गुप्त और लक्षण नानाविध। कितनेक उपेक्षा करनेयोग्य। रोमदर्शक—(१) विगलन विषज अर्थात् अनियमित ज्वर (१०१° से १०३°), बैचेनी, स्वेद तथा शीतकम्प। शुष्क कास, शिरदर्द, उबाक, वमन, अरुचि आदिमेंसे; (२) तरलजन्य दबावसे उत्पन्न श्वासकृच्छ्रता तथा अवयवोंकी स्थानाच्युति आदि चिह्न; (३) आकर्षण करनेपर पूयमय तरल; (४) श्वेताणु वृद्धि।

आक्रमण—गुप्त। कारणानुसार क्रम और लक्षण, फुफ्फुस-खण्ड प्रदाहमें उत्तापका ह्रास नहीं होता, कुछ दिनोंके बाद पुनः बढ़ जाता है।

बालकोंमें निस्तेजता, निर्बलता, प्रायः वमन और अतिसार, अधिक तरल होनेपर श्वासकृच्छ्रता अन्यथा लक्षण मन्द।

भौतिक चिह्न—तरलमय उरस्तोयके समान। क्वचित् दोनों पार्श्वका पूयात्मक प्रदाह।

रसमय तरलसे प्रभेद—(१) हृदय और महाप्राचीराकी स्थानच्युति विशेष प्रभेदक (पूयकी मात्राके अनुरूप); (२) पर्शुकान्तर प्रदेशकी स्फीति; (३) कभी-कभी छातीकी दीवारका शोथ (बालकोंमें उच्च वंशीनादमय श्वसन पूयात्मक उरस्तोयको पृथक् नहीं करता)।

अंगुलियोंके अग्रका चौड़ापन—कभी-कभी ३-४ सप्ताहके भीतर।

श्वेताणुवृद्धि—क्वचित् १५,००० के भीतर।

पूयका स्वभाव—न्युमोकोकस होनेपर सामान्यतः मोटी, मलाईसदृश, रक्ततन्तुके स्तरसह हरी पीली तह। स्ट्रेप्टोकोकस होनेपर जल्दी, प्रायःपूयकी थोड़ी मात्रासह पतली तह फिर पूयसे मोटापन।

परिणाम—सर्वदा गम्भीर। सर्वदा सल्फोनेमाइडसे उन्नति (किन्तु बारम्बार फुफ्फुसप्रदाहके पश्चात् दमन नहीं होता)। न्युमोकोकस होनेपर उत्तम परिणाम, किन्तु याद रखना चाहिये कि—(१) बालक ५ वर्षकी भीतरकी आयुका हो; (२) फुफ्फुस-प्रदाहका प्रकृतिभाव आनेके पहले उरस्तोयकी प्रगति हो; या (३) फुफ्फुसावरणकी विद्यमानता हो; इन स्थितियोंमें परिणाम गंभीर। स्ट्रेप्टोकोकस अधिकतर गंभीर। अन्त्रकीटाणु समूह होनेपर प्रायः दुर्दमनीय पूयस्राव।

पूय निकाल लेनेपर—फुफ्फुसावरण प्रदाहके पश्चात् शुभ परिणाम। कभी दृढ़स्राव होनेके कारण—(१) फुफ्फुस विकसित होनेमें असमर्थ। उदा० वायुकोषोंका रूपान्तर या संयोजन होनेके पश्चात्; (२) प्रकृति भावकी प्राप्तिका अभाव और फुफ्फुसमें सौत्रिकतन्तुओंकी रचना; (३) फुफ्फुस विद्रधि।

पूय न निकालनेमें २ आपत्तियाँ—

१. फुफ्फुसावरणका कुछ अंश नष्ट हो जाता है; फिर पूय फुफ्फुसावरण विवरमेंसे श्वासमार्गकी ओर गति करता है; और बार-बार वेगपूर्वक खाँसी चलकर श्लेष्मके साथ पूय न्यूनाधिक परिमाणमें बाहर निकलता रहता है। यदि पूयमें दुर्गन्ध आती हो, तो निश्चय हो जाता है कि, क्षतग्रसित फुफ्फुसके सम्बन्धवाले भागके छिद्रमेंसे फुफ्फुसावरण की थैलीमें वायुका प्रवेश हो गया है; अर्थात् पायोन्युमोथोरेक्स (Pyo-pneumothorax) हो गया है। इस प्रकारमें खाँसी द्वारा कफके साथ पूय निकल कर अनेक रोगियोंको आरोग्यकी प्राप्ति होजाती है और अनेकोंको हृदावरण आमाशय या अन्ननलिकामें पूयप्रवेशके हेतुसे मृत्यु होजाती है।

२. कोई-कोई समय वक्षःपञ्जरके सम्बन्ध वाला फुफ्फुसावरणका अंश नष्ट हो जाता है। फिर पूय वक्षःप्रदेशकी मांसपेशियोंमें होकर आगे गति करता है; और बाहरकी ओर विद्रधिके सदृश ऊँचा उठ जाता है।

चतुर्थ पर्शुकाके बीच वक्षकी दीवार इतर स्थानकी अपेक्षा पतली है। इस हेतुसे प्रायः इस स्थानकी त्वचाके नीचे स्फोट उत्पन्न होता है। यदि यह पूयमय विद्रधि फटजाय, तो नाड़ीव्रण (Fistula) ३-४ इञ्च लम्बा फुफ्फुसावरणके छिद्रसे सम्बन्ध

वाला बन जाता है। फिर अनेक वर्षों तक पूय निकलता ही रहता है। और कितनेक स्थानोंमें पञ्जरास्थिका विनाश (Caries) हो जाता है; तथा फुफ्फुसावरणकी दीवार का अविराम संकोच रहनेसे पृष्ठवंश विकृत आकारका बन जाता है। इस प्रकारमें पञ्जरास्थिपर आक्रमण हो या न हो, रोगी वर्षोंतक कष्ट भोग-भोगकर मृत्युको प्राप्त होता है।

३. पूयभृत् उरस्तोयकी प्राप्ति तरुणावस्थामें होनेपर उत्सृष्ट रस और पूयका कुछ अंशमें शोषण होजाता है। सामान्य उरस्तोय रोगमें रसका शोषण होजाना अति हितकर है। परन्तु संक्रामक ज्वरसहवर्ती पूयोत्पादक कीटाणु (स्ट्रेप्टोकोकस—Streptococcus Pygenes) या गुच्छ बनकर रहनेवाले स्टेफिलोकोकस (Staphylo coccus) कीटाणु होनेपर परिणाम कदापि मङ्गलदायक नहीं।

उपद्रव—कचित्, किन्तु रस भरणकी अपेक्षा सामान्यतर हृदावरणप्रदाह, वातभृत् फुफ्फुसविद्रधि, कभी-कभी मस्तिष्क विद्रधि, श्वासनलिका प्रसारण, फुफ्फुसकोथ, वृक्क प्रदाह आदि।

रोगविनिर्णय—तरलकी विद्यमानता, स्वाभाव और आकर्षणकी आवश्यकता परसे। सन्देह रहनेपर तरलको बाहर निकालकर परीक्षा करें। एक स्थानसे निकले हुए तरलसे निर्णय न हो तो दूसरे स्थानसे तरल निकालकर परीक्षा करनी चाहिये।

परिणाम—गंभीर स्थितिमें मृत्यु लगभग २०%। प्रारम्भावस्थामें निदानकर योग्य चिकित्सा सत्वर प्रारम्भ करानेपर बहुधा शुभ। स्ट्रेप्टोकोकस कीटाणुओंमें होने पर परिणाम अधिकतर गंभीर।

चिकित्सोपयोगी सूचना—जबतक पूय पतला हो, तब तक फुफ्फुसावरणका छेदन नहीं करना चाहिये। अन्यथा संयोजनके अभावमें वातभृत् फुफ्फुसावरण उपस्थित हो जायगा (विशेषतः स्ट्रेप्टोकोकस होनेपर) न्युमोनिया होनेपर उसका प्रकृति भाव आनेके पहले छेदन न करें। अन्यथा जीवनीय शक्ति कम होनेसे परिणाम खराब आनेकी संभावना है।

चिकित्सा पद्धति—अति निर्बल रोगीके लिये तरल अधिक संगृहीत होने पर पहले आकर्षण, फिर पर्शुका छेदन। टेढ़ा छेदकर लगभग १॥ इञ्च पर्शुका काटें। भीतरके स्त्रावको बाहर निकलनेका मार्ग कर दिया जाता है।

स्थायीपूयस्त्राव होनेपर—विविध विशाल शस्त्र चिकित्साकी आवश्यकता है; किन्तु परिणाम सर्वदा असफल होता है। अतः पहले १ वर्ष तक राह देखना चाहिये।

फिर स्वास्थ्यप्राप्ति होनेपर दीर्घ श्वसनरूप व्यायाम करते रहना चाहिये। इतर उपचार रसभृत उरस्तोयमें लिखे अनुसार करते रहें।

पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करें। गरिष्ठ भोजन, मांसाहार, मलावरोध करने वाला भोजन तेज़ शीतल वायु का सेवन, वर्षाके जलमें भीगना, रात्रिका जागरण,

सील वाले मकानोंमें रहना, चिंता और अति परिश्रम ये सब हानिकर हैं। ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

(पूयात्मक उरस्तोयके विशेष प्रकार)

(अ) दो खण्डोंके बीचमें पूयात्मक उरस्तोय

(Interlobor Empyema)

रोग विनिर्णय कठिन, रेडियोग्राफसे समाधान होता है। क्षीहिमुखयन्त्रसे परीक्षा कठिन। लक्षण सामान्यतः फुफ्फुस विद्रधिके समान। वैधानिक लक्षण घातक। भौतिक चिह्न मन्द। यह श्वासनलिकामें विदारित होता है।

लक्षण—स्थानिक प्रदाह। ऊर्ध्व दक्षिण और मध्य खण्ड, इन दोनों के बीचमें अवस्थित दीवारका प्रदाह। वेदना चतुर्थ दक्षिण पशुकाके तरुणास्थिके प्रदेशमें। इस सतहपर केशमर्दनवत् मंद घर्षण ध्वनि।

(आ) महाप्राचीरामें पूयात्मक उरस्तोय

(Diaphargmatic Empyema)

रोगविनिर्णय दुर्बोध। रेडियोग्राफ प्रायः संदेहास्पद। लक्षण हिक्कासह आशुकारी उरस्तोयके प्रारम्भिक। नैमित्तिक क्षति रोग सूचक।

(आशुकारी उरस्तोयके विशेष प्रकार)

(इ) महाप्राचीरा स्थानमें उरस्तोय

(Diaphragmatic Pleurisy)

यह उदरके भीतर गौणप्रकार रूपसे संप्राप्त्यात्मक स्थिति है। यह यकृद्विधि और महाप्राचीराके नीचे विद्रधि आदिमें उपस्थित होता है।

वेदना—महाप्राचीरा और स्कंधपर। कौड़ी प्रदेशमें भी। वेदना स्कंध या स्कंध संधिसे सम्बन्धयुक्त अनुकोष्ठिका नाड़ी (Phrenic Nerve) द्वारा चतुर्थ अनुग्रीविका नाड़ीके मूलमें प्रतिफलित अथवा कौड़ी प्रदेशमें लक्षण प्रतीति। नये रोगियोंमें पीड़ित स्थान उपपशुका प्रदेशके भीतर, मध्यपंक्तिसे लगभग २ इञ्चकी दूरी पर। इसमें सामान्यतः सम्बन्धवाले फुफ्फुसके निम्न खण्डोंमें वायुका कम प्रवेश।

हिक्का—सामान्य।

परीक्षात्मक लक्षण—ऊर्ध्व उदरपेशियाँ प्रायः दृढ़ हो जाना, महाप्राचीराका संचलन कम। आधार स्थानमें वायुका प्रवेशकम। क्वचित् घर्षण ध्वनि।

(ई) जनपदव्यापी उरस्तोय

(Epidemic Pleurisy)

गौणनाम—बोर्न होमका रोग, जनपद व्यापी मायेलजिया या प्लुरोडिनिया (Bornhoem Disease, Epidemic Myalgia or Pleurodynia)

यह संक्रामक रोग है। मूल हेतु अविदित है, यह जनपद व्यापी या यत्रतत्र उपस्थित होता है। सामान्यतः ग्रीष्म या शरद् ऋतुमें। यह असामान्य नहीं है; किन्तु इसके रोगनिर्णयमें प्रायः उपेक्षा हो जाती है।

लक्षण—

आक्रमण—गुप्त या अकस्मात्। व्याकुलता। वैधानिक लक्षण अनेक। प्रायः मन्द।

वेदना—उरः पञ्जरके निम्नभागमें पीछे और कौड़ी प्रदेशमें, प्रायः संचलनमें अधिक वेदना; किन्तु कास आनेपर कम प्रभावित।

मांसपेशियोंकी पीड़ना क्षमता—प्रायः अधिक। शोथ भी।

कास—विविध प्रकारकी। प्रायः स्पष्ट नहीं। कभी अभाव। अपरिणामकारक।

फुफ्फुसावरणकी घर्षण—प्रायः बहुत बड़ी आवाज़ और विषम। मूल अनिश्चित् मांसपेशियों में। भौतिक चिह्न भिन्न प्रकारके मन्द।

उत्ताप—नानाविध। कुछ दिनोंके लिये अधिक, सामान्य भी।

क्रम—कुछ दिन शय्यामें आराम करनेपर शान्त। अन्यथा लम्बेकालतक स्थिति। तरल क्वचित् बढ़ जाता है। स्वास्थ्य पूर्ण।

वक्तव्य—जनपदव्यापी प्रकारमें अनेक रोगी अति सौम्य।

(४) चिरकारी उरस्तोय

(क्रॉनिक प्लुरिसी—Chronic Pleurisy)

प्रकार—इसके २ प्रकार हैं—

(A) चिरकारी तरलमय उरस्तोय—बिना पूयोत्पत्ति हुए तरल सतत प्रयत्नशील रहता है।

(B) चिरकारी शुष्क उरस्तोय—घनीभूत उरस्तोय आवरणके पर्त मोटे होते हैं। इसके अनेक कारण हैं। वर्णन पहले सौत्रिकतन्तुमय विकारमें।

(C) चिरकारी शुष्क उरस्तोयके कारण—

१. सामान्य तरलमय और पूयात्मक उरस्तोयके अनुगामी विकार—फुफ्फुसावरण बहुत मोटा। आधार स्थान समतल या प्रसारणका ह्रास। ठेपन ध्वनि और श्वसन ध्वनिकी दुर्बलता। कुछ खिंचावमय पीड़ा अथवा लक्षणोंका अभाव।

२. प्राथमिक शुष्क उरस्तोय—आशुकारी प्रकारसह आरम्भ या गुप्त। लक्षण मन्द। शवच्छेदन करनेपर सामान्यतः संयोजनकी प्रतीति। लिटेनके चिह्नोंका अभाव। यदि फुफ्फुसपर आक्रमण होता है तो सौत्रिकतन्तुओंकी उत्पत्तिसे मोटापन (चिरकारी सौत्रिकतन्तुमय फुफ्फुसप्रदाह–Cirrhosis of the Lung) आ जाता है।

अनेक रसकलाका सौम्य या घातक व्यापक प्रदाह—(Polysero-

sitis or Polyorrhomenitis) इनमें घातक प्रकारको कोंकटोका रोग (Concato's disease) भी कहते हैं। अति गुप्त। सब रसकला प्रभावित हो जाती है। इसके कारणका निर्णय नहीं हुआ, यह चिरकारी नववर्द्धनसह सदर्याकलाप्रदाहमें दर्शाया है।

फुफ्फुसावरणका क्षय—फुफ्फुसावरणकी कलापर मलाई (पनीर) वत् पिण्ड। शिखरके चिरकारी उरस्तोयमें होर्नरके लक्षण समूह (Horner's syndrome) नेत्र गढडेमें घुस जाना, उर्ध्वपलकका पतन; निम्न पलकका उभार तथा कनीनिकाओंका आकुंचन नेत्रद्वारा पुरान्तरिया परिखाका संकोच और कण्ठस्थ स्वतन्त्रनाड़ीके वधसे स्वेदकी हीनता आदि।

कचित् फुफ्फुसावरणमें वायु भरनेपर भी फुफ्फुसावरणका पर्त मोटी हो जाता है।

(४६) रसभृत् फुफ्फुसावरण

(हाइड्रोथोरेक्स—Hydrothorax)

फुफ्फुसावरणमें प्रदाह रहित परम्परागत रसक्षरण होता है, उसे रसभृत फुफ्फुसावरण कहते हैं। उसकी उत्पत्ति श्वासकृच्छ्रतासे होती है। फुफ्फुसावरणके तरलकी मात्राके समान भौतिक चिह्न होते हैं। हृदयक्षति संभवतः अधिकतर दाँई ओर दक्षिण अलिन्दके प्रसारण द्वारा पुरोवंशिका शिरा (Azygos vein) पर दबाव आनेपर। वृक्क क्षरण दोनों पार्श्वोंमें। चित्रांक ३३ (पृष्ठ ७७४)आर्टपर देखें।

तरलका स्वभाव—हलका रंग। आपेक्षिक गुरुत्व १०१८ से अधिक नहीं। रक्ततन्तुका अभाव। कुछ प्रथिन अन्तस्त्वचाके घटक या अभाव, अपरिणामकारक और फुफ्फुसावरण मुलायम।

निदान—बहुधा रसभृत फुफ्फुसावरण विकार फुफ्फुसावरणके आशुकारी प्रदाहके हेतुसे उत्पन्न नहीं होता। इस अप्रबल शोथकी उत्पत्ति यकृद्विकार, वृक्क विकार, हृद् विकार, अर्बुद और पाण्डु रोगके हेतुसे जब रक्तवाहिनियाँ खूब भर जाती हैं, तब इनकी दीवारोंमेंसे रक्तजलका अवश स्राव (Passive exudation) होकर दोनों ओर स्थित फुफ्फुसावरणोंमें संचय होने लगता है। इस रोगकी उत्पत्ति विशेषतः उदररोग या सर्वाङ्ग शोथ और महाप्राचीरा पेशीकी शिथिलतासे श्वासविकृति के साथ-साथ होती है।

लक्षण—श्वासका आकर्षण (Inspiration) अतिक्रम। अग्निमान्द्य. निद्रा वृद्धि, आलस्य, हृदयकी स्थानच्युति, मलावरोध और मूल रोग लक्षण उपस्थित आक्रान्त स्थानपर अंगुलीसे ठेपन करनेसे घन ध्वनि; श्वासोच्छ्वास क्रियामें रोगाक्रान्त फुफ्फुसभाग स्थिर और गतिहीन। ध्वनिवाहक यन्त्रसे परीक्षा करनेपर श्वासोच्छ्वास ध्वनिका अभाव।

तरलमय उरस्तोय होनेके पहले कुछ दिनों तक पार्श्वपीड़ा होती है, यह पीड़ा और शुष्ककास इनमें नहीं रहती। एवं उरस्तोय बहुधा एक पार्श्वमें होता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना—तरलका आकर्षण। आवश्यकतापर पुनः आकर्षण या विरेचन और मूत्रल औषध देकर अधिक जलस्राव कराना।

पथ्यापथ्य—शोथ रोग तथा मूलव्याधिके अनुसार।

(५०) वायुभृत् फुफ्फुसावरण

(उरोवात न्यूमोथोरेक्स—Pneumothorax.)

रोग परिचय—यथार्थमें फुफ्फुसावरण बाह्य वायुसे रहित रहता है। जब इसमें छिद्र हो जाता है, तब इस थैलीमें वायु प्रवेश कर जाती है और वायुभृत फुफ्फुसावरण विकारकी प्राप्ति होजाती है। कभी-कभी वायुके प्रवेशके साथ रस या पूयका भी प्रवेश हो जाता है। रसका प्रवेश हो जाय, तो रसवातभृत् फुफ्फुसावरण (Hydropneumothorax) तथा पूय मिल जानेपर पूयवातभृत् फुफ्फुसावरण (Pyopneumothorax) कहलाता है। फुफ्फुसावरणके भीतरका दबाव न रहने के हेतुसे जब वायु प्रवेशित होती है, तब फुफ्फुसका आकुंचन होता है तथा फुफ्फुसान्तराल विपरीत दिशामें स्थान च्युत हो जाता है। (चित्रांक ३४ पृष्ठ ७७४ में और ३५ पृष्ठ ७८१ आर्टपर देखें।)

बहुधा यह रोग एक पार्श्वमें होता है। इनमें दक्षिण फुफ्फुसावरणकी अपेक्षा वाम फुफ्फुसावरण विशेषरूपसे प्रभावित हो जाता है।

निदान—सामान्यतः शहरी जीवनमें ८० प्रतिशत रोगियोंके भीतर राजयक्ष्मा हेतु होता है। इसके अतिरिक्त फुफ्फुस विद्रधि, नववर्द्धन, कोथ, रसार्बुद, शल्यप्राप्ति, फुफ्फुसविदारण, घातक क्षतसह तमक (श्वास, कोयलेकी खानवालोंका दमा Anthracosilicosis) आदिसे संप्राप्ति होती है। बन्दूककी गोलीसे सम्प्राप्ति होती है, किन्तु उसका वर्णन यहाँ नहीं किया जायगा। इनके अतिरिक्त कुछ हेतु निम्नानुसार हैं।

१. बाह्य कारण—

अ. घावका फटना।

आ. अनुसन्धान करनेके लिये डाली हुई सुई—
इससे फुफ्फुस विद्ध हो जाना या आकर्षणके पश्चात् सत्वर प्रसारण होनेसे रोग पीड़ित फुफ्फुसका विदारण हो जाना।

इ. फुफ्फुसावरणमें कृत्रिम वायु भरना।

२. रोगी फुफ्फुसका फुफ्फुसावरणमें विदारण—

अ. फुफ्फुसकी क्षय ग्रन्थिका विदारण सामान्यतम कारण। साधारणतया विवरका या मलाई जैसे पिण्डका आशुकारी राजयक्ष्मामें चिरकारी प्रकारमें संयोजन और मोटापनसे प्रायः संरक्षण हो जाता है।

तरलमय फुफ्फुसावरणमह छाती
(चित्रांक ३३)

वातभृत् उरस्तोय दक्षिण ओर
(चित्रांक ३५)

आ. नववर्द्धन, क्वचित् वायुकोष स्फीति, विद्रधि, श्वासनलिका प्रसारण ।

फुफ्फुसावरण विदारित होकर द्रव्यका फुफ्फुसमेंप्रवेश—१थमय उरस्तोय ।

४. विनावायुसे जीवित रहनेवाले कीटाणुओंका फुफ्फुसावरणपर आक्रमण—अति क्वचित ।

५. पचन संस्थानके नववर्द्धनका फुफ्फुसावरणमें विदारण—यकृत विद्रधिका फुफ्फुस और फुफ्फुसावरणमें समकालमें विदारण अति क्वचित् ।

६. स्वतः सिद्ध वातभृत् फुफ्फुसावरण—स्वस्थ मनुष्यमें संभवतः किसी छालेके फूट जानेपर ।

वातभृत् फुफ्फुसावरण प्रकार—

१. मुक्त—स्पष्ट विदारण । वायुमण्डलका दबाव ।

२. बद्ध—विदारण फिर जुड़ जाना ।

३. छिद्रयुक्त—श्वासग्रहणके साथ वायु प्रवेश होती है फिर त्यागकालमें निकल नहीं सकती ।

द्वितीय और तृतीय प्रकारमें फुफ्फुसावरणके भीतर दबाव सामान्यतः रहता है, वह बाह्य दबावकी अपेक्षा बढ़ जाता है । इसका मुख्य कारण तरल संग्रहकी वृद्धि है । फिर उसी अनुसार अवयव स्थान च्युत होते हैं ।

शारीर विकृति—यदि ब्रीहिमुखयन्त्रकी सुईको भीतर डाली है, तो दबानेपर वायु बाहर निकलती है । उरः पन्जरमें पृष्ठवंशके दूसरी ओर स्वस्थ फुफ्फुस आकुंचित रोगी फुफ्फुस प्रायः कम आकुंचित । सामान्यतः रस या पूय वर्त्तमान । प्रायः थोड़ा छिद्र निम्नखण्डके ऊर्ध्व भागमें सामान्यतम या ऊर्ध्व खण्डके निम्न भागमें ।

लक्षण—आक्रमण कालमें—

१. अकस्मात्—श्वासावरोध, उस पार्श्वमें गंभीर वेदना, आकुंचनके लक्षण, छोटी तेज़नाड़ी ।

२. गोपनीय—अकस्मात् प्रकाशन । विशेषतः जब फुफ्फुस पीड़ित हो या क्षयग्रस्त हो । फुफ्फुसावरणका संयोजन फुफ्फुसान्तरालकी स्थानच्युतिका निवारण करता है।

भौतिक चिह्न—सामान्यतः नाड़ीस्पन्दन १२० । श्वसन २० से ३० ।

दर्शन परीक्षा – अचलता, वृद्धि पीड़ित पार्श्वमें शिखर स्पन्दनकी स्थान च्युति ।

स्पर्श परीक्षा—स्पर्शजन्य कम्पनका अभाव ।

टेपन परीक्षा—बढ़ी हुई सौषिर ध्वनि, फुफ्फुसान्तरालके दबावभेदसे विविधता । हृदयकी जड़ ध्वनिमें अन्तर (यदि बाँई ओर हो) या पीड़ित स्थानसे स्थानान्तरित । बाँई ओरके वातभृत् फुफ्फुसावरणमें यकृतकी जड़ ध्वनि स्थानान्तरित । यदि तरल उपस्थित है तो आधार स्थानपर परिवर्त्तित जड़ ध्वनि ।

ध्वनि श्रवण—श्वसन ध्वनि अविदित या दूरका या कौप्यक। वाक् प्रति-ध्वनि धातव ध्वनि (Coin test) सदृश, अस्वाभाविक ध्वनि (धातव टनटन आवाज़) और कास। क्षयमें कठोर फुफ्फुस और मोटा फुफ्फुसावरणसह आदर्श ध्वनि।

हिपोक्रेटिक ध्वनि (बस्ति संदोलन ध्वनि-Hippocratic succussion) अर्थात् फुफ्फुसावरणमें तरल और वायु होनेपर रोगीको हिलावें तथा पीठकी ओर कान रखकर सुनें तो मशकमें जल चलनेके समान आवाज़ आती है। यह इस रोगका विशेष चिह्न है।

महाप्राचीरा बहुधा नीचे झुक जाती है; हृदय स्थानभ्रष्ट हो जाता है। यदि वायु संयत हो, स्थानका प्रसारण न हुआ हो, तो महाप्राचीरा पेशी और हृदयको हानि नहीं पहुँचती है।

विकार वाम फुफ्फुसावरणमें हो, तो हृदय स्थानभ्रष्ट हो जाता है। फिर वायु फैल जानेसे फुफ्फुसावरण हृदयपर सरक जाता है जिससे अँगुलि ठेपनमें हृदयस्थानमेंसे घनध्वनिके बदले रिक्तध्वनि उत्पन्न होती है; तथा फुफ्फुसान्तराल अर्थात् दोनों फुफ्फुसों के बीच रहा हुआ रिक्त प्रदेश (Mediastinum) दक्षिण दिशामें सरक जाता है।

यदि यह व्याधि दक्षिण फुफ्फुसावरणमें हुई हो, तो उरोगुहाकी मध्य दीवार कुछ वाम दिशामें चली जाती है। इस हेतुसे ठेपन करनेपर हृदयके स्वाभाविक प्रदेशके ऊपर रिक्त ध्वनि (Tympanic resonance) होती है। इसपरसे हृदयके स्थान भ्रष्ट होनेका बोध हो जाता है।

ठेपन कालमें रोगीके मुँहको बन्द रखानेपर ध्वनिकी गूँज बढ़ जाती है; और रोगीका मुँह खुला रखाने पर गूंज कम हो जाती है। यदि फुफ्फुसावरणसे फुफ्फुस और श्वास प्रणालिकायें पृथक् हो जायँ, तो ठेपन करनेपर फूटे हुए पात्रके सदृश (Cracked pot resonance) आवाज़ निकलती है।

कशेरुकापर फुफ्फुस स्थापित होनेसे स्पर्श करनेपर स्पन्दाभाव, ध्वनिवाहकयन्त्रसे सुननेपर श्वासोच्छ्वासध्वनि क्षीण या लोप हो जाना, (फुफ्फुसमूलपर तो आवाज़ स्वाभाविक नालीय नाद सदृश होती है), फुफ्फुसका पूर्णांशमें बलक्षय न हुआ हो, तो निःश्वासमें या श्वासग्रहण में, दोनों समय कौप्यक नाद (Amphoric) और पीड़ित स्थानपर रुपया रखकर दूसरे रुपयेसे बजाने और उस समय ध्वनिवाहक-यन्त्रसे सुननेपर रुपयेके बजानेकी विपरीत दिशामें घण्टा नाद (Bell-sound) के सदृश आवाज़ आना आदि बाह्य चिह्न होते हैं। यह घण्टानाद (Coin test) रोग निर्णायक विशेष चिह्न माने जाते हैं। इस परीक्षा द्वारा आक्रमित फुफ्फुसावरणकी सीमाका भी निर्णय हो जाता है।

वातभृत् फुफ्फुसावरणका स्वभाव—श्वसन ध्वनिके अभावसह बड़ी

आवाज़, अवयवोंकी स्थान च्युति भी आतव वाक्ध्वनि, स्पर्श ग्राह्य कम्पनका अभाव और स्थानिक स्थिरता ।

तरल स्वभाव और वातभृत् फुफ्फुसावरण—हिपोक्रेटिक संदोलन और परिवर्त्तित जड़ ध्वनि ।

रेडियोग्राफ—स्थानिक अनुचित स्वच्छता । सामान्य फुफ्फुस छायाका अभाव । पृष्ठवंशके पास आकुंचित फुफ्फुस फुफ्फुसान्तराल स्थानान्तरित । छातीकी दीवार और फुफ्फुसके बीच संयोजन हो, तो देखना चाहिये ।

रोगविनिर्णय—सामान्यतः सरल, रेडियोग्राफ बहुधा निश्चयात्मक । कभी भिन्न रोगोंसे निर्णय करना पड़ता है ।

१. बृहद् क्षय विवरमें—विशेषतः एक फुफ्फुसका बड़ा गह्वर होनेपर; किन्तु अवयवोंकीस्थान च्युति, परिवर्त्तित जड़ ध्वनि तथा हिपोक्रेटिक संदोलनकी सर्वदा अनुपस्थितिसे विभेद हो जाता है ।

२. फुफ्फुसावरणमें तरल—

३. महाप्राचीराका निम्नस्थ अपक्रान्तिसह विद्रधि—फुफ्फुस शिखरको कदापि प्रसारित नहीं करता ।

४. महाप्राचीरामें अन्त्रावतरण—

परिणाम—कारणपर अवलम्बित । मानस आघात अधिक पहुँच जाय और सत्वर योग्य उपचार न हो तो मृत्यु । दोनों पार्श्वमें हो जाय, तो परिणाम गंभीर ।

राजयक्ष्मामें—(१) प्रारम्भिक तीव्रक्षयमें मुलायम ग्रन्थियोंका विदारण होकर मानस आघात और हृदयकी ओर प्रसारण होनेपर कुछ मिनटोंसे कुछ सप्ताहके भीतर मृत्यु । (२) बड़ी आयुवालोंमें एक फुफ्फुससे कार्य करनेका अभ्यास हो जानेसे परिणाम कम गंभीर; चिरकारी स्थिति बनकर वर्षोंतक जीवन टिक जाता है । (३) कभी (एक ओर वायु भर देने पर) फिर उन्नति हो जाती है ।

स्वतःसिद्ध वातभृत् फुफ्फुसावरण—सत्वर स्वास्थ्य प्राप्ति । फिर कोई विकृतावस्था नहीं । उत्तर कालीन क्षय क्वचित् । पुनराक्रमणका स्वभाव । कभी वायु वर्षों तक रह जाती है ।

चिकित्सोपयोगी सूचना

स्थिति अनुरूप त्रिविध चिकित्सा—

१. आशुकारी आक्रमणमें वेदना शमनार्थ; (२) वायुका दबाव कम करानेके लिये; (३) तरल चिकित्सा ।

१. आशुकारी आक्रमण मानस आघात और श्वासकृच्छ्रतासह होनेपर—उत्तेजक औषधि देवें । डॉक्टरीमें ब्रॉण्डि और एमोनिया देते हैं, आयुर्वेदमें संजीवनी सुरा, मृगमदासव, वात विध्वंसनरस आदि ।

२. वायुका अति दबाव—इससे श्वासकृच्छ्रता और हृदयमें कष्ट पहुँचता है। सूक्ष्मनोकवाली सुईसे छिद्र करके वायु निकालनेपर अच्छा आराम मिल जाता है। सुई खींच लेनेके बाद छिद्रपर दबाव देकर त्वचाके तन्तुओंमें वायु प्रवेशको रोक देना चाहिये। अन्यथा दूसरी आपत्ति खड़ी हो जायगी। इस तरह प्रबन्ध कर लेनेपर श्वसनक्रियामें सुविधा मिल जाती है।

३. तरल—यदि कष्ट या विगलनका चिह्न न हो, तो उसे वैसा ही रहने दें। राजयक्ष्मा आगे बढ़ गया हो, तो पूयोत्पादक तरल या अधिक तरलका आकर्षण करलेना चाहिये। तरल आकर्षित कर लेनेके पश्चात् स्थिर विगलनावस्थाके चिह्न न हों, तो पशुका को नहीं काटना चाहिये। अन्य रोगियोंमें पूयमय तरलको निकालनेके लिये पशुका छेदन करें।

वेदना अति हो, तो मोर्फियाका अन्तःक्षेपण या महावातराजका सेवन कराना चाहिये। वायुका दबाव कम होनेके पश्चात् हृदयोत्तेजक मृत सञ्जीवनीसुरा, कस्तूरी, जवाहर मोहरा या लक्ष्मी विलास देना चाहिये।

पूयात्मक प्रकारमें कितनेक डॉक्टर फुफ्फुसावरणमें से पूय निकाल लेनेके पश्चात उसे मेथीलिन ब्ल्यू (नीले रंग) के १ : ५००० द्रावणसे धो देते हैं।

स्वतःसिद्ध प्रकारमें रक्तवातभृत फुफ्फुसावरण (Haemopneumothorax) होनेपर फुफ्फुसावरणमें एस्पिरेटर द्वारा रक्तको आकर्षित कर लेना चाहिये। यदि फुफ्फुसावरणमें रक्तस्राव चालू हो तो शिराके भीतर कोंगो रेड (Congo-red-लालरंग) १ प्रतिशतके १० मिलीमीटरका अन्तःक्षेपण किया जाता है।

बाह्य उपचार—१. एक कपड़ेमें थोड़ी-सी रुई रख नींबू जैसी पोटली बनावें। ऊपर कपड़ेके सिरेको (लगभग २ इञ्च) पकड़नेके लिये रहने देवें। फिर उसे अति गरम घीमें डुबोकर पीड़ित स्थानपर १०-१५ मिनट तक चोभा देते रहें; अर्थात् बार-बार पोटलीका स्पर्श कराकर उठाते रहें। फिर वहाँ पर उस पोटलीको बाँध देनेसे बाह्य आघातजन्य या इतर हेतुसे प्रविष्ट वायु निकल जाती है।

२. हींग और अफीमको जलमें घिस गुनगुना कर लेप करें। फिर आवश्यकतानुसार थोड़ा सेक करें।

३. पीड़ित स्थानपर एरण्ड तैल लगाकर थोड़ा सेक करें। फिर गुड़ और अजवायनको मिलाकर गुनगुना बाँध देनेसे आघातजन्य विकार और शूल दोनों शमन हो जाते हैं।

५१ फुफ्फुसान्तराल प्रदाह

(लिम्फेडीनाइटिज़—Lymphadenitis)

कारण—फुफ्फुसान्तराल (दोनों फुफ्फुसोंके बीचमें स्थित रिक्त प्रदेश)

की, नलिका और विभाजित श्वासनलिका समूहकी ग्रन्थियोंका प्रदाह । इसके हेतु निम्नानुसार हैं—

१. क्षय—बारंबार । ये ग्रैवेय ग्रन्थियोंसे चारों ओर फैलता है या बालकोंमें घोन क्षत (Ghon's Focus) से (सामान्यतः फुफ्फुसावरणके निम्नफुफ्फुसखण्डमें) ।

२. सामयिक—अ. बालकोंमें आशुकारी ज्वरावस्था; आ. फुफ्फुसकी प्रदाहावस्था ।

लक्षण—प्रायः अभाव या संदेहास्पद ।

चिह्न—ठेपन करने और ध्वनि श्रवण करनेपर किञ्चित् एक पार्श्वमें परिवर्त्तन । बालकोंमें आक्षेपात्मक कासकी सूचना मिलती है । रेडियोग्राफमें विभाजित श्वासनलिका द्वारपर छाया ।

यदि क्षयग्रन्थिसे या नासापश्चिम ग्रन्थि आदिके पश्चात् श्वासनलिकाकी ग्रन्थियोंका विद्रधि हो जाय, तो विद्रधि होकर फुफ्फुसान्तरालका पूयमय प्रदाह होता है । यह विद्रधि किस दिशामें फूटे, यह कोई नियम नहीं । क्षय ग्रन्थियाँ मोटी और कम तरलमय । इस प्रकारमें पूयोत्पत्तिके लक्षण सुई की तरह चुभना, ज्वर आदि होते हैं ।

५२ फुफ्फुसान्तराल विद्रधि

एब्सेस ऑफदी मेडियास्टिनम—(Abscess of the Mediastinum.)

प्रकार—आशुकारी और चिरकारी ।

आशुकारीके कारण—(१) अन्ननलिका या श्वासनलिकाका विदारण, फुफ्फुस विद्रधि, उदर्य्याकलाप्रदाह, सेन्द्रियविष प्रकोप, बूजी (Bougies-ठोस नलिका) प्रयोग आदिसे अभिघातः(२) आशुकारी ज्वर ।

चिरकारी प्रकारका कारण—क्षय ।

लक्षण और चिह्न—उरःफलकके पीछे वेदना । विगलनके चिह्न । फुफ्फुसावरण दबाव ! निश्चित् चिह्न क्वचित् ही । उत्तान शोथ और जड़ ठेपन । कभी उरःफलक स्थानपर अर्बुद यह किसीभी दिशामें फूट जाता है ।

चिरकारी प्रकारमें सामान्यतः ग्रन्थियाँ शुष्क और मोटी हो जाती हैं ।

५३ फुफ्फुसान्तराल और हृदावरणका कठोरप्रदाह

इण्डुरेटिव मेडियास्टिनो-पेरीकार्डाइटिस

(Indurative-Mediastino-Pericarditis)

फुफ्फुसान्तरालके संयोजक तन्तुओंका चिरकारी सौत्रिकतन्तु विकार । यह क्षयात्मक या अस्पष्ट कारणजन्य होता है । क्वचित् युवावस्थामें प्रारम्भ होकर शनैः-शनैः प्रगति करता है । इसमें ३ प्रकार हैं—

१. फुफ्फुसान्तरालके तन्तु और हृदावरणका संयोजन—यह सच्चा कठोर प्रदाह है । लक्षण-हृदावरण संयोजन और हृदय वृद्धिके अनुरूप-श्वासकृच्छ्रता

गात्रनीलता, ह्रस्वाद, फुफ्फुसान्तरालका घर्षण और संयोजनका विस्तार होनेपर हाथको शिरपर ऊँचा उठानेपर कटकट ध्वनि। इस प्रकारमें चिरकारी उदर्याकलाप्रदाह होता है और कुछ अंशमें रसकलाका प्रदाहभी।

२. हृदावरण प्रदाह बाह्याभ्यन्तर—हृदावरणका संयोजन उरःफलकसे; किन्तु फुफ्फुसान्तराल मुक्त।

३. हृदावरणके पीड़ित हुए बिना, फुफ्फुसान्तराल प्रदाह।

चिकित्सा—प्रदाहघ्न।

५४ फुफ्फुसान्तरालमें अर्बुद

ट्यूमर्स ऑफ दी मेडियास्टिनम

(Tumours of the Mediastinum)

छातीमें आगेकी ओर, उरःफलकास्थिके पिछली ओरसे पृष्ठवंशकी अगली ओर तक जो भाग दोनों फुफ्फुसोंके बीच स्थित है, उसे फुफ्फुसान्तराल प्रदेश कहते हैं। इस स्थानमें अनेक जातिके अर्बुद होते हैं। इनके मुख्य २ प्रकार होते हैं। (१) सौम्य; (२) घातक।

१. सौम्य अर्बुद—क्वचित्। वसार्बुद (Lypoma) अग्र फुफ्फुसान्तरालको भर देता है। अन्य सौम्य अर्बुदोंमें मांसार्बुद (Myoma), कूर्चार्बुद (Chondroma), अस्थि-कूर्चार्बुद (Osteo-Chondroma), वर्द्धनशील बालग्रैवेय ग्रन्थि और उरःफलके पीछे गलगण्ड।

२. घातक अर्बुद—कर्कस्फोट, दुष्ट मांसार्बुद (Sarcoma) या वातनाड़ीकंदिका, नाड़ीतन्तु और जालदारतन्तु, इन तीनोंके अपक्व घटकोंमय अर्बुद (Ganglioneuroblastoma) कर्कस्फोट संभवतः सर्वदा फुफ्फुस या श्वासनलिकामें बढ़नेवाला गौण होता है। फुफ्फुसान्तरालके दुष्ट मांसार्बुदके कितनेक प्रकार संभवतः श्वासनलिकाके यवाकार घटकमय कर्कस्फोटके स्वभावका होता है। लसीकार्बुद (Lymphosarcoma), होजकिनका रोग या श्वेताणु वृद्धिमय पाण्डु। ये भी फुफ्फुसान्तरालकी ग्रन्थियोंपर असर पहुँचाता है

इनके अतिरिक्त कभी-कभी चर्मार्बुद (Dermoid Cyst) भी हो जाते हैं। इस प्रकारमें कभी सौम्य विलक्षण आकारके अर्बुद (Teratoma) होजाता है।

आक्रमण—सामान्यतः गुप्त। श्वासकृच्छ्रता और कासरुह। ये लक्षण सब्वे रोगकी चिकित्सामें बाधक होते हैं।

लक्षण—अर्बुदोंकी जाति, आकृति, दबाव, सम्बन्ध और क्रियाभेदसे विविध। मुख्यतः उरःप्रदेशमें दबाव। अन्तर्मरण और प्रदेशान्तर अधिक बार नहीं।

A. दबावके हेतुसे उत्पन्न लक्षण—

१. बृहच्छ्वासनलिका, मुख्य श्वासनलिका शाखापर--श्वासग्रहणमें कष्ट, श्वासकृच्छ्रता और श्वासोच्छ्वासमें घुर-घुर आवाज़।

(Superior Vena Cava) के अवरोध में उत्पन्न धड़ और हाथ पर प्रसारित शिराएँ (चित्रांक ३६)
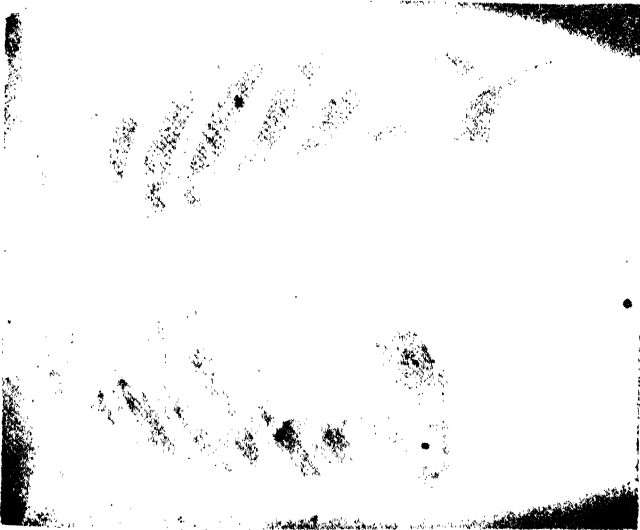
रसवातभूत उरस्तोय दक्षिण ओर (चित्रांक ३४)

२. फुफ्फुसपर—श्वासनलिकाप्रदाह, श्वासकृच्छ्रता और उरस्तोय। फुफ्फुसका कुछ अंश आकुंचित।

३. शिरापर—शिराप्रसारण होकर मुख, छाती और कण्ठपर शोथ।

४. वातनाड़ियोंपर—अ. प्राणदानाड़ी—आकस्मिक प्रचण्डकास; आ. प्रत्यागामी नाड़ी—आवाज़ बैठजाना; इ. स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल—अश्रुविसर्जनी नाड़ीकी विकृति आदि होनेके लक्षण समूह; ई. पर्शुकान्तरिका नाड़ी—वातनाड़ीशूल, क्वचित् पृष्ठवंशमें पीड़ा।

५. अन्ननलिकापर—निगलनेमें कष्ट (Dysphagia)।

६. धमनीपर—रक्तस्राव।

७. महाप्राचीरापर—दबावकी ओरका विपरीत संचलन (श्वासग्रहणमें ऊर्ध्व गमन और निःश्वासमें अधोगमन) और हिक्का।

इनके अतिरिक्त दबावके हेतुसे नाड़ीकी गतिमें विकृति, कनीनिकाकी असमानता, छाती या हाथमें वेदना आदि। चित्र नं० ३६ आर्टपर देखें।

B. अस्थिक्षत (Erosion of Bones) होनेपर दृढ़ वेदना।

C. धमनी विकृति—दोनों ओरकी नाड़ीमें असमानता या एक-एक फुफ्फुसको अन्तरायसह रक्त देना और कोथका अनुसरण करना।

D. शिराविकृति—छातीकी उत्तान शिराएँ प्रसारित और ऊर्ध्वा महाशिरामें प्रतिबन्ध।

E. शोथ—मुखमण्डल, ग्रीवा, छाती और हाथपर।

F. फुफ्फुस—पिछली ओरके दबावके कारण रक्तवृद्धि मय।

G. फुफ्फुसावरणमें—तरलवृद्धि।

H. मुख्यरस कुल्यामें प्रतिबन्ध—फुफ्फुसावरणमें दुग्धमय तरलकी वृद्धि।

भौतिक चिह्न—विविध प्रकारके। गात्रनीलता, ग्रीवाकी लसीका ग्रन्थियों (अनुग्रीविका) की वृद्धि। कभी-कभी अर्बुदस्पर्शग्राह्य। रोगी सामान्यतः शिरको पिछली ओर झुकाकर बैठता है।

क्रम—सत्वर।

अर्बुद संस्थिति—स्थान भेदसे पृथक-पृथक्।

१. आगेकी ओर होनेपर—उरःफलकके ऊपर ठेपन करनेसे मन्दध्वनि, सामान्य शिराओंपर दबाव और शोथ। अनुग्रीविका ग्रन्थियाँ बढ़ी हुई और श्वासकृच्छ्रता।

२. बीचमें या पिछली ओर होनेपर अधिक श्वासकृच्छ्रता।

३. फुफ्फुस और फुफ्फुसावरणसे सम्बन्ध होनेपर सत्वर कृशता, अनुग्रीविका ग्रन्थियोंकी स्फीति।

रोग विनिर्णय—'क्ष' किरण परीक्षा और वॉसरमेन की प्रतिफलित क्रियाद्वारा सहायता मिल जाती है।

विभेदक रोग विनिर्णय—निम्नरोगोंसे पृथक् करें।

१. धमन्यर्बुद—दबाव सम देता है; किन्तु सच्चे अर्बुदमें गात्रनीलता, शिरापर दबाव और उरस्तोय आदि लक्षण होते हैं। धमन्यर्बुदमें वॉसरमेनकी प्रतिक्रिया सर्वदा ग्राह्य होती है; हृदयप्रसारण कालमें आघात पहुँचता है; धमनीकी द्वितीय आवाज़ बड़ी, प्रसारित, स्पन्दन और श्वासनलिकाका आकर्षण होता है।

२. हृदयावरणमें अधिक रसस्राव—मंद ठेपन और निर्बल हृदयध्वनि।

३. फुफ्फुसावरणमें रसस्राव—ठेपन द्वारा निर्णय।

४. फुफ्फुसार्बुद।

चिकित्सा—घातक प्रकारमें वेदनाशमनार्थ चिकित्सा करनी चाहिये। सौम्य प्रकारके अर्बुदोंको शस्त्रचिकित्सा द्वारा निकाल देवें। 'क्ष' किरण चिकित्सा होजकिनके रोग या श्वेताणु वृद्धि पाण्डुके समान की जाती है; किन्तु 'क्ष' किरण और रेडियोग्राफी (रेडम) का असर तुच्छ ही होता है।

५५. महाप्राचीराका पक्षवध

पेरेलाइसिस ऑफ दी डायाफ्राम

(Paralysis of the Diaphragm)

कारण—

१. महाप्राचीराके केन्द्रोंकी क्षति—अनेक स्थानपर मज्जाप्रदाह। मज्जाके भीतर रक्तस्राव, सुषुम्णाकाण्डमें अर्बुद आदि होनेपर।

२. अनुकोष्ठिका नाड़ीकी क्षति—कण्ठरोहिणी, वातनाड़ीप्रदाह, फुफ्फुसान्तराल अर्बुदका दबाव और शस्त्रचिकित्सा आदिसे।

रेडियोग्राफ—महाप्राचीराका पीड़ित पार्श्व उन्नत होता है या विरुद्ध संचिलित होता है।

५६. हिक्का

(हिचकी-हिक्कप-सिंगलटस—Hiccup-Singultus.)

रोगपरिचय—जब हृदयमें विद्यमान प्राण और कण्ठस्थित उदानवायु, दोनों कुपित होकर बार-बार ऊर्ध्वगति करती रहती हैं, तब अन्ननलिका और श्वसनिकामेंसे निकलकर वायु मुखद्वारा हिक्-हिक् सदृश आवाज़के साथ बाहर निकलती रहती है, उसे हिक्का संज्ञा दी है; अथवा जब किसीभी कारणसे स्वरयन्त्रका मुँह बन्द होजाता है। फिर प्राणवायु आमाशयमेंसे कुपित होकर ऊपर उठती है; पश्चात् वह अन्ननलिका और श्वसनिकामेंसे होकर आवाज़सह मुँहमेंसे बाहर आती है, उसे हिक्का कहते हैं।

प्रसनिका (फेरिंक्स—Pharynx)—हम जो अन्न-जल ग्रहण करते हैं, वह मुँहमेंसे प्रसनिका और अन्ननलिकामें होकर आमाशयमें प्रवेश करता है। यह प्रसनिका अन्ननलिकाके ऊपर रही है। इसकी आकृति धतूरेके फूलके समान है। यह ग्रीवा कशेरुकाके आगे तथा नासागुहा, मुखगुहा और स्वरयन्त्रके पीछे रही है। इस स्थानमें सात छिद्र (द्वार) रहनेसे इसे सप्तपथ और सप्तसिंधु प्रदेश भी कहते हैं। उपर्युक्त सात छिद्रोंमेंसे दो छिद्र नाकसे, दो कानसे, एक मुखसे, एक अन्ननलिकासे तथा एक श्वासनलिकासे सम्बन्ध रखता है।

मनुष्य नाक या मुँहद्वारा जो वायु ग्रहण करते हैं, वह पहले इस प्रसनिकामें और फिर स्वरयन्त्रमें होकर फुफ्फुसोंमें जाता है। जब हम बोलते हैं या गाते हैं, तब प्रसनिका स्वरके तरङ्गोंको बड़ा बनाती है। भोजन निगलनेके समय इस प्रसनिकाकी मांसपेशियाँ ग्रासके चारों ओर संकुचित होती हैं; फिर भोजन अन्ननलिकामें आता है। उस समय पहले प्रसनिका ऊपर उठती है; फिर नीचे जाती है। भोजन निगलनेपर स्वरयन्त्रका ऊर्ध्वद्वार और नासिकाके पीछे स्थित द्वार, ये दोनों अधिजिह्विका और कोमल तालुसे बन्द हो जाते हैं।

श्वासनलिका (ट्रेकिया और विन्ड पाइप—Trachea or Wind pipe) यह नली ४-४॥ इन्च लम्बी और एक इन्च चौड़ी है। श्वास वायुको भीतर जाने-आने के लिये यह नली कण्ठके अगले हिस्सेमें रही है; और कण्ठके निम्न-भागमें दोनों फुफ्फुसोंमें जानेके लिये दो मुख्य शाखाओंमें विभक्त होजाती है। इस श्वासनलिकाके ऊपरका द्वार स्वरयन्त्र (Larynx) के साथ सम्बन्ध वाला है। हिक्काका अति वेग बढ़नेपर स्वरयन्त्र और श्वासनलिका, इन दोनोंपर अघात पहुँचता रहता है।

अन्ननलिका (इसोफेगस Oesophagus)—यह नलिका लगभग १० इन्च लम्बी और १। इन्च चौड़ी है। यह मांसपेशियोंसे बनी है। प्रसनिकामें से आये हुए अन्न-जलको आमाशयमें लेजाती है। यह नलिका छटवीं ग्रीवा कशेरुकाके पाससे प्रारम्भ होकर ग्यारहवीं पृष्ठ कशेरुकातक नीचे उतरकर आमाशयसे मिल जाती है। यह पृष्ठ वंशकी आगेकी ओरसे लगभग सीधी नीचे आती है। कोई बाह्य पदार्थ आजाता है, या दीवारका संकोच होजाता है, तब आहार सरलतासे नीचे नहीं जा सकता। कण्ठमें ग्रन्थियाँ होनेपर उनके दबावसे भी ऐसा होजाता है।

अन्ननलिका और महाप्राचीरा पेशी

१ दक्षिण अक्षाधरा धमनी R. Sub clavian art.

२ तोरणी महाधमनी Aortic arch.

३ दक्षिण श्वासनलिका R. Bronchus.

४ वाम श्वासनलिका L. Bronchus.

५ दक्षिणपुरोवंशिकाशिरा Azygos vein

६ अन्ननलिका Oesophagus.

७ अवरोहिणी महाधमनी Desc. thoracic aorta

८ महाप्राचीरा पेशी Diaphragm

९ अन्ननलिकाके लिये छिद्र Oesophagus hiatus. (अन्ननलिका महाप्राचीरका भेदन करके उदरगुहामें जाती है)।

१०-११ महाधमनीको उदरगुहामें प्रवेश करनेके लिये छिद्र Aortic hiatus.

१२ दक्षिण महामातृका धमनी R. Com. Carotid art.

१३ बृहच्छ्वास नलिका Trachea.

१४ वाम महामातृका धमनी L. Com. Carotid art.

१५ वाम अक्षाधरा धमनी L. Subclavian art.

१६ अन्ननलिका Oesophagus.

१७ प्रथम पर्शुका First. rib.

अन्ननलिकाका संकोच प्रायः व्रणोंके सौत्रिकतन्तु (Fibrus tissues) और अर्बुद (New growth) के हेतुसे होता है। हिस्टीरियामें आक्षेपयुक्त संकोच (Spasmodic stricture) होजाता है। संकोचके प्रारम्भमें शुष्क पदार्थ निगलनेमें त्रास होता है। फिर मृदु पदार्थभी नहीं निगला जाता। पश्चात्

प्रवाही दुग्ध आदि निगलनेमें भी वेदना होने लगती है। यदि यह व्याधि कर्कस्फोट-जन्य हो, तो असाध्य ही मानी जाती है।

हृदयके नीचे और उदरके ऊपर दोनोंके मध्यमें सर्पफणाके समान स्थित हुई महाप्राचीरापेशी (डायाफ्राम—Diaphragm) का संकोच होना, यह श्वासोच्छ्वास क्रियामें मुख्य हेतु है। इन पेशियोंके संकोचसे छातीका विस्तार बढ़ जाता है और बाहरकी वायु भीतर प्रवेश करती है; परन्तु श्वास लेनेके समय जब पूरा श्वास लेनेके पहले ही स्वरयन्त्रका मुँह (ग्लोटिस–Glottis) संकुचित हो जाता, तब भीतर आनेवाली वायुको प्रतिबन्ध होता है। फिर बलात्कारसे हिक्-हिक् ऐसी विचित्र आवाज़सह वायु बाहर निकलती है। इसीलिये यह रोग हिक्का कहलाता है।

महाप्राचीरा पेशी—(डायाफ्राम–Diaphragm) यह मांसपेशी शरीरमें स्थित हुई सब मांसपेशियोंसे बड़ी है। इसकी आकृति सांपके फण सदृश है। इसका ऊपरका भाग कूर्मकी ढालके सदृश बहिर्गोल है। नीचेकी बाज़ू अंतर्गोल है। मध्य भाग समतल है। यह विशाल पेशी उरोगुहाके नीचे और उदर गुहाके ऊपर स्थित है; अर्थात् यह पेशी उरोगुहाको उदरगुहासे पृथक् करती है। इस पेशीकी सम्पूर्ण परिधि और मूलभाग मांसमय तन्तुओंसे बना है। किन्तु इसके विपरीत इसका मध्य भाग जो अर्ध चन्द्राकृति है; वह सुदृढ़ कलाकण्डरा (Strong aponeurosis) से बना है। मध्यभाग (Central Tendon) के स्नायु सूत्र परस्पर ऐसी विचित्र रीतिसे ग्रथित हुए हैं कि वह पत्रके सदृश आकृतिके तीन विभागोंसे बना हो, ऐसा भास होता है।

इस पेशीका मूल भाग दो मूलों (Crura or pillars) मेंसे बना है। इसके प्रारम्भका भाग स्नायुमय और शेष भाग मांसमय है। इस मूल भागके दोनों ओर दृढ़ स्नायु सूत्रोंसे बने हुए दो-दो तोरण (Medial and Laterl Lumbo-costal arches) है।

इस पेशीमें उदरगुहा और उरोगुहाके बीचका सम्बन्ध सम्हालनेके लिये कितनेक छिद्र हैं; जिनमें ३ मुख्य हैं। सबके ऊपर कुछ दाहिनी ओर महाशिराका छिद्र है। जिसमेंसे अधरा महाशिरा छातीके भीतर प्रवेश करती है (नीचेसे ऊपर जाती है); और दक्षिण अनुकोष्ठिका नाड़ियों (Right Phrenic Nerves) की शाखाएँ उरस्थानमें से उदरगुहाके ऊपरके हिस्सेमें जाती हैं; अर्थात् ये ऊपरसे नीचे उतरती हैं।

महाप्राचीरा पेशी
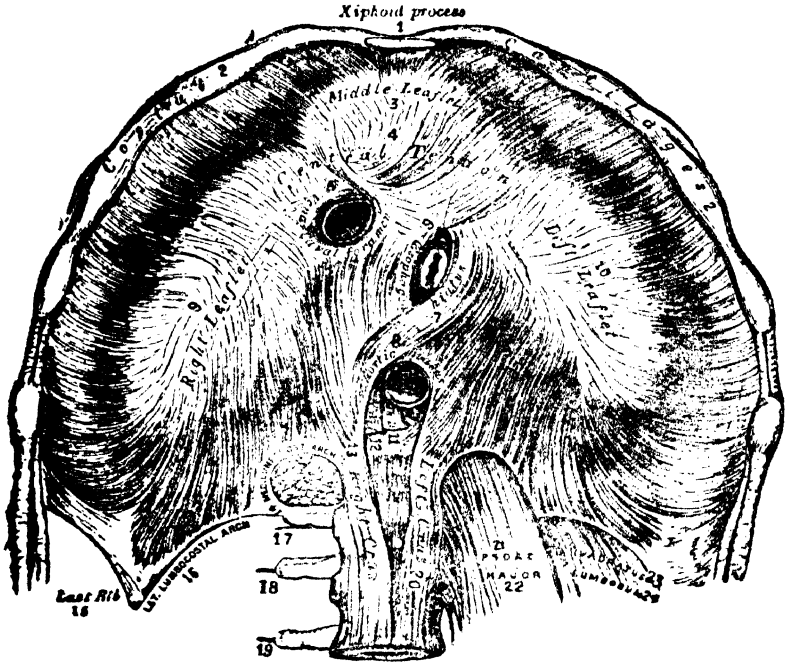
१ अग्रपत्र नामक तरुणास्थि Xiphoid process.

२ उपपर्शुकाएँ Costal Cartilages.

३ मध्य प्रदेश Middle Leaflet.

४ केन्द्रीय कण्डरा Central Tendon.

५ अधरा महाशिराके लिए छिद्र Vena Caval foramen.

६।७ अन्ननलिका छिद्र Oesophageal hiatus.

८ महाधमनीके लिए छिद्र Aortic hiatus.

९ दक्षिण प्रदेश Right Leaflet.

१० वाम प्रदेश Left Leaflet.

११ रसकुल्या Thoracic Duct.

१२ दक्षिण पुरोवंशिका शिरा Right azygos vein.

१३ दक्षिण मूल (स्तम्भ) Right Crus.

१४ महाप्राचीराका अन्तर्तोरण Medial lumbocostal Arch.

१५।१२ वीं पर्शुका Last Rib.

१६ महाप्राचीराका बहिस्तोरण Lateral Lumbocostal Arch.

१७ से १९ पृष्ठ कशेरुका Thoracic vertebrae.
२० वाम मूल (स्तम्भ) Left Crus.
२१।२२ कटिलम्बिनी दीर्घा Psoas major muscle.
२३।२४ कटिचतुरस्रा पेशी Quadratus Lumboramm.

दूसरा छिद्र मध्य रेखासे कुछ ऊपर है, जिसे अन्ननलिका छिद्र कहते हैं। इसके द्वारा अन्ननलिका उरस्थानमें से उदरगुहामें प्रवेशकर आमाशयके साथ संलग्न होती है । इस अन्ननलिकाके साथ प्राणदा नाड़ियाँ (Vagus Nerves) भी उदरगुहामें उतरती हैं ।

तीसरा छिद्र दोनों मूलके मध्यमें पीछेकी ओर स्थित है । जिसे महाधमनी छिद्र कहा है । इसमें होकर महाधमनी उदरगुहामें उतरती है; तथा दक्षिण पुरो'शिका शिरा (Right Azygos Vein) और एक बड़ी रसवहा (रसकुल्या–Thoracic Duct), ये दोनों उरोगुहामें उपर चढ़ती हैं ।

इस महापेशीकी ऊपरकी बहिर्गोल बाजूपर और मध्य रेखाकी सब बाजूमें फुफ्फुसधर कलाकोष (Pleura) अन्तिम सिराएँ हैं। और मध्यरेखामें कला-कण्डरामय भागके ऊपर हृदयधर कलाकोष–(Pericardium) का मूल अव-स्थित है । निम्न अन्तर्गोल बाज़ूके विशेषांशपर उदर्य्याकला (Peritoneum) फैली हुई है ।

यह महाप्राचीरापेशी प्राणवायुको भीतर आकर्षण करनेका मुख्य साधन है । इस श्वासग्रहणके अतिरिक्त यह पेशी जंभाई, वमन, हिक्का, मल-मूत्र त्याग, प्रसव; हास्य, रुदन आदि अनेक कर्मोंमें भी भाग लेती है । कारण, ये सब क्रिया श्वास भीतर लेनेके पश्चात् ही होती हैं; और यह कार्य इस पेशीके संकोच बिना हो ही नहीं सकता।

इस महाप्राचीराके निम्न प्रदेशमें उदरकी इर्द-गिर्द तीन उदरच्छदा मांसपेशियाँ स्थित हैं; जो उदरमें स्थित आशयोंको दबाती हैं । फिर इन पेशियोंका दबाव बढ़ता है । तब महाप्राचीरापेशी नीचेके आशयोंके दबावसे ऊँची उठती है और फुफ्फुसोंमें से वायु बाहर निकल जाती है । इस तरह महाप्राचीरा पेशीको ऊर्ध्व फेंककर श्वासको बाहर निकालनेका कार्य उदरच्छदा पेशियाँ कर रहीं हैं। जैसे महाप्राचीरा उच्छ्वासका यं (श्वास आकर्षण करने) का मुख्य साधन है । वैसे उदरच्छदाएँ निःश्वास कार्यके साधन हैं । जब श्वासरोगमें श्वास बाहर निकलनेमें त्रास होता है; तब ये पेशियाँ अत्यन्त संकुचित होकर कार्य करती हैं । इनके अतिरिक्त, कास, छींक, जंभाई, हिक्का हास्य आदि कार्योंमें भी ये सहायक होती हैं । कारण, इन सब क्रियाओंमें वायुको कुछ-न-कुछ अंशमें बाहर निकालना ही पड़ता है । इनके अतिरिक्त इतर आशयोंको दबाकर वमन कराना, मल-मूत्र त्याग करना, प्रसव कराना इत्यादि कार्योंमें भी ये मांस-

पेशियाँ सहायता पहुँचाती है। इन पेशियोंका कार्य जब यथोचित नहीं होता, तब हिक्कारोगकी उत्पत्ति होती है।

हिक्का निदान—भगवान् धन्वन्तरिजी कहते हैं कि, विदाही, भारी, मलावरोधकारक, रूक्ष, अभिष्यंदी, ठण्डा और बासी भोजन, विषम भोजन, अध्यशन (भोजन पर भोजन), शीतल जलपान, बर्फ, आईसक्रीम आदिका सेवन, शीतल जलसे स्नान, धूल या धुआँका मुँह और नाकमें जाना, सूर्यके ताप और तेज़ वायुमें फिरना, अधिक व्यायाम, कुश्ती, अधिक बोझ उठाना, बहुत चलना, डकार, छींक आदि वेगोंको रोकना, अनेक उपवास, आमप्रकोप, चोट लग जाना, अधिक स्त्री-सहवास, धातुक्षय, कुपित धातुके समय संशमन क्रिया करना इत्यादि कारणोंसे वात प्रकुपित होनेसे हिक्का श्वास और कास रोगकी उत्पत्ति होजाती है।

भगवान् आत्रेयने चरकसंहितामें कहा है कि, धूलि या धुँआसह वायुका श्वासनलिकामें प्रवेश, शीतल स्थानका अधिक सेवन, अति शीतल जलपान, व्यायाम, अधिक स्त्री-सहवास, अधिक चलना, रूक्ष अन्न, विषम भोजन, आमप्रकोप, आनाह, अपतर्पण, चिकित्साके पश्चात् रूक्ष पदार्थका सेवन, अति दुर्बलता, मर्मस्थान पर आघात, शीत या उष्णका अतियोग, वमन, विरेचन आदि शोधन क्रियाका अतियोग, अतिसार ज्वर, वमन, प्रतिश्याय, क्षतक्षय, रक्तपित्त, उदावर्त, विसूचिका, अलसक आदि रोग पाण्डु तथा विषसेवन आदि कारणोंसे हिक्का रोगकी उत्पत्ति होती है।

निष्पाव (भटवाँसु) उड़द, पिण्याक (तिलकी खली) और तिलके तैलका अति सेवन, पिटठीके पदार्थ, शालूक (सूरण आदि कंद शाक) इत्यादि वातकफ प्रकोपक और कब्ज़ करने वाले पदार्थ, विदाही (भोजनके परिपाक कालमें दाह उत्पन्न करने वाले), भारी भोजन, जलजीव और अनूप देशके प्राणियोंका मांस, दही, कच्चे या दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंका सेवन, दूधका अति सेवन, नाड़ियोंके स्रोतोंमें रोध करने वाले उपचार और कफ वर्धक पदार्थोंके अति सेवनसे कफ प्रकुपित होता है। एवं कितनेक कारणोंसे कण्ठ, छाती आदि स्थानोंमें चोट लगना, कब्ज़ या इतर हेतुओंसे वायु प्राणवाहिनियोंके स्रोतोंमें प्रवेश कर प्रकुपित होती है। फिर कुपित वायु वक्षस्थलसे कफको उठाकर हिक्का या श्वास रोगको उत्पन्न कराती है। शास्त्रकारोंने इन दोनों रोगोंको घोर प्राणनाशक माना है।

हिक्का स्वरूप—उदानवायु और प्राणवायु प्रकुपित होनेपर आमाशयसे उछलकर प्राणश्वासवाहिनी और अन्नजलवाहिनी (अन्ननलिका) के स्रोतोंको आघात पहुँचाता हुआ तथा प्लीहा और आँतोंको बार-बार ऊपरकी ओर उछालता हुआ आवाज़ सहित मुखमेंसे निकलता रहता है।

हिक्का सम्प्राप्ति—जब प्रकुपित वात और कफसे प्राणवाहिनि और अन्नजलवाहिनी नाड़ियाँ भर जाती हैं, और स्रोत रुक जाते हैं, तब हिक्का रोगकी प्राप्ति होती है।

पूर्वरूप—हिचकी होनेके पहले कण्ठ और छातीमें भारीपन व्याधि प्रभावसे वातवृद्धिके कारण हृदयमें पीड़ा, मुँहका स्वाद कसैला होना, पेटमें अफरा, मलावरोध और पार्श्वशूल आदि लक्षण होते हैं।

हिक्काप्रकार—शास्त्रकारोंने हिचकी रोगके अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गंभीरा और महती, ये पाँच प्रकार दर्शाये हैं।

१. अन्नजा लक्षण (Hiccup due to the gastirc irritation)—भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं कि, बहुत जल्दीसे ऊपर-ऊपर जलपान या भोजन करनेपर पीड़ित हुआ प्राणवायु ऊर्ध्वगामी होकर हिक्काको उत्पन्न करता है, उसे अन्नजा हिक्का कहते हैं।

भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, जब असात्म्य अन्नपान आदिकोंके सेवनसे पीड़ित हुई वायु सहसा कोष्ठसे ऊर्ध्व गतिको प्राप्त होती है, तब अन्नजा हिक्का उत्पन्न होती है। अति नशा लाने वाली शराबका सेवन, अति क्रोध, आवेगपूर्वक बोलना, रास्ता चलना, भार ढोना या इतर किसी क्रियासे अति परिवर्तन हो जानेपर कोष्ठगत वायुगति करने लगती है। फिर वह अन्नपान आदिसे प्रपीड़ित होकर उरःस्रोत (अन्ननलिका) में प्रवेश करती है, तब यह हिक्काकी उत्पत्ति कराती है। यह हिक्का धीरे-धीरे परस्पर सम्बन्धसे रहित उत्पन्न होती है। मर्म स्थानोंको बाधा नहीं पहुँचती। इन्द्रियोंको त्रास नहीं देती। एवं जल पीने या थोड़ा सात्म्य भोजन करनेपर (सामान्योपचारसे) शमन हो जाती है। अतः इसे अन्नजा कहा है।

वृद्ध वाग्भट्टाचार्यके मतमें अन्नजा हिक्कामें हिचकीके साथ छींकें भी आती रहती हैं। उदरके खाली होनेपर हिक्का शान्त होती है; अथवा सात्म्य अन्नपानके सेवनसे शमन होजाती है।

२. यमला लक्षण (Double Hiccup)—भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं कि, जिस हिचकी रोगमें एक साथ दो-दो वेग उठें, मस्तिष्क और कण्ठको कम्पायमान करे, उसे यमला कहते हैं।

भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, यह यमिका, भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य, इन चारों प्रकारके अन्नपानसे भोजनके परिपाक कालमें उत्पन्न होती है और शनैः-शनैः बलवान बनती है। प्रलाप, वमन, अतिसार, तृषा, बेहोशी, जम्भाई, नेत्र फटजाना, मुखका सूखना, शरीरका संकुचित हो जाना, उदरमें खूब अफारा आना और जत्रु मूल (ग्रीवामूल) से थोड़े-थोड़े समयपर हिक्काके वेग उठते रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। यह हिक्का प्राणोंका नाश करनेवाली है। यह भोजनके पचन कालमें प्रकाशित होती है। एवं यह व्यपेता (दो-दो वेगोंमें विभाजित) और मारक होनेसे इसे यमिका संज्ञा दी है।

भगवान् धन्वन्तरि कथित यमलाको ही व्यपेता और यमिका नाम दिये हैं ऐसा वाग्भट्ट आदि कितनेक आचार्योंका मत है। वृद्ध वाग्भट्टाचार्यने सुश्रुत और चरकाचार्य, दोनोंके लक्षण एकत्र किये हैं। तब कितनेक आचार्य दोनोंको पृथक्-पृथक् मानते हैं।

३. क्षुद्रा लक्षण—(Mild Hiccup) कण्ठनलीमें विकृति होनेपर मात्र उदानवायुके कुपित होनेसे बहुत देरके बाद मन्द-मन्द वेगपूर्वक मृदु रूपमें ग्रीवामूलसे जो हिचकी उठती रहती है, उसे 'क्षुद्रा' कहते हैं।

भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, जब व्यायाम आदि कारणोंसे प्रकुपित उदानवायु कोष्ठ आदि स्थानसे बलपूर्वक कण्ठस्थान को प्राप्त होती है, तब क्षुद्रा हिक्काकी उत्पत्ति होती है, यह अति दुःख नहीं देती। छाती, शिर और मर्मस्थानोंको आघात नहीं पहुँचाती; तथा श्वासग्राहिनी और अन्ननलिकाके मार्गोंको आवृत्त भी नहीं करती। परिश्रम करनेपर उत्पन्न होती है, और भोजन करने या (शान्ति मिलने) पर शमन हो जाती है। जैसे यह सामान्य हेतुओंसे बढ़ती है; वैसे ही यह सहज दूर हो जाती है। यह महा हिक्का आदिके समान दृढ अनुबन्ध युक्त न होनेसे सत्वर शान्त हो जाती है। यह हृदय, कण्ठ, क्लोम, (अन्ननलिका) और तालुके आश्रयसे उत्पन्न होती है; और क्षुद्रवायु द्वारा मृदु रूपमें उत्पन्न होनेसे यह क्षुद्र हिक्का कहलाती है। शास्त्रकारोंने इसे साध्य माना है।

४. गम्भीरा लक्षण—(Serious Hiccup) जो हिचकी नाभि स्थानसे उत्पन्न होकर भयंकर शब्द करती है। ओष्ठ, कण्ठ, जिह्वा आदि को सुखाती है; तथा जिस हिक्काके साथ ज्वर, शिरदर्द, श्वास, पार्श्वपीड़ा आदि अनेक लक्षण हों, उसे गम्भीरा कहते हैं। भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, यह हिक्का अति वयोवृद्ध, अति दुर्बल और दीन मन वाले मनुष्योंको होती है। जर्जरित वक्षस्थलसे कष्ट पूर्वक गम्भीर शब्द निकलता है। जम्भाई बार-बार आती रहती है। रोगी हाथ-पैर पटकता रहता है। दोनों पसवाड़े श्वासके साथ खींचते रहते हैं। इनमें पीड़ा होती है; और रोगी स्तब्ध हो जाता है। कण्ठमेंसे कपोतवत् कूजन शब्द निकलता रहता है। इस हिक्काकी उत्पत्ति नाभि या पक्वाशय (छोटी आँत) से होती है। यह हिक्का देहका अत्यन्त क्षोभ कराती है। वेगकालमें देह मुड़ जाता है। अंगोंका संकोच, ग्लानि, मार्गका रोध तथा बल और चित्तकी शक्तिका ह्रास कराती है। इस तरह गम्भीर लक्षणोंयुक्त होनेसे इसे गम्भीरा संज्ञा दी है। यह प्राणनाशक ही है।

५. महाहिक्का (महती) लक्षण—(Hiccup due to the Cerebral irritation and Encephalitis Lethargica)—जो हिचकी बस्तिस्थान, हृदय और मस्तिष्क आदि मर्मस्थानोंमें पीड़ा करती हुई और सब गात्रोंको कंपाती हुई लगातार चलती रहती है उसे "महती" और "महाहिक्का" कहते हैं। भगवान् आत्रेय

कहते हैं कि, जिसका मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण हो गये हों, उसके कण्ठमें कफ-युक्त प्रकुपित वायु सहसा प्राप्त होती है। फिर अत्यन्त ऊँचा शब्दवाली हिक्का उत्पन्न करती है।

इस हिक्काके वेगमें एक, दो, तीन या अनेक हिक्का एक पीछे एक आती रहती हैं। इस तरह अनेक आवृत्तिसह वेग बार-बार आते रहते हैं। प्राण वायु, प्राणवाहिनियाँ, मर्मस्थान और देहकी उष्णताका संरोध होता है। फिर संज्ञा नष्ट होती है। शरीर निश्चेष्ट होजाते हैं, अन्नपानके मार्ग रुक जाते हैं, स्मृति लोप हो जाती है, नेत्र अश्रुओंसे पूर्ण और स्तब्ध दृष्टिवाले हो जाते हैं; दोनों शंखस्थान और भ्रूस्थान च्युत हो जाते हैं, वेदनाके मारे रोगी प्रलाप (अस्पष्ट भाषण) करता है, बोलता हुआ रुकभी जाता है; और लेशमात्र शान्ति नहीं पाता। यह हिक्का महातेजस्वी, अति वेगवान, घोर शब्दवाली और गम्भीर दोषरूप आश्रययुक्त होनेसे अति बलवान् होती है; तथा तुरन्त प्राणोंका हरण कर लेती है। अतः इसे महाहिक्का कहा है।

साध्यासाध्यता—इन प्रकारोंमें गम्भीरा और महती बहुधा मनुष्यको मार डालती हैं। अन्नजा प्रायः बिना औषधि शमन होजाती है। यमला और क्षुद्रा उपचार करनेसे दूर होजाती है।

अन्नजा हिक्का स्थानके दृढ आश्रयसे रहित होनेसे शनैः-शनैः आती रहती है। मर्मस्थान या इन्द्रियोंको बाधा नहीं पहुँचाती। जलपान या सात्म्य भोजन आदिसे शान्त हो जाती है। क्षुद्रा भी अधिक दुःखदायी नहीं है। हृदय, शिर या इतर मर्मस्थानको बाधा नहीं पहुँचाती; तथा श्वासनलिका या अन्ननलिकाके मार्गमें प्रतिबन्ध नहीं करती। सामान्य श्रम, व्यायाम आदि कारणोंसे उत्पन्न होती हैं; और कारणकी निवृत्ति होनेपर बहुधा स्वयमेव निवृत्त होजाती है। जब हिक्का किसी रोगमें उपद्रव रूपसे उत्पन्न होती है, तब अनेकबार उस रोगकी निवृत्ति होनेपर और कभी-कभी सामान्य उपचारसे भी निवृत्ति हो जाती है।

अरिष्ट लक्षण—जिस रोगीका शरीर हिचकीके वेगके समय पसर जाय; दृष्टि ऊपरकी तरफ होजाय, चक्कर आजाय, शरीर क्षीण होजाय, बेहोशी, अरुचि और शुष्क कास आदि उपद्रव हों, वह रोगी नहीं बच सकता।

जिसके वात आदि दोष अति संकुचित हुए हों; उपवास करनेसे जो दुर्बल हुआ हो; अनेक व्याधियोंसे क्षीण होगया हो; क्षतक्षीण देह वाला, वृद्ध या अधिक स्त्री प्रसंग करनेसे जिसकी धातुका क्षय होगया हो; उन सबको यह हिक्का रोग मार डालता है।

यमला (यमिका) हिक्का प्रलाप, वेदना, तृषा और मोह सहित हो, तो रोगी को मारडालती है। यदि रोगी क्षीण न हुआ हो, मनसे दीन न बना हो, धातु और इन्द्रियाँ स्थिर हों, तो हिक्का साध्य होसकती है। अन्यथा यह रोगीको मार डालती है। भगवान् आत्रेय कहते हैं कि—

कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा।
यथा श्वासश्च हिक्का च प्राणानाशु निकृन्तत: ॥

विसूचिका सन्निपात आदि अनेक रोग प्राणघातक हैं; परन्तु हिक्का और श्वास रोग जितना जल्दी जीवनक्रिया समाप्त करते हैं, उतना जल्दी प्राणसंहार अन्य रोग नहीं करते ।

हिक्का और श्वास, दोनोंको कफवातात्मक कहा है। उसकी उत्पत्ति पित्त-स्थानसे मानी है। ये दोनों हृदयके रस आदि धातुओंके शोषण करनेवाले हैं अतः ये साधारण अवस्थामें भी दुर्जय ही होते हैं। दोनों रोग मिथ्या उपचार होनेपर महा विषधर क्रूरकाले नागके दंश या घोर विषके सेवनके सदृश कुपित हो जाते हैं।

हिक्काका डॉक्टरी निदान

श्वासनलिका और महाप्राचीरा पेशीके बीचका सम्बन्ध जब बिगड़ता है, तब कचित् श्वासनलिकाके मुख (स्वरयन्त्र) के बन्द हो जानेपर ही महाप्राचीरा पेशीका सङ्कोच होने लगता है। यह सम्बन्धविपर्यय ही हिक्काकी उत्पत्तिका मूल है।

आयुर्वेदकथित लक्षण डॉक्टरी अनेकरोगोंमें उपस्थित होते हैं, इनमेंसे जिन रोगोंमें अधिक लक्षण मिल जाते हैं, उनका यहाँ वर्णन किया जाता है।

(१) महाप्राचीरा पेशीका आक्षेप

(स्पॉज़्म ऑफ दी डायाफ्राम—Spasm of the Diaphragm.)

आक्षेप प्रकार—आक्षेपके २ प्रकार—अ. शिथिलता और तनावसह (Clonic); आ. केवल तनावमय (Tonic) इनमें प्रथमको हिक्का (Hiccough) संज्ञाभी दी है।

अ. शिथिलता और तनावसह आक्षेपके कारण—

१. पचन संस्थानगत—(१) अन्ननलिका अथवा आमाशयकी उग्रता (गरम गरम खान-पान या तीक्ष्ण पदार्थका सेवन अथवा आमाशयप्रदाह); (२) आमाशयका प्रसारण, उदर्य्याकलाप्रदाह, अन्त्रावरोध, गम्भीर शूलसह अन्त्र प्रदाह (Ileus Duplex); (३) मद्यपान, तमाखुका धुआँ।

२. वातनाड़ी संस्थान—(१) मध्यस्थ संस्थानमस्तिष्क प्रदाह (Encephalitis Lethargica—यह जनपद व्यापी हिक्काका हेतु है), मस्तिष्क अर्बुद मस्तिष्कावरण प्रदाह और मूत्रमय रक्त। (२) परिधिगत वातनाड़ीका रसस्राव, हृदयावरणमें रसस्राव, महाप्राचीरासे सम्बन्ध वाला उरस्तोय (Diaphragmatic Pleurisy) और फुफ्फुसान्तरालमें अर्बुद। (३) हिस्टीरिया या अपस्मार।

३. वृक्कज—चिरकारी वृक्कप्रदाह, वृक्क संन्यास (मूत्रमय रक्त)।

आ. केवल तनावसह आक्षेप—कुचिला विष, अपतानक (Tetanus)

पागल कुत्तेका ज़हर (Hydrophobia) अथवा बालकोंके स्वरयन्त्रका आक्षेप (Laryngismus Stridulus) या श्वास विषज जीर्ण प्रकोप (Rabies)।

इनमें पचन संस्थान (अन्ननलिका या आमाशय) में सामान्य उग्रता उत्पन्न होनेपर अन्नजा हिक्का उपस्थित होती है। क्षुद्रा हिक्का विशेषतः अन्ननिकाकी उत्तेजनासे उत्पन्न होती है। एवं विसूचिका, अपचन आदिसे आमाशयमें मध्यम या अधिक उग्रता पहुँच जानेपर रोग शमन हो जानेके पश्चात् भी अनेक दिनोंतक बनी रहती है।

उदर्य्याकलाप्रदाह (व्यापक या स्थानिक) अन्त्रावरोध, प्रवाहिका, अतिसार (लघुअन्त्रप्रदाह) आदिरोगोंमें जब प्रतिफलित क्रिया रूपसे महाप्राचीरा पेशीका आक्षेप होता है, तब प्रलाप, वमन, अतिसार आदि लक्षण युक्त यमला हिक्काकी संप्राप्ति होती है। यदि यह हिक्का व्यापक उदर्य्याकला प्रदाहके हेतुसे हो, तो असाध्य होजाती है। शेष कष्ट साध्य मानी जाती है।

मस्तिष्कमें अर्बुद होनेपर उष्णता, ह्रास आदि लक्षण युक्त महाहिक्काकी, फुफ्फुसान्तरालमें अर्बुद होनेपर श्वासावरोध आदि लक्षणोंसह गम्भीरा हिक्काकी और मस्तिष्क शोथज आशुकारी आक्षेपमय वृक्क संन्यास होनेपर प्रलाप, नेत्रफट जाना, वमन, बेहोशी आदि लक्षणसह यमलाकी सम्प्राप्ति होती है।

(२) मस्तिष्कस्थ अर्बुद

Intra cranial Tumours.

मस्तिष्कके भीतर अनेक जातिके अर्बुद होते हैं। उन सबके मुख्य ३ विभाग किये हैं।

१. संक्रामक दानेदार (Infective granulomata), जैसे क्षयज और उपदंशजविषज।

२. अस्वाभाविक वृद्धिमय (Neoplasm); इस प्रकारमें पिच्छिल (Glioma), मांसार्बुद (Sarcoma); कर्कस्फोट (Carcinoma), नाड्यर्बुद (Neuroma), अन्तस्त्वचार्बुद (Endo thelioma), ये सब मुख्य हैं। तान्तवार्बुद (Fibroma) अस्थ्यार्बुद (Osteoma) आदि गौण है।

३. रसार्बुद (Cysts) कृमिज रसार्बुद आदि।

इनमें क्षयज अर्बुद २० वर्षसे कम आयुमें, पिच्छिल २० से ४५ वर्षके भीतर तथा कर्कस्फोट ४० से ६० वर्षकी आयुमें होता है। इन सबके स्थानभेद और जातिभेदसे विविध लक्षण उत्पन्न होते हैं। मस्तिष्कगत मुख्य लक्षणोंमें गम्भीर शिरदर्द (८० प्रतिशतमें), वमन होते रहना (विशेषतः लघु मस्तिष्क और उष्णीषक- Pons varolii के अर्बुदमें), चाक्षुष नाड़ी प्रदाह (६० प्रतिशतमें) ये मुख्य हैं। एवं चक्कर आना, आक्षेप आदि गौण लक्षण भी उपस्थित होते हैं।

जब अर्बुद सुषुम्णा शीर्ष (Medulla) में होता है, तब १, १०, ११

और क्वचित् १२ वीं नाड़ी भी प्रभावित होजाती है। जिससे हृदय और फुफ्फुसके कार्यमें बाधा पहुँचती है। उच्चारण स्पष्ट नहीं होता। भोजन निगलनेमें कष्ट होता है। एवं अन्यविकारोंकी संप्राप्ति कराता है।

सुषुम्ना शीर्षसे परिस्वतन्त्र (Para-sympathetic) नाड़ी मण्डल तथा सुषुम्नाकाण्डसे स्वतन्त्र (Sympathetic) नाड़ी मण्डलके तन्तु, लालाग्रन्थियाँ, महाप्राचीरा पेशी, हृदय, फुफ्फुस, आमाशय, यकृत्, अग्न्याशय, अन्त्र, वृक्क आदि स्थानोंमें फैले हैं। जब मुख्य केन्द्रस्थान पीड़ित होता है, तब सम्बन्धवाले सब अवयव पीड़ित होते हैं और उनके अनुरूप लक्षण प्रकाशित होते हैं।

जब उक्त अर्बुदका विष अधिक प्रकुपित होता है, तब मस्तिष्कके अतिरिक्त हृदय, फुफ्फुस, महाप्राचीरा पेशी आदिपर असर पहुँचाकर महाहिक्काकी उत्पत्ति कराता है। विषप्रकोप प्रबल होजानेपर अर्बुद दूर नहीं होता और न हिक्का शमन होती। इस हेतुसे आचार्योंने इसे मारक कहा है।

(३) फुफ्फुसान्तराल प्रदेशमें अर्बुद

(New growths of The Mediastinum.)

छाती में आगेकी ओर उरःफलकास्थिके पिछली ओरसे पृष्ठवंशकी अगली ओर तक जो भाग दोनों फुफ्फुसोंके बीच रहा है, उसे फुफ्फुसान्तराल प्रदेश कहते हैं। इस प्रदेशमें अर्बुद होनेपर गम्भीरा हिक्काकी उत्पत्ति होती है। इसका वर्णन पहले रोग नं० ५४ (पृष्ठ ७८०) में किया है।

(४) जनपद-व्यापी हिक्का

(एपीडेमिक हिक्कप—Epidemic Hiccup)

जब मस्तिष्क प्रदाह (Encephalitis Lethargica) रोग देश-व्यापी फैलता है, तब उसके अनुगामी विकारोंमें महाप्राचीरा पेशीकी शिथिलता और तनावसह आक्षेप उत्पन्न होता है, उसके लक्षणोंके भीतर हिक्काभी होती है। इस मस्तिष्कप्रदाहमें शिरदर्द (विशेषतः पश्चिम खण्डमें), चक्कर आना, फावटे आना, सार्वाङ्गिक निर्बलता, वमन, मलावरोध, आमाशय-अन्त्रमें अन्य विकृति, प्रारम्भमें १०२° से १०५° उत्ताप फिर ज्वराभाव, प्रलाप, व्याकुलता, किसी-किसीको नेत्र दृष्टिमें विकृति, उन्माद, व्यापक आक्षेप आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यह रोग कभी-कभी जनपद-व्यापी हो जाता है।

साध्यासाध्यता—कष्टसाध्य। मृत्यु संख्या कम।

चिकित्सा—एट्रोपिनका अन्तःक्षेपण किया जाता है; किन्तु योग्य असर नहीं होता।

हिक्का चिकित्सोपयोगी सूचना

आयुर्वेदके मतानुसार हिक्का और श्वास रोगी दोनोंके बाह्यकारण, प्राग्रूप और आश्रय स्थान आदि की एकता होनेसे दोनोंकी चिकित्साभी समान होती है। चिकित्सा करनेके पहले अवस्थाभेदका विचार करना चाहिये। इन दोनों रोगोंमें मुख्य ४ प्रकारकी अवस्थाएँ होती हैं-(१) बलवान् वाताधिक (२) बलवान् कफाधिक, (३) दुर्बल वाताधिक और (४) दुर्बल कफाधिक। इनमें रोगी यदि कफाधिक बलवान् है, तो वमन विरेचन करावें; अन्यथा केवल संशमन चिकित्सा (धूम, अवलेह आदि)करनी चाहिये।

वाताधिक रोगी दुर्बल, बालक, वृद्ध, सगर्भा या क्षीण धातु वाले हैं, तो वात-नाशक और रोगशामक चिकित्सा करें; तथा स्नेह, यूष और मांस रस आदिका भोजन करावें।

इन दोनों रोगोंमें वमन-विरेचन करानेके पहले स्वेदन क्रिया करानी चाहिये। स्वेदनभी तैल मर्दनके पश्चात् ही करावें। मर्दनार्थं तैल स्निग्ध औषधियोंसे सिद्ध करना चाहिये (शुष्क औषधियोंसे सिद्ध तैल बहुधा वातप्रकोप कराता है); और फिर उसमें नमक मिलाकर प्रयोगमें लाना चाहिये। इस तरह स्नेहनके पश्चात् स्वेदन क्रिया करानेसे नाड़ियोंके स्रोतोंमें रुका हुआ कफ, जो श्वास या हिक्काके उत्पादक हैं; तथा जो कफ नाड़ियोंके भीतर अति चिटका हुआ है, वह भी विलीन होकर और कोष्ठको प्राप्त होकर सरलतापूर्वक बाहर निकल जाता है। जैसे पर्वतोंके वृक्षोंपर पड़े हुए हिमकण सूर्यके तापके प्रभावसे प्रभावित होकर गल जाते हैं, वैसे देहकी नाड़ियों-के भीतर रुका हुआ श्लेष्मा प्रस्वेदरूप सन्तापसे पिघलकर कुछ अंशमें प्रस्वेदके साथ बाहर निकल जाता है; तथा शेष अंश कोष्ठमें चला जाता है। फिर वह वमन विरेचन आदि क्रियाद्वारा बाहर निकल आता है। स्वेदन देनेके लिये अयोग्य रोगियोंको भी उरःस्थान और कण्ठपर साधारण उष्ण घृत शर्करायुक्त पुल्टिससे थोड़े समय तक मृदु सेक करें; अथवा तिल, अलसी, उड़द या गेहूँ आदिके आटेमें स्नेह आदि वातहर औषध मिला अम्ल रस या दूधसे पुल्टिस बाँधकर सेक करें, तो उसमें कोई विरोध नहीं है।

यदि नूतन ज्वर और आम दोष है, तो रूक्षस्वेद, लंघन और नमक मिले हुए उष्ण जलसे वमन करानी चाहिये। यदि वमन आदि क्रियाओंके अतियोगसे व्यथा बढ़ी हो, तो वातशामक रस आदि जो अति शीतल और अति उष्ण न हों, उनसे मातरिश्वा का प्रकोपको शान्त कराना चाहिए।

यदि उदावर्त और आध्मानजनित प्रकोप हो, तो बिजौरा, अम्लबेत, हींग पीलू और बिड़नमक मिला हुआ भोजन कराने से वायु अनुलोम हो जाती है।

रोगी बलवान् हो, कफकी अधिकता हो, रोगका वेग तीव्र न हो और स्नेहन, स्वेदन कराया हो, तो ही मृदु वमन-विरेचन आदिसे ऊर्ध्व और अधोभागका शोधन

कराना चाहिये। यदि कफ अधिक न हो और स्वेदन कराया हो; अथवा रोगी दुर्बल होने से स्वेदन न कराया हो, तो भी संशमन (कषाय, अवलेह, घृत, तैल आदि) औषधियोंसे ही चिकित्सा करनी चाहिये अन्यथा (शोधन करने पर) वायु प्रकुपित होकर तुरन्त प्राणोंका हरण कर लेता है। कफाधिक रोगियोंको भी स्वेदन क्रिया करा, एवं अनूप देशके पशु-पक्षी और जलचर जीवोंके मांसरससे तृप्त करके ही वमन विरेचन आदि देवें। दुर्बल वाताधिकता वाले (और कफाधिकता वाले को भी) बृंहण क्रिया करानी चाहिये। मयूर, तीतर, कुक्कुट आदि पक्षी और जांगल पशु-पक्षी हिरन आदि-के मांसको दशमूलके क्वाथ या कुलथीके क्वाथमें सिद्धकर स्वेदन कराना चाहिये।

जैसे जलप्रवाहके मार्गमें अंतराय आजानेसे जल वृद्धि हो जाती है, उसी प्रकार वायुके मार्गमें प्रतिबंध होने पर वातवृद्धि हो जाती है। अतः जिस तरह कफ दूर होकर वायुकी गतिका मार्ग प्रतिबंध रहित हो, उस तरह सम्हालपूर्वक शोधन क्रिया करनी चाहिये।

पित्तप्रकोपज दाहपीड़ित, अतिसारी, क्षतपीड़ित, रोगी, जिसे अधिक स्वेद आता हो; एवं क्षीण धातु और क्षीणबलयुक्त, रूक्ष, गर्भिणी तथा पित्तप्रकृतिवालोंको स्वेदन नहीं कराना चाहिये।

जिनको स्वेदन कराया जाय उनको भी स्वेदन क्रिया करानेके पश्चात् तुरन्त घृत मिले हुए भातका भोजन अथवा मछली या शूकरके मांसरससह भोजन कराना चाहिये; अथवा कफवृद्धिके लिये दहीकी मलाई या गुनगुने घृतमें मिश्री मिलाकर देना चाहिये। फिर आमाशयमें कफसंचय होने पर विधिपूर्वक वमन करानी चाहिये।

कास, वमन, हृद्ग्रह, स्वरभंग आदि लक्षणोंसे पीड़ितों को वमन करानी चाहिये; और वायुके अविरोधी, पीपल, सैंधानमक और शहद मिलाकर देवें। विशेषतः दो तोले मैनफलका क्वाथकर छान गुनगुना रहने पर पीपल आदिका चूर्ण प्रक्षेप रूपसे मिलाकर पिला देवें; अथवा आककी जड़का चूर्ण १॥ माशे गुनगुने जलके साथ देनेसे वमन होकर नाड़ियोंमें और आमाशयमें रुका हुआ दोष निकलजाता है। इस तरह कफको निकाल देनेसे श्वास और हिक्का रोगीको शान्ति मिल जाती है, तथा स्रोतोंकी शुद्धि हो जानेसे वायु सुखपूर्वक नाड़ियोंमें विचरण करने लग जाती है।

यदि कदाचित् वमन कराने पर भी दोषका लेश रह जाय, तो उसे विधिपूर्वक शास्त्रोक्त धूम पिलाकर नष्ट कर देना चाहिये। यदि रोग आनाह, उदावर्त या तमक श्वास रूप उपद्रवसे पीड़ित हो, तो स्रोतोंकी शुद्धिके लिये विरेचन देना लाभदायक है। विरेचनकी औषधि भी सैंधानमक तथा बिजौरे और अम्लबेत आदि खट्टे फलोंका रस मिला गुनगुनी करके देनी चाहिये। फिर जुलाब लगजाने पर हींग, पीलु और बिड़नमक मिला हुआ हल्का भोजन वायुको अनुलोम कराने वाला देना चाहिये।

तीव्र हिक्काकी चिकित्सामें श्वासका अवरोध (प्राणायाम) कराना या अकस्मात्

शीतल जलके छींटे डालना चाहिये; अथवा तिरस्कार युक्त वचन सुनाना, जिससे रोगी-को दुःख या उद्वेग हो। हर्ष, ईर्ष्या, भय, शोक, लज्जा, अथवा संशय विकारों आदि से मानसिक वृत्तिका परिवर्त्तन होकर बहुधा हिक्का शमन हो जाती है। यदि बेहोशी आजाय और आवश्यकता हो, तो सुई चुभाना या चींटी आदि जन्तुओंसे कटवाना इत्यादि उपचार हितकर होते हैं। भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं, कि—

विरेचनं पथ्यतमंससैन्धवं घृतं सुखोष्णं च सितोपलायुतम्।
सदागतावूर्ध्वगतेऽनुवासनं वदन्ति केचिच्च हिताय हिक्किनाम्॥

हिक्का रोगमें सैंधवयुक्त विरेचन देना पथ्यतम (अत्यन्त हितकर) है; एवं घृतमें सैंधव मिलाकर पिलाना भी लाभदायक है। कोई आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि, हिक्का रोगीके लिये ऊर्ध्वगामी वायु होनेसे अनुवासन बस्ति भी हितकर है।

यदि हिक्का और श्वासरोगी तृषासे पीड़ित हो, तो दशमूल या देवदारुका क्वाथ अथवा वारुणी (शराब) का मण्ड पिलाना चाहिये। (तीव्रप्रकोपमें शीतल जल देने पर मृत्यु हो जानेकी भीति रहती है)।

हिक्का रोगीको क्षार, हींग, घी, बिड़नमक, अनारदाने, पुष्करमूल, कचूर, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बिजौरा और अमलवेंत आदि पदार्थ मिलाया हुआ भोजन देना चाहिये।

भगवान् आत्रेय हिक्का और श्वास रोगकी चिकित्सार्थ संक्षेपमें कहते हैं कि—

यत् किञ्चित् कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम्।
भेषजं पानमन्नं वा तद्धितं श्वासहिक्किनेः॥

आहार-विहार—औषध आदि जो-जो कफ और वातको हरने वाले उष्ण (गरम गुण वाले) और वायुको अनुलोम करने वाले (स्निग्ध) हैं, वे सब श्वास और हिक्का रोगीके लिये हितकारक हैं।

कफाधिक रोगीके लिये प्रायः वातकृत और कफहर, तथा वाताधिक रोगीके लिये कफकृत और वातनाशक चिकित्सा लगातार नहीं करनी चाहिये। कदाच प्रकृति भेदसे ऐसी चिकित्सा करनी पड़े, तो इन दोनोंमें वातनाशक चिकित्सा अच्छी मानी जायगी। कारण, हिक्का और श्वास रोगीको बृंहण औषधि देने पर कदाचित् दैववशात् कुछ हानि हो जाय, तो भी वह साधारण उपायसे सुखपूर्वक सम्हल जाती है। एवं संशमन चिकित्सा करनेपर प्रारब्धवशात् कुछ अपाय हो जाय, तो भी अधिक नहीं हो सकेगा, मध्यम होगा; किन्तु हिक्का या श्वासकी निवृत्ति निमित्त यदि कर्षण चिकित्सा-वातवर्धक कीजाय और उससे कदाच अपाय हो जाय, तो वह अति दुःसह होगा, किसी तरह वह नहीं जीता जायगा। इसलिये हिक्का और श्वास रोगमें संशोधन किये हुए की और अशुद्ध (संशोधनके अयोग्य) रोगियोंकी विशेषतः संशमन और बृंहण चिकित्सा करनी चाहिये।

कास, श्वास, क्षय, वमन, हिक्का, ये सब रोग परस्पर सम्बन्ध वाले हैं। अतः इन सबमें परस्पर एक दूसरेको औषधियोंसे उपचार हो सकता है, ऐसा आचार्यने "कास-श्वास-क्षय-च्छर्दि-हिध्मारचान्योन्यभेषजैः" इस वचनसे कहा है।

हिक्का रोगकी उत्पत्तिमें मस्तिष्कप्रदाह, मस्तिष्क अर्बुद, उदर्य्याकलाप्रदाह या फुफ्फुसान्तराल अर्बुद हेतु हो, तो मूल हेतुके अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये। आमाशय प्रदाहज हिक्का होनेपर सौंठ, बिड़नमक आदि उग्र औषधियोंका अधिक उपयोग किया जायगा तो हिक्का शमन नहीं होगी, बल्कि प्रबल हो जायगी। ऐसे समयपर आमाशयप्रदाह शामक-कनकासव, सूतशेखर, हिक्कान्तक रस आदि औषधियाँ देनी चाहियें।

प्रवाहिका या लघु अन्त्र प्रदाह (अतिसार) हेतु है, तो हिक्कान्तक रसका उपयोग जीरकाद्यरिष्ट, कुटजारिष्ट, दाड़िमावलेह, कुटजावलेह आदि अनुपानके साथ करना चाहिये। अति रक्तातिसार भी हो तो कर्पूररस या ग्रहणीकपाट या हिंगुलादि वटी को हिक्कान्तक रसके साथ मिला देना चाहिये। अन्त्रमें मल, विष, कीटाणु या कृमि उपस्थित हों तो आरोग्यवर्द्धनी (त्रिफला फाण्ट से) देते रहना चाहिये। अन्त्रमें वायु भरी हो, उदरमें गड़गड़ाहट होता हो अथवा अन्त्रकी पचन क्रिया योग्य न हुई हो, तो हिंगु, बीड़नमक आदि औषधियों का उपयोग करना चाहिये।

उदर्य्याकलाप्रदाहज हिक्का हो तो अन्त्रका शोधन तैल बस्ति या ग्लिसराइनकी पिचकारी से करें, फिर वेदनाशमनार्थ पूरी मात्रामें अफीम तथा हिक्का शमनार्थ हिक्कान्तकरस देना चाहिये।

फुफ्फुसान्तराल प्रदेशमें अर्बुद होने पर महाप्राचीरा का आक्षेप होता है। फिर गम्भीरा हिक्का उपस्थित होती है, उसके लिये मूल रोगकी शामक औषधिके साथ हिक्का शमनार्थ हिक्कान्तक रस आदि औषधिका उपयोग करते रहना चाहिये। अनुपान शिलाजीत कटुफलादि क्वाथ या सुश्रुतसंहिता कथित वरुणादि गणका क्वाथ हितावह रहेगा।

मस्तिष्कप्रदाहज महाहिक्कामें मूलरोगशामक औषधि सूतराज या महावात विध्वंसन रसके साथ हिक्कान्तक रस या अन्य हिक्काहर औषधिकी योजना करनी चाहिये। घातक अर्बुदोंमें मूल कारण दूर नहीं हो सकते। जिससे हिक्काका नाश नहीं हो सकता। फिर भी औषधि देते रहनेसे व्यथाका दमन होता है।

प्रादाहिक हिक्का रोगमें जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाना चाहिये। ताज़ा जल पिलाते रहनेपर प्रदाह और हिक्काकी वृद्धि होती जाती है।

उदर्य्याकला आदिके प्रदाहमें रोगीको शय्यापर पूर्ण आराम कराना चाहिये।

उदरके अवयवोंके प्रदाहसे हिक्का होनेपर हृदयाधरिक प्रदेशपर राईका प्लास्टर लगानेसे हिक्का शमन हो जाती है।

सौम्य प्रकारमें दीर्घ श्वास लेकर कुम्भक करने (श्वास को रोकदेने) पर कभी-कभी हिक्का रुकजाती है।

उरः फलकास्थिके अग्रपत्र (Ensiform Cartilage.) पर ४-५ मिनिट तक दबाव डालनेपर हिक्का शान्त हो जाती है।

मुँहमें अधिक-से-अधिक जितना जल रह सके; उतना भरलेवें। (चाहे नाकमें या श्वासमार्गमें चला जाय) फिर नाक और कानको अंगुलियोंसे दबा लेवें, तो हिक्का रुक जाती है।

रबरकी आमाशय नलिकाको अन्न नलिकाके भीतर कुछ दूर डालकर कुछ मिनिटों तक रक्खा रहने देवें, तो हिक्का शान्त हो जाती है।

गम्भीर प्रकारमें जिह्वाको १-२ मिनिटपर बाहर पकड़ रखनेसे लाभ पहुँच जाता है। कनकासव भी हिक्काकी उग्रताका दमन करता है। डॉक्टरीमें हृदयाधरिक प्रदेश या अनुकोष्ठिका नाड़ियों (Phrenic Nerves.) पर विद्युत्प्रवाहद्वारा उत्तेजना देते हैं; पोटास ब्रोमाइड निद्रा या शान्ति लानेके लिये देते हैं। इन सबसे कार्य सिद्धि न हो, वेदना अधिक हो, वहाँ मोर्फियाका अन्तःक्षेपण करते हैं; क्लोरोफार्म सुंघाते हैं, १५ मिनिट तक ऑक्सिजन सुंघाते हैं। नोवोकेनका अन्तः-क्षेपण अनुकोष्ठिक नाड़ियोंपर करते हैं। एवं अन्य चेतनाहर औषधि (Anaesthesia) का प्रयोग भी करते हैं।

हिक्का-चिकित्सा

तीव्र वेगशामक प्रयोग—१. स्त्रीके दुग्धमें रक्तचन्दनको घिसकर या मुलहठीको शहदमें घिसकर नस्य करानेसे दाह युक्त हिक्का नष्ट हो जाती है।

२. पीपल और मिश्री मिलाकर सुंघाने पर बहुधा छींकें नहीं आतीं; और तुरन्त हिक्का दूर होजाती है।

३. सोंठके क्वाथमें गुड़ या अदरकके रसमें मिश्री मिलाकर नस्य देनेसे हिक्काका प्रबल वेग भी तत्काल शान्त हो जाता है।

४. लहसुन, प्याज़ या गाजरका रस सुंघानेसे हिक्का शमन हो जाती है।

५. मक्खियोंकी विष्टा (जिस डोरी पर मक्खियाँ बैठती हैं; उस डोरी) को स्त्रीके दूधमें मसलकर सुंघानेसे तुरन्त हिक्का दूर हो जाती है।

६. सोंठ, पीपल और आँवलेके चूर्णको शहद मिश्री मिलाकर चटानेसे वात प्रकोप दूर होकर हिक्का शान्त हो जाती है।

७. बिजौरेके रसमें ६ माशे शहद और २ रत्ती काला नमक मिलाकर पिलानेसे यमला हिक्का दूर हो जाती है।

८. भारंगी, सोंठ, मिश्री और कालानमक गुनगुने जलमें मिलाकर पिलानेसे कफप्रकोप दूर होकर गंभीरा हिक्का निवृत्त हो जाती है।

९. पुष्करमूल, जवाखार और कालीमिर्चको गुनगुने जलमें मिलाकर पिलानेसे श्वास और हिक्काका शमन होता है।

१०. मोरपंखके चन्द्रवोंकी भस्म और पीपलका चूर्ण ४-४ रत्तीको ६ माशे शहदके साथ मिलाकर चटानेसे तत्काल हिक्का बन्द हो जाती है।

११. हालों (चन्द्रसूर) को ८ गुने जलमें मिलाकर पकावें। फिर कपड़ेसे छानकर बार-बार ४-४ तोले जल पिलाते रहनेसे आमाशय प्रकोपज यमला हिक्काका तीव्र वेग शमन हो जाता है। यह सामान्य औषधि होनेपर भी अपना प्रभाव तत्काल दर्शाती है।

१२. यवाखार ४ से ८ रत्ती ६ माशे गोघृतमें मिलाकर चटानेसे थोड़े ही समयमें कफकी अधिकतासे उत्पन्न भयंकर यमला हिक्का शान्त हो जाती है। आवश्यकता हो तो २-२ घण्टे बाद दूसरी और तीसरी मात्रा देवें।

१३. केलेके मूलको ४ तोले रसमें ६ माशे मिश्री मिलाकर २ २ घण्टे पर २-३ बार पिलानेसे भयङ्कर हिक्का दूर हो जाती है।

१४. बहेड़ेका चूर्ण ६ माशे और शहद ६ माशे मिलाकर सेवन करानेसे कफप्रकोप नष्ट होकर श्वासका दौरा और प्रबल हिक्का शमन हो जाते हैं।

१५. पेठेका चूर्ण ६ माशे गुनगुने जलके साथ सेवन करानेसे दाह और पित्त प्रकोपसह हिक्का दूर हो जाती है।

१६. शृंग्यादि चूर्ण— काकड़ासिंगी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, छोटी कटेली, भारंगी, पुष्करमूल और पाँचोंनमक, ये १५ औषधियोंको सम-भाग मिला कूट कपड़छान करें। इसमेंसे ४-४ माशे चूर्ण गुनगुने जलके साथ सेवन करानेसे हिक्का, श्वास, उर्ध्ववात, कास, अरुचि और पीनस रोग दूर हो जाते हैं।

१७. कांसकी जड़का चूर्ण ६-६ माशे शहदके साथ चटानेसे दाहयुक्त हिक्का दूर होता है।

१८. १ रत्ती माणिक्य रस (हरतालसे बना हुआ) गुड़के जलके साथ १-१ घण्टे पर २-३ बार देनेसे हिक्का दूर होती है। १ तोला गुड़को ५-७ तोले जलमें मिला गुनगुना करें। फिर छानकर उपयोगमें लें।

१९. मैनसिल १ रत्ती और कालीमिर्च ४ रत्तीके चूर्णको २ माशे अदरकके रस और ६ माशे शहदके साथ मिलाकर चटानेसे तत्काल गंभीरा हिक्का दूर हो जाती है।

तीव्रवेगमें धूम्रपान— १. हींग ३ माशे, उड़द १ तोला, कालीमिर्च ६ माशे और मक्खन १ तोला मिला निधूँम अग्निपर डालकर नली या चिलम द्वारा धुँआ पिलानेसे सत्वर अन्नजा आदि सब प्रकारकी हिक्का दूर हो जाती है।

२. हल्दी और उड़दके चूर्णका धुँआ पिलावें।

३. रसतन्त्रसारमें लिखा हुआ मनःशिलादि धूम्रपान (पृ० ८३१) करानेसे

प्रति बढ़ा हुआ कफप्रकोप दूर होकर वायु अनुलोम हो जाती है। जिससे हिक्का, श्वास और कास, तीनोंका तुरन्त नाश हो जाता है।

४. नारियलकी चोटीको चिलममें रख धुआँ पिलानेसे हिक्का शमन होजाती है।

५. चित्रककी छाल और हलदीका धूम्रपान करानेसे हिक्का तत्काल निवृत्त हो जाती है।

तृषा शमनार्थ—१. दशमूलको १६ गुने जलमें मिला क्वाथकर अर्धावशेष किया हुआ जल थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें या देवदारुके जौकुट चूर्णको १६ गुने जलमें औटा छानकर पिलाते रहें।

२. द्राक्षासव या शराब (वारुणी मद्य) पिलानेसे तृषा निवृत्त हो जाती है।

३. बकरीके २० तोले दूधमें १ तोला सोंठ और १ सेर जल मिला दुग्धावशेष क्वाथकर मिश्री मिलाकर पिलानेसे तृषा और हिक्का, दोनों शमन हो जाते हैं। आवश्यकतापर पुनः-पुनः ३-४ बार पिलानेमें भी आपत्ति नहीं है।

जीर्ण वातकफात्मक हिक्कानाश प्रयोग—१. ताम्र भस्म आधरत्ती और सुवर्णमाक्षिक भस्म २ रत्ती मिलाकर नींबूके शर्बत या काकड़ासिंगी और पीपलके चूर्ण के साथ देवें।

२. ताम्र भस्म $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ रत्तीको यवाक्षार ६-६ रत्ती और ६-६ माशे घृतके साथ २-२ घण्टे पर ३ बार देवें।

३. रसतन्त्रसारमें लिखे हुए प्रयोग—हिक्कान्तक रस, कनकासव या समीरपन्नग, लौंग और सोंठके क्वाथके साथ देवें। अथवा हरतालभस्म १ रत्ती ईखके रसके साथ दें; या आरोग्यवर्द्धिनी त्रिफलाके फाण्टके साथ सेवन करावें। इनमें से अनुकूल औषध कुछ दिनों तक सेवन करानेसे जो हिक्का बार-बार थोड़े-थोड़े दिनोंपर उत्पन्न होती रहती है, वह नष्ट हो जाती है।

जीर्ण पित्तानुबन्धयुक्त हिक्कानाशक प्रयोग—(१) सूतशेखररस (धमासेके क्वाथ और शहदके साथ), (२) मौक्तिक पिष्टी (कुटकी और सोनागेरूके चूर्णके साथ), (३) ताम्रभस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म (बिजौरेके रसके साथ), (४) प्रवाल भस्म और शंखभस्म (त्रिफला, पीपल और शहदके साथ)। ये चारों औषधियाँ हितकर हैं। इनमेंसे अनुकूल औषधिका सेवन कराना चाहिए।

हिक्कान्तक रस अर्थात् सुवर्ण, मौक्तिक, ताम्र और लोहभस्मको मिला बिजौरेके रस, शहद और काला नमकके साथ देनेसे सब जातिकी हिक्का शमन होती है। इस हिक्कान्तकके रससे तीव्र भयङ्कर वेगयुक्त, सामान्यवेगयुक्त, जीर्ण और असाध्य हिक्का भी शमन हो जाती है।

शुक्रक्षयजनित हिक्कापर—लक्ष्मीविलास रस या वसंतकुसुमाकर रस दें।

अथवा पूर्णचन्द्रोदय रस, मौक्तिक भस्म और वंगभस्म, तीनोंको मिला, सोंठ मिलाकर औटाये हुए बकरीके दूधसे देवें।

बाह्योपचार—तीव्र वेगके समय कण्ठ, फुफ्फुस, उदर आदि अवयवोंपर नारायण तैल या इतर वातश्लेष्मनाशक सिद्ध तैलकी मालिश करें। फिर दशमूल क्वाथकी अथवा इतर वातश्लेष्मनाशक क्वाथकी वाष्पसे सेक करनेसे तीव्र वेदना दूर होजाती है।

पिप्पल्यादि लोह—पीपल, आँवला, मुनक्का, बेरकी गुठली का मग़ज़, वायविडङ्ग, पुष्करमूल और लोहभस्म, ये ७ औषधियाँ समभाग मिलाकर कूट लेवें। इसमें से २-२ माशे चूर्ण शहद और मिश्रीके साथ सेवन करानेसे वमन, हिक्का और तृषा निश्चय पूर्वक ३ दिनके भीतर नष्ट हो जाते हैं। तीव्र वेगके समय २-२ घण्टेपर २-३ बार इस औषधिका सेवन करानेसे वेग शमन हो जाता है।

शङ्खचूड़ रस—रससिंदूर, अभ्रकभस्म और सुवर्णभस्म १-१ भाग, वैक्रान्त भस्म ३ भाग और शंखभस्म ३० भाग मिलाकर खरल कर लें। इसमेंसे २ से ३ माशे अनुकूल अनुपान (बिजौरे का रस या जवाखार और घी) मिलाकर देनेसे आसन्न मृत्यु रोगीकी पाँचों प्रकारकी हिक्का बन्द हो जाती है। आवश्यकता होनेपर बाह्य उपचार रूपसे राईका प्लास्टर कौड़ी प्रदेशपर लगाना चाहिये।

तेजोवत्यादि घृत—चव्य, हरड़, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवायन, पुष्करमूल, पलाशकी छाल, चित्रकमूल, कचूर, कालानमक, भूमि आँवला, सैंधानमक, बेलकी गिरी, तालीसपत्र, जीवन्ती और बच, इन १७ औषधियोंको १-१ तोला तथा हींगको ३ माशे मिलाकर कल्क करें। फिर कल्क, गोघृत ६४ तोले और जल २५६ तोलेको मिलाकर यथाविधि पाक करें। इस घृतमेंसे शक्ति अनुसार १ से ४ तोले तक पिलाने से हिक्का और श्वास रोग दूर हो जाते हैं। एवं शोथ, वातप्रकोपजन्य अर्श, ग्रहणी, हृदयशूल और पार्श्वशूल नष्ट हो जाते हैं। हिक्का और श्वास रोगको इसी घृतका पान कराया जाय, और भोजनमें भी इस घृतका सेवन कराया जाय, तो विशेष हितावह माना जाता है।

यदि वेगशमन न होता हो—तो नाइट्रोग्लिसरीनकी टेब्लेटस्-Nitroglycerine tablets $\frac{1}{100}$ ग्रेन की दिनमें १ से ३ बार देवें; अथवा २० से ४० बूँद शुद्ध तार्पिन (Terebene) को केपसूलमें या गोंदके जलमें मिलाकर देवें; और कौड़ी स्थानपर राईका प्लास्टर लगावें।

पथ्यापथ्य

पथ्य—हिक्का रोग कफवातात्मक होनेसे जो औषधि-आहार विहार कफवातघ्न, उष्ण, वायुको अनुलोमन करनेवाले हों, वे सब पथ्य हैं। स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, तैलमर्दन, नस्य, धूम्रपान, दिनमें शयन, मूर्च्छावस्थामें शीतल जल छिड़कना, डराना, चमकाना, क्रोधित करना, संशयमें डाल देना, प्राणायाम, स्निग्ध भोजन, लाल

और मृदु पदार्थ, नमक, बिड़नमक, पुरानी कुलथी, गेहूँ, शालि चावल, पुराना साँठी चावल (अति वातप्रकोप न हो तो), जौ (कफाधिक है तो), काले हिरन, तीतर, लावा आदि जाँगल पशु पक्षियोंका मांस, औटाया हुआ जल, परवल, कोमल मूली, पक्के कैथ, कड़वा निम्ब, लहशुन, शहद, बकरीका दूध, जवाखार, सोंठ, कालीमिर्च पीपल, हल्दी, बेरकी गुठलीकी मींगी, पक्के आँवले, पक्का बिजौरा, पुष्करमूल, काली तुलसी, शराब, गोमूत्र, यवागू, भूनी हींग इत्यादि पथ्य हैं।

जली हुई मिट्टीपर जल छिड़ककर सुंघाना (बाष्प नाकमें न जाय इस तरह जल छिड़कना), कण्ठके संधिस्थान पर जलकी धारा डालना, नाभिके ऊपर दबाना और दोनों पैरोंके दो अंगुल ऊपर और नाभीके दो अंगुल ऊपर दाग देवें। यह दाग दीपककी अग्निपर हल्दीको जलाकर उससे देवें। हल्दीसे दाग देनेकी विधि और अधिकारी आदिके लिये चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम-खण्डके शरीर शुद्धि प्रकरणके भीतर दम्भविधि पृ० १२० में देखें, ये सब हिक्का रोगमें पथ्य है।

हिक्कारोगीके लिए अन्नपान—पुष्करमूल, कचूर, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बिजौरा, अम्लबेंत, घी, बिड़नमक और हींग मिलाकर देना लाभदायक है। सूखी मूली, कसौंदीके पत्ते या सुहिंजनेके पत्ते, इनमेंसे किसी एकके साथ ३ गुनी कुलथी मिलावें। फिर सबके वज़नसे ८ गुना जल मिला अर्धावशेष क्वाथ (यूष) बनाकर पिलावें। यह हिक्का और श्वास रोगीके लिये अति हितकारक है, अथवा कुलथीके साथ सोंठ, कटेली और अडूसेके पत्ते मिलाकर यूष करें। फिर पुष्करमूलका चूर्ण मिलाकर पिलावें।

भगवान् धन्वन्तरि कहते हैं कि—

सर्पिः स्निग्धा घ्नन्ति हिक्कां यवाग्वः
कोष्णा ग्रासाः पायसो वा सुखोष्णः।
शुण्ठीतोये साधितं क्षीरमाजं
तद्वत्पीतं शर्करासंयुतं वा॥
आतृप्तेर्वा सेव्यमानं निहन्याद्—
घ्रात्वा हिक्कामाशु मूत्रं त्वजाव्योः॥

यवागू घी मिलाकर खाना, गुनगुने ग्रास लेना, गुनगुनी खीर खाना, सोंठ और जल मिलाकर बकरीका दूध उबाल दुग्धावशेष क्वाथकर मिश्री मिलाकर तृप्ति पर्यन्त पीना, तथा बकरी और भेड़का मूत्र सुघाँना, ये सब हिक्काको नष्ट करने वाले हैं।

कपोत, पारावात (कबूतर), लावा, शशघ्न पक्षी तथा श्वदंष्ट्र (सेह) गोधा (गोह) और वृष दंश (वनकी बिल्ली) आदि पशु, इनमेंसे किसीके मांस रसमें खट्टे फलोंका रस, सैंधानमक और घी मिलाकर गुनगुना पिलावें। इस तरह हिरन

और जङ्गली पक्षियोंके मांसका रस भी पिलाया जाता है। रात्रिको भोजन अति लघु, गुनगुना और सात्म्य देना चाहिये।

अपथ्य—अपानवायु, मूत्र, डकार, खाँसी और मलके वेगका रोकना, धूल, वायु, अग्नि, सूर्यके तापका सेवन, परिश्रम, विरुद्ध भोजन, मलावरोधकारक (कब्ज़ करनेवाले) पदार्थोंका सेवन, दाहकारक, रूक्ष और कफवर्धक, भोजन, निष्पाव (भटवांसु), पिट्ठी, उड़द, तिलकी खल, मैदेके पदार्थ, बेसनके पदार्थ, अधिक अन्नपान शीतल जल, मछली और अनूप देशके पशुओंका मांस, भेड़ीका दूध, दतौन, बस्ति, सरसों, अति तेज़ खटाई (करौंदा, कच्ची इमली और अति खट्टे दही आदि), मीठी तुम्बी, कन्दशाक (आलू, अरबी, रतालु आदि), तैलमें भुना हुआ पोईका शाक और पोईकी पकौड़ी, भारी और शीतल अन्नपान, खट्टा दही, लाल मिर्च, रात्रिमें जागरण, तेज़ वायुमें रहना, पका केला, सीताफल, रामफल, अमरूद, बेर, भिण्डीका शाक, सूर्योदयके पहले शीतल जलसे स्नान और मैथुन इत्यादि हिक्का रोगीके लिये अपथ्य हैं।

तृषा लगनेपर शीतल ताज़ा जल नहीं देना चाहिये। दशमूलका क्वाथ या द्राक्षासव देना हितकारक है। विशेष विचार चिकित्सोपयोगी सूचनामें किया है।

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह प्रथम-खण्ड

(संशोधित और परिवर्धित प्रथम-खण्ड सप्तम संस्करण)

इस ग्रंथमें भस्म, रसायन, गुटिका, आसव, अरिष्ट, पाक, अवलेह, लेप, सेक, मरहम, अंजनादि सब प्रकार की औषधियों के सहस्रशः अनुभूत प्रयोग हैं। इस ग्रंथ को सर्वोपयोगी और सुन्दर बनाने में पूर्णलक्ष्य रक्खा गया है। अनेक प्रतिष्ठित और अनुभवी वैद्यराजों ने इस ग्रंथकी उत्तमता और उपादेयता विषयक अति सन्तोषप्रद सम्मतियाँ प्रदर्शितकी हैं। बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी, यू० पी० मेडिसिन बोर्ड और अनेक कॉलेजोंमें पाठ्य पुस्तक रूपसे इसे स्थान मिला है। इसका गुजराती अनुवादभी हो चुका है।

भूमिकामें श्रीमान् पं० गोवर्धनजी शर्मा छांगाणी प्राणाचार्य, भिषक्केसरी, भूतपूर्व अध्यक्ष, निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल ने इस ग्रंथकी विशेषताएँ निम्नानुसार दर्शाई हैं—

(१) भस्मप्रकरणमें "कृष्ण-गोपाल धर्मार्थ औषधालय" की रसायनशाला में जिस विधिसे भस्में बनाई जाती हैं, जो शतशोऽनुभूत हैं; उन्हें दिल खोलकर लिख दिया है। इतना ही नहीं, उनका गुण-विवेचन भी विस्तारपूर्वक लिखा है। (२) कूपीपक्व रसायन अर्थात् मकरध्वज, चन्द्रोदय आदि बनाने की सरल अनुभूत विधियाँ; जैसी इस संग्रहमें हैं वैसी किसीभी संस्कृत, हिंदी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषा ग्रंथोंमें नहीं है। (३) अनुक्रमणिका भी दो प्रकार से दी है यथा-रोगानुसार और औषधियों के नामानुसार। रोगानुसार औषध-सूचीमें विशेषता यह है, कि उपद्रवभेद और वातादि दोषभेदानुसार औषधि भेद दिखाये गये हैं।

मूल्य —डिमाई अठपेजी, पृष्ठ संख्या १००, मूल्य अजिल्द ६।।) रु० सजिल्द ११) पोस्टेज पैकिंग चार्ज १=) अलग।

रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोगसंग्रह द्वितीय-खण्ड

(संशोधित और परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण)

इस ग्रन्थके प्रथम-खण्डके सात संस्करण हो गये हैं। इस हेतुसे प्रथम-खण्ड का जितना परिचय वैद्य, विद्यार्थी वृन्द और आयुर्वेद प्रेमी सज्जनोंको मिला है, उतना अभीतक इस खण्डका नहीं मिल सका है। इस खण्डकी मांग तो प्रथम-खण्डके समान निरन्तर बनी रही है; किन्तु आर्थिक प्रतिकूलताके हेतुसे इस दीर्घकाल पर्यन्त प्रकाशन नहीं करा सके थे। इस खण्डमें भी औषधियोंके गुणधर्म और उपयोगका वर्णन विस्तारसे किया है। पाठकों की सुविधाके लिये रोगानुसार सूची भी अलग और

उपद्रव भेदके अनुरूप दी गई है। इनके अतिरिक्त अंतिम सूचीमें आयुर्वेदिक रोगों के साथ समान लक्षणवाले एलोपैथिक रोगों के नाम भी दिये गये हैं।

प्रथम-खण्डमें शास्त्रीय प्रयोग अधिक और विद्वानोंके परीक्षित प्रयोग बहुत कम हैं और इस ग्रन्थमें शास्त्रीय प्रयोगोंकी अपेक्षा विद्वानों के परीक्षित प्रयोग अत्यधिक हैं। ये सब प्रयोग कृष्णगोपाल आयु० धर्मार्थ औषधालयकी रसायनशालामें तैयार करा परीक्षा करके ग्रन्थमें दिये गये हैं। अतः इनकी सफलताके सम्बन्धमें किञ्चित् भी संदेहका स्थान नहीं है। अनेक प्रतिष्ठित और अनुभवी वैद्यराजोंने इस ग्रन्थकी उत्तमता और उपादेयताके लिये संतोषप्रद सम्मतियाँ प्रदर्शितकी हैं।

इस खण्डमें उन प्रयोग रत्नों को स्थान दिया गया है, जिन्होंने अपने अलौकिक व चमत्कारिक गुणोंके कारण आतुरों व उनके परिचारकोंके दांतोंके नीचे अंगुलियां दबवा दी हैं। इसी खण्डके कतिपय प्रयोगोंने पाश्चात्य वैद्यविद्याविशारदों के चहकते हुए मुखोंको बन्दकर असाध्य और भूमिस्थ मरणप्रायः रोगियोंको शय्यारूढ़ ही नहीं, प्रत्युत स्वस्थ और सबल बना दिया है। अतः यशकी इच्छा रखनेवाले वैद्य और उदार सज्जनवृन्द इस खण्डको भी प्रथम-खण्डकी भाँति अपनाकर हमारे प्रयत्नों को सफल बनावेंगे, ऐसी हम आशा रखते हैं।

हमारा इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह श्री० स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज का ही आत्मबल है कि उदार चित्त सज्जन वैद्योंने "शिरं दद्यात् सुतं दद्यात् न दद्यात् मन्त्रमहौषधम्" कथनको ठुकराकर मन्त्रमुग्ध सर्पवत् वंशागत और आर्थिक सहायताके साधनरूप अपने-अपने प्रयोगरत्नों और धातुपधातुओंकी भस्म करनेकी क्रियाओं को दे दिया।

मूल्य—डिमाई अठपेजी पृष्ठ संख्या ५६० । अजिल्द का ६) रु० और सजिल्द का मूल्य ७।।) रु० पोस्टेज, पेकिंग चार्ज ।।।) अलग

चिकित्सातत्त्वप्रदीप [प्रथम-खण्ड]

(संशोधित परिवर्धित द्वितीय संस्करण)

इस ग्रन्थमें ५ प्रकरण हैं। (१) उपोद्घात; (२) शरीरशोधन; (३) चिकित्सासहायक; (४) ज्वर, और (५) पचनेन्द्रियसंस्थान व्याधि-प्रकरण।

प्रथम प्रकरणमें रोगविनिर्णय निदानपञ्चक और चिकित्सा सम्बन्धी महत्त्वके विचार दिये हैं। द्वितीय प्रकरण में सब प्रकारके नये और पुराने रोगोंको जड़-मूलसे नष्ट करनेके लिये वमन, विरेचन, बस्ति आदि शोधन विधियाँ दी हैं। तृतीय प्रकरणमें अनुपान, पथ्यापथ्य, षड्रस गुणदोषविचार, एक दूसरेके प्रतिकूल पदार्थ, औषधि मात्रादि

चिकित्सा-सहायक सभी आवश्यक बातोंका संग्रह किया है। चतुर्थ प्रकरणमें प्राचीन आचार्योंके दिये हुए और वर्तमानमें संक्रामक रूपसे उत्पन्न हुए सब प्रकारके ज्वर रोगोंके आयुर्वैदिक और डॉक्टरी निदान और चिकित्साका विवेचन किया है। अन्तिम प्रकरणमें पचनेन्द्रियसंस्थानके रोग अर्थात् अतिसार, पेचिश, संग्रहणी, अर्श, अजीर्ण,कोष्ठबद्धता और कृमि आदिका वर्णन किया है।

शारीरिक अवयवोंके और रोग दर्शक चित्रभी दिये हैं, तथा रोग सम्प्राप्तिके वर्णनमें अवयवोंके स्थान, कार्य, स्वरूपादिका विशद् विवेचन किया गया है। इसलिये सामान्य चिकित्सक भी रोगसम्प्राप्ति सहजमें समझ सकते हैं।

मूल्य— डिमाई अठपेजी १८ पौंड ग्लेज़ कागज़, पृष्ठ-संख्या ८०० मूल्य सजिल्द ८॥) पोस्टेज आदि १-)।

औषध-गुण-धर्म विवेचन

(संशोधित परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण)

आयुर्वेदके हिंदी पाठकोंके लिये यह एक अपूर्व और अत्युपयोगी पुस्तक है। इस पुस्तकमें आयुर्वेद प्रयोजन, पित्तदोषघ्न विवेचन, कफदोषघ्न विवेचन, पुरीषवर्णकारक, विरेचन, संशोधन, शिरोविरेचन, छर्दिनिग्रहण, स्वेदन, अपथ्यरोधक, कीटाणुनाशक, विषघ्न, रक्तप्रसादन, व्रणपाचन, शोधन, आर्तवजनन, पाचन, दीपन, ग्राही, वीर्यस्तम्भन, शुक्रशोधन आदि १०१ गुणोंका वर्णन किया है।

संक्षेपमें इस पुस्तकमें चिकित्सासहायक बातोंका युक्तिपूर्वक वैज्ञानिक शैलीसे शास्त्र मर्यादाके अनुकूल ही विचार किया है। अतः यह पुस्तक आयुर्वेदके विद्यार्थी वर्गके लिये शिक्षाप्रद, नव्य चिकित्सकके लिये ज्ञानवर्द्धक और रोगियोंके लिये आरोग्यप्राप्तिकी कुंजी रूप है। अनेक विद्वान् चिकित्सकोंने इस पुस्तककी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओंमें इस शैलीका एक भी ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ।

मूल्य—साइज़ १८×२२, अठपेजी, पृष्ठ संख्या ३२० मूल्य साधारण कागज़ ३) रु० विशेष कागज़ सजिल्द ४॥) डाक खर्च आदि ॥=) अलग।

नेत्र रोग विज्ञान

इस ग्रन्थके लेखक स्व० डॉ० जादवजी हंसराज D. O. M. S. (London) हैं। जिन्होंने अपना ४० वर्षका अनुभव दर्शाया है। इस ग्रन्थके पहले प्रकरणमें नेत्र और उसके उपांगोंकी रचना; दूसरे प्रकरणमें नेत्र और उसके उपांगोंका कर्तव्य; तीसरे प्रकरणमें स्वास्थ्यरक्षाके नियम; चौथे प्रकरणमें नेत्र परीक्षा; पाँचवें प्रकरणमें नेत्ररोगचि-